श्रम समस्यायें

एवं

समाज कल्याण

(Labour Problems and Social Welfare)

लेखक

आर० सी० सक्सेना

एम० ए०, बी० ए० (आनर्स), पी-एच० डी०

अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, मानवशास्त्र,

रीजनल इंजीनियरिंग कालिज, कुरुक्षेत्र

भूतपूर्व अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,

मेरठ कालिज, मेरठ।

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्य के कागज पर मुद्रित

प्रकाशक

के० नाथ एण्ड कम्पनी,

पुस्तक प्रकाशक, निकट कोतवाली, मेरठ—२ (उ० प्र०)

परमपूज्य पिताजी

स्वर्गीय प्रोफेसर विश्वेश्वरचरण लाल

को

सादर समर्पित

सप्तम् हिन्दी संस्करण की भूमिका

यह प्रसन्नता की बात है कि श्रम समस्याओं पर मेरी इस पुस्तक का विद्यार्थियों तथा अध्यापकों द्वारा उसी प्रकार स्वागत हुआ, जिस प्रकार कि इस विषय पर मेरी अंग्रेजी पुस्तक का हुआ है, जिसके अब तक चौदह संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

इस पुस्तक का पिछला हिन्दी संस्करण, जो कि १९८१ में प्रकाशित हुआ था, यद्यपि दो वर्ष की अवधि में ही समाप्त हो गया था, किन्तु मेरे सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, यह पुस्तक अब से पहले संशोधित न की जा सकी जिसका मुझे हार्दिक खेद है तथा छात्रों, अध्यापकों एवं विद्वानों से मैं इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूं। हिन्दी के इस संस्करण की मांग निरन्तर आती रही है और इस सम्बन्ध में मुझे अनेक पत्र भी प्राप्त हुए हैं तथा सुझाव आये हैं। इस सप्तम् संस्करण की तैयारी में मैंने उन सभी सुझावों का विशेष रूप से ध्यान रखा है।

कुछ महत्वपूर्ण विषयों (उदाहरणतः, श्रमिक प्रबन्ध सहयोग, अनुशासन संहिता, आचरण संहिता, शिकायत-निवारण क्रियाविधि, प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग तथा औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव आदि) का परिशिष्ट 'ग' में तथा यथास्थान अन्यत्र उल्लेख किया गया है।

पुस्तक के सप्तम् संस्करण में नवीनतम तथ्य एवं आंकड़े परिशिष्ट घ में में दिये गये हैं। विलम्ब होने के कारण पुस्तक में प्रत्येक अध्याय में संशोधन नहीं हो सका है, इस अभाव को परिशिष्ट 'घ' में पूरा किया गया है। पाठकों से निवेदन है कि नवीनतम तथ्यों के लिये परिशिष्ट घ को देखें।

इस बात का भी हर सम्भव प्रयास किया गया है कि पुस्तक में छपाई सम्बन्धी कोई त्रुटि न रहने पाये। इस संस्करण में प्रकाशक बन्धु श्री कान्ती नाथ गुप्ता ने भी भारत सरकार से रियायती मूल्य का कागज प्राप्त करने तथा पुस्तक की शीघ्र एवं उच्च स्तर की छपाई के लिए व्यक्तिगत रुचि लेकर जो अथक प्रयास किये है, उसके लिये वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है पुस्तक का यह नवीन संस्करण पाठकों के लिये पहले से अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। मैं यह भी स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि श्रम समस्याओं पर मैंने इस पुस्तक अथवा इसके अंग्रेजी संस्करण के अतिरिक्त अन्य कोई पुस्तक नहीं लिखी है।

आर० सी० सक्सेना

प्रथम हिन्दी संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'लेबर प्रोब्लम्स एण्ड सोशल वेलफेयर' नामक मेरी अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा ही अब अधिकाधिक रूप में शिक्षा का माध्यम होती जा रही है। विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा अन्य पाठकों की यह निरन्तर माग रही है कि मैं अपनी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित करू । अंग्रेजी पुस्तक की लोकप्रियता के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। आठ वर्षों में ही उसके आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सभी क्षेत्रों में उसका काफी स्वागत किया गया है। इसके लिये मैं विद्यार्थीगण, अध्यापकों, विभिन्न समाचार-पत्रों व पत्रिकाओं और प्रमुख व्यक्तियों (जैसे-- स्व० डा० एल० सी० जैन तथा श्री वी० वी० गिरी, राज्यपाल केरल) का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी अंग्रेजी पुस्तक की प्रशंसा की है। मैं आशा करता हूँ कि मेरी हिन्दी पुस्तक भी वैसी ही उपयोगी सिद्ध होगी जैसी इस विषय की मेरी अंग्रेजी पुस्तक सिद्ध हुई है।

अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करने में हिन्दी के प्रामाणिक व उपयुक्त शब्दों की समस्या प्राय सामने आती है। इस पुस्तक में यथासम्भव मैंने उन शब्दों का प्रयोग किया है जो कि भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली की अर्थशास्त्र विशेषज्ञ समिति ने स्वीकार किए हैं जिनका मैं कई वर्षों से सदस्य भी हूँ।

इस पुस्तक के अनुवाद में मुझे काफी समय लगा है। बीच-बीच में अंग्रेजी पुस्तक के संस्करण की माग के कारण मैं अनुवाद के कार्य की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाया हूँ। यह हिन्दी संस्करण कुछ शीघ्रता में ही प्रकाशित किया जा रहा है। इस कारण इस संस्करण में कहीं-कहीं त्रुटियाँ आ गई हैं जो ठीक नहीं हो पाई हैं। मुझे आशा है कि पाठकगण इसके लिये मुझे क्षमा करेंगे। अगले संस्करण में भाषा शब्दावली तथा छपाई की जो त्रुटियाँ होंगी उन्हें दूर करने का प्रयत्न करूंगा।

इस संस्करण की तैयारी और अनुवाद में मुझे अनेक व्यक्तियों का सहयोग मिला है तथा सहायता प्राप्त हुई है। इस सम्बन्ध में श्रीमती कोकिला सक्सेना, श्री सुरेन्द्र निगम तथा कुमारी प्रीति सक्सेना के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त श्री सन्तोषकुमार गुप्ता, श्री हर्षकुमार जैन, श्री पी० के० जैन, श्री राजेन्द्र पाठक, श्री सुरेश पाठक, श्री राजेन्द्र कमल, श्री राजकुमार त्यागी, श्री परमहंस लाल मेहता तथा श्री राजकुमार गुप्ता ने भी अनेक रूपों से सहायता की है। श्रीमती शकुन सक्सेना, कुमारी हेम सक्सेना, श्री बलराजनारायण तथा अरुण, अंजली व इन्दु का सहयोग भी प्रशंसनीय रहा है। मैं इन सबका आभारी हूँ।

मेरठ

दिसम्बर, १९६०

आर० सी० सक्सेना

अंग्रेजी पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका

श्रम आज का एक मुख्य विषय है। औद्योगिक प्रणाली और देश के भावी आयोजित विकास के लिये श्रम की महत्ता को सबने स्वीकार किया है, परन्तु इस विषय पर काफी अस्पष्टता है। प्रकाशित सूचनाओं की बहुलता के कारण कई बार जनता मे श्रम समस्याओ को ठीक-ठीक समझने के स्थान पर भ्रम ही उत्पन्न हो जाता है। अत विभिन्न श्रम-समस्याओ को स्पष्ट रूप से समझने की अत्यधिक आवश्यकता है।

भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयो मे श्रम-समस्यायें एव समाज कल्याण अध्ययन का विषय है। स्नातकोत्तर कक्षाओ मे अधिकतर विद्यार्थी इस विषय का अध्ययन कर रहे है। एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता काफी समय से अनुभव की जाती रही है जिसमे श्रम समस्याओ के विषय म विस्तारपूर्वक सूचनायें, सभी विचार तथा तथ्य और आँकडे प्राप्त हो सकें। इस विषय पर जो कुछ साहित्य मिलता भी है वह या तो सरकार द्वारा प्रकाशित बडी-बडी रिपोर्टें है अथवा श्रम विषय के विभिन्न रूपो पर विशिष्ट अध्ययन है। साधारण छात्रो और साहित्य को पाना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप, विद्यार्थी या तो अध्यापक से प्रार्थना करते है कि कक्षा मे कुछ नोट्स दे दिये जायें अथवा परीक्षा के दृष्टिकोण से अपना अध्ययन कुछ विशेष प्रश्नो तक ही सीमित रखते है। इस प्रकार श्रम समस्याओ का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करने का प्रयत्न किया जाता।

प्रस्तुत पुस्तक इस कठिनाई को दूर करने के लिये लिखी गई है। पुस्तक मे इस बात का प्रयत्न किया गया है कि श्रम विषय से सम्बन्धित तथ्य और विचारो को उचित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जा सके। इस बात की ओर विशेष ध्यान रखा गया है कि पुस्तक की विषय-सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाये कि विद्यार्थियो को श्रम-समस्याओ पर विचार करने और अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा मिले। महत्वपूर्ण समस्याओ के सैद्धांतिक आधार का भी विवेचन किया गया है। अत मैं इस बात का दावा नही करता कि इस पुस्तक मे कोई मौलिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। जो भी तथ्य और विचार दिये है वे विभिन्न रिपोर्टों, पत्रिकाओ समाचारपत्रो तथा विषय से सम्बन्धित विशिष्ठ व ख्याति प्राप्त लेखको के लेखों और पुस्तको से लिये गये है। सत्य तो यह है कि स्नातकोत्तर कक्षाओ के लिये तैयार किये गये नोटस के आधार पर इस पुस्तक को तैयार किया गया है। अत कई स्थानो पर सरकारी रिपोर्टों तथा ख्याति प्राप्त लेखका क लेखो का पुस्तक म उपयोग

किया गया है। (अंग्रेजी की पुस्तक के परिशिष्ट D' में ऐसी सभी किताबों की सूची
दी गई है जिनसे इस किताब के लिखने में सहायता मिली है)। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-
संगठन के प्रकाशन, रायल श्रम आयोग तथा श्रम आयोग तथा श्रम अनुसन्धान
समिति की रिपोर्टें, इण्डियन लेबर ईयर बुक्स,' डा० राधाकमल मुकर्जी की पुस्तक
"इण्डियन वर्किंग क्लास" तथा श्री० एन० अग्रवाल की पुस्तक "इण्डियन लेबर
प्रोब्लम्स" का विशेष रूप से इस सम्बन्ध में उल्लेख किया जा सकता है। मैं इन
सभी प्रकाशनों तथा अन्य पुस्तकों के प्रति, जिनका नाम सूची में दिया गया है,
आभार प्रदर्शित करता हूँ। इंगलैण्ड की श्रम समस्याओं के लिये मैसर्स जी० डी०
एच० कोल तथा रिचर्डसन की पुस्तकें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

श्रम समस्याओं में रुचि मुझे १९३९ से हो रही है। जब अपने बड़े भाई
श्री एच० सी० सक्सेना, आई० ए० एस० के निर्देशन में जो उस समय पंजाब
विश्वविद्यालय, लाहौर में लेक्चरार थे, मैंने इस विषय को एम० ए० में लिया था।
उसके पश्चात् पिछले कई वर्षों से स्नातकोत्तर कक्षाओं को यह विषय पढ़ाने, तथा
श्रम-विषयों पर अनुसन्धान का पर्यवेक्षण करने के कारण इस विषय पर मेरी रुचि
सदा बनी रही है। उत्तर भारत के अधिकांश औद्योगिक और खनिज क्षेत्रों को स्वयं
देखने का मुझे अवसर मिला है। अतः मैंने इस पुस्तक में कोई ऐसी बात नहीं लिखी
है जो मेरे व्यक्तिगत अध्ययन पर आधारित न हो या जिससे मुझे पूर्ण विश्वास न
हो।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे कई विद्यार्थियों, जैसे—सर्वश्री गोपीचन्द हैरन,
वीरेश्वर त्यागी, ओ० पी० कुकरेजा, आर० टी० जैन, वी० डी० शर्मा आदि ने
कई रूपों में सहायता की है। इन सबको मैं धन्यवाद देता हूँ "प्रो० पी० सी०
माथुर, प्रो० ए० एम० गर्ग और प्रो० एम० के० मुकर्जी के सहयोग तथा "डा० के०
के० शर्मा ने इस पुस्तक में जो रुचि दिखाई है उसके लिये मैं अपना आभार प्रदर्शित
करता हूँ "प्रो० नन्दलाल भटनागर, अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, मेरठ कालिज का
आभार प्रकट करने के लिये मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं। इस किताब को लिखने
का विचार सर्वप्रथम प्रो० भटनागर ने ही दिया था और इस वर्ष तो उनका यह
आदेश मिल गया था कि मैं इस किताब को पूर्ण कर दूँ। उनके स्नेह और
प्रोत्साहन के कारण ही यह पुस्तक लिखी जा सकी है।

आर० सी० सक्सेना

मेरठ
जनवरी, १९५२

विषय सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ

श्रम अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के कुछ विषयों की सूची
(पृष्ठ कोष्ठक में देखिये)

श्रम की विशेषतायें तथा श्रम समस्याओं की उत्पत्ति (१–३), श्रम-अर्थशास्त्र की प्रकृति तथा क्षेत्र (३–६), रोजगार दफ्तर (५८), श्रम की कार्यकुशलता (७४६), कार्य के घन्टे तथा राष्ट्रीय लाभांश (५७३–५७७)।

औद्योगिक सम्बन्ध (क) प्रो० पीगू द्वारा औद्योगिक विवादों का वर्गीकरण (१६६), (ग) सामूहिक सौदाकारी (२४६) (ग) सुलह विवाचन तथा मध्यस्थता (२३१), (घ) अवपीडक हस्तक्षेप (Coercive Intervention) (२३४) गच्छित समझौता (२४४)।

श्रम कल्याण (३४६), श्रमिक सह-साझेदारी (७०५), कामिक प्रबन्ध तथा मानवीय सम्बन्ध, विवेकीकरण (५६०)। सामाजिक सुरक्षा (४०७), श्रमिक संघवाद (६८)। बेराजगारी, बेराजगारी तथा कम समय योजना। काय अनुदेशन तथा कायप्रणाली ?

मजदूरी (क) उचित मजदूरी (६५६), (ख) मजदूरी अदायगी की पद्धतियाँ, प्रेरणात्मक व्यवस्थायें (६०७), (ग) राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (६६६), (घ) लाभ सहभाजन (७०३), (ङ) समयानुसार मजदूरी (६०७), (च) मजदूरी के सिद्धान्त (६१५), (छ) उद्योग की भुगतान क्षमता (६५८), (ज) पुरुषों एवं स्त्रियों की मजदूरी (६७७)।

१ विषय-प्रवेश

श्रम की विशेषतायें (Peculiarities of Labour) :

उत्पत्ति के साधनो मे श्रम को सदैव पृथक् और महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कोई भी शारीरिक अथवा मानसिक कार्य जो आर्थिक दृष्टिकोण से किया जाता है, अर्थशास्त्र मे 'श्रम' कहलाता है। श्रम का महत्व क्या है और उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम मे क्या अन्तर है इस पर अर्थशास्त्रियो मे सदैव मतभेद रहा है, जिसका उल्लेख करना यहाँ पर आवश्यक नही है, परन्तु यह निश्चित है कि कुशल श्रम के बिना उत्पादन सम्भव नही। श्रम उत्पादन के अन्य उपादानो (factors) से एक पूर्णतया भिन्न उपादान है और उसकी कुछ विशेषताओ के कारण ही समस्त देशो मे श्रम सम्बन्धी अनेक समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। श्रम एक जीवित तत्व है और यही अन्य उपादानो से इसकी भिन्नता का मुख्य आधार है। श्रम की प्रथम विशेषता यह है कि श्रम को श्रमिक से पृथक नही किया जा सकता, अर्थात् श्रम बेचने के लिये श्रमिक को स्वय उसी स्थान पर जाना पड़ता है जहाँ श्रम की माग है। अत वे परिस्थितियाँ तथा वातावरण जिसमे श्रमिक को कार्य करना पड़ता है, बहुत महत्व-पूर्ण हैं। श्रम की दूसरी विशेषता यह है कि श्रमिक केवल अपना श्रम बेचता है परन्तु अपने गुणो का स्वामी स्वय ही रहता है। अत श्रम म निवेश (investment) अर्थात् श्रमिक की शिक्षा और कार्य-कुशलता, अधिक महत्वपूर्ण हो जाते है। तीसरी विशेषता यह है कि श्रम नाशवान् है। जो दिन बीत जाता है, वह फिर नही लौटता। श्रम को अन्य वस्तुओं की भांति भविष्य के लिये सचय नही किया जा सकता, अर्थात् इसका सचित मूल्य शून्य है (It has no reserve price), जिससे श्रमिको मे प्रतीक्षा शक्ति का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप श्रमिक मे मालिक की अपेक्षा मोल-भाव करने की शक्ति कम होती है। चौथे, श्रम की मजदूरी कम हो जाने पर भी श्रम की पूर्ति तुरन्त कम नही की जा सकती। इस प्रकार, श्रम की पूर्ति में शीघ्रतापूर्वक वृद्धि भी नही की जा सकती, क्योंकि बच्चो के पालन-पोषण मे तथा श्रमिको को प्रशिक्षण देने मे समय लगता है। अत श्रम की माग तथा पूर्ति मे सन्तुलन शीघ्र स्थापित नही हो पाता। पाचवें, पूँजी, जो उत्पत्ति मे श्रम का एक सहायक साधन है, श्रम की अपेक्षा अधिक उत्पादक है। श्रमिक आधुनिक मशीन की उत्पादन-शक्ति की समता नही कर सकता। अत स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे पूँजी-पति राष्ट्रीय आय का, श्रमिक की अपेक्षा अधिक भाग ले जाते है। छठे, श्रम पूँजी

के समान गतिशील भी नहीं है। परिस्थिति, फैशन, आचार-विचार, प्रकृति और भाषा आदि में विभिन्नता होने के कारण मनुष्य विभिन्न स्थानों पर घूमने की अपेक्षा घर रहना ही अधिक पसन्द करते है। सातवें, यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रम उत्पादन का केवल उपादान या साधन मात्र ही नही है वरन् श्रम को उत्पादन का अन्तिम ध्येय (end) भी कहा जा सकता है। जीवन-स्तर, निर्वाह खर्च, निर्धनता आदि जो श्रमिक की, उपभोक्ता के नाते, आर्थिक समस्यायें हैं वे श्रम अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण विषय हैं। इनके अतिरिक्त, यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि श्रमिक एक मानवीय साधन है और इस कारण न केवल आर्थिक वरन्, वे समस्त नैतिक तथा सामाजिक समस्यायें, जिनका प्रभाव मानव पर पड़ता है, श्रम सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन में महत्वपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार श्रम समस्याओं का अध्ययन आर्थिक राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, तार्किक, वैधानिक, ऐतिहासिक, प्रशासनिक आदि विभिन्न दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर करना चाहिये।

श्रम-अर्थशास्त्र की प्रकृति तथा क्षेत्र
(The Nature and Scope of Labour Economics).

किसी भी विज्ञान (Science) की प्रगति उसकी उन शाखाओं के विकास से सम्बद्ध होनी है जोकि उस विज्ञान के विशाल क्षेत्र के भिन्न-भिन्न विशिष्ट पहलुओं का अध्ययन तथा विश्लेषण करती हैं। अर्थशास्त्र चूंकि एक विज्ञान है, अतः उसकी भी यही स्थिति है। अर्थशास्त्र की अनेक शाखायें है, जैसे—कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics), मौद्रिक अर्थशास्त्र (Monetary Economics), औद्योगिक अर्थशास्त्र (Industrial Economics), परिवहन अर्थशास्त्र (Transport Economics) तथा श्रम-अर्थशास्त्र आदि। इस प्रकार, श्रम-अर्थशास्त्र (Labour Economics) अर्थशास्त्र के सामान्य स्वरूप का ही एक भाग है। श्रम-अर्थशास्त्र का सम्बन्ध, चूंकि मानवीय तत्त्व से है, अत. इसका महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

श्रम-अर्थशास्त्र (Labour Economics) अर्थशास्त्र की वह शाखा है जो श्रम-समस्याओं का अध्ययन करती है ताकि उन समस्याओं के बारे में विस्तृत एव विशिष्ट जानकारी प्राप्त हो सके। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि श्रम-अर्थशास्त्र उस श्रम-बाजार (Labour Market) के सगठन, व्यवहार तथा उसकी संस्थाओं का अध्ययन करना है जोकि औद्योगीकरण के मार्ग पर आगे बढ़ती हुई अथवा औद्योगीकरण से युक्त अर्थ-व्यवस्था (economy) में विद्यमान होता है।[1] ऐसी अगणित समस्यायें हैं जिनका सामना श्रमिकों, प्रबन्धकों तथा समाज के अन्य वर्गों को औद्योगीकरण की प्रक्रिया के बीच करना होता है। श्रम से सम्बन्धित अधिकांश समस्यायें यद्यपि विश्व के लगभग सभी देशों में समान रूप से पाई जाती हैं किन्तु

1 Allan M Carther & F R, Marshall, Labour Economics, page 1.

इन समस्याओ के समाधान करने के तरीके विभिन्न देशो मे भिन्न-भिन्न है और वह इस कारण क्योंकि समाधान के ये तरीके विभिन्न सिद्धान्तो पर आधारित होते हैं।

श्रमिको, मालिको तथा सम्पूर्ण समाज पर ये श्रम समस्यायें गहरा प्रभाव डालती है। अत इन समस्याओ का समाधान भिन्न भिन्न दृष्टिकोणो, जैसे—आर्थिक, राजनैतिक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, प्रशासनिक एव वैधानिक दृष्टिकोणो से खोजना होता है।

अत श्रम-अर्थशास्त्र का अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोणो के बीच तालमेल रखते हुए करना होता है। इसमे तो कोई सन्देह नही है कि श्रम अर्थशास्त्र का उदय सामान्य अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा के रूप मे हुआ है। किन्तु सामान्य अर्थशास्त्र से श्रम अर्थशास्त्र को पृथक् मानना स्वाभाविक तथा उचित नही कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि श्रम बाजार सिद्धान्त (labour market theory) सामान्य बाजार सिद्धान्त (general market theory) का ही एक पहलू है और इसका निर्देशन भी उन्ही नियमो द्वारा होता है जिनके द्वारा कि पूँजीवादी अर्थशास्त्र मे अथवा भू शास्त्र मे कीमत एव वस्तु की मात्रा का निर्धारण होता है।

श्रमिको का सगठन, बाजार मे सामूहिक सौदाकारी, मजदूरी व रोजगार का सिद्धान्त, मानवशक्ति अर्थशास्त्र (Manpower Economics) तथा सरकारी नीति—ये कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण पहलू है जिन पर श्रम-अर्थशास्त्र को विचार करना होता है। श्रमिको का मुख्य सम्बन्ध अपनी मजदूरी से, काम के घण्टे से, काम करने की दशाओ से तथा अपने रोजगार की सुरक्षा से होता है और इन बातो पर ही सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग का कल्याण निर्भर होता है। दूसरी ओर, मालिको का सम्बन्ध मुख्यत कुछ ऐसी समस्याओ से होता है, जैसे कि श्रमिको की भर्ती, उनका प्रशिक्षण (training) तथा उनकी मजदूरी की ऐसी दरो पर बनाये रखना जिससे कि उन्हे (मालिको को) पर्याप्त लाभ मिल सके। इसके अतिरिक्त सरकारी नीति का सम्बन्ध श्रमिको की प्रारम्भिक शिक्षा से तथा मजदूरा व मालिको के बीच टकराव को रोकने से होता है। श्रम अर्थशास्त्र मे इन सभी समस्याओ का विवेचन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से किया जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अध्ययन के निम्नलिखित क्षेत्र[1] श्रम-अर्थशास्त्र की परिधि मे आते है—(i) किसी विशिष्ट आर्थिक प्रणाली का सस्थागत ढाँचा, (ii) श्रम शक्ति और श्रम बाजार का आकार तथा गठन, (iii) श्रम—उत्पादन के एक साधन के रूप मे, अर्थात श्रम की उत्पादिता व कार्यक्षमता, श्रमिको की कार्य करने की दशायें, औद्योगिक सम्बन्ध, जीवन स्तर तथा राष्ट्रीय आय म श्रमिको का भाग, (iv) श्रम सम्बन्धी जोखिम तथा समस्यायें, (v) मजदूर सघो का अध्ययन,

---

1 Dr G P Sinha • The Nature and Scope of Labour Economics paper presented to the Seminar on Labour Economics held at Mussoorie in June 1962

(vi) समाज मे श्रमिको की स्थिति तथा दर्जा, और (vii) श्रम सम्बन्धी विधान। डा० बी० एन० गागुली का यह मत है कि श्रम-अर्थशास्त्र को विभिन्न दृष्टिकोणो, वर्गों एव क्षेत्रो के अनुशासन के एक शास्त्र के रूप म मान्य किया जाना चाहिये।[1] इसका अध्ययन क्षेत्र व्यापक तथा इसकी विषय-सूची ठोस होनी चाहिए जिसमे निम्न विषयो का विशेष रूप से समावेश एव विश्लेषण किया जाना चाहिए—(१) श्रम-अर्थशास्त्र के उच्च सिद्धान्त, (२) श्रम सम्बन्धी कानून, (३) कार्मिक प्रबन्ध एव कार्य-मूल्याकन के सिद्धान्त, (४) श्रम कल्याण के सिद्धान्त तथा व्यवहार, और (५) मजदूर सघो के प्रबन्ध के सिद्धान्त एव व्यवहार।

श्रम-अर्थशास्त्र के दो भाग किये जा सकते है[2] सैद्धान्तिक (Theoretical) और सस्थागत (Institutional), और इन दोनो ही भागो के अन्तर को समझ लेना भी बडा उपयोगी है। सैद्धान्तिक भाग का सम्बन्ध आर्थिक व्यवहार के आदर्शों के निर्माण से है और मान्यताओ अथवा पूर्व-धारणाओ (assumptions) के विभिन्न स्वरूपो का निर्धारण करके ऐसा किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, कुछ सिद्धान्तवेत्ताओ द्वारा सौदा करने के विभिन्न आदर्शों अथवा नमूनो का निर्धारण किया गया है। चूकि विभिन्न आर्थिक तत्त्व एक दूसरे पर निर्भर होते है, अत श्रम समस्याओ का अध्ययन भी अन्य आर्थिक तत्त्वो के सन्दर्भ म ही करना होता है। उदाहरणार्थ, रोजगार की मात्रा पर मजदूरी की सामान्य कटौती का जो प्रभाव पडता है उसकी व्याख्या तब तक नही की जा सकती जब तक कि आय निर्धारण की पद्धति का अवलोकन न किया जाये। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि सैद्धान्तिक श्रम अर्थशास्त्र सामान्य आर्थिक सिद्धान्त (general economic theory) का ही एक भाग है।

श्रम-अर्थशास्त्र के दूसरे भाग का सम्बन्ध मुख्यत इस बात से है कि श्रम समस्याओ का अध्ययन उनके सस्थागत एव ऐतिहासिक सन्दर्भ मे किया जाए। प्रो० रेनोल्ड का तो यह कथन है कि अनेक श्रम समस्यायें ऐसी होती हैं जिनके आर्थिक विश्लेषण की आवश्यकता नहीं होती। "श्रम अर्थशास्त्र का कोई विद्यार्थी, यदि यह चाहता है कि उसे अपने क्षेत्र के विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो, तो उसे चाहिये कि अनेक सम्बद्ध सामाजिक नियमो के मूल तत्त्वो का भी अध्ययन करे और अपने को विविध सामाजिक नियमो का वेत्ता के रूप मे परिवर्तित कर ले।" वास्तव मे बात यह है कि आर्थिक प्रणाली के सस्थागत ढाचे के परिवर्तन के साथ ही श्रम-समस्याओ के स्वरूप म भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिये, मजदूरी के निर्धारण की

1 Dr B N Ganguli in his Presidential Address to the XII All India Labour Economics Conference at Patna in January, 1969

2 Papers on 'Scope of Labour Economics' by Prof K K Majumdar, Dr V B Singh and Mr J Fezler in the fifth All India Labour Economics Conference at Dharwar in Dec, 1961

प्रक्रिया को अथवा मजदूर संघो की कार्य प्रणाली को सस्थागत कारको (institutional factor) से पृथक् करके पूर्णतया समझा ही नहीं जा सकता। श्रम-बाजार मे मालिको व मजदूरो के सम्बन्धों मे सस्थागत शक्तियों का उदय, उत्पादन की विधियो में होने वाले नये-नये परिवर्तन, औद्योगिक सम्बन्धो मे विशिष्टता प्राप्त व्यावसायिक स्कूलो का उदय, श्रम-अर्थशास्त्र के कुछ महत्वपूर्ण मसलो (जैसे कि मजदूरियो के निर्धारण आदि) के बारे मे सिद्धान्तवादियो (Theorists) और सस्थावादियो (institutionalists) के बीच उत्पन्न मतभेद और श्रम-अर्थशास्त्र के अध्ययन मे अनुभवाश्रित रीतियो (empircial methods) का प्रयोग—ये कुछ ऐसे तत्व हैं जिनके कारण अभी हाल के वर्षों मे श्रम-अर्थशास्त्र के क्षेत्र का काफी विस्तार हो गया है। ब्लूम तथा नार्थ्रूप ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'Economics of Labour Relations' मे कहा है कि '*अन्य किसी भी अर्थशास्त्री की तरह ही श्रम-अर्थशास्त्री भी मुख्यत. आर्थिक समस्याओ तथा आर्थिक गतिविधियो मे रुचि लेता रहा है*··· । *अभी हाल के वर्षों मे यह प्रवृत्ति अवश्य अधिकाधिक मात्रा मे देखी गई है कि श्रम-अर्थशास्त्री इस बात पर भी काफी अधिक ध्यान देते हैं कि श्रम बाजार मे आर्थिक व्यवहार को प्रभावित करने मे मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक तत्वों का क्या योगदान रहता है, और वास्तव मे इस विशाल दृष्टिकोण की आवश्यकता है भी*··· ।"

जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि यहाँ श्रम-अर्थशास्त्र अभी भी अपनी शैशवावस्था में है और ऐसे विश्वविद्यालयो की सख्या यहाँ बहुत ही कम है जहाँ श्रम अर्थशास्त्र अध्ययन के एक पृथक् विषय के रूप मे पढाया जाता हो। अनेक विश्वविद्यालयों मे तो, स्नातकोत्तर कक्षाओ मे अर्थशास्त्र अथवा वाणिज्य के पाठ्यक्रम के एक अग के रूप मे भी यह विषय सम्मिलित नही किया गया है और न ही वहा श्रम समस्याओ का प्रश्न-पत्र (paper) ही पढाया जाता है। किन्तु श्रम अर्थशास्त्र की भारतीय सोसाइटी ने, श्री वी० वा० गिरि की प्रेरक अध्यक्षता ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण योगदान किया है और इस विषय के महत्त्व की ओर सभी का ध्यान आकर्षित किया है। सन् १९६१ मे धारवाड मे आयोजित ५वें अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र सम्मेलन के विचारार्थ विषयों मे एक विषय रखा गया था 'श्रम-अर्थशास्त्र का क्षेत्र"। जून १९६२ मे मसूरी मे डा० बलजीत सिंह के निर्देशन मे एक विचार-गोष्ठी (seminar) आयोजित की गई थी, जिसका विषय भी "श्रम-अर्थशास्त्र" था। जनवरी १९६९ मे, पटना मे १२वें अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र सम्मेलन मे श्री वी० एन० गागुली ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया था, उसका विषय था 'श्रम-अर्थशास्त्र की प्रकृति तथा विषय-सूची"। अत यह आशा की जा सकती है कि कार्मिक प्रबन्ध, औद्योगिक सम्बन्ध तथा उद्योगों मे मानवीय सम्बन्धो का महत्त्व ज्यों-ज्यो बढता जायेगा, त्यों-त्यों देश मे श्रम-अर्थशास्त्र के विषय का अध्ययन भी अधिकाधिक लोकप्रिय होता जायेगा।

श्रम सम्बन्धी समस्याओं की उत्पत्ति
(Rise of Labour Problems)

उपरोक्त विशेषताओं के कारण अनेक श्रम सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। चाहे कैसी भी आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था क्यों न हो उन समस्याओं का उचित समाधान न होने पर प्रत्येक देश में उत्पादन क्षमता का ह्रास हो जाता है। जो व्यक्ति यह समझते हैं कि श्रम की समस्यायें केवल पूंजीवाद में ही उत्पन्न होती हैं और समाजवादी या नियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था में समाप्त हो जाती हैं वे वास्तव में भूल करते हैं। जब तक श्रम उत्पादन का पृथक् उपादान रहेगा और इसकी पूर्ति एक पृथक् वर्ग द्वारा होगी श्रम सम्बन्धी समस्यायें सदैव बनी रहेंगी, परन्तु इतना अन्तर अवश्य है कि विभिन्न आर्थिक प्रणालियों में इन समस्याओं की तीव्रता तथा गम्भीरता भिन्न होती हैं।

इसका अर्थ यह है कि छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धों में श्रम सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न नहीं हो पाती क्योंकि उनमें कोई मालिक या कोई मजदूर नहीं होता और उत्पत्ति के विभिन्न उपादानों की पूर्ति एक ही व्यक्ति द्वारा की जाती है। प्रत्येक देश में श्रम सम्बन्धी आन्दोलन बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों की स्थापना के पश्चात् ही उत्पन्न हुये हैं, क्योंकि इनमें उत्पत्ति के विभिन्न उपादानों की पूर्ति विभिन्न साधकों द्वारा होती है। प्रत्येक साधक (agent) की अभिलाषा उत्पत्ति व लाभ में अधिक से अधिक अंश स्वयं प्राप्त करने की होती है। अत: पारस्परिक मतभेद तथा संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। यह मतभेद स्वतन्त्र व पूंजीवाद अर्थव्यवस्था में अधिक तीव्र होते हैं। इसका कारण यह है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में अधिक लाभ प्राप्त करना ही एकमात्र उद्देश्य होता है और यदि श्रमिक शक्तिशाली श्रमिक संघों में उचित प्रकार से सगठित नहीं है या श्रमिकों की सुरक्षा के लिये सरकारी विधान पर्याप्त और प्रभावशाली नहीं है, तो श्रम की उपरोक्त विशेषताओं के कारण श्रम का शोषण अधिक किया जाता है। लेकिन समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी श्रमिकों तथा सरकार (सत्तारूढ़ दल) के बीच संघर्ष तथा मतभेद हो सकते हैं। श्रमिक अपनी कार्य करने और रहने की अवस्था में सुधार और अधिक मजदूरी के लिये आन्दोलन करते हैं। भारत में रेलों तथा अन्य सरकारी उद्योगों के कर्मचारियों की हड़तालें इसका उदाहरण हैं। अतः महात्मा गांधी का कुटीर एवं छोटे पैमाने के उद्योगों पर अधिक बल देना कम महत्वपूर्ण बात नहीं थी।

भारत में उद्योगों की प्रगति
(Growth of Industries in India) :

तथापि, यहाँ हमें तथ्यों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में ही देखना है। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक देश में बड़े पैमाने पर उद्योग-धन्धे स्थापित हो चुके हैं और प्रत्येक स्थान पर एक पृथक् श्रमिक-वर्ग बन गया है। भारत भी इसका अपवाद

नही है, यद्यपि हमारे देश मे श्रमिक वर्ग का विकास अपेक्षाकृत कुछ अधिक विलम्ब से हुआ। हमारे देश की जनसख्या का अधिकाश भाग सदैव कृषि पर निर्भर रहा है और अब भी है। गाँव की अतिरिक्त जनसख्या, जो भूमिहीन श्रमिक तथा बेदखल किसानो के रूप मे थी, कुटीर उद्योगो मे प्रवीण कारीगरो (*master artisans*) के पास निश्चित मजदूरी पर कार्य करके अपनी जीविका प्राप्त करती थी। ऐसे प्रवीण कारीगरो को 'कारखानेदार' तथा वित्तदक्ष (financier) कहते थे। इसी अतिरिक्त जनसख्या द्वारा अट्ठारहवी शताब्दी के अन्त तक यूरोप, पश्चिमी अफ्रीका, मध्य पूर्व, मध्य एशिया, जावा, सुमात्रा, जापान आदि देशो मे भारतीय कुटीर उद्योगो की बनी हुई कलात्मक वस्तुयें, प्रसिद्ध मलमल, छीट, रेशमी कपडे, शोरा आदि का सम्भरण (supply) किया जाता रहा। वास्तव मे १७वी, और १८वी शताब्दी मे भारतवर्ष ससार की औद्योगिक निर्माणशाला माना जाता था।[1]

परन्तु भारतीय हस्त-शिल्प का शनै शनै पतन तथा विनाश होता गया तथा इसके साथ ही जनसख्या की वृद्धि तीव्र गति से होती रही। जनसख्या, जो सन् १७५७ मे १३ करोड थी, सन् १८८१ में २५४० करोड हो गई। परिणामस्वरूप भूमिहीन श्रमिको का वर्ग बढने लगा और कुटीर उद्योग-धन्धे उन्हे स्थायी तथा पर्याप्त जीविका देने मे असमर्थ हो गये। ब्रिटिश उपनिवेशो (*colonies*) मे १८३० मे दास-प्रथा का अन्त हो जाने पर यह वर्ग भारतवर्ष छोडकर अन्य देशों मे जाकर बसने लगा। इसके अतिरिक्त, १९वी शताब्दी के मध्य मे अकाल की रोकथाम के लिए सरकार द्वारा बडे-बडे उत्पादक कार्य किये गये। सामान्य काल मे भी सिचाई के साधनो तथा सडक व रेलो की उन्नति की गई, जिससे मौसमी श्रमिको की माग अधिक बनी रही। सन् १८७० के पश्चात् बडी-बडी औद्योगिक मिलें स्थापित हो जाने से गाँव के श्रमिक अधिक सख्या मे बडे-बडे शहरो मे आकर बसने लगे।

अत स्पष्ट है कि औद्योगिक श्रमिक-वर्ग का अध्ययन देश की कृषि-पृष्ठ भूमि को ध्यान मे रखकर ही करना चाहिए। औद्योगिक श्रमिक गाँव से आते है और गाव से ही अपना सम्बन्ध रखते है। अगले अध्याय मे इस समस्या की विस्तार से विवेचना की गई है।

सरकार की भूतपूर्व औद्योगिक नीति
(Govt Industrial Policy in the past)

भारत मे अंग्रेज सरकार की प्रतिकूल औद्योगिक नीति के कारण बडे बडे उद्योग-धन्धे काफी दिनों तक पनप नही सके। प्राचीन काल मे, भारतीय कुटीर उद्योग-धन्धे उन्नति के शिखर पर थे और भारतीय शासक उनकी उन्नति मे सक्रिय रूप से सहायता करते थे। प्रारम्भ मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी व्यापारिक दृष्टि से कुछ उद्योगो को प्रोत्साहन तथा सहायता प्रदान की। परन्तु अंग्रेज उद्योगपतियो के दबाव के कारण, जो भारतवर्ष मे अपनी वस्तुओं को बेचना चाहते थे, सरकार

1. Ministry of Information and Broadcasting 'Labour in India' (1947) page

की इस नीति में परिवर्तन हुआ। अब सरकार कच्चे माल की उत्पत्ति तथा निर्यात को प्रोत्साहन देने लगी और निर्मित वस्तुओं के उत्पादन के प्रति उसने उपेक्षा की नीति ग्रहण कर ली। अबन्ध नीति (Laissez faire) का अनुसरण करने से कुटीर उद्योग-धन्धे नष्ट होने लगे। भारत की हस्त-निर्मित वस्तुयें, इंगलैंड की मशीन द्वारा निर्मित सस्ती वस्तुओं से स्पर्धा नहीं कर सकी। प्रारम्भ में रेलों के निर्माण की नीति भी ऐसी थी कि विदेशी माल सारे देश में पहुंच सके। कारीगरों को कोई वित्तीय सहायता नहीं दी गई। अशिक्षित तथा निर्धन कारीगर अपने आपको इन परिस्थितियों के अनुकूल न बना सके। परिणामस्वरूप, उद्योग-धन्धों का पतन होता चला गया और भारत की अधिकांश जनसंख्या की जीविका का प्रमुख साधन केवल कृषि रह गया।

सरकार की प्रतिकूल नीति होने पर भी भारतवर्ष में सन् १८५० के पश्चात् कुछ बड़े उद्योग-धन्धे स्थापित हो गये जिनमें कुछ विदेशी पूँजी द्वारा और कुछ भारतीय उद्योगपतियों द्वारा चलाये गये थे। इनमें लोहा, इस्पात, सूती कपड़ा, पटसन तथा बागान उद्योग धन्धे प्रमुख थे, परन्तु सरकार की उपेक्षा नीति चलती रही। सन् १८९६ में सूती कपड़े पर उत्पादन-कर लगा दिया गया जो ३० वर्ष तक रहा और जिसने सन् १९०५ में स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया। सन् १९१० में भारतीय सचिव लार्ड मार्ले एक निर्देश पत्र (circular) के अनुसार कोई भी प्रान्तीय सरकार उत्पादन-विधि का ज्ञान फैलाने के अतिरिक्त उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए कोई अन्य कार्य नहीं कर सकती थी। इस प्रकार यू० पी०, मद्रास, आदि अनेक प्रान्तीय सरकारों के उद्योग विकास सम्बन्धी उत्साह को समाप्त कर दिया गया। प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर सरकार की इस नीति में कुछ परिवर्तन हुआ। सरकार ने अनुभव किया कि यदि भारतवर्ष औद्योगिक देश होता, तो युद्ध-सामग्री प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसलिये सन् १९१६ में भारतीय औद्योगिक आयोग (Indian Industrial Commission) की नियुक्ति की गई, जिसने देश ने औद्योगिक विकास की आवश्यकता तथा सम्भावना की ओर ध्यान दिलाया। सन् १९१७ में 'इण्डियन म्युनिशन बोर्ड' की स्थापना की गई जो भारतीय उद्योगों के विकास में सहायक हुआ। युद्ध के पश्चात् भारत सरकार को राजकोषीय नीति स्वयं निर्धारित करने की स्वतन्त्रता मिल गई। सन् १९२२ में एक राजकोषीय आयोग (Fiscal Commission) की नियुक्ति हुई जिसकी सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने उद्योगों में संरक्षण (protection) की नीति को अपनाया। परन्तु इस नीति को कुछ शर्तों के अनुसार ही लागू किया गया। इसलिये यद्यपि अनेक उद्योगों को संरक्षण दिया गया, परन्तु यह नीति देश के औद्योगिक विकास में अधिक सहायक सिद्ध न हो सकी। इसके अतिरिक्त, "साम्राज्य तरजीह" (Imperial Preference) की नीति तथा इंगलैंड के उत्पादकों के प्रति पक्षपात ने भारतवर्ष को औद्योगिक उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं होने दिया।

द्वितीय महायुद्ध काल मे देश के उद्योगो को उन्नति के लिये अवसर प्राप्त हुए, परन्तु उन अवसरो म पूर्ण लाभ नहीं उठाया गया। उद्योगपतियों को यह आश्वासन नही दिया गया कि युद्ध के पश्चात भी उनके उद्योगों को सरक्षण प्रदान किया जाएगा। भारतवर्ष के स्वतन्त्र होने के पश्चात राष्ट्रीय सरकार ने प्रथम बार उद्योगो की बुद्धि सहायता की ओर १९४८ म सर्वप्रथम एक निश्चित औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति को १९५६ मे सशोधित किया गया। अब पचवर्षीय योजनाओ के अन्तगत सार्वजनिक और निजी दोनो ही क्षेत्रो मे उद्योगो की स्थापना तथा उन्नति पर अधिक बल दिया जा रहा है।

यहाँ सरकार की औद्योगिक नीति की सक्षिप्त रूपरेखा देने का तात्पर्य केवल इस ओर ध्यान आकर्षित करना है कि विदेशी सरकार होने के कारण देश का औद्योगिक विकास अत्यन्त मन्द गति से हुआ। परिणामस्वरूप औद्योगिक श्रम की समस्याओ पर इतना ध्यान नही दिया गया जितना अन्य आर्थिक समस्याओं पर। प्रथम महायुद्ध के पूर्व तो भारतीय श्रमिक-वर्ग का नाम भी सुनाई नही देता था। सन् १९०९ मे प्रकाशित के० हार्डी की एक अग्रेजी की पुस्तक 'भारत धारणायें तथा सुझाव' के सम्बन्ध म उल्लेख करते हुए पाम दत्त ने लिखा है कि उस समय ब्रिटेन का कोई भी समाजवादी नेता भारतीय श्रमिक-वर्ग का बिना वर्णन किये भारतवर्ष पर पुस्तक लिख सकता था। उस समय यह भी सम्भावना न थी कि भविष्य में कोई भारतीय श्रम आन्दोलन आरम्भ हो सकेगा। इसी प्रकार, १९१० मे मैकडॉनल्ड द्वारा लिखित एक अग्रेजी की पुस्तक 'भारत म जागरण" म केवल इस प्रकार का सकेत मिलता है कि सम्भवत भविष्य मे भारतीय श्रमिक कोई व्यापारिक सघ' बना सके। "यह सघ सम्भवत भारतवर्ष की जातियो तथा इगलैंड के मजदूर सघो के मध्य की स्थिति का होगा।" सर्वप्रथम लेनिन ने सन् १९०८ मे अनुभव किया कि भारतीय श्रमिक-वर्ग राजनीतिक तथा वर्ग सघर्ष के लिये पर्याप्त परिपक्व हो चुका था। उनका यह अनुमान बम्बई मिल मजदूरो की उस राजनैतिक हडताल पर आधारित था जो उस वर्ष माननीय तिलक को जेल होने के विरोध मे की गई थी। इसी से लेनिन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अब भारतवर्ष मे ब्रिटिश साम्राज्य समाप्त होने लगा है।[1]

भारतवर्ष मे कारखानो का विकास
(Growth of Factories in India)

अग्रलिखित तालिका मे दी हुई भारतीय फैक्ट्री अधिनियम (Factories Act) के अन्तर्गत आने वाली फैक्ट्रियो की सख्या तथा ब्यौरा देने वाली फैक्ट्रियो मे काम करने वाले श्रमिको की औसत दैनिक सख्या से भारतवर्ष मे श्रमिक की उत्पत्ति तथा प्रगति स्पष्ट हो जाती है।[2]

---

1 R. Palme Dutt *India Today*, page 256

2 Figures are based on Government Publications like *Indian Labour Year Book*, *Indian Labour Journals and Indian Labour Statistics of different years*

वर्ष	चालू फैक्ट्रियो की सख्या	श्रमिकों की औसत दैनिक सख्या
१८९४	८१५	३,४६,८१०
१९०२	१,५३३	५,४१,६३४
१९१४	२,९३६	९,५०,९७३
१९२३	५,९८५	१४,०९,१३७
१९२९	७,१५३	१४,५५,०९२
१९३९	१०,४६६	१७,५१,१३७
१९४७	१४,५७६	२२ ७४,६८९
१९५०	२७,७५४	२५,०४,३९९
१९५६	३७,१६२	३४,०१,५९९
१९६१	५०,०९५	३९,२८,०००
१९६६	६४,८७२	४७,०२,०००
१९७१	८१,०७८	५०,८३ ०००
१९७५	१,०३,७९५	५७,७२ ०००
१९७६	१,०४,८९६	५९,६०,०००
१९७७	१,१९,७१४	६३,११,०७९
१९७८	१,२६,२३६	६५,३९,७६४
१९७९	१,३५,३३०	६८,०१,५४४
१९८०	१,४०,८४३	७०,०३,५९६

विभिन्न उद्योगो सम्बन्धी कुछ आंकड़े[1]

उद्योगो मे सबसे महत्वपूर्ण वर्ग कारखानो का है। इस वर्ग के भी दो उपभाग है—नियन्त्रित (regulated) तथा अनियन्त्रित (unregulated)। नियन्त्रित फैक्ट्रियाँ वे है जो भारतीय फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत आती है। सन् १९४८ से पहिले वे निरन्तर चालू (perennial) तथा मौसमी (seasonal) दो विभागो मे विभाजित थी, परन्तु अब यह भेद समाप्त हो गया है। अब १९४८ के फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखाने तीन प्रकार के हैं—(१) धारा २ म (i) कारखाने अर्थात् ऐसे कारखाने जिनमे १० या १० से अधिक श्रमिक काम करते है और जिनमे शक्ति का प्रयोग होता है। (२) धारा २ म (ii) कारखाने अर्थात् ऐसे कारखाने जिनमे २० या २० से अधिक श्रमिक काम करते है, परन्तु जिनमे शक्ति का प्रयोग नही होता। (३) धारा ८५ कारखाने अर्थात् ऐसे कारखाने जिन पर राज्य सरकारो ने विशेष रूप से १९४८ फैक्ट्री के अधिनियम को लागू किया है।

कारखाना अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत एक कारखाने की परिभाषा के

१. ये आंकड़े पूर्ववत् सरकारी प्रकाशनो पर आधारित हैं।

अन्तर्गत वे सब स्थान एवं प्रसीमायें आती हैं जहाँ १० या १० से अधिक श्रमिक कार्य करते है। या पिछले १२ महीनो म से किसी भी १ दिन कार्य करते थे और उस स्थान के किसी भी भाग म निर्माण कार्य के लिये शक्ति का प्रयोग होता है। जहाँ शक्ति का प्रयोग नही होता है वहाँ श्रमिकों की सख्या २० या उसमे अधिक होनी चाहिये।

कानून की परिभाषा के अनुसार मजदूर अथवा श्रमिक के अन्तर्गत वे सब व्यक्ति आते है (जिनमे शिक्षार्थी भी सम्मिलित हैं) जो किसी उद्योग मे किसी शारीरिक, कुशल अथवा अकुशल अथवा देखभाल के या तकनीकी या लिखा-पढी के काम पर वेतन या मजदूरी पर नियुक्त किये जाते हैं, इनकी रोजगार की शर्तें चाहे स्पष्ट हो अथवा चाहे मान ली गई हो। निम्नलिखित व्यक्ति श्रमिक की परिभाषा मे नही आते—(१) वे व्यक्ति जो जल थल व वायु सेना, जेल व पुलिस मे कार्य करते हों। (२) वे व्यक्ति जो मुख्यतया प्रशासनिक एव प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य करत हो। (३) वे व्यक्ति जिनका वेतन पांच सौ रुपये प्रति मास से अधिक हो, चाहे वे देखभाल का ही कार्य करते हो या वे व्यक्ति जिनका कार्य मुख्यत प्रबन्ध करने का हो।

कारखाना अधिनियम, १६४८ के अनुसार एक 'श्रमिक' के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते है जो प्रत्यक्ष रूप मे या किसी ऐजसी द्वारा चाहे मजदूरी पर या बिना मजदूरी के किसी भी निर्माण कार्य पर लगाये गये हों या मशीन के किसी भी भाग की सफाई के लिये या उस स्थान की सफाई के लिये जहाँ निर्माण कार्य होता है या निर्माण कार्य से प्रासगित या सम्बन्धित हो या निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत हो।

अग्रांकित तालिका (पृष्ठ १३) से स्पष्ट है कि भारत मे श्रम का वितरण समान नही है, क्योंकि उद्योग धन्धे अधिकतर बिहार, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिमी बगाल आन्ध्र प्रदेश, पजाब, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश म केन्द्रित है। परिणामस्वरूप एक स्थान पर उद्योगों के केन्द्रित होने से अनेक हानिया उत्पन्न हो गई हैं। अब इस बात के प्रयास किये जा रहे हैं कि देश के सभी भागों का सन्तुलित रूप से विकास हो सके।

कारखानो मे काम आने वाली महिला श्रमिकों की अनुमानित सख्या निम्न प्रकार है—

१६५५—२,६५,०७२ (१० ६६%)　　१६५६—३,१०,३६६ (१० ४५%)
१६६१—३,७२,३३४ (१० ६४%)　　१६६२—३,६४,११४ (१० ०४%)
१६६३—३,६६,६७५ (१० ६ %)　　१६६४—४,०३,५६७ (१२ २ %)
१६६५—३,६४,४५६ (६ ५७%)　　१६६६—३,६५,१५४ (८ ६६%)
१६६७—३,६४,६३३ (६ ३४%)　　१६६८—३,४६,१६६ (८ ५ %)
१६६६—३,८२,२८० (६ २ %)　　१६७०—३,६६,१६८ (८ ८ %)

१९७१—३,७०,१०४ (८ ६१%) १९७२—४,१६,९९६ (९ २८%)
१९७३—४ ५१,०९४ (९ ९०%) १९७४—४,८०,४३२ (९ ४७%)
१९७५—४ ५३,००० (१०%) १९७६—५,१५,००० (११ ० %)
१९७७—४,९८,००० (१०%) १९७८—४,९५,००० (१० %)
१९७९—८,८९,००० (१०%) १९८०—४,६२,००० (१० %)

बाल[1] श्रमिको तथा किशोर (adolescents) श्रमिको की सख्या इस प्रकार है—बाल श्रमिक १९५५—४ ९७५ (० १९%), १९५६—८ ३१० (० १५%) १९६०—३,२२० (० १०%), किशोर श्रमिक १९५५—१९,०२१ (० ४९%), १९५६—१६,७२७ (० ५८%), १९६०—१६,१३८ (० ४८%) । सन् १९६२ मे काम पर लगे हुये बाल श्रमिको का प्रतिशत गिरकर ० ०७ रह गया। १९७१ की जनगणना के अनुसार १५ वर्ष से कम आयु वाले बाल-श्रमिको की सख्या १,०७, ४० ००० थी (जाकि कुल श्रमशक्ति का ५ ९% थी) राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (N S S) ओर के अनुसार मार्च १९७३ मे उनकी सख्या १ ६१ करोड थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के १९८३ के अनुमान के अनुसार भारत मे बाल श्रमिको की सख्या १ ६५ कराड है जो कि विश्व मे सबसे अधिक है।

विभिन्न राज्यो मे चालू कारखानो की सख्या तथा उनमे लगे हुए श्रमिको की सख्या अग्र तालिका(पृष्ठ १३) से स्पष्ट हो जायेगी।

जहाँ तक विभिन्न उद्योगो का सम्बन्ध है, सन् १९८० मे कुछ प्रमुख बडे उद्योगो मे श्रमिक की औसत दैनिक सख्या इस प्रकार थी-(हजार मे) खाद्य उत्पाद : १,००९, पेय तम्बाकू और तम्बाकू उत्पाद: २११, सूती वस्त्र : १,१५५; ऊन, रेशम और कृत्रिम रेशे के वस्त्र . १८२, पटसन, सन एव मेस्ता के वस्त्र : २७९, वस्त्र उत्पाद (जूतो के अतिरिक्त परिधानो सहित) १४१, लकडी ओर लकडी के उत्पाद, फर्नीचर तथा जुडनार · १४८, कागज और कागज के उत्पाद एव मुद्रण, प्रकाशन तथा सम्बद्ध उद्योग २८२, चमडा एव चमडा और फर के उत्पाद . ५३, रबड, प्लास्टिक, पेट्रोलियम और कोयला उत्पाद : १७३; रसायन और रासायनिक उत्पाद (पैट्रोलियम और कोयला उत्पादो को छोड कर) : ४८५, अधात्विक खनिज उत्पाद : ३६०, मूल धातु एव मिश्रित धातु उद्योग : ४८९, धातु उत्पाद : २४८; विद्युत मशीनो के अतिरिक्त मशीनें . ५०१, विद्युत मशीनें ३११, परिवहन उपस्कर और कलपुर्जे ८३६, अन्य विनिर्माणकारी उद्योग ७१; विद्युत ८२; गैस और भाप : ७, जलघर और जल प्रदाय . १२, सफाई सेवाएँ ३, मनोरंजन एव सांस्कृतिक सेवाएँ : ३, अन्य उद्योग जिन्हे ऊपर निविष्ट नही किया गया है : १३०' मरम्मत सेवाएँ २६१, योग : ७००४।

---

१. 'बाल तथा स्त्री श्रमिक' नामक अध्याय भी देखें।

राज्य/संघीय-क्षेत्र	चालू कारखाने			श्रमिकों की औसत दैनिक संख्या (हजार में)		
	१९७८	१९७९	१९८०	१९७८	१९७९	१९८०
१. आन्ध्र प्रदेश	१३,४१५	१४,९१२	१५,९५६	४६०	५०८	५२२
२. असम	१,४४७	१,४६८	१,४८३	८५	८५	८८
३ बिहार	२९,०४३	३०,५४८	३१,४१९	३६६	३७२	३७५
४. गुजरात	९,८३८	१०,६१३	१०,६७८	५८९	६३९	६३६
५. हरियाणा	२,१९१	२,८३८	३,१८४	१३९	१६१	१७६
६. हिमाचल प्रदेश	४९४	५२७	५२७E	१५	१४	१४E
७. जम्मू तथा काश्मीर	३९६	४२४	४३०	१९	१९	२०
८. कर्नाटक	७,४७९E	७,४७९E	७,४७९E	४९२E	४९२E	४९२E
९. केरल	७,७९४	८,५०१	९,११६	२७४	२९७	३०२
१० मध्य प्रदेश	५,२५४	५,६१८	५,६६६	३२६	३४४	३८८
११. महाराष्ट्र	१३,२५०	१४,२४९	१५,२५४	१,१६०	१,१८९	१,२३५
१२. मणिपुर	१२४E	१२४E	१२४E	२E	२E	२E
१३. मेघालय	५४	४८	५०	३	२E	३
१४. उडीसा	१,२११	१,२६३	१,१७३	८३	८९	९८
१५. पंजाब	६,०१७	६,६३३	७,०६२	१९९	१८९	२०३
१६. राजस्थान	४,९०४	५,६१५	५,६१५E	१३८	१५१	१५१E
१७. तमिलनाडु	८,१७०	८,७१४	९,३१४	६००	६२२	६४३
१८ त्रिपुरा	७०	१३५	१३५E	३	७	७E
१९. उत्तर प्रदेश	५,३०३	५,४४०	५,४३१	५३३	५३४	५३३
२०. पश्चिमी बंगाल	५,९९०	६,१६७	६,४४४	८७०	८८७	९०५
२१. अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	२५	२९	३१	४	४	५
२२. चण्डीगढ	१७५E	१९३	२१६	९E	१२	१४
२३ दादर एवम् नागर हवेली	१०	१५	१५E	१	१	१E
२४. दिल्ली	२,९१६	३,००३	३,२१२	१४४	१५२	१६४
२५ गोवा, दमन, ड्यू	१७०	२०४	२०८	१०	१२	१४
२६. पाण्डेचेरी	४९६	५७०	६२१	१४	१५	१६
योग	१३६,२३६	१३५,३३०	१४०,८४३	६,५४१	६,७९९	७,००७

मार्च १९८४ में, विभिन्न राज्यों की कपड़ा मिलों में लगे कुल श्रमिकों की संख्या १०,०३,००० थी।

असंगठित उद्योग-धन्धों (unorganised industries), अर्थात् ऐसे उद्योग-धन्धे जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते, में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या के विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। श्रम अनुसन्धान समिति ने कुछ असंगठित मिलों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या का अनुमान लगभग १० लाख लगाया था। आयोजना आयोग (Planning Commission) के अनुमान के अनुसार हाथ करघा बुनाई उद्योग में ही लगभग १ करोड़ श्रमिक कार्य करते हैं। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार, हाथ करघा, शक्ति चालित करघा उद्योग में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या १८ लाख थी। केवल बीड़ी बनाने का कार्य ही ५ लाख से अधिक श्रमिकों द्वारा किया जाता है। कुटीर तथा असंगठित उद्योगों में, जिनमें करघा उद्योग, पीतल का काम, ताले और कैंची बनाना, लकड़ी और चमड़े का काम, बीड़ी बनाना, पत्थर कूटना, शाल दुशाले बुनना, चटाई बनाना लाख और अभ्रक का कार्य, आदि सम्मिलित हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि ऐसे सब उद्योगों में उत्तर प्रदेश में लगभग ३२ ५०,००० मध्य प्रदेश में ७ लाख जम्मू व कश्मीर में एक लाख ३० हजार, केरल में १ लाख ५० हजार और दिल्ली में लगभग ७०,००० श्रमिक कार्य करते हैं। इस प्रकार समस्त देश में असंगठित उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों की संख्या लगभग १ ५ करोड़ मानी जा सकती है। १९८१ की जनगणना के अनुसार, घरेलू उद्योगों में श्रमिकों की संख्या इस प्रकार थी . पुरुष ६४ लाख, महिला २८ लाख, योग=८८ लाख।

कारखानों के पश्चात् बागान उद्योग-धन्धे आते हैं जिनमें चाय, कहवा और रबर के बागान सम्मिलित हैं। १९८० में बागान में लगभग १० लाख श्रमिक काम करते थे, जिनमें से ८,१९,५०३ चाय के बागान में, ४६,२६७ कहवा के बागान में, ३९ ०७७ रबर के बागान में और १४,९९८ सिनकोना व इलायची जैसे अन्य बागानों में काम करते थे (कुल योग ९,१८ ४८५)। कुल श्रमिकों में से लगभग ९ लाख श्रमिक स्थायी बागान श्रमिक थे और शेष बाहरी श्रमिक थे तथा २ २६ लाख स्त्री श्रमिक थे। चाय उद्योग अधिकतर असम, पंजाब, प० बंगाल, तमिलनाडु और केरल में पाये जाते हैं। कहवा और रबड़ के बागान दक्षिणी भारत अर्थात् तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल राज्यों में केन्द्रित हैं। कुल श्रमिकों में पुरुष, स्त्री और बच्चों का प्रतिशत असम के चाय बागानों में क्रमानुसार ८८ ८, ४१ १ और १० १ है।

बागान के पश्चात् यातायात और संवाद वाहन के साधनों का स्थान है। इनमें रेलवे मुख्य हैं। १९८२ में लगभग १५,२२,२६० श्रमिक भारतीय रेलों पर काम करते थे और लगभग ७ लाख श्रमिक ठेकेदारों द्वारा कार्य पर लगाये जाते थे। रेलवे में स्त्री श्रमिकों की संख्या १९८२ में ३८,०५८ थी। भारतवर्ष के मुख्य बन्दरगाहों पर बन्दरगाह अधिकारियों द्वारा कार्य पर लगाये गये श्रमिकों की औसत संख्या इस प्रकार थी ३१,०७१ (बम्बई १९८१ में), ७,०८६ (कलकत्ता १९८० में), ६७४ (कांडला १९८१ में), ७१२ कोचीन १९८२ में, १८८ (मारमागोवा १९७९ में), ६२६

विशाखापट्टनम १६८१ मे और १४६२ (मद्रास १६८२ मे)। परन्तु विभिन्न सस्थाओ द्वारा काम पर लगाये हुए अनुमानित श्रमिको की सख्या ५ लाख से अधिक थी। गोदी श्रमिक बोर्डों के अन्तर्गत, पंजीकृत तथा सूचीबद्ध श्रमिको की सख्या सन् १६७६ मे इस प्रकार थी बम्बई ७,७६१, कलकत्ता ६,०३६, कोचीन १,१७५, मद्रास २,२२०, मारमाओगोवा २,३५७, विशाखापट्टनम २,६७०, कादला १,७३६ कुल योग २७,२५८। कलकत्ता मे ट्राम्बे पाई जाती है जिनमे लगभग १५ हजार श्रमिक कार्य करते है। जनवरी १६८० मे, जहाजो पर नाविको के रूप मे पंजीकृत कार्य करने वालो की सख्या बम्बई और कलकत्ता में क्रमश २७,५७० और ११,०३७ थी। मद्रास में केवल दो जहाज नाविको की नियमित रूप से भर्ती करते हैं। राज्य मोटर यातायात विभाग मे, जिन राज्यो से सूचना मिली उनके ३१,८२१ यातायात उद्यमो मे सन् १६८० मे ४,२३,०१० कर्मचारी औसतन प्रतिदिन काम करते थे। डाक तथा तार विभाग मे काम करने वाले व्यक्तियो की सख्या सन् १६६२ मे ६,०१,००० थी।

इसके पश्चात् हम खानो को ले सकते है। सन् १६८१ मे, विभिन्न प्रकार की खानो मे काम करने वाले श्रमिको की सख्या (हजार मे) इस प्रकार थी कोयला ५१३, कच्चा ताबा १३, क्रोमाइट ५, हीरा १, सोना १२, जिप्सम १, कच्चा लोहा ४५, चूना पत्थर ५०, मैंगनेसाइट ७, कच्चा मैंगनीज २७, अभ्रक ७, पत्थर ८, अन्य ६०, कुल योग (७४६)। कुल श्रमिको मे महिला श्रमिको की की सख्या ७८ हजार थी। खानो मे विभिन्न वर्गों के श्रमिको की सख्या (हजार मे) इस प्रकार थी खानो के भीतरी धरातल पर काम करने वालो की सख्या ३२२, खुले म काम करने वालो की सख्या १६६, और ऊपरी धरातल पर काम करने वालो की सख्या २२३, इनमे महिला श्रमिको की सख्या (हजार मे) इस प्रकार थी खुले मे काम करने वाली महिला श्रमिको की सख्या ४६, और ऊपरी धरातल पर काम करने वाली महिला श्रमिको की सख्या २६।

इनके अतिरिक्त अन्य विविध कार्यों मे काफी लोग लगे हुये हैं। सितम्बर १६५८ मे विभिन्न राज्यो मे, श्रम ब्यूरो के एक सर्वेक्षण के अनुसार ८२ मुख्य नगर पालिकाओ मे १,२३,३३० व्यक्ति काम पर लगे हुए थे जिनमे ६७,७८० पुरुष तथा २५ ५५० महिलायें थी। १६८० मे दुकानो एव वाणिज्य सस्थाओ मे लगे हुये श्रमिको की सख्या निम्न प्रकार थी (हजार मे) दुकानें, १,४६६, वाणिज्य सस्थायें १,१४१, आहार गृह, सिनेमा घर आदि, ४३७ योग—३०४७ मे। सन् १६८१ मे सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य पर लगे हुये कर्मचारियो की सख्या इस प्रकार थी—केन्द्रीय सरकार द्वारा ३,१६५ हजार, राज्यो द्वारा ५,७५४ हजार, अर्द्ध सरकारी सस्थाओ द्वारा—राज्य २,६०८ एव केन्द्र १,६४१ हजार, स्थानीय निकायो द्वारा १,६८६ हजार, योग—१५ ४८४ हजार। *श्रम अनुसधान समिति ने रिक्शा* चलाने वालो की सख्या कलकत्ता, मद्रास व शिमला मे १६४४ ४०,८८२ बताई थी, परन्तु अब प्रत्येक नगर मे साइकिल रिक्शा बहुत प्रचलित हो गई है जो काफी व्यक्तियो के जीविकोपार्जन का आधार हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि देश मे लगभग १ २ लाख व्यक्ति रिक्शा चलाकर अपनी जीविकोपार्जन करते है।[1] बीमा

1 Reply to a Question in the Lok Sabha (Labour Gazette, Jan 59)

कम्पनियो मे काम पर लगे लोगो की अनुमानित संख्या सन् १९८१ मे इस प्रकार थी : जीवन बीमा मे लगे लोग ५५ ४ हजार और अन्य बीमा मे लगे लोग ४१ ० हजार, योग ९६४ हजार। बैंकों म काम पर लगे लोगो की अनुमानित सख्या सन् १९७९ मे ६०१४ हजार थी।

सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र र प्रमुख उद्योगो व सेवाओ म काम पर लगे लोगो की अनुमानित सख्या मार्च सन् १९८१, के अन्त म निम्न प्रकार थी —

(हजार म)

उद्योग	सरकारी क्षेत्र	निजी क्षेत्र	योग
१ कृषि, शिकार करना, वन काय तथा मछली पकडना	४६३	८१८	१३०१
२ खान खोदने व पत्थर निकालने का उद्योग	८१८	१३०	९४८
३ विनिर्माण उद्योग	१५०२	४,५४५	६,०४७
४ विद्युत, गैस तथा जल	६८३	३५	७१८
५ निर्माण कार्य	१,०८९	७२	१,१६१
६ थोक व फुटकर व्यापार तथा जल-पान गृह व आहार-गृह	११७	२७७	३९४
७ परिवहन, सचयन व सचार	२,७०९	६०	२७६९
८ वित्त प्रबन्ध, बीमा, स्थावर सम्पदा और व्यापारिक सेवाएँ	७४८	१९६	९४४
९ सामुदायिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत सेवाएँ	७,३५५	१,२२२	८,५७७
योग	१५,४८४	७,३९५	२२,८७९

ऊपर दिये हुए आँकडे पूर्णतया सही नही कहे जा सकते क्योकि प्रत्येक स्थान से सूचना ठीक-ठीक नही मिलती। इसी कारण यह देखा गया है कि सरकार की प्रकाशित रिपोर्टों मे भी अनेक बार एक ही वर्ष मे व एक ही उद्योग-धन्धे के आँकडो मे विभिन्नता पाई जाती है, परन्तु जो भी आँकडे मिले है उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि देश मे व्यवसाय की उन्नति वेग से हुई है और औद्योगिक श्रमिक अत्यन्त शक्तिशाली हो गये हैं। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि देश भर मे ऐसे श्रमिको की सख्या जिनके जीविकोपार्जन का आधार केवल मजदूरी है, लगभग १० करोड है। यह महत्वपूर्ण बात है कि इन १० करोड श्रमिको मे से केवल ७० लाख श्रमिक उद्योगो अर्थात् कारखानो मे काम करते है। यदि हम काम पर लगे हुए कुल व्यक्तियों की सख्या ले तो यह सख्या बहुत अधिक है और १९७१ की जनगणना के अनुसार लगभग १८ ३६ करोड आती थी और १९८१ की जनगणना के अनुसार २४ ७१ करोड आई।

१९८१ की जनगणना के अनुसार देश मे विभिन्न व्यवसायो मे कार्य करने वाले लोगो की कुल सख्या अग्रलिखित थी —

(लाख में)

श्रेणी	पुरुष		महिलाए		योग	
	सख्या	कुल पुरुष जनसख्या मे प्रतिशत भाग	सख्या	कुल महिला जनसख्या मे प्रतिशत भाग	सख्या	कुल जनसख्या मे प्रतिशत भाग
सक्रिय जनसख्या योग (क+ख)	१,८०८	५३ १९	६६३	२० ०४	२ ४८१	३७ ५५
(क कुल मुख्य श्रमिक	१,७४१	५१ २३	४६०	१४ ४५	२·२०१	३३ ४४
(१) कृषक	७६२	२२ ४२	१५२	४ ७७	९१४	१३ ८९
(२) कृषि श्रमिक	३४४	१० १३	२०९	६ ५८	५५४	८ ४१
(३) पारिवारिक उद्योग	६४	१ ८९	२४	० ७८	८८	१ ३४
(४) अन्य श्रमिक	५७१	१६ ७९	७८	२ ३५	६४५	९ ८०
ख सीमान्त सक्रिय श्रमिक	६७	१ ९७	२०४	६ ४०	२७१	४ ११
ग. कुल निष्क्रिय जनसख्या	१ ५९१	४६ ८०	२,५१९	७९ १५	४,११०	६२ ४८
घ कुल जनसख्या (क+ख+ग)	३,३९९	१०० ००	३,१८२	१०० ००	६ ५८१	१०० ००

सन् १९६१ मे कुल जनसख्या मे कामगारो (श्रमिको) का प्रतिशत ४२ ९८ था (जिनमे ५२ ७८% कृषक, १६ ७१% कृषि श्रमिक और ३० ५१% अन्य प्रकार के श्रमिक थे)। स्पष्ट है कि श्रमिको के रूप मे काम पर लगे हुये लोगो का प्रतिशत सन् १९६१ की तुलना मे सन १९७१ मे गिर गया था। इस गिरावट का मुख्य वह था कि श्रमिको के रूप मे पजीकृत महिलाओ की परिभाषा सन् १९७१ की जन-गणना मे बदल गई थी। सन् १९६१ मे उन स्त्रियो को भी श्रमिक ही माना जाता था जो कि खेतो पर अपने घर वालो की सहायता करती थी। किन्तु सन १९७१ मे, उनको मूलरूप मे गृहिणी ही समझा गया और यह माना गया कि कृषि कार्य तो उनका गौण व्यवसाय है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'जनसख्या अध्ययन की अ तर्राष्ट्रीय सस्था, बम्बई' द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार, सन् १९६१ की जनगणना (census) के आधार पर आर्थिक दृष्टि से सक्रिय जनसख्या, अर्थात श्रमिको की सख्या सन १९६१ मे १९ करोड थी। यह अनुमान लगाया गया था कि देश मे श्रमिको की कुल सख्या सन १९६६ मे २० ७० करोड और १९७१ मे २३ १० करोड थी। यही नही, यह अनुमान था कि सन १९८१ मे यह सख्या बढकर २५ ६० करोड और सन १९७१ मे २६ २० करोड हो जायेगी। सन १९८१ तक होने वाली कुल सख्या १० २० करोड की वृद्धि मे ७ करोड पुरुष और ३ २० करोड महिला श्रमिक होने का अनुमान है।

प्राचीन भारत मे श्रमजीवी[1] (Labour in Ancient India)

प्राचीन भारत मे श्रमजीवी वर्ग हिन्दू समाज मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण

1 A paper on Labour in Ancient India' by K S Srikantan

स्थान रखता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा सम्राट अशोक के शिलालेखों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि उन दिनों श्रमजीवियों के साथ काफी अच्छा व्यवहार होता था और उन्हें मजदूरी नियमित रूप से मिलती थी। मजदूरी की दर भी अधिक थी, क्योंकि जो लोग कम मजदूरी देते थे उनको बुरे स्वभाव का समझा जाता था। शासक का यह कर्त्तव्य था कि वह इस बात का ध्यान रखे कि जो भी मजदूरी की दर अधिक होती थी, यह बात इससे भी प्रमाणित होती है कि घरेलू नौकर भी दान दिया करते थे। श्रमजीवियों के संगठन का भी कुछ संकेत मिलता है और ऐसे संगठन राज्य की ओर से मान्य थे। मजदूरी सदैव मुद्रा में ही नहीं मिलती थी। एक ऐसी लड़की का उदाहरण मिलता है जिसने मलमली वस्त्र पाने के लिये एक परिवार में तीन वर्ष सेवा की, तथा एक पुरुष ने पत्नी प्राप्त करने के लिये एक परिवार में सात वर्ष कार्य किया। श्रमिकों के मकानों की ओर भी काफी ध्यान दिया जाता था। शासक का यह कर्त्तव्य था कि वह इस बात का ध्यान रखे कि मकान अच्छे बने हुए हों और कोई व्यक्ति बिना घर के न हो। शासक ही मजदूरी के झगड़ों का निबटाता था। वृद्धावस्था में पेन्शन की भी व्यवस्था थी और बीमारी के दिनों में पूरे वेतन पर छुट्टी मिल जाती थी। इस प्रकार प्राचीन काल के श्रमजीवियों को उनके वर्तमान भाइयों की तुलना में अधिक सुविधाएँ प्राप्त थीं। उन्हें वेतन अधिक मिलता था उनके साथ उचित व्यवहार किया जाता था और उनके आराम का ध्यान रखा जाता था। परन्तु नौकर भी श्रमिक-वर्ग में ही माने जाते थे।

मुस्लिम शासन काल में श्रमजीवियों की अवस्था काफी गिर गई थी और शाही कारखानों में उनसे अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। "आइने अकबरी" में ऐसे ३६ कारखानों का उल्लेख मिलता है। ये कारखाने राज्य के "अमीरों" के अधीन होते थे, जो बहुत स्वार्थी थे और श्रमजीवियों को लूट कर अपनी जेबें भरते थे। बादशाह इन बातों से अनभिज्ञ रहते थे। श्रमजीवी सताए जाते थे और उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी।

इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि प्राचीन समय में राज्य के बहुत से कामों में जेल के कैदियों से मजदूरों का काम लिया जाता था।

वर्तमान समय की समस्यायें

आधुनिक औद्योगिक श्रमिक-वर्ग का विकास बड़े उद्योग धन्धों की स्थापना के बाद पिछली शताब्दी के मध्य से हुआ। प्रारम्भ में उद्योग-धन्धे अधिकतर यूरोप के लोगों द्वारा स्थापित हुए। उद्योग-धन्धों की स्थापना के साथ-साथ आरम्भ में यह बात देखी गई कि पूँजीपति इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि उन्हें शीघ्र और अधिकतम लाभ हो। वे लोग कम मजदूरी पर अधिक समय तक काम करने वाले असहाय मजदूरों को काम पर लगाने का प्रलोभन न छोड़ सके और उन्होंने पुरुष, स्त्री तथा बच्चों से कठोर परिश्रम करा कर और कम वेतन देकर अत्यधिक लाभ उठाया। श्रमिकों को संगठित करके उनकी अवस्था सुधारने के कई प्रयत्न किए गए, और सरकार ने भी श्रमिकों के लिए अनेक कानून बना कर हस्तक्षेप किया। परन्तु ये कानून श्रमजीवियों की अवस्था सुधारने में अधिक सहायक सिद्ध नहीं हो सके, क्योंकि इनका उद्देश्य श्रमिकों की भलाई करना न था वरन् आरम्भ में ये कानून

या तो किसी राजनैतिक स्वार्थ से प्रभावित थे अथवा इनका उद्देश्य भारतीय उद्योग-धन्धों के उत्पादन की लागत बढाना था। इसके अतिरिक्त, जनसंख्या में तीव्रगति से वृद्धि होने तथा रोजगार के साधनों में वृद्धि न होने से श्रमजीवियों की अवस्था गिरती चली गई। अब देश औद्योगिक उन्नति की ओर तेजी से बढ रहा है, और उनके उद्योग-धन्धे स्थापित हो गये है, जो लाखो श्रमिको की जीविका का आधार बने हुए हैं। औद्योगीकरण की इस तीव्र गति के साथ ही साथ श्रम समस्याओ का महत्व भी बढा है। हमने आयोजनाबद्ध आर्थिक विकास के कार्यक्रम को स्वीकार किया है, साथ ही विदेशी हमले के रूप में आज हमारी आजादी के सामने जो चुनौती खडी हुई है, उसका भी हमें सामना करना है। इस सम्बन्ध में श्रम का जो महत्व है उस पर जोर देना अतिशयोक्ति नही कहा जा सकता। परन्तु जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट होगा, श्रमिक वर्ग की दशा सतोषजनक नही है। यदि हमें देश का तीव्रगति से औद्योगीकरण करना है, और विकास तथा प्रतिरक्षा, दोनो की ही आवश्यकताओ को यथेष्ट रूप से पूरा करना है तो यह बडा महत्वपूर्ण है कि श्रमिक वर्ग से उचित व्यवहार किया जाए। इस दृष्टिकोण से दो समस्याये हमारे सामने आती है। वे है ' श्रमजीवी वर्ग की कार्यकुशलता तथा उद्योगो मे शान्ति की स्थापना। अन्य समस्यायें इन दो मुख्य समस्याओ से ही सम्बन्धित है। इन समस्याओ का समुचित समाधान समय की सबसे बडी माग है।

श्रम नीति का विकास (Evolution of Labour Policy):

पचवर्षीय आयोजनाओं में भी श्रम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रथम आयोजना मे यह माना गया था कि "श्रमिक आयोजना के लक्ष्यो की पूर्ति का तथा देश की सामान्य आर्थिक प्रगति करने का प्रमुख साधन है।" आयोजना आयोग ने प्रथम पचवर्षीय योजना मे कहा था, 'श्रम सम्बन्धी समस्याओ का समाधान दो दृष्टिकोणो से होना चाहिये, श्रमजीवियो की भलाई और देश की आर्थिक स्थिरता तथा उन्नति। मजदूरो को भोजन, वस्त्र तथा मकान की मूल आवश्यकतायें अवश्य पूरी होनी चाहिए। मजदूर को अन्य सुविधायें भी प्राप्त होनी चाहिए, जैसे श्रेष्ठतर स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सुविधायें, शिक्षा पाने के सुगम व श्रेष्ठतर अवसर तथा सास्कृतिक मनोरजन की सुविधायें आदि। काम करने का वातावरण ऐसा होना चाहिये कि मजदूर व्यावसायिक रोगो तथा अन्य सकटो से सुरक्षित रहे और उसके स्वास्थ्य को हानि न पहुचे। प्रबन्धको को श्रमिको का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये और उचित सुविधा व व्यवहार न मिलने पर श्रमिको की किसी ऐसी सस्था तक पहुच होनी चाहिये जो निष्पक्ष हो। मजदूर को इस बात की भी पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह अपना सगठन बना सके तथा अपने अधिकारो व लाभो की सुरक्षा व वृद्धि के लिये न्यायसगत साधन अपना सके।" द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे आयोजना आयोग ने कहा था, 'श्रम सम्बन्धी नीति के बारे मे प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे जो कुछ भी कहा गया है वह भविष्य नीति की आधारशिला मानी जा सकती है। परन्तु द्वितीय पचवर्षीय आयोजना में श्रम-सम्बन्धी नीति मे कुछ उपयुक्त परिवर्तन आवश्यक है, क्योकि द्वितीय पचवर्षीय आयोजना एक समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करने के उद्देश्य से बनाई गई है। समाजवादी व्यवस्था का निर्माण केवल मुद्रा सम्बन्धी प्रयत्नो व प्रलोभनो पर ही आधारित नही है वरन् ऐसी व्यवस्था मे समाज के प्रति एक ऐसी सेवा की भावना

उत्पन्न होती है जिसका मूल्य समाज समझता है। इस सम्बन्ध मे यह आवश्यक है कि श्रमिक यह अनुभव कर सके कि वह एक उन्नतिशील राज्य के बनाने मे एक महत्त्वपूर्ण सहायक के रूप मे कार्य कर रहा है। अत समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिये औद्योगिक प्रजातन्त्र का निर्माण प्रथम आवश्यकता है।"

दूसरी पचवर्षीय आयोजना मे जो श्रम सम्बन्धी कार्यक्रम चालू किय गये वे तीसरी पचवर्षीय आयोजना के मुख्य कार्यक्रम भी उन्ही से सम्बन्धित थे। तीसरी पचवर्षीय आयोजना मे कहा गया था 'भारत म श्रम नीति, उद्योग और श्रमिक-वर्ग से सम्बन्धित परिस्थितियो की विशिष्ट आवश्यकताओ को ध्यान म रखकर ही बनाई गई है और यह नीति ऐसी होनी चाहिये जो आयोजित अर्थ व्यवस्था की आवश्यकताओ के अनुकूल हो।" तृतीय पचवर्षीय आयोजना म श्रम की महत्ता का इन शब्दो मे उल्लेख किया गया था "पूर्ण रोजगार के स्तर का प्राप्त करने के लिये तथा लोगो का जीवन-स्तर ऊचा उठाने के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक प्रगति की रफ्तार काफी तेज हो। प्रगति के फलो का समन्यायपूर्ण रीति से वितरण हो तथा इस सम्बन्ध म समाज का आर्थिक एव सामाजिक सगठन इस प्रकार किया जाए कि वह समाजवादी समाज की विचारधारा के अनुकूल हो। इन लक्ष्यों की प्राप्ति मे श्रमिक वर्ग का योगदान तथा उत्तरदायित्व बडा महत्त्वपूर्ण है और औद्योगीकरण की गति जितनी तीव्र होगी इसका महत्त्व उतना ही बढता जायेगा।" चौथी पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में स्वतन्त्रता क पश्चात् बन श्रम-कानूनो तथा सरकार, श्रमिको तथा मालिको के प्रतिनिधियो के बीच हुए समझौतो' पर जोर दिया गया था। इसमे आगे कहा गया था कि 'उत्पादकता की वृद्धि मे श्रम को बडा महत्त्व पूर्ण योगदान करना है और प्रबन्धको को चाहिए कि वे ऐसी दशाए उत्पन्न करें जिनके अन्तर्गत श्रमिक उक्त लक्ष्य की पूर्ति मे अपना अधिकतम योगदान दे सकें। अब तक मुख्य रूप से श्रम-नीति ऐसी रही है कि सगठित उद्योगो मे काम करने वाले श्रमिको को सरक्षण प्रदान किया गया है। आगामी वर्षों मे श्रम नीति तथा श्रम-कार्यक्रमो को धीरे-धीरे अधिक बढाना है जिससे कि कृषि-श्रमिको तथा असगठित मजदूरो के विभिन्न वर्गों के लिये भी यथेष्ट व्यवस्थायें भी हो सकें जैसे कि ठेके पर काम करने वाले श्रमिक, निर्माण कार्य करने वाले श्रमिक, स्त्री श्रमिक, तथा सफाई आदि के काम मे लगे मजदूर।" चौथी आयोजना (१९६९-७४) की अन्तिम रूपरेखा मे इस बात पर जोर दिया गया था कि "देश का आर्थिक विकास ऐसे योजनाबद्ध ढग से किया जाना चाहिए कि उससे प्राप्त लाभो का अधिक समान वितरण हो, अधिकाधिक लोगो को सुखी जीवन बिताने की सुविधायें प्राप्त हो, और उससे एक शक्तिशाली एव सगठित लोकतन्त्रीय राष्ट्र का निर्माण हो।" इसमे रोजगार के अवसर बढाने पर भी जोर दिया गया था और इस हेतु अधिकतम सभव मात्रा मे उत्पादन की ऐसी विधियाँ अपनाने पर बल दिया गया था जिसमे अधिकाधिक श्रम को लगाया जा सके। परन्तु जैसा कि पाँचवी आयोजना की रूपरेखा मे कहा गया था कि "रोजगार के जो अवसर बढ़े, वे श्रमशक्ति की वृद्धि की गति से काफी कम थे।" इसी कारण पाँचवी पचवर्षीय आयोजना (१९७४-७९) मे और १९७८-८३ की अवधि के लिये बनी पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा मे रोजगार और मानवशक्ति पर ही जोर दिया गया था उसम श्रमनीति के

सम्बन्ध मे किसी भी परिवर्तन का उल्लेख नही था। साथ ही, उसमे ग्रामीण श्रमिको की दशाओ मे सुधार के प्रति अधिक जागरूकता दिखाई गई थी। छठी पचवर्षीय आयोजना मे बेरोजगारी की क्रमिक कमी पर बल दिया गया है, विशेषत स्त्री तथा शिक्षित बेरोजगारी को कम करने के लिये। इस बात पर भी जोर दिया गया है कि औद्योगिक विवादो के निपटारे की प्रक्रिया को सरल बनाया जाय ताकि, 'श्रमिको को *शीघ्र न्याय' प्राप्ति के विषय मे आश्वस्त हुआ जा सके।*

श्रम पर राष्ट्रीय आयोग (१९६९) की रिपोर्ट[1] म कहा गया था कि विगत २० *वर्षो मे* देश मे जो *श्रम नीति लागू की गई*, उसके *मुख्य आधारभूत* तत्व सक्षेप मे इस प्रकार हैं :—(१) राज्य को, जो कि समाज के हितो का सरक्षक है, परिवर्तनो एव कल्याणकारी कार्यक्रमो के उत्प्रेरक (catalyst) के रूप मे मान्यता प्रदान करना, (२) यदि श्रमिको को न्याय प्रदान करने से इन्कार किया जाए तो शान्तिपूर्ण सीधी कार्यवाई के उनके अधिकार को मान्यता देना, (३) पारस्परिक समझौतो, सामूहिक सौदाकारी एव ऐच्छिक पंच निर्णय के लिये प्रोत्साहन देना, (४) सभी सम्बन्धित वर्गो के साथ न्यायोचित व्यवहार करने की दृष्टि से कमजोर पक्ष के *समर्थन मे राज्य द्वारा हस्तक्षेप करना*, (५) *औद्योगिक शान्ति बनाये रखने को प्रमुखता* देना, (६) मालिक तथा श्रमिको के बीच साझेदारी (partnership) की दिशा मे ऐसा रचनात्मक एव ठोस प्रयास करना कि जिससे समाज की आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति सर्वोत्तम सभव तरीके से की जा सके, (७) 'न्यायोचित मजदूरी' के स्तरो एव सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था के विषय मे आश्वस्त करना, (८) उत्पादन एव उत्पादकता को बढाने के लिए सहयोग करना, (९) विधान को यथेष्ट रूप मे लागू करना, (१०) उद्योग मे श्रमिक का दर्जा ऊँचा उठाना, और (११) त्रिदलीय विचार-विमर्श करना। इन सिद्धान्तो की रूपरेखा प्रथम आयोजना मे सम्मिलित की गई थी और बाद की आयोजनाओ (plans) मे उनकी पुष्टि की जा रही है।

इन कथनो से हमारे देश मे श्रम सम्बन्धी समस्याओ की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। अत इन सब समस्याओं को भली भाँति समझना अत्यन्त आवश्यक है।

●

1 Report of the National Commission on Labour—pages 29-30

२ भारतीय श्रमिकों में प्रवासिता

MIGRATORY CHARACTER OF THE INDIAN LABOUR

प्रवासिता का अर्थ (Meaning of the Migratory Character)

भारतीय श्रमिकों का एक मुख्य लक्षण उनकी प्रवासिता है। श्रमिकों की प्रवासिता का अर्थ यह है कि औद्योगिक श्रमिक वास्तव में उस स्थान के स्थायी निवासी नहीं होते जहाँ रहकर वे काम करते हैं। दूसरे शब्दों में पश्चिमी देशों के फैक्टी श्रमिकों की भाँति भारतवर्ष में कोई भी श्रमिक वर्ग नहीं है। पश्चिमी देशों में, जहाँ कि औद्योगीकरण की गहरी जड़ें जम चुकी हैं, बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्र स्थापित हो गये हैं और मजदूरों का एक स्थायी वर्ग बन गया है जिनका अपने गाँव तथा कृषि से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों में रहते हैं, वहीं पलते हैं और मजदूरी ही उनके जीवन-निर्वाह का एकमात्र साधन है। परन्तु भारत में अधिकांश अनिपुण औद्योगिक श्रमिक आस-पास के गाँव से आते हैं और अपने गाँवों के घरों से सम्पर्क बनाये रखते हैं। इस प्रकार औद्योगिक नगरों के श्रमिकों को वास्तविक अर्थ में 'प्रवासी' न कहकर 'आवासी' भी कहा जा सकता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की प्रवृत्ति नैमित्तिक (casual) मजदूरों में ही अधिक पाई जाती है। अन्य प्रकार के श्रमजीवी तो साधारणतया एक ही स्थान पर अथवा एक ही उद्योग में काम करना अधिक पसन्द करते हैं, विशेषकर उन स्थानों में जहाँ मजदूरी अधिक होती है, या जिन उद्योगों में अत्यन्त निपुण श्रमिकों की आवश्यकता होती है। भारतीय श्रमिकों की प्रवासिता से वास्तव में तात्पर्य यह है कि भारत में कोई स्थायी औद्योगिक जनसंख्या नहीं है जो औद्योगिक नगरों को अपना घर समझती हो। अधिकांश श्रमिक ग्रामों से आते हैं और समस्या यह है कि उनकी यह प्रवासिता स्थायी न होकर अस्थायी है, यद्यपि विगत कुछ वर्षों में श्रमिकों की प्रवासिता में कुछ परिवर्तन के लक्षण दृष्टिगोचर हुए हैं और औद्योगिक श्रमिकों में स्थायी रूप से शहरों में ही रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है।

नगरों की जनसंख्या में वृद्धि :

श्रमजीवियों के उद्गम स्थान (source) के सम्बन्ध में हुई अनेक जाँचों तथा अनुसंधानों के पश्चात् इस तथ्य में सन्देह नहीं रह जाता कि अधिकांश औद्योगिक श्रमिक ग्रामीण ही हैं। वर्तमान शताब्दी में बम्बई तथा कलकत्ता जैसे विशाल औद्योगिक नगरों की जनसंख्या दुगुनी व तिगुनी हो गई है। मद्रास, मदुरा, नागपुर,

कानपुर व दिल्ली आदि नगरों की जनसंख्या भी अत्यन्त वेग से बढ़ रही है। अनेक नये नगर भी बस गये हैं। १९५१ की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार १९४१ तथा १९५१ के १० वर्षों में ऐसे ७५ नगरों की जनसंख्या, जिनमें एक लाख या अधिक आबादी थी, ४३ ८ प्रतिशत बढ़ गई थी। जनसंख्या की यह आकस्मिक वृद्धि बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास से उत्पन्न हुई श्रम की मांग की पूर्ति के लिये ग्रामीण जनता के औद्योगिक नगरों में आने के कारण तथा देश के विभाजन के पश्चात् विस्थापितों के आगमन के कारण हुई थी। १९६१ की जनगणना के अनुसार १९५१ से १९६१ की अवधि के बीच शहरी जनसंख्या में लगभग ३६ २५ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। यह वृद्धि ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि (१८ ८४%) से लगभग दुगुनी थी।

१९७१ की जनगणना (census) में भी यही प्रकट होता है कि सन् १९६१ व १९७१ की अवधि के बीच शहरी जनसंख्या में लगभग ३७ ८३% की वृद्धि हुई, जबकि इसी अवधि में ग्रामीण जनसंख्या में होने वाली वृद्धि काफी कम अर्थात् केवल २१·७८% ही रही। इन दस वर्षों की अवधि में विभिन्न श्रेणियों के नगरों की जनसंख्या में जो वृद्धि हुई, उसका विवरण इस प्रकार है :—(एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले) प्रथम श्रेणी के १४२ नगरों में ४६ ३५ प्रतिशत वृद्धि, (५० हजार से १ लाख तक की जनसंख्या वाले) द्वितीय श्रेणी के १९८ नगरों में ४०·८६% वृद्धि, (२० हजार से ५० हजार तक की जनसंख्या वाले) तृतीय श्रेणी के ६१७ नगरों में २९ १०% वृद्धि और (१० हजार से २० हजार तक की जनसंख्या वाले) चतुर्थ श्रेणी के ९११ नगरों में २७ ३०% वृद्धि। इस अवधि में कुछ महत्वपूर्ण नगरों की जनसंख्या में वृद्धि का प्रतिशत इस प्रकार रहा है : दिल्ली ५३ ८५%, बम्बई ४३ ७५%, कलकत्ता २२ ११%, मद्रास ४२ ८६%, कानपुर ३१ १०%, अहमदाबाद ३८ १३%, भोपाल ७५ ८६%, धनबाद ११५ ८८%, राँची ८२ ५४%, रोहतक ४१ ९६, भुवनेश्वर १०६ ७४%, चण्डीगढ़ १३४ ७४%, दुर्गापुर ३९७ ०१%, मेरठ २९ ५२%, नागपुर ३४ ५७%, लुधियाना ६४ ३७%। ये आकड़े ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर को जनसंख्या के स्थानान्तरण को प्रकट करते हैं। इस स्थानान्तरण ने नगरों में आवास की समस्या को भी काफी गम्भीर बना दिया है जिसका विवेचन आगे अध्याय ९ में किया गया है।

श्रमिक संभरण का उद्गम स्थान[1] (Sources of Labour Supply) :

साधारणतया छोटे व मध्यम दर्जे के औद्योगिक केन्द्र कुशल कारीगरों के अतिरिक्त अन्य श्रमिकों को आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों से ही प्राप्त करते हैं। किन्तु बम्बई, कलकत्ता और जमशेदपुर जैसे औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों की पूर्ति अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र से होती है। कलकत्ता की जूट मिलों में ८०% से अधिक श्रमिक बंगाली न होकर बिहार, उत्तर-प्रदेश, उड़ीसा तथा आन्ध्र के रहने वाले हैं। बम्बई की सूती कपड़ा मिलों में, श्रमजीवी अधिकतर निकट के कोंकण, सतारा तथा शोला-

1. *The Indian Labour Year Book 1964, page 38*

पुर आदि जिलों से आते हैं परन्तु दक्षिण तथा उत्तर प्रदेश से भी कुछ श्रमिक आते हैं। जमशेदपुर के लोहे के कारखाने उद्योग के श्रमिक बिहार, प० बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु के रहने वाले हैं और अब लगभग स्थायी रूप से अपने काम के स्थान पर ही रहने लगे हैं। बिहार व पश्चिमी बंगाल की कोयले की खानों के मजदूर साधारणतया आस पास के गाँवों के ही रहने वाले हैं यद्यपि युद्ध के दिनों में कुछ श्रमिक गोरखपुर से भी भर्ती किये गये थे। कोलार की सोने की खानों में भी ६० प्रतिशत श्रमिक कर्नाटक से बाहर के हैं। इनमें से अधिकांश तमिलनाडु के और कुछ आन्ध्र प्रदेश के हैं। उत्तरी पूर्वी भारत के बागान के श्रमिक अधिकतर बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के रहने वाले हैं। केरल में बागान श्रमिक तमिलनाडु के हैं। भोपाल के बीड़ी उद्योग में अधिकांश श्रमिक मध्य प्रदेश के और जबलपुर (भूतपूर्व विन्ध्य प्रदेश) के हैं। हैदराबाद की कोयले की खानों के श्रमिक गोरखपुर से आते हैं और कर्नाटक के काफी उद्योगों के श्रमिक तामिलनाडु के दक्षिण कनारा जिले के रहने वाले हैं। उत्तर प्रदेश और पंजाब में बहुत से श्रमिक पहाड़ी हैं जो सर्दियों में आते हैं और गर्मियों में घर चले जाते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार की चीनी मिलों में काम करने वाले श्रमिक एक राज्य से दूसरे राज्य में आते जाते रहते हैं। उड़ीसा की हीराकुड योजना में अधिकांश श्रमिक आंध्र के हैं। दिल्ली में इमारती काम में लगे हुए श्रमिक राजस्थान और पंजाब के हैं। १९११ की जनगणना की रिपोर्ट ने यह भी बताया था कि वाराणसी मण्डल में एक भी ऐसा परिवार नहीं था जिसका कोई न कोई सदस्य प० बंगाल या आसाम में काम के लिये न गया हो।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिक अन्य जिलों तथा अन्य प्रान्तों से आते हैं। कुछ कारखानों तथा खानों में श्रमिक आस पास के गाँवों से भी आते हैं। काम पाने के लिये समुद्र पार देशों में प्रवास कम होता है। भारतीय कुटीर उद्योगों के पतन तथा १८३० में अंग्रेजी उपनिवेशों में दास प्रथा की समाप्ति के पश्चात् ही भारतीय श्रमिक श्रीलंका, मलाया, बर्मा आदि दूसरे देशों में नौकरी की खोज में जाने लगे। बाद में यह प्रवास श्रीलंका तक ही सीमित हो गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक भारतीय नौकरी की खोज में यूरोपियन तथा अफ्रीकी देशों में विशेषरूप से ब्रिटेन गये। किन्तु विदेशी सरकारों द्वारा आवास पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने के कारण तथा युगाण्डा जैसे कुछ देशों के शत्रुतापूर्ण रवैये के कारण अब नौकरी के लिये विदेशों को जाने वाले भारतीय प्रवासियों की संख्या बराबर कम होती जा रही है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि अगस्त १९४७ में देश के विभाजन के पश्चात् भी भारत व पाकिस्तान के बीच लोगों का आवास प्रवास हुआ, परन्तु इसका कारण विभिन्न था।

प्रवासिता का स्वभाव (Nature of Migration)

यद्यपि श्रमजीवी गाँव से आता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह किसान

ही हो, और अपना कृषि का काम कुछ दिनों के लिये छोड़कर अपनी आय बढ़ाने के लिये औद्योगिक नगर में नौकरी करने के लिये आया हो। ऐसे श्रमजीवी जिनकी रुचि कृषि की ओर अधिक रहती है केवल कृषि पदार्थों का उपयोग करने वाले मौसमी उद्योगों तथा खानों में अधिक पाये जाते है। निरन्तर चालू कारखानों में अब मालिक इस बात के लिये विवश नहीं रह गये है कि वे ऐसे श्रमिकों को काम पर लें जो कुछ महीने काम करने के पश्चात् फसल काटने व बोने के लिये गांव वापिस चले जायें। श्रम अनुसंधान समिति (१९४६) ने अपने अन्वेषणों के आधार पर यह बताया था कि अधिकांश मिल-मजदूर यद्यपि गांव से आते है परन्तु खेती में ही उनकी पूँजी नहीं लगी होती तथा उसी पर वे निर्भर नहीं होते। कभी कभी जब वे गाव जाते भी है तो खेती के कार्य के लिये नहीं वरन् आराम तथा स्वास्थ्य सुधारने के उद्देश्य से जाते हैं। खेती में उनकी थोडी बहुत रुचि केवल इसलिये होती कि वे ऐसे सम्मिलित परिवार के सदस्य होते है जिनके पास भूमि होती है या उनके निकट सम्बन्धी कृषक होते है। वास्तव में मिल मजदूरों के कृषक-स्वभाव के सम्बन्ध में केवल इतनी सत्यता है कि उनमें से अधिकांश हृदय से ग्रामीण होते है। वे गाँव में जन्म लेते है और उनका बचपन गाँव में ही व्यतीत होता है। वे ग्रामीण परम्परा के अधीन होते है और अधिकांश अपने परिवार को गाँव में ही छोड आते है। कुछ श्रमिक यदि अपनी स्त्रियों को साथ लाते भी है तो भी प्रसूति के समय उन्हें गाव भेज देते है। श्रमिक अनुकूल आर्थिक परिस्थितियां होने पर अथवा कार्यवश गाँव जाते रहते हैं। साधारणतया सामाजिक उत्सवों तथा संस्कारों के समय या परिवार की किसी जटिल समस्या का समाधान करने या बीमारी के समय या गाँव के मकान की मरम्मत आदि के समय तथा अपने परिवार के सदस्यों से मिलने के लिये वे गाँव जाते रहते है। कुछ श्रमिक गाँव में पर्याप्त भोजन व वस्त्र मिलने पर अथवा कार्य मिलने पर उद्योग धन्धों में काम छोड कर गाँव वापिस जाने के लिये भी तैयार रहते हैं और बहुत से श्रमिकों में यह तीव्र इच्छा पायी जाती है कि अवकाश ग्रहण करने के बाद स्थाई रूप से अपने गाव जाकर बस जायें। कई बार श्रमिकों का गाँव से सम्बन्ध केवल इतना ही रह जाता है कि वे गाँव के महाजन या अपने कुटुम्ब के सदस्यों को रुपया भेजते रहते हैं, इसके अतिरिक्त मजदूरों का गाँव से कोई विशेष लगाव नहीं रहता। एक बार जब वे उद्योग धन्धों में काम करने के लिये आ जाते हैं तो काफी समय तक उसी में काम करते रहते है। गाँव वापिस जाने के लिये सभी श्रमिक बहुत इच्छुक भी नहीं रहते। जैसा रायल श्रम आयोग ने कहा है, "कुछ श्रमिकों के साथ तो गाँव का सम्बन्ध घनिष्ठ तथा निरन्तर रहता है और कुछ के साथ यह सम्बन्ध क्षणिक तथा सामयिक होता है तथा कुछ के साथ तो यह सम्बन्ध वास्तविक न होकर केवल एक प्रेरणा मात्र रह जाता है।"[1] राष्ट्रीय श्रम आयोग (१९६९) ने कुछ नगरों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला था कि नौकरी की खोज में शहरों की ओर आने वालों लोगों में प्रारम्भ में तो गाँवों में

1 Report of the Royal Commission on Labour, page 13,

वापिस जाने की लालसा होती है, किन्तु आगे चल कर वे शहरी जीवन को ही अपनाने व अधिकाधिक अभ्यस्त हो जाते हैं और नगरों के जीवन के प्रति युवा लोग विशेष रूप से आकर्षित होते है।[1] कुछ भी हो, इस तथ्य में कोई सन्देह नहीं है कि पश्चिमी देशों की तरह, भारत में अभी तक कोई स्थायी औद्योगिक जनसंख्या नहीं बन पाई है और अधिकतर भारतीय श्रमिक हृदय से अपने को ग्रामवासी ही समझते हैं।

प्रवासिता के कारण (Causes of Migration) :

प्रवासिता के अनेक कारण है जिनमें सबसे मुख्य कारण यह है कि कुटीर उद्योग धन्धों के पतन तथा जनसंख्या के बढ़ जाने से भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक होता गया है, अर्थात् भूमि इतने लोगों का जीवन-निर्वाह नहीं कर पाती जितने उस पर निर्भर रहते है। परिणामस्वरूप, किसानों के खेत छोटे-छोटे हो जाते है और उनके जीवन में निर्धनता, बेकारी तथा ऋण की समस्यायें आ जाती हैं। इसके अतिरिक्त गाँव में एक भूमिहीन मजदूर वर्ग भी पाया जाता है जो कि अच्छे वर्षों में भी कठिनाई से अपना जीवन निर्वाह करता है, और बुरे वर्षों में तो उनकी अवस्था और भी अधिक शोचनीय हो जाती है। जैसा की पीछे पृष्ठ १७ पर दिखाया गया है, ऐसे श्रमिकों की संख्या में बराबर वृद्धि होती रही है। इस वर्ग में इस कारण भी वृद्धि हुई है क्योंकि ऋण के कारण तथा जमींदारों के अत्याचारों के कारण अथवा आपसी झगड़ों के कारण बहुत से किसान अपनी भूमि खो बैठे हैं। इन भूमिहीन श्रमजीवियों की अवस्था इतनी शोचनीय हो जाती है कि वे गाँव छोड़ कर जीविकोपार्जन के लिए नगरों में कार्य ढूंढने आ जाते हैं। यातायात के साधनों में उन्नति होने के कारण गाँव छोड़ने में कठिनाई भी नहीं होती। फिर, शहरी क्षेत्रों में मजदूरियाँ भी अधिक होती है। कुछ स्थानों में किसानों की भूमि इतनी कम है कि वे उस पर रहकर अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते। अतः उन्हें प्रत्येक वर्ष जीविका की खोज में गाँव से नगरों में आना पड़ता है। संयुक्त परिवार प्रथा होने के कारण गाँव छोड़ने में आसानी होती है क्योंकि वे अपनी भूमि, पत्नी, बच्चा व घर की सुरक्षा का भार परिवार के अन्य सदस्यों पर छोड़ देते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक बार कृषक नगरों में रुपया कमाने इसलिए जाते है कि वे पशु और भूमि खरीद सकें। कुछ लोग गाँव के महाजन से बचने के लिये नगरों में चले जाते हैं। गाँव के अनेक कारीगरों को भी, जो पहले ग्रामवासियों के लिये सामान बनाते थे, विदेशी माल की प्रतिस्पर्धा के कारण अपना धन्धा छोड़ना पड़ा और परिस्थितिवश उनको गाँव से नगरों में जीविका की खोज में आना पड़ा। इसके अतिरिक्त, दलित वर्ग के व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि उनके प्रति नगरों में गाँव की अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार होता है और उनका इतना अनादर नहीं होता। औद्योगिक नगरों में जात-पात का बन्धन काफी ढीला होता है। यह देखा गया है कि कानपुर में बड़े उद्योग-धन्धों में महिला श्रमिकों में से ६३ प्रतिशत पिछड़ी हुई दलित जाति

1 Report of the *National Commission on Labour*, page 31.

की है जैसे—कोरी, शेख, पासी और भंगी। इसी प्रकार पुरुष तथा मजदूरों में से ३० प्रतिशत दलित जाति के हैं जिनमें से लगभग आधे कोरी हैं।[1] कुछ ग्रामवासी अनेक अन्य कारणों से भी गाँव छोडकर नगरों में आ जाते हैं, जैसे—घरेलू झगडों तथा चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिये अथवा सामाजिक बहिष्कार के कारण या किसी नैतिक पतन के दंड से बचने के लिये या किसी प्रेमसम्बन्ध के कारण।

अब हमें यह देखना है कि प्रवासिता अस्थायी क्यों है और श्रमजीवी गाँवों से अपना सम्बन्ध क्यों बनाये रखते हैं। श्रमजीवी नगरों में अधिक मजदूरी मिलने के प्रलोभन से आते हैं परन्तु अपने व्यवसाय की अनिश्चितता, मकानों की कमी, किराये की ऊँची दर तथा काम करने व रहने की विषम परिस्थितियों के कारण वे स्थायी रूप से नगरों में रहना या अपने परिवार को लाना पसन्द नहीं करते। रॉयल श्रम आयोग के शब्दों में "प्रवासिता की मुख्य प्रेरणा केवल एक ओर से ही होती है अर्थात् गाँव की ओर से। औद्योगिक श्रमिक शहरी जीवन के प्रलोभन से अथवा किसी आकांक्षा से प्रोत्साहित होकर नहीं आते। नगरों में उनके लिये कोई आकर्षण नहीं होता। गाँव छोडते समय उनमें केवल जीवन-निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा नहीं होती। गाँव में ही पर्याप्त भोजन व वस्त्र मिलने पर उद्योगों में काम करने के लिये कम ही मनुष्य जाना पसन्द करेंगे। **मजदूर नगरों में आकर्षित होकर नहीं, विवश होकर आते हैं।**"[2] क्योंकि मजदूर नगरवासियों से भिन्न होता है इसलिये अपने आपको नगरों के अनुकूल नहीं पाता और उसमें हीन भावना आ जाती है। नगरों में उसको गवार और अशिक्षित समझा जाता है और उसको वह आदर व सम्मान प्राप्त नहीं होता जो उसे गाँव में मिलता है। शहरी जीवन गाँव के जीवन से भिन्न होता है। गाँव का जीवन सामूहिक जीवन है, सुख-दुख के सब साथी होते हैं, परन्तु नगरों में व्यक्तिगत जीवन होता है। सहायता देना तो दूर रहा कोई ग्रामीणों से बात तक करना पसन्द नहीं करता। काम करने की स्थिति में गाँव और नगरों में बडा अन्तर है। गाँव में काम खुली हवा में अपने साथियों के साथ ही होता है। खेती का काम भी नियमित रूप से नहीं होता, परन्तु नगरों में मजदूरों को कारखानों में काम करना पडता है जहाँ बडा अनुशासन होता है। ऐसे लोगों के अधीन कार्य करना पडता है और उनका कहना मानना पडता है जिन्हें वे जानते तक नहीं। कार्य को समझने में भी कठिनाई होती है। परिणामस्वरूप जब ग्रामनिवासी अपने को कार्य के अनुकूल नहीं बना पाता तो उसे अपने घर की याद आने लगती है और वह गाँव वापिस जाना चाहता है। नगरों में रहने की स्थिति भी गाँव से भिन्न होती है। मकानों के अभाव के कारण औद्योगिक नगरों में अनेक श्रमिक

---

1 R. Mukerjee *Indian Working Class* page 9

2 ' ... they are pushed, not pulled to the city ' —Report of the *Royal Commission on Labour*, page 16

परिवारों को एक ही मकान में रहना पड़ता है। फलस्वरूप मजदूरों की गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं बन पाता। चार-चार पाँच पाँच परिवारों को केवल एक ही कमरे में रहना पड़ता है और यह स्थिति पारिवारिक जीवन के अनुकूल नहीं होती। जब पुरुष व नारी प्रत्येक कार्य के लिये एक ही कमरे में रहते हैं तो लज्जा व संस्कृति का लोप हो जाता है। किसी प्रकार का भी एकान्त नहीं रहता और जीवन के सब कार्य जन्म, मरण, रोग, आदि एक ही कमरे में सबके सामने होते हैं। आत्म सम्मानी मजदूर ऐसी स्थिति में अपने परिवार को लाना पसन्द नहीं करते। अतः वे परिवार को गाँव में छोड़ आते हैं और नगर में अकेले रहते हैं। नगरों में स्त्री व बच्चों के लिये काम भी कठिनाई से मिलता है परन्तु गाँव में उनको कुछ न कुछ काम मिल ही जाता है और रहन सहन भी इतना महँगा नहीं होता। इसके अतिरिक्त नगरों में मनुष्यों का नैतिक आदर्श बहुत गिर गया है। इस कारण श्रमिक अपनी युवा स्त्री व कन्या को गाँव में रखना अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि नगरों में नैतिक पतन का भय बना रहता है। जब परिवार में रहता है तब श्रमिकों का सम्बन्ध गाँव में बना ही रहता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार प्रथा के कारण भी मजदूर अपने गाँव में पूर्वजों के घरों से सम्बन्ध स्थापित रखता है। ऐसे श्रमिकों को भी जो कम भूमि के कारण या उसमें कम उपज होने के कारण नगरों में आ जाते हैं अपना सम्बन्ध भूमि से रखना ही पड़ता है जिससे भूमि से थोड़ी बहुत जो भी आय हो जाय वही अच्छा है। इन सब कारणों से औद्योगिक नगरों में एक स्थायी श्रमिक वर्ग का निर्माण कठिन हो जाता है।

प्रवासिता के दुष्परिणाम (Evil Effects of the Migratory character)

श्रमिक जब ग्रामों से नगरों में आते हैं तो स्वयं को अत्यन्त भिन्न वातावरण में पाते हैं। रीति रिवाज, परम्परा और भाषा तक भिन्न होती है। गाँव का सामूहिक जीवन और उसके अन्तर्गत प्राप्त सुविधायें समाप्त हो जाती हैं। नगरों के जीवन में रीति रिवाजों का महत्व कम हो जाता है और जीवन व्यक्तिगत हो जाता है। इन बातों का श्रमिक की मनःस्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और उसकी कार्यक्षमता कम हो जाती है। श्रमिक के स्वास्थ्य पर कई कारणों से बुरा प्रभाव पड़ता है जैसे जलवायु व कार्य करने के वातावरण में अन्तर खराब भोजन, अधिक भीड़ सफाई का न होना और परिवार से बिछुड़ होकर अलग रहना आदि। नगरों में रहने तथा कार्य करने का वातावरण गाँव से भिन्न होता है। गाँव में कार्य अनियमित रूप से होता है और विश्राम का अवसर काफी मिलता है परन्तु नगर में श्रमिक स्वयं को कारखाना की चारदीवारी में बन्द अनुभव करता है और मशीनों की ध्वनि से उसके कान के पर्दे फटने से लगते हैं। उसे लगातार मेहनत करनी पड़ती है और कार्य भी कड़े अनुशासन

मे करना पडता है। इन बातो से श्रमिको के शरीर व मस्तिष्क पर काफी भार पडता है और उनकी कार्य-कुशलता कम हो जाती है। नगरो म भोजन भिन्न होने के कारण भी श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। शुद्ध दूध, घी और दही जिनका वह अभ्यस्त होता है, नगरो मे उसे प्राप्त नही हो पाते। गाँव मे तो उन्हे अपनी पत्नियों से बना बनाया भोजन घर पर या खेत पर प्राप्त हो जाता था, परन्तु नगरो मे उन्हे बासी और खराब भोजन मिलता है जो वे या तो स्वय गप्या समय उल्टा सीधा बना लेते हैं या महँगे दामो पर दूसरो का बनाया हुआ भोजन मोल लेकर खाते हैं। ग्रामवासी इतने स्वच्छ भी नही होते और उनके स्वच्छ न रहने की आदत घने बसे नगरों मे गाँव की अपेक्षा अधिक हानिकारक सिद्ध होती है। उनका स्वास्थ्य इस कारण भी गिर जाता है कि अनेक श्रमिक अपनी पत्नियो को गाँव छोड आते है और जब उन्हे परिवार का आनन्दमय जीवन नहीं मिल पाता तो वे बुरी प्रवृत्तियो के, जैसे शराब, वेश्यागमन और जुआ आदि, जो औद्योगिक केन्द्रों मे काफी मात्रा मे पाये जाते हैं, आसानी से शिकार हो जाते है। उनको कई गन्दी बीमारियाँ भी लग जाती हैं जोकि उनके गाँव जाने पर वहाँ तक फैल जाती हैं। व्यभिचार से पारिवारिक जीवन मे भी कडवाहट आ जाती है। फलत इसके कई दुष्परिणाम उत्पन्न हो जाते है। इन अनेक बातो से श्रमिक को पहले तो घबराहट सी होती है और फिर जब बीमारी घेर लेती है और उसको कोई सहारा नही दिखाई देता तो नगर म दुख और यातनायें भोगने की अपेक्षा वह अपने गाँव जाना अधिक पसन्द करता है।

प्रवासिता का श्रमिको की कार्यकुशलता पर भी बहुत बुरा प्रभाव पडता है। प्रथम तो श्रमिक को अपने कार्य मे पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त नही हो पाता और जब वह गाँव वापिस चला जाता है तो जो कुछ भी प्रशिक्षण कारखानो मे मालिक दे पाते है वह भी समाप्त हो जाता है। श्रमिक स्वय भी लगकर अनुशासन मे कार्य नही करते क्योंकि हर समय वे गाँव जाने की बात ही सोचते रहते है। निकाल दिये जाने की धमकी भी उन पर अधिक प्रभाव नही डालती क्योकि उनके सामने अपने गाँव वापिस लौट जाने का रास्ता खुला रहता है।

श्रमिको की प्रवासिता का प्रभाव औद्योगिक सगठन तथा श्रमिको सघो पर भी पडता है। श्रमिक सघ भली भाति प्रगति नही कर पाते। सघो के बनाने में अनेक श्रमिक न तो कोई रुचि दिखाते है और न चन्दा ही देते है क्योकि वे यह समझते हैं कि वे स्थायी रूप से नगरो मे रहने के लिये नही आये है। इसके अतिरिक्त उन्हे एक दूसरे पर भरोसा भी नही होता, क्योकि श्रमिक देश के विभिन्न भागों से आते हैं और उनकी जाति, भाषा तथा धर्म भिन्न भिन्न होते है। इन्ही कारणो से श्रमिको मे से ही उनके नेता नही बन पाते। श्रमिक बराबर स्थानान्तरित होते रहते है और उनका सम्पर्क भी बदलता रहता है। इसके अतिरिक्त श्रमिको के बार-बार गाँव जाने से और काम पर अनुपस्थित रहने के कारण मिल-मालिक और मजदूरो म आपसी

सम्पर्क नही हो पाता और दोनो मे मेल-मिलाप नही बढता। साथ ही गाँव से लौटने पर यह निश्चित नही होता कि श्रमिक को फिर काम पर लगा लिया जायगा। फिर मे काम पाने के लिये उसे मध्यस्थ को रिश्वत देनी पडती है। इसके अतिरिक्त मिल-मालिक श्रमिकों की प्रवासिता का बहाना बनाकर उनको अनेक सुविधाओं से वंचित रखते हैं जो कि पश्चिमी देशों मे श्रमिक को प्रदान की जाती है।

प्रवासिता के लाभ (Advantages of Migration) :

प्रवासिता के अस्थायी होने के कुछ लाभ भी है। मजदूरों की बीमारी, हडताल, बेकारी, वृद्धावस्था आदि मे जब भी कठिनाइयाँ होती है तो उन्हे गाँव मे अपना घर होने से सहारा मिल जाता है। इस विश्वास से ही कि यह सहारा उन्हे सदैव मिलता रहेगा, उनमे पर्याप्त शक्ति व आशा का सचार हो जाता है। भारत मे अभी तक किसी विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना अथवा मजदूरो के लिये अभाव व दुर्घटनाओ के समय कोई सरकारी सहायता की व्यवस्था नही है। इसलिये यदि गाँव से सम्बन्ध न रहे तो अनेक श्रमिकों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो जायगी।

जब श्रमिक छुट्टी लेकर गाँव जाता है तो उसके स्वास्थ्य पर भी अच्छा असर पडता है और जब गाँव की प्राकृतिक स्वच्छन्दता मे रहकर वह वापिस आता है तो उसकी कार्यक्षमता मे वृद्धि हो जाती है।

गाँव और कृषि को भी प्रवासिता से लाभ पहुँचता है। कारखाना मे काम मिल जाने से गाँव की बहुत सी जनसख्या बाहर चली जाती है और भूमि पर जन-सख्या का दबाव कम हो जाता है। उद्योग-धन्धे कृषि की अनिश्चितता के प्रति एक प्रकार के बीमे का कार्य करते हैं। श्रमिक अपनी आय का कुछ भाग गाँव मे भी भेजता रहता है जो कभी-कभी खेती की उन्नति मे सहायक होता है। इसके अतिरिक्त, जैसा रायल कृषि आयोग ने कहा है, नगर का जीवन मनुष्यों को खराब तो कम करता है, परन्तु अधिकाश व्यक्तियों का दृष्टिकोण शहरी जीवन मे रहने से विस्तृत हो जाता है और उनकी बुद्धि का विकास होता है। श्रमजीवी जब गाँव जाते है तो अपने साथ विस्तृत ज्ञान व स्वतन्त्र विचार भी ले जाते हैं जिनके कारण गाँव मे अनेक सामाजिक सुधार सम्भव हो सके हैं और ग्राम-निवासियो ने स्वय को अनेक पुराने रीति-रिवाजो एव रूढियों से मुक्त कर लिया है।

उपसंहार (Conclusion) :

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि ऐसे श्रमजीवी वर्ग का विकास हो जो पूर्णरूप मे औद्योगिक क्षेत्रो मे ही रहता हो और जिसका गाँव से कोई सम्बन्ध न हो ? या गाँव से श्रमिकों का जो वर्तमान सम्बन्ध रहता है, उसे बनाये रखने और प्रोत्साहित देने की आवश्यकता है ? रॉयल श्रम आयोग का मत यह था कि जो भी तत्कालीन अवस्था थी उसमे कोई पूर्ण अथवा आकस्मिक परिवर्तन सम्भव नहीं था। आयोग के शब्दों मे "चाहे कोई भी मत क्यों

न लिया जाय उद्योग-धन्धो की काफी समय तक श्रमिको के लिये गाँव पर निर्भर रहना पड़ेगा और इस बात से कि श्रमजीवियो ने बिना किसी प्रोत्साहन के गाँव से अब तक सम्बन्ध स्थापित रखा है, यह प्रमाणित होता है कि उनका यह सम्बन्ध काफी दृढ हो चुका है। अत हमारा स्पष्ट मत है कि वर्तमान स्थिति को देखते हुये गाँव से सम्बन्ध स्थापित रखना लाभप्रद ही है और इसलिये हमारा उद्देश्य इस सम्बन्ध को समाप्त करने का न होकर इसे प्रोत्साहित करने का होना चाहिये और जहाँ तक सम्भव हो, इसको नियमित करने का प्रयत्न करना चाहिये।"[1]

डॉ० राधा कमल मुकर्जी का मत यह कि उद्योग-धन्धो का विकास एक नियन्त्रित योजना के आधार पर तथा देश मे उनके पुनर्वितरण को दृष्टि मे रखते हुए करना चाहिये जिससे गाँव से सम्बन्ध बनाये रखने के जो भी लाभ हैं वह प्राप्त होते रहे। उनका कहना है कि "अगर भारत को योजनाहीन औद्योगिक विकास के सामाजिक दुष्परिणामो से बचना है और जनसख्या को कुछ घने बसे औद्योगिक नगरो मे केन्द्रित होने से रोकना है तो हमारी भविष्य की औद्योगिक नीति यह होनी चाहिये कि उद्योगो को ऐसे स्थानो पर स्थापित किया जाय जहाँ कच्चे माल और श्रमजीवियो की प्राप्ति की सुगमता हो।"[2] डॉ मुकर्जी ने रूस, जर्मनी, बेल्जियम, हालैंड, चैकोस्लोवाकिया, जापान आदि देशो का उदाहरण दिया है जहाँ बड़े उद्योगो का विकास शहरो से दूर हुआ। श्रमिको को गाँव से कारखानो तक लाने और वापिस ले जाने के लिये छोटी रेलो, बसो व स्टीमरो आदि का प्रबन्ध हो सकता है। इस प्रकार डॉ० मुकर्जी का मत है कि कुटीर व विकेन्द्रित उद्योगो और बड़े बड़े उद्योगो का आपस मे सम्पर्क होना चाहिये। इस प्रकार वे श्रमजीवियो के ग्रामीण स्वभाव को बनाये रखने के पक्ष मे है और औद्योगिक नगरो की त्रुटियो को दूर करने के लिये विकेन्द्रीकरण (Decentralization) को भी आवश्यक समझते है।

हम इन मतो से पूर्णतया सहमत नही है। विकेन्द्रीकरण अन्य दृष्टिकोणो से लाभदायक हो सकता है परन्तु प्रवासिता की समस्या केवल भविष्य मे स्थापित होने वाले उद्योगो से ही सम्बन्धित नहीं है। यह समस्या उन श्रमिको से भी सम्बन्ध रखती है जो पूर्णतया स्थापित उद्योगो मे काम करते है। इस बात का भी ध्यान रखना है कि स्थायी औद्योगिक जनसख्या के विकास के लक्षण उत्पन्न हो चुके है। ऐसे श्रमिक जो दूर स्थानो से आते है नगरो मे स्थायी रूप से रहने लगे है। दलित वर्गों के श्रमिक भी गाँव वापिस जाना नहीं चाहते। भूमि-हीन श्रमिक भी नगरो मे ही स्थायी रूप से रहना पसन्द करते हैं। इस प्रकार परिवर्तित परिस्थितियो को देखते हुये रॉयल श्रम आयोग का यह मत ठीक प्रतीत नही होता कि गाँव से सम्बन्ध अवश्य स्थापित रखना चाहिये। हम अपनी निजी खोज के आधार पर कह सकते है कि अधिकाश

1 Royal Commission on, page 20
2 R Mukerjee Indian Working Class, page 13.

श्रमिक नगर के जीवन के अब अभ्यस्त हो गय हैं और शहरी जीवन के आकर्षण जैसे—सिनेमा बिजली, बच्चों के स्कूल आदि उनके जीवन म काफी प्रवेश कर चुके है। अत उन्हे गाँव क जीवन म बहुत लगाव नही रह गया है। इसलिये अब यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि औद्योगिक केन्द्रो की दशा म उन्नति की जाय और वे सब कारण, जो श्रमिको का गाव जाने क लिय विवश करत ह दूर किय जायें।

श्रम अनुसधान समिति[1] क विचारानुसार श्रमिक एक स्थान पर स्थायी रूप से तभी रह सकत ह जब उनकी रहने और काम करने की दशाओ म सुधार तथा उन्नति की जाय। इस सम्बन्ध म इस समिति ने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस तथा अनेक मिल मालिको का मत दिया ह। सब इस बात स सहमत ह कि स्थायी श्रमिक वग उद्योगो क लिय बहुत लाभप्रद सिद्ध होगा परन्तु श्रमिको की प्रवासिता को रोकने क लिय यह आवश्यक है कि उनके मकानो की अवस्था म मजदूरी म उनके काम करने और रहन की स्थिति म तथा उनके कल्याण क कार्यों म सुधार किया जाय। श्रम समिति क विचार म अधिकतर औद्योगिक श्रमिक भूमिहीन मजदूर होते है और व गाव कभी कभी कुछ आराम मनोरजन तथा सामाजिक उत्सवो व सस्कारो क अवसर पर जाते है। इस बात स यह स्पष्ट हो जाता है कि मजदूर के दृष्टिकोण स तो बार बार गाँव जाने की बहुत आवश्यकता नही है। गाव म व्यवसाय की मजदूरी की तथा मकानो की अवस्था नगरो म अधिक अच्छी नही कही जा सकती। परन्तु इसम कोई सन्देह नहीं कि गाँव और सयुक्त परिवार तथा श्रमजीवियो के लिय एक सामाजिक सुरक्षा योजना का आधार है। इसलिये वतमान अवस्था म जब तक श्रमिको क लिये एक सामाजिक सुरक्षा योजना का प्रबन्ध नही हो जाता जो रोग बेकारी वृद्धावस्था आदि म उनको सुरक्षा प्रदान करें तब तक श्रमिको क लिये गावो को एक आराम और सुरक्षा का स्थान मानना ही पड़ेगा। सूती कपडा मिल मजदूर सघ क इस मत स श्रम समिति सहमत नही है कि औद्योगिक नगरो म नौकरियो का अभाव तथा श्रमजीवियो की सख्या अधिक होने के कारण श्रमिको का गाँव से शहर म आना बन्द कर दिया जाय। अनेक ग्रामनिवासी झूठी सूचना पाकर और अच्छी नौकरी व वतन की झूठी आशा लिये नगरो म आते है और जब वह नगरो म आ जाते है तो उनको निराश होना पडता है और दुख उठाने पड़ते हैं। फिर भी इन समस्याओ का उपचार प्रवासिता का रोकने स नहीं होगा, वरन यह चाहिय कि नवीन व्यवसाय स्थापित किय जायें श्रमिको की दशा म सुधार किय जायें और श्रमिको को उचित नौकरी दिलान म सहायता की जाय।[2]

---

1 Labour Invest gat on Comm ttee Report Page 77 78

२ एक राज्य से दूसरे राज्य म श्रमिको की प्रवासिता एक तथ्य है। भारत सरकार ने अन्तर्राज्य प्रवासि श्रमिको के रोजगार तथा सेवा की शर्तों को नियन्त्रण करने क लिये 1979 म एक अधिनियम पारित किया है (देखिये परिशिष्ट घ)।

भावी नीति (The Future)

जहाँ तक भविष्य की नीति का प्रश्न है हम श्रम समिति के इस मत से सहमत हैं कि गाँव से सम्बन्ध स्थापित रखने की समस्या को दो दृष्टिकोणों से देखना चाहिये। एक दृष्टि से तो गाँवों को श्रमजीवियों के अल्प समय के लिये मनोरंजन का उपयुक्त स्थान माना जा सकता है। द्वितीय दृष्टि से गावों को श्रमजीवियों के लिये एक सुरक्षा का स्थान माना जा सकता है। जहाँ तक पहले दृष्टिकोण का प्रश्न है इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमिकों को गाँव जाने के लिये हर प्रकार की सुविधायें देनी चाहियें जैसे—सस्ते वापसी टिकट तथा छुट्टी आदि। परन्तु श्रम अनुसंधान समिति इस बात से सहमत नहीं है कि भविष्य में श्रमजीवियों की सुरक्षा के दृष्टिकोण से गाँवों से सम्बन्ध स्थापित रहना चाहिये। निःसन्देह उपाय यही है कि औद्योगिक नगरों की दशा में उन्नति की जाय और श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा योजना, मकान, मजदूरी, अच्छा भोजन आदि का उचित प्रबन्ध किया जाय और कारखानों में काम करने के वातावरण में उन्नति की जाय। इस बात से अब सब सहमत हैं कि गाँव में संयुक्त परिवार प्रथा और जाति बन्धनों का ह्रास होता जा रहा है जो अब तक आर्थिक दृष्टि से मजदूरों की सुरक्षा के साधन थे और श्रमिक इस समय ऐसी परिवर्तनशील अवस्था में है जबकि धीरे-धीरे उनका गाँवों से तो सम्बन्ध टूटता जा रहा है, परन्तु अभी तक वे औद्योगिक नगरों के पूर्णतया स्थायी निवासी नहीं बन सके हैं। अत ऐसी स्थिति में श्रमिक को गाँव से आने से रोकना या उसको गाँव वापिस जाने के लिये विवश करना, समस्या का समयानुकूल समाधान न होगा।[1]

राष्ट्रीय श्रम आयोग (१९६९) ने रॉयल (ह्विटले) श्रम आयोग तथा श्रम अनुसन्धान समिति के विचारों का उल्लेख करने के बाद यह मत व्यक्त किया कि "विगत २० वर्षों की अवधि में औद्योगिक श्रमिकों में स्थायी रूप से रहने की प्रवृत्ति और बढ़ी है। आज गाँव से आने वाला श्रमिक रुचि और दृष्टिकोण में अपने पूर्ववर्ती श्रमिकों की अपेक्षा अधिक शहरी बन चुका है। ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में इस धारणा की कि शहरी कारखानों में काम करने के लिए आने वाले ग्रामीण श्रमिक गाँवों से अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखते हैं, यद्यपि ह्विटले आयोग ने पुष्टि की थी और इससे उद्योगों के प्रति श्रमिकों की वचनबद्धता (commitment) में बाधा भी पड़ती थी, किन्तु औद्योगिक श्रमिकों के हित में उठाये गये अनेक ठोस पगों के कारण अब यह धारणा पीछे पड़ गई है। अब तक दूरस्थ चाय बागानों तक में स्थायी रूप से बसने वाले श्रमिक काफी संख्या में पाये जाते हैं।" आयोग ने आगे कहा कि "ज्यों-ज्यों उद्योग का विस्तार होता है और उसमें बड़ी मात्रा में कुशल व अकुशल कामों को सम्मिलित किया जाता है त्यों-त्यों औद्योगिक कार्यों में गाँवों से आने वाले श्रमिकों का एकाधिकार समाप्त होता जाता है। शहरी परिवारों के

---

1 *Labour Investigation Committee Report, page 78*

युवक जो कि परम्परागत रूप मे कारखानो के वातावरण को स्वीकार करने मे कोई रुचि नही रखते थे, अब कारखानो मे रोजगार की तलाश करते पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, जब से मिल मालिको ने श्रमिको को नियमित रूप से आने और उत्पादन बढाने के लिए प्रेरणाएँ एव सुविधायें प्रदान करनी आरम्भ की है तब से गाँवो से आने वाले श्रमिको तक ने भी अपने गावो के दौरो की सख्या एव अवधि मे कमी कर दी है। बम्बई, पूना, दिल्ली और जमशेदपुर मे किये गय अध्ययनो से स्पष्ट हुआ है कि गाँवो से शहरो मे काम करने के लिये आने वाले पुराने श्रमिको मे तो अभी भी गाँवो को वापिस लौटने की लालसा पाई जाती है किन्तु गाँवो से आने वाले नये श्रमिको मे शहरी जीवन व फैक्टरी कार्य के प्रति अधिकाधिक लगाव पाया जाता है। श्रमिको की आयु भी इस सम्बन्ध मे एक निर्धारित तत्त्व है और वह इस प्रकार कि शहरी सुविधाओं व आकर्षणो का प्रभाव युवा श्रमिको पर अधिक देखा जाता है।" निष्कर्ष के रूप मे आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि 'नगरो मे काम करने वाले श्रमिको की काफी बडी सख्या अब कारखानो के कार्य से अपना सम्बन्ध स्थायी रूप से जोड चुकी है। पुराने उद्योगो मे तो श्रमिको की दूसरी तथा तीसरी पीढी तक काम करती हुई देखी जाती है। देश मे श्रमिको के ऐसे वर्ग की सख्या बराबर बढ रही है जिसकी जड़ें ऐसे औद्योगिक वातावरण मे गहराई से पैठ चुकी हैं जिसमे कि श्रमिक जन्म लेता है और जिसमे वह अपनी जीविका भी प्राप्त करता है।'[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग के ये निष्कर्ष कुछ बडे नगरो तथा पुराने उद्योगो के औद्योगिक श्रमिको के अध्ययनो पर आधारित रहे है। जबकि देश के विशाल क्षेत्र मे काफी सख्या मे बडे तथा छोटे उद्योग-धन्धे स्थापित हो चुके हैं और ऐसे उद्योगो के श्रमिको एव ग्रामीण श्रमिको की शहरी क्षेत्रो की ओर को आने की प्रवृत्ति के अध्ययनो मे पता चलता है कि श्रमिको का एक बडा भाग अभी भी हृदय मे ग्रामीण बना हुआ है और अपने गाँव के घरो से अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखना चाहता है। अत यदि पश्चिमी देशो के समान भारत मे भी स्थायी औद्योगिक जनसख्या का निर्माण किया जाना है तो औद्योगिक नगरो मे श्रमिको के लिए रोजगार की श्रेष्ठतर दशायें तथा रहन-सहन की अच्छी सुविधायें उपलब्ध कराने की दशा मे निरन्तर प्रयास जारी रखने होंगे।

---

1 Report of the National Commission on Lab ur, page 31

३ औद्योगिक श्रमिको की भर्ती की समस्यायें

THE PROBLEMS OF RECRUITMENT OF THE INDUSTRIAL WORKERS

महत्व (Importance)

श्रमिकों के रोजगार मे सर्वप्रथम समस्या उनकी भर्ती की है। उद्योगो मे जिन पद्धतियो और सगठनो द्वारा श्रमजीवियो को भर्ती किया जाता है, उन पर व्यवसाय की सफलता अथवा विफलता बहुत कुछ निर्भर करती है। यदि कार्य के अनुकूल श्रमिक काम पर नही लगाया जाता तो उत्पादन और कार्यकुशलता पर उसका बुरा प्रभाव पडता है। विज्ञान, शिल्पकला और उत्पादन की आधुनिक विधियो के विकास के साथ ही, अब तो इस बात की और भी अधिक आवश्यकता है कि उद्योग मे कुशल एवं निपुण श्रमिको की नियुक्ति हो। अत उद्योग मे जिस श्रमिक की भर्ती की जाये, वह ऐसा होना चाहिए जो अपने कार्य के लिये पूर्णत. अनुकूल तथा योग्य हो। यदि उद्योग मे कोई श्रमिक किसी की सिफारिश या दबाव से भर्ती किया जाता है तो व न केवल अकुशल ही सिद्ध होता है अपितु उद्योग के अनुशासन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है और अन्य कुशल श्रमिको मे निराशा तथा असन्तोष उत्पन्न कर देता है। अत आधुनिक उद्योग को भर्ती की वैज्ञानिक रीतियो की आवश्यकता होती है, अर्थात् ऐसी रीति जिसके द्वारा किसी पद के रिक्त होने पर शीघ्रातिशीघ्र सबसे अधिक अनुकूल तथा योग्य व्यक्ति भर्ती कर लिया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति का सर्वोत्तम साधन रोजगार कार्यालय (employment exchange) होता है।

प्रारम्भिक इतिहास (Early History).

भारत मे बडे उद्योगो की स्थापना के प्रारम्भिक काल मे कारखानो और बागान के मालिको को श्रमिक भर्ती करने मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। इसका कारण यह था कि श्रमिक अपना गाव छोडकर कारखानो और बागान के नये तथा विभिन्न वातावरण मे जाने के लिये तैयार नही थे। कारखानो मे काम करने की स्थिति भी वर्तमान समय से अधिक खराब थी। १८९६ की प्लेग तथा १९१८ की इन्फ्लूएन्जा की महामारी के कारण भी श्रमिको का अभाव हो गया था। इनका प्रभाव यह पडा कि मालिको को मजदूर भर्ती करने के लिये

अच्छे बुरे सब प्रकार के तरीकों को अपनाना पड़ा और भर्ती मध्यस्थो (Intermediaries) तथा ठेकेदारो (Contractors) द्वारा होने लगी। यह प्रणाली आज भी प्रचलित है, यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से अब भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा होने लगी है। इसका कारण यह है कि अब श्रमिक काफी संख्या में उद्योग-धन्धों में आने लगे हैं क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि के कारण और कृषि पर जनसंख्या का अधिक दबाव होने के कारण जीविका की खोज में लोगों को गाँव छोड़ना पड़ा है। यातायात के साधनों में उन्नति हो जाने के कारण उन्हें नगरों में आने में कठिनाई भी नहीं होती। यही नहीं, कारखानों में काम की दशाओं में कुछ सुधार होने के कारण भी अब काफी श्रमिक शहरों की ओर आने लगे हैं। फिर भी प्रारम्भ में श्रमिकों के अभाव और उनकी प्रवासिता (Migratory character) के कारण भर्ती की प्रणाली सोच-विचार कर प्रारम्भ नहीं की गई और श्रमिकों के प्रशासन तथा व्यवस्था में कोई सैद्धान्तिक तरीका नहीं अपनाया गया। क्योंकि शहरी क्षेत्रों में श्रमिक स्थायी रूप से नहीं रहते हैं और जैसा पिछले अध्याय में बताया जा चुका है अधिकतर श्रमिक गाँव से ही आते हैं और उनसे अपना सम्बन्ध बनाये रखते हैं इसलिये भर्ती प्रणाली पर भी श्रमिकों की इस प्रवासिता का प्रभाव पड़ा है और श्रमिकों को प्राप्त करने के लिये भर्ती की अनेक दोषपूर्ण पद्धतियाँ काम में लाई गई हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों की प्रवासिता ने भर्ती प्रणाली पर अपना काफी प्रभाव डाला है।

भर्ती प्रणाली में मध्यस्थों का स्थान (The Role of Intermediaries) :

संगठित व असंगठित दोनों प्रकार के उद्योगों में श्रमिकों से गाँवों में सम्पर्क बनाना तथा उनको गाँव से नगरों में लाने का काम अधिकतर मध्यस्थों पर निर्भर रह गया है। प्रायः श्रमिकों को अच्छा वेतन, सुविधाजनक व्यवसाय आदि का प्रलोभन देकर नगरों की ओर आकर्षित किया जाता है। मध्यस्थों को भी श्रमिक लाने के लिए अच्छा कमीशन मिलता रहा है।

मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती बहुत समय से अनेक भारतीय उद्योगों का मुख्य लक्षण रहा है, यद्यपि पिछले वर्षों में इस प्रणाली में कुछ परिवर्तन हुआ है। मध्यस्थों अथवा काम दिलाने वालों को भारत के विभिन्न उद्योग-धन्धों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे—सरदार मिस्त्री, मुकद्दम, टिन्डेल, चौधरी, कगनी आदि। मध्यस्थ एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है जो अनेक कार्य करता है। बड़े-बड़े उद्योगों में मध्यस्थ, प्रधान मध्यस्थ और नारी मध्यस्थ भी, जिन्हें नायकिन या मुकद्दमिन कहते हैं, पाये जाते हैं। मध्यस्थ या सरदारों को श्रमजीवियों में से ही चुना जाता है। ठेकेदारों की तरह ये कोई बाहर के व्यक्ति नहीं होते। जो श्रमिक अनुभवी हो जाते हैं और मालिकों की कृपा दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं उनको इस पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। इन सरदारों पर अनेक कामों का भार सौंप दिया जाता है। श्रमिकों की नियुक्ति, प्रशिक्षा, पदोन्नति, बरखास्तगी, दण्ड, छुट्टी,

उनके निवास और आवश्यकता के समय उन्हे रुपए उधार देना आदि सभी प्रकार का कार्य मध्यस्थ करते हैं। कारखानो मे मशीनों की देखभाल में वे मिस्त्रियों की सहायता भी करते है। श्रमिक उन्हे अपने अधिकारी या संरक्षक भी समझते हैं, जिनके बिना उनका निर्वाह कठिन हो जाता है। मालिक भी मजदूरों की इच्छाओं तथा मागों आदि के बारे मे मध्यस्थो से ही जानकारी प्राप्त करते है और यदि उनको मजदूरो के पास कोई सन्देश भेजना हो तो यह काय भी मध्यस्थो द्वारा ही सम्पन्न होना है। उन उद्योगों मे जो विदेशी मालिकों के हाथो मे थे, जिन्हे भारतीय भाषा नही आती थी मध्यस्थ और भी अधिक शक्तिशाली बन गये थे।

मध्यस्थो के दोष (Evils of Intermediaries)

मध्यस्थो द्वारा श्रमिको की भर्ती की प्रणाली सदैव से ही अत्यन्त दोषपूर्ण सिद्ध हुई है। रॉयल श्रम आयोग के शब्दो मे 'मध्यस्थ का पद अत्यन्त प्रलोभनीय है और यदि ये लोग इन अवसरो से लाभ न उठायें तो यह आश्चर्यजनक होगा। ऐसे थोडे से ही कारखाने है जिनमे श्रमिको की सुरक्षा कुछ सीमा तक मध्यस्थो के हाथ मे न हो। अनेक कारखानो मे तो मध्यस्थो को श्रमिको की नियुक्ति तथा बरखास्तगी का अधिकार भी है। इस बात मे कोई सन्देह नही कि मध्यस्थ अपने अधिकारों से साधारणतया लाभ उठाते रहते है। यह दोष कुछ उद्योगो मे कम और कुछ उद्योगो में अधिक मात्रा मे पाये जाते है। यह प्रथा तो बहुत प्रचलित है कि किसी को नया रोजगार देने या फिर से रोजगार पर लगाने के बदले मे कुछ कीमत वसूल की जाय। बहुधा यह देखा गया है कि श्रमिको को अपने मासिक वेतन का एक अंश भी नियमित रूप से देना पडता है। श्रमिको को समय समय पर नशीले पेय पदार्थ या दूसरे उपहारो द्वारा भी मध्यस्थो को प्रसन्न करते रहना पडता है। कभी-कभी स्वय मध्यस्थ को भी प्रधान मध्यस्थ की जेब भरनी पडती है और ऐसा सुनने मे आया है कि अन्य निरीक्षकगण (Supervisory staff) भी कभी-कभी इसमे से कुछ भाग पाते है।" इसके अतिरिक्त अनेक अवसरों पर इन मध्यस्थों द्वारा श्रमिको का गलत ढग से प्रतिनिधित्व होने के कारण बहुधा मालिको और श्रमिको के बीच झगडे उत्पन्न होते रहते है और फिर यह भी आवश्यक नही है कि वे कुशल श्रमिक को ही भर्ती करें। ये तो उसी को भर्ती करते हैं जो उन्हे अधिक कमीशन देता हो या जिसमे वह दूसरे कारणो से दिलचस्पी रखते हों। इस प्रकार धन प्राप्त करने की लालसा के कारण अनेक श्रमिक मध्यस्थों द्वारा अन्यायपूर्वक बरखास्त कर दिये जाते है और इससे श्रमिकावर्त्त (Labour turnover) अधिक हो जाता है। मध्यस्थ सदैव स्थानो को रिक्त करने के प्रयत्न मे रहते है जिससे नई भर्ती करके अपनी जेबे भर सकें। वे श्रमिको को उनके वेतन की जमानत पर ऊँची ब्याज दर पर ऋण भी देते है। अनेक मध्यस्थ बेईमानी करके ऋण के हिसाब मे ऐसी गडबडी कर देते हैं जिससे मजदूरो को हानि होती है। महिला श्रमिको का महिला मध्यस्थो द्वारा और भी अधिक शोषण होता है। क्योंकि महिला मध्यस्थ

अधिकतर अच्छे चरित्र की नहीं होती हैं। अच्छे चरित्र की स्त्रियां इस पद को इसलिए स्वीकार नहीं करती क्योंकि यह पद सम्मानित नहीं समझा जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जबकि इन नायकिनों के कारण महिला श्रमिका को अनैतिक जीवन व्यतीत करना पड़ा है।

वर्तमान स्थिति और भविष्य

(Present position and the future)

मध्यस्थों द्वारा भर्ती की प्रथा को सब लोग अत्यन्त असन्तोषजनक तथा अवांछनीय समझते हैं और सभी जगह मध्यस्थों की शक्ति तथा अधिकारों को कम करने के प्रयत्न किये गये हैं। परन्तु इस प्रथा को पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सका है और यहां तक कि श्रम अनुसंधान समिति का भी यही मत था कि भारतीय श्रमिक अपनी विकास और गतिशीलता की उस सीमा पर अभी तक नहीं पहुँच सका है कि भर्ती के लिये मध्यस्था को आसानी से अलग किया जा सके। भर्ती के अन्य साधनों के न होने के कारण मध्यस्थ एक अनिवार्य सा साधन प्रतीत होता है। इस प्रणाली के कुछ लाभ भी हैं। मध्यस्थ उन गांवों और जिलों से निकटता का सम्पर्क रखता है जहां से श्रमिक भर्ती किये जाते हैं। अतः वह श्रमिकों की आदतों, आशाओं और आशंकाओं को भली-भांति समझता है और अपने व्यवहार में उनका ध्यान रखता है, जबकि अन्य सीधी भर्ती करने वाली संस्थाओं का इन श्रमिकों से कोई भी निकट सम्पर्क नहीं होता। यही कारण है कि मध्यस्थों की स्थिति इन संस्थाओं की अपेक्षा अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। यह बात उल्लेखनीय है कि युद्ध के समय में फौज तथा लड़ाई की अन्य योजनाओं में भर्ती के लिये सरकार को भी मध्यस्थों की सहायता लेनी पड़ी थी और उनको कुछ कमीशन भी देना पड़ा था। फिर भी मध्यस्थों की अनिवार्यता को स्वीकार करने का तात्पर्य यह नहीं होना चाहिए कि इस प्रणाली को नियमित बनाने की ओर कोई भी प्रयत्न न किया जाय या भर्ती का कोई सैद्धान्तिक तरीका न अपनाया जाये। इस प्रणाली को सुधारने के लिए विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किये जा चुके हैं और कुछ ठोस कदम भी उठाये जा चुके हैं। इस समय सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न केन्द्रों में रोजगार दफ्तर भर्ती की प्रणाली के दोष दूर करने में सहायक सिद्ध हुए हैं तथा स्थायीकरण (Decasualisation) की योजनायें भी कई केन्द्रों में लागू हैं। इस प्रकार विभिन्न केन्द्रों और उद्योगों में भर्ती की प्रणाली इस समय एकसमान नहीं है।

विभिन्न उद्योगों में भर्ती की प्रणाली :

(Recruitment in Varions Industries)

फैक्ट्री उद्योगों में कहीं कुछ श्रमिकों की और कहीं सभी श्रमिकों की भर्ती साधारणतया सीधी प्रणाली द्वारा होती है। बम्बई, तमिलनाडु, पंजाब, बिहार व उड़ीसा के राज्यों में सीधी भर्ती प्रणाली (Direct recruitment) अधिक प्रचलित है। इसका तरीका यह है कि फैक्ट्री के फाटक पर एक नोटिस लगा दिया जाता है

कि अमुक संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता है। इसके पश्चात् जनरल मैनेजर स्वयं या कोई अन्य अधिकारी या श्रम अधीक्षक (Superintendent) फाटक पर आकर आवश्यक श्रमिकों का चुनाव कर लेता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि रिक्त स्थानों की सूचना काम पर लगे श्रमिकों को दे दी जाती है जो उसका विज्ञापन अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों में कर देते हैं। इस प्रकार नियत दिन पर बहुत बड़ी संख्या में प्रार्थी फैक्ट्री के फाटक पर एकत्रित हो जाते हैं। किसी किसी स्थान पर तो प्रातः काल ही काम के इच्छुक लोग लम्बी पंक्तियों में खड़े दिखाई देते हैं। लेकिन यह प्रणालियाँ साधारणतया अनिपुण (Unskilled) या बदली के श्रमिकों को प्राप्त करने में ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। निपुण (Skilled) या अर्द्धनिपुण (Semi-skilled) श्रमिकों की भर्ती अधिक कठिन है। इनकी भर्ती दो प्रकार से की जा सकती है—प्रथम तो, कुशल श्रमिकों की पदोन्नति करके, दूसरे प्रार्थना पत्र मंगाकर आवश्यक परीक्षाओं के बाद योग्य श्रमिकों का सीधा चुनाव करके। बीड़ी, लाख तथा जूट को चटाइयों की भाँति कुछ अनियमित उद्योगों में भी भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा ही होती है। फिर भी, मध्यस्थों को पूर्ण रूप से हटाया नहीं जा सका है।

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोषों को दूर करने के लिये रॉयल श्रम आयोग ने सिफारिश की थी कि जनरल मैनेजर के अधीन ऊँचे वेतन देकर श्रम अधिकारी (Labour Officers) रखे जायें। ये अफसर ईमानदार, प्रभावशाली व्यक्तित्व और दूसरे व्यक्तियों को ठीक से समझ सकने की योग्यता रखने वाले होने चाहिएँ। अधिकतर उद्योगों में अब ऐसे अफसर नियुक्त किये जा चुके हैं और बहुधा श्रमिकों की भर्ती उन्हीं के द्वारा की जाती है। वे श्रमिकों की शिकायतों आदि की जाँच-पड़ताल करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त वे मालिकों और श्रमिकों के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराते हैं। कभी-कभी ये अफसर आस-पास के गाँवों में श्रमिकों की भर्ती के लिये जाते हैं। ऐसे अफसर विभिन्न केन्द्रों की अनेक मिलों में पाये जाते हैं। परन्तु व्यवहारिक रूप में यह देखा गया है कि इन अफसरों पर श्रमिकों को इतना भरोसा नहीं होता जितना भरोसा वे मध्यस्थों पर करते हैं। अतः इन श्रम अधिकारियों की आड़ में मध्यस्थ प्रणाली अब भी प्रचलित है। मिल मालिक इन श्रम अधिकारियों से अन्य अनेक कार्य भी कराते हैं।

अहमदाबाद में, भर्ती साधारणतया मध्यस्थों और विभागीय मध्यस्थों द्वारा की जाती है। मद्रास की बकिंघम और कर्नाटक मिल में श्रमिक एक 'विशेष भर्ती अधिकारी' द्वारा भर्ती किये जाते हैं। कुशल नौकरियों के लिये परीक्षायें भी ली जाती हैं। मद्रास की मिलों में मिल मालिकों और श्रमिक संघों के बीच में यह समझौता है कि रिक्त स्थानों की सूचना संघों को दी जायगी, जो कि श्रमिकों के बेरोजगार सम्बन्धियों और कारखाने के पूर्व स्थायी (Temporary) श्रमिकों की सूची रखते हैं। संघ रिक्त स्थानों के लिये कुछ श्रमिकों के नामों की सिफारिश

करता है। श्रमिकों का चुनाव अधिकार प्रबन्धकर्ताओं द्वारा ही उसी सूची से किया जाता है। इस प्रकार के दोनों पक्ष के लोग सन्तुष्ट रहते हैं। हैदराबाद में भी ऐसी ही व्यवस्था है। कानपुर में अनेक मिलों में श्रम अधिकारियों के अतिरिक्त सन १९३८ से उत्तरी भारत मालिक संघ द्वारा स्थापित किया हुआ श्रम-ब्यूरो (Labour Bureau) भी चल रहा है जिसके द्वारा उसके अधिकांश सदस्य अपने श्रमिकों की भर्ती करते हैं। कानपुर में अब एक स्थायीकरण (Decasualisation) योजना चल रही है जिसके अन्तर्गत रोजगार के दफ्तर श्रमिकों की एक संचित सूची रखते हैं। योजना में सहयोग देने वाले उद्योग-धन्धों में श्रमिकों की भर्ती रोजगार के दफ्तरों द्वारा इसी संचित सूची से की जाती है। इसके पूर्व एक बदली नियन्त्रण योजना' थी जिसके अन्तर्गत नित्य के आकस्मिक रिक्त स्थानों की पूर्ति, छटनी किये हुये श्रमिकों द्वारा होती थी। टाटा की लोहा इस्पात कम्पनी ने तथा बिहार की कुछ बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों ने भर्ती के लिये अपने स्वयं के ब्यूरो खोल रखे हैं। जमशेदपुर की टिन प्लेट कम्पनी तथा अहमदाबाद, बम्बई, शोलापुर और कोयम्बटूर की सूती कपड़ा मिलों में भी स्थायीकरण योजनायें चल रही हैं। बंगाल की जूट की मिलों में श्रम अधिकारियों की नियुक्ति करके, उनको श्रम ब्यूरो का अधिकारी बना दिया गया है। इनके द्वारा श्रमिकों की भर्ती की जाती है। भर्ती के कार्य के लिये एक बदली रजिस्टर रखा जाता है। यदि रिक्त स्थानों के लिए श्रमिकों की फिर भी कमी रहती है तब फैक्ट्री के फाटक पर ही सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती कर ली जाती है। यद्यपि यह प्रणाली मध्यस्थों को हटाने के लिये चालू की गई थी, परन्तु इन मध्यस्थों का प्रभाव अब भी काफी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकतर फैक्ट्रियों में अभी भी भर्ती सीधी प्रणाली और मध्यस्थों द्वारा होती है, यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से अब हम भर्ती के तरीकों में काफी उन्नति पाते हैं। कई स्थानों पर स्थायीकरण की योजनायें लागू हो चुकी हैं। रोजगार के दफ्तरों द्वारा भी अब भर्ती काफी मात्रा में होने लगी है।

चीनी के कारखानों में जहां कार्य मासमिक (Seasonal) होता है, कुछ निरीक्षकों और तकनीकी विशेषज्ञों (Technicians) को छोड़कर सभी मजदूर मौसम या समय समाप्त होने पर निकाल दिये जाते हैं, तथा मौसम फिर आरम्भ होने पर उनको मुक्त किया जाता है। यदि वे निश्चित समय पर उपस्थित हो जाते हैं तो उनकी नियुक्ति फिर से हो जाती है। मासमिक या मौसमी श्रमिकों के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की सरकार विशेष आज्ञायें जारी करती है।

रेलवे के विभिन्न विभागों में भर्ती की प्रणालियां भिन्न-भिन्न हैं। रेलवे विभाग में उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति या तो प्रत्यक्ष रूप से सीधी प्रणाली द्वारा हो जाती है, या दूसरे और तीसरे दर्जे की नौकरियों से पदोन्नति के द्वारा। तीसरे दर्जे के पदों पर भर्ती रेलवे सेवा आयोग द्वारा होती है जो कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद और मद्रास में हैं। साधारणतया अकुशल और निम्न श्रेणी के श्रमिकों

की भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा को जाती है। रेलवे मे ठेकेदार के श्रमिक भी काफी सख्या मे पाय जात है। रेलवे व अराजपत्रित सेवाओं मे परिगणित जाति तथा परिगणित जनजाति के उम्मीदवारो को कुछ प्रमुखता दी जाती है। सन १९५९ से चौथी श्रेणी के कर्मचारियो की पदोन्नति तथा सेवा की दशाओं मे सुधार हुआ है।

खानो मे प्रारम्भ मे अधिकतर श्रमिक ठेकेदारो द्वारा ही भर्ती किये जाते थे। अन्य देशो के विपरीत भारतवर्ष मे अभी हाल तक भी खान के श्रमिको का कोई पृथक वर्ग नही था। अधिकतर श्रमिको की भर्ती कृषक वर्ग से ही की जाती थी। ऐसे श्रमिक समय आने पर कृषि सम्बन्धी कार्यों हेतु अपने गाँवो को लौट जाते थे। कोयले की खानो मे जमीदारी प्रथा भर्ती की सबसे पुरानी प्रथा थी। इसके अन्तर्गत श्रमिको को यह प्रलोभन दिया जाता था कि उनको बिना कीमत के या नाममात्र लगान पर ही खेत दिये जायेंगे। श्रमिको का इन भूमियो पर अधिकार रहने की यह शर्त थी कि वे खानों में काम करते रहे। परन्तु बहुत जल्दी ही कोयले की खानो के पास कृषि योग्य भूमि का अभाव अनुभव होने लगा और ऐसे श्रमिक अधिक कार्यकुशल भी नही सिद्ध हुये। इस प्रकार से यह प्रथा सफल न हो सकी। रॉयल श्रम आयोग ने भी यह कह कर इस प्रथा का खण्डन किया है कि इस प्रकार की संविदा (Contract) अवाञ्छनीय है। यद्यपि हाल मे ही कुछ खानो ने अपने प्रतिनिधि बाहर भेजकर सीधी भर्ती की प्रणाली अपना ली है परन्तु फिर भी ठेकेदारो द्वारा श्रमिको की भर्ती करने की प्रणाली काफी प्रचलित है। भर्ती के लिये कई प्रकार के ठेकेदार होते हैं। बहुत सी खानें केवल भर्ती करने वाले ठेकेदार (Recruiting Contractors) रखती है जो श्रमिको की पूर्ति करते है। इस प्रकार से भर्ती किये गये श्रमिको को प्रबन्धकगण नौकर रखकर वेतन देते है। कुछ खानें प्रबन्धक ठेकेदार (Managing Contractors) रखती है जो केवल श्रम की पूर्ति ही नही करते, वरन् खान की समृद्धि तथा उन्नति के लिये भी उत्तरदायी होते हैं और इस प्रकार के प्रबन्धकगण के अन्तर्गत हो आ जाते है। सवकाय ठेकेदारो (Raising Contractors) द्वारा भर्ती की प्रथा सबसे अधिक प्रचलित है। ये ठेकेदार न केवल श्रमिको की भर्ती करते हैं और उनके खर्चों को सहन करते है वरन इसके साथ ही कोयले को काटने तथा लादने के लिये भी उत्तरदायी होते है। इनके लिये इन्हे प्रति टन की दर से कुछ पैसा मिलता है। युद्ध के दिनो मे कोयले की तीव्र आवश्यकताओ तथा श्रमिको की कमी के कारण स्वयं सरकार ने अकुशल श्रमिको की पूर्ति के लिये ठेकेदारो से काम लिया था।

कोयला खानो मे ठेके के श्रमिको की प्रथा की समाप्ति के प्रश्न पर समय समय पर अनेक समितियो एवं सम्मेलनो द्वारा विचार किया जाता रहा है और सरकार का ध्यान भी इस ओर बराबर आकर्षित रहा है। सन १९४८ की कोयला खान औद्योगिक समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप केवल दो को छोडकर अन्य रेलवे कोयला खानो मे ठेके की प्रथा को समाप्त कर दिया गया था।

सन् १९६१ में, एक जांच समिति (Court of Enquiry) की सिफारिश पर यह समझौता हुआ था कि कुछ विशिष्ट श्रेणियों को छोड़कर अन्य सभी कोयला खानों में ठेके के श्रमिकों की प्रथा को समाप्त कर दिया जाय। परिणाम-स्वरूप, बिहार की कुछ कोयला खानों को छोड़कर अन्य खानों में यह प्रथा समाप्त कर दी गई है। १९७० के ठेका श्रमिक (नियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम को पास करके १० फरवरी १९७१ से लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम द्वारा कई बातों का प्रावधान किया गया है, जैसे कि मुख्य मालिकों (principal employers) का पंजीकरण, ठेकेदारों द्वारा लायसेंस लेना, सभी खानों में ठेके की प्रथा की समाप्ति जिन्हें कि सम्बन्धित सरकारें निश्चित करें और जहाँ इस प्रथा का उन्मूलन सम्भव न हो वहाँ ठेके के श्रमिकों की सेवा की दशाओं का नियमन अधिनियम के प्रशासन के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिये त्रिदलीय सलाहकार बोर्डों की स्थापना का भी प्रावधान है। कोयला खानों के लिये अब पृथक् रोजगार दफ्तर भी खोल दिये गये हैं। श्रमिक भर्ती के लिये इन रोजगार दफ्तरों में अपने को पंजीकृत करा सकते हैं। गोरखपुर श्रम संगठन को भी अब केन्द्रीय रोजगार दफ्तर (श्रम) में परिवर्तित कर दिया गया है।

अन्य खानों में भर्ती करने के तरीके कुछ भिन्न हैं। कच्चे लोहे की खानों में बहुधा सीधी प्रणाली द्वारा ही श्रमिक भर्ती किये जाते हैं। कभी-कभी काम पर लगे हुए श्रमिकों की सहायता से निकट के गाँवों से भी श्रमिकों की भर्ती होती है। मूल्यवान पत्थरों की खानों में ठेके के काम के लिये श्रमिकों की भर्ती 'सरदार' या उप-ठेकेदारों द्वारा की जाती है। अभ्रक की खानों में 'सरदार' निकट के गाँवों में भेजे जाते हैं, जिससे वे इच्छुक श्रमिकों को पेशगी पैसा देकर भर्ती कर सकें। भर्ती करने वाले सरदारों को कोई कमीशन नहीं मिलता। उनकी मजदूरी भर्ती किये गए श्रमिकों की संख्या पर निर्भर करती है। जो खानें जमींदारों के अधिकार में हैं उनके लिये श्रमिक काश्तकारों में से ही प्राप्त कर लिये जाते हैं। १९५८ में की गई एक तदर्थ जाँच से यह पता लगा था कि अभ्रक की खानों में लगभग ८२.२ प्रतिशत श्रमिक सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये गये थे और शेष १७.८% श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों द्वारा की गई थी। मैंगनीज की खानों में ८२ प्रतिशत श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों द्वारा होती है और शेष सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये जाते हैं। लगभग ५० प्रतिशत श्रमिक आदिवासी वर्ग के होते हैं। महाराष्ट्र राज्य में, शिवराजपुर की खानों में भर्ती 'टिन्डेलों' द्वारा की जाती है। सन्दूर क्षेत्र में लगभग ५०% श्रमिकों का बाहर से आगमन होता है और उनको खानों के निकट बसाया जाता है। बाकी श्रमिक पाँच या दस मील की दूरी के गाँवों से प्रतिदिन आते हैं। सोने की खानों में श्रमिक "समय-कार्यालय" (Time Office) के द्वारा भर्ती होते हैं। प्राप्त सूचना के अनुसार अब अधिकांश खानों में श्रमिकों की पूर्ति पर्याप्त है और श्रमिक स्थानीय क्षेत्रों में ही भर्ती कर लिये जाते हैं।

बागान के श्रमिक जो लगभग १२.५ लाख की संख्या में है अपनी एक विशेषता रखते हैं। बागान इनसे दूर तथा एसे स्थानों पर पाये जाते हैं जहां की जलवायु अत्यन्त नम है तथा वातावरण स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। श्रमिक वहां जाना पसन्द नहीं करते इसलिये आरम्भ में वहां भर्ती की समस्या एक विकट समस्या थी और इसके कारण बहुत सी आपत्तिजनक प्रथायें अपनानी पड़ी। अनेक मध्यस्थ नौकर रखे गये जो श्रमिकों को ऊँचे दर की मजदूरी तथा अन्य सुविधाओं का लोभ दिखाकर बागान के क्षेत्रों में ले आते थे। परन्तु एक बार वहां पहुँच जाने पर श्रमिक को वापिस लौटने या अपने परिवार के लोगों से सम्बन्ध रखने की आज्ञा नहीं थी। श्रमिकों को नशा कराकर या बहका लाने या बालकों का अपहरण जैसे आपत्तिजनक तरीकों द्वारा भी श्रमिक प्राप्त किये जाते थे। श्रमिकों की भर्ती बागान में अत्यन्त महँगी रही है।

बागान में श्रमिकों की भर्ती से सम्बन्धित बुराइयों के कारण समय-समय पर बहुत से कानून बनाये गये जिनमें १९३२ का चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक अधिनियम' (Tea Districts Emigrant Labour Act) सबसे बाद का कानून था। यह केवल श्रमिकों की भर्ती से ही सम्बन्धित था और बागान के श्रमिकों की सुरक्षा के लिये सन १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम (Plantation Labour Act, के पास होने से पूर्व तक अन्य कोई साधन उपलब्ध नहीं था। परन्तु १९३२ का अधिनियम केवल प्रवेश करने वाले लोगों को आगे भेजने अथवा भर्ती करने पर ही नियन्त्रण रखता था और वह भी केवल असम के चाय के बागान पर ही लागू था। यह अधिनियम इस बात को भी सुनिश्चित करता था कि प्रवासियों पर कोई अनुचित रोक न लगाई जाय। मालिकों पर भी यह रोक लगा दी गई कि वे प्रमाणित बागान के सरदारों या लाइसेंस प्राप्त भर्ती करने वालों के अतिरिक्त किसी और साधन से भर्ती न करें। १६ साल से कम उम्र वाले किशोर उस समय तक नहीं भेजे जा सकते जब तक कि वे अपने माता पिता अथवा संरक्षकों के साथ न हों, तथा स्त्रियाँ अपने पति की अनुमति के बिना भर्ती नहीं की जा सकती। असम में प्रवेश करने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर, या कुछ विशेष परिस्थितियों में, जैसा बुरा स्वास्थ्य होने पर इससे पूर्व भी प्रत्येक प्रवासी तथा उसके परिवार को स्वदेश लौटने का अधिकार था जिसका व्यय भी मालिकों को सहन करना पड़ता था। वापिस भेजने का ब्यौरा प्रवासी श्रमिक नियन्त्रक को देना होता था।

अगस्त १९६० में, बागान औद्योगिक समिति ने असम के चाय-क्षेत्रों में श्रमिकों की भर्ती की नीति का अवलोकन कर यह निश्चित किया कि केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना राज्य के क्षेत्र से बाहर कोई नई भर्ती न की जाय, तथा असम राज्य में ही, ऐसे क्षेत्रों में से जहां श्रमिक अधिक हों श्रमिकों को एसे क्षेत्रों में भेजने के लिए जहां श्रमिक कम हों, एक विशेष रोजगार दफ्तर की स्थापना

की जाय। चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम, में संशोधन करने पर विचार किया गया ताकि इस अधिनियम के अपवंचन को रोका जा सके और मालिकों को अवैध रूप से श्रमिक भर्ती करने पर दण्ड दिया जा सके। इस प्रश्न पर चाय बागान औद्योगिक समिति ने अक्तूबर १९६४ में विचार किया था। यह अनुभव किया गया कि चाय बागानों को चूंकि भर्ती की खुली छूट थी और भर्ती की दशाओं में सुधार हुआ था अतः अब इस अधिनियम की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसीलिए यह निश्चय किया गया था कि इस अधिनियम को निरस्त कर दिया जाए। चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक (निरस्त) अधिनियम [Tea Districts Emigrant Labour (Repal) Act] सन् १९७० में पास किया गया। इसके फलस्वरूप, अब सन् १९३२ का अधिनियम रद्द हो गया है।

परावासी श्रमिकों के अतिरिक्त असम के बागान में फालतू या बस्ती' श्रमिक भी होते हैं, जो कि निकट के गावों से आते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ ऐसे श्रमिक भी होते हैं जिन्होंने किसी समय बाहर से असम में प्रवेश किया था और अब बागान में आकर बस गये हैं। ऐसे श्रमिक आवासित (Settled) श्रमिक कहलाते हैं।

पश्चिमी बंगाल में चाय के बागान में साधारणतया श्रमिकों की कमी रहती है। इसलिये भर्ती पर कोई नियन्त्रण नहीं है। चाय उद्योगों की विभिन्न परिषदें, जैसे भारतीय चाय परिषद्" 'भारतीय चाय बागान नियोजक परिषद्" तथा 'चाय बागान श्रमिक परिषद्" अपने बागान के लिए श्रमिकों की भर्ती स्वयं करते हैं। दार्जिलिंग में भर्ती की कोई समस्या नहीं है, क्योंकि वहाँ स्थानीय श्रमिक ही पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं। बिहार के चाय बागान में भर्ती साधारणतया बागान के सरदारों द्वारा होती है। वे श्रमिकों को आगे भेजने वाले अभिकर्त्ताओं के समक्ष उपस्थित करते हैं और ये अभिकर्त्ता उनको बागान में भेज देते हैं। कुछ श्रमिक भेजने वाले अभिकर्त्ताओं के सम्मुख सीधे ही आ जाते हैं। यात्रा का समस्त व्यय बागान-नियोजक ही देते हैं। पंजाब व त्रिपुरा के बागान उद्योगों में मालिक स्वयं सीधी प्रणाली द्वारा श्रमिक भर्ती कर लेते हैं अथवा भर्ती मध्यस्थों द्वारा कराते हैं, जिनको पंजाब में "चौधरी" कहते हैं। केरल राज्य के बागान में ऐसे श्रमिक जिनको थोड़े समय के लिये ही काम पर लगाया जाता है, बागान की श्रमिक-टोलियों द्वारा भर्ती कर लिये जाते हैं और इसमें प्रमुखता स्थायी श्रमिकों के आश्रितों को दी जाती है।

दक्षिणी भारत के बागान में, भर्ती "कगनियों" के द्वारा होती थी। साधारणतया यह कगनी बागान के श्रमिकों में से ही होते थे। इन कगनियों के कमीशन की मात्रा श्रमिकों की मजदूरी के आधार पर निश्चित की जाती थी। इसलिये भर्ती के पश्चात् भी ये श्रमिकों से अपना सम्पर्क बनाए रहते थे। कगनियों द्वारा भर्ती करने की इस प्रणाली के बहुत से दुष्परिणाम प्रकट हुए। परिणामस्वरूप, भारत

सरकार से पहले तो प्रत्येक कगनी के अन्तर्गत श्रमिको की सख्या ४० तक सीमित कर दी और वाद मे इस पथा को शनै शनै समाप्त करने के लिय पग उठाये गये। जनवरी १९६० से इस कगनी प्रणाली को समाप्त कर दिया गया। कॉफी के कुछ और रबर के अधिकांश बागानों में श्रमिको की भर्ती के लिये पेशेवर व्यक्ति नियुक्त किये जाते है जो दक्षिण भारत के संयुक्त बागान परिषद् के श्रम विभाग द्वारा पंजीकृत होते है। यह सस्था इन लोगो को भर्ती के काम मे सहायता भी देती है।

बागान मे भर्ती की पद्धति मे उल्लेखनीय बात यह है कि भर्ती परिवार के आधार पर होती है, यद्यपि यह प्रथा खानो और दूसरे उद्योगो मे भी कुछ सीमा तक प्रचलित है।

बन्दरगाहो मे, बहुत समय तक सामान उतारने और चढाने वाले सभी श्रमिको की भर्ती छोटे-छोटे ठेकेदारो के द्वारा की जाती थी जो "तोलीवाला' कहलाते थे। परन्तु अप्रैल १९४८ से इस प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया। अब बम्बई कलकत्ता, कोचीन, कांधला, मद्रास, मारमोआगोवा तथा विशाखापट्टनम के बन्दरगाहो पर सामान चढाने व उतारने वाले श्रमिको की भर्ती १९४८ के 'बन्दरगाह श्रमिक रोजगार नियन्त्रण अधिनियम" (Dock Workers' Regulation of Employment Act) के द्वारा जिसको कि १९६२ तथा १९७० मे सशोधित किया जा चुका है, नियमित कर दी गई है। यह अधिनियम बन्दरगाह के श्रमिको की उन कठिनाइयों को, जो उनके आकस्मिक (Casual) रोजगार के कारण उत्पन्न होती हैं, दूर करने का प्रयत्न करता है। यह अधिनियम श्रमिकों के रोजगार को अधिक नियन्त्रित बनाने के लिये श्रमिको को पंजीकृत होने मे सुविधा प्रदान करता है। उसी के साथ-साथ यह अधिनियम सारे श्रमिको के रोजगार को तथा उनकी रोजगार की अवस्थाओ को जैसे कार्य के घण्टे, छुट्टियाँ और वेतन आदि, नियमित करता है। उसी के साथ साथ उनके स्वास्थ्य सुरक्षा और कल्याण के कार्य का भी प्रबन्ध करता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अनेक योजनाएँ बनाई गई हैं और उन्हें लागू किया गया है ताकि सामान चढाने व उतारने वाले श्रमिको की नौकरी नियमित रूप से मिलती रहे और जहाज पर से सामान उतारने व चढाने के कार्य के लिये पर्याप्त मात्रा मे श्रमिक मिलते रहे। इन योजनाओ को, जिनमे कि समय-समय पर सशोधन किया जाता रहा है, लागू करने के लिये बम्बई (अप्रैल १९५१), कलकत्ता (सितम्बर १९५२) व मद्रास (जुलाई १९५३), कोचीन (जुलाई १९५९) तथा विशाखापट्टनम् (नवम्बर १९५९), मारमुगाओ (१९६५) और कांधला (अक्तूबर १९६८) मे कुछ ऐसे बोर्डों की स्थापना कर दी गई है जिनमे सरकार, मालिक तथा श्रमिक तीनों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं और गोदी श्रमिक परिषदें (Dock Labour Boards) इनके प्रशासन की देखभाल करती हैं। कलकत्ता, बम्बई व मद्रास मे इस योजना के दैनिक प्रबन्ध का उत्तरदायित्व "स्टेवडोर्स परिषद" Stevedores Associations) नाम की संस्थाओं पर है। इस योजना के अन्तर्गत गोदी श्रमिको का एक मासिक

रजिस्टर तथा एक सुरक्षित पूल रजिस्टर भी बनाया गया है। मालिकों के लिये भी एक रजिस्टर है। इस योजना में उन नियमों का भी स्पष्टीकरण कर दिया गया है, जिनके आधार पर किसी श्रमिक या मालिक का नाम रजिस्टर पर लिखा जा सकता है। इस योजना के अनुसार पंजीकृत श्रमिकों को पंजीकृत मालिकों के बीच बाँट दिया जाता है। जिन श्रमिकों को जिस मालिक के साथ काम करना होता है, वे उसके अतिरिक्त किसी अन्य मालिक के साथ काम नहीं कर सकते और न ही वह मालिक किन्हीं अन्य पंजीकृत (Registered) श्रमिकों को अपने यहाँ कार्य पर लगा सकता है। सुरक्षित पूल रजिस्टर में जिन श्रमिकों का नाम होता है उनको इस योजना के अनुसार एक माह में कम से कम २१ दिनों की मजदूरी व महगाई भत्ता मिलने का आश्वासन रहता है। जिन दिनों वे काम के लिए तैयार हों और उन्हें काम न मिले उन दिनों के लिए भी इस योजना के अन्तर्गत श्रमिकों को रु० १ ५० प्रतिदिन की दर से 'हाजरी की मजदूरी' या आधी मजदूरी के बराबर 'निराश होने की मजदूरी' मिल जाती है। इस कानून में एक सलाहकार समिति की स्थापना की भी व्यवस्था है जो कि कानून को लागू करने के बारे में सरकार को परामर्श देगी। अनुशासनहीनता तथा दुर्व्यवहार के कारण श्रमिकों को बर्खास्त किया जा सकता है। इस अधिनियम को १९६२ में संशोधित किया गया है। इसके अनुसार मालिकों से अब एक रजिस्ट्री शुल्क लिया जाता है लेखा परीक्षकों (Auditors) की नियुक्ति कर दी गई है और गोदी श्रमिक सलाहकार समितियों में जहाज-सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व दिया गया है। अधिनियम में १९७० में किये गये संशोधन द्वारा कल्याण कार्यों का विस्तार स्टाफ तथा अन्य अधिकारों तक कर दिया गया है। संशोधन में कम्पनियों द्वारा कानून तोड़ने की स्थिति में दण्ड की भी व्यवस्था की गई है।

बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, विशाखापट्टनम तथा कांधला बन्दरगाहों पर स्थायीकरण योजनाओं (Decasualisation schemes) के साथ ही साथ सूचीकरण योजनाएँ (Listing schemes) भी लागू की गई हैं। इन योजनाओं को अपंजीकृत गोदी श्रमिक (रोजगार पंजीकरण) योजनाएँ कहा जाता है। इन योजनाओं का एक उद्देश्य ऐसे आवश्यक आँकड़े एकत्रित करना है जिससे यह पता लगाया जा सके कि सूचीबद्ध किये गये श्रमिकों को स्थायी किया जा रहा है या नहीं, और उन्हें नियमित रोजगार के लाभ तथा न्यूनतम गारन्टी शुदा मजदूरी आदि की सुविधाएँ भी मिल रही हैं या नहीं।

विभिन्न बन्दरगाहों पर कई प्रकार के श्रमिकों की भर्ती रोजगार दफ्तरों द्वारा भी होती है। निम्न श्रेणी के श्रमिकों की तथा नैमित्तिक श्रमिकों की भर्ती पहले एक केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा कुछ बन्दरगाहों में की जाती थी, परन्तु इस विधि को अक्टूबर १९५९ में समाप्त कर दिया गया। कई बन्दरगाहों में विज्ञापन द्वारा सीधी भर्ती की प्रणाली भी पाई जाती है।

कलकत्ता व बम्बई के बन्दरगाहों में नाविकों (Seamen) की भर्ती बहुत समय तक मध्यस्थों के द्वारा होती रही। इस व्यवसाय में श्रमिकों की पूर्ति अधिक होने के कारण इनकी भर्ती प्रणाली में बहुत से दोष आ गये। सन १९४७ में कलकत्ता और बम्बई में ऐसे बोर्ड भी स्थापित किये गये जो ऐसे प्रमाणित नाविकों का एक रजिस्टर रखते थे, जो युद्ध काल में जहाज पर काम कर चुके थे। बन्दरगाहों पर नाविकों के रोजगार दफ्तर स्थापित करने के लिये और व्यापारिक जहाजों के लिये उनकी भर्ती को नियमित बनाने के लिये सरकार ने सन १९४९ में 'भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम (Indian Merchant Shipping Act) १९२३ में कुछ संशोधन किये।

आगे चल कर सन् १९२३ के अधिनियम का स्थान व्यापारी जहाज अधिनियम (१९५८) ने ले लिया। इस अधिनियम में नाविकों की मजदूरी की अदायगी उनके स्वास्थ्य कल्याण तथा डाक्टरी जाँच आदि की व्यवस्था तो की ही गई है साथ ही साथ नाविकों की भर्ती तथा उनके रोजगार का भी प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह भारत के प्रत्येक बन्दरगाह पर नाविकों का एक एक रोजगार दफ्तर स्थापित कर सके। यह दफ्तर नाविकों के रूप में रोजगार पाने के इच्छुक लोगों का नियमन व नियन्त्रण करता है। जिस बन्दरगाह पर ऐसा दफ्तर स्थापित हो जाता है वहाँ नाविक रोजगार दफ्तर से प्राप्त नाविकों के अलावा अन्य किसी भी व्यक्ति को नाविक के रूप में जहाज पर प्रविष्ट होने की अनुमति नहीं दी जाती। प्रत्येक नाविक के लिये यह आवश्यक है कि उसके पास सेवा का प्रमाणपत्र (Certificate of discharge) हो। २०० टन से कम वजन वाले देशी व्यापारिक जहाज को छोड़कर अन्य प्रत्येक भारतीय जहाज के कप्तान के लिए यह आवश्यक होता है कि वह प्रत्येक उस नाविक के साथ, जिसे को वह काम पर लगाता है, एक ऐसा समझौता करे, जिसमें समुद्र यात्रा का ब्यौरा तथा सेवा की शर्तों का उल्लेख हो। १५ वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाना मना है और १८ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को उस समय तक कोयला झोंकने वालों व आग जलाने वालों के रूप में नौकर नहीं रखा जा सकता, जब तक कि उन्हें काम के लिये डाक्टरी दृष्टि से अनुकूल तथा योग्य न प्रमाणित कर दिया गया हो।

कलकत्ते में ट्राम्वे में भर्ती या तो सीधी प्रणाली के द्वारा श्रमिकों के सम्बन्धियों में से होती है या रोजगार दफ्तरों के द्वारा। बम्बई में रिक्त स्थानों की पूर्ति समाचार पत्रों द्वारा प्रार्थना पत्र मँगाकर सूचनाएँ प्रसारित करके तथा रोजगार दफ्तरों द्वारा की जाती है।

ठेके के श्रमिक (Contract Labour)

कई उद्योग धन्धों में ठेके के श्रमिक भी अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। पिछले युद्ध की आकस्मिक आवश्यकताओं के कारण इस प्रणाली को बहुत प्रोत्साहन

मिला। अनेक उद्योग अथवा औद्योगिक संस्थान कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने के ठेके ठेकेदारों को दे देते हैं और उसके बदले में उन्हें एकमुश्त रकम अदा कर देते हैं। ठेकेदार, जो कि व्यक्ति या फर्म या कोई वरिष्ठ श्रमिक भी हो सकता है, स्वयं श्रमिकों को काम पर लगाता है। इन श्रमिकों के सम्बन्ध में उस उद्योग की कोई प्रत्यक्ष जिम्मेदारी नहीं होती जो कि ठेकेदार को काम देता है। इस प्रकार, ठेके के श्रमिकों व 'प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये श्रमिकों' के बीच अन्तर के दो मुख्य आधार होते हैं, एक तो मुख्य औद्योगिक संस्थान से उनके रोजगार सम्बन्ध और दूसरे उनकी मजदूरी के भुगतान की रीति। प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये श्रमिकों के नाम औद्योगिक संस्थान की वेतन नामावली या उपस्थिति नामावली में अंकित किये जाते हैं और वे प्रत्यक्ष रूप से मजदूरी प्राप्त करते हैं किन्तु इसके विपरीत, ठेके के श्रमिकों के नाम न तो वेतन नामावली (pay roll) में अंकित होते हैं और न उन्हें उद्योग द्वारा प्रत्यक्ष रूप से मजदूरी का ही भुगतान किया जाता है।

इन्जीनियरिंग, सीमेंट कागज तथा अहमदाबाद के सूती कपड़े के उद्योग-धन्धों में तथा खानों व बन्दरगाहों के उद्योगों में और केन्द्रीय व राजकीय जन-निर्माण व रेलवे विभागों में अधिकतर ठेके के श्रमिक ही पाये जाते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है खानों में अधिकतर श्रमिक ठेके के ही श्रमिक होते हैं, और यह प्रथा बागान में भी फैल चुकी है। अहमदाबाद में लगभग १०% और सीमेंट, कागज तथा जूट की चटाइयों के उद्योग में लगभग २० से २५% ठेके के ही श्रमिक हैं। कोलार की सोने की खानों में एक तिहाई श्रमिक तथा बंगाल में बन्दरगाहों के लगभग ४३% श्रमिक ठेकेदारों के द्वारा ही रोजगार पाते हैं। श्रम ब्यूरो द्वारा किए गए कुछ सर्वेक्षणों के अनुसार, कुछ चुने हुए उद्योगों में कुल श्रमिकों में ठेके के श्रमिकों का प्रतिशत इस प्रकार है—कच्चा लोहा ७३.९%, जूट दबाना ७३.८%, कच्चा मैंगनीज ६५.८% तिरपाल या डेरे आदि ६३.७%, निर्माण कार्य (लोक कर्म विभाग) ६०%, नमक ४६.१%, बन्दरगाह तथा गोदी ३८.६%; चूने का पत्थर निकालना ३६.७%, खिलौने बनाना ३४.३%, मद्यनिर्माणशाला २८.६%; धातु-बेलन २७%, दाल मिलें २६.४%; धातु निष्कर्षण व शुद्धिकरण २५.२%, कृषि यन्त्र व उपकरण २४.८%, तापसह ईंटें २४%, लकड़ी का काम २३.१%, धातुओं को पृथक् करने का काम २२.६%, कपास में बिनौले अलग करना २१.८%; और चावल की मिलें २१.७%।

ठेके के श्रमिकों की प्रथा में प्रचलन के अनेक कारण हैं। कई बार ऐसा होता है कि कार्य को जल्दी समाप्त करने के लिए कुछ श्रमिकों की एकाएक आवश्यकता आ पड़ती है। श्रमिक कई बार मिलते भी नहीं हैं। हमारे देश में रोजगार के दफ्तरों की स्थापना हुए भी बहुत दिन नहीं हुए हैं। कारखानों में पर्यवेक्षण कर्मचारियों की भी कमी रही है। इन अनेक कारणों से ठेके के श्रमिकों को ही काम पर लगाना अधिक सुविधाजनक रहता है। यह प्रथा इसलिये बराबर बनी रही,

क्योंकि ठेके के श्रमिकों को लगाने में मालिकों को अनेक लाभ होते हैं। जब मालिक कुछ विशेष कार्यों को सम्पन्न करने को ठेका दे देते हैं तो ऐसा करने से उन्हें न तो श्रमिक रखने पड़ते है, न पूजी निवेश करना पड़ता है और न मशीनों की स्थापना ही करनी पड़ती है। इसमें वे बँधी लागत (overhead cost) को कम करने में समर्थ हो जाते हैं। उन्हें न तो प्रत्यक्ष रूप से मजदूरों की नियुक्ति करनी पड़ती है और न श्रमिकों को किसी प्रकार के लाभ या कल्याणकारी सुविधाएँ ही देनी होती हैं। एक प्रकार से वे श्रमिकों से सम्बन्धित सभी चिन्ताओं से मुक्त रहते हैं। कुछ किस्म के कार्यों में उदाहरणत लोकनिर्माण विभाग तथा निर्माण के कार्यों में ठेके के श्रमिकों की प्रथा अत्यधिक सुविधाजनक रहती है।

परन्तु इस प्रथा के पक्ष में चाहे जितने भी तर्क क्यों न दिये जाएँ, यह स्पष्ट है कि इस प्रथा से लाभ के स्थान पर हानियाँ ही अधिक हैं। अधिकांश श्रम सम्बन्धी कानून ठेके के श्रमिकों पर लागू नहीं होते और जिन श्रम कानूनों का विस्तार ठेके के श्रमिकों तक कर दिया गया है, वे भी ठेके के श्रमिकों की प्रवासी प्रकृति के कारण समुचित रूप से लागू नहीं हो पाते। अधिकांश ठेकेदार अपने श्रमिकों के प्रति अपना कोई नैतिक दायित्व नहीं मानते और उनकी असहाय स्थिति का अनुचित लाभ उठाते हैं। ठेकेदार अपना ठेका सबसे कम बोली पर पाता है, इसीलिये वह श्रमिकों को कम से कम मजदूरी देने का प्रयत्न करता है। इस प्रथा का एक अन्य दोष यह है कि मालिकों पर ठेके के श्रमिकों के कल्याण-कार्यों का कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। ठेके की भर्ती की प्रणाली तो मध्यस्थ द्वारा भर्ती की प्रणाली से भी अधिक दोषपूर्ण है क्योंकि मध्यस्थ श्रमिकों में से ही एक होता है परन्तु ठेकेदार तो बिल्कुल बाहरी व्यक्ति होता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग (१९६९) ने भी ठेके की श्रम-प्रणाली के अनेक दोषों का उल्लेख किया था। आयोग के अनुसार, 'प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये श्रमिकों और ठेके के श्रमिकों की मजदूरियों एवं कार्य की दशाओं में भारी अन्तर पाया जाता है। विभिन्न उद्योगों के लिए जिन मजदूरी परिषदों का गठन किया गया था, उन्होंने भी प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये श्रमिकों एवं ठेके के श्रमिकों, दोनों के ही लिये मजदूरी की समान दरें लागू करने की सिफारिश की है। परन्तु इन सिफारिशों को लागू करने की कारगर मशीनरी उपलब्ध न होने के कारण, ठेके के श्रमिकों को साधारणत उन दरों से नीची दरों पर मजदूरी दी जाती है जो कि उसी उद्योग के नियमित श्रमिकों के लिये निर्धारित की गई है। प्राय यह भी होता है कि मूल पारिश्रमिक के अतिरिक्त ठेके के श्रमिकों को अन्य कोई भुगतान प्राप्त होता ही नहीं।'[1] आयोग का कहना है कि ठेके के श्रमिकों की कार्य की दशाएँ बिल्कुल भी सन्तोषजनक नहीं हैं। उनके काम करने के घण्टे बड़े अनियमित तथा लम्बे होते हैं। जिस अवधि का भुगतान उन्हें किया जाता है वह एक दिन से लेकर छ छ माह

1 Report of the National Commission on Labour—pages 420-21

तक की होती है। उनकी नौकरी की सुरक्षा की भी कोई व्यवस्था नहीं होती और ठेके की समाप्ति के साथ ही उनकी नौकरी भी समाप्त हो जाती है। ठेके के श्रमिकों को मजदूरी के साथ छुट्टियां देने की भी कोई व्यवस्था नहीं होती। मकान सम्बन्धी सुविधाओं के मामले में भी ठेके के श्रमिकों के साथ सीधी भर्ती वाले श्रमिकों जैसा व्यवहार नहीं किया जाता। ठेके के श्रमिकों को कर्मचारी राज्य बीमा योजना तथा कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त होने वाले लाभ भी इस लिए नहीं मिल पाते, क्योंकि वे इनमें सम्बन्धित कुछ प्रारम्भिक शर्तों को पूरा नहीं करते। यदि कभी ठेकेदार अपने श्रमिकों को अग्रिम धन दे देते हैं तो वे खातों में इस प्रकार हेर-फेर कर लेते हैं कि प्रारम्भ में दिये गये अग्रिम धन के अलावा श्रमिकों को और कोई भुगतान प्राप्त नहीं होता। अत आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि *"यहाँ तक कि सर्वश्रेष्ठ फर्मों में जो ठेके के श्रमिक लगे होते हैं उनके कार्य की दशाओं के दृष्टिकोण से भी यदि हम देखें तो हमारे विचार से यह अत्यन्त आवश्यक है कि यदि कहीं ठेके के श्रमिकों को काम पर लगाना जरूरी हो, तो उस सम्बन्धित दृढ एव कठोर कानून बनाया जाना चाहिए किन्तु सरकार की सामान्य नीति यही होनी चाहिए कि ठेके के श्रमिकों की प्रथा को शनै-शनै समाप्त कर दिया जाय। कुछ अनिवार्य कारणों से यदि कहीं इसे जारी रखना भी पड़े तो ठेके के श्रमिकों को भी वैसी ही सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिएँ जैसी कि नियमित श्रमिकों को प्राप्त होती है।'*

विभिन्न समितियों, जांचों (Enquiries) तथा सम्मेलनों द्वारा ठेके की श्रम-प्रणाली के जिन दोषों का उल्लेख किया गया, उनको दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट से पहले भी इस प्रथा में सुधार करने के लिए, और जहाँ भी व्यावहारिक था वहाँ इसको समाप्त करने के लिए, पग उठाये गये थे। फैक्टरी अधिनियम (१९४८), खान अधिनियम (१९५२) और बागान श्रमिक अधिनियम (१९५१) के अन्तर्गत श्रमिक की जो परिभाषा दी गई थी उसके क्षेत्र का विस्तार करके उसमें ठेके के श्रमिक को भी सम्मिलित किया गया था। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (१९४८) के अन्तर्गत जो स्वास्थ्य बीमा सम्बन्धी लाभ प्रदान किये जाते हैं उनका विस्तार ठेके के श्रमिकों तक कर दिया था। मोदी कर्मचारी (रोजगार नियमन) अधिनियम, १९४८ में इस *प्रकार सुधार किया गया था कि यह अधिनियम ठेके के श्रमिकों के विशिष्ट वर्गों को उनके रोजगार, मजदूरी तथा कल्याण की दशाओं के सम्बन्ध में सुरक्षा* प्रदान करता था। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (१९४८) कुछ अनुसूचित रोजगारों में ठेके के श्रमिकों पर भी लागू होने लगा था। बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम (१९४६) तथा मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश के ऐसे ही अधिनियमों की परिधि में ठेके के श्रमिकों को भी सम्मिलित कर लिया गया था। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग तथा रेल विभाग के ठेकेदारों के लिए ऐसे नियम बनाये गये जिनके अन्तर्गत नौकरियों की भर्ती के ठेके केवल उन

ठेकेदारों को दिये जाते थ जो कि मजदूरों को अधिसूचित न्यायपूर्ण मजदूरी देने को सहमत हो जाते थे तथा उनको कल्याण-सेवाएँ एव आवास सुविधाएँ प्रदान करते थे। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम ठेके के श्रमिको पर पहले ही लागू हो चुका था। इसके अतिरिक्त, कोयला खानो की औद्योगिक समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप, रेलवे की कोयला खानों म ठेके के श्रमिको की प्रथा को सन् १६४८ में ही समाप्त कर दिया गया था। अन्य कोयला खानों के सम्बन्ध मे, सन् १६६१ मे श्रमिको के केन्द्रीय सगठनो के बीच यह समझौता हो गया था कि सितम्बर १६६२ तक ठेके के श्रमिकों की प्रथा को समाप्त कर दिया जाए। एक जाँच न्यायालय द्वारा इसका अनुमोदन भी किया गया। परिणामस्वरूप २२७ कोयला खानों मे से १२० मे निर्धारित तिथि तक ठेके की श्रम-प्रणाली समाप्त की जा चुकी थी। बाद मे १०२ और कोयला खानो मे यह प्रथा समाप्त की गई, २८ मे यह फिर से लागू की गई किन्तु १३ कोयला खानो ने इस प्रणाली को पुन समाप्त कर दिया। सन् १६७० तक ठेके की श्रम-प्रणाली केवल बिहार की २० कोयला खानों में ही चालू थी और वहाँ भी इसे समाप्त करने के लिये पग उठाय जा रहे थे।

ऊपर उठाये गये पगो के बावजूद, ठेके की श्रम-प्रणाली मे जो दोष विद्यमान थे वे बराबर जारी रहे। इनका कारण यह था कि ठेके के श्रमिको के बारे मे जो अधिनियम बनाये गये थे, मालिक उनकी धाराओ से अपने को किसी न किसी प्रकार बचा लेते थे। कुछ चुने हुए उद्योगो मे इस सम्बन्ध मे सर्वेक्षण भी किये गये ताकि विभिन्न उद्योगो मे इस समस्या की प्रकृति तथा मात्रा का पता लगाया जा सके। अन्तत. ३१ जुलाई 1967 को लोक सभा में एक बिल प्रस्तुत किया गया ताकि उसके द्वारा श्रमिको को काम पर लगाने के रोजगार का नियमन व उन्मूलन किया जा सके। परन्तु इस बिल को पास होने मे काफी अधिक समय लग गया और ससद् (Parliament) द्वारा सन १६७० मे जाकर ठेका-श्रमिक (नियमन व उन्मूलन) बिल पास किया गया तथा 5 सितम्बर १६७० को राष्ट्रपति द्वारा इस बिल पर हस्ताक्षर किये गये।

ठेका-श्रमिक (नियमन व उन्मूलन) अधिनियम, १६७०
(The Contract Labour Regulation and Abolition Act 1970)

इस अधिनियम के बनाने का उद्देश्य यह है कि कुछ ऐसे वर्गों एव क्षेत्रो मे ठेके की श्रम प्रणाली को समाप्त किया जाय जिन्हे कि निर्धारित कसौटियो के सदर्भ मे सम्बन्धित सरकारें निश्चित करें और जहाँ ऐसा उन्मूलन अथवा समाप्ति सम्भव न हो, वहाँ ठेके के श्रमिकों की सेवा की शर्तों का नियमन किया जाए। इसमे जहाँ ठेके के श्रमिको को लगाने वाले सस्थानो के रजिस्ट्रेशन तथा ठेकेदारो द्वारा लायसेंस लेने की व्यवस्था है वहाँ विदलीय प्रकृति की ऐसी सलाहकार परिषदो की भी व्यवस्था की गई है जिनमे कि विभिन्न हितो का प्रतिनिधित्व हो और जो कानून को लागू करने के सम्बन्ध मे केन्द्र व राज्य सरकारो को परामर्श दे। ठेके के श्रमिकों के लिए

पीने के पानी तथा प्राथमिक चिकित्सा की सुविधाओं, एव कुछ मामलों म, विश्राम-गृहो व जलपान-गृहो जैसी मूलभूत कल्याणकारी सुविधाओं की व्यवस्था एव उनके सचालन को अधिनियम क अन्तगत अनिवाय बनाया गया है। जहाँ ठेकेदारो द्वारा ये सुविधाएँ नही दी जायेंगी वहाँ इन सुविधाओ को ठेकेदारो के दायित्व पर मुख्य नियोक्ता द्वारा प्रदान किय जान की व्यवस्था की गई है। ठेकेदारो को लाइसेंस इसी शर्त पर दिय जायेंग कि वे श्रमिको क लिए आवश्यक सेवाओ एव काम की सन्तोषजनक दशाओं की व्यवस्था करे तथा उन्ह उचित मजदूरी दें। अधिनियम मे इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि मजदूरियो का सही ढग से भुगतान न होने की दशा मे श्रमिको को सुरक्षा प्रदान की जाए। यदि ठेकेदार निश्चित समय मे मजदूरी का भुगतान करने मे असमथ रहता है अथवा कम भुगतान करता है तो यह मुख्य नियोक्ता या मालिक का दायित्व होगा कि वह ठेकेदारा द्वारा नियुक्त किय गय श्रमिकों को, यथास्थिति पूर्ण मजदूरी का अथवा अवशिष्ट मजदूरी का भुगतान करे और इस प्रकार दिय गये धन का या तो ठके के अधीन ठेकदार को दी जाने वाली रकम म से काट ले अथवा ठेकेदार को दिय गये ऋण के रूप में उससे वसूल कर ले। यह अधिनियम १० फरवरी १९७१ से लागू हो गया।

गोरखपुर श्रम-सस्था (Gorakhpur Labour Organisation)

'गोरखपुर श्रम' शब्द का प्रयोग उत्तर प्रदेश के उन पूर्वी जिलो के श्रमिको के लिये किया गया था जहाँ के श्रमिक व्यापक गरीबी के कारण पीढियों से देश के विभिन्न भागो को प्रवास करते रहे थे। ऐसे फालतू श्रमिको को शीघ्र काम उपलब्ध कराये जाने की दृष्टि से गोरखपुर मे एक भर्ती का डिपो १९४२ मे खोला गया जिसका उद्देश्य यह था कि लडाई से सम्बन्धित सामान बनाने के लिय जो सस्थायें थी उनमे श्रमिको की कमी न रहे। इस डिपो ने शीघ्र ही एक बडी सस्था का रूप धारण कर लिया और इसके द्वारा लगभग ५० ००० श्रमिक भर्ती होने लगे। इस सस्था का नाम 'गोरखपुर श्रम सस्था' (Gorakhpur Labour Organisation) पड गया। स्थानीय श्रमिको की कमी के कारण यह सस्था उत्तर प्रदेश के अलावा बिहार, बगाल व मध्य प्रदेश की कोयले की खानो क लिये भी श्रमिको की पूर्ति करने लगी। लडाई समाप्त होने पर भी खान उद्योग की प्रार्थना पर यह सस्था कोयले की खानो के लिये श्रमिको की पूर्ति करती रही, परन्तु भर्ती का व्यय अब खान उद्योग वहन करने लगा। इस प्रकार, यह एक खान-मालिकों का सगठन बन गया जिसका नाम 'कोयला क्षेत्र भर्ती सगठन' (Coal Fields Recruiting Organisation) पड गया। यह सगठन कोयला खाना मे आने वाली श्रमिको की माँग की पूर्ति करता था, श्रमिको को खाना तक भेजने की व्यवस्था करता था और गोरखपुर श्रम-संस्था के सम्पूर्ण सचालन व्यय को वहन करने लगा। भर्ती के आरम्भ का व्यय तो केन्द्रीय सरकार करती थी और बाद म कार्य पर लगाने वाली खानो से उनमे श्रमिको की भर्ती के अनुसार व्यय ले लिया जाता था। परन्तु इस योजना के

विरुद्ध कई शिकायतें प्राप्त हुईं और १६५८ में इनके बारे में जाँच की गई। कोयला खानों की औद्योगिक समिति ने फरवरी १६५६ में इस बात का निर्णय किया कि गोरखपुर के श्रमिकों और अन्य श्रमिकों में कोई भेद नहीं होना चाहिए और गोरखपुर की संस्था का सम्बन्ध केवल भर्ती से ही रहना चाहिए। अगस्त १६५६ में समिति द्वारा अन्तिम रूप से यह निर्णय किया गया कि गोरखपुर की श्रम संस्था बिल्कुल ही बन्द कर दी जाने और इसके जो भर्ती के कार्य हैं वे रोजगार दफ्तरों को सौंप दिये जायें। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग का यह कहना था कि रोजगार कार्यालय की सेवा पूर्ति एवं नि:शुल्क सेवा है अतः यह उचित तथा नियमित नहीं है कि गोरखपुर श्रम संस्था द्वारा श्रमिकों की भर्ती पर किया गया व्यय मालिकों (employers) से वसूल किया जाए। मालिकों को तो केवल वह व्यय देना चाहिए जो कल्याण कार्यों पर खर्च किया जाए। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि जब गोरखपुर श्रम संस्था श्रमिकों का चुनाव करने में मालिकों की सहायता करती है तो उन श्रमिकों के सम्बन्ध में सारा उत्तरदायित्व मालिकों को लेना ही चाहिए। इस कार्य के लिए 'कोयला क्षेत्र भर्ती संगठन' को आगे जारी रखने की कतई भी आवश्यकता नहीं है।

सन् १६७३ में कोयला खानों का राष्ट्रीयकरण हो जाने के फलस्वरूप, आकस्मिक श्रमिक नियमित श्रमिकों में बदल गये और गोरखपुर श्रम संस्था से आकस्मिक श्रमिकों की माँग काफी घट गई। इन परिवर्तित परिस्थितियों में, गोरखपुर श्रम संस्था १ अप्रैल १६७६ से केन्द्रीय रोजगार दफ्तर (श्रम) गोरखपुर के रूप में परिवर्तित हो गई। इस रोजगार दफ्तर ने नवम्बर १६७७ से अक्तूबर १६७८ तक २१०७ व्यक्तियों के नाम पंजीकृत किये और १६६ व्यक्तियों को रोजगार से लगाया।

श्रमिकों का स्थायीकरण (Decasualisation of Labour)

श्रमिकों की भर्ती को नियमित करने के लिए कुछ कारखानों ने बदली के श्रमिकों के नियन्त्रण की रीति अपनाई है। इस योजना को **बदली नियन्त्रण प्रथा** अथवा **बदली श्रमिकों** का स्थायीकरण कहते हैं। इस योजना को दो उद्देश्यों से अपनाया गया है। प्रथम बदली के श्रमिकों के रोजगार को नियमित बनाना और दूसरा, श्रमिकों की भर्ती में मध्यस्थों के प्रभाव को मिटाना। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक माह की पहली तारीख को कुछ चुने हुए लोगों को एक विशेष बदली कार्ड दिया जाता है, जिन्हें प्रतिदिन प्रातःकाल मिल के फाटक पर हाजिरी देनी होती है। अस्थायी रिक्त स्थानों की पूर्ति इन्हीं लोगों में से की जाती है। जब तक बदली के कार्ड प्राप्त श्रमिक पर्याप्त होते हैं किसी अन्य श्रमिक को भर्ती नहीं किया जा सकता और रिक्त स्थानों की पूर्ति प्रवरता (Seniority) के अनुसार की जाती है। इस कार्य के लिये एक रजिस्टर रखा जाता है। अहमदाबाद में केन्द्रीय सरकार की सहायता से सितम्बर १६४८ में इस योजना को सूती कपड़ा मिलों के श्रमिकों के

लिये आरम्भ किया गया था और बाद मे यह योजना बम्बई शहर और शोलापुर मे भी लागू कर दी गई। पंजीकृत श्रमिकों को प्रमाण-पत्र दिये जाते है और नौकरी दिलाने मे नौकरी कर चुकने की अवधि का विचार रखा जाता है। कोयम्बटूर की कपड़ा मिलों मे भी यह योजना लागू कर दी गई है। बन्दरगाहों के श्रमिकों के रोजगार को नियन्त्रण मे लाने के लिये जो १९४८ का अधिनियम है उसके अन्तर्गत श्रमिकों के स्थायीकरण की योजनायें लागू है। ऐसी स्थायीकरण योजना जमशेदपुर की लोहे की चादर की कम्पनी म भी लागू है। इन योजनाओं के अन्तर्गत फैक्ट्री के प्रत्येक विभाग म श्रमिकों के पूल बना दिये गये है और प्रत्येक पारी (Shift) मे आवश्यकतानुसार श्रमिकों को काम पर लगा लिया जाता है। श्रमिकों की अनुपस्थिति के कारण जो स्थान रिक्त हो जाते है उनको भी इन्ही पूल के श्रमिकों से भर लिया जाता है। इन्दौर म भी सूती कपड़ो के कारखानों मे श्रमिकों की भर्ती के लिये १९५३ म एक केन्द्रीय बदली नियन्त्रण कमेटी की स्थापना की गई थी, परन्तु यह योजना अधिक दिनो तक न चल सकी। प्रथम योजना मे ऐसे स्थायीकरण कार्यक्रमो के विस्तार की सिफारिश की गई। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी कम कुशल श्रमिको के मामले मे तथा ऐसे मामलो मे जहाँ विशिष्ट श्रेणियो के श्रमिकों की माँग अनिश्चित तथा अधिक हो, स्थायीकरण तथा बदली नियन्त्रण जैसी प्रथाओ की सिफारिश की।

जनवरी १९५० म छँटनी के श्रमिको का पूल बनाने तथा श्रमिकों के स्थायीकरण के लिए उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा एक योजना बनाई गई थी। यह योजना पहले छ माह फिर एक वर्ष तक चलाने का विचार था, परन्तु फिर इसकी सफलता को देखकर इसको जारी रखने का निश्चय किया गया है। प्रयोगात्मक रूप से यह योजना कानपुर मे आरम्भ की गई और ग्वालटोली, कालपी रोड, जूही तथा कूपरगंज मे रोजगार दफ्तर व उप-कार्यालय खोले गये। यद्यपि इस योजना की पूर्ण प्रगति म कुछ प्रारम्भिक कठिनाइयाँ थी, फिर भी इस योजना का प्रारम्भ सफल रूप से हुआ, परन्तु नैनीताल मे हुए त्रिदलीय श्रम सम्मेलन मे इस बात का निर्णय किया गया कि इस योजना को १ जुलाई १९५८ से समाप्त कर दिया जाए। परन्तु उसके पश्चात् राज्य सरकार ने यह निर्णय किया कि रोजगार दफ्तरों से सम्बन्धित शिवाराव समिति की सिफारिशों पर कोई अन्तिम निश्चय होने तक इस योजना को कुछ दिनो तक अस्थायी रूप से चालू रखा जाए। केवल कूपरगंज कार्यालय बन्द कर दिया गया। हमारे विचार मे इस योजना को समाप्त नही करना चाहिये क्योंकि भर्ती के तरीके मे जो पक्षपात व भ्रष्टाचार आ गया था, वह इस योजना से काफी सीमा तक समाप्त हो गया। यह योजना रोजगार के दफ्तरो और उत्तरी भारतवर्ष के मालिक संघ के मध्य हुये सम्मानित समझौते पर आधारित है। इस योजना के अन्तर्गत जो कार्य अब तक हुआ है वह भी काफी सराहनीय कहा जा सकता है। यह योजना कानपुर की ऊनी, सूती कपडा और

तेल मिलो मे लागू है। १९६४ मे २८,८५२ श्रमिको को नौकरियाँ भी दिलाई गई। इस अवधि मे २५,९२३ रिक्त स्थानो की सूचना मिली जिनमे से २२,२७१ स्थानो पर लोगो को लगा भी दिया गया। उत्तर प्रदेश बदली श्रमिक रोजगार अधिनियम १९७८ के अन्तर्गत अब प्रत्येक मालिक के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि आरक्षित पूल के श्रमिको का अर्थात् ऐसे श्रमिको का एक रजिस्टर बनाएँ जो कि अधिनियम के पूर्व के २४ माह की अवधि मे ३०० अथवा उससे अधिक दिन तक स्थायी प्रकृति के किसी काम पर लगे हों और उस स्थिति मे, जब कि ऐसे श्रमिक को काम न मिले तो उसे १२ माह की अवधि मे ६० दिन के लिए (एक दिन की मजदूरी की ३३% राशि) निराश भत्ते के रूप मे दी जाए।

भर्ती की कुछ अन्य पद्धतियां (Some other Methods of Recruitment)

एक स्थायी श्रमिक वर्ग तैयार करने के उद्देश्य से अनेक संस्थायें रोजगार मे लगे हुए श्रमिको के सम्बन्धियो को ही भर्ती मे प्रथम अवसर देती है। यह कहा जाता है कि ऐसे लोग सरलता से कारखाने के अनुशासन को स्वीकार कर लेते है। अत प्रबन्धकर्त्ताओ के अनुकूल भी होते है। फिर भी यह रीति दोषरहित नही है। यदि शेष बातें सामान्य हो अर्थात् प्रार्थी पूर्णरूप से योग्य हो तो इसमे कोई हानि नही वरन् यह वांछनीय है कि रोजगार मे लगे हुये तथा रोजगार मे पहले रह चुके लोगो के पुत्र तथा सम्बन्धियो को प्रथम अवसर दिया जाय। परन्तु व्यावहारिक रूप मे यह रीति पक्षपात साम्प्रदायिकता तथा जातीयता को प्रोत्साहन देती है और बहुत से अकुशल लोग नौकरियाँ पा लेते है। अत भर्ती करने मे केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तों का ही पालन होना चाहिए और इसमे किसी भी प्रकार का पक्षपात नही होना चाहिये।

निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार, भारत के उद्योगो मे श्रमिको की भर्ती के अनेक तरीके प्रचलित है और विभिन्न पदो एव स्थानो के लिए श्रमिको का चुनाव करने की रीतियो मे एकरूपता नही है। राष्ट्रीय श्रम आयोग[1] का कहना है कि भारत मे आज श्रमिको की भर्ती करने तथा उन्हें नौकरी दिलाने के लिए जो तरीके काम मे लाये जाते है उनका निर्धारण उद्योग विशेष की प्रकृति स्थिति, अवधि, प्रबन्ध तथा उसके आकार द्वारा होता है। अनेक श्रम सगठनो के अनुसार भर्ती के इन तरीको एव उपायो मे कोई बदल नही आई है। इसके विपरीत उद्योगो के मालिको का यह दावा है कि वर्षों के पश्चात् अब भर्ती की पद्धति का आकार बडा ठोस एव दृढ हो गया है तथा भर्ती के अव्यक्तिगत तरीके अब अधिक प्रचलित हो गये है। ये दोनो ही निष्कर्ष सही प्रतीत होते है। यद्यपि वे भिन्न भिन्न क्षेत्रो मे ही सही है किसी एक ही क्षेत्र मे नही। उदाहरण के लिए हम यह देखते है कि खानो तथा बागानो मे श्रमिको की भर्ती करने की परम्परागत रीतियाँ तथा एजेन्सियां उसी रूप मे अभी तक जारी हैं जैसे कि वे पहले थी। दूसरी ओर अनेक नये सस्थानो ने और विशेष

1 Report of the National Commission on Labour, pages 72-73

रूप से सरकारी क्षेत्र में स्थित संस्थानों ने भर्ती के ऐसे उन्नत तरीके अपनाये हैं कि उनसे रोजगार ढूंढने वाले श्रमिकों के मन में यह भावना उत्पन्न होती है कि उन्हें न्याय मिलेगा और उनके उचित दावों को अस्वीकृत नहीं किया जायेगा। सम्पूर्ण रूप से ऐसा लगता है कि संगठित उद्योगों के क्षेत्रों में भर्ती के अव्यक्तिगत तरीकों (impersonal methods) का आधार शनै-शनैः दृढ़ होता जा रहा है। खान उद्योगों में तथा बागानों में ठेकेदारों द्वारा भर्ती की प्रथा अभी भी प्रचलित है, यद्यपि है वह अपेक्षाकृत छोटे-पैमाने पर। रोजगार ढूंढने वाले लोगों में चूंकि एक नया जागरण उत्पन्न हुआ है अतः ऐसी भर्ती एजेन्सियों की शोषणकारी प्रवृत्ति में अब बराबर कमी आती जा रही है। विगत २० वर्षों में, राष्ट्रीय रोजगार सेवा ने भी मालिकों तथा रोजगार ढूंढने वाले व्यक्तियों को मिलाने में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया है। अनेक प्रगतिशील संस्थान (establishments) तो कम कुशल श्रमिकों के पदों तक के लिए भी प्रतियोगिता द्वारा चुनाव करने की रीति का आश्रय ले रहे हैं।

सम्भवतः भर्ती की प्रचलित बुराइयों को दूर करने और उसे वैज्ञानिक रूप में चलाने का एक यह ही उपाय है कि रोजगार के दफ्तरों में वृद्धि करके उनका अधिकतम उपयोग किया जाय।

रोजगार दफ्तर
(Employment Exchanges)

परिभाषा (Definition)

रोजगार दफ्तर एक विशेष प्रकार की वह संस्था है, जिसका मुख्य कार्य कार्य-इच्छुक लोगों को उनकी योग्यतानुसार उपयुक्त कार्य दिलाना तथा मालिकों को योग्य और अच्छे श्रमिक प्राप्त करने में सहायता देना है। इस प्रकार, वे कार्य-इच्छुक लोगों और मालिकों को शीघ्रतम सम्पर्क में लाने का कार्य करते हैं। प्रत्येक श्रमिक जो कार्य ढूंढने में सहायता चाहता है, अपने घर के निकटतम रोजगार दफ्तर में प्रार्थना-पत्र देता है। वहाँ उसका नाम, योग्यताएँ, अनुभव तथा विशेष रुचि आदि का विवरण लिख लिया जाता है। इसी प्रकार, मालिक जिनको श्रमिकों की आवश्यकता होती है रोजगार दफ्तरों को यह सूचित करते हैं कि उनके पास कौन से स्थान रिक्त हैं और उन्हें किस योग्यता के श्रमिकों की आवश्यकता है। यह पूर्ण विवरण रोजगार दफ्तर में सुव्यवस्थित रूप में रखे जाते हैं। जब भी कोई नौकरी रिक्त होने की सूचना मिलती है, तो रोजगार दफ्तर कार्य-इच्छुक व्यक्तियों में से उस नौकरी के लिये उपयुक्त योग्यता रखने वाले को चुन लेता है, और उनके नाम मालिकों के सम्मुख विचारार्थ भेज देता है और यदि आवश्यकता हुई तो दोनों पक्षों के बीच समालाप (Interview) का प्रबन्ध कर देता है। अन्तिम निर्णय मालिकों पर निर्भर करता है। जिन व्यक्तियों का चुनाव नहीं हो पाता है, उनके लिये रोजगार दफ्तर तब तक प्रयत्न करता रहता है, जब तक वे योग्य

व्यवसाय नही पा लेते। इस प्रकार रोजगार दफ्तर श्रमिकों की मांग और पूर्ति मे सन्तुलन स्थापित करते है, और प्रत्येक कार्य पर उपयुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति करने मे सहायक होते है।

रोजगार दफ्तरों का कार्य तथा महत्व :

(Importance and Functions of Employment Exchanges)

राज्य द्वारा सचालित रोजगार दफ्तरो के महत्व को १६१६ मे विश्वव्यापी मान्यता प्रदान की गई जबकि वाशिंगटन म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने एक अभिसमय (Convention) द्वारा इस बात पर जोर दिया कि "प्रत्येक सदस्य देश की जनता के लिये एक निःशुल्क रोजगार दफ्तर स्थापित करना चाहिए, जो कि एक केन्द्रीय प्राधिकार क नियन्त्रण मे रहे।' यह विषय १६४७ मे जेनेवा मे हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के तीसवें अधिवेशन की कार्य-सूची पर फिर से रखा गया और सदस्य सरकारो से रोजगार दफ्तरो के सगठनो के बारे मे सूचना मांगी गई। यह सूचना अनेक देशों से प्राप्त हुई जिनमें भारत भी था। इसके आधार पर १६४८ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने सान-फ्रांसिसको मे होने वाले ३१वें वार्षिक अधिवेशन मे एक अभिसमय पास किया और एक सिफारिश भी की। इस अभिसमय मे रोजगार दफ्तरो के कार्य और कर्त्तव्यों की रूप रेखा दी गई है, और इनको सफल बनाने के लिये मालिक और मजदूरो के सहयोग का अनुरोध किया गया है।

रोजगार दफ्तरो के कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। एक सुसचालित औद्योगिक व्यवस्था मे इनका एक विशेष स्थान है। राष्ट्रीय लाभांश (National dividend) की अधिकतम वृद्धि दो बातो पर निर्भर है। प्रथम तो श्रमिकों को अनैच्छिक (Involuntary) बेकारी से बचाना। दूसरे, प्रत्येक श्रमिक को उनकी योग्यतानुसार कार्य देना। रोजगार दफ्तर इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण कार्य करते है। इसमे सन्देह नही कि रोजगार दफ्तर नवीन व्यवसायो का निर्माण नही कर सकते। इनका मुख्य कार्य श्रम की मांग व पूर्ति मे पूर्ण रूप से सन्तुलन स्थापित करना है। श्रमिकों और उनकी नौकरियो मे उचित प्रकार का सन्तुलन स्थापित न हो पाने का एक कारण यह भी है कि श्रमिकों को रिक्त नौकरियों की और मालिकों को रोजगार मजदूरो की सूचना नही मिल पाती। ऐसी स्थिति मे रोजगार दफ्तर दोनों को उपयुक्त सूचना दे सकते है। यह बहुत आश्चर्य की बात होगी कि जब निवेश तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण वस्तुओं के लिये तो सगठित बाजार काफी समय से पाये जाते है, श्रम के लिये कोई ऐसी व्यवस्था न हो, विशेषकर जब श्रम का मोल-भाव भी सरकार मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अत श्रम को रोजगार दिलाने के लिये भी किसी उचित व्यवस्था का होना अत्यधिक आवश्यक है।

यह तो सरकार का कर्त्तव्य है कि वह जन-निर्माण कार्यों से, उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देकर, कृषि म उन्नति करके तथा देश म धन का समान वितरण

आदि करके लोगों के लिये अधिक नौकरियाँ उपलब्ध करे। रोजगार दफ्तरों का यह उत्तरदायित्व होता है कि वे इस बात का ध्यान रक्खें कि रिक्त स्थानों पर वही मनुष्य नियुक्त किये जायें जो उनके लिए सर्व-उपयुक्त हों। इस प्रकार रोजगार दफ्तरों के द्वारा श्रमिकों को सर्व-उपयुक्त नौकरी और मालिकों को सर्व-उपयुक्त कर्मचारी मिल जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक नौकरी पर उचित व्यक्ति की ही नियुक्ति होती है। जो समय स्थानों के रिक्त होने तथा उनको भरने के समय तक व्यर्थ जाता है, वह भी यथा-सम्भव कम हो जाता है। मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोष आदि भी रोजगार दफ्तरों के होने से दूर हो जाते हैं। रोजगार दफ्तर इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि आवश्यकतानुसार निपुण श्रमिक बाजार में प्राप्त होते रहें और उनका उचित रूप से उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में वितरण हो जाय। वे कार्य-योग्य मनुष्यों, नौकरियों, बेरोजगारी तथा व्यवसाय आदि के बारे में सूचना भी देते रहते हैं, जो कि जनता और सरकार के लिये अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होती है। वे विस्थापित (Displaced) व्यक्तियों, शरणार्थियों तथा भूतपूर्व-सैनिकों (Ex-servicemen) को बसाने में भी सहायता देते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि रोजगार दफ्तर नौकरियाँ निर्मित नहीं कर सकते और जब तक कोई स्थान खाली न हो वह किसी को काम पर नहीं लगा सकते, फिर भी एक सीमा तक रोजगार दफ्तर बेरोजगारी कम करने में सहायक सिद्ध होते हैं। अनेक बार ऐसा होता है कि एक स्थान पर तो बेकारी होती है और अन्य स्थानों पर श्रमिकों का अभाव होता है। ऐसी अवस्था दो कारणों से उत्पन्न हो सकती है—एक तो नौकरी के सम्बन्ध में बेरोजगार मनुष्यों की पूर्ण अनभिज्ञता के कारण, दूसरे, उचित प्रशिक्षण के अभाव स्वरूप उस स्थान के लिये अयोग्यता के कारण। ऐसी अनेक अवस्थाओं में रोजगार दफ्तर बेकारी कम करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकते हैं। वे केवल आवश्यक सूचना देने का साधन ही नहीं होते, वरन् नौकरियों के लिये उपयुक्त प्रशिक्षण देने का कार्य भी करते हैं। इस प्रकार रोजगार दफ्तर श्रम बाजार में श्रमिकों की माँग व पूर्ति के सन्तुलन में जो विलम्ब होता है, उसको कम कर देते हैं। इस प्रकार, यद्यपि कुल रोजगार की वृद्धि करने में उनका अधिक हाथ नहीं होता, तथापि बेरोजगारी के दोषों को दूर करने में वे सहायक होते हैं।

लोगों का यह विचार भी भ्रमपूर्ण है कि रोजगार दफ्तरों में सब लाभ केवल श्रमिकों को ही होते हैं। ये दफ्तर मालिकों के लिये भी अत्यन्त लाभदायक हैं। प्रत्येक मालिक के लिये रिक्त स्थान का शीघ्र से शीघ्र भर जाना बहुत महत्व रखता है। मालिक यह भी समझते हैं कि रिक्त नौकरियों का भर जाना ही काफी नहीं है, अपितु प्रत्येक नौकरी के लिये उपयुक्त मनुष्य का होना भी आवश्यक है। रोजगार दफ्तर इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जब श्रमिक अनायास ही भर्ती के लिये आ जाते हैं, तो या तो मालिक को उपयुक्त श्रमिक पाने के लिये काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, या उन्हें नये श्रमजीवियों को

बहुत बड़ी संख्या में शिक्षा देनी पड़ती है। परन्तु मालिक के लिये यह दोनों ही बातें दुष्कर होती है और परिणामस्वरूप अनुपयुक्त लोगों की भर्ती अधिक हो जाती है। इसका फल यह होता है कि श्रमिकों का श्रमिकावर्त बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त, मालिकों को और भी खर्चे करने पड़ते हैं, जैसे—रिक्त स्थानों का विज्ञापन या भर्ती के लिये एक विशेष विभाग संचालन आदि। यदि मालिकों को रोजगार दफ्तरों के द्वारा श्रमिक मिल जायें तो यह सब कठिनाइयाँ तथा व्यय दूर हो सकते हैं।

यह सर्वमान्य है कि रोजगार दफ्तर बेरोजगार मनुष्यों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुये है। इनके न होने से काम की खोज में श्रमिक को प्रार्थना-पत्र लिये हुये स्थान-स्थान पर घूमना पड़ता है। ऐसी स्थिति में, यह संयोग पर ही निर्भर है कि भाग्यवश श्रमिक ऐसे स्थान पर पहुँच जाय जहाँ उसे नौकर मिल जाये। अधिकतर श्रमिकों को ऐसा सुसयोग बहुत दिनों तक नहीं मिल पाता। एक बड़े नगर में एक श्रमिक एक दिन में कुछ ही स्थानों पर जा सकता है और इस अवस्था में यह सम्भव है कि वह जगह पाने के लिये घूमता फिरता रहे जबकि उसी नगर के किसी ऐसे स्थान पर, जहाँ पर वह संयोगवश न जा पाया हो, स्थान रिक्त हो। इस प्रकार, समय व श्रम का नष्ट होना श्रमिक, मालिक तथा समाज सभी के दृष्टिकोण से हानिकारक होता है, और यदि नौकरी की खोज में कहीं दूर जाना पड़ता है तो व्यय और भी बढ़ जाता है। रोजगार दफ्तरों की सहायता से वे सब हानियाँ जो असैद्धान्तिक रूप से नौकरियाँ खोजने के कारण उत्पन्न हो जाती है, दूर हो सकती है।

संक्षेप में रोजगार दफ्तरों के कार्य निम्नलिखित कहे जा सकते है—(१) ये मालिकों तथा श्रमिकों के बीच मध्यस्थ का काम करते है और नौकरी का आपसी निर्णय उन्हीं दोनों पर छोड़ देते है। इस प्रकार यह श्रम की माँग व पूर्ति में सतुलन स्थापित करते है। (२) उस स्थान से जहाँ श्रमिक अधिक हो, ये श्रमिकों को उस स्थान पर भेज देते है जहा उनकी कमी हो। इस प्रकार ये श्रम की गतिशीलता को बढाते हैं, और सूचना के अभाव के कारण उत्पन्न हुये श्रम के असमान वितरण में समानता लाते हैं। (३) उनके कारण भर्ती में प्रचलित रिश्वत और भ्रष्टाचार दूर हो जाते है, क्योंकि वे सबको निःशुल्क समान सहायता देते है। उनके कारण सर्व-उपयुक्त व्यक्तियों की ही नियुक्ति होती है। (४) वे कार्य योग्य मनुष्यों तथा बेरोजगारी के आँकड़ों को एकत्रित करते है और इस प्रकार देश में श्रमिकों की वास्तविक स्थिति ज्ञात हो जाती है। (५) वे अनेक योजनाओं को लागू करने व चलाने में सहायता देते हैं, जैसे—बेरोजगारी बीमा योजना, स्थानीयकरण योजना तथा विस्थापित व्यक्तियों को बसाने तथा उनको कार्य पर लगाने की योजना आदि। (६) वे श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधायें देते है ताकि उनकी रोजगार-क्षमता में वृद्धि हो। (७) वे बच्चों के माता पिता व अभिभावकों को व्यवसाय सम्बन्धी तथा

व्यापार सम्बन्धी परामर्श व निर्देशन देते है। (८) वे नौकरियों के खाली होने और उनके भरने के बीच के समय को कम कर देते है और इस प्रकार अनैच्छिक बेकारी को कम करने में सहायक होते हैं, यद्यपि यह सत्य है कि वे रोजगार की उत्पत्ति नही कर सकते।

अन्य देशो की भांति रोजगार दफ्तरों का महत्व हमारे देश में भी सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक उन्नति की योजनाओं में अत्यधिक है। इनका सगठन हुए अभी अधिक वर्ष नही हुए है और इनकी सेवायें निःशुल्क तथा ऐच्छिक रूप से होती हैं। यदि इनको व्यापारिक दृष्टि से देखा जाय, जैसी कुछ अन्य देशो में इनकी स्थिति है, तो यह भारत में सफल नहीं हो सकते। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ का अभिसमय भी इसी बात की सिफारिश करता है कि रोजगार के दफ्तर निःशुल्क सेवा देते रहे। इनको एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और समाजसेवी सस्था समझना चाहिये परन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इनके अन्दर भी सरकारी कार्यालयों की भांति केवल कागजी कार्यवाही की ही प्रधानता न रहे। यदि रोजगार दफ्तर कार्य के लिये उपयुक्त व्यक्तियों को ढूढने में अधिक समय लगायेंगे तो मालिकों के लिए श्रमिकों की प्रतीक्षा करना कठिन हो जायगा। इसी प्रकार जिन श्रमिकों को काम की आवश्यकता है वह बार बार रोजगार के दफ्तरों के ही चक्कर नहीं काट सकते जबकि उनके घरों में खाने का भी अभाव हो। इसलिये रोजगार दफ्तरों को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये शीघ्रता, कुशलता और व्यापारिक रूप से कार्य करना चाहिये।

अन्य देशो मे बेरोजगार दफ्तर : (Employment Exchanges Abroad)

रोजगार दफ्तरों की आवश्यकता औद्योगिक विकास के आरम्भ में ही अनुभव की जाने लगी थी। प्रारम्भ में यह व्यापारिक दृष्टि से लाभ उठाने के लिये व्यक्तिगत सस्था के रूप में अथवा कुछ दानी सस्थाओं, जैसे—युवक क्रिश्चियन सघ (Y M C A) द्वारा निर्मित समाजसेवी सस्था के रूप में प्रचलित हुये। राज्य द्वारा नियन्त्रित रोजगार दफ्तरों का बाद में विकास हुआ और न्यूजीलैंड में इनको १८९१ में प्रथम बार प्रारम्भ किया गया। जर्मनी मे पहला रोजगार दफ्तर १८८३ मे बर्लिन में चालू हुआ, परन्तु इनका राष्ट्रीयकरण १९१८ के बाद हुआ। १९२७ में रोजगार दफ्तरों की एक राष्ट्रीय सस्था और रोजगार दिलाने की एक बीमा योजना का बर्लिन में प्रारम्भ हुआ। यह एक त्रिदलीय आयोग के नियन्त्रण मे थे। फ्रास ने सामुदायिक रोजगार कार्यालयों में प्रारम्भ किया, जिनके स्थान पर बाद मे १९१४-१८ के बीच मे विभागीय रोजगार कार्यालयों की स्थापना हुई। आजकल एक तो क्षेत्रीय परिसूचन गृह (Regional Clearing House) है और एक श्रम मन्त्रालय के आधीन केन्द्रीय रोजगार कार्यालय है। फ्रास के रोजगार दफ्तरों का एक विशेष लक्षण यह है कि व्यवसाय के आधार पर विभिन्न खण्डो मे विभाजित हैं और प्रत्येक खण्ड मालिकों और श्रमिकों से पूर्णरूप से परामर्श करके अपनी नीति लागू

करता है। रूस में राष्ट्रीय समाजवादी व्यवस्था के आधीन १९३१ में स्टाफ कार्यालयों की स्थापना हुई जो रोजगार दफ्तरों का कार्य करते है और यह सभी संस्थाओं के लिये अनिवार्य है कि वे श्रमिकों को इन दफ्तरों के द्वारा ही भर्ती करें।

अमरीका में न्यूयार्क शहर के अन्दर प्रथम बार सार्वजनिक रोजगार सेवा १८३४ में चालू की गई और ऐसे स्थान खोले गये जहाँ मालिक लोग आवासियों (Immigrants) से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। नगरपालिकाओं के रोजगार दफ्तर 'लौस एन्जिलस' (Los Angeles) और 'सीटल' (Seattle) नामक शहरों में बाद में खोले गये। विधान द्वारा सार्वजनिक रोजगार दफ्तर १०९० में 'ओहिओ' (Ohio) नामक राज्य में प्रथम बार स्थापित किया गया। संघीय सरकार द्वारा प्रथम महायुद्ध में एक राष्ट्रीय रोजगार सेवा चालू की गई जिसका उद्देश्य ऐसे बड़े शहरों में रोजगार सेवा प्रदान करना था जहाँ राज्यों द्वारा रोजगार सेवायें चालू नहीं की गई थी। महायुद्ध के पश्चात् यह राष्ट्रीय दफ्तर भी राज्य सरकारों को दे दिये गये। आर्थिक तथा श्रम रोजगार की समस्यायें क्योंकि अन्तर्राज्य समस्यायें थी इसलिए १९३३ में एक अधिनियम (Wagner-Peyser Act 1933) पारित किया गया। इसके अन्तर्गत समस्त संघीय राज्य में एक नि शुल्क सार्वजनिक रोजगार सेवा चालू की गई। इसका प्रशासन राज्यों द्वारा किया जाता है। सेवाओं के समन्वय का उत्तरदायित्व संघीय सरकार पर है। समस्त राष्ट्र में १८३० पूर्ण कालिक स्थानीय दफ्तर इस समय चालू है। यह सेवायें स्थानीय, राज्य और संघीय संस्थाओं के संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम है।[1] इनके अतिरिक्त, शुल्क लेने वाली निजी रोजगार संस्थायें भी है जो ५० से अधिक वर्षों से चालू है। इन संस्थाओं में आरम्भ में कई दोष थे, परन्तु अब कई राज्यों में इन पर विधान द्वारा नियन्त्रण लागू कर दिया गया है और इनको लाइसैंस लेना पड़ता है। १९१४-१८ के महायुद्ध के दिनों में इन निजी संस्थाओं को बहुत काम मिला और उन्होंने बहुत लाभ कमाया।

ग्रेट ब्रिटेन में, जिसके आधार पर भारतीय रोजगार दफ्तर निर्मित किये गए है, प्रथम रोजगार दफ्तर १८८५ में ऐगम में प्रारम्भ हुआ। इसके द्वारा किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था परन्तु इनको नौकरी मिल जाती थी, उससे अशदान ग्रहण कर लिया जाता था। १९०२ में एक 'श्रम ब्यूरो (लन्दन) अधिनियम' [Labour Bureau (London) Act] पास हुआ, जिसके अन्तर्गत स्थानीय निकायों (Local Bodies) को रोजगार के दफ्तर स्थापित करने का अधिकार मिल गया। १९०५ में बेरोजगार श्रमिकों के लिये एक अधिनियम पास हुआ जिसके अन्तर्गत पीड़ित मनुष्यों के लिए स्थापित समितियों (Distress Committees) ने २५ रोजगार दफ्तर स्थापित किये किन्तु इनकी आलोचना की गई। पहला रोजगार दफ्तर १९१० में सरकार ने व्यापार बोर्ड (Board of Trade) के अन्तर्गत स्थापित किया। यह १९०६ में दरिद्र मनुष्यों के कानून

1 The American workers Fact Book, 1960, page 57

(Poor Laws) के लिए जिस रॉयल आयोग की नियुक्ति हुई थी उसकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप, स्थापित किया गया था। देश को फिर ११ विभागों में विभाजित किया गया और लन्दन में एक केन्द्रीय कार्यालय खोला गया। महीने भर के अन्दर ही रोजगार दफ्तरों की संख्या ६१ से बढ़कर २१४ हो गई और १९१२ में उनकी संख्या ४१४ तक पहुँच गई। १९१६ में जब श्रम मंत्रालय की स्थापना हुई तब इसने श्रम दफ्तरों का प्रशासन भार व्यापार बोर्ड से लेकर स्वयं संभाल लिया और तब से इस संस्था का नाम श्रम दफ्तरों के स्थान पर रोजगार दफ्तर हो गया। १९१९ में इन रोजगार दफ्तरों के कार्यों की जाँच करने के लिये एक समिति की नियुक्ति हुई। इसने यह सिफारिश की कि इनका राष्ट्रीय आधार पर निर्माण किया जाये और राष्ट्रीय बीमा योजना भी इनके ही द्वारा लागू की जाये। परिणामस्वरूप १२० लाख श्रमिकों का १९२० में बेराजगारी बीमा अधिनियम के पास होने के पश्चात् रोजगार दफ्तरों के द्वारा बीमा हुआ।

ब्रिटेन में अब श्रम और राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय रोजगार दफ्तरों के संचालन के लिये उत्तरदायी है। इनका क्षेत्र भी धीरे-धीरे विकसित कर दिया गया है और अब ये व्यवसाय सम्बन्धी पथ-निर्देशन और प्रशिक्षण का कार्य भी करती हैं। १९४८ में एक रोजगार और प्रशिक्षण अधिनियम भी इनके कार्यों को स्पष्ट करने के लिए पारित हुआ। इस समय ब्रिटेन में ९०० स्थानीय तथा ब्राँच रोजगार दफ्तर हैं जो रोजगार दफ्तरों के समान कार्य करते है।[1] मालिकों व श्रमिकों में पूर्ण सहयोग बनाये रखने के लिये स्थानीय रोजगार समितियाँ भी स्थापित की गई है। प्रशिक्षण के लिए १४ सरकारी प्रशिक्षण केन्द्र है, जिनमें व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाता है। दो विशेष रोजगार दफ्तर भी है जो युवकों को रोजगार देने और अपाहिज लोगों को बसाने का कार्य करते हैं।

भारत मे राष्ट्रीय रोजगार सेवा

(*National Employment Service in India*)

ऐतिहासिक रूप-रेखा :

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने १९१९ में एक अधिनियम द्वारा इस बात की सिफारिश की थी कि एक निःशुल्क रोजगार दफ्तर की स्थापना होनी चाहिये। भारत ने १९२१ में इस अभिसमय को स्वीकार कर लिया था परन्तु १९३८ में उसको अस्वीकृत घोषित कर दिया। १९२९ की मन्दी में उत्पन्न बेकारी की समस्या के विषय में सुझाव प्रस्तुत करते हुए रॉयल श्रम आयोग ने इस बात को स्वीकार नहीं किया था कि रोजगार दफ्तर बेकारी को दूर कर सकते है। उसके मतानुसार ऐसे दफ्तर केवल श्रम की गतिशीलता में ही वृद्धि कर सकते है। आयोग के शब्दों में, "ऐसे कार्यालय उन क्षेत्रों में जहाँ से श्रमिकों को लिया जाता था भूतकाल में तो कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकते थे, परन्तु हमारे विचार में ऐसे समय में उनको

---

1. Britain—An official Hand Book.

स्थापित करना बुद्धिमानी नहीं होगी जबकि अधिकतर श्रमिक कारखाने के फाटक पर ही मिल जाते हैं।" किन्तु इस विचार के होते हुये भी, श्रमिक और मालिकों के संघों ने तथा अनेक समितियों ने, जैसे—सप्रू कमेटी, बिहार व कानपुर की श्रम जांच समिति और श्रम अनुसंधान समिति, आदि—ने रोजगार दफ्तरों की स्थापना के पक्ष में ही अपना मत प्रकट किया।

पिछले युद्ध के दिनों में जब कि सरकार ने तकनीकी कर्मचारियों का अभाव अनुभव किया तब युद्ध की सामग्री बनाने वाले कारखानों और फौज के लिये तकनीकी कारीगरों की पूर्ति करने के लिए श्रम विभाग के अन्तर्गत कारीगरों के तकनीकी प्रशिक्षण के लिए एक योजना बनाई गई। केवल इस प्रशिक्षण के लिए १९४३-४४ में रोजगार दफ्तरों की स्थापना की गई। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सेना से निकले हुए सैनिकों और कारीगरों को काम पर लगाने की समस्या उपस्थित हो गई और यह आवश्यक हो गया कि रोजगार दफ्तरों का विस्तार और समन्वय किया जाये। अतः जुलाई १९४५ में एक पुनः स्थापना तथा रोजगार निदेशालय खोला गया और उसके अन्तर्गत देश में ७० रोजगार दफ्तर स्थापित किये गये। आरम्भ में इन दफ्तरों का कार्य केवल यही था कि सेना से निकले हुए सैनिकों और कारीगरों की सहायता करें और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करें। परन्तु १९४७ में इस संगठन का क्षेत्र विस्तृत करके इसके अन्तर्गत पाकिस्तान से विस्थापित हुए लोगों की सहायता का कार्य भी सम्मिलित कर लिया गया और अप्रैल १९४८ में रोजगार दफ्तरों को उन सभी मनुष्यों के लिये, जिनको रोजगार की आवश्यकता हो, खोल दिया गया।

भारत में रोजगार दफ्तरों का संगठन :

(Organisation of E. E. in India)

१९४७ में भारत में ७० रोजगार दफ्तर थे, परन्तु देश के विभाजन के बाद १७ रोजगार दफ्तर पाकिस्तान के अधिकार में आ गये। फरवरी १९४८ में पश्चिमी बंगाल में एक नया दफ्तर खोला गया। देहली के केन्द्रीय रोजगार दफ्तर को क्षेत्रीय रोजगार दफ्तर में परिणित कर दिया गया। यह विभिन्न क्षेत्रों के लिये परिसूचना गृह (Clearing House) का कार्य भी करता रहा। देहली में एक केन्द्रीय निरीक्षण कार्यालय भी स्थापित किया गया। अप्रैल १९५० में 'ब' श्रेणी के राज्यों के दफ्तरों को भी केन्द्रीय संगठन के अन्तर्गत ले लिया गया। १ नवम्बर १९५६ से रोजगार दफ्तरों और प्रशिक्षण केन्द्रों (Training Centres) का प्रशासन शिवाराव समिति की सिफारिशों के अनुसार, राज्य सरकारों को सौंप दिया गया। अब केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व केवल नीति-सम्बन्धी कार्य, समन्वय (Coordination) तथा देख-भाल और अवस्था सम्बन्धी व्यय का ६०% खर्चा वहन करने तक ही सीमित रह गया है। केन्द्रीय नियन्त्रण और समन्वय अब रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय (Directorate-General of Employment and

Specification and Interview Aids) (O S I A.) का नाम दिया गया है। मानव-शक्ति अध्ययन और रोजगार दफ्तरो के लिये एक कार्यसमिति भी बनाई गई है। एक केन्द्रीय रोजगार समिति की भी स्थापना हुई है जिसमें राज्य सरकारो, मालिको व श्रमिको के एवं ससद् के प्रतिनिधि है। रोजगार दफ्तरो को इस बात का भी विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वे शारीरिक रूप से असमर्थ व्यक्तियों को काम दिलाने मे सहायता करे और उन्हे ऐसा रोजगार दिलाएँ जहाँ इनकी असमर्थता से बाधा न पहुँचे। सामुदायिक विकास खण्डो मे भी रोजगार सूचना तथा सहायता ब्यूरो विशेष-विशेष स्थानो पर स्थापित कर दिये गये है। ये ब्यूरो सूचना एकत्रित करके रोजगार दफ्तरो और ग्रामीण नौकरी खोजने वालो के मध्य एक कडी का कार्य करते है। अभी हाल म ही एक मूल्याकन तथा कार्यान्वयन इकाई, एक जीवनवृत्ति अध्ययन केन्द्र, रोजगार सेवा म एक केन्द्रीय अनुसन्धान व प्रशिक्षण सस्था और अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लिये एक विशेष विभाग की स्थापना की गई है।

दिसम्बर १६७८ के अन्त मे देश मे ६०१ रोजगार दफ्तर कार्य कर रहे थे जिनमें ६६ विश्वविद्यालय रोजगार सूचना व निर्देशन ब्यूरो, ११ प्रायोजना रोजगार कार्यालय, ८ खान रोजगार कार्यालय शरीर से अपग लोगों के लिए १६ विशेष रोजगार दफ्तर, १५ व्यावसायिक व प्रबन्धक रोजगार कार्यालय और १ बागान श्रमिको के लिये विशेष रूप से बनाया गया रोजगार दफ्तर सम्मिलित था। इसके अतिरिक्त, १६० रोजगार सूचना तथा सहायता ब्यूरो ग्रामीण क्षेत्रों मे भी काम कर रहे थे। ये ब्यूरो कुछ चुने हुए सामुदायिक विकास खण्डो में स्थापित किये गये थे। नवम्बर १६७६ के माह मे, ५,४५,४६६ प्रार्थियों का पजीकरण किया गया, ३६,६२६ को रोजगार दिलाया गया और १,४३,१६,००० व्यक्ति अभी भी नौकरी पाने के लिये चालू रजिस्टर मे पजीकृत थे। केवल १३,१८२ मालिको ने रोजगार दफ्तरो का उपयोग किया और ६७,४२८ रिक्त स्थानों को दर्ज किया गया। रोजगार दफ्तरो की सर्वाधिक सख्या उत्तर प्रदेश में थी। यह सख्या ६७ थी।

केन्द्र एव राज्य सरकारो के अधिशासी आदेशो के अनुसार, सरकारी क्षेत्र मे ऐसे सभी रिक्त स्थानो की भर्ती रोजगार दफ्तरो के माध्यम से की जाती है जो लोकसेवा आयोगो के क्षेत्राधिकार से बाहर होते है। अन्य उपायो द्वारा भर्ती की अनुमति केवल तभी दी जाती है जबकि रोजगार कार्यालय उपयुक्त प्रत्याशी (Candidates) देने मे असमर्थ रहता है। गैर-सरकारी क्षेत्र के मालिकों के लिये यद्यपि इस बात की अनिवार्यता नही है कि वे अपने यहाँ के रिक्त स्थानों को रोजगार दफ्तरो द्वारा ही भरें परन्तु रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानो की अनिवार्य सूचना) अधिनियम [Employment Exchanges (Compulsory Notification of Vacancies) Act] के अन्तर्गत उन्हे अपने यहा हुए सभी रिक्त स्थानो की सूचना अनिवार्य रूप से रोजगार दफ्तरों को देनी होती है। यह अधिनियम सन्

१९५९ म पारित हुआ था और १ मई १९६० से लागू हुआ था। १ सितम्बर १९७१ में इस अधिनियम का विस्तार जम्मू व कश्मीर तक भी कर दिया गया था। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था है कि किसी भी राज्य अथवा उसके क्षेत्र में सरकारी अथवा गैर-सरकारी क्षेत्र के प्रत्येक संस्थान मालिक के लिये यह अनिवार्य होगा कि वे अपने किसी भी रिक्त स्थान को भरने से पूर्व रोजगार कार्यालय को उसकी सूचना दें। मालिकों के लिये यह भी अनिवार्य है कि उनके संस्थानों में जो स्थान रिक्त हों अथवा होने वाले हों, उनसे सम्बन्धित सूचना निर्धारित प्रारूप में, निर्धारित समय पर और निर्धारित रीति में रोजगार कार्यालय को दें। इस कार्य में असफल रहने वाले मालिकों के लिये दण्ड भी निर्धारित किये गये हैं। यह अधिनियम जिन संस्थानों, व्यक्तियों अथवा कार्यों पर लागू नहीं होता है, वे हैं—कृषि में काम करने वाले व्यक्ति, तीन माह से कम अवधि की घरेलू सेवा, अकुशल दफ्तरी कार्य तथा संसद के कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित नियुक्तियां।

पंचवर्षीय आयोजनाओं में सुझाव :
(Suggestions in the Five Year Plans)

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने मानव-शक्ति का पूर्ण प्रयोग करने में रोजगार दफ्तरों के महत्व पर काफी बल दिया था। इसके लिये श्रम-शक्ति सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित करना, विभिन्न प्रकार के श्रम की माग का पूर्ण ज्ञान होना और श्रमिकों को उचित प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है। रोजगार दफ्तरों के संगठन तथा कार्य-विधि की जाँच करने की सिफारिश की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप शिवाराम समिति की नियुक्ति हुई थी। उसकी सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने रोजगार दफ्तरों का प्रशासन १ नवम्बर १९५६ से राज्य सरकारों को दे दिया। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में रोजगार दफ्तरों को अधिक लाभदायक बनाने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये गये थे —

(१) रोजगार दफ्तरों की संख्या में वृद्धि—आयोजना काल में १२० नये रोजगार दफ्तर खोले जाने की व्यवस्था थी और इस प्रकार १९५६ में इनकी संख्या १३६ से बढ़ाकर १९६१ में २५६ करने का कार्यक्रम था। (२) रोजगार-विषयक अधिक से अधिक जानकारी एकत्रित करना। (३) युवक व्यक्तियों को सलाह देने के लिये एक युवक रोजगार कार्यालय की स्थापना करना। (४) रोजगार दफ्तरों में नौकरी खोजने वालों को सूचना देने तथा उनके मार्ग-प्रदर्शन के लिये एक 'रोजगार सलाह कार्यालय' की स्थापना तथा उनके द्वारा जीवन वृत्ति के लिये पुस्तकों तथा अन्य साहित्य का प्रकाशन करना। (५) व्यवसाय सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का समानीकरण करने के लिए एक व्यापक व्यावसायिक शब्द-कोष बनाने के लिये व्यवसाय सम्बन्धी अनुसंधान तथा विश्लेषण करना। (६) रोजगार दफ्तरों में नौकरी खोजने वालों के लिये व्यवसाय सम्बन्धी परीक्षाओं का प्रबन्ध करना।

प्रशिक्षण के सम्बन्ध मे द्वितीय पचवर्षीय आयोजना म निम्नलिखित सुझाव थे—(१) शिल्पियो की वर्तमान प्रशिक्षण योजनाओ मे वृद्धि तथा विस्तार करना। (२) शिल्पियों की एक नियमित रूप से शिक्षुता प्रशिक्षण योजना को चालू करना। (३) मध्य प्रदेश म कोनी बिलासपुर म, जो प्रशिक्षको के प्रशिक्षण क लिए एक केन्द्रीय सस्था थी, उनकी उन्नति और विस्तार करना तथा एक ऐसी ही सस्था की और स्थापना करना।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना म १०० अतिरिक्त रोजगार दफ्तर खोलने का कार्यक्रम था और यह उद्देश्य बनाया गया था कि प्रत्येक जिले म कम से कम १ रोजगार दफ्तर हो जाय। रोजगार दफ्तरो के अन्य कार्यों को विस्तृत करने का भी कार्यक्रम था, जैसे—रोजगार स्थिति सूचना ग्रामीण-रोजगार दफ्तर, नवयुवक रोजगार सेवा और परामर्श सम्बन्धी कार्य आदि। प्रशिक्षण कार्यक्रमो का विस्तार करने के भी कई प्रस्ताव लागू होने थे। चौथी आयोजना मे भी, यह प्रस्ताव किया था कि *राष्ट्रीय रोजगार सेवाओं के अन्तर्गत सुविधाओं का विस्तार किया जाय। राष्ट्रीय* श्रम आयोग ने भी इस बात पर जोर दिया कि रोजगार सेवा के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमो को लागू करने मे तेजी लाने की आवश्यकता है। पाँचवी पचवर्षीय आयोजना (१९७४-१९७९) की रूपरेखा म इस बात पर जोर दिया गया कि रोजगार सेवा को मजबूत बनाये जाने की आवश्यकता है ताकि पंजीकरण, काम पर लगाने, व्यावसायिक मार्गदर्शन तथा रोजगार सम्बन्धी सलाह के क्षेत्रो मे अधिक अच्छा कार्य सम्पन्न हो सके।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा के विषय मे शिवाराव समिति की रिपोर्ट :

आयोजना आयोग के सुझाव पर सरकार ने नवम्बर १९५२ मे श्री बी० शिवाराव के सभापतित्व मे एक प्रशिक्षण तथा रोजगार सेवा सगठन समिति की नियुक्ति की जिसमे ७ सदस्य थे जिनमे श्रमिको तथा मालिको के प्रतिनिधि भी थे। इसका कार्य रोजगार दफ्तरो के सगठन, पद्धति व कार्य आदि की जाँच करना तथा उनमे उपयुक्त परिवर्तनो के विषय मे सुझाव देना था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट २८ अप्रैल १९५४ को सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की।

इस समिति ने यह सुझाव दिया कि रोजगार दफ्तरो का <u>उपयुक्त नाम</u> "<u>राष्ट्रीय रोजगार सेवा</u>" होना चाहिये और सिफारिश की कि इन दफ्तरो को स्थायी सस्था का रूप दे देना चाहिये। इस समिति ने ऐसी सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी नौकरियों की सख्या और बढा दी, जो कि अनिवार्य रूप से रोजगार दफ्तरो द्वारा ही भरी जानी चाहियें, परन्तु यह समिति वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए इस बात के पक्ष मे नही थी कि रोजगार दफ्तरो द्वारा ही अनिवार्य रूप से भर्ती की जाये। परन्तु निजी मालिको के लिए यह अनिवार्य कर देने की सिफारिश थी कि वे सभी रिक्त स्थानो की सूचना इस दफ्तर को दें, किन्तु यह बात अस्थायी नौकरियो तथा अनिपुण श्रमिको की भर्ती के लिये लागू नही की गई।

इस रिपोर्ट का एक अन्य मुख्य सुझाव यह था कि इन दफ्तरों का दैनिक प्रशासन राज्यों को सौंप दिया जाये और केवल नीति-निर्धारण, स्तर-निर्धारण और दफ्तरों के समन्वय तथा उनके कार्य की देख-रेख का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर रहे। नये दफ्तर खोलने अथवा किसी दफ्तर को बन्द करने के लिये भी केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति अवश्य ली जाये। इन दफ्तरों के खर्चे का ६०% भार केन्द्रीय सरकार पर होगा।

रिपोर्ट में अन्य एक महत्वपूर्ण सिफारिश यह भी थी कि श्रमिक अपने को रोजगार दफ्तरों में स्वेच्छा से रजिस्टर कराने के लिए स्वतन्त्र हों। मालिकों और रोजगार ढूंढने वालों से रोजगार दफ्तर कोई शुल्क न ले। समिति ने रोजगार दफ्तर के कार्यों को अधिक विस्तृत करने का सुझाव दिया था। उदाहरणत रोजगार विषयक जानकारी एकत्रित करना, रोजगार के लिए परामर्श देना तथा व्यावसायिक अनुसधान, विश्लेषण और परीक्षण करना आदि। इस रिपोर्ट में रोजगार दफ्तरों के सगठन की व्यापक ऐतिहासिक विवेचना, अब तक के किये गये कार्यों की रिपोर्ट तथा इस सगठन के प्रशासन के विषय में सुझाव और कार्य करने की प्रणाली तथा पद्धति की विवेचना भी सम्मिलित थी। इस रिपोर्ट में पुन स्थापन सस्था द्वारा चलाई गई शिल्पियों और प्रशिक्षकों के लिये विभिन्न तकनीकी तथा व्यवसायात्मक प्रशिक्षण योजनाओं का भी अवलोकन किया गया और इनके सम्बन्ध में सिफारिशें भी प्रस्तुत की गई।

इन सिफारिशों को आधार मानकर द्वितीय पचवर्षीय आयोजना में रोजगार दफ्तरों के पुनर्गठन के लिए अनेक सुझाव उपस्थित किये गये थे जिनको अब लागू भी कर दिया गया है। जनता में राष्ट्रीय रोजगार सेवा की कार्य-विधि पर काफी असन्तोष रहा। यद्यपि इनकी आवश्यकता तथा महत्व के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठा सकता, परन्तु इन पर व्यय होने वाली धन राशि को दृष्टि में रखते हुए यही कहा गया है कि इनमें अधिक लाभ नहीं हुआ था। इसलिये इस विषय में जाच करना अति आवश्यक था और आयोजना आयोग ने भी इनकी सिफारिश की थी।

यहा यह भी उल्लेख करना अनुचित न होगा कि लोगों का विचार है कि रोजगार दफ्तरों के नियन्त्रण का विकेन्द्रीकरण करना अधिक लाभदायक सिद्ध न होगा क्योंकि इससे राज्य सरकारों का दृष्टिकोण बहुत सकुचित हो जाने का भय है और हो सकता है कि वे अपनी आयोजनाओं में कार्य करने वाले श्रमिकों को अन्य राज्यों से न बुलायें। इस प्रकार, श्रम की गतिशीलता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा जबकि रोजगार दफ्तरों से यह आशा की जाती है कि वे इस गतिशीलता में वृद्धि करेंगे। शिवाराव समिति ने यह भी कहा था कि रोजगार दफ्तरों ने लिये यह अनिवार्य नहीं होना चाहिये कि वे अनिपुण श्रमिकों को भी रजिस्टर करें। इस सुझाव का कारण सम्भवत यह प्रतीत होता है कि ऐसा करने से रोजगार दफ्तरों

का काम बढ जायेगा और कार्य सुचारु रूप मे नही चल सकेगा। परन्तु हम इस सुझाव से सहमत नही है क्योकि बिना अनिपुण श्रमिको को रजिस्टर किये देश की मानव-शक्ति का ठीक अनुमान नही लगाया जा सकता।

भारत सरकार ने सन् १९७७ मे श्री पी० सी० मैथ्यू की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की। समिति को अन्य बातो के अलावा इस सम्बन्ध मे भी सिफारिशें प्रस्तुत करनी थी कि रोजगार दफ्तरो की कार्य प्रणाली को प्रभावी एवं मजबूत बनाने के लिये और उनकी काय पद्धति मे विद्यमान कमियो को दूर करने के लिये क्या उपाय किये जायें। समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है और वह सरकार के विचाराधीन है।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्य का मूल्यांकन :
(Critical Estimates of the Working of Employment Exchanges)

बहुधा ऐसा देखा गया है कि रोजगार दफ्तर अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये अपने कर्मचारियो को कारखानो के फाटको पर भेज देते हैं और वे वहीं पर भर्ती किये गये श्रमिको का रजिस्टर कर लेते हैं और फिर अपने आकडो मे यह दिखा देते हैं कि दफ्तर ने इतने अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाया है। बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि अनेक मालिक तथा सरकारी पदाधिकारी भी किसी विशेष व्यक्ति की या तो पूर्व नियुक्ति कर देते हैं या नियुक्ति करने का निश्चय कर लेते हैं और तब उसे अपने रोजगार दफ्तर मे रजिस्टर कराने को कह देते है। यह सब बातें अनुचित हैं क्योकि इनसे रोजगार दफ्तरो का वास्तविक उद्देश्य, अर्थात् उपयुक्त स्थानो पर उपयुक्त श्रमिको की पूर्ति करना—पूरा नही होता और भर्ती की बुराइयाँ दूर नही होती। रोजगार दफ्तरो को श्रमिको को नौकरी दिलाने मे पूर्ण तटस्थता दिखानी चाहिये, और अनुचित पक्षपात नही करना चाहिये। इसके अतिरिक्त, यदि रोजगार दफ्तर वास्तव मे लाभप्रद सिद्ध होना चाहते हैं तो उनको केवल काम ढूंढने वालो का और नौकरियो का रजिस्टर बना लेने मे ही सन्तुष्ट नही हो जाना चाहिये वरन् उनको श्रमिको के सलाहकार के रूप मे उन्हे श्रम के बाजार की स्थिति का ज्ञान कराने का उत्तरदायित्व भी लेना चाहिये। उन्हे श्रमिको को बताना चाहिये कि किन क्षेत्रो मे व्यवसाय घट रहे हैं अथवा बढ रहे हैं। इसके अतिरिक्त, उनको बढते हुये व्यवसायो मे श्रमिको के प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिये; जिससे पुराने कार्य को छोडकर नये कार्य लेने मे श्रमिको को बाधा न पडे। रोजगार दफ्तरो के इस प्रशिक्षण तथा मार्ग-प्रदर्शन की सेवाओ का लाभप्रद उपयोग उस समय हो सकता है जबकि किसी भी उद्योग-धन्धे मे विवेकीकरण (Rationalization) किया जाय। यदि विवेकीकरण की योजना के परिणामस्वरूप किसी विशेष उद्योग-धन्धे मे कुछ मजदूर नौकरी से अलग कर दिये जाते है तो रोजगार दफ्तरो का यह कर्त्तव्य है कि वे उनको दूसरी नौकरियाँ दिलाने मे या उन नौकरियो के लिये आवश्यक प्रशिक्षण देने मे सहायक सिद्ध हो। प्रशिक्षण काल मे अपने पूर्व मालिको से

इन श्रमिको को वेतन मिलता रहना चाहिये।

रोजगार दफ्तर एक अन्य दिशा मे भी अपनी सेवा का विस्तार कर सकते हैं। कभी-कभी श्रमिको के पास इतना पैसा नही होता कि वे दूरस्थ स्थानो पर नौकरी करने के लिये जा सकें या ऐसी नौकरियो के लिये आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। ऐसी अवस्था मे रोजगार दफ्तर आर्थिक रूप से उनकी कुछ सहायता कर सकते है। जो भी रुपया इस प्रकार दिया जाये वह बाद मे किश्तो म वापिस लिया जा सकता है।

इन साधारण रोजगार दफ्तरो के अतिरिक्त कुछ विशेष रोजगार दफ्तर भी खोले जाने चाहियें जिनसे विशेष प्रकार म मजदूर भी लाभ उठा सकें, जैसे—नाविक, गोदी श्रमिक, घरेलू नौकर बागान तथा खानो मे काम करने वाले श्रमिक, आदि। इन विशेष प्रकार की सस्थाओ की आवश्यकता इसलिये है कि इन उद्योगो की अपनी अलग विशेषतायें है, उदाहरणार्थ नाविक एक बार म केवल निश्चित समय तक के लिये ही नौकर रखे जाते है और समुद्री यात्रा समाप्त होते ही उनका नौकरी का सिलसिला टूट जाता है। अतएव एक जहाज पर जितनी बार भी किसी नाविक की नौकरी की अवधि समाप्त होती है उतनी ही बार उसे रोजगार दफ्तर की सहायता की आवश्यकता होती है। गोदी श्रमिको की नौकरी आकस्मिक होती है। अत श्रमिक की भलाई और उद्योग की कार्यकुशलता के लिये स्थायीकरण योजना का लागू होना आवश्यक है। स्थायीकरण (De-casualisation) का तात्पर्य है—भर्ती को नियमित बनाना और रोजगार दफ्तरो के द्वारा नौकरी दिलाना। इसी प्रकार से कोयले की खानो मे रोजगार ढूढने वाले मजदूरो तथा उन कोयले की खानो मे जिनको मजदूरो की आवश्यकता होती है, उनके मध्य रोजगार दफ्तर एक कडी का काम करते है। वृद्धि से सम्बन्धित कोयले की खानो के रोजगार मे जो मौसमी उतार-चढाव होते हैं ये रोजगार दफ्तर उन्हे दूर करते है और इससे भर्ती करने की वर्तमान महँगी प्रणाली भी समाप्त हो जाती है। इन दिशाओ मे कार्य आरम्भ हो चुका है, परन्तु इन कार्यों का और विस्तार किये जाने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय रोजगार सेवा को सफल बनाने के लिये मालिको का सहयोग अति आवश्यक है। उनको चाहिये कि वे बराबर रिक्त स्थानो की सूचना रोजगार दफ्तरो को देते रहे और उनकी पूर्ति भी उन्ही के द्वारा करवाये। दुर्भाग्यवश मालिको से इस प्रकार का सहयोग अभी तक प्राप्त नही हो सका है और यदि वे इसी प्रकार रोजगार दफ्तरो से अलग रहकर भर्ती करते रहे तो रोजगार दफ्तर अपना कार्य सफलतापूर्वक न कर सकेंगे। अब वह समय आ गया है जबकि मालिकों के लिए रोजगार दफ्तरो का प्रयोग मे लाना अनिवार्य हो जाना चाहिये। यदि कुछ मालिक इस विचार को नापसन्द करते है तो केवल अपनी अज्ञानता तथा सन्देह प्रवृत्ति के कारण ही। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि सोवियत रूस मे इन

रोजगार दफ्तरो द्वारा भर्ती अनिवार्य है। भारत सरकार तथा राज्य सरकारो ने पहले ही ऐसे आदेश जारी कर दिये है कि सरकारी क्षेत्र म होने वाली रिक्तियों की सूचना रोजगार दफ्तरो को दी जानी चाहिए और उन रिक्तियों के लिए भर्ती भी रोजगार दफ्तरो क माध्यम से की जानी चाहिये। परन्तु गैर-सरकारी क्षेत्र मे मालिकों के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नही है कि वे रिक्त पदो की भर्ती रोजगार दफ्तरो के माध्यम से ही करें। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, १६५६ के अधिनियम के अन्तर्गत उन्हे रिक्त पदो के सम्बन्ध मे रोजगार दफ्तरो को केवल सूचित करना होता है।

इस सम्बन्ध मे, हम डॉ राधाकमल मुकर्जी के मत से सहमत है कि अब जब कि रोजगार दफ्तर प्रारम्भिक अवस्था पार कर चुके है इनका सगठन एक राष्ट्रीय आधार पर होना चाहिय। भारतीय सरकार को एक रोजगार दफ्तर अधिनियम बनाना चाहिय जिससे श्रम मत्रालय क अन्तगत पूरे देश भर मे रोजगार दफ्तरो का एक सुसगठित जाल सा बिछ सके। यूरोप और अमरीका के अनेक देशों मे रोजगार दफ्तर सम्बन्धी व्यापक कानून बनाये गये है और इसके फलस्वरूप उन देशो मे रोजगार दफ्तर काफी सीमा तक उन्नति कर गये है। कोई कारण नही प्रतीत होता कि भारत मे भी हम ऐसे कानून क्या न बनाये। १०,००० से अधिक आबादी वाले प्रत्येक नगर मे एक रोजगार दफ्तर होना चाहिए तथा वहाँ रोजगार ढूँढने वालो एव रिक्त स्थानो के रजिस्टर बनाये जाने चाहिये। अब तक स्थिति यह रही है कि रोजगार सेवा मुख्यत शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित रही है और रोजगार की तलाश करने वाले बहुसख्यक ग्रामीण इस सेवा द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं का लाभ उठाने मे असमर्थ रहते है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने राष्ट्रीय रोजगार सेवा (N.E S) की अब तक की सफलताओ का जिक्र करते हुये इस बात का भी उल्लेख किया है कि राज्य एजेन्सी के रूप मे इस सेवा के प्रशासकीय ढाँचे मे ऐसी तीव्रता एवं सुगमता लाई जानी चाहिये कि वह देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बन सके। इस एजेन्सी को इतना दृढ एवं शक्तिशाली बनाया जाना चाहिये कि वह राष्ट्रीय जनशक्ति का, विशेष रूप से उस निपुण एव प्रशिक्षित जनशक्ति का कुशल उपयोग करने मे सहायक हो सके जिसकी कि योजनाबद्ध आर्थिक विकास के लिए जरूरत है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक होगा कि रोजगार सेवा के राष्ट्रीय चरित्र का स्तर ऊँचा उठाया जाए। यह भी आवश्यक है कि सभी राज्यो मे इस सेवा के संचालन मे एकसमान स्तर, नीतियाँ तथा कार्य प्रणाली अपनाई जाये और यह सेवा एक सुव्यवस्थित एव समन्वित सगठन के रूप मे कार्य करे। अब तक तो स्थिति यह रही है कि राज्य-राज्य के बीच इस सेवा के स्तर मे भारी अन्तर था और अनेक बार तो राज्य सरकारो द्वारा जो नीति सम्बन्धी निर्देश जारी किये जाते थे वे उस सामान्य प्रतिरूप से मेल तक नही खाते थे जिसका निर्धारण इस सम्बन्ध मे केन्द्र सरकार द्वारा

किया जाता था। आयोग ने कहा है कि 'हमारे सामने जो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं उनसे यह बात स्पष्ट हुई है कि गैर-सरकारी कारखाना के मालिकों की भर्ती की आवश्यकतायें यद्यपि काफी बड़ी हैं किन्तु श्रमिकों की भर्ती की एक एजेन्सी के रूप में वे रोजगार दफ्तरों का अपेक्षाकृत कम ही उपयोग करते हैं ··· । हमारे विचार से राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्यक्रमों व सफलताओं के बारे में, उपलब्ध कुशल व्यक्तियों एवं सेवा की राय प्रणाली के बारे में यथेष्ट प्रचार अभियान चलाया जाना चाहिए ताकि मालिकों तथा रोजगार ढूंढने वाले व्यक्तियों में इस सेवा के प्रति पर्याप्त जागरण एवं रुचि उत्पन्न हो सके।'[1]

इन सब बातों से स्पष्ट है कि अनेक प्रारम्भिक कठिनाइयों के बावजूद, हमारे देश में रोजगार दफ्तरों ने कम सफलता प्राप्त नहीं की है। यदि मालिक थोड़ा और सहयोग देने लगें और श्रमिक रोजगार दफ्तरों के कार्य तथा लाभों के विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें तथा पंचवर्षीय योजनाओं के सुझावों को पूर्णतया लागू कर दिया जाय और यदि अधिकारी वर्ग अधिक सहानुभूति और ईमानदारी से कार्य करें तो हमारे रोजगार दफ्तरों का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल होने की सम्भावना है। अन्त में, हम पं० नेहरू के उन शब्दों को दोहरा सकते हैं जो उन्होंने सितम्बर १९४९ में हुए रोजगार संगठन के चौथे वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष पद से कहे थे - "जिस समय तक समाज का वर्तमान ढाँचा अस्तित्व में है, जब तक इसके स्थान पर एक ऐसा ढाँचा नहीं खड़ा हो जाता जिसमें प्रशिक्षण और रोजगार नागरिकों के लिये स्वाभाविक रूप से सुरक्षित हो जायें, उस समय तक रोजगार की सेवाओं का रहना श्रम की माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक है। ······इसलिये इस संस्था को पूर्णरूप से समाप्त करना गलत और अनुचित होगा।"

श्रमिकों की प्रशिक्षण व्यवस्था (Training of Workers)

श्रमिकों के लिए विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण अति आवश्यक है। सुप्रशिक्षित एवं कुशल श्रमिक वर्ग का निर्माण किये बिना देश में एक दृढ़ औद्योगिक आधार का निर्माण नहीं किया जा सकता। फिर, पंचवर्षीय योजनाओं में बहुविध औद्योगिक विस्तार की जो व्यवस्था की गई है उसकी दृष्टि से तो इस विचार का और भी महत्त्व है। ऐसा औद्योगिक विस्तार देश के तीव्र आर्थिक विकास का मूलाधार है। विज्ञान तथा शिल्पकला, उत्पादन की आधुनिक रीतियों एवं युक्तिकरण (Nationalisation) की योजनाओं के विकास के साथ ही साथ, कुशल एवं प्रशिक्षित श्रमिकों की आवश्यकता भी अधिक अनुभव की जाने लगी है और मालिक आमतौर पर यह शिकायत करते हैं कि कुशल तथा प्रशिक्षित श्रमिक उपलब्ध नहीं होते। अन्य देशों में सरकार द्वारा प्रशिक्षण के अतिरिक्त मजदूर संघों तथा मालिक संघों आदि के द्वारा भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। भारत में

1 Report of the National Commission on Labour, p 73

प्रशिक्षण का भार केवल सरकार पर ही पडता है क्योंकि यहाँ मजदूर संघो की ऐसी स्थिति नही है कि वे प्रशिक्षण योजनाओं को नियमित रूप से चला सकें। मालिको ने भी केवल कुछ संगठित उद्योगों को छोडकर, इस ओर कम ही ध्यान दिया है।

भारत मे प्रथम प्रशिक्षण योजना वही थी जो कि द्वितीय युद्ध के समय रोजगार दफ्तरों के द्वारा तकनीकी कारीगरों की पूर्ति के लिए आरम्भ की गई थी। युद्ध की समाप्ति के बाद यह योजना चालू रही और इसके अन्तर्गत भूतपूर्व सैनिको तथा विस्थापितो को विभिन्न कलाओं तथा व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता था। मार्च सन् १९५० म इस योजना को समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर एक व्यापक योजना, जिसको वयस्क लोगों के प्रशिक्षण की योजना कहा गया, आरम्भ की गई। इस योजना का भी सन् १९५८ म पुनर्गठन किया गया और अब "शिल्पियों के प्रशिक्षण की योजना' (Draftsman Training Scheme) के नाम से यह योजना चल रही है। आरम्भ म इसमें १०,००० व्यक्तियों के लिये जगह थी। प्रथम योजना के अन्त म य स्थान १०,५३८ हो गये। द्वितीय योजना की अवधि में २६,००० अतिरिक्त स्थानों की व्यवस्था की जानी थी, बाद में यह लक्ष्य बढ़ा कर ३० ००० कर दिया गया था। द्वितीय योजना के अन्त मे, १६६ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थायें थी जिनम ४२,६८५ व्यक्तियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना मे १२६ और संस्थायें स्थापित करने और ५८,००० और व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था का कार्यक्रम बनाया गया। इस प्रकार संस्थाओं की कुल संख्या ३२२ और १ लाख शिल्पियो के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी थी। तृतीय योजना के अन्त मे, इन स्थानों की संख्या १,१३,६२२ हो गई। चौथी योजना में यह संख्या १,५०,००० करने का प्रस्ताव था। पाँचवी योजना (१९७४-७९) मे मुख्य दबाव इस बात पर था कि व्यावसायिक प्रशिक्षण के कार्य को संघटित किया जाए, इसमें विविधता लाई जाए और इनके स्तर मे सुधार किया जाए तथा ऐसे प्रशिक्षण को रोजगार के साधनो एवं आवश्यकताओं के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित कर दिया जाए।

इस योजना के अन्तर्गत, प्रवेश सभी के लिए खुला था और १५ से २५ वर्ष तक की आयु के लोगों को ३२ इंजीनियरिंग तथा २१ गैर-इंजीनियरिंग व्यवसायों में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्था (I T I) में निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाता था। इन ५३ व्यवसायों के अलावा, राज्य सरकारों ने अपने-अपने क्षेत्रों के नये उद्योगों की आवश्यकता-पूर्ति के लिये अतिरिक्त व्यवसायों में भी प्रशिक्षण प्रारम्भ किया है। इसके पाठ्य विषय को उद्योग-धन्धों की आवश्यकताओं के अनुसार बनाया गया है और जो व्यक्ति प्रशिक्षण समाप्त कर लेते हैं, उनको एक शिल्पी प्रमाणपत्र दे दिया जाता है। इस प्रमाणपत्र को अनेक राज्य सरकारों ने मान्यता प्रदान की है। एक "राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाणपत्र बोर्ड" की भी स्थापना की गई है जो परीक्षाओं का

सचालन करता है और डिप्लोमा प्रदान करता है। तकनीकी व्यवसायो मे प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष है। सन् १९६३ से, ऐसी व्यवस्था की गई है कि प्रशिक्षणार्थियो का चुनाव उनके रुझान की परख (Aptitude test) करके किया जाता है। इस योजना का उद्देश्य यही है कि उद्योग-धन्धो के लिये निपुण कारीगर मिलते रहे और शिक्षित लोगो मे बेकारी कम हो तथा उत्पादन की मात्रा व गुण मे वृद्धि हो। मई १९५७ मे प्रशिक्षण नीति-निर्धारण मे परामर्श देने के लिये तथा स्तरो म एकता लाने के लिये एक व्यावसायिक प्रशिक्षण सम्बन्धी राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की गई। मार्च १९७९ मे देश मे ३५६ शिल्पी प्रशिक्षण सस्थायें थी जिनमे १ ४७ ७१४ व्यक्ति (१ ३६ ६६८ इजिनियरिंग व्यवसायो मे और ११,०४६ गैर-इजिनियरिंग व्यवसायो मे) प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे।

दूसरी पचवर्षीय आयोजना काल मे कुछ अन्य योजनायें भी चालू की गई। एक तो शिक्षुता प्रशिक्षण योजना (Apprenticeship Training Scheme) है जिसके अन्तर्गत ७,०५० व्यक्तियो को प्रशिक्षण देने का कार्यक्रम था। दूसरी योजना श्रमिकों के लिए सन्ध्या कक्षाओ के केन्द्र खोलने की थी (Evening Classes for Industrial Workers), जिसके अन्तर्गत ३ ०५० व्यक्तियो को शिक्षा देने का कार्यक्रम था। तीसरी पचवर्षीय आयोजना म शिक्षुता प्रशिक्षण योजना के लिये १४,००० स्थान और सन्ध्या कक्षा योजना के लिये १९ ००० स्थान बनाने का कार्यक्रम था। शिक्षुता प्रशिक्षण योजना को अनिवार्य रूप दिया जाना था और इस हेतु १९६१ के शिक्षुता अधिनियम (Apprentices Act) पारित किया गया जिसको मार्च १९६२ से लागू कर दिया गया। इस अधिनियम के अन्तगत प्रशिक्षार्थियो के लिये काय व रोजगार की दशाओ प्रशिक्षण अवधि, शिक्षुता संविदा प्रशिक्षण कार्यक्रम, आदि को निर्धारित करने तथा उनको दिये हुए स्तर पर लाने के लिए उपबन्ध है। इस अधिनियम के द्वारा कुछ विशिष्ट उद्योगो के मालिको के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे नामांकित व्यवसायो म निर्धारित स्तरो पर प्रशिक्षार्थियो को काम के अनुसार मूलभूत प्रशिक्षण दिला कर काम पर लगाये। इस अधिनियम मे सन् १९७३ मे सशोधन करके इसमे स्नातक इजीनियरो तथा डिप्लोमा धारको को भी सम्मिलित कर लिया गया। सरकार को इस बात की सलाह देने के लिये कि किन व्यवसायो मे प्रशिक्षण दिया जाय एक केन्द्रीय शिक्षुता परिषद (Apprenticeship Council) बनाई गई। तृतीय योजना के अन्त मे औद्योगिक सस्थानो मे २६ ००० शिक्षार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। सितम्बर, १९७१ मे प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले प्रशिक्षार्थियो की सख्या बढकर ४५ ६१२ हो गई थी। यह प्रस्ताव था कि चौथी योजना की अवधि मे इस शिक्षुता-कार्यक्रम का विस्तार अन्य उद्योगो मे भी किया जाए और शिक्षार्थियो की सख्या मे तिगुनी वृद्धि की जाये। प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के २० सूत्री कार्यक्रम मे शिक्षार्थी अधिनियम को कारगर ढग से लागू किये जाने के लिये जोर दिये जाने के फलस्वरूप प्रशिक्षण प्राप्त करने

वाले शिक्षार्थियो की सख्या बढ कर १९७६ तक १,३४,२४१ हो गई। लगभग १८ हजार सस्थान अब इस अधिनियम को लागू कर रहे है और २१७ उद्योग-धन्धे तथा १०३ व्यवसाय अब तक इस अधिनियम के अन्तगत ले आय गय है।

औद्योगिक श्रमिकों के लिए अशकालीन साय कक्षाओ (Part time evening class) का आयोजन करने वाले केन्द्रों की सख्या सितम्बर १९७८ के अन्त मे ३२ थी जिनमे ३ ७५९ श्रमिको को शिक्षा दी जा रही थी। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षकों" के प्रशिक्षण हेतु कई केन्द्रीय सस्थायें (Central Training Institutes for Training Instructors) है। ऐसी ६ सस्थाये बम्बई कलकत्ता हैदराबाद कानपुर लुधियाना और मद्रास म है जिनम १ ८४ शिक्षार्थियो को प्रवेश देन की क्षमता है। इलाहाबाद म दिसम्बर १९५८ म एक शगल केन्द्र (Hobby Centre) भी खोला गया जिसका उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियो को शारीरिक श्रम की महत्ता का ज्ञान कराया जाए और उनम तकनीकी तथा व्यावसायिक विषयो क प्रति रुचि उत्पन्न की जाय। इस केन्द्र म १९५६ म ११२ विद्यार्थी प्रशिक्षण पा रहे थ। इसक अतिरिक्त, अनेक राज्यो ने और रेलवे विभाग न भी प्रशिक्षण केन्द्र तथा औद्योगिक विद्यालय खोल रखे ह। नई दिल्ली म स्त्रियो क लिय १९५५-५६ से एक औद्योगिक प्रशिक्षण कन्द्र की भी स्थापना की गई। इसम महिलाओ को कटाई, सिलाई कढाई और बुनाई के कार्यो म प्रशिक्षण दिया जाता है। सन् १९७७ मे इस केन्द्र का स्तर ऊँचा उठाकर इसे महिलाओ के लिये राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण सस्था का रूप दे दिया गया। बम्बई तथा बगलौर मे महिलाओं के लिय दो क्षेत्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण सस्थाओ की भी स्थापना की गई। गोदी कर्मचारियो तथा नाविको के लिये भी प्रशिक्षण योजनाओ है। कुछ औद्योगिक सस्थानों मे पर्यवेक्षकों (Supervisors) क प्रशिक्षण के लिय भी अग्रगामी योजनायें (pilot programmes) चालू की गई हैं। सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्रालय ने ग्रामीण कारीगरो को उनके व्यवसाय की ट्रेनिग देने के लिये सामूहिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये। अब इनको ग्रामीण प्रशिक्षण सस्थाओ के रूप म पुनर्गठित किया जा रहा है। खान उद्योग के लिये दो खान यन्त्रीकरण सस्थाये चालू की गई है। सन् १९७१ म बगलौर मे एक फोरमैन प्रशिक्षण सस्था की, कलकत्ता म एक केन्द्रीय कर्मचारी प्रशिक्षण तथा अनुसधान सस्था की और मद्रास म एक उन्नत प्रशिक्षण सस्था की स्थापना की गई। अत्यधिक कुशल श्रेणी के कारीगरो एव शिल्पियो को विविध प्रकार की उन्नत कलाओ म प्रशिक्षण देने के लिये उन्नत व्यावसायिक प्रशिक्षण व्यवस्था की एक परियोजना चालू की गई है। हैदराबाद म इलैक्ट्रोनिक्स तथा प्रक्रिया उपकरण के लिय एक उन्नत प्रशिक्षण सस्था की स्थापना की गई है।

अनुपस्थिति, श्रमिकावर्त्त तथा वेतन सहित छुट्टियाँ

ABSENTEEISM, LABOUR TURNOVER AND HOLIDAYS WITH PAY

किसी भी संगठित उद्योग की सफलता श्रमिकों की कार्यकुशलता और अनुभव पर निर्भर है। अतः किसी उद्योग में श्रमिकों की अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त्त जितना भी कम हो सके उतना ही वह उस उद्योग की सफलता के लिये लाभदायक है। परन्तु अधिक समय तक न तो इन शब्दों की उचित परिभाषा ही की गई और न स्पष्ट रूप में इनको समझा ही गया। बहुत कम ऐसी औद्योगिक संस्थायें थी जिनमें अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त्त के आंकड़ों को एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया। ये आंकड़े भी अधिक विश्वसनीय न थे। पिछले कुछ वर्षों से ही इन आंकड़ों को एकत्रित करने की ओर कुछ ध्यान दिया गया है।

अनुपस्थिति
(Absenteeism)

परिभाषा (Definition) :

अनुपस्थिति शब्द की उचित परिभाषा सबसे पहले भारत सरकार के श्रमिक विभाग द्वारा स्वतन्त्रता से पूर्व प्रान्तीय सरकारों को भेजे गये एक परिपत्र द्वारा की गई, जिसके अनुसार काम पर आने वाले कुछ निर्धारित श्रमिकों में से जितने प्रतिशत श्रमिक काम से अनुपस्थित रहते है उस अनुपात को ही श्रमिकों की अनुपस्थिति दर कहा जा सकता है। इस प्रकार, यह दर ज्ञात करने के लिये हमें काम पर आने वाले निर्धारित (Scheduled) श्रमिकों की संख्या तथा वास्तव में उपस्थित श्रमिकों की संख्या मालूम होनी चाहिये। एक श्रमिक जो किसी पारी के एक भी अंश में उपस्थित हो उसे उपस्थित ही मानना चाहिये। एक श्रमिक तब ही काम करने के लिये निर्धारित समझा जायगा जब मालिक के पास श्रमिक के लिये कार्य विद्यमान हो और श्रमिक भी उससे अवगत हो तथा जब मालिक को काफी पहले से ही यह ज्ञात न हो कि श्रमिक निर्धारित समय पर उपस्थित न हो सकेगा। अग्रांकित उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। एक ऐसा श्रमिक जो नियमित निश्चित छुट्टी पर है उसको न तो काम

पर आने वाला निर्धारित श्रमिक समझना चाहिए और न ही अनुपस्थित। यही बात मिल-मालिकों के द्वारा जबरी छुट्टी (Lay-off) पर भी लागू होती है। इसके विपरीत, यदि एक श्रमिक नियमित छुट्टी के काल के अतिरिक्त अवकाश की प्रार्थना करता है तो वह उस समय तक काम पर आने वाले निर्धारित श्रमिकों में से अनुपस्थित समझा जायेगा, जब तक वह लौट न आय या उसकी अनुपस्थिति की अवधि इतनी न हो कि उसका नाम सक्रिय श्रमिकों की सूची में से काटा जा सके। ऐसी तिथि के पश्चात् वह श्रमिक न तो काम करने के लिये निर्धारित समझा जायेगा और न ही अनुपस्थित। इसी प्रकार से एक ऐसा श्रमिक जो बिना सूचना दिये हुए नौकरी छोड़ देता है उसको निर्धारित कार्य से उस समय तक अनुपस्थित समझना चाहिए जब तक सक्रिय सूची से उसका नाम हटा न दिया जाय। परन्तु जहां तक हो सके, यह अवधि एक सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि कोई हड़ताल चल रही है तो हड़ताली श्रमिकों को न तो कार्य करने के लिए निर्धारित समझना चाहिये और न ही अनुपस्थित, क्योंकि हड़ताल द्वारा नष्ट समय के आँकड़े अन्य प्रकार से एकत्रित किये जाते हैं। अनुपस्थिति दर के आँकड़ों की गणना मासिक आधार पर होती है।

अनुपस्थिति की व्यापकता (Extent of Absenteeism)

अनुपस्थिति के सम्बन्ध में प्राप्त आँकड़े इतने पर्याप्त नहीं रहे हैं कि उनके आधार पर किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। अनुपस्थिति के आँकड़े एकत्रित करने में किसी सैद्धान्तिक प्रणाली को नहीं अपनाया गया है। संस्थाओं ने आँकड़े एकत्रित करने की जो प्रणालियाँ अपनाई हैं वह भी समान नहीं रही हैं। विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित करने में एक कठिनाई यह है कि जैसे ही एक श्रमिक अनुपस्थित होता है वैसे ही एक बदली का श्रमिक उसके स्थान पर रख लिया जाता है और अनुपस्थिति वहीं पर अंकित नहीं की जाती। अनेक बार ऐसा भी होता है कि अनुपस्थिति की दर की गणना करते समय, 'अधिकृत अनुपस्थिति' (जब कि श्रमिक उपार्जित, आकस्मिक अथवा चिकित्सा अवकाश लेता है) और अनधिकृत अनुपस्थिति' (जबकि श्रमिक बिना अवकाश के ही अनुपस्थित हो जाता है) के बीच कोई भेद नहीं किया जाता। इस प्रकार से प्राप्त आँकड़ों की सत्यता को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता।

युद्धकाल में, भारत सरकार ने एक विशेष फार्म पर अनुपस्थिति के आँकड़े ऐसे कारखानों से मांगे थे जो इनका हिसाब रखते हों। उसके बाद से श्रमिक ब्यूरो को अनुपस्थिति के आँकड़े अनेक संस्थाओं से, राज्य सरकारों से और खानों के मुख्य निरीक्षक से प्राप्त होने थे और ब्यूरो उन्हें ' इण्डियन लेबर जनरल" में प्रकाशित करता है। अनुपस्थिति के आँकड़े श्रमिक ब्यूरो द्वारा आजकल सावधिक आधार पर दो पृथक् शृंखलाओं में एकत्र तथा प्रकाशित किये जाते हैं (क) सन् १९५२ के खान अधिनियम के अन्तर्गत सभी कोयला खानों से आँकड़े एकत्र किये जाते हैं और (ख)

आँकडा एकत्रीकरण अधिनियम १६५३ के अन्तर्गत आँकडे ऐसे सभी कारखानों से, जो चालन शक्ति का प्रयोग करते हों और जहां ५० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हों, अथवा उनमें जो चालन शक्ति (motive power) का प्रयोग न करते हों, किन्तु वहां १०० या इनसे अधिक श्रमिक कार्य करते हो तथा विद्युत उपक्रमों बन्दरगाहों तथा बागानों से आकडे एकत्र किये जाते हैं।

फरवरी १६८० में श्रमिक ब्यूरो की शृंखलाओं के अन्तर्गत एकत्र की गई कुछ उद्योगों की अनुपस्थिति प्रतिशत दर इस प्रकार थी—सूती कपड़ा मिलें—मद्रास १४ ८, मदुरा १३ ६, कोयम्बतूर १३ ८, तिरनेलवली ११ ५, पाण्डेचेरि २७ ५, अन्य १६ ७, शोलापुर ३८ ४, बम्बई २५·७, कर्नाटक २५ ६, अहमदाबाद (१६७६) १२ ८, कानपुर (१६७८) ११ ६ ऊनी मिलें—धारीवाल २५·१, कानपुर (१६७८) १७ ४, लोहा व इस्पात—बिहार १६ ५, तमिलनाडु १८ ४, फौजी शस्त्र फैक्टरी—पश्चिमी बगाल १० ८, महाराष्ट्र १६ २, मध्यप्रदेश ११ ८, उत्तरप्रदेश ११ ५, तमिलनाडु ११ ६, सीमेन्ट फैक्टरी—आन्ध्रप्रदेश १७ ७, तमिलनाडु १५ ८, पश्चिमी बगाल १५ ६, बिहार १८·६, दियासलाई फैक्टरी—महाराष्ट्र १५ ८, पश्चिमी बगाल १७·४, असम २२·५ कागज मिलें—उडीसा १७ १, दूर सचार उद्योग—महाराष्ट्र २० ०, मध्यप्रदेश १३ ४ इञ्जीनियरिंग—बम्बई १७ ७, पश्चिमी बगाल (१६७६) २० २, कोयला खानें—(१६७७) १६·७, सोने की खानें—कर्नाटक २१ ३, बागान—कर्नाटक १७ ६, जूट तथा चाय उद्योग—पश्चिमी बगाल (१६७८) क्रमशः १०·३, और १८ १।

केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय द्वारा १६६० में किये गए अध्ययन के अनुसार; अनुपस्थिति दर इस प्रकार थी—सूती कपडा उद्योग में ७ से १८ ५ तक, ऊनी कपडा उद्योग में ७ ३, इञ्जीनियरिंग में १२ १, चमडा उद्योग में ६ ४, सोने की खानों में ६ ७, बागान में २० ५ तथा कोयले की खानों में १३ २।

अनुपस्थिति के प्रभाव

उपरोक्त आकडों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश के सगठित उद्योगों में श्रमिकों की अनुपस्थिति अत्यन्त व्यापक है। इस अनुपस्थिति से दोहरी हानि होती है। प्रथम तो इससे श्रमिकों को ही स्पष्ट हानि होती है। उपस्थिति में अनियमितता उनकी आय को कम कर देती है क्योंकि 'काम नहीं, तो वेतन भी नहीं, ही साधारण नियम है। मालिकों को हानि इससे भी अधिक होती है, क्योंकि अनुपस्थिति से अनुशासन और कार्यकुशलता दोनों को ही क्षति पहुँचती है और उत्पादन कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त, अनुपस्थिति से एक अन्य दोष यह उत्पन्न हो जाता है कि मालिकों को या तो सदैव कुछ अतिरिक्त श्रमिकों को रखना पडता है, जिससे आकस्मिक आवश्यकता के समय उसको काम पर लगाया जा सके या फिर अनुपस्थिति के समय उनको ऐसे श्रमिकों को भर्ती करना पडता है जो उनको तत्काल ही प्राप्त हो जाते हैं, यद्यपि ऐसे श्रमिक साधारणतया कुशल नहीं होते। कुछ और

श्रमिको की अनुपस्थिति नियमित हो जायगी और उनके विरुद्ध अनुशासनीय कार्यवाही करने की आवश्यकता न पड़ेगी। औद्योगिक नगरो मे श्रमिको के रहने के लिए अच्छे मकानो का प्रबन्ध भी उपस्थिति की वृद्धि मे काफी सहायक सिद्ध हो सकता है। श्रमिको को समुचित रूप से शिक्षित एव सगठित करके और उद्योग एव उसके प्रबन्ध मे उनको साझीदार बनाकर उनमे उत्तरदायित्व की भावना पैदा की जा सकती है। इससे भी उनकी अनुपस्थिति कम होगी। श्रमिको को कार्य अधिक करने के लिये प्रोत्साहन देने हेतु बोनस देने की योजना मे तथा बोनस को उत्पादन से सम्बन्धित करने से भी अनुपस्थिति कम हो जायगी।

श्रमिकावर्त्त
(Labour Turnover)

परिभाषा (Definition)

श्रमिकावर्त्त तथा अनुपस्थिति मे अन्तर है। श्रमिकावर्त्त तो किसी उद्योग सस्था मे कर्मचारियो के हुए परिवर्तन को कहा जाता है और अनुपस्थिति उस अवस्था को कहा जाता है जब श्रमिक अपना नियमित काम करने के लिए उपस्थित नही होता। इस प्रकार श्रमिकावर्त्त कर्मचारियो के परिवर्तन की वह दर है जो किसी उद्योग सस्था मे एक विशेष समय मे पाई जाती है, अर्थात् एक समय-विशेष मे सीमा तक पुराने कर्मचारी किसी सस्था को छोड देते है और नये कर्मचारी आ जाते है, उसको श्रमिकावर्त्त कहते हैं।

श्रमिकावर्त्त प्रभाव (Effect of Labour Turnover)

श्रमिकावर्त्त रोजगार की अस्थिरता का कारण भी है और उसका परिणाम भी। कुछ सीमा तक तो श्रमिकावर्त्त अनिवार्य-सा हो जाता है, जैसे—श्रमिको की माँग न रहने पर श्रमिक कार्य से हटा दिये जाते है। कुछ श्रमिकावर्त्त स्वाभाविक भी होता है, जैसे—वृद्ध श्रमिको के अवकाश ग्रहण कर लेने पर तथा नये श्रमिको की नियुक्ति होने पर। ऐसा श्रमिकावर्त्त कुछ सीमा तक उचित कहा जा सकता है। परन्तु इस प्रकार के श्रमिकावर्त्त की प्रतिशत दर बहुत थोडी है। अधिकतर श्रमिकावर्त्त त्याग-पत्र देने तथा बर्खास्तगी के कारण होता है। श्रमिकावर्त्त की ऊँची दर श्रमिको की कार्यकुशलता और उत्पादन के परिणाम तथा गुणो की दृष्टि से हानिप्रद है। श्रमिकावर्त्त के कारण श्रमिक अनेक ऐसे लाभो से वचित रह जाते है, जो निरन्तर एक स्थान पर कार्य करने से उन्हे मिल सकते है, जैसे—क्रमबद्ध वेतन वृद्धि, बोनस, प्रॉविडेण्ट फड, व छुट्टी इत्यादि। इसके अतिरिक्त भर्ती प्रणाली के दोषपूर्ण होने के कारण उनको बहुधा पुन नौकरी पाने के लिये कुछ मूल्य भी चुकाना पडता है। श्रमिको के सगठन पर भी श्रमिकावर्त्त का बुरा प्रभाव पडता है, क्योकि जब श्रमिक एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे या एक कारखाने से दूसरे कारखाने मे चले जाते है तो उनमे एकता कठिन हो जाती है। श्रमिको को बार-बार काम पर लगाने से कार्यालय मे कुछ व्यय भी बढ जाता है और जब श्रमिको को किसी कार्य

विशेष के लिए प्रशिक्षण देना होता है तो श्रमिकावर्त्त के कारण ऐसे प्रशिक्षण का व्यय भी अधिक हो जाता है। श्रमिकावर्त्त के कारणदेश के मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों का पूर्णतया उपयोग नहीं हो पाता, यद्यपि श्रमिकावर्त्त का यह दोष भारत जैसे देश में, जहाँ बेकारी तथा अपूर्ण रोजगार वाले श्रमिकों की सख्या अत्यधिक है, साधनों के पूर्ण उपयोग की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखता।

श्रमिकावर्त्त को मापने मे कठिनाइयाँ

(Difficulties in Measuring Turnover)

अनुपस्थिति के आँकडो की भाँति ही श्रमिकावर्त्त के आँकडे भी पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त नहीं है। श्रमिकावर्त्त को ठीक-ठीक जानना और मापना कठिन भी है। यदि इस बात को मान लिया जाए कि किसी सस्था मे नौकरियो की सख्या एक-सी ही रहेगी तब श्रमिकावर्त्त को मापने मे अधिक कठिनाइयाँ न होगी, क्योकि तब या तो कुल वियुक्ति दर (Separation Rate) (अर्थात् कितने कर्मचारी एक निश्चित समय मे नौकरी छोड जाते है) को मानकर चल सकते है, या कुल नियुक्ति दर (Accession Rate) (अर्थात् कितने कर्मचारियों की एक निश्चित समय मे नियुक्ति होती है) को मान सकते है, क्योकि जितने श्रमिक एक सस्था को एक समय म छोडते है उतने ही श्रमिक साधारणत उस सस्था मे नौकरी पर आ भी जाने चाहियें। कारणो के आधार पर वियुक्ति दर को तीन हिस्सो मे बाटा जा सकता है, जिनको हम त्याग दर बर्खास्तगी दर, और जबरी छुट्टी दर कह सकते हैं। परन्तु जब व्यवसाय मे मन्दी और तेजी होती है तब नौकरियो की सख्या भी बदलती रहती है और फिर यह आवश्यक नहीं है कि वियुक्ति दर और नियुक्ति दर एक ही समान हो। ऐसी अवस्था मे, श्रमिकावर्त्त की माप कठिन हो जाती है। दूसरी कठिनाई यह है कि जब श्रमिक कुछ दिनो के लिए छुट्टी लेकर अनुपस्थित हो जाते हैं तब तत्काल ही बदली के श्रमिको से उनके स्थानो की पूर्ति कर दी जाती है। स्थायी श्रमिक न त्याग-पत्र देते है और न बरखास्त किये जाते हैं, अपितु वे जबरी छुट्टी पर होते है। इस प्रकार, श्रमिकावर्त्त की दर तो काफी ऊँची मालूम होती है परन्तु वास्तव मे ऐसा नहीं होता। तीसरी कठिनाई यह है कि श्रमिकावर्त्त तथा अनुपस्थिति के पारस्परिक सम्बन्ध को ठीक प्रकार से समझा नहीं जाता। यदि एक श्रमिक दो या तीन माह छुट्टी पर रहकर वापिस आ जाए तो इस अवधि मे उसकी स्थान-पूर्ति हो चुकी होती है। अत श्रमिकावर्त्त की माप कठिन हो जाती है। चौथे एक और बात ध्यान मे रखने की यह है कि अगर एक श्रमिक उसी उद्योग-धन्धे मे एक कारखाना छोडकर दूसरे कारखाने मे नौकरी करने चला जाता है, तो दोनो कारखानो मे श्रमिकावर्त्त की दर बढ जाती है। परन्तु इससे श्रमिक की कार्य-कुशलता पर इतना बुरा प्रभाव नहीं पडता।

इन कठिनाइयो के कारण श्रमिकावर्त्त की अनेक उद्योग-धन्धो मे ऊँची दर होने पर भी उसके ठीक ठीक आकडे प्राप्त नहीं हो पाते। फिर भी अनेक समितियो

तथा अनुसंधानकर्त्ताओं ने जो भी आँकड़े मिल गये हैं, एकत्रित किये हैं जिनके आधार पर विभिन्न उद्योग-धन्धों में श्रमिकावर्त्त की सीमा का अनुमान लग सकता है। श्रमिकावर्त्त के आँकड़े अब आँकड़ा एकत्रीकरण अधिनियम १९५३ के अन्तर्गत सांविधिक रूप से सभी उद्योगों में समान रूप में एकत्र किये जाते हैं। जम्मू और काश्मीर में ऐसे आँकड़े आँकड़ा एकत्रीकरण अधिनियम १९६० के अन्तर्गत एकत्र किये जाते हैं।

श्रमिकावर्त्त की व्यापकता (Extent of Labour Turnover)

रॉयल श्रम आयोग के अनुसार अधिकतर कारखानों में नये कर्मचारियों की भर्ती प्रत्येक माह कम से कम ५% तक थी। श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार श्रमिकावर्त्त की मासिक प्रतिशत दर विभिन्न उद्योगों में इस प्रकार थी—सूती कपड़ा ०.६ गर्म कपड़ा ०.४, सीमेंट २.०, काँच २.१, चावल ३.१ तथा सोने की खानें १.६। डॉ० मुकर्जी के अनुसार बंगाल की जूट की मिलों में श्रमिकावर्त्त की मासिक प्रतिशत दर ६.२६ थी।

श्रमिक ब्यूरो द्वारा उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण के अन्तर्गत एकत्रित वर्ष १९७४-७५ के श्रमिकावर्त के आँकड़े यहीं आगे दिये गये हैं। ये आँकड़े विभिन्न राज्यों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों के विभिन्न प्रमुख उद्योगों से सम्बन्धित हैं। सर्वेक्षण के लिये 'नियुक्ति" (Accession) शब्द से आशय उन श्रमिकों की कुल संख्या से लिया गया जो एक निश्चित अवधि में रोजगार में बढ़ाये गये हों, भले ही यह वृद्धि नई नियुक्ति के कारण हो, या पुनर्नियुक्ति के कारण हो अथवा एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत चलने वाले अन्य संस्थानों अथवा इकाइयों से स्थानान्तरण के कारण हो। किन्तु इसमें एक ही संस्थान के अन्तर्गत विभिन्न विभागों के पारस्परिक स्थानान्तरणों (Transfers) को छोड़ दिया गया था। "वियुक्ति" (Separation) शब्द का अर्थ है श्रमिक अथवा मालिक की ओर से काम से सम्बन्ध-विच्छेद। मृत्यु अथवा सेवा-निवृत्ति (Retirement) के कारण सेवा की समाप्ति इसमें सम्मिलित थी। युक्तिकरण (Rationalisation) या आधुनिकीकरण (Modernisation) अथवा अन्य किसी कारण से होने वाली सेवा निवृत्ति को भी 'वियुक्ति' माना गया था। संस्थान के बाहर को होने वाले स्थानान्तरणों को भी इसमें सम्मिलित किया गया था।

(नि=नियुक्ति दर का वार्षिक प्रतिशत और वि=वियुक्ति दर का वार्षिक प्रतिशत)।

खाद्य पदार्थ—उनकी तैयारी तथा परिरक्षण (नि) १०८.६, (वि) १०६.०, *खाद्य पदार्थ—तेल, चाय, काफी आदि* (नि) ४२.२, (वि) २१.८, *पेय, तम्बाकू व तम्बाकू उत्पाद* (नि) ४१.१, (वि) ४१.५, *सूतीवस्त्र* (नि) २०.४, (वि०) १७.४, ऊन, सिल्क आदि (नि) ३६.०, (वि) ३७.२ जूट (नि) ६.५, (वि) ८.१, काष्ठ तथा काष्ठ उत्पाद (नि) १७.२, (वि) १८.८, कागज, छपाई तथा प्रकाशन (नि)

१० ६, (वि) १० २, चमड़ा (नि) १६·१ (वि) १८ ० रबड, पेट्रोलियम तथा कोयला (नि) २४ ८, (वि) २६·७ रसायन तथा उत्पाद (नि) २१·८, (वि)२१ २, अधातु खनिज पदार्थ (नि) ७६ ६, (वि) ७८·६, मूल धातु तथा मिश्र धातु (नि) १६·१ (वि) १७·४, धातु उत्पाद (नि) २७ ८, (वि) २६ ८, मशीनरी तथा मशीनी औजार (नि) १६ ८, (वि) १७ ७, विद्युत मशीनरी तथा उपकरण (नि) २१ ६, (वि) १८ ६, परिवहन सज्जा (नि) १० ३ (वि) ११ ४, अन्य विनिर्माण उद्योग (नि) २३ ०, (वि) २८ ७, बिजली (नि) १० २, (वि) ७ ६, गैस तथा भाप (नि) २ ६, (वि ४ ६, जलकल तथा पूर्ति (नि) १५ ०, (वि) १४ ७, भण्डारण तथा माल गोदाम (नि) २४ ० (वि) ८ ०, सफाई सेवायें (नि) १७ ६, (वि) ३ ६, मनोरंजन सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक सेवायें (नि) ६ १, (वि) २५ ४, व्यक्तिगत सेवायें (नि) ३२ ५, (वि) ४१ २ मरम्मत सेवायें (नि) १४ ८, (वि) १४ ५; सभी उद्योग (नि) २६ ६, (वि) २४ ३।

विभिन्न राज्यों तथा संघशासित क्षेत्रों में, सभी उद्योगों में श्रमिकावर्त्त की वार्षिक प्रतिशत दर १६७४–७१ में निम्न प्रकार थी—

आन्ध्र प्रदेश (नि) २१ ८, (वि) १८ ६, असम (नि) ५ ८, (वि) ५ ६, बिहार (नि) २६ ०, (वि) २४ ८, गुजरात (नि) ४४ ४, (वि) ४२ ६, हरियाणा (नि) ५० ५, (वि) ५२ ४, हिमाचल प्रदेश (नि) ६ ६, (वि) ११ १, जम्मू तथा काश्मीर (नि) ३० ६, (वि) २६ ८, कर्नाटक (नि) २० ४, (वि) १६ ०, केरल (नि) ३२ ८ (वि) १३ ३, मध्यप्रदेश (नि) १७ ४ (वि) १३ ८, महाराष्ट्र (नि) २४ ४, (वि) २४ ४, मेघालय (नि) ० ४ (वि) १ ३, उड़ीसा (नि) ७ १, (वि) ५ ३, पंजाब (नि) ५५ ४, (वि) ५७ १, राजस्थान (नि) ३४ ४, (वि) ३० ८ तमिलनाडु (नि) ११ ४, (वि) ११ ७, उत्तरप्रदेश (नि) ७३ १, (वि) ६७ ०, पश्चिमी बंगाल (नि) ६ ०, (वि) ५ ३, अण्डमान निकोबार (नि) १८ ८, (वि) १२ ०, चण्डीगढ़ (नि) ३३ ४ (वि) ३२ ८, दिल्ली (नि) २७ ४, (वि) २७ ६, गोआ, दामन, दीव (नि) २१ ६, (वि) २१ ७, मणिपुर (नि) २ ०, (वि) १ २, पाण्डेचेरी (नि) २० ६ (वि) २५ ७, त्रिपुरा (नि) ६ ७, (वि) ७ ३, सभी राज्य तथा संघशासित क्षेत्र (नि) २६ ६, (वि) २४ ३।

श्रमिकों की भर्ती की अपनी विशेष प्रणाली होने के कारण बागान के सम्बन्ध में श्रमिकावर्त्त के पर्याप्त आँकड़े प्राप्त नहीं हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यद्यपि श्रमिकावर्त्त के कोई नियमित आँकड़े एकत्रित नहीं किए जाते हैं, और न प्रकाशित होते हैं, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय उद्योग-धन्धों में श्रमिकावर्त्त व्यापक है। परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि श्रमिकावर्त्त की दर अनुपस्थिति दर से कम है और भारतवर्ष में श्रमिकावर्त्त अन्य औद्योगिक देशों की अपेक्षा कम है। इसका मुख्य कारण नगरों में अत्यधिक बेरोजगारी और गाँवों

में अपूर्ण रोजगार का होता है, जिससे कोई भी व्यक्ति अपना रोजगार जहाँ तक सम्भव हो, छोड़ना नहीं चाहता।

श्रमिकावर्त्त के कारण (Causes of Labour Turnover)

श्रमिकावर्त्त के मुख्य कारण त्यागपत्र देना तथा बर्खास्तगी है। त्यागपत्र देने के अनेक कारण हैं जैसे—काम करने के वातावरण तथा व्यवस्थाओं के प्रति असन्तोष, अपर्याप्त मजदूरी, खराब स्वास्थ्य, बीमारी, वृद्धावस्था, पारिवारिक समस्यायें तथा कृषि सम्बन्धी कार्यों के लिए गाँव का प्रवास। अनेक उद्योगों जैसे—चाय बागान, सूती कपड़ा, जूट तथा छोटे उद्योग-धन्धे जैसे—चमड़ा, चावल कूटना, अभ्रक आदि के श्रमिकों का गाँव से सम्बन्ध अब भी काफी महत्त्वपूर्ण है। श्रमिकों को गाँव जाने के लिए कभी छुट्टी प्राप्त नहीं होती इसलिए फसल काटने के समय त्यागपत्र देकर चले जाते हैं। इसके विपरीत बर्खास्तगी श्रमिकावर्त्त कारणों की दृष्टि से उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है। बर्खास्तगी के कई कारण होते हैं। बर्खास्तगी अधिकतर श्रमिकों के प्रति अनुशासनीय कार्यवाही के कारण होती है। जबकि श्रमिक ठीक प्रकार से काम नहीं करते या आज्ञा-उल्लंघन तथा दुर्व्यवहार करते हैं अथवा हड़तालों में भाग लेते हैं। बर्खास्तगी का एक कारण यह भी है कि ऐसे श्रमिक जो 'श्रमिक सभा' में भर्ती किये जाते हैं, मालिकों अथवा मध्यस्थों द्वारा किसी न किसी बहाने बनाकर के निकाल दिये जाते हैं। कभी-कभी उच्च वेतन पाने वाले पुराने श्रमिकों की सेवायें समाप्त कर दी जाती हैं और कम वेतन पाने वाले नये श्रमिक भर्ती कर लिये जाते हैं ताकि वेतन बिल की धनराशि कम हो सके। अस्थायी श्रमिकों में श्रमिकावर्त्त इसलिए अधिक होती है कि कार्य-समाप्ति पर श्रमिकों को निकाल दिया जाता है और जब कार्य फिर आरम्भ होता है तो नये श्रमिकों को भर्ती कर लिया जाता है। बदली श्रमिकों को रखने की प्रणाली के कारण भी श्रमिकावर्त्त में वृद्धि हो जाती है, क्योंकि अनेक बार बदली श्रमिकों को कार्य दिलाने के लिए पुराने श्रमिकों को छुट्टी लेने के लिए बाध्य किया जाता है। लड़ाई के दिनों में श्रमिकावर्त्त इसलिए अधिक हो गया था क्योंकि वेतन वृद्धि के आकर्षण तथा अन्य उद्योगों में प्राप्त अतिरिक्त सुविधाओं के कारण श्रमिकों ने एक कारखाने से दूसरे कारखाने में या एक उद्योग से दूसरे उद्योग में जाना आरम्भ कर दिया था। श्रमिकों को पाने के लिए मालिकों में भी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा आ गई थी और अनेक बार एक कारखाने के श्रमिकों को दूसरे कारखाने के मालिक प्रलोभन देकर बुला लेते थे।

श्रमिकावर्त्त को कम करने के उपाय
(Measures to Reduced Labour Turnover)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है श्रमिकावर्त्त अवाञ्छनीय है, क्योंकि इससे कार्य-कुशलता कम होती है और उत्पादन कम हो जाता है। अतः कुछ ऐसे उपाय

अपनाने आवश्यक है जिनसे श्रमिकावर्त कम हो। इसके लिए एक निश्चित नीति तथा कार्य-प्रणाली का अनुसरण आवश्यक है। दुर्भाग्यवश अधिकांश मालिक अभी तक श्रमिकों में, विशेष रूप से अनिपुण श्रमिकों में, श्रमिकावर्त के कम होने के लाभों को भली-भांति समझते नहीं हैं। साधारणतया शान्तिकाल में अनिपुण श्रमिक काफी संख्या में प्राप्त हो जाते हैं। इस कारण मालिक कम वेतन पर श्रमिक पाने के लिए एक श्रमिक को निकाल कर दूसरे को भर्ती कर लेते हैं और यदि उन्हें अपनी मजदूरी के बिल में कमी करने का अवसर मिलता है तो श्रमिकावर्त को अधिक अच्छा समझते हैं। वह इस बात का अनुभव नहीं करते कि नये श्रमिकों को मशीनों और काम के नये तरीके अभ्यस्त होने में कुछ समय लगता है और निरन्तर कार्य करने से अनिपुण श्रमिक भी कुछ कुशलता प्राप्त कर लेते हैं जिससे सबको लाभ होता है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिकावर्त की समस्या भर्ती की समस्या से सम्बन्धित है क्योंकि अधिकतर उद्योगों में भर्ती प्रणाली में काफी भ्रष्टाचार तथा रिश्वत प्रचलित है और मध्यस्थ सदा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि पुराने कर्मचारी निकाल दिये जायें और नये भर्ती हों जिससे उन्हें अपनी जेब गर्म करने का अवसर मिले। इस प्रकार, श्रमिकावर्त की समस्या काफी हद तक भर्ती की समस्या से ही सम्बन्धित है। इसलिये भर्ती प्रणाली में सुधार करने से श्रमिकावर्त कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, ऐसे उपाय भी अपनाने चाहियें जिनसे श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में उन्नति हो उनकी नौकरी सुरक्षित रहे तथा नगरों में ऐसी सुविधायें प्राप्त होनी चाहिये कि श्रमिक बार-बार अपने गाँव न जायें। बदली नियन्त्रण योजना भी जो बम्बई आदि अनेक स्थानों पर लागू हो चुकी है, श्रमिकावर्त को कम कर सकती है। जैसा कि बम्बई की सूती कपड़ा मिल श्रमिक जाँच समिति ने भी संकेत किया था, अत्यधिक श्रमिकावर्त को कम करने का मुख्य उपाय भर्ती की पद्धतियों में उन्नति करना ही है और इसके लिये कुछ विशेष प्रभावपूर्ण व क्रान्तिकारी उपाय होने चाहिये, जैसे—रोजगार दफ्तरों की स्थापना, मध्यस्थों के अधिकारों पर नियन्त्रण तथा कार्मिक (Personnel) विभाग का उचित संगठन, लाभ सहभाजन योजना, आदि। एक स्थायी श्रमिक वर्ग की स्थापना के लिये और भी कई बातों की आवश्यकता है जैसे—कार्य की दशाओं में उन्नति, श्रम कल्याणकारी कार्य सामाजिक बीमा योजना, सवेतन छुट्टियाँ तथा अधिक मजदूरी, आदि। इसके अतिरिक्त, श्रम संघों को प्रोत्साहन देने तथा उनकी उन्नति करने से औद्योगिक नगरों में स्थायी श्रमिक वर्ग की स्थापना हो सकती है।

सवेतन छुट्टियाँ और अवकाश
(Leave with Pay And Holidays)

छुट्टियों की आवश्यकता तथा महत्त्व :
(The Need and Value of Holidays)

श्रमिको तथा मालिको व पारस्परिक सम्बन्धो को अच्छा बनाने तथा औद्योगिक कार्य-कुशलता को स्थिर रखने तथा उसकी वृद्धि के लिए छुटिटयाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारतीय उद्योग-धन्धो म अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त्त की प्रतिशत दर अधिक होने का कारण यह भी है कि श्रमिको को पर्याप्त छुट्टियाँ तथा अवकाश मिलने की सुविधा नही है। बिहार श्रमिक जाच समिति न ठीक ही कहा है कि "पश्चिमी देशो की अपेक्षा भारत म छुटिटयो तथा वेतन सहित अवकाश की आवश्यकता अधिक है क्योकि यहाँ जलवायु गम है श्रमिको का भोजन खराब तथा अपर्याप्त है शारीरिक दृष्टि मे वे दुबल है और उनक रहन का वातावरण अस्वास्थ्यकर (Insanitary) व अनाकषक है। अधिकाश श्रमिक गाँवो मे आते है और वहा से अपना सम्बन्ध बनाए रखत ह। अत जो भी छुट्टियाँ उन्ह मिलती है वे उन्ह अपने गाव म ही बिताने का प्रयत्न करत ह। इससे न केवल उनक स्वास्थ्य को ही लाभ होता है अपितु चाहे एक वष म थोडे ही दिना क लिय जायें, इसस उनके हृदय मे प्रसन्नता का सचार होता है। रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि मालिको को छुट्टियो के महत्व तथा आवश्यकता को स्वीकार करना चाहिए और श्रमिको को एक निश्चित काल की छुट्टी लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और उन्ह यह आश्वासन देना चाहिए कि वापिस आने पर वे अपने पुराने कार्य को पुन प्राप्त कर सकेंगे। यदि छुट्टियाँ बिना वेतन या भत्ते के भी दी जायेंगी, तब भी वर्तमान पद्धति मे एक बहुत बडा सुधार होगा। कानपुर श्रम जाँच समिति तथा बम्बई की कपडा मिल श्रमिक जाँच समिति ने भी वेतन सहित छुट्टियों के महत्व पर जोर दिया है। डॉ० राधाकमल मुकर्जी ने भी औद्योगिक श्रमिको के लिए छुट्टियो के महत्त्व और आवश्यकता की ओर सकेत करते हुए इसकी विवेकपूर्ण व्यवस्था पर जोर दिया था।

इस प्रकार, औद्योगिक श्रमिको की प्रवासिता को नियमित बनाने के लिये, वर्तमान भर्ती की पद्धति के कुछ दोषो को दूर करने के लिए, अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त्त को कम करने के लिये तथा औद्योगिक श्रमिको की कार्यकुशलता को बढाने और मालिको से सम्बन्ध अच्छे बनाने के लिय छुट्टियो तथा अवकाश का महत्व वास्तव मे बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त, यह तो मानना ही पडेगा कि श्रमिक भी मानव है, केवल उत्पादन के उपादान मात्र ही नही है। किसी भी मनुष्य के लिए, बिना छुट्टी या विश्राम के वर्षो तक निरन्तर काम मे लगे रहना कठिन है। मनुष्य के जीवन मे अनेक ऐसे अवसर आते है जब बीमारी, आवश्यक पारिवारिक कार्यों तथा सामाजिक उत्सवों, आदि के कारण वह अपने काम पर जाने मे

असमर्थ होता है। ऐसे अवसरों पर उसे छुट्टी अवश्य मिलनी चाहिए। अत वेतन सहित अवकाश देने का आन्दोलन जोर पकड चुका है और अनेक औद्योगिक देशों मे या तो कानून द्वारा या श्रमजीवियों मालिकों व पारस्परिक समझौते द्वारा ऐसी छुट्टियों की सुविधा मिल रही है।

भारतीय उद्योगों मे छुट्टियाँ और अवकाश
(Holidays and Leave in Indian Industries)

भारत मे यद्यपि अनेक उद्योगों मे छुट्टियाँ और अवकाश प्रदान किया जाता है, परन्तु इन छुट्टियों का महत्व अभी पूर्णरूप से समझा नही गया है। छुट्टियाँ व अवकाश देने की रीतियाँ भी विभिन्न उद्योगों मे भिन्न-भिन्न हैं। अत इनके बारे मे कोई सामान्य निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। वेतन सहित छुट्टिया केवल स्थायी श्रमिकों तथा क्लर्कों और मर्वेक्षण कर्मचारियों को ही दी जाती हैं। साधारण तथा दैनिक वेतन पाने वाले या कार्य के अनुसार वेतन पाने वाले तथा अस्थायी श्रमिकों को वेतन सहित छुट्टियाँ नही मिलती। अधिकतर कारखानों मे साधारणत रविवार की छुट्टी होती है और पर्वों पर भी छुट्टी प्रदान की जाती है। कुछ संस्थायें आकस्मिक तथा विशेषाधिकार छुट्टियाँ (Privilege leave) भी प्रदान करती है, परन्तु इस सम्बन्ध मे सन्तोषजनक प्रबन्ध नही है। फिर भी, दक्षिण भारत की मिलें वर्ष मे १० से १५ दिन तक की वेतन सहित छुट्टी देने की सहृदयता दिखाती है। नागपुर की एम्प्रेस मे जो श्रमिक २० वर्ष तक नौकरी कर लेते है १२ दिन की वेतन सहित छुट्टियों के अधिकारी हो जाते है। १६४३ से जूट के उद्योग मे प्रत्येक श्रमिक को ७ दिन की वेतन सहित छुट्टी मिलती है। बगाल के अधिकाश रासायनिक उद्योगों मे रविवार के अतिरिक्त ११ से २४ दिन तक की सवेतन छुट्टी दी जाती है। महाराष्ट्र की सूती कपडा मिलें भी अपने कुछ श्रेणियों के श्रमिकों को सवेतन छुट्टियाँ प्रदान करती हैं। इजीनियरिंग उद्योगों मे भी अधिकांश श्रमिकों को सवेतन छुट्टियाँ मिलती है। तमिलनाडु मे, स्थायी श्रमिकों को २१ दिन की विशेष छुट्टियों का अधिकार है। रेलवे कर्मचारियों को भी आकस्मिक छुट्टियाँ प्रदान की जाती है। टाटा की लोहे और इस्पात की कम्पनी के मासिक वेतन पाने वाले श्रमिकों को एक वर्ष की नौकरी पर एक माह की सवेतन छुट्टियाँ मिलती हैं और ऐसे श्रमिकों को, जिनकी मजदूरी दैनिक कार्य के अनुसार निर्धारित होती है परन्तु अदायगी महीने भर बाद होती है १४ दिन की सवेतन छुट्टियाँ मिलती है। साप्ताहिक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को कोई छुट्टी नही मिलती। सोने की खानों मे भीतरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिकों को २१ दिन की विशेषाधिकार छुट्टी और ऊपरी धरातल पर काम करने वालों को १४ दिन की सवेतन छुट्टी मिलती है। खनिज तेल के उद्योग मे दैनिक वेतन पाने वाले श्रमिकों को १४ दिन की सवेतन छुट्टियाँ तथा २८ दिन की वेतन-रहित छुट्टियों का अधिकार है। पजाब मे, मासिक वेतन पाने वाले श्रमिकों को १५ दिन की सवेतन छुट्टियों के साथ-साथ ६ सवेतन धार्मिक छुट्टियाँ

भी मिलती है। अन्य स्थानो तथा सस्थाओ मे भी छुट्टियो व अवकाश का प्रवन्ध है, परन्तु सवेतन या वेतन-रहित छुट्टियाँ प्रदान करने की कोई नियन्त्रण रीति नही है। विभिन्न सस्थायें अपनी सुविधा के अनुसार छुट्टियाँ प्रदान करती है और इस हेतु उन्होंने अपने श्रमिको की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ बना ली है।[1] कुछ मालिक ३० दिन तक वेतनरहित छुट्टियाँ दे देते है। डाक्टरी प्रमाण-पत्र उपस्थित करने पर मालिक अपनी इच्छानुसार श्रमिको को सवेतन या वेतन-रहित बीमारी की छुट्टी भी प्रदान कर सकते है। सवेतन पर्वो की छुट्टियो की सख्या भी विभिन्न प्रदेशो मे भिन्न-भिन्न है।

छुट्टियो और अवकाश सम्बन्धी विधान[2]

(Legislation Regarding Holidays and Leave)

अवकाश और छुट्टियाँ प्रदान करने के लिये देश म कुछ वैधानिक सुविधायें भी है। १६३६ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन ने सवेतन छुट्टियो के सम्बन्ध मे एक अभिसमय पास किया था। भारत सरकार द्वारा यह अभिसमय स्वीकार नही हुआ और उसने सन् १६३७ म यह घोषित किया कि अभिसमय मे उल्लिखित सब सस्थाओ पर इसे लागू करना सम्भव नही था। फिर भी, फैक्टरी अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले सारे कारखानो मे एक साप्ताहिक छुट्टी प्रदान कर दी गई। केन्द्रीय सरकार ने १६४२ मे साप्ताहिक छुट्टी के लिय एक अधिनियम (Weekly Holidays Act) बनाया, जिसके अन्तगत सभी दुकानो के नौकरो को सप्ताह मे एक छुट्टी प्रदान करने की, तथा दुकानो को सप्ताह मे एक दिन बन्द करने की व्यवस्था की गई, परन्तु यह अधिनियम राज्यो को इस प्रकार के अधिनियम पास करने की या लागू करने की केवल अनुमति प्रदान करता है। कुछ राज्यो ने ही इस अधिनियम को अपनाया। इसके अतिरिक्त, सभी राज्य सरकारो ने दुकान व वाणिज्य सम्बन्धी कर्मचारियो (Shop and Commercial Establishment Employees) के लिये भी कानून बनाये हैं। अनेक राज्यो मे समय-समय पर इन अधिनियमो के सशोधन एव सुधार किये गये हैं। ये अधिनियम दुकानो तथा वाणिज्य सस्थाओ के नौकरो के काम करने के घण्टो, कार्य करने की दशाओ तथा उनके रोजगार का नियमन करते है और उनके लिये अवकाश तथा छुट्टियो की भी व्यवस्था करते है।

यह सभी अधिनियम सप्ताह म एक दिन की सवेतन छुट्टी की व्यवस्था करते है, परन्तु पश्चिमी बगाल और त्रिपुरा के अधिनियम इससे भी एक कदम आगे बढ गये हैं और सप्ताह मे डेढ दिन की छुट्टी की व्यवस्था करते है। असम के अधिनियम मे दुकान पर कार्य करने वाला के लिये तो सप्ताह मे १ दिन की छुट्टी तथा अन्य सस्थाओ मे १½ दिन की छुट्टी की व्यवस्था है। असम, आन्ध्र प्रदेश और

1 See Labour Investigation Committee Report, Pages 120-21

2 See Labour Year Books

तमिलनाडु के अधिनियम केवल दुकानों को एक दिन के लिये बन्द करने की व्यवस्था करते है तथा बम्बई और देहली के अधिनियमों में होटलों और थियेटरों आदि का जिक्र नहीं है। सभी अधिनियमों में अन्य अनेक प्रकार की छुट्टियों की भी व्यवस्था है। १२ माह की निरन्तर नौकरी के बाद पूरे वेतन सहित विशेषाधिकार छुट्टी (Privilege Leave) की व्यवस्था विभिन्न राज्यों में इस प्रकार है—गुजरात व महाराष्ट्र में २१ दिन, पश्चिमी बगाल में १८ दिन, असम में १६ दिन, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु व केरल में १२ दिन, उत्तर प्रदेश और देहली में १५ दिन (उत्तर प्रदेश में चौकीदारों के लिये ६० दिन) और मध्य प्रदेश तथा जम्मू व कश्मीर में एक माह, कर्नाटक, बिहार उडीसा पजाब, हरियाणा, चण्डीगढ़ और हिमाचल प्रदेश, में २० दिन के कार्य पर १ दिन, बिहार, हिमाचल प्रदेश एव कर्नाटक में बच्चों के लिये १५ दिन के कार्य पर १ दिन, राजस्थान और पाण्डेचेरी में १२ दिन के कार्य पर तथा त्रिपुरा में १८ दिन के कार्य पर १ दिन। ऐसी विशेष छुट्टियाँ एकत्रित भी की जा सकती है। पूरे वेतन सहित आकस्मिक छुट्टियां (Casual Leave) की व्यवस्था इस प्रकार है—असम, त्रिपुरा उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बगाल में १० दिन, तमिलनाडु पाण्डेचेरी, आन्ध्र प्रदेश, केरल और देहली में १२ दिन, मध्य-प्रदेश तथा जम्मू व कश्मीर में १८ दिन और पजाब, हरियाणा तथा चण्डीगढ में ७ दिन। बीमारी की छुट्टियां डाक्टरी प्रमाण-पत्र उपस्थित करने पर ही प्रदान की जाती हैं। इनकी व्यवस्था विभिन्न राज्यों में इस प्रकार है—असम में एक वर्ष की नौकरी के बाद आधे वेतन पर एक माह, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश व पाण्डेचेरी में पूर्ण वेतन पर १२ दिन, उत्तर प्रदेश में ६ महीने की नौकरी के बाद पूरे वेतन पर १५ दिन, पश्चिमी बगाल व त्रिपुरा मे आधे वेतन पर १४ दिन तथा हरियाणा, पजाब व चण्डीगढ में ७ दिन तथा उडीसा में एक वर्ष की नौकरी के पश्चात् १५ दिन। इसके अतिरिक्त असम में धार्मिक कार्यों के लिये तीन छुट्टियों की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश के अधिनियम मे वेतन सहित ५ गजेटेड छुट्टियों की व्यवस्था है। आन्ध्र प्रदेश मे समस्त गजेटेड छुट्टियाँ वेतन सहित प्रदान करने की व्यवस्था है। पजाब, हरियाणा, चण्डीगढ और हिमाचल प्रदेश में तीन राष्ट्रीय तथा ४ पर्वों की छुट्टियाँ प्रदान करने की व्यवस्था है। देहली मे तीन राष्ट्रीय छुट्टियाँ दी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त, सरकार ने एक 'सवेतन छुट्टी अधिनियम' (Holidays with Pay Act) पास किया था जिसको १ जनवरी १९४६ से लागू किया गया था। *यह केवल निरन्तर चालू कारखानों पर ही लागू किया गया था।* इस अधि-नियम के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को जो १२ माह तक किसी कारखाने में निरन्तर काम कर चुका हो, आगामी १२ महीनों में, अगर व्यस्क हो तो १० दिन की और यदि बालक हो तो १४ दिन की लगातार छुट्टी मिल सकती थी। ऐसी छुट्टियाँ दो वर्ष तक जमा की जा सकती थीं। छुट्टी के दिनों मे श्रमिकों को पिछले तीन

महीनो की दैनिक औसत मजदूरी के हिसाब से वेतन मिलने की व्यवस्था थी। आधा वेतन छुट्टी पर जाने से पहले और शेष वेतन वापिस आने पर दिया जा सकता था।

१९४८ के फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत उपर्युक्त अधिनियमों के अतिरिक्त, श्रमिकों को छुट्टियों की और भी सुविधायें प्रदान की गई है। १२ माह लगातार काम करने के पश्चात् साप्ताहिक छुट्टियों के अतिरिक्त प्रत्येक श्रमिक को निम्नलिखित दरों पर सवेतन छुट्टियां पाने का अधिकार दिया गया है—वयस्क—प्रत्येक २० दिन के काम पर एक दिन की छुट्टी, परन्तु कम से कम १० दिन की छुट्टी, बच्चे—१५ दिन के काम पर एक दिन की छुट्टी, परन्तु कम से कम १४ दिन की छुट्टी। इस प्रकार, छुट्टियों की व्यवस्था श्रमिकों के काम करने की अवधि के साथ सम्बन्धित है। १९४८ के फैक्ट्री अधिनियम मे श्रमिकों को छुट्टियाँ प्रदान करने से पहले जो १२ माह की निरन्तर नौकरी की अवधि रखी गई थी उसका निर्णय करने मे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस कारण इस अधिनियम मे १९५४ मे संशोधन किया गया। इसके अन्तर्गत अब छुट्टी लेने से पहले की नौकरी की अवधि को एक कैलेण्डर वर्ष मे २४० दिन कर दिया गया है। उन तमाम दिनों को जबकि श्रमिक जबरी छुट्टी, प्रसूतिकाल की छुट्टी अथवा गत वर्ष के कार्य के अनुसार उपार्जित छुट्टी पर हो, ऐसे दिन माने जाते हैं जब श्रमिक काम करता हो, परन्तु श्रमिकों को ऐसे दिनों के आधार पर छुट्टी लेने का अधिकार न होगा। जो श्रमिक १ जनवरी के बाद नौकरी आरम्भ करेंगे, उनको भी छुट्टी प्राप्त करने का अधिकार होगा, यदि वे वर्ष के शेष दो तिहाई दिनों मे कार्य कर लेंगे। यदि किसी श्रमिक को उपार्जित छुट्टी लेने के पहले ही निकाल दिया जाता है तो मालिकों को उपरोक्त दर से छुट्टी के दिनों का वेतन देना पड़ेगा चाहे उसके कार्य की अवधि कितनी ही रही हो। यह छुट्टी अन्य छुट्टियों के अतिरिक्त प्रदान की जाती है, तथा एक वर्ष मे तीन किस्तो से अधिक मे यह छुट्टी नहीं ली जा सकती।

खानों के श्रमिकों को भी अब ऐसी ही सुविधायें प्रदान कर दी गई है। १९५२ के भारतीय खान अधिनियम (१९५९ मे जिसमे संशोधन हुआ) के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को, एक साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त, एक कैलेण्डर वर्ष की नौकरी के पश्चात् (जिसका तात्पर्य खान के भीतर काम करने वालो के लिये १९० दिन की हाजिरी तथा खान के ऊपर कार्य करने वालो के लिये २४० दिन की हाजिरी है)—निम्नलिखित दर से पूरे वेतन सहित छुट्टी पाने का अधिकार है—खान के भीतर कार्य करने वालों के लिये प्रत्येक १६ दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी तथा अन्य श्रेणी के श्रमिकों के लिये प्रत्येक २० दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी। जो श्रमिक १ जनवरी के बाद नौकरी पाते हैं, उनको भी इसी दर से छुट्टी पाने का अधिकार है, यदि वर्ष के शेष दिनों मे से खान के भीतर कार्य करने वालों की आधे दिनों की हाजिरी हो और अन्य श्रमिकों की दो तिहाई दिनों की हाजिरी हो। उन

समाप्त दिनों का जबकि श्रमिक जबरी छुट्टी, प्रसूति काल की छुट्टी, अथवा गत वर्ष के कार्य के अनुसार उपार्जित छुट्टी पर हो, ऐसा दिन माना जाता है जब श्रमिक कार्य करता हो। छुट्टियों को एक बार में ३० दिनों तक एकत्रित किया जा सकता है। छुट्टियों के दिनों के लिए मजदूरी की दर पिछले एक माह में दैनिक औसत मजदूरी की दर के बराबर होगी, परन्तु इस औसत मजदूरी में समयापरी मजदूरी और बोनस सम्मिलित नहीं किये जायेंगे।

१९५१ के बागान श्रम अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को निम्नलिखित दर से वार्षिक सवेतन छुट्टी दन की व्यवस्था है—(क) वयस्क के लिये २० दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी (ख) बच्चा तथा किशोरावस्था वालों के लिये १५ दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी। श्रमिकों को ३० दिन तक छुट्टी एकत्रित करने का अधिकार है। राज्य सरकारें श्रमिकों की साप्ताहिक छुट्टी के बारे में तथा उस दिन काम करने पर वेतन के बारे में नियम बना सकती हैं। १९६० में एक संशोधन के अन्तर्गत अब छुट्टियों के दिनों की मजदूरी की दर इस प्रकार है—समयानुसार वेतन पाने वालों के लिए दैनिक मजदूरी तथा अन्य श्रमिकों के लिये पिछले एक कैलेण्डर वर्ष की औसत मजदूरी।

इसी प्रकार सन् १९६१ के मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम में भी निम्नलिखित दर से सवेतन वार्षिक छुट्टी देने की व्यवस्था है—वयस्क के लिये २४० दिन काम करने के बाद प्रत्येक २० दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी और किशोरों को प्रत्येक १५ दिन के काम पर एक दिन की छुट्टी। श्रमिकों को ३० दिन तक छुट्टी एकत्रित करने का अधिकार है।

१९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के अनुसार, प्रत्येक मालिक को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वह श्रमिकों को कितनी वेतन सहित या वेतन रहित छुट्टियाँ देगा और छुट्टियाँ किस प्रकार दी जायेंगी।

उत्तर प्रदेश में चीनी मिलों के श्रमिकों के सम्बन्ध में नवम्बर १९५० में एक विशेष नियम बनाया गया जिसके अनुसार, फैक्टरी अधिनियम के अतिरिक्त छुट्टी, वेतन आदि के सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्था की गई—स्थायी श्रमिक—साल में आकस्मिक छुट्टी ६ दिन, बीमारी की छुट्टी १० दिन, मौसमी श्रमिक—मिलों में चीनी बनने के मौसम में हर महीने पर आधे दिन की आकस्मिक छुट्टी तथा आधे दिन की बीमारी की छुट्टी। यदि किसी माह में १५ दिन से अधिक कार्य हो तो वह पूरा माह समझा जायेगा।

१९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में पर्वों की छुट्टियों की व्यवस्था कर दी गई है। १९५० में इनकी संख्या साल में १७ दिन निश्चित की गई, जो १९५३ में बढ़ाकर १८ कर दी गई। नवम्बर १९५५ में यह १८ दिन की पर्वों की छुट्टियाँ चीनी मिलों पर लागू कर दी गईं। अगस्त १९६१ में, उत्तर प्रदेश में एक और अधिनियम पास हुआ जिससे औद्योगिक संस्था

(राष्ट्रीय छुट्टियाँ) अधिनियम [Industrial Establishments (National Holidays) Act] कहते है। इसके अन्तर्गत औद्योगिक श्रमिकों को गणराज्य दिवस, स्वतन्त्रता दिवस तथा गांधी जयन्ती पर सवेतन छुट्टी प्रदान करने की व्यवस्था है। पंजाब औद्योगिक संस्थान (राष्ट्रीय और पर्व) छुट्टी अधिनियम १९६५ के अन्तर्गत, जो कि हरियाणा मे भी लागू है, तीन राष्ट्रीय छुट्टियाँ (२६ जनवरी, १५ अगस्त और २ अक्तूबर) तथा किन्ही भी अनुसूचित पर्वो पर ८ अन्य छुट्टियाँ देने की व्यवस्था है। *केरल, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और कर्नाटक मे भी ऐसे अधिनियम बने हुए हैं।*

वर्तमान स्थिति (Present Position)

इन वैधानिक उपबन्धो के होते हुए भी छुट्टियाँ तथा अवकाश देने की व्यवस्था सन्तोषजनक नही है। स्वयं अधिनियमो मे ही कुछ सुधार सम्भव है, जैसे कि अधिनियम सब कारखानो पर लागू होने चाहिये, छुट्टियो को एकत्रित करने की अवधि भी दो वर्ष से अधिक होनी चाहिये यह अवधि पाँच वर्ष की हो सकती है, इस बात की सुविधा भी होनी चाहिये कि श्रमिक अपनी सवेतन छुट्टियों की अवधि को वेतन रहित छुट्टियाँ लेकर आगे बढा सकें। इस प्रकार, यदि आवश्यक हो तो अधिकृत (Due) छुट्टियो से दुगुनी छुट्टियाँ तक भी ले सकें। ऐसा भी देखा गया है कि व्यवहार मे अधिनियम की धाराओं का न ठीक से पालन होता है और न उनको ठीक से लागू किया जाता है। अधिकतर कारखानो मे "काम नही, तो वेतन भी नही" का सिद्धान्त ही अपनाया जाता है, और क्योंकि भारतीय श्रमिक निर्धन होता है और एक काफी बडे परिवार का भार उस पर होता है, अतः साधारणतः वह उस समय तक वेतन रहित छुट्टी नही लेना चाहता जब तक यह उसके लिये बहुत ही आवश्यक न हो जाये। केवल यही नहीं, वह कभी-कभी छुट्टियों में भी काम करना चाहता है। ऐसा प्राय मौसमी व अनियमित कारखानो मे देखा जाता है। मालिक भी श्रमिको से मिलकर छुट्टी वाले दिन कारखाना खुला रखते हैं। यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कही-कही हाजिरी के रजिस्टर मे तो श्रमिक साप्ताहिक छुट्टी के दिन अनुपस्थित दिखाया गया होता है परन्तु वेतन की बही पर सप्ताह के सातो दिनो का भुगतान मिलता है। अवकाश और छुट्टियाँ भी श्रमिक को उसके अधिकार के रूप मे नही अपितु मालिक की विशेष कृपा के रूप मे प्रदान की जाती हैं। परिणामस्वरूप, अत्यन्त पक्षपात तथा असमान व्यवहार होता है और बहुधा श्रमिक संघ के कार्यकर्त्ताओ को इन विषय मे दण्डित किया जाता है। बीमारी की छुट्टी के लिये कारखाने के डाक्टर का प्रमाण-पत्र उपस्थित करना पडता है, परन्तु वे सदैव पक्षपात रहित नही होते और बहुधा अवैध घूस भी लेते हैं। अधिनियमो की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे किस प्रकार कार्यान्वित किये जा रहे हैं और यह तभी सम्भव है जब पर्याप्त निरीक्षण और मालिको का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। अनेक राज्यो मे ऐसा देखा गया है कि अधिनियमों की धाराओं को ठीक से नही लागू किया जाता। यदि मालिको को अपने श्रमिको मे एक सन्तोष

की भावना पैदा करनी है और उनकी कार्य-कुशलता बढानी है तो उन्हें सवेतन छुट्टियों का मूल्य तथा उनकी महत्ता को भली-भाँति अनुभव करना चाहिये।

छुट्टियों की न्यूनतम संख्या
(Minimum Numbers of Holidays)

कांग्रेस की राष्ट्रीय आयोजना समिति की श्रम उपसमिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि प्रत्येक औद्योगिक श्रमिक को १२ माह नौकरी करने के बाद १० कार्य के दिनो की सवेतन छुट्टियाँ मिलनी चाहिये, जिनमे सार्वजनिक छुट्टियाँ सम्मिलित नही होनी चाहिये परन्तु डॉ० बी० आर० सेठ ने एक नोट मे अपना यह मत प्रकट किया कि श्रमिको के लिए दस दिन की छुट्टियाँ इतनी पर्याप्त नही हैं कि वह दैनिक मेहनत के बाद कुछ आराम पा सकें और अपने स्वास्थ्य को ठीक कर सकें जबकि वास्तव मे छुट्टियाँ देने का मुख्य उद्देश्य यही है। श्रमिक अधिकतर छुट्टियाँ अपने घर व्यतीत करना चाहते हैं और उनका घर साधारणतया औद्योगिक नगरो से काफी दूर होता है। इसलिये थोडे दिनो के लिए वे यात्रा का व्यय आदि वहन करना पसन्द नही करेंगे। अत १२ माह की नौकरी के बाद सवेतन छुट्टियो की न्यूनतम संख्या १२ दिन होनी चाहिये और प्रत्येक वर्ष इस संख्या मे एक दिन की वृद्धि होनी चाहिये। इस प्रकार अधिकतम छुट्टियो की संख्या ३० दिन तक होनी चाहिये जो कि श्रमिको को १८ वर्ष की नौकरी के पश्चात् मिल सके। श्रमिको को कम से कम दो वर्ष तक अपनी छुट्टियाँ एकत्रित करने की सुविधा होनी चाहिये। मालिकों को असुविधा न हो इसलिये छुट्टियाँ ऐसे समय दी जा सकती हैं जबकि कार्य और व्यापार मे कुछ शिथिलता हो। एक समय मे दस प्रतिशत से अधिक कर्मचारियो को छुट्टी प्रदान नही करनी चाहिये। इस बात का भी सुझाव दिया गया है कि छुट्टियो के दिनो का वेतन मालिकों द्वारा संचित एसी निधि से दिया जाना चाहिये जो सार्वजनिक नियन्त्रण मे हो। मालिको को इस निधि मे धन, अपने श्रमिको की संख्या तथा मजदूरी के बिल के अनुसार जमा करना चाहिये। छुट्टियो के दिनो का वेतन श्रमिकों को छुट्टी से वापिस आने पर मिलना चाहिये जिससे श्रमिकावर्त्त के दोष कम हो जायें।

राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार, "सभी ओर से आने वाली यह माँग उचित तो प्रतीत होती है कि केन्द्रीय कानून बना कर छुट्टियो की संख्या में एकरूपता लायी जानी चाहिये। किन्तु मालिको एव श्रमिकों के सुझावो मे इस सम्बन्ध मे विभिन्नता पाई जाती है कि इस एकरूपता अथवा समानता (uniformity) का स्तर क्या रखा जाये। श्रमिको के सगठन तो आमतौर पर इस मत के हैं कि वर्ष मे कम से कम ७ से १२ तक सवेतन अवकाश दिये जाने चाहियें और इस सम्बन्ध मे श्रमिको की विभिन्न श्रेणियो के बीच कोई भेद नहीं किया जाना चाहिये। दूसरी ओर, मालिको का यह विचार है कि भारत मे श्रमिकों को मिलने वाली सवेतन छुट्टियो की संख्या पहले से ही काफी अधिक है। अत छुट्टियो मे समानता लाने के लिये

काफी नीचा स्तर अपनाया जाना चाहिए। मालिकों ने यह तर्क दिया है कि उत्पादन वृद्धि के दृष्टिकोण से इस विषय म आश्वस्त किया जाना अत्यन्त आवश्यक है कि ऐसे सभी कारखानों तथा संस्थानो में जो कि सप्ताह में ६ दिन खुलते हैं, कार्य-दिवसो की न्यूनतम संख्या वर्ष म ३०५ और ३१० के बीच रहे और इस उद्देश्य की प्राप्ति स्थानापन्न छुटिटयो के माध्यम से की जा सकती है जैसा कि विभिन्न क्षेत्रों में अनेक उद्योगो म होता भी है।'' आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि "श्रम कानून के बारे म आयोग अपने अध्ययन दल द्वारा की गई इन सिफारिशो का समर्थन करने का इच्छुक है कि प्रत्यक श्रमिक को एक कैलेण्डर वर्ष में २६ जनवरी (गणतन्त्र दिवस) १५ अगस्त (स्वतन्त्रता दिवस) और २ अक्तूबर (महात्मा गाँधी जन्म दिवस) को तीन सवेतन राष्ट्रीय छुट्टियाँ तथा पाँच सवेतन पर्व छुट्टियाँ दी जानी चाहिये। इन पर्व छुट्टियो का निर्णय सम्बन्धित सरकार द्वारा मालिको व श्रमिको के प्रतिनिधियो के साथ विचार-विमर्श करके करना चाहिय।''[1]

कृषि श्रमिकों के लिए भी सवेतन छुट्टियो की महत्ता स्वीकार कर ली गई है और अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन ने जून १९५२ मे अपने ३५वें अधिवेशन मे इस सम्बन्ध मे एक अभिसमय भी पास किया था। कृषि श्रमिकों के लिय एक वर्ष की नौकरी के बाद कम से कम एक सप्ताह की छुट्टी की सिफारिश की गई है और १८ या १६ वर्ष से कम आयु के लोगो के लिय छुट्टियो की संख्या इससे भी अधिक होनी चाहिये। आशा है कि इस अभिसमय को भारतीय सरकार स्वीकार कर लागू कर देगी।

श्री वी० वी० गिरि ने राष्ट्रीय तथा पर्वों की छुट्टियो के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किया है। ऐसी छुट्टियो मे प्रत्येक राज्य तथा स्थान पर विभिन्नता पाई जाती हैं, परन्तु विभिन्न उद्योगो तथा कारखानो मे छुट्टियों की संख्या मे समता अवश्य होनी चाहिये। कुछ संस्थाओ में राष्ट्रीय तथा पर्व-सम्बन्धी छुट्टियों की संख्या बहुत है। हमें अत्यधिक अवकाश तथा कम काम की बात ही नहीं सोचनी चाहिये, परन्तु उसके साथ ही यह भी मानना पडेगा कि ऐसे लोगो के लिये जिनके जीवन मे कोई अन्य सुख और शान्ति नही है, हमारे पुराने पर्व ही मनोरंजन तथा विश्राम के सर्व-उपयुक्त साधन हैं। अत हमारी अवकाश की इच्छा तथा उत्पादन के प्रति उत्तरदायित्व मे एक कार्योचित सामंजस्य होना चाहिये, और राष्ट्रीय तथा पर्व-सम्बन्धी छुट्टियाँ प्रदान करने के लिये एक समान नीति अपनानी चाहिये। सरकार इस ओर ध्यान दे रही है और इस समस्या पर अनेक श्रम सम्मेलनो में भी विचार किया जा चुका है।

---

1 Report of the National Commission on Labour, pages 105-106

५

भारतीय श्रमि

TRADE UNIONISM 1.

श्रमिक संघ की परिभाषा—विभिन्न मत

(Definition of Trade Union—Various Views)

श्रमिक संघों के उद्गम पर प्रकाश डालते हुये विभिन्न लेखकों ने इन संघों की विभिन्न परिभाषायें दी है। सिडनी और बीट्रिस वैब[1] के मतानुसार 'एक श्रमिक संघ मजदूरी प्राप्त करने वालों का एक ऐसा निरन्तर समुदाय है जिसका उद्देश्य उनकी कार्मिक जीवन की स्थितियों को सुधारना तथा कायम रखना है।" वैब के अनुसार इन संघों का मूल उद्देश्य—"रोजगार की स्थितियों को इस प्रकार सक्रिय रूप से नियमित बनाने का है कि श्रमिकों को औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा के बुरे प्रभावों से बचाया जा सके।" इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सामाजिक विकास की स्थिति के अनुसार पारस्परिक बीमा सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) तथा कानूनी विधि जैसे तरीकों को अपनाया जाता है। उनके मतानुसार, प्रजातान्त्रिक समाज में एक ऐसे श्रमिक संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है जिसके द्वारा श्रमिक भी अपने रोजगार की स्थितियों को नियन्त्रित करने में कुछ योग दे सकें। इस प्रकार से श्रमिक संघों के विकास को पूंजीवादी व्यवस्था की एक घटनामात्र नहीं कहा जा सकता, बल्कि प्रजातन्त्र राज्य में उनका एक स्थायी महत्त्व है। एक अन्य विद्वान् के अनुसार, "श्रमिक आन्दोलन एक परिणाम है, जिसका मुख्य कारण मशीन है।"[2] मशीनें श्रमिकों की रोजगार सम्बन्धी सुरक्षा में बाधक सिद्ध होती है। श्रमिक अपने बचाव के लिये संघ के द्वारा मशीन पर नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है, और इस प्रकार से ये संघ सामाजिक कल्याण में सहायक सिद्ध होते है। श्रमिक संघ आन्दोलनों द्वारा वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर एक औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना करने का प्रयत्न किया जाता है। रॉबर्ट हॉक्सी का विश्वास है कि श्रमिक संगठन सामूहिक मनोविज्ञान (Group Psychology) के कारण उत्पन्न हुए हैं। श्रमिक संघ ही ऐसी संस्था है, जिसमे श्रम सम्बन्धी अनेक समस्याओं तथा श्रमिकों की उन्नति के कार्यक्रमों पर सामूहिक रूप से विचार किया जाता है। 'सेलिग पर्लमैन' के अनुसार किसी भी देश में श्रमिक संघ आन्दोलन का स्वरूप उस

---

1 History of Trade Unionism by Sidney and Beatrice Webb.

2 Quoted in 'Insights into Labour Issues' by Lester and Shister

९६ , बुद्धिमान लोगो के कार्यो पूजीवाद से विरोध तथा लोगो मे रोजगार पाने इच्छाओ के पारस्परिक सामजस्य पर निर्भर करता है । कार्ल मार्क्स के मतानुसार, सघ ही सबसे प्रथम तथा सबसे आगामी सगठन केन्द्र" (Organising Centre) था ।[1] श्रमिको के संगठित होने का प्रारम्भ इन सघो से ही होता है। सगठन की अनुपस्थिति मे श्रमिक रोजगार पाने के लिये आपस मे ही प्रतिस्पर्द्धी बने रहते थे। श्रमिक सघो के विकास का वास्तविक कारण यही है कि श्रमिक इस स्पर्द्धा को समाप्त कर देना चाहते थे, या इस स्पर्द्धा को इतना सीमित कर देना चाहते थे कि उनको रोजगार की ऐसी शर्तें प्राप्त हो सकें जिनसे उनका स्तर दासता की श्रेणी से ऊचा उठ सके। मार्क्स के विचार मे श्रमिक सगठन ही एक ऐसा साधन और केन्द्र है जिसके अन्तर्गत कार्य करते हुए श्रमिक वर्ग समाज की व्यवस्था मे परिवर्तन कर सकता है। जिस प्रकार मध्यकालीन नगरपालिकायें तथा समितिया 'बुर्जुआ' वर्ग के सगठन का केन्द्र थी श्रमिक सघ उसी प्रकार से मजदूर वर्ग (Proletariat) के सगठन के केन्द्र है । इस प्रकार श्रमिक सघो का अपने साधारण कार्यो के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वे श्रमिक वर्ग की राजनैतिक मुक्ति हेतु सगठन का केन्द्र बनें।

श्रमिक संघवाद का विकास (Growth of Trade Unionism)

श्रमिक सघवाद का विकास आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप ही हुआ है। पहले जब मालिकों तथा श्रमिकों मे पारस्परिक सम्पर्क रहता था तब उनके सम्बन्धो को उचित रूप देने के लिए किसी विशेष सगठन की आवश्यकता नही पडती थी। परन्तु आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था मे वह पारस्परिक सहयोग तथा सम्पर्क समाप्त हो गया है और उनके सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गये हैं । इसके अतिरिक्त आधुनिक औद्योगिक जीवन मे मजदूर वर्ग व्यक्तिगत रूप से सौदा करने मे अपने मालिक की अपेक्षा निर्बल होता है। इसका कारण श्रम की विशेषतायें है। श्रम एक नाशवान् वस्तु है। इसको सचित नही किया जा सकता। श्रमिक यदि काम नही करेगा तो उसे भूखा रहना पडेगा। इसके विपरीत मालिक प्रतीक्षा कर सकते है। अत श्रमिक मालिको से उचित शर्तों पर सौदा करने मे असमर्थ रहते हैं और मालिक अधिक लाभ प्राप्त करने हेतु उनका शोषण करने मे सफल हो जाते हैं। व्यक्तिगत रूप मे श्रमिक अपना महत्त्व तथा बाजार मे अपना मूल्य भी ठीक प्रकार से नही आक पाता। अत प्रत्येक देश मे औद्योगिक प्रगति के प्रारम्भ में ही श्रमिकों को इस सत्य का अभ्यास हो गया कि जब तक वे श्रमिक सघ की सहायता के द्वारा अपनी सौदाकारी की शक्ति को प्रबल न बनायेंगे तब तक वे मालिकों के शोषण से अपनी सुरक्षा नही कर सकते। इस प्रकार श्रमिक सघो की उत्पत्ति हुई। उनके विकास की गति तथा कार्यो का स्वरूप प्रत्येक देश की राजनैतिक आर्थिक तथा बौद्धिक प्रगति पर निर्भर रहा है। इससे सामाजिक सघर्ष का सकेत मिलता है, परन्तु साथ ही वे सामाजिक उन्नति के परिचायक है।

1 Marx and the Trade Unions by A Lozovsky

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि श्रमिक संघ मजदूरों का संगठन है। श्रमिक स्वयं को संगठित करते हैं, चन्दा जमा करते हैं, तथा अपने संघ को कानून के अनुसार पंजीकृत करवाते हैं, और फिर उनका यह संघ श्रमजीवियों के हित के लिये अनेक कार्य करता है। पारिभाषिक दृष्टि से ट्रेड यूनियन अर्थात् 'व्यापार संघ' में मालिक तथा मजदूर दोनों ही के संघों को सम्मिलित किया जाता है परन्तु साधारणतया व्यापार संघ' का तात्पर्य मजदूरों के संगठन अर्थात श्रमिक संघ से ही लिया जाता है।

श्रमिक संघों के कार्य (Functions of Trade Unions)

श्रमिक संघों के कार्यों को तीन विभागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) **अन्तर्मुखी कार्य** (Intra-mural Activities)—इनके अन्तर्गत वे सब कार्य आते हैं जिनके द्वारा श्रमिकों के रोजगार की स्थिति में उन्नति हो सकती है। इन कार्यों का उद्देश्य यह है कि वे श्रमिकों के लिये पर्याप्त मजदूरी, रोजगार व कार्य की अच्छी स्थितियाँ, मालिकों से उचित व्यवहार, काम के घण्टों में कमी आदि की सुविधा प्राप्त करने का प्रयत्न करें। इसके अतिरिक्त ये संघ इस बात का भी प्रयत्न करते हैं कि श्रमिकों को लाभ सहभाजन (Profit-sharing) तथा औद्योगिक व्यवस्था के नियन्त्रण में भाग लेने का अधिकार मिले। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये संघ सामूहिक सौदाकारी मालिकों से पारस्परिक वार्तालाप, हड़ताल तथा बहिष्कार जैसे साधनों को अपनाते हैं। इसलिये इन कार्यों को कभी कभी 'झगड़े या संघर्ष के कार्य" भी कह दिया जाता है।

(२) **बहुर्मुखी कार्य** (Extra mural Activities)—इन कार्यों का उद्देश्य श्रमिकों की कार्य-कुशलता में वृद्धि करना तथा आवश्यकता के समय उनकी सहायता करना होता है। श्रमिक संघ श्रमिकों में सहकारिता तथा मित्रता की भावना उत्पन्न करते हैं और उनमें शिक्षा व संस्कृति का प्रसार करते हैं। बीमारी व दुर्घटना तथा बेकारी, हड़ताल व तालाबन्दी के समय ये संघ श्रमिकों की हर प्रकार की आर्थिक सहायता देते हैं। आवश्यकता के समय वे श्रमिकों को कानूनी सहायता प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त, श्रमिकों के लिये ये संघ अनेक अन्य कल्याणकारी कार्य भी करते हैं, जैसे श्रमिकों के बच्चों के लिए स्कूल खोलना, पुस्तकालय तथा वाचनालयों की व्यवस्था करना, घर के बाहर व भीतर के खेलों का प्रबन्ध करना और अन्य मनोरंजन के साधन प्रदान करना। कुछ संघ तो श्रमिकों के लिये मकानों की व्यवस्था भी करते हैं, उनके लिये पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित करते हैं। ऐसे कार्यों को बन्धुत्व कार्य' (Fraternal Activities) भी कहते हैं। इन कार्यों की सफलता श्रमिकों के सफल नेतृत्व तथा उनकी पर्याप्त निधि (Funds) पर निर्भर करती है, जिनका निर्माण संघ के सदस्यों के चन्दे तथा अन्य लोगों द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से होता है।

(३) **राजनीतिक कार्य**—कुछ श्रमिक संघ चुनाव लड़ते हैं और सरकार बनाने का प्रयत्न करते हैं। अनेक देशों में शक्तिशाली श्रमिक दलों का विकास हो चुका है और इंगलैण्ड में तो अनेक बार श्रमिक दल ने सरकार बनाई है। भारत में संघों के राजनीतिक कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, यद्यपि कभी-कभी श्रमिक संघों ने सरकार की श्रम नीति को प्रभावित अवश्य किया है और विधान सभाओं में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व भी किया है।

श्रमिक संघों के हानि और लाभ

(Advantages and Disadvantages of Trade Unions)

श्रमिक संघों द्वारा किये हुये कार्य श्रमिकों के लिये इतने महत्त्वपूर्ण तथा हितकारी हैं कि इन संघों का अस्तित्व उनके लिये वरदानस्वरूप है। परन्तु कई बार उनके कार्य आलोचनात्मक भी हो जाते हैं। श्रमिक संघ विवेकीकरण तथा उत्पादन की अन्य उन्नत पद्धतियों के प्रति साधारणतया एक प्रकार का विरोधात्मक दृष्टिकोण सा बना लेते हैं, क्योंकि ऐसी पद्धतियों से कुछ श्रमिकों को काम पर से हटाने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त, कभी-कभी वे श्रमिकों को कार्यमंदन नीति अपनाने के लिये प्रेरित करते हैं, जिससे औद्योगिक विकास में बाधा पहुँचती है और राष्ट्रीय आय की हानि होती है। अनेक बार अपनी शक्ति के नशे में मामूली बातों पर ही संघ की हड़ताल करा देते हैं और इस प्रकार से वे न केवल उत्पादकों तथा समाज को हानि पहुँचाते हैं वरन् स्वयं भी हानि उठाते हैं। अनेक बार संघ मालिकों को इस बात के लिये विवश करते हैं कि श्रमिक उनके द्वारा ही कार्य पर लगाये जायें। इस प्रकार से वे श्रमिक की पूर्ति में कृत्रिम (Artificial) अभाव उत्पन्न कर देते हैं, परन्तु इन दोषों के होते हुए भी श्रमिक संघ अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुए हैं और उनके विकास ने समय की बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा किया है। शक्तिशाली संघ उद्योग-धन्धों की स्थिरता तथा औद्योगिक शान्ति के हेतु एक आश्वासन है। अगर कोई भी निर्णय सामूहिक रूप से लिया जाय तो वह स्वयं श्रमिकों में अधिक मान्य होता है और मालिक भी ऐसे निर्णयों को आसानी से टाल नहीं सकते। ये संघ अपने कार्यों द्वारा न केवल श्रमिकों की रोजगार तथा मजदूरी की अवस्था में सुधार व उन्नति करते हैं वरन् श्रमिकों की कार्य कुशलता बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं और उनमें आत्म-सम्मान तथा आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन संघों की अनुपस्थिति में श्रमिक वर्ग का क्रूरतापूर्वक शोषण होता जो प्रत्येक राष्ट्र की प्रगति के लिये हानिकारक है।

श्रमिक संघों का मजदूरी पर प्रभाव

(Trade Unions and Wages)

इस बात पर भी विचार किया जाना आवश्यक है कि श्रमिक संघों का किसी विशेष व्यापार में मजदूरी की दरों पर और सामान्य मजदूरियों पर क्या

प्रभाव पड़ता है। इस प्रश्न पर विभिन्न प्रकार के मत प्रकट किये जाते हैं और आर्थिक विचारों के इतिहास में इस पर काफी सैद्धान्तिक वाद विवाद हुआ है। सस्थापक अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का मत था कि संघ मजदूरी में स्थायी रूप से वृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि यदि मजदूरी में वृद्धि होगी तो लाभ कम हो जायेगा। लाभ कम होने से उद्योग-धन्धों की संख्या भी कम हो जायेगी। परिणामस्वरूप श्रमिकों की माँग भी गिर जायेगी। इसलिए या तो मजदूरी कम होगी या श्रमिकों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, मजदूरी श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) द्वारा निर्धारित होती है। अतः श्रमिक संघों का मजदूरी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री मजदूरी पर श्रमिक संघों के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। श्रमिक संघ प्रत्यक्ष रूप से तो साधारणतया मजदूरी पर प्रभाव नहीं डालते, परन्तु उनका प्रभाव उन अनेक आर्थिक शक्तियों पर होता है जिनके कारण मजदूरी स्थायी रूप से बढ़ सकती है। ऐसा दो प्रकार से हो सकता है—प्रथम तो, संघ इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि श्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पूरी मजदूरी मिल जाए। सम्पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार तो मिलती है परन्तु वास्तविकता तो यह है कि सम्पूर्ण प्रतियोगिता कम ही होती है। श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति मालिकों की अपेक्षा कम होती है और उनका शोषण होता है तथा उनको सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भी मजदूरी नहीं मिल पाती। श्रमिक संघ मजदूरों की सौदा करने की शक्ति को बढ़ाकर मजदूरी को सीमान्त उत्पादकता की सीमा तक बढ़ा सकते हैं। दूसरे वे स्वयं श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं और इस प्रकार मजदूरी को स्थायी रूप से बढ़ा सकते हैं। श्रमिक संघ मालिकों द्वारा अच्छी मशीन तथा समुचित संगठन की व्यवस्था कराके तथा स्वयं श्रमिकों में शिक्षा तथा कल्याण-कारी कार्यों का प्रसार करके उनकी कार्य कुशलता में वृद्धि कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, श्रमिक संघ किसी विशेष व्यवसाय में भी श्रमिकों की पूर्ति सीमित करके उनकी मजदूरी बढ़ा सकते है, परन्तु उनका यह प्रयत्न अनेक बातों पर निर्भर करता है। प्रथम तो, जो वस्तु श्रमिकों द्वारा निर्मित की जा रही है किसी अन्य साधन से प्राप्त न की जा सके। दूसरे, उस वस्तु की माँग भी बेलोचदार हो, जिससे उसका मूल्य बढ़ाया जा सके। तीसरे, उस वस्तु के निर्माण में जो कुछ खर्च आता हो उसमें मजदूरी का अंश कम हो, जिससे कि मजदूरी अधिक देने पर भी वस्तु का मूल्य अधिक न बढ़े। चौथे, उत्पत्ति के अन्य साधन तथा अन्य प्रकार के श्रमिक आसानी से मिलते रहें और वे अपनी पूर्ति को सीमित न करें। इन सब बातों के होने पर ही किसी विशेष व्यवसाय के श्रमिक अपने संघ की सहायता द्वारा अपनी पूर्ति सीमित करके अपनी मजदूरी को बढ़ा सकते हैं।

अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि श्रमिक संघ मालिकों को इस बात के

लिए बाध्य करते हैं कि वे श्रमिकों के रोजगार व काम की स्थिति में सुधार करें तथा उनको बोनस व महँगाई भत्ता आदि के रूप में समय-समय पर लाभ में से भी एक भाग देते रहे। इस प्रकार, ये संघ शोषण को सीमित करके न केवल नकद मजदूरी (Nominal Wages) में ही वृद्धि करते हैं, वरन् असल मजदूरी (Real Wages) में भी वृद्धि कर सकते हैं।

श्रमिक संघों के विभिन्न रूप (Types of Trade Unions)

श्रमिक संघ कई प्रकार के होते हैं। प्रथम तो 'दस्तकारी संघ' (Craft Unions) होते हैं, जिनको व्यावसायिक संघ भी कहा जाता है। यह ऐसे श्रमिकों के संगठन होते हैं, जो किसी एक विशेष व्यवसाय या दो-तीन सम्बन्धित व्यवसायों में काम पर लगे हों। उदाहरणतः रेल इंजन के इंजीनियरों का संघ और अहमदाबाद जुलाहा संघ, आदि। दूसरे औद्योगिक संघ होते हैं। ये संघ एक ही उद्योग में लगे हुये श्रमिकों का संगठन होते हैं, उनका धन्धा चाहे कोई भी हो। उदाहरणतः कपड़ा उद्योगों में लगे हुये श्रमिकों का संघ या रेल कर्मचारियों का संघ आदि। अधिकतर श्रमिक संघ औद्योगिक संघ ही होते हैं। तीसरी प्रकार संगम (Federation) की है। विभिन्न संघ जब किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये संगठित होकर एक सम्मिलित संघ बना लेते हैं तो उसे संगम कहते हैं। ऐसे संगम या तो स्थानीय होते हैं, जैसे—अहमदाबाद का सूती कपड़ा संगम, या प्रान्तीय होते हैं, जैसे—बम्बई के रेल-तार कर्मचारियों का संगम या राष्ट्रीय भी होते हैं, जैसे—नेशनल फेडरेशन ऑफ इण्डियन रेलवेमैन या इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काँग्रेस आदि। कुछ अन्तर्राष्ट्रीय संगम भी होते हैं, जैसे—इण्टरनेशनल कान्फेडरेशन आफ ट्रेड यूनियन्स (स्वतन्त्र श्रमिक संघों का अन्तर्राष्ट्रीय संगम)।

श्रमिक संघों के विकास के लिये आवश्यक तत्व
(Factors for the Growth of Trade Unions)

प्रत्येक देश में श्रमिक संघों के विकास के लिये कुछ बातों का होना आवश्यक है। प्रथम बात तो देश का औद्योगिक विकास है। श्रमिक संघ आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुये हैं। बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग-धन्धों की अनुपस्थिति में श्रमिक संगठन का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे, श्रमिक संघों के विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि मजदूरों में असन्तोष की भावना हो। जब तक श्रमिक शोषित अवस्था में न होंगे वे संगठन बनाने की आवश्यकता को अनुभव न करेंगे, अतः श्रमिक संघों का विकास न हो पायेगा। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि विरोधी दल सरकार की त्रुटियों से लाभ उठाते हैं। साम्यवादी दल की आरम्भ में कई देशों में यह नीति रही है कि पूँजीवादी व्यवस्था को थोड़ा सा प्रोत्साहन दिया जाये जिससे कि उसके दोष इतने बढ़ जायें कि उसे समाप्त करने में कठिनाई न हो। अतः जब तक शोषण न होगा और श्रमिक भाग्यवादी बने रहेंगे, श्रमिक संघ उन्नति नहीं कर सकते। तीसरे, यह भी

आवश्यक है कि श्रमिकों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्वीकार किया जाये और उन्हें 'दास' न समझा जाये। उनके संगठन भी समाज द्वारा मान्य हों। एक हिटलर जैसी फासिस्ट अर्थ-व्यवस्था में हम किसी प्रभावशाली श्रमिक संघ की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त, श्रमिक संघों के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि श्रमिक शिक्षित हों, उन्हें अपने अधिकारों तथा संगठन के लाभों का ज्ञान हो, उनकी आय इतनी हो कि वे आसानी से संघों को चन्दा दे सकें, जनता और सरकार भी उनके उद्देश्यों से सहानुभूति रखती हो, और संघों के नेता भी श्रमिक वर्ग के ही हों। श्रमिक संघों को अपनी उन्नति के लिये बहुमुखी कार्यों की ओर भी अधिक ध्यान देना चाहिये।

संक्षेप में, एक अच्छे और सफल श्रमिक संघ की विशेषतायें निम्नलिखित हैं—(क) संघ के सदस्यों की संख्या अधिक हो—अर्थात् सम्बन्धित व्यापार या व्यवसाय के अधिकांश श्रमिकों का वह प्रतिनिधित्व करती हो। (ख) उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो। (ग) उसके नेता योग्य, ईमानदार तथा श्रमिक वर्ग के हों। (घ) उसके सदस्य शिक्षित हों और उन्हें अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का पूर्ण ज्ञान हो तथा संघ के कार्यों में उन्हें पूर्ण रुचि हो। (ङ) सदस्यों में एकता की भावना हो और उनमें प्रतिद्वन्द्विता तथा पारस्परिक द्वेषभाव न हो। (च) संघ अपने सदस्यों की भलाई के लिये बहिर्मुखी कार्यों पर अधिक समय तथा धन व्यय करे।

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन का इतिहास
(History of Trade Union Movement in India)

प्रारम्भिक इतिहास (Early History)

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन का इतिहास अत्यन्त संक्षिप्त है, परन्तु आन्दोलन के इस संक्षिप्त इतिहास में ही अनुभव तथा क्रान्तिकारी कार्यों के इतने प्रचुर उदाहरण मिलते हैं, जितने अन्य देशों के अधिक पुराने तथा विकसित आन्दोलनों में भी नहीं मिलते।

अन्य देशों की भाँति भारत में भी श्रमिक आन्दोलन की उत्पत्ति औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप ही हुई है। पिछली शताब्दी के मध्य में बड़े उद्योगों के विकास के साथ ही औद्योगिक संगठनों की स्थापना की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। परन्तु पहले संगठन मालिकों के ही स्थापित हुये, जिन्होंने श्रमिकों के विरुद्ध अपने हितों की रक्षा के लिये अपने संघ बनाये। सर्वप्रथम यूरोपियन मालिकों ने अपने संघ बनाये और सन् १८६० में ये एक ऐसा अधिनियम पास करवाने में सफल हुये जिसके अन्तर्गत काम छोड़ने वाले श्रमिकों पर मुकदमा चलाया जा सकता था। इसका नाम 'श्रमिक संविदा भंग अधिनियम' (Workmen's Breach of Contract Act) था। इसके बाद से ही मालिकों के संगठन अत्यन्त शक्तिशाली होते चले गये और समय-समय पर इन्होंने सरकार की श्रम नीति पर काफी प्रभाव डाला है।

मालिकों के ऐसे सगठनों को 'चैम्बर्स आफ कॉमर्स' कहा जाता है। १९१४–१८ के युद्ध तक श्रमिक सगठनों का विकास परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण समुचित रूप से न हो सका। श्रमिक अत्यन्त निर्धन व कमजोर थे मालिक अत्यन्त शक्तिशाली थे, जनता ऐसी बातों के प्रति उदासीन थी, तथा सरकार की भी उनसे कोई सहानुभूति न थी।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि औद्योगिक विकास के प्रारम्भ में श्रमिकों के हितों की ओर कोई ध्यान दिया ही नहीं गया। वरन् सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, जन-उपकारी व्यक्तियों तथा धार्मिक नेताओं द्वारा, मनुष्यता का आधार लेकर इस ओर अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु ये सब प्रयत्न मनुष्यता तथा धर्म की भावना से प्रेरित होकर ही किये गये थे। इनमें किसी प्रकार की सामूहिक सौदाकारी न थी। सन् १८७२ में बगाल के श्री पी० सी० मजूमदार नामक एक ब्रह्मोपदेशक ने बम्बई नगर में श्रमिकों के लिये आठ रात्रि-स्कूल स्थापित किये।[1] सन् १८७८ में कलकत्ता में ब्रह्म समाज के अन्तर्गत 'कर्मचारियों के मिशन' की स्थापना हुई, जिससे धर्म और नैतिकता सम्बन्धी उपदेश दिये तथा श्रमिकों व पिछड़ी जातियों के लिये रात्रि स्कूल स्थापित किये। इसी समय पटसन के काम में लगे हुए श्रमिकों की शिक्षा तथा सामाजिक कल्याण के लिये श्री ससीपाद बनर्जी ने "बड़ा नगर सस्थान" की नींव डाली।

यह बात महत्वपूर्ण है कि इस समय से ही मालिकों और मजदूरों में सघर्ष पैदा हो गया था। सन् १८७७ में नागपुर की ऐम्प्रेस मिल में मजदूरी के प्रश्न पर एक हड़ताल होने का विवरण मिलता है। सन् १८८२ और १८९० के मध्य में मद्रास और बम्बई में २५ हड़तालों का विवरण पाया जाता है।[2]

सन् १८७५ में श्री सोराबजी शापुर्जी बगाली जैसे कुछ जन-उपकारी व्यक्तियों ने श्रमिकों की दयनीय अवस्था की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक आन्दोलन किया, जिसका उद्देश्य श्रमिकों (विशेषतया महिला व बाल श्रमिकों) की सुरक्षा के हेतु कानून बनवाना था, परन्तु यह आन्दोलन अधिक प्रभावपूर्ण नहीं सिद्ध हो सका। केवल सन् १८८१ का प्रथम 'फैक्टरी अधिनियम' ही पास हुआ, परन्तु इसके अन्तर्गत श्रमिकों को पूर्ण रूप से सुविधायें न मिली और बम्बई में श्रमिकों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। इसी समय श्री नारायण मेघ जी लोखाण्डे जनता के सम्मुख आये जिन्हें श्रमिकों का प्रथम नेता कहा जा सकता है। इन्होंने अपना जीवन एक मजदूर के रूप में आरम्भ किया था और जीवन भर श्रम आन्दोलनों में सहयोग देते रहे। सन् १८८४ में इन्होंने बम्बई के फैक्टरी-श्रमिकों का एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमें एक निवेदन-पत्र[3] (Memorial)

1 R K. Mukerjee Indian Working Class, pages 352-53

2 Palme Dutt India Today, page 375

3 R K Dass Labour Movement in India

तैयार किया गया। इस निवेदन-पत्र में सप्ताह में एक छुट्टी, काम के घन्टों में कमी तथा अन्य असुविधाओं को दूर करने के पक्ष में प्रस्ताव थे। यह निवेदन-पत्र भारतीय फैक्टरी आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, जिसने इस पर विचार भी किया, परन्तु सरकार ने आयोग की रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही न की। कारखानों के लिये कानून बनाने के लिये आन्दोलन जारी रहे और श्रमिक श्री लोखाण्डे के नेतृत्व में इसमें भाग लेते रहे। सन् १८८९ में गवर्नर जनरल से एक निवेदन-पत्र द्वारा प्रार्थना की गई कि श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान की जाये। अप्रैल १८९० में बम्बई में एक बहुत बड़ी सभा हुई जिसमें १० हजार श्रमिकों ने भाग लिया और २ महिला श्रमिकों ने भाषण भी दिया। इसी वर्ष श्रमिकों ने सप्ताह में एक छुट्टी के लिये प्रार्थना करते हुये एक निवेदन-पत्र बम्बई के मिल-मालिक संघ के सम्मुख प्रस्तुत किया। उनकी मांग आसानी से स्वीकार हो गई। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर सन् १८९० में श्री लोखाण्डे ने 'बम्बई मिल-मजदूर संघ' (Bombay Mill-hands' Association) नामक प्रथम श्रमिक संस्था की स्थापना की और एक श्रमिक पत्रिका भी निकाली जिसका नाम 'दीनबन्धु' अर्थात् "निर्धनों का मित्र" था। श्री लोखाण्डे का प्रभाव इस समय काफी बढ़ गया था और उनको १८९० के फैक्टरी आयोग के सम्मुख गवाही देने के लिये बम्बई का प्रतिनिधि निर्वाचित किया गया, परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि बम्बई मिल मजदूर संघ कोई संगठित श्रमिक संघ न था। इसके सदस्यों की न तो कोई सूची थी, न इसकी कोई निधि थी और न इसके कोई नियम थे। श्री लोखाण्डे को श्रमिक आन्दोलन का अग्रदूत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि श्रमिकों के हित के लिये तथा उनके लिये कानून बनवाने के लिए उन्होंने जो भी कार्य किये उनमें जन-सेवा की भावना ही अधिक प्रबल थी।[1]

सन् १८९१ के फैक्टरी अधिनियम के पास होने के साथ ही श्रमिक आन्दोलन का प्रथम अध्याय समाप्त होता है। इसके बाद केवल कुछ स्थानीय आन्दोलन हुये और कुछ नये संघ भी उत्पन्न हुए, परन्तु प्लेग, अकाल तथा आर्थिक मन्दी आदि के कारण इनकी प्रगति अति धीमी रही। श्री बंगाली तथा श्री लोखाण्डे की मृत्यु के बाद आन्दोलन को नेताओं का अभाव अनुभव होने लगा। सन् १८९७ में यूरोपियन और एंग्लो-इण्डियन रेलवे कर्मचारियों का एक संघ 'भारत और बर्मा रेलवे कर्मचारी विलयित समिति' (Amalgamated Society of Railway Servants of India and Burma) के नाम से स्थापित हुआ और इसको भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कराया गया। सन् १९२८ में इस संस्था का नाम 'रेलवे कर्मचारियों का राष्ट्रीय संघ' (National Union of Railway Men) हो गया। इस संस्था ने भारतीय श्रमिक आन्दोलन में कोई विशेष भाग नहीं लिया और इसका कार्यक्रम मुख्यत श्रमिकों के हित सम्बन्धी कार्यों तक ही सीमित रहा।

सन् १९०५ में बंगाल-विभाजन के समय श्रमिक आन्दोलन ने फिर सिर

1 Palme Dutt India Today page 375

उठाया। इस विभाजन से राजनीतिक असन्तोष फैला और कुछ राजनीतिक नेताओं ने श्रमिकों का पक्ष लिया। स्वदेशी आन्दोलन जो इस समय प्रारम्भ हुआ था उससे भी श्रमिकों की अवस्था सुधारने के प्रयत्नों में सहायता मिली। मन्दी के बाद जब व्यवसाय में कुछ पुनरुत्थान (Revival) हुआ तो श्रमिकों द्वारा अधिक मजदूरी की माँग बढ़ी। इसी समय बम्बई की मिलों में विद्युत-शक्ति आ जाने से कार्य के घण्टों में वृद्धि हो गयी और सरकार के इस विचार के समर्थन में कि वयस्क पुरुष श्रमिकों के काम के घण्टे कम होने चाहियें श्रमिकों ने आन्दोलन आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप, १९०५ और १९०६ के बीच में हड़तालों की एक लहर सी आ गई। उदाहरणतः बम्बई की अनेक मिलों में और उत्तरी बंगाल रेलवे में अनेक हड़तालें हुईं। सबसे बड़ी हड़ताल श्री तिलक को १९०८ में ६ वर्ष के कारावास मिलने के विरोध में हुई। यह राजनीतिक हड़ताल बम्बई में ६ दिन तक चलती रही। इसी समय श्रमिकों के कुछ संगठन भी बन गये, जैसे—१९०५ में कलकत्ते में मुद्रक-संघ और १९०७ में बम्बई में डाक-कर्मचारी संघ। १९१० में बम्बई के श्रमिकों की दूसरी महत्वपूर्ण संस्था 'कामगर हितवर्द्धक सभा' का निर्माण हुआ। इस संस्था ने भी "कामगर समाचार" नामक एक पत्र निकाला। इस संघ ने श्रमिकों के रहन-सहन की तथा काम करने की अवस्थाओं में सुधार करने के लिये, उनके झगड़े निपटाने के लिए, उनके कार्य के घण्टे कम करने के लिये तथा उन्हें दुर्घटना की क्षति-पूर्ति दिलाने के लिये अनेक सफल प्रयत्न किये और सरकार को प्रार्थना-पत्र दिये। १९११ के फैक्टरी अधिनियम के पास होने के साथ-साथ श्रमिक आन्दोलन का दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

इस समय तक श्रमिकों के जो भी संगठन बने थे एवं निरन्तर संस्था के रूप में न थे। केवल किसी विशेष उद्देश्य या किसी विशेष कार्य की पूर्ति के लिए ही वे अस्थायी रूप से बनाये जाते थे। श्रमिक संघों का वास्तविक प्रारम्भ लड़ाई के उत्तरार्द्ध काल में हुआ जबकि अनेक कारणवश श्रमिकों में असन्तोष की भावना तथा अरक्षा का भय उत्पन्न हो गया था। श्रमिकों में असन्तोष की भावना लड़ाई से पहले भी थी परन्तु यह अभी तक प्रगट नहीं हो पाई थी क्योंकि श्रमिक अशिक्षित थे, उनमें अनुशासन की कमी थी और उनका न कोई संगठन था और न कोई नेता। इसके अतिरिक्त उनमें धैर्य, सहनशीलता तथा दासत्व की भावना भी थी, तथा असह्य परिस्थितियों में वे गाँव लौट जाते थे। अतः उनका असन्तोष दबा ही रहा। सन् १९१४–१८ की लड़ाई ने इन परिस्थितियों को बिल्कुल बदल दिया। युद्ध के कारण सभी में, विशेषकर औद्योगिक श्रमिकों में, जागृति आ गई। युद्ध से लौटे हुए सैनिकों ने दूसरे देशों के श्रमिकों की अच्छी अवस्थाओं का वर्णन किया। रूसी क्रान्ति से अन्य देशों में भी क्रान्ति की लहर सी पैदा हो गई थी, और भारतीय श्रमिक भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके थे। नवीन विचारों तथा नयी आशाओं का संचार हुआ। असन्तोष तथा विरोध करने की भावना अब दबी न रह गयी। इसके

अतिरिक्त, कीमतो मे वृद्धि होने के कारण निर्वाह खर्च बढ गया था परन्तु मजदूरी मे उतनी वृद्धि नही हुई थी। लड़ाई के दिनो मे उद्योगपतियो ने बहुत लाभ उठाया था और श्रमिक भी उस लाभ म से अपना लाभ प्राप्त करना चाहते थे। देश मे फैले हुए राजनीतिक असन्तोष के कारण भी श्रमिको मे अपने अधिकारो के प्रति सजगता आ गयी थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग मे स्वराज्य पाने के लिये एकता हो गयी थी। महात्मा गांधी के स्वराज्य आन्दोलन' तथा सरकार द्वारा किय गये अनेक अत्याचारो जैसे—जलियाँवाला बाग दुर्घटना 'मार्शल-ला 'रालेट अधिनियम' तथा करो मे वृद्धि आदि से देश मे एक असन्तोष तथा अस्थिरता की स्थिति आ गई थी। इसके अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organization) की स्थापना होने से भी श्रमिको मे आत्म-सम्मान की भावना उत्पन्न हो गई थी और उन्हे यह अधिकार मिल गया था कि वे इस सघ के वार्षिक सम्मेलनो मे अपना एक प्रतिनिधि भेज सके। अत स्पष्ट था कि अपने अधिकारो तथा आत्म-सम्मान के प्रति सजग हो जाने के बाद अब श्रमिक पुराने सामाजिक अत्याचारो एव नई आर्थिक कठिनाइयो को सहन नही कर सकते थे। नवीन क्रान्तिकारी विचारो के प्रभाव के कारण उनमे नई सामाजिक व राजनीतिक चेतना आ चुकी थी।[1] परिणामस्वरूप यह विरोध व असन्तोष हड़तालो के रूप मे प्रकट हुआ, जो १९१८ मे आरम्भ हुई और १९१९ व १९२० तक समस्त देश मे फैल गई। १९१८ म एक बहुत बडी हड़ताल बम्बई की कपडा मिलो मे आरम्भ हुई और जनवरी १९१९ तक १२५००० श्रमिक इस हड़ताल मे सम्मिलित हो गये थे। १९१९ मे रालेट अधिनियम के विरुद्ध जो हड़ताल हुई उससे यह स्पष्ट हो गया कि श्रमिक राजनीतिक आन्दोलन मे भाग लेने मे पीछे नही रहे थे। १९१९ मे हड़ताल तमाम देश मे फैल गई। सन् १९१९ के अन्त मे और १९२० क आरम्भ मे हड़ताल लहर ने एक विराट रूप धारण कर लिया था। १९२० के प्रथम ६ महीनो मे २०० हड़तालें हुईं जिनमे लगभग १५ लाख श्रमिको ने भाग लिया।[2]

आधुनिक श्रम सघो के विकास का इतिहास
(Growth of Modern Trade Unionism History)

इन झगडो की परिस्थितियो के अन्तगत ही भारत मे श्रम सघो का जन्म हुआ। मुख्य उद्योग धन्धो मे और विभिन्न केन्द्रो मे जो श्रमिक सघ हैं उनका विकास इसी समय मे आरम्भ हुआ यद्यपि परिस्थितियो वश आरम्भ मे श्रमिक सगठन निरन्तर रूप से चालू न हो सका था। इस सघर्ष काल मे ही आधुनिक भारतीय श्रम आन्दोलन की नींव पडी।

प्रथम श्रमिक सघ के निर्माण का श्रेय श्री बी० पी० वाडिया को है जिन्होंने

---

1 K K Dass The Labour Movement in India, Page 23

2 Palme Dutt India Today, pages 377 78

श्रीमती बसेन्ट के साथ भी कार्य किया था। श्री वाडिया ने सन १९१८ में मद्रास के 'चुलाई' नामक स्थान के कपड़ा उद्योग-धन्धों के श्रमिकों को सगठित किया। एक ही वर्ष में श्रमिक सघों की संख्या चार तक पहुँच गई जिनमें २० हजार सदस्य थे। यह वही समय था जबकि सम्पूर्ण देश में श्रमिक सघों की स्थापना के प्रयत्न किये जा रहे थे। *इस बात का भी पता चलता है कि सन १९१७ में अहमदाबाद के सूती* कपडा मिलो के श्रमिकों ने कुमारी अनुसूइया बहिन[1] के नेतृत्व में एक सघ बनाया। कुमारी अनुसूइया बहिन ने अहमदाबाद के श्रमिकों की हड़ताल का भी नेतृत्व किया। परन्तु श्रमिक सगठन के लिये जो विधिपूर्वक प्रथम प्रयास हुआ वह श्री वाडिया का ही था। इस सघ की सदस्यता नियमित थी, जिसके लिये शुल्क भी देना पड़ता था। दूसरे उद्योग केन्द्रों ने भी इसका अनुकरण किया और स्थानीय श्रमिकों के सगठन बनने लगे। १९१९ व १९२३ के बीच में अनेक सघों की स्थापना हुई। श्री मिलर के नेतृत्व में पजाब के रेल कर्मचारियों का एक शक्तिशाली सघ बना। महात्मा *गांधी की प्रेरणा से अहमदाबाद में कई व्यावसायिक सघों की स्थापना हुई,* जैसे—कातने वालों का सघ और बुनने वालों का सघ आदि। ये सब सघ एक सगम में सयुक्त हो गये, जिसका नाम 'अहमदाबाद ,कपडा मिल मजदूर परिषद्' (Ahmedabad Textile Labour Association) रक्खा गया। यह सगम देश के अधिकाश सफल सघों का एक उदाहरण है और यह वर्ग-शान्ति के आधार पर स्थापित है और आज भी इसका स्थान दूसरे सघों से कुछ ऊँचे स्तर पर है।

प्रारम्भ में ये सघ अधिकतर हड़ताल समितियों की भाँति चालू रहे। जैसे ही उनकी माँगें पूरी हो जाती थी सघ भी समाप्त हो जाते थे। ऐसे सघ हड़ताल की पूर्व सूचना कम देते थे और अपनी शिकायतों को ठीक से प्रस्तुत भी नही कर पाते थे। कई बार ऐसा होता था कि उनके कार्यों व बातों में दृढ़ता न होती थी और बहुधा वे ऐसी माँगें प्रस्तुत कर देते थे जिनका पूरा करना कठिन होता था। इसके अतिरिक्त, ये सघ एक दूसरे से पृथक् भी रहते थे और इनमें एकता नही थी। देश में इस समय कोई ऐसा कानून भी न था जिसके अन्तर्गत श्रमिक-सघों को मान्यता प्राप्त होती। मालिकों का व्यवहार भी सघों के प्रति विरोधपूर्ण था। मालिकों और सघों में सदा खींचातानी चलती रहती थी। इस खींचातानी के परिणामस्वरूप सन् १९२१ में एक बड़ा झगड़ा हुआ जबकि मद्रास की बकिंघम मिलो में एक तालाबन्दी के बाद हड़ताल घोषित कर दी गई। मालिकों ने हाईकोर्ट से मद्रास श्रमिक सघ के विरुद्ध मजदूरों को हड़ताल के लिए बहकाने के आरोप में एक व्यादेश (Injunction) प्राप्त कर लिया। सघ पर इस अभियोग के परिणामस्वरूप ७,००० पौंड का जुर्माना हुआ। श्री वाडिया ने विवश होकर इस शर्त पर कि मिल वाले सघ से जुर्माना वसूल न करें श्रमिक सघ आन्दोलन से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। इस घटना से यह विदित हो गया कि श्रमिक आन्दोलन को समाप्त

१ यह मिल मालिक सघ के अध्यक्ष श्री अम्बालाल साराभाई की बहिन थी।

करने के लिये मालिकों के हाथ में एक शक्तिशाली शस्त्र था और श्रमिक नेताओं ने यह अनुभव किया कि श्रमिक संघों के कार्यों को नियमानुसार करने पर भी उन पर मुकदमा चलाया जा सकता था। सन् १९२१ में श्री एन० एम० जोशी ने इस बात का प्रयत्न किया कि एक श्रमिक संघ कानून बनाया जाये और विधान परिषद् में उन्होंने एक विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया, परन्तु वह उसे पास कराने में सफल न हो सके।

यही समय था जबकि श्रम संघों में सामंजस्य (Co-ordination) स्थापित करने के प्रयत्न आरम्भ हुये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के वार्षिक सम्मेलनों में श्रमिकों के प्रतिनिधियों के चुनाव की आवश्यकता ने भी इस आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सन् १९२० में इसी उद्देश्य से स्थापना हुई। यह कांग्रेस पहली अखिल भारतीय संस्था थी जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि सम्पूर्ण देश में श्रमजीवियों का ध्येय एक ही है। परन्तु यह बात अर्थपूर्ण है कि इस समय श्रम आन्दोलन में पहिला पग राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने उठाया। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सभापति कांग्रेस के अनुभवी नेता लाला लाजपतराय थे और स्वागत समिति के अध्यक्ष दीवान चमनलाल थे। कर्नल वैजवुड बैन जो इंगलैंड के श्रमनेता थे इस अधिवेशन में उपस्थित थे। बाद में इसमें सभापति देशबन्धु चितरंजन दास, प० जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस और श्री वी० वी० गिरि भी हुये। राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी श्रमिकों को संगठित करने और उनके आन्दोलन को शक्तिशाली करने के लिये एक श्रम उप-समिति की स्थापना की। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि श्रम आन्दोलन श्रमिकों की केवल प्रतिदिन की आर्थिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं रहा। परन्तु इसमें राजनीतिक रंग भी आ गया। असम में चाय बागान के श्रमिकों की जो हड़ताल हुई वह इस राजनीतिक रंग का ही द्योतक है। परन्तु इस बात में भी कोई सन्देह नहीं कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने श्रमिकों की समस्याओं और उनकी आवश्यकताओं के महत्व पर प्रकाश डालने में बड़ा भारी कार्य किया। सन् १९२४ में 'सुधार समिति' (Reforms Committee) के सामने इस कांग्रेस ने इस बात की मांग रखी कि विधान सभा में श्रमजीवियों के अधिक सदस्य हों। इसने कई प्रस्तावों द्वारा श्रमिकों की दुर्दशा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया और 'श्रमिक संविदा भंग अधिनियम' जैसे कठोर और बुरे कानून को रद्द कराया।

इसी समय सन् १९२२ में रेलवे कर्मचारियों के अखिल भारतीय संगम की स्थापना हुई जिसमें रेलवे कर्मचारियों के सभी संघ सम्बद्ध हो गये। श्रमिकों के और कई संगठन जैसे बंगाल के श्रमिक संघों का संगम और बम्बई का केन्द्रीय श्रमिक बोर्ड आदि की स्थापना भी इसी समय हुई।

परन्तु इस समय श्रम आन्दोलन में झगड़ा करने की प्रवृत्ति कुछ अधिक

मालूम होने लगी और साम्यवादी लोग (Communists) श्रमिकों में दिखाई देने लगे। इस साम्यवादिता की ओर सरकार का ध्यान सबसे पहले कानपुर में गया, जबकि सन् १९२४ में कुछ साम्यवादी श्रमिकों को षड्यन्त्र के आरोप में बन्दी बना लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया और भिन्न-भिन्न अवधि के लिये उन्हें दण्डित किया गया। सरकार ने इस नई प्रवृत्ति को रोकने के लिये कई कदम उठाए। सन् १९२१ में बंगाल में और १९२२ में बम्बई में औद्योगिक अशान्ति और विवाद की समस्याओं पर सुझाव देने के लिये समितियाँ नियुक्त की गईं। बम्बई और मद्रास में इसी समय श्रम विभागों की भी स्थापना हुई। एक श्रमिक संघ विधेयक भी तैयार किया गया और लोगों की राय लेने के लिये परिचालित किया गया, जो सन १९२६ में स्वीकृत होकर अधिनियम बना।

सन १९२६ का यह अधिनियम श्रमिक संघ आन्दोलन के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत श्रमिक संघों को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो गई। प्रारम्भ में संघों ने रजिस्टर कराने में बहुत उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि बकिंघम मिल की घटना के बाद में किसी संघ पर अभियोग नहीं चलाया गया था और संघ इस बात पर तैयार नहीं थे कि रजिस्ट्रेशन का खर्चा उठायें और वार्षिक ब्यौरा देने की भी असुविधा अपने ऊपर लें। परन्तु ऐसी भावना अधिक दिन तक न टिक सकी क्योंकि यदि कोई श्रमिक संघ पंजीकृत न होता था तो मालिकों को उसको मान्यता न देने का बहाना मिल जाता था। पंजीकृत श्रमिकों की संख्या अब तीव्रगति से बढ़ने लगी।

सन् १९२६ के बाद से श्रमिक आन्दोलनों का नेतृत्व साम्यवादियों के हाथों में चला गया। ये साम्यवादी श्रमिक संघ आन्दोलन की आड़ में अपना कार्य करते रहे। दूसरे देशों के कुछ साम्यवादी, जैसे—ब्रिटिश साम्यवादी दल के नेता 'स्प्रेट' एवं 'ब्रैडले' १९२७ में कानपुर ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेते हुए देखे गये। इन साम्यवादियों ने सन् १९२७ में एक मजदूर और किसान पार्टी की भी स्थापना की जिसका उद्देश्य यह था कि नये श्रमिक संघों की स्थापना हो और जो संघ बन चुके थे उनको सुधारवादियों के नियन्त्रण से निकाल लिया जाय। बम्बई में एक संघ 'गिरनी-कामगर संघ' के नाम से चालू किया गया जिसकी सदस्यता ५४,००० तक पहुंच गई।[1] इसने यथेष्ट धनराशि भी एकत्रित की और सन् १९२८ में एक हड़ताल को छ माह तक चालू रखा। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर साम्यवादियों ने अपना कार्य बंगाल तक फैला दिया और कलकत्ता में एक प्रचार केन्द्र भी खोला। सन् १९२७ में श्री सकलातवाला के आने पर ये साम्यवादी एक पृथक् दल के रूप में सामने आये जिसके कार्य करने के ढंग, कार्य-क्रम तथा विचार अलग ही थे। परिणाम यह हुआ कि अशान्ति और हड़तालों का युग देश में व्याप्त हो गया। कई हड़तालें बम्बई की सूती कपड़ा मिलों में, तेल कारखानों में और जी०

---

1 B Shiva Rao: Industrial Worker in India, page 152

आई० पी० रेलवे आदि मे हुई। सन् १६२८ मे झरिया मे साम्यवादियो ने इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर अधिकार जमा ले। सरकार को उनके बढते हुए प्रभाव से चिन्ता हुई और सरकार ने अपनी इस दोहरी नीति को अपनाया कि एक ओर तो कठोरता से दबाया जाय और दूसरी ओर कुछ सुधार का वचन दिया जाय। कठोरता की नीति का परिणाम तो यह हुआ कि श्रमिक वर्ग मे जो प्रमुख साम्यवादी नेता थे उन्हे बन्दी बना लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा ससार के बहुत बडे और खर्चीले मुकदमो मे से एक था। वह मेरठ मे चार वर्ष तक चलता रहा और 'मेरठ ट्रायल' (Meerut Trial) के नाम से मशहूर हुआ। नेताओ को भिन्न भिन्न अवधि के लिये दण्डित किया गया। सरकार के सुधार के वचन के परिणामस्वरूप रॉयल श्रम आयोग की सन् १६२८ मे नियुक्ति हुई जिसका नाम 'ह्विटले कमीशन' भी था। सन् १६२६ मे बम्बई मे बन्दरगाहो मे काम करने वाले श्रमिको के लिये एक जांच समिति की स्थापना हुई। इस समिति ने अशान्ति और झगडो का दोष 'गिरनी कामगार संघ' पर लगाया गया तथा साम्यवादियो के विरुद्ध कठिन कार्यवाही करने के सुझाव दिये। पहला 'व्यवसाय विवाद अधिनियम' (Trade Disputes Act) १६२६ मे पारित हुआ।[1]

इसके पश्चात् साम्यवादियो और सुधारवादियो मे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए खीचातानी प्रारम्भ हुई। सयमी (Moderate) श्रमिक सघो को साम्यवादियों के प्रभाव से शका उत्पन्न हो गई थी। ट्रेड यूनियन कांग्रेस के दसवें अधिवेशन मे, जो नागपुर म १६२६ मे पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता मे हुआ, आमूल परिवर्तन चाहने वालो (Radicals) ने कुछ प्रस्ताव पास करा लिये जिनमे से मुख्य प्रस्ताव रॉयल श्रम आयोग का बहिष्कार करने और ट्रेड यूनियन कांग्रेस को मास्को की 'तीसरी इन्टरनेशनल' से सम्बद्ध कराने हेतु थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सयमी दल श्री एन० एम० जोशी के नेतृत्व मे, कांग्रेस से पृथक् हो गया और अपनी अलग सस्था बना ली जिसका नाम उन्होने 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन' रक्खा। ट्रेड यूनियन कांग्रेस को, जिसके नये अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गये थे, अपने कार्य मे अब कठिनाई प्रतीत होने लगी। रेल कर्मचारियो का जो सगम था वह इन झगडो से अलग ही रहा। साम्यवादी इतने शीघ्र विभाजन के लिए तैयार न थे। उनका आपस मे मतभेद हो गया। कुछ लोग तो मास्को की तीसरी इन्टरनेशनल मे बताए हुए नियमो पर चलने के पक्ष मे थे और कुछ लोग श्री एम० एन० राय के पक्ष मे थे, जो इस समय भारत मे गुप्त रूप से कार्यवाहियां कर रहे थे। श्री राय की गिरफ्तारी तथा १६३० मे महात्मा गाधी के सिविल आज्ञा उल्लघन आन्दोलन के कारण सगठित रूप मे कार्यवाही करना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप, सन् १६३१ मे

---

1 See under Industrial Disputes Legislation

कलकत्ता ट्रेड यूनियन कांग्रेस अत्यन्त शोर और गड़बड़ के बाद दो और खण्डों में विभाजित हो गई। कुछ लोगों ने श्री देशपांडे और श्री रणादिवे के नेतृत्व में एक और संस्था की स्थापना की जिसका नाम 'अखिल भारतीय रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस' रखा।

इसके पश्चात् संघों में राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व फिर से प्रकट होने लगा। सन् १९३१ में समझौते के प्रयत्न आरम्भ हुए और रेलवे कर्मचारियों के संगम के पदाधिकारियों के प्रयत्नस्वरूप एक 'श्रमिक संघ एकता समिति' की स्थापना हुई जिसने एकता लाने के लिये एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। सन् १९३४ में पंडित हरिहरनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में जब ट्रेड यूनियन कांग्रेस का वार्षिकोत्सव हुआ तब उसमें साम्यवादियों से समझौता हो गया और रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस को समाप्त कर दिया गया। सन् १९३८ में श्री वी० वी० गिरि के प्रयत्नस्वरूप ट्रेड यूनियन फैडरेशन भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। इस प्रकार सम्मिलित हुई अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सन् १९४० में बड़े समारोह के साथ नागपुर में हुआ। इसके सभापति डॉ० सुरेश बनर्जी और जनरल सेक्रेट्री श्री एन० एम० जोशी थे। विभाजन नागपुर में ही हुआ था और नागपुर में ही फिर सब एक हो गये। इस बात से बचने के लिये कि पहिले जैसे विवादों और विभाजन का अवसर न आये, यह निर्णय किया गया कि कोई भी राजनैतिक प्रस्ताव तब तक पास नहीं होगा जब तक कि वह उपस्थित सदस्यों की तीन चौथाई संख्या को मान्य न हो।

इसी समय कलकत्ते में बंगाल श्रम संघ की स्थापना हुई और सन् १९३४ में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में पटना में समाजवादी दल का जन्म हुआ। 'हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ' की भी एक श्रम सलाहकार समिति के रूप में स्थापना हुई जिसका सम्बन्ध 'अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद्' से था और जिसका उद्देश्य श्रम आन्दोलन को गाँधीवाद के सिद्धान्तों, जैसे—अहिंसा, सच्चाई तथा त्याग आदि, पर चलाना था।

परन्तु यह एकता अधिक दिनों तक न चल पाई। सन् १९३९ में जब लड़ाई प्रारम्भ हुई तब फिर विच्छेद हो गया। कांग्रेसी नेता सब जेल चले गये और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ गया। इस कांग्रेस ने प्रारम्भ में तो युद्ध के प्रति तटस्थता को अपनाया, परन्तु कुछ लोग श्री एम० एन० राय के नेतृत्व में लड़ाई के प्रयत्नों में पूरा-पूरा सहयोग देने के पक्ष में थे। श्री एम० एन० राय और उनके अनुगामियों ने अलग संस्था बना ली जिसका नाम उन्होंने 'इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर' रखा। इस संगम को सरकार से आर्थिक सहायता मिलने के कारण जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त न हो सका।

इस प्रकार लड़ाई के दिनों में दो अखिल भारतीय श्रमिक संघ संस्थायें थीं। एक तो 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' और दूसरी 'इण्डियन फैडरेशन ऑफ

भावी नीति (The Future)

जहाँ तक भविष्य की नीति का प्रश्न है हम श्रम समिति के इस मत से सहमत हैं कि गाँव से सम्बन्ध स्थापित रखने की समस्या को दो दृष्टिकोणों से देखना चाहिये। एक दृष्टि से तो गाँवों को श्रमजीवियों के अल्प समय के लिये मनोरंजन का उपयुक्त स्थान माना जा सकता है। द्वितीय दृष्टि से गावों को श्रमजीवियों के लिये एक सुरक्षा का स्थान माना जा सकता है। जहाँ तक पहले दृष्टिकोण का प्रश्न है इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमिकों को गाँव जाने के लिये हर प्रकार की सुविधायें देनी चाहिये जैसे—सस्ते वापसी टिकट तथा छुट्टी आदि। परन्तु श्रम अनुसंधान समिति इस बात से सहमत नहीं है कि भविष्य में श्रमजीवियों की सुरक्षा के दृष्टिकोण से गाँवों में सम्बन्ध स्थापित रहना चाहिये। निःसन्देह उपाय यही है कि औद्योगिक नगरों की दशा में उन्नति की जाय और श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा योजना, मकान, मजदूरी, अच्छा भोजन आदि का उचित प्रबन्ध किया जाय और कारखानों में काम करने के वातावरण में उन्नति की जाय। इस बात से अब सब सहमत हैं कि गाँव में संयुक्त परिवार प्रथा और जाति बन्धनों का ह्रास होता जा रहा है जो अब तक आर्थिक दृष्टि से मजदूरों की सुरक्षा के साधन थे और श्रमिक इस समय ऐसी परिवर्तनशील अवस्था में हैं जबकि धीरे-धीरे उनका गाँवों से तो सम्बन्ध टूटता जा रहा है, परन्तु अभी तक वे औद्योगिक नगरों के पूर्णतया स्थायी निवासी नहीं बन सके हैं। अतः ऐसी स्थिति में श्रमिक को गाँव से आने से रोकना या उसको गाँव वापिस जाने के लिये विवश करना, समस्या का समयानुकूल समाधान न होगा।[1]

राष्ट्रीय श्रम आयोग (१९६९) ने रॉयल (व्हिटले) श्रम आयोग तथा श्रम अनुसन्धान समिति के विचारों का उल्लेख करने के बाद यह मत व्यक्त किया कि "विगत २० वर्षों की अवधि में औद्योगिक श्रमिकों में स्थायी रूप से रहने की प्रवृत्ति और बढ़ी है। आज गाँव से आने वाला श्रमिक रुचि और दृष्टिकोण में अपने पूर्ववर्ती श्रमिकों की अपेक्षा अधिक शहरी बन चुका है। ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में इस धारणा की, कि शहरी कारखानों में काम करने के लिए आने वाले ग्रामीण श्रमिक गाँवों से अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखते हैं, यद्यपि व्हिटले आयोग ने पुष्टि की थी और इससे उद्योगों के प्रति श्रमिकों की वचनबद्धता (commitment) में बाधा भी पड़ती थी किन्तु औद्योगिक श्रमिकों के हित में उठाये गये अनेक ठोस पगों के कारण अब यह धारणा पीछे पड़ गई है। अब तक दूरस्थ चाय बागानों तक में स्थायी रूप से बसने वाले श्रमिक काफी संख्या में पाये जाते हैं।" आयोग ने आगे कहा कि "ज्यों-ज्यों उद्योग का विस्तार होता है और उसमें बड़ी मात्रा में कुशल व अकुशल कामों को सम्मिलित किया जाता है त्यों-त्यों औद्योगिक कार्यों में गाँवों से आने वाले श्रमिकों का एकाधिकार समाप्त होता जाता है। शहरी परिवारों के

1 Labour Investigation Committee Report, page 78

युवक जो कि परम्परागत रूप में कारखानों के वातावरण को स्वीकार करने में कोई रुचि नहीं रखते थे, अब कारखानों में रोजगार की तलाश करते पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, जब से मिल मालिकों ने श्रमिकों को नियमित रूप से आने और उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरणाएँ एवं सुविधायें प्रदान करनी आरम्भ की है तब से गाँवों में आने वाले श्रमिकों तक ने भी अपने गांवों के दौरों की सख्या एवं अवधि में कमी कर दी है। बम्बई पूना दिल्ली और जमशेदपुर में किये गये अध्ययनों में स्पष्ट हुआ है कि गाँवों से शहरों में काम करने के लिये आने वाले पुराने श्रमिकों में तो अभी भी गाँवों को वापिस लौटने की लालसा पाई जाती है किन्तु गाँवों में आने वाले नये श्रमिकों में शहरी जीवन व फैक्टरी कार्य के प्रति अधिकाधिक लगाव पाया जाता है। श्रमिकों की आयु भी इस सम्बन्ध में एक निर्धारित तत्त्व है और वह इस प्रकार कि शहरी सुविधाओं व आकर्षणों का प्रभाव युवा श्रमिकों पर अधिक देखा जाता है।' निष्कर्ष के रूप में आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि 'नगरों में काम करने वाले श्रमिकों की काफी बड़ी संख्या अब कारखानों के कार्य से अपना सम्बन्ध स्थायी रूप में जोड़ चुकी है। पुराने उद्योगों में तो श्रमिकों की दूसरी तथा तीसरी पीढ़ी तक काम करती हुई देखी जाती है। देश में श्रमिकों के ऐसे वर्ग की संख्या बराबर बढ़ रही है जिसकी जड़ें ऐसे औद्योगिक वातावरण में गहराई से पैठ चुकी है जिसमें कि श्रमिक जन्म लेता है और जिसमें वह अपनी जीविका भी प्राप्त करता है।'[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग के ये निष्कर्ष कुछ बड़े नगरों तथा पुराने उद्योगों के औद्योगिक श्रमिकों के अध्ययनों पर आधारित रहे हैं। जबकि देश के विशाल क्षेत्र में काफी संख्या में बड़े तथा छोटे उद्योग-धन्धे स्थापित हो चुके हैं और ऐसे उद्योगों के श्रमिकों एवं ग्रामीण श्रमिकों की शहरी क्षेत्रों की ओर को आने की प्रवृत्ति के अध्ययनों से पता चलता है कि श्रमिकों का एक बड़ा भाग अभी भी हृदय से ग्रामीण बना हुआ है और अपने गाँव के घरों से अपना सम्पर्क बराबर बनाये रखना चाहता है। अतः यदि पश्चिमी देशों के समान भारत में भी स्थायी औद्योगिक जनसंख्या का निर्माण किया जाना है तो औद्योगिक नगरों में श्रमिकों के लिए रोजगार की श्रेष्ठतर दशायें तथा रहन-सहन की अच्छी सुविधायें उपलब्ध कराने की दशा में निरन्तर प्रयास जारी रखने होंगे।

1 Report of the National Commission on Lab ur, page 31

३ औद्योगिक श्रमिको की भर्ती की समस्यायें

THE PROBLEMS OF RECRUITMENT OF THE INDUSTRIAL WORKERS

महत्व (Importance)

श्रमिको के रोजगार मे सर्वप्रथम समस्या उनकी भर्ती की है। उद्योगो मे जिन पद्धतियो और सगठनो द्वारा श्रमजीवियो को भर्ती किया जाता है, उन पर व्यवसाय की सफलता अथवा विफलता बहुत कुछ निर्भर करती है। यदि कार्य के अनुकूल श्रमिक काम पर नही लगाया जाता तो उत्पादन और कार्यकुशलता पर उसका बुरा प्रभाव पडता है। विज्ञान, शिल्पकला और उत्पादन की आधुनिक विधियो के विकास के साथ ही, अब तो इस बात की ओर भी अधिक आवश्यकता है कि उद्योगो मे कुशल एव निपुण श्रमिको की नियुक्ति हो। अत उद्योग में जिस श्रमिक की भर्ती की जाये वह ऐसा होना चाहिए जो अपने कार्य के लिये पूणत अनुकूल तथा योग्य हो। यदि उद्योग मे कोई श्रमिक किसी की सिफारिश या दबाव से भर्ती किया जाता है तो व न कवल अकुशल ही सिद्ध होता है अपितु उद्योग के अनुशासन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है और अन्य कुशल श्रमिकों म निराशा तथा असन्तोष उत्पन्न कर देता है। अत आधुनिक उद्योग को भर्ती की वैज्ञानिक रीतियो की आवश्यकता होती है अर्थात् ऐसी रीति जिसके द्वारा किसी पद के रिक्त होते ही शीघ्रातिशीघ्र सबसे अधिक अनुकूल तथा योग्य व्यक्ति भर्ती कर लिया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति का सर्वोत्तम साधन रोजगार कार्यालय (employment exchange) होता है।

प्रारम्भिक इतिहास (Early History)

भारत म बडे उद्योगों की स्थापना क प्रारम्भिक काल मे कारखानो और बागान के मालिको को श्रमिक भर्ती करने मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। इसका कारण यह था कि श्रमिक अपना गाव छोडकर कारखानो और बागान के नये तथा विभिन्न वातावरण मे जाने के लिये तैयार नही थे। कारखानो म काम करने की स्थिति भी वर्तमान समय से अधिक खराब थी। १८६६ की प्लेग तथा १९१८ की इन्फ्लूएन्जा की महामारी के कारण भी श्रमिको का अभाव हो गया था। इसका प्रभाव यह पडा कि मालिको को मजदूर भर्ती करने के लिय

अच्छे बुरे सब प्रकार के तरीकों को अपनाना पड़ा और भर्ती मध्यस्थों (Intermediaries) तथा ठेकेदारों (Contractors) द्वारा होने लगी। यह प्रणाली आज भी प्रचलित है, यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से अब भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा होने लगी है। इसका कारण यह है कि अब श्रमिक काफी संख्या में उद्योग-धन्धों में आने लगे हैं क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि के कारण और कृषि पर जनसंख्या का अधिक दबाव होने के कारण जीविका की खोज में लोगों को गाँव छोड़ना पड़ा है। यातायात के साधनों में उन्नति हो जाने के कारण उन्हें नगरों में आने में कठिनाई भी नहीं होती। यही नहीं कारखानों में काम की दशाओं में कुछ सुधार होने के कारण भी अब काफी श्रमिक शहरों की ओर आने लगे हैं। फिर भी प्रारम्भ में श्रमिकों के अभाव और उनकी प्रवासिता (Migratory character) के कारण भर्ती की प्रणाली सोच-विचार कर प्रारम्भ नहीं की गई, और श्रमिकों के प्रशासन तथा व्यवस्था में कोई सैद्धान्तिक तरीका नहीं अपनाया गया। क्योंकि शहरी क्षेत्रों में श्रमिक स्थायी रूप से नहीं रहते हैं और जैसा पिछले अध्याय में बताया जा चुका है अधिकतर श्रमिक गाँव से ही आते हैं और उनसे अपना सम्बन्ध बनाये रखते हैं इसलिये भर्ती प्रणाली पर भी श्रमिकों की इस प्रवासिता का प्रभाव पड़ा है और श्रमिकों को प्राप्त करने के लिये भर्ती की अनेक दोषपूर्ण पद्धतियाँ काम में लाई गई हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों की प्रवासिता ने भर्ती प्रणाली पर अपना काफी प्रभाव डाला है।

भर्ती प्रणाली में मध्यस्थों का स्थान (The Role of Intermediaries) :

संगठित व असंगठित दोनों प्रकार के उद्योगों में श्रमिकों से गाँवों में सम्पर्क बनाना तथा उनको गाँव से नगरों में लाने का काम अधिकतर मध्यस्थों पर निर्भर रह गया है। प्राय श्रमिकों को अच्छा वेतन, सुविधाजनक व्यवसाय आदि का प्रलोभन देकर नगरों की ओर आकर्षित किया जाता है। मध्यस्थों को भी श्रमिक लाने के लिए अच्छा कमीशन मिलता रहा है।

मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती बहुत समय से अनेक भारतीय उद्योगों का मुख्य लक्षण रहा है, यद्यपि पिछले वर्षों में इस प्रणाली में कुछ परिवर्तन हुआ है। मध्यस्थों अथवा काम दिलाने वालों को भारत के विभिन्न उद्योग-धन्धों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे—सरदार, मिस्त्री, मुकद्दम, टिण्डैल, चौधरी, कंगनी आदि। *मध्यस्थ एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है जो अनेक कार्य करता है।* बड़े-बड़े उद्योगों में मध्यस्थ, प्रधान मध्यस्थ और नारी मध्यस्थ भी, जिन्हें नायकिन या मुकद्दमिन कहते हैं, पाये जाते हैं। मध्यस्थ या सरदारों को श्रमजीवियों में से ही चुना जाता है। ठेकेदारों की तरह ये कोई बाहर के व्यक्ति नहीं होते। जो श्रमिक अनुभवी हो जाते हैं और मालिकों की कृपा दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं उनको इस पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। इन सरदारों पर अनेक कामों का भार सौंप दिया जाता है। श्रमिकों की नियुक्ति, प्रशिक्षा, पदोन्नति, बरखास्तगी, दण्ड, छुट्टी,

उनके निवास और आवश्यकता के समय उन्हें रुपया उधार देना आदि सभी प्रकार का कार्य मध्यस्थ करते हैं। कारखानों में मशीनों की देखभाल में वे मिस्त्रियों की सहायता भी करते हैं। श्रमिक उन्हें अपने अधिकारों का संरक्षक भी समझते है, जिनके बिना उनका निर्वाह कठिन हो जाता है। मालिक भी मजदूरों की इच्छाओं तथा मांगों आदि के बारे में मध्यस्थों से ही जानकारी प्राप्त करते हैं और यदि उनको मजदूरों के पास कोई सन्देश भेजना हो तो यह कार्य भी मध्यस्थों द्वारा ही सम्पन्न होता है। उन उद्योगों में जो विदेशी मालिकों के हाथों में थे, जिन्हें भारतीय भाषा नहीं आती थी, मध्यस्थ और भी अधिक शक्तिशाली बन गए थे।

मध्यस्थों के दोष (Evils of Intermediaries)

मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती की प्रणाली सदैव से ही अत्यन्त दोषपूर्ण सिद्ध हुई है। रॉयल श्रम आयोग के शब्दों में 'मध्यस्थ का पद अत्यन्त प्रलोभनीय है और यदि ये लोग इन अवसरों से लाभ न उठायें तो यह आश्चर्यजनक होगा। ऐसे थोड़े से ही कारखाने हैं जिनमें श्रमिकों की सुरक्षा कुछ सीमा तक मध्यस्थों के हाथ में न हो। अनेक कारखानों में तो मध्यस्थों को श्रमिकों की नियुक्ति तथा बरखास्तगी का अधिकार भी है। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि मध्यस्थ अपने अधिकारों से साधारणतया लाभ उठाते रहते हैं। यह दोष कुछ उद्योगों में कम और कुछ उद्योगों में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। यह प्रथा तो बहुत प्रचलित है कि किसी को नया रोजगार देने या फिर से रोजगार पर लगाने के बदले में कुछ कीमत वसूल की जाय। बहुधा यह देखा गया है कि श्रमिकों को अपने मासिक वेतन का एक अंश भी नियमित रूप से देना पड़ता है। श्रमिकों को समय-समय पर नशीले पेय पदार्थ या दूसरे उपहारों द्वारा भी मध्यस्थों को प्रसन्न करते रहना पड़ता है। कभी कभी स्वयं मध्यस्थ को भी प्रधान मध्यस्थ की जेब भरनी पड़ती है और ऐसा सुनने में आया है कि अन्य निरीक्षकगण (Supervisory staff) भी कभी-कभी इसमें से कुछ भाग पाते हैं।" इसके अतिरिक्त, अनेक अवसरों पर इन मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों का गलत ढंग से प्रतिनिधित्व होने के कारण बहुधा मालिकों और श्रमिकों के बीच झगड़े उत्पन्न होते रहते हैं, और फिर यह भी आवश्यक नहीं है कि वे कुशल श्रमिक को ही भर्ती करें। ये तो उसी को भर्ती करते हैं जो उन्हें अधिक कमीशन देता हो या जिसमें वह दूसरे कारणों से दिलचस्पी रखते हों। इस प्रकार धन प्राप्त करने की लालसा के कारण अनेक श्रमिक मध्यस्थों द्वारा अन्यायपूर्वक बरखास्त कर दिए जाते हैं और इससे श्रमिकावर्त्त (Labour turnover) अधिक हो जाता है। मध्यस्थ सदैव स्थानों को रिक्त करने के प्रयत्न में रहते हैं जिससे नई भर्ती करके अपनी जेबें भर सकें। वे श्रमिकों को उनके वेतन की जमानत पर ऊँची ब्याज दर पर ऋण भी देते हैं। अनेक मध्यस्थ बेईमानी करके ऋण के हिसाब में ऐसी गड़बड़ी कर देते हैं जिससे मजदूरों को हानि होती है। महिला श्रमिकों का महिला मध्यस्थों द्वारा और भी अधिक शोषण होता है। क्योंकि महिला मध्यस्थ

अधिकतर अच्छे चरित्र की नहीं होती हैं। अच्छे चरित्र की स्त्रियाँ इस पद को इसलिए स्वीकार नहीं करती क्योंकि यह पद सम्मानित नहीं समझा जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जबकि इन नायकिनों के कारण महिला श्रमिकों को अनैतिक जीवन व्यतीत करना पड़ा है।

वर्तमान स्थिति और भविष्य

(Present position and the future)

मध्यस्थों द्वारा भर्ती की प्रथा को सब लोग अत्यन्त असन्तोषजनक तथा अवाछनीय समझते हैं और सभी जगह मध्यस्थों की शक्ति तथा अधिकारों को कम करने के प्रयत्न किए गए हैं। परन्तु इस प्रथा को पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सका है और यहाँ तक कि श्रम अनुसंधान समिति का भी यही मत था कि भारतीय श्रमिक अपनी विकास और गतिशीलता की उस सीमा पर अभी तक नहीं पहुँच सका है कि भर्ती के लिये मध्यस्थों को आसानी से अलग किया जा सके। भर्ती के अन्य साधनों के न होने के कारण मध्यस्थ एक अनिवार्य सा साधन प्रतीत होता है। इस प्रणाली के कुछ लाभ भी हैं। मध्यस्थ उन गाँवों और जिलों से निकटता का सम्पर्क रखता है जहाँ से श्रमिक भर्ती किए जाते हैं। अतः वह श्रमिकों की आदतों, आशाओं और आशंकाओं को भली-भाँति समझता है और अपने व्यवहार में उनका ध्यान रखता है, जबकि अन्य सीधी भर्ती करने वाली संस्थाओं का इन श्रमिकों से कोई भी निकट सम्पर्क नहीं होता। यही कारण है कि मध्यस्थों की स्थिति इन संस्थाओं की अपेक्षा अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। यह बात उल्लेखनीय है कि युद्ध के समय में फौज तथा लड़ाई की अन्य योजनाओं में भर्ती के लिए सरकार को भी मध्यस्थों की सहायता लेनी पड़ी थी और उनको कुछ कमीशन भी देना पड़ा था। फिर भी मध्यस्थों की अनिवार्यता को स्वीकार करने का तात्पर्य यह नहीं होना चाहिए कि इस प्रणाली को नियमित बनाने की ओर कोई भी प्रयत्न न किया जाये या भर्ती का कोई सैद्धान्तिक तरीका न अपनाया जाये। इस प्रणाली को सुधारने के लिए विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किये जा चुके हैं और कुछ ठोस कदम भी उठाये जा चुके हैं। इस समय सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न केन्द्रों में रोजगार दफ्तर भर्ती की प्रणाली के दोष दूर करने में सहायक सिद्ध हुए हैं तथा स्थायीकरण (Decasualisation) की योजनायें भी कई केन्द्रों में लागू हैं। इस प्रकार विभिन्न केन्द्रों और उद्योगों में भर्ती की प्रणाली इस समय एकसमान नहीं है।

विभिन्न उद्योगों में भर्ती की प्रणाली :

(Recruitment in Various Industries)

फैक्ट्री उद्योगों में कहीं कुछ श्रमिकों की और कहीं सभी श्रमिकों की भर्ती साधारणतया सीधी प्रणाली द्वारा होती है। बम्बई, तमिलनाडु, पंजाब, बिहार व उड़ीसा के राज्यों में सीधी भर्ती प्रणाली (Direct recruitment) अधिक प्रचलित है। इसका तरीका यह है कि फैक्ट्री के फाटक पर एक नोटिस लगा दिया जाता है

करता है। श्रमिकों का चुनाव अधिकार प्रबन्धकर्ताओं द्वारा ही उसी सूची में किया जाता है। इस प्रकार के दोनों पक्ष के लोग सन्तुष्ट रहते हैं। हैदराबाद में भी ऐसी ही व्यवस्था है। कानपुर में अनेक मिलों में श्रम अधिकारियों के अतिरिक्त सन् १९३८ से उत्तरी भारत मालिक संघ द्वारा स्थापित किया हुआ श्रम-ब्यूरो (Labour Bureau) भी चल रहा है जिसके द्वारा उसके अधिकांश सदस्य अपने श्रमिकों की भर्ती करते हैं। कानपुर में अब एक स्थायीकरण (Decasualisation) योजना चल रही है जिसके अन्तगत रोजगार के दफ्तर श्रमिकों की एक संचित सूची रखते हैं। योजना में सहयोग देने वाले उद्योग-धन्धों में श्रमिकों की भर्ती रोजगार के दफ्तरों द्वारा इसी संचित सूची से की जाती है। इसके पूर्व एक बदली नियन्त्रण योजना' थी जिसके अन्तगत नित्य के आकस्मिक रिक्त स्थानों की पूर्ति, छटनी किये हुए श्रमिकों द्वारा होती थी। टाटा की लोहा इस्पात कम्पनी ने तथा बिहार की कुछ बड़ी बड़ी फैक्ट्रियों ने भर्ती के लिये अपने स्वयं के ब्यूरो खोल रखे हैं। जमशेदपुर *की टिन प्लेट कम्पनी तथा अहमदाबाद, बम्बई, शोलापुर और कोयम्बटूर की सूती* कपड़ा मिलों में भी स्थायीकरण योजनायें चल रही हैं। बंगाल की जूट की मिलों में श्रम अधिकारियों की नियुक्ति करके उनको श्रम ब्यूरो का अधिकारी बना दिया गया है। इनके द्वारा श्रमिकों की भर्ती की जाती है। भर्ती के कार्य के लिये एक बदली रजिस्टर रखा जाता है। यदि रिक्त स्थानों के लिये श्रमिकों की फिर भी कमी रहती है तब फैक्ट्री के फाटक पर ही सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती कर ली जाती है। यद्यपि यह प्रणाली मध्यस्थों को हटाने के लिये चालू की गई थी, परन्तु इन मध्यस्थों का प्रभाव अब भी काफी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकतर फैक्ट्रियों में अभी भी भर्ती सीधी प्रणाली और मध्यस्थों द्वारा होती है, यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से अब हम भर्ती के तरीके में काफी उन्नति पाते हैं। कई स्थानों पर स्थायीकरण की योजनायें लागू हो चुकी हैं। रोजगार के दफ्तरों द्वारा भी अब भर्ती काफी मात्रा में होने लगी है।

चीनी के कारखानों में जहाँ कार्य सामयिक (Seasonal) होता है, कुछ *निरीक्षकों और तकनीकी विशेषज्ञ (Technicians) को छोड़कर सभी मजदूर* मौसम या समय समाप्त होने पर निकाल दिये जाते हैं, तथा मौसम फिर आरम्भ होने पर उनको सूचित किया जाता है। यदि वे निश्चित समय पर उपस्थित हो *जाते हैं तो उनकी नियुक्ति फिर से हो जाती है। सामयिक या मौसमी श्रमिकों के* सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की सरकार विशेष आज्ञायें जारी करती है।

रेलवे के विभिन्न विभागों में भर्ती की प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न हैं। रेलवे *विभाग के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति या तो प्रत्यक्ष रूप से सीधी प्रणाली* द्वारा हो जाती है, या दूसरे और तीसरे दर्जे की नौकरियों से पदोन्नति के द्वारा। तीसरे दर्जे के पदों पर भर्ती रेलवे सेवा आयोग द्वारा होती है जो कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद और मद्रास में है। साधारणतया अकुशल और निम्न श्रेणी के श्रमिकों

की भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा की जाती है। रेलवे में ठेकेदार के श्रमिक भी काफी सख्या में पाये जाते है। रेलवे की अराजपत्रित सेवाओं में परिगणित जाति तथा परिगणित जनजाति के उम्मीदवारों को कुछ प्रमुखता दी जाती है। सन् १९५६ से चौथी श्रेणी के कर्मचारियों की पदोन्नति तथा सेवा की दशाओं में सुधार हुआ है।

खानों में प्रारम्भ में अधिकतर श्रमिक ठेकेदारों द्वारा ही भर्ती किये जाते थे। अन्य देशों के विपरीत भारतवर्ष में अभी हाल तक भी खान के श्रमिकों का कोई पृथक् वर्ग नहीं था। अधिकतर श्रमिकों की भर्ती कृषक वर्ग से ही की जाती थी। एस श्रमिक समय आने पर कृषि सम्बन्धी कार्यों हेतु अपने गाँवों को लौट जाते थे। कोयले की खानों में जमींदारी प्रथा भर्ती की सबसे पुरानी प्रथा थी। इसके अन्तर्गत श्रमिकों को यह प्रलोभन दिया जाता था कि उनको बिना कीमत के या नाममात्र लगान पर ही खेत दिये जायेंगे। श्रमिकों का इन भूमियों पर अधिकार रहने की यह शर्त थी कि वे खानों में काम करते रहें। परन्तु बहुत जल्दी ही कोयले की खानों के पास कृषि-योग्य भूमि का अभाव अनुभव होने लगा और ऐसे श्रमिक अधिक कार्यकुशल भी नहीं सिद्ध हुये। इस प्रकार से यह प्रथा सफल न हो सकी। रॉयल श्रम आयोग ने भी यह कह कर इस प्रथा का खण्डन किया है कि इस प्रकार की संविदा (Contract) अवाञ्छनीय है। यद्यपि हाल में ही कुछ खानों ने अपने प्रतिनिधि बाहर भेजकर सीधी भर्ती की प्रणाली अपना ली है परन्तु फिर भी ठेकेदारों द्वारा श्रमिकों की भर्ती करने की प्रणाली काफी प्रचलित है। भर्ती के लिये कई प्रकार के ठेकेदार होते हैं। बहुत सी खानें केवल 'भर्ती करने वाले ठेकेदार' (Recruiting Contractors) रखती है जो श्रमिकों की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार से भर्ती किये गये श्रमिकों को प्रबन्धकगण नौकर रखकर वेतन देते है। कुछ खानें 'प्रबन्धक ठेकेदार' (Managing Contractors) रखती हैं जो केवल श्रम की पूर्ति ही नहीं करते, वरन् खान की समृद्धि तथा उन्नति के लिये भी उत्तरदायी होते है और इस प्रकार के प्रबन्धकगण के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। सर्वकार्य ठेकेदारों (Raising Contractors) द्वारा भर्ती की प्रथा सबसे अधिक प्रचलित है। ये ठेकेदार न केवल श्रमिकों की भर्ती करते है और उनके खर्चों को सहन करते हैं, वरन् इसके साथ ही कोयले को काटने तथा लादने के लिये भी उत्तरदायी होते है। इनके लिये इन्हें प्रति टन की दर से कुछ पैसा मिलता है। युद्ध के दिनों में कोयले की तीव्र आवश्यकताओं तथा श्रमिकों की कमी के कारण स्वयं सरकार ने अकुशल श्रमिकों की पूर्ति के लिये ठेकेदारों से काम लिया था।

कोयला खानों में ठेके के श्रमिकों की प्रथा की समाप्ति के प्रश्न पर समय-समय पर अनेक समितियों एवं सम्मेलनों द्वारा विचार किया जाता रहा है और सरकार का ध्यान भी इस ओर बराबर आकर्षित रहा है। सन् १९४८ की कोयला खान औद्योगिक समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप, केवल दो को छोड़कर अन्य रेलवे कोयला खानों में ठेके की प्रथा को समाप्त कर दिया गया था।

सन् १९६१ में, एक जाँच समिति (Court of Enquiry) की सिफारिश पर यह समझौता हुआ था कि कुछ विशिष्ट श्रेणियों को छोड़कर अन्य सभी कोयला खानों में ठेके के श्रमिकों की प्रथा को समाप्त कर दिया जाय। परिणामस्वरूप बिहार की कुछ कोयला खानों को छोड़कर अन्य खानों में यह प्रथा समाप्त कर दी गई है। १९७० का ठेका श्रमिक (नियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम को काम करते १० फरवरी १९७१ से लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम द्वारा कई *बातों का प्रावधान किया गया है, जैसे कि मुख्य मालिकों (principal employers)* का पंजीकरण ठेकेदारों द्वारा लायसेंस लेना, सभी खानों में ठेके की प्रथा की समाप्ति जिन्हें कि सम्बन्धित सरकारें निश्चित करें और जहाँ इस प्रथा का उन्मूलन सम्भव न हो वहाँ ठेके के श्रमिकों की सेवा की दशाओं का नियमन अधिनियम के प्रशासन से सम्बन्ध में परामर्श देने के लिये त्रिदलीय सलाहकार बोर्डों की स्थापना का भी प्रावधान है। कोयला खानों के लिये अब पृथक् रोजगार दफ्तर भी खोल *दिये गये हैं। श्रमिक भर्ती के लिये इन रोजगार दफ्तरों में अपने को पंजीकृत करा* सकते हैं। गोरखपुर श्रम संगठन को भी अब केन्द्रीय रोजगार दफ्तर (श्रम) में परिवर्तित कर दिया गया है।

अन्य खानों में भर्ती करने के तरीके कुछ भिन्न हैं। कच्चे लोहे की खानों में बहुधा सीधी प्रणाली द्वारा ही श्रमिक भर्ती किये जाते हैं। कभी कभी काम पर लगे हुए श्रमिकों की सहायता से निकट के गाँवों से भी श्रमिकों की भर्ती होती है। मूल्यवान पत्थरों की खानों में ठेके के काम के लिये श्रमिकों की भर्ती 'सरदार' या उप-ठेकेदारों' द्वारा की जाती है। अभ्रक की खानों में 'सरदार' निकट के गाँवों में भेजे जाते हैं, जिससे वे इच्छुक श्रमिकों को पेशगी पैसा देकर भर्ती कर सकें। भर्ती करने वाले सरदारों को कोई कमीशन नहीं मिलता। उनकी मजदूरी भर्ती किये गए श्रमिकों की संख्या पर निर्भर करती है। जो खानें जमींदारों के अधिकार में हैं *उनके लिये श्रमिक काश्तकारों में से ही प्राप्त कर लिये जाते हैं।* १९५८ में की गई एक तदर्थ जाँच से यह पता लगा था कि अभ्रक की खानों में लगभग ८२.६ प्रतिशत श्रमिक सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये गये थे और शेष १७.४% श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों द्वारा की गई थी। मैंगनीज की खानों में ४२ प्रतिशत श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों द्वारा होती है और शेष सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये जाते हैं। लगभग ५० प्रतिशत श्रमिक आदिवासी वर्ग के होते हैं। महाराष्ट्र राज्य में, शिवराजपुर की खानों में भर्ती 'टिन्डैलों' द्वारा की जाती है। मन्दूर क्षेत्र में लगभग ७०% श्रमिकों का बाहर से आगमन होता है और उनको खानों के निकट बसाया जाता है। बाकी श्रमिक पाँच या दस मील की दूरी के गाँवों से प्रतिदिन आते हैं। सोने की खानों में श्रमिक "समय-कार्यालय" (Time Office) के द्वारा भर्ती होते है। प्राप्त सूचना के अनुसार अब अधिकांश खानों में श्रमिकों की पूर्ति पर्याप्त है और श्रमिक स्थानीय क्षेत्रों में ही भर्ती कर लिये जाते है।

की जाय। 'चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम' में संशोधन करने पर विचार किया गया ताकि इस अधिनियम के अपवचन को रोका जा सके और मालिकों का अवैध रूप से श्रमिक भर्ती करने पर दण्ड दिया जा सके। इस प्रश्न पर चाय बागान औद्योगिक समिति ने अक्तूबर १९६८ में विचार किया था। यह अनुभव किया गया कि चाय बागानों को चूंकि भर्ती की खुली छूट थी और भर्ती की दशाओं में सुधार हुआ था, अतः अब इस अधिनियम की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसीलिए यह निश्चय किया गया था कि इस अधिनियम को निरस्त कर दिया जाए। चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक (निरस्त) अधिनियम [Tea Districts Emigrant Labour (Repal) Act] सन् १९७० में पास किया गया। इसके फलस्वरूप, अब सन् १९३२ का अधिनियम रद्द हो गया है।

परावासी श्रमिकों के अतिरिक्त असम के बागान में 'फालतू' या 'बस्ती' श्रमिक भी होते हैं, जो कि निकट के गावों से आते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ ऐसे श्रमिक भी होते हैं जिन्होंने किसी समय बाहर से असम में प्रवेश किया था और अब बागान में आकर बस गये हैं। ऐसे श्रमिक आवासित (Settled) श्रमिक कहलाते हैं।

पश्चिमी बंगाल में चाय के बागान में साधारणतया श्रमिकों की कमी रहती है। इसलिये भर्ती पर कोई नियन्त्रण नहीं है। चाय उद्योगों की विभिन्न परिषदें, जैसे भारतीय चाय परिषद्", "भारतीय चाय बागान नियोजक परिषद्" तथा "चाय बागान श्रमिक परिषद्" अपने बागान के लिए श्रमिकों की भर्ती स्वयं करते हैं। दार्जिलिंग में भर्ती की कोई समस्या नहीं है क्योंकि वहाँ स्थानीय श्रमिक ही पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं। बिहार के चाय बागान में भर्ती साधारणतया बागान के सरदारों द्वारा होती है। वे श्रमिकों को आगे भेजने वाले अभिकर्त्ताओं के समक्ष उपस्थित करते हैं और ये अभिकर्त्ता उनको बागान में भेज देते हैं। कुछ श्रमिक भेजने वाले अभिकर्त्ताओं के सम्मुख सीधे ही आ जाते हैं। यात्रा का समस्त व्यय बागान-नियोजक ही देते हैं। पंजाब व त्रिपुरा के बागान उद्योगों में मालिक स्वयं सीधी प्रणाली द्वारा श्रमिक भर्ती कर लेते हैं अथवा भर्ती मध्यस्थों द्वारा कराते हैं, जिनको पंजाब में "चौधरी" कहते हैं। केरल राज्य के बागान में ऐसे श्रमिक जिनको थोड़े समय के लिये ही काम पर लगाया जाता है, बागान की श्रमिक-टोलियों द्वारा भर्ती कर लिये जाते हैं और इसमें प्रमुखता स्थायी श्रमिकों के आश्रितों को दी जाती है।

दक्षिणी भारत के बागान में, भर्ती "कंगनियों" के द्वारा होती थी। साधारणतया यह कंगनी बागान के श्रमिकों में से ही होते थे। इन कंगनियों के कमीशन की मात्रा श्रमिकों की मजदूरी के आधार पर निश्चित की जाती थी। इसलिये भर्ती के पश्चात् भी ये श्रमिकों से अपना सम्पर्क बनाए रहते थे। कंगनियों द्वारा भर्ती करने की इस प्रणाली के बहुत से दुष्परिणाम प्रकट हुए। परिणामस्वरूप, भारत

सरकार से पहले तो प्रत्येक कम्पनी के अन्तर्गत श्रमिकों की सख्या ४० तक सीमित कर दी और बाद में इस पद्धा को शनै शनै समाप्त करने के लिये पग उठाये गये। जनवरी १९६० में इस कगनी प्रणाली को समाप्त कर दिया गया। कॉफी के कुछ और रबर के अधिकाश बागानों में श्रमिकों की भर्ती के लिये पेशेवर व्यक्ति नियुक्त किये जाते है, जो दक्षिण भारत के सयुक्त बागान परिषद् के श्रम विभाग द्वारा पजीकृत होते हैं। यह सस्था इन लोगो की भर्ती के काम में सहायता भी देती है।

बागान मे भर्ती की पद्धति में उल्लेखनीय बात यह है कि भर्ती परिवार के आधार पर होती है, यद्यपि यह प्रथा खानो और दूसरे उद्योगो मे भी कुछ सीमा तक प्रचलित है।

बन्दरगाहों मे, बहुत समय तक, सामान उतारने और चढाने वाले सभी श्रमिकों की भर्ती छोटे-छोटे ठेकेदारों के द्वारा की जाती थी जो "तोलीवाला" कहलाते थे। परन्तु अप्रैल १९४८ से इस प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया। अब बम्बई कलकत्ता, कोचीन, काधला, मद्रास, मारमोआगोवा तथा विशाखापट्टनम के बन्दरगाहों पर सामान चढाने व उतारने वाले श्रमिकों की भर्ती १९४८ के 'बन्दरगाह श्रमिक रोजगार नियन्त्रण अधिनियम" (Dock Workers' Regulation of Employment Act) के द्वारा जिसको कि १९६२ तथा १९७० में सशोधित किया जा चुका है नियमित कर दी गई है। यह अधिनियम बन्दरगाह के श्रमिकों की उन कठिनाइयों को, जो उनके आकस्मिक (Casual) रोजगार के कारण उत्पन्न होती हैं, दूर करने का प्रयत्न करता है। यह अधिनियम श्रमिकों के रोजगार को अधिक नियन्त्रित बनाने के लिये श्रमिकों को पजीकृत होने मे सुविधा प्रदान करता है। उसी के साथ-साथ यह अधिनियम सारे श्रमिकों के रोजगार को तथा उनकी रोजगार की अवस्थाओ को जैसे कार्य के घण्टे छुट्टियाँ और वेतन आदि नियमित करता है। उसी के साथ साथ उनके स्वास्थ्य सुरक्षा और कल्याण के काय का भी प्रबन्ध करता है। इस अधिनियम के अन्तगत अनेक योजनाएँ बनाई गई और उन्हें लागू किया गया है ताकि सामान चढाने व उतारने वाले श्रमिकों को नौकरी नियमित रूप से मिलती रहे और जहाज पर से सामान उतारने व चढाने के कार्य के लिये पर्याप्त मात्रा मे श्रमिक मिलते रहें। इन योजनाओं को जिनमे कि समय-समय पर सशोधन किया जाता रहा है लागू करने के लिये बम्बई (अप्रैल १९५१), कलकत्ता (सितम्बर १९५२) व मद्रास (जुलाई १९५३), कोचीन (जुलाई १९५९) तथा विशाखापट्टनम् (नवम्बर १९५९), मारमुगाओ (१९६५) और कांधला (अक्तूबर १९६८) मे कुछ ऐसे बोर्डो की स्थापना कर दी गई है जिनमे सरकार, मालिक तथा श्रमिक तीनों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं और गोदी श्रमिक परिषदें (Dock Labour Boards) इनके प्रशासन की देखभाल करती हैं। कलकत्ता, बम्बई व मद्रास मे इस योजना के दैनिक प्रबन्ध का उत्तरदायित्व 'स्टेवडोर्स परिषद" Stevedores Associations) नाम की संस्थाओं पर है। इस योजना के अन्तगत गोदी श्रमिकों का एक मासिक

रजिस्टर तथा एक सुरक्षित पूल रजिस्टर भी बनाया गया है। मालिकों के लिये भी एक रजिस्टर है। इस योजना में उन नियमों का भी स्पष्टीकरण कर दिया गया है, जिसके आधार पर किसी श्रमिक या मालिक का नाम रजिस्टर पर लिखा जा सकता है। इस योजना के अनुसार पंजीकृत श्रमिकों को पंजीकृत मालिकों के बीच बाँट दिया जाता है। जिन श्रमिकों को जिन मालिकों के साथ काम करना होता है, वे उनके अतिरिक्त किसी अन्य मालिक के साथ कार्य नहीं कर सकते और न ही वह मालिक किन्हीं अन्य पंजीकृत (Registered) श्रमिकों को अपने यहाँ कार्य पर लगा सकता है। सुरक्षित पूल रजिस्टरों में जिन श्रमिकों का नाम होता है उनको इस योजना के अनुसार एक माह में कम से कम २१ दिनों की मजदूरी व महगाई भत्ता मिलने का आश्वासन रहता है। जिन दिनों वे काम के लिए तैयार हों और उन्हें काम न मिले उन दिनों के लिये भी इस योजना के अन्तर्गत श्रमिकों को रु० १.५० प्रतिदिन की दर से "हाजरी की मजदूरी" या आधी मजदूरी के बराबर निराश होने की मजदूरी मिल जाती है। इस कानून में एक सलाहकार समिति की स्थापना की भी व्यवस्था है जो कि कानून को लागू करने के बारे में सरकार को परामर्श देगी। अनुशासनहीनता तथा दुर्व्यवहार के कारण श्रमिकों को बर्खास्त किया जा सकता है। इस अधिनियम को १९६२ में संशोधित किया गया है। इसके अनुसार मालिकों से अब एक रजिस्ट्री शुल्क लिया जाता है, लेखा परीक्षकों (Auditors) की नियुक्ति कर दी गई है और गोदी श्रमिक सलाहकार समितियों में जहाज-सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व दिया गया है। अधिनियम में १९७० में किये गये संशोधन द्वारा कल्याण कार्यों का विस्तार स्टाफ तथा अन्य अधिकारों तक कर दिया गया है। संशोधन में कम्पनियों द्वारा कानून तोड़ने की स्थिति में दण्ड की भी व्यवस्था की गई है।

बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, विशाखापट्टनम तथा कोचीन बन्दरगाहों पर स्थायीकरण योजनाओं (Decasualisation schemes) के साथ ही साथ सूचीकरण योजनाएँ (Listing schemes) भी लागू की गई हैं। इन योजनाओं को अपंजीकृत गोदी श्रमिक (रोजगार पंजीकरण) योजनाएँ कहा जाता है। इन योजनाओं का एक उद्देश्य ऐसे आवश्यक आँकड़े एकत्रित करना है जिससे यह पता लगाया जा सके कि सूचीबद्ध किये गये श्रमिकों को स्थायी किया जा रहा है या नहीं, और उन्हें नियमित रोजगार के लाभ तथा न्यूनतम गारन्टी शुदा मजदूरी आदि की सुविधाएँ भी मिल रही हैं या नहीं।

विभिन्न बन्दरगाहों पर कई प्रकार के श्रमिकों की भर्ती रोजगार दफ्तरों द्वारा भी होती है। निम्न श्रेणी के श्रमिकों की तथा नैमित्तिक श्रमिकों की भर्ती पहले एक केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा कुछ बन्दरगाहों में की जाती थी, परन्तु इस विधि को अक्टूबर १९५९ से समाप्त कर दिया गया। कई बन्दरगाहों में विज्ञापन द्वारा सीधी भर्ती की प्रणाली भी पाई जाती है।

कलकत्ता व बम्बई के बन्दरगाहों मे नाविकों (Seamen) की भर्ती ब समय तक मध्यस्थों के द्वारा होती रही। इस व्यवसाय मे श्रमिकों की पूर्ति अ होने के कारण इनकी भर्ती प्रणाली मे बहुत से दोष आ गये। सन् १९४७ कलकत्ता और बम्बई में ऐसे बोर्ड भी स्थापित किये गये जो ऐसे प्रमाणित नावि का एक रजिस्टर रखते थे, जो युद्ध काल मे जहाज पर काम कर चुके थे। बन्द गाहों पर नाविकों के रोजगार दफ्तर स्थापित करने के लिये और व्यापारिक जहा के लिये उनकी भर्ती को नियमित बनाने के लिये सरकार ने सन् १९४९ मे 'भारत व्यापारी जहाज अधिनियम' (Indian Merchant Shipping Act) १९२३ मे स संशोधन किये।

आगे चल कर सन १९२३ के अधिनियम का स्थान व्यापारी जहाज अ नियम (१९५८) ने ले लिया। इस अधिनियम मे नाविकों की मजदूरी की अदाय उनके स्वास्थ्य कल्याण तथा डाक्टरी जाच आदि की व्यवस्था तो की ही गई साथ ही साथ नाविकों की भर्ती तथा उनके रोजगार का भी प्रावधान किया ग है। इस अधिनियम के अन्तर्गत, केन्द्र सरकार को यह अधिकार दिया गया है वह भारत के प्रत्येक बन्दरगाह पर नाविकों का एक-एक रोजगार दफ्तर स्थापि कर सके। यह दफ्तर नाविकों के रूप म रोजगार पाने के इच्छुक लोगों का नियम व नियन्त्रण करता है। जिस बन्दरगाह पर ऐसा दफ्तर स्थापित हो जाता है व नाविक रोजगार दफ्तर से प्राप्त नाविकों के अलावा अन्य किसी भी व्यक्ति नाविक के रूप में जहाज पर प्रविष्ट होने की अनुमति नही दी जाती। प्रत्येक नावि के लिये यह आवश्यक है कि उसके पास सेवा का प्रमाणपत्र (Certificate discharge) हो। २०० टन से कम वजन वाले देशी व्यापारिक जहाज को छोडक अन्य प्रत्येक भारतीय जहाज के कप्तान के लिये यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक उस नाविक के साथ, जिसे की वह काम पर लगाता है, एक ऐसा समझौ करे, जिसमे समुद्र यात्रा का ब्यौरा तथा सेवा की शर्तों का उल्लेख हो। १५ वर्ष कम आयु के बच्चों को काम पर लगाना मना है और १८ वर्ष से कम आयु व्यक्तियों को उस समय तक कोयला झोकने वालों व आग जलाने वालों के रूप नौकर नही रखा जा सकता, तब तक कि उन्हे काम के लिये डाक्टरी दृष्टि अनुकूल तथा योग्य न प्रमाणित कर दिया गया हो।

कलकत्ते मे ट्राम्बे में भर्ती या तो सीधी प्रणाली के द्वारा श्रमिकों के सम्ब न्धियों मे से होती है या रोजगार दफ्तरों के द्वारा। बम्बई मे रिक्त स्थानों की पू समाचार-पत्रों द्वारा प्रार्थना पत्र मगाकर सूचनाएं प्रसारित करके तथा रोजगा दफ्तरों द्वारा की जाती है।

ठेके के श्रमिक (Contract Labour)

कई उद्योग धन्धों मे ठेके के श्रमिक भी अत्यधिक मात्रा मे पाय जाते हैं पिछले युद्ध की आकस्मिक आवश्यकताओं के कारण इस प्रणाली को बहुत प्रोत्सा

मिला। अनेक उद्योग अथवा औद्योगिक संस्थान कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने के ठेके ठेकेदारों को दे देते है और उसके बदले में उन्हें एकमुश्त रकम अदा कर देते है। ठेकेदार जो कि व्यक्ति या फर्म या कोई वरिष्ठ श्रमिक भी हो सकता है स्वयं श्रमिकों को काम पर लगाता है। इन श्रमिकों के सम्बन्ध में उस उद्योग की कोई प्रत्यक्ष जिम्मेदारी नही होती जो कि ठेकेदार को काम देता है। इस प्रकार ठेके के श्रमिकों व 'प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये श्रमिकों के बीच अन्तर के दो मुख्य आधार होते हैं एक तो मुख्य औद्योगिक संस्थान से उनके रोजगार सम्बन्ध और दूसरे उनकी मजदूरी के भुगतान की रीति। प्रत्यक्ष रूप से भर्ती किये गये श्रमिकों के नाम औद्योगिक संस्थान की वेतन नामावली या उपस्थिति नामावली में अंकित किये जाते है और वे प्रत्यक्ष रूप से मजदूरी प्राप्त करते हैं किन्तु इसके विपरीत, ठेके के श्रमिकों के नाम न तो वेतन नामावली (pay roll) में अंकित होते हैं और न उन्हें उद्योग द्वारा प्रत्यक्ष रूप से मजदूरी का ही भुगतान किया जाता है।

इन्जीनियरिंग सीमेंट कागज तथा अहमदाबाद के सूती कपड़े के उद्योग-धन्धों में तथा खानों व बन्दरगाहों के उद्योगों में और केन्द्रीय व राजकीय जन-निर्माण व रेलवे विभागों में अधिकतर ठेके के श्रमिक ही पाये जाते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है खानों में अधिकतर श्रमिक ठेके के ही श्रमिक होते है और यह प्रथा बागान में भी फैल चुकी है। अहमदाबाद में लगभग १०% और सीमेंट, कागज तथा जूट की चटाइयों के उद्योग में लगभग २० से २५% ठेके के ही श्रमिक हैं। कोलार की सोने की खानों में एक तिहाई श्रमिक तथा बंगाल में बन्दरगाहों के लगभग ४३% श्रमिक ठेकेदारों के द्वारा ही रोजगार पाते हैं। श्रम ब्यूरो द्वारा किए गये कुछ सर्वेक्षणों के अनुसार, कुछ चुने हुए उद्योगों में कुल श्रमिकों में ठेके के श्रमिकों का प्रतिशत इस प्रकार है—कच्चा लोहा ७३ ६%, जूट दबाना ७३ ८%, कच्चा मैंगनीज ६५ ८% तिरपाल या डेरे आदि ६३ ७%, निर्माण कार्य (लोक कर्म विभाग) ६०%, नमक ४६ १%, बन्दरगाह तथा गोदी ३८ २%, चूने का पत्थर निकालना ३६ ७%, खिलौने बनाना ३४ ३%, मद्यनिर्माणशाला २८ ६%, धातु-बेलन २७%, दाल मिलें २६ ४%, धातु निष्कर्षण व शुद्धिकरण २५ २%, कृषि यन्त्र व उपकरण २४ ८%, तापसह ईंटे २४%, लकड़ी का काम २२ १%, धातुओं को पृथक् करने का काम २२ ६%, कपास से बिनौले अलग करना २१ ८%, और चावल की मिलें २१ ७%।

ठेके के श्रमिकों की प्रथा के प्रचलन के अनेक कारण हैं। कई बार ऐसा होता है कि कार्य को जल्दी समाप्त करने के लिये कुछ श्रमिकों की एकाएक आवश्यकता आ पड़ती है। श्रमिक कई बार मिलते भी नही हैं। हमारे देश में रोजगार के दफ्तरों की स्थापना हुए भी बहुत दिन नही हुए है। कारखानों में पर्यवेक्षण कर्मचारियों की भी कमी रही है। इन अनेक कारणों से ठेके के श्रमिकों को ही काम पर लगाना अधिक सुविधाजनक रहता है। यह प्रथा इसलिये बराबर बनी रही,

श्रमिक संघों के संगठन में एक और दोष यह है कि अधिकांश संघों की सदस्यता बहुत कम है। इस कारण इनमें यथेष्ट धन, संगठन और नेतृत्व की कमी रहती है। उदाहरणार्थ १९६४-६५ में ब्यौरा देने वाले ७३.२% संघों की सदस्यता ३०० से कम थी और कुल सदस्यता के १२.४ प्रतिशत ही इन संघों में सम्मिलित हुए। श्रमिक संघ की औसत सदस्यता केवल ६०० थी। सदस्यता के कम होने का मुख्य कारण यह है कि एक ही उद्योग में श्रमिकों के कई संघ होते हैं और श्रमिकों में आपस में एकता नहीं है। श्री० वी० वी० गिरि तो इसी पर जोर देते रहे हैं कि एक उद्योग में एक ही संघ होना चाहिए। बड़े संघ अधिक टिकाऊ होंगे। उनका नियमित रूप से कार्यालय खुल सकता है, समस्त समय के लिये उनमें कर्मचारी भी लगाये जा सकते हैं और सौदा करने की शक्ति भी उनकी अधिक हो सकती है। तथापि एक उद्योग में एक श्रमिक संघ की बात उस समय तक तो कठिन ही प्रतीत होती है जब तक कि विविध प्रकार के राजनैतिक दल इस देश में विद्यमान हैं।

चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में बताया गया था कि यद्यपि पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या जो कि सन् १९५१-५२ में ४६०० थी सन् १९६३-६४ में बढ़कर ११,६०० हो गई तथापि खानों में केवल ५०%, फैक्टरियों में ४०% रेलों में २५% और चाय बागानों में २०% श्रमिक ही इनमें सम्मिलित हुए। अतः नीति यह होनी चाहिये कि श्रमिकों को संघों का सदस्य बनने को प्रोत्साहित किया जाये। योजना में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि श्रम संघ आन्दोलन को सगठित रूप से चलाने की आवश्यकता है जिसका कि देश में अभाव है।

देश में श्रमिक संघों में जो फूट पड़ी हुई है और उनमें द्वेष भावना से जो प्रतिद्वन्द्विता चल रही है उसका कुछ उत्तरदायित्व राजनैतिक दलों पर भी है। प्रत्येक राजनैतिक दल यह प्रयत्न करता है कि श्रमिक वर्ग उनकी ओर मिल जायें और इस प्रयत्न में वह श्रमिकों में परस्पर दूषित भावनायें और मतभेद उत्पन्न कर देते हैं। श्रमिक संघों की इस प्रतिद्वन्द्विता ने इस समय एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लिया है और इस कारण उनके स्वस्थ विकास में एक बहुत बड़ी रुकावट आती है।

उपसंहार और सुझाव (Conclusion and Suggestions)

रॉयल श्रम आयोग के अनुसार श्रमिक संघों के पूर्ण प्रभावशाली होने के लिये दो बातों की आवश्यकता है—एक तो प्रजातन्त्रीय भावना और दूसरी शिक्षा। श्रमिकों में प्रजातन्त्रीय उद्देश्य की भावना अभी उत्पन्न करनी है। उससे भी अधिक जो रुकावट है वह शिक्षा का अभाव है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में बतलाया गया है कि एक ही उद्योग में अनेक श्रमिक संघों का होना, राजनैतिक प्रतिस्पर्धा, धन की कमी तथा श्रमिकों की पारस्परिक फूट इत्यादि ही वर्तमान समय के संघों की दुर्बलता के मुख्य कारण हैं। एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन

श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिये तथा उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इससे सगठित श्रमिकों और मालिकों में अधिकतर सहयोग भी उत्पन्न होगा और औद्योगिक शान्ति भी रहेगी। एक शक्तिशाली सघ श्रमिकों की उस समय सहायता करता है जब वे प्रथम बार गाँव से आते हैं। इस प्रकार वह प्रवासिता, अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त्त को कम करता है और भर्ती के दोषों को दूर करता है। मजदूरी की उचित नीति के निर्धारण में श्रमिक सघ सहायता कर सकते है और प्रबन्धकों के साथ औद्योगिक विराम सन्धि (Truce) के अन्तर्गत समझौते भी श्रमिक सघ ही कर सकते हैं। ३ मई १९७२ को भा० रा० ट्रेड यू० कांग्रेस के रजत जयन्ती समारोह का उद्घाटन करते हुये प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने कहा था कि एक सक्रिय तथा उत्साहपूर्ण श्रमिक सघ आन्दोलन लोकतन्त्रीय समाज का एक अनिवार्य अग है और श्रमिक सघों ने प्रत्येक देश मे लोकतन्त्रीय अधिकारो की प्राप्ति की दिशा मे निर्णायक योगदान किया है।"

इस प्रकार देश के आर्थिक विकास मे और आयोजना की सफलता मे भी सघो का एक विशेष और महत्वपूर्ण स्थान है। इस समय ऊपर लिखे कई कारणों से श्रमिक सघो मे आपस मे मतभेद और फूट हैं। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रथम तो श्रमिकों को शिक्षा और प्रशिक्षण दिया जाय जिससे वे एक शक्तिशाली और स्वस्थ सगठन के लाभो को समझ सकें। श्रमिक सघों को केवल एक हड़ताल समिति की भांति कार्य नही करना चाहिए, वरन् उनको अपने कार्य श्रमिकों की शिक्षा की ओर भी विस्तृत करने चाहियें। ये कार्य वे अधिक सभायें करके, वाद-विवाद करके, भाषण कराके तथा कल्याणकारी कार्य करके कर सकते हैं। इस ओर निरन्तर प्रयत्न होने चाहिये कि विभिन्न श्रमिक सघो मे एकता आ जाय और एक उद्योग मे एक ही सघ हो। 'आचरण सहिता' (Code of Conduct) (देखिये परिशिष्ट 'ग' मे जो नियम दिये गये है, उनका यदि उचित प्रकार से अनुसरण किया जाय और उनको प्रभावात्मक रूप से लागू किया जाये, तो श्रमिक-सघो मे जो आपसी भेदभाव और द्वेषभाव पडा हुआ है वह दूर हो सकेगा और विभिन्न सघो के कार्यों मे सामजस्य लाया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि श्रम नेता ऐसे हो जो स्वय श्रमिक रह चुके हो और उनको उचित प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिये। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना ने इस सुझाव के साथ कि श्रमिक सघो मे बाहर वालो की सख्या कम हो, यह भी कहा है कि बाहर वालो ने देश मे श्रमिक सघ आन्दोलन के निर्माण मे यथेष्ट महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और उनके सम्पर्क के बिना यह आन्दोलन इतना शक्तिशाली और विशाल नही हो पाता। परन्तु हम यह भी कह सकते हैं कि यदि बाहर वालो का सम्पर्क न होता तो श्रमिक सघ आन्दोलन का विकास ऐसे स्वस्थ रूप मे न होता। सघो को इस बात को समझ लेना चाहिये कि यदि वे किसी ऐसे व्यक्ति पर, जो श्रमिक वर्ग का नही है, अधिकतर निर्भर रहेंगे तो इनकी अपने को सगठित करने की शक्ति

अवश्य कम हो जायेगी। वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि राजनीतिक दल श्रमिक संघों से अलग रहें और श्रमिक संघों को राजनीति से दूर रखा जाय और वे अपने कार्यों को श्रमिकों की भलाई तक ही सीमित रक्खें। इस सम्बन्ध में यह बात बहुत आवश्यक है कि श्रमिकों को संघ-ज्ञान और संघ-विधियों में प्रशिक्षण दिया जाय। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इसके लिये वृत्तियाँ देने की व्यवस्था थी। इस बात का सुझाव दिया जा सकता है कि ऐसे श्रमिकों के प्रशिक्षण के लिये, जो संघ नेता बनने की आकांक्षा रखते हों अधिकतर संस्थायें खोली जायें। कोलम्बो आयोजना के अन्तर्गत श्रमिक संघों के पदाधिकारियों को प्रशिक्षण के लिये इंगलैण्ड भेजा जाता रहा है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इस बात का भी सुझाव था कि संघों को कुछ शर्तें पूरी करने पर वैधानिक मान्यता दे देनी चाहिये। संघों की अपनी धनराशि में वृद्धि करने के लिये द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह सुझाव दिया गया था कि संघों के नियमों में यह बात भी आ जानी चाहिये कि कम से कम चार आने मासिक सदस्यता शुल्क होगी। इस नियम के बिना किसी भी संघ को एक मान्य संघ के रूप में रजिस्टर्ड न किया जाय। शेष धनराशि या बकाया के चुकाने के जो नियम हैं उनको दृढ़ता से लागू करना चाहिये। १९६० के भारतीय श्रमिक संघ (संशोधित) अधिनियम के अन्तर्गत अब प्रत्येक सदस्य के लिये कम से कम २५ पै० प्रतिमाह का चन्दा देना अनिवार्य कर दिया गया है।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में कहा गया था कि "मजदूर संघों को औद्योगिक और आर्थिक प्रशासन के ढाँचे का एक अनिवार्य अंग माना जाये और इन्हें इन उत्तरदायित्वों को सम्भालने के लिये तैयार किया जाये। अधिकाधिक मात्रा में श्रमिकों द्वारा ही श्रमिकों का नेतृत्व किया जाना चाहिये। श्रमिकों के शिक्षा कार्यक्रम में प्रगति के साथ-साथ यह प्रक्रिया भी तेज हो जायेगी। इस समय श्रमिक संघ अधिकतर अपर्याप्त धन के कारण कई कठिनाइयों का अनुभव करते हैं। अनुशासन संहिता में मजदूर संघों को मान्यता देने के लिये जो नियम निर्धारित किये गये हैं उनके फलस्वरूप देश में एक सशक्त और स्वस्थ मजदूर आन्दोलन का विकास होगा।"

चौथी पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में कहा गया था कि "श्रमिकों को केवल अपने सदस्यों को अच्छी मजदूरी दिलाने तथा काम करने व रहने की समुचित दशायें उपलब्ध कराने वाली एजेन्सी के रूप में ही कार्य नहीं करना चाहिये, अपितु देश के विकास में अपना अधिकाधिक महत्वपूर्ण योग देना चाहिये।" इसमें स्पष्ट है कि हमारे देश में एक शक्तिशाली श्रम संघ आन्दोलन के विकास में दो मुख्य बाधायें हैं—एक तो संगठित श्रम संघ आन्दोलन का अभाव तथा दूसरी साधनों की कमी। पाँचवी पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में ऐसा विधान बनाने पर जोर दिया गया था जो कि देश में एक स्वस्थ श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास में सहायक हो।

राष्ट्रीय श्रम आयोग (१६३६) ने श्रमिकों के सगठन के सम्बन्ध म जो सिफारिशे की हैं, अब हम उन पर विचार करेंगे। इनम से कुछ का उल्लेख ऊपर किया भी जा चुका है। सरकार इन सिफारिशो पर समुचित कार्यवाही करने पर विचार कर रही है। आयोग का कहना है कि श्रमिक सघ का सगठन किस आधार पर किया जाय, यह एक ऐसा मामला है जिसका निर्धारण स्वय श्रमिको द्वारा ही अपनी आवश्यकताओं एव अनुभवों के आधार पर किया जाना चाहिये। श्रमिक सघो की उत्पत्ति तथा उनका विकास उनके सदस्यों की इच्छाओं एव निर्देशो के अनुसार ही होता है परन्तु यह सब कुछ देश के कानून की सीमाओं मे रहते हुए करना होता है। श्रमिक सघो को अपने सदस्यो के प्रति मूलभूत जिम्मेदारियो को तो निभाना चाहिय ही, साथ ही उन्हे कुछ ऐसे सामाजिक उत्तरदायित्वों का भी यथेष्ट ध्यान रखना चाहिय, जैसे कि राष्ट्रीय एकता की वृद्धि, देश की सामाजिक एव आर्थिक नीतियों मे सक्रिय रूप से भाग लेकर उन्हे प्रभावित करना तथा अपने सदस्यो मे देश तथा उद्योग के प्रति जिम्मेवारी की भावना पैदा करना।

आयोग ने सिफारिश की कि शिल्पी सघो के निर्माण को हतोत्साहित किया जाना चाहिये तथा केन्द्र बनाम उद्योग संघो एव राष्ट्रीय सघो के निर्माण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। श्रमिक सघो की कार्यसमिति मे गैर-श्रमिकों द्वारा पद ग्रहण करने पर कोई प्रतिबन्ध तो नही लगना चाहिये परन्तु उनकी सख्या कम कर दी जानी चाहिये। इस बात के भी प्रयत्न किये जाने चाहिये कि श्रमिकों मे से ही नेतृत्व उत्पन्न हो और वह अधिक जिम्मेवारी से इस दिशा मे योगदान करे। इस आन्तरिक नेतृत्व को तग करने की प्रवृत्ति नही होनी चाहिये। साथ ही, भूतपूर्व श्रमिको एव कर्मचारियो को बाहरी व्यक्ति नही माना जाना चाहिये।

श्रमिक सघो को मान्यता प्रदान किये जाने के सम्बन्ध मे भी आयोग ने सिफारिशें की, जिनका उल्लेख ऊपर 'श्रमिक संघो की मान्यता' शीर्षक के अन्तर्गत किया जा चुका है। आयोग का कहना है कि श्रमिक सघो की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विताओं से सम्बन्धित विवाद के निपटारे का काम केन्द्रीय सगठन पर छोड दिया जाना चाहिये और श्रम न्यायालय इस बीच तभी आने चाहिए जबकि केन्द्रीय सगठन उस विवाद को निपटाने मे असमर्थ हो जाये।

आयोग के अनुसार, श्रमिक सघो का पजीकरण सभी कारखाना सघो तथा औद्योगिक सगमो के लिये अनिवार्य होना चाहिये, परन्तु केन्द्रीय सगठनो के लिये यह अनिवार्यता नही होनी चाहिये। एक नये श्रमिक सघ की स्थापना के लिये सदस्यता की न्यूनतम सख्या बढाकर कारखाने के नियमित श्रमिकों की १० प्रतिशत (बशर्ते कि ७ से कम सदस्य न हों) अथवा १००, जो भी कम हो, कर दी जानी चाहिये। श्रमिक सघ का न्यूनतम सदस्यता शुल्क १५ पैसे प्रति माह से बढाकर १ रु० प्रति माह कर दिया जाना चाहिये। यदि किसी श्रमिक सघ की सदस्यता

निर्धारित सीमा से कम हो जाये या कोई संघ विवरण प्रस्तुत करने में असफल रहे अथवा प्रस्तुत किया गया वार्षिक विवरण गलत हो और निर्धारित अवधि में उसमें सुधार न किया गया हो, तो ऐसे श्रमिक संघ के पंजीकरण अथवा रजिस्ट्रेशन को रद्द कर दिया जाना चाहिये। रजिस्ट्रेशन को रद्द करने सम्बन्धी रजिस्ट्रार के आदेश के विरुद्ध अपील करने की छूट तो होनी चाहिए परन्तु पुनः रजिस्ट्रेशन का प्रार्थना-पत्र रद्द होने की तिथि से छः माह बाद ही लिया जाना चाहिये। रजिस्ट्रार को चाहिए कि वह रजिस्ट्रेशन को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने से सम्बन्धित अपना निर्णय निर्धारित समय में ही दे दे और उस समय को छोड़ कर, जो कि श्रमिक संघ उससे पूछताछ में लगाये, रजिस्ट्रेशन से सम्बन्धित सभी प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ ३० दिन की अवधि में ही पूरा कर ले।

आयोग ने श्रमिक संघों की सुरक्षा से सम्बन्धित कुछ व्यवस्थाओं पर भी विचार किया, जैसे कि संघ-पाबन्द श्रमालय (closed shop) तथा संघ-श्रमालय (union shop) आदि की व्यवस्था के सम्बन्ध में। संघ की सुरक्षात्मक व्यवस्थाओं में मालिक के साथ किये गये उस समझौते को भी सम्मिलित किया जाता है जिसके अन्तर्गत मालिक ऐसे श्रमिक को नौकरी पर नहीं लगा सकता जो श्रमिक संघ का सदस्य न हो। इस व्यवस्था के दो विभिन्न रूप ये हैं (१) पूर्व-प्रवेश या संघ पाबन्द श्रमालय, जिसके अन्तर्गत मालिक केवल श्रमिक संघ के सदस्य-श्रमिकों को ही भर्ती करता है। इससे श्रमिकों के संभरण पर संघ का नियन्त्रण रहता है। (२) उत्तर-प्रवेश या संघ-श्रमालय, जिसके अन्तर्गत नये भर्ती होने वाले श्रमिक यदि श्रमिक संघ के सदस्य नहीं होते तो उन्हें एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत संघ की सदस्यता ग्रहण करनी होती है। आयोग ने अनुभव किया कि 'संघ-पाबन्द श्रमालय (closed shop) की व्यवस्था न तो व्यावहारिक है न वाञ्छनीय, क्योंकि ऐसा करना स्वतन्त्र संघ बनाने के मौलिक अधिकार के विरुद्ध होगा। 'संघ-श्रमालय' (union shop) की व्यवस्था कुछ सुविधाजनक हो सकती है किन्तु इसमें भी अनिवार्यता का थोड़ा बहुत तत्त्व विद्यमान है। अतः आयोग ने सुझाव दिया कि इन दोनों ही व्यवस्थाओं में किसी को भी कानून द्वारा लागू नहीं किया जाना चाहिये, अपितु श्रमिक संघ के विकास के साथ ही इसको स्वाभाविक रूप में स्वयं ही विकसित होने देना चाहिए।

इसी से सम्बन्धित अन्य समस्या है 'धन को रोकने का', जिसके अन्तर्गत मालिक श्रमिकों के वेतन में से सदस्यता शुल्क तथा संघ को देय अन्य धनराशियाँ काट लेता है और फिर यह धन श्रमिक संघ को सौंप देता है। आयोग के अनुसार एक ऐसी समर्थ व्यवस्था ही इस दिशा में यथेष्ट उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है जो कि मान्यता-प्राप्त श्रमिक संघ की माँग पर इस प्रकार कटौतियाँ करने की अनुमति दे।

आयोग ने मालिकों के संगठनों के सम्बन्ध में भी सिफारिशें कीं। आयोग ने

कहा कि मालिको के सगठनो के रजिस्ट्रेशन को भी अनिवार्य कर दिया जाना चाहिये। सरकारी क्षेत्र के उद्यमो एव सहकारी उद्यमो को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये कि वे अपने-अपने औद्योगिक सघो मे सम्मिलित हो। मालिक सघो को चाहिये कि वे सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन दें, श्रम-प्रबन्ध के सम्बन्धो के बारे मे अपने सदस्यो को शिक्षा दें मालिको को इस बात के लिये प्रोत्साहित करें कि कार्मिक-सम्बन्धी नीतियो को लागू करें, युक्तिकरण कर, पर्यवेक्षको के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था करें, मजदूरी पचाट (wage awards) तथा द्विदलीय व त्रिदलीय समझौतो को सही रूप मे सच्ची भावना से लागू करें तथा श्रमिको से सम्बन्धित अनुचित हरकतो को समाप्त करें। उन्ह चाहिये कि वे अपनी आन्तरिक विचार विमर्श की ऐसी व्यवस्था का निर्माण करें जिसके द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कोई भी निर्णय किये जाने से पूर्व महत्त्वपूर्ण मसलो पर विचार-विमर्श एव छानबीन की जा सके।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिको की आर्थिक दशा मे सुधार की बहुत आवश्यकता है। अपने सगठन-कार्यो के लिये जब तक श्रमिको के पास यथेष्ट समय, शक्ति और धन न होगा, स्वस्थ सघवाद का विकास सम्भव नही है। इस कारण स्वस्थ सगठन की समस्या को पृथक् रूप से नही सुलझाया जा सकता। इसके लिये सब ओर से तथा हर प्रकार के प्रयत्नो की आवश्यकता है। श्रमिक सघो को यह समझना चाहिये कि उनका कार्य केवल यही नही है कि वे मालिको से झगडा करते रहे या केवल श्रमिको की भलाई व उन्नति के लिये ही कार्य करते रहे। अब उन्ह राष्ट्रीय हित के लिये आत्म-त्याग और सहयोग की भावना से कार्य करने की नीति अपनानी चाहिए। उन्हे श्रमिक सघ अनुशासन की एक सहिता का भी निर्माण करके इस बात का प्रयत्न करना होगा कि सब श्रमिक ठीक राह पर चलें। इस सम्बन्ध मे 'अनुशासन सहिता' तथा 'आचरण सहिता' जैसे महत्त्व-पूर्ण पग अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं। पिछले कुछ वर्षों से श्रमिको मे अधिक मनोवैज्ञानिक (Psychological) परिवर्तन पाया जाता है। वे अपने अधिकारो से तो अधिकतर परिचित हो गये हैं परन्तु इस परिवर्तन के समय मे वे अपने कर्त्तव्यो को भूल गये हैं। हर ओर से मालिको की ये शिकायतें आती हैं कि श्रमिको की कार्यकुशलता कम हो गई है। श्रमिक अधिक कार्य करने मे कोई रुचि नही दिखाते और मालिक उनसे कुछ कह नही सकते क्योंकि हडताल का हर समय डर लगा रहता है। पिछले दिनो मे श्रमिको की ओर से हिंसात्मक कार्य भी हुये हैं। अभी हाल के कुछ महीनो मे श्रमिको द्वारा 'घिराव" के जो हथकण्डे अपनाये गये हैं, यह बडी गम्भीर बात है। 'घिराव' मे श्रमिक कारखाने के मालिको तथा प्रबन्धको को कारखानो मे ही अथवा उनके निवास स्थानो मे ही लम्बे समय तक घेरे रहते हैं। कभी-कभी तो इस अवधि मे उनको खाना, पानी से भी वचित कर दिया जाता है। ऐसे अस्वस्थ वातावरण को दूर करने की आवश्यकता है।

इसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि स्वस्थ श्रमिक सगठन के विकास का प्रयत्न किया जाये। देश मे इस बात का आन्दोलन भी चल पडा है कि श्रमिकों को भी प्रबन्ध कार्यों मे भाग दिया जाये। इसका प्रयोग भी सफलतापूर्वक कई स्थानों पर किया गया है। इस आन्दोलन का विस्तार हो सकता है, परन्तु इसकी सफलता के लिए भी यह आवश्यक है कि शक्तिशाली और पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले श्रमिक सघ हो। यदि हम अपने श्रमिको से अधिक कार्यकुशलता की आशा करते हैं तथा देश मे अधिक उत्पादन और औद्योगिक-शान्ति चाहते हैं तो सघो के समस्त दोषो को दूर करने और स्वस्थ सघवाद के विकास मे उन्नति करने की ओर हमे गम्भीर रूप मे प्रयत्न करने चाहिएँ। ●

६ इंगलैण्ड में श्रमिक संघवाद
TRADE UNIONISM IN ENGLAND

मध्ययुग मे दस्तकारी श्रेणियाँ
(Craft Guilds in the Middle Ages)

ब्रिटेन के श्रमिक सघ औद्योगिक क्रान्ति की उपज हैं। इससे पूर्व अधिकतर उद्योग-धन्धे श्रमिकों के घर पर ही होते थे और श्रमिक कठिनता से ही मिल पाते थे क्योंकि वे अलग अलग कार्य करते थे। अत किसी प्रकार के सघ बनाने का अवसर न था। परन्तु मध्ययुग म श्रमिकों की दस्तकारी श्रेणियों (Craft Guilds) का उल्लेख मिलता है। यह उन कुशल श्रमिकों के सघ थे जो एक ही प्रकार की वस्तु के उत्पादन मे सलग्न होते थ। इस प्रकार की श्रेणी या गिल्ड सभी व्यवसायों, जैसे—सीमेंट, यातायात आदि म पाये जाते थे। परन्तु ये दस्तकारी श्रेणियाँ आधुनिक श्रमिक सघों से भिन्न थी। दस्तकारी श्रेणियाँ उन शिल्पियों का सगठन थी जो मालिक होने के साथ-साथ श्रमिक भी थे और यह सम्पूर्ण दस्तकारी को नियन्त्रित करते थे, परन्तु श्रमिक सघ मे केवल श्रमिक ही होते हैं। इसके अतिरिक्त यह मध्यकालीन दस्तकारी श्रेणियाँ अधिकतर स्थानीय होती थीं जबकि आधुनिक श्रमिक सघ अधिक विस्तृत आधार पर सगठित किये जाते है। श्रेणियाँ धार्मिक व दान के कार्य भी करती थीं जो कि आधुनिक श्रमिक सघों के द्वारा सम्पन्न नही किये जाते। श्रेणियाँ एक ही व्यवसाय मे लगे व्यक्तियों का सगठन होती थी, परन्तु श्रमिक सघों मे विभिन्न व्यवसायों के श्रमिक भी हो सकते है। दोनों मे एक अन्य विभिन्नता यह थी कि दस्तकारी श्रेणियाँ अपने तथा जनता, दोनों के ही हितों का ध्यान मे रखती थीं। आधुनिक श्रमिक सघ सामान्यत, मजदूरों के ही हितों का ध्यान रखते हैं और कभी-कभी जनसाधारण और अपने उद्योग तक की भलाई की परवाह नहीं करते।

आधुनिक श्रमिक संघों का विकास
(Growth of Modern Trade Unionism)

अठारहवीं शताब्दी तथा उसके पश्चात् आधुनिक उद्योग-धन्धों का विकास होने के कारण श्रमिक सघों की आवश्यकता अनुभव हुई। कारखाना प्रणाली से श्रमजीवियों के एक नये वर्ग की उत्पत्ति हुई जो अपने निर्वाह के लिये पूर्णतया अपनी मजदूरी पर ही निर्भर था। व्यक्तिवाद (Individualism) के ऐसे युग मे जबकि अबन्ध नीति (Laissezfaire) ही सर्वोपरि थी, श्रमिक वर्ग को अनेक

हानियाँ पहुँची। श्रमिकों को अनेक कठिनाइयों तथा अन्याय का सामना करना पड़ता था तथा उनका पूर्ण रूप से शोषण होता था। प्रारम्भिक संगठन इस शोषण के स्वाभाविक परिणाम थे।

संसद का विरोधी व्यवहार : संगठन कानून
(Hostile Attitude of Parliament : Combination Laws)

इस युग से पूर्व कुछ ऐसे अधिनियम थे जिनके अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण "जस्टिसेज आफ पीस" (Justices of Peace) द्वारा होता था। इस प्रकार जब सरकार ने श्रमिकों की अवस्था पर नियन्त्रण रखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया तब मजदूरी बढ़ाने अथवा श्रम अवस्थाओं में हस्तक्षेप करने के लिये श्रमिक संगठनों को कानून द्वारा निषेध कर दिया गया। इसी प्रकार के निषेध मालिकों के लिये भी थे। परन्तु समय की गति के साथ-साथ मालिकों के लिये राज्य का यह हस्तक्षेप निष्क्रिय होता गया। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् जब उद्योगों का तीव्र-गति से विकास हुआ, राज्य के कानूनों का प्रभाव कम हो गया और मजदूरी तथा श्रम की अवस्थायें मालिकों द्वारा निर्धारित की जाने लगी। परिणामस्वरूप श्रमिकों का शोषण हुआ। परन्तु संगठन अब भी अपराध माने जाते थे और षड्यन्त्र के कानून (Law of Conspiracy) के अन्तर्गत दण्डित होते थे। तत्कालीन आर्थिक सिद्धान्त ने भी श्रमिक संघों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण पर प्रभाव डाला। 'मजदूरी निधि सिद्धान्त' (Wages Fund Theory) के अनुसार मजदूरी एक निश्चित निधि में से दी जाती है और यदि श्रमिकों का कोई संघ किसी एक उद्योग में श्रमिक संघों के माध्यम से अधिक मजदूरी प्राप्त कर लेता है तो दूसरे उद्योग में श्रमिकों को कम मजदूरी मिलेगी। इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी क्रान्ति ने भी इंगलैंड में यह भय व्याप्त कर दिया कि कहीं ये श्रमिक संघ क्रान्तिकारी न हो जायें। अतः संसद् (Parliament) इन संघों के प्रति विरोधी हो उठी और कई ऐसे अधिनियम पारित किये गये जिनके अन्तर्गत एक के बाद एक उद्योगों में संगठन अवैध घोषित कर दिये गये। इन सब कानूनों के पश्चात् सन् १७९९ और १८०० में 'संगठन कानून' (Combination Laws) के रूप में और भी कठोर कदम उठाये गये जिनके अन्तर्गत तमाम उद्योगों में संगठनों को अवैध घोषित कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों के गुप्त संघ बनने लगे। गुप्त तहखानों में सभायें होने लगी तथा सदस्यों के नाम भी गुप्त रखे जाने लगे। जब मालिकों से संघ प्रत्यक्ष रूप से बात नहीं कर सकते थे और शांतिपूर्ण ढंग से समझौतों का रास्ता बन्द हो गया था तब परिणामस्वरूप अनेक स्थानों पर हड़तालें हुई और श्रमिक हिंसा पर उतर आये तथा मशीनों की तोड़-फोड़ की गई क्योंकि मशीनें श्रमिकों द्वारा उनकी निर्धनता और कठिनाइयों का कारण समझी जाती थी। इस समय कुछ 'फ्रेंडली सोसाइटीज' अर्थात् मित्र समितियाँ बनाई गई जो कि १९७२ के 'फ्रेंडली सोसाइटीज एक्ट' (Friendly Societies Act) के अन्तर्गत पंजीकृत

होती थी। इन 'फ्रेडली सोसाइटीज' ने कुछ लाभपूर्ण कार्य किये, जैसे—श्रमिको को वेकारी और बीमारी के दिनो मे सहायता दी। यह कार्य बाद मे श्रमिक सघो द्वारा किये जाने लगे। परन्तु ऐसी सस्थायें श्रमिको का वैधानिक सगटन नही कही जा सकती थी क्योकि तमाम सस्थायें निषेध थी।

श्रमिक संघो का प्रारम्भ (Beginning of Trade Unionism)

श्रमिको मे असन्तोष व्याप्त ही रहा परन्तु शिक्षा और तीव्र बुद्धि न होने के कारण अनेक वर्षों तक सगठन कानूनो (Combination Laws) को समाप्त न करा सके। सैद्धान्तिक रूप से तो मालिको के सघ बनाने पर भी प्रतिबन्ध था परन्तु इस प्रतिबन्ध को लागू करने के लिय बहुत ही कम कार्य किया गया जबकि श्रमिको के लिय 'षड्यन्त्र कानून' के अन्तर्गत कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। कुछ तीव्र बुद्धि वाले श्रमिको ने सगठन कानूनो को समाप्त कराने के हेतु आन्दोलन किया। 'फ्रासिस प्लेस' (Francis Place) नामक एक दर्जी ने कई वर्षों तक इन अधिनियमो को समाप्त कराने के लिय कार्य किया और १८२४ मे ससद् के निम्न भवन (House of Commons) के क्रान्तिकारी नेताओ, विशेषकर जोसेफ ह्यूम (Joseph Hume) की सहायता से एक ऐसा अधिनियम पारित कराने मे सफल हुआ जिसके अन्तर्गत श्रमिको को मजदूरी और काम के घण्टो के प्रश्न पर मालिको से बातचीत करने के लिये सघ बनाने की अनुमति प्राप्त हो गई। परन्तु इस अधिनियम के परिणामस्वरूप अनेक हडतालें हुई और अव्यवस्था फैली। इसकी प्रतिक्रिया हुई। सन् १८२४ के अधिनियम के द्वारा श्रमिको को षड्यन्त्र के सामान्य नियम के अन्तर्गत भी दण्डित नही किया जा सकता था। इसलिये इसके स्थान पर सन् १८२५ का संशोधित अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत सघो को वैधानिक रूप तो प्रदान किया गया, परन्तु सामान्य कानून का कोई भी उल्लेख नहीं था। अत. श्रमिक अब किसी भी सगठन के लिये जिसका उद्देश्य कार्य के घण्टे या मजदूरी के बारे मे समझौता कराना नही था, सामान्य कानून के अन्तर्गत दण्डित किये जा सकते थे और न ही हडताल करने वाले श्रमिक दूसरे मजदूरो को काम पर आने से रोक सकते थे। इससे श्रमिक सघो को काफी क्षति पहुँची और १८२५ के अधिनियम द्वारा इनको केवल वैधानिक मान्यता ही प्राप्त हो सकी। इस अधिनियम के पास होने के साथ ही श्रमिक सघो के इतिहास मे निर्माण काल की समाप्ति हो गई।

सन् १८२४ के पश्चात् श्रमिक सघो का गुप्त रूप से सगठित होना बन्द हो गया और उनकी तथा उनके सदस्यो की सख्या मे आशातीत वृद्धि होने लगी। इस समय के अधिकतर सघ केवल हडताल समितियो के रूप मे थे। जैसे ही हडतालो को चालू रखने के लिये निधियाँ समाप्त हो जाती थीं, श्रमिक काम पर लौट आते थे। स्थानीय छोटे-छोटे श्रमिक सघो को बड़े सगठनो के रूप म परिवर्तित करने का प्रयत्न भी किया गया। १८३४ मे रावर्ट ओवन के प्रभाव के फलस्वरूप "ग्रांड नेशनल

कन्सोलिडेटेड ट्रेड यूनियन' की स्थापना हुई। परन्तु यह 'ग्राड नेशनल' सदस्यो की आशाओ को पूर्ण करने मे असमय रही क्योकि इसमे आर्थिक पुर्ननिर्माण के आदर्श बहुत ऊँचे रखे गये थे जिनको प्राप्त करना कठिन था। इसलिए यह जल्द ही समाप्त हो गई। कुछ वर्षों तक श्रमिको का विश्वास सघवाद से उठ गया और उन्होंने अपना ध्यान राजनैतिक कार्यवाहियो की ओर दिया तथा चार्टिस्ट आन्दोलन का समर्थन किया जो कि सन् १८३२ के 'सुधार अधिनियम (Reforms Act) की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप चालू किया गया था। इस अधिनियम के अन्तर्गत मध्य श्रेणी के व्यक्तियो को तो मत देने का अधिकार मिल गया था परन्तु श्रमिक इस अधिकार से वचित ही रहे थे। यह चार्टिस्ट आन्दोलन भी अपने उद्देश्यो की पूर्ति मे असफल रहा। इस प्रकार एक ओर क्रान्तिकारी उपायो तथा दूसरी ओर राजनैतिक क्रियाओ से हताश होकर श्रमिकों ने अब अपना ध्यान कम महत्वाकाक्षी तथा अधिक सतर्क (Cautious) और अवसरवादी नीति की ओर लगाया। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १८४३ के पश्चात् श्रमिक सघो के इतिहास मे एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। सन् १८५१ मे, 'एमलगमैटेड सोसाइटी ऑफ इन्जीनियर्स' की स्थापना ऐसे दृढ आधारो पर की गई कि वह आज तक चल रही है। धीरे-धीरे अन्य कई उद्योगो मे भी सगठित सघ बनाये गये। इस काल मे श्रमिक सघो की एक मुख्य विशेषता यह थी कि यह अपने सदस्यो से बहुत अधिक मात्रा मे चन्दा लेते थे और उनको हर प्रकार की सहायता देते थे। अत श्रमिक हडताल करना पसन्द नही करते थे क्योकि वह अपने रुपये को जिससे उन्हें बीमारी तथा बेकारी जैसी अवस्था में सहायता मिलती थी, व्यर्थ खर्च नही होने देना चाहते थे। एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि कुशल श्रमिको के सघ तो बने परन्तु अकुशल श्रमिको के हितो की ओर ध्यान नही दिया गया।

सन् १८७१ का श्रमिक सघ अधिनियम (Trade Union Act of 1871)

संघों का विकास :

सन् १८६०-७० के मध्य श्रमिक सघ पुन सक्रिय हो गये, परन्तु इनकी बढती हुई शक्ति का मालिको ने स्वागत न किया। कभी-कभी हडतालें और इधर-उधर हिंसा की घटनायें हो जाती थी जिनके लिये श्रमिक सघ उत्तरदायी न थे। परन्तु ऐसी घटनाओ ने सघो को दबाने के लिए मालिको को अच्छा अवसर प्रदान कर दिया। सन् १८६७ मे श्रमिक सघो की जाँच करने के लिये एक रॉयल कमीशन की नियुक्ति हुई और ससद् मे यह आशा व्यक्त की गई कि सगठन कानून पुन लागू कर दिये जायें। श्रमिक सघो पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो को समाप्त करने, श्रमिको के चरित्र को गिराने, अनावश्यक रूप से हडताल कराने तथा व्यापार की प्रगति मे बाधा पहुँचाने के आरोप लगाये गय थ। दूसरी ओर श्रमिक सघो ने यह शिकायत की कि सघो की निधि के रक्षार्थ कोई उचित विधान नहीं था और विधान के अन्तर्गत उनके कार्य सीमित थे। यद्यपि रॉयल कमीशन के सदस्यो का इस प्रश्न पर मतभेद था

कि उसको समर्थन मतदान द्वारा बहुमत से होना चाहिये तथा राजनैतिक निधि को अन्य निधियों से पृथक् रखा जाय। इसके अतिरिक्त कोई भी व्यक्तिगत सदस्य राजनैतिक निधि में चन्दा देने से मना कर सकता था और उसे इस कार्य के लिये कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता था।

युद्ध और संघ (War and the Unions)

प्रथम महायुद्ध में श्रमिक संघ आन्दोलन का महत्व बढ़ गया। युद्ध काल में हड़तालें स्थगित कर दी गई और श्रमिक संघ व मजदूर दल ने अपने आपको पूर्णतया युद्ध में लगा दिया तथा अपने अनेक अधिकारों का परित्याग कर दिया। परन्तु युद्ध की स्थिति के कारण नई औद्योगिक समस्यायें सामने आई और 'श्रमालय प्रतिनिधि' (Shop Steward) आन्दोलन के रूप में एक नया श्रमिक संघ आन्दोलन उठा। युद्ध के पश्चात् ही आर्थिक मन्दी आई। मजदूरी में कमी कर दी गई और अनेक हड़तालें हुई। १९१९ में रेलवे की हड़ताल में श्रमिकों को सफलता प्राप्त हुई, लन्दन में गोदी कर्मचारी, अर्नेस्ट बेविन के नेतृत्व में, न्यूनतम मजदूरी प्राप्त करने में सफल हुए। सन् १९२६ में एक आम हड़ताल हुई जिसके परिणामस्वरूप सन् १९२७ का श्रमिक संघ अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा आम हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था थी कि प्रत्येक सदस्य को राजनैतिक निधि में चन्दा देने की अपनी इच्छा को घोषित करना चाहिये और सन् १९१३ के अधिनियम की भाँति यह आवश्यक नहीं रह गया कि प्रत्येक व्यक्ति राजनैतिक निधि में चन्दा दे और जो न देना चाहे वह मना कर दे। इस बात से मजदूर दल में असन्तोष व्याप्त हुआ। परन्तु उस समय की (१९२९-३१) 'लेबर' सरकार ने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सन् १९४६ के श्रमिक संघ अधिनियम तथा व्यापार विवाद अधिनियम के द्वारा ही सन् १९२७ से पूर्व की बात को पुनः लागू किया गया कि प्रत्येक सदस्य को राजनैतिक निधि में चन्दा देना होगा जब तक कि वह छूट के लिये प्रार्थना न करे। राज्य ने हाल ही में व्यापक कानून पास किये हैं। इन कानूनों में १९७४ के श्रमिक संघ तथा श्रम सम्बन्ध, अधिनियम, १९७६ में किये गये संशोधन तथा १९७५ के रोजगार संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत, ऐच्छिक पंजीकरण का तथा श्रमिक संघों व मालिकों के संगठनों के कर्त्तव्यों व दायित्वों एवं उनकी सदस्य आदि का प्रावधान किया गया है। ये अधिनियम स्वतन्त्रता श्रमिक संघों को कानूनी सुरक्षा प्रदान करते हैं और मालिकों के संगठनों को भी समान अधिकार प्रदान करते हैं। सन् १९६४ के अधिनियम द्वारा श्रमिक संघों का सम्मिलन (amalgamation) भी किया जा सकता है।

वर्तमान स्थिति तथा संघों का संगठन
(Present Position and Organisation of the Unions)

इस अवधि के पश्चात् से इगलैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन निरन्तर शक्तिशाली होता जा रहा है और इसने श्रमिकों के कल्याण और हित के लिए अनेक

कार्य किये है। अधिकतर कर्मचारी, जो उद्योगो मे लगे हुए है, जिनमे कृषि और यातायात जैसी जनोपयोगी सेवायें भी सम्मिलित हैं, अब श्रमिक सघो मे सगठित हैं। इनका विकास स्वतन्त्र रूप से धीरे-धीरे कई वर्षों में हुआ है। यह आन्दोलन २०० वर्ष पूर्व कुशल कर्मचारियो से आरम्भ हुआ था और तत्पश्चात् अकुशल वर्गों मे भी फैल गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय मे सदस्यो की सख्या २५% और अधिक बढ गई। सन् १९४६ मे ब्रिटिश श्रमिक सघो की सदस्यता ८७,१४,००० थी। सन् १९५७ में सदस्य सख्या ९७,००,००० तक पहुँच गई अब भी ६४७ अलग-अलग सगठन है परन्तु दो तिहाई सदस्य १७ ऐसे बडे-बडे सघों मे सगठित है, जिनमे प्रत्येक मे सदस्यो की सख्या १ लाख से भी अधिक है। सन् १९७५ के अन्त मे, श्रमिक सघों की सख्या ४६० थी और सदस्य सख्या लगभग ११६.५ लाख थी। इस प्रकार ब्रिटेन मे सभी श्रमिको का लगभग ½ भाग श्रमिक सघो का सदस्य है। कुछ सघ एक दस्तकारी (Craft) या दस्तकारो के ग्रुप तक सीमित हैं जबकि कुछ दूसरे सघ किसी उद्योग अथवा उद्योगो मे लगे हुये सभी प्रकार के श्रमिक व कर्मचारियो तक फैले हुए हैं। प्रत्येक सघ अपने सगठन मे स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है और इसका आधार 'ब्राच' (Branch) अथवा लॉज (Lodge) है जो स्थानीय क्षेत्रो पर आधारित है। ब्राच' अधिकारियो और समितियो का निर्वाचन करती है, और उन सभी विषयो पर विचार करती है जो कि स्थानीय रूप से सुलझाये जा सकते हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण मामले जिले की अथवा राष्ट्रीय सस्थाओं द्वारा सुलझाये जाते हैं। अब स्त्रियो तथा हर प्रकार के कर्मचारियों मे भी सघवाद विकसित होता जा रहा है। कई सघो मे श्रमालय प्रतिनिधि (Shop Steward) या कर्मचारियो के प्रतिनिधि भी होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारिक परिषदें (Trade Councils) भी हैं जो विभिन्न उद्योगो में सगठित श्रमिको के राजनैतिक और औद्योगिक प्रश्नो पर सहयोग देने के लिये हैं। यह प्रत्येक क्षेत्र में श्रमिक सघों की शाखा का कार्य करती है। इगलंड में श्रमिक सघ आन्दोलन कुशल दस्तकारो, जैसे इजिनियरिंग, खानो वस्त्र उद्योग, रेलवे, यातायात और गोदी कर्मचारियों में पर्याप्त शक्तिशाली हैं। इगलंड में श्रमिक सघो का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) के माध्यम से मालिको से बातचीत करना रहा है।

ब्रिटेन में श्रमिक सघ आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता सगमो की स्थापना है जो नीति सम्बन्धी मामलो पर विचार करते हैं। इगलंड में श्रमिक संघ आन्दोलन का केन्द्रीय सगठन 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' है जिससे अधिकतर श्रमिक सघ सम्बद्ध हैं। यह ट्रेड यूनियन कांग्रेस सन् १८६८ में स्थापित की गई थी और यह एक प्रकार से श्रमिको की ससद् है जिसमें अनेक वर्गों का प्रतिनिधित्व मिलता है। इस सस्था की एक सामान्य परिषद् सन् १९२१ में स्थापित की गई थी जिसका श्रमिक संसार में महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। सामान्य परिषद् प्रतिवर्ष कांग्रेस द्वारा अपनी कार्याग

उन्होंने इङ्गलैंड में श्रमिक विवादों की सख्या कम की है। श्रमिकों के सामान्य जीवन के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने की ओर भी ध्यान दिया है। उन्होंने श्रमिकों के भौतिक, मानसिक और सांस्कृतिक तथा नागरिक उत्तरदायित्व के स्तरों को ऊँचा उठाने में सहायता दी है। पिछले कुछ वर्षों से सघों ने अपने सदस्यों की शिक्षा की ओर भी अधिक ध्यान दिया है। इन कार्यों ने श्रमिकों के स्तर और आत्म-सम्मान को बहुत ऊँचा उठाया है। अब सघों से सरकार के द्वारा निरन्तर आर्थिक, सामाजिक और प्रतिरक्षा (Defence) जैसे विषयों पर भी परामर्श लिया जाता है। *श्रमिक सघ आन्दोलन समाज के जीवन का प्रतिबिम्ब है और कोई भी इगलैण्ड के १ करोड श्रमिकों की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकता।*

श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन (Shop Steward's Movement)[1]

श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला श्रमिक समिति आन्दोलन (Workers' Committee Movement) १९१४–१८ के विश्वयुद्ध की देन थे। एक समय तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यह आन्दोलन श्रमिक संघों की नीति और सगठन विधि में परिवर्तन ला देंगे परन्तु युद्ध समाप्ति के एक दो वर्ष पश्चात् यह आन्दोलन प्रगति न कर सका।

सन् १९१६ की ह्विटले समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप ग्रेट ब्रिटेन में सयुक्त औद्योगिक परिषदें (Joint Industrial Councils) स्थापित की गई थी। ये परिषदें उद्योग की समस्याओं पर विचार करने के लिये थी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कार्यालय ही में श्रमिकों और मालिकों के मध्य मतभेद दूर करने के लिये हजारों की सख्या में मालिक-मजदूर समितियाँ (Workshop Committees) स्थापित हो गई थी। *'श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन' इसके ही साथ विकसित हुआ।*

'श्रमालय प्रतिनिधि' उस श्रमिक को कहते हैं जो किसी कारखाने में कारखाने की समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर प्रतिनिधित्व करने के लिये अपने साथियों द्वारा चुन लिया जाता है। इस प्रकार के श्रमालय प्रतिनिधि युद्ध से पूर्व भी थे। इनको बडा उपयोगी समझा जाता था, क्योंकि किसी श्रमिक सघ के लिये किसी कारखाने विशेष की समस्याओं पर विचार करना और उसके दिन-प्रति-दिन के मामलों को सुलझाना बडा कठिन होता है। श्रमिक संघों के अधिकारी थोडे ही होते हैं और वह हर समय हर स्थान पर उपस्थित नहीं हो सकते। श्रमिक सघ तो केवल श्रमिकों के सामान्य हित पर ही विचार करते हैं। *श्रमिकों को कारखाने में भी किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो तत्कालीन और विशेष समस्याओं को जैसे ही उत्पन्न हों, सुलझा सके। अत यह उपयुक्त ही है कि प्रत्येक सस्थान में श्रमिक अपने बीच से किसी ऐसे व्यक्ति को चुनें जो उनकी ओर से कार्य करे*

1 G. D H Cole Britsh Trade Unionism Today, page 163

और संघ में विषय विशेष पर उनका प्रतिनिधित्व कर सके। खान-श्रमिक इस कार्य के लिये 'चैकवेमैन' (Checkweighman) की सेवायें प्राप्त करते हैं जिसको कानून के द्वारा उन्हें चुनने का अधिकार है और जिसको श्रमिकों के द्वारा वेतन दिया जाता है। अन्य उद्योगों में इस उद्देश्य के लिये श्रमालय प्रतिनिधि छाटे जाते हैं परन्तु युद्ध से पूर्व यह महत्त्वपूर्ण नहीं थे। श्रमिक संघ भी उनका समर्थन नहीं करते थे। क्योंकि यह विचार था कि वह श्रमिक संघ अधिकारियों के विरोध में आ जायेंगे। इनका सन्देह उचित ही था क्योंकि कई बार मालिकों ने मालिक-मजदूर समितियाँ बनाईं और संघों को दूर रखने के लिये कारखानों के अन्दर ही प्रतिनिधियों का चुनाव कर लिया। अतः बहुत समय तक श्रमालय प्रतिनिधियों को श्रमिक संघों के द्वारा किसी प्रकार के संगठनात्मक कार्य नहीं दिये गये। परन्तु युद्ध से सारी स्थिति ही बदल गई। सर्वप्रथम तो मान्यता प्राप्त श्रमिक संघों की शक्ति ही समाप्त हो गई क्योंकि पहले तो उन्होंने ऐच्छिक रूप से ही युद्ध के दिनों में हड़ताल न करने का संकल्प किया और फिर सन् १९१५ के 'म्युनिशन ऑफ वार एक्ट' के अन्तर्गत हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब कोई शिकायत इतनी गम्भीर हो जाती थी कि हड़ताल करने की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो श्रमिकों को संघ से बाहर के नेतृत्व की सहायता लेनी पड़ती थी। इस नेतृत्व की पूर्ति श्रमालय प्रतिनिधियों द्वारा हुई। दूसरे, सन् १९१५ के प्रारम्भ से ही अस्त्र-शस्त्रों की तीव्र आवश्यकता के कारण कारखानों की प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। यहाँ तक कि कुशल श्रमिकों के स्थान पर अकुशल व अर्धकुशल स्त्री व पुरुष रखे जा रहे थे। निरन्तर होने वाले इस परिवर्तन से संघर्ष उत्पन्न हो गया और श्रमिकों के प्रतिनिधियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करना आवश्यक हो गया। इस प्रकार श्रमालय प्रतिनिधि महत्त्वपूर्ण हो गये। तीसरे, मार्च १९१६ में सेना में अनिवार्य भर्ती लागू हो गई। इसके परिणामस्वरूप अधिक से अधिक संख्या में कुशल श्रमिकों की माँग युद्ध के कारण बहुत बढ़ गई और उनको सेना के लिये भेजना पड़ा। मार्च १९१७ में रूसी क्रान्ति के पश्चात्, युद्ध के निरन्तर बढ़ते हुये विरोध के कारण संघर्ष और भी बढ़ गया। इस विरोध का नेतृत्व भी श्रमालय प्रतिनिधियों ने किया।

इन तीन कारणों के परिणामस्वरूप ही श्रमालय प्रतिनिधियों के आन्दोलन का अभ्युदय और विकास हुआ। आन्दोलन के रूप में यह क्लाइड में सन् १९१५ में इञ्जीनियरों की हड़ताल से प्रारम्भ हुआ था। यह हड़ताल श्रमिक संघों की अनुमति के बिना हुई। इसका नेतृत्व 'सेन्ट्रल विदड्राल ऑफ लेबर कमेटी" (Central Withdrawal of Labour Committee) ने किया जिसमें संघों के द्वारा मान्यता प्राप्त श्रमालय प्रतिनिधि तथा श्रमिकों के चुने हुए प्रतिनिधि होते थे। इस हड़ताल के पश्चात् इसने 'क्लाइड वर्कर्स कमेटी' के रूप में अपने को परिवर्तित कर लिया और प्रत्येक इञ्जीनियरिंग कारखाने में अनौपचारिक रूप से श्रमिकों का संगठन

हुआ। क्लाइड का उदाहरण छूत की बीमारी की तरह फैला तथा श्रमालय प्रतिनिधि' आन्दोलन और विकसित हुआ। अनेक जिलों में श्रमिकों की समितियाँ स्थापित की गई। प्रारम्भ में श्रमालय प्रतिनिधि केवल कुशल श्रमिकों के प्रतिनिधि होते थे परन्तु शीघ्र ही आन्दोलन अकुशल श्रमिकों में फैल गया। श्रमिकों की समितियाँ स्थापित की गई, जिन्होंने संघों से भी अधिक प्रभावशाली प्रतिनिधित्व का दावा किया। परन्तु 'श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन अकुशल श्रमिकों की अपेक्षा कुशल श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करता था तथा इसमें स्त्रियों का कोई महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं था।

'क्लाइड श्रमिक समिति' युद्ध काल में तो सक्रिय रही परन्तु सन् १९१६ ई० में इसके नेताओं के कारावास और देश-निष्कासन के कारण इसकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई तथा नेतृत्व अन्य स्थानों के व्यक्तियों में चला गया। इसके पश्चात् 'शेफील्ड वर्कर्स कमेटी विकसित हुई। इन्जीनियरों की समिति एक ऐसे कुशल श्रमिक को, जिसे सेना में भर्ती कर लिया गया था, अनौपचारिक हड़ताल द्वारा वापिस बुलाने में सफल हुई। इसी समय अनेक स्थानीय श्रमालय प्रतिनिधियों के संगठन को राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में संगठित करने का प्रयत्न किया गया। एक राष्ट्रीय श्रमालय प्रतिनिधि समिति की स्थापना की गई और जनवरी १९१८ में रूसी क्रान्ति की प्रेरणा से राष्ट्रीय श्रमालय प्रतिनिधि परिषद् पूर्णतया संगठित हो गई। युद्ध काल में इन्जीनियरों और जहाज-निर्माण श्रमिकों की जो हड़तालें हुई वह श्रमालय प्रतिनिधियों के द्वारा संचालित की गई थी और यह मान्यता प्राप्त श्रमिक संघों के नेताओं की इच्छा के विरुद्ध हुई। प्रारम्भ में उन्होंने मजदूरी जैसे औद्योगिक प्रश्नों तक ही अपने को सीमित रखा परन्तु रूसी क्रान्ति के परिणाम-स्वरूप वह सेना की नौकरी के विरोध में हो गये और शान्ति-स्थापना तथा पूंजी-वाद की समाप्ति के लिये क्रान्तिकारी उपायों में विश्वास करने लगे। परन्तु यहाँ इस बात का उल्लेख कर दिया जाना आवश्यक है कि इस आन्दोलन में सभी श्रमालय प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं थे। इनमें से कई कट्टर श्रम-संघवादी और युद्ध के समर्थक थे। आन्दोलन के क्रान्तिकारी विचारों के कारण सरकार और जनता ने इसका घोर विरोध किया। जब तक युद्ध होता रहा तब तक तो कुशल श्रमिकों की कमी के कारण श्रमालय प्रतिनिधियों से किसी ने कुछ न कुछ कहा। परन्तु युद्ध समाप्त होते ही एक नवीन परिस्थिति उत्पन्न हो गई। श्रमिकों की पूर्ति अधिक थी और अब मालिकों के लिये आन्दोलन के नेताओं को बर्खास्त करना सरल हो गया। परिणाम-स्वरूप श्रमालय प्रतिनिधि का होना ही बर्खास्तगी को निमन्त्रण देना था। अतः श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन की गति तीव्रता से क्षीण होती गई। कई सक्रिय नेता साम्यवादी दल में सम्मिलित हो गये और कुछ श्रमिक संघ नेतृत्व के अन्तर्गत आ गये।

यद्यपि श्रमिक सघो के नेता श्रमालय प्रतिनिधि के पक्ष मे तो थे परन्तु उनके आन्दोलन का सदैव विरोध करते थे क्योंकि वे इसको सघो के अधिकार और प्रणाली को चुनौती समझते थे। इसके अतिरिक्त श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन ने विभिन्न सघो के अन्तर की ओर ध्यान नही दिया और सभी श्रमिको को, बिना इस बात का विचार किये कि वह किस सघ से सम्बन्धित है, सगठित किया। अत यह आन्दोलन श्रमिक सघ व्यवस्था से मेल नही रख सका, तथापि इसने काफी महत्ता प्राप्त कर ली थी। युद्ध के पश्चात् भी अनेक श्रमिक सघ नेताओ ने इस बात का प्रयत्न किया कि, जैसी युद्ध से पूर्व स्थिति थी, श्रमालय प्रतिनिधियों को श्रम सघो के अधीन कार्य करने दिया जाये। परन्तु आन्दोलन असफल रहा क्योकि इसने क्रान्तिकारी उपायो और उद्योग पर श्रमिको के नियन्त्रण मे विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया था। इगलैंड मे श्रमिक सघ आन्दोलन क्रान्तिकारी आदर्शों के सदैव विरुद्ध रहा है और श्रमिक व्यवस्था मे सुधार के लिये अर्थव्यवस्था के वर्तमान रूप मे ही विश्वास करता रहा है। अत. श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन उसी समय पुन शक्तिशाली हो सकता है जबकि श्रमिकों मे क्रान्तिकारी विचार घर कर जायें उनका श्रमिक सघो की चुनौती के रूप मे होना सन्देहयुक्त ही है। श्रमालय प्रतिनिधि श्रमिक सघ आन्दोलन के साथ अथवा उनके एक भाग के रूप मे ही सर्वोत्तम तरीके से कार्य कर सकते है। यद्यपि श्रमालय प्रतिनिधि अब भी अपने को एक अलग श्रेणी के रूप मे समझते है तथापि श्रमिक सघ इतने शक्तिशाली हो गये है कि सन् १६१४–१८ के महायुद्ध के समय के श्रमालय प्रतिनिधि जैसे आन्दोलन का विकसित होना कठिन है।

अन्य देशो में श्रमिक संघ (Trade Unions in Other Countries)

श्रम सघवाद विश्वव्यापी आन्दोलन है। प्रत्येक पूँजीवादी देश मे इसका विकास भी पूँजीवाद के विकास के साथ हुआ और यह पूँजीवादी शोषण के उत्तर के रूप मे आगे बढा है। 'सिद्धान्त' अथवा 'आन्दोलन' के कारण नही वरन् श्रमजीवी वर्ग की तीव्र आवश्यकता के कारण ही श्रम सघवाद का अभ्युदय हुआ। अत श्रम सघवाद सब पूँजीवादी देशो मे विकसित हुआ है। इटली, जर्मनी और कुछ सीमा तक जापान मे भी श्रम सघो को समाप्त कर दिया गया था क्योंकि फासिस्ट सरकार कभी भी श्रमिको की शक्ति मे विश्वास नही करती थी और उसने केवल वही संघ बनाये जो कि सत्ताधारी दल के द्वारा नियन्त्रित हो। ऐसे देशो मे श्रमिको मे अनुशासन बनाये रखने के लिये सघ स्थापित हुये थे। परन्तु चूकि उन्हे हड़ताल करने अथवा अपने हितों की रक्षा करने का अधिकार न था अत इनको श्रमिक सघ नही कहा जा सकता। केवल द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ही, पश्चिमी जर्मनी मे तो 'श्रमिक सघो का जर्मन सगम' जैसे केन्द्रीय श्रमिक सगठनो की स्थापना हुई और इटली मे 'इटालियन लेबर जनरल कन्फेडरेशन' तथा 'इटालियन कन्फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन वर्कर्स' जैसे श्रमिक सघ सगम अस्तित्व मे आये। दूसरी ओर, श्रम

सघवाद अमेरिका व ग्रेट ब्रिटेन मे तथा समाजवादी देश रूस मे काफी शक्तिशाली रहा है।

अमेरिका मे श्रमिक सघो का इतिहास काफी पुराना है। स्वतन्त्रता की घोषणा के पूर्व भी दस्तकारी और घरेलू उद्योगो के कारीगरो ने मिलकर कुछ हितकारी समितियाँ (Benevolent Societies) बना ली थी। ये समितियाँ इंगलैंड की 'फ्रेंडली सोसाइटीज' की भाँति थी। १८०० के आरम्भ मे जब अमेरिका मे उद्योगो का विकास हुआ तब कारखानो और बडी कार्यशालाओ मे मालिको और श्रमिको के मतभेद अधिक हो गये और स्वतन्त्र स्पर्धा के अन्तर्गत आर्थिक हितो का सघर्ष सामने आ गया। उसके पूर्व १७७० म ही अपने आर्थिक हितो की रक्षा क लिय निपुण व्यवसायो म श्रमिको ने कुछ सगठन बना लिये थे। परन्तु ये सगठन अस्थायी थ। श्रमिको का पहला निरन्तर सगठन १६७४ म विकसित हुआ। जब फिलेडेलफिया व जूत बनाने वालो ने सगठित होकर एक हडताल चलाई। उसके पश्चात् अन्य व्यवसायो मे भी श्रमिक अपन संगठन बनान लगे। १८२७ मे विभिन्न व्यवसायो के कई सघो ने मिलकर फिलेडेलफिया मे प्रथम श्रमिक-सगम बनाया। उसक पश्चात् अन्य सगम और श्रमिक-सघो का भी विकास हुआ। परन्तु हस्तक्षेप न करने की नीति क कारण सरकार की ओर से इनको कोई सहायता न मिली। १८८१ म कुछ सफल दस्तकारी सघो ने सहयोग के एक सामान्य आधार की नीव डाली। उन्होंने एक सगठन बनाया जिसका १८८६ मे 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' (A F. L) नाम पडा। इस फेडरेशन ने श्रम सघवाद की नीव को मजबूत किया और धीरे-धीरे इसका प्रभाव सरकार की नीति मे भी होने लगा। १६२० तक इसकी सदस्यता ४० लाख तक पहुँच गई। १६३३ मे एक अधिनियम (National Industrial Recovery Act) के अन्तर्गत तथा १६३५ मे एक अन्य अधिनियम (Wagner Act) के अन्तर्गत श्रमिको को सामूहिक रूप मे सौदा करने के अधिकार का आश्वासन मिल गया।

इस समय यह अनुभव किया जाने लगा कि ऐसे श्रमिको के औद्योगिक सघ बनाने भी आवश्यक है जो श्रमिक विशाल उद्योगो मे कार्य करते है और जहाँ अर्ध-निपुण या अनिपुण श्रमिको की सख्या अधिक है, परन्तु जो सघ 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लवर' के अन्तर्गत आते थे उन्होने परम्परागत रूप से श्रमिको को दस्तकारी के आधार पर सगठित किया। 'फेडरेशन' न अपनी दस्तकारी के आधार पर सघ बनाने की नीति मे कोई परिवतन नही किया। इसका परिणाम यह हुआ कि १६३५ म जॉन एल लुई (John L. Lewis) के नेतृत्व मे औद्योगिक सघो के समथकों न एक अलग से सगठन बना लिया जिसका नाम 'कमेटी फार इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेशन' रक्खा गया। १६३८ मे इसका नाम 'कांग्रेस ऑफ इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेशन' (C I. O) रख दिया गया। १६४२ मे इस कांग्रेस की सदस्यता ४० लाख थी और फेडरेशन की सदस्यता ५५ लाख हो गई थी। सन् १६४७ मे, अधिनियम

बनाकर श्रमिक सघो के बढते हुये अनाचारो (mal practices) को रोका गया। इस प्रकार अधिनियम द्वारा श्रमिक सघो की आन्तरिक प्रक्रियाओ पर प्रभाव नियन्त्रण लागू किया गया।

यह दोनों सस्थायें (A F L and C I O) अमेरिकी-श्रमिक सघ आन्दोलन पर छाई रही ह। श्रमिक सघ की प्रगति उसके बाद तीव्र गति स होती रही है। राष्ट्र के जीवन और समाज म श्रमिक सघो का काफी प्रभाव है और इन्होने सरकार की नीति और कार्यों मे भी सक्रिय रूप से रुचि ली है। फेडरेशन (A F L) आर कांग्रेस (C I O) के आपसी मतभेदो को समाप्त करने के लिये १९५० के आरम्भ से ही प्रयत्न आरम्भ हो गये थे। दोनों सस्थाओ का आधार और दृष्टिकोण समान ही था। इसलिये उनके नेता एकता के समथक बन गय ताकि अमेरिकी श्रमिको के उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायता मिले। परिणाम स्वरूप १९५५ से यह दोनों सस्थायें मिलकर अब एक नई सस्था के नाम से एक हो गई है और इसको अब अमेरिकन फडरेशन आफ लेबर — कांग्रेस ऑफ इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेशन (A F L—C I O) कहा जाता है। सन् १९६८ तक, सयुक्त राज्य अमेरिका मे श्रमिक सघो की सदस्यता की कुल सख्या १ ७३ करोड तक पहुँच चुकी थी।

रूस के श्रमिक सघ जिनको व्यावसायिक सघ कहा जाता है अन्तरिम सरकार की उदारता के कारण तीव्रता से विकसित हुये। यद्यपि सब कारखानो पर सरकार ने अपना अधिकार कर लिया था तथापि इस बात को सबने स्वीकार किया कि श्रमिक सघो का यह मौलिक काय कि वे श्रमिकों की अवस्थाओ मे उन्नति लायें यथावत् बना रहेगा। सन १९२८ मे श्रमिक सघो को समाजवादी नीति के साथ समायोजित किया गया और अब श्रम सघो का केवल श्रमिको की अवस्थायें सुधारना मात्र काय नही रह गया है। अब वह श्रम अनुशासन लागू करने और उत्पादन बढाने म सरकार की सहायक सस्था हो गये है। वे श्रमिको की योग्यता एव कुशलता मे भी वृद्धि करने और कारखाने के विवेकीकरण का प्रयत्न करने मे सहयोग प्रदान करते है। श्रमिक सघ उद्योगो के आधार पर सगठित किये जाते हैं। आधार स्तर पर कारखाना अथवा स्थानीय समिति होती है जिसका निर्वाचन उत्पादन अथवा प्रशासन इकाइयो के सभी सदस्यो द्वारा गुप्त मत से होता है। प्रत्येक प्राइमरी समिति जिला सोवियत (District Soviet) के लिये प्रतिनिधियो का निर्वाचन करती है जहाँ से प्रतिनिधि प्रान्तीय सोवियत (Provincial Soviet) को और प्रान्तीय सोवियत से सवैधानिक गणतन्त्र की श्रम सघ सोवियत (Trade Union Soviet of the Constituent Republic) के लिये भेजे जाते है। सबसे ऊपर श्रम सघो की अखिल सघ परिषद (All Union Council of Trade Unions) की सर्वोच्च सामान्य सभा (Supreme Common Assembly) होती है। यह देश म सब श्रमिको के लिये काम करती है।[1]

1 Russia from A to Z, pages 546 47

सघ ... पी श्रम मघ विकमित हुये हैं। फ्रास मे ऐसे अनेक श्रम सघ
... ने के द्वारा ममर्थित है और उन्हे उनके द्वारा धन दिया
... गोपित मघ (Yellow Unions) कहा जाता है। फ्राम मे
...स्वय अनेक मगमो के रूप मे गठित कर लिया है।

...राष्ट्रीय श्रमिक संघ (International Trade Unions)

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे काफी समय से श्रमिक सघ आन्दोलन का प्रतिनिधित्व मुख्यत दो मस्थाओ द्वारा किया गया है। एक है 'इण्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन' *जिसका प्रधान कार्यालय एमस्टरडम मे है तथा दूसरी है* "रेड इण्टरनशनल ऑफ लेबर यूनियन" जो मास्को म मगठित है। दोनो के विचारो मे काफी अन्तर है। अन्तर वैसा ही है जैसा साम्यवाद तथा विभिन्न श्रमिक और सामाजिक प्रजातान्त्रिक दलो के दृष्टिकोण मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पाया जाता है। यही कारण है कि दोनों को ममायोजित करने के अनेक प्रयत्नो मे सफलता नही मिल पाई है। वर्तमान ममय मे य अन्तर्राष्ट्रीय मस्थायें वर्ल्ड फेडरेशन' ऑफ ट्रेड यूनियन्स, जो सन् १६८६ म स्थापित हुई थी और जिसमे माम्यवादियो का प्रभाव है तथा "इण्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ फ्री ट्रेड यूनियन्स" जो सन् १६५० मे स्थापित हुई थी तथा जिसम माम्यवादी विरोधी देशों के सदस्य है और जिससे ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस भी मम्बद्ध है, के नाम से जानी जाती है। यह स्थूल रूप मे सामाजिक लोकतन्त्रीय सस्था है। श्रमिक सघ की एक तीसरी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था भी है *जिसे 'इण्टरनेशनल फैडरेशन ऑफ क्रिश्चियन ट्रेड यूनियन्स'* का नाम दिया जाता है और जो स्थूल रूप मे एक रोमन कैथोलिक मस्था है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सस्थायें समय-समय पर सब देशो मे श्रमिकों के सामान्य हित के ही हेतु सम्मेलन आयोजित करती हैं। १६४५ मे लन्दन मे वर्ल्ड ट्रेड यूनियन कांग्रेस आयोजित की गई जिसमे ससार की श्रम समस्याओ पर विचार करने के लिये ३८ राष्ट्रो के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। अन्तर्राष्ट्रीय मस्थाओ का विकास एक स्वस्थ चिन्ह है परन्तु यह अच्छा होगा कि ससार के सब देशो के श्रमिक सघो का केवल एक ही मगम हो और ससार के सब देशो के श्रमिको का ध्येय एक ही समझा जाये। यह बात स्पष्ट रूप मे समझ लेनी चाहिये कि श्रमिक संघ आन्दोलन मजदूर प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिकों का आन्दोलन है। अर्थात् यह मालिकों और श्रमिकों की पहले से ही उपस्थिति को मानकर चलता है। अत श्रमिक सघ आन्दोलन मे साम्यवादी विचारो को लाना आन्दोलन को निर्बल करना है और मालिको मे अनावश्यक ही श्रमिको के प्रति विरोध की भावना उत्पन्न करना है। यदि अर्थ-व्यवस्था को बदलना आवश्यक हो तो अन्य साधनो व उपायो को काम मे लाना चाहिये। श्रमिक सघ आन्दोलन को राजनैतिक सघर्षों का अखाडा नही बनाना चाहिये।

भारत और इंगलैंड के श्रमिक संघों की तुलना
(Trade Unions in India and England Compared)

अब हम भारत तथा इगलैंड के श्रमिक सघवाद की विभिन्नताओ का

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इगलैण्ड मे पूर्ण रोजगार है जिसके श्रम की पूर्ति की कमी है। भारत मे स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत धिक बेरोजगारी है और श्रम की पूर्ति माग मे अधिक है। भारत मे न्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है। हमारे देश मे श्रमिक वर्ग के रहन-में बहुत शोचनीय है जबकि अन्य देशो मे श्रमिको की परिस्थितियों मे हुआ है। इगलैण्ड मे सभी श्रमजीवियो के लिये व्यापक सामाजिक बीमा कि भारत मे इस दिशा मे प्रारम्भिक पग ही उठाया गया है। अन्य र हमारे श्रमिको की अपेक्षा अधिक शिक्षित और जागरूक भी हैं। अन्य त स्थायी औद्योगिक जनसख्या है भारत के श्रमिको मे प्रवासिता पाई

ा अतिरिक्त श्रम सघो के सगठन मे भी अन्तर है। इगलैण्ड मे श्रमिक सघ-री श्रेणियो से विकसित हुआ। इगलैण्ड और अमेरिका दोनो मे ही वह स्तकारी के अनुसार आयोजित है। भारत मे श्रम सघ अधिकतर उद्योगो आयोजित ह। इगलैण्ड और अमेरिका मे श्रमिक सघ राष्ट्रीय आधार पर ये गये हैं। भारत मे यह अधिकतर स्थानीय है। इसके अतिरिक्त अन्य नक सघो की अपनी विशाल निधि होती है, उनके प्राय अपने भवन होते ह उनका कार्य-दक्ष मन्त्रालय तथा सुव्यवस्थित कार्यालय होता है। कुछ मक सघो के तो अपने छापेखाने भी है और अधिकाश राष्ट्रीय सघ अपने त्र भी प्रकाशित करते है। इसके विपरीत, भारत मे अधिकाश सघो के कराये के अव्यवस्थित मकानो मे है तथा उनके पास धनराशि अल्प मात्रा । यहाँ के सघ प्राय हडताल होने की सम्भावना के समय ही अपने लिये त करते है। साधारण स्थिति मे चन्दा कम ही एकत्रित होता है। यहाँ के गो के कार्यालय अव्यवस्थित रूप मे है और कार्य-दक्ष भी अधिक नही है। तिरिक्त सघो के रचनात्मक कार्यों का अभी विकास नही हो पाया है और वह आन्दोलन के रूप मे कार्य करते रहे हैं। अन्य देशो मे, विशेषतया इगलैण्ड क सघो के रचनात्मक कार्यों का यद्यपि काफी विकास हो चुका है तथापि पना आन्दोलन रूप भी बनाये रखा है। इगलैण्ड के श्रमिक सघो ने सामा-र कल्याणकारी कार्यों की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। दक्षिणी वेल्स की श्रमिक सिनेमा घर, पुस्तकालय, सार्वजनिक कमरो और स्कूलो का भी आयो-ने है। अमेरिका मे तो एक सघ अपनी स्वय की बीमा कम्पनी भी चलाता है उ सघो ने स्वय के जगह-जगह विश्राम गृह भी खोल रखे हैं जहाँ सदस्य जाकर रते हैं। इगलैण्ड और अमेरिका मे प्रत्येक सदस्य अपना सदस्यता कार्ड अपने वता है और दूसरों को दिखलाने मे गौरव अनुभव करता है। इस प्रकार की का हमारे श्रमिकों मे अभाव है। अन्य देशो मे हम देखते है कि श्रमिक ा शुल्क को स्वय ही देना अपना कर्त्तव्य समझते है जो कि कभी-कभी मनो-

आर्डर द्वारा भी भेजा जाता है। इसके विपरीत भारत में सदस्यता शुल्क को एकत्र करने के लिए संघों के पदाधिकारियों को घर-घर फिरना पड़ता है। शुल्क भी नियमित रूप से नहीं दिया जाता और चन्दा न देने वाला अर्थात् बकायादारों की संख्या काफी होती है। भारत की अपेक्षा अन्य देशों में सदस्यता शुल्क भी अधिक है और शुल्क साप्ताहिक अथवा मासिक दिया जाता है। इंगलैण्ड में श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन काफी विकसित हुआ है तथा श्रमालय प्रतिनिधि का काफी महत्त्व है। भारत में इस प्रकार दुकान या संस्थान पर श्रमिकों का कोई प्रतिनिधि नहीं होता। अन्य देशों में श्रमिक संघों के नेता श्रमिक वर्ग में से ही होते हैं। भारत में अधिकांश श्रमिक संघों पर बाहरी व्यक्ति छाये रहते हैं। इंगलैण्ड के श्रमिक संघ राजनैतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं परन्तु भारत में इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। औद्योगिक झगड़ों का सुलझाने की दृष्टि से भी काफी अन्तर है। भारत के अधिकांश श्रमिक संघों पर राजनैतिक समस्यायें छाई हुई हैं। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस वार्तालाप और समझौता में विश्वास करती है जबकि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस सदैव हड़ताल को प्रेरित करती है। इसके विपरीत ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने प्रत्येक संघ के लिए यह अनिवार्य कर दिया है कि वह हर प्रकार के झगड़े की सूचना केन्द्रीय संस्थान को दे। जब समझौते की आशा नहीं रहती तब ही केन्द्रीय संस्था हस्तक्षेप करती है। मालिक मजदूरों में पारस्परिक बात-चीत अधिकतर सामूहिक सौदाकारी पर ही आधारित होती है। भारत में श्रमिकों में अविश्वास पाया जाता है और वह किसी भी ऐसी सामूहिक सौदाकारी में, जिसमें सरकार भी एक पक्ष के रूप में न हो, सम्मिलित होने हुए डरते हैं। अमेरिका और इंगलैण्ड में हड़ताल होने से पूर्व मत का लिया जाना आवश्यक है। भारत में अधिकतर हड़तालें आकस्मात् रूप में हो जाती हैं। हमारे देश में श्रमिक संघ के कार्यकर्त्ताओं को अभी तक सताया भी जाता है और कार्य से अलग भी कर दिया जाता है। परन्तु ऐसी बातें दूसरे देशों में नहीं पाई जाती। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में कुछ श्रमिक संघ नैतिक आधार को भी मानते हैं जबकि यह बात हमें अन्य देशों में नहीं मिलती। भारत में श्रमिक संघ अनेक राजनैतिक दलों में विभक्त है। इसके विपरीत इंगलैण्ड में श्रमिक संघ आन्दोलन केवल एक राजनैतिक संस्था अर्थात् लेबर पार्टी का ही अधिकतर समर्थन करता है।

भारत व इंगलैंड के श्रमिक संघों में अन्तर होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में गत कुछ वर्षों में श्रमिक संघ आन्दोलन स्थिर और शक्तिशाली होता जा रहा है और अब वह दिन दूर नहीं जब भारत में भी श्रमिक संघ आन्दोलन उतना ही शक्तिशाली हो जायगा जितना अन्य देशों में है और हमारे श्रमजीवी वर्ग के लिए भी ऐसी अवस्थायें प्राप्त करने में सहायता देगा जिससे उनकी उन्नति हो सके और वह एक स्वस्थ जीवन और अच्छे कार्य की दशाओं को प्राप्त कर सकें।

७

भारत में औद्योगिक विवाद

INDUSTRIAL DISPUTES IN INDIA

१९१४-१८ के महायुद्ध के पश्चात् से हमारे औद्योगिक केन्द्रो मे घोर असन्तोष निरन्तर रूप से व्याप्त हो रहा है। यह असन्तोष इतनी अधिक मात्रा म बढ गया है कि यह श्रमजीवियो के हित तथा इनकी कार्यक्षमता म रुचि रखने वाले विचारको की चिन्ता का विषय बन गया है। हड़ताले न केवल भूतकाल मे हुई है वरन् वर्तमान समय मे भी अकसर होती रहती है। अधिकतर हड़ताले तो अल्पकालिक और अनियमित रूप से होती है परन्तु कुछ हड़तालें दीर्घकाल तक चलने वाली होती ह और उनमे कटुता भी आ जाती है। श्रमिको तथा मालिको के बीच की खाई गहरी होती जा रही है और यह बात स्पष्ट है कि मालिक-मजदूरो के ऐसे सम्बन्ध तथा इस प्रकार की अशान्ति वर्तमान समय मे भारतीय उद्योगो व श्रमिको की एक मुख्य व जटिल समस्या बन गई है और सम्भवत भविष्य मे भी रहेगी। भारत का भावी औद्योगिक विकास तथा पचवर्षीय आयोजनाओ की सफलता इस समस्या क उचित समाधान पर ही निभर है। एक ऐसी अर्थव्यवस्था (economy), जिसका निर्माण योजनाबद्ध रीति से उत्पादन तथा वितरण करने के लिए किया गया हो और जिसका उद्देश्य लोगो का कल्याण तथा उनको सामाजिक न्याय प्रदान करना हो, तभी सुचारु रूप से कार्य कर सकती है जबकि देश मे औद्योगिक शान्ति का वातावरण विद्यमान हो।

विवादो के मूल कारण (Fundamental Causes of Disputes)

पूर्व अध्यायो मे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली की मुख्य विशेषता श्रम और पूंजी के बीच का संघर्ष है। आधुनिक उद्योगो म बडी मात्रा मे पूजी की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति करना निधन श्रमिको की शक्ति के बाहर है। परिणामस्वरूप दो विभिन्न वर्ग उत्पन्न हो गये है, एक वर्ग तो पूंजी की पूर्ति करता है तथा दूसरा वर्ग श्रम की पूर्ति करता है। साधारणतया इनको पूंजी-पति व श्रमिक कहा जाता है। इन पूंजीपतियो व श्रमिको के न केवल अपने-अपने वरन् कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी हित भी हो जाते है। यही वास्तव म आधुनिक औद्योगिक अशान्ति का मूल कारण है। जब तक श्रम और पूंजी एक ही व्यक्ति के हाथो मे रहते है तब तक सघर्ष की समस्या उत्पन्न नही होती। परन्तु जैसे ही श्रम और पूंजी पृथक् हो जाते है जैसा कि बड़े पैमाने के उद्योगो मे होता है तब शक्तिशाली द्वारा निर्बल का शोषण करने की प्रवृत्ति जागृत हो उठती है और

सघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार जहाँ भी औद्योगीकरण का विस्तार हुआ है वही हमें पारस्परिक असहमति, हडतालें, तालाबन्दी आदि की समस्यायें दृष्टिगोचर होती है। अत औद्योगिक सम्बन्धो की समस्या आज जिस रूप मे वर्तमान है वह मुख्यत बडे पैमाने के उद्योग की ही उपज है।

हडताल उस परिस्थिति को कहते है जबकि श्रमिक उस समय तक काम पर जाने को तैयार नही होते जब तक कि उनकी मागे स्वीकार न कर ली जायें। औद्योगिक विवाद अधिनियम ने हडताल की परिभाषा इस प्रकार दी है—'हडताल का अर्थ यह है कि ऐसे व्यक्तियों के एक समूह द्वारा कार्य बन्द कर दिया जाये जो किसी उद्योग मे काम पर लगे हुए है और जो मिल-जुल कर कार्य करते है, या ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो नौकरी पर लगे है या लगाये गय है रोजगार पाने और कार्य करते रहने से एकमत होकर इन्कार कर दिया जाये या सामान्य समझौते के अन्तर्गत इन्कार कर दिया जाय।' तालाबन्दी मालिकों के द्वारा लिया गया वह पग है जिसके द्वारा वह सस्थानो को उस समय तक बन्द रखते है, जब तक कि श्रमिक उनकी शर्तों पर कार्य करने को तैयार न हों। तालाबन्दी की परिभाषा इस प्रकार की गई है— तालाबन्दी का अर्थ यह है कि जिस जगह कार्य हो रहा है उस स्थान को बन्द कर दिया जाये या कार्य को रोककर स्थगित कर दिया जाये या मालिक द्वारा ऐसे व्यक्तियों को जो उसके द्वारा काम पर लगाये गये है, नौकरी पर लगाये रखने से इन्कार कर दिया जाये।" दोनो ही परिस्थितियो मे सम्बन्धित पक्षो का उद्देश्य यही होता है कि वह अपने लिये उचित सुविधायें प्राप्त कर सकें। इस कारण हडताल व तालाबन्दी दोनो ही अस्थायी होते है। इन झगडो के कई कारण है, उदाहरणस्वरूप—किसी कर्मचारी को पदच्युत करना, श्रमिको की छटनी तथा अन्य महत्वपूर्ण समस्यायें जैसे—मजदूरी, बोनस, अवकाश, कार्य के घण्टे, कार्य की दशायें आदि। वास्तव मे जब कभी भी श्रमिक किसी कठिनाई का अनुभव करते है या उनकी कोई शिकायत होती है तब वे उसके समाधान के लिए सगठित हो जाते है और औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप समय-समय पर अनेक हडतालें होती हैं। शीघ्र परिवर्तनीय आर्थिक क्रियाओं के समय मे विवाद अधिक गम्भीर हो जाते है और हडतालें और तालाबन्दी अधिक होने लगती है। इन आर्थिक परिवर्तनो का कारण साधारणतया मन्दी, विवेकीकरण, बेरोजगारी, रहन-सहन के व्यय मे वृद्धि आदि समस्याओं से सम्बन्धित होते है।

हडताल करने की अनेक रीतियाँ है। हडताल का सबसे प्रमुख रूप यह है कि "श्रमिकों का कोई वर्ग मालिक पर दवाव डालने के उद्देश्य से काम करना बन्द कर देता है ताकि मालिक उनकी उन मांगो को मान ले जिन्हे कि वह पहले अस्वीकार कर चुका है।" इसके बाद हडताल के अन्य रूप है: "रुके रहो" या "बैठे रहो" या "लेटे रहो" हडताल, 'कलम रखो हडताल' अथवा "औजार रखो हडताल," जिनके अन्तर्गत श्रमिक अपने कार्य करने के स्थान पर उपस्थित तो रहते है किन्तु

काम नहीं करते। कभी-कभी एक दिन के लिए अथवा अस्थायी रूप से काम बन्द कर दिया जाता है अथवा "प्रतीक हड़ताल" की जाती है जिसका उद्देश्य केवल विरोध प्रदर्शन करना होता है। कभी-कभी श्रमिक "धीमे काम करो" की तरकीब काम में लाते हैं जिसके अन्तर्गत वे काम करने से इन्कार तो नहीं करते, किन्तु सामान्य गति से काम करते भी नहीं। इस रीति में काम कभी भी बन्द नहीं होता किन्तु वह होता इतनी धीमी गति से है कि उससे उत्पादन को हानि होती है। धीमे काम करो का ही एक अन्य विचित्र रूप है "नियमानुसार काम करना" जिसके अन्तर्गत श्रमिक या कर्मचारी समय नष्ट करने वाले ऐसे नियमों का सहारा लेकर काम को धीमे करते हैं जिनकी अन्य स्थिति में आम तौर पर उपेक्षा कर दी जाती है।

औद्योगिक असन्तोष को प्रकट करने का एक रूप और भी है और वह है 'घिराव करना'। विगत कुछ वर्षों में देश के कुछ भागों में इस रीति का काफी सहारा लिया गया है। 'घिराव' के अन्तर्गत, प्रबन्धकों या मालिकों अथवा संस्थान के अधिकारियों को श्रमिकों द्वारा एक लम्बे समय के लिये उनके औद्योगिक अथवा रिहायशी भवनों के अन्दर या बाहर रहने को विवश कर दिया जाता है। कभी-कभी उन्हें बिना खाना व पानी के ही वहाँ रहने को मजबूर किया जाता है और उस समय तक वहाँ से नहीं हिलने दिया जाता जब तक कि वे उनकी माँगें न मान लें। ऐसे घिराव एक प्रकार से प्रबन्धकों की शारीरिक कैद के समान है और वे केवल औद्योगिक एकता को ही भंग नहीं करते अपितु कानून व व्यवस्था की समस्यायें भी उत्पन्न करते हैं। जैसा कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने कहा कि "घिराव को औद्योगिक विरोध प्रकट करने का साधन इसलिये नहीं माना जा सकता क्योंकि ये आर्थिक दबाव के बजाय शारीरिक दबाव डालते हैं। अन्त में जाकर ये देश के हित को ही प्रभावित करते हैं।"

भारत में औद्योगिक विवादों का इतिहास

(History of Trade Disputes in India)[1]

पिछली शताब्दी के मध्य में बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना के बाद से ही भारत में ऊपर लिखे कारण दृष्टिगोचर होने लगे। परन्तु १६१८-१६ की शरद् ऋतु से पूर्व भारतवर्ष में हड़तालें सामान्य रूप से नहीं होती थी क्योंकि श्रमिक असंगठित थे, लोकमत अधिक विचारशील न था और सरकार भी ऐसी समस्याओं में तटस्थ रहती थी। परन्तु आधुनिक उद्योगों के विकास के प्रारम्भिक समय में छोटे स्तर पर कुछ हड़तालें हुईं। १८५९-६० में यूरोपियन रेलवे ठेकेदारों तथा उनके भारतीय श्रमिकों के बीच एक महत्वपूर्ण संघर्ष हुआ। फलतः १८६० में 'मालिक एवं श्रमिक (विवाद) अधिनियम' पारित किया गया। १८७७ में नागपुर की एम्प्रेस मिल में मजदूरी दर के प्रश्न पर तथा १८८२ में बम्बई की सूती

1. श्रम विवादों के इतिहास के लिये श्रमिक संघों का इतिहास पढ़ना भी आवश्यक है। (इसी पुस्तक का अध्याय ५ देखिये)

वस्त्र मिलो मे महत्त्वपूर्ण हड़तालो का विवरण मिलता है। १८८२ से १८६० के बीच बम्बई तथा मद्रास[1] मे २५ हड़तालो का विवरण मिलता है। ऐसी सर्वप्रथम बड़ी हड़ताल जिसका औपचारिक (Official) विवरण मिलता है अहमदाबाद की एक सूती मिल मे १८६५ मे हुई जो साप्ताहिक मजदूरी की अपेक्षा पाक्षिक रूप से (Fortnightly) मजदूरी देने के प्रश्न पर थी यद्यपि यह सफल नही हुई। दूसरी बड़ी हड़ताल १८६३ मे मजदूरी भुगतान के प्रश्न को लेकर बम्बई मे हुई। परन्तु ये हड़तालें असफल रही। १६०५ मे बम्बई की मिलो मे विद्युत शक्ति आ जाने एव कार्य के घण्टे बढ़ाये जाने के फलस्वरूप हड़तालें हुई। रेलो मे, विशेषतया पूर्वी बगाल स्टेट रेलवे मे भी गम्भीर हड़तालें हुई। हड़तालो की चरम सीमा तब पहुंची जब १६०८ मे श्री तिलक को ६ वर्ष का कारावास मिलने पर बम्बई मे ६ दिन की राजनैतिक आम हड़ताल हुई। परन्तु युद्ध से पूर्व हड़तालें कम ही होती थी क्योकि श्रमिको मे सगठन एव नेतृत्व की कमी थी, जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण निराशा-पूर्ण था और औद्योगिक जीवन की कटुता से बचने के लिए उनका एकमात्र सहारा यही था कि वह अपने गाव व घरो को वापिस चले जाये। वास्तव मे उस समय तक श्रमिक भाग्यवादी और सतोषी मनुष्य थे।

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् औद्योगिक विवाद
(Trade Disputes After World War I)

१६१४–१८ के प्रथम विश्वयुद्ध ने इस स्थिति मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया। तब से, विशेषतया युद्ध के अन्त से, श्रमिको और मालिको के सम्बन्ध अधिक कटु हो गये है तथा दोनो के मध्य विवाद भी बढ गये है। विश्वयुद्ध के कारण देश मे जनजागृति उत्पन्न हो गई थी। रूस की क्राति ने समस्त ससार मे क्राति की लहर उत्पन्न कर दी थी जिसका प्रभाव भारतीय श्रमिको पर भी पडा। रहन-सहन का व्यय बढ रहा था, कीमतें लगभग दुगनी हो गई थी। परन्तु मजदूरी की दर उतनी नही बढ़ सकी, जितनी कीमतें बढ गई थी। पूजीपतियो का लाभ युद्ध के कारण बहुत बढ गया था और श्रमिक भी इसमे अपना भाग चाहते थे। देश की राजनैतिक अशान्ति से श्रमिको को भी अपने अधिकारो का भान हुआ। कांग्रेस-मुस्लिम लीग एकता प्राप्त कर ली गई थी। महात्मा गाधी राजनैतिक क्षेत्र मे आ गये थे। जलियाँ वाला बाग की घटना, सरकार के रॉलट अधिनियम व मार्शल लॉ जैसे अत्याचारी कार्य, करो के बढ़ते हुए भार आदि सभी ने अशांति उत्पन्न कर दी थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना से श्रमिको को कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।[2] इन सब का परिणाम यह हुआ कि हड़तालो की जो लहर १६१८ मे आई और १६१६ और १६२० तक सम्पूर्ण देश मे व्याप्त हो गई वह अत्यन्त गम्भीर थी। सन् १६१८ के अन्त मे बम्बई की सूती वस्त्र मिलो मे पहली बड़ी हड़ताल हुई और जनवरी १६१६

1 R. Palme Dutt : India Today, Page 375

२ "भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन का अध्याय" भी देखिये।

तक लगभग १,२८,००० श्रमिको मे जिनमे सभी श्रमिक आ जाते थे यह हडताल फैल गयी। सन् १९१९ मे रालट एक्ट के विरोध मे हडतालें हुइ। सन् १९२० के प्रथम ६ मासो मे लगभग २०० हडतालें हुई जिनमे १५ लाख श्रमिक सम्मिलित थे। जैसे-जैसे देश मे श्रमिक सघ आन्दोलन विकसित होता गया इनमे से अधिकतर हडताल सफल भी होती रही। सन १९२० की शरद् ऋतु के पश्चात् यद्यपि औद्योगिक अशाति कुछ कम हो गई थी परन्तु इस समय तक अधिकाश श्रमिक हडताल के अस्त्र से परिचित हो चुके थे। इस समय की बडी हडतालो मे १९२१ की असम के चाय बागान की हडताल उल्लेखनीय है। इस हडताल मे असम के बागान के कुलियो ने अपना काम छोडकर बागान से बाहर जाने का प्रयत्न किया परन्तु चाँदपुर रेलवे स्टेशन पर असहाय एव शातिपूर्ण कुलियो पर गोरखा सिपाहियो द्वारा आक्रमण किया गया। परिणामस्वरूप असम-बगाल रेलवे व स्टीमर्स के श्रमिको ने तत्काल ही सहानुभूति मे हडताल कर दी, जो लगभग तीन मास तक चलती रही। परन्तु सगठन के अभाव के कारण कुलियो की हडताल असफल रही। सन १९२२ मे २७८ हडतालें हुई जिनमे ४,३५ ४३४ श्रमिको ने भाग लिया। इसी समय ईस्ट इण्डियन रेलवे के कर्मचारियो ने भी हडताल की। सन १९२४ मे बम्बई नगर मे सामान्य रूप से हडताल की गई और लगभग १ ६०,००० श्रमिको ने उसमे भाग लिया। अगले वर्ष ही एक और अधिक बडी आम हडताल हुई जिसमें लगभग एक करोड दस लाख श्रम दिनो की क्षति हुई। यह कहा जा सकता है कि देश मे औद्योगिक अशाति की प्रथम लहर ही इस समय तक व्याप्त रही। इसका मुख्य कारण युद्ध के समय और उसके पश्चात् के मूल्यो मे वृद्धि और श्रमिको द्वारा उच्च मजदूरी की माँग थी।

१९२८ के पश्चात् औद्योगिक विवाद (Trade Disputes After 1928)

१९२८ मे औद्योगिक विवादो की दूसरी लहर आई। आर्थिक मदी प्रारम्भ हो चुकी थी जिसका उद्योगो पर बुरा प्रभाव पडा। उद्योगपतियो ने इस मन्दी के प्रभाव को दूर करने के लिये विवेकीकरण, सीमित उत्पादन मजदूरी मे कमी तथा श्रमिको की छँटनी की नीति को अपनाया। स्वभावत श्रमिको ने इस नीति का विरोध किया। इस समय तक श्रमिक सघ आन्दोलन दृढ हो गया था और देश मे साम्यवादी तत्व भी दृष्टिगोचर होने लगे थे। फलत देश मे औद्योगिक अशान्ति बढ गई। १९२८ मे विवेकीकरण लागू करने के विरोध मे बम्बई मे एक बडी हडताल हुई। श्रमिको पर अत्याचार किया गया। परिणामस्वरूप १९२९ मे बम्बई में पुन एक बडी हडताल हुई जो ६ महीने तक चलती रही और बम्बई के सूती वस्त्र मिलो मे कार्य करने वाले लगभग सभी कर्मचारियो ने इसमें भाग लिया। १९२९ की यह हडताल दो कारणो से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। प्रथम तो इसी हडताल मे साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव भारतीय श्रमिको पर दृष्टिगोचर हुआ। दूसरे १९२९ का व्यवसाय विवाद अधिनियम भी इसी हडताल के कारण पारित हुआ। इसके

अतिरिक्त बंगाल जूट मिलों में कार्य के घण्टे बढ़ाये जाने के कारण कई हड़तालें हुईं। जमशेदपुर में भी एक बड़ी हड़ताल हुई।

उसके पश्चात् १६३० से १६३७ का समय सापेक्षिक रूप से औद्योगिक शांति का समय रहा, यद्यपि बम्बई सूती मिलों में कुछ अल्पकालिक हड़तालें व एक अपूर्ण आम हड़ताल हुई जो सफल न हो सकी। इस समय अनेक कारणों से श्रमिकों की बड़ी-बड़ी आशाएँ हो गई थी और इसीलिए उनमें असन्तोष की भावना भी पैदा हो गई थी। इस समय मन्दी का प्रभाव कम हो गया था और साम्यवादी काफी शक्तिशाली हो गये थे और उनका श्रमिकों में प्रचार बढ़ गया था। १६३३ में मेरठ का मुकदमा समाप्त हो गया था[1] जिसमें साम्यवादी नेताओं को दीर्घकालीन का कारावास दण्ड दिया गया। प्रान्तीय स्वायत्त शासन के अन्तर्गत चुनाव से पूर्व कांग्रेस के घोषणा-पत्र से श्रमिकों में बड़ी-बड़ी आशाएँ उत्पन्न हो गई थी और उनका विचार था कि सब प्रकार का शोषण समाप्त हो जायगा और उनके कार्य व जीवन-निर्वाह की दशाओं में भी परिवर्तन होगा। जब कांग्रेस ने सत्ता ग्रहण की और श्रमिकों की अवस्था में तुरन्त कोई उन्नति होती दिखाई नहीं दी, तो अनेक हड़तालें हुईं। साम्यवादियों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और श्रमिकों में अधिक असन्तोष उत्पन्न कर दिया। अनेक प्रान्तीय सरकारों ने श्रमिकों की अवस्था सुधारने के लिये अनेक उपाय किये। उदाहरणस्वरूप, १६३७ में उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रमिकों की अवस्था की जाँच करने के लिये एक समिति नियुक्त की। समिति ने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। परन्तु मालिकों के संघों ने न केवल इन सुझावों को मानने से इन्कार कर दिया वरन् सरकार अथवा श्रम संघों द्वारा किसी प्रकार के हस्तक्षेप के लिये भी वे तैयार न हुए। कानपुर मिलों में आम हड़तालें हुईं तथा बम्बई व बंगाल में भी हड़तालें हुईं। देश में यह औद्योगिक अशांति का समय था। १६३७ और १६३८ में क्रमशः ३७६ तथा ३६६ हड़तालें हुईं जो कि उससे पूर्व के वर्षों में हुई हड़तालों में सबसे अधिक थी। इस अवधि में उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों में भी हड़तालें हुईं।

१६३६ के पश्चात् औद्योगिक विवाद (Trade Disputes After 1939)

सितम्बर १६३६ में युद्ध प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् मुद्रा स्फीति के कारण कीमतें और बढ़ गई व श्रमिक की मजदूरी और उसके रहन-सहन के व्यय के बीच बहुत अन्तर आ गया। परिणामस्वरूप, अनेक औद्योगिक विवाद हुए और उनकी संख्या १६४० में ३२२ विवादों से बढ़ते-बढ़ते १६४२ में ६६४ तक पहुच गई। उस समय से हमारे देश में औद्योगिक विवाद आम हो गये है। युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में अनेक हड़तालों का कारण महगाई भत्ता था। मार्च १६४० में हड़ताली नेताओं की गिरफ्तारी एवं श्रमिकों की पुलिस द्वारा पिटाई पर भी बम्बई के १.७५ लाख सूती वस्त्र मिल के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी, जो ४० दिन तक चालू रही। १० मार्च को सभी कर्मचारियों ने सहानुभूति में हड़ताल की, इससे सारे देश में हड़ताल

1. इसका १११ पृष्ठ देखिये।

की लहर व्याप्त हो गई। सरकार ने युद्ध का संचालन सफलतापूर्वक करने के लिये इस अशांति को रोकने के विषय मे प्रचार किया और इसके लिये उसने "भारतीय रक्षा कानून" (Defence of India Rules) बनाए, जिनके अन्तर्गत अनेक आवश्यक उद्योगो मे हड़ताले अवैध घोषित कर दी गई अथवा अन्य उद्योगो मे चौदह दिन की पूर्व सूचना दिये बिना हड़ताले या तालाबन्दी करना अवैध घोषित कर दिया गया। इन प्रतिबन्धो का परिणाम यह हुआ कि १६४२ से १६४६ तक के समय मे कोई बड़ी हड़ताल अथवा तालाबन्दी नही हुई, यद्यपि छोटे-छोटे औद्योगिक विवादो की सख्या मे वृद्धि अवश्य हुई। श्रमिक कोई भी बड़ी हड़ताल नही कर सकते थे परन्तु श्रमजीवी वर्ग को इन दिनो अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी, विशेषतया रेले, डाक-तार जैसी जन-उपयोगी सेवाओ मे, जहाँ हड़ताल पूर्णतया निषेध थी, उनको काफी मुसीबतो का सामना करना पड़ा, क्योकि श्रमिको की मजदूरी मे कोई वृद्धि नही की गई थी, केवल थोड़ा सा महगाई भत्ता अवश्य प्रदान किया गया था। श्रमिक किसी प्रकार का भी विरोध प्रकट नही कर सकते थे। परन्तु जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ और श्रमिको पर से प्रतिबन्ध हटा दिये गये, श्रमिको के हृदय मे धधकती हुई असन्तोष की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी और चहु ओर हड़ताल की चर्चा चल पड़ी। जुलाई १६४६ मे डाक व तार कर्मचारियो की देशव्यापी हड़ताल हुई और रेलवे कर्मचारियो ने भी हड़ताल की धमकी दी जोकि कुछ राजनैतिक नेताओ के हस्तक्षेप करने के फलस्वरूप रुक गई।

सन् १६४७ मे देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् अनेक महत्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तनो के फलस्वरूप हड़तालो की सख्या मे बढोतरी हुई। मुद्रा स्फीति तथा युद्ध व युद्ध उपरान्त स्थिति के परिणामस्वरूप वस्तुओं की दुर्लभता के कारण देशवासियो को अनेक कठिनाइयो का सामना करना पड रहा था। काग्रेस ने सत्ता प्राप्त कर ली थी। परन्तु हैदराबाद, काश्मीर तथा विभाजन की अन्य समस्याओ के कारण वह श्रमिको की समस्याओ की ओर उचित ध्यान नही दे पा रही थी। साम्यवादियो ने इस अवसर से लाभ उठाया। उनके सघर्षात्मक प्रचार के कारण १६४७ मे देश मे घोर अशांति फैल गई। बम्बई, मद्रास और उत्तर प्रदेश मे हड़तालो की सख्या मे विशेष वृद्धि हुई। सितम्बर १६४७ मे बम्बई की ५८ सूती वस्त्र मिलो मे हड़ताल हुई जिसमे एक लाख श्रमिको ने भाग लिया। एक अन्य महत्वपूर्ण हड़ताल मद्रास मे बकिंघम और कर्नाटक मिल मे हुई जो तीन महीने से भी अधिक चली। इन हड़तालो व तालाबन्दी के अतिरिक्त अनेक सहानुभूतिपूर्ण प्रदर्शन भी हुए जिनको औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आँकडो मे सम्मिलित नही किया गया। १६४७ मे सरकार ने औद्योगिक विराम सन्धि का प्रस्ताव पारित किया परन्तु इसका प्रभाव अधिक उत्साहजनक नही हुआ। १६४८ मे कानपुर, नागपुर, कानपुर, बगाल, बम्बई की सूती वस्त्र मिलो, बगाल की बड़ी बड़ी जूट मिलो, बम्बई बन्दरगाह, आसनसोल व एल्युमीनियम उद्योग, बम्बई जी० आई० पी० के इन्जीनियरिंग विभाग, बी० एन०

रेलवे कार्यशाला, अनेक जूट मिलों, बम्बई के बीड़ी उद्योग, कलकत्ता की ट्राम्ब आदि में बड़ी संख्या में हड़तालें हुई।

सन् १९४८ के पश्चात भी, केन्द्र तथा राज्य दोनों के ही क्षेत्रों में विभिन्न औद्योगिक संस्थानों में प्रतिवर्ष अनेक हड़ताल तथा तालाबन्दियाँ हुई हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण इस प्रकार है : अगस्त १९५० में बम्बई में बोनस के प्रश्न पर सूती वस्त्र की मिलों के श्रमिकों की हड़ताल जो ६३ दिन में समाप्त हुई तथा जिसमें २ लाख श्रमिकों ने भाग लिया और इसमें ९५ लाख श्रम दिनों की हानि हुई, युक्तिकरण को लागू किए जाने के प्रश्न पर कानपुर में सूती मिल श्रमिकों की हड़ताल, जो ४८ दिन में (२ मई से आरम्भ होकर २० जून १९५५ तक) समाप्त हुई और जिसमें ११ लाख श्रम दिनों (man-days) की हानि हुई, जुलाई १९६० में केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की हड़ताल, जिससे रेल तथा डाक-तार सेवाएँ भी प्रभावित हुई, जो ५ दिन तक चली और जिससे जनता को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, अप्रैल से दिसम्बर १९६७ तक कोयला खानों में २५७ हड़तालें, व ५ तालाबन्दी जिनमें ९.२७ लाख श्रम दिनों की क्षति हुई २३ जुलाई से १७ सितम्बर १९६८ तक समाचार पत्रों के कर्मचारियों की हड़ताल, तथा सितम्बर १९७० में बैंक कर्मचारियों का देशव्यापी आन्दोलन आदि। सन् १९७१ में भारत-पाक युद्ध के कारण हड़तालों व तालाबन्दियों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही। अभी सन् १९७३ में ही बड़ी हड़तालें हुई हैं, जैसे कलकत्ता गोदी कर्मचारियों की हड़ताल, हिन्दुस्तान मोटर्स लि० कलकत्ता व जय इंजीनियरिंग वर्क्स कलकत्ता में हड़ताल, रेल-इंजिन कर्मचारियों की हड़ताल, कुछ राज्यों में बिजली इंजीनियरों की हड़ताल और सन् १९७४ में दिल्ली में जूनियर डाक्टरों की हड़ताल आदि।

सन् १९७५ में, अनेक तालाबन्दियाँ भी हुई जैसे भारतीय जीवन बीमा निगम में, भारतीय हवाई परिवहन निगम में, उड़ीसा सीमेन्ट लिमिटेड व कोयला खान प्राधिकरण लिमिटेड में। रेल कर्मचारियों की ८ मई से २८ मई तक चलने वाली राष्ट्रव्यापी हड़ताल भी इसी वर्ष हुई। सन् १९७५ में भी अनेक हड़तालें हुई, जैसे विशाखापट्टनम में गोदी व बन्दरगाह कर्मचारियों की, कोलार स्वर्ण मण्डल में लगे कर्मचारियों की, भारतीय स्टेट बैंक के अधिकारियों की, भारतीय खाद्य निगम के कर्मचारियों की और तमिलनाडु में सीमेन्ट श्रमिकों की, आदि। सन् १९७६ में आपातकाल के दौरान, कोई बड़ा विवाद नहीं हुआ। इस वर्ष औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ में संशोधन किया गया। इस संशोधन के अनुसार, ३०० या इससे अधिक श्रमिकों वाली फैक्ट्रियों, खानों तथा बागानों के मालिकों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि वे श्रमिकों को जबरी छुट्टी देने अथवा उनकी छँटनी करने या किसी उद्यम को बन्द करने से पूर्व विशेष प्राधिकारी की पूर्वानुमति प्राप्त करें। सन् १९७७ में, आपातकाल के बाद की अवधि में देश के अनेक भागों में औद्योगिक अशान्ति की खबर आती रही। सन् १९७८ में, पश्चिमी बंगाल महाराष्ट्र,

तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा (फरीदाबाद) आदि मे औद्योगिक अशाति रही। सन् १९७९ मे, जो महत्वपूर्ण हडतालें हुई, वे ये थी : पश्चिमी बगाल की ५९ जूट मिलो मे, तमिलनाडु की सूती वस्त्र मिलो मे तथा केरल के नारियल जटा बुनाई के सस्थानो मे, आदि। सन् १९८० के वर्ष मे भी, देश के अनेक भागो मे उत्पन्न औद्योगिक अशान्ति सरकार के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय बनी रही।

इस प्रकार, देश मे औद्योगिक विवाद, जिनके कारण हडतालें तथा तालाबन्दियाँ होती हैं, बहुत अधिक सख्या मे होने लगे हैं और अब तो स्थिति यह हो गई है कि कोई दिन ऐसा नही गुजरता जब कि भारत मे कही न कही छोटी या बडी हडताल न होती हो अथवा उसकी धमकी न दी जाती हो। औद्योगिक सस्थानो के कर्मचारियो की न हडतालो के अतिरिक्त, राजनैतिक हडतालो, बन्दो तथा अन्य गैर-औद्योगिक कार्यवाइयो के कारण जो काम ठप्प होता है उसकी तो कोई गिनती ही नही, और न उनके आँकडे आगे दिये हुए हडतालो व तालाबन्दियो के आकडो मे सम्मिलित ही किये गये है।

औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आंकड़े

(Figures about Trade Disputes)[1]

निम्न तालिका मे १९२१ के बाद होने वाली हडतालो, तालाबन्दियाँ, हडतालो मे सम्मिलित श्रमिको तथा श्रम दिनो की हानि की सख्या सम्बन्धी आँकडे वर्ष-वार प्रस्तुत है—

वर्ष	हडतालें और तालाबन्दी की सख्या	विवादो मे सम्मिलित श्रमिको की सख्या	वर्ष मे हानि हुए श्रम दिनो की सख्या
१९२१	३९६	६,००,३५१	६९,८४,४२६
१९२३	२१३	३,०१,०४४	५०,५१,७०४
१९२७	१२९	१,३१,६५५	२०,१९,९७०
१९२९	१४१	५,३१,०५९	१,२१,६५,६९१
१९३७	३७९	६,४७,८०१	८९,८२,०००
१९३९	४०६	४,०९,१८९	४९,९२,७९५
१९४२	६९४	७,७२,६५३	५७,७९,९६५
१९४६	१,६२९	१९,६१,९४८	१,२७,१७,७६२
१९४७	१,८११	१८,४०,७८४	१,६५,६२,६६६
१९४८	१,२५९	१०,५९,१२०	७८,३७,१७३
१९५१	१,०७१	६,९१,३२१	३८,१८,९२८

1 From Indian Labour Year Books Palme Dutt's India Today, page 332 Indian Labour Gazettes and Journals and Indian Labour Statistics 1977

वर्ष	हड़तालें और तालाबन्दी की सख्या	विवादों में सम्मिलित श्रमिकों की सख्या	वर्ष में हानि हुए श्रम-दिनों की सख्या
१९५५	१,१६३	५,२७,७६७	५६,९७,८३
१९५६	१,२०३	७,१५,१३०	६९,९२,०४
१९५७	१,६३०	८,८९,३७१	६४,२९,३१
१९५८	१,५२४	९,२८,५६६	७७,९८,५८
१९५९	१,५३१	६,९३,६१६	५६,३३,१४
१९६०	१,५३८	९,८६,२६८	६५,३६,५१
१९६१	१,३५७ (११७)	५,११,८६०	४९,१८,७५
१९६२	१,४९१ (९५)	७,०५,०५९	६१,२०,५७
१९६३	१,४७१ (१०७)	५,६३,१२१	३२,६८,५२
१९६४	२,१५१ (१७०)	१०,०२,९५५	७७,२४,६९
१९६५	१,८३५ (१३८)	९,९१,१५८	६४,६९,९९
१९६६	२,५५६ (२०३)	१४,१०,०५६	१,३८,४६,३२
१९६७	२,८१५ (३८२)	१४,९०,३४६	१,७१,४७,९५
१९६८	२,७७६ (३२५)	१६,६९,२९५	१,७२,४३,६७
१९६९	२,६२७ (२८३)	१८,२६,८६६	१,९०,४८,२८
१९७०	२,८८९ (२९१)	१८,२७,७५२	२,०५,६३,३८
१९७१	२,७५२ (२७४)	१६,१५,१४०	१,६५,४६,६३
१९७२	३,२४३ (३८६)	१७,३६,७३७	२,०५,४४,००
१९७३	३,३७० (४१२)	२५,४५,६०२	२,०६,२६,००
१९७४	२,९३८ (४२८)	२८,५४,६२३	४,०२,६२,००
१९७५	१,९४३ (२९९)	११,४३,४२६	२,१९,०१,००
१९७६	१,४५९ (२१८)	७,३६,९७४	१,२७,४६,००
१९७७	३,११७	२१,९३,०००	२,५३,२०,००
१९७८	२,७२८	१४,७१,२०७	२,१५,१०,१४
१९७९	२,८२९	२७,४१,२१६	३,७१,००,७५

(कोष्ठकों में दी हुई सख्या कुल सख्या में तालाबन्दी की सख्या की सूचक है।)

हड़तालों, तालाबन्दियों तथा घिरावों में सम्मिलित होने वाले श्रमिकों तथा हानि हुए श्रम दिनों की सख्या पृथक्-पृथक् निम्न प्रकार है—

	१९६१	१९६६	१९७५	१९७६	१९७७
(क) हड़ताल					
(i) सख्या	१,२४०	२,३५२	१,६४४	१,२४१	२,६९१
(ii) सम्मिलित श्रमिक (हजार में)	४३२	१,२६२	१,०३३	५५०	१,९१२

(iii) हानि हुए श्रम-दिन (हजार मे)	२,९६९	१०,३७७	१६,७०६	२,७९९	१,३४०
(ख) तालाबन्दी :					
(i) सख्या	११७	२०३	२९९	११८	४२६
(ii) सम्मिलित श्रमिक (हजार मे)	८०	१४८	१११	१८३	२८१
(iii) हानि हुए श्रम-दिन (हजार मे)	१,९५०	३,४६९	५,१९५	९,९४७	११,९१०
(ग) घिराव ·					
(i) सख्या	८२ (१९६७)	८४ (१९६९)	३४	९	११०
(ii) सम्मिलित श्रमिक (हजार मे)		१५ (१९६९)	८	४	२७
(iii) हानि हुए श्रम-दिन (हजारो मे)		५ (१९६९)	६	—	१६

सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र के औद्योगिक विवाद

	१९६१	१९६६	१९७५	१९७६	१९७७
(क) सरकारी क्षेत्र					
(i) विवादो की सख्या	—	३४५	३६२	१५३	६६३
(ii) सम्मिलित श्रमिक (हजार मे)	—	२४०	३२१	१४८	९५०
(iii) हानि हुए श्रम-दिन (हजार मे)	२१२	१,२७७	२,१४५	८७२	४,४७१
(क) गैर सरकारी क्षेत्रः					
(i) विवादो की सख्या	—	२,२११	१,५८१	१,३०६	२,४५४
(ii) सम्मिलित श्रमिक (हजार मे)	—	१,१७०	८२२	५९८	१,२४४
(iii) हानि हुए श्रम-दिन (हजार मे)	४,७०७	१२,९६६	१९,७५१	११,८७४	२०,८४९

केन्द्र तथा राज्यों के क्षेत्र के औद्योगिक विवाद

	१९६१	१९६६	१९७५	१९७६	१९७७
(क) (केन्द्रीय क्षेत्र)					
(i) विवादों की संख्या	१६०	३१५	३००	१५२	४८५
(ii) सम्मलित श्रमिक (हजार में)	८२	२०४	३००	६०	६५६
(iii) हानि हुए श्रम दिन (हजार में)	३६४	६२८	१,५५३	३६८	२,६२५
(ख) राज्यों का क्षेत्र					
(i) विवादों की संख्या	१,१६७	२,२४१	१,६४३	१,३०७	२,६३२
(ii) सम्मिलित श्रमिक (हजार में)	४३०	१,२०७	८४३	६४७	१,५३८
(iii) हानि हुए श्रम दिन (हजार में)	४,५५५	११,८१८	२०,३४८	१२,३८१	२२,६६५

कारणों के आधार पर विवादों का प्रतिशत

	१९६१	१९६६	१९७५	१९७६	१९७७
१. मजदूरियाँ तथा भत्ते	३०४	३५८	३२·०	२३४	३१२
२. बोनस	६६	१३२	८०	१३८	१५२
३ कार्मिक वर्ग एवं उनकी छटनी	२६३	२५३	२६८	२६६	२३०
४. छुट्टियाँ तथा काम के घण्टे	३०	२४	२३	२६	२२
५ अनुशासनहीनता तथा हिंसा	—	—	८६	६६	८८
६. अन्य	३०४	२३३	१६०	२०१	१६६

परिणामो के आधार पर विवादों का प्रतिशत

	१६६१	१६६६	१६७५	१६६६	१६७७
१ सफल	२८ ८	३१ ६	२३ ७	२० ५	२६ ७
२ आंशिक रूप से सफल	१६ ५	१६ ५	२६ १	२७ १	२७ ६
३ असफल	२६ ५	३१ ४	४० ८	४४ १	३३ ०
४ अनिश्चित परिणाम	२२ २	२० ५	६ ४	८·३	६ ७

अवधि के आधार पर विवादो का प्रतिशत

	१६६१	१६६६	१६७५	१६७६	१६७७
१ एक दिन अथवा उससे कम	३१ २	३० ८	२२ ६	२६ ६]	२४·६
२ एक से अधिक और ५ दिन तक	३२ २	२७ ३	२३ ०	३० २	२५ १
३ पाँच से अधिक और १० दिन तक	१२ ५	१४ ८	१३ ८	१३ ६	१४ ५
४ दस से अधिक और २० दिन तक	१० २	१२ ८	११ ०	८ ५	१२ ४
५ बीस से अधिक और ३० दिन तक	६ ०	५ १	६ २	५ ८	७ ५
६ तीस दिन से अधिक	७ ६	६ २	२३ ४	१२ ०	१५ ६

विभिन्न उपायों द्वारा सुलझाये गये विवादो की सख्या

विवाद निपटाये गये	१६६१	१६६६	१६७५	१६७६	१६७७
१ सरकारी हस्तक्षेप द्वारा	४८७	१,००५	६१४	५६५	१,१०५
२ पारस्परिक समयोते द्वारा	३३४	६८०	५०१	२६१	६८१
३ ऐच्छिक वापिसी द्वारा (अर्थात बिना शर्त काम पर वापिस लौटना या तालाबन्दी समाप्त करना)	३४५	६६२	५६४	४४७	७०६
याग	१,१६६	२,३४७	१,७०६	१,२७३	२४६२

विभिन्न राज्यों मे औद्योगिक विवाद
(Industrial Disputes by States)

राज्य	१९७५			१९७६		
	विवादो की संख्या	सम्मिलित श्रमिको की संख्या	हानि हुए श्रम दिनों की संख्या	विवादो की संख्या	सम्मिलित श्रमिको की संख्या	हानि हुए श्रम दिनों की संख्या
राज्य						
१. आन्ध्र प्रदेश	७८	४६,१७४	४,१८,६२४	३६	२३,२९२	१,१२,०५१
२. असम	४	३,३६६	१,०२,९३३	७	४,०९८	६,४४३
३. बिहार	१९७	८७,७६७	७,७३,५०१	१०७	२५,४८८	१,२०,५४७
४. गुजरात	७९	१६,१३२	१,९१,०६२	५७	६,५५३	४३ ७६०
५. हरियाणा	१८	१,९२६	२२,६२५	६	१,८२८	२५ ७८४
६. हिमाचल प्रदेश	—	—	—	—	—	—
७. जम्मू व कश्मीर	१	३०	५७०	—	—	—
८. कर्नाटक	२७	२५,८६०	६,८३,६४१	४८	४४,८९७	२,७४ ९८८
९. केरल	९१	२३,३८७	५,००,९०७	३७	३,९२८	६८ ७८५
१०. मध्य प्रदेश	८३	३१,६७३	१,०१,५२२	६१	१४,७२२	७२,९८५
११. महाराष्ट्र	५१९	१,५०,६१६	१३,९८,७२७	३५१	१,६६,२०३	५,६४,१८५
१२. मणिपुर	—	—	—	—	—	—

१३ मेघालय	—	—	—	—	—	—
१४ नागालैण्ड	—	—	—	—	—	—
१५ उड़ीसा	२६	१० ८५५	२ ८१ ६६६	५१	११ १११	३० ७३
१६ पंजाब	२२	१०,५७८	८०,३३८	३८	७,७१४	२७ ८६८
१७ राजस्थान	४३	१७ ४३१	१ १६ ५८१	२५	५,६८८	१८ ८५८
१८ सिक्किम	—	—	—	—	—	—
१९ तमिलनाडु	२५१	२ ००,२६८	१८,५०,५४७	२१६	१,२६ ४३८	१०,७५ ८२८
२० त्रिपुरा	१	२०	६६७	—	—	—
२१ उत्तर प्रदेश	१३०	५३,०२४	१५,२८ ३३४	५७	२३ १००	१२ ०४ ९६७
२२ पश्चिमी बंगाल	३१२	४ २० ९०३	१ ३६ ८४,३५३	३२०	२ ५५ ७८१	८० ६० २२१
संघ शासित क्षेत्र—						
२३ अण्डमान निको द्वीप स	७	२ २१८	२ २१८	१	८६४	८२-
२४ अरुणाचल प्रदेश	—	—	—	—	—	—
२५ चण्डीगढ	४	५५८	६ ६३४	१	२१	४३
२६ दादरा व नगर हवेली		—	—	८	७२८	८ ९१०
२७ दिल्ली	२५	५ ८३७	३- २८	११	७ ६५३	४२ ८७६
२८ गोआ दामन, दीव	१७	१५ ०८६	८५ २४३	१८	१ ८२०	३ ५५२
२९ लक्ष द्वीप	—	—	—	—	—	—
३० मिजोरम	—	—	—	—	—	—
३१ पाण्डचरी	८	१८ ०१०	२१ ८२६	७	४ ३७६	३७ ८७
योग	१ ९४३	११ ४१ ४२८	४ १९ ०० ९३१	१ ४५९	७ ३६ ९७४	१ २७ ९५ ७३५

विभिन्न उद्योगो मे औद्योगिक विवाद
(Industrial Disputes Industries)

राज्य	१९७५			१९७६		
	विवादो की सख्या	सम्मिलित श्रमिको की सख्या	हानि हुए श्रम दिनो की सख्या	विवादो की सख्या	सम्मिलित श्रमिको की सख्या	हानि हुए श्रम दिनों की सख्या
१ कृषि, आखेट, वन व मछली पकड़ना	६२	१६,०८४	७१ ५५९	७५	२८ ०२५	५०,१२०
२ खानें तथा उत्खनन	२७८	१ ३४,१०८	८,२३,८८०	१४४	८३ ३८०	३ ७० ८३६
३ विनिर्माण उद्योग	१३६३	७,७०,६२५	१,९२ ८३,१०७	११९२	५ ९४ ७२८	१ १३ २२,०३८
४ बिजली, गैस व पानी	७	१,४०८	२६ ८४६	१	५५	५,१७०
५ निर्माण कार्य	३१	१६,१८७	२ ०७ ४१४	८	१ ९२०	१५,६९७
६ थोक व फुटकर व्यापार जलपान गृह व आहार गृह	३७	६,१८५	२ ०१ ४७७	२५	१,३९६	३२ ८८९
७ परिवहन, भण्डारण व सचार	५२	१,३० ५१४	६,६९,६३०	१९	७,२९९	६५ ७९३
८ वित्त प्रबन्ध, बीमा, स्थावर सम्पदा तथा व्यावसायिक सेवायें	१६	१०,३३७	२०,४५१	—	—	—
९ सामुदायिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत सेवायें	८९	१६,३७४	३,९६,४९१	२७	९ १९५	१,८० १९६
१० वे क्रियायें जिनका विवरण पूर्णतया स्पष्ट नहीं है	२८	३,५४४	२,१२,२७६	१८	१० ८३८	१,६१,०४०
योग	१,९४३	११,४३,४२६	२,५९,०० ९३१	१,४५९	७ ३६,९७४	१,२७,४५ ७३५

सन् १६७६ म, उद्योगानुसार विवादो की सख्या इस प्रकार थी
सन् १६७६ म, उद्योगानुसार विवादो की सख्या इस प्रकार थी
कृषि, आखेट, वन तथा मछली पकडने का व्यवसाय—२५ विवाद (जिनमे ८
कृषि उत्पादन मे, १३ चाय बागान म, २ रबड बागान म, १ पशुपालन म और १
सिचाई व्यवस्था जैसी कृषि सेवा म थे) खान तथा उत्खनन व्यवसाय—१४८ विवाद
(जिसमे ८६ कोयला खाना म, १ खनिज पेट्रोल मे, २८ धातु की खानो म जिनम
१७ कच्चे लोह म, १ मैंगनीज म, १ क्रोमेटिक म १ बाक्साइट म, ३ सोने व चाँदी
मे तथा २ ताँबे मे २६ अन्य खाना म जिनम १३ पत्थर, मिट्टी व रेत निकालन म,
१ रसायन व उर्वरक मे, ७ अभ्रक मे तथा ५ अन्य मे थ) विनिर्माण उद्योग-११६२
विवाद (जिनम ५५ खाद्य पदार्थों म ३२ शराब, तम्बाकू व तम्बाकू उत्पाद म,
२४६ सूती वस्त्र मिलो म, ५७ ऊनी वस्त्र, रेशमी वस्त्र तथा कृत्रिम धागा की मिलो
मे, ४५ जूट, सन तथा मस्टा मिला म, ७७ पोशाक नारियल जटा उत्पाद तथा चटाई
वैसे उत्पादन मे, १६ काष्ठ, काष्ठ पदार्थ तथा फर्नीचर म ५६ कागज, कागज उत्पाद
छपाई तथा प्रकाशन उद्योग म, १२ चमडा तथा चमडे की वस्तुओ मे ४५ रबड
प्लास्टिक, पट्रोलियम तथा कोयला पदार्थों मे, ६६ रसायन उद्योग मे, ५३ अधातु
खनिज उत्पाद म, १५२ मूल धातु तथा मिश्र धातु उत्पाद म, १०६ धातु उत्पाद म,
८० मशीनी औजार तथा पुर्जों मे ६४ विद्युत मशीनरी तथा उपकरणो म, ३६ परि-
वहन सज्जा तथा पुर्जों मे, और २२ अन्य विनिर्माण उद्योगो मे, जैसे घडी, खेल का
सामान, स्टेशनरी तथा वैज्ञानिक चिकित्सा सामग्री आदि मे थे), बिजली, गैस तथा
पानी—१ विवाद, निर्माण कार्य—८ विवाद, थोक व फुटकर व्यापार, होटल तथा
जलपान गृह—२५ विवाद परिवहन, भण्डारण तथा सचार—१६ विवाद हुए
जिनका विवरण इस प्रकार है ११ थल परिवहन म (जिसमे २ रेलवे म, ४ जल
परिवहन म, १ वायु परिवहन म १ यात्रा अभिकरण जैसी सेवाओ मे और एक गोदाम
तथा भण्डारण मे), सामुदायिक सामाजिक तथा व्यक्तिगत सेवाओ मे २७ विवाद
और उन क्रियाओ मे, जिनका विवरण पूर्णतया स्पष्ट नही है १८ विवाद हुए।

औद्योगिक विवादो के कारण मजदूरी और उत्पादन की जो हानि हुई, उसका
विवरण पृष्ठ १७२ पर देखिये (कोष्ठकों मे दिए हुए आँकडे उन मामलो अथवा
विवादों की सख्या के सूचक हैं जिनसे कि यह सूचना सम्बद्ध है)—

औद्योगिक विवादों के कारण मजदूरी व उत्पादन की हानि

(करोड़ रु० म)

	१९७५	१९७६	१९७७
केन्द्रीय क्षेत्र			
हानि हुई मजदूरी	१ ७१	० ४१	३०१
	(७९८)	(१४५)	(८६४)
उत्पादन की हानि का मूल्य	५ ७५	१ ६१	१३ १९
	(२६६)	(१३९)	(३९८)
राज्यों के क्षेत्र			
हानि हुई मजदूरी	३२ ७५	११ ९२	१८ ७५
	(१ २२६)	(१,००७)	(१ ८७३)
उत्पादन की हानि का मूल्य	१७२ ६१	९० ७०	२७१ २९
	(१,०८०)	(९८५)	(१ ८२९)
सरकारी क्षेत्र			
हानि हुई मजदूरी	२ १२	० ७०	४५६
	(३८१)	(१४६)	(५४५)
उत्पादन की हानि का मूल्य	८ ३०	४ ००	३५ ४२
	(२७१)	(१३०)	(४७४)
गैर सरकारी क्षेत्र			
हानि हुई मजदूरी	३१ ६९	११ ६३	१७ २४
	(१ १९९)	(१,००६)	(१,८८२)
उत्पादन की हानि का मूल्य	१६९ ५६	८८ ३१	२४९ ०६
	(१,०७५)	(१,००४)	(१,७५३)

उन विवादों की संख्या, जो केन्द्र तथा राज्यों में औद्योगिक सम्बन्ध संस्थाओं को सौंपे गये, काफी अधिक और इस प्रकार थी सन् १९६१ में ३४,११३, सन् १९६६ में ७० ८७६, सन् १९७१ में ४५,७५१, सन् १९७६ में ५४,६६५, सन् में १९७७ में ३८ ९१८, सन् १९७८ में ४२,९७८, सन् १९७९ में ६७ ४५६।

सन् १९७७ में, कुल ३११७ विवाद में से विभिन्न केन्द्रीय श्रम संगठनों से सम्बद्ध विवादों की संख्या इस प्रकार थी भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड कांग्रेस (INTUC) —३८१ (१२ २%), अ० भा० ट्रेड यू० कांग्रेस (AITUC)—२५६ (८ २%), हिन्द मजदूर सभा (HMS)—६२ (२ ०%), संयुक्त ट्रेड यू० कांग्रेस (UTUC) १८ (० ६%), बहुविधि संघ (Multiple Unions)—१४६ (४ ७%), असम्बद्ध तथा अन्य २२५४ (७२ ३%)।

यह उल्लेखनीय है कि सन् १९७८ में हानि हुए श्रम-दिनों की संख्या

२ ८३४ करोड थी जबकि सन १६७८ म इससे सम्बन्धित अस्थायी गणना ३ ७१०
करोड थी। सन् १६७६ म हडतालों के कारण ३ ०४७ करोड श्रम दिनों की हानि
हुई जोकि उस वष की कुल समय हानि की लगभग ८२ प्रतिशत थी (जबकि सन्
१६७८ म यह हानि १ ५४२ करोड श्रम दिनों की थी जो कि उस वष की कुल समय
हानि की ५४ प्रतिशत थी)। दूसरी ओर तालाबन्दियों के कारण सन १६७६ म
६५ ३ लाख श्रम दिनों की हानि हुई जो कि उस वष की कुल समय हानि की लगभग
१८ प्रतिशत थी (जबकि १६७८ मे यह हानि १ २६२ करोड श्रम दिनों की थी जो
कि उस वर्ष की कुल हानि की लगभग ४६ प्रतिशत थी)। श्रम दिनों की इस हानि
का विस्तृत विवरण इस प्रकार था सन १६७६ मे, केन्द्रीय क्षेत्र मे २६ ७ लाख श्रम
दिनो की हानि (८%) और राज्यो के क्षेत्र मे ३ ४१३ करोड श्रम दिनो की हानि
(६२%)। सन १६७८ मे केन्द्रीय क्षेत्र मे २६ ८ लाख श्रम दिनो की हानि (११%)
और राज्यो के क्षेत्र मे २ ५३६ करोड श्रम दिनो की हानि (८६%)। सरकारी क्षेत्र
मे, हडतालो व तालाबन्दियो के कारण सन् १६७६ मे ६६ ६ लाख श्रम दिनो की
हानि (१८%) हुई जबकि १६७८ म यह हानि ४३ ५ लाख श्रम दिनो के बराबर
(१५%) थी। गैर सरकारी क्षेत्र मे, सन् १६७६ व १६७८ मे श्रम दिनो की हानि की
सख्या क्रमश ३ ०४४ करोड और २ ३६६ करोड थी।

राज्यो मे सन् १६७६ म पश्चिमी बगाल मे सर्वाधिक श्रम दिनो की हानि हुई
जो कि १ ६५३ करोड थी। अन्य राज्यो की हानि क्रमश इस प्रकार थी
तमिलनाडु (८३ ८ लाख श्रम दिन) केरल (३५ १ लाख श्रम दिन) महाराष्ट्र
(२३ ७ लाख श्रम दिन) उत्तर प्रदेश (१२ ८ लाख श्रम दिन) और बिहार (११ ८
लाख श्रम दिन)। सन् १६७८ म इन ६ राज्यो मे मिलाकर कुल श्रम दिनो की हानि
की ८६ प्रतिशत हानि हुई।

औद्योगिक विवादो का वर्गीकरण

(Classification of Industrial Differences)[1]

प्रोफेसर पीगू के विचार—प्रोफेसर पीगू ने औद्योगिक मतभेदों का दो
श्रेणियो म वर्गीकरण किया है—(१) ऐसे मतभेद जो मजदूरी मे भिन्नता (Fraction
of Wages) के कारण होते हैं और (२) ऐसे मतभेद जो कार्यों के सीमाकन
(Demarcation of Functions) के कारण होते है। मजदूरी म भिन्नता के कारण
जो मतभेद होते है उनको निम्नलिखित भागो म बाटा जा सकता है—(क) ऐसे
मतभेद जो श्रम के मेहनताने म सम्बन्धित होते है। ये मतभेद साधारणतया नकद
मजदूरी दर की समस्याओ के कारण उत्पन्न होते है परन्तु कुछ अन्य बातो से भी
सम्बन्धित होते है जसे—रोजगार की दशायें जुर्माना या कटौती या जिन्स के रूप
म प्राप्त भत्ते की मात्रा आदि (ख) ऐसे मतभेद जिनका सम्बन्ध कर्मचारियो के साथ
के व्यवहार से होता है। यह साधारणतया कार्य के घण्टो के प्रश्न से सम्बन्धित
होते है।

1 Pigou Economics of Welfare

को आन्तरिक कारण भी कहा जा सकता है। अर्थात् ऐसे कारण जो उद्योग म निक
और मजदूरों से सम्बन्धित होते हैं। श्रमिकों पर अत्याचार तथा प्रबन्धकों द्वारा
श्रमिक संघों को मान्यता देने म अस्वीकार कर देना भी इन विवादों के कारण रहे
है। विवेकीकरण की योजनाओं के लागू होने के पश्चात् श्रमिकों की छँटनी अथवा
उनकी धमकी होने पर अनेक हड़तालें हुई हैं। शिल्पकला के विकास म उद्योगों म
रोजगार का प्रचलित ढाँचा ही अस्त-व्यस्त नहीं होता अपितु उसम काम पर लगाये
जाने वाले श्रमिकों की मात्रा का भी निर्धारण होता है। इन सब बातों का श्रमिकों
व प्रबन्धकों पर सीधा प्रभाव पड़ता है और एक विकासशील देश तो विशेष रूप म
ऐसा होता है जहाँ कि काफी मात्रा में फालतू श्रमिक उपलब्ध रहते है।

भारत में औद्योगिक विवादों के इतिहास म स्पष्ट है कि देश मे अनेक
हड़तालों के कारण आर्थिक ही रहे है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् औद्योगिक अशान्ति
का मुख्य कारण निर्वाह खर्च व वस्तुओं के मूल्य म वृद्धि का होना था जबकि मजदूरी
मे मूल्यों के अनुपात मे वृद्धि नहीं हुई थी। श्रमिक भी दीर्घ घण्टों तक कार्य करने
तथा अपने अस्वस्थ और दोषपूर्ण रहन-सहन और कार्य की दशाओं म उत्पन्न
बुराइयों के प्रति सजग हो उठे थे। सन १९२२ के पश्चात् श्रमिकों की अवस्था मे
कुछ उन्नति के प्रयत्न हुए, परन्तु सन् १९२८ के पश्चात् अवस्था पुन शोचनीय हो
गई क्योंकि आर्थिक मन्दी के कारण कर्मचारियों की छँटनी और उनकी मजदूरी म
कमी की गई थी। परिणामस्वरूप हड़तालों का ताँता सा बँध गया था। इसी प्रकार की
परिस्थिति द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् और अभी हाल के वर्षों म भी पाई गई है।
निर्वाह-खर्च मे वृद्धि होने के कारण श्रमिक मजदूरी, महँगाई भत्ता व बोनस आदि मे
वृद्धि की माँग करते रहे हैं और स्वामियों द्वारा इनको न माने जाने के कारण अनेक
हड़तालें हुई हैं। अनेक विवाद, जिनके कारण हड़तालें हुई जैसा कि सन् १९५५ का
कानपुर का विवाद था जो कि ८० दिन म समाप्त हुआ इसी कारण उत्पन्न हुये थे
क्योंकि तकनीकी एव शिल्पकला सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण श्रम-शक्ति का
विवेकीकरण अथवा पुनर्गठन किया गया था। अतः श्रमिकों की अपनी आर्थिक स्थिति
तथा मजदूरी के प्रति असन्तोष ही अधिकतर हड़तालों का कारण रहा है।

सन् १९२९ म, रायल श्रम आयोग[1] के अनुसार सन् १९२१ और १९२८ के
बीच के काल म ८७६ विवादों का मुख्य कारण मजदूरी या बोनस की माँग थी और
४२५ विवादों का कारण कर्मचारियों से सम्बन्धित था जिसम निकाले गये श्रमिकों
का पुनः रोजगार देने की माँग ही मुख्य थी। ७४ हड़तालों का सम्बन्ध अवकाश
अथवा कार्य के घण्टे म था और शेष विभिन्न माँगों म सम्बन्धित थी। १९३३ म भी,
२१ २% मामलों म विवाद मजदूरी और भत्ते के प्रश्नों म सम्बन्धित थे १५ २%
बोनस म, २३ ०% कर्मचारियों म सम्बन्धित मामलों एव छँटनी म, २ २% अवकाश
व कार्य के घण्टों म, ८ ८% अनुशासनहीनता व हिंसा म और १८ ६% हड़तालें अन्य
माँगों म सम्बन्धित थी।

1 Report of the Royal Commission on Labour, page 334

गैर आर्थिक कारण वे होते है जिनका उद्योग से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध नहीं होता। इसमे राजनैतिक कारण मुख्य है। सन १९४७ तक भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन था तथा श्रम आन्दोलन का देश के राष्ट्रीय आन्दोलन से निकटतम सम्पर्क था। १९०८ में श्री तिलक के ६ वर्ष के कारावास के विरोध मे बम्बई मे एक आम हड़ताल हुई। कई ऐसी हड़तालें खिलाफत असहयोग व सविनय (Civil) अवज्ञा आन्दोलन के दिनो मे भी चलाई गई। अनेक बार हड़ताले श्रमिको के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने तथा उनको बर्खास्त करने पर हुई। श्रमिको के विरुद्ध ऐसी कार्यवाहियाँ तब की जाती थी जबकि श्रमिक राजनैतिक नेताओं के मुकदमो की कार्यवाही सुनने चले जाते थे या विदेशी माल को हाथ लगाने से इन्कार करते थे या जब उन्होंने राजनैतिक प्रदर्शनो मे भाग लिया अथवा यूरोपीयन मैनेजरों को मारा-पीटा या कांग्रेस के स्वय-सेवकों के रूप मे काम किया। स्वतन्त्रता के पश्चात भी हम देखते है कि अनेक हड़तालें तथा काम के अवरोध राजनैतिक दलों व आन्दोलनों के कारण तथा राज्यों के पुनर्गठन राष्ट्रभाषा तथा मुम्बई नियमों जैसे प्रश्नों पर किये गये आन्दोलनों के कारण हुए हैं। साम्यवादियों से सहानुभूति रखने वाले श्रमिकों पर अत्याचार करने के विरोध मे भी हड़ताले हुई है। कई बार हड़ताले सटोरियो अर्थात् सट्टेबाजों (Speculators) ने भी कराई गई हैं जो अपने लाभ के लिए काम और उत्पादन बन्द कराकर कीमतों मे वृद्धि करा देते हैं। इस हेतु सट्टेबाजों ने कई बार निराधार अफवाहें फैलाई हैं तथा श्रमिकों को वित्तीय सहायता भी दी है और दिया जा रहा है।

साराश यह है कि आर्थिक एव गैर-आर्थिक दोनों ही प्रकार के कारण औद्योगिक विवादों के लिए उत्तरदायी रहे है। कुछ वर्षों से ऐसा देखने मे आ रहा है कि मालिकों एव श्रमिकों के बीच की खाई गहरी होती जा रही है और दोनों पक्षों मे घोर असन्तोष व्याप्त है। श्रमिकों की मनोवृत्ति मे तीव्र परिवर्तन आ गया है और वे दिन प्रतिदिन लाभ मे से अधिक भाग प्राप्त करने की माँग कर रहे हैं। राजनैतिक परिवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें साम्यवादी विचारों का प्रसार अनिश्चित आर्थिक परिस्थितियाँ तथा निर्वाह व्यय मे वृद्धि, इस मनोवृत्ति के लिए उत्तरदायी है। इसके साथ साथ अनेक राजनैतिक दलों ने मजदूर सरकार से लाभ उठाने के लिये श्रमिक सघों पर अधिकार कर हड़ताले करवाई है। परन्तु फिर भी औद्योगिक विवादों के आर्थिक कारण ही प्रमुख रहे हैं। शाही श्रम आयोग का मत इस बार में महत्त्वपूर्ण है जो आज भी सत्य कहा जा सकता है। चाहे श्रमिक राष्ट्रीय साम्यवादी या साम्प्रदायिक उद्देश्यों से प्रभावित हुए हो लेकिन फिर भी हमारा विश्वास है कि शायद ही कोई ऐसी हड़ताल हुई हो जो कि पूर्णतया या अधिकांश रूप से आर्थिक कारणों के फलस्वरूप न हुई हो।[1] यह सर्वविदित है कि श्रमिकों की निर्धनता ही साम्यवाद को जन्म देती है। हमारे श्रमिकों की आर्थिक शिकायतें उनमे इस बात की भावना कि समाज मे उनका कोई उचित स्थान नहीं है उनमे इस बात का डर कि कहीं उनकी धनोपार्जन शक्ति मे अस्थिरता न आ जाए उनमे इस बात की आशंका

1 Report of the Royal Commission Labour, page 335

कि कहीं उनकी नौकरी म रुकावट न पड़ जाये, आर्थिक कठिनाइयो का भार (जिससे इस बात की भावना बढ़ जाती है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है), कार्य एव रहन सहन की दयनीय दशायें, आदि अनेक ऐसे शक्तिशाली कारण हैं जिनसे श्रमिको के हृदय मे असन्तोष व्याप्त हो गया है और जिनकी अभिव्यक्ति (Expression) निरन्तर होने वाली हड़तालो मे मिलती है। विगत कुछ वर्षों मे तो यह असन्तोष और व्यापक हो गया है क्योकि कीमतो मे लगातार वृद्धि हो रही है और यह वृद्धि श्रमिको की अगर मजदूरी को निगलती जा रही है। जमाखोरी, मुनाफाखोरी तथा चोर बाजारी के कारण उपभोक्ताओ के रूप मे श्रमिक अत्यधिक कष्ट पाते रहे हैं। श्रमिक स्वय को इसलिए भी असुरक्षित समझते है क्योकि वे उस आर्थिक प्रणाली को ही नही समझ पाते कि जिनके अन्तर्गत पूंजीवादी और समाजवादी प्रकृति की सस्थाओ को साथ साथ जीने की अनुमति दी जाती है।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि भारत म मालिको व श्रमिकों के बीच जो खाई उत्पन्न हो गई है उसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि भाषा जाति आदि की भिन्नता होने स उनके बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध नही आ पाते और आपस मे एक दूसरे को समझने का प्रयत्न नही किया जाता। भारत मे औद्योगीकरण के प्रारम्भिक चरणो मे अधिकाश उद्योगो का प्रबन्ध विदेशियों द्वारा होता था, जिनको कि भारतीय भाषाओ का बहुत कम ज्ञान होता था। अत ऐसे प्रबन्धकों को मध्यस्थो के उपर ही निर्भर रहना पड़ा। इन मध्यस्थो ने अनेक बार श्रमिको का गलत ढग से प्रतिनिधित्व किया। अब जब कि प्रबन्धक भारतीय भी हैं तब भी उनम और श्रमिको म जाति परम्पराओ आदि मे विभिन्नता होने के कारण अन्तर बना रहता है परिणाम स्वरूप बहुत से प्रबन्धक अपने कुछ अधिकारो को अपने अधीनस्थ कर्मचारियो या मध्यस्थो को सौप देते है। यह मध्यस्थ विश्वसनीय नही होते और मालिको और श्रमिको के बीच पारस्परिक सम्पर्क को कठिन बना देते है। श्रमिको और मालिको म मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने मे एक अन्य बाधा शक्तिशाली श्रमिक सघो का अभाव है। बाहरी नेता भी कई बार हड़तालो के लिए उत्तरदायी होते है। 'प्रीमियर आटोमोबायल्स' कम्पनी बम्बई मे जो १६५८ म हड़ताल हुई थी श्री आर० एल० मेहता द्वारा की गई उसकी जाच स पता चला कि वह हड़ताल मजदूरी, बोनस या किसी ऐसे ही औद्योगिक प्रश्न से सम्बन्धित नही थी वरन् नेता व्यक्तिगत बातो के कारण हड़ताल कराई गई थी।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अनेक बार आम हड़ताले अथवा बन्द भी होते हैं जिनमे दुकाने अथवा कार्य आदि बन्द हो जाते हैं। ऐसी हड़तालें श्रमिको की हड़तालो म भिन्न होती है। य आमतौर पर सरकार के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए होती है, उदाहरणत य सरकार अथवा पुलिस के कार्यों के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए होती है और इनका मालिक से कोई सम्बन्ध नही होता। राजनैतिक उत्तेजना के दिनो म यह बहुत अधिक होती है। ऐसी

हड़तालें यद्यपि अल्पकालिक होती हैं तथापि सब बातों को देखते हुए उद्योगों और उत्पादन को इनसे काफी क्षति पहुँचती है।

हड़तालों का प्रभाव : हड़ताल करने का अधिकार
(Effect of Disputes Right to Strike)

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि देश के आर्थिक जीवन पर हड़तालों का क्या प्रभाव पड़ता है। इन हड़तालों के कारण हम किस दिशा में जा रहे हैं? क्या श्रमिकों का हड़ताल करने का अधिकार होना चाहिए? हड़तालों से बचने के लिए क्या उपाय करने चाहिए तथा उनके होने पर समझौते के लिए कौन सा साधन अपनाना चाहिए? इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं जो जनता की चिन्ता का कारण बने हुए हैं और जिनके ऊपर विचारशील लोगों में मतभेद भी है। यद्यपि हमने पश्चिमी देशों के औद्योगिक साधनों व संगठन की तो नकल की है, परन्तु यह खेद की बात है कि उन देशों में औद्योगिक सम्बन्धों को सौहार्द्रपूर्ण बनाये रखने और गम्भीर और तीव्र औद्योगिक विवादों को कम करने के लिए जो साधन अपनाये गये हैं, उनका हमारे देश में सफलता के साथ उपयोग नहीं किया गया है। फलतः भारत में हड़तालों का होना एक आम बात हो गई है, जिससे मालिकों एवं श्रमिकों पर आर्थिक दृष्टि से बुरा प्रभाव तो पड़ता ही है उससे जनता को भी बहुत असुविधा होती है। पिछले तीस वर्षों में जो हड़तालें व तालाबन्दी आदि हुई हैं, यदि उन पर दृष्टिपात करें तो उनमें श्रमिकों का कष्ट, उत्पादन व लाभ में कमी, सर्वसाधारण की असुविधा और मालिकों व श्रमिकों में पारस्परिक मतभेद सन्देह और कटुता जैसे परिणाम ही दिखाई देते हैं। इस कारण यह अत्यन्त आवश्यक है कि उन साधनों पर विचार किया जाए जिनसे औद्योगिक झगड़ों को रोका जा सके और यदि वे हों भी तो उनको सरलतापूर्वक निपटाया जा सके।

प्रोफेसर पीगू[1] का कहना है कि हड़ताल अथवा तालाबन्दी द्वारा जब सम्पूर्ण उद्योग में अथवा इसके कुछ भाग में श्रमिक तथा सम्पूर्ण सामग्री बेकार हो जाती है तो उससे राष्ट्रीय लाभांश में कमी होती है और आर्थिक कल्याण को क्षति पहुँचती है। इन विवादों से सम्बन्धित उद्योगों में उत्पादन की तो प्रत्यक्ष हानि होती है, कभी-कभी वास्तविक हानि उससे भी अधिक होती है। इसका कारण यह है कि किसी महत्वपूर्ण उद्योग में काम ठप्प हो जाने से अन्य उद्योगों की क्रियायें भी अवरुद्ध हो जाती हैं। ऐसा दो प्रकार से होता है। एक तो इस प्रकार कि काम रुकने से हड़तालियों की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है, अतः उनकी ऐसी वस्तुओं की माँग भी कम हो जाती है जिनका उत्पादन अन्य उद्योगों में होता है। दूसरे, यदि हड़ताल ग्रस्त उद्योग ऐसा है जो अन्य उद्योगों में काम आने वाली वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन अथवा उनकी व्यवस्था करता है तो इस स्थिति में उन उद्योगों को कच्चा माल अथवा अन्य सामान पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता जिससे उनके कार्य में बाधा उत्पन्न

1 A C Pigou—Economics of Welfare

होती है। यह प्रभाव कैसा होगा यह बात यद्यपि उत्पादित वस्तु की प्रकृति पर निर्भर होती है फिर भी, हड़ताल ग्रस्त उद्योगों को होने वाली प्रत्यक्ष हानियों के अलावा अन्य उद्योगों म दबावी जो प्रतिक्रियाएं होती हैं उनके कारण इन हड़तालों से कुछ सीमा तक राष्ट्रीय लाभ को ही परोक्ष रूप में हानि पहुंचती है।

यह सत्य है कि औद्योगिक विवादों के कारण उत्पादन में जो निवल कमी (Net contraction) होती है, वह सामान्यत तात्कालिक कमी (immediate contraction) से कुछ कम होती है। इसका कारण यह है कि एक स्थान पर काम ठप्प होने से प्रतिद्वन्द्वी उद्योगों म उसी समय काम की मात्रा बढ़ सकती है अथवा यह भी हो सकता है कि हड़ताल ग्रस्त उद्योगों म देरी से हुई क्षति को पूरा करने के लिए बाद म काम की मात्रा बढ़ जाए। यह भी मान्य है कि हड़तालों व तालाबन्दियों से उद्योगों को जो प्रत्यक्ष हानि होती है कभी कभी उसकी आंशिक रूप से पूर्ति उस प्रेरणा द्वारा हो जाती है जो कि मशीनरी तथा काम की व्यवस्था में सुधार करने के लिए मालिकों को परोक्ष रूप से मिलती है। किन्तु व्यापक दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होता है कि ऊपर जिस परोक्ष प्रेरणा अथवा लाभ की कल्पना की गई है उसका महत्व उस हानि के मुकाबले बढ़ा चढ़ा कर आंका गया है जो कि हड़ताल ग्रस्त उद्योगों के दल दल में प्रत्यक्ष रूप में होती है और उन उद्योगों को होती है जिनका कच्चा माल मिलना बन्द हो जाता है क्योंकि इन उद्योगों की सहायता के बिना जो अपने उत्पादन को जारी नहीं रख सकते। इसके अतिरिक्त मजदूरों को भी स्थायी रूप से काफी क्षति पहुंच सकती है। उदाहरणत उनका औद्योगिक जीवन अस्त व्यस्त हो सकता है और भारी संकटकाल का सामना करने के लिए उन्हें ऋण लेना पड़ सकता है तथा हड़ताल की अवधि में मजदूरों के बच्चों को यथेष्ठ पौष्टिक भोजन आदि न मिल पाने के कारण उनके स्वास्थ्य को भी स्थायी हानि पहुंच सकती है। तथापि इन बुराइयों की मात्रा अंशत तो इस बात पर निर्भर होती है कि निर्धन लोग उस वस्तु का उपभोग किस सीमा तक करते हैं जिसका उत्पादन रुक गया है और अंशत इस बात पर कि जीवन स्वास्थ्य सुरक्षा अथवा शांति व्यवस्था के लिए उस वस्तु का महत्व कहां तक है। कुछ भी हो औद्योगिक विवादों से राष्ट्रीय लाभांश को जो कुछ क्षति पहुंचती है वह बड़ी गम्भीर होती है। यही कारण है कि समाज सुधारक औद्योगिक शांति बनाये रखने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं।

आर्थिक आधारों पर हड़तालों का समर्थन नहीं किया जा सकता। अनुभव से स्पष्ट हो जाता है कि कटु संघर्षों की अपेक्षा अन्तत समझौता व्यवस्था तथा विवाचन जैसे साधनों से जिनमें पारस्परिक सौहार्द्र पूर्ण बातचीत व तर्क हो सकते हैं, कहीं अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जीवन के किसी क्षेत्र म धमकी द्वारा अधिक समय तक काम चलाना कठिन है। धमकी सदैव विपक्ष के मस्तिष्क को हठी बना देती है और वह एक पग भी आगे बढ़ने को तैयार नहीं होता

औद्योगिक अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण हानि का अनुमान केवल खोई हुई मजदूरी और लाभ की क्षति से अथवा कम उत्पादन से ही नहीं लगाया जा सकता। इसके लिए इनसे जो असुविधायें उत्पन्न हो जाती हैं और जनता को जो कष्ट और दुःख होते हैं उनको भी ध्यान में रखना चाहिए, जैसे—विद्युत व गैसपूर्ति, यातायात, स्वास्थ्य व सफाई आदि। जन उपयोगी सेवाओं के विवादों में जनता को कष्ट, दुःख और असुविधा अधिक होती है। हड़ताल तीन धारों वाला शस्त्र है। इसमें न केवल मालिकों व समाज को ही हानि होती है वरन् श्रमिकों को ही इसमें सबसे अधिक तकलीफ पहुँचती है। हड़तालों में श्रमिकों को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। कभी-कभी तो श्रमिकों को हड़ताल की अवधि में लाठीचार्ज एवं गोलियों का भी सामना करना पड़ता है एवं तत्पश्चात् उन पर अत्याचार भी किए जाते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या श्रमिक यह सब तकलीफ स्वेच्छा से किसलिए भुगतते हैं? जब उनको ज्ञात रहता है कि उनकी ही सर्वाधिक हानि होगी तो फिर वे हड़ताल क्यों करते हैं? उत्तर स्पष्ट है। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था की यह विशेषता है कि यदि श्रमिक हड़ताल करने की प्रवृत्ति को न अपनायें तो अनेक स्वार्थी मालिक श्रमिकों का शोषण करने की प्रवृत्ति नहीं छोड़ेंगे और उद्योग के समस्त लाभ को अपनी ही तिजोरियों में बन्द करते रहेंगे। इस समस्या का यह समाधान नहीं है कि हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया जाय अथवा श्रमिकों से हड़ताल के अधिकार छीन लिए जायें। यह उपचार तो रोग से भी भयंकर होगा। श्रमिकों के पास मालिकों द्वारा किए गये शोषण का विरोध करने के लिये हड़ताल ही एक-मात्र शस्त्र है। अतः हड़तालों के कुप्रभावों के दृष्टिकोण से ही हमें इस समस्या पर विचार नहीं करना चाहिए, वरन् श्रमिकों के दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखना चाहिए। समस्या का समाधान उन कारणों को, जो हड़ताल को जन्म देते हैं, दूर करने से ही हो सकता है। हमें मालिकों व श्रमिकों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। हड़तालों के दोषों का निवारण तो इसलिए होना चाहिए कि औद्योगिक विवादों के कारण और उनको निपटारा करने के साधनों पर विचार किया जाय और उनकी सफलता को समझा जा सके।

भारत में आज औद्योगिक विवादों से बहुत सी हानियाँ हैं। देश आर्थिक संकट से गुजर रहा है और बेकारी अपना व्यग्र रूप दिखा रही है। अतः इस समय देश में अधिक उत्पादन तथा औद्योगीकरण की तीव्र आवश्यकता है। मुद्रा स्फीति की प्रवृत्तियों को केवल अधिक उत्पादन करके ही दूर किया जा सकता है। वास्तव में आज हमारे देश में—राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रत्येक दृष्टिकोण से उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता है। देश के सभी राजनैतिक नेता भी उत्पादन वृद्धि को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान कर रहे हैं। हमारे देश में इस समय पंचवर्षीय आयोजनायें लागू हैं तथा उनकी सफलता के लिये देश में औद्योगिक शान्ति आवश्यक है। अतः राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इस समय हड़तालों का समर्थन नहीं किया जा सकता। यदि

मालिक हो, चाहे श्रमिक हो अथवा कोई भी बाह्य संस्था हो; यदि वह इस समय उद्योग-अशान्ति के लिये उत्तरदायी है, तो उसको देशद्रोही कार्यों के लिये दोषी ठहराया जा सकता है। श्री खंडूभाई देसाई के अनुसार, "वयस्क मताधिकार पर आधारित प्रजातन्त्र में हड़ताल और तालेबन्दी न केवल असामयिक हो गये हैं, अपितु उन उद्देश्यों के लिये भी, जिनके लिये ये किये जाते हैं, पूर्णतया हानिप्रद हैं।" देश में समाजवादी ढांचे की स्थापना के लिये उत्पन्न हो रही नवीन परिस्थितियों में हड़तालों व तालाबन्दी को उचित कहना ठीक नहीं जान पड़ता। आज जो भी व्यक्ति हड़तालों का समर्थन करते हैं व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अपनी राजनैतिक स्वार्थसिद्धि के लिये ऐसा करते हैं। उनका उद्देश्य सामाजिक घृणा व वर्गद्वेष को उकसाना है, क्योंकि वे समाज के ढांचे को समाप्त करना चाहते हैं। उनका ध्यान इस ओर नहीं जाता कि इस समय हमारे देश की तत्कालीन आवश्यकतायें क्या हैं और किसी और आर्थिक ढांचे को ग्रहण करने में क्या व्यावहारिक कठिनाइयां हैं। हमें ऐसे व्यक्तियों से सचेत रहना चाहिये। इस समय विदेशी आक्रमण का खतरा हमारे सामने विद्यमान है। अतः अपनी सीमाओं की रक्षा के लिये हमें अपने आपको शक्तिशाली बनाना है। देश में इस समय आवश्यक वस्तुओं का अभाव है तथा वस्तुओं की कीमतें ऊंची चढ़ रही हैं। देश को एक आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है। इस समय मालिक, मजदूर या कोई भी अन्य पक्ष यदि औद्योगिक विवादों का सहारा लेता है तो उसे देशद्रोही कार्य के लिये दोषी ठहराया जा सकता है। १५ अगस्त, १९७३ को अपने स्वतन्त्रता संदेशों में तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि तथा प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने ठीक ही कहा था कि हमें उत्पादन बढ़ाने के लिये अगले तीन वर्षों के लिये हड़तालों व तालाबन्दियों को पूर्ण तिलाञ्जलि देने की घोषणा कर देनी चाहिए। श्रम मन्त्री श्री टी० अन्जैय्या ने अभी हाल ही (सितम्बर १९८०) में सभी राज्यों को लिखा है कि वे औद्योगिक संस्थानों में उत्पन्न विवादों को उत्पन्न निपटायें और इस बात का हर सम्भव प्रयास करें कि किसी भी कारण से काम बंद न हो।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि श्रमिकों को हड़ताल करने के अधिकार से तो वंचित नहीं किया जा सकता, तथापि इस अधिकार का दुरुपयोग भी नहीं होना चाहिये। कई हड़तालें केवल मामूली सी बातों पर हो जाती हैं। कई बार मालिकों को श्रमिकों की ऐसी अटपटी मांगों का सामना करना पड़ता है जिनका आधार राजनैतिक अथवा आर्थिक होने की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक अधिक होता है। अनेक हड़तालें राजनैतिक दलों द्वारा अपनी स्वार्थ-सिद्धि हेतु कराई जाती हैं जिनका श्रमिकों के हित से कोई सम्बन्ध नहीं होता। १९५८ में 'प्रीमियर आटोमोबाइल्स,' बम्बई में जो हड़ताल व्यक्तिगत बातों को लेकर हुई थी उसका उदाहरण इस सम्बन्ध में दिया जा सकता है। ऐसा भी देखने में आया है कि कभी कभी मालिकों ने जान-बूझकर हड़तालों को अधिक समय तक चलने दिया है, ताकि वे जनसाधारण की सहानुभूति प्राप्त कर सकें और श्रमिकों को उन्हीं के अस्त्र (हड़ताल) द्वारा पराजित

कर दें। १९५० में बम्बई की सूती वस्त्र मिल की हड़ताल, जो ६३ दिन तक चली, इसका एक उदाहरण है। भारतीय श्रमिकों में यह प्रवृत्ति देखी गई है कि यद्यपि उनमें हफ्तों या महीनों दुःख उठाने का साहस, शक्ति व धैर्य होता है, फिर भी मुसीबत उठाने के बाद उनमें कुछ ऐसी प्रतिक्रियायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनको दूर करने के लिए बहुत समय लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक हड़ताल के पश्चात् काफी समय तक श्रमिकों की ओर से एक प्रकार का शान्त और खामोश वातावरण बन जाता है। इस बात से लाभ उठाकर कई बार मालिकों ने हड़तालों को दीर्घ समय तक चलने को प्रोत्साहित किया है तथा तालाबन्दी भी की है, क्योंकि मालिकों में प्रतीक्षा करने की क्षमता होती है। मालिकों के इस दृष्टिकोण की भर्त्सना करनी चाहिये।

इसी प्रकार, ऐसी अनेक परिस्थितियां हो सकती हैं जबकि हड़ताल के अधिकार पर रोक लगानी पड़ती है। युद्ध जैसी संकटकालीन अवस्थाओं में, जनोपयोगी सेवाओं में, देश के आर्थिक विकास सम्बन्धी योजनाओं के कार्यान्वित होने की अवधि में, अथवा जब कोई भी पक्ष अनुचित दृष्टिकोण अपनाये, सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हस्तक्षेप करे और हड़ताल के अधिकार को वापिस लेकर सभी प्रकार के विवादों को अवैध घोषित कर दे।

इस सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि भारत में श्रमिकों के हड़ताल के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया है। यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत के संविधान में संगठन और संघ बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय द्वारा भी इस अधिकार की सुरक्षा होती है। फिर भी, भारत में हड़ताल के इस अधिकार को असीमित नहीं कहा जा सकता। औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत कुछ विशेष परिस्थितियों में हड़तालें अवैध घोषित कर दी गई हैं और अवैध हड़तालों में भाग लेने पर दंड की भी व्यवस्था कर दी गई है। इसका उल्लेख आगे के पृष्ठों में किया गया है। उदाहरण के लिए, जनोपयोगी सेवाओं में हड़तालों एवं तालाबन्दियों को उस समय अवैध माना जाता है जबकि उनकी घोषणा निर्धारित रीति से सूचना दिये बिना ही कर दी जाती है। इसी प्रकार वे सब हड़तालें एवं तालाबन्दियाँ भी अवैध घोषित कर दी जाती हैं जबकि उनसे सम्बन्धित मामला समझौते अथवा पंचनिर्णय की कार्यवाही के समक्ष विचाराधीन होता है। उस अवधि में भी हड़ताल अवैध होती है जबकि उससे सम्बन्धित कोई समझौता या पंचनिर्णय लागू होता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह भी कहा है[1] कि, "जहाँ हम इस पक्ष में नहीं हैं कि हड़ताल अथवा तालाबन्दी के अधिकार पर कोई रोक लगाई जाए, वहाँ हम सीधी कार्रवाई (direct action) के अप्रतिबन्धित अधिकार का भी समर्थन नहीं करते हमारे विचार से, हड़ताल करने का अधिकार एवं लोकतन्त्रीय अधिकार

1 Report of the National Commission on Labour, page 328.

है और हमारे देश मे जो सवैधानिक ढाँचा लागू है उसके अन्तर्गत इस अधिकार को छीना नही जा सकता। व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी हम इस अधिकार को छीनने के कदम का समर्थन नही कर सकते। यदि श्रमिको से हडताल करने के अधिकार को ले लिया गया तो उसका परिणाम केवल यही होगा कि असन्तोष की जडे गहरी होती जायेगी और उनका विस्फोट फिर अन्य किसी रूप मे होगा और यह स्थिति भी श्रमिको व प्रबन्धको के बीच अच्छे सम्बन्धो के लिये कम हानिकारक सिद्ध नही होगी। किन्तु इसके साथ ही साथ, हमे यह बात भी नही भूलनी चाहिये कि कुछ उद्योग अथवा सेवाएँ इतनी अधिक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण होती है कि उनमे काम रुकने से सम्पूर्ण समाज की अर्थ-व्यवस्था को तथा देश की सुरक्षा को भी क्षति पहुच सकती है। अत. ऐसी स्थिति मे इस अधिकार को कुछ सीमित या प्रतिबन्धित करना अन्यायपूर्ण नही कहा जा सकता। आयोग ने यह भी कहा कि जहाँ इस अधिकार मे कटौती की जाए वहाँ विवादो को सुलझाने के लिये पचनिर्णय अथवा न्यायनिर्णय जैसे वैकल्पिक उपायो की भी व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए। ये 'अत्यावश्यक' उद्योग या सेवायें कौन-सी हो, इसका निर्णय ससद् पर छोड दिया जाना चाहिए।"

भारत मे औद्योगिक विवादो को रोकने और सुलझाने के उपाय
(Prevention and Settelement of Industrial Disputes in India)

विवादों की रोकथाम (Prevention of Disputes)

उपचार की अपेक्षा बचाव सदैव ही अच्छा होता है। इसलिये हम सर्वप्रथम उन उपायो का विवेचन करेंगे जो कि देश मे होने वाले औद्योगिक विवादो की रोकथाम कर सके। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है—राष्ट्र की तत्कालीन आवश्यकता यह है कि पूँजी और श्रम के मध्य की खाई को कम किया जाए तथा मालिको व श्रमजीवियो के मध्य सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न किये जाये। मालिको के दृष्टिकोण मे न केवल परिवर्तन करने की आवश्यकता है जिससे वह श्रमिको के कल्याण मे निजी रूप से अधिक रुचि ले सके वरन् इस सम्बन्ध मे कई अन्य पग उठाये जाने की आवश्यकता है। प्रथम उपाय तो यह है कि ऐसे शक्तिशाली श्रमिक सघो का विकास हो जिनकी प्रबन्धकर्त्ताओ तक पहुच हो।

शक्तिशाली श्रम संघ और सामूहिक समझौते
(Strong Trade Unions and Collective Agreements)

श्रमिक सघो के अध्याय मे इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि मालिको व श्रमिको मे मृदु सम्बन्ध बनाये रखने मे शक्तिशाली श्रमिक सघो के क्या लाभ हैं। श्रमिको मे सघ मालिको से प्रत्यक्ष रूप से बातचीत कर सकते हैं और इस प्रकार हडताल होने के इस मुख्य कारण को दूर कर सकते है क्योकि अनेक बार मध्यस्थ मालिको के समक्ष श्रमिको का प्रतिनिधित्व उचित रूप से नही करते। मालिको के

लिए भी यह सम्भव नहीं होता कि वे व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक कर्मचारी से मिलें और उनके कष्टों का निवारण करने का प्रयत्न करें। मालिक श्रमिक संघों में श्रमिकों का हृदय पायेंगे और यदि एक बार हृदय सन्तुष्ट हो गया तो मालिक इस बात का विश्वास कर सकते हैं कि फिर शिकायत का अवसर न होगा। मालिकों को यह अनुभव कर लेना चाहिए कि पारस्परिक सम्बन्ध मधुर बनाये रखने के लिए श्रमिक संघ एक आवश्यक और उचित साधन है। एकता और सामूहिक रूप से कार्य करने से श्रमिकों को भी लाभ होता है क्योंकि वे मालिकों की दृढ़ सौदाकारी शक्ति का डट कर सामना कर सकते हैं और इस प्रकार मालिकों से उचित व्यवहार पा सकते हैं। श्रमिकों द्वारा सामूहिक रूप से लिये गये निर्णयों की मालिकों द्वारा सरलता से उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक संघ अपने संगठन में मजबूत और अच्छे हों और श्रमिकों के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हों। भारत के श्रमिक संघ आन्दोलन में कई प्रकार के गम्भीर दोष हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है।[1] इन दोषों को दूर करने से एक शक्तिशाली श्रमिक संघवाद का विकास होगा और यह बात औद्योगिक अशान्ति को रोकने के लिए प्रभावशाली साधन सिद्ध होगी।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि भारत के अनेक औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों और मालिकों के बीच समझौते हुए हैं। ऐसे समझौते औद्योगिक शान्ति के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। इनका स्वागत करना चाहिए। यह समझौते औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिए सामूहिक सौदाकारी[2] की महत्ता को प्रकट करते हैं और यह आशा की जा सकती है कि सम्पूर्ण भारत में श्रमिक संघों और प्रबन्धकों द्वारा ऐसे समझौते अनुकरणीय होंगे। सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) से आशय श्रमिकों व प्रबन्धकों की ओर से किये जाने वाले उन संगठित प्रयासों से होता है जो कि वे काम की दशाओं, मजदूरी व नौकरी के विभिन्न पहलुओं पर बातचीत के लिए इस्तेमाल करते हैं ताकि किसी समझौते पर पहुँचा जा सके। इस प्रकार, यह बातचीत की एक प्रक्रिया है, सार्थक संवाद है तथा ठोस प्रयास है, जिसके अन्तर्गत कि दोनों ही पक्ष एक दूसरे को समझने की कोशिश करते हैं और किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। यदि कोई श्रमिक व्यक्तिगत रूप से बातचीत करे तो इस असंगठित रूप में वह सभी लाभ प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता। अतः सामूहिक सौदाकारी ही केवल ऐसा तरीका है जिसके द्वारा कि वह उद्योगों की अनुचित प्रतियोगिता में अपनी रक्षा कर सकता है। इसके बाद, पुनः यदि कोई विवाद खड़ा होता है तो सामूहिक समझौता मालिकों को भी संरक्षण प्रदान करता है। तथापि, सामूहिक सौदाकारी की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिक संघ काफी शक्तिशाली हों, मालिकों द्वारा

1. देखिये अध्याय ४।
2. सामूहिक सौदाकारी के लिए अगला अध्याय भी देखिये।

वे मान्यता प्राप्त हो, दोनों पक्षों को एक-दूसरे पर विश्वास हो और उद्योग में प्रति अपने कर्त्तव्यों के बारे में वे पूर्णतया जागरूक हों। भारत में श्रमिक संघों व प्रबन्धकों के बीच विगत वर्षों में यद्यपि अनेक समझौते हुये हैं (उदाहरण के लिये अहमदाबाद, बम्बई, जमशेदपुर, मोदीनगर व मैसूर में और रसायन, पेट्रोल, तेल परिष्करण, विद्युत सामग्री, ऐलुमिनियम, मोटरों की मरम्मत आदि के उद्योग में) किन्तु सामूहिक सौदाकारी ने अनेक कारणोंवश इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं की है। हमारे देश में श्रमिक संघ आन्दोलन अधिक दृढ़ नहीं हो सका है। इसके अनेक कारण रहे हैं जिनका उल्लेख विस्तार से अध्याय ५ में किया जा चुका है। हमारे देश में श्रमिक संघों की बहुलता है, मालिकों के लिये यह अनिवार्य नहीं है कि वे श्रमिक संघों को मान्यता दें विभिन्न पक्षों का दर्जा क्या हो एवं आर्थिक शक्ति किसके हाथ में रहे इस विषय में काफी मतभेद हैं, दोनों पक्ष एक दूसरे पर अधिक विश्वास नहीं करते और मालिक व श्रमिक दोनों ही परस्पर बातचीत द्वारा मामले को सुलझाने की बजाय सरकार की ओर ताकना पसन्द करते हैं। किन्तु इस सब के बावजूद, इस दिशा में पग उठाया जा चुका है और अनेक स्थानों पर सामूहिक समझौते सम्पन्न हुये हैं। जैसी कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सिफारिश की है, व्यापक क्षेत्र में इनका अधिकाधिक विस्तार निश्चित ही वाञ्छनीय है।

औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिये जो अन्य महत्वपूर्ण पग उठाये है वे निम्नलिखित हैं—(क) प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग (Workers participation in Management), (ख) अनुशासन संहिता (Code of Discipline), (ग) आचरण संहिता (Code of Conduct), (घ) शिकायत निवारण क्रियाविधि (Grievance Procedure), (ङ) औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution), १९६२ (ज) मूल्यांकन तथा कार्यान्वयन समितियाँ तथा प्रभाग (Evaluation and Implementation Committees and Division) और (झ) परामर्शदात्री व्यवस्था (त्रिदलीय श्रम व्यवस्था)। इनमें से प्रथम पाँच का उल्लेख परिशिष्ट 'ग' में किया गया है।

मालिक मजदूर समितियाँ (Works Committees)

उनके कार्य और महत्व (Functions and Importance)

औद्योगिक विवादों को रोकने और सुलझाने में मालिक-मजदूर समितियाँ महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। उद्योगों की अलग अलग प्रत्येक संस्था में औद्योगिक अशान्ति को रोकने के लिये ये समितियाँ बहुत उपयुक्त हैं। ये मतभेदों को पारस्परिक बातचीत द्वारा दूर करने के लिये परामर्श की व्यवस्था करती हैं। इनमें मालिकों और श्रमिकों दोनों के ही प्रतिनिधि होते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि संस्थान की सीमा में ही पारस्परिक सद्-इच्छा और मैत्रीपूर्ण वातावरण बनाकर दिन प्रतिदिन की समस्याओं पर विचार-विमर्श करें। इन समितियों में मालिक व श्रमिक इस प्रकार नहीं मिलते जिस प्रकार किसी संघर्ष से निपटाने के लिये सलाहकार के सम्मुख आते

है वरन् दो मित्रों की भांति पारस्परिक विचार-विमर्श में अपने विवादों को शीघ्र एवं शान्तिपूर्ण ढंग से निपटाने और मतभेदों को दूर करने के लिये मिलते है। ये समितियाँ प्रबन्धकों और कर्मचारियों दोनों से ही सम्बन्धित दिन-प्रतिदिन के उन पारस्परिक प्रश्नों पर विचार करती है जो उत्पादन तथा कार्य व रोजगार की दशाओं की सभी बातों में सम्बन्धित होते हैं और इनका सम्बन्ध श्रमिकों के दैनिक जीवन से होता है। यदि इन समस्याओं का प्रारम्भिक अवस्था में सफलतापूर्वक उपचार नहीं किया जाता तो ये विषय गम्भीर विवाद उत्पन्न कर सकते है। मालिक मजदूर समितियाँ अलग अलग संस्थाओं में इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार-विमर्श करने में सहायक होती है। औद्योगिक शान्ति की नींव प्रत्येक स्थान में डाली जानी चाहिये और यह नींव इस प्रकार पड सकती है कि दिन-प्रतिदिन की समस्याओं पर अलग-अलग संस्थानों में सावधानी से विचार किया जाय। इस प्रकार औद्योगिक विवादों को रोकने में मालिक-मजदूर समितियों का बहुत महत्त्व है। प्रारम्भिक अवस्था में दोनों पक्षों में समझौता करा देना, जबकि किसी ने भी इसको अपने सम्मान का प्रश्न नहीं बनाया होता अपेक्षाकृत सरल होता है क्योंकि तत्पश्चात् सम्बन्धित पक्ष अपनी ही बात पर अड जाते है और विवाद बढ जाता है। इस दृष्टिकोण से भी औद्योगिक विवादों को रोकने मे मालिक-मजदूर समितियों की अधिक उपयोगिता है। इन समितियों से श्रमिक को इस बात की भी शिक्षा मिल सकती है कि वे अपने उत्तरदायित्वों को ठीक-ठीक समझ सकें। इस प्रकार, मालिक-मजदूर समितियाँ औद्योगिक विवादों को रोकने तथा बातचीत द्वारा उन्हें सुलझाने, दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

मालिक-मजदूर समितियों के कार्यों में बाधायें

(Limitations of Works Committees)

रॉयल श्रम आयोग ने इस प्रकार की मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना करने की सिफारिश की थी और कुछ समितियाँ बनी भी। परन्तु अहमदाबाद को छोड़कर जहाँ गांधी जी के प्रभाव के कारण ये समितियाँ सफल हो सकी, अन्य स्थानों में ये सन्तोषजनक प्रगति नहीं कर सकी। उनके निर्माण एवं कार्य-विधि में अनेक कठिनाइयों का अनुभव किया गया, जो कठिनाइयाँ आज तक भी पाई जाती है। मालिक ऐसी समितियों को श्रमिक संघों का प्रतिस्थापन (Substitute) समझते हैं, जबकि श्रमिक संघ के नेता इन्हें अपना प्रतिद्वन्द्वी (Rival) समझते हैं और उनके विचार से इन्हें कोई भी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। अतः दोनों ही पक्षों में गलतफहमी है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि पिछली त्रुटियों को दूर किया जाय व मालिक-मजदूर समितियों की उचित रूप से स्थापना की जाय। अन्य देशों में इस प्रकार की समितियाँ अत्यन्त सफल हुई है। परन्तु भारत में अब तक इनकी प्रगति बहुत धीमी रही है। भारत में श्रमिकों में शिक्षा की कमी ऐसी समितियों की स्थापना में बड़ी बाधा है। पश्चिमी देशों में ऐसी स्थिति नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जहाँ श्रमिक संघ हो वहाँ मालिक इन समितियों की

स्थापना व कार्य-सचालन मे इन सघो से सहयोग लें और समितियां को श्रमिक सघों की प्रति-स्थापना न मानें। कभी-कभी मालिक ऐसी समितियां मे पोषित सघ (Yellow Union) के प्रतिनिधियो को भी सम्मिलित कर लेते हं जो अवाछनीय है। श्रमिकों के प्रतिनिधियों को पृथक्-पृथक् व सयुक्त रूप से सभा करने की भी सुविधा होनी चाहिये और प्रबन्धकों का मालिक मजदूर समितियों के विचार से सहानुभूति रखनी चाहिये। श्रमिकों को भी सहयोग देना चाहिये और श्रमिक सघों को इन समितियों को अपना प्रतिद्वन्द्वी नही समझना चाहिए।

भारत मे मालिक-मजदूर समितियाँ (Works Committees in India)

भारत में ऐसी समितियों के सम्बन्ध म कुछ जानकारी प्राप्त करना यहाँ उचित ही होगा। १६२० मे भारत सरकार ने अपने छापाखानो मे सयुक्त समितियो (Joint Committees) की स्थापना की थी। टाटा आयरन वर्क्स, जमशेदपुर तथा कुछ रेलवे मे भी ऐसी समितियों की स्थापना की गई। १६२१ की बगाल की औद्योगिक विवाद समिति ने इस विचार का समर्थन किया। १६२२ मे मद्रास की बकिंघम और कर्नाटक मिल्स मे श्रमिक कल्याण समिति के नाम से एक समिति की स्थापना की गई। इसने मालिको व श्रमिकों के मध्य अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने मे उपयोगी कार्य किया। कुछ राज्यो, निजी उद्योगों एव रेलवे मे भी इस प्रकार की समितियो की स्थापना की गई। परन्तु सब बातों को देखते हुये इनकी प्रगति विशेष उत्साह-वर्धक नही हुई। रॉयल श्रम आयोग ने ऐसी समितियों को बडी आशापूर्ण दृष्टि से देखते हुये कहा था, "हमारा विश्वास है कि यदि उनको उचित उत्साह प्रदान किया जाता है और भूतकाल की त्रुटियां को दूर कर दिया जाता है तब मालिक मजदूर समितियाँ भारतीय औद्योगिक प्रणाली मे एक बहुत उपयोगी कार्य कर सकती हैं।

परन्तु यह १७ वर्ष पश्चात् हुआ कि सरकार ने इन समितियों की स्थापना की ओर कदम उठाया। १६४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम मे इस बात की व्यवस्था की गई कि मालिक मजदूर समितियाँ बनाई जायें जिनमे श्रमिकों एव मालिकों के प्रतिनिधि हो। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को इस बात का अधिकार दे दिया है कि उन सभी औद्योगिक सस्थानो मे जिनमे सौ या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं मालिक-मजदूर समितियाँ स्थापित करें जिनका उद्देश्य मालिकों व श्रमिकों के बीच मधुर सम्बन्ध बनाये रखना है और इस ध्येय की प्राप्ति के लिये पारस्परिक मतभेदों को दूर करना एव पारस्परिक हित के प्रश्नों पर विचार करना है। मालिकों के प्रतिनिधि प्रबन्धकों के द्वारा मनोनीत होंगे। श्रमिकों के प्रतिनिधि ऐसे पजीकृत श्रमिक सघो के द्वारा मनोनीत होंगे जो किसी मान्यताप्राप्त (Recognised) श्रमिकों के सगम से सम्बद्ध (Affiliated) हो। जहाँ कहीं ऐसे सम्बद्ध श्रमिक सघ न हो वहाँ पर श्रमिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव उनके सदस्यों मे से

ही किया जायेगा और उनके चुनाव की विधि अधिनियम में दी गई है। मालिक-मजदूर समितियों के संविधान, कार्य की शर्तें, कार्य का ढंग आदि का भी उल्लेख उसमें किया गया है। उत्तर प्रदेश में मालिकों व श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या चौदह से अधिक नहीं हो सकती थी। परन्तु औद्योगिक विवाद केन्द्रीय नियम १९५७ की धारा ३९ के अनुसार यह संख्या २० रखी गई है। श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या मालिकों के प्रतिनिधियों की संख्या से कम नहीं हो सकती, अर्थात् मालिकों के प्रतिनिधियों की संख्या कभी कम भी हो सकती है।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने १९४८ में इस सम्बन्ध में एक आदेश जारी कर एक अग्रणी कदम उठाया। सर्वप्रथम चीनी के कारखाना में, तत्पश्चात् अन्य कारखानों में, एक महीने के अन्दर मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना करने का आदेश दिया। आदेश में उत्तर प्रदेश सरकार ने कहा कि उन तमाम संस्थानों में जहाँ २०० अथवा अधिक कर्मचारी काम करते हैं, ऐसी समितियां बनाई जायें। २०० की यह अधिक संख्या इसलिये रखी गई थी क्योंकि सरकार चाहती थी कि प्रारम्भ में मालिक-मजदूर समितियाँ केवल बड़ी फैक्ट्रियों में ही स्थापित की जायें। मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना करने का उत्तरदायित्व मालिकों को सौंपा गया। १९४९ में उत्तर प्रदेश में मालिक-मजदूर समितियों की संख्या १६१ थी, परन्तु उनको १ नवम्बर १९५० में समाप्त कर दिया गया। इसका कारण श्रमिक संघों के मध्य पारस्परिक स्पर्धा थी, जिसके परिणामस्वरूप मालिकों के लिये श्रमिकों को प्रतिनिधित्व देना कठिन हो गया और इस प्रकार समितियों का कार्य करना भी कठिन हो गया।

उत्तर प्रदेश सरकार ने पुनः १९५८ में इस बात के लिये आदेश दिये कि उन सभी राज्य संचालित उद्योगों में जिनमें १०० अथवा अधिक कर्मचारी कार्य करते हैं तथा उत्तर प्रदेश सहकारी बैंक, सहकारी संगम तथा दुग्ध वितरण यूनियन में मालिक-मजदूर परिषदें (Works Councils) बनाई जायें। इसके साथ-साथ राज्य स्तर पर एक स्थायी सुलह बोर्ड (Conciliation Board) बनाने की भी व्यवस्था की गई है। इन परिषदों का कार्य एवं विधान मालिक-मजदूर समितियों जैसा ही है। ये श्रम कल्याण सलाहकार समिति के रूप में भी कार्य करेंगी। यदि ये किसी भी विवाद में उचित समझौता करने में असमर्थ रहती हैं तब विवाद स्थायी सुलह बोर्ड को विचारार्थ सौंप दिया जायेगा। सन् १९७१ में सरकारी उद्यमों में मालिक-मजदूर परिषदों की संख्या ९६ थी तथा ऐसे सरकारी उद्यमों की संख्या ७८ थी जिनमें ऐसी परिषदों की स्थापना होनी थी। सन् १९४६ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के अन्तर्गत, उन इकाइयों में भी, जिनमें कि मान्यताप्राप्त श्रमिक संघ हो, इस उद्देश्य से संयुक्त समितियाँ स्थापित की जा सकती हैं ताकि मालिकों व मजदूरों के बीच बातचीत का नियमित क्रम बना रहे और दिन-प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों पर शीघ्रता से विचार करके उनका समाधान खोजा जा सके।

यद्यपि कानूनी जरूरतों के पूरा होने तथा सरकार द्वारा बढ़ावा दिये जाने के कारण, अनेक उद्यमों में मालिक-मजदूर समितियों (Works Committees) की स्थापना को प्रोत्साहन मिला है, किन्तु फिर भी, यह कहा जा सकता है कि इस दिशा में प्रगति की रफ्तार धीमी तथा देश के विभिन्न भागों में असमान रही है। विभिन्न वर्षों में जो मालिक-मजदूर समितियां स्थापित की गई उनकी संख्या यहाँ दी जा रही हैं। कोष्ठकों में दिये गये आँकड़े समितियों की उस संख्या के सूचक हैं जिनकी कि स्थापना की जानी थी १९५१—१,१४२, १९५५—१,९६६, १९६१—२,८३९ (४८१०); १९६५—३,१३३ (५०८९), १९७१—२,६८२ (४,७१५); १९७४—२,८१८ (३५१२), १९७५—२,३११ (३,३१६), १९७६—२,००० (३,४२१), १९७७—१,८८३ (२,३९३), १९७८—१,०८० (३,०१७), १९७९—२,०६२ (४,५९५)। सन् १९७९ में, केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों से जहाँ से कि सूचना प्राप्त हो गयी, मालिक-मजदूर समितियों की संख्या इस प्रकार थी : केन्द्र ५७८; असम १५५; बिहार १५६, गुजरात ६४, हरियाणा १५१, हिमालय प्रदेश ६, कर्नाटक ६६, केरल २३, मध्यप्रदेश २८, महाराष्ट्र २५०, मेघालय २, उड़ीसा १४, पंजाब ५३, तमिलनाडु ३५३, पश्चिमी बंगाल ११२, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह १८, चण्डीगढ़ ५, दिल्ली २३, गोआ दमन और दीव ४, पाण्डेचेरी ५, योग २,०६२. इन समितियों के अन्तर्गत आने वाले श्रमिकों की संख्या ३०,८०,९४९ थी।[1]

मालिक-मजदूर समितियों के कार्यों एवं उनके सही-सही क्षेत्र के बारे में काफी संदिग्धता विद्यमान थी और यह संदिग्धता ही इन समितियों की सफलता के क्षेत्र में बड़ी बाधा बनी रही थी। अत इस संदिग्धता (vagueness) को दूर करने के लिये, जुलाई सन् १९५९ में भारतीय श्रम सम्मेलन ने उन कार्यों की एक सूची बनाई जो कि इन समितियों को सामान्य रूप से करने चाहियें साथ ही, सम्मेलन ने एक सूची ऐसे कार्यों की भी बनाई जो कि समितियों के कार्य-क्षेत्र से बाहर थे। मालिक मजदूर समितियाँ उन मामलों को निपटाती हैं जो कि श्रमिकों की कार्य करने की दशाओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं, जैसे कि (१) कार्य-स्थल की दशायें, जैसे—रोशनदान, प्रकाश, तापक्रम व सफाई आदि, (२) सामान्य सुविधायें, जैसे जलपानगृह, पीने का पानी, खाने व विश्राम करने के कमरे, चिकित्सा सवायें, (३) सुरक्षा, दुर्घटनाओं की रोकथाम तथा उद्योगजनित बीमारियाँ (industrial diseases), (४) त्यौहारों व राष्ट्रीय छुट्टियों का समायोजन, (५) कल्याण तथा दण्ड निधियाँ, (६) शिक्षा तथा मनोरंजन की क्रियायें, (७) मितव्ययिता व बचत का बढ़ावा, और (८) समिति के निर्णयों को कार्यान्वित करना। जो मदें समिति के कार्य-क्षेत्र से बाहर रखी गई हैं, वे हैं : (१) मजदूरियाँ तथा भत्ते, (२) बोनस तथा लाभ का बंटवारा, (३) कार्यभार का

1. स्रोत—श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय की सन् १९७९-८० की रिपोर्ट।

निर्धारण, (४) प्रामाणिक श्रम-शक्ति का निर्धारण (५) आयोजना तथा विकास, (६) छँटनी तथा जबरी छुट्टी, (७) श्रमिक संघों की क्रियाओं में दोष निकालना, (८) भविष्य निधि, आनुतोषिक (gratuity) तथा सेवानिवृत्ति के लाभ, (९) अवकाश तथा राष्ट्रीय छुट्टी व त्योंहारों की संख्या, (१०) प्रेरणा की योजनायें, (११) आवास तथा परिवहन। कार्यों के इसी वर्गीकरण में श्रमिक संघों की यह आपत्ति भी दूर हो गई कि ऐसी समितियाँ उनके कार्यों में हस्तक्षेप करती हैं।

किन्तु इसके बावजूद, सामान्य भावना यही है कि ऐसी समितियाँ अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हुई हैं। अनेक अनुसंधान एवं अध्ययनों द्वारा इसकी पुष्टि हो चुकी है। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने इस सम्बन्ध में विभिन्न पक्षों के विचारों का उल्लेख किया है।[1] राज्य सरकारों का यह मत है कि समितियों की सिफारिशों की परामर्शदात्री प्रवृत्ति, उनके क्षेत्र एवं कार्यों के बारे में अनिश्चितता एवं संदिग्धता का होना, श्रमिक संघों की परस्पर प्रतिद्वन्द्विता, श्रमिक संघों का विरोध और मालिकों द्वारा इनका उपयोग किये जाने के प्रति उदासीनता आदि ये ऐसे तत्व हैं जिनके कारण मालिक-मजदूर समितियाँ कारगर सिद्ध नहीं हो सकी। मालिकों ने संघों ने इन समितियों की असफलता के जो कारण बताये हैं वे हैं श्रमिक संघों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता, श्रमिक संघों की अनिच्छा तथा मालिक मजदूर समितियों में विचार के समय श्रमिकों के प्रतिनिधियों द्वारा असम्बद्ध मामले उठाने का रवैय्या। श्रमिक संघों के अनुसार, इन समितियों की असफलता के मुख्यतः दो कारण रहे हैं एक तो संघों व समितियों के अधिकार क्षेत्र के बारे में टकराव और दूसरे मालिकों का असहयोगी रवैय्या।

मालिक-मजदूर समितियों के कार्य-संचालन के मार्ग में आने वाली इन कठिनाइयों के बावजूद, सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि संयुक्त विचार-विमर्श के एक साधन के रूप में उनकी उपयोगिता असंदिग्ध है और यह कि इन समितियों के कार्यों को आगे बढ़ाने तथा इन्हें शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। सभी पंचवर्षीय योजनाओं के श्रम-नीति सम्बन्धी वक्तव्यों में भी इसी बात पर जोर दिया जा रहा है। चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में कहा गया था कि यद्यपि मालिक-मजदूर समितियों ने अब तक बहुत ही कम प्रगति की है, तथापि श्रमिकों की शिकायतों एवं आये दिन उनके मार्ग में आने वाली अधिकांश कठिनाइयों का निवारण प्रारम्भिक चरणों में इन समितियों के द्वारा ही सर्वोत्तम रूप में हो सकता था। रूपरेखा में यह आशा प्रकट की गई थी कि प्रत्येक उद्योग में अन्तर्गत प्रबन्धकों व श्रमिकों के नेता यथाशक्ति इस बात का प्रयास करेंगे कि सभी समर्थ इकाइयों (eligible units) में ऐसी समितियों की स्थापना हो सके। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह भी विचार प्रकट किया कि ऐसी समितियों को कारगर बनाने के लिये जिस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर सर्वाधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है वह यह है कि दोनों पक्षों में विश्वास का वातावरण पैदा किया जाए। आयोग ने

1. राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट, पृष्ठ ३४३।

इस बात पर जोर दिया कि ऐसी इकाई स्तर की समितियो की सफलता की आधारभूत बात है श्रमिक सघो को मान्यता। उसने सुझाव दिया कि मालिक मजदूर समितियो की स्थापना केवल उन्ही इकाइयो मे की जानी चाहिए जिनमे कि मान्यता-प्राप्त श्रमिक सघ हो। तब ऐसे श्रमिक सघो को यह अधिकार दिया जाना चाहिए कि वे मालिक मजदूर समितियो के लिए श्रमिक-सदस्य मनोनीत कर सके। इसके अतिरिक्त मालिक तथा मान्यता प्राप्त श्रमिक सघ के बीच पारस्परिक समझौते के द्वारा मालिक-मजदूर समितियो तथा मान्यता-प्राप्त श्रमिक सघ के कार्यों मे स्पष्ट रूप से अन्तर किया जाना चाहिये। इससे मालिक मजदूर समितियो के कार्यों का सचालन अधिक सुचारु रूप से हो सकेगा।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि रेलो मे तथा केन्द्र सरकार के विभिन्न मन्त्रालयो मे सयुक्त रूप से परामर्श करने की व्यवस्था इस उद्देश्य से कर दी गई है ताकि कर्मचारियो एव सम्बन्धित अधिकारियो के मतभेदो को आपस मे दूर किया जा सके। इसके अतिरिक्त अनेक द्विदलीय ऐच्छिक समितियाँ भी बनाई गई है, जैसे कि उत्पादन समितियाँ (उत्पादन व कार्यक्षमता बढाने के लिये तथा विवेकीकरण की समस्याओ से निपटने के लिये, दुर्घटना रोक समितियाँ और कल्याण समितियाँ आदि। सन १९६२ मे, देश मे आपातकालीन स्थिति घोषित होने के पश्चात, अनेक उद्यमो मे आपातकालीन उत्पादन समितियाँ इस उद्देश्य से बनाई गई हैं ताकि उत्पादन के क्षेत्र म अच्छी उपलब्धियाँ हो सकें। प्रबन्ध म श्रमिको के भाग लेने की योजना के अन्तर्गत, जिस पर कि आजकल अधिक जोर दिया जा रहा है अनेक सस्थानो मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो (Joint Management Councils) का भी निर्माण किया गया है। (देखिए परिशिष्ट 'ग')।

औद्योगिक विवाद और श्रमिको की आर्थिक स्थिति

(Industrial Disputes and Economic Condition of Workers)

औद्योगिक विवादो की रोकथाम करने का एक उपाय उन कारणो को दूर करना है जो विवादो को जन्म देते है। इससे अच्छा और कोई तरीका नही हो सकता क्योंकि इससे अशान्ति की समस्या को समूल नष्ट किया जा सकेगा। श्रमिक अपनी कुछ आवश्यक मांगो की पूर्ति हेतु हडताल का सहारा लेते है। समय समय पर होने वाली हडतालो मे श्रमिको मे व्याप्त असन्तोष की अभिव्यक्ति मिलती है। हमने औद्योगिक विवादो के कारणो के विवेचन मे इस बात की ओर सकेत किया है कि विवादो का एक प्रमुख कारण मजदूरी के प्रश्न से सम्बन्धित है। भारतीय श्रमिक की मजदूरी बहुत कम है, साथ ही, बढती हुई कीमतो तथा बढती हुई निर्वाह लागत के सदर्भ मे यह सोचकर आश्चर्य होता है कि किस प्रकार से यह निर्धन व्यक्ति इस तुच्छ सी राशि मे निर्वाह कर पाता है। मालिक अपने लाभ मे से श्रमिको को हिस्सा देने मे आना कानी करते है और बोनस देने के प्रश्न पर कई बार झगडे हुये हैं। अत इस कारण को दूर करने के लिये श्रमिको की मजदूरी म वृद्धि की जानी चाहिये।

लिए एक अलग से केन्द्रीय कानून बनाया जाय। परिणामस्वरूप औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम [Industrial Employment (Standing Orders) Act] १९४६ में पारित किया गया जिसके अन्तर्गत केन्द्र सरकार ने उन आदर्श नियम बनाये, जिनका पालन उन औद्योगिक संस्थानों को करना था जिनमें १०० या उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। परन्तु प्रथम वैधानिक अधिनियम, जिसमें स्थायी आदेशों के भी उपबन्ध आ गये थे बम्बई का १९३८ का औद्योगिक विवाद अधिनियम था, जिसके अन्तर्गत सभी मालिकों को निर्धारित फार्म पर दो माह के अन्दर अनेक औद्योगिक विषयों से सम्बन्धित स्थायी आदेशों को श्रम कमिश्नर के सम्मुख प्रस्तुत करने का आदेश था।

१९४६ का औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम जम्मू कश्मीर राज्य को छोड़कर समस्त भारत में लागू होता है। सितम्बर १९७० से यह जम्मू-कश्मीर राज्य में भी लागू हो गया है। अधिनियम के अन्तर्गत उन सभी औद्योगिक संस्थाओं में, जिनमें १०० या उससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं स्थायी आदेश निश्चित करने की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत इस बात का उल्लेख है कि अधिनियम के कार्यान्वित होने के ६ माह के अन्दर अन्दर मालिकों को प्रमाण अधिकारी (Certifying Officer) के सम्मुख एक स्थायी आदेश प्रस्तुत करने होंगे जिनमें निम्नलिखित बातें होंगी—श्रमिकों का वर्गीकरण, उनको काम के घण्टे बताने की विधि, छुट्टियाँ, मजदूरी बाँटने का दिन, मजदूरी की दर, अवकाश के लिये प्रार्थना-पत्र की विधि, नौकरी की समाप्ति व मुअत्तली, अनुशासनात्मक कार्यवाही, आदि आदि। अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी औद्योगिक संस्थान में स्थायी आदेशों को प्रमाणित कराने से पूर्व श्रमिकों से परामर्श करने की भी व्यवस्था की गई है। प्रमाण अधिकारी श्रमिकों और मालिकों की आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए स्थायी आदेशों को प्रमाणित करता है। प्रमाण अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध औद्योगिक न्यायालय में अपील की जा सकती है। मालिकों को स्थायी आदेशों का मसौदा प्रस्तुत न करने पर दण्ड दिया जाता है जो जुर्माने के रूप में होता है। श्रम न्यायाधिकारियों को कार्य श्रम कमिश्नर करते हैं और जहाँ यह नहीं होते वहाँ अन्य किसी अधिकारी को यह कार्य सौंप दिया जाता है। अधिनियम को उन समाचार पत्र संस्थानों में भी लागू कर दिया गया है जहाँ २० या अधिक श्रमजीवी पत्रकार कार्य करते हैं। इस अधिनियम का प्रशासन केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारें अपने अपने क्षेत्र में करती हैं।

१९४६ के स्थायी आदेश अधिनियम में संशोधन
(Amendments to the Standing Orders Act of 1946)

यद्यपि अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को स्थायी आदेश बनाकर प्रमाण अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है तथापि इसमें प्रमाण अधिकारियों अथवा अपील अधिकारियों को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया था कि वे स्थायी आदेशों की अच्छाई (fairness) और औचित्य (reasonableness) के

बारे में कोई निर्णय दे सकें। अधिनियम का यह दोष अगस्त १९५६ में पारित औद्योगिक विवाद (संशोधन एवं विविध धारायें) अधिनियम द्वारा दूर कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम में भी कुछ आवश्यक संशोधन किए गए हैं। इसमें प्रमाण अधिकारी व अपील अधिकारियों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वे स्थायी आदेशों को प्रमाण-पत्र देने से पूर्व उनके औचित्य तथा न्याययुक्त होने का भी विचार कर सकें। १९४६ के अधिनियम के अन्तर्गत स्थायी आदेशों में संशोधन करने की प्रार्थना केवल मालिकों द्वारा ही की जा सकती थी, परन्तु अब इस प्रकार का अधिकार श्रमिकों को भी प्रदान कर दिया गया है। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि यदि स्थायी आदेशों के प्रश्नों पर मालिक-मजदूरों में कोई मतभेद हो तो उसको सुलझाया जा सके। अब सम्बन्धित पक्ष सरकार के हस्तक्षेप के बिना ही सीधे श्रम न्यायालय में निर्णय के लिए प्रार्थना कर सकते हैं। स्थायी आदेशों में प्रमाणन के बाद भी संशोधन किया जा सकता है।

१९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम में १९६१ और १९६३ में फिर संशोधन हुआ। संशोधित अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत उपयुक्त सरकारों को यह अधिकार मिल गया है कि वे अधिनियम को ऐसे औद्योगिक संस्थानों पर लागू कर सकती हैं जिनमें १०० से कम श्रमिक कार्य करते हों। सम्बन्धित सरकारें अब अतिरिक्त प्रमाण अधिकारी भी नियुक्त कर सकती हैं। अधिनियम के अन्तर्गत अपील करने का समय २१ दिन से बढ़ाकर ३० दिन कर दिया गया है। केन्द्रीय सरकार का इस अधिनियम के अन्तर्गत जो अधिकार हैं वे आवश्यकता पड़ने पर राज्य सरकारों को दिए जा सकते हैं। सम्बन्धित सरकारें किसी भी औद्योगिक संस्थान को अधिनियम के क्रियान्वयन से मुक्त कर सकती हैं। १९६३ में स्थायी आदेश अधिनियम में फिर संशोधन हुआ। इसकी मुख्य धारायें निम्नलिखित हैं—(क) जब तक स्थायी आदेशों का प्रमाणित न कर दिया जाए तब तक अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले सभी औद्योगिक संस्थानों पर सम्बन्धित सरकारों द्वारा बनाए गए आदर्श स्थायी आदेश लागू होंगे। (ख) अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित राज्य के औद्योगिक न्यायालयों का क्षेत्र उन्हीं संस्थानों तक सीमित रहेगा जो राज्य के अन्तर्गत आते हैं। (ग) प्रमाण अधिकारियों तथा अपील अधिकारियों को यह अधिकार दे दिया गया है कि स्थायी आदेशों में कोई भी लिपि की या हिसाब की त्रुटि हो तो उसको वे ठीक कर सकते हैं। (घ) राज्य सरकारें अधिनियम के अन्तर्गत अपने किसी भी अधिकार को अपने अधिकारियों को दे सकती हैं।

यह अधिनियम अब आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और पश्चिमी बंगाल के उन स्थानों पर लागू होता है जिन ५० या ५० से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। असम राज्य में यह (खानों, खदानों, तेल क्षेत्र तथा रेलों को छोड़कर) उन सभी संस्थानों में लागू होता है जिनमें १० या १० से अधिक श्रमिक काम करते हैं। तमिलनाडु में,

प्रकार के लागू किया जाए जिससे कि भारत में औद्योगिक संस्थानों से औद्योगिक विवादों का एक महत्वपूर्ण कारण समाप्त हो जाए। अब तक स्थायी आदेशों के प्रमाणीकरण की गति बहुत धीमी रही है। इसका कारण यह है कि मालिकों की ओर से पूर्ण सहयोग नहीं मिलता और वे आदेशों के दोषपूर्ण मसौदे प्रस्तुत कर देते हैं। इस सम्बन्ध में संशोधन की आवश्यकता है। सरकार तो इस विषय में अधिनियम बनाकर ही अपना कर्तव्य पूरा करती है। अब यह मालिकों और श्रमिकों विशेषकर मालिकों पर निर्भर है कि वे पारस्परिक विवादों और उद्योग सम्बन्धी विषयों का स्वयं निर्णय करें। स्थायी आदेश उद्योग-उद्योग में और संस्थान संस्थान में भिन्न पाए जाते हैं। इनमें समानता की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस विषय में यह सुझाव दिया जा सकता है कि श्रम सम्मेलन द्वारा कुछ आदेश स्थायी आदेश बना देने चाहिए जो विभिन्न संस्थानों में अपनाए जा सकें। इस बात की भी आवश्यकता है कि स्थायी आदेशों को ऐसी भाषा में छाप कर जो श्रमिक समझते हों उनमें वितरण कर देना चाहिए और समय समय पर श्रमिकों में उनकी व्याख्या कर देनी चाहिए। श्रमिकों में आदेशों के सम्बन्ध में अज्ञानता पाई जाती है और इस कारण कई अनावश्यक विवाद उत्पन्न हो जाते हैं।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद विधान
(Industrial Disputes Legislation in India)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि औद्योगिक विवादों की रोक-थाम उनके सुलझाने के उपायों की अपेक्षा सदैव ही उचित होती है। परन्तु इसमें बुद्धिमानी नहीं है कि विवादों की रोक-थाम पर ही निर्भर रहा जाय और उनके निपटारे के प्रश्न की उपेक्षा कर दी जाये। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि जब तक श्रम और पूँजी पृथक्-पृथक् हाथों में रहेंगे तब तक इन विवादों के पूर्णतया समाप्त हो जाने की कोई संभावना नहीं है। इसके अतिरिक्त भारत में राज्य को औद्योगिक शांति बनाने के लिए तथा सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिये और अधिक कार्य करने पड़ेंगे क्योंकि सरकारी क्षेत्र में धीरे-धीरे वृद्धि होती जा रही है और श्रमिकों के संगठन अभी तक शक्तिशाली नहीं हो पाये हैं और उनकी सौदाकारी की शक्ति भी कमजोर है। राज्य पर इस बात का भी उत्तरदायित्व है कि व ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करें जिनमें विभिन्न पक्ष आपस में मिल-जुल कर सहयोग और सहृदयता की भावना से विचार विमर्श कर सकें और अपने मतभेदों का निपटारा कर लें। सरकार द्वारा औद्योगिक शान्ति के लिए जो व्यवस्था की जाती है उसको दो शीर्षकों में बांटा जा सकता है—(१) परामर्श करने की व्यवस्था (Consultative Machinery), (२) सुलह और विवाचन व्यवस्था (Conciliation and Arbitration Machinery)। परामर्श करने की जो व्यवस्था है उससे औद्योगिक विवादों का निपटारा भी होता है और उनकी रोक-थाम भी की जा सकती है। ऐसी व्यवस्था प्रत्येक स्तर पर होती है, जैसे—संस्था, उद्योग, राज्य और राष्ट्र। संस्था के स्तर

थी तथा कोई भी विवाद इन संस्थाओं के सम्मुख समझौते हेतु प्रस्तुत किया जा सकता था। जाँच न्यायालय के सदस्य या तो एक स्वतन्त्र अध्यक्ष या कई अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति या केवल एक स्वतन्त्र व्यक्ति हो सकते थे। सुलह बोर्ड में एक स्वतन्त्र अध्यक्ष तथा दो अथवा चार सदस्य जो दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हों अथवा उनके द्वारा मनोनीत किये जाते हों, बराबर की संख्या में होते थे। सुलह बोर्ड में केवल एक स्वतन्त्र व्यक्ति भी हो सकता था।

अधिनियम के अनुसार जाँच न्यायालय का यह कर्त्तव्य था कि वह इसके सम्मुख आने वाले मामलों की जाँच-पड़ताल कर इस पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। सुलह बोर्ड का कर्त्तव्य यह था कि वह विवाद की जाँच पड़ताल कर आपस में समझौता कराने का प्रयत्न करे तथा दोनों पक्षों को इस बात के लिए प्रेरित करे कि वे एक निश्चित समय में आपस में समझौता कर लें। समझौता कराने में सफल होने की अवस्था में बोर्ड को नियुक्ति-प्राधिकारी को अपनी जाँच पड़ताल तथा सिफारिशों की विस्तृत रिपोर्ट देनी होती थी और उसके पश्चात् रिपोर्ट प्रकाशित कर दी जाती थी।

अधिनियम के दूसरे भाग के उपबन्ध जन-उपयोगी सेवाओं में हड़ताल से सम्बन्धित थे, जैसे—रेलवे, डाक-तार व टेलीफोन सेवायें, विद्युत एवं जलपूर्ति, स्वास्थ्य व सफाई सेवायें आदि-आदि। ऐसी सेवाओं में हड़ताल एवं तालाबन्दी करने से पूर्व १४ दिन की सूचना देना आवश्यक था। इस धारा को न मानने वालों के लिए विशेष दण्ड की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम में अवैध हड़तालों और तालाबन्दी की परिभाषा में वह विवाद भी सम्मिलित कर लिए गए जिनका उद्देश्य औद्योगिक विवाद के अतिरिक्त कुछ और हो अथवा जिनसे सर्वसाधारण को कष्ट हो। इस अधिनियम के द्वारा सहानुभूति के लिए की गई हड़तालों (Sympatheic strikes) को भी अवैध घोषित कर दिया गया। १६२६ के इस अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था थी कि श्रमिकों के हितों के लिये सरकारी श्रम अधिकारी (Labour Officers) नियुक्त किये जायें।

सन् १६२६ के अधिनियम के अन्दर कई दोष भी थे। उदाहरणतया इसमें औद्योगिक विवादों की रोकथाम के लिये किसी स्थायी प्रबन्ध की व्यवस्था नहीं थी। सहानुभूति में की गई हड़तालों को अवैध घोषित कर देने की भी आलोचना की गई। किसी भी बड़े विवाद को इस आधार पर अवैध घोषित किया जा सकता था कि उससे सर्वसाधारण को कष्ट पहुँच रहा है। जाँच न्यायालय तथा सुलह बोर्ड ऐसी स्थायी संस्थायें नहीं थीं जो उद्योग में होने वाले मामलों के निकट सम्पर्क में रह सकें, और स्थिति पर अपना बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण अपना सकें।

१६३४ व १६३८ के अधिनियम (Acts of 1934 and 1938)

१६२६ के अधिनियम में १६३२ में संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत सुलह बोर्ड व जाँच न्यायालय के सदस्यों को किसी भी गुप्त सूचना को प्रकट करने से मना कर

दिया गया और यदि वह ऐसा करते थे तो उन पर सरकार की आज्ञा से मुकदमा चलाया जा सकता था। १९२९ का अधिनियम सर्वप्रथम केवल पाँच वर्ष के लिये पारित किया गया था किन्तु १९३४ में एक संशोधन के द्वारा इसको स्थायी बना दिया गया और इसके उपबन्धों को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया। बम्बई सरकार ने भी १९३४ में जाँच न्यायालय व सुलह बोर्ड की नियुक्ति से सम्बन्धित उपबन्धों को स्पष्ट करने के लिये अलग कानून बनाया।

भारत सरकार ने इस अधिनियम में कुछ संशोधन करने के लिये एक विधेयक सन् १९३६ में प्रस्तुत किया जो कि अन्त में सन् १९३८ में अधिनियम के रूप में पारित हुआ जैसा कि रायल श्रम आयोग ने सुझाव दिया था। इस अधिनियम में सुलह अधिकारियों (Conciliation Officers) की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी जिनका कर्त्तव्य यह था कि वह औद्योगिक झगड़ों में मध्यस्थता करें और उनका निपटारा करने के लिये प्रयत्न करें। इस संशोधित अधिनियम के द्वारा औद्योगिक संघर्षों के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया गया और इसके अन्तर्गत मालिकों और कर्मचारियों के मतभेदों को भी ले लिया गया तथा जनोपयोगी सेवाओं के अन्तर्गत ट्राम्वे व जल यातायात को भी सम्मिलित कर लिया गया तथा अवैध तालाबन्दी व हड़ताल सम्बन्धी उपबन्ध भी कम प्रतिबन्धनात्मक (Restrictive) कर दिये गये। यद्यपि इस संशोधित अधिनियम द्वारा कुछ उन्नति हुई थी लेकिन फिर भी इसमें कुछ दोष रह गये। उदाहरणस्वरूप, औद्योगिक संघर्षों को सुलझाने के लिये कोई स्थाई प्रबन्ध की व्यवस्था नहीं थी तथा सुलह बोर्ड या जाँच न्यायालय के निर्णयों को विवाद से सम्बन्धित पक्षों के लिये मानना अनिवार्य नहीं था। इस कारण बम्बई सरकार ने सन् १९३४ और १९३८ में अपने अलग विधान बना लिए। बम्बई के १९३४ के औद्योगिक विवाद सुलह अधिनियम के अन्तर्गत सूती वस्त्र मिलों में काम करने वाले श्रमिकों के हितों की देखभाल करने, और उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिये श्रम अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई। श्रम कमिश्नर की नियुक्ति के लिये भी एक उपबन्ध था, ताकि वह उन विवादों में जहाँ कि श्रम अधिकारी असफल हो जाते थे, पदेन (Ex-Officio) अधिकारी के रूप में मुख्य सुलह अधिकारी का कार्य कर सके।

१९३८ का बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम
(Bombay Industrial Disputes Act of 1938)

प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् बम्बई सरकार ने तत्कालीन विधानों के दोषों को दूर करने तथा हड़तालों की एक लहर सी आ जाने के कारण सन् १९३८ में बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम कई बातों में बिल्कुल नया था और इसका आगे आने वाले विधान पर भी प्रभाव पड़ा। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य सुलह तथा विवाचन द्वारा औद्योगिक विवादों का शान्तिपूर्ण व मैत्रीपूर्ण ढंग से निपटारा करना था। इस अधिनियम ने विभिन्न प्रकार के संघ

में अन्तर किया, उदाहरणार्थ मान्यता-प्राप्त (Recognised) संघ, रजिस्टर्ड (Registered) संघ, योग्यतानुकूल (Qualified) संघ तथा प्रतिनिधि (Representative) संघ। अधिनियम की दूसरी विशेषता यह थी कि इसके अन्तर्गत कई प्राधिकारियों (Authorities) की नियुक्ति की व्यवस्था थी। श्रम कमिश्नर प्रधान मध्यस्थ समझौता अधिकारी बना दिया गया जिसका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण प्रान्त था इसके अतिरिक्त विवादों का निपटारा करने के लिये विशेष मध्यस्थ अधिकारियों की नियुक्ति की भी व्यवस्था थी। प्रान्तीय सरकार स्थानीय क्षेत्र अथवा उद्योगों के लिये श्रम अधिकारियों तथा सुलह बोर्ड की नियुक्ति भी कर सकती थी। मालिकों द्वारा श्रमिक संघों को मान्यता दी जाती थी और कोई भी श्रमिक इसका मामला प्रतिनिधि श्रमिक संघ अथवा श्रमिक प्रतिनिधि या श्रम अधिकारी के माध्यम से प्रस्तुत कर सकता था। प्रान्तीय सरकार मालिक तथा कानूनीय क्षेत्राधिकार से युक्त औद्योगिक न्यायालय (Industrial Court) या औद्योगिक विवाचक न्यायालय भी बना सकती थी। औद्योगिक न्यायालय एक महत्त्वपूर्ण संस्था थी, जो कि संघों के पंजीकरण, विवाचन, स्थायी आदेश, हड़ताल की वैधता आदि से सम्बन्धित विषयों का निर्णय करती थी और किसी को भी गवाही देने या सम्बन्धित कागजात प्रस्तुत करने का आदेश दे सकती थी। अधिनियम की एक और विशेषता यह थी कि इसमें स्थायी आदेशों के विषय में भी उपबन्ध थे, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस अधिनियम की एक अन्य विशेषता थी कि इसमें अवैध हड़तालों तथा तालाबन्दी की परिभाषा की गई थी। यदि कोई हड़ताल स्थायी आदेशों में उल्लिखित मामलों पर की जाती या जिसकी उचित सूचना नहीं दी जाती तो हड़ताल अवैध थी। यदि मामला समझौते की स्थिति में अथवा औद्योगिक न्यायालय के समक्ष हो तो हड़ताल की घोषणा नहीं की जा सकती थी और इस आधार पर तालाबन्दी करना भी अवैध था। मालिकों द्वारा श्रमिकों को सताने तथा स्वच्छन्द रूप से दण्ड देने के विरुद्ध भी उपबन्ध बनाये गये थे। अवैध हड़तालों तथा तालाबन्दी में भाग लेने वाला अथवा उसमें भाग लेने के लिये प्रोत्साहित करने वाले व्यक्तियों के लिये भी जो दूसरों को ऐसी हड़तालों में भाग लेने के लिये उनके लिये चन्दा जमा करते थे, कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई थी। समझौता कार्यवाही के समय में मालिक भी रोजगार की शर्तों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते थे जब तक कि ऐसा परिवर्तन पहले से अच्छी व्यवस्था न करता हो।

१९३८ का बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम आगे के विधान के लिये अग्रणी था और इस विषय पर पूर्व के अधिनियमों से पूर्णतया भिन्न था। इसने (सुलह तथा विवाचन के द्वारा) औद्योगिक झगड़ों का निपटारा करने के लिये व्यापक साधनों की व्यवस्था की। परन्तु इस अधिनियम की भी कई बातों पर आलोचना की गई। उदाहरणार्थ अनिवार्य समझौता की धारा, श्रमिक संघों का विभागीकरण सुलह प्रणाली की प्राधिकारिक प्रवृत्ति तथा अवैध हड़तालों में भाग लेने वालों को

कठोर दण्ड की व्यवस्था आदि ऐसे ही अनेक उपबन्ध उस समय के नेताओ को अप्रिय लगे। परन्तु अधिनियम के कार्यान्वित होने के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि अधिकाश आपत्तियाँ राजनैतिक ही थी और यदि कोई उचित आलोचना की जा सकती थी तो वह केवल श्रमिक सघो के वर्गीकरण की थी।

युद्धकाल मे औद्योगिक विवाद विधान

(Industrial Disputes Legislation During the War)

युद्धकालीन परिस्थितियो ने औद्योगिक सघर्ष की दृष्टि से अनेक आवश्यक पग उठाने के लिये सरकार को विवश कर दिया। एक आपत्तिकालीन पग के रूप मे *असीमित उत्पादन की आवश्यकता के कारण* १९४१ और १९४२ म १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम म सशोधन किये गये। प्रथम सशोधन से तो सरकार को इस बात का अधिकार मिल गया कि वह कोई भी औद्योगिक विवाद औद्योगिक विवाचन न्यायालयो को सौप सकती थी यदि सरकार यह समझे कि विवाद से घोर अव्यवस्था फैलेगी या सम्बन्धित उद्योग पर दूषित प्रभाव पडेगा या समाज को बहुत समय तक कष्ट होगा। सन १९४२ के सशोधित अधिनियम द्वारा मालिको को कार्य के घण्टे और विश्राम समय मे परिवर्तन करने की छूट दे दी गई। बम्बई मे तीसरा सशोधित अधिनियम १९४५ मे पारित किया गया जिसके अन्तर्गत श्रम अधिकारियो को अधिकार दिया गया कि वह श्रमिको की कोई भी मीटिंग उस कारखाने मे बुला सकते थे जहाँ वे कार्य करते हो, *यदि मालिक को आज्ञा दी गई हो तो मीटिंग की* घोषणा करने को वह मना नही कर सकते थ।

जनवरी १९४२ म, भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules) के अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार मिल गया कि वह साधारण अथवा *स्थानीय क्षेत्र की आवश्यकताओ को देखते हुये कई प्रकार के विशेष आदेश बना सके।* इन आदेशो मे वह किसी भी हडताल अथवा तालाबन्दी को अवैध घोषित कर सकती थी और किसी भी विवाद को *सुलह या विवाचन के लिये सौप सकती थी।* मालिको को इस बात के लिये विवश कर सकती थी कि वह रोजगार की कुछ विशेष शर्तों को लागू करें। सरकार विवाचन निर्णयो को भी लागू कर सकती थी। उसी वर्ष मई मास मे ऐसे ही अधिकार प्रान्तीय सरकार को दे दिये गये और अगस्त मे चौदह दिन की पूर्व सूचना बिना हडताल तथा तालाबन्दी निषेध कर दिये गये। उस तमाम अवधि के लिये भी हडताल तथा तालाबन्दी करना अवैध घोषित कर दिया गया जब कोई विवाद कानूनी जाँच, सुलह या विवाचन के लिय प्रस्तुत हो। निर्णय के पश्चात् दो महीने तक हडताल तथा तालाबन्दी निषेध थे। अप्रैल १९४३ मे, जान बूझकर काम बन्द करना या कार्यस्थान पर एकत्रित कर्मचारियो को काम करने से मना करना निषेध घोषित कर दिया गया, सिवाय उस अवस्था के जबकि काम बन्द करना उनके किसी ऐसे व्यावसायिक विवाद के कारण हो जिससे कि उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो।

सन् १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम
(The Industrial Disputes Act of 1947)

युद्धकालीन विधान जिनका कि ऊपर उल्लेख किया गया है ३० सितम्बर १९४६ में निष्क्रिय हो गये। परन्तु युद्धकालीन अनुभवों से सरकार आश्वस्त हो गई थी कि इस प्रकार के नियम बहुत लाभदायक हैं और यदि यह देश के स्थायी श्रम कानूनों में सम्मिलित कर लिये जाते हैं तब यह युद्धोपरान्त औद्योगिक परिवर्तनों के कारण निरन्तर बढ़ रही औद्योगिक अशान्ति को रोकने में बहुत सहायक सिद्ध होंगे। फलतः सन् १९४७ में केन्द्रीय सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया जिसने १९२९ के व्यवहार विवाद अधिनियम को निरस्त (Repeal) कर दिया। प्रान्तीय क्षेत्रों में इस सम्बन्ध में अधिनियम १९४७ में बम्बई उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में पारित किये गये। सन १९४७ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम ने १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम को निरस्त (Repeal) कर दिया।

भारत सरकार का १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम पहली अप्रैल १९४७ से लागू किया गया। प्रारम्भ में जम्मू-कश्मीर को छोड़कर यह सम्पूर्ण भारत में लागू था किन्तु १ सितम्बर १९७१ से यह जम्मू-कश्मीर राज्य में भी लागू हो गया। इस अधिनियम में पिछले अधिनियमों के बहुत से उपबन्ध वैसे ही रहे परन्तु इस नये अधिनियम में औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिये दो नई संस्थाओं की व्यवस्था की गई अर्थात मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों द्वारा बनी हुई मालिक मजदूर समितियाँ और औद्योगिक अधिकरण जिनमें एक या दो ऐसे सदस्य हों जिनमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने की योग्यता हो। (१९५६ के संशोधन के अनुसार निर्वाचन के लिये अब श्रम न्यायालय औद्योगिक अधिकरण और राष्ट्रीय अधिकरणों की व्यवस्था की गई है।) इस अधिनियम के अन्तर्गत उपयुक्त सरकारों को ऐसे औद्योगिक संस्थानों में जिनमें १०० या उनसे अधिक कर्मचारी कार्य करते हों मालिक मजदूर समितियाँ बनाने का अधिकार दे दिया गया जिनका उद्देश्य यह था कि मालिक व श्रमिकों के दैनिक संघर्षों को सुलझाकर उनमें सद्भावना एवं मधुर सम्बन्ध स्थापित करें। औद्योगिक अधिकरण या श्रम न्यायालय के सम्मुख मामला तब जायेगा जब किसी विवाद के दोनों पक्ष मामले को इनके सामने ले जाने की प्रार्थना करें अथवा उपयुक्त सरकारें उनको मामला सौंपना उचित समझे। अधिकरण के पंचाट अथवा निर्णय साधारणतया सरकार द्वारा लागू होंगे और जो भी समय निर्धारित किया जाये उस समय तक दोनों पक्षों के लिये मान्य होंगे। सम्पूर्ण समझौता व्यवस्था को एक नवीन रूप देना, अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके अन्तर्गत उपयुक्त सरकारों को समझौता अधिकारी नियुक्त करने का अधिकार भी प्रदान किया गया है। इन अधिकारियों का कार्य यह है कि वह किसी भी विशेष क्षेत्र या विशेष उद्योग अथवा विभिन्न उद्योगों में औद्योगिक संघर्षों के निपटाने का प्रयत्न करें या उनको सुलझाने के लिये मध्यस्थता करें। अधिनियम इस बात का

अवस्था मे इसको विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा जब कि विवाचन-निर्णय को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है या उसमे संशोधन कर सकती है और सरकार को उस निर्णय को लागू करना आवश्यक होगा। इस प्रकार १९४७ के इस अधिनियम मे अनिवार्य विवाचन के सिद्धान्त को अपनाया गया है क्योकि राज्य सरकारें किसी भी विवाद को विवाचन के लिए अधिकरण को प्रस्तुत कर सकती है और उसके निर्णय को मानना बाध्य होता है।

अधिनियम की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत सरकार को जनोपयोगी सेवाओ मे होने वाले सभी विवादो को समझौते के लिए अनिवार्य रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक है तथा अन्य मामलो मे सरकार निर्णय स्वयं कर सकती है। जनोपयोगी सेवाओ मे यदि उचित सूचना नही दी गयी है तब हड़ताल या तालाबन्दी करना अवैध घोषित कर दिया गया है। जनोपयोगी सेवाओ मे कोई भी कर्मचारी ६ सप्ताह की निश्चित रूप म पूर्व सूचना दिये बिना, अथवा ऐसी सूचना की समाप्ति के १४ दिन पश्चात् तक अथवा सुलह कार्यवाही चलने की अवधि मे तथा ऐसी कार्यवाही की समाप्ति के सात दिन पश्चात तक, हड़ताल नही कर सकता। इसी प्रकार सुलह कार्यवाही के चलने समय और उसकी समाप्ति के ७ दिन पश्चात् तक तथा अधिकरण की कार्यवाही चलने समय या उसके निर्णय के दो मास पश्चात् तक तथा उस अवधि के लिए जिसमे विवाचन निर्णय लागू रहेगा, हड़तालो पर आम रोक लगा दी गई है। अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को यह भी अधिकार है कि विशेष सेवाओ को जनोपयोगी सेवाएँ घोषित कर सकती है और समय समय पर राज्य सरकारें इस अधिकार का प्रयोग भी करती है। अधिनियम मे तब भी दण्ड की भी व्यवस्था है जब की कोई अवैध हड़ताल और तालबन्दी मे भाग ले (एक मास तक के कारावास अथवा ५० रु० तक का दण्ड अथवा दोनो) या किसी भी अवैध हड़ताल और तालाबन्दी को उत्साह अथवा आर्थिक सहायता दे (६ मास तक का कारावास अथवा १००० रु० तक का दण्ड अथवा दोनो)। अवैध हड़ताल मे भाग लेने से इन्कार करने वाले श्रमिको की सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है। कार्यवाही चलते समय कोई भी मालिक श्रमिक की रोजगार शर्तो मे परिवर्तन नही कर सकता और न ही किसी कर्मचारी को सजा दे सकता है सिवाय उन मामलो मे जिनमे कर्मचारियो का दुर्व्यवहार हो और वह मामला विवाद के विषय से सम्बन्धित न हो। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति अधिनियम अथवा उसके अन्तर्गत दिये गये फैसले की धाराओ का उल्लंघन करता है तो उसे ६ मास तक का कारावास अथवा दण्ड अथवा दोनो की सजा दी जा सकती है और वसूल किये गये दण्ड को पीड़ित पक्ष को क्षति पूर्ति के रूप म दिया जा सकता है। कोई भी हड़ताल या तालबन्दी, जिसकी घोषणा किसी अवैधानिक तालाबन्दी या हड़ताल के परिणामस्वरूप की गयी हो, अवैध नही मानी जाती। अधिनियम मे उस वित्तीय सहायता पर रोक लगाई गई है जो कि किसी अवैधानिक हड़ताल या तालाबन्दी को प्रत्यक्ष रूप से आगे बढ़ाने के लिए दी गयी हो।

१९४७ के इस अधिनियम को देश के औद्योगिक विवाद विधान मे एक उन्नतिशील पग कहा जा सकता है। इसमे विवादो का मूलज्ञान की व्यापक व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम की अधिकतर आलोचना अनिवार्य समझौते तथा अनिवार्य निर्वाचन पर की गई रही है। इस समस्या की हम अगले पृष्ठों पर विवेचना करेंगे। अवैध हड़तालो से सम्बन्धित उपबन्ध और सरकार के पच फैसलो को लागू करने के अधिकार की भी आलोचना की गई है।

भारत सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबन्धों की शेषपूर्ति करने तथा कुछ विशेष स्थितियों का सामना करने के लिए कुछ अध्यादेश (Ordinances) व सशोधन अधिनियम पारित किए है। एक से अधिक राज्यो मे शाखा रखने वाली बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियो मे अलग अलग निर्वाचन मे उत्पन्न कठिनाइयो को दूर करने के हेतु अप्रैल १९४९ मे औद्योगिक विवाद (बैंकिंग तथा बीमा कम्पनिया) अध्यादेश पारित किया गया, जिसको दिसम्बर सन १९४९ मे एक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित (Replace) कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत सन् १९४७ के अधिनियम को सशोधित करके इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियों की उन सस्थानो की सूची मे सम्मिलित कर लिया जाय जिनमे कि केवल केन्द्रीय सरकार को समझौता बोर्ड, न्यायालयो व अधिकरणो की स्थापना कर सकती है। फलत केन्द्रीय सरकार ने जून १९४९ मे एक औद्योगिक अधिकरण की स्थापना की और विभिन्न बैंकिंग कम्पनियो के विवादो को इसको सौंप दिया।

१३ जून १९४९ को एक अध्यादेश औद्योगिक अधिकरण बोनस भुगतान (राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र) [Industrial Tribunal Payment of Bonus, (National Savings Certificates) Ordinance] जारी किया गया। इसके *अन्तर्गत औद्योगिक अधिकरण को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह बोनस का ४०% भाग तक राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रो म देने का आदेश दे सकती है। इन प्रमाणपत्रो का मूल्य भी यही अधिकरण निश्चित कर सकती है। परन्तु इन प्रमाणपत्रो द्वारा दी गयी राशि बोनस की नकदी राशि से कम नही होनी चाहिए। केन्द्रीय सरकार को इस सम्बन्ध मे उत्पन्न हुई कठिनाइयो को दूर करने के लिए आवश्यक नियम बनाने के अधिकार भी दे दिये गये है। सन् १९३६ के मजदूरी भुगतान अधिनियम* (Payment of Wages Act) *के अन्तर्गत इस प्रकार के भुगतान म जो कुछ कानूनी कठिनाइयां थी इस अध्यादेश के द्वारा वे भी दूर कर दी गई है।*

मद्रास म उस समय एक रोचक विषय उच्च न्यायालयो के एक निर्णय के कारण उठ खड़ा हुआ। न्यायालय ने घोषित कर दिया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम मे अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार नही था कि वह सभी

सम्भावित विवादों को औद्योगिक अधिकरण को सौंप दे। अन अप्रैल १६३६ में औद्योगिक विवाद (मद्रास मशोधन) अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत यह उपबन्ध बना दिया गया कि मद्रास सरकार द्वारा अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित किये गये औद्योगिक अधिकरण के किसी भी पच फैसलों का कोई भी न्यायालय इस आधार पर अवैध घोषित नहीं कर सकता कि वह अधिकरण कानूनी नहीं है। संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत मद्रास सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि वह न केवल उन्हीं उद्योगों को जिनका अधिनियम में उल्लेख किया गया है वरन् किसी भी उद्योग को जनोपयोगी उद्योग घोषित कर सकती है।

१६५० में एक और महत्वपूर्ण अधिनियम, औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) (Industrial Disputes [Appellate Tribunal] Act) पारित किया गया। १६४७ के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना होती थी। परन्तु किसी भी समन्वित (Co-ordinating) और पुनर्विलोकिनी (Reviewing प्राधिकारी) (Authority) के अभाव में तथा किसी मार्ग दर्शक नीति के न होने के कारण अनेक अधिकरणों ने कई महत्त्वपूर्ण मामलों पर विभिन्न मत अभिव्यक्त किये थे। विभिन्न राज्यों में और कभी-कभी एक ही राज्य में अधिकरणों द्वारा लिये जाने वाले विभिन्न निर्णयों से कुछ ऐसी नीति-विरुद्ध बातें उत्पन्न हो गई जिनसे न केवल मालिकों में बल्कि श्रमिकों में भी असन्तोष व्याप्त हो गया। इस परिस्थिति का सामना करने के लिये भारत सरकार ने अपीलीय न्यायालय स्थापित करने का निश्चय किया तथा मई १६५० में औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत अपीलीय अधिकरण की स्थापना की व्यवस्था थी तथा औद्योगिक विवाद सम्बन्धी कानूनों में कुछ परिवर्तन किये गये। उदाहरणस्वरूप, अधिकरण के विवाचन निर्णय को राज्य सरकार द्वारा लागू करने के लिये कुछ उपबन्ध बनाये गये तथा न्यायालय या अधिकरण के समक्ष औद्योगिक विवादों में वकीलों के आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अपीलीय अधिकरणों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे किसी भी विवाचन अधिकारी के निर्णय अथवा पच फैसले के विरुद्ध अपील सुन सकें, जब भी ऐसी अपील उपयुक्त सरकारों अथवा असन्तुष्ट पक्ष द्वारा की जाय। अपीलीय अधिकरण के समक्ष केवल कुछ ही विषयों पर अपील हो सकती थी। उदाहरणार्थ, वित्त सम्बन्धी मामले, पदों के अनुसार वर्गीकरण, कर्मचारियों की छँटनी, कानूनी प्रश्न आदि। १६५६ के एक संशोधित अधिनियम द्वारा अब इस १६५० के अधिनियम को निरसित (Repeal) कर दिया गया है।

१६४७ के अधिनियम में १६५१ में पुनः संशोधन किया गया जिसका उद्देश्य यह था कि अधिकरणों में रिक्त स्थानों की पूर्ति से सम्बन्धित मामलों में जो दोष थे उनको दूर कर दिया जाय। १६५१ में एक अध्यादेश के द्वारा अधिनियम में पुनः

जाएगी, अगर इस अवधि मे श्रमिक को पुन जबरी छुट्टी नही दी जाती। (सन् १९६५ मे सशोधन करके ऐसी व्यवस्था कर दी गई है कि अब पहले ४५ दिन बीत जाने के पश्चात् भी क्षतिपूर्ति नही दी जा सकती है।)

अन्य महत्त्वपूर्ण सशोधन बैकिंग विवादो के सम्बन्ध मे हुये है। अप्रैल १९५४ मे श्रम अपीलीय अधिकरण ने अखिल भारतीय औद्योगिक अधिकरण (बैक विवाद) के पच फैसले पर अपना निर्णय दिया जो कि शास्त्री अधिकरण के रूप मे जाना जाता है। कानून द्वारा सरकार को निर्णयो के सम्बन्ध मे सोच विचार करने के लिये प्रदान की गई ३० दिन की अवधि को परिस्थितियो को देखते हुए अपर्याप्त समझा गया था। फलत १९५० के औद्योगिक विवाद अपीलीय अधिकरण अधिनियम मे एक अध्यादेश द्वारा सशोधन किया गया जिससे अवधि ३० दिन से बढाकर १२० दिन कर दी गई। विषय पर विचार करने के बाद २४ अगस्त सन् १९५४ को सरकार ने एक आदेश जारी किया जिसके अन्तर्गत श्रम अपीलीय अधिकरण के निर्णय की कई बातो मे सशोधन कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप श्री वी० वी० गिरि ने श्रम मन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया गया तथा बैक कर्मचारियो द्वारा घोर असन्तोष व्यक्त किया गया व आशिक हडतालें हुई। सरकार ने न्यायाधीश पी० एस० राज्याध्यक्ष की अध्यक्षता मे अनेक प्रश्नो पर जाँच कराई। दुर्भाग्यवश फरवरी १९५५ मे न्यायाधीश राज्याध्यक्ष का स्वर्गवास हो गया, उनके स्थान पर न्यायाधीश बी० पी० गजेन्द्रगडकर नियुक्त किय गये। गजेन्द्रगडकर आयोग ने विस्तृत जाँच पडताल के पश्चात् जुलाई १९५५ मे सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। सरकार ने आयोग की सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली। इन सिफारिशो को लागू करने के हेतु आवश्यक विधान भी बनाया गया जो औद्योगिक विवाद (बैक कम्पनी) निर्णय अधिनियम के नाम से अक्टूबर १९५५ मे पारित हुआ। १९५८ मे इसमे कुछ महगाई भत्ते से सम्बन्धित सशोधन कर दिये गये हैं।

अन्य महत्त्वपूर्ण सशोधन अगस्त १९५६ मे औद्योगिक विवाद (सशोधन और विविध उपबन्ध) के नाम से हुआ है। इस अधिनियम ने सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम तथा सन् १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थाई आदेश) अधिनियम मे अनुभव की जा रही आवश्यकताओ को पूरा किया है। इस अधिनियम के द्वारा सन् १९५० के औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम को निरसित कर दिया गया। अधिनियम की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं (१) कर्मचारी शब्द की नई परिभाषा की गई है और उसके अन्तर्गत उन निरीक्षक कर्मचारियो को सम्मिलित कर लिया गया है जिनकी मासिक आय ५०० रु० से कम है तथा जो मुख्यत प्रबन्ध का काय नही करते। सभी सरकारी कर्मचारी भी इस नई परिभाषा के अन्तर्गत आ जाते है। कोई भी म [illegible] कुछ विशेष मामलो मे, जैसे—मजदूरी प्राविडण्ट फण्ड मे अशदान, काम के

घण्टे आदि मे श्रमिकों को २१ दिन की सूचना दिये बिना कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। (३) मालिकों को यह अधिकार दे दिया गया है कि अगर किसी विवाद के मामले पर विचार भी हो रहा है तब भी अगर आवश्यक समझें तो श्रमिक के विरुद्ध ऐसे मामले मे कार्यवाही कर सकते है जिसका विवाद से कोई सम्बन्ध न हो। परन्तु ऐसी कार्यवाही द्वारा यदि श्रमिक को बर्खास्त किया जाता है तो विवाद से सम्बन्ध रखने वाले प्राधिकारी की आज्ञा लेना अनिवार्य हैं। (४) सन् १९५० के औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम को निरसित कर दिया गया तथा अधिकरणों की वर्तमान प्रणाली को अब अधिकरणों की त्रिश्रेणी पद्धति द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। ये न्यायालय निम्नलिखित है—(क) श्रम अदालत, (ख) औद्योगिक अधिकरण, तथा (ग) राष्ट्रीय अधिकरण। *श्रम अदालत का कार्य कुछ छोटे विशेष प्रश्नों पर विवाचन करना है* जैसे—मालिक द्वारा दिये गये आदेश की वैधता अथवा औचित्य श्रमिकों को पदच्युत अथवा बर्खास्त या बहाल करना किसी परम्परागत छूट अथवा सुविधा की वापिसी, किसी हड़ताल अथवा तालाबन्दी की अवैधानिकता आदि। औद्योगिक अधिकरणों का क्षेत्र अधिक विस्तृत है तथा कुछ ऐसे विषयों से सम्बन्धित है, जैसे कि मजदूरी तथा भत्ते, काम के घण्टे, छुट्टी तथा अवकाश, बोनस आनुतोषिक (gratuity), निर्वाह निधि, पारियाँ (shifts) अनुशासन के नियम, विवेकीकरण, छटनी, संस्थानों का बन्द करना आदि। ये मामले श्रम न्यायालयों के विचाराधीन मामलों से अलग थे। राष्ट्रीय अधिकरणों की स्थापना केवल केन्द्र सरकार द्वारा ही की जा सकती है। *इनका कार्य ऐसे विवादों पर निर्णय देना होता है* जो राष्ट्रीय महत्त्व के है तथा जो एक से अधिक राज्यों में स्थापित संस्थानों को प्रभावित करते हैं। श्रम न्यायालयों तथा औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना *केन्द्र सरकार तथा राज्यों की सरकार, दोनों ही द्वारा की जा सकती है।* (५) अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि दोनों पक्ष किसी भी विवाद को स्वयं ही एक लिखित समझौते द्वारा पंच फैसले के लिये सौंप सकते हैं। इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि सुलह कार्यवाही के अतिरिक्त अगर कोई भी समझौता होता है तो उसको भी मालिकों व श्रमिकों पर लागू किया जा सके। (६) विवाचन निर्णयों को लागू कर दिया गया है इस बात को सुनिश्चित करने के लिये दण्ड में वृद्धि कर दी गई है। (७) बैंकों, सीमेंट उद्योग सुरक्षा उद्योग, *हस्पताल, औषधालय, दमकल (Fire Brigade) सेवाओं* को भी सार्वजनिक उपयोगी सेवायें घोषित किया जा सकता है। (८) इस अधिनियम के अन्तर्गत १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम में भी कुछ आवश्यक संशोधन किये गये है जिनका उल्लेख स्थायी आदेशों के अन्तर्गत किया जा चुका है।

सितम्बर १९५६ में एक और संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत १९५३ के

संशोधित अधिनियम में जबरी छुट्टी व छटनी के समय क्षतिपूर्ति देने के विषय में उत्पन्न हुए कुछ संदेहों का समाधान कर दिया गया। अब ऐसी शर्तें भी लागू कर दी गई है जिनके अन्तर्गत एक संस्थान के प्रबन्ध अथवा स्वामित्व के हस्तातरण होने के समय भी श्रमिकों को छटनी-क्षतिपूर्ति दी जा सके। परन्तु नवम्बर १९५६ में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि किसी उद्योग के उचित तथा वास्तविक रूप में बन्द होने तथा उसके एक मालिक से दूसरे मालिक को हस्तातरण होने की अवस्था में यदि श्रमिक की नौकरी समाप्त कर दी जाती है तब उसे कोई छटनी-क्षतिपूर्ति नहीं दी जायेगी। इसके परिणाम-स्वरूप श्रमिकों को काफी कठिनाइयाँ हुई क्योंकि अहमदाबाद, कानपुर तथा पश्चिमी बगाल के कई संस्थान बन्द हो गये और उन्होंने अपने श्रमिकों को, जो नौकरी से अलग हो गये थे, कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी। अतः सरकार ने अप्रैल १९५७ में एक अध्यादेश जारी किया जो जून १९५७ के औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम के द्वारा विस्थापित कर दिया गया। इसके अनुसार किसी भी उद्योग के उचित कारणों से बन्द होने तथा स्वामित्व के हस्तान्तरण होने पर भी छटनी-क्षतिपूर्ति दी जायेगी। इसको १ दिसम्बर १९५६ से कार्यशील किया गया। इस बात की व्यवस्था की गई है कि कोई क्षतिपूर्ति उस समय नहीं दी जायेगी जबकि श्रमिक को उद्योग के हस्तातरण की अवस्था में ऐसी शर्तों पर पुनः कार्यों पर लगा लिया जाता है जो पहले से कम अनुकूल नहीं है अथवा यदि उद्योग किसी निर्माण कार्य में व्यस्त है और कार्य के पूरा हो जाने के कारण दो ही वर्षों में बन्द हो गया है। इस बात की भी व्यवस्था है कि अगर कोई व्यवसाय मालिक की शक्ति से बाहर की परिस्थितियों के कारण बन्द हुआ है तब श्रमिक को अधिक से अधिक मिलने वाली क्षतिपूर्ति उसकी तीन मास की औसत आय के बराबर होगी।

अधिनियम में सन् १९६४ तथा १९६५ में पुनः संशोधन किया गया। सन् १९६४ में औद्योगिक विवाद संशोधन अधिनियम पास किया गया जिसे १९ दिसम्बर १९६४ से लागू किया गया। इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं—(क) वायु परिवहन को स्थायी रूप से सार्वजनिक उपयोगी सेवा घोषित कर दिया गया है। (ख) केन्द्र व राज्य सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे अपने क्षेत्र में किसी भी उद्योग को जनोपयोगी सेवा घोषित कर सकती हैं। (ग) विवाचकों की रायों में यदि मतभेद हो तो उसके लिये एक निर्णायक नियुक्त किया जा सकता है। (घ) विवाचन-कार्यवाही के काल में हड़तालों व तालाबन्दियों को अवैध घोषित कर दिया गया है। (ङ) किसी भी विवाचन निर्णय या समझौते को उचित सूचना द्वारा केवल श्रमिकों के बहुमत द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। (च) किसी लायसेंस या पट्टे की समाप्ति के कारण किसी संस्थान के बन्द होने पर श्रमिकों को पूर्ण क्षतिपूर्ति मिलेगी। (छ) मालिकों पर जो धनराशि निकलती है उसको वसूल करने के लिये एक संशोधित कार्य विधि बनाई गई है।

सन् १९६५ के औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम जो कि १ दिसम्बर १९६५ से लागू किया गया, के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार थे (क) 'औद्योगिक विवाद" की परिभाषा को विस्तृत किया गया ताकि व्यक्तिगत पदच्युति तथा बर्खास्तगी के मामले भी इसकी परिधि में लाये जा सकें, (ख) दोष प्रमाणित होने पर भी यदि पंचनिर्णयों तथा समझौतों को लागू न किया जाय तो उसके लिये दण्ड की व्यवस्था की गई, (ग) भारतीय वायु परिवहन, अन्तराष्ट्रीय भारतीय वायु परिवहन से सम्बन्धित विवादों को केन्द्रीय क्षेत्र में सम्मिलित किया गया, और (घ) पहले ४५ दिन बीत जाने के पश्चात् भी सभी दिनों की जबरी छुट्टी की क्षतिपूर्ति अदा की जायगी।

औद्योगिक विवाद अधिनियम में संशोधन करने के लिये दो विधेयक (bills) प्रस्तुत किये गये थे। इनमें से एक ३० नवम्बर १९६७ को तथा दूसरा २६ नवम्बर १९६८ को राज्य सभा द्वारा पास भी कर दिये गये थे। परन्तु वे लोक सभा द्वारा अभी पास भी नहीं हुए थे कि सन् १९६९ में लोक सभा भंग हो गई और इसके साथ ही वे दोनों विधेयक भी रद्द हो गये। इसके बाद औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम १९७१ संसद् के दोनों सदनों द्वारा पास किया गया। ८ दिसम्बर १९७१ को इसको राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और १५ दिसम्बर १९७१ को यह लागू हो गया। इस संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत (१) औद्योगिक वित्त निगम तथा भारतीय जीवन बीमा निगम से सम्बन्धित औद्योगिक झगड़ों के विषय में केन्द्र सरकार को ही उपयुक्त सरकार घोषित किया गया (२) बन्दरगाहों तथा गोदियों को स्थायी उपयोगी सेवायें घोषित किया गया (३) अनेक उद्यम जो केवल वित्तीय कठिनाइयों या हानियों या बिना बिके माल के संग्रह के कारण अथवा पट्टे या लायसेन्स की अवधि बीत जाने के कारण बन्द कर दिये गये, अथवा खानों की स्थिति में खनिजों का पूर्ण शोषण होने के कारण बन्द कर दिये गये थे, वे केवल इस कारण ही बन्द नहीं माने जायेंगे कि वे मालिक के नियन्त्रण से बाहर की कुछ अनुपेक्षणीय परिस्थितियों के कारण बन्द किये गये हैं और यह कि अब उनके सम्बन्ध में श्रमिकों को सीमित मात्रा में ही क्षतिपूर्ति देय होगी (इस अधिनियम के अन्तर्गत/अब श्रमिकों को पूर्ण क्षतिपूर्ति प्रदान की जायगी), और (४) श्रम न्यायालयों एवं न्यायाधिकरणों (Tribunals) को यह अधिकार दिया गया कि वे नौकरी से हटाये जाने या बर्खास्त करने तथा छंटनी किये जाने के गुण-दोष की गहराई में जा सकें तथा पदच्युति या बर्खास्तगी के आदेश को रद्द कर सकें और श्रमिकों को प्रत्यक्ष रूप से बहाल कर सकें अथवा श्रमिकों को अन्य कोई सहायता या छूट दे सकें अथवा यथोचित रीति से पदच्युति या बर्खास्तगी के स्थान पर अन्य कोई हल्का दण्ड दे सकें।

२८ अगस्त १९७१ को भारत के राष्ट्रपति ने औद्योगिक विवाद (पश्चिमी

बगान सशोधन) अधिनियम १६७१ को भी कानूनी स्वीकृति प्रदान की । इस अधिनियम के अन्तर्गत मालिको द्वारा उद्यमो को बन्द करने से पूर्व दो माह का नोटिस देने की व्यवस्था है ।

जून १६७२ मे अधिनियम (Act) मे फिर सशोधन किया गया । औद्योगिक **विवाद (सशोधन) अधिनियम १६७२** मे यह प्रावधान किया गया है कि यदि कोई मालिक अपने उद्यम को बन्द करना चाहता है तो उसे बन्द करने की सम्भावित तिथि से कम से कम ६० दिन पूर्व उपर्युक्त सरकार को निर्धारित रीति से इसका नोटिस देना होगा जिसमे उद्यम को बन्द करने के कारणो का भी स्पष्ट उल्लेख होगा । यह अधिनियम उस उद्यम पर लागू नही होता है जिसमे की ५० से कम कर्मचारी काम कर रहे हो अथवा जिसमे पिछले १२ महीनो मे प्रतिदिन औसतन ५० से कम कर्मचारी काम कर रहे हो । किन्तु उन उद्यमो के बारे मे ऐसा नोटिस देना अनिवार्य नही होगा जो कि भवनो, सडको नहरो, बाधो तथा प्रायोजनाओं आदि के निर्माण के लिए स्थापित किये गये हैं ।

इस अधिनियम मे १६७६ मे फिर सशोधन किया गया और इसे औद्योगिक विवाद (सशोधन) अधिनियम, १६७६ नाम दिया गया । १६ फरवरी, १६७६ को राष्ट्रपति ने इसे स्वीकृति प्रदान की और ५ मार्च, १६७६ से यह लागू हो गया। सशोधित अधिनियम के प्रावधान के अनुसार, ३०० अथवा इससे अधिक कर्मचारियो वाली फैक्टरियो, खानो तथा बागानों जैसे औद्योगिक प्रतिष्ठानो के मालिको के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि वे कर्मचारियो की जबरी छुट्टी करने अथवा उनकी छटनी करने से पूर्व विशिष्ट प्राधिकारी की पूर्वानुमति प्राप्त करें । किन्तु ऊर्जा की कमी अथवा प्राकृतिक आपदाओ के कारण उत्पन्न होने वाली परिस्थिति मे यह अनिवार्यता लागू नही होगी । इसी प्रकार, औद्योगिक प्रतिष्ठानो को बन्द करने से पूर्व उनके मालिको को उपयुक्त सरकार का पूर्वानुमोदन भी प्राप्त करना होगा और किसी भी उद्यम को बन्द करने की तिथि मे ६० दिन पूर्व इस आशय का नोटिस देना होगा जिसमे उद्यम को बन्द करने के कारणो का स्पष्ट उल्लेख होगा । जबरी छुट्टी या छटनी करने अथवा उद्यम को बन्द करने के लिए पूर्वानुमति न प्राप्त करने की स्थिति मे दण्ड का विधान भी किया गया है ।

इस प्रकार, १६४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम मे अब तक हुए सशोधनो के बाद इसके मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित बातो से सम्बन्धित हैं —(१) मालिक-मजदूर समितियाँ, (२) सुलह और विवाचन व्यवस्था, (३) हडतालें और तालाबन्दी, तथा (४) जबरी छुट्टी व छटनी के समय क्षतिपूर्ति ।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद सन् १६६६ से ही एक विस्तृत औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक (Industrial Relations Bill) के निर्माण

का प्रश्न सरकार के विचाराधीन रहा है। आयोग की रिपोर्ट पर अनेक गोष्ठियों में विचार किया गया परन्तु सरकार इस सम्बन्ध में कोई मतैक्य प्राप्त न कर सकी। जुलाई १९७७ में, एक व्यापक औद्योगिक सम्बन्ध कानून के निर्माण से सम्बन्धित मामलों पर विस्तार में विचार करने के लिए ३० सदस्यों की एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की गई। परिणामस्वरूप, सरकार ने ३० अगस्त १९७८ को लोकसभा में ये तीन विधेयक प्रस्तुत किये औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक, अस्पतालों व शिक्षा संस्थाओं के कर्मचारियों की सेवा-शर्तों तथा रोजगार विवाद के निस्तारण का विधेयक और रोजगार सुरक्षा एवं विविध उपबन्ध (प्रबन्धकीय कर्मचारी) विधेयक। औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक में मजदूर संघ अधिनियम १९२६, औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम १९४६ तथा औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ के उपबन्धों को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। यह विधेयक यद्यपि संसद् में प्रस्तुत कर दिया गया था किन्तु सन् १९७९ में सरकार के परिवर्तन तथा लोक सभा के भंग होने के कारण समाप्त हो गया।

राज्यों के अधिनियम (State Acts)

बम्बई, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन तथा जम्मू व कश्मीर एवं श्रमजीवी पत्रकारों के लिये औद्योगिक विवादों से सम्बन्धित अलग अधिनियम बनाये गये थे। सन् १९५० के ट्रावनकोर-कोचीन, औद्योगिक विवाद (समझौता) अधिनियम तथा सन् १९५० के जम्मू व कश्मीर औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारायें सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम की मूल धाराओं के समान थीं। ट्रावनकोर-कोचीन अधिनियम में कॉफी, चाय व रबड़ की कृषि व उत्पादन में सलग्न श्रमिक भी सम्मिलित किये गये। केरल में १९५९ में एक औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम विधान सभा में प्रस्तुत किया गया। इस नये अधिनियम में विवादों के निपटारे के लिये आपसी वार्तालाप और वाद-विवाद पर अधिक जोर दिया गया जिसमें प्रतिद्वन्द्वी संघों की समस्या पर भी प्रकाश डाला गया। एक सरकारी औद्योगिक सम्बन्ध बोर्ड स्थापित करने का भी उपबन्ध है। जम्मू व कश्मीर अधिनियम की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिये कोई भी पग उठा सकती है। सन् १९६१ में इस अधिनियम में संशोधन किया गया जिसके अनुसार 'कारीगर' (workman) की परिभाषा का विस्तार किया गया और केन्द्रीय अधिनियम की तरह ही इसमें भी ऐच्छिक पंच फैसले की व्यवस्था की गई। सन् १९५३ में पंजाब सरकार ने एक अध्यादेश, पंजाब औद्योगिक विवाद (कार्यवाहियों की वैधता) अध्यादेश जारी किया जिसमें औद्योगिक अधिकरणों के कार्यों के सम्बन्ध में कुछ धाराओं को स्पष्ट किया गया था। अब बम्बई, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के अधिनियमों का संक्षिप्त वर्णन किया जायेगा।

सन् १९४६ का बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम
(The Bombay Industrial Relations Act of 1946)

बम्बई ही पहला राज्य था जिसने कि औद्योगिक विवादों की रोकथाम तथा समझौते के लिये अपना स्वयं का अधिनियम पारित किया । १९३४ मे इसने औद्योगिक विवाद समझौता अधिनियम पास किया जो तत्पश्चात् सन् १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा विस्थापित कर दिया गया । इसमे युद्ध के समय कुछ संशोधन भी हुये थे । जब युद्ध समाप्त हो गया तब सरकार ने अधिनियम की पुनः जाँच की और एक व्यापक अधिनियम पारित किया जो कि सन् १९४६ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के नाम से जाना जाता है । यह अधिनियम सितम्बर १९४७ से लागू हुआ । इस अधिनियम का आधार भी १९३८ के अधिनियम के समान ही है परन्तु १९३८ के अधिनियम के अन्तर्गत जो समझौता-व्यवस्था की गई थी और जो व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के १९४७ के औद्योगिक-विवाद अधिनियम में थी उसको इस अधिनियम मे पूर्ण और दृढ़ कर दिया गया है । इस अधिनियम मे अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था करके विवाचन का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है । इसके अतिरिक्त पहली बार औद्योगिक न्यायालय की स्थापना की भी व्यवस्था की गई है ताकि स्थायी आदेशों तथा कार्य की दशाओं में अवैध परिवर्तनों के सम्बन्ध मे शीघ्र और पक्षपातहीन निर्णय हो सकें । इस अधिनियम मे ऐसी संयुक्त समितियों की स्थापना की भी व्यवस्था है जिसमे विभिन्न पेशा तथा उद्योग के संस्थानों के मालिकों एवं श्रमिकों के समान संख्या मे प्रतिनिधि हों । १९४८ मे इस अधिनियम मे एक अन्य संशोधन द्वारा राज्य सरकार को विभिन्न उद्योगों मे मजदूरी बोर्डों की स्थापना करने का अधिकार प्रदान किया गया है । इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी विवाद को शीघ्र सुलझाने के लिये पंजीकृत संघों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वे विवाचन के लिये औद्योगिक न्यायालयों के पास सौंपे प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं । १९५३ के एक संशोधन द्वारा "कर्मचारी की परिभाषा को विस्तृत कर दिया गया है और औद्योगिक न्यायालय, श्रम न्यायालय तथा मजदूर बोर्डों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वे किसी भी औद्योगिक विषय या विवाद से सम्बन्धित या उत्पन्न हुये प्रश्नों पर निर्णय दे सकते हैं । इसमें कार्यवाहियों में बाहुल्यता (Multiplicity) समाप्त हो गई है । इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि समझौते अथवा पंचाट (award) का पूर्वव्याप्ति प्रभाव (retrospective effect) पड़े और किसी भी स्थानीय क्षेत्र के उद्योग में सभी कर्मचारी उसे मानने को बाध्य हों । बम्बई अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह समझौता कार्यवाहियों में श्रमिक संघों को एक आवश्यक भाग के रूप में मान्यता देता है, परन्तु जो संघ सन् १९२६ के अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत नहीं हैं वे इन विवादों के समाधान के क्षेत्र में नहीं आते । अनेक सुविधाओं से युक्त एक नये वर्ग के संघ का निर्माण किया है जिसको अनुमोदित (Approved) संघ का नाम दिया है ।

ऐसा सघ तभी कहा जायेगा जब कोई सघ इस बात की शर्त मान लेगा कि समझौते के असफल हो जाने पर सभी विवाद पच-फैसले को सौप दिये जायेगे और उस समय तक कोई भी हडताल नही की जायेगी जब तक कि अधिनियम मे उल्लिखित समझौते के सभी साधन समाप्त न हो जायें तथा श्रमिकों का बहुमत ऐसी हडताल के पक्ष मे न हो। ऐसे अनुमोदित सघो को यह अधिकार दिया गया कि वे सघ की फीस वसूल कर सकें, औद्योगिक क्षेत्र म ही अपन सदस्यों से विचार विमर्श कर सके, उनके काय करने के स्थान का निरीक्षण कर सके और सरकार स कानूनी सहायता प्राप्त कर सकें। अधिनियम (Act) (२५% सदस्यता वाल) 'प्रतिनिधि सघ', (५% सदस्यता वाले) 'अर्हता प्राप्त सघ' तथा अधिनियम के अन्तगत पजीकृत प्रारम्भिक सघ' क बीच भी भेद करता है। प्रतिनिधि सघ (representative union) अपन अधिकार क्षेत्र मे सम्बन्धित सभी कायवाहियों के सम्बन्ध मे एकमात्र सौदाकारी एजेन्सी है। जैसा कि १६३८ के पूर्व अधिनियम म था, इस अधिनियम क अन्तर्गत भी श्रम अधिकारियो, जाँच न्यायालयों, समझौताकारी, श्रम न्यायालया अथवा औद्योगिक विवाचन न्यायालयो आदि की नियुक्ति की व्यवस्था है। कुछ कानूनी दोषा को दूर करने के लिये, अधिनियम मे सन् १६५५ तथा १६५६ में फिर सशोधन किये गये। यह अधिनियम महाराष्ट्र तथा गुजरात दोनो पर ही लागू होना है। सन १ ६४ मे, महाराष्ट्र सरकार से पुन इसम सशोधन किया है ताकि पुनर्गठित राज्य के सभी क्षेत्रों पर इसे लागू किया जा सके। सन् १६७३ म, बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध (गुजरात सशोधन) नियमों के द्वारा, विवाद म सम्ब द्ध कर्मचारियों में से दो व्यक्तियों का चुनाव करने तथा सयुक्त प्रबन्ध परिषदा के गठन का प्रावधान किया गया है।

सन् १६४७ का उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम
(The U P Industrial Disputes Act of 1947)

उत्तर प्रदेश म औद्योगिक विवाद अधिनियम सन् १६४७ मे पारित किया गया जो कि १ फरवरी १६४८ से लागू किया गया। यह अधिनियम सरल है तथा सन् १६४७ के केन्द्रीय सरकार द्वारा पारित औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार को अधिकार प्रदान करता है। यह बम्बई के अधिनियम के समान संघों के वर्गीकरण की कोई व्यवस्था नही करता और न ही समझौता और विवाचन के लिये कई प्रकार की एजेन्सियो की इसमे व्यवस्था है। परन्तु यह राज्य सरकार को इस बात का अधिकार देता है कि वह (क) हडतालो और तालाबन्दी को अवैध घोषित कर सके (ख) मालिक और मजदूरों को बाध्य कर सके कि वे रोजगार की विशेष शर्तों को लागू करे, (ग) राज्य सरकार औद्योगिक न्यायालय भी स्थापित कर सकती है, (घ) उस यह भी अधिकार है कि किसी भी विवाद को सुलह या विवाचन के लिये सौंप दे, (ङ) विवाचन निर्णय को सम्बन्धित पक्षों पर लागू कर दे, (च) सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं पर भी सरकार नियन्त्रण रख सकती है, ताकि ऐसी सेवाओं की पूर्ति निरन्तर होती रहे और इस प्रकार सार्वजनिक सुरक्षा,

आराम और रोजगार मे कोई विघ्न न पडे। मई १९४८ के प्रारम्भ मे सरकार के आदेशानुसार राज्य के श्रम-विभाग के अनेक अधिकारियो का विशेष क्षेत्रो मे समझौताकार के रूप मे नियुक्त किया गया तथा औद्योगिक विवादो को सुलझाने के लिये कई क्षेत्रीय और प्रान्तीय सुलह बोर्ड और औद्योगिक न्यायालयो की स्थापना की गई। सूती कपडा, चीनी, कांच, चमडा विद्युत इन्जीनियरिंग उद्योगो के लिये क्षेत्रीय सुलह बोर्ड स्थापित किये गये और इनके लिये कानपुर लखनऊ आगरा और प्रयाग मे औद्योगिक न्यायालय भी स्थापित किये गये। अगस्त १९५० मे इस अधिनियम मे सशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि ऐसे जन उपयोगी सेवा सस्थानो के प्रशासन को, जो बन्द हो गये हो अथवा बन्द होने को हो, अपने नियन्त्रण मे ले लें।

सन् १९५१ मे उत्तर प्रदेश म औद्योगिक शान्ति को स्थापित करने की जो व्यवस्था थी उसका पुनर्सगठन हुआ। विशेष उद्योगो के लिये जो क्षेत्रीय सुलह बोर्ड थे उनको समाप्त कर दिया गया और यह व्यवस्था कर दी गई कि हर क्षेत्र का सुलह अधिकारी ही किसी भी उद्योग से शिकायत आने पर सरकार द्वारा निर्देश पाने पर सुलह बोर्ड का काम करेगा। इस प्रकार के बोर्ड का कर्त्तव्य केवल सुलह कराना और समझौते की सम्भावना के लिये यत्न करना होता है और यदि किसी समझौते की सम्भावना नही है तो अपनी रिपोर्ट श्रम कमिश्नर और सरकार की यह बोर्ड भेज देता है। फिर किसी उचित कार्यवाही के लिये आगे कदम उठाया जाता है। उदाहरणत अगर आवश्यक हो तो विवाचन के लिये मामला सौंप दिया जाता है। औद्योगिक न्यायालयों को भी भग कर दिया गया तथा पूरे राज्य के लिये इलाहाबाद मे एक औद्योगिक अधिकरण की स्थापना कर दी गई। सरकार अपनी इच्छा से या सुलह बोर्ड की सूचना पर किसी भी मामले को विवाचन के लिये किसी विवाचक को या इलाहाबाद के राज्य औद्योगिक अधिकरण को सौंप सकती थी तथा उसके निर्णय को लागू कर सकती थी। इसके विरुद्ध अपील सन् १९५० के अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित अखिल भारतीय श्रम अपीलीय न्यायालय मे १९५६ तक, जब कि अपीलीय न्यायालय समाप्त नही हुये थे, की जा सकती थी। फरवरी १९५३ मे एक सशोधन के द्वारा विवाचक और औद्योगिक अधिकरण द्वारा निर्णय देने की अवधि, जो मूल आदेश मे मामले को सौंपने की तिथि से ४० दिन थी, अब १८० दिन कर दी गई। सन् १९५४ मे एक और सशोधन द्वारा सुलह अधिकारियो को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि वे कुछ परिस्थितियो मे प्रार्थनापत्र लेने से इन्कार कर सकते है ताकि निरर्थक शिकायतो को रोका जा सके, और औद्योगिक अधिकरण व विवाचक को अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि वह लिपि या हिसाब की अशुद्धियो को ठीक कर सकते हैं। राज्य मे सात क्षेत्रीय सुलह कार्यालय—कानपुर, इलाहाबाद, गोरखपुर, लखनऊ, आगरा, बरेली और मेरठ मे स्थापित किये गये हैं। प्रत्येक क्षेत्र मे एक सुलह अधिकारी तथा एक

अतिरिक्त सुलह अधिकारी हैं। वाराणसी (इलाहाबाद क्षेत्र), अलीगढ़ (आगरा क्षेत्र), रामपुर (बरेली क्षेत्र, सहारनपुर (मेरठ क्षेत्र), में एक-एक अतिरिक्त सुलह अधिकारी हैं। श्रम कमिश्नर तथा अतिरिक्त, उप अथवा सहायक श्रम कमिश्नर और प्रधान कार्यालय के कुछ अन्य अफसर सम्पूर्ण राज्य के लिये सुलह अधिकारी है। ७ क्षेत्रों में ६ सहायक श्रम कमिश्नर भी हैं—गोरखपुर और इलाहाबाद क्षेत्रों के लिये केवल एक सहायक श्रम कमिश्नर है।

सन् १९४७ के अधिनियम में एक अन्य संशोधन सन् १९५६ के उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद (संशोधन और विविध उपबन्ध) अधिनियम द्वारा किया गया जो कि अप्रैल १९५७ से लागू हुआ। इस संशोधन द्वारा उत्तर प्रदेश के अधिनियम में भी १९५६ के संशोधित केन्द्रीय अधिनियम के उपबन्धों को लागू कर दिया गया। संशोधित अधिनियम के द्वारा 'कर्मचारी' शब्द की परिभाषा को विस्तृत कर दिया गया है और राज्य सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह औद्योगिक विवादों के विवाचन के लिये एक या अधिक श्रम-न्यायालय और औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना कर सकती है। श्रम-न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल उन विषयों तक है जिनका उल्लेख अधिनियम की अनुसूची (Schedule) नं० १ में किया गया है। इसके अन्तर्गत स्थायी आदेश, छटनी या बर्खास्तगी, पुनः नौकर रखना, श्रमिकों को सुविधायें और अधिकार, हड़तालों और तालाबन्दियों की वैधानिकता आदि विषयों से सम्बन्धित तमाम मामले आ जाते हैं। अनुसूची नं० २ में उनसे अधिक महत्त्वपूर्ण विषय रख गये हैं, जैसे—मजदूरी, बोनस, भत्ता, कार्य करने के घण्टे, विश्राम-काल, अवकाश और छुट्टियां, लाभ-विभाजन, पारियाँ, प्रोवीडेण्ट फण्ड, अनुशासन, विवेकीकरण, छटनी आदि। औद्योगिक अधिकरणों को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि वे दोनों अनुसूचियों के मामलों को सुन सकता है। यदि विवाचन या निर्णय एक से अधिक उद्योग संस्थानों को प्रभावित करता है तो सरकार तीन व्यक्तियों के एक विशेष अधिकरण की स्थापना कर सकती है। केन्द्रीय अधिनियम में एक व्यक्ति के अधिकरण की स्थापना की व्यवस्था है। सरकार को इस बात का भी अधिकार है कि वह अनुसूची नं० २ का भी कोई मामला श्रम न्यायालय को सौंप सकती है अगर उस मामले से १०० से अधिक श्रमिक सम्बन्धित नहीं हैं। अधिनियम की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें इस बात की व्यवस्था है कि किसी भी विवाद को ऐच्छिक रूप से विवाचन को सौंपा जा सकता है। मालिक और श्रमिक लिखित समझौते द्वारा, चल रहे संघर्ष अथवा सम्भावित विवाद को किसी विशेष विवाचक या विवाचकों को सौंप सकते हैं। मालिकों को यह अधिकार दिये गये हैं कि वे अनुसूची नं० ३ में वर्णित विषयों पर श्रमिकों की नौकरी की शर्तों में परिवर्तन करने के लिये सूचना दे सकते हैं। अधिनियम में किसी भी संस्थान के स्वामित्व अथवा प्रबन्ध के परिवर्तन होने की अवस्था में छटनी क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में मालिकों की स्थिति को और स्पष्ट

किया गया है । इस अवस्था में श्रमिकों को तब तक कोई भी क्षति-पूर्ति न दी जायेगी जब तक परिवर्तन द्वारा उस श्रमिक की नौकरी में बाधा न पहुंचती हो या जब नौकरी की शर्तें कम अनुकूल हो जाती हों अथवा नया मालिक छटनी क्षतिपूर्ति देने के लिये श्रमिक की सेवाओं को निरन्तर नहीं मानता । राज्य सरकार पंचाटों (award) को श्रम न्यायालय अथवा अधिकरण के पास पुर्नविचार के लिये वापिस भेज सकती है किन्तु केन्द्रीय अधिनियम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है ।

इस नये संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने इलाहाबाद में तीन औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना कर दी है जो क्रमशः सामान्य, सूती तथा चीनी उद्योग धन्धों के लिये इलाहाबाद में हैं । गोरखपुर, कानपुर, बरेली और मेरठ में चार श्रम न्यायालयों की स्थापना की गयी है । गोरखपुर के श्रम न्यायालय को जुलाई १९६१ से कानपुर में स्थानान्तरित कर दिया गया है । बरेली श्रम न्यायालय की बैठकें भी लखनऊ में हो रही है । सन् १९६४ में इलाहाबाद में एक श्रम न्यायालय की स्थापना की गई । अब पांच श्रम न्यायालय हैं—दो कानपुर में और एक-एक लखनऊ इलाहाबाद और मेरठ में । इलाहाबाद के तीन औद्योगिक अधिकरणों में से एक की बैठकें लखनऊ में हो रही है । समझौता प्रणाली पहले की भाँति ही कार्यशील है ।

एक अन्य महत्वपूर्ण संशोधन उत्तर प्रदेश अधिनियम में जुलाई १९५७ में हुआ । इसके अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था है कि किसी संघ का कोई भी अधिकारी किसी भी पक्ष का उस समय तक प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता जब तक कि श्रमिक संघ अधिनियम के अन्तर्गत उस संघ को पंजीकृत हुए दो वर्ष व्यतीत न हो गये हों, तथा संघ एक ही व्यवसाय के लिये पंजीकृत किया गया हो । केन्द्रीय अधिनियम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है । इस बात की भी व्यवस्था है कि किसी भी औद्योगिक संस्थान में हड़ताल एवं तालाबन्दी दूसरे पक्ष को ३० दिन की पूर्व सूचना दिये बिना नहीं की जा सकती । श्रमिक को अधिकार दिया गया है कि वह राज्य सरकार से इस बात की प्रार्थना कर सकता है कि वह उसको मालिकों से उसके बकाया धन की वसूली करवा दे और अगर सरकार सन्तुष्ट हो जाये तो उस धन की वसूली के लिये जिलाधीश के नाम एक प्रमाण-पत्र जारी कर सकती है जो उसकी वसूली उसी प्रकार कर सकता है जैसे कि लगान की बकाया की वसूली की जाती है । यदि राज्य सरकार को इस बात का विश्वास हो जाये कि कोई विवाचन निर्णय धोखे (Fraud), मिथ्या निरूपण (Misrepresentation) या दुरभि-सन्धि (Collusion) द्वारा प्राप्त किया गया है या दिया गया है तो ऐसा निर्णय लागू नहीं होगा । सुलह कार्यवाहियों के अतिरिक्त भी यदि कोई समझौता होता है तो उसकी रजिस्ट्री करना आवश्यक है ताकि उसे लागू किया जा सके । सामाजिक न्याय के आधार पर रजिस्ट्रेशन को मना भी किया जा सकता है । अथवा यदि कोई समझौता, दुरभि सन्धि, धोखे अथवा मिथ्या-निरूपण के आधार पर किया गया है तब भी रजिस्ट्रेशन को मना किया जा सकता है । सन् १९६६ में अधिनियम में

फिर संशोधन किया गया। इसके द्वारा श्रम न्यायालयों तथा औद्योगिक अधिकरणों के पीठासीन अधिकारियों की योग्यताओं में संशोधन करके उन्हें केन्द्रीय अधिनियम के अनुरूप बना दिया गया।

जुलाई १९५८ से उत्तर प्रदेश सरकार ने राजकीय उद्योगों और संस्थानों तथा उत्तर प्रदेश सहकारी बैंक और उसकी शाखाओं और उत्तर प्रदेश सहकारी संगम तथा उत्तर प्रदेश दुग्ध पूर्ति सहकारी संघ और शाखाओं, जिनमें १०० से अधिक श्रमिक काम करते हों, के लिये एक स्थायी सुलह बोर्ड की स्थापना की है। इसका मुख्य कार्यालय लखनऊ में है।

मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, १९६०
(The M P Industrial Relations Act of 1960)

मध्य प्रान्त तथा बरार (मध्य प्रदेश) में मई १९४७ में औद्योगिक विवाद समझौता अधिनियम पारित किया गया था, तथा इसमें दिसम्बर सन् १९४७, मई १९५१ तथा नवम्बर १९५५ में संशोधन किये गये और अन्ततः इसका स्थान मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १९६० ने ले लिया। यह नया अधिनियम १७ नवम्बर १९६० से पास करके लागू कर दिया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य यह है कि मालिकों और श्रमिकों के आपसी सम्बन्धों को ठीक किया जाये और इस उद्देश्य से औद्योगिक विवादों के निपटारे और उनसे सम्बन्धित बातों के विषयों पर उपबन्ध है। अधिनियम के अन्तर्गत कई प्रकार की व्यवस्थायें की गई है, जैसे—अधिकारियों की नियुक्ति, प्रतिनिधित्व श्रमिक संघों और मालिकों की परिषदों को मान्यता देना, श्रम अधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों का उल्लेख, संयुक्त समितियों के कर्त्तव्य और उनका संविधान, समझौता और विवाचन की कार्य विधियां, विवाचन निर्णयों को लागू करने और उनके काल की व्यवस्था, श्रम न्यायालयों, औद्योगिक न्यायालयों, जांच न्यायालय और विवाचन बोर्ड की स्थापना, अधिकार और कर्त्तव्य, अवैधिक हड़तालों और तालाबन्दी से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख, श्रमिकों के बचाव की व्यवस्था तथा अधिनियम के उपबन्धों के उल्लंघन करने पर दण्ड की व्यवस्था, आदि-आदि। अधिनियम में १९६१, १९६३ और १९६५ में संशोधन किये गये। अन्तिम संशोधित अधिनियम औद्योगिक व श्रम न्यायालयों को ऐसी शक्ति देने के लिये पास किया गया था जिससे कि वे अपने सामने किये गये तिरस्कार के मामलों में कारगर ढंग से निपट सकें।

औद्योगिक विवाद विधान की संक्षिप्त समीक्षा
(A Brief Review of Industrial Disputes Legislation)

अब हम भारत में औद्योगिक विवाद को रोकने तथा सुलझाने से सम्बन्धित सभी उपायों की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे। १९२९ का व्यापार विवाद अधिनियम, जिसके अन्तर्गत औद्योगिक विवादों के निपटाने के लिये एक अस्थायी बाह्य व्यवस्था की गई थी, पहला कानून था जिसमें इस बात का उपबन्ध था कि भारत में

औद्योगिक विवाद रोकने और निपटारे के लिये कोई वैज्ञानिक व्यवस्था स्थापित
की जाये। परन्तु इस अधिनियम म भी इस बात की कोई व्यवस्था न थी कि कोई
ऐसी आन्तरिक व्यवस्था की जाये जिससे पारस्परिक बातचीत द्वारा प्रारम्भिक
अवस्था मे ही विवादो को निपटाया जा सके। अधिनियम का यह दोष सन १६३८
के एक संशोधन द्वारा दूर किया गया जिसम कि सुलह अधिकारियो की नियुक्ति
का प्रबन्ध था। बम्बई मे सन् १६३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम मे
न केवल विवाचकों, सलाहकारो आदि की नियुक्ति की व्यवस्था थी वल्कि औद्योगिक
न्यायालय के रूप मे एक स्थायी व्यवस्था का भी प्रबन्ध था जिसमे भारत मे श्रम
न्यायालयो का प्रारम्भ हुआ। यद्यपि अब भी आन्तरिक व्यवस्था की अपेक्षा बाह्य
व्यवस्था पर अधिक बल था। परन्तु युद्ध के बाद के वर्षो मे अधिक उद्योग अशांति
के कारण आन्तरिक व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई। भारत सरकार ने
१६४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया और कुछ प्रान्तीय सरकारो
जैसे—बम्बई, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश ने भी केन्द्रीय अधिनियम के आधार
पर अधिनियम बनाये। औद्योगिक संघर्षों को रोकने के लिये तथा निपटारे के
लिये आन्तरिक तथा बाह्य व्यवस्था दोनो की गई है।

जैसे कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है सरकार द्वारा औद्योगिक शान्ति
बनाये रखने की जो व्यवस्था है वह इस प्रकार है—(१) परामर्श व्यवस्था तथा
(२) सलह व विवाचन व्यवस्था। औद्योगिक विवाद विधान के अन्तगत मालिक
मजदूर समितियाँ श्रम तथा सुलह अधिकारी औद्योगिक न्यायालय तथा श्रम
न्यायालय औद्योगिक अधिकरण तथा राष्ट्रीय अधिकरण आदि की व्यवस्था है।
केन्द्रीय क्षेत्र के सस्थानो के लिये एक मुख्य श्रम आयुक्त की नियुक्ति की गई है
जिसका काम औद्योगिक सम्बन्धों को भी देखना है। इसकी सहायता के लिये
क्षेत्रीय श्रम आयुक्त सहायक श्रम आयुक्त और श्रम निरीक्षक है। औद्योगिक विवादो
के विवाचन के लिये श्रम न्यायालय औद्योगिक अधिकरण तथा राष्ट्रीय न्यायालय
स्थापित किये गये है जिनका अपना अधिकार क्षेत्र है। धनबाद म एक केन्द्रीय
श्रम न्यायालय के अलावा बम्बई, धनबाद कलकत्ता और दिल्ली म चार औद्योगिक
अधिकरण है। देहली मे भी एक औद्योगिक अधिकरण देहली प्रशासन के अन्तगत
बना दिया गया है जिसका उपयोग केन्द्रीय सरकार भी कर लेती है। राज्य सरकारो
ने भी सुलह के लिये व्यवस्था की है जिसके अध्यक्ष श्रम आयुक्त होते हैं। राज्यों
मे भी अधिकरण और श्रम न्यायालय स्थापित हो गये है जो केन्द्रीय क्षेत्र म
विवादो के विवाचन के लिये आवश्यकता के समय तदर्थ अधिकरण के रूप मे
भी कार्य करते है। जब भी आवश्यक होता है, तभी राष्ट्रीय अधिकरण भी स्थापित
किये जाते है। उत्तर प्रदेश मे सरकारी औद्योगिक सस्थानो के लिये तथा सहकारी
संघो व बैंक के लिये एक स्थायी सुलह बोर्ड तथा मालिक मजदूर परिषदो की
स्थापना की गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश मे औद्योगिक विवादो को

सुलझाने तथा उनकी रोकथाम करने के लिये एक व्यवस्था की गई है।

कार्यान्वित करने की व्यवस्था (Implementation Machinery)

श्रम सम्बन्धी विवाचन निर्णय, समझौते तथा विधान को लागू न करने या लागू करने में देर के कारण सदा शिकायतें आती रहती हैं तथा इस कारण औद्योगिक विवाद भी हो जाते हैं। इन सबको लागू न करना एक वैध अपराध तो है और इसके लिये दण्ड की व्यवस्था भी है, परन्तु अनुभव से यह पता चलता है कि इससे तनाव और कटुता कम नहीं होती और दण्ड आदि से औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे नहीं बनते। इसलिये स्थायी श्रम समिति ने इस समस्या पर अक्टूबर १९५७ में अपने १८वें अधिवेशन में विचार किया। इसकी सिफारिशों के आधार पर केन्द्र और राज्यों में इस बात की विशेष व्यवस्था कर दी गई है कि श्रम सम्बन्धी विवाचन निर्णय, समझौते आदि और अनुशासन संहिता उचित प्रकार से कार्यान्वित हों। इसका प्रारम्भ जनवरी १९५८ में हुआ जबकि केन्द्रीय श्रम व रोजगार मन्त्रालय में एक कार्यान्वित विभाग (Implementation Cell) खोला गया। शीघ्र ही इसके कार्यों का विस्तार हो गया और एक केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्वयन विभाग (Central Evaluation and Implementation Division) की स्थापना की गई। जून १९५८ में एक त्रिदलीय केन्द्रीय कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन प्रभाग भी बनाया गया जिसके अध्यक्ष केन्द्रीय श्रम मन्त्री हैं जिसमें मालिकों तथा कर्मचारियों के केन्द्रीय संगठन के चार प्रतिनिधि और सरकारी क्षेत्र के उद्यमों का एक प्रतिनिधि है। सब राज्य सरकारों ने भी अब अपने श्रम-विभागों में कार्यान्वयन इकाइयाँ खोली हैं। जम्मू व कश्मीर को छोड़कर, सभी राज्यों में त्रिदलीय कार्यान्वयन समितियाँ स्थापित कर दी गई हैं। केन्द्रीय प्रभाग राज्यों की कार्यान्वयन व्यवस्था में समन्वय स्थापित करता है तथा नीति में समानता लाता है। राज्यों के कार्यान्वयन अधिकारियों की समय-समय पर बैठकें होती रहती हैं। चार राज्यों (आन्ध्र, असम, पंजाब और राजस्थान) में स्थानीय क्षेत्रीय कार्यान्वयन समितियाँ भी कार्य कर रही हैं।

केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्वयन प्रभाग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—(१) यह देखना कि अनुशासन संहिता, आचरण संहिता, श्रम सम्बन्धी विधान, विवाचन निर्णय, समझौते आदि उचित प्रकार से लागू हो रहे हैं ताकि औद्योगिक विवादों के मुख्य कारणों की आरम्भ में ही रोकथाम की जा सके, (२) औद्योगिक विवादों की रोकथाम के लिये कुछ प्रारम्भिक पग उठाना ताकि ऐसे विवाद हानिकारक न हो जायें और बहुत दिनों तक न चलते रहें, (३) कुछ मुख्य हड़तालों, तालाबन्दियों और विवादों का मूल्यांकन करना ताकि यह जाना जा सके कि उनका उत्तरदायित्व किस पर है, (४) यह प्रभाग श्रम सम्बन्धी विधान, विवाचन निर्णय, नीति तथा अन्य निर्णयों का भी मूल्यांकन करता है और इस बात को देखता है कि जिस उद्देश्य से यह सब बनाये गये है वह उद्देश्य पूरे हो रहे हैं या नहीं तथा उनमें

और क्या सुधार किये जा सकते है ।

कार्यान्वयन प्रभाग और समितियाँ कई विवादो म न्यायालयो से बाहर ही समझौता करने मे सफल हुई हैं । केन्द्रीय मूल्याकन तथा कार्यान्वयन प्रभाग ने समय-समय पर अनेक मूल्याकन सम्बन्ध अध्ययन किये हैं । श्रमिको और मालिको के केन्द्रीय सगठनो ने एक छानबीन समिति (Screening Committee) की स्थापना की है, जो प्रत्येक मामले की न्यायालयो म अपील होने से पहले छानबीन करती है । कई मामलो में इन्होंने अपने सदस्यो को अपील करने से समझा-बुझा कर रोक दिया है । इसी प्रकार, अधिकरणो के निर्णय के विरुद्ध सरकारी क्षेत्र के उद्यमो द्वारा जो अपीलें दायर की जाती हैं उनकी छानबीन के लिये एक कार्य-विधि निर्धारित की गई है ।

१९५० का श्रम-सम्बन्ध विधेयक
(The Labour Relations Bill, 1950)

उल्लिखित अधिनियमो से जो अनुभव हुआ उसको देखते हुए सरकार ने औद्योगिक विवादो सम्बन्धी विधान म महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के विषय मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया और इसके परिणामस्वरूप १९५० का श्रम सम्बन्ध विधेयक ससद् मे प्रस्तुत किया गया । इस श्रम सम्बन्ध विधेयक ने नये उपायो का मार्ग प्रशस्त किया और विवादो को सुलझाने के लिये आन्तरिक एव बाह्य व्यवस्था पर जोर दिया । स्थायी आदेश, सामूहिक सौदाकारी छटनी कार्य मन्दन नीति आदि के लिये कई अधिकारियो की नियुक्ति के लिए उपबन्ध थे । किसी समझौते, सामूहिक करार, तथा पचाट का उल्लघन करने अथवा किसी भी अवैध हडताल तथा तालाबन्दी को घोषित करने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था थी । उपयुक्त मामलो म सरकार को किसी भी सस्थान को अपने नियन्त्रण मे लाने का अधिकार था । इस विधेयक की कई आधारो पर कठोर आलोचना की गई और सरकार ने विधेयक के पास होने मे विलम्ब किया त पश्चात् यह व्यपगत (Lapse) हो गया ।

पंचवर्षीय आयोजनाओ मे औद्योगिक सम्बन्ध
(Industrial Relation in Five Year Plans)

प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे आयोजना आयोग की राय यह थी कि औद्योगिक शान्ति की दृष्टि से कई औद्योगिक विवादो मे वैधानिक व्यवस्था ने विशेष योगदान नही दिया था । आयोग का विचार था कि निर्णय देने मे अत्यधिक देरी होती थी और कई मामलो मे निर्णय परिस्थिति की वास्तविक आवश्यकता से दूर हट गये थे । उसने यह भी अनुभव किया कि औद्योगिक और श्रम न्यायालयो मे कार्य का स्तर कम हो गया था और कार्य के निपटाने की गति भी मन्द थी । अत आयोजना आयोग का मत था कि विवादो को निपटाने का सबसे उपयुक्त साधन किसी भी तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप के बिना श्रमिको एव मालिको के बीच स्वय ही सघर्षों पर आपस। समझौता करना था । आयोग अपीलीय अधिकरण के पक्ष मे

नही था। उसके अनुसार औद्योगिक न्यायालयो या अधिकरणो के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नही होनी चाहिये सिवाय उन विशेष मामलो के जिनमे निर्णय एकतरफा (Perverse) तथा स्वभाविक न्याय के विरुद्ध मालूम हो। परन्तु आयोग किसी ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध नहीं था जिससे कुछ विशेष विवादो को निपटाने मे न विलम्ब हो और न अधिक व्यय हो। औद्योगिक संघर्षों को सुलझाने के लिये जो भी व्यवस्था की जाये वह निम्नलिखित पाँच सिद्धान्तो पर आधारित होनी चाहिये—(क) वैधानिक विधियों और कार्यवाही को औपचारिकता (technicalities) जितनी भी कम हो सके, कम कर देनी चाहिये। (ख) प्रत्येक मामले की प्रवृति और महत्व के अनुसार अन्तिम और सीधा निपटारा होना चाहिये। (ग) न्यायालयो या अधिकरणो मे केवल प्रशिक्षण पाये हुये विशेषज्ञो की नियुक्ति होनी चाहिये। (घ) असाधारण मामलो को छोडकर इन न्यायालयो के विरुद्ध अपील कम कर देनी चाहिये। (ङ) पंच फैसले को शीघ्र से शीघ्र लागू करने की व्यवस्था होनी चाहिये।

आयोग ने एक रूपता लाने के लिये और अधिकरणो के मार्ग-दर्शन के लिये आपसी सम्बन्धो को नियमित करने वाले कुछ आदर्श नियमो की स्थापना की सिफारिश भी की थी। सरकार, श्रमिक और मालिक की त्रिदलीय प्रतिनिधि समितियो द्वारा इस प्रकार के आदर्श नियम बनाने की व्यवस्था थी और किसी मतभेद होने की अवस्था मे सरकार को विशेषज्ञो के परामर्श पर निर्णय लेकर इस निर्णय को न्यायालयो या अधिकरणो पर लागू करने का सुझाव था।

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे आयोग ने संकेत किया था कि औद्योगिक सम्बन्धो का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक शान्ति स्थापित करना होना चाहिये जिसके लिये पारस्परिक वार्ता, समझौता और ऐच्छिक पच-फैसले का उपयोग किया जा सकता है और दुस्साध्य या हठी (intractable) मामलो मे अनिवार्य पच फैसले का प्रयोग भी किया जा सकता है। औद्योगिक संस्थान मे अगर काम रुक जाता है तो इस बात का अनावश्यक प्रचार हो जाता है। इसके प्रतिरोध की आवश्यकता है। इस प्रतिरोध के लिये उद्योग धन्धो मे, जिनमे बहुत समय मे शान्तिपूर्वक काम करने की परम्परा पड़ी हुई है, उन बातो के अध्ययन की आवश्यकता है जिनके कारण औद्योगिक शान्ति या एकता आ जाती है आयोग ने औद्योगिक शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से रोक थाम के साधनो को अधिक महत्व प्रदान किया। इसने यह भी सुझाव दिया कि विवाचन-निर्णय तथा समझौतो आदि को न मानने और लागू न करने की अवस्था मे कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाए। उल्लघन की अवस्था मे निर्णय को लागू करने का उत्तरदायित्व किसी उपयुक्त अधिकरण को होना चाहिये जिस तक दोनो पक्षो की सीधी पहुँच हो। यह सुझाव दिया गया कि केन्द्र, राज्यो और निजी संस्थानो मे सभी स्तरो पर एक स्थायी सयुक्त परामर्श-दात्री व्यवस्था होनी चाहिये। संस्थानो मे इस उद्देश्य से मालिक मजदूर समितियाँ कार्य कर सकती

हैं और उनके प्रभावपूर्ण कार्य करने के लिये उनके उत्तरदायित्वो तथा श्रमिक सघो के उत्तरदायित्वो के बीच सीमा स्पष्ट कर देनी चाहिये। सयुक्त परामर्शदात्री बोर्ड का भी पूर्ण रूप से उपयोग किया जाना चाहिये। आयोग ने श्रम और प्रबन्ध मे अधिक सहयोग को बहुत महत्व प्रदान किया जो कि प्रबन्ध परिषदो के द्वारा प्राप्त हो सकता है जिसमे प्रबन्धको, तकनीकी विशेषज्ञो एव श्रमिको के प्रतिनिधि हो। इस प्रकार की परिषदो को सस्थान से सम्बन्धित सभी मामलो पर विचार-विमर्श करना चाहिये, केवल उन मामलो को छोडकर जो सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत आते हैं।

तीसरी पंचवर्षीय आयोजना मे औद्योगिक सम्बन्धो के विषय मे इस बात पर बल दिया गया कि प्रत्येक उपयुक्त स्तर पर समय से कार्यवाही करके औद्योगिक अशाति की रोकथाम करनी चाहिये। तृतीय आयोजना काल मे औद्योगिक सम्बन्धो के विकास के लिये जो कार्य किये जाने थे उनका आधार उस नीव पर होगा जो अनुशासन सहिता के लागू होने से पड चुकी है। इस अनुशासन सहिता की रिपोर्ट मे प्रशसा की गई है और कहा गया है कि पिछले तीन वर्षों को देखते हुये इस सहिता का कार्य सफल रहा है और इसे आजमाया जा चुका है। सभी मालिको और श्रमिको को अनुशासन सहिता के अन्तर्गत अपने-अपने उत्तरदायित्वो को पूर्ण रूप से समझना चाहिये तथा औद्योगिक सम्बन्धो के दिन-प्रतिदिन के सचालन मे इस सहिता को एक जीवन शक्ति बनाना है। सहिता को लागू करने के लिये जो नियम और आधार बनाये गये हैं, और इसके पीछे जो शक्ति है, उन्हे दृढ करना है। ऐच्छिक विवाचन के सिद्धान्त को अधिक से अधिक लागू करने के लिये मार्ग निकाले जाने चाहिए। प्रादेशिक तथा उद्योग स्तर पर विवाचकों की तालिकायें (Panels) बनाने के लिये सरकार को अग्रिम पग उठाने चाहिए। योजना मे आग कहा गया कि "यह भी आवश्यक है कि कारखानो मे मालिक-मजदूर समितियो को शक्तिशाली बनाया जाय ताकि वे श्रम सम्बन्धी मामलो के प्रजातान्त्रिक प्रशासन का सक्रिय अभिकरण बन जाये। मालिक-मजदूर समितियो का श्रमिक सघो से भेद करना आवश्यक है और यदि उनके कार्यो का स्पष्ट रूप से सीमांकन कर दिया जायेगा तो उनके सफलतापूर्वक कार्य करने मे एक बडी रुकावट दूर हो जायेगी। सयुक्त प्रबन्ध परिषद योजना को धीरे धीरे नये उद्योगो और औद्योगिक इकाइयो पर लागू किया जाये ताकि वह औद्योगिक व्यवस्था का एक सामान्य अग बन जाय। श्रमिक के प्रबन्ध मे भाग लेने की योजना का जैसे जैसे विकास होगा वैसे ही यह योजना निजी क्षेत्र को समाज के समाजवादी होने मे ढालने के लिये बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।"

चौथी पचवर्षीय योजना की रूपरेखा मे औद्योगिक विवाद अधिनियम का उल्लेख किया गया जिसमे कि सुलह, न्याय-निर्णय (adjudication) और ऐच्छिक पच निर्णय (voluntary arbitration) द्वारा विवादो को सुलझाने की व्यवस्था थी। "यद्यपि विधान के उपबन्ध (Provisions) अन्तिम अस्त्र के रूप मे

अपनाये जा सकते हैं", किन्तु आयोजना में कहा गया "यह स्वीकार किया जाता है कि मालिकों व मजदूरों के बीच अधिक अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिये सामूहिक सौदाकारी पर अधिक जोर दिया जाना चाहिये और श्रमिक संघ आन्दोलन को मजबूत बनाया जाना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये काफी मात्रा में ऐच्छिक पंच निर्णय का आश्रय लिया जा सकता है।' आयोजना में आगे बताया गया कि "इस बात पर व्यापक सहमति है कि सुलह (conciliation) न्याय-निर्णय तथा ऐच्छिक पंच निर्णय की जो वर्तमान व्यवस्था है उसको और अधिक शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में यह अच्छा होगा कि श्रम न्यायालयों को कुछ अधिकार दे दिये जायें जिससे कि वे मजदूरों को वे धनराशियाँ वसूल करवा सकें जिनका कि वे विभिन्न पंच-फैसलों तथा समझौतों के अन्तर्गत पाने के अधिकारी थे।" आयोजना में इस बात की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया कि अनुशासन संहिता के पूर्ण परिपालन के सम्बन्ध में आश्वस्त होने के लिये और पग उठाये जायें क्योंकि इस संहिता से औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे बनाये रखने की दिशा में ठीक प्रगति हुई, सभी योग्य उद्योगों में मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला और संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को औद्योगिक सम्बन्धों के ढाँचे में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करने में सफलता मिली।

पाँचवीं पंचवर्षीय आयोजना (१९७४-७९) तथा वर्ष १९७८-८३ के लिए बनाई गई पंचवर्षीय आयोजना की रूप-रेखा में रोजगार और मानव शक्ति पर जोर दिया गया था और उसमें श्रम-नीति के किसी भी परिवर्तन का उल्लेख नहीं था। किन्तु छठी पंचवर्षीय आयोजना में, जिसे कि अन्तिम रूप दिया जा रहा है, इस बात पर जोर दिया गया है कि औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था को केन्द्र एवं राज्य, दोनों ही स्तरों पर दोषरहित बनाया जाना चाहिए और औद्योगिक विवादों के निपटारे की कार्य-प्रणाली का इस प्रकार सरलीकरण किया जाना चाहिए ताकि श्रमिकों को शीघ्र न्याय प्राप्त हो जाए और मालिक अनिश्चितता की स्थिति में न रहें।

यह सब सुझाव बहुत लाभदायक है। परन्तु सुझावों का आयोजना नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की है कि इन सुझावों को कार्य रूप में परिणत किया जाय अन्यथा कोरी आशाओं से कुछ प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

त्रिदलीय श्रम व्यवस्था (Tripartite Labour Machinery)

सरकार की श्रम नीति को निर्धारित करने, श्रम सम्बन्धी आदर्श नियम तथा स्तर निश्चित करने तथा मालिकों एवं श्रमिकों से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के लिये त्रिदलीय व्यवस्था की महत्ता को अब सभी देशों में स्वीकार कर लिया गया है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का पूरा ढाँचा इस त्रिदलीय विचार-विमर्श के सिद्धान्त पर ही आधारित है। परन्तु भारत में द्वितीय महायुद्ध से पहले श्रमिकों को सलाहकार के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की

गई थी। युद्ध के कारण अधिक उत्पादन और अन्य आवश्यकताओ की जरूरत से सरकार को इस बात के लिये मजबूर होना पडा कि श्रमिकों का सहयोग प्राप्त करे। श्रमिकों को १९४२ के भारतीय श्रम सम्मेलन मे स्थान दिया गया। उसके पश्चात् सरकार ने शनै शनै एक त्रिदलीय श्रम व्यवस्था का न केवल विकास किया है वरन् उसे पूर्ण भी किया है। यह अब नई सलाहकार संस्था बन गई है। इसका एक रूप भारतीय श्रम सम्मेलन है, जिसको साधारणतया त्रिदलीय श्रम सम्मेलन भी कहा जाता है। इसको पहले परिपूर्ण (Plenary) श्रम सम्मेलन कहते थे। इस श्रम सम्मेलन मे जो कि वर्ष मे एक बार होता है, श्रम से सम्बन्धित सभी पक्षो, अर्थात् केन्द्रीय एव राज्य सरकारो तथा मालिको और श्रमिको के सघो को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। सम्मेलन का २७वा अधिवेशन २२-२३ अक्तूबर १९७१ को नई दिल्ली मे हुआ था और अन्तिम सम्मेलन ६ व ७ मई १९७७ को हुआ था। सम्मेलन ने स्थायी श्रम समितियाँ तथा औद्योगिक समितियाँ स्थापित की है जिनकी सभायें साधारणतया होती रहती हैं। महत्वपूर्ण औद्योगिक समितियाँ सीमेंट व जूट उद्योगो मे, कोयला तथा अन्य खानो में, चाय बागानो मे, चमडा कमाने तथा चमडे की वस्तुयें बनाने के कारखानो मे, सडक परिवहन मे, रसायन तथा इन्जीनियरिंग उद्योगो मे तथा भवन एव निर्माण मे स्थापित हैं। यह सम्मेलन अब ऐसी संस्था बन गई है जिसकी सभाओ मे विधान सभा मे आने से पूर्व श्रम कानून के लिये सुझावो तथा श्रम नीति और श्रम प्रशासन से सम्बन्धित विषयो पर विचार-विमर्श किया जाता है। इस प्रकार विधान सभा मे श्रम कानूनो के पास होने मे सरलता हो जाती है क्योकि प्रस्ताव की अन्तिम रूपरेखा तैयार करने से पूर्व मत-भेद के सभी पहलुओ पर विचार-विनिमय हो जाता है, और सभी पक्षों को अपना-अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर मिल जाता है। श्रम मन्त्रियो का सम्मेलन भी इस व्यवस्था से सम्बन्धित है यद्यपि यह त्रिदलीय नही है। सरकारी उद्यमो के प्रधान भी सम्मेलनो मे मिलते हैं। केन्द्र तथा राज्य मे त्रिदलीय सलाहकार समितियाँ भी स्थापित की गई है तथा समझौता व्यवस्था के लिये एक केन्द्रीय सलाहकार समिति की भी स्थापना की गई है। सन् १९४८ मे एक केन्द्रीय श्रम सलाहकार परिषद् की स्थापना की गई जिसमे उचित मजदूरी तथा लाभ विभाजन पर विचार के लिये विशेषज्ञो की दो समितियाँ नियुक्त की गई। सन् १९५१ मे मालिको और श्रमिको के बीच सुलह कराने के लिये एक सयुक्त उद्योग और श्रम सलाहकार बोर्ड स्थापित किया गया। सन् १९५५ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के प्रस्ताव तथा सिफारिशो की जाँच करने के लिये तीन सदस्यो की एक त्रिदलीय समिति बनाई गई। आयोजना आयोग ने भी श्रम नीति पर परामर्श के लिये श्रम विशेषज्ञो की एक समिति बनाई है। अन्य कई समितियाँ और बोर्ड भी स्थापित किये गये हैं। उदाहरणतया मूल्यांकन तथा कार्यान्वयन समिति, मजदूरी पर छान-बीन दल, श्रम अनुसधान पर केन्द्रीय समिति, रोजगार पर केन्द्रीय समिति, मजदूर मण्डल, औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव पर त्रिदलीय स्थायी समिति, तथा मालिको

व श्रमिका का कायकारी दल आदि आदि । केन्द्र तथा राज्यों म कई त्रिदलीय सम्मेलनों तथा समितियों की अनेक बैठकें हुई हैं जिनमे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार विमश हुआ। इनसे मालिको सरकार और श्रमिको को एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने म बहुत सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त विशेष मसलो के लिय भी आयोगो तथा समितियों की नियुक्ति की जाती है जैसे कि बोनस आयोग की नियुक्ति। उत्तर प्रदेश म श्रमिकों के कल्याण के लिय राज्य त्रिदलीय श्रम सम्मेलन कानपुर त्रिदलीय श्रम सम्मेलन स्थायी श्रम समिति कपड़ा मद्य और चीनी उद्योग पर त्रिदलीय श्रम समितियाँ तथा श्रमिको के कल्याण के लिय अनेक सलाहकार समितियाँ है। मसूर ने भी एक स्थायी श्रम समिति स्थापित की है।

सन १८७४ म सरकार ने मालिका व कर्मचारियो के बीच त्रिदलीय विचार विमर्श की एक नई योजना लागू की। इनके अन्तगत गैर-सरकारी क्षेत्र म एक राष्ट्रीय शिखर संस्था की स्थापना की गई। इस संस्था म १९ प्रतिनिधि तो तीन केन्द्रीय श्रमिक सगठनो (अर्थात भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस और हिन्द मजदूर सभा) से सम्मिलित किय गये और ११ प्रतिनिधि मालिको के सगठनो (अर्थात भारतीय मालिक सघ, मालिको का अखिल भारतीय सगठन तथा अखिल भारतीय विनिमाता सगठन) के रखे गये।

औद्योगिक विराम सम्बन्धी प्रस्ताव
(Industrial Truce Resolution)

यहाँ औद्योगिक विराम सम्बन्धी प्रस्ताव का भी उल्लेख कर देना उचित होगा। यह प्रस्ताव दिसम्बर १८४७ म सरकार मालिको और श्रमिको के एक त्रिदलीय सम्मेलन द्वारा पारित हुआ था। इसका कारण यह था कि १८४७ म बहुत अधिक संख्या म हड़ताल होने से नियम उत्पादन बहुत गिर गया था और चारो ओर मूल्य बनाये रखने के लिय उत्पादन बढ़ाना था। इस प्रस्ताव म मालिको और श्रमिको म सहयोग और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो की आवश्यकता पर बल दिया गया था। इस प्रस्ताव म मालिको और श्रमिको से इस बात का अनुरोध किया गया था कि वह इस बात के लिय सहमत हो जाय कि तीन वर्ष तक औद्योगिक शान्ति बनाये रखेंगे और हड़ताल तालाबन्दी तथा कामचोरी जैसे साधनो को न अपनायेंगे। मालिको को उद्योग म श्रम का महत्व और श्रमिको के लिय उचित मजदूरी और अच्छी काम की दशाओं की आवश्यकता को स्वीकार करना था। श्रमिकों को भी राष्ट्रीय आय म वृद्धि करने के लिय अपने कर्त्तव्यो को समझना था जिसके बिना उनके रहन सहन के स्तर म स्थायी उन्नति नहीं हो सकती थी। प्रस्ताव म यह भी कहा गया था कि विवादो को सुलझाने म मालिको और श्रमिको दोनो का ही दृष्टिकोण यह होना चाहिये कि उत्पादन म किसी प्रकार की बाधा डाले बिना पारस्परिक बातचीत म मामला सुलझा लें। उपभोक्ताओं के हित के लिये यह सुझाव था कि उद्योगों के अत्यधिक लाभ को कम करके और अच्छ

साधनो से रोका जाये। अन्य सुझाव प्रस्ताव मे यह थे कि श्रमिको को उचित मजदूरी
मिलने का प्रबन्ध होना चाहिये। प्रत्येक औद्योगिक सस्थान मे अनुरक्षण (Maintenance) और विस्तार के लिये उचित धन आरक्षित करने के पश्चात् इस बात की
भी व्यवस्था होनी चाहिये कि श्रमिको को उचित मजदूरी मिले और लगी हुई पूंजी
पर भी उचित लाभ हो।

सम्मेलन ने इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित साधनो की
सिफारिश की—(क) शान्तिपूर्ण उपायो से विवादो को सुलझाने की व्यवस्था की
पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिये और जहाँ ऐसी व्यवस्था न हो वहाँ पर परन्तु हो
ऐसी व्यवस्था हो जानी चाहिये। (ख) केन्द्रीय, क्षेत्रीय व उत्पादन इकाई समितियाँ
बनाकर श्रमिको को औद्योगिक उत्पादन के सभी मामलो पर सम्मिलित किया जाना
चाहिये। (ग) प्रत्येक औद्योगिक सस्थान मे दिन-प्रतिदिन के विवादो को सुलझाने
के लिये प्रबन्धको और श्रमिको के प्रतिनिधियो की मालिक-मजदूर समितियाँ बनाई
जानी चाहिये। (घ) श्रमिको के जीवन-स्तर को सुलझाने के लिये औद्योगिक श्रमिको
के आवास पर तत्काल ध्यान देना चाहिये और आवास की लागत, सरकार, मालिको
और श्रमिको तीनो के ही द्वारा दी जानी चाहिये, परन्तु श्रमिको का भाग केवल
उचित किराये के रूप मे होना चाहिये।

औद्योगिक विराम-संधि प्रस्ताव को लागू करने के लिये उठाये गये पग (Implementation of the Truce Resolution)

अप्रैल १६४८ मे भारत सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा मे
इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और इस हेतु एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति भी
की। यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक मुख्य उद्योग के लिये एक केन्द्रीय
सलाहकार परिषद् तथा अनेक समितियो की स्थापना की जाये। विशेष प्रश्नो पर
विचार करने के लिये उप-समितियो की भी नियुक्ति की जाये। अप्रैल १६४८ मे
हुये भारतीय श्रम सम्मेलन के १६वें अधिवेशन मे मालिको और श्रमिको ने भी
प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया। केवल अखिल भारतीय श्रमिक सघ कांग्रेस ने ही
इसको स्वीकार करने मे कुछ शर्तें रखी। विभिन्न राज्य सरकारो ने इस प्रस्ताव को
कार्यान्वित करने के लिये प्रयत्न किए और मालिक मजदूर व उत्पादन समितियो,
श्रम अधिकरणो, विवाचको और श्रम सलाहकार परिषदो आदि की नियुक्ति की।
कुछ राज्यो ने औद्योगिक विवादो के निपटारे के लिये कुछ अलग से अपने अधिनियम
बनाये जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप
ही उचित मजदूरी, पूँजी पर उचित लाभ, लाभ-विभाजन की योजनाओ आदि पर
विचार करने के लिये विशेषज्ञ समितियो की नियुक्ति की गई। ससद् मे एक उचित
मजदूरी विधेयक भी प्रस्तुत किया गया था परन्तु लाभ विभाजन के लिये अभी तक
कोई पग नही उठाया गया है। आवास व्यवस्था की दृष्टि से सरकार ने विभिन्न
योजनाये कार्यान्वित की है।[1] विवादो को रोकने और उनके निपटारे के लिये

१ मजदूरी और आवास समस्या के अध्याय को देखिये।

सरकार के प्रयत्नों की विवेचना ऊपर की जा चुकी है। विभिन्न राज्यों में बहुत से उद्योगों के लिये मजदूरी बोर्डों की स्थापना हो चुकी है।

इसमें सन्देह नहीं है कि औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव से एक स्वस्थ वातावरण उत्पन्न हो गया और औद्योगिक विवादों की संख्या में भी कुछ कमी दिखाई दी। इसने देश के हित के लिये औद्योगिक शान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया। परन्तु आंकड़ों को देखने से स्पष्ट है कि विवादों में कोई प्रशंसनीय कमी नहीं हुई। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि चाहे परिस्थितियाँ कैसी भी कठिन क्यों न हों, जब तक राष्ट्र की सुरक्षा को ही खतरा न हो, तब तक मानव के मूल्य पर उत्पादन में वृद्धि करना अवाञ्छनीय है। उस प्रकार से उद्योग में शान्ति स्थापित करने में पूँजीपतियों की स्थिति दृढ़ होती है और श्रमिकों का और अधिक शोषण होता है। अतः व्यावहारिक रूप में औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। 'ईस्टर्न इकोनोमिस्ट' ने लिखा था कि यदि श्रमिक कारखाने में आने पर निरीक्षक की आँखों में वैसी ही पहले की सी भयानकता देखता है और घर लौटने पर वही गन्दगी व निर्धनता आदि दृष्टि-गोचर होती है और जब वह इस बात का अनुभव करता है कि उसके पैसे की क्रय-शक्ति दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है तो वह इस बात की कोई परवाह नहीं करेगा की उसकी ओर से किसी न किसी ने सन्धि पर हस्ताक्षर किये हैं या नहीं। अतः उद्योग में शान्ति स्थापित करने के लिये इस प्रकार के प्रस्तावों में आशा व्यक्त करने के स्थान पर औद्योगिक विवादों को उत्पन्न करने वाले कारणों का समाधान और उनके निपटारे और रोकने के सुरक्षात्मक साधन अपनाये जाने की अधिक आवश्यकता है।

फिर भी, संकटकालीन अवस्था में, जैसा कि चीनी आक्रमण के बाद हमारे देश में स्थिति उत्पन्न हो गई है, ऐसे विराम सन्धि प्रस्तावों का बहुत अधिक महत्व है। ऐसे समय में यह प्रत्येक व्यक्ति और दल का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपने सब मतभेदों को भूल जायें, बलिदान देने को तैयार रहें और हर सम्भव प्रयास से देश की सुरक्षा के लिये कार्य करें। इस उद्देश्य से ३ नवम्बर १९६२ को सभी केन्द्रीय मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संयुक्त सभा ने यह संकल्प किया कि अधिकतम उत्पादन करने के लिये भरसक प्रयत्न किया जायेगा और देश के सुरक्षा प्रयत्नों को हर सम्भव प्रयासों द्वारा बढ़ाने में प्रबन्धकों और श्रमिकों का पूर्ण सहयोग होगा। सभी ने देश के प्रति अपनी वफादारी और भक्ति की पुनः पुष्टि की। इसके लिये औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। इसके अन्तर्गत प्रबन्धकों और श्रमिकों ने यह भावना व्यक्त की कि देश की सुरक्षा हेतु और उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये उपयुक्त वातावरण पैदा करेंगे और आपसी सहयोग बढ़ायेंगे, उत्पादन को रोका या कम नहीं किया जायेगा, अतिरिक्त कार्य के घण्टे और पारियों में काम किया जायेगा। कीमतों को स्थिर रखने

के प्रयत्न किये जायेंगे और राष्ट्रीय सुरक्षा कोष मे अधिक बचत करके अनुदान दिया जायेगा (प्रस्ताव का पूरा वर्णन परिशिष्ट 'ग' मे देखिये)।

सुलह तथा विवाचन पर टिप्पणी
(A Note on Conciliation and Arbitration)

समझौता, विवाचन और मध्यस्था
(Conciliation Arbitration and Mediation)

औद्योगिक विवादो को शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाने के सुलह तथा विवाचन—दो मान्यताप्राप्त साधन हैं। सुलह व्यवस्था वह विधि है जिससे श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधि तीसरे व्यक्ति या व्यक्तियो के समक्ष इस हेतु लाये जाते हैं कि उनको बिना किसी बाहरी व्यक्ति के हस्तक्षेप के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा समझौता कराने के लिये प्रेरित किया जा सके। दूसरा साधन मध्यस्थता है। मध्यस्थता मे किसी बाहरी व्यक्ति को उस समय हस्तक्षेप करना पडता है जबकि साधारण सुलह बोर्ड द्वारा वार्तालाप के प्रयत्न असफल होने लगते हैं। मध्यस्थ कोई व्यक्ति या व्यक्तिगत अधिकारी या बोर्ड भी हो सकता है। सुलह तथा मध्यस्थता के यह साधन इस बात का प्रयत्न करते हैं कि सम्बन्धित पक्ष आपस मे मिल कर पारस्परिक वार्तालाप और वाद-विवाद द्वारा अपने मतभेदो का शान्तिपूर्वक निपटारा कर लें। विवाचन इस बात का साधन है कि किसी भी विवादपूर्ण विषय पर एक तीसरे पक्ष द्वारा एक निश्चित निर्णय या विवाचन प्राप्त कर लिया जाये। इस प्रकार विवाचन व्यवस्था मे अलग से एक प्राधिकारी होता है जो कुछ निश्चित नियमो के आधार पर औद्योगिक विवादो पर अपना निर्णय देता है। विवाचन विभिन्न पक्षो की पारस्परिक सहमति से होता है। जब सरकार किसी मामले को श्रम न्यायालय अथवा औद्योगिक अधिकरण को सौंपने का निश्चय करती है तो उसे न्याय निर्णय (adjudication) कहा जाता है। इस प्रकार अनिवार्य विवाचन को ही न्याय-निर्णय का नाम दिया जाता है।

सुलह और विवाचन की यह दोनो विधियाँ ऐच्छिक या अनिवार्य, दोनो ही हो सकती है। यदि राज्य कुछ विशेष प्रकार के विवादो को अनिवार्य रूप से सुलह या विवाचन को सौपने के लिये नियम बना दे तो यह विधियाँ अनिवार्य हो जाती है। यह साधन ऐच्छिक इस दृष्टि से होते हैं कि सरकार विवादो को सुलह या विवाचन को प्रस्तुत करने के लिए केवल सुविधायें प्रदान कर देती है। सरकार कार्य को सम्पन्न कराने के लिये उपयुक्त मशीनरी की स्थापना करती है तथा सामान्य दशायें उत्पन्न करती है। इस प्रकार की व्यवस्था स्थायी, तदर्थ (ad hoc), साधारण या विशिष्ट संस्था द्वारा हो सकती है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि केवल तकनीकी बातों पर ही ध्यान न दिया जाये क्योकि औद्योगिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय वार्तालाप मे किसी व्यवस्था का होना इतना महत्वपूर्ण नही होता जितना दूसरो के लिये शुभ भावनाओं और पारस्परिक विश्वास का प्रभाव होता

है। फिर भी इस बात का कुछ तो असर पड़ता ही है कि किस प्रकार की व्यवस्था की गई है और कभी-कभी तो मालिकों और श्रमिकों में एक दूसरे के प्रति जो दृष्टिकोण होता है उस पर प्रभाव डालकर, और प्रत्यक्ष रूप में भी, इस व्यवस्था का महत्त्व अधिक हो जाता है। इस कारण औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिये जो व्यवस्था की जाये, उसके लिये जो भी समस्यायें सामने आती है उनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।[1]

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद निरन्तर तीव्र गति से बढ़ते जा रहे हैं। उनका जल्दी-जल्दी होना और उनसे घोर औद्योगिक और सामाजिक अव्यवस्था फैलना ऐसी बातें हैं जो चिन्ता का विषय बन जाती है। किसी विवाद विशेष के दृष्टिकोण से हड़ताल अथवा तालाबन्दी का समर्थन चाहे किया जा सकता हो परन्तु विस्तृत सामाजिक दृष्टिकोण से इच्छित परिवर्तन लाने के लिये यह हानिकारक साधन है। काम रुक जाने से कई गम्भीर परिणाम निकलते हैं। उत्पादन और अर्थव्यवस्था दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिकों का रोजगार और मजदूरी छिन जाती है। मालिकों को काम नहीं मिलता और उपभोक्ताओं को वस्तुयें और सेवायें नहीं मिलती। यदि मूल उद्योगों में कार्य रुक जाता है तो उसके उत्पादन पर निर्भर रहने वाले उद्योगों पर प्रभाव पड़ता है और समस्त अर्थ व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। कई ऐसे व्यक्ति जो फैक्ट्री चालू होने पर छोटे-मोटे काम करके अपना गुजारा करते है, उनका काम बन्द हो जाने पर बहुत हानि पहुंचती है। पण्डित नेहरू ने एक बार कहा था कि "हड़ताल एक ऐसा हथियार है जिसको छुपाकर म्यान में ही रखना चाहिये और उसको बिना सोचे-समझे और अंधा-धुन्ध तरीके से कभी भी इस्तेमाल नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से राष्ट्र की उन्नति में बाधा पड़ेगी।" कोई भी प्रगतिशील नीति हो, उसका उद्देश्य यह होना चाहिये कि इस प्रकार के औद्योगिक विवादों को कम किया जाये। अतः हड़तालों और तालाबन्दी को रोकने और विवादों के निपटारे के साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है।

सुलह तथा विवाचन का मूल उद्देश्य यह होता है कि एक ऐसी व्यवस्था कर दी जाये जो काम रोकने का विकल्प (Alternative) हो और जिससे सम्बन्धित पक्षों के हितों के लिये जो सामूहिक विवाद हो जाते हैं उनका निपटारा किया जा सके—विशेषकर ऐसे विवादों का निपटारा हो सके जो आर्थिक विषयों पर मतभेद उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे विषय मजदूरी, काम के घण्टे और रोजगार की अवस्थायें होती है जो साधारणतः सामूहिक करारों द्वारा निर्धारित किये जाते है। साधारणतः कार्य तब रुकता है जब सम्बन्धित पक्षों में वार्ता असफल हो जाती है। मान्य व्यवस्था द्वारा निपटारे के प्रयत्नों में असफलता होने पर ही काम बन्द करना अन्तिम साधन के रूप में अपनाया जाता है। हड़तालों तथा तालाबन्दी की अधिकता

1. A C Pigou—Economics of Welfare

पारस्परिक वार्तालाप और समझौता साधनो की असफलता को प्रकट करती है। अत इस उद्देश्य के लिये एक उचित तथा सोच-समझ कर व्यवस्था करने की अति आवश्यकता है।

प्रो० पीगू[1] के अनुसार, औद्योगिक शान्ति की विधियाँ कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे—सुलह और विवाचन के लिये ऐच्छिक व्यवस्था, मध्यस्थता तथा अवपीडक हस्तक्षेप (Coercive Intervention)। मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि द्वारा बनाये गये स्थाई बोर्डो मे औद्योगिक शान्ति स्थापित की जा सकती है। इन बोर्डों का कार्य केवल समझौता कराना ही नही होना चाहिये वरन् कार्य की दशाओं, मजदूरी देने के तरीकों, तकनीकी शिक्षा, औद्योगिक अनुसधान तथा कार्य प्रक्रियाओं आदि में उन्नति करना भी होना चाहिये। यदि मालिक और श्रमिकों के प्रतिनिधि इन समस्याओं पर सयुक्त रूप मे विचार करेंगे तो वे एक दूसरे को प्रतिस्पर्धी मानने के स्थान पर सहयोगी मानने लगेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि यदि कभी मतभेद भी होगा तो न केवल वार्तालाप का वातावरण अच्छा होगा वरन् दोनो पक्षों को यह ध्यान रहेगा कि वह कुछ ऐसी सीमा का उलघन न कर जायें जिससे उनके हितो के जो सगठन बना हुआ है उसी को क्षति पहुँचे। इस प्रकार सुलह के लिये ऐच्छिक व्यवस्था की जाती है उसमे औद्योगिक परिषदें और मालिक मजदूर समितियाँ सम्मिलित की जा सकती है। प्रो० पीगू ने इस ओर भी सकेत किया है कि इन बोर्डो और परिषदो मे महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों पक्षों के प्रतिनिधियो मे, विशेषकर श्रमिकों के प्रतिनिधियो मे, अपने-अपने पक्षों का विश्वास होना चाहिये। तकनीकी बातें और वकील इन बोर्डों के सम्मुख नही आने चाहियें ताकि कोई ऐसी बात न हो जिससे कुछ तनाव हो, तथा वार्तालाप मे मुकदमेबाजी की भावना नही होनी चाहिये, वरन् समझौते की भावना पर बल देना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो निर्णय भी केवल बहुमत मे न होकर एकमत मे होने चाहिये। बोर्डों की बैठक भी गुप्त होनी चाहिये ताकि उनमे स्पष्टता मे विचार-विमर्श हो सके।

यह भी प्रश्न उठता है कि औद्योगिक शान्ति के लिए जो ऐच्छिक व्यवस्था की जाती है उसमे अन्तत विवाचन होना चाहिए या नही। इसमें कोई सन्देह नही है कि सुलह बोर्ड के आपसी समझौते की अपेक्षा विवाचन व्यवस्था मे अधिक झुंझलाहट तथा बुरी भावनायें हो सकती हैं। इसलिये जब तक अति आवश्यक न हो विवाचन का सहारा नहीं लेना चाहिये। परन्तु यदि विवाचन के लिये कोई व्यवस्था न की जाय तो आपसी मतभेदो के कारण हडतालें और तालाबन्दियाँ हो सकती हैं जिनसे धन की हानि और आपस मे बुरे सम्बन्ध पैदा हो जाते हैं। यदि पहले से ही किसी विवाचन की व्यवस्था कर ली जाती है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि शान्ति से दोनो पक्ष इस बात का निर्णय कर लेते हैं कि भविष्य मे कोई

1 A. C Pigou—*Economics of Welfare.*

कार्य उत्तेजना से नहीं करेंगे। परन्तु विवाचन की कुछ अप्रत्यक्ष रूप से हानियाँ भी है। प्रथम तो दोनों पक्षों के प्रतिनिधि आपसी समझौते की ओर प्रयत्न करने में गम्भीरता नहीं दिखाते। वे दूसरे पक्ष को कोई भी रियायत देने में हिचकिचाते हैं ताकि कहीं ऐसा न हो कि विवाचन के समय उनके सुझाव का उन्हीं के खिलाफ प्रयोग किया जाये। दूसरे, आपसी मतभेदों की संख्या विवाचन व्यवस्था होने से अधिक बढ़ सकती है क्योंकि कार्य बन्द होने का डर न रहने से कुछ न कुछ लाभ हासिल करने के लिये मतभेद अधिक उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये कोई नियमित रूप से विवाचन व्यवस्था करने के स्थान पर विवाचन तब होना चाहिये जब दोनों पक्ष इस बात के लिये सहमत हों। जो भी विवाचक हो, वह अपनी निष्पक्षता एवं कार्य-क्षमता के लिये प्रसिद्ध होना चाहिये।

यह हो सकता है कि ऐच्छिक व्यवस्था हड़तालों और तालाबन्दियों की रोक-थाम करने के लिये सभी परिस्थितियों में सहायक सिद्ध न हो। ऐसी अवस्था में मैत्रीपूर्ण मध्यस्थता का साधन सामने आता है अर्थात् दोनों पक्षों में मतभेद के निपटारे के लिये किसी बाहरी व्यक्ति को हस्तक्षेप करना चाहिये। जब कभी कोई मतभेद बढ़ जाता है और उससे खुले तौर पर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है तब दोनों पक्ष उसको आत्म-सम्मान का प्रश्न बना लेते हैं और झुकने में अपनी हीनता समझते हैं। ऐसे समय में मध्यस्थ के प्रयत्नों द्वारा मामला सुलझ सकता है और बिना सम्मान में हानि अनुभव किये हुए कोई भी पक्ष झुक सकता है। यदि मध्यस्थ समझौता न भी करा पाये तब भी वह इस बात में तो सफल हो सकता है कि दोनों पक्ष झगड़ा करने के स्थान पर विवाचन द्वारा निर्णय करने के लिये सहमत हो जायें। मध्यस्थता की जो व्यवस्था होती है उसमें कोई बाहरी प्रसिद्ध व्यक्ति हो सकता है या कोई गैर-सरकारी या सरकारी बोर्ड हो सकता है। इन सबका अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य होता है परन्तु मध्यस्थता व्यवस्था में परस्पर शान्ति बनाये रखने की व्यवस्था में रुकावट नहीं पड़नी चाहिये और उद्योगों में पारस्परिक बोर्डों की स्थापना में सहयोग मिलना चाहिये।

अवपीड़क हस्तक्षेप (Coercive Intervention)

जिस प्रकार कभी कभी ऐच्छिक सुलह व्यवस्था से आपसी मतभेद नहीं सुलझ पाते उसी प्रकार मध्यस्थों के प्रयत्न भी असफल हो सकते हैं। ऐसे कठिन मतभेदों के बार-बार होने के कारण यह सोचना पड़ता है कि राज्य द्वारा जो अवपीड़क अधिकार हैं उनका प्रयोग करना चाहिये या नहीं। राज्य के इस प्रकार के हस्तक्षेप को प्रो० पीगू ने 'अवपीड़क हस्तक्षेप' (Coercive Intervention) कहा है। यह चार प्रकार से हो सकता है। सबसे सीधा और नर्म तरीका यह है कि जब भी दोनों पक्ष चाहते हों उनके लिये अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था कर दी जाय। दोनों पक्ष अपने आपसी मतभेदों को किसी सरकारी बोर्ड के सम्मुख रख देते हैं और उसका निर्णय अपने आप तथा वैध रूप से लागू हो जाता है। यह

कहा जा सकता है कि एक बार विवाचन व्यवस्था से सहमत हो जाने पर इस बात का पर्याप्त आश्वासन मिल जाता है कि जो भी निर्णय होगा वह मान्य होगा, क्योंकि जनमत का, तथा उचित अथवा अनुचित का ध्यान करना पडता है। इस प्रकार यदि वैध रूप से लागू करने की कोई व्यवस्था की जाती है तो विवाचन का माननीय लक्षण नष्ट हो जाता है। इस प्रकार जब ऐच्छिक विवाचन होता है तो अनिवार्य व्यवस्था करने से सुलह व्यवस्था का कम प्रयोग होगा। परन्तु इसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि ऐच्छिक विवाचन तो अब भी रहेगा ही और इसका प्रयोग किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, यदि विवाचन मे कोई मजबूरी न हो तो यह हो सकता है कि इसको इतना पसन्द न किया जाये। वैध रूप मे लागू करने की जो धारा है उसका प्रयोग नेता लोग अपने ऐसे श्रमिको के विरुद्ध कर सकते हैं जो उनके खिलाफ आवाज उठायें।

राज्य के हस्तक्षेप का दूसरा तरीका यह है कि जो भी निर्णय मालिको और श्रमिको के मुख्य सम्थानो द्वारा ले लिया गया है उसे सभी उद्योगो, व्यापार, जिला या देश मे लागू कर दिया जाये। इससे यह लाभ होगा कि कोई भी समझौता कुछ बुरे मालिको द्वारा रद्द नही किया जा सकेगा। कई मालिक श्रमिको को अच्छी मजदूरी देने के लिये और उनके कार्य के घण्टे कम करने के लिये सहमत हो सकते है यदि उनके सभी प्रतिस्पर्धी ऐसा करने के लिये तैयार हो जायें, नही तो उनको नुकसान होगा। परन्तु राज्य के इस हस्तक्षेप से यह भी भय है कि मालिको के कुछ ऐसे गुट न बन जाये जिनसे उपभोक्ताओ को नुकसान पहुचे। इस बात मे भी व्यावहारिक रूप मे कठिनाई आती है कि इस सम्बन्ध मे विधान किस सीमा तक लागू किया जाये। इन सब बातो के होते हुए भी राज्य के इस प्रकार के हस्तक्षेप को बहुत से देशो मे सराहा गया है। भारत मे भी मजदूरी बोर्डों के जो निर्णय होते है वह सरकार द्वारा लागू किये जाते हैं।

राज्य के हस्तक्षेप का तीसरा तरीका यह है कि राज्य कोई ऐसा विधान बना दे जिसके अन्तर्गत हड़ताल या तालाबन्दी करने से पहले औद्योगिक विवादो को किसी अधिकरण के सम्मुख रखना अनिवार्य हो। इस व्यवस्था के तीन लाभ है। प्रथम तो दोनो पक्षो के बीच गम्भीर प्रकार से विचार-विमर्श हो सकता है और एक निष्पक्ष प्राधिकारी की सहायता से आपसी मतभेदो का निपटारा हो सकता है। दूसरे, सरकार द्वारा नियुक्त अधिकरण को इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह विवाद से सम्बन्धित हर बात की जाँच कर सके और प्रपत्रो (Documents) को देख सके और गवाहो को बुला सके। तीसरे, कार्यों को रोकना अवैध घोषित कर दिया जाता है जब तक कि जाँच का कार्य समाप्त न हो जाये और उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत न कर दी जाये। भारत मे, औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को जाच अदालतो की नियुक्ति का अधिकार है और सरकार ने हड़तालो व तालाबन्दियो के विवाचन के लिये श्रम अदालतो व अधिकरणो की स्थापना

की है। हमारे देश में भी कई परिस्थितियों के अन्तर्गत हड़तालों और तालाबन्दियों पर रोक लगाई हुई है, उदाहरणत, सार्वजनिक सेवाओं में बिना उचित नोटिस के कोई तालाबन्दी या हड़ताल नहीं हो सकती। विवाचन काल में हड़ताल और तालाबन्दी करना निषेध है।

राज्य के हस्तक्षेप का चौथा तरीका अनिवार्य विवाचन का है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई ऐसा विधान बना दिया जाता है जिसके अन्तर्गत जो कोई सरकार द्वारा नियुक्त होता है वह विवादों के निपटारे की शर्तों की न केवल सिफारिश करता है वरन् ये शर्तें वैध रूप से लागू हो जाती है और इनके खिलाफ कोई भी हड़ताल या तालाबन्दी करना एक दण्डनीय अपराध माना जाता है। विचार-विमर्श और सुलह व्यवस्था से निपटारा करने का तरीका भी रहता है लेकिन मुख्यत इस बात पर जोर दिया जाता है कि जब और सब तरीके समाप्त हो जायें और विवाद कठिन हो जाय तो हड़ताल और तालाबन्दी को निषेध कर दिया जाय। ऐसे विधान विभिन्न देशों में कुछ विभिन्नता रखते हैं। परन्तु सभी जगह राज्य द्वारा इस प्रकार से स्वतन्त्रता कम कर देने के खिलाफ आवाजें उठाई गई हैं। भारत में औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सरकार जाँच न्यायालय नियुक्त कर सकती है और कोई भी मामला श्रम न्यायालय या अधिकरण को निर्णय के लिये सौंप सकती है और उसके निर्णय को लागू कर सकती है। निर्णय को लागू करने की अवधि में हड़ताल व तालाबन्दी करना निषेध कर दिया जाता है।

अब हम अपने देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये सुलह और विवाचन व्यवस्था पर विचार-विमर्श करेंगे।

यहाँ इस ओर भी संकेत किया जा सकता है कि विवादों की शान्तिपूर्ण ढंग से निपटाने की व्यवस्था पर पूर्णतया निर्भर रहने का श्रमिक स्वागत नहीं करते। इसका कुछ कारण तो यह होता है कि राज्य और उसकी व्यवस्था में इनका अविश्वास होता है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था को साधारणतया वह पूँजीपति के हितों के लिये समझते है। अन्य कारण यह भी है कि श्रमिकों के संगठन दुर्बल हैं जिससे उनको अपना मामला नियमित रूप से प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है। परन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि श्रमिक शान्तिपूर्ण उपायों के विरोध में रहते हैं और अपने हड़ताल के शस्त्र को छोड़ने को तैयार नहीं होते। इस कारण शान्तिपूर्ण समझौता करने की अनिवार्य विधियाँ बनाने का सुझाव साधारणतया मालिकों की ओर से या सरकार में उनके समर्थकों की ओर से ही आया है, जिन्हें इस बहाने यह भी अवसर मिल जाता है कि अपनी राजनैतिक स्वार्थ-सिद्धि के लिये राष्ट्रीय एकता की बातें करें। परन्तु अधिकतर देशों में विवादों के निपटारे व शमन में राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता को श्रमिकों ने भी स्वीकार कर लिया है। दूसरे देशों में विधानों का रूप इस बात का प्रमाण है कि राज्य अब

अधिक से अधिक इन विषयों में भाग ले रहा है। यह प्रवृत्ति दो विश्व युद्धों द्वारा उत्पन्न हुये संकटकाल में अधिक शक्तिशाली हो गई थी अतः वर्तमान समस्या यह नहीं रही है कि सुलह तथा विवाचन हो या न हो, वरन् समस्या अब यह है कि उनके निश्चित क्षेत्र की परिभाषा किस प्रकार की जाय और प्रभावपूर्ण कार्य करने के लिये विभिन्न समझौतों के साधनों के दोष और गुणों के अध्ययन की ओर ध्यान दिया जाय।

विभिन्न अधिनियमों में सुलह और विवाचन

औद्योगिक विवादों के निपटारे के साधन के रूप में सुलह व्यवस्था की सम्भावना पर विचार यद्यपि सन् १९२१ में बंगाल और बम्बई सरकार द्वारा नियुक्त समितियों ने व्यक्त किया था तथापि औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिये जांच न्यायालय एवं सुलह बोर्ड की वैधानिक व्यवस्था सर्वप्रथम १९२९ में व्यवसाय विवाद अधिनियम में की गई थी। इस सम्बन्ध में अधिनियम की धाराओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अधिनियम में शान्ति स्थापित करने के लिये कोई भी स्थायी व्यवस्था नहीं की गई थी और इसमें सरकार को सुलह बोर्ड के निर्णयों को लागू करने का भी अधिकार नहीं दिया गया था। सन् १९३४ और सन् १९३६ के बीच बम्बई में औद्योगिक विवाद के समझौते के लिये स्थाई सुलह व्यवस्था की स्थापना की ओर विशेष पग उठाये गये। सन् १९३८ में बम्बई व्यवसाय विवाद समझौता अधिनियम पारित किया गया जो १९३८ में एक व्यापक अधिनियम—बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। इस अधिनियम के उपबन्धों का उल्लेख भी ऊपर किया जा चुका है। सन् १९३८ के अधिनियम द्वारा अनिवार्य सुलह की व्यवस्था की गई और समझौताकारों, मुख्य समझौताकारों, विशेष समझौताकारों, औद्योगिक न्यायालयों आदि की नियुक्ति की गई। युद्धकाल में, सन् १९३८ के बम्बई अधिनियम में १९४१ और १९४२ में संशोधन किये गये जिनके अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि सरकार यदि आवश्यक समझे तो विवादों को औद्योगिक विवाचन न्यायालय को सौंप सकती है। सन् १९४५ में बम्बई में एक संशोधन द्वारा श्रम अधिकारियों की नियुक्ति की गई। केन्द्रीय सरकार ने सन् १९४२ में हड़तालों और तालाबन्दी को रोकने और किसी भी विवाद को सुलह तथा विवाचन को सौंपने के लिये कई अध्यादेश जारी किये। सन् १९४७ में भारत सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया। बम्बई, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की सरकारों ने भी इस सम्बन्ध में कानून बनाये। सन् १९४७ के अधिनियम में औद्योगिक विवादों को सुलझाने के अनेक साधनों की व्यवस्था की गई है। समझौता अधिकारियों, सुलह बोर्ड, जांच न्यायालय तथा औद्योगिक अधिकरण की नियुक्ति की भी व्यवस्था है। अधिनियम में अनिवार्य समझौते के अतिरिक्त अनिवार्य विवाचन की भी व्यवस्था है क्योंकि सरकार कोई भी विवाद अधिकरण

को विवाचन के लिये सौंप सकती है और उसके निर्णय को पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से लागू करा सकती है। अधिनियम में अनेक विशेष स्थितियों का समावेश और क्षेपपूर्ति करने के लिये अनेक संशोधन किये गये हैं। १९५० में एक अपीलीय अधिकरण की स्थापना की गई जिसको कि १९५६ में समाप्त कर दिया गया। अब अधिकरणों की तीन श्रेणी की व्यवस्था की गई है, अर्थात् श्रम न्यायालय, औद्योगिक अधिकरण और राष्ट्रीय अधिकरण। इसके अतिरिक्त, सन् १९४७ के संशोधन अधिनियम में विवादों के ऐच्छिक विवाचन का भी उपलब्ध है। सभी पक्ष एक लिखित समझौते द्वारा यह तय कर सकते हैं कि कोई भी विवाद न्याय निर्णय (Adjudication) के लिये श्रम-न्यायालय या अधिकरण को सौंपने से पूर्व पंचनिर्णय के लिये विवाचक (Arbitrator) को सौंप दें।

अधिनियम की धाराओं का दोहराने का उद्देश्य इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि भारत में औद्योगिक विवादों को रोकने और निपटाने के लिये सुलह व्यवस्था तथा विवाचन का आवश्यक समझा जाने लगा है और इनके लिये सरकार द्वारा व्यवस्था की गई है। अब तो केवल इस बात पर मतभेद है कि इस प्रकार के साधन ऐच्छिक हों अथवा अनिवार्य।

सुलह व्यवस्था (Conciliation)

उपचार से रोकथाम सदैव अच्छी होती है और औद्योगिक विवादों के विषय में भी यह बात लागू होती है। प्रारम्भिक अवस्था में ही यदि ठीक प्रकार से सहायता मिल जाये जो सुलह व्यवस्था के रूप में हो सकती है तो उसका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। रॉयल श्रम आयोग के अनुसार, "यह कहीं अच्छा है कि कोई भी समझौता विवाद के पक्षों के स्वयं के प्रयत्नों से हो, बजाय इसके कि समझौता उनके सामने रखकर जनमत या किसी और के जोर से उसको लागू किया जाय। कई बार ऐसा होता है कि चतुर और अनुभवी अधिकारी पक्षों को एक दूसरे के सम्पर्क में लाने में सहायता कर सकते हैं या एक पक्ष के सम्मुख दूसरे पक्ष का दृष्टिकोण, जिस पर ध्यान न दिया गया हो, रख सकते हैं या पारस्परिक समझौते के सम्भावित मार्ग का सुझाव दे सकते हैं।'[1] शुरू शुरू में भारत में ग्रेट ब्रिटेन की नकल करते समय हमने दुर्भाग्यवश वहाँ की व्यवस्था के कम महत्त्वपूर्ण भाग को ही *अपनाया और वहाँ की व्यवस्था के सबसे महत्त्वपूर्ण भाग की ओर ध्यान ही नहीं* दिया। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी तदर्थ सार्वजनिक जाँचों के ऊपर कम निर्भर रहा जाता है, जिस प्रकार जाँच हम भारत में करते हैं, और सुलह अधिकारियों के प्रयत्नों पर, जो पक्षों को निजी तौर पर समझौता करने में सहायता देते हैं, ज्यादा निर्भर रहा जाता है। इसलिये रॉयल श्रम आयोग ने अपना निर्णय सुलह व्यवस्था के पक्ष में दिया गया था और जाँच न्यायालयों अथवा विवाचन कार्यवाहियों में अपना विश्वास प्रकट नहीं किया था।

1 Report of the Royal Commission on Labour, pages 346 348

सुलह के व्यावहारिक लाभ की महत्ता का उस समय सबसे अधिक पता चलता है जब इसकी विचारन से तुलना की जाती है। उद्योग शान्ति की स्थापना मे सुलह व्यवस्था को विवाचन की अपेक्षा निश्चित रूप से अच्छा समझा जाता है। यह अनुभव किया गया है कि जहाँ भी विवाचन इच्छित परिणामो को प्राप्त करने मे असफल रहा है वहाँ सुलह व्यवस्था को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। बरेली की 'वेस्टर्न इण्डिया मैच फैक्टरी (दियासलाई कारखाना) के एक विवाद मे दिये गये विवाचन के निर्णय का उदाहरण इस सम्बन्ध मे दिया जा सकता है। एक उच्च श्रम अधिकारी द्वारा दिये गये निर्णय को सरकार द्वारा लागू किया गया था परन्तु श्रमिक फिर भी असन्तुष्ट रहे। शीघ्रगति से एक हड़ताल हुई और फिर श्रमिको ने कार्य मन्दा गति की (Go slow-tactics) अपना ली और दियासलाई का उत्पादन घटकर चौथाई ही रह गया। परन्तु जब श्रम कमिश्नर ने कारखाने को स्वय आकर देखा और दोनो पक्षो मे सम्पर्क स्थापित किया तब वह सुलह की सरल विधि से ही समझौता कराने मे सफल हो गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब देश मे इस बात की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उद्योगो मे मालिक मजदूरो मे सहयोग स्थापित करके उत्पादन को बढ़ाया जाये तब औद्योगिक विवादो को सुलझाने के लिये कानून की शक्ति की अपेक्षा मानवीय विधियो को ही अपनाना चाहिये। यदि सुलह के रूप मे मानवता के दृष्टिकोण से कार्य किया जाता है तब इसके अच्छे प्रभाव पड़ने मे कभी असफलता नही होगी। यह ध्यान रखना चाहिये कि सुलह व्यवस्था मे दोनो पक्षो का एक दूसरे के दृष्टिकोण की सराहना करना आवश्यक है और यह केवल तब ही सम्भव है जबकि दोनो पक्षो मे न केवल सद्भावना मे वरन् स्थायी रूप से सम्पर्क स्थापित किया जाये।

भारत मे, विभिन्न अधिनियमो के अन्तर्गत सुलह बोर्ड और समझौताकारो की नियुक्ति के विषय मे ऊपर कहा जा चुका है और उनकी कार्य व्यवस्था पर पूर्ण रूप से विचार भी किया जा चुका है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो व्यवस्था की गई है उसमे कुछ दोष भी है। प्रथम तो यह कहा जाता है कि पक्षो मे समझौता कराने के लिये समझौताकारो की विचारधारा दोषपूर्ण है। समझौताकार न्यायाधीश से भिन्न होता है क्योकि उसे कानूनी दृष्टिकोण से दोनो पक्षो के अधिकारो पर विचार नही करना होता। उसका काम केवल मांगो और विरोधी मांगो की व्यक्तिगत रूप से व्याख्या करना है जिससे दोनो पक्ष एक दूसरे की मांगो के औचित्य को समझ सके। परन्तु व्यवहार मे देखने मे आता है कि हमारे देश मे समझौता अधिकारी अधिकतर निर्णय ही देते है और इस प्रकार न्यायाधीश के समान कार्य करते है। इस व्यवस्था का दूसरा दोष यह है कि उचित दलीलो के अभाव मे श्रमिको के दृष्टिकोण की अवहेलना हो जाती है। वकीलो का सुलह बोर्डों के समक्ष आने की आज्ञा नही है इसका उद्देश्य न्यायालय के वातावरण का दूर रखना और अनावश्यक जटिलताओ का दूर करना

है। लेकिन दुर्भाग्यवश श्रमिकों में सुलह कार्यवाहियों के सम्मुख अपने दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक रखने की योग्यता नहीं है। उनके सामने श्रमिक संघ अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं जो साधारणतया बाहरी व्यक्ति होते हैं और इस प्रकार श्रमिकों की सच्ची भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। श्रमिक अपनी शिकायतों के समर्थन में उचित दस्तावेजी प्रमाणों के बिना ही कई बार अपनी मांगों को बढ़ाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं। इसी कारण उनकी अधिकतर मांगें अस्वीकार कर दी जाती हैं। इसके अलावा श्रमिकों और मालिकों दोनों का व्यवहार सुलह बोर्ड के सामने लगभग ऐसा ही होता है मानो वह किसी न्यायालय में मुकदमे के ऊपर लड़ रहे हों। समझौते की भावना और पक्षों के विवेकपूर्ण व्यवहार का भारत में अभाव रहा है, जो सुलह की सफलता के लिये अति आवश्यक है। ऐसे व्यवहार और भावना से ही ग्रेट ब्रिटेन में सफलता मिली है। श्रमिकों और मालिकों दोनों के प्रतिनिधियों के व्यवहार इन सुलह बोर्डों के सामने ऐसे स्वतन्त्र व्यक्तियों की भाँति नहीं होते जो समझौता करने का प्रयत्न कर रहे हों वरन् ऐसी दलबन्दी के रूप में होते हैं जो एक दूसरे के मूल्य पर लाभ उठाना चाहते हों और अपने पक्ष की मांगों पर ही जोर देते हों। देश के श्रमिक नेताओं को श्रम अधिनियमों का ज्ञान भी बहुत कम है और कभी-कभी तो वह इस प्रकार की मांग करने लगते हैं जो कानून के विरुद्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त सुलह बोर्डों के निर्णयों के विरुद्ध अपील औद्योगिक न्यायालयों में होती है जिनके न्यायाधीश होते हैं। इसका कारण सुलह अधिकारी स्वभावतः पूरे मामले पर कानूनी दृष्टिकोण से विचार करना शुरू कर देता है क्योंकि वह जानता है कि सम्पूर्ण मामले पर औद्योगिक न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा वैधानिक दृष्टिकोण से ही विचार किया जायेगा। अतः कार्यवाही में सुलह की भावना का अभाव हो जाता है। परन्तु इस प्रकार के दोष सुलह व्यवस्था की कार्य-प्रणाली के ही हैं और इन्हें समझौता अधिकारियों को उचित निर्देश देकर और श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार करके दूर किया जा सकता है। जहाँ तक सुलह व्यवस्था का सम्बन्ध है, औद्योगिक विवादों की समस्या को सुलझाने के लिये उसको अपनाने में कोई एतराज नहीं किया जा सकता।

अनिवार्य सुलह (Compulsory Conciliation)

यह भी उल्लेखनीय है कि केवल सुलह को ही नहीं वरन् अनिवार्य सुलह को भी देश में अपनाया गया है। प्रथम बार इसकी व्यवस्था १६३८ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम में और इसके पश्चात् १६४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में की गई थी। सन् १६४७ के अधिनियम में सरकार के लिये यह अनिवार्य है कि वह सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं में उत्पन्न सभी विवाद सुलह के लिये सौंप दे। अन्य सेवाओं के सम्बन्ध में भी सरकार चाहे तो ऐसा कर सकती है। अनिवार्य सुलह की आलोचना इस आधार पर की गई थी कि समझौते की

ऐच्छिक प्रकृति के कारण इस सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की अनिवार्यता अवाछनीय है, विशेषत ऐसी स्थिति मे जबकि १६२६ के व्यवसाय विवाद अधिनियम मे ऐच्छिक सुलह की पद्धति को बहुत ही कम अपनाया गया था। इसके अतिरिक्त श्रमिक अभी तक अच्छी प्रकार से सगठित नही हो सके है और अपने मामले को नियमित रूप से प्रस्तुत नही कर सकते। इसलिए यह हो सकता है कि सुलह अधिकारियो के निर्णय श्रमिको के विरुद्ध हो। परन्तु इन आलोचनाओ मे अधिक सार नही था क्योकि जब ऐच्छिक सुलह की व्यवस्था का प्रयोग नही किया गया था तब ही इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि विवादो को प्रारम्भिक अवस्था मे ही सुलझाने के लिए अनिवार्य सुलह की व्यवस्था की जाये। अधिनियम के कार्यान्वित होने पर अनिवार्य सुलह की दलीलो का और भी अधिक बल मिला। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनिवार्य सुलह व्यवस्था, जिसमे सुलह कार्यवाहियो के शुरू होने या समाप्ति की अवधि मे हडतालें और तालाबन्दी निषेध कर दी जाती है, का उद्देश्य केवल यह होता है कि शान्तिपूर्वक समझौता करने की सम्भावनाओ को खोजा जाये। इस प्रकार, श्रमिको का हडताल करने का अधिकार केवल स्थगित ही कर दिया जाता है। यह कहना कि औद्योगिक सम्बन्धो को नियन्त्रित करने मे राज्य का हस्तक्षेप करना या हडताल करने के अधिकार पर कोई वैधानिक रोक लगाना श्रमिको के मूल अधिकारो को छीनना है, गलत होगा। इसका तो यह अर्थ होगा कि स्वतन्त्रता और उच्छृ खलता मे कोई भेद नही किया जाता। हडतालो का उस अवधि के लिए स्थगित करना जब तक समझौते और सुलह की सम्भावनाओ पर प्रयत्न नही कर लिए जाते, विवादो को सुलझाने मे एक उचित वातावरण पैदा करने के लिए आवश्यक है। श्रमिको के दृष्टिकोण मे भी यह वाछनीय होगा। इससे निरर्थक और अपरिपक्व (Premature) हडतालें समाप्त हो जायेगी और जो वास्तविक और मुख्य मामले होगे उनके लिए सघर्ष करने के लिए श्रमिक अपनी शक्तियो को सचित रख सकेंगे। इससे हडतालो का महत्व भी बढ जायेगा, श्रमिको के सगठन भी अधिक सुदृढ हो सकेंगे और उन्हे जनता का सहयोग भी प्राप्त होगा। इस प्रकार सफल हडतालो की सख्या बढ जायगी।

विवाचन विधि—ऐच्छिक एव अनिवार्य (Arbitration—Voluntary and Compulsory)

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि देश मे विवाचन विधि अपना ली गई है और इसको युद्धकाल मे अनेक अध्यादेशो द्वारा और १६४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा लागू किया गया है। विवाचन ऐच्छिक भी हो सकता है और अनिवार्य भी। ऐच्छिक विवाचन मे यह तात्पर्य है कि दोनो पक्ष अपने मतभेदो के पारस्परिक रूप मे सुलझाने मे असमर्थ होने पर तथा मध्यस्थ एव समझौताकार की प्रयत्नो से भी कोई सहायता न पाकर अपने विवाद को एक विवाचक के सम्मुख प्रस्तुत करके उसके द्वारा दिए गये निर्णय को मानना स्वीकार कर लेते हैं। इस

विवाचन अपने उद्देश्य के लिए स्वयं ही असफल सिद्ध होता है। इससे उद्योग में शान्ति स्थापना की अपेक्षा श्रमिकों में घोर असन्तोष की भावना पैदा हो जाती है। दूसरे देशों में भी इस व्यवस्था का सदैव विरोध हुआ है। सिडनी वेब ने कहा है, "अनिवार्य विवाचन को विवाचन नहीं कहा जा सकता, इसका अर्थ यह होगा कि सामूहिक सौदाकारी को पूर्णतया दबा दिया जाये। विवाचन कानून बनाने का एक साधन है। न्यायालय का काम तो केवल कानून की व्याख्या करना है न कि विधान बनाने का।" अमरिका में अनिवार्य विवाचन अधिनियम पर विचार करते समय अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर ने यह मत प्रकट किया था—"अमेरिका के श्रमिक कभी गुलाम बनकर काम नहीं करेंगे। अनिवार्य विवाचन से औद्योगिक विवादों को बढ़ावा मिलेगा और वह अधिक लम्बे हो जायेंगे। इससे स्वराज (Self Govt) लगभग समाप्त हो जाता है, मालिकों और श्रमिक संघ में स्वयं अपनी समस्याओं पर विचार करने का उत्तरदायित्व छिन जाता है सामूहिक सौदाकारी पर कुठाराघात होता है और इसकी जगह मुकदमेबाजी आ जाती है। विवाचन का अर्थ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन, गतिशीलता की क्षति, प्रेरणा की समाप्ति तथा आशा और स्वत (Self) उत्पन्न होने की आकांक्षाओं का टूट जाना है।" दूसरे देशों के अनुभवों से भी यह पता चलता है कि अनिवार्य विवाचन का कहीं भी समर्थन नहीं किया गया है। युद्ध के समय में ऐसे विवाचन को अपनाया गया था परन्तु जैसा कि ब्रिटिश श्रम मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित एक औद्योगिक शान्ति-सम्बन्धी पुस्तिका में कहा गया है कि "काम बन्द करने पर कानूनी निषेध, तथा अनिवार्य विवाचन व्यवस्था के होते हुए भी युद्ध के मध्य काल में सम्पूर्ण देश में औद्योगिक अशान्ति आ गई थी।" ब्रिटिश श्रमिक संघ और ह्विटले समिति ने भी, जिन्होंने इस समस्या का विस्तार से अध्ययन किया था, अनिवार्य विवाचन के विरोध में विचार प्रकट किये हैं। १९४६ में अमेरिका राज्य के तीसरे श्रम सम्मेलन में एक ऐसे प्रस्ताव में जिसको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी स्वीकार कर लिया है यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि श्रमिकों के सामूहिक सौदाकारी के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिये।

इस समय यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष में अनिवार्य विवाचन सफल होगा अथवा नहीं। इस कथन पर तीव्र मतभेद है। रॉयल श्रम आयोग का मत इसके विरोध में था। परन्तु भारत सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर इस विषय पर अधिनियम बनाये हैं। परन्तु श्रम मन्त्री के रूप में श्री वी० वी० गिरी के आ जाने के पश्चात् से सरकार का दृष्टिकोण कुछ बदला हुआ सा प्रतीत हुआ। फिर विवादों को सुलझाने के लिए ऐच्छिक समझौतों तथा मालिकों व श्रमिकों के बीच सीधी वार्ता को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक न्यायालय को तो आपत्ति के समय के लिये पुलिस व सेना की

भांति ही होना चाहिये जो आवश्यक समय पर ही कार्यशील होते हैं। युद्धकाल में सम्भवत अनिवार्य विवाचन ठीक माना भी जा सकता है परन्तु सामान्य अवस्था में इस सिद्धान्त को बनाये रखना अन्तत हानिकारक होगा। यह भी देखने में आया है कि जिस समय श्री जगजीवन राम श्रम मन्त्री थे तब जनमत शनैं शनैं अनिवार्य विवाचन के पक्ष में होता चला गया परन्तु श्री वी० वी० गिरी के श्रम मन्त्री के रूप में आने पर पुन ऐच्छिक वार्तालाप की ओर हो गया। श्री खडूभाई देसाई की इस विषय में विचारधारा कुछ-कुछ श्री गिरी जैसी ही थी और श्रम मन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा तो और भी सजग थे। उनका उद्देश्य यह था कि श्रमिकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए संयुक्त परिषदों और श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की व्यवस्था जैसी कुछ योजनायें शुरू की जायें ताकि प्रबन्धक और श्रमिक एक दूसरे के निकट हो जायें और पारस्परिक सन्देह दूर हो जायें तथा आपस में विश्वास उत्पन्न हो जाये। इन सबका अन्तत परिणाम यह होगा कि अनिवार्य विवाचन को अपनाने की अपेक्षा सीधे वार्तालाप और सामूहिक सौदागरी की प्रणालियों को अपना लिया जायेगा। हाल के वर्षों में, सरकारी नीति में ऐच्छिक विवाचन पर ही जोर दिया गया है।

<u>ऐच्छिक विवाचन</u>—भारत में विवादों को सुलझाने का कोई आदर्श उपाय नहीं है। इस उपाय का प्रयोग सर्वप्रथम सन् १९२१ में महात्मा गांधी ने अहमदाबाद के श्रमिकों एवं मालिकों का किया था। अहमदाबाद में इसको काफी सफलता मिली क्योंकि अधिकांश मामलों में श्रमिकों व मालिकों ने गांधी जी को ही विवाचक (Arbitrator) नियुक्त किया था। यही नहीं, उनके निर्णय का सम्मान किया गया था और सभी पक्षों ने उसे लागू भी किया था। किन्तु अन्य स्थानों पर ऐच्छिक विवाचन का आश्रय नहीं लिया गया। इसके पश्चात् अभी हाल में ही ऐच्छिक विवाचन के विचार को मूर्त रूप दिया गया और सन् १९५६ में, औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ में संशोधन करके उसमें कुछ विशेष धारायें जोड़ी गई। संशोधित अधिनियम के अनुसार, सम्बन्धित पक्ष यह कर सकते हैं कि वे लिखित समझौते द्वारा किसी भी विवाद को अधिनिर्णय अथवा न्याय-निर्णय (Adjudication) के लिये श्रम न्यायालय अथवा अधिकरण को सौंपने से पूर्व विवाचन के लिये विवाचक (Arbitrator) को सौंप सकते हैं। समझौते की प्रति सम्बन्धित सरकार को भेज दी जाती है जिसमें सरकार को १४ दिन के अन्दर सरकारी गजट में प्रकाशित करना होता है। विवाचन की कार्यवाहियों की अवधि में सरकार विवाद से सम्बन्धित किसी भी हड़ताल व तालाबन्दी को निषेध (Prohibit) कर सकती है। सम्बन्धित पक्षों (Parties) के अलावा, ऐसा कोई भी व्यक्ति विवाचक के समक्ष अपना दृष्टिकोण रख सकता है जिसका विवाद से किसी भी प्रकार सम्बन्ध हो। विवाचक एक से अधिक भी हो सकते हैं और इस स्थिति में यदि विवाचक किसी मामले के बारे

मे परस्पर सहमत न हो, तो एक पंच (Umpire) की नियुक्ति का उपबन्ध (Pro-vision) रखा गया है जिसका निर्णय लागू किया जायगा।

ऐच्छिक विवाचन (Voluntary arbitration) द्वारा विवादो को सुलझाने के सिद्धान्त को सन् १९५८ मे बनाई गई अनुशासन संहिता (Code of Discipline) द्वारा और बल मिला। यह संहिता प्रबन्धकों तथा श्रमिक संघो पर इस बात के लिये जोर डालती है कि वे अपने मतभेदो, विवादो तथा शिकायतों को ऐच्छिक विवाचन द्वारा हल करे। जुलाई १९५९ तथा अगस्त १९६० मे आयोजित भारतीय श्रम सम्मेलनो मे भी इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक विवादो का निपटारा करने मे मध्यस्थता तथा ऐच्छिक विवाचन का अधिकाधिक सहारा लिया जाना चाहिये। सन् १९६२ के औद्योगिक विराम-सन्धि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution of 1962) मे भी यह कहा गया है कि ऐच्छिक विवाचन का अधिक से अधिक आश्रय लिया जाना चाहिये। सरकार विवाचको की एक सूची अथवा नामिका तैयार करके प्रसारित करती है जिसमे प्रमुख मालिक (Employers), श्रमिक संघो के नेता, अर्थशास्त्री, शिक्षा शास्त्री, सेवा निवृत्त जज तथा श्रम न्यायालयो एव अधिकरणो के पीठासीन अधिकारी सम्मिलित किये जाते हैं। सन् १९६३ मे मालिकों के संगठनो ने ऐच्छिक विवाचन पर विचार करने के लिये एक सेमिनार का आयोजन किया। सन् १९६५ में सेमिनार मे ऐच्छिक विवाचन पर फिर विचार किया गया। इस सेमिनार का आयोजन औद्योगिक सम्बन्धो के श्रीराम केन्द्र द्वारा नई दिल्ली मे किया गया था। श्रम विवाचकों की भारतीय अकादमी ने मई १९६५ मे एक 'ऐच्छिक श्रम विवाचन पर राष्ट्रीय कार्यशाला (National Workshop on Voluntary Labour Arbitration) का भी संगठन किया। केन्द्रीय कार्यान्वयन तथा मूल्यांकन समिति भी इस विचार को लोकप्रिय बनाने का प्रयास कर रही है। इसके पश्चात्, फरवरी १९६६ मे नई दिल्ली मे स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) का जो २४वां अधिवेशन हुआ उसने केन्द्र मे एक राष्ट्रीय विवाचन प्रगति मण्डल की स्थापना की सिफारिश की। इस मण्डल का कार्य विवाचन के विचार का प्रचार करना था। परिणामस्वरूप, जुलाई, सन् १९६७ मे भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय विवाचन प्रगति मण्डल की स्थापना की, ताकि औद्योगिक विवादो के निपटारे के एक साधन के रूप मे ऐच्छिक विवाचन (Voluntary arbitration) के उपयोग को बढ़ावा दिया जा सके। इस मण्डल मे मालिकों व श्रमिकों के संगठनो, सरकारी उद्यमो तथा केन्द्र व राज्य सरकारो के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये। इस मण्डल ने अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिये है जैसे कि विवाचकों की एक नवीनतम सूची या नामिका का निर्माण तथा अनुरक्षण आदि। सन् १९७१-७२ मे केन्द्रीय क्षेत्र मे १,०१२ ऐसे विवाद थे जिनमे कि सुलह की बातचीत असफल हो चुकी थी, इनमे से ११ विवादो को ऐच्छिक विवाचन के द्वारा हल करने के बारे मे मालिक तथा कर्मचारी सहमत हुए थे। मण्डल की सातवीं

मीटिंग १८ जुलाई १९७१ को नई दिल्ली में आयोजित की गई थी।

इस प्रकार देश में ऐच्छिक विवाचन के आन्दोलन का सिलसिला जारी रहा, परन्तु इस दिशा में प्रगति बहुत कम हुई। उदाहरणार्थ केन्द्रीय क्षेत्र में ऐसे विवादों की संख्या जिनमें विभिन्न पक्षों में ऐच्छिक विवाचन को स्वीकार करने को कहा गया था इस प्रकार थी—१९६३–८६०, १९६४–६११, १९६५–६२१ और १९६६–८१९ परन्तु सम्बन्धित पक्षों ने जिन थोड़े से ही मामलों में विवाचन को स्वीकार किया, उनकी संख्या इस प्रकार थी—१९६३–११६ (१८%), १९६४–१८१ (२८%), १९६५–१६८ (२७%) और १९६६–१०२ (१२%)। केन्द्रीय क्षेत्र में १९७७ में ६ विवाद और १९७८ में २१ विवाद ऐच्छिक विवाचन के लिए सौंपे गये। इसी प्रकार राज्यों के क्षेत्र में भी विभिन्न पक्षों ने सन् १९६२ में केवल ८% और सन् १९६४ तथा १९६५ में ६% विवादों के मामलों में विवाचन को स्वीकार किया। इस दिशा में जो प्रगति की रफ्तार धीमी रही है उसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि मालिकों द्वारा ऐच्छिक विवाचन के विचार को अभी तक हृदय से स्वीकार नहीं किया गया है। इस सम्बन्ध में उनका यह कहना है कि श्रमिक लोग तो विवाद का हर मामला ही विवाचन के लिए सौंप जाने पर जोर देते हैं, जबकि कानून के उल्लंघन अथवा हिंसा के मामले और सामान्य प्रशासनिक प्रकृति के मामले विवाचक को नहीं सौंपे जाने चाहिए। फिर मालिक ऐसे मामलों में भी विवाचन को स्वीकार नहीं करते जिनका सम्बन्ध उन श्रमिक संघों से होता है जिन्हें उन्होंने मान्यता नहीं दी है। यह भी कहा जाता है कि ऐसे अनुभवी विवाचकों की कमी है जिन पर कि सभी पक्षों का पूर्ण विश्वास हो। साथ ही, इस बात की व्यवस्था होनी चाहिये कि विपरीत निर्णयों (Perverse Awards) के विरुद्ध अपील भी की जा सके।

अतः यद्यपि यह सत्य है कि ऐच्छिक विवाचन (Voluntary Arbitration) अधिनिर्णय अथवा न्याय निर्णय (Adjudication) की अपेक्षा विवादों को सुलझाने का अधिक अच्छा साधन है, तथापि ऐसा लगता है कि आने वाले वर्षों में, सम्भवतः यह विचार देश में अधिक लोकप्रिय न हो। परन्तु यहाँ हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश में श्रमिक असंगठित हैं और श्रमिक संघों में बाहरी व्यक्तियों के छाये रहने के कारण समझौता कार्यवाहियों में श्रमिक अपने मामले को प्रभावपूर्ण तरीके से प्रस्तुत नहीं कर पाते। अतः औद्योगिक विवादों में सरकार के हस्तक्षेप करने के अधिकार को मानना ही पड़ेगा। निष्पक्ष विवाचन द्वारा श्रमिकों के हित का ध्यान में रखा जा सकता है। इससे औद्योगिक विवादों में अधिक न्याय भी हो सकेगा। हड़ताल अथवा तालाबन्दी कोई निजी प्रश्न नहीं है। इनसे सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार हस्तक्षेप नहीं करती तब सम्पूर्ण समाज का जीवन ही दूभर हो जाता है। भारत में दूसरे देशों की अपेक्षा स्थिति भिन्न है। हमारे देश में दूसरे देशों की भाँति श्रमिक संघ भली भाँति संगठित नहीं हैं और न ही वे

पश्चिम की भाँति औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था के मुख्य भाग मान जाते है। भारत में इस समय कुछ तत्कालीन गम्भीर परिस्थितियाँ है, जैसे— उपभोग्य वस्तुओं की कमी, ऊँची कीमतें, निर्वाह व्यय की अधिकता, उत्पादन बढ़ाने और लोगो को रोजगार दिलाने की तीव्र आवश्यकता, आदि-आदि। हम आयोजना के दौर मे है और दूसरे देशो की भाँति श्रम और पूँजी की आपसी कशमकश और खीचातानी का तमाशा नही देख सकते। समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि मालिको और श्रमिको की आपसी लड़ाई को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये और यथासम्भव अधिकतम उत्पादन करने के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न किये जाये। अत कुछ मामलो मे इस समय देश मे अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता है। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अनिवार्य विवाचन ही केवल-मात्र साधन नही है। यह तो राज्य का एक अन्तिम साधन है। इसका प्रयोग केवल उसी समय होना चाहिये जबकि मैत्रीपूर्ण समझौते के सभी प्रयत्न असफल हो गये हो। अत यदि *श्रमिक और पूँजीपति औद्योगिक सम्बन्धो की समस्या के प्रति वास्तविक और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाये तब अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता यदा-कदा ही पड़ेगी। अनिवार्य विवाचन जैसी व्यवस्था से कोई अनावश्यक भय नही होना चाहिये।* समस्या के इस पहलू पर श्री वी० वी० गिरी ने अपने अनेक भाषणो मे ध्यान आकर्षित कराया था और नैनीताल अधिवेशन मे भी, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, इसको स्वीकार कर लिया गया था। श्री वी० वी० गिरि के इस सम्बन्ध मे विचार महत्त्वपूर्ण है। जब वे श्रम मन्त्री थे तब उन्होने आकाशवाणी से एक भाषण मे कहा था —

"इस प्रश्न पर मेरे विचार सबको भली-भाँति मालूम है। मै सामूहिक सौदाकारी और विवादो के निपटारे के लिये पारस्परिक समझौते म दृढ विश्वास रखता हू। मेरे विचार मे प्रबन्ध और श्रम के बीच स्थायी सम्बन्ध उत्पन्न करने एव दृढ तथा आत्मविश्वासी श्रम आन्दोलन निर्माण करने के लिये यही सर्वोत्तम साधन है। परन्तु सम्बन्धित सभी पक्षो से विचार विनिमय करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि *अभी ऐसा समय नही आया है कि अनिवार्य विवाचन को छोड कर हम विवादो के समझौते के लिये केवल पारस्परिक वार्तालाप पर निर्भर रहे। पचवर्षीय आयोजना को सफलतापूर्वक लागू करने के लिये हम सब लोगो ने इस समय व्रत लिया है* और इससे यह बात इस समय मेल नही खाती कि हम कोई ऐसा नया प्रयोग शुरू करे जिससे औद्योगिक विवाद बढ जायें चाहे वह अल्पकालीन ही क्यो न हो। इसके अतिरिक्त एक ऐसे समय म जबकि रोजगार मे कमी हो रही है और श्रमिको की सौदाकारी शक्ति स्वभावत कमजोर है, श्रमिको से, अपने रोजगार की जोखिम पर आत्मनिर्भर होने की आशा नही करनी चाहिये। अत मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि यद्यपि इसमे कोई सन्देह नही कि विवादो के पारस्परिक निपटारे के लिये सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करने के लिये हर प्रकार के प्रयत्न करने

चाहिए और धीरे-धीरे इस व्यवस्था को आवश्यकता के स्थान पर एक आदत सी बना देना चाहिए फिर भी ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे औद्योगिक संस्थानों में विवादों के निपटारे की वर्तमान व्यवस्था कमजोर हो जाय और सरकार को इन समय विवादों को अधिकरणों को सौंपने का जो अधिकार है उसमें वर्जन कर दिया जाय। श्री खण्डूभाई देसाई के भी ऐसे ही विचार थे। श्री नन्दा की मजबूत विचार धारा का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। श्री गिरि ने नवम्बर १९५८ में आद्योगिक सम्बन्धों में पुनः स्वशासन व्यवस्था पर जोर दिया। उन्होंने बताया कि अनिवार्य विवाचन एक पुनर्निर्माण की भांति है जो कि असन्तोष के चिह्न दिखाता रहता है और जरा-सी उत्तेजना होने पर पक्षों को ऐसे न्याय के लिये न्यायालय के सामने ले जाता है जो महंगा पड़ता है और जिससे पूर्ण सन्तुष्टि भी नहीं होती। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिये पारस्परिक बातचीत, समझौता तथा एच्छिक विवाचन तथा कुछ विषम विवादों में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था पर जोर दिया गया था। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में भी एच्छिक समझौता और अनुशासन संहिता के महत्व पर प्रकाश डाला गया था और इस बात का सुझाव दिया गया था कि ऐसे तरीके खोजने चाहिये जिनसे एच्छिक विवाचन के सिद्धान्त को अधिक से अधिक लागू किया जा सके तथा सरकार को उद्योग और क्षेत्रीय स्तर पर विधायकों की भूमिका बनाने की ओर पग उठाने चाहिए।

(Views and Recommendations of the National Commission on Labour)

राष्ट्रीय श्रम आयोग के विचार तथा सिफारिशें[1]

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने देश में श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों की समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया और यह सुझाव दिया कि औद्योगिक न्याय निर्णय (industrial adjudication) के बाद शनैः शनैः सामूहिक सौदाकारी की स्थिति पर आना चाहिये। आयोग ने आशा प्रकट की कि सामूहिक सौदाकारी, प्रतिनिधि श्रमिक संघों की मान्यता की स्वीकृति तथा प्रबन्धकों के सुधरे दृष्टिकोण के विकास के साथ ही कुछ सीमा तक तो, एच्छिक विवाचन की व्यापक स्वीकृति के लिये आधार तैयार होगा ही। सुलह का उपाय उस स्थिति में अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है जबकि वह बाहरी प्रभाव से मुक्त रहे और सुलह की व्यवस्था यथेष्ट स्टाफ से परिपूर्ण हो। सुलह की व्यवस्था (conciliation machinery) की स्वतन्त्र प्रकृति ही सभी वर्गों में अधिक विश्वास उत्पन्न कर सकती है और सभी पक्षों के अधिक सहयोग प्राप्त करने में समर्थ हो सकती है। अतः इस व्यवस्था को प्रस्तावित औद्योगिक सम्बन्ध आयोग का ही अंग बना दिया जाना चाहिये। सुलह की व्यवस्था के अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग का चुनाव समुचित ढंग से किया जाना चाहिये और

1 Report of the National Commission on Labour Chapter 23

पद ग्रहण करने से पूर्व तथा सेवा-काल में समय-समय पर यथेष्ट प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि केन्द्र में तथा प्रत्येक राज्य में स्थायी आधार पर एक-एक औद्योगिक सम्बन्ध आयोग (Industrial Relations Commission) की स्थापना की जाए। इस औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को एक ऐसी सत्ता बनाया जाना चाहिए जो कि कार्यपालिका से स्वतन्त्र हो। केन्द्र-स्तर पर तो ऐसे आयोग द्वारा ऐसे विवादों का निपटारा किया जाना चाहिए जिनमें राष्ट्रीय महत्व के प्रश्न सम्बन्धित हों अथवा जो एक से अधिक राज्यों के संस्थानों को प्रभावित करते हों। इसी प्रकार राज्य-स्तर पर ऐसा आयोग उन विवादों का निपटारा करे जिनके लिए कि राज्य सरकार ही उपयुक्त प्राधिकारी या सत्ता हो। राष्ट्रीय तथा राज्यीय औद्योगिक सम्बन्ध आयोगों के मुख्य कार्य ये होंगे (क) औद्योगिक विवादों में न्याय निर्णय, (ख) सुलह (conciliation) तथा (ग) श्रमिक संघों को प्रतिनिधि श्रमिक-संघों के रूप में प्रमाणित करना। आयोग में समान संख्या में न्यायिक तथा गैर न्यायिक सदस्य होंगे तथा एक अध्यक्ष होगा। अध्यक्ष तथा न्यायिक सदस्य (Judicial members) ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यता रखते हों और गैर न्यायिक सदस्य उद्योग, श्रम अथवा प्रबन्धकीय क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति होने चाहिए। बातचीत असफल हो जाने के बाद तथा हड़ताल अथवा तालाबन्दी का नोटिस दिए जाने से पूर्व, सभी पक्षों को ऐच्छिक विवाचन (voluntary arbitration) के लिए तैयार किया जाये और आयोग एक ऐसा विवाचक ढूंढने में सहायता करे जो सभी पक्षों को स्वीकृत हो। इसके स्थान पर यह भी हो सकता है कि कोई भी एक पक्ष आयोग से किसी एक ऐसे समझौताकार (conciliator) का नाम सुझाने को कह सकता है जो किसी समझौते तक पहुंचने में उनकी मदद करे। आवश्यक उद्योगों तथा सेवाओं में, जब सामूहिक सौदाकारी असफल हो जाये और झगड़े से सम्बद्ध पक्ष विवाचन (arbitration) के लिये सहमत न हों, या कोई भी पक्ष बातचीत की असफलता के विषय में औद्योगिक सम्बन्ध आयोग (I R C) को सूचना देगा और उस सूचना की एक प्रति उपयुक्त सरकार को दी जायगी। तब औद्योगिक सम्बन्ध आयोग उस विवाद के सम्बन्ध में अपना अधिनिर्णय देगा, जो कि अन्तिम होगा और सभी सम्बद्ध पक्ष उसे मानने को बाध्य होंगे। गैर-आवश्यक (non-essential) उद्योगों तथा सेवाओं में, यदि बातचीत असफल हो जाय और सम्बन्ध पक्ष ऐच्छिक विवाचन के लिए तैयार न हों, तो औद्योगिक सम्बन्ध आयोग सीधी कार्यवाही की सूचना प्राप्त करने के बाद, समझौता कराने के लिये अपनी सद्भावनायें व सेवायें प्रस्तुत कर सकता है परन्तु ऐसा सूचना (नोटिस) की अवधि के अन्तर्गत ही किया जायगा। नोटिस की अवधि के अन्तर्गत यदि समझौता नहीं होता है तो उसके बाद सम्बद्ध पक्ष सीधी कार्यवाही का आश्रय ले सकते हैं। परन्तु यदि सीधी कार्यवाही (direct action) ३० दिन तक जारी रहती है तो

औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के लिये यह आवश्यक होगा कि वह मामले में हस्तक्षेप करे और विवाद के निपटारे की व्यवस्था करें।

जब कोई हड़ताल या तालाबन्दी शुरू होती है, तब उपयुक्त सरकार भी आयोग तक पहुँच कर सकती है और उससे इस आधार पर हड़ताल या तालाबन्दी को समाप्त कराने की माँग कर सकती है कि उसके जारी रहने से राज्य की सुरक्षा, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अथवा सार्वजनिक व्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। औद्योगिक सम्बन्ध आयोग सरकार एवं अन्य पक्षों की बात सुनने के पश्चात् सम्बन्ध पक्ष से हड़ताल या तालाबन्दी को समाप्त करने के लिये कहता है और उनके वक्तव्यों को दर्ज कर लेता है। इसके बाद, आयोग विवाद पर अपना अधिनिर्णय देता है।

आयोग को इस बात का भी अधिकार होगा कि वह हड़ताल या तालाबन्दी की अवधि के भुगतानों को करने या उन्हें रोकने का निश्चय करे। ऐसी किसी हड़ताल में भाग लेने के कारण यदि किसी श्रमिक को पदच्युत या बर्खास्त किया जाता है तो इसे श्रम सम्बन्धी अनुचित कार्यवाही माना जाता है और उस स्थिति में श्रमिक पहली मजदूरी पर ही पुन. नौकरी पर वापिस आने का अधिकारी होता है। यदि आवश्यक समझा जाये तो विवादों के मामले राष्ट्रीय औद्योगिक सम्बन्ध आयोग से राज्यीय औद्योगिक सम्बन्ध आयोग को अथवा राज्यीय आयोग से राष्ट्रीय आयोग को स्थानान्तरित किये जा सकते हैं। औद्योगिक सम्बन्ध आयोग का निर्णय दोनों पक्षों पर अनिवार्य रूप से लागू होगा। विविध पक्षों के बीच जो सामूहिक समझौते होते हैं, औद्योगिक सम्बन्ध आयोग के साथ उनको रजिस्टर्ड करना होता है।

आयोग ने विवादों को सुलझाने की जिस कार्यविधि का सुझाव दिया है, अनेक लोगों ने उसको उलझनपूर्ण एवं बोझिल बताया है। इसके अतिरिक्त, ऐसा भी होता है कि जब श्रमिकों व मालिकों के सम्बन्ध बिगड़ कर नियन्त्रण से बाहर हो जाते हैं तो सरकार द्वारा हस्तक्षेप करना अनिवार्य हो जाता है।

औद्योगिक सम्बन्ध आयोगों की स्थापना के अतिरिक्त, राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य में स्थायी श्रम न्यायालयों की स्थापना की जाये। ये न्यायालय अधिकारों व दायित्वों से सम्बन्धित विवादों का निपटारा करें, निर्णयों की व्याख्या करें, उनको कार्यान्वित करायें तथा श्रम सम्बन्धी अनुचित कार्यवाहियों के सम्बन्ध में जिन विवादों एवं दावों को सम्बन्ध आयोग सिफारिश करे, उनकी विस्तृत रूप से व्याख्या करके दोषी पाये जाने वाले पक्षों के लिए समुचित दण्ड की व्यवस्था करें। श्रम न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील उस क्षेत्र के उच्च न्यायालय में की जा सकती है।

उपसंहार : समस्या का समाधान (Conclusion : The Way Out)

यदि यह मान भी लिया जाए कि देश में अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता है, फिर भी इसकी सफलता के लिये कुछ मूल बातों का होना आवश्यक होगा।

औद्योगिक विवादो की समस्या विवादो के मूल कारणो को दूर किए बिना नही सुलझायी जा सकती। औद्योगिक विवादो की समस्या को ठीक प्रकार समझने के लिए तथा उनके शान्तिपूर्ण निबटारे हेतु विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओ को अपनाने के लिए हम अनेक बातो को ध्यान म रखना आवश्यक होगा। उदाहरणत मजदूरी की दर मे एक क्रान्तिकारी परिवतन करना होगा सामाजिक सुरक्षा योजनाओ का लागू करना होगा रोजगार के स्तर को भी ऊँचा और स्थिर बनाना होगा कार्य एव रहने की दशाओ मे सुधार लाना होगा आदि। विवाचको का ठीक प्रकार से चुनाव और एक शक्तिशाली श्रमिक सघ भी आवश्यक है। राज्य की नीति का यही उद्देश्य होना चाहिए कि विवादो के कारणो को जितना भी हो सके कम करे। मालिको और श्रमिको म सयुक्त रूप से और सीधी वार्त्ता को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है और सबसे पहले सुलह व्यवस्था पर ही जोर देना चाहिए। परन्तु यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि यदि श्रमिको और मालिको के आपसी समझौते के परिणामस्वरूप कीमतो मे वृद्धि करके दोनो पक्षो को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था अल्पकालीन होगी क्योकि उपभोक्ता अपने ऊपर अधिक भार पडने पर असन्तोष प्रकट करेंगे। अत उद्योग मे शान्ति की समस्या पर न केवल श्रमिको और मालिको के दृष्टिकोण म वरन उपभोक्ताओ के दृष्टिकोण म भी विचार करना होगा। इसलिए प्रत्येक उद्योग म सीमान्त इकाइयो को अर्थात् ऐसी सस्थाओ को जिनकी उत्पादन लागत सबसे अधिक है उन्नत करना होगा, ताकि उनकी लागत मे कमी हो और मूल्य अधिक न बढे। औद्योगिक विवादो की समस्या को सुलझाने के लिये केवल विधान पर ही अधिक निभर नही रहना चाहिए। मालिको और श्रमिको के बीच निकट सम्पर्क स्थापित करने की अधिक आवश्यकता है और श्रमिको को और अधिक सीमा तक प्रबन्ध कार्यो म सम्मिलित करना चाहिये। इस समय औद्योगिक विवादो की समस्या मनोवैज्ञानिक भी है। दोनो पक्षो का एक दूसरे के प्रति अविश्वास है। यदि मालिक श्रमिको को उत्पादन मे बराबर का साथी समझने लगे और उनसे दूर-दूर रहने की वतमान प्रवृत्ति को छोड दें तो श्रमिको का असन्तोष काफी सीमा तक दूर हो जायगा और औद्योगिक शान्ति भी स्थापित हो सकेगी। इस बात पर बार बार जोर दिया जा सकता है कि विवादो के मूल कारणो का दूर करना चाहिए। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दो मे, उचित मजदूरी सुन्दर आवास बीमारी तथा मातृत्व हित लाभ के लिये बीमा योजना आदि जैसी मानवीय मूल आवश्यकताओ को पूरा किये बिना हडतालो को बलपूर्वक समाप्त कर देने की नीति अपनाना और उनके लिये दण्ड की व्यवस्था करना श्रमिक समस्याओ को गलत ढग से सुलझाने का प्रयत्न करना होगा। अत सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को हम इस प्रकार से समायोजित करने का प्रयत्न करना चाहिये कि हर श्रमिक को इस बात का आश्वासन हो जाये कि उसकी न्यूनतम आवश्यकताओ की सन्तुष्टि होती रहेगी, उसके रोजगार म सुरक्षा रहेगी, यदि बेरोज

गारी हो ही जाय तो इस अवधि म उसको कार्य और रोजगार मिलने की व्यवस्था होगी तथा ऐसी मजबूरी म जबकि वह काम करने के अयोग्य हो जाय उसका निर्वाह होता रहेगा। श्रमिको म उचित शिक्षा और श्रमजीवी वग म उचित प्रकार का प्रचार होना चाहिय ताकि श्रमिक अपने अधिकारो के बारे म ही न सोचे वरन् अपने कर्तव्यो की ओर भी ध्यान दे। प्रजातन्त्र व्यवस्था म केवल कानून बनाकर और सरकार के अधिक हस्तक्षेप से समस्या का समाधान नही हो सकता। इसम सम्बंधित पक्षो को बुरा ही नग सकता है। जहाँ तक हो सके श्रमिको और मालिको को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न करना चाहिये। कानूनी विषमताओ को दूर ही रखना चाहिये। यदि पारस्परिक सहयोग की भावना हो और श्रमिको की अवस्था म सुधार कर दिया जाता है तो कोई कारण नही कि औद्योगिक विवाद यदि पूर्ण तया समाप्त न भी हो फिर भी अधिक से अधिक कम क्या न हो जाय।

इस प्रकार के विचारो पर जो हम पहले भी कई बार व्यक्त कर चुके है श्री वी० वी० गिरि ने भी अपना मत जोरदार शब्दो म प्रकट किया था। श्री गिरि ने औद्योगिक सम्बन्धो की समस्या पर बहुत व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया था। श्री गिरि की इस विचारधारा (Giri s Approach) का अर्थ यह था कि विवादो का पारस्परिक रूप म सुलझाने के प्रयत्न करने चाहिए और अनिवार्य विवाचन की अपेक्षा सामूहिक सौदाकारी और एच्छिक विवाचन को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिये। श्री गिरि की विचारधारा बहुत उत्तम थी और इसका स्वागत करना चाहिये। परन्तु जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है अभी कुछ वर्षों तक हम सरकार के हस्तक्षेप को पूर्णतया दूर नही कर सकते अत किसी न किसी प्रकार की अनिवार्य विवाचन व्यवस्था भी रखनी ही होगी। श्री गिरि ने भी अपनी इस विचारधारा म कुछ संशोधन किया था। परन्तु यह मानना पडेगा कि कभी न कभी मालिको और श्रमिको म इस बात की भावना आना बहुत जरूरी है कि यदि दोनो पक्षो की उन्नति करनी है तो उन्हे एक दूसरे को सहयोग देना होगा तथा अपने विवादो और मतभेदो को आपस म ही सुलझाना होगा। इस प्रकार एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन तथा श्रमिक प्रबन्धक सहयोग प्रबन्ध म श्रमिको का भाग दोनो पक्षो के मन म विश्वास और सम्मान का वातावरण तथा उद्योग म मानवीय सम्बन्धो की नीति को लागू करने आदि की योजनाओ का देश म औद्योगिक शान्ति स्थापित करने म बहुत अधिक महत्व है। ●

ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्ध

INDUSTRIAL RELATIONS IN GREAT BRITAIN

सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining)

सामूहिक सौदाकारी का विकास ग्रेट ब्रिटेन में मालिक-मजदूर सम्बन्धों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और इस सामूहिक सौदाकारी को कई वर्षों तक उद्योग-धन्धों की समस्याओं के निवारणार्थ मान्यता प्राप्त होती रही है। बहुत समय तक मालिकों ने श्रमिकों के इस अधिकार को स्वीकार नहीं किया कि वे अपने संघों के प्रतिनिधियों द्वारा किसी प्रकार का सौदा करें और मालिक श्रमिकों से व्यक्तिगत रूप से ही व्यवहार करने पर जोर देते रहे। उन्नीसवीं शताब्दी में यह सामान्य विचारधारा थी कि श्रमिक संघ अनुचित रूप से श्रमिकों के व्यक्तित्व में हस्तक्षेप करते हैं और जैसा कि इंगलैंड के श्रमिक संघ के इतिहास[1] में बताया जा चुका है, श्रमिक संगठनों को काफी समय तक अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया। श्रमिकों के संगठनों के विरुद्ध कई कानून बना दिये थे क्योंकि श्रमिक वर्ग का विकास नहीं हो सका था। इसलिये १८७० तक सामूहिक सौदाकारी की प्रगति की ओर कोई विशेष कदम भी नहीं उठाया गया। परन्तु १८७१ के बाद श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास के साथ-साथ सामूहिक सौदाकारी को भी महत्वपूर्ण समझा जाने लगा और धीरे-धीरे यह साधन शक्तिशाली होता चला गया। आज इंगलैंड के मालिक-मजदूर सम्बन्धों को निर्धारित करने में सामूहिक सौदाकारी का मुख्य स्थान है। तथापि, इंगलैंड में सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रियाओं का रूप सदा ऐच्छिक ही रहा है। अन्य देशों के समान ब्रिटेन में श्रमिक संघों के अधिकारों की व्यवस्था के लिये न तो कोई श्रम संहिता या श्रम-विधान है और न ही वहाँ कोई ऐसा कानून है जिसके द्वारा समझौतों को लागू करने की व्यवस्था हो। किन्तु इसके बावजूद, ब्रिटेन में सामूहिक सौदाकारी की जड़ें काफी गहराई तक पहुँच चुकी हैं।

इंगलैंड में सामूहिक सौदाकारी का तात्पर्य उस व्यवस्था से लिया जाता है जिसके अन्तर्गत मजदूरी और कार्य की दशायें एक ऐसे पारस्परिक सौदे द्वारा निश्चित होती हैं जो मालिकों और मजदूरों के संघों के बीच होता है और जिसको एक समझौते या करार का रूप दे दिया जाता है। इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी उस अवस्था को कहते हैं जबकि अनेक श्रमिक एक सौदाकार एकांश के रूप में अपने रोजगार से सम्बन्धित विषयों पर मालिकों से या मालिकों के किसी समूह से

---

१ देखिये 'इंगलैंड में श्रमिक संघवाद' नामक अध्याय ६।

समझौता करने के उद्देश्य से बातचीत करते है। किसी भी व्यक्तिगत श्रमिक से इस बात की आशा नही की जा सकती कि वह असगठित रूप से अपने लिये समस्त हितो को प्राप्त कर सके। वह केवल सामूहिक सौदाकारी द्वारा ही अनुचित प्रतियोगिता से अपनी सुरक्षा कर सकता है। इन सामूहिक करारो मे विभिन्न विषय आ जाते है, जैसे—मजदूरी, समयोपरि मेहनताना, छुट्टियाँ, कार्य की दशायें, रोजगार की स्थिति आदि। एक व्यक्तिगत श्रमिक यह समस्त लाभ प्राप्त नही कर सकता और असगठित उद्योगो मे उसको मालिको द्वारा प्रस्तुत की गई शर्तों को ही स्वीकार अथवा अस्वीकार करना पडता है। यह स्थिति सामूहिक सौदाकारी मे नही रहती क्योकि सामूहिक सौदाकारी का मतलब यह होता है कि एक श्रेणी या स्तर के समस्त श्रमिक और किसी एक विशेष उद्योग के सब ही मालिक एक करार द्वारा बँध जाते है। इस करारो मे न केवल श्रमिको का लाभ होता है वरन् मालिको को भी लाभ पहुँचता है क्योकि किसी भी झगडे के समय यह सामूहिक करार मालिको की भी रक्षा करते है। सामूहिक सौदाकारी की सफलता दोनो पक्षो की पारस्परिक स्वीकृति और करार को वफादारी से निभाने पर निर्भर करती है। यद्यपि ऐसे करारो के पीछे कोई वैधानिक मान्यता नही है तथापि इगलैड मे दोनो पक्ष इनको पूर्ण वफादारी से निभाते हैं। जनमत कभी इस पक्ष मे नही रहा है कि करारो के उल्लघन पर किसी दण्ड की व्यवस्था की जाये। फिर भी सयुक्त ऐच्छिक व्यवस्था (Joint Voluntary Machinery) को प्रोत्साहित करने के लिये कुछ कानून बनाये गये हैं।

श्रमिक सघो के दृष्टिकोण से सामूहिक सौदाकारी का उद्देश्य मालिको की एक पक्षीय कार्यवाही को रोकना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये वे मालिको से एक ऐसे सविदा (Contract) पर हस्ताक्षर करा लेते है जिसमे निश्चित समय के लिए एक रोजगार की दशाओ को निर्धारित करने और उस समय मे उत्पन्न होने वाले झगडो को निपटाने के लिए व्यवस्था होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामूहिक सौदाकारी मालिको पर नियन्त्रण लागू करने का एक तरीका है। इस साधन से श्रमिको को कई अधिकारो का आश्वासन मिल जाता है और कई बातो की छूट भी मिल जाती है क्योकि मालिक फिर स्वतन्त्र रूप से प्रत्येक कार्य नही कर सकते। यह तो स्पष्ट है कि उद्योगो मे और अलग-अलग कारखानो मे जो समस्यायें उत्पन्न होती है उनके निवारण के लिए मालिको और मजदूरो के सगठनो को आपस मे मिलजुल कर ही बात करनी चाहिए। श्रमिक विधान और उनको लागू करने की व्यवस्था तो केवल उद्योग-धन्धो को चालू रखने के लिये उचित वातावरण ही पैदा कर सकते हैं। पारस्परिक समस्याओ का समाधान तो उन्हीं पक्षो द्वारा किया जा सकता है जिनका मामले मे सीधा सम्बन्ध होता है। इस विषय मे स महिक करार ही ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकते है जिससे प्रगति मे सहायता मिले। यह सामूहिक करार मालिक और मजदूर सघो के बीच कार्य मे

जो पारस्परिक सम्बन्ध होने चाहिये उनकी रूप रेखा का निर्धारण करते है और श्रमिकों की मांगों और मालिकों द्वारा सुविधायें देने के मध्य समायोजन ला देते हैं। इस प्रकार यह सामूहिक सौदाकारी और करार इस बात को प्रकट करते है कि श्रमिक संघ आन्दोलन परिपक्व (Mature) और शक्तिशाली हो गये हैं और मालिकों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ गया है।

सामूहिक सौदाकारी का क्षेत्र और कार्य प्रत्येक देश में विस्तृत हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, अमेरिका में गैर कृषि उद्योगों में लगे हुए लगभग एक तिहाई श्रमिकों की कार्य की दशाएँ सामूहिक सौदाकारी के द्वारा निश्चित की जाती हैं। स्विटजरलैंड में लगभग आधे औद्योगिक श्रमिक सामूहिक करारों के अन्तर्गत आ जाते है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, जर्मन गणराज्य, लुक्जम्बर्ग, स्केन्डेनेवियन देशों तथा ग्रेट ब्रिटेन में कम से कम आधे औद्योगिक श्रमिक भी इसी प्रकार सामूहिक करारों के अन्तर्गत आ जाते है। सोवियत संघ और पूर्वीय यूरोप के प्रजातन्त्र राज्यों में ऐसे सामूहिक करार हर उद्योग सस्थान में पाए जाते हैं और अधिकांश श्रमिक इनके अन्तर्गत आ जाते है। अर्द्धविकसित देशों में भी सामूहिक सौदाकारी की रीति अब काफी श्रमिकों में फैल गई है, यद्यपि अनुपात के हिसाब से ऐसे देशों में अभी तक कम श्रमिक ही इनके अन्तर्गत आए है। भारत में हाल ही में कुछ सामूहिक करारों पर हस्ताक्षर हुए है (देखिए पिछला अध्याय)। इस बात में कोई इन्कार नही कर सकता कि ऐसे करार भारतीय स्थितियों के बहुत अनुकूल है, विशेषकर जब हम औद्योगिक विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहे है। परन्तु भारत में सामूहिक सौदाकारी उस समय तक सफल नही हो सकती जब तक कि यहाँ श्रमिक संघ आन्दोलन को शक्तिशाली न बनाया जाए, श्रमिक संघों की बाढ को न रोका जाए और मालिक श्रमिक-संघों को मान्यता न दे। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने श्रमिक संघों की मान्यता के मामले को काफी महत्ता प्रदान की है और यह सिफारिश की है कि एक केन्द्रीय कानून बना कर ऐसे सभी उद्यमों में श्रमिक संघों की मान्यता अनिवार्य कर दी जानी चाहिये जिनमें १०० या इससे अधिक कर्मचारी हों अथवा जिनमें एक निर्धारित मात्रा से अधिक पूँजी लगी हो। श्रम आयोग ने यह भी सिफारिश की कि औद्योगिक सम्बन्ध आयोग श्रमिक की मान्यता के सभी पहलुओं पर विचार करे।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सामूहिक सौदाकारी यह बात मान कर चलती है कि श्रमिक संघों को मालिकों द्वारा मान्यता प्राप्त है। अगर ऐसा नहीं होता अथवा एक उद्योग में दो या उससे अधिक प्रतिद्वन्दी संघ होते है तब सामूहिक सौदाकारी निष्क्रिय (Ineffective) हो जाती है। ग्रेट ब्रिटेन में श्रमिक संघ मालिकों द्वारा मान्यता प्राप्त कर चुके है और श्रमिकों में एकता है। इस कारण ग्रेट ब्रिटेन में सामूहिक सौदाकारी अत्यन्त सफल रही है और जो करार हुये है उनको न केवल व्यापक रूप में बनाया गया है वरन् उनमें निश्चितता और स्पष्टता भी पाई जाती है और ये करार औद्योगिक सम्बन्धों के लगभग सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। इसलिये

स्वामित्व में भिन्नता आ जाती है और मालिकों व श्रमिकों के व्यक्तिगत सम्बन्ध टूट जाते हैं। मालिक और श्रमिक के जीवन के रहन सहन के स्तर में भी पूर्व की अपेक्षा अब बहुत अन्तर हो गया है। श्रमिक अपनी स्थिति की अपने पूर्वजों से तुलना नहीं करता वरन् मालिकों के समान वर्ग से करता है और दोनों के मध्य की गहरी खाई को निहारता है। जब उसे मालिकों के बड़े बड़े लाभांशों (Dividends) का ज्ञान होता है तब वह अनुभव करता है कि उसमें उसका उचित भाग छीना जा रहा है। वह देखता है कि विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति के केवल स्वामित्व के कारण ही पूंजीपति कितने आनन्द से रहते हैं। यद्यपि वह यह स्वीकार करता है कि उत्पादन के लिये पूंजीगत वस्तुएं आवश्यक हैं परन्तु वह मालिकों द्वारा उद्योग के लाभ में से एक बड़े हिस्से को हड़प जाना अन्याय समझता है। दो महायुद्धों ने भी श्रमिकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा है और वे मालिकों की ही भांति सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने के अधिकार को पाने का दावा करते हैं। इसलिये मजदूरी बोनस और महंगाई भत्ते के प्रश्नों पर ही अनेक हड़तालें हुई हैं।

श्रमिकों के मेहनताने के प्रश्न से ही कार्य के घण्टे और कार्य की दशाओं के प्रश्न भी सम्बन्धित हैं। इंगलैण्ड में अनेक कटु संघर्ष दैनिक कार्य के घण्टों के कारण हुए हैं। समयोपरि (Overtime) का प्रश्न औद्योगिक अशान्ति का प्रमुख कारण रहा है विशेषकर उस समय जब व्यवसाय में बेरोजगारी होती है। मालिक अक्सर अधिक खर्चों में कमी करने के लिये श्रमिकों से अतिरिक्त घंटों तक काम कराते हैं क्योंकि पारी प्रणाली यदि न हो तो नये श्रमिकों को कार्य पर लगाने से मशीनरी आदि पर भी अतिरिक्त धन व्यय करना पड़ता है। श्रमिक समयोपरि का विरोध करते हैं क्योंकि उनसे कम घण्टे कार्य करने में जो सुविधा मिलती है उसका अन्त हो जाता है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त समयोपरि के न होने से अधिक श्रमिक रोजगार पा सकते हैं।

इंगलैण्ड में अनेक हड़तालें इस कारण भी हुई हैं कि मालिकों ने श्रमिक संघों को उचित तथा क्षमतापूर्ण (Competent) सौदाकारी संगठन के रूप में मान्यता देने से इन्कार कर दिया है। उदाहरणार्थ रेलवे श्रमिकों को काफी लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ा तब कहीं जाकर रेलवे कम्पनियों ने उनको पूर्ण मान्यता प्रदान की। परन्तु औद्योगिक अशान्ति का यह कारण अब विशेष महत्व नहीं रखता क्योंकि मालिक अब श्रमिकों से उनके संघों द्वारा बातचीत और मोल-तोल करने के अधिकार को स्वीकार करते हैं। अब मालिक देश में शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकते।

इंगलैंड में औद्योगिक अशान्ति का एक और कारण कुछ उत्साही श्रमिकों का उद्योग के प्रबन्ध में भाग लेने की इच्छा है। वह उस व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं है जिसमें श्रमिकों का स्तर अधीनस्थ (Subordinate) हो जाता है उनके व्यक्तित्व का लोप

(Court of Arbitration) की स्थापना की गई और इसके तीन वर्ष पश्चात् औद्योगिक परिषदें (Industrial Councils) बनाई गई जिनमे मालिकों व कर्मचारियों, दोनो के प्रतिनिधि थे और उनका कार्य बोर्ड ऑफ ट्रेड को सुलह और विवाचन कार्यो मे सहयोग और सहायता देना था। इतना होते हुए भी १६१४ के युद्ध से पूर्व राष्ट्रव्यापी हड़तालें हुई और उनको सुलझाने के लिये तत्कालीन व्यवस्था पूर्णतया असफल सिद्ध हुई।

युद्ध के परिणामस्वरूप, नीति में कुछ समय के लिये परिवर्तन हुआ। समय की आवश्यकताओं के कारण ही १६१५–१७ के 'म्यूनिशन्स ऑफ वार एक्ट्स' (Munitions of War Acts) पारित किये गये जिनके अन्तर्गत हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया तथा विवाचन बोर्ड के निर्णयों को मानना वैधानिक रूप मे अनिवार्य कर दिया गया। परन्तु इतना सब होने पर भी युद्धकाल मे ही औद्योगिक अशान्ति दृष्टिगोचर होने लगी। फलत अक्टूबर १६१६ मे सरकार ने ह्विटले समिति (Whitley Committee) नियुक्ति की। इसने सगठित उद्योगों मे सयुक्त औद्योगिक परिषदों (Joint Industrial Councils) के निर्माण, आशिक रूप से सगठित उद्योगो के लिये मालिक मजदूर समितियों (Works Committees) के निर्माण और असगठित उद्योगों मे मजदूरी के नियन्त्रण करने की सिफारिश की। समिति ने विभिन्न उद्योगों मे ऐच्छिक रूप से राष्ट्रीय सयुक्त स्थायी औद्योगिक परिषदों (National Joint Standing Industrial Councils) और विभिन्न क्षेत्रों के लिये जिला परिषदों (District Councils) के स्थापित करने की भी सिफारिश की। राष्ट्रीय सयुक्त परिषदो का कार्य 'सामान्य नीति' (General Policy) से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना था और जिला परिषदों का कार्यक्षेत्र स्थानीय प्रश्नो से सम्बन्धित था जो किसी विशेष उद्योग सस्था के आन्तरिक (Internal) सम्बन्धो और कार्यों पर प्रभाव डालते थे।

१६१६ मे, सरकार ने *औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act)* पारित किया जो ह्विटले समिति के सुझावों को मानकर बनाया गया था। इस समिति ने अनिवार्य विवाचन विधि का विरोध किया गया था और वर्तमान व्यवस्था को ही जारी रखने का सुझाव दिया था जिसमे मालिक और श्रमिक स्वय ही समझौते करते थे और अपने मतभेदों को पारस्परिक रूप से निबटा लेते थे। अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी औद्योगिक न्यायालय (Standing Industrial Court) की स्थापना भी की गई। इस न्यायालय मे मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि तथा अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति थे और यह सब श्रम मन्त्रालय द्वारा मनोनीत किये जाते थे। दोनो पक्षो की सहमति से कोई भी विवाद इस न्यायालय को सौपा जा सकता था। इगलैण्ड मे इस न्यायालय ने विवादो को सुलझाने की दृष्टि से उपयोगी कार्य किया है। अधिनियम के अन्तर्गत श्रम मन्त्रालय का यह अधिकार

था कि वह किसी भी विवाद की जाँच करने के लिए जाँच न्यायालय (Court of Inquiry) स्थापित कर दे और जाँच की रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दे। पिछले युद्ध के समय विवादों को सुलझाने की दृष्टि से रोजगार और राष्ट्रीय विवाचन आदेश (Employment and National Arbitration Order) के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय विवाचन अधिकरण (National Arbitration Tribunal) की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत उस समय तक हड़तालों और तालाबन्दियों को अवैध घोषित कर दिया गया जब तक कि कोई भी विवाद श्रम मन्त्री को प्रस्तुत नहीं किया जाता और वह २१ दिन के अन्दर अन्दर समाधान नहीं करा पाता। सर्वप्रथम सामूहिक संयुक्त व्यवस्था से परामर्श किया जाना जरूरी था और इसके निर्णय की महत्ता भी विवाचन निर्णय जैसी ही मानी गई थी। इस प्रकार इंगलैंड में सामूहिक सौदाकारी की व्यवस्था युद्धकाल में भी कायम रही।

युद्धोत्तर काल की अवधि में विशेष रूप से पिछले दशाब्दी में ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था की स्वतन्त्रता पर कुछ दबाव पड़ते रहे हैं। ऐसा निम्न कारणों से हुआ है : आर्थिक मामलों में सरकारी हस्तक्षेप का बढ़ जाना, तकनीकी ज्ञान में परिवर्तन होना, बड़े तथा शक्तिशाली श्रमिक संघों का कम संख्या में होना, शैक्षणिक सुधार होना तथा शारीरिक एवं मानसिक श्रम वाले रोजगारों के बीच अन्तर कम हो जाना आदि। सन् १९६५ में सरकार ने लार्ड डानावन की अध्यक्षता में एक रायल आयोग की स्थापना की। इस आयोग को औद्योगिक सम्बन्धों पर और विशेष रूप से श्रमिक संघों व मालिकों के संगठनों के योगदान पर विचार करना था। इस आयोग की स्थापना सन् १९१६ में स्थापित की गई ह्विटले समिति के ५० वर्षों बाद की गई थी। सन् १९७० में मजदूर दल की सरकार ने डानावन आयोग की सिफारिशों को कार्यरूप देने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया था। परन्तु तभी संसद के भंग हो जाने के कारण यह विधेयक रद्द हो गया। इसके बाद अनुदार दल की सरकार सत्ता में आई और उसने सन् १९७१ में औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम पास किया परन्तु ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने इसका तीव्र विरोध किया। मार्च १९७४ में जब मजदूर दल की सरकार पुनः सत्ता में वापिस लौटी तो यह अधिनियम निरस्त कर दिया गया और उसके स्थान पर श्रमिक संघ तथा श्रम सम्बन्ध अधिनियम, १९७४ लाया गया। सन् १९७५ में सरकार ने एक और व्यापक श्रम कानून भी पास किया जिसे रोजगार संरक्षण अधिनियम का नाम दिया गया। इस अधिनियम द्वारा मजदूरों को बरखास्तगी तथा पदच्युति आदि के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किया गया। इन अधिनियमों के द्वारा सामूहिक समझौतों को कुछ कानूनी पवित्रता प्रदान की गई है, मालिकों के संगठनों को भी कानूनी मान्यता दी गई है और सरकार ने इतनी शक्तियाँ अपने हाथ में ले ली हैं कि उनके द्वारा वह न केवल रोजगार सम्बन्धों को ही नियमित कर सके, अपितु विवादों के शीघ्र निपटारे के लिए हस्तक्षेप भी कर सके।

विवादों के निपटारे का ऐच्छिक आधार,
(Voluntary Basis of Settlement)

इंगलैंड में वर्तमान समय में भी औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था मुख्य रूप से ऐच्छिक आधार पर स्थापित है। कुछ ही मामलों में सरकारी व्यवस्था इसके पूरक के रूप में की जाती है। औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था श्रमिकों और मालिकों के संगठनों अर्थात मालिकों के संघ और श्रमिक संघों पर निर्भर है। यह संगठन श्रमिकों के कार्य की शर्तों और अन्य मामलों पर विचार विमर्श और बातचीत करते हैं। कुछ विषयों में तो यह वार्ता अगर आवश्यकता हो तो, केवल संघों की सभा बुलाकर ही की जाती है। अन्य विषयों के लिए एक स्थायी ऐच्छिक संयुक्त व्यवस्था की गई है। साधारणतः यह व्यवस्था सामने आने वाले प्रश्नों को सुलझाने के लिये पर्याप्त है। परन्तु उन विवादों के लिये जिनका निपटारा इस प्रकार नहीं हो पाता, स्वतन्त्र रूप से विवाचन के लिये प्रस्तुत करने की भी व्यवस्था है। कुछ विशेष व्यवसायों में जहां मालिकों और श्रमिकों के ऐच्छिक संगठनों का इतना विकास नहीं हो पाया है, कि वह इस प्रकार के मामलों का सामूहिक सौदाकारी द्वारा निबटा ले या इस प्रकार होने वाले समझौतों को लागू कर सकें वहां ऐसे मामलों को निबटाने के लिये राजकीय कानून द्वारा व्यवस्था की गई है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था सम्बन्धी अनेक अधिनियम भी पारित किये गये हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इंगलैंड में मालिकों और श्रमिकों के संघ सामूहिक सौदाकारी और औद्योगिक सम्बन्धों के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इंगलैंड में अधिकतर मालिक मालिक संघों के सदस्य हैं। इनमें से अनेक संघ काफी समय से चल आ रहे हैं। साधारणतया संघ औद्योगिक आधार पर संगठित किए गये हैं। उनमें से कुछ तो स्थानीय हैं और कुछ राष्ट्रीय आधार पर बनाये गये हैं। 'ब्रिटिश एम्प्लायर्स कन्फिडरेशन' (British Employers Confederation) मालिक संघों की केन्द्रीय संस्था है और इसमें अधिकतर मालिक संघ और संगम सम्बद्ध (Affiliated) हैं। यह संगठन मालिकों और श्रमिकों के आपसी सम्बन्धों में मालिकों के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करती है। जहाँ तक श्रमिक संघों का सम्बन्ध है अधिकतर श्रमिक संघों में संगठित हैं। इनके विकास और कार्यों का वर्णन 'इंगलैंड में श्रमिक संघवाद' नामक अध्याय में पहले ही किया जा चुका है। 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' श्रमिक संघों की केन्द्रीय संस्था है और इससे अधिकतर श्रमिक संघ सम्बद्ध हैं। सरकारी विभागों व संगठित मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बीच उनके हितों को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले विषयों पर परामर्श करने के लिये 'ब्रिटिश एम्प्लायर्स कन्फिडरेशन और ट्रेड यूनियन कांग्रेस' को सरकार द्वारा मुख्य संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त है।

संयुक्त औद्योगिक परिषदें (Joint Industrial Councils)

जहाँ तक पश्चिम संयुक्त वार्ता व्यवस्था का सम्बन्ध है यह देखने में आता है कि रोजगार की शर्तों और दशाओं को प्रभावित करने वाले सभी मामलों पर सम्बन्धित मालिकों और श्रमिकों के संगठन द्वारा तदर्थ (Ad hoc) रूप में विचार किया जाता है और अन्य मामलों के लिए संयुक्त औद्योगिक परिषदों के रूप में स्थायी संस्थायें हैं और उनका कार्य इस प्रकार के मामलों पर राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त रूप में विचार करना है। इनकी स्थापना व्हिटले समिति की सिफारिशों और १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act) के परिणामस्वरूप हुई है। इस समय इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या २०० है। इनमें उद्योग के दोनों पक्षों के प्रतिनिधि होते हैं और कुछ मामलों में एक स्वतन्त्र अध्यक्ष भी होता है। इनके कार्यों में बहुत भिन्नता होती है। कुछ संस्थायें केवल मजदूरी के विषय पर ही बातचीत करती हैं और कुछ महत्वपूर्ण संस्थायें उद्योग के हितों को प्रभावित करने वाली अनेक बातों पर विचार करती हैं। यदि निपटारे की शर्तों पर समझौता नहीं हो पाता है तब वह अपने विवाद को किसी स्वतन्त्र विवाचक के सम्मुख रखते हैं अथवा १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत किये गये अन्य किसी साधन का उपयोग करने का सम्मत हो जाते हैं।

अनेक उद्योगों में इसी प्रकार के प्रबन्ध जिला और कारखाना स्तरों (District and Factory Levels) पर हैं जहाँ मामलों पर दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों द्वारा या तो तदर्थ (Ad hoc) रूप में विचार किया जाता है अथवा जिला संयुक्त औद्योगिक परिषदों या इसी ही संस्थाओं या मालिक मजदूर परिषदों द्वारा की गई किसी नियमित व्यवस्था द्वारा विचार होता है। इस प्रकार की संस्थाएँ राष्ट्रीय स्तर पर किये गए समझौतों को अपने जिले या कारखाने में लागू करने के प्रश्न पर विचार करती हैं, परन्तु साधारणतया इन्हें राष्ट्रीय समझौतों की शर्तों में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। ये नई समस्याओं पर भी विचार करती हैं परन्तु यदि जिला अथवा कारखाना स्तर पर उनका कोई हल नहीं निकलता तब उनको राष्ट्रीय संस्था को सौंप दिया जाता है।

इंगलैंड में मालिक-मजदूर समितियाँ
(Works Committees in England)

इंगलैंड में मालिक-मजदूर समितियों की स्थापना के अनेक उद्देश्य रहे हैं। श्रमिक मालिक मजदूर समितियों को प्रबन्ध में हिस्सा लेने का साधन मानते हैं। मालिकों के विचार में ये समितियाँ अशान्ति को कम करने और कार्यकुशलता को बढ़ाने का साधन हैं। उचित रूप में संगठित मालिक मजदूर समितियों से श्रमिकों को बहुत लाभ होता है। प्रत्येक संस्थान में मजदूरी एवं कार्य के घण्टे आदि विषयों से सम्बन्धित विवादों को तुरन्त ही सुलझाया जा सकता है। इन समितियों द्वारा रोजगार और कार्य की दशाओं से सम्बन्धित अन्य विषयों पर भी विचार किया

जाता है। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम है जहाँ श्रमिकों को प्रबंध म वास्तविक रूप स भाग मिला हो। जहाँ तक नीति निर्धारण में श्रमिकों के सहयोग का प्रश्न है उसका अस्तित्व लगभग है ही नहीं। जिन श्रमिकों ने इस उद्देश्य स श्रमालय समितियों का निर्माण किया था साधारणतया उन्हें निराश ही होना पड़ा। यह बात उल्लेखनीय है कि शुरू शुरू म श्रमालय समितियों और श्रमालय प्रतिनिधि समितियों का श्रमिक संघों द्वारा अपनी गतिविधियों के पूरक के रूप म समर्थन किया गया था परन्तु बाद में जब श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन प्रभावशाली हुआ तो श्रमिक संघ इनके विरोधी हो उठे जिसके कारण यह आन्दोलन १९१९ के बाद असफल हो गया। वर्तमान समय में श्रमालय समितिया श्रमिक संघों म मिलकर अपना काय सुचारु रूप से कर रही है और इन्होंने विवादों को तत्काल ही सुलझाने की स्वस्थ परम्परा का विकास किया है। श्रमिकों की सुरक्षा और कल्याण के लिए भी इन्होंने अच्छा काय किया है। ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था में उनका अब एक मुख्य स्थान है।

मजदूरी को नियन्त्रित करने वाली व्यवस्था
(Wage Regulating Machinery)

इंगलैंड में मजदूरी को वैधानिक रूप से भी नियन्त्रित करने की व्यवस्था है। अनेक उद्योगों म जहाँ श्रमिक और मालिकों के संगठन की कमी के कारण ऐच्छिक रूप से पारस्परिक बातचीत का प्रबंध नहीं है या यदि है तो वह अपर्याप्त है वहाँ कुछ वैधानिक निकायों (Statutory Bodies) की स्थापना की गई है जिन्हें मजदूरी निर्धारण परिषद् (Wage Council) और मजदूरी निर्धारण बोर्डों (Wage Boards) के नाम से जाना जाता है। इनमें मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के साथ साथ कुछ विशेष स्वतन्त्र व्यक्ति भी होते है। इन निकायों से सम्बन्धित मन्त्री को जो साधारणतया श्रम मन्त्री होता है मजदूरी की न्यूनतम शर्तों और दशाओं के लिये सुझाव देने का अधिकार है। मन्त्री को इन न्यूनतम दशाओं और शर्तों को वैधानिक रूप देने का अधिकार है। लगभग २० ३० लाख श्रमिकों के रोजगार की दशाओं का निर्धारण ऐसी ही वैधानिक व्यवस्था द्वारा होता है। १९४५ के मजदूरी परिषद् अधिनियम (Wages Council Act) द्वारा भी मजदूरी निर्धारित करने वाली इस व्यवस्था की स्थापना की गई है। अनेक उद्योगों के लिए भी अधिनियम बनाये गये है जैसे—१९४८ में कृषि कार्यों में मजदूरी निर्धारण के लिये (Agricultural Wages Act) १९३८ म सड़क यातायात के कार्यों म मजदूरी निर्धारण के लिये (Road Haulage Wages Act), १९४३ म भोजनालयों में काम करने वालों की मजदूरी निर्धारण के लिये (Catering Wages Act) आदि। इन सब में न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था है। १९७५ के अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी परिषद वैधानिक संयुक्त परिषदों में परिवर्तित की जा सकती है।

राज्य द्वारा सुलह और विवाचन व्यवस्था
(State Conciliation and Arbitration)

सरकार की ओर से सुलह, विवाचन और जांच की भी व्यवस्था की गई है। १८९६ के सुलह अधिनियम (Conciliation Act) और १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act) के अन्तर्गत श्रम मन्त्री को यह अधिकार है कि यदि ऐच्छिक सुलह व्यवस्था द्वारा औद्योगिक विवादों का निपटारा न किया जा सके तो वह उद्योगों के विवादों के निपटारे में सहायता करे। इन अधिकारों का उद्देश्य ऐच्छिक साधनों और संयुक्त व्यवस्था को दबाना नहीं वरन् पूरा करना है। सुलह व्यवस्था द्वारा उद्योगों को सहायता देने के लिये सुलह अधिकारियों का कार्य राष्ट्रीय और जिला और कुछ विषयों में कारखानों स्तर पर मालिकों और श्रमिकों के आपसी सम्बन्धों को ध्यान में रखना है और यदि श्रमिक और मालिक चाहें तो पारस्परिक वार्तालाप और वाद विवाद द्वारा उनके विवादों का निपटारा करने में सहायता देना है। जिन विवादों को इस प्रकार से नहीं निपटाया जा सकता उनको यदि सम्बन्धित पक्ष चाहें तो ऐच्छिक विवाचन के लिये सौंपा जा सकता है। यह विवाचन या तो एक विवाचक द्वारा या एक तदर्थ (Ad hoc) विवाचन बोर्ड द्वारा या औद्योगिक न्यायालय द्वारा जो १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी अधिकरण के रूप में स्थापित हुआ है, किया जाता है। युद्धकाल में संकटकालीन (Emergency) पग के रूप में यह उपबन्ध बनाया गया था कि किसी भी पक्ष द्वारा मन्त्री को प्रस्तुत किये जाने वाले मामलों को राष्ट्रीय विवाचन अधिकरण को सौंपा जा सकता था, और इसके निर्णयों का सम्बन्धित पक्षों पर लागू करना अनिवार्य था। यह व्यवस्था १९५८ तक चलती रही जबकि उस वर्ष नवम्बर में अधिकरण को समाप्त कर दिया गया, यद्यपि श्रमिक संघ के नेताओं ने इसका विरोध किया था। अब १९५९ के रोजगार की शर्तों और दशाओं से सम्बन्धित अधिनियम (Terms and Conditions of Employment Act), के अन्तर्गत श्रमिकों के प्रतिनिधि संगठन द्वारा श्रम मन्त्री को यह रिपोर्ट दी जा सकती है कि उसके व्यापार या उद्योग में कोई विशेष मालिक रोजगार की ऐसी शर्तों और दशाओं को कार्यान्वित नहीं कर रहा है जिनका आपस में निर्णय हो चुका है या जिनके लिये कोई विवाचन, निर्णय दिया जा चुका है या जिनको मान्यता प्राप्त है। यदि मामले का निपटारा नहीं हो पाता है तो श्रम मन्त्री को उसे औद्योगिक न्यायालय को सौंपना पड़ता है। मालिकों को रोजगार की शर्तों और दशाओं को मनवाने के लिये न्यायालय द्वारा विवाचन निर्णय दिया जा सकता है। यह निर्णय रोजगार संविदा की एक निहित शर्त के रूप में मान्य हो जाता है। श्रम मन्त्री को यह अधिकार भी है कि वे उन विवादों के लिये जो हो चुके हैं, या जिनके होने की सम्भावना है अथवा जिनको उपरोक्त साधनों द्वारा सरलता से सुलझने की आशा नहीं है, जांच न्यायालय या जांच

समिति की स्थापना कर दें। इन निकायों (Bodies) की रिपोर्ट मुख्यतः संसद् और जनता की सूचना के लिये होती है। यद्यपि रिपोर्ट को किसी पक्ष के लिये मानना अनिवार्य नही है फिर भी इन रिपोर्टों की सिफारिशो को विवादो के निपटारे का आधार समझकर स्वीकार कर लिया जाता है। औद्योगिक न्यायालय का स्थान अब केन्द्रीय विवाचन समिति ने ले लिया है जिसे कि १९७४ के अधिनियम के अन्तर्गत गठित किया गया है।

इगलैंड मे श्रमिको और श्रमिको के सम्बन्धो को प्रभावित करने वाले विषयो पर विवाद करने के लिये सरकार और उद्योग मे पारस्परिक सम्पर्क भी रहता है। दोनों पक्षों के सामान्य हितो के विषयो पर सरकार सभी स्तरो पर विचार करने के लिये श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधियो के साथ सम्पर्क बनाये रखती है। स्थानीय और जिला स्तर पर श्रम मन्त्रालय के सुलह अधिकारी उद्योग के दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो के सम्पर्क मे रहते है। राष्ट्रीय स्तर पर विभाग के अधिकारी पारस्परिक सम्पर्क बनाये रखने वाले अधिकारियो के रूप मे निमन्त्रण पाकर अथवा सौजन्यता के नाते मे सयुक्त औद्योगिक परिषदो की सभाओ म उपस्थित होते हैं। राष्ट्रीय सयुक्त सलाहकार परिषद् के माध्यम से सरकार व ब्रिटिश एम्प्लायर्स 'कॉन्फेडरेशन' और 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' के बीच परामर्श करने की स्थायी व्यवस्था भी है। इस राष्ट्रीय सयुक्त सलाहकार परिषद (National Joint Advisory Council) की स्थापना १९३९ मे की गई थी। इसमे दोनो पक्षो का प्रतिनिधित्व होता है और इसका कार्य सामान्य हित के प्रश्नों पर सरकार को सलाह देना है।

उत्पादन सम्बन्धी सभी विषयों पर कारखाना स्तर पर उद्योग मे सयुक्त रूप से परामर्श करने की व्यवस्था की गई है। बहुधा विषयों पर सयुक्त रूप से विचार किया जाता है जो अनौपचारिक (Informal) रूप मे होता है, विशेषकर छोटे कारखानो मे ऐसा ही होता है। कुछ अन्य उद्योगो मे ऐसे विचार-विमर्श कुछ सयुक्त निकायो (Bodies) द्वारा होते है जो कारखाना, जिला और राष्ट्रीय हर स्तर पर स्थापित कर दिये गये है। ये सयुक्त निकाय रोजगार की शर्तो और दशाओ के बारे मे विचार और समझौता कराने का प्रयत्न करती है और उत्पादन से सम्बन्धित विषयो पर भी विचार करती है। अनेक अन्य उद्योगों मे इन मालिको पर विचार करने के लिये सयुक्त उत्पादन समिति अथवा मालिक मजदूर परिषद् की अलग से व्यवस्था है। इनकी स्थापना कारखाना स्तर पर की जाती है और इनमे उन मामलों को सम्मिलित नही किया जाता जिन पर सामान्य वार्तालाप व्यवस्था के अन्तर्गत विचार किया जाता है। इन सयुक्त उत्पादन समितियों का संगठन भिन्न-भिन्न होता है, और कुछ उद्योगो मे आपसी वार्तालाप के सामान्य निकायो द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर इनको नियन्त्रित किया जाता है।

इंगलैंड में औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिए की गई व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें

(Main Features for Maintaining Industrial Peace in England)

इस प्रकार ब्रिटिश औद्योगिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि विवादों को प्रारम्भिक अवस्था में ही शिकायतों को दूर करने का अवसर मिलता है। इंगलैंड में औद्योगिक सम्बन्धों की सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार ऐच्छिक है। वहाँ पर दोनों पक्ष एक दूसरे के दृष्टिकोणों को समझने का प्रयत्न करते हैं और अपने सामान्य हितों को भी मान्यता देते हैं। इस कारण इंगलैंड में पिछले बीस वर्षों में हड़ताल और तालाबन्दी बहुत ही कम हुई हैं। पिछले कुछ वर्षों में हुई कुछ गम्भीर कामबन्दियों (Stoppages of Work) के बावजूद १९३२ से १९५६ तक औसतन केवल २२.४० लाख कार्य दिनों की क्षति हुई जबकि १९१० से १९३२ तक २३ वर्षों में २१० लाख कार्य दिनों की क्षति हुई थी।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इंगलैंड में औद्योगिक-शान्ति स्थापित करने के लिये निम्नलिखित व्यवस्था है—(१) मालिकों और श्रमिकों में सामूहिक सौदाकारी द्वारा किए गए संयुक्त ऐच्छिक समझौते और करार, (२) मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों से औद्योगिक परिषदों द्वारा राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर संयुक्त रूप से औद्योगिक वार्तालाप (३) प्रत्येक संस्थान में मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की मालिक मजदूर समितियाँ, (४) ऐसे उद्योगों में, जहाँ संघ कमजोर है, न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिये वैधानिक मजदूरी नियन्त्रण की व्यवस्था (Statutory Wage Regulating Machinery), (५) सरकार द्वारा सुलह, विवाचन और जाँच तथा युद्ध काल में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था, (६) श्रमिकों और मालिकों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रभाव डालने वाले विषयों पर सरकार और उद्योग में पारस्परिक सम्पर्क बनाए रखने की व्यवस्था, (७) कारखाना स्तर पर उद्योग में संयुक्त परामर्श व्यवस्था।

ग्रेट-ब्रिटेन के अनुभव और भारत

(Experience of Great Britain and India)

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि इंगलैंड की भाँति औद्योगिक विवादों के विषयों पर राजकीय हस्तक्षेप यथासम्भव कम होना चाहिये और विलम्ब करने की अपेक्षा प्रारम्भिक अवस्था में ही तर्क द्वारा मतभेद दूर करने के तरीके को प्रोत्साहित करना चाहिये। भारत में अब तक श्रमिक संघों ने औद्योगिक विवादों के सुलझाने में कोई विशेष योग नहीं दिया है जबकि ग्रेट ब्रिटेन के औद्योगिक सम्बन्धों के वह अभिन्न (Integral) अंग हैं। इसके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन में, भारत के विपरीत, किसी भी औद्योगिक विवाद के सम्बन्धित पक्ष एक दूसरे के दृष्टिकोण की सराहना करते हैं तथा पारस्परिक वार्तालाप और स्वतन्त्र विचार-विमर्श द्वारा स्थिति को स्पष्ट रूप से समझने का प्रयत्न करते हैं। भारत में कर्तव्यनिष्ठ (Responsible) श्रमिक

नेताओं की कमी है। श्रमिक अशिक्षित और असंगठित होने के कारण पारस्परिक विचार विमर्श में भाग नहीं लेते और इस प्रकार प्रतिपक्ष के विचारों को समझ भी नहीं पाते। ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था सफलतापूर्वक ऐच्छिक आधार पर कार्य करती है और इसका कारण शक्तिशाली श्रमिक संघ और शिक्षित श्रमिक वर्ग है। यद्यपि विगत कुछ वर्षों में सरकार ने ऐसी शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं कि वह सकल विवादों के शीघ्र निपटारे के लिए हस्तक्षेप कर सके। भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन अभी तक दुर्बल है और श्रमिक वर्ग अशिक्षित है, इसलिए सरकार का हस्तक्षेप आवश्यक और वांछनीय प्रतीत होता है। परन्तु भारत में भी अब प्रारम्भिक अवस्था में ही स्वतन्त्र और निष्पक्ष विचार विमर्श की महत्ता को धीरे-धीरे समझा जा रहा है। भारत में भी इंग्लैंड के समान विभिन्न औद्योगिक अधिनियमों में मालिक मजदूर समितियों, संयुक्त औद्योगिक परिषदों, समझौताकारों आदि की व्यवस्था की गई है। अब श्रमिकों और मालिकों के बीच संयुक्त ऐच्छिक विचार-विमर्श पर अधिक जोर दिया जा रहा है। भारत में कुछ औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों और मालिकों के मध्य होने वाले ही में हुए करारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पारस्परिक विवादों में ऐसे हल होने के पुराने तरीकों का प्रभाव अब कम होता जा रहा है।

इस प्रकार भारत अपनी मालिक मजदूर सम्बन्धी व्यवस्था में ग्रेट ब्रिटेन की व्यवस्था का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहा है। इंग्लैंड और भारत की इस व्यवस्था में कुछ न कुछ अन्तर तो रहेगा ही, क्योंकि दोनों देशों की परिस्थितियाँ बहुत भिन्न हैं। इसलिए इस समय औद्योगिक विवादों में सरकारी हस्तक्षेप को किसी बड़ी सीमा तक समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि श्रमिक और मालिक दोनों ही इस बात के पक्ष में प्रतीत नहीं होते। हम इतना कह सकते हैं कि भारत में श्रमिकों और मालिकों दोनों को ही प्रतिपक्षी के दृष्टिकोण को समझने के लिए ग्रेट ब्रिटेन की भाँति निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र विचार-विमर्श की महत्ता को समझना होगा। औद्योगिक विवादों के हो जाने के पश्चात् उनके निवारण के लिए हल ढूँढने की अपेक्षा हमें भी इस बात का अधिक प्रयत्न करना चाहिए कि औद्योगिक विवाद उत्पन्न ही न हों। ●

९ औद्योगिक श्रमिकों की आवास समस्या

HOUSING OF INDUSTRIAL LABOUR

आवास की महत्ता और आवश्यकता
(Significance and Importance of Housing)

आवास की समस्या निश्चय ही भारत में औद्योगिक श्रमिकों की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। भोजन तथा कपड़े के बाद आवास का ही स्थान है। उचित आवास के अभाव के कारण बीमारियाँ फैलती हैं, व्यक्तियों में असन्तोष व्याप्त हो जाता है, मानव की उच्चतर भावनाओं का अन्त हो जाता है तथा उनमें असभ्यता एवं निर्दयता आ जाती है। अनेक अमरिकन तथा यूरोपियन लेखकों द्वारा मकानों के आर्थिक एवं सामाजिक महत्त्व पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। यह देखा गया है कि उद्योगों के चुनाव (Choice) तथा स्थापना (Location) के साथ-साथ, अन्य देशों में आवास समस्या भी बहुत महत्त्वपूर्ण बन गई है तथा नगर नियोजन पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। हमारा देश इस दृष्टि से बहुत पीछे है क्योंकि यहाँ पर कुछ स्थानों को छोड़कर, शेष में आवास को केवल समसित (Symmetrical) रूप से ईंटों व मिट्टी का एक सचयमात्र ही कहा जा सकता है। आधुनिक आवास, जैसे कि नाम के अनुसार होने चाहिये, औद्योगिक क्षेत्रों में नहीं पाये जाते। आधुनिक आवास[1] की अपनी कुछ विशेषतायें हैं और उसकी कुछ ऐसी विशिष्ट पद्धतियाँ हैं जिनके कारण पिछली शताब्दी के प्रतिरूपी (Typical) रहन के वातावरण से आधुनिक आवास भिन्न होते हैं। मकानों का निर्माण दीर्घकालीन उपयोग के हेतु किया जाता है और इस कारण उनको केवल शीघ्रता से लाभ कमाने के निमित्त नहीं बनाया जाता। आवास व्यवस्था "आयोजित" होती है और इस कारण इसको व्यापारिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। आवास से तात्पर्य यह नहीं है कि बस्तियों का अपने आप ही विस्तार हो जाये या ईंटों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया जाये। आवास का एक आदि और एक अन्त होता है और इसका एक भौतिक रूप भी होता है। इसका एक भाग दूसरे भाग से सम्बन्धित होता है और प्रत्येक भाग एक उद्देश्य विशेष की पूर्ति करता है। इसमें दैनिक जीवन न्यूनतम सुविधायें, जैसे— वायु आने जाने के लिये सवातन, सूर्य-प्रकाश, प्रत्येक खिड़की से शान्त व सुहावना दृश्य, पर्याप्त एकान्तता, बीमारी तथा प्रसूतिकावस्था

---

1 Modern Housing by Catherine Bauer quoted by the Labour Investigation Committee Report page 294

म प्राथक्य, सफाई की सुविधा तथा बच्चो के खेलने के स्थान, आदि होने चाहिये। आवास केवल मौसम के बचाव, खाना बनाने और सोने के लिये ही नही होना वरन् यह विषम सामाजिक रीतियो का केन्द्र भी है। फिर एक आधुनिक मकान उस कीमत या किराये पर मिलना चाहिये, जिसे औसत अथवा कम आय का व्यक्ति भी दे सके।

जनसख्या मे वृद्धि (Growth in Population)

हमारे औद्योगिक क्षेत्रो म कितने गृह, आधुनिक गृह के उपरोक्त वर्णनानुसार है अथवा उसके निकट भी आते है? सम्भवत कोई भी नही अथवा इतने कम कि उनकी सख्या समुद्र मे एक बूँद के समान है। आवास समस्या दिन प्रतिदिन जटिल होती जा रही है और वर्तमान आवास व्यवस्था अत्यन्त असन्तोषजनक है। औद्योगिक क्षेत्र बहुत भीड-भाड वाले हो गये है। प्राप्य भूमि की अपेक्षा जनसख्या मे अधिक वृद्धि हुई है। बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद जैसे शहरो की जनसख्या बहुत बढ गई है तथा छोटे नगर एव अविकसित क्षेत्रो ने भी अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है, न केवल जनसख्या मे ही वृद्धि हुई है वरन् पिछले कई वर्षो से गांवो मे शहरो व नगरो की ओर जनसख्या बढती गई है। १६५१ की जनगणना के आकडो से ज्ञात होता है कि १६४१–५१ के १० वर्षो मे ऐसे ७५ नगरो की जनसख्या मे, जिनम १ लाख या अधिक आबादी थी, ४३ ८% वृद्धि हुई। १६६१ की जनगणना के अनुसार, औद्योगिक नगरो की जनसख्या तीव्रगति से और बहुत अधिक मात्रा मे बढ रही है। १६५१ और १६६१ के मध्य नगरीय जनसख्या मे लगभग ३६ २५% वृद्धि हुई, जो ग्रामीण जनसख्या की वृद्धि से, जो १८ ८४% थी, लगभग दुगुनी थी। सन् १६७१ की जनगणना से स्पष्ट है कि सन् १६६१ से १६७१ तक के दस वर्षो की अवधि मे शहरी जनसख्या मे तो लगभग ३७ ८३% की वृद्धि हुई, जबकि ग्रामीण जनसख्या की वृद्धि का प्रतिशत केवल २१ ७८ ही था।[1] एक लाख या उससे अधिक जनसख्या वाले नगरो मे वृद्धि का प्रतिशत ४६ था। सन् १६३१ मे १६७१ तक की चार दशाब्दियो (decades) म ऐसे नगरो म जनसख्या बढकर ५ गुनी हो गई, अर्थात् सन् १६३१ मे ६५ लाख से बढकर सन् १६७१ मे ५ ७० करोड हो गई, जबकि इसी अवधि मे ऐसे नगरो की सख्या ३५ से बढकर १४२ हुई। औद्योगिक क्षेत्रो मे जनसख्या की यह वृद्धि अधिकतर ग्रामीण जनता के नगरो मे आने के कारण हुई है जो बडे पैमाने के उद्योगो के विकास के कारण श्रमिको की माग बढने से तथा 'भारतीय श्रमिको म प्रवासिता' नामक द्वितीय अध्याय मे उल्लिखित अनेक कारणो से नगरो मे आई है। कारखानो की स्थापना के साथ-साथ कोई नगर नियोजन नही हुआ इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिको के मकान बडे अव्यवस्थित ढग से बनाये गये। भूमि तथा इमारती सामान के ऊँचे मूल्यो के कारण नये मकान नहीं बनाये गये, अत भीड-भाड

१ विभिन्न नगरो मे जनसख्या की वृद्धि के लिये देखिये अध्याय २ के प्रारम्भ के तीन पृष्ठ।

की समस्या और भी बढ़ गई। विभाजन के पश्चात् शरणार्थियों के आ जाने तथा आधुनिक युवक की संयुक्त परिवार को छोड़ कर अपना घर बसाने की इच्छा के कारण भी समस्या की गम्भीरता अधिक हो गई। काम के अधिक घण्टे व यातायात की सुविधाओं में कमी के कारण श्रमिकों की फैक्टरी के पास ही रहने की इच्छा के कारण भी यह समस्या अधिक गम्भीर हो गई। आर्थिक विकास के साथ ही साथ देश में जैसे-जैसे नागरीकरण (Urbanisation) की प्रवृत्ति बढ़ रही है, शहरी क्षेत्रों की आवास समस्या अधिकाधिक विकट होती जा रही है। सन् १९६१ में १८% और १९७१ में १९.९% जनसंख्या नगरों में रहती थी किन्तु अनुमान लगाया गया है कि सन् १९८१ में २३% जनसंख्या शहरों में रहने लगेगी। राष्ट्रीय भवन संगठन द्वारा लगाये गये एक अनुमान के अनुसार, पांचवीं योजना के प्रारम्भ में शहरी क्षेत्रों में लगभग ६७ लाख मकानों की और ग्रामीण क्षेत्रों में ८९ लाख मकानों की (कुल १ करोड़ ५६ लाख मकानों की) कमी होगी। साथ ही, पांचवीं योजना की अवधि में शहरी जनसंख्या में जो वृद्धि होगी उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ८० लाख मकानों की अतिरिक्त कमी रहेगी। चौथी योजना के प्रारम्भ में मोटे तौर पर ८.३७ करोड़ मकानों की कमी आंकी गई थी— १.१९ करोड़ शहरी क्षेत्रों और ७.१८ करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों में।

औद्योगिक श्रमिकों के आवास की सामान्य दशायें
(General Conditions of Houses of Industrial Workers)

सरकार की विभिन्न आवास योजनाओं के होते हुये भी श्रमिकों की वर्तमान आवास व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। रॉयल श्रम आयोग (व्हिटले आयोग) के ये शब्द इस सम्बन्ध में आज भी सत्य हैं। "नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों में एक दूसरे से सटे हुये स्थान, भूमि का उच्च मूल्य तथा श्रमिकों की अपने उद्योगों के निकट रहने की आवश्यकता के कारण अधिक भीड़ और घनी आबादी में वृद्धि हुई है। व्यस्त केन्द्रों में प्राप्त भूमि का पूरा उपयोग करने हेतु मकान एक दूसरे से सटाकर बनाये जाते हैं, यहाँ तक कि ओरी से ओरी छूती है, और दीवार से दीवार मिली होती है। वास्तव में भूमि इतनी मूल्यवान है कि मकानों में पहुंचने के लिये सड़कों के स्थान पर छोटी एवं संकरी गलियाँ होती हैं। सफाई की ओर कोई ध्यान नहीं जाता और यह इस बात से प्रकट है कि सड़ते हुये कूड़े के ढेर पड़े रहते हैं, और गन्दे पानी के गड्ढे भरे रहते हैं। शौचालयों के अभाव में हवा और धरती दोनों में गन्दा वातावरण फैल जाता है। अनेक मकान जिनमें चौखट, खिड़की और संवातन (ventilation) का अभाव होता है, प्रायः एक कमरे वाले होते हैं, जिनमें वायु के आवागमन का मार्ग केवल एक द्वार होता है जो कि इतना नीचा होता है कि उसमें बिना झुके घुसना असम्भव है। एकान्तता पाने के लिये पुराने कनस्तरों के टीन एवं पुरानी बोरियों को पर्दे के रूप में काम में लाया जाता है जिससे प्रकाश एवं निर्मल वायु का आना और

भी बन्द हो जाता है। इस प्रकार के घरौंदा म मनुष्य जन्म लेता है नाता है, खाता है, रहता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।'[1]

ऐसी ही अवस्था का वर्णन १६२८ में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के एक प्रतिनिधि मण्डल द्वारा किया गया था 'हम जहाँ भी ठहरे हमने श्रमिकों के क्वार्टरों का देखा और यदि हम उन्हे न देखा ता कभी विश्वास न करते कि ऐसे बुरे स्थान भी है पक्तियो मे मकानो का समूह होता है, जिसका मालिक किरायेदारो से ४½ शि० प्रतिमास किराया लेता है। प्रत्येक आवास मे एक अंधेरी कोठरी जो रहने, खाना पकाने स्नान आदि सभी के काम आती है ६'×६ नाप की होती है। इसमे मिट्टी की दीवार और ढीली खपरैल की छतें होती है। इसके सामने एक छोटा सा खुला आगन होता है जिसका एक कोना शौचालय के काम मे आता है। रहने के कमरो मे टूटी छत अथवा खुले हुये प्रवेश द्वार के अतिरिक्त कोई सवातन नही होता। घर के बाहर लम्बी सकरी एक नाली होती है जहाँ सब प्रकार का कूडा करकट सचित होता है और जहाँ कीडे और मक्खियो की अधिकता होती है •• सब मकानो के बाहर भूमि की पटटी के एक ओर पर पक्तियो के बीच खुली नालियाँ होती है जो कूडा-करकट और अन्य व्यर्थ की चीजो से, जिनमे से अति तीक्ष्ण दुर्गन्ध आती रहती है, कहीं-कहीं पर बन्द भी हो जाती है। यह तो स्पष्ट ही है कि ये नालियाँ बच्चो के टट्टी कराने के काम मे लाई जाती हैं।'[2]

यही आवासो की सामान्य व्यवस्था है जो आज तक बनी हुई है। यह किसी औद्योगिक केन्द्र को स्वय देखने से स्पष्ट हो जायेगा। लेखक ने स्वय भारत के औद्योगिक केन्द्रो म ऐसी शोचनीय दशाओ का अवलोकन किया है। श्रम अनुसन्धान-समिति (Rage Committee) ने भी बताया था कि उसके सम्मुख प्रस्तुत गवाही आदि को देखते हुये वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि सम्पूर्ण देश मे वर्तमान व्यवस्था उतनी ही शोचनीय थी जितनी कि रॉयल श्रम आयोग ने बताई थी। १६४६ की स्वास्थ्य सर्वेक्षण एव विकास समिति अर्थात 'भोर समिति' ने भी श्रमिको के रहने की शोचनीय दशाओ की ओर ध्यान आकृष्ट कराया था। पिछले युद्ध के पश्चात् आवास समस्या विस्थापितो के आने के कारण और भी अधिक गम्भीर हो गई। सन् १६५२ मे कानपुर मे श्रमिको की गन्दी बस्तियो का अवलोकन करके प नेहरू को बडा आश्चर्य तथा झुंझलाहट हुई थी। राष्ट्रीय श्रम आयोग (१६६६) का भी यह कहना है कि 'आवास समस्या का जो बिगडा हुआ चित्र आज वर्तमान है, वह अभी भी कोई उससे अधिक भिन्न नही है जैसा कि ह्विटले आयोग या रेग समिति ने वर्णन किया है यद्यपि स्थिति को सुधारने के लिये नये मकानो का काफी बडा अनुपात विद्यमान है।' बडे शहरो मे इतनी भीड और घनी आबादी होती है कि वास्तव मे उसका वर्णन करना कठिन है और छोटे-छोटे शहरो मे भी व्यवस्था अच्छी नही है। किरायेदारो द्वारा

1 Report of the Royal Commission on Labous pages 271—272

2 *Quoted in Palme Dutt s India Today page 361*

मकान फिर से किराये पर उठाने का रिवाज भी बहुत अधिक पाया जाता है। कलकत्ता और बम्बई जैसे शहरों में बहुत से श्रमिक बिना किसी आवास के पाये जाते हैं। ऐसे श्रमिक दिन में काम करते हैं और रात को अपने सामान को तकिये की जगह प्रयोग कर फुटपाथ पर सोते रहते हैं। उत्तरी भारत में जो शीत-लहर (Cold Wave) आती है उससे आवास रहित व्यक्तियों की शोचनीय दशाओं का हाल सबको विदित है। कुछ बड़े नगरों में तो बहुत से ऐसे व्यक्ति जो सड़कों पर सोते हैं मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अनुमान है कि इस प्रकार सड़क की पटरियों पर सोने वालों की संख्या कलकत्ता में ११ लाख बम्बई में ढाई लाख और दिल्ली में ७ लाख है। इसके अतिरिक्त अन्य औद्योगिक क्षेत्रों की संख्या अलग है। कवल हाल ही के कुछ वर्षों में राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत थोड़ा सुधार हुआ है, फिर भी अभी बहुत कुछ करने को बाकी है।

विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में आवास की दशायें[1]

(Housing Conditions in Different Industrial Areas)

बम्बई में अनेक श्रमिक ऐसी झोपड़ी या आगार में रहते थे जिनको 'जवली' कहते हैं, जो कच्ची दीवारों तथा नारियल की सूखी जटाओं की छतों से बनी होती थीं। परन्तु अधिकतर श्रमिक ऐसे मकानों में रहते रहे हैं जिनको चाल कहते हैं जो कि ३ या ४ मन्जिल ऊँचे एक कमरे वाले मकान होते हैं। यह चाल प्राइवेट भूस्वामियों द्वारा मिल क्षेत्रों के निकट बनाये गये हैं और इस कारण इनमें बड़ी भीड़ रहती है। इन चॉलों की व्यवस्था वैसी ही शोचनीय है जैसा कि रॉयल श्रम आयोग ने वर्णन किया था। आयोग ने यह भी कहा था कि इनमें सुधार होना असम्भव था और इसलिये इनको गिरा देना ही ठीक था। कुछ चॉल' नगर निगम, बम्बई नगर सुधार ट्रस्ट, बम्बई बन्दरगाह ट्रस्ट और बम्बई मिल मालिक परिषद् की सदस्य मिलों द्वारा भी बनवाये गये थे। श्रमिकों के लिये मकान बनाने के सम्बन्ध में अभी हाल के वर्षों में सरकार ने जो प्रयास किये हैं, उनका उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया गया है।

अहमदाबाद में भी यह पाया गया था कि आवास की स्थिति उतनी ही असन्तोषजनक है। मकान एक दूसरे से सटे हुए थे। कभी तो हजारों व्यक्ति इधर-उधर घूमते दिखाई देते थे और कभी यकायक दूसरों को स्थान देने के हेतु एक कोने में गायब हो जाते थे। अभी कुछ समय पहले तक सरकार की श्रमिकों के लिये कोई आवास योजना नहीं थी। नगरपालिकाओं ने अभी हाल ही में हरिजनों और अन्य व्यक्तियों के लिये कुछ मकान बनवाये थे। इसके अतिरिक्त मिल मालिकों की एक संस्था अर्थात् 'अहमदाबाद मिल आवास कम्पनी' ने श्रमिकों के लिये ८०० मकानों की व्यवस्था की थी। प्रत्येक मकान में एक कमरा, रसोईघर व एक बरामदा था। उनका किराया ४ रुपये प्रति मास वसूल किया जाता था। यहाँ पर भी सफाई, पानी

1 For details reference may be made to the Labour Investigation Committee Report pages 297 to 335 and to the Indian Labour Year Books

और स्वच्छ वातावरण के विषय में अनेक शिकायतें विद्यमान थीं। अहमदाबाद की कपड़ा मिल मजदूर परिषद् ने भी ६० मकानों के एक क्षेत्र का निर्माण किया था, जो कि किराया खरीद व्यवस्था (Hire Purchase System) पर किराये पर दिये गये थे और प्रत्येक किरायेदार १० रु० प्रति माह चुकाता था और २० वर्ष में उस मकान का स्वामी बन जाता था। प्रत्येक मकान में दो कमरे, एक रसोई, एक बरामदा और एक आँगन था। फिर, अहमदाबाद में १०० से अधिक श्रमिक सहकारी आवास समितियाँ भी थीं जिनकी स्थापना अहमदाबाद की कपड़ा मिल मजदूर परिषद् के प्रयत्नों द्वारा हुई थी। उन्होंने ८०० मकानों का निर्माण किया था जिनमें से प्रत्येक में एक रहने का कमरा, एक छोटा कमरा, एक रसोईघर और दो छतदार बरामदे सम्मिलित थे। श्रमिक इन आवास समितियों की ओर इसलिये आकर्षित होते थे क्योंकि इस योजना की शर्तें बड़ी उदार थीं। इनके अन्तर्गत श्रमिकों को २ रुपये प्रति वर्ग गज के हिसाब से जमीन के लिये उपदान (Subsidy) दिया जाता था, निर्माण की २५% लागत दी जाती थी और ५०% ब्याज मुक्त ऋण दिया जाता था। फिर भी भिन्न भिन्न संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई आवास सुविधायें श्रमिकों के लिये व्यक्तिगत मकान की सुविधाओं की तुलना में बहुत कम थी। श्रमिकों की अधिक संख्या अब भी चॉल में ही रहती थी, जिनमें से बहुत सी सस्ते सामान से निर्मित की गई थी। इनमें कोई सुविधा नहीं थी और सफाई की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। किराया भी बहुत अधिक लिया जाता था। इन चालों की दशायें भी रॉयल श्रम आयोग द्वारा वर्णन की हुई दशाओं के अनुरूप ही पाई गई थी।

कानपुर में, नगर सुधार ट्रस्ट, नगरपालिका तथा ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन जैसे मालिकों द्वारा भी कुछ मकान बनवाये गये थे। उन्होंने दो स्थानों पर—अर्थात् ऐलेनगंज और मैक रॉबर्ट गंज में १,६६० क्वार्टरों का निर्माण किया था, जिनमें साधारणतया एक या दो कमरों के मकान थे। एलगिन मिल ने भी दो आवास क्षेत्रों की व्यवस्था की—जिन्हें मैक्सवेल गंज और एलगिन मिल्स के आवास क्षेत्र कहते थे। इनमें १५६ मकानों की व्यवस्था थी। ज० के० मिल्स ने भी अपने श्रमिकों के लिये एक बड़े आवास क्षेत्र का निर्माण किया था। कानपुर नगरपालिका ने भी पार्कों व उद्यानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए और भंगियों के लिए कुछ बिना किराए के क्वार्टरों की व्यवस्था की थी।

फिर भी, कानपुर में अधिकांश श्रमिक बस्तियों एवं अहातों में रहते रहे हैं, जो व्यक्तिगत मकान मालिकों की सम्पत्ति होते हैं। अहातों का स्वयं जाकर देखने से उनमें रहने वाले श्रमिकों की शोचनीय दशा का वास्तविक ज्ञान हो सकता है और रॉयल श्रम आयोग द्वारा वर्णित व्यवस्था आज भी सत्य है। रॉयल श्रम आयोग ने इन अहातों का निम्नलिखित वर्णन दिया था "अधिकांश मकान ८'×१० नाप के एक कमरे वाले हैं जिनमें से कुछ में एक बरामदा है तथा कुछ में उसका भी अभाव है। ऐसे मकानों में प्रायः दो, तीन या चार परिवार रहते हैं। इन मकानों के फर्श

साधारणतया पृथ्वी की सतह से नीचे होता है और नालियां, मकानों और सफाई का उनमें पूर्ण अभाव है।" तब से यदि कोई सुधार हुआ है तो वह केवल कुछ सड़कों तथा नालियों की सुविधायें हैं अन्यथा आज भी उनकी दशायें उतनी ही असन्तोषजनक हैं जितनी कि पहले थी। कानपुर श्रम-जाँच-समिति के सुझाव पर उत्तर प्रदेश के आर्थिक ज्ञान ब्यूरो (Bureau of Economic Intelligence) ने १९३८-३९ में कानपुर नगर के मिल क्षेत्र के मकानों की दशाओं की जाँच की जिसके अन्तर्गत उक्त समस्त बस्तियों एवं अहातों का सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के अनुसार ६५% परिवार एक कमरे वाले मकान में रहते थे, ३१% दो कमरे वालों में तथा ४०% तीन या चार कमरों वाले मकानों में रहते थे। चार कमरों से अधिक कमरे के न मकान नहीं थे। कमरे बहुत ही छोटे थे तथा उनमें बहुत ही नीचे दरवाजे लगे हुए थे। लगभग ६०% मकानों के कमरों में खिड़कियां व मकानों का अभाव था और ७०% कमरों में कच्चे फर्श थे। बरामदा के फलस्वरूप उनमें कोई एकान्तता नहीं थी तथा मकान की चारदीवारी के अन्दर का अवलोकन बराबर के मकान की छत से पूर्णरूपेण किया जा सकता था। पानी का प्रबन्ध बहुत असन्तोषजनक था। लगभग ८६% परिवार सार्वजनिक नल से पानी लेते थे और केवल ७% अपने व्यक्तिगत नल थे। लगभग ८०% व्यक्ति कुओं से पानी भरते थे। कुओं और नलों पर बहुत भीड़ हो जाती थी, औसतन प्रति नल से २३३ व्यक्ति और प्रति कुयें से ३१३ व्यक्ति पानी भरते थे। २६% परिवारों के लिये शौचालयों की कोई व्यवस्था नहीं थी। केवल १६ प्रतिशत मकानों में शौचालयों की व्यवस्था थी और शेष परिवार सार्वजनिक शौचालयों में जाते थे जो कि अत्यधिक गन्दे होते थे। सफाई की दशा बहुत शोचनीय थी और वर्षा के दिनों में अधिकांश मकानों की छतें टपकती थी तथा बस्तियों में पानी भर जाता था। सड़कों की दशा बहुत असन्तोषजनक थी। सड़कों पर प्रकाश का प्रबन्ध भी नहीं था। इस सम्बन्ध में कानपुर-श्रम जाँच-समिति ने इस केन्द्र के आवासों के विषय में लिखा है कि, "एक अपरिचित के लिये रात्रि में इन स्थानों को देखने जाना एक संकटमय कार्य है। ठोकरें में मोच तो अवश्य ही आ जायेगी जबकि किसी अन्धे कुयें या विस्तृत आकार के गड्ढे में गिरकर गर्दन तुड़वा लेना भी कोई असम्भव बात नहीं होगी।" कानपुर में सहस्रों श्रमिक भूमि के नीचे बनाये गये कमरों में रहते थे जिनको देखकर समिति के एक सदस्य को फ्रांस में लड़ाई के दिनों की खाइयों की याद आ गई, और उसने कहा "इन गन्दी बस्तियों में रहने वालों को वायुयानों द्वारा बम वर्षा व गोलाबारी से तो रक्षा हो सकती है परन्तु इसमें रहने वाले श्रमिक सरलता से मनुष्य के शत्रु मच्छर, कीड़े, खटमल आदि के शिकार हो जाते हैं।" डा० बी० अग्निहोत्री द्वारा, १९५० और १९५८ में किए गए सर्वेक्षणों से स्पष्ट है कि कानपुर में मकानों की दशा युद्ध के पश्चात् के वर्षों में बहुत ही शोचनीय हो गई थी और भीड़भाड़, गन्दगी, जाति अलगाव और सामाजिक पतन, आज इन अहातों के साधारण लक्षण थे। स्वर्गीय पं०

जवाहरलाल नेहरू ने जब फरवरी १९५२ में कानपुर का निरीक्षण किया था तो उन्हें इन गन्दी बस्तियों को देखकर अत्यन्त धक्का लगा था। उन्होंने चिड़चिड़ाहट व क्रोधपूर्ण शब्दों में कहा था "ये गन्दी बस्तियाँ मानवता के अत्यधिक पतन का प्रदर्शन करती हैं। जो व्यक्ति इन स्थितियों के लिये उत्तरदायी हैं उन्हें फाँसी दे देनी चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा था कि "इन गन्दी बस्तियों को शीघ्र ही जला देना चाहिए और उनकी जगह अस्थायी रूप से स्वास्थ्य व साफ जगहों में घर बना देने चाहिए।" व्यक्तिगत पूछताछ में ज्ञात हुआ कि इन बस्तियों में रहने वाले श्रमिकों तथा अन्य लोगों की शिकायत थी कि अधिकारी वर्ग इन बस्तियों एवं अहातों में सुधार करने की ओर से कुछ उदासीन थे। हाल के वर्षों में ही इस ओर कुछ सुधार किये गये हैं लेकिन समस्या केवल इन गन्दी बस्तियों के सुधार की ही नहीं वरन् उनके पुनर्निर्माण की और श्रमिकों के लिए इनके स्थान पर अन्य स्थान की व्यवस्था करने की है।

कलकत्ते में भी आवास की दशायें कोई अच्छी नहीं रही हैं। मालिकों ने अपने श्रमिकों के आवास की व्यवस्था के प्रति बहुत ही उदासीनता दिखाई है। सरदार अर्थात् मध्यस्थ और निजी मकान मालिकों ने अधिकतर श्रमिकों के लिए ऊँचे किराये पर सस्ते मकानों की व्यवस्था की है। जहाँ श्रमिकों के मकान हैं उन जगहों को बस्ती के नाम से पुकारा जाता है जिनका कलकत्ता निगम की एक रिपोर्ट में 'देसी ग्राम' के नाम से वर्णन किया गया है और जिनमें बिना किसी योजना के बिना सड़कों के तथा बिना नालियों के झोपड़ियाँ बनी हैं जिनमें न कोई संवातन होता है और न कभी सफाई ही होती है। इनमें से अधिकतर प्रकाशरहित, नम और टपकने वाली हैं और इनमें सब पाप, गन्दगी, रोग और बीमारियों ने घर कर लिया है। जगह-जगह पर गन्दे और सड़ी वनस्पतियों और कूड़े से भरे बदबूदार पानी के गड्ढे भी पाये जाते हैं जिनकी हानिकारक वायु वातावरण को दूषित करती है। ऐसे ही गन्दे तालाब श्रमिकों के पारिवारिक कार्यों के लिए जलपूर्ति के साधन हैं। रास्ते तंग हैं और कूड़े के ढेर को उठाने का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। अधिकतर मकान कच्चे और फूस की छतों के बने हैं। उनके कमरे बहुत छोटे और तंग हैं जो कि रसोई घर और भण्डार गृह के भी काम आते हैं और श्रमिकों के लिए बाहर खुले में सोना अधिक सुविधापूर्ण होता है। इन मकानों में संवातन, खिड़की, प्रकाश और एकान्तता की कोई व्यवस्था नहीं है। बंगाल के आस्ट्रेलियन गवर्नर श्री केसी ने १९४५ में इन बस्तियों का निरीक्षण किया और कहा कि "जो कुछ मैंने देखा है उसकी भयंकरता से मुझे धक्का लगा है। मनुष्य इसे मनुष्यों को इन दशाओं में रहने के लिये कभी भी स्वीकृति नहीं दे सकते।" यह आशा की गई थी कि इसके पश्चात् कुछ सुधार किए जायेंगे। लेकिन इसके बाद में उपद्रव और बंगाल के विभाजन से उत्पन्न हुई समस्याओं ने इस प्रश्न को खटाई में डाल दिया और आवास की

दशायें विस्थापितों के भारी संख्या में आने तथा जनसंख्या में वृद्धि हो जाने के कारण पहले से भी अधिक शोचनीय हो गई।

कुछ कारखानों के मालिकों ने अपने कुछ श्रमिकों के लिये मकानों की व्यवस्था की थी, जैसे—इण्डियन जनरल नेवीगेशन एण्ड रेलवे कम्पनी, हावड़ा व्यापार कम्पनी कुछ रासायनिक कारखाने, सिगरेट व कांच फैक्ट्रियाँ तथा सूती कारखाने। परन्तु अधिकतर क्वार्टर बैरकों जैसे हैं जो एक कमरे और बरामदे अथवा बिना बरामदे वाले हैं। भीड़भाड़ सामान्य बात है। सवातन और स्वच्छता असन्तोषजनक है। कलकत्ता तथा निकटवर्ती क्षेत्रों की कुछ जूट मिलों ने भी अपने कुछ श्रमिकों के लिये मकान प्रदान किये हैं। ऐसे श्रमिकों की संख्या जिनको मकान मिले, विभिन्न जूट मिलों ने भी अपने कुछ श्रमिकों के लिये मकान प्रदान किये हैं। ऐसे श्रमिकों की संख्या जिनको मकान मिले, विभिन्न जूट मिलों में ७६% से १००% तक थी। पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा एक जाँच से पता चला था कि १६५६ में जूट मिल के कर्मचारियों के लिये ४८,८१२ मकानों की व्यवस्था थी जिनमें ४८,१३७ मकान केवल एक कमरे वाले थे। इनका किराया भी २५ पै० से २ रु० तक प्रति-मास था। यह घर अधिकतर बैरकों की भाँति थे जिनमें ३' चौड़ा एक संयुक्त बरामदा था जिसका भाग रसोई के कार्य में लाया जाता था। ६८% मकानों में श्रमिक एवं उसके परिवार को १०० वर्ग फीट से भी कम जगह मिलती थी। प्रकाश, सवातन, सफाई व शौचालयों की व्यवस्था अत्यन्त असन्तोषजनक थी। हाल ही में जूट मिल कर्मचारियों के लिये आवास क्षेत्र बने हैं। इनमें से एक अच्छा आवास क्षेत्र बिड़ला जूट मिल द्वारा निर्मित किया गया है जो कि मिल के लगभग ४३ प्रतिशत कर्मचारियों को पक्के मकान उपलब्ध करता है। इनकी कुल संख्या लगभग १,२०० है। फिर भी अधिकतर श्रमिक अभी तक कलकत्ता की बस्तियों में रहते हैं, जहाँ की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है।

मद्रास में भी आवास-व्यवस्था समान रूप से असन्तोषजनक पाई गई है। बरामदे अथवा बिना बरामदे वाले एक कमरे के मकानों में अधिकतर श्रमिक रहते हैं जिनमें खिड़की व सवातन भी नहीं है। ईंटों की पक्की इमारतें हैं तथा प्रत्येक मकान को अनेक छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया गया है और प्रत्येक भाग में श्रमिकों का एक परिवार किराये पर रहता है। कमरे साधारणतः १०'×८' से १२'×१६' तक नाप के हैं। शौचालयों का प्रबन्ध अत्यन्त असन्तोष जनक है। स्नानघरों का नितान्त अभाव है और नल साझे के होते हैं जिनके कारण अनेक झगड़े खड़े हो जाते हैं। कमरों में बहुत कम स्वच्छ हवा आती है तथा उनमें अन्धेरा रहता है। इसके अतिरिक्त मद्रास निगम ने अपने सफाई विभाग के लगभग ३५ प्रतिशत कर्मचारियों को आवास की सुविधायें दी हैं। प्रकाश, सवातन तथा जलपूर्ति की व्यवस्था भी असन्तोषजनक ही है, इसके अतिरिक्त मद्रास में एक दूसरी भाँति के भी आवास हैं जिन्हें 'चेरी' कहते हैं। कूम नदी के किनारे तथा अन्य खुले स्थानों में छोटी-छोटी फूंस की झोंपड़ियों के यह आवास क्षेत्र हैं। यह बिना किसी सफाई व सुविधा के बनाये गये हैं।

ये गन्दे, नम और अस्वास्थ्यपूर्ण है और वर्षा ऋतु में ये मिट्टी की झोपड़ियाँ चूती हैं। सारा स्थान गन्दगी और कूड़े से परिपूर्ण रहता है। ये झोपड़ियाँ श्रमिकों द्वारा उधार लिये हुये धन से ऐसे क्षेत्र मे बनाई जाती हैं जहाँ भूमि का वे किराया देते हैं। मद्रास मे एक अच्छा उदाहरण जो मिलता है वह बकिंघम तथा कर्नाटक मिलों द्वारा अपने १०% श्रमिको को अच्छी आवास व्यवस्था प्रदान करना।

जमशेदपुर म आवास की सुविधा उसकी माँग से बहुत कम पाई गई अत भीड़-भाड़ साधारण बात रही है। टाटा के द्वारा, जो कि जमशेदपुर के औद्योगिक नगर के स्वामी हैं, आवास की कुछ अच्छी सुविधायें प्रदान की गई हैं। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी ने प्रारम्भ मे अपने श्रमिकों के लिये १८,००० क्वार्टर बनाये थे। प्रत्येक श्रमिक को कम से कम दो कमरे, एक रसोईघर एक स्नानागार और एक शौचालय वाले मकान मिलते थे। सभी घर पक्के थे, बिजली की भी व्यवस्था थी और कुछ घरों मे पंखे भी थे। एक कमरे वाले आवास गृहों को छोड़कर जिनमें साझे के शौचालय थे, सभी क्वार्टरों मे फ्लश की व्यवस्था थी। पानी के नल की व्यवस्था सन्तोषजनक थी। फिर भी मालिकों ने अकुशल श्रमिकों की जो असन्तोषजनक स्थितियों में रहते थे, आवास व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। कम्पनी की आवास ऋण योजना के अन्तर्गत कम्पनी द्वारा पट्टे पर दी हुई भूमि पर श्रमिकों के द्वारा लगभग ८,६०० मकान बनाये गये। श्रमिकों के द्वारा बनाई गई एक सहकारी आवास समिति भी विद्यमान थी। जमशेदपुर की टिन प्लेट कम्पनी ने भी ३३२ पक्के घर बनाये, जबकि श्रमिकों ने स्वयं भी कम्पनी के आवास ऋण की सहायता से, जिस पर ३% दर से ब्याज वसूल किया जाता था, ५०० कच्चे मकान बनाये।

देहली मे भी गन्दी बस्तियों की अवस्था अति शोचनीय देखी गई और प्रधान मन्त्री तथा अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। यहाँ लगभग ७०० कटरे हैं जहाँ कि दो लाख से अधिक श्रमिक अमानवीय व्यवस्था में रहते हैं। नवम्बर १९५९ में एक सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चला कि देहली के ८ श्रमिक कैम्पों में १,२५,००० श्रमिक हृदयविदारक एवं अमानवीय व्यवस्थाओं में रह रहे थे। प्रमुख नागरिकों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक समिति इन श्रमिकों को सुविधायें देने हेतु बनाई गई। देहली क्लाथ मिल्स ने अपने श्रमिकों के लिये १९४० मकान बनवाये।

शोलापुर में आवास व्यवस्था सन्तोषजनक प्रतीत हुई तथा मालिक अपने श्रमिकों को आवास की सुविधायें प्रदान करने में रुचि लेते दिखाई दिये। नगर में भीड़ भाड़ नहीं है और अधिकतर श्रमिक, दो कमरों वाले मकानों में रहते हैं। मदुरा में भी आवास व्यवस्था प्रायः सन्तोषजनक पाई गई और आवास क्षेत्र में दो-दो पक्के घरों की पंक्तियाँ हैं जिनमें प्रत्येक परिवार को पर्याप्त सुविधा है। उनमें एक रहने के लिये कमरा, एक सोने के लिये कमरा, एक रसोई, एक भण्डार, एक आँगन, एक बरामदा तथा सामने थोड़ी खुली हुई जगह है। हर पंक्ति के लिये फ्लश शौचालय

तथा पानी के नल लगे हुये हैं। मकान का किराया केवल ८ रु० प्रति मास है और यह १० वर्ष के पश्चात् श्रमिक की अपनी सम्पत्ति हो जाता है। विद्यालय, बाजार तथा औषधालय की सुविधाओं की दृष्टि से आवास क्षेत्र आत्म-निर्भर है। नागपुर की एम्प्रेस मिल तथा बंगलौर की मिनर्वा सूती व ऊनी मिलों ने भी अपने कर्मचारियों के लिये आवास क्षेत्रों का निर्माण किया जिनकी व्यवस्थायें सन्तोषजनक हैं। चीनी उद्योग मालिकों ने ३० से ५०% तक कर्मचारियों को आवास सुविधायें प्रदान की। कागज, माचिस, रसायन, चर्म रंगाई, इंजीनियरिंग आदि फैक्टरी उद्योगों में केवल बड़े बड़े संस्थानों ने अपने श्रमिकों को आवास की सुविधायें प्रदान की, परन्तु ऐसे श्रमिकों की संख्या बहुत थोड़ी रही। कुछ गोदी कर्मचारियों (Dock Workers) को भी आवास की सुविधायें प्रदान की गई जिनकी संख्या साधारणतः ८ से १०% तक होती है।

अपनी स्थिति के कारण खान उद्योगों द्वारा अपने श्रमिकों को बड़ी संख्या में मकान दिये जाते थे। कोयला खानों में श्रमिकों को जो बिना किराये के मकान दिये जाते थे उन्हें 'धौड़ा' कहा जाता था। ऐसे प्रत्येक मकान में एक कमरा और एक बरामदा होता था। इनमें अधिकांश मकान एक दूसरे से सटे हुये होते थे। ऐसे प्रत्येक मकान में औसतन ६ व्यक्ति रहते थे। शौचालयों व मूत्रालयों के न होने के कारण इन मकानों के आस-पास का वातावरण आमतौर पर गन्दा रहता था। पीने का पानी एक आम टोंटी के नल से प्राप्त होता था। ऐसे एक नल पर लगभग ५०० व्यक्ति निर्भर रहते थे। इन नलों में भी पानी कुछ सीमित घण्टों में ही आता था। कपड़े धोने व नहाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसके लिये तालाब का पानी काम में लाया जाता था जो कि खानों में नलों द्वारा आता था। बरामदे या आँगन का उपयोग रसोईघर के रूप में किया जाता था। टाटा जैसी केवल कुछ बड़ी कोयला खानों में एक पृथक् रसोईघर तथा नहाने के स्थान की व्यवस्था थी।

कोलार की सोने की खानों के मालिकों ने अपने श्रमिकों के लिये स्वच्छ आवास-क्षेत्र प्रदान किये हैं। इनमें या तो एक कमरे वाले मकान हैं अथवा खिड़कियों से युक्त दो कमरे वाले, किन्तु उनमें से अधिकतर बाँस की टट्टियों द्वारा बनाये गये हैं। परन्तु जिन श्रमिकों को कम्पनी द्वारा मकान नहीं मिलते थे, वे अत्यन्त अस्वस्थता-पूर्ण स्थिति में रहते हैं।

मध्य प्रदेश में म० प्र० कच्चा मैंगनीज कम्पनी ने भी बाहर से आये हुये श्रमिकों को मकान प्रदान किये थे, जिनकी प्रतिशत संख्या विभिन्न खानों में ८ से १०० तक थी। इन मकानों की व्यवस्था विशेष सन्तोषजनक नहीं थी। बम्बई के शिवराजपुर सिंडिकेट ने भी अपने कर्मचारियों के लिये कुछ घर बनाने का कार्य हाथ में ले लिया था। फिर भी, आरम्भ में वह मानव के रहने के अयोग्य थे, अतः इनको गिरा दिया गया था। कच्चे लोहे की खानों में भी कम्पनी अथवा ठेकेदारों की ओर से थोड़े से श्रमिकों को आवास की सुविधायें दी गईं, जिनमें कम्पनी द्वारा

दिये गये क्वार्टर अच्छे थे। परन्तु यहाँ भी मकान पाने वाले श्रमिकों का प्रतिशत ६ से १०० तक था। अधिक की खानों में कुछ प्रतिशत श्रमिकों को जो खानों पर ही रहते थे आवास की सुविधायें दी गई थी। (खानों की आवास योजना के अन्तर्गत देखिये।)

खान क्षेत्रों में एक मुख्य कठिनाई ऐसी भूमि को प्राप्त करने की रही है जहाँ कि भूमि ठोस हो और जिस पर नीव रखी जा सके। यहाँ के अधिकतर श्रमिक प्रवासी हैं जो कि निकटवर्ती क्षेत्रों से आते हैं। खान केन्द्रों में आवास की एक विशेषता यह है कि एक ही मकान, कई श्रमिकों के नाम नियत (Allot) कर दिया जाता है जो पारी प्रणाली के कारण उसमें विभिन्न समय में रहते हैं। खान बोर्ड अब इस बात की अनुमति नहीं देते हैं।

बागान में मकान बिना किराये के प्रदान किये गये हैं। यह मिट्टी के प्लास्टर की दीवारों व फूस की छत से बने है। आवास के दृष्टिकोण से असम के बागान में व्यवस्था बड़ी असंतोषजनक है। नौबालयों का अभाव है सफाई की बड़ी असंतोष जनक दशा है तथा मलेरिया साधारण सी बात है। मकानों की टूट फूट स्वयं श्रमिकों से ही ठीक कराई जाती है। किसी भी मकान में खिड़की या बरामदा नहीं है। असम के चाय बागान में लगभग ६०% मकान कच्चे है। उनकी दीवारें बाँस की बनी है और बरसात में छतें टपकती हैं असम में एक बुराई यह थी कि श्रमिकों के क्वार्टरों में उनके सम्बन्धियों अथवा मित्रों के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रवेश पर रोक थी। बागान मालिक अपनी निजी सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकार का प्रयोग कर प्रवेश पर रोक लगाते थे। रॉयल श्रम आयोग ने इस बात पर विरोध प्रकट किया था और कहा था कि सभी बागान क्षेत्र जनता के लिये खुले होने चाहिये तथा मकानों की न्यूनतम आवश्यकताओं को निर्धारित करने के लिये स्वास्थ्य और कल्याण बोर्ड होने चाहिये। फिर भी, काफी समय तक बागान आम जनता के लिये बन्द रहे क्योंकि सरकार ने निजी सम्पत्ति में हस्तक्षेप करने को मना कर दिया था। बागान में श्रमिकों का संगठन भी कमजोर था।

बंगाल के 'द्वार' नामक बागान में मकान बैरकों की पंक्ति में बनाये गये हैं और साधारणतः प्रत्येक घर में अपना एक अहाता होता है। इनमें मिट्टी के घर भी हैं जिनमें ढांचा बांस का होता है। प्रकाश संवातन आदि के दृष्टिकोण से व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं है तथा अंधेरे नम और बिना संवातनों के होने के कारण तपेदिक की बीमारी आम है। दक्षिणी भारत के बागान में मकान साधारणतः ५ से १० कमरे वाली पंक्तियों में होते है जिनमें साधारणतः स्थान १०' x १२' अथवा १०' x १०' होता है। रहने के स्थान तथा रसोईघर में साधारणतया एक से अधिक परिवार साझेदार रहते है। सम्पूर्ण रूप में यहाँ पर भी अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। मैसूर और कुर्ग के कहवा बागान तथा ट्रावनकोर के रबड़ बागान में भी मकानों की ऐसी ही असंतोषजनक अवस्था है।

सीमेंट उद्योग में श्रमिकों को आवास की सुविधा प्रदान करने की जो योजनायें बनाई गई वह देश की सर्वोत्तम आवास योजनाओं में से थी। यहाँ पर मालिकों ने अपने श्रमिकों को आराम और सुविधा प्रदान करने के लिये क्वार्टरों के निर्माण में दूरदर्शिता का परिचय दिया था। सीमेंट के उद्योग में एक साधारण अकुशल श्रमिक को भी ऐसे क्वार्टर प्रदान किये गये थे जिनमें दो रहने के अच्छे कमरे, एक आँगन तथा पानी और सफाई का अलग से प्रबन्ध होता था। इसके अतिरिक्त हार्वेपत्ती गृह-निर्माण समिति ने औद्योगिक श्रमिकों के लिये सहकारी रूप से मकान बनाने का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया था। इसके द्वारा मदुरा मिल्स लिमिटेड (तमिलनाड) ने ६०० मकानों के एक पूर्ण आवास क्षेत्र का निर्माण किया जिसमें बिजली की रोशनी, पानी, नालियाँ, सड़क, पार्क, स्कूल, निगम, यातायात आदि की सभी सुविधायें थीं। इस क्षेत्र का प्रबंध एक सहकारी समिति के एक डायरेक्टरों के बोर्ड द्वारा किया जाता था जिसमें मिलों के श्रमिक सदस्य और श्रमिकों के एक एक प्रतिनिधि होते थे तथा जिलाधीश और मदुरा जिला बोर्ड के अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष सदस्य होते थे। प्रत्येक घर का मूल्य युद्ध से पूर्व की कीमतों के अनुसार ६०० रु० था और इस राशि का मासिक किश्तों के रूप में, जो साढ़े बारह साल तक फैली हुई थी, देने पर श्रमिक उसका स्वामी हो जाता था। इस योजना की सफलता का मुख्य कारण यह था कि मिलों के प्रबन्धकों ने इसमें वित्तीय सहायता दी थी और समिति को उसकी शेयर पूंजी और निर्माण के लिये एक बड़ा ऋण प्रदान किया था और पूंजीगत व चालू खर्चों को पूरा करने के लिये अनेक अनुदान भी प्रदान किये थे।

रेलवे कर्मचारियों के आवास के सम्बन्ध में रेलवे बोर्ड की नीति केवल उन्हीं श्रमिकों के आवास की व्यवस्था करने की रही है जिनको विशेष कारणों से कार्य के स्थान के निकट रहना पड़ता है, जैसे—चिकित्सा स्टाफ, स्टेशन स्टाफ, गाड़ियों के साथ जाने वाला स्टाफ, गाड़ियों और रेल की पटरियों की देखभाल करने वाला स्टाफ आदि। इसके अतिरिक्त उन लोगों के लिये भी मकानों की व्यवस्था की गई है जिनके लिये निजी सयोजकों ने मकान नहीं बनाये हैं। इसलिये वर्तमान आवास व्यवस्था रेलवे कर्मचारियों के लिये बहुत कम है। अतः अनेक श्रमिकों को निजी मकान मालिकों द्वारा निर्मित मकानों में रहना पड़ता है। श्रमिकों में सामान्य धारणा यह रही है कि सभी वर्ग के श्रमिकों को क्वार्टर मिलने चाहिये। ३१ मार्च १९५२ तक, तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिये २,८०,९८८ क्वार्टर बनाये जा चुके थे। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत रेलवे श्रमिकों के लिये ४०,००० नये क्वार्टर बनाये गये थे। उसके पश्चात् विभिन्न वर्षों में रेलवे कर्मचारियों के निम्नलिखित संख्या में क्वार्टर बनाये गये—१९५५-५६—८,६४५, १९५६-५७—९,६४५; १९५७-५८—१५,००६, १९५८-५९—११,४८१, १९५९-६०—११,१९६; १९६०-६१—१०,४७५, १९६१-६२—१३,०३९, १९६२-६३—१४,५६७, और

१९६३-६४–१४,७०४, रेलवे कर्मचारियों की तीन सहकारी आवास समितियाँ भी थी जिन्होंने १९६४ तक ११९ मकान बनाये थे।

नगरपालिकाओं में आवास सुविधाओं की मात्रा तथा प्रकृति पृथक्-पृथक् है। १५ प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों को मकान प्रदान नहीं किये जाते। आवास व्यवस्था में एक कमरा, एक रसोई तथा एक बरामदा होता है। आवास की यह सुविधा मुख्यतः रसोई, आग बुझाने, जल-कल तथा अस्पतालों के कर्मचारियों तक ही सीमित है। आवास भत्ता, सामान्यतः उनको दिया जाता है जिनको मकान नहीं दिये जाते। कुछ विशेष प्रकार के श्रमिकों को भी आवास भत्ता मिलता है। इसकी दर विभिन्न स्थानों पर पृथक्-पृथक् थी।

इस सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है कि देश में औद्योगिक श्रमिकों की आवास व्यवस्था वैसी नहीं रही जैसी कि होनी चाहिये। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, व्हिटले आयोग तथा रेग समिति की रिपोर्ट के बाद स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ। अधिकांश स्थानों पर श्रमिकों के आवास की दशायें इतनी शोचनीय थी कि कभी तो यह विश्वास भी नहीं होता था कि मानव प्राणी भी ऐसी दशाओं में रह सकते हैं। इन शोचनीय दशाओं को देखते हुए श्री मसानी के शब्द याद आ जाते हैं : "इस प्रकार की हृदयविदारक दशाओं का देखकर ही किसी ने कहा था, ईश्वर ने संसार और मनुष्य ने नगर बनाया', परन्तु शैतान ने गन्दी बस्ती बनाई।"

बुरी आवास समस्या के परिणाम

(Effect of Bad Housing Conditions)

इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि आवास की शोचनीय दशा श्रमिकों की कार्यकुशलता तथा स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है। अच्छे घरों का तात्पर्य पारिवारिक जीवन, सुख तथा उत्तम स्वास्थ्य से है, परन्तु बुरे मकान गन्दगी, बीमारी, शराबखोरी, व्यभिचार और अपराध की जड़ हैं। यदि आज भारत का औद्योगिक श्रमिक शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थ तथा अकुशल है तो मकानों की शोचनीय दशा उसके लिये अधिकतर उत्तरदायी है। मकान और स्वास्थ्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा ये दोनों श्रमिकों की औद्योगिक कार्यकुशलता पर प्रभाव डालते हैं। औद्योगिक नगरों में अंधेरे तथा बेहवादार क्वार्टरों में आवश्यकता से अधिक व्यक्तियों का रहना बाल-मृत्यु व क्षय रोग का एक महत्वपूर्ण कारण है। अस्वास्थ्यपूर्ण व अनाकर्षक मकानों की स्थिति श्रमिकों को इसके लिये भी बाध्य करती है कि वे अपने परिवारों को गाँव में छोड़ें और शहर में अकेले रहें। भीड़-भाड़ पारिवारिक जीवन के कभी अनुकूल नहीं हो सकती। क्योंकि स्त्री पुरुष दोनों को ही सभी कार्यों के लिये एक ही कमरे में रहना पड़ता है अतः अनेक औद्योगिक नगरों में रहने वाले श्रमिकों के बीच शालीनता का बना रहना असम्भव हो जाता है। जब श्रमिक अपने परिवार को नहीं ला पाते तो स्त्री व पुरुष की संख्या में असमानता होने के कारण वेश्यावृत्ति व शराबखोरी आदि जैसी अनेक गम्भीर सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

नगरों में आते समय श्रमिक प्राय नवयुवक होते हैं और वे शीघ्र ही इन बुराइयों के आसानी से शिकार हो जाते हैं। अनेक वेश्याये श्रमिकों के क्वाटरों के पास रहती हैं। औद्योगिक नगरों में उनका होना आवश्यक समझ लिया गया है। श्रमिक अनेक गन्दी बीमारियों का शिकार हो जाता है जो उसके गांव लौटने पर वहाँ पर भी फैल जाती है। ऐसी स्थिति में स्त्री-श्रमिकों के लिये नैतिक जीवन को बनाये रखना बहुत ही कठिन हो जाता है। बच्चे-स्त्री तो अपना आत्मसम्मान व सती व सती खो बैठता है। ऐसे वातावरण में अवश्य ही श्रमिकों की कार्य कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने इन शोचनीय दशाओं के विषय में कहा है—"भारत के औद्योगिक केन्द्रों की हजारों गन्दी बस्तियों में निम्नतम पशुता में पाशविक प्रवृत्तियाँ आ जाती हैं स्त्रियों का सतीत्व नष्ट होता है तथा बालकों के जीवन का आरम्भ में ही दूषित कर दिया जाता है।"[1]

अतः जब तक आवास की व्यवस्था में सुधार नहीं किया जाता तथा श्रमिकों को स्वस्थ और अच्छे वातावरण में नहीं रखा जाता हम उनसे यह आशा नहीं कर सकते कि वे अपनी कार्यकुशलता में वृद्धि करेंगे या अपने देश में सन्तुष्ट रहेंगे। पर्याप्त तथा बुरी आवास व्यवस्था औद्योगिक अशान्ति के विभिन्न कारणों में से एक मुख्य कारण है। मनुष्य की भोजन और वस्त्र के बाद तीसरी मूल आवश्यकता मकान की है। मकान ही श्रमिकों में शान्ति प्रेम और स्नेह की भावना उत्पन्न करता है। श्रमिक के मकान से उसकी अच्छी अवस्था का भली प्रकार पता लगाया जा सकता है। एक अच्छा घर केवल उसका व उसके पारिवारिक जीवन का ही केन्द्र नहीं है वरन् एक ऐसा स्थान है जहाँ वह व्यक्तिगत रूप से आत्मसम्मान व प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है और स्वच्छ तथा स्वास्थ्यपूर्ण तरीके से रहने के लाभ को समझ सकता है। श्रमिक के लिये उचित आवास व्यवस्था के बाद ही उससे यह आशा की जा सकती है कि वह अपने कार्य करने के स्थान पर शान्तिपूर्वक रहेगा और उत्पादन वृद्धि में अपना अधिकतम योगदान देगा। इसीलिये सरकारी विकास योजनाओं में आवास को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

आवास व्यवस्था की राजकीय योजनायें
(Government Housing Schemes)

औद्योगिक श्रमिकों की स्वास्थ्य एवं आवास सम्बन्धी दशाओं में सुधार किये जाने के महत्व पर काफी समय पूर्व से ही जोर दिया जाता रहा है। सबसे पहले सन् १९१८ में औद्योगिक आयोग द्वारा इस पर जोर दिया गया था जिसने यह सुझाव दिया था कि श्रमिकों को आवास सम्बन्धी सुविधायें मुहैय्या कराने के लिये मालिकों के दायित्व पर स्थानीय सरकारों को भूमि का अनिवार्य रूप से अधिग्रहण करना चाहिये। इसके बाद भारत में शाही श्रम आयोग (ह्विटले आयोग) ने सन् १९३१

1 R Muke ee Ind an Wo k ng Class page 320

में इस सम्बन्ध में आवाज उठाई और औद्योगिक श्रमिकों की आवास सम्बन्धी दशाओं में सुधार करने के बारे में अपनी सिफारिशें दीं। इन सिफारिशों के कारण ही सन् १८९४ में भूमि अधिग्रहण अधिनियम में सन् १९३३ में सुधार किया गया। इस संशोधन के द्वारा किसी भी कम्पनी को यह अधिकार प्राप्त हो गया था कि वह अपने कर्मचारियों के लिये मकानों का निर्माण करने हेतु अथवा इस उद्देश्य से सम्बन्धित अन्य सुख-सुविधाएँ मुहैय्या कराने के लिए किसी भी भूमि का अनिवार्य रूप से अधिग्रहण कर सकती है। इसके बाद बम्बई कपड़ा श्रम जाँच समिति तथा कानपुर, बिहार व उत्तर प्रदेश की श्रम जाँच समितियों ने अपनी रिपोर्टों में औद्योगिक क्षेत्रों की शोचनीय आवास दशाओं का उल्लेख किया और उनमें सुधार करने के लिये सिफारिशें प्रस्तुत कीं। सन् १९४६ में श्रम अनुसंधान समिति (रेग समिति) ने यह सुझाव दिया कि राज्य सरकारों को चाहिये कि वे आवास के लिये आवश्यक वित्त की व्यवस्था करें, किन्तु मकानों पर होने वाला आवर्ती व्यय (recurring expenses) सम्बन्धित पक्षों को ही करना चाहिये। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि केन्द्र तथा राज्यों में त्रिपक्षीय आधार पर सांविधिक परिषदों (Statutory Boards) का निर्माण किया जाये और ये परिषदें औद्योगिक आवास नीति तथा उससे सम्बद्ध समस्याओं के समाधान की खोज करें। सन् १९४६ में आवास सर्वेक्षण तथा विकास समिति (भोर समिति) ने इस बात पर जोर दिया कि आवास समस्या के सन्तोषजनक समाधान के लिये आवश्यकता इस बात की है कि दीर्घकालीन आवास नीति बनाई जाये।

जहाँ तक सार्वजनिक क्षेत्र का प्रश्न है श्रमिकों के आवास की दशा सन्तोषजनक है क्योंकि जैसे ही किसी उद्योग की स्थापना का निर्णय किया जाता है, श्रमिकों की आवास व्यवस्था के लिये भी आवश्यक वित्तीय प्रबन्ध कर दिया जाता है। भारत सरकार उद्योगपतियों को श्रमिकों के मकान बनाने के लिये प्रोत्साहित कर रही है। इस उद्देश्य के लिये जो पहली योजना बनी वह १९४६ में ऐसी समिति की सिफारिशों पर बनी थी जो कि औद्योगिक आवास के विषय पर स्थायी श्रम समिति द्वारा स्थापित की गई थी। इसके अनुसार सरकार लागत का साढ़े बारह प्रतिशत (अधिक से अधिक २०० रुपये तक) प्रत्येक मकान के लिये सहायता के रूप में देने को तैयार थी, यदि राज्य सरकार भी इतनी धनराशि देने को तैयार हो। यह सहायता पूर्णतः अपर्याप्त थी। अप्रैल १९४८ में सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के अन्तर्गत श्रमिकों के लिये १० वर्षों में १० लाख मकान बनाने का निर्णय किया। १९४९ में श्रम मन्त्रालय ने एक योजना का निर्माण किया जिसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को अनुमोदित आवास योजनाओं के लिये और निजी मालिकों को भी ऐसी आवास योजनाओं के लिये, जिनका समर्थन उनकी राज्य सरकारों ने किया हो, लागत के २/३ भाग तक ब्याज-मुक्त ऋण देने की व्यवस्था थी। लागत व्यय के शेष १/३ भाग की व्यवस्था स्वयं राज्य सरकार अथवा मालिकों को करनी थी। यह योजना भी असन्तोषजनक सिद्ध

नहीं हुई क्योंकि राज्य सरकारों को दिये गये धन का प्रयोग नहीं किया गया। सन् १९५२ में एक उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना बनाई गई जिसके अन्तर्गत केन्द्र सरकार को भूमि तथा भवन की लागत का २०% उपदान के रूप में देना था बशर्ते की शेष धन राशि मालिक दे। परन्तु इस सम्बन्ध में मालिकों का रुख उत्साहवर्धक नहीं था। अतः भारत सरकार ने राज्य सरकारों, मालिकों तथा श्रमिकों को मकान बनवाने के लिए अधिक उदार शर्तों पर वित्तीय सहायता देने का निश्चय किया। परिणामस्वरूप, प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में की गई सिफारिशों के अनुसार सितम्बर १९५२ में एक नई उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना लागू की गई।

सरकार की उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना

(Government's Subsidised Industrial Housing Scheme)

यह योजना सितम्बर १९५२ में लागू हुई। अप्रैल १९६६ में, इस योजना को औद्योगिक श्रमिकों एवं समाज के आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिये एकीकृत उपदान प्राप्त आवास योजना के रूप में बदल दिया गया। इसके अन्तर्गत, भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों को और उनके माध्यम से अन्य ऐसी मान्यता प्राप्त एजेंसियों को दीर्घकालीन ब्याजमूलक ऋणों व उपदानों के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है जैसे कि वैधानिक आवास बोर्ड, स्थानीय निकाय, औद्योगिक मालिकों तथा श्रमिकों की सहकारी आवास समितियाँ। योजना के अन्तर्गत (क) सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम के अधीन आने वाले औद्योगिक श्रमिकों, (ख) सन् १९५२ के खान अधिनियम की धारा २ (ख) की परिधि में आने वाले खान श्रमिकों (कोयला, लोहा तथा अभ्रक खानों के श्रमिकों को छोड़कर) तथा (ग) समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर अन्य वर्गों के लिये मकान बनाने की व्यवस्था है। इस योजना के अन्तर्गत, केन्द्र अथवा राज्य सरकार के पूर्ण अथवा आंशिक स्वामित्व वाले उन निगमों अथवा कम्पनियों को भी सहायता पाने का अधिकार है जिन पर कि आयकर लगता हो। इस योजना के लाभ केवल उन्हीं श्रमिकों को प्राप्त होते हैं जिनकी मासिक आय ५०० रु० से अधिक न हो (प्रारम्भ में यह राशि ३५० रु० थी। बशर्ते कि ३५१ व ५०० रु० के बीच के मासिक आय वर्ग में मकान पाने वालों द्वारा कुछ अतिरिक्त भुगतान किया जाये। सन् १९६४ में, यह भी निश्चय किया गया था जिस श्रमिक को मकान अलाट कर दिया जायेगा, वह उस मकान को मजदूरी की सीमा को पार करने के बाद भी रख सकेगा। परन्तु इस स्थिति में किराये के रूप में दिया जाने वाला उपदान बराबर घटता जाता है। जिस श्रमिक को मकान अलाट किया गया हो, यदि मजदूरी सीमा को पार करने के बाद उसे 'अल्प आय वर्ग आवास योजना' के अन्तर्गत अन्य मकान देने का प्रस्ताव किया जाये और उसे लेने से वह इन्कार कर देता तो उसे पहले मकान से बेदखल किया जा सकता है।

केन्द्रीय वित्तीय सहायता भूमि की कीमत सहित, मकान की अनुमोदित निर्माण लागत पर निर्भर होती है जिसका विवरण इस प्रकार है —

मान्यताप्राप्त अभिकरण (Agency)	ऋण	उपदान
१ राज्य सरकारें, आवास बोर्ड तथा स्थानीय निकाय	५०%	५०%
२ औद्योगिक मालिक	५०%	२५%
३ पात्र श्रमिकों की रजिस्टर्ड सहकारी समितियाँ	६५%	२५%

प्रारम्भ में, मालिकों तथा सहकारी समितियों को दिये जाने वाले कर्जों की
मात्रा २५% थी जो कि कुछ मामलों में बढ़ाकर ३७½% की जा सकती थी, किन्तु
इस बढ़े हुए १२½% पर अधिक ब्याज लिया जाता था। श्रमिकों की सहकारी
समितियों की स्थिति में ऋण की मात्रा बढ़ाकर सन् १९६३ में ५०% और फिर सन्
१९५९ में ६५% तक कर दी गई थी और मालिकों की स्थिति में यह मात्रा बढ़ाकर
सन् १९५८ में ५०% कर दी गई थी। इस प्रकार, श्रमिकों की सहकारी समितियों
के लिए वित्तीय सहायता की मात्रा ९०% हो जाती है। शेष १०% ऋण श्रमिक
अपनी निर्वाह निधि से ले सकता है।

पहले, ऋणों की वापसी राज्य सरकारों को २५ वर्ष में और मालिकों व
सहकारी समितियों को १५ वर्ष में करनी होती थी। अब राज्य सरकारों तथा सह-
कारी समितियों को तो ये ऋण ३४ वार्षिक किश्तों में वापिस करने होते हैं और
औद्योगिक मालिकों को १५ से २५ तक की वार्षिक किश्तों में। ऋणों पर ब्याज की
दर का आधार 'न लाभ न हानि' है। (यह दर सरकारी निर्माण के बारे में ५$\frac{1}{8}$%
और अन्य निर्माण के सम्बन्ध में ५$\frac{3}{8}$% है)।

राज्य सरकारों, आवास बोर्डों, स्थानीय निकायों तथा औद्योगिक श्रमिकों
की सहकारी समितियों द्वारा किराये पर उठाने के लिए जो मकान बनवाये जाते हैं,
पात्र श्रमिकों को किराया-खरीद नियम के आधार पर बेचने की एक योजना भी लागू
की गई थी। पहले यह निश्चय किया था कि यदि किसी श्रमिक ने १५ वर्ष नौकरी
कर ली है और वह ५ वर्ष से मकान में रह रहा है तो सहकारी समिति द्वारा बनाये
गये मकान का स्वामित्व श्रमिक के पास रह सकता है। सन् १९५९ में ये दोनों
अवधियाँ घटाकर क्रमशः १० वर्ष और ३ वर्ष कर दी गई थी। सन् १९६१ में यह
निश्चय किया गया था कि किराया खरीद नियम के अन्तर्गत बनाये गये मकान को,
कोई भी पात्र श्रमिक मकान की लागत के ७५% भाग का सरल किश्तों में भुगतान
करके कभी भी खरीद सकता है। इस प्रकार, मकान की लागत का २५% भाग उसे
उपदान के रूप में प्राप्त हो जाता है। चूंकि एक बार जब कोई श्रमिक इस रीति से
मकान का स्वामित्व प्राप्त कर लेता था तो वह तब भी उस पर कब्जा बनाये रखता
था जबकि औद्योगिक श्रमिक के रूप में उसकी सेवाएँ समाप्त हो जाती थी, अतः इस
मामले पर पुनर्विचार किया गया और नवम्बर १९६७ में आवास मन्त्रियों के सम्मेलन

की सिफारिशो के फलस्वरूप यह निश्चय किया गया कि औद्योगिक मकानो की बिक्री को सामान्यत हतोत्साहित ही किया जाना चाहिए, और यदि अपवादभूत परिस्थितियो मे इसकी अनुमति दी भी जाय तो यह कार्य मकान की पूर्ण लागत के भुगतान के पश्चात् ही किया जाना चाहिए तथा २५% उपदान का लाभ उस नही दिया जाना चाहिये। फलस्वरूप, मकानो की बिक्री पूर्णत प्रतिबन्धित कर दी गई। परन्तु इससे अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई। उदाहरण के लिए सेवा निवृत्त श्रमिको से अथवा आय सीमा को लाघने वाले श्रमिको से मकान का कब्जा वापिस लेना कठिन हो गया, अनेको ने उपदान प्राप्त किराये का भुगतान तक करना भी बन्द कर दिया तथा अवशिष्ट किराये की राशि बहुत बढ गई। अत सन् १९६८ मे सरकार ने मकानो के स्वामित्व की बिक्री उन किरायेदारो को करने का निश्चय किया जो मकान की मूल लागत का ८० प्रतिशत दे तथा सभी अवशिष्ट किराये व अन्य राशि का भुगतान कर दे। मकान की बिक्री की तिथि से ६० वर्ष तक उसे पुन नही बेचा जा सकता।

योजना के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि खुले विकसित प्लाट, केवल नीव पडे हुए मकान पक्के मकान, हास्टल, शयनशाला आदि भी बनाये जा सकते है। राज्य सरकारे भी मालिको के उत्तरदायित्व पर श्रमिको के लिए मकान बनवा सकती है बशर्ते कि मालिक लागत का २५% भाग अग्रिम रूप मे दे दे।

उपदान अथवा ऋण देने से पूर्व प्रत्येक योजना पर सरकार द्वारा विचार किया जाता है। वित्तीय सहायता निर्माण के अनुसार ३ किश्तो मे दी जाती है। राज्य सरकारें भी मकान बनाने की योजनाओं को मजूर कर सकती हैं। १९५३ मे यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक क्षेत्र के कुल मकानो म से १० प्रतिशत तक दो कमरे वाले थे, जिनमे प्रत्येक मकान के लिए एक रसोई, एक बरामदा तथा स्नानघर, एक पानी का नल तथा एक शौचालय, न्यूनतम सुविधाये थी। बडे शहरो मे भूमि तथा निर्माण की लागत के दृष्टिकोण से विभिन्न निर्माण सस्थाओ द्वारा बनाये जाने वाले मकानो की लागत सीमा भी निर्धारित कर दी गई थी। इन लागत सीमाओ म समय-समय पर सशोधन हुये है। उदाहरण के लिए, इमारती सामान तथा विकसित जमीन की लागत बढ जाने के कारण यह लागत सीमा भी अप्रैल १९६१ मे १० प्रतिशत और अप्रैल १९५४ म १५% बढा दी गई, परन्तु इस बात की भी व्यवस्था है कि यदि लागत बढाने से किराया म वृद्धि हो जाती है तो किराया को नही बढने दिया जायेगा और तीन साल तक किराये की कमी पूरी करने के लिये अतिरिक्त सहायता दी जायेगी।

योजना के अन्तर्गत मकानो की नियत उच्चतम लागतो (ceiling costs) तथा उपदान के रूप मे दिये जाने वाले किराया का विवरण निम्न प्रकार है —

स्थिति	नियत उच्चतम लागत	उपदान के रूप में दिया जाने वाला मासिक किराया
१ बम्बई, कलकत्ता तथा उनके औद्योगिक क्षेत्रो से बाहर के स्थान	१,८५० रु० से ८,०५० रु० तक	७ रु० से ३२ रु० तक
२. बम्बई कलकत्ता तथा उनके औद्योगिक क्षेत्रों के अन्दर के स्थान	२,८०० रु० से १०,००० रु० तक	११ रु० ५० पै० से ४८ रु० ५० पै० तक

विभिन्न प्रकार के मकानों के लिए नियत उच्चतम लागतें तथा उपदान के रूप में दिये जाने वाले किराये (कोष्टक में) निम्न प्रकार हैं —

(१) खुले विकसित प्लाट—१,८५० रु० (७ रु० प्रति मास), (२) ढाँचे के रूप में मकान—२,६०० रु० (१ रु० ५० पैसे प्रति मास), (३) छोटे दो कमरे वाले मकान (एक मंजिले)—४,८६० रु० (२० रु० प्रति मास), (४) दो मंजिले मकान—५,१०० रु० (२१ रु० प्रति मास), (५) बहुमंजिले मकान—६,७५० रु० (२६ रु० प्रति मास), (६) नियमित दो कमरों वाले मकान (एक मंजिले)—५,६०० रु० (२४ रु० प्रति मास), (७) दो मंजिले मकान—६,१५० रु० (२६ रु० प्रति मास), (८) बहुमंजिले मकान—८,०५० रु० (३२ रु० प्रति मास)। एक से चार तक की तथा सातवीं मद के सम्बन्ध में, ३ लाख से अधिक आबादी वाले नगरों में प्रति मकान की कुल नियत उच्चतम लागत में ११०० रु० की वृद्धि की जा सकती है और १ से ३ लाख तक की आबादी वाले नगरों में प्रति मकान ४५० रु० की।

दिसम्बर १६७८ के अन्त तक, इस योजना के अधीन २,४१,१५८ मकानों के निर्माण की अनुमति दी गई थी जिसमें से १,८६,१०२ मकान बनाये थे।

३१ दिसम्बर १६७१ तक विभिन्न एजेन्सियों के लिये जो वित्तीय सहायता स्वीकार की गई, उसका कुछ विवरण इस प्रकार है —

एजेन्सी	स्वीकृत राशि (करोड रु० में)			स्वीकृत मकानों की सख्या	पूर्ण रूप से निर्मित मकानों की सख्या
	ऋण	उपदान	योग		
१ राज्य सरकार	३६ ४७	३७ २०	७६ ६७	१,६३,६६७	१,३६,०१२
२ निजी मालिक	८ ३७	५ ११	१३ ४८	४७,५०१	३४,४६८
३ सहकारी समितियाँ	२ ३१	० ६४	३ २५	८ ४६४	५,७६५
योग	५६ १५	४३ २५	६६ ४३[1]	२,४६,६६२	१,७६,२७५

उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना (अब एकीकृत योजना की प्रगति सन्तोषजनक नहीं रही है तथा निर्धारित लक्ष्यों के मुकाबले इसकी प्राप्तियाँ एवं

१. इस राशि में दिल्ली, चण्डीगढ तथा दादरा व नगर हवेली में किया गया ३ ०३ करोड रु० का प्रत्यक्ष केन्द्रीय व्यय भी सम्मिलित है।

सफलताएँ बहुत कम रही हैं। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में औद्योगिक आवास के केवल १३.१६ करोड़ रु० ही व्यय किये गये जब कि इस कार्य के लिए ३८.५ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। इस अवधि में केवल ४३,८३४ मकान ही बनाये जा सके। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में मकानों के निर्माण के लिये ४५ करोड़ रु० की व्यवस्था थी बाद में यह राशि काट कर २३ करोड़ रु० कर दी गई थी। द्वितीय आयोजना के अन्त तक इस योजना के अधीन ४५ करोड़ रु० की लागत में १,४०,००० मकान बनाने की स्वीकृति दी गई थी किन्तु इनमें से ५६,१६६ मकान ही बन सके थे और विभिन्न निर्माण संस्थाओं को ३५.७१ करोड़ रु० मकान बनाने के लिये दिये जा चुके थे। तृतीय आयोजना में योजना के अन्तर्गत २९.३ करोड़ रु० की लागत में ७३ हजार मकान बनाने की व्यवस्था की गई थी परन्तु इस मद में केवल २२.४० करोड़ रु० ही व्यय किया जा सका। सन् १९६८–६९ के अन्त तक बने हुये मकानों की संख्या केवल १,६५,६२३ तक ही पहुँच सकी थी। अन्य शब्दों में तृतीय आयोजना की अवधि में और सन् १९६८–६९ तक केवल ६५,६२३ मकान ही बने थे। चौथी आयोजना में मकानों के निर्माण के लिए १७०.२ करोड़ रु० व्यय करने की व्यवस्था की गई थी। इसमें से १२४.४ करोड़ रु० राज्य और संघ शासित क्षेत्रों के लिए तथा ४७.८ करोड़ रु० केन्द्रीय क्षेत्र के लिये थे। १२४.४ करोड़ रु० की इस राशि में से उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजना पर २१ करोड़ रु० का सम्भावित व्यय हुआ था और मार्च, १९७३ के अन्त तक १६,३४३ मकान बन चुके थे। पाँचवीं आयोजना की सन् १९७४–७६ की अवधि में इस योजना के अन्तर्गत केवल १७४२ मकान ही बने थे।

योजना के अधीन मकानों के निर्माण में जो कम प्रगति हुई है, उसकी श्रम सम्मेलनों तथा आवास मन्त्री सम्मेलनों में कटु आलोचना हुई है। यही नहीं, राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी इसकी तीव्र आलोचना की है। इस धीमी प्रगति का मुख्य कारण यह था कि राज्य सरकारों ने आवास योजनाओं को अन्य विकास योजनाओं के मुकाबले निम्न प्राथमिकता दी और वे अनुदानों को तथा अन्य कार्यों से हटाकर मकान-निर्माण के लिये दी गई धनराशियों का उपयोग करने में भी असफल रहीं। आवास योजना की प्रगति के मार्ग में आने वाली अन्य कठिनाइयाँ थीं—शहरी क्षेत्रों में विकसित भूमि का अभाव, भवन-निर्माण सामग्री की ऊँची लागत तथा श्रमिकों में उपदान प्राप्त किराया तक को अदा करने की क्षमता का अभाव। श्रमिक नये मकानों में जाने के प्रति बड़े उदासीन पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि नये मकानों का किराया उनके लिये अधिक होता है तथा नये मकान उनके कार्य-स्थल से दूर होते हैं। परिणाम यह हुआ है कि आवास योजना के अधीन राज्यों द्वारा बनाये गये अनेक मकान या तो खाली पड़े रहते हैं अथवा आम जनता को अलाट कर दिये जाते हैं। यही नहीं, जैसा कि ऊपर के आँकड़ों से पता चलता है, आवास योजना के प्रति मालिकों तथा सहकारी समितियों का रुख बड़ा निराशा-

जनक रहा है (दिसम्बर १९७१ तक आवास योजना के अन्तर्गत स्वीकृत ९६ ४५ करोड रु० की कुल सहायता म राज्य सरकारो का ७६ ६७ करोड रु० था जबकि मालिकों का भाग १३ ४८ करोड रु० और सहकारी समितियों का केवल ३ २५ करोड रु० ही था)। बात यह है कि श्रमिकों की सहकारी समितियाँ सुसंगठित नही होती और श्रमिकों के लिये मकानो की लागत का १०प्रतिशत भाग तक देना सम्भव नही होता। उधर, मालिक निर्माण की लागत का २५ प्रतिशत धन लगाने तथा अपनी निधि को उत्पादक कार्यों से अनुत्पादक कार्यों मे लगाने के इच्छुक नही होते। कुछ स्थानो पर, श्रमिक सगठनो ने भी मालिकों द्वारा बनाये गये मकानो पर उनके पूर्ण स्वामित्व का विरोध किया है जबकि मकानो की लागत का २५ प्रतिशत भाग उपदान के रूप मे और ५० प्रतिशत ऋण के रूप में उन्हें (मालिको को)सरकार से प्राप्त होता है। इसी कारण मालिक आवास योजनाओ के प्रति उदासीन रहते है क्योंकि वे जानते हैं कि श्रमिकों के असन्तोष के लिये यह एक नया कारण बन जायेगा। मालिकों द्वारा इस सम्बन्ध म जो अन्य कठिनाइया अनुभव की गई है वे हैं[1] —मकानो की नियत उच्चतम लागत (ceiling cost) का कम होना, उपयुक्त दामो पर भूमि का अधिग्रहण करने मे असमर्थता, बनाये जाने वाले मकानो के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर जिनके कारण श्रमिकों के लिये उपदानप्राप्त किराया तक अदा करना कठिन होता है श्रमिकों से लिये जाने वाले किराये पर औद्योगिक न्यायाधिकरणो द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध, बीमे की ऊँची लागतें कानूनी औपचारिकताय पूर्ण करने मे होने वाली देरी औद्योगिक आवास गृहो पर नगरपालिका के अत्यधिक कर, आवश्यक भवन निर्माण सामग्री की अनुपलब्धता और अनधिकृत व्यक्तियो से मकान खाली कराने मे असमर्थता।

यह सुझाव दिया जाता है कि प्रशासन सम्बन्धी वैधानिक तथा सगठनात्मक कठिनाइयो को दूर करना चाहिये और मकान बनाने म सहकारिता को प्रोत्साहन देना चाहिये तथा श्रमिकों को इस बात के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये कि वे अपने लिये बनाये गये मकानो मे आ जाये। यदि मालिक अपने श्रमिकों के लिये मकान बनाने के लिये तैयार नही है तो राज्य सरकारें मकान बनाकर मालिकों को दे दें और उनके अशदान का २५ प्रतिशत भाग उनसे तत्काल ले लें। यह व्यवस्था अब कर दी गई है। राज्य सरकारें मकानो के साथ साथ अन्य सुविधायें प्रदान करने के लिये अनुदान का ५ प्रतिशत भाग व्यय कर सकती है। अप्रैल १९६ म, स्थायी श्रम समिति ने इस बात की भी सिफारिश की थी कि विभिन्न राज्यो म जो विधान बने हुए हैं उनमे संशोधन होना चाहिये ताकि भूमि क अधिग्रहण आदि मे दफ्तरी किया विधियो द्वारा जो विलम्ब होता है, उसे दूर किया जा सके तथा राज्यो के सहकारिता विभाग व प्रशासन म सुधार होना चाहिये ताकि सहकारी आवास योजनाओ की प्रगति तीव्र हो सके। तृतीय पचवर्षीय आयोजना मे कहा गया

१ राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट, पृष्ठ १५०।

से लिया है, तब योजना को लागू करने में पूर्ण सहयोग दिया जावेगा और श्रमिकों को पर्याप्त आवास प्रदान करने में मालिक अपने उत्तरदायित्व को समझें।

अन्य आवास योजनाएं (Other Housing Schemes)

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि सरकार ने नवम्बर सन् १९५४ में कम आय वाले व्यक्तियों के लिये भी एक आवास योजना (Low Income Group Housing Scheme) बनाई थी। इस योजना के अन्तर्गत मुख्यत उन व्यक्तियों को सहायता दी जाती थी जिनकी वार्षिक आय ६,००० रुपये से अधिक नहीं थी। सन् १९६७ में वार्षिक आय की यह सीमा बढ़ाकर ७,२०० रु० कर दी गई थी। ऋण राज्यों द्वारा दिये जाते हैं और यह मकान की भूमि सहित लागत के ८० प्रतिशत से अधिक नहीं होते तथा यह राशि अधिक से अधिक १०,००० रुपये हो सकती है। यह सीमा बढ़ाकर अब १८,५०० रुपये कर दी गई है। ऋण ३० साल तक किश्तों में ४½ प्रतिशत ब्याज की दर पर वापिस किये जायेंगे। इस ब्याज के अतिरिक्त प्रशासनिक व्यय भी लिया जा सकता है परन्तु वह ½ प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। इस योजना के लिये तृतीय आयोजना में ३५.२ करोड़ रुपये तथा चौथी आयोजना में ३५.८० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। दिसम्बर १९७८ के अन्त तक, इस योजना के अन्तर्गत ४,१७,०४० मकानों के निर्माण के लिये स्वीकृति दी गई थी जिनमें से ३,२८,०६६ मकान निर्मित हो चुके थे।

उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजना तथा कम आय वाले व्यक्तियों के लिये आवास योजना (जो क्रमशः १९५२ और १९५४ में लागू हुई) के अतिरिक्त कई अन्य आवास योजनायें भी चालू हैं। इनमें से ४ निम्नलिखित हैं—(१) अप्रैल १९५६ से बागान श्रमिक आवास योजना, (२) मई १९५६ से गन्दी बस्तियों की सफाई और सुधार योजना, (दिल्ली में झुग्गी और झोंपडी निष्कासन योजना भी है), (३) अक्टूबर १९५७ से ग्राम आवास योजना, तथा (४) अक्टूबर १९५९ से भूमि अधिग्रहण (Acquisition) तथा विकास (Development) योजना। प्रथम दो का उल्लेख तो इसी अध्याय में किया गया है और तीसरी योजना का उल्लेख कृषि श्रमिक के अध्याय में किया गया है। चौथी योजना भूमि अधिग्रहण और विकास योजना है। इसका तात्पर्य यह है कि बड़े-बड़े नगरों में सरकारें अत्यधिक मात्रा में भूमि अधिग्रहण करें और उसका विकास करके छोटे-छोटे टुकड़ों में उचित मूल्य पर लोगों को बेच दें। दूसरी आयोजना में राज्यों को इसके लिए २.६० करोड़ रुपये ऋण के रूप में दिये जाने की व्यवस्था थी परन्तु राज्य १५ करोड़ रुपये वचनबद्ध हो सकने थे। किन्तु राज्यों ने केवल २.२ करोड़ रुपये लिए। तीसरी आयोजना में इसके लिए ६.८ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई और चौथी आयोजना में १६.१० करोड़ रुपये की। इस योजना की वित्तीय व्यवस्था अधिकांशतः जीवन बीमा निगम की निधियों में से की गई है। दिसम्बर, १९७८ के अन्त तक, लगभग ३२,७७३ एकड़

भूमि अधिगृहीत की गई थी और १६ ४८७ एकड़ भूमि विभिन्न राज्य सरकारों-द्वारा विकसित की गयी थी।

दो अन्य आवास योजनाओं के लिए जीवन बीमा निगम द्वारा वित्तीय सहायता दी जाती है। जीवन बीमा निगम राज्य सरकारों को ऋण देती है तथा राज्य सरकार मकान बनाने वाले व्यक्तियों को फिर ऋण प्रदान करती हैं। यह योजनाएं १९५६ में लागू की गई। एक तो मध्य वर्ग आय आवास योजना (Middle Income Group Housing Scheme) है। इसका उद्देश्य उन व्यक्तियों के लिए मकान बनाने में सहायता देना है जिनकी आय ६,००१ रुपये तथा १८ ००० रु० प्रतिवर्ष के बीच में होती है। व्यक्तियों तथा सहकारी समितियों को प्रत्येक मकान पर लागत का ८०% परन्तु २५,००० रुपये तक ऋण ५½% ब्याज पर दिया जा सकता है। सितम्बर १९५८ के अन्त तक ११,४४७ मकान बनाने के लिए ऋण स्वीकृत किया गया था और ६१२१० मकान बनकर तैयार हुए थे। दूसरी योजना सरकारी कर्मचारी किराया सम्बन्धी आवास योजना (Rental Housing Scheme for Government Employees) है। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को अपने कर्मचारियों के लिए ऋण दिया जाता है। यह ऋण २० किस्तों में वापिस किया जा सकता है और इस पर ब्याज की दर ५% प्रतिवर्ष है। दिसम्बर, १९७८ के अन्त तक, इस योजना के अन्तर्गत ३१ ०६३ मकान बन कर तैयार हो चुके थे। केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियों को मकान बनाने अथवा खरीदने के लिये आवास निर्माण अग्रिम राशि योजना (House Building Advance Scheme) के अन्तर्गत भी धन देती है। यह ऋण कर्मचारी के २४ मास के वेतन के बराबर, परन्तु अधिक से अधिक ३५ ००० रु० तक हो सकता है। १९७७-७८ के अन्त तक, ३७ ६४ करोड़ रु० के ऋण के लिए १८,६४१ प्रार्थना पत्र स्वीकार किये जा चुके थे।

सरकार ने आवास विषय पर विभिन्न विचारों और अनुभव से अवगत कराने के हेतु १९५४ में एक अन्तर्राष्ट्रीय कम-लागत-आवास प्रदर्शनी, एक आवास तथा सामुदायिक सुधार पर संयुक्त राष्ट्र-संघ गोष्ठी, तथा आवास व नगर नियोजन के अन्तर्राष्ट्रीय संगम के क्षेत्रीय सम्मेलन का आयोजन किया था। १९५४ में एक राष्ट्रीय भवन निर्माण संस्था, वैज्ञानिक संस्थाओं द्वारा सस्ते मकानों के निर्माण के अनुसंधानार्थ, स्थापित की गई। यह संस्था सस्ते मकान बनाने के तरीके व नमूने खोजती है और इस सम्बन्ध में उपयोगी सूचनाएं एकत्र करती है। यह संस्था उन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से भी सम्पर्क रखती है जो कि इस ही कार्य करते हैं। अक्टूबर १९६० में इस संस्था में सामाजिक-आर्थिक विभाग की भी स्थापना की गई है जो कि आवास तथा भवन निर्माण सम्बन्धी आंकड़े एकत्र करता है। इस संस्था ने सितम्बर १९६१ में नई दिल्ली में आवास सहकारी समितियों पर एक परिसंवाद (Symposium) का आयोजन किया। यह संस्था भवन विज्ञान तथा अन्य सम्बन्धित विषयों पर साहित्य भी छापती है और विभिन्न इंजीनियरिंग संस्थानों में जो ग्रामीण

आवास सम्बन्धी अनुसंधान हो रहा है तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा रही है, उसका भी यह संस्था समन्वय करती है। राज्य सरकारों, आवास-बोर्डों तथा श्रमिकों व मालिकों के संघों को केन्द्रीय निर्माण आवास तथा पूर्ति मन्त्रालय का विशेष तकनीकी विभाग सदैव उचित रूप-रेखा व योजना की विशेषताओं के लिये परामर्श देने को प्रस्तुत रहता है। ग्रामीण आवास के अनुसंधान, प्रशिक्षण तथा विस्तार के लिए इस संस्था ने बंगलौर, कलकत्ता, आनन्द, चण्डीगढ़ तथा नई दिल्ली में पाँच क्षेत्रीय ग्रामीण आवास कक्ष चालू किये हुए हैं। निर्माण भवन नई दिल्ली में इसने एक स्थायी भवन प्रदर्शनी की भी स्थापना की है। यह संस्था 'इकेफे' (ECAFE) क्षेत्र के लिए "संयुक्त राष्ट्र क्षेत्रीय आवास केन्द्र" के रूप में भी कार्य करती है।

अक्टूबर १६७१ में, ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक भूमिहीन श्रमिक को मकान बनाने के लिए १०० वर्ग गज भूमि मुफ्त देने की एक केन्द्रीय योजना लागू की गई थी। इसका विवेचन 'कृषि श्रमिक' नामक अध्याय में किया गया है। गन्दी बस्तियों की सफाई की योजनाओं तथा गन्दी बस्तियों में पर्यावरण सुधार के सम्बन्ध में पश्चिमी बंगाल में जो काम हुआ है, उसका विवेचन गन्दी बस्तियों की समस्याओं के अन्तर्गत अगले पृष्ठों में किया गया है। देश में आयोजनाबद्ध शहरी विकास का कार्य अब राष्ट्रीय आयोजन के एक अंग के रूप में ही किया जा रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य सरकारों ने बड़े शहरों के विकास की विशेष योजनायें बनाई हैं। ५२ नगरों के विकास की योजनाओं को मूर्तरूप दिया गया है। नवम्बर १६६० से एक राष्ट्रीय भवन निर्माण निगम (National Building Construction Corporation) की स्थापना की गई है। यह निगम सरकार तथा उसकी विभिन्न एजेन्सियों की ओर से निर्माण का कार्य करता है। २५ अप्रैल १६७० को सरकार ने आवास तथा शहरी निगम लि० (Housing and Urban Development Corporation Ltd.) की स्थापना की। इस निगम को एक विशिष्टीकृत संस्था के रूप में विकसित किया गया है। यह निगम उन्नत डिजाइनों, निर्माण विधियों तथा अन्य प्रक्रियाओं से सम्बन्धित सूचनाओं तथा विचारों को एकत्र करने तथा उनका समाकलन एवं प्रमाणन करने के लिये विज्ञान-मण्डल का कार्य करता है। नई दिल्ली की हिन्दुस्तान आवास फैक्ट्री पूर्व विरचित (prefabricated) प्रबलित सीमेन्ट कक्रीट का सामान बनाती है। भवन-निर्माण की नई टैक्नोलोजी के विकास तथा विस्तार के क्षेत्र में रुड़की का केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान (Central Building Research Institute) तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की संरचनात्मक इंजीनियरिंग अनुसंधान संस्थान (Structural Engineering Research Institute) अच्छा कार्य कर रहे हैं।

कोयले तथा अभ्रक की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए आवास योजनाएं
(Housing Schemes for Coal and Mica Mine Workers)

भारत सरकार ने कोयला-खानों में कार्यरत श्रमिकों की आवास व्यवस्था

के लिए एक पंचवर्षीय गृह-निर्माण- योजना की घोषणा की और ५०,००० क्वार्टर्स निर्माण करने का निश्चय किया, जिसके हेतु वित्त व्यवस्था १९४७ के कोयला खान-श्रमिक-कल्याण निधि अधिनियम (Coal Mines Labour Walfare Fund Act) के अन्तर्गत निर्मित एक आवास निधि में से की जाती थी। यह निश्चय किया गया था कि कच्चे कोयले तथा पत्थर के कोयले पर एक उपकर (Cess) लगाकर जो राशि प्राप्त हो उसका दो प्रकार के कार्यों के लिए अनुभाजन (Apportion) कर दिया जाय, अर्थात् एक आवास के लिए तथा एक कल्याण कार्यों के लिए। इस उपकर की दर १९४७ में ६ आने प्रति टन थी परन्तु पहली जनवरी १९६१ से यह दर २५ पै० प्रति टन न्यूनतम और ५० पैसे प्रति टन अधिकतम निश्चित की गई। १९७०-७१ में यह दर ४९.७१ पै० प्रति टन थी और जनवरी १९७३ से कोयला खानों से निकलने वाले कोयले व कोक पर यह दर ७५ पैसे प्रति मीट्रिक टन कर दी गई है। १९५६-५७ तक आवास और कल्याण कार्यों में इस निधि का अनुभाजन २ : ७ के अनुपात में होता था। १९५७-५८ में आवास की अधिक महत्ता के कारण यह अनुपात ३१ : ६ कर दिया गया। इसके बाद यह अनुपात बदल कर ५ : ७ कर दिया गया था और अब यह ३ : २ है। ८ सदस्यों का कोयला खान-श्रमिक-आवास बोर्ड, जिसमें दो प्रतिनिधि सरकार के तथा तीन-तीन मालिकों व श्रमिकों के थे, बनाया गया था। ५०,००० मकानों में से ३१,००० बिहार में, १५००० बंगाल में और ३,५०० मध्य प्रदेश में बनाये जाने थे। परन्तु प्रथम योजना के अन्तर्गत, जिसे टाउनशिप योजना का नाम दिया गया, केवल २,१५३ मकान बन पाये। कोयला खान-श्रमिकों के लिए मकान लिए मकान निर्माण के कार्य में अधिक गति लाने के लिए, सरकार द्वारा एक अन्य योजना का १९५० में निर्माण किया गया, जिसके अन्तर्गत २० प्रतिशत आर्थिक सहायता, किन्तु ६०० रुपये प्रति मकान से अधिक नहीं, (जो कि बाद में कोयला खान मालिकों द्वारा बनाये गये मकानों के लागत व्यय का २५ प्रतिशत और अधिक से अधिक ७५० रु०, कर दी गई) निधि में से ही दी जाने लगी। इस योजना के अन्तर्गत भी केवल १,६३८ मकान बनाये जा सके। इस योजना के लिये कोयला-खान-स्वामियों का सहयोग उत्साहपूर्ण न था। इसलिए निर्माण-कार्य की गति बढ़ाने के लिए एक संशोधित उपदान प्राप्त आवास योजना बनाई गई, जिसको १९५४ में लागू किया गया। इसमें २५ प्रतिशत उपदान के अतिरिक्त ऐसे कोयला-खान-स्वामियों को निर्माण लागत का ३७½%, अधिक से अधिक १,१०२.५० रुपये, ऋण के रूप में देने की व्यवस्था की गई, जो कि निधि में दी गई शर्तों के अनुसार मकान निर्माण करें। इस नवीन उपदान व ऋण योजना के अन्तर्गत दिसम्बर १९७८ तक २,८४० मकानों का निर्माण हो चुका था। सितम्बर १९५६ में कोयला खान-श्रमिकों हेतु एक नवीन आवास योजना बनाई गई। इसके अनुसार कोयला-खान-श्रमिक-कल्याण-निधि द्वारा द्वितीय आयोजना काल में कोयला खान

श्रमिकों के लिए दो कमरे वाले ३० ००० मकानों के लिए वित्त देने की व्यवस्था की गई थी। गृह निर्माण के लिए भूमि मालिकों द्वारा दी जाती है और वे ही मकानों की देख रेख के लिए उत्तरदायी है। श्रमिकों से २ रुपय प्रतिमास किराया लिया जाता है। इस नई योजना के अन्तगत दिसम्बर सन् १९७८ के अन्त तक ५० ४७८ मकान बन चुके थे और ८ १९६ पर निर्माण कार्य चल रहा था। विभिन्न योजनाओं के अन्तगत बनाये गए मकानों म से अधिकांश घिर गये थे। इस प्रकार कोयला खान श्रमिकों के मकानों के निर्माण म कुछ तो कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि वित्तीय सहायता करती है और कुछ उपदानप्राप्त आवास योजना के अन्तगत सहायता प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त खानों के लिए एक अन्य योजना भी स्वीकार की गई जिसे कम लागत आवास योजना (Low Cost Housing Scheme) का नाम दिया गया। इस योजना म व्यवस्था की गई कि तृतीय आयोजना काल म लगभग एक लाख (लगभग २० ००० प्रतिवर्ष) मकानों का निर्माण किया जाए। यह धन मालिकों को इमारती सामान खरीदने के लिए दिया जायगा और प्रति मकान १६०० रु० तथा प्रति बैरक ३ २०० रुपये तक होगा। इस कम लागत आवास योजना के अन्तगत दिसम्बर १९७८ तक २० ७७३ मकान और १७८ बैरेकें बन चुकी थीं तथा ६ ५९३ मकान और ६७ बैरेकें निर्माणाधीन थी। श्रमिकों को स्वयं मकान बनाने के लिए प्रोत्साहित देने के लिए भी योजना बनाई गई जिसके अन्तगत समीपवर्ती गाव में अपनी भूमि पर मकान बनाने के लिए प्रत्येक श्रमिक को ४०० रुपये उपदानस्वरूप दिये जाते है। १९७८ तक इस योजना के अन्तगत १००० मकान बनाने की अनुमति दी गई थी जिनमें से केवल ९ ही बन सके थे तथा ८ निर्माणाधीन थे। कोयला खानों के लिए अन्य आवास योजनाएँ थी असम में कच्चे मकानों की योजना तथा सहकारी आवास योजना। दिसम्बर १९७८ तक पहली योजना के अन्तगत २३ और दूसरी के अन्तर्गत १५ मकान बन चुके थे।

अभ्रक खानों के श्रमिकों के लिए दो उपदान ऋण आवास योजनायें १९५३ और १९५५ में लागू की गई थी। परन्तु इनके अन्तर्गत मकान बनाने में कोई रुचि नहीं ली गई। १९६० म एक नई उपदान प्राप्त आवास योजना बनाई गई। इसके अन्तर्गत अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम १९४६ के अन्तर्गत बनाई गई अभ्रक निधि म से अभ्रक खान मालिकों को निर्माण लागत का ५०% उपदान के रूप में दिया जाता है। परन्तु इसके लिये सीमा भी निर्धारित कर दी गई है। मालिकों को निधि द्वारा निश्चित योजना के अनुसार ही मकान बनाने होते है। इस योजना के अतिरिक्त जोशीमार (बिहार) म एक बस्ती का निर्माण किया गया है जिसमें ५० छोटे छोटे दो कमरों वाले मकान है। १० ऐसी और आवास बस्तियाँ बनाने का विचार है। जुलाई १९६२ म एक और कम लागत आवास योजना लागू की गई जिसके अन्तगत मकान की अनुमानित मानक लागत का ७५% भाग उपदान के रूप म देने की व्यवस्था की गई। अभ्रक खानों के मजदूरों के लिये एक अपना मकान

स्वयं बनाओ' योजना तथा एक विभागीय आवास बस्ती योजना भी लागू की गई। लोहे तथा मैंगनीज की खानों के श्रमिकों के लिए भी ऐसी ही योजनाएं लागू की गईं। राजस्थान सरकार इस योजना के अन्तर्गत, प्रत्येक अभ्रक खान श्रमिक को ६५% अनुदान और २५ प्रतिशत सहायता देती है।

बम्बई में आवास योजनाएं (Housing Schemes in Bombay)

नवम्बर १९४७ मे बम्बई राज्य ने ७½ करोड रु० की लागत से १५,००० मकान बनाने की पचवर्षीय योजना तैयार की। १९४८ के बम्बई-आवास-बोर्ड अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने जनवरी १९४९ मे एक बम्बई आवास बोर्ड की स्थापना की। आयोजना काल से पूर्व आवास बोर्ड ने १००५ लाख रु० की लागत से औद्योगिक श्रमिकों के लिये १,५१३ मकान, १ ५६ करोड रु० की लागत से कम आय वाले श्रमिकों हेतु ३,०२७ मकान तथा ८ ७५ करोड रु० की लागत से विस्थापित (Displaced) व्यक्तियों हेतु ३८,६१० मकान बनाये थे। १९५२ मे उपदान-प्राप्त-औद्योगिक-आवास योजना लागू की गई जिसके अन्तर्गत बोर्ड ने प्रथम आयोजना काल में ४९३ लाख रु० की लागत से १३,६८२ मकान बनाये। दूसरी आयोजना के प्रथम दो वर्षों में २३८ लाख रु० की लागत से ६,३६६ मकान बने और शेष आयोजना के ३ वर्षो मे बोर्ड द्वारा १३'७५ करोड़ रु० की लागत से २९,०४० मकान बनाने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त बम्बई सरकार द्वारा सहकारी-आवास-समितियों द्वारा कम आय वाले वर्गों के आवास हेतु तथा स्थानीय निकायों को वित्तीय सहायता दी जाती है। गन्दी बस्तियों की सफाई भी सरकार की आवास नीति का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके लिए १९६१ तक केन्द्रीय सरकार द्वारा ४३८८० लाख रु० की ४४ प्रायोजनाओं के लिये स्वीकृति मिल गई थी। आवास समस्याओं का अध्ययन करने के लिए एक आवास-कमिश्नर, एक आवास-परामर्शदात्री समिति तथा एक विशेष-कैबिनेट उपसमिति भी बनाई गई।

आवास योजनायें अब नव-निर्मित राज्य महाराष्ट्र और गुजरात में बराबर जारी है। सन् १९७० में इस योजना के अन्तर्गत, महाराष्ट्र में, राज्य सरकार द्वारा १९८४ और मालिकों द्वारा १५६ तथा श्रमिक आवास समितियों द्वारा ५६ मकान बनवाने की योजना बनाई गई थी।

उत्तर प्रदेश में आवास योजनाएं (Housing Schemes in U. P.)

उत्तर प्रदेश सरकार ने भी कानपुर तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों के लिये मकान निर्माण के लिए व्यापक योजनायें बनाईं। दिसम्बर १९५५ में एक औद्योगिक-आवास-अधिनियम पारित किया गया, जिससे राज्य द्वारा निर्मित क्वार्टरों में प्रबन्ध और प्रशासन के लिए एक आवास कमिश्नर की नियुक्ति तथा एक आवास-परामर्शदात्री-समिति की स्थापना की व्यवस्था है। औद्योगिक केन्द्रों में निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या

तथा विस्थापितों के भारी संख्या में आ जाने के कारण आवास का प्रबन्ध करना सरकार के लिए मुख्य समस्या बन गई थी। सरकार की योजना थी कि वह कानपुर से कुछ दूर बिना जोती हुई (ऊसर) भूमि पर श्रमिकों के लिए आदर्श ग्राम का निर्माण करे। भूमि सरकार अथवा कानपुर विकास बोर्ड द्वारा प्राप्त की जायेगी तथा श्रमिक सरकारी सहायता द्वारा अथवा सहकारी आवास समितियों के द्वारा स्वयं अपने मकान बनायेंगे। श्रमिकों को केवल भूमि का थोड़ा सा किराया देना होगा। सरकार ने नव-निर्माण कार्यों तथा वर्तमान क्षेत्रों के पुनर्निर्माण पर सिफारिश करने के लिए तथा की वर्तमान आवास व्यवस्था का सर्वेक्षण करने के लिए एक विशेषज्ञ आवास व नगर नियोजक की नियुक्ति की। लखनऊ के विकास के लिए नगर नियोजन विभाग के सामाजिक तथा नागरिक सर्वेक्षण ने सरकार को एक रिपोर्ट दी। सार्वजनिक निर्माण विभाग ने सस्ते मकान बनाने के सम्बन्ध में कुछ प्रयोग किये और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। राज्य के अनेक उद्योगपतियों ने विशेषतः कानपुर आगरा फिरोजाबाद हाथरस आदि के उद्योगपतियों ने इच्छा प्रकट की थी कि यदि उन्हें सस्ती दर पर भूमि तथा इमारती सामान प्राप्त हो सके तो वे श्रमिकों के लिए आवास व्यवस्था करने का प्रयत्न करेंगे। कानपुर विकास बोर्ड भी शहर के विकास के लिए एक योजना तैयार करने में लगा है। इसने अहातों के स्वामियों को उनमें सुधार व सफाई रखने हेतु नोटिस दिये तथा नोटिस के अनुसार कार्य न करने पर कुछ पर मुकदमा भी दायर कर दिया था। कुछ वर्ष पूर्व बोर्ड द्वारा श्रमिकों के लिए निर्मित २,४०० क्वार्टरों के अतिरिक्त, परमपूर्वा क्षेत्र में श्रमिकों को मकान बनाने के लिये रियायती दरों पर कुछ भूमि प्रदान की गई। बोर्ड ने कुछ वर्षों के दौरान श्रमिकों के लिये ५०,००० मकान बनाने की योजना सोची है और इस सम्बन्ध में बोर्ड विभिन्न सम्बन्धित लोगों से बातचीत कर रहा है। बोर्ड द्वारा एक कमरे वाले ७४४ मकानों के लिए २० लाख रुपये की स्वीकृति दी जा चुकी है।

भारत सरकार की उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्य के मुख्य मुख्य औद्योगिक नगरों में दिसम्बर १६७८ तक ३०,१४७ क्वार्टर बनाये थे। इनके निर्माण कार्य को कई चरणों (Phases) में विभक्त किया गया था। इस सम्बन्ध में सन् १६७२ तक की स्थिति अग्रांकित प्रकार थी—

निर्मित की गई है। चीनी मिलों को शीरे पर चार आने छ पाई (२८ पैसे) प्रति मन मूल्य की छूट दी गई है और खुली बिक्री द्वारा इससे अधिक जो कुछ प्राप्त होता है वह इस निधि में देना होता है। निधि में तीन विभिन्न खाते है—आवास सामान्य कल्याण एवं विकास। इस निधि में राज्य सरकार समय-समय पर धन हस्तान्तरित करती है। दिसम्बर १९६१ के अन्त तक इस निधि में ४८ ९८,५०० रु० हस्तान्तरित किया गया। इस धनराशि में से ९८ प्रतिशत अर्थात् ४६,२० ६६६ रु० आवास खाते, ३,१८,८४६ रुपये सामान्य कल्याण खाते तथा ४८ ६८५ रुपये विकास खाते में जमा करा दिया गया था। १९६४ के अन्त तक आवास के लिए ४५,६९ ०७२ रुपये नियत किये गये थे जिनमे से मकानों के निर्माण के लिये ४२ ०६ ८०६ रुपये दिये गए। योजना को कार्यान्वित करने हेतु एक आवास बोर्ड तथा एक परामर्शदात्री समिति बनाई गई है। मकानों का निर्धारित स्तर और नक्शे के अनुसार निर्माण करना मालिकों का उत्तरदायित्व है। सरकार निधि म से धन दे देती है तथा मालिकों को मकान निर्माण के सम्बन्ध मे सभी प्रकार की आवश्यक सुविधायें प्रदान करती है। राज्य मे ६५ चीनी के कारखानों मे से चार ने इस योजना मे भाग लेने से पहले इन्कार कर दिया था परन्तु १९५८ तथा १९५९ मे दो चीनी कारखानों ने इसमे भाग लेने की स्वीकृति दे दी। इस प्रकार इस समय ६३ चीनी कारखाने इस योजना मे भाग ले रहे है। १९५७ तक ५६ चीनी के कारखानों ने मकान बनाने का कार्य शुरू कर दिया था। १९५८ मे २ और १९५९ म ३ और कारखानों ने भी मकान बनाने शुरु कर दिये थे। २ कारखानो को उचित भूमि मिलने मे कठिनाई के कारण अधिग्रहण (Acquisition) कार्यवाहियाँ की गई। अब ६२ चीनी कारखानों मे, जहाँ कार्य शुरू हो चुका है जून १९६६ तक १५५६ मकानों का निर्माण हो चुका था। दिसम्बर १९७२ के अन्त तक १ ७१० मकान पूर्णतया बन चुके थे और कुल ४६ ९६,५४८ रु० व्यय हो चुके थे।

चीनी के कारखानो के श्रमिको के लिये सरकार ने कुछ अवकाश गृह (Holiday Homes) और विश्राम गृह बनाने का निश्चय किया है।

अन्य राज्यो मे आवास योजनायें (Housing Schemes in other States)

अन्य राज्यो मे भी औद्योगिक श्रमिकों हेतु आवास की विभिन्न योजनायें कार्यान्वित हो रही है। राज्य सरकारो द्वारा समय-समय पर श्रमिको के लिए कई प्रायोजनायें स्वीकृत की गई है तथा की जाती है। उपदान और ऋण केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है। मकान राज्य सरकारो मालिकों तथा सहकारी समितियों द्वारा बनाये जाते है। राज्यों मे आवास योजनाओ के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है आन्ध्र मे १९७६ के अन्त तक उपदान प्राप्त आवास योजना के अन्तर्गत ४,४४६ मकान राज्य सरकार द्वारा और ५९७ मकान मालिकों द्वारा बनवाये गये थे। असम मे योजना के अन्तर्गत सन् १९७६ मे ६१ मकान बनाये गये है तथा

गन्दी बस्तियों की सफाई की योजना के अन्तर्गत भी मकान बनाये जा रहे हैं। बिहार में आवास योजना के अन्तर्गत १९६० के अन्त तक ५,३०६ मकान बनाये जा चुके थे और ३,५२० मकान निर्माणाधीन थे। १९७६ में सरकार द्वारा ११८ क्वार्टर बनवाये गये। टाटा की इञ्जीनियरिंग और इंजिन व कारखाना को तथा राष्ट्रीय उद्योगों को मकान बनाने के लिये ऋण भी दिया गया है। राज्य सरकार की एक औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत भी मकान बन रहे हैं। हरियाणा में, १९७६ तक ६८६ मकान सरकार द्वारा १,७४८ मकान मालिकों द्वारा और ५५ मकान श्रमिक सहकारी समितियों द्वारा बनाये गये थे। केरल में भी राज्य की कुछ आवास योजनायें चालू हैं जिनके अन्तर्गत १९७६ तक ७७५ मकानों का निर्माण हो चुका था। मध्य प्रदेश में द्वितीय आयोजना काल में २,५०० मकान महाकौशल में ८८८ मकान मध्य भारत में ६६६ मकान विन्ध्य प्रदेश में और ६३० मकान भोपाल में गन्दी बस्तियों की सफाई योजना के अन्तर्गत निर्माण किये गये थे। तृतीय आयोजना के अन्त तक, मध्य प्रदेश में विभिन्न केन्द्रों में १०,०२२ मकान बनाये गये जिनका विवरण इस प्रकार है इन्दौर–२८४१, ग्वालियर–१०७४, उज्जैन–६०४, रतलाम–४६७, मन्दसौर–१८० देवास–११८ बुरहानपुर–१००, राजनांदगाँव–२०० जबलपुर–५६८ भोपाल–५२२, सिहोर–१००, सतना–६६८, नेपानगर–५९६ भिलाई–२८८, अमलाई–४००, और खण्डवा–२४। १९७६ तक, मध्य प्रदेश में ८८६२ मकान सरकार द्वारा, २४४४ मकान मालिकों द्वारा और १६८८ मकान श्रमिक सहकारी समितियों द्वारा बनवाये जा चुके थे। तमिलनाडु में १९७६ तक आवास योजना के अन्तर्गत राज्य सरकार ने २४,५३५ मकान बनाये थे। कई उद्योग संस्थानों को उपदान और ऋण भी दिये गये हैं। सरकारी छापेखाने तथा राज्य के यातायात तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों के श्रमिकों के लिये मकान बनाये गये हैं। राज्य सरकार ने जुलाहों के मकानों की मरम्मत के लिये भी सहायता दी है। इनके लिये ६४ लाख रुपय की राशि में १५८० मकान १६ योजनाओं के अन्तर्गत दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में स्वीकृत किये गये थे। कर्नाटक में १९७६ तक आवास योजना के अन्तर्गत राज्य सरकार ने १,३६४ तथा मालिकों ने ३,४२५ मकान बनाये थे। उड़ीसा में आवास योजना के अन्तर्गत १९७६ तक १,२२८ मकान राज्य सरकार द्वारा तथा १,३०२ मकान मालिकों द्वारा बनाये गये थे। पंजाब में आवास योजना के अन्तर्गत १९७६ के अन्त तक सरकार द्वारा ३,४६५, मालिकों द्वारा ३,३०५ और सहकारी समितियों द्वारा ४६७ मकानों का निर्माण हो चुका था। राजस्थान में आवास योजना के अन्तर्गत २,४६० मकान सरकार द्वारा, २,२५७ मकान मालिकों द्वारा तथा १२६ मकान श्रमिक सगठनों द्वारा १९७६ तक बनाये गये थे। पश्चिमी बंगाल में आवास योजना के अन्तर्गत १९७६ के अन्त तक १३,५२२ मकान राज्य द्वारा बनाये जा चुके थे। राज्य सरकार ने १९५८ में मकानों की

देखभाल के लिये एक गैर-सरकारी आवास बोर्ड स्थापित कर दिया है । हिमाचल प्रदेश मे नाहन मे ५० मकान बनाये गये है ।

दिल्ली राज्य सरकार ने आवास योजना के अन्तर्गत ८,५३७ मकानो के निर्माण का निर्णय किया है एव ४,८४४ क्वार्टर १६७६ के अन्त तक बनाये जा चुके थे । नई दिल्ली मे भी श्रमिको हेतु केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा लोदी रोड पर बने क्वार्टरो के आधार पर श्रमिक आवास क्षेत्र बनाने की योजना है । इस योजना मे निर्माण का व्यय सयुक्त रूप से राज्य और मालिको के द्वारा वहन किया जायेगा और मशीनो का प्रबन्ध मालिका, श्रमिको एव राज्य के प्रतिनिधियो के एक सयुक्त बार्ड द्वारा किया जायेगा । दिल्ली मे केन्द्रीय विद्युत शक्ति सत्ता (Central Electric Power Authority) ने अपने श्रमिको हेतु मकान बनाने आरम्भ कर दिये है । नजफगढ मे एक औद्योगिक आवास क्षेत्र का विकास किया गया है । औद्योगिक परामर्श बोर्ड ने एक अन्य आवास क्षेत्र के लिये उपयुक्त स्थान प्राप्त करने हेतु, पाँच व्यक्तियो की एक उपसमिति नियुक्त की है । शाहदरा के निकट की भूमि प्राप्त की गई है । नई दिल्ली के आठ श्रमिक कैम्पो मे श्रमिको को नागरिक सुविधाये प्राप्त करने हेतु एक समिति बनाई गई है । ६४५ मकान निम्न स्थानो पर बनाये जा रहे है—ओखला मे ४००, शाहदरा मे २०० तथा औद्योगिक आवास क्षेत्र मे ३४५ । मार्च १६७३ के अन्त तक, ३८,००२ एकड भूमि अधिगृहीत करके ऐसी विभिन्न सस्थाओ को नियत (allot) की गई, जैसे कि दिल्ली नगर निगम, सहकारी भवन निर्माण समितिया तथा अर्ध-सरकारी विभाग आदि ।

देहली विकास सत्ता द्वारा गदी बस्तियो की सफाई की एव योजना तैयार की गई थी । इसके अन्तर्गत २४ योजनाये बनाई गई । भूमि अधिग्रहण के लिये १,४०,००० रुपये स्वीकृत किये गये । मार्च १६५६ से गदी बस्तियो की सफाई का काय देहली नगर निगम को हस्तान्तरित कर दिया गया था । उस समय तक देहली नगर सुधार ट्रस्ट और देहली विकास सत्ता द्वारा ३ २२५ मकान और ५६ दुकाने देहली के विभिन्न भागो मे बनाई जा चुकी थीं । दिसम्बर १६६५ तक १०,०६५ मकान, ८१ फ्लेट, ४६१ दुकानें और ३६ दफ्तर बनवाने के लिये ४४८ करोड रुपये की प्रायोजनायें स्वीकृत की गई थी । ६,६६३ मकान और १२६ दुकाने बन भी चुकी थी । इनके अतिरिक्त २८ ७६ लाख रु० की लागत मे कटरो और बस्तियो मे सुधार भी किया गया है । देहली नगर निगम ने एक अन्य योजना झुग्गी और झोपडी निष्कासन योजना सन् १६६० से सरकार की अनुमति से लागू की । इस योजना का उद्देश्य यह है कि ऐसे परिवारो को (जिनका अनुमान लगभग २५,००० है) जिन्होंने सरकारी और सार्वजनिक भूमि पर बिना इजाजत के झोपडियाँ और झुग्गियाँ बना ली हैं उनको वहाँ से हटाकर अन्य जगह बसा दिया जाय । इसकी अनुमानित लागत ३ ८३ करोड रु० थी । किन्तु सन् १६६० म देहली प्रशासन द्वारा की गई जनगणना से यह

प्रकट हुआ कि कलकत्ता में प्रति परिवार ४३ ८/७ थे जिन्हें कि फिर से बसाया जाना था। निगम ने कार्य के लिये भूमि लेने तथा उसका विकास करने के लिये पग उठाये हैं। इस योजना के अन्तर्गत सितम्बर १९७७ तक १,७८,८०० रिहायशी मकान बनाये जा चुके थे तथा भूखण्डों (plots) का विकास किया जा चुका था।

खादी श्रमिकों के मकानों के लिये तीसरी पंचवर्षीय आयोजना में २ करोड़ रुपये की और चौथी आयोजना में २.४ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। पाँचवीं पंचवर्षीय आयोजना में १.१६ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई। इसके द्वारा खादी श्रमिक बोर्डों को खादी श्रमिकों के लिए मकान बनाने के लिये ऋण के रूप में सहायता दी जाती है। यह ऋण निर्माण लागत का ८० प्रतिशत तक हो सकता है। इस योजना के अन्तर्गत खादी श्रमिकों के लिये ५,००० मकान बनाने की व्यवस्था की गई है। चौथी आयोजना की अवधि में ३,९८९ मकान बनाये गये थे। सन् १९७१-७२ में खादी श्रमिकों के लिए मकान बनवाने के लिए ७,४८,३०६ रु० ऋण के रूप में और २,६४,१३० रु० से अनुदान के रूप में स्वीकार किये गये थे।

बागान में आवास व्यवस्था (Housing in Plantations)

बागान श्रमिकों को अच्छे मकान प्रदान करने के प्रश्न पर जनवरी १९४७ में नई दिल्ली में प्रथम त्रिदलीय बागान उद्योग सम्मेलन में विचार किया गया। यह प्रश्न विचारार्थ पुनः १९४८, १९४९ तथा १९५० में बागान औद्योगिक समिति के सम्मुख आया। बागान कर्मचारियों के मकानों हेतु, उपयुक्त भूमि को प्राप्त करने एवं उसका विकास करने तथा मकानों के निर्माणार्थ धन प्राप्त करने हेतु आवास बोर्डों को स्थापित करने का निर्णय किया गया। इस बात का भी निर्णय किया गया कि वर्तमान अनुपयुक्त मकानों को गिरा कर उनके स्थान पर दूसरे मकान बनाने के लिये एक अवधि निश्चित कर देनी चाहिये। भारतीय चाय परिषद् ने उत्तरी भारत के बागान कर्मचारियों हेतु ऐच्छिक रूप से आवास-व्यवस्था के लिये कुछ न्यूनतम आवास स्तर निर्धारित किये हैं। असम तथा पश्चिमी बंगाल सरकारों ने इन स्तरों को स्वीकार किया है। भारत सरकार ने १९५१ में बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया जिसके अन्तर्गत मालिकों को श्रमिक एवं उनके परिवारों की आवास-व्यवस्था करने के लिये उत्तरदायी ठहराया गया। यह भी निश्चित किया गया कि बागान में मालिक प्रतिवर्ष कम से कम अपने ८% कर्मचारियों हेतु मकान बनायेंगे। परन्तु क्योंकि अधिकतर बागान मालिक, विशेषतः छोटे बागान के मालिक, इस शर्त को पूरा करने की अवस्था में नहीं थे, अतः अप्रैल १९५६ में बागान श्रमिक आवास योजना बनाई गई। योजना में उद्योगपतियों को राज्य सरकारों के माध्यम से मकानों की लागत का ८०% तक ब्याज सहित ऋण दिया जा सकता है जो प्रति मकान अधिक से अधिक २,४०० रुपये तक उत्तर में

और १ ६०० रु० तक दक्षिण में हो सकता है। इस प्रकार बागान के मालिकों को केवल भूमि की लागत तथा २० प्रतिशत मकान की लागत वहन करनी पड़ती थी। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में बागान में ११ ००० क्वाटरों के बनाने हेतु २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी जिसको १६५६-६० में घटा कर ५० लाख रुपये कर दिया गया था।

बागान में श्रमिकों के लिये मकान बनाने की प्रगति बहुत धीमी रही। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अंत तक केवल १४ लाख रुपये में ७०० मकान बनाने की स्वीकृति दी गई थी। इनमें भी १६५६ तक केवल ३०० मकान बन पाये थे। इस धीमी प्रगति का मुख्य कारण यह था कि बागान मालिकों से राज्य सरकार ऋण देते समय पर्याप्त जमानत मांगती है जो बागान मालिक नहीं दे पाते क्योंकि उनकी सम्पत्ति पहले से ही कार्यरत पूंजी के कारण बैंकों के पास रेहन होती है। कुछ राज्य सरकारों ने जमानत की शर्तों को हल्का भी किया था। तीसरी आयोजना में बागान श्रमिकों के आवास हेतु ७० लाख रुपये की व्यवस्था की गई थी और यह सुझाव दिया गया था कि एक पूल गारण्टी निधि बनाई जाये जो ऋण के लिये समपार्श्वी जमानत (Collateral Security) का काय कर सके। दिसम्बर १६७२ के अन्त तक ११७.७६ लाख रु० बागान मालिकों के लिये ऋण सहायता के रूप में स्वीकार किये गये। इस सहायता से ८६०० मकानों का निर्माण होना था। परन्तु केवल २१०० मकान ही बनवाये गये।

योजना की धीमी प्रगति को देखते हुए बागान श्रम आवास पर कार्यकारी दल की सिफारिशों के फलस्वरूप बागान श्रमिकों के लिये एक उपदान प्राप्त आवास योजना लागू की गई। इस योजना के अन्तर्गत १६५१ के बागान श्रम अधिनियम में दी गई व्याख्या के अनुसार बागान श्रमिकों को रिहायशी मकान देने की व्यवस्था है। मालिकों के लिये यह आवश्यक कर दिया गया कि वे प्रतिवर्ष अपने समस्त रिहायशी श्रमिकों के कम से कम ८ प्रतिशत के लिये मकान बनवायें और यह प्रक्रिया तब तक जारी रखें जब तक कि उनमें से सभी को पर्याप्त आवास की सुविधाएँ न मिल जायें। मालिकों द्वारा इन मकानों का कोई किराया नहीं लिया जा सकता। इस योजना के लिये जो सहायता दी जाती है वह मकान की नियत उच्चतम लागत की ५० प्रतिशत ऋण के रूप में और ३७½ प्रतिशत उपदान के रूप में होती है। यह योजना आजकल असम, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु में लागू की जा रही है।

दिसम्बर १६७८ के अन्त तक इसके अन्तर्गत २४ ००० मकानों के निर्माण की अनुमति दी गई थी जिनमें से १५ ५२० मकान बन कर पूर्ण हो चुके थे। बागान आवास के लिये चौथी पंचवर्षीय आयोजना में करोड़ रुपये की और पाँचवीं पंचवर्षीय आयोजना में ५ करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। १६७४-७५ से लेकर १६७७-७८ तक के चार वर्षों में इस सम्बन्ध में राज्य

सरकारों को ४ ५० करोड़ रुपये दिये गये थे। १९७८–७९ के केन्द्रीय बजट में इस योजना के क्रियान्वयन के लिये १ ६० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी।

श्रमिक संघों की आवास योजनाएं

(Housing Schemes of Workers' Organisation)

अहमदाबाद का कपड़ा मिल मजदूर परिषद् द्वारा दी गई सहायता और प्रोत्साहन के फलस्वरूप उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना से लाभ उठाने के हेतु १०० से अधिक सहकारी आवास समितियों की स्थापना की गई है जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। हैदराबाद में भी मकान बनाने में सहकारी समितियों ने अच्छा कार्य किया है। केन्द्रीय सरकार ने जुलाहों की सहकारी समितियों को मद्रास में तीन और मैसूर में एक आवास बस्ती बनाने के लिये वित्तीय सहायता देने का निर्णय किया है। अखिल भारतीय हाथ करघा बोर्ड ने भी सहकारी समितियों द्वारा जुलाहों के लिये ८ ३०० मकान बनाने की योजना बनाई है जिसके लिये सरकार द्वारा लागत का दो तिहाई ऋण के रूप में और एक तिहाई उपदान के रूप में धन मिलेगा। सन् १९७४ ७५ में, रेलवे कर्मचारियों की ८१ सहकारी आवास समितियाँ थी। मदुराई में हार्वेपट्टी आवास समिति का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इसी प्रकार उपदान प्राप्त आवास योजना के अन्तर्गत सहकारी आवास तक, औद्योगिक श्रमिकों की विभिन्न सहकारी आवास समितियों को ८,८६८ मकानों के निर्माण हेतु ३ २५ करोड़ रुपये दिये जाने की स्वीकृति दी जा चुकी थी। इस राशि में २ ३१ करोड़ रुपये ऋण के रूप में और ९४ लाख रुपये उपदान के रूप में दिये जाने थे। इनमें से केवल ४,३६५ मकान बनाये गये थे।

१९७८ ८३ के लिये बनाई गई पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में कहा गया था कि सहकारी आवास समितियों को प्रोत्साहन दिये जाने की आवश्यकता है। ऐसा इसलिये, क्योंकि ऐसी समितियाँ वैयक्तिक आवास प्रयासों की दिशा में महत्वपूर्ण भाग अदा करती है। विकसित तथा आंशिक रूप से विकसित भूमि सहकारी आवास समितियों को आवंटित की जानी चाहिये क्योंकि शहरी भूमि (सीमा बन्दी तथा नियमन) अधिनियम १९७६ के कारण ये समितियाँ खुले बाजार में भूमि खरीदने में कठिनाई का अनुभव करती हैं।

औद्योगिक आवास अधिनियम

(Industrial Housing Acts)

१८९४ के भूमि अधिग्रहण अधिनियम (Land Acquisition Act) में केन्द्रीय सरकार द्वारा १९३३ में संशोधन किया गया ताकि मालिक अपने श्रमिकों के आवास हेतु भूमि आसानी से प्राप्त कर सकें। इस विधान के अतिरिक्त कुछ वर्ष पहले तक श्रमिकों की आवास व्यवस्था को सुधारने के सम्बन्ध में कोई कानून

नहीं था। १९४६ में अभ्रक-खान श्रमिक कल्याण-निधि अधिनियम तथा १९४७ के कोयला-खान-श्रम-निधि अधिनियम पारित किये गये जिनके अन्तर्गत स्थापित निधि द्वारा किये जाने वाले कल्याणकारी कार्यों में आवास की व्यवस्था भी है। उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मदसार उद्योग श्रम कल्याण और विकास निधि अधिनियम १९५१ में पारित किया गया जिसमें चीनी मिला के श्रमिकों के लिए मकान प्रदान करने की भी व्यवस्था है। १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक मालिक को अपने श्रमिकों के लिये मकान उपलब्ध करने होंगे। इन सब के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। अब अनेक राज्यों में आवास सम्बन्धी अधिनियम पारित किये गये हैं।

बम्बई आवास बोर्ड अधिनियम १९४८ में पारित किया गया। तत्पश्चात् इनमें कई बार संशोधन हुए हैं। इसके अन्तर्गत एक आवास बोर्ड की स्थापना करने की व्यवस्था है, जिस बोर्ड में एक अध्यक्ष के अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा मनोनीत चार सदस्य होंगे। उन क्षेत्रों का छोड़कर जहाँ के लिए कोई विकास योजना पहले से लागू है और ऐसी योजना को छोड़कर जो नगर आयोजन से मेल नहीं खाती, बोर्ड को मकानों की योजना बनाने और उसको कार्यान्वित करने के लिए धन व्यय करने का अधिकार है। यह भूमि एवं मकान विकास के प्रोत्साहन हेतु कार्य कर सकता है। इसको सड़कें तथा खुली जगहों को प्राप्त करने का, स्थानीय सत्ता के रूप में कार्य करने एवं उन्नति कर लगान का अधिकार भी दिया गया है। इसने आवास सम्बन्धी समस्त कार्य १९४७ में स्थापित प्रान्तीय आवास बोर्ड से उसकी सभी परि-सम्पत्ति (Asset) सहित ले लिया है। यह सरकार से, सार्वजनिक संस्थाओं या स्थानीय प्राधिकारियों से अनुदान, वित्त सहायता, दान तथा उपहार आदि स्वीकार कर सकता है। तथा सरकार की स्वीकृति से ऋण ले सकता है तथा ऋणपत्र जारी कर सकता है। उन्नति-कर व क्षतिपूर्ति के सम्बन्ध में उत्पन्न विवादों को सुलझाने हेतु एक विशेष अधिकरण की स्थापना की गई है। बोर्ड और स्थानीय प्राधिकारियों के आपसी मतभेद सरकार द्वारा सुलझाये जायेंगे। बोर्ड की स्थापना १९४९ में की गई और इसे परामर्श देने हेतु ४४ सदस्यों की एक सलाहकार समिति बनाई गई है। एक आवास कमिश्नर की भी नियुक्ति की गई है। पुनर्गठित राज्य महाराष्ट्र में, बम्बई का अधिनियम मध्य प्रदेश के (१९५० के) आवास बोर्ड अधिनियम और सौराष्ट्र का (१९५४ का) आवास बोर्ड अधिनियम उनके तत्कालीन क्षेत्रों में अभी भी लागू है।

मैसूर आवास बोर्ड अधिनियम १९५५ ने कुछ सीमा तक इस विषय पर १९४९ के मैसूर श्रमिक आवास निगम का प्रतिस्थापित कर दिया है। १९५५ के इस अधिनियम का उद्देश्य यह है कि आवास बोर्ड श्रमिकों को आवास उपलब्ध कराने हेतु तथा आवास से सम्बन्धित अन्य सुविधायें देने के लिए पग उठा सके।

इस अधिनियम के अन्तर्गत मैसूर आवास बोर्ड की स्थापना हुई है (१९४९ के अधिनियम के अन्तर्गत जो मैसूर श्रमिक आवास निगम बनाया गया था उसके स्थान पर यह बोर्ड बनाया गया है)। इस आवास बोर्ड में एक अध्यक्ष और राज्य सरकार द्वारा मनोनीत ३ सदस्य हैं। इस बोर्ड को विस्तृत अधिकार दिये गये हैं। यह मकानों को गिरवा भी सकता है और भूमि का अधिग्रहण भी कर सकता है। नई आवास योजनाएँ तैयार करने तथा उनको कार्यान्वित करने का भी इसको अधिकार है। मकानों के निर्माण में शीघ्रता करने, मरम्मत करने, मकान बनाने, कुछ दशाओं में बोर्ड के मकानों को खाली करवाने आदि के अधिकार भी इस बोर्ड को है। अब एक और मैसूर आवास बोर्ड अधिनियम १९६० लागू किया गया है। इसका उद्देश्य उन कठिनाइयों को दूर करना है जो अब तक योजना को लागू करने में सामने आई हैं। यह नया अधिनियम राज्य के पुनर्गठित क्षेत्र पर लागू है। इस अधिनियम द्वारा पहले सब अधिनियम रद्द हो गये और इसमें आवास बोर्ड बनाया गया। निवासियों तथा मालिकों के अधिकारों व दायित्वों आदि के बारे में नये प्रावधान सम्मिलित किये गये। भूमि अधिग्रहण पर क्षतिपूर्ति के प्रश्न पर तथा उन्नति-कर को लगाने के प्रश्न पर यदि कोई विवाद हो जाता है तो उसको सुलझाने हेतु एक अधिकरण की स्थापना की व्यवस्था की गई है। ऐसा अधिनियम पहले कभी पास नहीं किया गया था।

मध्य प्रदेश आवास बोर्ड अधिनियम १९५० में पारित किया गया। इसमें एक आवास बोर्ड की स्थापना करने की व्यवस्था है, जिसमें एक अध्यक्ष और ८ सदस्य होंगे। बोर्ड यदि आवश्यक समझे किसी भी क्षेत्र के लिए आवास योजना को बनाने और उसको कार्यान्वित करने का कार्य करेगा तथा विभिन्न सुविधाओं की भी व्यवस्था करेगा, जैसे—भूमि अथवा सम्पत्ति का अधिग्रहण, अनुपयुक्त मकानों को गिराना, उनका पुन निर्माण आदि तथा मकानों के निर्माण की लागत कम करना तथा उनके निर्माण की गति में वृद्धि करना। बोर्ड की स्थापना १९५२ में हुई थी। बोर्ड की निधि, सरकार, स्थानीय प्राधिकारियों, निजी अथवा व्यक्तिगत संस्थानों द्वारा दिये गये अनुदान, दान, उपहार अथवा ऋण से मिलकर बनेगी। १९६० में इस अधिनियम के अन्तर्गत आवास नियम भी बनाये गये थे।

हैदराबाद श्रमिक आवास अधिनियम १९५२ में पारित किया गया था, किन्तु सन् १९५६ के आंध्र प्रदेश आवास बोर्ड अधिनियम के लागू होने के बाद यह रद्द हो गया था। इसमें एक त्रिदलीय श्रमिक-आवास निगम की स्थापना की व्यवस्था है, जिसके कार्य भी लगभग अन्य अधिनियमों में दिये गये कार्यों के समान हैं। इसी प्रकार राशि भी एकत्रित होती है और उसके हेतु श्रमिक निधि की स्थापना भी की गई है। इसके अन्तर्गत एक आवास बोर्ड की स्थापना की व्यवस्था है जिसका काम उन सभी उपायों व कार्यों को करना और ऐसी योजनाओं को लागू

करना है जिनसे राज्य की आवास आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। सन् १९६२ में इस अधिनियम में संशोधन किया गया और फिर इस अधिनियम को सम्पूर्ण आन्ध्र प्रदेश में लागू कर दिया गया, क्योंकि आरम्भ में यह केवल तेलगाना क्षेत्र पर ही लागू होता था।

उत्तर प्रदेश औद्योगिक श्रमिक आवास अधिनियम १९५५ में पारित किया गया। अधिनियम में राज्य में निर्मित क्वार्टरों की देखभाल और प्रबन्ध हेतु एक आवास कमिश्नर की नियुक्ति की व्यवस्था है। इसमें आवास और प्रशासन में सम्बन्धित विषयों के लिये व्यवस्था की गई है, जैसे—मकानों का नियतन करना, मकानों को खाली कराना, किराया वसूली, मकानों की देखभाल, मरम्मत, प्रबन्ध आदि। इस अधिनियम में एक सलाहकार समिति की स्थापना की भी व्यवस्था है, जिसका कार्य आवास के प्रशासन सम्बन्धी विषयों पर आवास कमिश्नर द्वारा पूछी गई बातों पर परामर्श देना है। अधिनियम १ जून १९५७ से राज्य के १२ शहरी क्षेत्रों में लागू किया गया और १९५८ में इसके अन्तर्गत आवास नियम भी बनाये गये।

१९५६ के पजाब औद्योगिक आवास अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक श्रमिकों के आवासों के प्रशासन, नियन्त्रण, नियतन, देखभाल, किराया वसूली तथा औद्योगिक श्रमिक आवास में अन्य सम्बन्धित मामलों की व्यवस्था है। इस अधिनियम का विस्तार हरियाणा तक है।

१९७२ के असम राज्य आवास बोर्ड अधिनियम और १९७६ के जम्मू तथा कश्मीर आवास बोर्ड अधिनियम में भी इन राज्यों में आवास बोर्डों के गठन की व्यवस्था की गई है।

राजस्थान में राजस्थान आवास योजनायें (भूमि अधिग्रहण) अधिनियम १९६० में पारित किया गया था। इसका उद्देश्य यह है कि आवास हेतु भूमि उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके तथा भूमि के मूल्य में बढ़ोत्तरी न हो सके। तमिलनाडु में भी एक आवास बोर्ड की स्थापना हेतु और आवास योजनाओं को राज्य में कार्यान्वित करने के हेतु एक अधिनियम बनाया गया है। पश्चिमी बंगाल में एक आवास बोर्ड की स्थापना की गई है जो सांविधिक नहीं है।

केन्द्रीय सरकार ने भी कुछ केन्द्रीय शासित क्षेत्रों में गन्दी बस्तियों को साफ करने तथा ऐसे क्षेत्रों के निवासियों को निकाले जाने से बचाने हेतु सितम्बर १९५६ में गन्दी बस्ती (सुधार व सफाई) अधिनियम पारित किया। अधिनियम के अन्तर्गत गन्दी बस्तियों के सुधार तथा सफाई का उत्तरदायित्व उन बस्तियों के मालिकों पर ही डाला गया है परन्तु यदि वे १२ माह के अन्दर-अन्दर अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने में असफल रहे तो सरकार स्वयं उस क्षेत्र को अधिग्रहित (Acquire) कर सकती है तथा उसका विकास कर सकती है।

आवास व्यवस्था और उसके उत्तरदायित्व का प्रश्न

(Hosing Whose Responsibility ?)

यह स्पष्ट है कि आवास की समस्या भी अन्य समस्याओं की भाँति सरकार

का ध्यान आकर्षित कर रही है और श्रमिकों के आवास की अवस्था में सुधार लाने के लिए कई योजनाएं कार्यान्वित की गई हैं और कई योजनाएं बनाई भी जा रही हैं। परन्तु समस्या अत्यन्त विशाल है और इसके समाधान में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है जिन्हें दूर करना आवश्यक है। सबसे पहली समस्या तो यही है कि श्रमिकों के क्वार्टरों को बनाने का उत्तरदायित्व कौन ले? श्रम नेता यह सुझाव देते हैं कि फैक्ट्री अधिनियम में मालिकों द्वारा श्रमिकों को अनिवार्य रूप से मकान प्रदान करने का उपबन्ध होना चाहिए। वे इस बात पर भी जोर देते हैं कि यदि मालिकों द्वारा मकान प्रदान नहीं किये जाते तो श्रमिकों को पर्याप्त गृह भत्ते के रूप में कुछ क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिये। परन्तु मालिकों का यह कहना है कि आवास का उत्तरदायित्व राज्य पर है और मुख्यतः यह सरकार एवं स्थानीय प्राधिकारियों का कार्य है। वह यह तर्क देते हैं कि गृह निर्माण की लागत इतनी अधिक है कि उसका भार उद्योग के लिये वहन करना नितान्त असम्भव है और केवल सरकार ही इस समस्या को कुशलता पूर्वक सुलझा सकती है। आवास निर्माण को सार्वजनिक सेवा समझना चाहिए और इसकी ओर सरकार द्वारा उचित ध्यान दिया जाना चाहिये तथा सस्ते व स्वच्छ गृह निर्माण हेतु सरकार को धन की व्यवस्था जिस प्रकार भी हो सके करना चाहिए। परन्तु सरकार का दृष्टिकोण यह है कि गृह निर्माण का उत्तरदायित्व मालिकों का है क्योंकि श्रमिकों को अच्छी और पर्याप्त आवास व्यवस्था देने पर मालिकों को ही इससे अधिक लाभ होगा। अच्छे आवास न केवल अनुपस्थिति की दर व प्रवासिता को कम करेंगे वरन् श्रमिकों की कार्य कुशलता को भी बढ़ायेंगे क्योंकि मद्यपान वेश्यावृत्ति आदि फैली हुई सामाजिक बुराइयाँ कम हो जायेंगी जिनका कारण अधिकतर अच्छे आवासों का अभाव है। अच्छी आवास व्यवस्था से श्रमिकों और मालिकों के सम्बन्ध मधुर बन जायेंगे और मालिकों को अधिक लाभ होगा। श्रमिकों के लिए आवास व्यवस्था करने के उत्तरदायित्व को मालिकों को [illegible] अनुभव करना चाहिये।

इस प्रकार इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद है कि औद्योगिक आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व किस पर हो? रायल श्रम आयोग का विचार था कि मुख्यतः इसका उत्तरदायित्व सरकार एवं स्थानीय संस्थाओं का है। राष्ट्रीय आयोजना समिति का विचार यह था कि श्रमिकों के लिये आवश्यक आवास व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व मालिकों पर सरलता से डाला जा सकता है। १९४६ की स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति (भोर समिति) के विचार में आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मुख्यतः राज्य सरकार का है। श्रम अनुसंधान समिति का सुझाव था कि इस उद्देश्य हेतु गृह बोर्डों की स्थापना करनी चाहिये और मकानों के निर्माण में पूंजीगत वित्त की व्यवस्था का उत्तरदायित्व तो सरकार पर होना चाहिये और चालू व्यय का भार मालिकों व श्रमिकों पर होना चाहिये। उत्तर प्रदेश तमिलनाडु व महाराष्ट्र की आवास समितियों ने श्रमिकों के आवास का उत्तर

होना पड़ता है सस्ते यातायात की व्यवस्था होनी चाहिए। रात्रि पारी में कार्यरत श्रमिकों के लिए भी सस्ते और नियन्त्रित यातायात की आवश्यकता है। रात्रि पारी बन्द होने के समय बस के प्रबन्ध के लिए श्रमिक जो माँग करते हैं वह उचित ही है। मालिकों को अपने लाभ के लिए इस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त पर्याप्त संख्या में दुकानों, डाकखानों आदि की भी श्रमिकों के क्वार्टरों के निकट सुविधा होनी चाहिए। जीवन की दैनिक आवश्यक वस्तुयें भी पर्याप्त मात्रा में निकट स्थान पर उपलब्ध होनी चाहिए। जिस वस्तु की पूर्ति की जाती है उसके गुण की ओर भी ध्यान देना चाहिए। सड़े-गले खाद्य पदार्थ, जो श्रमिक व उसके बच्चे सस्ते होने के कारण क्रय करते हैं, स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होते हैं तथा बीमारी फैलाते हैं। राशनिंग, मूल्य नियन्त्रण, मुनाफाखोरी व चोरबाजारी के समय में यह कठिनाइयाँ बहुत बढ़ जाती हैं। इनका निवारण आवास क्षेत्रों के निकट श्रमिकों या उपभोक्ता सहकारी समितियों की स्थापना करने से ही सकता है। इस सम्बन्ध में भी मालिक आरम्भ में कुछ पूँजी देकर सहायता कर सकते हैं जो बाद में वे किश्तों में से काट सकते हैं।

दूसरी समस्या मालिकों द्वारा बनाये गये विभिन्न क्षेत्रों में मकानों के नियतन (Allotment) की है। साधारणतः प्राथमिकता निश्चित रखी जाती है तथा श्रमिकों के कार्य की प्रकृति, सेवा की अवधि आदि का मकान देने में ध्यान रखा जाता है। फिर भी अधिकारियों के पक्षपात व भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति पाई जाती है तथा श्रमिक नेताओं के प्रति भेद भाव साधारण सी बात है। इस बात की आम शिकायत है कि मालिक अपने दिए हुए मकानों में श्रमिकों के आने-जाने पर निगाह रखते हैं और किसी बाहरी व्यक्ति की श्रमिकों के क्वार्टरों में पहुँच कठिन हो जाती है। इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब आवास-बोर्ड मकानों के प्रबन्ध और नियन्त्रण को प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथ में ले लें और वही इस बात का निर्णय करें कि मकान किसको दिया जावे। सरकार ने उपदान प्राप्त आवास के नियतन नियम बनाए हैं जो मकानों को नियत करने में लागू किये जाते हैं। इन नियमों की कठोरता हाल ही में कुछ कम कर दी गई और अब मालिक कुल मकानों में से ७५% अपनी मर्जी से और २०% श्रमिकों से सलाह करके नियतन कर सकते हैं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि १८९४ के भूमि अधिग्रहण अधिनियम का, जिसका १९३३ में संशोधन हुआ था, पूर्ण लाभ उठाया जाना चाहिये जिससे कि उन तमाम औद्योगिक संस्थानों को, जिनमें १०० अथवा अधिक श्रमिक कार्य करते हों, श्रमिकों के आवास के लिए भूमि प्राप्त हो जाए। अब तक बहुत थोड़े मालिकों ने इससे लाभ उठाया है। केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारों से अब यह कहा है कि कारखानों के निकट भूमि अधिग्रहण करने में वे मालिकों की सहायता करें

तथा स्वयं भूमि अधिग्रहण करके और उनका विकास करके मालिकों को 'बिना लाभ तथा बिना हानि' के आधार पर बेच दें।

वित्त की समस्या (Problem of Finance)

देश में लोगों के लिये उपयुक्त आवास की सुविधायें प्रदान करने में मुख्य कठिनाई धन की ही रही है। मई १९७३ में बेरोजगारी के अध्ययन के लिये बनाई गई भगवती समिति द्वारा नियुक्त एक कार्यकारी दल के अनुमान के अनुसार, देश में मकानों की भारी कमी को दूर करने के लिये ६७ लाख मकान नगरीय क्षेत्रों में और १८१ लाख मकान ग्रामीण क्षेत्रों में बनाये जाने की आवश्यकता है, जिनके निर्माण पर लगभग ९,००० करोड़ रु० व्यय होगा। इसके अतिरिक्त, बढ़ती हुई जनसंख्या की माँग को पूरा करने के लिये पुराने मकानों की पुनर्स्थापना एवं अतिरिक्त मकानों की जो आवश्यकता होगी, उसके लिये पांचवी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में प्रतिवर्ष नगरीय क्षेत्रों में १२ लाख और ग्रामीण क्षेत्रों में ३१ लाख २० हजार नये मकानों के निर्माण की आवश्यकता होगी। इस कार्यक्रम की पूर्ति के लिये प्रतिवर्ष लगभग १,६०० करोड़ रु० अथवा पांचवी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में ८,००० करोड़ रु० की आवश्यकता होगी। १९७८-८३ के लिये बनी पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में भी इस बात का उल्लेख किया गया था कि मकानों की कमी को दूर करने के लिये इस बात की जरूरत है कि ४५ लाख मकानों के निर्माण का कार्यक्रम (अर्थात् १२ लाख मकान शहरी क्षेत्रों में और ३३ लाख मकान ग्रामीण क्षेत्रों में बनाने का कार्यक्रम) हाथ में लिया जाये। शहरी क्षेत्रों में एक मकान के निर्माण की अनुमानित औसत लागत १५,००० रुपये आती है और ग्रामीण क्षेत्रों में ३,००० रुपये। अतः इस कार्यक्रम के २० वर्षीय ढांचे में प्रतिवर्ष २,७९० करोड़ रु० मकानों के निर्माण पर व्यय करना होगा। ये आँकड़े देश में आवास समस्या की विकटता एवं उसके आकार-प्रकार पर स्पष्ट प्रकाश डालते हैं। उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत बनाये जाने वाले किराये के मकानों की नियत उच्चतम लागत (ceiling costs) योजना में स्पष्ट की जा चुकी है (जो कि बम्बई और कलकत्ता से बाहर के स्थानों के लिये १,८५० रु० से लेकर ८,०५० रु० तक तथा बम्बई और कलकत्ता के लिये २,८०० रु० से लेकर १०,००० रु० तक थी)। इस पर लगभग १,५०० करोड़ रु० व्यय होगा। साधनों की कमी को देखते हुये बेरोजगारी पर बनाई गई भगवती समिति ने एक सरलीकृत कार्यक्रम की सिफारिश की है और वह यह कि पांचवी आयोजना की अवधि में ग्रामीण क्षेत्रों में २९२ लाख मकानों का निर्माण किया जाय जिस पर कुल लागत ८७५ करोड़ रु० तथा प्रति मकान औसत लागत लगभग ३,००० रु० आयेगी, इसके अतिरिक्त, पांचवी आयोजना की अवधि में नगरीय क्षेत्रों में १३.५ लाख मकान और बनाये जायें, जिन पर प्रतिवर्ष ४०० करोड़ रु० का अथवा योजनाकाल में २,००० करोड़ रु० का अतिरिक्त व्यय होगा तथा प्रति मकान की औसत लागत

२०,००० रु० बैठेगी। इनमें से ७५ लाख मकान ८०० करोड़ रु० की लागत से सरकारी क्षेत्र में बनाये जाने का सुझाव है।

आवास की लागत को घटाने के लिये कई अनुसंधान किये जा रहे हैं। जनवरी-मार्च १९५४ में नई दिल्ली में एक अन्तर्राष्ट्रीय कम लागत की आवास प्रदर्शनी आयोजित की गई थी जिसमें संसार के विभिन्न देशों में कम लागत के मकान बनाने में जो प्रगति हुई थी उसको दिखाया गया था। देश में सस्ते मकानों को लाभपूर्ण ढंग से निर्माण करने के लिये एक प्रयोगात्मक निर्माण प्रभाग स्थापित किया गया है। सस्ते मकानों के निर्माण के अनुसन्धान को प्रोत्साहित करने के लिये १९५४ में राष्ट्रीय निर्माण संगठन की और १९६३ में रुड़की में केन्द्रीय भवन अनुसन्धान संस्था की स्थापना की गई। इस समय इमारती सामान और श्रमिकों की लागत इतनी ज्यादा हो गई है कि औद्योगिक श्रमिक और कम आय वर्ग के लोगों को इस बात में कठिनाई हो रही है कि वे ऐसी न्यूनतम जगह के लिये भी किराया दे सकें जो जगह उनके स्वास्थ्य और पारिवारिक प्रसन्नता के लिये आवश्यक हो। इसके अतिरिक्त, समस्या इतनी विशाल है कि न केन्द्रीय सरकार और न प्रान्तीय सरकार आवश्यक धन देने का उत्तरदायित्व ले सकती है। भारत सरकार ने समय-समय पर अनेक योजनायें बनाई। परन्तु ये सब योजनायें वित्तीय कठिनाइयों के कारण पूरी न की जा सकी। अतः सरकार द्वारा ही श्रमिकों के आवास की सारी लागत का वहन करने की आशा करना उचित नहीं होगा। उद्योगों की इस समय की अवस्था भी ऐसी है कि वे अपनी वर्तमान आय में से श्रमिकों के कल्याण पर भारी व्यय नहीं कर सकते। अतः हमारा विचार है कि वर्तमान परिस्थितियों में धन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये सरकार की उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजनायें सर्वोत्तम हैं। इस सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण पग जो उठाया गया है वह आवास वित्त निगम की स्थापना है। औद्योगिक संस्थाओं को यदि वे अपने श्रमिकों के लिये कुछ मकान बनायें तो करों में से भी छूट दी गई है। तीसरी आयोजना में भी इस बात का सुझाव था।

गन्दी बस्तियों की समस्या (Problem of Slums)

भारत में लगभग तमाम मुख्य औद्योगिक नगरों में गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिसका कारण यह है कि मकानों के निर्माण के नियमों को लागू करने में ढील रही है। अभी हाल तक श्रमिकों के आवास की अवस्था की ओर से उदासीनता रही है तथा कई शहरों में भूमि के मूल्य में वृद्धि होने से भूस्वामी और मकान मालिकों ने परिस्थिति से पूरा पूरा लाभ उठाया है। निर्धन वर्ग के पास या तो कोई मकान ही नहीं होते अथवा वह शोचनीय व अस्वच्छ परिस्थितियों में गन्दी बस्तियों और झोंपड़ियों में रहते हैं। श्रमिकों को विवश होकर इन बस्तियों में रहना पड़ता है क्योंकि वे इतने निर्धन होते हैं कि अच्छे मकानों में रहने की उनमें सामर्थ्य नहीं होती। शिक्षा की कमी, भीड़-भाड़, दोषपूर्ण आवास

आयोजन या किसी आयोजन के अभाव के कारण ही गन्दी बस्तियां उत्पन्न होती हैं। निस्सन्देह हमारे देश में गन्दी बस्तियाँ निर्धनता का परिणाम है। गन्दी बस्ती निवास के उस क्षेत्र को कह सकते हैं जिसमें अधिकतर निर्धन व्यक्ति रहते हैं और जिसकी दशायें इतनी शोचनीय गिरी हुई तथा दयनीय होती हैं कि उसमें रहने वाला तथा निकटवर्ती व्यक्तियों के स्वास्थ्य कल्याण तथा सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है।

हमारे देश में गन्दी बस्तियों की दशाओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मद्रास की चेरी कलकत्ता की बस्तियां कानपुर के अहाते तथा बम्बई के चाल सभी गन्दी बस्तियों के उदाहरण हैं और श्रम अनुसंधान समिति का कहना है कि यह गन्दी बस्तियाँ संसार भर की गन्दी बस्तियों में भी गई गुजरी हैं। यह गन्दी बस्तियाँ देश का कलंक है और खेद की बात है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने अभी तक इस समस्या की ओर बहुत कम ध्यान दिया। किसी भी ऐसे शहर को स्वस्थ नहीं कहा जा सकता जिसके अन्दर ऐसे घने क्षेत्र हों जिनमें जीवन की न्यूनतम सुविधायें भी न हों और जहां निर्धन व्यक्ति अत्यन्त अमानवीय स्थिति में रह रहे हों। गन्दी बस्तियां राष्ट्रीय सम या है। यदि कोई व्यक्ति गन्दी बस्तियों के कारण किशोरावस्था में अपचारी (Delinquent) हो जाता है अथवा किसी व्यक्ति को क्षय रोग हो जाता है तो वह न केवल स्थानीय वरन् राष्ट्रीय भार बन जाता है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से गन्दी बस्तियों की सफाई के लिये धन व्यय करना श्रेयस्कर है इसकी अपेक्षा कि इन गन्दी बस्तियों से जो समाज को हानि पहुंचती है उसे सहन करते रहें और उनसे मानव जीवन और सम्पत्ति पर जो विनाशकारी प्रभाव पड़ता है उसे भी निरन्तर सहन किया जाये।

समस्त संसार में गन्दी बस्तियों की खतरनाक समस्या के समाधान और उनके दूर करने के लिये सैद्धान्तिक रूप में पग उठाने की आवश्यकता है। अमरीका जैसे प्रगतिशील देश में भी एक पांचवीं स्वतन्त्रता की बात की जाती है अर्थात् गन्दी बस्तियों से छुटकारा पाना। गन्दी बस्तियों को दूर करके उनके स्थान पर उचित मकान बनाये जाने चाहियें चाहे उसकी लागत कुछ भी क्यों न हो क्योंकि ऐसे प्रयत्न राष्ट्र की नींव को दृढ़ बनाते हैं। प्रधानमन्त्री स्वर्गीय पं० नेहरू ने फरवरी १९५२ में जब कानपुर का निरीक्षण किया तो उन्हें इन गन्दी बस्तियों को देखकर बहुत ही धक्का लगा। उन्होंने कहा कि इन बस्तियों को ढा देना चाहिये और तत्काल आग लगा देना चाहिये तथा इसके स्थान पर अधिक अच्छी स्वस्थ दशाओं के अस्थायी मकानों को बना देना चाहिये। उन्होंने संसद् में यह भी कहा कि यह उस सरकार के लिये अपराध है जो कि ऐसी गन्दी बस्तियों को सहन कर लेती है। संसद् सदस्य श्री बी० शिवाराव ने मई १९५२ में लोकसभा में कहा कि अब समस्त देश में गन्दी बस्तियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने का समय आ पहुंचा है। उन्होंने कहा कि नगरपालिकायें या तो कमजोर हैं अथवा उदासीन

है या गन्दी बस्तियों के स्वामियों के शक्तिशाली प्रभाव के कारण कुछ भी करने में असमर्थ हैं। उन्होंने यह भी कहा कि यदि समाज में कोई ऐसा वर्ग है जिस पर किसी प्रकार की दया नहीं की जा सकती तो वह गन्दी बस्तियों का स्वामी ही है।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में यद्यपि गन्दी बस्तियों की सफाई के लिये पृथक् योजना बनाने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया था, परन्तु फिर भी मई १९५६ में ही इस सम्बन्ध में योजना बनाकर लागू की गई। इस योजना के अन्तर्गत, गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए तथा गन्दी बस्तियों में रहने वाले उन लोगों को फिर से बसाने के लिए जिनकी मासिक आय २५० रु० से अधिक न हो, राज्य सरकारों व संघशासित क्षेत्रों को और उनके माध्यम से स्थानीय निकायों को वित्तीय सहायता देने की व्यवस्था की गई। (प्रारम्भ में मासिक आय की यह सीमा बम्बई कलकत्ता और दिल्ली में २५० रु० तथा अन्य नगरों में १७५ रु० थी किन्तु बाद में बढ़ाकर ३५० रु० कर दी गई थी।) केन्द्रीय सहायता की मात्रा योजना की अनुमोदित लागत की ८७.५ प्रतिशत है जिसमें ५० प्रतिशत ऋण के रूप में और ३७.५ प्रतिशत उपदान के रूप में है। (उपदान की मात्रा प्रारम्भ में २५% थी किन्तु सन् १९६६ में बढ़ाकर यह ३७.५% कर दी गई।) लागत का शेष १२.५ प्रतिशत भाग राज्य सरकारें अपने साधनों से उपदान के रूप में दे सकती हैं। मकानों का किराया अनुमोदित निर्माण-लागत के ५०% भाग तक उपदान के रूप में दे दिया जाता है। १ अप्रैल, १९६९ से यह योजना राज्यों को स्थानान्तरित कर दी गई है और राज्य सरकारों को अब इस बात की पूरी स्वतन्त्रता है कि वे इस योजना को इच्छानुसार लागू करें और राज्यों की योजना की नियत सीमा तक चाहे जितनी ही धनराशि इस पर व्यय करें।

द्वितीय आयोजना में गन्दी बस्तियों की सफाई और भंगियों के आवास के लिये २० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। बाद में यह राशि घटाकर १२ करोड़ रुपये कर दी गई परन्तु २० करोड़ रुपये तक की प्रायोजनाओं की स्वीकृति मिल सकती थी। तृतीय आयोजना में २८.६ करोड़ रु० की राशि गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार के लिये रखी गई थी। चौथी आयोजना की प्रारम्भिक रूपरेखा में इस कार्य के लिये ६० करोड़ रु० की व्यवस्था थी। चौथी आयोजना की अन्तिम और पाँचवीं आयोजना की प्रारम्भिक रूपरेखा में गन्दी बस्तियों की सफाई व पुनर्वास के लिये नियत की जाने वाली राशि को राज्यों व संघ शासित क्षेत्रों की आवास योजनाओं की धनराशि में ही सम्मिलित कर लिया था और वह इसलिये, क्योंकि अप्रैल १९६९ में यह योजना राज्यों को ही स्थानान्तरित की जा चुकी थी।

गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार की योजना राज्यों को स्थानान्तरित किये जाने से पूर्व अर्थात् ३१ मार्च १९६९ तक, इस योजना के लिये कुल ५०.१० करोड़ रु० की धनराशि निर्धारित की गई थी किन्तु संघ सरकार द्वारा राज्यों तथा

संघशासित क्षेत्रों को वास्तव में जो राशि वितरित की गई उसकी मात्रा ३४ ३२ करोड रुपये थी। उस अवधि में कुल १,०८,२१५ मकानों के निर्माण की स्वीकृति प्रदान की गई थी परन्तु वास्तव में ६७ ६५७ मकान ही बन सके थे। १ अप्रैल १९६९ से लेकर दिसम्बर १९७२ तक (अर्थात् १९६९-७०, १९७०-७१ व १९७१-७२ के तीन वर्षों में) इस योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारों द्वारा कुल ९४० ६० लाख रु० व्यय किया गया। इसके अतिरिक्त चौथी आयोजना में ४३,५९३ रिहायशी मकानों के निर्माण का लक्ष्य निर्धारित किया गया था किन्तु इन तीन वर्षों की अवधि में दिसम्बर १९७२ के अन्त तक राज्य सरकारों ने ३८,६०५ मकान बनाये थे। दिल्ली में, इस योजना के अन्तर्गत सन् १९६९ तक ११,३२९ किराये के मकान व ५२९ दुकानें तथा सन् १९७० में ३३८४ किराये के मकान बनाने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया था। इस योजना में नगरों तथा कस्बों में पटरी पर सोने वालों के लिये रैन बसेरों (night shelters) के निर्माण का भी प्रावधान किया गया था। दिल्ली में, २२ रैन बसेरों की व्यवस्था की गई है जिनमें ५,००० व्यक्ति रात्रि में विश्राम कर सकते हैं। ऐसे रैन बसेरे अगरतला और अहमदाबाद में भी बनवाये गये हैं जिनमें लगभग ३०० व्यक्तियों को ठहराने की क्षमता है।

गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार की समस्या एक बड़ी विशाल एवं विकट समस्या है। यह भी स्पष्ट है कि इस दिशा में प्रगति बहुत धीमी रही है जिसके कई कारण हैं, जैसे—गन्दी बस्तियों के अधिग्रहण तथा सफाई कार्यक्रमों में लागत बहुत अधिक आती है, भवन-निर्माण सामग्री का अभाव रहता है, गन्दी बस्तियों के रहने वाले नये मकानों में जाना भी नहीं चाहते क्योंकि वे कारखानों से दूर होते हैं और उनका किराया भी अधिक होता है, गन्दी बस्तियों में रहने वाले अनेक लोग बड़े रूढ़िवादी होते हैं और गन्दी बस्तियों में व्यभिचार और निम्न श्रेणी के कई प्रकार के आकर्षण पाये जाते हैं, तथा राजनैतिक दबावों के कारण भी गन्दी बस्तियों के अधिग्रहण में कठिनाइयाँ आती हैं तथा देरी होती है। अब ज्यादा जोर इस बात पर दिया जा रहा है कि गन्दी बस्तियों का सफाया करने के स्थान पर इन बस्तियों के पर्यावरण की दशाओं में सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया जाये।

गन्दी बस्तियों में पर्यावरण सम्बन्धी सुधार (Environmental Improvement of Slums)—सन् १९७० में, भारत सरकार ने **बस्ती सुधार कार्यक्रम** के अन्तर्गत कलकत्ता महानगर क्षेत्र की बस्तियों में आवश्यक सुविधायें मुहैय्या कराने के लिये पश्चिमी बंगाल सरकार को उपदान के रूप में १०० प्रतिशत आर्थिक सहायता देने का निश्चय किया। इस कार्यक्रम के द्वारा बस्तियों में पीने के पानी, सामूहिक शौचालय व स्नानगृह, मल तथा गन्दे पानी की निकासी की व्यवस्था और बिजली की बत्तियों से युक्त सड़कों व गलियों आदि की व्यवस्था की जाती

है। कलकत्ते में इस कार्यक्रम के लिए ३५ करोड़ रु० की धनराशि निर्धारित की गई थी जिसमें से २ करोड़ रु० पहले ही व्यय किए जा चुके हैं।

कलकत्ते जैसे बस्ती सुधार कार्यक्रम के लिए, अब केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को १००% अनुदान देती है ताकि राज्य सरकारें ८ लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले बम्बई, दिल्ली, मद्रास, हैदराबाद, अहमदाबाद, बंगलौर, कानपुर, पूना, नागपुर तथा लखनऊ जैसे नगरों की गन्दी बस्तियों के पर्यावरण में सुधार कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केन्द्रीय क्षेत्र में अप्रैल १९७२ में एक नई योजना चालू की गई है जिसे 'गन्दी बस्तियों के पर्यावरण में सुधार की केन्द्रीय योजना' कहा जाता है। १९७३–७४ में दस और नगर अर्थात् कलकत्ता, कोचीन, कटक, गोहाटी, इन्दौर, जयपुर, लुधियाना, पटना, रोहतक और श्रीनगर इस योजना में सम्मिलित किए गए। मार्च १९७४ के अन्त तक ८५८ परियोजनाओं के लिए २८.६० करोड़ रु० स्वीकृत किए गए थे। इन परियोजनाओं के लिए ४०.२३ करोड़ रु० राज्यों को दिया गया था जिसमें से मार्च १९७४ तक १८.२१ करोड़ रु० खर्च हुआ था। जुलाई १९७२ में आवास मन्त्रियों के सम्मेलन में यह सिफारिश की गई थी कि इस योजना को उन राज्यों में कम से कम एक नगर तक और विस्तृत कर दिया जाए जो कि अब तक इस योजना के अन्तर्गत नहीं आए थे और ३ लाख तथा इससे अधिक आबादी वाले नगरों को इस योजना में सम्मिलित करने के लिए प्रयास किए जाएं।

आयोजना आयोग ने सामाजिक कल्याण के लिए एक कार्य दल (Working Group) की नियुक्ति की थी। इस कार्य दल ने गन्दी बस्तियों की सफाई के लिये डॉ० बुलनरा की अध्यक्षता में एक उपसमिति बनाई। इसके अनुसार जिस गति से इस समय प्रगति हो रही है उसको देखते हुए देश में गन्दी बस्तियों की सफाई के लिए २२ आयोजनायें अर्थात् ११० वर्ष चाहिए, और वह भी तब, जब गन्दी बस्तियाँ ऐसी ही बनी रहें जैसी अब हैं। यह अनुमान लगाया गया था कि नगरों की गन्दी बस्तियों में से ऐसे मकानों की संख्या, जो रहने के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त हो गये थे, ११५ लाख थी। कार्य दल ने यह सुझाव दिया कि गन्दी बस्तियों की समस्या का तीन प्रकार से समाधान किया जाना चाहिए। गन्दी बस्तियों की सफाई, गन्दी बस्तियों में सुधार तथा इस बात की रोकथाम कि गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न न हो सकें। गन्दी बस्तियों की सफाई में बहुत समय चाहिये और वह समस्या एक पृथक समस्या बन जाती है। इस समय गन्दी बस्तियों के सुधार पर अधिक ध्यान देना चाहिये। इनमें आधुनिक सुविधाओं की व्यवस्था करनी चाहिये, जैसे—सड़क, जल-मल निकास की व्यवस्था, चिकित्सा तथा शिक्षा की सुविधायें आदि। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि नई गन्दी बस्तियाँ उत्पन्न न हो सकें। तृतीय आयोजना में कहा गया था कि ऐसे नगरों को जिनकी जनसंख्या एक लाख या उससे अधिक है, प्राथमिकता देनी चाहिये और उनके लिए वृहत्तर योजनायें (Master Plans) बनानी चाहिए। बाद में ५०,००० और फिर २५,००० जनसंख्या वाले नगरों को योजना के अन्तर्गत ले

आना चाहिये। तृतीय आयोजना मे गन्दी बस्तियों की समस्या के बारे मे यह कहा गया था कि गन्दी बस्तिया को दो श्रेणियो मे बांटा जा सकता है--एक तो वह जिनकी पूर्णत सफाई कर देनी चाहिये और नई बस्ती बना देनी चाहिये, तथा दूसरी वे जिनमे वातावरण एव दशाओं मे सुधार किया जा सकता है। इन दूसरी प्रकार की बस्तियो के स्वामी अगर सुधार नही करते है तब बस्तियों मे सुधार स्थानीय निकायो द्वारा कर देना चाहिये और उसकी लागत मालिकों से वसूल कर लेना चाहिये। गन्दी बस्तियों की सफाई के सबसे अधिक प्रयत्न छ मुख्य नगरो, अर्थात् कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, देहली कानपुर और अहमदाबाद मे करने चाहिये। एक लाख अथवा अधिक जनसख्या वाले नगरो को प्रमुखता देनी चाहिये। भगियो और झाड़ू देने वालो की आवास व्यवस्था को भी प्राथमिकता देनी चाहिये। सड़कों की पटरियों पर रहने वालो के लिये और ऐसे श्रमिकों के लिये जिनके परिवार नही है जब तक कोई और प्रबन्ध न हो रात्रि विश्राम गृह और शयनशालायें बनानी अत्यन्त आवश्यक है।

चौथी आयोजना की रूपरेखा मे कहा गया था कि गन्दी बस्तियो की सफाई की योजनाओं के क्षेत्र को विस्तृत किया जाना चाहिये और गन्दी बस्तियो की सफाई के काय म तीव्रता लाने के लिय यह आवश्यक है कि राज्य सरकारें भी वैसे ही विधान बनायें जैसा कि सन् १९५६ मे सघीय क्षेत्रो के लिये गन्दी बस्ती (सुधार तथा सफाई) अधिनियम बनाया गया था (देखिये इसी अध्याय मे पीछे)। नौ राज्यो ने तो पहले ही ऐसा विधान लागू कर दिया है। जिन क्षेत्रो मे गन्दी बस्तियो का सफाया करने म समय लगने की सम्भावना है, वहाँ गन्दी बस्तियो मे सुधार के कार्यक्रम तेजी से लागू किये जा रहे है।

गन्दी बस्तियो को समाप्त कर देना वैसे तो एक सरल कार्य है। टूटे फूटे जीर्ण शीर्ण झोंपडो को गिरा देना कोई बडा इजीनियरिंग का काम नही है और न ही गन्दगी को दूर करना कठिन है। वास्तव मे ध्येय तो उस मानवता का उद्धार करना है जिसका गन्दी बस्तियाँ ज्वलन्त रूप हैं। बिना मकान वाले सभी व्यक्तियो के लिये उचित आवास की व्यवस्था करने मे बहुत अधिक धन की आवश्यकता होगी। इन बस्तियों का निवासी अपनी कम आय के कारण अच्छे मकान का किराया नही दे सकता। अत हम गन्दी बस्तियो की सफाई पर ही पृथक् रूप से विचार नही कर सकते। यह समस्या नि सन्देह आवास नीति का ही भाग है क्योकि जिस आवास व्यवस्था का हम उल्लेख करने है वह उस वर्ग के लिये है जो कि साधारणत गन्दी बस्ती मे रहते हैं। अत आवास की प्रत्येक योजना म, कम से कम बडे-बडे औद्योगिक शहरो मे, गन्दी बस्तियों की सफाई की भी व्यवस्था होनी चाहिये जिसमे कि जब भी कोई आवास क्षेत्र तैयार हो, गन्दी बस्तियो मे वास करने वाले व्यक्तियों को इन नये मकानो मे ले जाने के लिये पग उठाये जा सकें और सम्बन्धित गन्दी बस्तियो के लिये भी कार्य किया जा सके। इसके साथ-साथ उन मूल कारणों को भी, जो गन्दी बस्तियों को जन्म देते है, दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके कारण अनेक और

विभिन्न हैं। कुछ कारण स्पष्ट हैं जबकि कुछ प्रत्यक्ष नहीं है। अप्रत्यक्ष कारण गन्दी बस्तियों में निवास करने वाले निवासियों की आर्थिक, मानसिक और शारीरिक कमियों से सम्बन्धित हैं। यह विषय समाजशास्त्र का है। परन्तु फिर भी यह बात इस आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करती है कि एक मानवीय वातावरण बनाने के लिये कुछ सामाजिक स्तरों की स्थापना करना और उनको लागू करने के लिये पग उठाना आवश्यक है। इसलिये गन्दी बस्तियों की समस्या का समाधान करने के लिये साधारण उपायों से काम नहीं चलेगा, वरन् कुछ क्रान्तिकारी उपाय अपनाने पड़ेंगे।[1]

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशें

(Recommenndations of the National Commission on Labour)

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिश है कि औद्योगिक श्रमिकों तथा समाज के कमजोर वर्गों के लिये जो उदारतापूर्ण आवास योजना प्रचलित है वह आगे भी जारी रहनी चाहिये। मालिकों को राजकोषीय एवं मौद्रिक प्रेरणाएं प्रदान की जानी चाहिये ताकि वे इस योजना में सक्रिय रूप से भाग ले सकें और मकानों के निर्माण पर यथेष्ट धन व्यय कर सकें। आयोग ने श्रम कल्याण समिति के इस सुझाव पर भी सहमति प्रकट की, कि इस योजना में कुछ अन्य वर्गों के श्रमिकों को भी सम्मिलित किया जाए, जैसे कि फैक्ट्रियों की तरह काम करने वाले सरकारी संस्थानों के श्रमिक, सरकारी औद्योगिक उपक्रमों में काम करने वाले श्रमिक तथा ड्राइवर, सहायक तथा अग्निशामक दल जैसे वर्गों के श्रमिक। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि सभी राज्यों में आवास बोर्डों की स्थापना की जानी चाहिये और जैसी कि तृतीय आयोजना में व्यवस्था की गई थी, एक केन्द्रीय आवास बोर्ड भी बनाया जाना चाहिये। केन्द्र सरकार आवास बोर्डों को जो ५०% उपदान के रूप में और ५०% ऋण के रूप में वित्तीय सहायता देती है, वह भी बराबर जारी रहनी चाहिये। इन बोर्डों की स्थापना काफी व्यापक आधार पर की जानी चाहिये और बोर्ड द्वारा बनाये गये मकानों के किरायेदारों को इस बात का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये कि वे किराया-खरीद पद्धति (Hire Purchase System) के आधार पर उन्हें खरीद लें। राज्य सरकारों तथा सभी बड़े नगरों व कस्बों की स्थानीय निकायों को इस बात का उत्तरदायित्व लेना चाहिये कि वे प्रत्येक नगर की मास्टर प्लान के अनुसार मकानों के निर्माण के लिये यथेष्ट भूमि की व्यवस्था व विकास करें। राज्य सरकारों को चाहिये कि वे औद्योगिक श्रमिकों में सहकारी आवास समितियों की स्थापना व विकास को प्रोत्साहन दें और उन्हें बिना अधिक औपचारिकताओं (Formalities) को पूरा किये ही भूमि मुहैय्या करायें। इन मकानों का किराया भी श्रमिकों की कमाई के १०% भाग से अधिक नहीं होना चाहिये। आयोग ने इस बात पर भी जोर दिया कि श्रमिकों में रहन-सहन के गुणात्मक

1 S C Agarwal Industrial Housing in India

पहलू के विकास को प्रोत्साहन दिया जाए। आयोग ने खानों को छोड़कर अन्य उद्योगों के मालिकों पर इस बात की वैधानिक अनिवार्यता को लागू करने का समर्थन नहीं किया कि वे अपने श्रमिकों को मकान उपलब्ध करायें।

पंचवर्षीय आयोजनाओं में आवास व्यवस्था
(Housing in the Five Year Plans)

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आवास समस्या से सम्बन्धित कुछ विशेष सिफारिशें की गई थी जो निम्नलिखित विषयों पर थी—आवास नीति, आवास स्तर, लागत का अनुमान, गन्दी बस्तियों की सफाई नगर नियोजन, ग्रामीण आवास, आवास अनुसंधान आदि। इन विषयों के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशों को लागू करने के लिए कानून बनाने का भी सुझाव था। आयोग के द्वारा आवास के लिए ४८ ६८ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। इसमें से केन्द्रीय सरकार का व्यय ३८ ५ करोड़ रुपये और राज्य सरकारों का व्यय १० १८ करोड़ रुपये होने को था। औद्योगिक श्रमिकों के मकानों को प्राथमिकता दी गई थी, जिसके लिये केन्द्रीय सरकार को सहायता देनी थी और राज्य सरकारों को इस सम्बन्ध में ग्रामीण क्षेत्रों की ओर ध्यान देना था। परन्तु औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिए केवल १३ २८ करोड़ रुपये व्यय किये गये और प्रथम आयोजना काल में केवल ४३,८३१ मकान बनाये जा सके थे।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में औद्योगिक श्रमिकों के आवास की एक योजना भी थी, जिसके आधार पर उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजना बनाई गई जो आज तक चालू है। इस योजना के अन्तर्गत ८५ प्रतिशत मकान बनाने का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है (केन्द्रीय सरकार द्वारा ५० प्रतिशत उपदान तथा ५०% ऋण द्वारा) और १५% मकान मालिकों द्वारा बनाने की व्यवस्था है (२५ प्रतिशत उपदान और ५०% ऋण द्वारा)। शेष १३ ५ प्रतिशत मकान सहकारी समितियों द्वारा (२५ प्रतिशत उपदान और ६५ प्रतिशत ऋण द्वारा) बनाये जाते थे। इस योजना का ऊपर विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है। भवन निर्माण के लिए अन्वेषणों तथा सभी आवास एजेन्सियों द्वारा उनके लागू करने के कामों को समायोजित करने के लिए आयोजना में एक राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन की स्थापना की सिफारिश की गई थी, जिसकी स्थापना की जा चुकी है। आयोजना में एक केन्द्रीय आवास बोर्ड तथा एक क्षेत्रीय आवास बोर्ड की स्थापना करने की तथा नगर नियोजन के लिए अधिनियम बनाने तथा भूमि अधिग्रहण अधिनियम में संशोधन करने की भी सिफारिश की गई थी।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में आवास हेतु १२० करोड़ रुपयों का आयोजन किया गया था जिसको निम्न प्रकार से विभाजित किया गया था — उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास-व्यवस्था ४५ करोड़ रुपये, कम आय वाले लोगों के लिए आवास हेतु ४० करोड़ रुपये, ग्रामीण आवास १० करोड़ रुपये, गन्दी

बस्तियाँ हटाने और भगियो के लिये आवास २० करोड रुपये मध्यम वर्ग के आवास के लिये ३ करोड रुपये बागान आवास के लिये २ करोड रुपये। आयोजन में गन्दी बस्तियों की सफाई को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया था और इसके लिये यह सुझाव था कि केन्द्रीय सरकार लागत का २५% उपदान के रूप में तथा ५० प्रतिशत ऋण के रूप में जो कि ३० वर्षों में भुगतान किया जा सकता है धन दे तथा लागत का शेष २५% राज्य सरकारों द्वारा उपदान के रूप में दिया जाय। आयोजना में यह भी बताया गया था कि प्रथम आयोजना काल में नगरों में १३ लाख मकान बनवाये गये थे जिनमें से ६ लाख निजी क्षेत्र में तथा शेष केन्द्रीय सरकारों राज्यों तथा सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा बनाये गये थे। द्वितीय आयोजना के लिए अनुमान था कि १,२०० करोड रुपये की लागत से १८ लाख मकान बनाये जायेंगे जिनमें से ८०० करोड रुपये की लागत के ८ लाख मकान निजी क्षेत्र में बनाये जायेंगे। आयोजना में औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिये सहकारी आवास समितियों के विकास को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था। १९५८-५९ में योजना की धीमी प्रगति होने के कारण स्वीकृत धनराशि १२० करोड रुपए से घटाकर ८४ करोड रुपये और उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास की २७ करोड रुपये कर दी गई थी।

द्वितीय आयोजना की अवधि में जीवन बीमा निगम ने भी इस दिशा में पग उठाया और मध्यम आय वाले वर्गों को मकान बनाने के लिये तथा राज्य सरकारों को अल्प वेतन भोगी कर्मचारियों के लिये किराये के मकान बनाने के लिये धन देना आरम्भ किया।

आवास के सम्बन्ध में तृतीय पचवर्षीय आयोजना में कहा गया था कि जन संख्या में वृद्धि के कारण आवास की कठिनाइयों की गम्भीरता कई वर्षों तक चलती रहेगी। १९५१-६१ के मध्य २० हजार से अधिक आबादी वाले नगरों की जनसंख्या में ४० प्रतिशत वृद्धि हुई थी। जनसंख्या में इस प्रकार की वृद्धि का तीसरी और उसके बाद आने वाली पचवर्षीय आयोजनाओं में आवास कार्यक्रम पर मोटे तौर से तीन प्रकार से प्रभाव हो सकता है। पहला यह है कि आवास नीतियों को आर्थिक विकास और औद्योगीकरण तथा अगली एक या दो दशाब्दी में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को ध्यान में रखकर निर्धारित करना होगा। इस कारण उद्योगों के स्थान निर्धारण और वितरण में प्रस्तावों को आवास की समस्या के समाधान के लिये महत्त्व बढता जाएगा। दूसरा यह है कि सरकारी सहकारी अथवा गैर सरकारी सभी एजेंसियों के प्रयत्नों में समन्वय करना आवश्यक हो जाता है। शहरी क्षेत्रों के लिये बेहतर योजनायें बनाने की आवश्यकता और भी बढ गई है क्योंकि विभिन्न एजेन्सियों को दायित्व के लिये व्यवस्थित रूप से एक सुस्पष्ट लक्ष्य की दिशा में ले जाने और उनके योगदान को बढाने का और कोई तरीका नहीं है। तीसरी बात यह है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी होगी कि समस्त आवास कार्यक्रम

चाहे वे सरकारी क्षेत्र में हों या गैर-सरकारी क्षेत्र में, इस प्रकार होने जायें कि उनसे समाज के कम आय वाले वर्गों की आवश्यकता की पूर्ति हो। पहली आयोजना में आवास कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक श्रमिकों और कम आय वाले वर्गों के लिये मकान बनाना था। दूसरी आयोजना में इस कार्य क्रम में गन्दी बस्तियों की सफाई और सुधार के लिए, बागान श्रमिकों के आवास के लिये गाँवों में मकान बनाने के लिए और भूमि अधिग्रहण और विकास करने की योजनायें भी सम्मिलित कर ली गयी थीं। इन कार्य-क्रमों को तीसरी आयोजना में जारी रखना था और बढ़ाना था, भूमि अधिग्रहण और विकास करने के काम पर बहुत अधिक जोर दिया जाना था क्योंकि यही सब आवास कार्य-क्रमों की सफलता का आधार है। समाज के निर्धन वर्गों, गोदी कर्मचारियों और सड़क की पटरियों पर रहने वालों के लिये मकान बनाने के नए कार्य-क्रम भी आरम्भ किये जाने थे।

मोटे तौर पर यह अनुमान था कि तीसरी आयोजना काल में मन्त्रालयों के आवास कार्य-क्रमों के अन्तर्गत ६ लाख मकान बनाए जायेंगे जबकि दूसरी आयोजना काल में कुल ५ लाख मकान बनाने का कार्य-क्रम था। तीसरी आयोजना में आवास और शहरी विकास कार्य क्रमों के लिए १४२ करोड़ रुपये रखे गये थे जबकि दूसरी आयोजना में इन कार्य-क्रमों पर ८४ करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान था। इसके अलावा यह आशा थी कि जीवन बीमा निगम भी आवास कार्य के लिए लगभग ६० करोड़ रुपया दे सकेगा। विभिन्न आवास योजनाओं में तीसरी आयोजना के अन्तर्गत कुल धन राशि निम्न प्रकार से विभाजित की गई थी :—

योजना	व्यय (करोड़ रुपये में)
(1) निर्माण, निवास और सम्भरण मन्त्रालय द्वारा :—	
उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास	२६ ८
गोदी श्रमिक (Dock Labour) आवास	२ ०
गन्दी बस्तियों की सफाई, सुधार तथा रात्रि का विश्राम-गृह	२८ ०
कम आय वाले वर्गों के लिए आवास	३५ २
मध्य आय वाले वर्गों के लिये केन्द्रीय क्षेत्रों में आवास	२ ५
ग्रामीण आवास	१२ ३
बागान श्रमिक आवास	० ३
भूमि अधिग्रहण तथा विकास	६ ५
आवास सम्बन्धित अनुसंधान, प्रयोग तथा आँकड़े	१ ०
योग	११४ ६

(ii) अन्य योजनायें —

राज्य सरकारों द्वारा आवास योजनायें	२३
नगर नियोजन तथा नगर निर्माण योजनायें	५४
शहरी निर्माण योजनायें	१२३
योग	२००
(i) तथा (ii) के अन्तर्गत योजनाओं का योग	१४२०
ऐसी योजनायें जिनके लिए वित्तीय सहायता जीवन बीमा निगम से प्राप्त होने की आशा थी।	६००
कुल योग	२०२०

तीसरी आयोजना में आवास निर्माण के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित थे —

	मकानों की संख्या
उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजना	७३,०००
कम आय वाले वर्गों के लिये आवास	७४,०००
गन्दी बस्तियों की सफाई	१,००,०००
ग्रामीण आवास	१,२५,०००

उपरोक्त आवास कार्यक्रमों के अतिरिक्त, कुछ अन्य आवास कार्यक्रम भी थे जिनके लिये वित्त-व्यवस्था की थी। यह अनुमान लगाया गया था कि कोयला और अभ्रक खानों की कल्याण निधियों में से १४ करोड़ की लागत से तीसरी आयोजना काल में ६० हजार मकान बनाये जायेंगे तथा रेलवे और अनेक केन्द्रीय मन्त्रालय भी अपने-अपने आवास कार्यक्रम आरम्भ करेंगे और २०० करोड़ रुपये की लागत से अपने कर्मचारियों के लिये ३० हजार मकान बना सकेंगे। अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिये जो कार्यक्रम थे उनमें आवास भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र में भी अब अधिक से अधिक मकान बनाये जा रहे थे। इनकी संख्या का सही अनुमान लगाना कठिन था। पहली आयोजना में निजी आवास और निर्माण कार्यों पर लगभग ९०० करोड़ रु० की पूंजी के निवेश का अनुमान था। दूसरी आयोजना में निजी क्षेत्र में आवास कार्यक्रमों पर लगभग १,००० करोड़ रुपये की पूंजी लगाई गई थी और तीसरी आयोजना में लगभग १,१२५ करोड़ रुपये की निजी पूंजी लगने का अनुमान था।

विभिन्न राज्यों में जो आवास बोर्ड बने हैं वे केवल राज्यों के आवास कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिये कार्य करते हैं। तीसरी आयोजना में इस बात का सुझाव था कि एक केन्द्रीय आवास बोर्ड की स्थापना की जाये। इस प्रकार

(करोड रु०)

योजना	तृतीय आयोजना मे व्यय			सन् १९६६-६९ का व्यय		
	आयोजना निधिया	जीवन बीमा निगम निधिया	योग	आयोजना निधिया	जी० बी० नि० निधिया	योग
१ उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास	२२ ४०	—	२२ ४०	९ २९		
२ कम आय वाले वर्गों का आवास	२१ ९५	१३ ६६	३५ ६१	८ ४४		
३ बागान श्रमिक आवास	० १५	० ११	० २६	० १७		
४ ग्रामीण आवास प्रयोजनाए	४ २२	० ७३	४ ९५	२ ५६		
५ गन्दी बस्तियो की सफाई	२६ ९०	—	२६ ९०	११ ५२	३५ ००	
६ भूमि अधिग्रहण व विकास	९ १२	१५ ३४	२४ ४६	—		
७ मध्यम आय वाले वर्गों का आवास	२ ५६	१९ ९२	२२ ४८	१ ५४		
८ राज्य सरकारो के कर्मचारियो के लिये किराया आवास योजना	—	१० २४	१० २४	—		
९ गोदी श्रमिक आवास	० १६	—	० १४	० ३२		
१० प्रायोगिक आवास तथा आकडे	१ ००	—	१ ००	० ३९		
११ कार्यालय तथा रिहायशी आवास	२८ ५०	—	२८ ५०	१५ ७५		
	११६ ९४	६० ००	१७६ ९४	४९ ९९	३६ ००	८५ ९९

स्रोत चौथी पचवर्षीय आयोजना (१९६९ ७४), पृष्ठ ४०७ ।

के बाड म आवास के लिय मिलन वाली अतिरिक्त निधि निर्माण काय म लगाई जा सकती तथा आसान किश्तो पर ऋण मिलन का प्रात्साहित किया जा सकता। ऋण दन की पद्धति म भी सुधार होगा और यह केन्द्रीय बाड मकानो का वधक रखन की उचित व्यवस्था क लिय प्रबन्ध कर सकता है।

उपदानप्राप्त आवास याजना खादी श्रमिको क लिय आवास योजना, बागान श्रमिको क लिय आवास याजना और गन्दी बस्तियो की सफाई और सुधार क लिय जा तीसरी आयोजना म कायक्रम थ उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ग्रामीण आवास याजना क लिय १२ ७ करोड रुपय की व्यवस्था थी इसम स ५ करोड रुपय भूमिहीन कृषि श्रमिको क आवास क लिय निर्धारित किय गय थ।

पहली और दूसरी पचवर्षीय आयोजना की अवधि म राज्यो का १११ ५० करोड रु० की धनराशि आवास समस्या के समाधान क लिय दी गई थी। इसम ६४ ३६ करोड रु० तो आयोजना निधियो म दिय गय थ और १७ १४ करोड रु० जीवन बीमा निगम द्वारा। इस अवधि म कुल ३ ०० १७६ मकानो क निर्माण की स्वीकृति प्रदान की गई थी जिसम स लगभग १ ६४ ५०० मकान बन थ। तृतीय आयोजना काल म १२२ करोड रु० की धनराशि आयोजन निधियो म दी गई थी। इसक अतिरिक्त इसी अवधि म ६० करोड रु० जीवन बीमा निगम द्वारा भी दिय गय थ। आयोजना निधि म स दी गई १२२ करोड रु० की रकम म स केवल ८६ करोड रु० अर्थात कुल प्रावधान का केवल ७०% भाग ही वास्तव म खर्च हुआ था। किन्तु जीवन बीमा निगम द्वारा निर्धारित सम्पूर्ण धनराशि राज्यो द्वारा निकाल ली गई थी। तृतीय आयोजना काल म यह आशा थी कि लगभग ४ लाख मकानो का निर्माण होगा किन्तु वास्तव म २ लाख मकान ही बन सक थ। सन् १९६७-६८ का वार्षिक आयोजना की अवधि म २३ ६१ करोड रु० की कुल धनराशि नियत की गई थी किन्तु वास्तविक व्यय की मात्रा २४ ०६ करोड रु० रही। सन १९६८ ६९ म इस मद क लिय नियत व्यय २० २४ करोड रु० था।

गत पृष्ठांकित तालिका तृतीय आयोजन और वार्षिक आयोजनाओ की अवधि म इस दिशा म किय गय व्यय का स्पष्ट करता है।

अग्राङ्कित आकडो म प्रकट होता है कि चौथी आयोजना की अवधि म राज्यो तथा सघशासित क्षेत्रो म आवास क लिय जहा १२४ ८० करोड रु० की व्यवस्था की गई थी वहा इस मद का सम्भावित व्यय १८० ८० करोड रु० रहा। आवास योजना क लिय नियत धनराशि म कटौती और पूरक वृद्धिया की गई जैसे सन १९७० म स्थापित आवास व नगरीय विकास निगम द्वारा राज्य सरकारो व आवास बोर्डों को ९० करोड रु० दिय गय। इसक अतिरिक्त १० ०५ करोड रु० की सहायता जीवन बीमा निगम स प्राप्त हुई तथा ३३ करोड रु० बाजार ऋणो म प्राप्त हुय। इस दिशा म केन्द्रीय क्षेत्र म किया गया व्यय ८८ ६ करोड रु० होन की आशा है जिसम भूमिहीन कृषि श्रमिको क मकानो की जगह क लिय निर्धारित १२ करोड रु० भी सम्मिलित हैं। इन सभी व्यवस्थाओं क अलावा इस लोक क तारा प्रतिरक्षा, पत्तन

प्रबन्ध समिति (Port Trusts) तथा सरकारी उद्यमों जैसे केन्द्रीय विभागों द्वारा अपने कर्मचारियों के आवास पर भी ३५० करोड़ रु० व्यय किये जाने की सम्भावना है। आवास के लिये गैर-सरकारी क्षेत्र में जो धन लगाया गया है उसके विश्वस्त आंकड़े तो उपलब्ध नहीं हैं परन्तु जैसा कि चौथी आयोजना में स्पष्ट किया गया है इस दिशा में सम्भावित निवेश २ १४० करोड़ रु० से कम नहीं होगा।

(करोड़ रु०)

–	चौथी आयोजना के प्रावधान	सम्भावित व्यय	३१-३-७३ तक बनाये गये मकानों की संख्या
(क) राज्य तथा संघशासित क्षेत्र			
१ उपदानप्राप्त औद्योगिक विकास	१२४ ४० (१-८)	२१ ००	१६ ३४३
२ गन्दी बस्तियों की सफाई व सुधार		२५ ८०	१४ ०७३
३ अल्प आय वाले वर्गों का आवास		३५ ८०	३६ ५८१
४ मध्यम आय वाले वर्गों का आवास		२९ ९०	९,३२६
५ किराये के आवास		९ ६०	२ ४३९
६ भूमि अधिग्रहण तथा विकास		१४ १०	—
७ ग्रामीण आवास		५ ८०	अप्राप्त
८ अन्य		७ ८०	—
योग (१)	१२४ ४०	१४० ८०	७८ ७६२ (१९७३ ७४ के लिये ३०,०००)
(ख) केन्द्रीय क्षेत्र			
१ केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिये रिहायशी आवास वा केन्द्रीय पूल। कार्यालय	३० ००	२५ ००	६ ०००
२ आवास तथा नगरीय विकास निगम का ईक्विटी पूंजी	१० ००	६ ००	—
३ बागान श्रमिक आवास	५ ००	१ ७५	२,०००
४ गोदी श्रमिक आवास	२ ५०	० ७६	६२४
५ तमिलनाडु में छेददार कंक्रीट फैक्ट्री	२ ६०	२ ६०	—
६ प्रयोगात्मक आवास	० ३५	० ३१	—
७ आवास आंकड़े	० ३५	० २६	—
योग (२)	४७ ८०	३६ ६८	८,६२४
८ भूमिहीन कृषि श्रमिकों को मकान की जगह देने की योजनाएं		१२·००	
योग		४८ ६८	–

स्रोत पांचवीं पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा (१९७४-७९), पृष्ठ २६६।

चौथी पचवर्षीय आयोजना में आवास के लिए जो धनराशियाँ नियत की गई थी उनके तथा इस अवधि में किये गये सम्भावित व्यय के आँकड़े गत तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं।

पाँचवी पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में आवास के लिए प्रस्तावित व्यय की मात्रा निम्न तालिका में दिखाई गई है—

(करोड़ रु०)

कार्यक्रम	प्रस्तावित व्यय
(क) राज्यों तथा सघशासित क्षेत्रों की योजनायें	
१ आवास योजनायें	२३४ ८४
२ न्यूनतम आवश्यकताओं के कार्यक्रम के एक अंग के रूप में भूमिहीन कृषि श्रमिकों के लिए गांवों में आवास के लिए जगह	१०८ १६
योग	३४३ ००
(ख) केन्द्रीय क्षेत्र—	
१ केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के लिए रिहायशी मकान तथा कार्यालय	१०० ००
२ आवास तथा नगरीय विकास निगम	६० ००
३ भवन सामग्री का उत्पादन ४ भवन सामग्री के उत्पादन व उसमें प्रशिक्षण के लिए अग्रगामी प्रयत्न	३५ ००
५ विस्तार, अनुसंधान तथा विकास ६ ग्रामीण आवास का विस्तार ... ... ७ आवास सम्बन्धी आँकड़े	४ ००
८ बागान श्रमिकों के लिए उपदानप्राप्त आवास योजनायें.	५ ००
९ खादी श्रमिकों का आवास	१ १६
१० हिन्दुस्तान आवास फैक्ट्री	३ ००[1]
योग	२३७ १६
कुल योग	५८० १६

१ इसमें संस्थागत निधियाँ और बाजार उधार सम्मिलित हैं।

स्रोत पाँचवी पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा (१९७४-७९), पृष्ठ २६२

क निवेश : (Investment)

करोड़ रु० में

	प्रथम आयोजना	द्वितीय आयोजना	तृतीय आयोजना	तीन वार्षिक योजनायें (१९६६-६९)	चौथी आयोजना	१९७४-७८
१	२	३	४	५	६	७
१. आवास आयोजना द्वारा	४८	८०	११०	८०	१४१	४६४
२. सार्वजनिक आवास पर कुल व्यय (उपरोक्त न० १ सहित)	२५०	३००	४२५	२५०	६२५	७६५
३. गैर-सरकारी क्षेत्र का व्यय	६००	१,०००	१,१२५	६००	२,१३५	३,६४०

ख : भौतिक उपलब्धि (मकानों की सख्या)

१	२	३	४	५	६	७
१. उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास	४३,८३४	५६,१६६		६५ ६२३	१६,३४३	१,७४२
२ कम आय वर्ग के लिए आवास	३,९३०	४९,०७०		८२,१९६	३६,५८१	७१,८४३
३. मध्यम आय वर्ग के लिए आवास	—	५००		१८,५४०	९,३२६	१४,१३२
४. ग्रामीण आवास परियोजना	—	३,०००		४०,८९२	१७,५५५	४,७९२
५ गन्दी बस्तियों की सफाई तथा पुन आवास	—	१८,०००		५१,५५६	१४,०७३	३१,८५१
६. किराये के लिए आवास	—	७३५		१७,३००	२,४३९	४,३२८
७ बागान श्रमिकों के लिए आवास	—	३००		१,३१४	३,१३५	४,८६६
८. ग्रामीण मकानो के लिए स्थल (लाख में)	—	—		—	५ ००	६८ ००

स्रोत पचवर्षीय आयोजना (१९७८-८३) की रूपरेखा, पृष्ठ २४५

१९७८-८३ के लिए बनाई गई पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में कहा गया था कि भारत में मकानों की कमी की समस्या के संख्यात्मक (quantitative) तथा गुणात्मक (qualitative) दोनों ही पहलू विचारणीय हैं। पाँचवी पंचवर्षीय आयोजना के प्रारम्भ में १.५६ करोड़ मकानों की कमी का अनुमान था—११८ करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों और ३८ लाख शहरी क्षेत्रों में। गुणात्मक दृष्टि से उस समय मकानों में पाई जाने वाली आवश्यक सुविधाओं—जैसे कि जलपूर्ति, पानी की निकासी तथा वातावरण एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी दशाओं की स्थिति सन्तोषजनक नहीं थी। संख्यात्मक दृष्टि से भी मकानों की कमी हर वर्ष बढ़ ही रही है। इसका कारण यह रहा है कि मकानों के निर्माण की गति जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार से पिछड़ती रही है। विगत पाँच आयोजनाओं की अवधि में इस सम्बन्ध में जो कार्य हुआ, उसका विवरण पृष्ठ ३२९ व ३३० पर दी गई तालिकानुसार है—

उपसंहार (Conclusion)

इस प्रकार आवास की समस्या सरल नहीं है और औद्योगिक श्रमिकों की आवास समस्या का सन्तोषजनक ढंग से सुलझाने के लिये अनेक सैद्धान्तिक बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। समाजवादी विचारधारा वाले व्यक्ति सम्भवतः आवास के सम्बन्ध में राज्य द्वारा अधिक हस्तक्षेप एवं नियन्त्रण पर जोर देते हैं और श्रम अनुसन्धान समिति ने भी आवास के सम्बन्ध में राजकीय नियन्त्रण पर जोर दिया था। प्रत्येक देश में सरकार ने जनता की सामाजिक आवश्यकताओं में अधिक से अधिक हस्तक्षेप करने की नीति को अपनाया है और निर्धनों के आवास का प्रबन्ध करना भी वैसा ही आवश्यक समझा गया है जैसा कि सरकार द्वारा चिकित्सा एवं अन्य सेवाओं की व्यवस्था करना है। फिर भी इस समय सरकार की कठिनाइयाँ बहुत अधिक हैं और इसमें सन्देह है कि सरकारी कर्मचारियों द्वारा आवास व्यवस्था का प्रबन्ध कुशलतापूर्वक किया जा सकेगा। अतः वर्तमान समय में सरकार ही पूर्णतया आवास का उत्तरदायित्व नहीं ले सकती। आवास पर सरकार के नियन्त्रण के प्रश्न को हम एक अलग समस्या नहीं समझना चाहिये वरन् राज्य द्वारा उद्योगों के नियन्त्रण की सामान्य समस्या के साथ ही लेना चाहिये। यदि उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है तब समस्या पूर्णतः भिन्न होगी। वर्तमान समय में हमारा विचार है कि अच्छी आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मालिकों पर होना चाहिये। मालिकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि वह ऐसा नहीं करते और सरकार हस्तक्षेप करती है तो न केवल आवास के नियन्त्रण के लिये वरन् सरकार द्वारा उद्योग के नियन्त्रण के लिये भी मालिक स्वयं उत्तरदायी होंगे। यह कोई गुप्त बात नहीं है कि साम्यवादी, पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध तर्क देते हुए, श्रमिकों की शोचनीय आवास व्यवस्था का उदाहरण देते हैं। मालिकों को इस चेतावनी पर ध्यान देना चाहिये।

साराश में यह कहा जा सकता है कि उचित स्थानों की कमी, श्रम और

इमारती सामान की लागत में अत्यधिक वृद्धि, दूर बसे हुये उपनगरों में आने-जाने के लिये यातायात के साधनों की कमी और सबसे अधिक धन की कमी ने आवास की समस्या के समाधान का असाधारण रूप में जटिल बना दिया है। इस प्रकार के संकट का सामना केवल सरकार, मालिकों श्रमिकों तथा सहकारी समितियों के संयुक्त और दृढ़ प्रयत्नों के द्वारा ही हो सकता है। सरकार अपना उत्तरदायित्व सुचारु रूप से निभा रही है, और अब यह अन्य पक्षों का कर्त्तव्य है कि वे पूर्णतया सहयोग दें। हम डा० राधा कमल मुकर्जी के शब्दों में कह सकते हैं कि "भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर व्यवहार और नैतिकता में उन्नति करने के लिये अच्छे आवास की व्यवस्था करना पहला पग है। इसके साथ-साथ हम रोकी जा सकने वाली बीमारियों तथा अकाल मृत्यु पर भी विजय पा सकेंगे। फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि तथा स्वास्थ्य में उन्नति होगी। भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने और उनके कल्याण के लिये निःसन्देह आवास व्यवस्था ही मुख्य समस्या है जिन लोगों का यह मत है कि भारतवर्ष। औद्योगिक आवास के लिये धन व्यय नहीं कर सकता उनके लिये एक ही उत्तर है कि भारत में ऐसे व्यय को करने के लिये अब विलम्ब नहीं किया जा सकता।"[1]

●

1 R Mukerjee Indian Working Class, page 321

ब्रिटेन में आवास समस्या

HOUSING PROBLEM IN GREAT BRITAIN

समस्या की गम्भीरता (Magnitude of the Problem)

ब्रिटेन मे १६वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे अहस्तक्षेप नीति (Non-Intervention) का सबसे अच्छा उदाहरण आवास निर्माण तथा नगर विकास के क्षेत्रो मे मिलता है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् घरेलू उत्पादन प्रणाली के स्थान पर कारखाना उत्पादन प्रणाली आ गई। इस परिवर्तन के कारण जनसंख्या औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्रो मे तेजी से एकत्रित होने लगी। लाखो की सख्या मे लोग गाव और जिलो से शहरो की ओर आये और इनके रहने की कुछ न कुछ व्यवस्था शीघ्रता से करनी पडी। इन वर्षों मे जनसंख्या मे भी अधिक वृद्धि हुई जिसके कारण आवास की आवश्यकता अधिक शीघ्र हो गई। सन् १८०० से १८३१ के मध्य मकानो की सख्या मे १५ लाख से लेकर लगभग ३० लाख तक की वृद्धि हुई। परन्तु न तो राज्य ने और न ही स्थानीय प्राधिकारियो ने आवास-निर्माण के नियन्त्रण के लिये कोई प्रभावशाली कदम उठाया। उस समय न तो कोई आवास नियम था और न ही किसी स्तर को निर्धारित किया गया था। स्वास्थ्य तथा सफाई की दृष्टि से भी आवास निर्माण पर कोई रोक नही लगाई गई थी। नागरिक कमिश्नरो को कुछ नाममात्र के अधिकार दिये गये थे परन्तु इस सम्बन्ध मे उनका प्रभाव नगण्य (Negligible) था। स्थानीय प्रशासन (Local Governments) उस समय ऐसे नौकरशाही (Bureaucratic) बोर्डों के हाथो मे था जो आवास-निर्माण पर नियन्त्रण लागू करना अपना कार्य नही मानते थे।

प्रारम्भ में आवासों का अनियोजित विकास

(Haphazard Growth of Houses in the Beginning)

परिणामस्वरूप, नये नगरो का निर्माण तथा पुराने नगरो का विकास बिना किसी पद्धति के तथा बिना भविष्य की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए हुआ। जहाँ भी उचित स्थान मिला वही पर सडके तथा मकान बना लिये गये, स्थान उचित है या नही इसका निर्णय केवल कारखानों की निकटता को ध्यान मे रखकर किया जाता था। यातायात के साधन अपर्याप्त व महगे थे। इसीलिये लोग अपने काम करने के स्थानो के निकट रहने के लिये बाध्य थे। इसका अवश्यम्भावी (Inevitable) परिणाम यह हुआ कि भीड-भाड व अस्वास्थ्यकर वातावरण

अधिक बढ़ गया। दोषपूर्ण सफाई व्यवस्था ने इस वातावरण को और भी अधिक शोचनीय बना दिया।

आवास व्यवस्था में उन्नति के लिये प्रयत्न
(Efforts for Improvement)

पश्चात् एक व्यापक श्रमिक वर्ग आवास अधिनियम (Housing of the Working Class Act) पारित हुआ।

१८९० के इस अधिनियम ने आवास सम्बन्धी पिछली कानूनों को समायोजित तथा अधिक विस्तृत कर दिया। अब स्थानीय प्राधिकारियों को गन्दी बस्तियों को पूर्णतया हटाने, छोटे-छोटे क्षेत्रों से निजी आवासों को उन्नत करने तथा श्रमिक वर्ग के आवास हेतु जमीन खरीदने और ऋण लेने का अधिकार भी मिल गया था। परन्तु १९१४ से पहले मकानों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए नए मकानों का निर्माण बहुत कम हुआ। युद्ध पूर्व की सार्वजनिक योजनाओं के अन्तर्गत गन्दी बस्तियों की सफाई के परिणामस्वरूप विस्थापित (Displaced) हुए लोगों को फिर से बसाना एक बड़ी कठिनाई थी। विस्थापितों के लिये जो नये मकान थे उनके किराए बहुत अधिक थे। जिन श्रमिकों का वेतन अच्छा मिलता था वे तो अच्छे मकानों में चले गए परन्तु अन्य श्रमिकों को घटिया मकानों में ही बसना पड़ा। इस प्रकार कितने ही स्थानों पर भीड़ भाड़ और अधिक बढ़ गई। गन्दी बस्तियों को पूर्णतः हटा देना काफी महँगा पड़ता था और राज्य से इस कार्य के लिये अनुदान भी कम प्राप्त होता था इसलिए कई नगरपालिकाओं ने गन्दी बस्तियों का पूर्णतः नष्ट करने पर अधिक जोर दिया। सन् १९११ की जनगणना से यह प्रकट हुआ कि जनसंख्या का कम से कम दसवाँ भाग भीड़-भाड़ वाले वातावरण में रहता था तथा लगभग पाँच लाख लोग केवल एक कमरे के मकानों में रहते थे। परन्तु वास्तव में अवस्था, जैसा कि इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है उससे भी अधिक शोचनीय थी, क्योंकि अति भीड़ भाड़ की परिभाषा, अर्थात् बच्चा या आधा वयस्क मानकर एक कमरे में दो से अधिक वयस्कों का होना, कोई सन्तोषजनक परिभाषा नहीं थी। इस दृष्टि से भीड़-भाड़ की वास्तविक स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी।

१९०९ का आवास तथा नगर आयोजन अधिनियम : युद्धकालीन अवस्था (Act of 1909 Conditions during the War)

सन् १९०९ का आवास तथा नगर आयोजन अधिनियम पिछले कानूनों का पूरक था। स्थानीय अधिकारियों को गन्दी बस्तियों की सफाई हेतु तो भूमि लेने का अधिकार था ही, इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी अधिकार दे दिये गए कि वे नगर विकास के लिए भूमि ले सकें। परिणामस्वरूप, नगर आयोजन महत्त्वपूर्ण हो गया और लोगों ने इस बात का अनुभव कर लिया कि अनियोजित ढंग से बने हुए मकान ही नहीं अपितु अनियोजित ढंग से निर्मित नगर भी दोषपूर्ण होते हैं। गन्दी बस्तियाँ बन जाती हैं, बनाई नहीं जातीं। इस कारण यह सम्भव है कि नये मकान और बस्तियाँ इस प्रकार से बनाई जायें कि वे अन्त में गन्दी बस्तियाँ न बन सकें। १९०९ के नगर आयोजन अधिनियम की धाराओं के अनुसार कुछ निजी संस्थानों तथा प्रगतिशील मालिकों द्वारा अनेक प्रयोग किए गए, परन्तु युद्ध के

कारण वे अधिकतर लागू न किये जा सके। भीड़-भाड़ कुछ सीमा तक कुछ समय के लिये कम हो गई थी क्योंकि उन मकानों में भी लोग रहने लगे थे जो लड़ाई में पहले मौजूद थे परन्तु अधिक किराये के कारण खाली पड़े थे। एक यह कारण भी था कि लाखों लोग सैन्य सेवा के लिये अपने घरों को छोड़कर चले गये थे। परन्तु युद्ध समाप्त होने पर सैनिकों की वापसी के कारण तथा जनसंख्या की स्वाभाविक वृद्धि होने और लोगों का विदेशों का प्रवास रुक जाने के कारण मकानों का फिर अभाव हो गया। युद्ध के समय निर्माण कार्य का स्थगित होना भी इस अभाव के लिये उत्तरदायी था। सन् १६१८ से १६२८ के बीच अनुमानतः तीन लाख मकानों का निर्माण हुआ। परन्तु इसी समय में कम से कम ५ लाख मकानों की आवश्यकता उत्पन्न हो गई थी।

१६१४-१८ के युद्ध के पश्चात् आवास निर्माण

(Housing After the war of 1914-18)

इस प्रकार इंगलैण्ड में भी कुछ गम्भीर आवास समस्यायें रही हैं, जैसे—आवासों की संख्या में कमी, गन्दी बस्तियों को नष्ट करना तथा उनके स्थान पर नये मकानों का निर्माण करना, आदि। मकान निर्माण की अधिक लागत, कुशल कारीगरों के अभाव तथा किराया नियन्त्रण अधिनियमों के प्रभाव से भी आवास सम्बन्धी कुछ समस्यायें उत्पन्न हो गई थी। सन् १६१४-१८ के युद्ध के पश्चात् इमारती सामान का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया। श्रमिकों की मजदूरी भी अधिक हो गई तथा उनके काम करने के घण्टे कम हो गये। इस कारण आवास निर्माण की लागत में काफी वृद्धि हो गई। एक अन्य बड़ी समस्या यह थी कि कार्यकुशल मजदूर पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते थे क्योंकि भवन-निर्माण कार्य के लिये उनकी माग अधिक हो गई थी। इसके अतिरिक्त अभिभावकों (Guardians) को भवन निर्माण का व्यवसाय अपने लड़कों के लिये विशेष सन्तोषजनक नहीं लगता था क्योंकि इस व्यवसाय में मजदूरी अधिक नहीं मिलती थी तथा काम भी अनियमित था। युद्ध काल तथा उसके पश्चात् की व्यवस्था के कारण भी, जब मकान मालिकों पर एक निश्चित राशि से अधिक किराया बढ़ाने पर प्रतिबन्ध था, भवन-निर्माण का कार्य स्थगित हो गया। दिसम्बर १६१५ में प्रथम किराया नियन्त्रण अधिनियम (Rent Restriction Act) पारित हुआ जो कि युद्ध के पश्चात् भी लागू रहा।

सन् १६१६ तथा १६२३ की योजनायें

(Schemes in 1919 and 1923)

सन् 1919 में, पार्लियामेंट ने एडीसन योजना के अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारियों को श्रमिक वर्ग के आवास के निर्माण की एक योजना बनाने का कार्य सौंपा। यह आवास या तो स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा सीधे श्रमिकों को लगाकर अथवा निजी निर्माताओं द्वारा या जनोपयोगी समितियों (Public Utility Societies) द्वारा बनाये जाते थे। जनोपयोगी समितियों में ऐसे लोग थे जो निर्माण

कार्य को सहकारी आधार पर करना चाहते थे या ऐसे मालिक थे जो अपने कर्मचारियों को आवास सुविधा प्रदान करना चाहते थे, परन्तु राज्य का ही उपदान के रूप मे लागत का अधिकांश भार वहन करना होता था। राज्य ने नगर नियोजन तथा मकानों की विशिष्टता या गुण के लिये भी कुछ न्यूनतम शर्तें निर्धारित कर दी थी। यह एडीसन योजना काफी महगी सिद्ध हुई और १९२२ मे इसे स्थगित कर देना पडा, यद्यपि इस योजना के अन्तर्गत काफी मकानो का निर्माण हुआ।

सन् १९२३ मे चेम्बरलेन योजना के नाम से एक नई आवास योजना लागू की गई। इसके अन्तर्गत सरकार निजी रूप से मकान बनाने वालो को स्थानीय प्राधिकारियो के द्वारा २० वर्ष के लिये ६ पौण्ड प्रति वर्ष के हिसाब से उपदान देती थी। स्थानीय प्राधिकारी यदि चाहते तो इस सहायता मे वृद्धि भी कर सकते थे। स्थानीय प्राधिकारी उन लोगो को ऋण प्रदान कर सकते थे जो श्रमिक वर्ग के लिये आवासो का निर्माण करना चाहते थे। यह ऋण बाजार मूल्य का ९० प्रतिशत तक हो सकता था।

१९२४ का ह्वीटले अधिनियम (Wheatley Act of 1924)

१९२४ मे आवास नीति मे एक महत्वपूर्ण सशोधन करने का निश्चय किया गया। अब तक की व्यवस्था मे निर्माण कार्यक्रम की गति काफी मन्द थी, किराये अत्यधिक थे तथा मकानों का विक्रय-मूल्य श्रमिक वर्ग की सामर्थ्य से कहीं अधिक था। ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि कार्य करने के लिये बहुत कम मकानो का निर्माण हुआ था। इन दोषो के निवारण के लिये १९२४ का ह्वीटले अधिनियम पारित हुआ। इसके अन्तर्गत निरन्तर १५ वर्ष का कार्यक्रम बनाया गया था। प्रत्येक वर्ष कितने आवासो का निर्माण होना है इसके लिये एक सूची बना ली गई थी और उपदान मे २० वर्ष के लिये ६ पौण्ड के स्थान पर ४० वर्ष के लिये ९ पौंड के हिसाब से वृद्धि कर दी गई। साथ ही, यह शर्त भी थी कि आवास किराये पर ही दिए जा सकते थे परन्तु बिना स्वास्थ्य मन्त्री की अनुमति के बेचे नहीं जा सकते थे, बिना आज्ञा के स्वय किरायेदार उनको किराये पर नहीं दे सकते थे और स्थानीय प्राधिकारी भी उनको बेच नहीं सकते थे। किराये पर भी नियन्त्रण कर दिया गया था। यदि मकानो का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रो मे होना था, तो सहायता बढा दी जाती थी। सरकार ने इमारती सामान के मूल्यो को नियन्त्रित करने के लिये भी विधान पारित करने का प्रयत्न किया परन्तु इसमे उसे सफलता न मिली। १९३० तथा १९३६ मे भी आवास अधिनियम पारित हुये जिनके अनुसार स्थानीय प्राधिकारी उन परिवारो को आवास देने के लिये बाध्य थे जिन्हे गन्दी बस्तियाँ नष्ट करके वहाँ से विस्थापित कर दिया गया था। सन् १९३६ का अधिनियम अन्य अधिनियमो का समायोजन करने वाला था।

इन विभिन्न योजनाओं मे काफी आवासो का निर्माण हुआ और युद्ध के प्रारम्भ मे ही आवास दशा काफी अंश मे सुधर गई थी। सन् १९३९ के युद्ध से पूर्व

ब्रिटेन में लगभग एक करोड़ तीन लाख मकान थे। परन्तु युद्धकाल तथा उसके पश्चात् फिर मकानों का कुछ अभाव उत्पन्न हुआ और नई समस्यायें सामने आईं, जोकि सफलतापूर्वक सुलझाई जा रही है।

इंगलैंड में आवास विकास सम्बन्धी वर्तमान दशा

(Present Position as regards Housing in England)

इंगलैंड की औद्योगिक आवास समस्या साधारण जनता की आवास समस्या से ही सम्बन्धित है क्योंकि इंगलैंड एक औद्योगिक देश है तथा बड़े शहरों की अधिकांश जनता औद्योगिक जनता ही है। औद्योगिक जनता स्थायी भी है और भारत की तरह प्रवासी नहीं है। इसलिये इंगलैंड की औद्योगिक आवास समस्या पर हम साधारण आवास समस्या के साथ ही विचार कर सकते हैं।

ब्रिटेन में १९३९ में युद्ध के पहले जो एक करोड़ तीन लाख मकान थे उनमें से लगभग पैंतालीस लाख मकान शत्रुओं द्वारा या तो पूर्णतः नष्ट कर दिये गये अथवा उनको इतनी हानि पहुँची कि वे निवास के योग्य न रहे। कुछ हानि लगभग चालीस लाख अन्य मकानों को पहुँची। इसके अतिरिक्त युद्धकाल में नये आवासों का निर्माण पूर्णतया रुक गया था तथा श्रमिकों व इमारती सामान की भी कमी थी। इन सब बातों ने मिलकर इंगलैंड में आवास का गम्भीर अभाव (Shortage) उत्पन्न कर दिया। युद्ध से पूर्व इंगलैंड तथा वेल्स में ३,४६,००० मकान प्रति वर्ष बनने लगे थे और स्काटलैंड में प्रतिवर्ष २६,००० मकान बनते थे। इस हिसाब से यदि देखा जाये तो युद्धकाल में ब्रिटेन तीस लाख मकानों से वंचित रह गया, क्योंकि सितम्बर १९३९ तथा मई १९४५ के बीच जितने मकान बने वे दो लाख से अधिक न थे, जिनमें से ३६ हजार स्काटलैंड में थे। इस प्रकार युद्ध के पश्चात् एक निश्चित आवास नीति की आवश्यकता अनुभव की गई क्योंकि युद्ध के बाद, पुनर्निर्माण योजनाओं की जरूरत देखते हुये, श्रमिकों और सामान की कमी थी और इमारती लकड़ी (शहतीर) भी कम मिलती थी क्योंकि इसको डालर देकर खरीदना पड़ता था।

अगस्त १९४५ में, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण आयोजना में आवास को प्रथम स्थान दिया गया, तथा राष्ट्र के निर्माण साधनों का लगभग ६० प्रतिशत आवास व्यवस्था के लिये लगाया गया। युद्ध के पश्चात् सरकार का यही उद्देश्य रहा कि राष्ट्रीय निर्माण साधनों से जितने भी हो सकें उतने आवास बनवाये जायें। सन् १९५१ में सरकार का यह लक्ष्य रहा है कि प्रतिवर्ष कम से कम तीन लाख मकानों का निर्माण हो। सरकार की नीति मरम्मत तथा देखभाल पर कम और नये मकानों के निर्माण पर अधिक जोर देने की है। ऐसे श्रमिकों के मकानों की ओर वह विशेष ध्यान देती है जो खानों और कृषि में कार्य करते हैं और जिनका राष्ट्र की उत्पत्ति के प्रयत्नों में बड़ा हाथ है। सरकार स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा भवन-निर्माण कार्य को प्राथमिकता देती है। इसका अर्थ यह है कि स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा निजी व्यक्तियों

के मकान बनाने के लिए ठेका दिये जाने को सरकार प्रोत्साहित करती है। निजी लोगों की अपेक्षा स्थानीय प्राधिकारियों को मकानों का निर्माण करने में अधिक उपयुक्त माना गया है क्योंकि स्थानीय प्राधिकारी किरायेदारों के लिये ऐसे मकान बनवा सकता है जिन्हें ऐसे किरायेदार भी ले सकें जो मकान खरीद नहीं सकते। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राधिकारी आवश्यकतानुसार किरायेदार भी छाँट सकता है। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् स्थानीय प्राधिकारियों ने मुख्यतः इस बात पर ध्यान दिया कि मकानों में अधिक भीड़ को कम किया जाए और उन परिवारों को मकान किराये पर दिये जायें जिनके पास अपना मकान नहीं है। निजी मकानों का निर्माण केवल स्थानीय प्राधिकारियों से लाइसेन्स लेकर ही हो सकता है। निजी मकानों का क्षेत्रफल 1,५०० वर्ग फीट से अधिक नहीं हो सकता। निजी आवास के लाइसेन्स साधारणतः उन्हीं को मिलते हैं जो मकान में स्वयं रहना चाहते हैं, उन्हें नहीं मिलते जो किराये पर देने के लिये मकान बनाते हैं, क्योंकि यह बात ध्यान में रखी जाती है कि मकान उन्हीं को मिलें जिन्हें वास्तव में मकान की आवश्यकता है। परन्तु नवम्बर १९५४ में यह लाइसेन्स देने की प्रणाली समाप्त कर दी गई, ताकि मकान बनाने में निजी सम्पत्ति लगाने वाले को प्रोत्साहन मिले।

सन् १९५४ में गन्दी बस्तियों की सफाई का आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गया है जो कि युद्ध काल में स्थगित हो गया था, तथा युद्ध के पश्चात् भी नये आवासों पर ध्यान देने के कारण कुछ समय के लिये रुक गया था। स्थानीय प्राधिकारियों को गन्दी बस्तियों की सफाई के कार्यों की रूपरेखा व गति को निर्धारित करने के लिये कहा गया, तथा इस कार्य को जितना शीघ्र हो सके उतनी शीघ्रता से कार्यरूप में परिणत करने की भी आज्ञा दे दी गई। इंग्लैंड व स्काटलैंड में १९५४ के आवास मरम्मत व किराये के अधिनियम (Housing Repairs and Rents Acts) पारित हुए जिनसे स्थानीय प्राधिकारियों को आवश्यकता पड़ने पर खराब आवासों पर अधिकार करने व उनको बन्द कर देने के अधिकार प्रदान किए गये। सन् १९५५ से १९५९ तक १,३८,२८७ अयोग्य मकानों को इंग्लैंड तथा वेल्स में और ३५,९८७ मकानों को स्काटलैंड में नष्ट कर दिया गया या नष्ट करने के लिये बन्द करवा दिया गया था। इंग्लैंड तथा वेल्स में सन् १९५५ में निवास के अयोग्य ८,५०,००० तथा स्काटलैंड में १,५०,०१० आवासों का अनुमान लगाया गया था। ऐसे मकानों के लिए जो मनुष्यों के रहने योग्य नहीं थे, नष्ट करने पर क्षतिपूर्ति भी नहीं मिलती, केवल पुनर्वास का व्यय कम करने के लिए कुछ सहायता मिल जाती है।

सन् १९४५ तथा १९५९ के बीच ब्रिटेन में बने कुल नये मकानों की संख्या ३५ लाख थी। इसके अतिरिक्त, लगभग १,६०,००० अस्थायी मकान भी बनाये गये थे। सब मिलाकर इस काल में नये मकान बनाकर या अयोग्य मकानों की मरम्मत तथा स्थानान्तर करने के पश्चात् ३५ लाख से अधिक परिवारों को फिर से बसाया

गया। जो नये मकान बने उनमे से लगभग ७० प्रतिशत मकान स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा बनाये गये थे।[1]

इंगलैंड में आवासों का प्रशासन : नगर तथा ग्राम नियोजन

(Administration of Housing Town and Country Planning)

वेल्स तथा इंगलैंड मे आवास तथा स्थानीय प्रशासन मन्त्रालय (Ministry of Housing and Local Government) ही मुख्यत आवास-नीति व आवास-सिद्धान्त को बनाने के लिये तथा आवास-कार्यक्रम के निरीक्षण के लिये उत्तरदायी है। इस मन्त्रालय को इमारती सामान आदि निर्माण मन्त्रालय (Ministry of Works) और सम्भरण मन्त्रालय (Ministry of Supply) से मिलता है। निर्माण मन्त्रालय इमारती सामान का उत्पादन प्राधिकारी होता है और इसके कई कार्य होते हैं। वह निर्माण कार्य मे अनुसधान करने आवास निर्माण उद्योग से सम्बन्ध स्थापित करने और स्थानीय प्राधिकारियो द्वारा लाइसेन्स देने की पद्धति को चलाने के लिये भी उत्तरदायी होता है। नगर तथा ग्राम नियोजन मन्त्रालय (Ministry of Town and Country Planning) भी अलग से है जो मकानो के नियोजन की स्वीकृति देने के लिए उत्तरदायी है। यह आवासो के स्थानो को चुनने मे, उनकी रूप-रेखा निर्धारित करने मे तथा उन सब प्रश्नो को हल करने मे, जो भूमि के प्रयोग तथा समुदाय के नियोजित वितरण को प्रभावित करते है, सहायता करता है। सन् १९४७ का एक नगर तथा ग्राम नियोजन अधिनियम (Town and Country Planning Act) भी है जो १९५३ तथा १९५४ मे सशोधित किया गया। यह सारे देश मे भूमि के उचित उपयोग हेतु एक ढाचा या नमूना प्रस्तुत करता है। यह एक मौलिक अधिनियम है। १९४६ के नवीन नगर अधिनियम (New Towns Act) के अन्तर्गत जो १९५२, १९५३ तथा १९५५ मे सशोधित हुआ, सरकार को यह अधिकार दिया गया कि जब भी जनता के लिये आवश्यक हो नये नगरो का निर्माण व विकास कर सकती है। जून १९५७ तक १५ नये नगरो का विकास किया जा रहा था जिन पर दो करोड पन्द्रह लाख पौण्ड व्यय करना स्वीकृत किया गया था। १९४९ के नेशनल पार्क एण्ड एक्सेस टु दि कन्ट्रीसाइड एक्ट (National Park and Access to the Countryside Act of 1949) मे पार्कों को बनाने की व्यवस्था है। जून सन १९६० तक ११ राष्ट्रीय पार्क स्थापित हो चुके थे। कृषि मन्त्रालय को यह निश्चित करना पडता है कि किस भूमि को कृषि के लिये रखना चाहिये और किसे आवास हेतु दे देना चाहिये। व्यापार बोर्ड सहतीर का वितरण-प्राधिकारी है तथा श्रम व राष्ट्रीय सेवा मन्त्रालय भवन निर्माण उद्योग व इसके गौण व्यवसायो के लिये श्रम की व्यवस्था करता है। युद्ध हानिपूरक आयोग (War Damage Commission) मकानो का युद्ध मे हुई हानि की मरम्मत के लिये रुपया देने की व्यवस्था की देखभाल करता है। विभिन्न राजकीय विभागो तथा आवास निर्माण से

1 Britain—An Official Hand-book, 1961.

सम्बन्धित स्थानीय प्राधिकारियों से अत्यन्त निकट का सम्पर्क रखता है। इस उद्देश्य के लिये स्वास्थ्य मन्त्रालय अनेक क्षेत्रीय कार्यालय और प्रधान-आवास अधिकारी रखता है। आवास नीति का नियन्त्रण तो स्वास्थ्य मन्त्रालय करता है परन्तु उनको विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरूप में परिणत करने का उत्तरदायित्व तथा लाइसन्स पद्धति को चलाने का उत्तरदायित्व स्थानीय प्राधिकारियों पर होता है। इन स्थानीय प्राधिकारियों के आवास सम्बन्धी कार्य ये है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि उनके क्षेत्रों में मकान के लिये कोई कठिनाई न हो और जो भी रहने के मकान हों वे नक्शे, रचना, ढाचा आदि की कुछ न्यूनतम शर्तों को पूरा करते हों।

आवास के स्तर (Standards of Accommodation)

स्थानीय प्राधिकारी द्वितीय महायुद्ध से पहले के आवासों की अपेक्षा अब बड़े और अच्छे आवासों का निर्माण कर रहे है। कई केन्द्रीय विभागों ने स्थानीय प्राधिकारियों के मार्ग दर्शन के लिये अनेक पुस्तकें प्रकाशित की है जिनमें विभिन्न प्रकार के आवासों के लिए स्थानों का स्तर, ढाचा, डिजाइन तथा सामान आदि निश्चित किया गया है। साथ ही उनमें इस बात का भी विवरण है कि भूमि तथा धन की बचत करते हुए आवासों को नई संशोधित रूपरेखा में रखकर किस प्रकार आकर्षक रूप दिया जा सकता है। डिजाइन, निर्माण व आवास साधनों और सामानों पर काफी अनुसंधान हो चुका है तथा हो रहा है। मकानों के विभिन्न अंगों और भागों में समानता आ गयी है और पुराने सामान की कमी को पूरा करने के लिये तथा कुशल कर्मचारियों के भार को हल्का करने के लिये नये सामान और नई पद्धतियों का निर्माण हुआ है।

इंगलैण्ड में आवासों हेतु वित्त व्यवस्था (Housing Finance in England)

जहाँ तक राजकीय सहायता का प्रश्न है सरकार १९४६ के आवास (वित्तीय तथा विविध उपबन्ध) अधिनियम [Housing (Financial and Miscellaneous Provisions) Act] के अन्तर्गत कुछ उपदान देती है। इन उपदानों के परिणाम स्वरूप, स्थानीय प्राधिकारी भवन निर्माण की ऊँची लागत होने पर भी उचित किरायों पर आवास प्रदान कर सकने योग्य हो जाते है। इस अधिनियम के अन्तर्गत ६० वर्षों के लिये २२ पौण्ड प्रति मकान प्रतिवर्ष के हिसाब से एक प्रामाणिक उपदान प्रदान किया जाता है। सन् १९५६ के आवास उपदान अधिनियम (Housing Subsidies Act) में इस बात की व्यवस्था है कि अगर अधिक भीड़ को कम करने के लिये मकान बनाये जायें तो ऐसे मकानों के लिये उपदान की दर अधिक होगी (२४ पौण्ड प्रति आवास प्रति वर्ष)। विशेष प्रकार के आवासों के लिये विशेष उपदानों की व्यवस्था है, उदाहरणतः कृषि जनसंख्या के लिये निर्धन क्षेत्रों के आवासों के लिये तथा तीन मन्जिलों से अधिक के आवासों के लिये जिनमें लिफ्ट होती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राधिकारियों को उन मकानों के लिये जो कि स्वीकृत नवीन तरीकों से बनाये जायें इस हेतु पूँजी अनुदान दी जाती है कि उनमें जो अधिक

व्यय हुआ है वह पूरा हो सके। सरकार भवन-निर्माण के साधनों पर भी नियन्त्रण रखती है जिससे उनका समुचित प्रयोग किया जा सके। इस्पात, इमारती लकड़ी तथा अन्य दुर्लभ सामग्रियों के उपयोग के लिये आज्ञा-पत्र प्रदान किये जाते हैं। श्रमिकों की आवश्यकता के कारण ऐसे श्रमिकों जो गृह-निर्माण का कार्य करते थे, फौज में से जल्दी छुट्टी दिला दी गई। भवन निर्माण कार्यों के अनुभवी श्रमिकों का एक रजिस्टर तैयार किया गया तथा उनके लिये एक विशेष प्रशिक्षण योजना की भी व्यवस्था की गई। सन् १९४९ में एक आवास अधिनियम (Housing Act) और पारित हुआ जिसके अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारियों अथवा निजी मकान मालिकों का उनके आवासों का ठीक करने व वर्तमान निवासों के सुधार के लिये सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इस अधिनियम में स्थानीय प्राधिकारियों व अन्य निकायों द्वारा बनाये गये हास्टलों के लिये भी उपदानों की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय प्राधिकारियों निर्माण समितियों कुछ विशेष बीमा कम्पनियों व अन्य वित्त-संस्थाओं द्वारा लोगों को इस बात के लिये ऋण दिया जाता है कि वे अपने लिये कई वर्षों की किस्तों में मकान खरीद सकें। उपदान तथा सुधार के लिये अनुदान सम्बन्धी जो भी कानून है उनको १९५८ के एक अधिनियम द्वारा [Housing (Financial Provisions) Act] जिसका १९५९ में एक अन्य अधिनियम (House Purchase and Housing Act) द्वारा संशोधन भी हुआ है, समायोजित कर दिया गया है।

सस्ते मकानों के लिये उठाये गये पग (Measures for Cheap Houses)

सरकार ने एक मंजिले दो शयन-कक्षों वाले मकानों को बनाने का कार्यक्रम भी अपनाया हुआ है। मकानों के हिस्से कारखानों में बनाये जाते हैं तथा आवास बनाने के स्थान पर संगठित कर दिये जाते हैं। ऐसे मकान स्थायी आवासों से छोटे होते हैं तथा केवल १० वर्षों के लिये बनाये जाते है, परन्तु कुछ आवास लम्बे समय के लिये भी उपयोगी होते हैं। ऐसे मकानों के किराये न बहुत अधिक है और न काफी कम, तथा उनमें आधुनिक सुविधायें भी प्रदान की गई है। इस योजना का मकानों की सहसा उत्पन्न होने वाली आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपनाया गया था। कार्य-कुशल मजदूरों तथा पुरातन इमारती सामान के अभाव के कारण नवीन स्थायी मकानों के निर्माण के नये तरीके विकसित किये गये है जिनमें पूंजी तथा श्रम दोनों की बचत होती है। इनमें कुछ इस्पात के ढांचे के, कुछ पहले बने हुये 'कंक्रीट' के तथा कुछ लकड़ी के ढांचे के हैं। इसके अतिरिक्त एल्युमीनियम के बगने भी बनाये गये है जो कि पूर्णतः पहले से ही बने हुए होते है, तथा आवश्यकता के स्थान पर कुछ ही घण्टों में जोड़े जा सकते हैं। एल्युमीनियम के बंगले के बनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ में तो केवल अस्थायी मकानों के लिए था परन्तु अब खानों और दूसरे औद्योगिक क्षेत्रों में मकानों की विशेष और अधिक आवश्यकता के कारण इनके निर्माण के कार्यक्रम को स्थायी मकानों के लिये भी लागू कर दिया गया है।

किरायों पर नियन्त्रण (Control on Rents)

किरायों में अत्यधिक वृद्धि को रोकने के लिये कानून बनाये गये हैं। सर्वप्रथम किराया नियन्त्रण अधिनियम (Rent Restriction Act) १९१५ में पारित हुआ। इसके पश्चात् १९२० से १९३९ तक अनेक किराया तथा बंधक ब्याज (नियन्त्रण) अधिनियम [Rent and Mortgage Interest (Restrictions) Act] बनाये गये जो सामान रहित (Unfurnished) मकानों में रहने वाले किरायेदारों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। इनके अन्तर्गत किरायों की सीमा निर्धारित कर दी गई तथा जब तक किराया दिया जायेगा तब तक मकानों से किरायेदारों को निकाला नहीं जा सकता। इसी प्रकार का संरक्षण उन व्यक्तियों को भी दिया जाता है जो बंधक पर मकान खरीदते हैं। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड तथा वेल्स में सामान सहित आवासों का किराया सन् १९४६ के सामान सहित आवास (किराया नियन्त्रण) अधिनियम [Furnished Houses (Rent Control) Act] द्वारा नियन्त्रित किया गया है। स्थानीय प्राधिकारियों अथवा किसी पक्ष की माँग पर सामान सहित मकानों के किरायों को निश्चित करने के लिये स्थानीय अधिकरणों (Local Tibunals) की नियुक्ति की गई है। दिसम्बर १९४५ के इमारती सामान तथा आवास अधिनियम ने एक और सुरक्षा भी प्रदान की थी जिसका तात्पर्य यह था कि चार वर्ष तक के लिये ऐसे मकानों का किराया और विक्रय मूल्य निर्धारित कर दिया जाये जो युद्ध काल में लाइसेन्स पद्धति के अन्तर्गत बने थे। १९४९ का एक और अधिनियम भी है जिसका नाम मालिक मकान व किरायेदार (किराया नियन्त्रण) अधिनियम है। इसके अन्तर्गत किसी भी ऐसे मकान को जिसका किराया निर्धारित है किराये पर उठाने के लिये पगड़ी लेना गैर-कानूनी है। १९५४ के मकान मरम्मत तथा किराया अधिनियम के अन्तर्गत मालिक मकान कुछ शर्तों के अनुसार मरम्मत के लिये एक अधिकतम सीमा तक किराया बढ़ा सकते हैं। किरायों में सन् १९५७ के किराया अधिनियम और १९५८ के मालिक मकान और किरायेदार (अस्थाई व्यवस्था) अधिनियम के अन्तर्गत फिर संशोधन हुआ है। परन्तु अब सरकार ने धीरे धीरे किराया नियन्त्रण की पद्धति को समाप्त करने की नीति अपनाने की घोषणा की है क्योंकि यह पद्धति मकानों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग के लिए सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुई है।

स्काटलैंड तथा आयरलैंड में आवास योजनायें

(Housing in Scotland and Ireland)

स्काटलैण्ड में आवास योजना राज्य सचिव (Secretary of State) का कार्य है जो आवास, नगर तथा ग्राम्य नियोजन का अपना उत्तरदायित्व स्काटलैण्ड के स्वास्थ्य विभाग द्वारा निभाता है। "स्काटलैण्ड की विशेष आवास परिषद" नाम की एक कानूनी संस्था भी स्थापित की गई है जो स्थानीय प्राधिकारियों की सहायता करने हेतु बनाई गई है, विशेषतः उन क्षेत्रों में जहाँ साधारण आवासों

के निर्माण की सबसे अधिक आवश्यकता है। यह परिषद् एक सीमित देयता वाली कम्पनी है जिसकी कोई शेयर पूंजी नही है और इसमें पूर्णतया सरकारी निधि से धन दिया जाता है। यह राज्य सचिव के निर्देशों के अनुसार कार्य करती है। इस परिषद् ने सन् १९४५ से जून १९५५ तक दो लाख बीस हजार मकानों का निर्माण किया। इंग्लैण्ड की ही तरह १९४६ से १९५७ के दो अधिनियमों [Housing (Financial Provisions) Act of Scotland of June 1946 and the Housing and Town Development (Scotland) Act of 1957] के अन्तर्गत उपदान भी प्रदान किये जाते हैं। १९४३ व १९५४ के अधिनियमों के अन्तर्गत किरायों पर भी नियन्त्रण है। आवासों के स्तर इंग्लैण्ड और वेल्स की ही तरह है। उत्तरी आयरलैण्ड में आवास तथा नियोजन के लिये स्वास्थ्य मन्त्रालय तथा स्थानीय शासन उत्तरदायी है। सन् १९४५ के आवास अधिनियम के अन्तर्गत 'उत्तरी आयरलैण्ड आवास ट्रस्ट' श्रमिकों के आवास बनाने वाली एक अतिरिक्त एजेन्सी के रूप में स्थापित हुआ है। यह स्काटलैण्ड की विशेष आवास परिषद् की भाँति एक संस्था है जिसको सरकार द्वारा वित्त दिया जाता है। इसको भूमि के अधिग्रहण तथा विक्रय का अधिकार है और यह सरकार द्वारा स्वीकृत निर्माण योजनाओं के अन्तर्गत मकान बनाती है। इस ट्रस्ट (न्यास) ने १९४५ से जून १९५५ तक चौदह हजार मकानों का निर्माण किया है। इनके अतिरिक्त इक्कीस हजार स्थायी मकान स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा बनाये गये हैं। आयरलैण्ड में उपदान भी प्रदान किये जाते हैं जिनके १९५६ के 'आवास उपदान आदेश' (Housing Subsidy Order) के अन्तर्गत संशोधित किया गया है।

उपसंहार (Conclusion)

इंग्लैण्ड में मकानों की उपरोक्त व्यवस्था से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि भोजन और वस्त्रों को छोड़कर उस देश में मकानों के निर्माण को जीवन की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता माना जाता है, और इस बात के लिये गम्भीर प्रयत्न हुए हैं तथा हो रहे हैं कि रहने के लिये अच्छे से अच्छे प्रकार के मकान बनाये जायें और वर्तमान मकानों की स्थिति में सुधार किया जाये। भारतवासियों को इंग्लैण्ड से इस सम्बन्ध में बहुत कुछ सीखना है। जैसा कि उस देश में पाया जाता है हमें भी इस बात को समझना है कि नगर नियोजन, रहने के स्तरों का निर्धारण, एक स्पष्ट आवास-नीति तथा एक सुव्यवस्थित कुशल आवास व्यवस्था का बहुत महत्व है।

आवास व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन
(Housing and I. L. O.)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने आवासों की कमी, आवास-नीति, आवास-स्तर तथा गन्दी बस्तियों की सफाई के प्रश्नों पर काफी महत्वपूर्ण अध्ययन किये हैं। सन् १९२१ व १९२४ में इस संगठन ने श्रमिकों की आवास स्थिति को सुधारने के लिये सिफारिशें (Recommendations) कीं। सिफारिश नं० ११५ का सम्बन्ध इस

बात से है कि मालिक अपने कर्मचारियो के लिए आवास की व्यवस्था के महत्व को मान्यता दे। सन् १६२८ तथा १६३६ मे आवास समस्या पर पुन विचार विमर्श हुआ। आवास प्रश्नो पर जो अध्ययन प्रकाशित हो चुके हैं वे निम्नलिखित देशो के हैं—स्वीडन और ब्रिटेन (१६४४), अमरीका (१६४५) फ्रास (१६४७) आदि। सन् १६४५ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने 'आवास-नीति' के नाम से एक सक्षिप्त अध्ययन पुस्तिका भी प्रकाशित की तथा १६४८ मे इसने एक 'आवास तथा रोजगार' नाम की रिपोर्ट प्रकाशित की। आवासो के विभिन्न पक्षो पर विचार हेतु एक 'अन्तर्राष्ट्रीय निर्माण, सिविल इन्जीनियरिंग तथा सार्वजनिक कार्य समिति' की भी स्थापना की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन की कोयला-खानों की समिति ने भी आवास की समस्या पर अपने विचार प्रकट किये है। पूर्व प्रबन्धक एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन (जो नवम्बर १६४७ मे नई दिल्ली मे हुआ था, तथा तीसरे एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन जो टोकियो मे १६५३ मे हुआ था) मे भी आवास सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किये गये थे।

इसके अतिरिक्त, सयुक्त राष्ट्र महासभा और अन्तर्राष्ट्रीय सघ की विशिष्ट एजेन्सियां, जैसे यूनेस्को (UNESCO) ने भी आवास समस्याओ तथा नगर नियोजन विषयो मे अपनी रुचि दिखाई है और इसके सम्बन्ध मे प्रस्ताव पारित किये है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आवास समस्याएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विचारणीय रही हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाये, आवास, नगर तथा ग्राम नियोजन की विषम समस्याओं को सुलझाने के लिये कार्यशील है और रही है। ●

श्रम कल्याण कार्य

LABOUR WELFARE ACTIVITIES

श्रम कल्याण की परिभाषा और क्षेत्र
(Definition and Scope of Labour Welfare)

श्रम कल्याण के कई अर्थ निकल सकते हैं और विभिन्न देशों में इसकी सत्ता की समानता नहीं है। रायल श्रम आयोग के मतानुसार औद्योगिक श्रमिकों से सम्बन्धित इस शब्द का प्रयोग ऐसा है जो आवश्यक रूप में लचीला रहेगा। इसका अर्थ भी एक देश से दूसरे देश में विभिन्न सामाजिक प्रथाओं, औद्योगीकरण के स्तर एवं श्रमिकों के शैक्षिक विकास के अनुसार भिन्न होता है।[1] अतएव कल्याण कार्य की परिभाषा करना अधूरा करना है क्योंकि यह आवश्यक रूप में लचीला रहा है। श्री आर्थर जेम्स टॉड ने यह ठीक ही कहा है कि औद्योगिक कल्याण कार्य के क्षेत्र तथा विशेषताओं पर तीव्र मतभेद है।[2] विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न प्रकार से इसकी परिभाषायें दी हैं। एक परिभाषा के अनुसार यह कल्याण कार्य वह ऐच्छिक प्रयत्न है जो कि मालिकों द्वारा अपनी फैक्ट्रियों में काम करने वाले कर्मचारियों की अवस्थाओं को सुधारने के लिये किया जाता है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार कल्याण कार्य वह कार्य है जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों के लिये उनके वेतन के अतिरिक्त उन तमाम कार्यों को सम्मिलित कर लिया जाता है जो उनके आराम तथा मानसिक व सामाजिक उन्नति के लिये किये जाते हैं और जो न तो कानून के द्वारा अनिवार्य हैं और न हो उद्योग के लिये आवश्यक हैं। श्रमिकों के कल्याण कार्यों की विकास सम्बन्धी सुविधाओं को उपलब्ध करने के हेतु एक रिपोर्ट[3] में कहा गया है कि श्रम कल्याण का अर्थ ऐसी सुविधाओं व सेवाओं से लिया जा सकता है जो किसी संस्थान में या इसके समीप इस हेतु उपलब्ध किये जायें कि उस संस्थान के कर्मचारी अपना कार्य उचित तथा स्वस्थ वातावरण में कर सकें और उनके अच्छे स्वास्थ्य व उच्च आचरण को बनाये रखने में सम्बन्धित सुविधायें प्राप्त हो सकें। जून १८५६ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के १८वें अधिवेशन में एक प्रस्ताव में इन सुविधाओं व सेवाओं का कुछ उल्लेख किया गया था। इसमें निम्न लिखित सम्मिलित की जाती हैं--(i) संस्था के समीप खान-पान की सुविधायें (ii) आराम एवं मनोरंजन की सुविधायें तथा (iii) कार्य करने के स्थान से आने जाने के लिये

1 *Report of the Royal Commission on Labour* Page 261

2 Quoted by the Labour Investigation Committee Report Page 345

3 Report II of the I L O Asian Regional Conference Page 3

यातायात की सुविधायें जबकि साधारण सार्वजनिक यातायात अपर्याप्त हो या उनके उपलब्ध करने में सुविधा न हो। भारत सरकार की श्रम अनुसंधान समिति ने कल्याण कार्य के क्षेत्र की सबसे उत्तम ढंग से व्याख्या की है। उनके अनुसार 'श्रम कल्याण कार्य के अन्तर्गत मालिकों सरकार अथवा अन्य संस्थाओं के द्वारा किये गये श्रमिकों के बौद्धिक, शारीरिक नैतिक व आर्थिक विकास के कार्यों का समावेश होना चाहिये। यह कार्य ऐसी सुविधाओं के अतिरिक्त होने चाहिये जो श्रमिक सांविदिक (Contractual) रूप से अपने लिये मालिकों से प्राप्त कर लेते हैं या जो विधान के अन्तर्गत उनको मिलती है। इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तर्गत वे सब कार्य, जैसे—आवास व्यवस्था चिकित्सा एवं शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें उत्तम भोजन (कैंटीन की सुविधाओं सहित) विश्राम करने एवं मनोरंजन की सुविधायें, सहकारी समितियां, नर्सरी एवं शिशुगृह स्वास्थ्यप्रद स्थान सवेतन अवकाश सामाजिक बीमा, बीमारी एवं मातृत्व हित लाभ योजनायें प्रोवीडेंट फंड एवं पेंशन आदि कार्य चाहे वह मालिकों द्वारा ऐच्छिक रूप से अकेले अथवा श्रमिकों के सहयोग से किये जाते हों, आते हैं।'[1] राष्ट्रीय श्रम आयोग का विचार है कि 'कल्याण' शब्द पर बड़े गतिशील दृष्टिकोण से विचार किया जाता है। भिन्न भिन्न देशों में विभिन्न समयों में और यहाँ तक कि एक ही देश में सामाजिक संस्थाओं तथा आर्थिक व सामाजिक स्तर के अनुसार कल्याण शब्द के पृथक्-पृथक् अर्थ लगाये जाते हैं।[2] इस प्रकार से 'कल्याण' शब्द बहुत व्यापक हो जाता है। उपरोक्त अनेक समस्यायें सामाजिक बीमा योजना काम करने व रोजगार की दशाओं के अन्तर्गत आ जाती है, और आवास सम्बन्धी जैसी समस्यायें स्वयं एक अलग समस्या है। इस अध्याय में हम उन कल्याणकारी कार्यों का विस्तार से अध्ययन करेंगे जिनका अन्य कहीं उल्लेख नहीं है।

श्रम कल्याण कार्यों का वर्गीकरण

(Classification of Labour Welfare Work)

कल्याण सम्बन्धी कार्यों का क्षेत्र काफी व्यापक है। इन कार्यों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—(१) वैधानिक (Statutory), (२) ऐच्छिक (Voluntary), (३) पारस्परिक (Mutual)। वैधानिक कल्याण कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जिनको सरकार के अवपीडक अधिकारों (Coercive Power) के कारण करना अनिवार्य होता है। श्रमिकों की सुरक्षा एवं उनके स्वास्थ्य का न्यूनतम स्तर स्थिर रखने के लिये सरकार कुछ कानून बनाती है जिनका मालिकों को पालन करना पड़ता है। यह कार्य की दशाओं, कार्य के घण्टे, प्रकाश, स्वास्थ्य एवं सफाई आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं। श्रमिकों के कल्याण के लिये इस प्रकार का राज्य द्वारा हस्तक्षेप दिन प्रतिदिन सब देशों में अधिक होता जा

1 *Report of the Labour Investigation Committee*, Page 345

2 Report of National Commission on Labour, Page 111.

रहा है। ऐच्छिक कल्याण कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो कि मालिक अपने श्रमिकों के लिये सम्पादित करते हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो यह कार्य परोपकार के दृष्टिकोण से होते हैं, परन्तु यदि हम इनकी गहराई में जायें तो पता चलेगा कि इस प्रकार के कार्यों पर धन व्यय करना उद्योग में निवेश (Investment) माना जाना चाहिये, क्योंकि कल्याण कार्य न केवल श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं अपितु संघर्ष उत्पन्न होने की सम्भावना को भी बहुत कम कर देते हैं। ऐच्छिक कल्याण कार्य वाई० एम० सी० ए० (Y M C A) जैसी कुछ सामाजिक संस्थाओं द्वारा भी किये जाते हैं। *पारस्परिक कल्याण कार्य श्रमिकों द्वारा किये गये वे कार्य* हैं, जो कि वे परस्पर सहयोग से अपने कल्याण के लिये करते हैं। इस उद्देश्य से श्रमिक संघ श्रमिकों के कल्याण के लिये अनेक कार्य करते हैं।

कल्याण कार्यों का एक अन्य ढंग से भी दो शीर्षकों में वर्गीकरण किया जा सकता है। पहले को हम अन्तर्मुखी (Intra-mural) कल्याणकारी कार्य कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत वह सुविधायें व सेवायें सम्मिलित की जा सकती हैं जो कारखाना के श्रमिकों को प्राप्त होती हैं। उदाहरणत, औद्योगिक थकावट को दूर करने की व्यवस्था, जैसे—अल्प विराम (Rest-Pause) संगीत आदि, सामान्य हित एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था जैसे—स्वच्छ दशायें, शौचालय व पेशाबघर, सफाई, पीने के पानी की व्यवस्था, चिकित्सा की सुविधायें, कैंटीन व विश्राम स्थान आदि, श्रमिकों की सुरक्षा से सम्बन्धित सुविधायें, जैसे—मशीनों से रक्षा करने के लिये उनका पर्याप्त रूप से ढकना तथा उसके चारों ओर रोक लगाना, सुरक्षात्मक वस्त्र पहनना, मशीनों का उचित ढंग से लगाना, पर्याप्त प्रकाश, प्राथमिक चिकित्सा सुविधायें, आग बुझाने के यन्त्र आदि, तथा ऐसे कार्य जिनसे भर्ती, अनुशासन और रोजगार की दशाओं में सुधार हो ताकि श्रमिक उसी कार्य में लग सकें जिसके लिये वह सबसे अधिक उपयुक्त हो। दूसरे वर्गीकरण में बहिर्मुखी (Extra-mural) कल्याण कार्य आते हैं। इनमें वे सभी कल्याणकारी कार्य सम्मिलित किये जा सकते हैं जो कि श्रमिकों को कारखाने के बाहर उनके हित के लिये व सामान्य सुविधायें प्रदान करने के लिये किये जाते हैं, जैसे—अच्छे मकानों की व्यवस्था, चिकित्सा की सुविधा, मनोरंजन व खेल कूद की सुविधायें शिक्षा, व्याख्यान, वाद-विवाद और क्लब का प्रबन्ध, यातायात, श्रमिक सहकारी समितियाँ आदि। इसके अतिरिक्त—बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था आदि में वित्तीय लाभ तथा मितव्ययिता की आदत को प्रोत्साहन देने के लिये भी पग उठाये जा सकते हैं।

इस प्रकार, श्रम-कल्याण के क्षेत्र में वह सब कार्य आ जाते हैं जो कि श्रमिकों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, सामान्य भलाई और औद्योगिक क्षमता को बढ़ाने के उद्देश्य से किये जाते हैं। इस प्रकार कल्याणकारी कार्यों की सूची कितनी भी व्यापक क्यों न हो, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह पूर्ण है। परन्तु हम *इस अध्याय में श्रम कल्याण का तात्पर्य उन कार्यों तक सीमित रखेंगे (चाहे वह*

वैधानिक रूप से किये जाये अथवा ऐच्छिक रूप से, चाहे औद्योगिक सस्थाओ के भीतर किये जाये या बाहर, चाहे सरकार मालिक अथवा श्रमिक किसी भी एजेन्सी द्वारा किये जाये), जो सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत या कार्य और रोजगार की दशाओं के अन्तर्गत नही आते और जिनसे श्रमिको और उनके परिवारो के स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता और सुख मे वृद्धि और उन्नति होती है। ये कार्यक्रम निम्नलिखित हो सकते है—मनोरजन चिकित्सा शिक्षा, नहाना-धोना, अनाज की दुकान, यातायात की सुविधायें, कैन्टीन शिशु-गृह आदि-आदि।

कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य (Aim of Welfare Work)

कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य आशिक रूप से मानवीय आशिक रूप से आर्थिक एव आशिक रूप से नागरिक है। मानवीय इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिको को उन अनेक सुविधाओ का प्रदान करता है जिनकी वे स्वय व्यवस्था नही कर सकते। आर्थिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिको की कार्य क्षमता म वृद्धि करता है और झगड़े की सम्भावनाओ को कम कर देता है और श्रमिको को सन्तुष्ट रखता है। नागरिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिको म सम्मान और उत्तरदायित्व की भावना जागृत कर देता है और उनको अच्छे नागरिक बनाने म सहयोग देता है।

भारत मे श्रम कल्याण कार्यों की आवश्यकता
(Necessity of Labour Welfare Work in India)

भारत मे कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता का अनुमान श्रमिक वर्ग की दशाओं को देखने से ही लगाया जा सकता है। उनको अस्वस्थ वातावरण मे अधिक घण्टो तक काम करना पडता है और फिर भी थकावट को दूर करने का कोई साधन नही है। ग्रामीण समाज से दूर उनको नगरो के अपरिचित एव दूषित वातावरण मे पटक दिया जाता है, जहाँ पर वे मद्यपान जुआ और दूसरी बुराइयो के शिकार हो जाते है और इस प्रकार उनका नैतिक पतन हो जाता है। भारतीय श्रमिक औद्योगिक रोजगार को एक आवश्यक बुराई समझता है और उससे जितना शीघ्र सम्भव हो सके छुटकारा पाने को उत्सुक रहता है। अत देश म उस समय तक स्थायी, सन्तुष्ट एव कुशल श्रमजीवी वर्ग उत्पन्न नही हो सकता जब तक उनके जीवन की दशाओं तथा औद्योगिक केन्द्रो म कार्य की दशाओ म सुधार नही किया जाता। इस प्रकार **पश्चिमी देशो की अपेक्षा भारत मे कल्याणकारी कार्यों की महत्ता अधिक है।** शिक्षा, खेल-कूद, मनोरजन आदि कार्यों का निस्सन्देह श्रमिको की मानसिक स्थिति पर बहुत लाभप्रद प्रभाव पडता है जो कि औद्योगिक शान्ति स्थापित करने म बहुत सहायक सिद्ध होता है। जब श्रमिक यह अनुभव करता है कि मालिक व सरकार उसके दिन-प्रतिदिन के जीवन को हर प्रकार से सुखी बनाना चाहते है तो उसकी असन्तोष और विरोध की प्रवृत्ति धीरे धीरे लुप्त हो जाती है।,
इसके अतिरिक्त मिलो मे किया जाने वाला कल्याण कार्य मिल की नौकरी को

आकर्षक बना देता है और स्थायी श्रमिक वर्ग उत्पन्न हो जाता है। अच्छे मकान, कैन्टीन, बीमारी लाभ और अन्य हितकारी कार्यों से श्रमिकों में निस्सन्देह यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि औरों के समान उद्योग में उनका भी हाथ है। और इस प्रकार श्रमिकावर्त्त और अनुपस्थिति काफी कम हो जाती है और श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ जाती है। कल्याणकारी कार्यों के सामाजिक लाभ भी अति महत्वपूर्ण है। कैन्टीन की व्यवस्था में श्रमिकों को सस्ते दामों पर स्वच्छ एवं उत्तम भोजनादि की वस्तुयें प्राप्त हो सकती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य में सुधार होगा। मनोरंजन के साधन श्रमिकों की कुप्रवृत्तियों को रोकते हैं। चिकित्सा प्रसूतिका एवं शिशु कल्याण की सुविधायें श्रमिकों एवं उनके परिवारों के स्वास्थ्य में उन्नति कर सामान्य मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी करती है। शिक्षा की सुविधायें उनकी मानसिक कुशलता एवं आर्थिक उत्पादन शक्ति में वृद्धि करती हैं।

इस प्रकार कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता के प्रश्न पर अब कोई वाद-विवाद नहीं है और समाज के समस्त देशों में इसको औद्योगिक प्रबन्ध के एक अभिन्न (Integral) भाग के नाते मान्यता प्रदान की जा चुकी है और यह एक औद्योगिक प्रथा बन चुकी है। अब कल्याणकारी कार्य केवल परोपकारी तथा सहृदय मालिकों का एक शौक मात्र नहीं समझा जाता। समस्त सभ्य समाज में अब इस बात को अधिकाधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है कि सामाजिक दृष्टिकोण से तथा उत्पादन क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव के दृष्टिकोण से इस बात की भारी आवश्यकता है कि श्रमिकों की भौतिक दशाओं में सुधार किया जाए। औद्योगिक अर्थव्यवस्था में श्रम-कल्याण एक महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। यह उस व्यावसायिक संगठन तथा प्रबन्धक का एक अत्यावश्यक अंग है जो कि वर्तमान समय में मानवीय पहलू को अधिक महत्व प्रदान करता है। यह श्रमिकों की उत्पादन शक्तियों में वृद्धि कर देता है तथा उनमें आत्मविश्वास और चेतना की नई भावना प्रवाहित करता है। श्रम कल्याणकार्य श्रमिक और मालिक दोनों के ही हृदयों में वास्तविक परिवर्तन ला देता है और उनके दृष्टिकोणों में भी परिवर्तन आ जाता है और दोनों अपने को एक ही गाड़ी के दो पहिए समझने लगते हैं। भारत में जहाँ कि औद्योगीकरण का व्यापक कार्यक्रम लागू किया जा रहा है श्रम कल्याण की आवश्यकता निःसन्देह महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष में उत्पादन बढ़ाने और पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता बहुत अधिक है क्योंकि जब तक श्रमिक सब प्रकार से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न न होंगे तब तक उत्पादन नहीं बढ़ सकता।

श्रम कल्याण कार्यों का उद्‌गम

(Origin of Labour Welfare Activities)

भारत में श्रम कल्याण कार्यों का उद्‌गम (Origin) १९१४-१८ के महायुद्ध के समय में मिलता है। उस समय तक स्वयं श्रमिकों की अज्ञानता एवं निरक्षरता,

मालिको के सकीर्ण दृष्टिकोण, सरकार की लापरवाही तथा जनता की उदासीनता के कारण श्रम-कल्याण कार्यों की ओर कोई भी ध्यान नही दिया गया था। परन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से यह कार्य धीरे-धीरे और अधिकतर ऐच्छिक आधार पर विकसित हो रहा है। आर्थिक मन्दी के समय मे भी इस ओर रुचि अधिक हो गई थी। सरकार और उद्योगपतियो दोनों ने ही सक्रिय रूप से कल्याण कार्यो मे इसलिये रुचि ली कि उस समय देश मे औद्योगिक अशाति और श्रमिको मे असन्तुष्टि बहुत फैल गई थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यों मे भी श्रम कल्याण व्यवस्था करने की ओर काफी जोर पडा। श्रम कल्याण कार्य की महत्ता द्वितीय विश्वयुद्ध मे और भी अधिक बढ गई। श्रमिको के स्वास्थ्य और कल्याण के लिय उचित पग उठाने से जो लाभ होते हैं उनको स्वीकार कर लिया गया। मालिकों ने श्रमिको के लिये अधिक सुविधायें प्रदान करने के लिये सरकार के साथ सहयोग किया। युद्ध के दिनो मे कल्याण कार्यो मे जो रुचि दिखाई गई थी, वह रुचि लडाई के बाद भी चलती रही। भारत मे यद्यपि कल्याण कार्यो का स्तर अन्य देशो की अपेक्षा बहुत नीचा है, फिर भी ये कार्य महत्वपूर्ण हो गये है और आगे आने वाले वर्षों मे इनमे उन्नति होना अवश्यम्भावी है क्योंकि भारत अब एक प्रजातन्त्र राज्य है तथा इसका उद्देश्य देश मे समाजवादी ढाचे के समाज को तथा कल्याणकारी राज्य को स्थापित करना है।

भारत सरकार द्वारा सम्पादित श्रम कल्याण कार्य

(Welfare Activities Undertaken by the Government of India)

द्वितीय महायुद्ध मे पूर्व तक भारत सरकार ने श्रम कल्याण की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया था। सन् १६२२ में, बम्बई मे एक अखिल भारतीय श्रम-कल्याण सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमे कुछ महत्वपूर्ण एव रुचिप्रद समस्याओ पर विचार-विनिमय किया गया था तथा समस्त कल्याण कार्यो का समन्वय करने का सुझाव दिया था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के एक अभिसमय (Convention) के परिणामस्वरूप सन् १६२६ मे कल्याण कार्यो की जाँच की गई तथा राज्य सरकारो को उन कार्यों से सम्बन्धित सूचनायें एकत्रित करने का आदेश दिया गया। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ने बहुत समय तक श्रम कल्याण कार्य हेतु श्रम सम्मेलन बुलाने और सुझाव देने के अतिरिक्त और कुछ भी नही किया।

परन्तु द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियां और आवश्यकताओं के कारण श्रम कल्याण से सम्बन्धित इस रूढिवादी नीति में परिवर्तन हुआ। युद्ध के समय मे सरकार ने, श्रमिको को उत्साहित करने और उनकी उत्पादन शक्ति मे वृद्धि करने के लिये, युद्ध उत्पादन मे सलग्न उद्योगों तथा अपनी बारूद आदि की फैक्ट्रियो में श्रम-कल्याण योजनायें चालू की। यह गतिविधियाँ न केवल युद्ध के समय तक चालू रहो अपितु बाद मे भी उनका और अधिक विस्तार हुआ तथा कुछ निजी व्यवसायों तक मे भी वे विस्तृत हो गई। सन् १६४२ मे श्री आर० एम० निम्बकर का केन्द्रीय

सरकार ने श्रम-कल्याण सलाहकार नियुक्त किया तथा उनके आधीन अनक सहायक श्रम-कल्याण सलाहकार तथा श्रम-कल्याण अधिकारी नियुक्त किये। सन् १६४४ मे कोयले की खानो मे कार्य करने वाले श्रमिको की चिकित्सा, मनोरजन, शिक्षा और आवास व्यवस्था की सुविधा प्रदान करने के लिये कोयला खान श्रम-कल्याण निधि का निर्माण किया गया। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियत्रित सभी व्यवसायो मे कैन्टीनें भी खोली गई जिनमे भोजन और चाय दोनों की व्यवस्था की गई। १६४८ के फैक्टरी अधिनियम १६५२ के खान अधिनियम और १६५१ के बागान श्रमिक अधिनियम जैसे अधिनियमो मे श्रमिको के कल्याण का प्रावधान किया गया है। सरकार ने कोयला, अभ्रक लोहा मैंगनीज चूना तथा डालामाइट की खानो के श्रमिको के लिये भी कल्याण निधियो का निर्माण किया है। य निधियाँ सन् १६४७ के कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम सन् १६४६ के अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, सन् १६६१ के लोहा खान श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम जिसे १६७८ में मैंगनीज खानों के श्रमिको पर भी लागू कर दिया गया है तथा सन् १६७२ के चूना तथा डोलोमाइट श्रमिक कल्याण अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित की गई है। सन् १६५६ के असम चाय बागान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत असम के चाय बागान के श्रमिको के लिये, सन् १६५० के उत्तर प्रदेश चीनी तथा पावर एल्कोहल उद्योग श्रमिक कल्याण तथा विकास निधि अधिनियम के अन्तर्गत चीनी उद्योग के श्रमिकों के लिये और १६७६ के बीडी श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम के द्वारा बीडी श्रमिकों के लिये भी ऐसी ही व्यवस्थाये की गई है। डाक व तार, बन्दरगाहों, गोदिया तथा रेलवे जैसी कुछ विशिष्ट सेवाओ के लिये पृथक् से कल्याण निधियों की भी स्थापना की गई है। कुछ राज्यो मे, जैसे—महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, पजाब, तमिलनाडु तथा प० बगाल के श्रमिकों के कल्याण के लिये जो अधिनियम पारित हुये हैं उनका उल्लेख आगामी पृष्ठों मे किया गया है। प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे श्रम और श्रम-कल्याण सम्बन्धी कार्यों के लिये ६ ७४ करोड रुपयो की व्यवस्था की गई थी। द्वितीय आयोजना मे इस व्यवस्था के लिये २६ करोड रुपये निश्चित किये गये थे। तृतीय पचवर्षीय आयोजना म श्रम-कल्याण तथा शिल्प प्रशिक्षण कार्यों के लिये ७१ ०८ करोड रुपये की व्यवस्था थी किन्तु वास्तविक व्यय ५५ ८ करोड रु० हुआ। सन् १६६६ मे १६६६ तक की वार्षिक आयोजनाओं की अवधि मे श्रम-कल्याण व प्रशिक्षण कार्यक्रम पर ३५ ५ करोड रु० खर्च हुआ। चौथी आयोजना मे श्रमिको के कल्याण व प्रशिक्षण के कार्यक्रमो के लिये ३६ ६० करोड रु० की व्यवस्था की गई। इसमे १० करोड रु० की राशि केन्द्रीय योजना मे, ७७ ०२ करोड रु० की राशि राज्य की योजनाओं म और २ ८८ करोड रु० की राशि सघीय क्षेत्रो की योजनाओ के लिये थी। पाँचवी पचवर्षीय योजनाओ की रूपरेखा मे शिल्प प्रशिक्षण, रोजगार सेवा तथा श्रम कल्याण कार्यक्रमो क लिये ५७ करोड रु० की व्यवस्था की गई थी। इसमे से १४ ५७ करोड रु० केन्द्रीय आयोजना मे व्यय होने थे और ४२ ४३

करोड रुपये राज्यों एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों की आयोजना के लिये थे। १९७८-८३ के लिये बनाई गई पचवर्षीय आयोजना में श्रम कल्याण के अन्तर्गत २० करोड रुपये के व्यय का प्रस्ताव था किन्तु इस व्यय में शिल्प प्रशिक्षण तथा बन्धक श्रमिक आदि सम्मिलित नहीं है।

कारखाना अधिनियमों में कल्याण सम्बन्धी उपबन्ध
(Welfare Provisions in the Factories Acts)

कारखाना अधिनियमों में, जो समय-समय पर पारित होते रहे हैं प्रकाश, सवातन, मशीनों से बचाव की व्यवस्था, तापक्रम पर नियन्त्रण, सुरक्षा के साधन आदि का न्यूनतम स्तर निश्चित कर दिया गया है। सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम में कल्याण कार्यों के लिये एक अलग अध्याय बना दिया गया है जिसके अन्तर्गत मालिकों के लिये कुछ कल्याण कार्य करने अनिवार्य कर दिये गये हैं। उदाहरणस्वरूप कपडे धोने की सुविधा, प्राथमिक चिकित्सा, कैन्टीन, विश्राम-स्थान, शिशु गृह तथा श्रमिकों के लिये बैठने की व्यवस्था। राज्य सरकारों को ऐसे नियम बनाने का अधिकार दिया गया है जिनके द्वारा कारखानों में श्रमिकों को अपने कपडे रखने और गीले कपडे सुखाने के लिये समुचित स्थान प्राप्त हो सके। इसके अन्तर्गत, यह भी अनिवार्य कर दिया गया कि उन कारखानों में एक कैन्टीन अवश्य स्थापित होगी जिनमें २५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं और ५० या अधिक महिला श्रमिकों वाले कारखाने में एक शिशु-गृह अवश्य स्थापित होगा। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को ऐसे नियम बनाने का अधिकार दिया गया है जिनमें इस बात की व्यवस्था हो सके कि कल्याण कार्यों के प्रबन्ध में हर कारखाने में प्रबन्धकों के साथ-साथ श्रमिकों के प्रतिनिधियों का भी सहयोग हो। एक अन्य धारा द्वारा इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि हर ऐसे कारखाने में जिसमें ५०० या उससे अधिक श्रमिक काम करते हों एक कल्याण कार्य अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिये। राज्य सरकारों को इन अधिकारियों के कर्तव्य योग्यतायें और नौकरी की शर्तों आदि का निश्चित करने का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार के उप-बन्ध सन १९३४ के भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम सन् १९५२ के खान अधिनियम, सन् १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम, १९५८ के व्यापारी जहाज अधिनियम, सन् १९६१ के मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम, सन १९६६ के बीडी व सिगार श्रमिक (रोजगार की दशायें) अधिनियम और १९७० के ठेका श्रमिक (नियमन व उन्मूलन) अधिनियम में भी है।

श्रम कल्याण निधियाँ (Labour Welfare Funds)

एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य सरकार ने यह किया है कि राजकीय औद्योगिक संस्थानों में श्रम कल्याण निधियों की स्थापना की है। निजी संस्थाओं में भी ऐसी निधियों के बनाने का प्रस्ताव है। केन्द्रीय राज्य संस्थानों में रेल और बन्दरगाहों को छोडकर श्रम कल्याण निधि की प्रयोगात्मक रूप से स्थापना करने के सम्बन्ध में

सरकार ने १९४६ में कुछ आदेश दिये। १९४८–४९ में लगभग ८० केन्द्रीय सरकारी औद्योगिक संस्थानों में श्रम कल्याण निधियाँ स्थापित हो गयी थीं जिनकी संख्या १९५०–५१ में २२१ तक हो गयी। श्रमिकों व प्रतिनिधियों का भी इन निधियों के प्रबन्ध में सम्मिलित कर लिया गया है। इन निधियों में से श्रमिकों के लिये कमरे के भीतर वाले एवं मैदान में खेले जाने वाले खेलों, वाचनालय पुस्तकालय, मनोरंजन आदि के लिये धन व्यय किया जाता है, अर्थात् ऐसी सुविधाओं पर जो किसी अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान नहीं की जातीं। सरकार भी आंशिक अनुदान के रूप में निधि को कुछ सहायता देती है। इसके अतिरिक्त, इस निधि में धन जुर्माने साइकिल स्टैण्ड दुकानों आदि से प्राप्त राशि तथा किन्हीं और व्यावसायिक कार्यों से आमदनी (जैसे—कैन्टीन सहकारी स्टोर, ड्रामे आदि) द्वारा संचित होता है। प्रथम वर्ष में सरकार ने व्यवसाय में लगे हुए प्रत्येक श्रमिक के हिसाब से एक रुपया द्वितीय व तृतीय वर्षों में आठ आने प्रति श्रमिक, प्रतिवर्ष और साथ में श्रमिकों के चन्दे के बराबर धन (अधिक से अधिक आठ आने प्रति श्रमिक), चतुर्थ वर्ष में श्रमिकों के चन्दे के बराबर या प्रति श्रमिक एक रुपया (इनमें जो भी कम हो) देना स्वीकार किया था, परन्तु चार वर्षों के बाद भी यह योजना चालू रखी गई और सरकार इसी प्रकार एक रुपया प्रति श्रमिक तक अनुदान देती रही। १९६०–६१ में सरकार ने प्रति श्रमिक २ रुपये या श्रमिकों के अंशदान के बराबर राशि (जो भी कम हो) इस कल्याण निधि में देने का निश्चय किया है। अंशदान इस शर्त पर दिया जाता है कि एक कल्याण निधि समिति होगी जिसमें निधि के प्रबन्ध व कल्याण कार्यों को करने के लिये श्रमिकों और सरकार के प्रतिनिधि होंगे वार्षिक रूप से लेखा-जोखा बनाया जायेगा, उसकी उचित जाँच होगी और निधि का धन केवल चालू व्यय पर ही लगाया जायेगा, पूँजीगत व्यय पर नहीं। मार्च १९७० के अन्त तक २६९ संस्थानों में निधियाँ चालू हो चुकी थीं और सन् १९६९–७० में श्रमिकों द्वारा ३,६८,३४८ रुपये का अंशदान और सरकार द्वारा ३,३८,०५२ रुपये का अनुदान दिया जा चुका था। श्रमिकों के लिये कल्याण निधियों की स्थापना करने के लिये अब कुछ राज्यों में तथा कुछ विशेष उद्योगों के लिये अधिनियम भी पास किये गये है।

निजी व्यवसायों में भी कल्याण निधियों की स्थापना का सुझाव स्थायी श्रम समिति की आठवीं बैठक (मार्च १९४६) में दिया गया था। तत्पश्चात् इस सुझाव पर इस समिति की अनेक सभाओं में विचार किया गया है। इस सुझाव पर श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन में भी विचार हुआ है। केन्द्रीय सरकार ने निजी व्यवसायों में कल्याण निधि स्थापित करने के विषय पर राज्य सरकारों को पत्र भी भेजा तथा दो बार पुनः १९५२ एवं १९५४ में उनसे इस बात की प्रार्थना की, कि वे मालिकों को निजी व्यवसायों में कल्याण निधियों की स्थापना करने के लिये प्रेरित करें, परन्तु मालिकों ने इस विषय में अभी तक कोई भी सन्तोषजनक कदम नहीं उठाया

है। इस कारण इस बात पर भी विचार हुआ है कि मालिकों को श्रम कल्याण निधि की स्थापना के लिये विवश किया जाय। इस बारे में एक विधेयक की रूपरेखा भी बना ली गई थी। परन्तु विवश करने के प्रश्न पर एकमत न होने के कारण कोई कानून बनाना स्थगित कर दिया गया। अक्टूबर १९६१ में श्रम मन्त्रियों के बंगलौर में हुए सम्मेलन ने इस बात का निर्णय किया कि राज्य सरकारों द्वारा निजी क्षेत्र में कल्याण निधि स्थापित करने के लिये अधिनियम बनाये जायें, परन्तु अभी तक इस ओर कोई पग नहीं उठाया गया है। हम आशा करते हैं कि मालिक स्वयं अपने हित में निधि की स्थापना करने की ओर कदम उठायेंगे और सरकार को उन्हें बाध्य करने के लिये कानून बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। केन्द्रीय क्षेत्र के उद्यमों में सन् १९६९ से ऐच्छिक रूप में कल्याण निधियों की स्थापना की गई है।

रेलवे तथा बन्दरगाहों आदि में श्रम कल्याण कार्य
(Labour Welfare Activities in Railways and Ports Etc)

रेलवे में कर्मचारियों और उनके परिवारों की चिकित्सा के लिये अस्पतालों व चिकित्सालयों की व्यवस्था है। इसके साथ ही उचित सामान सहित कई चिकित्सालयों और कई चिकित्सा अधिकारियों की भी व्यवस्था है। रेलवे कर्मचारियों के लिये मुख्य-मुख्य पहाड़ी स्थानों पर विश्राम गृह और रांची में स्वास्थ्य गृह भी खोल गये हैं। रेलवे आय में से प्राप्त धन की सहायता से रेलवे लाभ निधि समितियां द्वारा अनेक मातृत्व हित एवं शिशु कल्याण केन्द्र चलाये जाते हैं। रेलवे अपने श्रमिकों के लिये स्कूल तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था कर शिक्षा की सुविधा प्रदान करती है। रेलवे कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा के लिये विशेष सुविधायें प्रदान की जा रही हैं तथा अनेक स्कूल चलाये जा रहे हैं। अधिकांश रेलों में कमरे के भीतर एवं बाहर मनोरंजन हेतु क्लबों और संस्थाओं की व्यवस्था है और बच्चों के मनोरंजन के लिये कैम्पों को संगठित किया जाता है। आपत्तिकाल में सहायता देने हेतु स्टाफ हित निधियाँ (Staff Benefit Funds) की स्थापना की गई। रेलों में अनेक कैन्टीनें थीं जहाँ कर्मचारियों को सस्ता और पौष्टिक भोजन देने की व्यवस्था थी। अनेक उपभोक्ता सहकारी भंडार, सहकारी साख समितियाँ तथा सहकारी आवास समितियाँ भी थीं। रेलवे श्रमिकों के निर्वाह व्यय में वृद्धि को रोकने के लिये अनेक अनाज की दुकानें तथा चलती फिरती अनाज की दुकानें भी थीं और अनेक श्रमिक महँगाई भत्ते के स्थान पर रेलों की अनाज की दुकानों से राशन रियायती दर पर लेते थे, परन्तु अब यह व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त की जा रही है। किन्तु अभी हाल में ही रेल कर्मचारियों ने अधिक अनाज की दुकानें खोलने के लिये आन्दोलन किया है। खेल-कूद की व्यवस्था सभी रेलों में पाई जाती है और खेलों को प्रोत्साहन दिया जाता है। अखिल भारतीय टूर्नामेंटों में रेलों की टीमें भाग लेती हैं। प्रथम आयोजना में रेलवे स्टाफ के कल्याण कार्यों एवं क्वार्टरों पर चार करोड़ रु० प्रतिवर्ष

व्यय हुआ। द्वितीय आयोजना में इस कार्य के लिये ५० करोड रुपया अर्थात् १० करोड रुपये की व्यवस्था थी। तीसरी आयोजना में भी ५० करोड रुपये की व्यवस्था की गई थी। इसमें से ३५ करोड रुपये तो कर्मचारियों के लिये ५४,००० क्वार्टर बनाने के लिये थे तथा १५ करोड उनकी सुविधाओं के लिये थे। सुविधाओं के अन्तर्गत चिकित्सा, क्वाटरों में उन्नति, जल मल निकास, पानी की पूर्ति, बिजली, श्रमिकों के आवास क्षेत्र में मनोरंजन की सुविधायें आदि कार्यक्रम थे। स्कूलों और होस्टल स्थापित करने के भी कार्यक्रम थे।

सभी प्रमुख बन्दरगाहों पर श्रमिकों एवं परिवारों के लिये योग्य डाक्टरों की तथा उचित सामान सहित औषधालयों की व्यवस्था है। कोचीन और मद्रास में हस्पताल भी हैं कांदला में दो केन्द्र भी हैं। बम्बई, मद्रास, विशाखापत्तनम् और कोचीन में सहकारी साख समितियाँ तथा कलकत्ते में एक ऋण निधि है। अधिकांश बन्दरगाहों पर मनोरंजन, वाचनालय एवं पुस्तकालय की सुविधायें प्रदान की जाती है तथा कैन्टीनें प्रायः सहकारिता के आधार पर चलायी जाती हैं। श्रमिकों के बच्चों के लिये प्राइमरी स्कूल भी हैं तथा मद्रास में दुःख-ग्रस्त श्रमिकों के लिये कल्याण निधि की व्यवस्था है। सरकार ने बम्बई तथा कलकत्ते में जहाज के कर्मचारियों के लिये भी कल्याण कार्य किये हैं तथा उनके लिये भी चिकित्सालय, कैन्टीन व होस्टल की व्यवस्था है। उनके लिये एक त्रिदलीय राष्ट्रीय कल्याण बोर्ड की भी स्थापना की गई है। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में भी प्राविडेन्ट फण्ड, पेंशन तथा चिकित्सा की सुविधायें प्रदान की जाती हैं। डाक-तार विभाग ने अपने कर्मचारियों के लिये ८८७ सहकारी समितियाँ, १४ अनाज की दुकानें, ३२० कैन्टीनें, ५७१ खाने के कमरे, ३८ चाय गृह, २ रात्रि स्कूल, १८० टारमेटरीज, २०७ विश्राम कक्ष, ८ अवकाश गृह ११ चिकित्सालय तथा लगभग ८३१ मनोरंजन क्लबों की व्यवस्था की है। तपेदिक से पीडित कर्मचारियों के लिये विभिन्न सेनीटोरियम में १८० पलगों की व्यवस्था है। १९६०-६१ में विभाग ने कर्मचारियों के लिये एक कल्याण निधि की स्थापना की गई है जिसमें पहले तीन वर्षों में सरकार द्वारा ७ लाख रुपये प्रतिवर्ष का अनुदान दिया गया। कर्मचारियों के बच्चों की तकनीकी शिक्षा के लिये २०० वजीफे भी प्रदान किये जा रहे हैं। गोदी कर्मचारियों के लिये भी उचित सामान सहित चिकित्सालयों, स्कूलों, सहकारी समितियों, कैन्टीनों तथा खेलों की व्यवस्था है। कलकत्ता में इनके लिये अस्पताल भी हैं। कल्याण कार्य गोदी श्रमिक बोर्ड द्वारा १९६१ की गोदी श्रमिक (स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा कल्याण) योजना के अन्तर्गत किये जाते हैं।

इस प्रकार, केन्द्रीय सरकार ने कल्याण कार्यों के लिये सक्रिय पग उठाये हैं। केन्द्रीय संस्थानों में और केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में श्रम कल्याण अधिकारी भी नियुक्त किये गये हैं। अगस्त १९५८ में 'भूली' स्थान पर एक प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centre) खोला गया। इस केन्द्र में कल्याण कार्यों

के संगठन और चलाने के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रतिवर्ष १०० व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने की योजना है। १९३७-३९ में जब प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल बने थे तब से, विशेषतया स्वतन्त्रता के पश्चात्, राज्य सरकारों औद्योगिक श्रमिकों के लिए कल्याणकारी कार्य करने की नीति का अनुसरण किया है।[1]

राज्य सरकारों द्वारा श्रम कल्याण कार्य
(Labour Welfare Activities by State Governments)

भारत के लगभग सभी राज्यों तथा संघशासित क्षेत्रों में श्रमिकों के लिये कल्याण कार्य करने के उद्देश्य से कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गई है और अनेक राज्यों में विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत कल्याण निधियाँ स्थापित की गई है। इन केन्द्रों पर, खेलकूद मनोरंजन, पुस्तकालय, वाचनालय तथा श्रमिकों की शिक्षा एवं उनके प्रशिक्षण आदि के लिये सुविधायें उपलब्ध कराई जाती है। इन कल्याण क्रियाओं का सम्बन्ध जिन बातों से होता है वे है प्रौढ़ शिक्षा, मनोरंजन सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ, स्वास्थ्य व सफाई सम्बन्धी कार्यक्रम, नर्सरी स्कूल, छोटे बच्चों के लिये शिशु मन्दिर, बढ़ईगीरी, दर्जी के काम तथा कढ़ाई का प्रशिक्षण, पुस्तकालय सेवा, रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये प्रचार, शिल्प प्रशिक्षण, संगीत की कक्षायें, चलचित्र प्रदर्शन तथा चाय बागान के श्रमिकों के लिये व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि।

आंध्र प्रदेश में, सन् १९६९ में राज्य के विभिन्न स्थानों पर ११ श्रम कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये थे। ये केन्द्र औद्योगिक श्रमिकों एवं उनके आश्रितों के लाभ के लिये अपना कार्य जारी रखे हुये है। ये केन्द्र मनोरंजन सम्बन्धी, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक सुविधायें भी उपलब्ध कराते है। असम में, सरकार द्वारा समाज सेवी संस्थाओं को सहायता से तथा चाय बोर्ड द्वारा दिये जाने वाले अंशदान से २० श्रम कल्याण केन्द्र चलाये जाते है। दर्जी तथा बढ़ईगीरी जैसे अनेक शिल्पों में प्रशिक्षण की सुविधायें उपलब्ध कराई जाती हैं। श्रमिक वर्ग के परिवारों की योग्य लड़कियों को नर्स व दाई का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये वजीफे दिये जाते है। चाय बागानों के श्रमिकों के लाभ के लिये श्रमिक संघों द्वारा जो अनेक कल्याण केन्द्र चलाये जाते है, राज्य सरकार द्वारा उनको वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। श्रमिकों के लिये एक अवकाश गृह (Holiday Home) स्थापित किया गया है। सन् १९५९ के असम चाय बागान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत एक निधि (Fund) की स्थापना की गई है जिसके द्वारा असम के चाय बागान श्रमिकों के लिये कल्याण-कार्यों का आयोजन किया जाता है। बिहार में, राज्य सरकार द्वारा विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों पर अनेक श्रम कल्याण केन्द्र संचालित किये जाते है। इन केन्द्रों पर श्रमिकों के लिये कमरे के भीतर व मैदान के खेलों, पुस्तकालय व वाचनालय, गाने-बजाने के यन्त्रों आदि की सुविधायें उपलब्ध कराई जाती

1 For details refer to the Indian Labour Year Book

हैं। इस हेतु अनेक निरीक्षकों की नियुक्ति की गई है ताकि इस विषय में आश्वस्त हुआ जा सके कि श्रमिकों के कल्याण के लिये की गई कानूनी व्यवस्थाओं को समुचित रूप से लागू किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, कृषि श्रमिकों के लिये १ तथा चाय बागान श्रमिकों के लिये ३ कल्याण केन्द्र, २ लाभकारी केन्द्र तथा अनेक एकीकृत श्रम कल्याण केन्द्र मालिक एवं श्रमिकों के संगठनों द्वारा चलाये जा रहे हैं। इन केन्द्रों का भवन के निर्माण आदि के लिये सरकार वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

गुजरात मे, गुजरात श्रम कल्याण बोर्ड जाकि एक साविधिक निकाय है, औद्योगिक नगरों मे कल्याण की स्थापना करके औद्योगिक श्रमिकों एवं उनके आश्रितों के लिए अनेक कल्याण-सुविधाओं की व्यवस्था करता है। १६८० में ऐसे ६३ केन्द्र गुजरात में थे। इन केन्द्रों द्वारा जिन सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है उनमें प्रमुख हैं खेल, कूद व उनकी प्रतियोगितायें, शैक्षणिक भ्रमण, सामुदायिक व सामाजिक शिक्षा प्रशिक्षण, शिशु मन्दिर, बाल सभायें, लघु खेल केन्द्र तथा फिल्म प्रदर्शन आदि। हरियाणा मे, १६८० में महत्वपूर्ण औद्योगिक नगरों मे ८ श्रम कल्याण केन्द्र स्थित थे। ये केन्द्र श्रमिकों तथा उनके परिवारों को शिक्षा, मनोरंजन तथा प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करते है। राज्य श्रम कल्याण निधि के धन का उपयोग भी श्रमिकों तथा उनके आश्रितों का अनेक कल्याण सुविधायें देने में किया जाता है। जून १६७४ मे, मसूरी मे एक सुसज्जित अवकाश गृह संचालित किया जा रहा है। यह अवकाश गृह श्रमिकों को उपयोग के लिये नि शुल्क प्राप्त होता है। यही नही, यहाँ आने के लिये श्रमिकों तथा उनके परिवारों का एक तरफ का किराया सरकार द्वारा दिया जाता है और वापसी का किराया मालिकों द्वारा दिया जाता है। हिमाचल प्रदेश मे, पालमपुर मे स्थित श्रम कल्याण केन्द्र निरन्तर सामान्य कल्याण सुविधाओं की व्यवस्था कर रहा है जिनमें बागानों की स्त्री श्रमिकों को सिलाई व कढाई का प्रशिक्षण दिया जाना भी सम्मिलित है। जम्मू तथा काश्मीर मे, ६ श्रम कल्याण केन्द्र तो राज्य के अन्दर कार्य कर रहे है और ५ केन्द्र राज्य से बाहर उन श्रमिकों के लिये कार्य कर रहे है जो कश्मीर घाटी से मैदानों मे काम करने जाते है। ये केन्द्र मनोरंजन, खेलकूद तथा समाचार-पत्रों आदि की सुविधायें उपलब्ध कराते है तथा श्रमिकों को नि शुल्क चिकित्सा सहायता भी देते हैं। कर्नाटक में, १६ श्रम कल्याण केन्द्र कार्यरत है जो श्रमिकों तथा उनके परिवारों को पुस्तकालय, वाचनालय, समाचार-पत्र, महिलाओं के लिये सिलाई की कक्षायें, संगीत, ड्रामा, कमरे के भीतर व मैदान के खेलो आदि की सुविधायें प्रदान करते हैं। केरल में, श्रमिकों के क्लब बनाये गये हैं जो मनोरंजन खेल, वाचनालय, रेडियो, फिल्म प्रदर्शन, संगीत तथा ड्रामे आदि की सुविधायें उपलब्ध कराते हैं। मध्य प्रदेश में, जबलपुर, राजनदगाँव, भोपाल, रीवा तथा सतना मे ५ श्रम कल्याण केन्द्र है। ये केन्द्र कमरे के भीतर तथा मैदान के खेल, प्रौढ

शिक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय तथा स्त्री श्रमिको के लिये सिलाई की कक्षाओ की सुविधायें जुटाते है। श्रमिक सघो द्वारा भी अनेक कल्याण केन्द्र चलाये जाते है। पूरी फिल्मे तथा वृत्त चित्र दिखाने के अतिरिक्त, राज्य के श्रम विभाग की श्रव्य दृश्य इकाई (Audio Visual Unit) का उपयोग परिवार नियोजन कार्यक्रम के प्रचार के लिये भी किया जाता है।

महाराष्ट्र में, १९५३ के श्रम कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत एक साविधिक निकाय (Statutory Body) के रूप मे गठित श्रम कल्याण बोर्ड औद्योगिक तथा अन्य श्रमिको के लिये विभिन्न कल्याण कार्यों की व्यवस्था करता है। यह बोर्ड १५८ श्रम कल्याण केन्द्रो का सचालन करता है। इन केन्द्रो द्वारा जिन महत्वपूर्ण कल्याण-कार्यों की व्यवस्था की जाती है, वे है नर्सरी स्कूल, शिशु मन्दिर, पुस्कालय, सूचना सेवा, सिलाई तथा शिल्प की कक्षाओं का सचालन करना और खेल-कूद व रेडियो आदि की सुविधायें प्रदान करना। **नागालैण्ड मे,** मनोरजन क्लब चालू है जोकि श्रमिको के लिये आन्तरिक खेलो तथा पुस्तकालय आदि की व्यवस्था करते हैं। **उडीसा मे,** २१ बहुउद्देशीय श्रम कल्याण केन्द्र तथा ७ कक्ष बनाम मनोरजन केन्द्र कार्यरत है जो औद्योगिक श्रमिको को शैक्षणिक, सास्कृतिक तथा मनोरजन सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करते है। **पजाब में** १५ श्रम कल्याण केन्द्र सामान्य कल्याण सुविधायें जुटाते है तथा श्रमिको के परिवारो की महिला सदस्यो को सिलाई, बुनाई तथा कढाई का प्रशिक्षण देते है। डलहौजी मे श्रमिको के लिये एक अवकाश गृह चलाया जा रहा है जिसमे नि शुल्क निवास की व्यवस्था है। **राजस्थान में,** श्रम विभाग २८ श्रम कल्याण केन्द्रो का सचालन करता है जोकि शिक्षा एव मनोरजन सम्बन्धी तथा अन्य सुविधाओ की व्यवस्था करते है। इन केन्द्रो द्वारा प्रति वर्ष टूर्नामिन्ट्स का आयोजन किया जाता है। **तमिलनाडु में,** सन् १९८० मे महत्वपूर्ण औद्योगिक नगरो मे ११ श्रम कल्याण केन्द्र कार्य कर रहे थे। ये केन्द्र सामान्य कल्याण कार्य करने के अलावा श्रमिको के बच्चो के लिये किन्डर गार्टन कक्षायें भी चलाते है। उपर्युक्त के अलावा, ७ श्रम कल्याण केन्द्र **त्रिपुरा में, ७ अडमान निकोबार द्वीप समूह में, ७ गोआ, दमन तथा दीव में, ४ पाण्डेचेरी में,** और १४ श्रम कल्याण केन्द्र **दिल्ली में** कार्य कर रहे है और श्रमिको के लिये सामान्य कल्याण सुविधाओ की व्यवस्था करते है।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा श्रम कल्याण के कार्य

(Labour Welfare Activities of the U P Government)

सन् १९३७ में उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रम कमिश्नर के निरीक्षण मे एक नवीन श्रम-विभाग की स्थापना की और कानपुर मे चार श्रम कल्याण केन्द्र खोले। उसके पश्चात् केन्द्रो की सख्या मे वृद्धि हुई तथा अब एक अनुभवी अधीक्षक (Superintendent) के निरीक्षण मे एक पृथक् कल्याण विभाग स्थापित कर दिया गया है। महिलाओ व बालको हेतु कल्याण-कार्य करने के लिये महिला अधीक्षक

की भी व्यवस्था है। १९७८ में कुल ७८ श्रम कल्याण केन्द्र राज्य के प्रत्येक मुख्य औद्योगिक नगरों में इस प्रकार स्थापित हैं : **कानपुर क्षेत्र**—२१ (जिनमें १० 'क' श्रेणी के, सभी कानपुर में और ११ 'ख' श्रेणी के, ९ कानपुर में तथा २ फर्रुखाबाद में), **इलाहाबाद क्षेत्र**—५ (जिनमें २ 'क' श्रेणी के, इलाहाबाद तथा मिर्जापुर में एक-एक और ३ 'ख' श्रेणी के इलाहाबाद मिर्जापुर तथा चुर्क में एक-एक) **मेरठ क्षेत्र**—११ (जिनमें ३ 'क' श्रेणी के, मेरठ सहारनपुर तथा मुजफ्फरनगर में एक-एक, ७ 'ख' श्रेणी के सहारनपुर शामली, खुर्जा तथा धामपुर में एक-एक तथा गाजियाबाद में तीन और १ 'ग' श्रेणी का रुड़की में), **बरेली क्षेत्र**—५ (जिनमें २ 'क' श्रेणी के, रामपुर व मुरादाबाद में एक-एक, ३ 'ख' श्रेणी के कलक्टरबक गंज, बरेली तथा राजा का सहसपुर (मुरादाबाद) में एक-एक), **आगरा क्षेत्र**—११ (जिनमें १ 'क' श्रेणी का आगरा में १० 'ख' श्रेणी के आगरा फिरोजाबाद अलीगढ़ व हाथरस में दो दो तथा शिकोहाबाद व मथुरा में एक-एक) **लखनऊ क्षेत्र**—५ (जिनमें २ 'क' श्रेणी के, रायबरेली व लखनऊ में एक-एक और ३ 'ख' श्रेणी के, दो लखनऊ में व एक सीतापुर में), **गोरखपुर क्षेत्र**—८ (जिनमें ४ 'क' श्रेणी के दो देवरिया में तथा एक-एक बस्ती व गोरखपुर में तथा ४ 'ख' श्रेणी के गोरखपुर में दो तथा बस्ती व मऊनाथ भंजन में एक-एक), **वाराणसी क्षेत्र**—५ (जिनमें २ 'क' श्रेणी के और ३ 'ख' श्रेणी के, सभी वाराणसी में), **झांसी क्षेत्र**—१ ('ख' श्रेणी का झांसी में); **फैजाबाद क्षेत्र**—१ ('ख' श्रेणी का टाण्डा में), **नैनीताल क्षेत्र**—३ (जिनमें २ 'क' श्रेणी के, काशीपुर व नैनीताल में एक-एक तथा १ 'ख' श्रेणी का कोटद्वार गढ़वाल में), **देहरादून क्षेत्र**—२ (दोनों 'ख' श्रेणी के देहरादून में), कुल ७८ (जिनमें २८ 'क' श्रेणी के, ४९ 'ख' श्रेणी के और १ 'ग' श्रेणी का)।

स्थाई केन्द्रों को उनके कार्यों के अनुसार ३ श्रेणियों में विभाजित किया गया है। २८ केन्द्र "क" श्रेणी के, ४९ "ख" श्रेणी के तथा १ "ग" श्रेणी का है। **"क" श्रेणी के केन्द्रों में** निम्न सुविधायें प्रदान की जाती हैं—एक एलोपैथिक चिकित्सालय, एक वाचनालय एवं पुस्तकालय, सिलाई की कक्षायें, कमरे के भीतर वाले एवं मैदान के खेल, व्यायामशाला, अखाड़े, संगीत व रेडियो, रंगारंग कार्यक्रम, नाटक, महिला व शिशु विभाग, जिनमें शिशुओं के कल्याण के लिये और महिलाओं के लिये प्रसवकाल के लिये सुविधायें हैं, आदि। मनोरंजन के लिये हारमोनियम, तबला, ढोलक आदि की व्यवस्था है। **"ख" श्रेणी के केन्द्रों में** भी प्रायः ऐसी ही सुविधायें प्रदान की जाती हैं, परन्तु इनमें एलोपैथिक के स्थान पर होम्योपैथिक चिकित्सालय होते हैं। **"ग" श्रेणी के केन्द्रों में** केवल पुस्तकालय व वाचनालय, कमरे के भीतर वाले एवं मैदान के खेल, रेडियो तथा आयुर्वेदिक अथवा यूनानी चिकित्सालय की व्यवस्था होती है। सारे केन्द्रों में लोकप्रिय चलचित्रों को मुफ्त दिखाया जाता है तथा संगीत और नाटक के कलबों की भी व्यवस्था है। तीन केन्द्रों में श्रमिकों के बच्चों के लिये रात्रि पाठशालायें खोली गई हैं तथा ४७ केन्द्रों

मे वयस्क शिक्षा कक्षायें है। कुछ केन्द्रो मे कर्मचारियो के बालको के लिये नृत्य कक्षायें भी हैं। रोगी तथा अर्धपोषित शिशुओ को नि शुल्क दूध के वितरण की भी व्यवस्था है तथा श्रमिको के बच्चो व गर्भवती स्त्रियों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिये नर्सें और दाइयाँ भी नियुक्त की गई हैं। श्रमिक वर्ग की स्त्रियो को आर्थिक सहायता देने के हेतु विभिन्न केन्द्रो मे चरखा कातना भी सिखाया जाता है। कल्याण कार्यों म श्रमिक व्यक्तिगत रूप से रुचि ले सकें, इस उद्देश्य से स्काउटिंग की भी व्यवस्था की गई है। कवि सम्मेलन, कैम्पफायर, व्यायाम प्रदर्शन तथा कुश्तियो आदि के मैच भी समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। कानपुर मे दो क्षय निवारण चिकित्सालय भी खोले गय है। श्रम कल्याण विभाग म विदेशो से शिक्षा प्राप्त श्रम अधिकारी भी नियुक्त हैं। परन्तु केन्द्रो के प्रशासनिक कर्मचारी पर्याप्त कुशल नही है और उनके वेतन भी बहुत कम है। इस विभाग द्वारा अधिकृत भवन मे ६ केन्द्र स्थित है। मौसमी श्रम कल्याण केन्द्रो मे भी चीनी के कारखानो मे काम करने वाले कर्मचारियो के लिये केवल कमरे के भीतर खेले एव मैदान के खेल, वाचनालय, रेडियो, हारमोनियम तथा तबला जैसी सुविधाओ की व्यवस्था है। यह केन्द्र नवम्बर से मार्च तक खुलते हैं। पहले दो सरकारी सहायता प्राप्त केन्द्र भी थे जो मोतीलाल स्मारक समिति द्वारा चलाये जाते थे, परन्तु सरकार ने इन्हे अब अपने हाथ म ले लिया है। रुडकी का केन्द्र गवर्नमेंट लीथो प्रेस द्वारा वित्तीय सहायता से चलाया जाता है। श्रमिको के प्रयोग के लिये मसूरी मे एव अवकाश-गृह की स्थापना की गई है, कानपुर मे श्रमिको के लिये २ टी० बी० क्लीनिक हैं तथा देहरादून मे एक मचल औषधालय है। अनेक केन्द्रो पर परिवार नियोजन की सुविधायें भी उपलब्ध कराई जाती है।

सन् १९३७ मे कल्याण कार्यों के लिये राज्य के बजट मे केवल १०,००० रुपयो की व्यवस्था की गई थी, जो १९४६ म बढकर लगभग ढाई लाख रुपय हो गई। इस समय विभिन्न केन्द्रो मे कल्याण कार्यों पर प्रतिवर्ष लगभग २५ लाख रुपये व्यय किये जाते हैं। श्रम कल्याण कार्यों के लिये गैर-सरकारी सस्थाओ को सहायक अनुदान भी दिये जाते है परन्तु ऐसे अनुदानो की धनराशि बहुत कम होती है।

सरकार ने १९४९ मे 'उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारियों के नियम' भी बनाये थ, जिनम १९४८ के कारखाना अधिनियम म दिये गये कल्याण कार्य सम्बन्धी उपबन्ध सम्मिलित कर लिये गये थे। इन नियमो को हटाकर अब १९५५ के 'उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारियों के नियमों' को लागू कर दिया गया है। इन नियमो के अनुसार उन तमाम कारखानो मे जिनमे ५०० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं, एक श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति करना आवश्यक है तथा जिन कारखानो मे २,५०० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं उनमे एक अतिरिक्त श्रम कल्याण अधिकारी की भी नियुक्ति आवश्यक है। इन नियमो

मे श्रम कल्याण अधिकारी की योग्यता वेतन नौकरी की शर्तें तथा उसके कार्य आदि का भी उल्लेख है (देखिये परिशिष्ट 'ग')। सरकार को श्रम कल्याण कार्य की व्यवस्था के हेतु सलाह देने के लिये श्रम कल्याण सलाहकार समितियाँ भी हैं। ऐसी एक समिति तो सम्पूर्ण राज्य के लिये है तथा १६ विभिन्न जिलो के लिये है। श्रमिकों के कल्याण के लिये विभिन्न क्षेत्रों मे वार्षिकोत्सव तथा टूर्नामेंट आयोजित किये जाते हैं। अगस्त १६५६ मे, उत्तर प्रदेश श्रम कल्याण निधि अधिनियम भी पारित किया गया जिसका स्थान बाद मे १६६५ के अधिनियम ने लिया। इसके अन्तर्गत ऐसी मजदूरी बोनस राशि व अवकाश प्राप्ति का धन जो मजदूरो को नही दिया जा सका है तथा जो मालिको के पास बिना किसी उपयोग के पड़ा है तथा मजदूरो से ली गई जुर्माने की तमाम राशि एक निधि मे सचित की जाती है। यह धन ऐसे श्रम कल्याण कार्यों मे व्यय किया जाता है जो मालिक द्वारा कानून के अन्तर्गत दी हुई सुविधाओ के अतिरिक्त हो। इस निधि का प्रबन्ध एक बोर्ड द्वारा होता है जिसमे एक अध्यक्ष तथा मालिक और कर्मचारियो के प्रतिनिधि होते हैं। १६७८ तक इस निधि मे ६,४५,८६४ रु० एकत्र हो चुका था।

कल्याण कार्यों के प्रशासन के लिये श्रम विभाग मे एक कल्याण प्रभाग है जो एक अतिरिक्त श्रमायुक्त (कल्याण) के अधीन है। यह प्रभाग राज्य के श्रम कल्याण केन्द्रो के माध्यम से श्रम कल्याण कार्य करने के लिये उत्तरदायी है। इस समय कानपुर, इलाहाबाद, मेरठ, आगरा बरेली, गोरखपुर लखनऊ, वाराणसी, झासी, फैजाबाद, देहरादून तथा नैनीताल मे से प्रत्येक मे एक-एक प्रादेशिक कार्यालय है, तथा कानपुर मे एक कल्याण अधिकारी तथा अन्य ६ क्षेत्रों मे एक-एक सहायक कल्याण अधिकारी है। १६६० मे श्री गोविन्द सहाय एम० एल० ए० की अध्यक्षता मे श्रम कल्याण केन्द्रो द्वारा किये गये कार्यों का मूल्यांकन करने तथा अधिकाधिक सुविधायें उपलब्ध कराने से सम्बन्धित सुझाव देने के लिये एक सब-कमेटी बनाई गई थी। परन्तु इसकी रिपोर्ट के बारे मे कुछ ज्ञात नही हुआ।

उत्तर प्रदेश मे चीनी कारखानों के कर्मचारियों के लिये कल्याण कार्य (Welfare Work for Sugar Factory Workers in U. P)

उत्तर प्रदेश सरकार ने चीनी मिल मजदूरो को सुविधायें प्रदान करने के लिये भी कदम उठाये हैं। "उत्तर प्रदेश चीनी एव चालक मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण तथा विकास निधि" (U P Sugar and Power Alcohol Industries Labour Welfare and Development Fund) की भी स्थापना की गई है। इस समय इस निधि मे ४६ लाख रुपये से भी अधिक की राशि है। इसको तीन विभागो मे बाँटा गया है—आवास, सामान्य कल्याण तथा विकास। इस निधि मे से चीनी व चालक मद्यसार उद्योग मे लगे हुये कर्मचारियो के कल्याण हेतु धन व्यय किया जाता है। चालक मद्यसार उद्योग को जो शीरा मिलो द्वारा दिया जाता है, उसकी कीमत सरकार द्वारा २८ पैसे प्रति मन निर्धारित की गई है। खुली बिक्री द्वारा इससे अधिक जो कुछ प्राप्त होना है उसे इस निधि मे देना होता

है। इस प्रकार इस निधि का निर्माण शीरे की बिक्री के लाभ से होता है, जो प्रत्यक्ष फैक्ट्री द्वारा कानूनन निधि में जमा किया जाता है। इस निधि की राशि में से ९८% आवास के लिये और केवल २ प्रतिशत सामान्य कल्याण तथा विकास के लिये है। दिसम्बर १९६१ तक निधि की कुल धनराशि ४८,९८,५०० रुपये थी। इस धनराशि में से ४५,३०,६६६ रु० आवास के लिये, ३,१८,८४९ रुपये सामान्य कल्याण के लिये तथा ४८,९८५ रु० विश्राम के लिये निर्धारित किये गये थे। १९६४ के अन्त तक, आवास के लिये ४५,६९,७०२ रु० निर्धारित किये गये थे। सामान्य कल्याणकारी कार्य निम्नलिखित थे —सफाई व स्वास्थ्य में उन्नति, बीमारी की रोकथाम चिकित्सा व मातृत्व हित सुविधाओं में उन्नति व सुधार औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान के ज्ञान को बढ़ावा देना, जल वितरण व धोने की सुविधाओं की व्यवस्था, पुस्तकालय तथा प्रचार द्वारा शिक्षा का विकास, सामाजिक दशाओं व रहन-सहन के स्तर में सुधार, मनोरंजन की सुविधायें और काम पर जाने तथा वहाँ से आने के लिये यातायात की व्यवस्था, आदि। विकास कार्य निम्नलिखित थे —तकनीकी शिक्षा तथा चीनी व मद्यसार और उनसे बनने वाली अन्य वस्तुओं के बनाने का प्रशिक्षण, जिसमें गन्ना पैदा करना और उसके गौण-उत्पादनों का उपयोग करना भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इसमें गन्ना उत्पादन के लिये सब प्रकार के अन्वेषण करने की सुविधायें तथा सड़क बनाने व सिंचाई की सुविधायें भी सम्मिलित हैं। इस समय तो निधि का कार्य अधिकतर फैक्ट्री कर्मचारियों के लिये मकान निर्माण करना ही है। सामान्य कल्याण निधि में से अभी तक कुछ धनराशि अवकाश गृहों के निर्माण तथा जिला चिकित्सालयों में चीनी मिलों के श्रमिकों के लिये पलंग सुरक्षित करने पर व्यय की गई है।

पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा श्रम कल्याण कार्य

(Labour Welfare Activities of the West Bengal Government)

सन् १९३९–४० तक बंगाल में सरकार ने श्रमिकों के लाभ के लिये केवल निजी संस्थाओं को ही सहायता दी थी। सन् १९४० में सरकार द्वारा दस कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गई जो १९४४–४५ में ४१ तक पहुँच गई। परन्तु देश के विभाजन के पश्चात् सारी व्यवस्था को फिर से संगठित करना पड़ा और १९६० में पश्चिमी बंगाल सरकार के अधीन राज्य के विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में ५६ श्रम-कल्याण केन्द्र थे। इनमें से २१ आदर्श श्रम-कल्याण केन्द्र थे। इन केन्द्रों में किये जाने वाले कल्याण कार्य निम्नलिखित हैं—प्रचार, पुस्तकालय, रेडियो, खेल, चिकित्सा के प्रबन्ध, कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल, नाटक का प्रबन्ध, संगीत सभायें, कुश्ती, सिनेमा, महिलाओं के लिये दस्तकारी प्रशिक्षण कक्षायें तथा गायन कक्षायें आदि। बच्चों व वयस्कों को प्रारम्भिक शिक्षा देने और कर्मचारियों को श्रमिक संघवाद तथा श्रम समस्याओं के बारे में शिक्षा देने की भी व्यवस्था है। प्रत्येक केन्द्र एक श्रम कल्याण कर्मचारी के अधीन होता है। इस कर्मचारी को एक

श्रम कल्याण सहायक तथा एक महिला श्रम कल्याण कर्मचारी की सहायता प्राप्त होती है। दार्जिलिंग के चाय बागान क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की दशाओं के निरीक्षण के लिये तथा उन्हें स्वास्थ्य, सफाई और बच्चों की देख-रेख की शिक्षा देने के लिये तीन महिला कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है। चाय क्षेत्रों में एक अस्पताल स्थापित किया गया है। पश्चिमी बंगाल के बागान के क्षेत्रों में स्थापित केन्द्रों की संख्या १३ है। प्रत्येक केन्द्र में चिकित्सालय भी है जहाँ मुफ्त चिकित्सा सहायता उपलब्ध है। सन् १९७४ में पश्चिमी बंगाल श्रम कल्याण निधि अधिनियम पास किया गया था। इसके द्वारा अन्य राज्यों के समान ही एक कल्याण निधि की स्थापना तथा कल्याण बोर्ड के गठन की व्यवस्था की गई।

सरकार द्वारा किये गये कल्याण कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical Estimate of Government Welfare Measures)

इस प्रकार केन्द्रीय तथा विभिन्न राज्यों की सरकारें श्रम-कल्याण कार्यों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं। परन्तु अब भी श्रम-कल्याण के सम्बन्ध में बहुत कुछ करने को बाकी है। देश में श्रमिकों की संख्या तथा औद्योगिक विकास व विस्तार को देखते हुए प्रत्येक राज्य में कल्याण केन्द्रों की संख्या अत्यधिक कम है। कल्याण केन्द्रों पर जो धन व्यय किया जाता है वह देखने में अवश्य अधिक मालूम होता है किन्तु यदि उस धन का हम विश्लेषण करें तो मालूम होता है कि उसमें से प्रति श्रमिक औसत कुछ पैसे ही व्यय हो पाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में तथा बच्चों व मातृत्व हित कल्याण केन्द्रों के लिये अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता है। वर्तमान समय में महिला डॉक्टरों का अत्यधिक अभाव है। महिला श्रमिकों को चमड़े की वस्तुयें, खिलौने, बटन तथा दूसरी इसी तरह की प्रतिदिन काम में आने वाली वस्तुओं को बनाने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है तथा शहर में एक दुकान भी खोली जा सकती है जहाँ कल्याण केन्द्रों में निर्मित वस्तुओं का विक्रय किया जा सके। महिला विभाग के कार्यों को और विस्तृत करना आवश्यक है, तथा और अधिक सिलाई मशीनों की व्यवस्था भी करनी चाहिये। महिला श्रमिक इन कल्याण केन्द्रों में कार्य करके अपने परिवार के लिये अतिरिक्त आय पैदा कर सकती हैं। प्रत्येक केन्द्र में श्रमिक-संघवाद की भी शिक्षा देनी चाहिये। श्रमिकों के बालकों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। ये बालक अधिकतर मारे-मारे फिरते हैं तथा इनमें अनेक बुरी आदतें पड़ जाती हैं। कल्याण केन्द्रों में बालकों के लिये मनोरंजन की सुविधायें भी अधिक होनी चाहियें। कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की सुविधायें भी अधिक हो सकती हैं। विभिन्न खेलों की नियमित टीमें सगठित की जा सकती हैं तथा मैचों का भी प्रबन्ध हो सकता है। वार्षिक या त्रैमासिक खेल-कूद आदि की प्रतियोगितायें करके जीतने वाले प्रतियोगियों को पारितोषिक भी दिये जाने चाहियें। चिकित्सा सुविधाओं का कार्य कर्मचारी राज्य बीमा निगम के लिये छोड़ देना चाहिये तथा कल्याण केन्द्रों में

अन्य कल्याण कार्यों को विस्तृत करना चाहिये । इन केन्द्रो को चलाने मे सबसे बडा दोष यह है कि इनके प्रबन्ध मे श्रमिको का हाथ कम होता है । यही कारण है कि इन केन्द्रो को अधिक लोकप्रियता व सफलता नही मिल पाई है । श्रम-कल्याण केन्द्रो मे मालिको को सलाह और सहायता देने के लिये श्रमिको की एक समिति भी होनी चाहिये । इससे श्रमिको का सक्रिय रूप से सहयोग मिल जायेगा और श्रमिको मे यह उत्साह आ जायेगा कि वे कल्याण केन्द्रो से पूर्ण लाभ उठायें । इसके अतिरिक्त कल्याण केन्द्र किसी ऐसे प्रशिक्षित व अनुभवी व्यक्ति के अधीन होना चाहिये जिसमे समाज सेवा की भावना हो । केन्द्रो के कर्मचारियो को समुचित वेतन दिया जाना चाहिये । दफ्तरो जैसा वातावरण इन केन्द्रो के कल्याण कार्यों के लिये सहायक नही हो सकता । निश्चय ही इस प्रकार के केन्द्रो का महत्व व इनकी उपयोगिता बहुत अधिक है क्योकि ऐसे देश मे जहाँ अब भी श्रमिक अपने हितो की स्वय देखभाल नही कर सकते, वहाँ सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उनके लिये कुछ कल्याण कार्य करे और ऐसे अधिनियम बनाये जिनके अन्तर्गत मालिको को कल्याण कार्य करने के लिये विवश किया जा सके । अत कल्याण केन्द्रो की सख्या मे वृद्धि करने की बहुत आवश्यकता है । प्रत्येक औद्योगिक बस्ती मे सरकार द्वारा चलाया जाने वाला एक श्रम-कल्याण केन्द्र होना आवश्यक है तथा उन केन्द्रो मे कल्याण कार्यों को विस्तृत करने के लिये अधिक धन दिये जाने की आवश्यकता है । श्रम-कल्याण केन्द्र जहाँ तक भी सम्भव हो सके श्रमिकों के निवास अथवा काम करने के स्थान के निकट होने चाहियें क्योकि उनसे यह आशा नही की जा सकती कि वे इन केन्द्रो पर पहुँचने के लिये लम्बी यात्राएँ करेंगे ।

मालिको द्वारा कल्याण कार्य (Welfare Work by Employers)

कल्याण कार्य इस समय मालिको की इच्छा पर छोडने के स्थान पर अधिकाधिक कानून के क्षेत्र मे आता जा रहा है । कैन्टीनें, विश्राम स्थल, शिशुगृह खानो मे स्नानगृह आदि विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत आवश्यक कर दिये गये है । इसी प्रकार कर्मचारी राज्य बीमा-योजना लागू होते ही मालिको पर चिकित्सा सहायता का उत्तरदायित्व नही रहेगा । उपरोक्त विवरण से यह भी स्पष्ट है कि केन्द्रीय व राज्य सरकारें भी औद्योगिक नगरो मे कल्याण केन्द्रों की स्थापना करके कल्याण कार्यों मे अधिकाधिक भाग ले रही है, परन्तु फिर भी श्रमिको को सुविधायें व सेवाएँ प्रदान करने के लिये मालिक तथा उनकी सस्थाएँ अभी काफी काम कर सकती है । कई जागरूक मालिक विभिन्न उद्योगो मे स्वय अपनी इच्छा से श्रमिको के लिये कल्याण कार्य करते रहे है, उनमे से कुछ का विवरण निम्नलिखित है—

सूती वस्त्र उद्योग मे कल्याण कार्य (Welfare Work in Cotton Textiles)

बम्बई मे लगभग प्रत्येक सूती मिल मे चिकित्सालय, शिशुगृह, कैन्टीन, अनाज की दुकानें तथा ऐम्बुलैंस कक्ष की सुविधायें दी गई हैं। कुछ मिलो मे

योजनाओं तथा प्राविडेन्ट फण्ड और लड़की के विवाह के लिये धन देने की योजनाओं का प्रबन्ध भी करता है। कर्मचारियों को सहसा आवश्यकता पड़ने पर (जैसे लम्बी बीमारी में विशेषज्ञों से इलाज के लिये तथा मृत्यु संस्कार आदि के समय) विशेष आर्थिक सहायता दी जाती है। एक कर्मचारी बैंक भी है जिसमें धन जमा करने वालों की संख्या ४ ००० हजार से अधिक है। प्रबन्धकों ने अपने कर्मचारियों को सस्ती बीमा पॉलिसी देने के लिये स्वयं अपनी एक बीमा कम्पनी की स्थापना की है। यहाँ सब सुविधाओं से युक्त ५० पलगों वाला एक अस्पताल भी है जिसमें एक्स-रे का सामान, दन्त-चिकित्सा की कुर्सी तथा विद्युत किरणों से इलाज की भी पूर्ण व्यवस्था है। चिकित्सा सहायता निःशुल्क दी जाती है तथा एक योग्य महिला डाक्टर की भी व्यवस्था है। ट्रस्ट द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों में श्रमिकों के बालकों तथा बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध है। योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। ट्रस्ट द्वारा एक उच्च माध्यमिक विद्यालय, एक मिडिल स्कूल तथा एक तकनीकी स्कूल चलाये जा रहे हैं। श्रमिकों तथा उनके परिवारों के लिये वयस्क शिक्षा कक्षायें, पुस्तकालय तथा वाचनालय की भी व्यवस्था है। एक व्यायाम-शाला तथा खेल-कूद का भी प्रबन्ध किया गया है। श्रमिकों के अपने ही तैरने के तालाब, नाटक मंच आदि हैं। "डी० सी० एम० गजट" के नाम से एक साप्ताहिक समाचार-पत्र हिन्दी तथा उर्दू में प्रकाशित किया जाता है जिसे कर्मचारियों में बिना मूल्य के वितरित किया जाता है।

मद्रास के बकिंघम तथा कर्नाटक मिलों में एक मिल चिकित्सालय है जिसमें छः डॉक्टर नियुक्त हैं, जो कर्मचारियों को उनके घरों पर भी देखने जाते हैं। एक महिला डॉक्टर के अधीन भी एक चिकित्सालय है। प्रत्येक मिल के श्रमिक क्षेत्रों में एक चिकित्सालय होता है तथा नर्सें प्रतिदिन श्रमिकों के घरों पर जाती हैं। महिला डाक्टर तथा दो स्वास्थ्य निरीक्षक भी सप्ताह में एक या दो बार श्रमिक क्षेत्रों में जाती हैं। महिलाओं के लिये विशेष कक्षायें आयोजित की जाती हैं जिनमें सफाई, बच्चों का पालन-पोषण, भोजन का महत्व तथा बीमारियों की रोकथाम आदि पर व्याख्यान दिये जाते हैं। महिलाओं के लिये सिलाई की कक्षायें हैं। लड़कियों को गृह-विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, सामान्य विज्ञान तथा दस्तकारी आदि की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक श्रम क्षेत्र में नर्सरी कक्षायें भी चालू की गई हैं तथा केवल ५० पैसे प्रति माह देने पर बालकों को हल्का नाश्ता व मछली का तेल दिया जाता है। ठेकेदारों द्वारा दो कैन्टीनें चलाई जाती हैं तथा कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी सुविधायें दी गई हैं। मिल में एक सहकारी समिति भी है।

बंगलौर की ऊनी, सूती व रेशम की मिलें भी कल्याण कार्यों को संगठित रूप में कर रही हैं। एक आधुनिक दवाखाना, मातृत्व हित व बाल-कल्याण व्यवस्था, चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य निरीक्षक कर्मचारियों की व्यवस्था है। प्रत्येक वर्ष श्रमिकों की बस्ती में एक बाल प्रदर्शनी तथा स्वास्थ्य सप्ताह मनाया जाता है। एक नर्सरी

पाठशाला, एक माध्यमिक पाठशाला व रात्रि में वयस्कों के लिये कक्षायें भी चलाई जाती हैं। दो वाचनालयों तथा एक पुस्तकालय की भी व्यवस्था है। कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल, नाटक, सभाओं आदि जैसे मनोरंजन की सुविधायें भी प्रदान की गई हैं। कोयम्बतूर में भी प्रत्येक सूती वस्त्र मिल में एक-एक चिकित्सालय है। कुछ मिलें अस्पताल भी चलाती हैं जिनमें विशेष रूप से मातृत्वहित व बच्चों के विभाग भी होते हैं। सभी मिलों में शिशुगृह, कैन्टीन, नहाने की सुविधायें, विश्राम स्थान तथा चिकित्सालय हैं। कई मिलों में उपदानप्राप्त कैन्टीनें हैं और मनोरंजन की तथा बच्चों की शिक्षा की सुविधायें भी हैं।

मदुरा में मदुरा मिल्स कम्पनी ने अपने कर्मचारियों की चिकित्सा के लिये बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया है। सब सुविधाओं से युक्त चिकित्सालयों की व्यवस्था है तथा अस्पताली चिकित्सा के लिये एक स्थानीय अस्पताल में प्रबन्ध किया गया है, जिसमें मिलों ने स्वयं अपना एक्स-रे यन्त्र लगा दिया है। मिलों में शिशु-गृहों की भी व्यवस्था है। स्कूलों में बच्चों को दूध, भोजन, फल आदि बिना किसी मूल्य के दिये जाते हैं। 'मदुरा मिल कर्मचारी सहकारी भण्डार' भी चलाया जाता है जिसके प्रबन्ध में श्रमिकों का भी हाथ होता है। एक कर्मचारी बचत निधि योजना भी चालू है, जिसमें मिल मालिक भी सहायता देते हैं। मदुरा मिलों द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्यों में एक विशेषता यह है कि वे 'मदुरा श्रमिक संघ कल्याण परिषद्' को ५,००० रु० प्रति माह उपदान में देती हैं। यह परिषद् कर्मचारियों के बच्चों के लिये एक पाठशाला तथा पुरुष व महिला कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिये दो वयस्क केन्द्रों को चलाती हैं। मिल ने श्रमिकों की बस्ती में भी एक स्कूल की व्यवस्था की है।

इसी प्रकार अनेक और स्थानों पर भी, जैसे—शोलापुर, कलकत्ता, कानपुर, बड़ौदा, इन्दौर, सुरेन्द्रनगर, हिसार, फगवाड़ा, ब्यावर, कोयम्बतूर, भीलवाड़ा, नवसारी आदि में, सूती वस्त्र मिलों द्वारा श्रमिकों के लिये विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्यों की सुविधायें प्रदान की गई हैं। बम्बई मिल मालिक संघ के सभी सदस्यों ने श्रमिकों को अच्छी कैन्टीन तथा अनाज की दुकानों की सुविधायें प्रदान की हैं। संघ अन्तर्मिल खेल-कूद प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करता है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि सूती मिल उद्योग में दी जाने वाली कल्याण सुविधाओं के स्तर विभिन्न केन्द्रों में भिन्न-भिन्न हैं। कुछ मालिक तो केवल कानून के अनुसार ही आवश्यक सुविधायें देकर सन्तुष्ट हो गये हैं, परन्तु कुछ बड़ी मिलों ने कल्याण कार्यों को विस्तृत स्तर पर किया है तथा वे कानून द्वारा बाधित सुविधाओं से भी आगे बढ़ गई हैं।

जूट मिल उद्योग में कल्याण कार्य
(Welfare Work in Jute Mill Industry)

केवल "भारतीय जूट मिल परिषद्" ही एक ऐसा संघ है जिसने अपनी

सदस्य संस्थाओं के कल्याण कार्यों को संगठित करने का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व लिया है। यह परिषद् विभिन्न स्थानों पर पाँच कल्याण केन्द्र चलाती है, जिनमें सामान्य कल्याण कार्य होते हैं। इनमें कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की तथा मनोरंजन की सुविधाओं की व्यवस्था है तथा मिलों में आपस में खेल की प्रतियोगितायें भी की जाती हैं। प्रत्येक केन्द्र में एक-एक रेडियो तथा वाचनालयों में समाचार पत्रों की व्यवस्था है। कुछ केन्द्रों ने स्वयं अपने पुस्तकालय, नाटक मण्डली तथा संगीत कक्षाएं चलाई हैं। टीटागढ़ केन्द्र में एक कैन्टीन तथा एक चिकित्सालय भी है जिसमें मुफ्त ही चीजें व सेवायें मिलती हैं। यह परिषद् प्रत्येक केन्द्र पर एक निःशुल्क प्रारम्भिक पाठशाला चलाती है। लड़कियों के हेतु पाक व सिलाई कक्षाओं की व्यवस्था भी की गई है। मिल कर्मचारियों के बच्चों को तकनीकी शिक्षा देने के लिये प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष २०० रु० के मूल्य की दस छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं। कुछ केन्द्रों पर एक महिला कल्याण समिति तथा महिला क्लबें भी चलाई जाती हैं। महामारी को रोकने के लिये नियमित रूप से चेचक व अन्य रोगों के टीके लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, मिलें अलग से भी श्रमिकों के लिये कल्याण कार्य करती रहती हैं। उदाहरणतः परिषद् की ८८ सदस्य मिलों में, जिनका पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा सन् १९४७ में एक सर्वेक्षण किया गया था, ३५ में चिकित्सालयों की व्यवस्था है, ६ मिलें अस्पताल चलाती हैं, १५ मिलों में मातृत्व-हित चिकित्सालय हैं, ३३ में कैन्टीनें हैं, ६५ शिशुगृह चलाती हैं, ६३ में पाठशालाओं की व्यवस्था है, ४१ में पुस्तकालय हैं, ३४ में कमरों के भीतर के खेलों और ६१ में मैदान के खेलों की व्यवस्था है, २८ मिलों में व्यायामशालायें हैं तथा ४२ मिलों में समय-समय पर सिनेमा दिखाने की व्यवस्था है। सभी मिलों में श्रम-कल्याण अधिकारी नियुक्त हैं। कुछ मिलों में इन्हें 'कार्मिक' या 'कल्याण अधिकारी' कहा जाता है। कुछ मिलों की ओर से ३८ केन्द्र पश्चिमी बंगाल में तथा एक उत्तर प्रदेश में चलाया जा रहा है।

कानपुर में मालिकों के श्रम कल्याण कार्य
(Labour Welfare Activities of Employers at Kanpur)

कानपुर में, ब्रिटिश इण्डिया कार्पोरेशन ने दो श्रमिक बस्तियों के लिये एक कल्याण अधीक्षक (Welfare Superintendent) की नियुक्ति की है। लड़कों तथा लड़कियों के स्कूलों, खेलों, चिकित्सालयों, मातृत्व-हित तथा बाल-कल्याण केन्द्रों, सभाओं, एक अस्पताल तथा एक विधवा आश्रम, आदि की सुविधाएं कल्याण कार्यों द्वारा दी गई हैं। कानपुर की बेग सदरलैंड मिलों ने बालकों तथा वयस्कों के स्कूलों, खेल के मैदानों, कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों, रेडियो तथा पूर्ण सुविधायुक्त शिशु-गृहों की व्यवस्था की है। कानपुर की जे० के० इण्डस्ट्रीज ने भी तीन लाख रुपयों से एक ट्रस्ट की स्थापना की थी जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों के लिये कई पाठशालाएँ, एक तैरने का तालाब तथा कई अन्य सुविधाएँ प्रदान की करने व्यवस्था थी। परन्तु इन सुविधाओं को प्रदान करने की ओर कोई पग नहीं उठाया गया।

इन्जीनियरिंग उद्योग में कल्याण कार्य
(Welfare Work in Engineering Industry)

इन्जीनियरिंग उद्योग में कई बड़ी संस्थाओं ने अनेक प्रकार के श्रम-कल्याण कार्य किये हैं जिनका अप्रैल १९४८ में पश्चिमी बंगाल के इन्जीनियरिंग अधिकरण द्वारा किये गये एक निर्णय के पश्चात् सामान्यीकरण किया गया है। अनेक संस्थाओं ने अपने कर्मचारियों के लिये चिकित्सालयों, कैन्टीनों, शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधायें प्रदान की हैं। जमशेदपुर की टाटा लोहा एवं इस्पात कम्पनी द्वारा किये गये कार्य भी विशेष उल्लेखनीय हैं। यह कम्पनी ४१६ पलंगों वाला एक अस्पताल चलाती है। इसके अतिरिक्त नगर के विभिन्न भागों में आठ औषधालय तथा एक अस्पताल संक्रामक बीमारियों का है। कर्मचारियों तथा उनके परिवारों का इलाज निःशुल्क किया जाता है। एक महिला चिकित्सा अधिकारी के अधीन एक महिला विभाग तथा मातृत्व-हित व शिशु विभाग है। एक मातृत्व-हित व बाल-कल्याण संस्था भी है जिसके अन्तर्गत निर्धन श्रमिकों के परिवारों के लिये कई चिकित्सालयों का प्रबन्ध है। एक वार्षिक स्वास्थ्य तथा बाल-प्रदर्शनी का भी आयोजन किया जाता है। शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। सन् १९७६-७७ में नगर में महत्वपूर्ण स्थानों पर तथा नगर के चारों ओर प्रबन्धकों द्वारा संचालित १२ सामुदायिक केन्द्र कार्य कर रहे थे जिनके अन्तर्गत युवक दल, महिला दल, किशोर केन्द्र तथा श्रमदान आदि का आयोजन किया जाता है। वयस्क शिक्षा कक्षाओं के अतिरिक्त कम्पनी ३ हाई स्कूल, ११ मिडिल स्कूल, १६ प्रारम्भिक पाठशालायें, २ रात्रि पाठशालायें तथा १ तकनीकी रात्रि पाठशाला को भी चलाती है। शिक्षा विभाग का वार्षिक बजट लगभग १४ लाख रुपये का है। छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। बच्चों के लिये कई खेल के मैदानों का भी प्रबन्ध है, कई किशोर-केन्द्र हैं तथा कर्मचारियों के लिये कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी व्यवस्था है। नगर के विभिन्न भागों में १२ श्रम-कल्याण केन्द्र खोले गये हैं जिनमें एक वाचनालय व एक पुस्तकालय, कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल, व्याख्यान व वाद-विवाद प्रतियोगितायें, संगीत व नाटक आदि की सुविधायें प्रदान की गई हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न बस्तियों में मुफ्त सिनेमा दिखाया जाता है। एक रेडियो प्रसारण की भी व्यवस्था है जिसमें से नौ लाउडस्पीकर शहर के विभिन्न भागों में लगाये गये हैं। कारखाने के अन्दर कम्पनी दो बड़े-बड़े होटल तथा ६ उपदानप्राप्त कैन्टीनें चलाती है तथा महिला कर्मचारियों के लिये कई विश्रामालयों व सात सामुदायिक केन्द्रों की व्यवस्था की गई है। समाज कल्याण संगठनों, विभिन्न क्लबों व संघों को पिकनिक के लिये अनुदान दिये जाते हैं। बच्चों के लिये शिशु गृहों की भी व्यवस्था की गई है। अर्धपोषित बच्चों को दूध तथा बिस्कुट बिना मूल्य के दिये जाते हैं। महिलाओं को धोने के लिये साबुन मुफ्त मिलता है। बंगाल की इस्पात निगम तथा भारतीय लोहा कम्पनी ने भी अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिये बहुत अच्छे प्रबन्ध किये हैं। बोकारो, रूरकेला, दुर्गापुर

तथा भिलाई के सरकारी क्षेत्र के इस्पात कारखानों में बड़े पैमाने पर कल्याण-कार्य किये जाते हैं जिनमें अस्पतालों, चिकित्सालयों, कैन्टीनों, खेल-कूद, मनोरंजन क्लबों, शैक्षणिक संस्थाओं व पुस्तकालयों आदि की व्यवस्था सम्मिलित है। कर्नाटक राज्य में भद्रावती के कारखानों में भी श्रमिकों को ऐसी ही सुविधायें प्रदान की जाती हैं।

कागज व सीमेंट उद्योग में कल्याण कार्य
(Welfare Work in Paper and Cement Industries)

कागज उद्योग में सभी मिलें चिकित्सालयों, शिशु-गृहों व कैन्टीनों का प्रबन्ध करती हैं तथा सहकारी समितियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। कुछ मिलों ने कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है, कुछ ने 'कर्मचारी क्लबें' स्थापित की हैं तथा कुछ में खेलों और मनोरंजन कार्यों की व्यवस्था भी है। सीमेंट कारखानों ने, (विशेषकर उन्होंने, जो "एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी" से सम्बन्धित हैं) अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिये काफी ध्यान दिया है। इसमें अस्पतालों और चिकित्सालयों (जिनमें योग्य डॉक्टर हैं), शिशु-गृहों, कैन्टीनों, खेल तथा मनोरंजन के लिये क्लबों, रेडियो, नहाने के तालाब, सस्ते अनाज की दुकानों तथा शिक्षा आदि की सुविधायें प्रदान की जा रही हैं।

अस्पतालों, चिकित्सालयों, शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाओं की व्यवस्था मालिकों द्वारा अन्य कई उद्योगों, जैसे—चीनी, चमड़ा तथा चर्म रंगाई, रसायन, ऊनी वस्त्र, तेल, दियासलाई, काँच, सिगरेट, वनस्पति आदि, उद्योगों में भी की गई है।

बागान में कल्याण कार्य
(Welfare Work in Plantations)

सन् १९५१ में बागान श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत, सभी बागानों के लिये यह आवश्यक है कि वे अपने निवासी श्रमिकों तथा उनके परिवारों के लिये आवास की व्यवस्था करें तथा अस्पताल या चिकित्सालयों की स्थापना करें। पीने के पानी, सफाई, कैन्टीन, शिशु-गृह तथा मनोरंजन की सुविधाएँ और छाते, कम्बल व बरसाती कोट की सुविधा प्रदान करना भी कानूनन अनिवार्य कर दिया गया है। १५० या इससे अधिक श्रमिकों वाले बागानों में एक कैन्टीन की स्थापना करनी होती है और जिस बागान में ५० या इससे अधिक महिला श्रमिक काम पर लगी होती हैं वहाँ एक शिशुगृह की स्थापना करनी होती है। जिस बागान में ३०० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं उनमें एक श्रम-कल्याण अधिकारी रखना आवश्यक होता है। चाय, काफी या रबड़ बोर्डों द्वारा बागानों में श्रमिकों के कल्याण के लिये धन का वितरण किया जाता है।

अनेक बागान गम्भीर बीमारी की चिकित्सा के लिये उद्यान-अस्पताल चलाते हैं। कई बागान ने सामूहिक रूप में सहयोग देकर एक चिकित्सा परिषद् बनाई है, जिसमें एक मुख्य चिकित्सा अधिकारी की नियुक्ति की गई है तथा चिकित्सा सम्बन्धी

गम्भीर मामले एवं सामूहिक अस्पताल में भेज दिये जाते हैं। लगभग चार बड़े-बड़े चाय व कहवा क्षेत्रों में अस्पतालों व चिकित्सालयों की व्यवस्था है और छोटे क्षेत्रों में कर्मचारियों की चिकित्सा के लिये स्थानीय अस्पतालों में प्रबन्ध है। कई स्थानों पर शिशु-गृह नहीं है, परन्तु जब मातायें काम पर चली जाती हैं तो उनके बच्चों की देख-भाल के लिये वृद्ध महिलाओं का प्रबन्ध किया गया है। कई क्षेत्रों में कर्मचारियों के बालकों के लिये स्कूल चलाये जाते हैं तथा उनमें से कुछ में वयस्कों के लिये रात्रि कक्षायें भी स्थापित की गई है। प्राथमिक कक्षाओं तक बच्चों को सभी बागान में निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। कुछ स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों पर मनोरंजन की सुविधायें प्रदान नहीं की जाती। बागान में कर्मचारियों के लिये कैन्टीनें भी बहुत कम है। तमिलनाडु के एक चाय बागान क्षेत्र में श्रमिकों में बचत तथा मितव्ययिता की आदत डालने के लिये एक क्षेत्रीय श्रमिक सहकारी बैंक खोला गया है। सरकार इस बैंक के प्रशासन में सहकारी विभाग के माध्यम से सक्रिय सहायता प्रदान करती है और उसने इसके कार्य-सचालन के लिये ३,००० रुपये का एक स्वतन्त्र अनुदान दिया है। बागान में मातृत्व-हित-लाभ व बीमारी के लाभ भी दिये गये हैं।

असम बागान में, प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार ४६६ अस्पताल तथा ३०४ चिकित्सालय हैं और गम्भीर रोगों के मामले सरकारी अथवा मिशन के अस्पतालों को भेज दिये जाते हैं। श्रमिकों के बच्चों के लिये शिक्षा की व्यवस्थायें भी की गई हैं। ३६१ स्कूल, ७८६ मनोरंजन केन्द्र, ७५४ रेडियो सेट तथा २,०१५ शिशुगृह वहाँ कार्यरत हैं। बिहार में पालदु के श्रम-कल्याण केन्द्र में मनोरंजन की सुविधायें दी जाती हैं। पाँगा बागान के श्रमिकों की चिकित्सा के लिये पालदु में एक चिकित्सालय भी है। गम्भीर बीमारी की अवस्था में कम्पनी के खर्चे से ही रोगी को राँची में अस्पताल में भेज दिया जाता है। पानी उपलब्ध कराने के लिये कुओं की व्यवस्था की जाती है और मालिकों द्वारा पानी पिलाने वालों की नियुक्ति की जाती है। केरल में, बड़े बागान में मालिकों द्वारा अच्छे सामूहिक अस्पताल तथा चिकित्सालय बनाये गये हैं। कुछ बागान में कैन्टीन, शिशुगृह तथा मनोरंजन की सुविधायें भी हैं। परन्तु इन सभी सुविधाओं का स्तर सन्तोषजनक नहीं है। कर्नाटक में, एक अस्पताल तथा १० चिकित्सालय चलाये जा रहे हैं जिनमें डॉक्टर तथा १५ कम्पाउण्डर हैं। बच्चों के लिये अनेक प्राइमरी स्कूल भी हैं। तीन श्रम-कल्याण केन्द्र भी खोले गये हैं। उत्तर प्रदेश में, १५ बागान में से, जहाँ से सूचना प्राप्त हो सकी, १० में चिकित्सालय थे। कई स्थानों पर कैन्टीनों की व्यवस्था की जा रही है। पश्चिमी बंगाल में, एक सामूहिक अस्पताल चाय बागान श्रमिकों के लिये बना दिया गया है और सन् १९६७ में कैन्टीन शिशुगृह, मनोरंजन तथा शिक्षा की सुविधायें प्रदान करना कानूनन अनिवार्य बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक अस्पताल तथा चिकित्सालय भी हैं। त्रिपुरा में, ५५ बागान में से ४४ में चिकित्सालय हैं। शेष में तथा थोड़ी-सी चिकित्सा की सुविधायें दी जा रही है। राज्य के तमाम

बागान म प्राथमिक कक्षाओं तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था भी है। श्रम कल्याण केन्द्र भी खोले जा चुके है। हिमाचल प्रदेश के बागानों मे, अशकालीन वैद्य या डाक्टर नियुक्त किये गये हैं और पालमपुर मे एक श्रम कल्याण केन्द्र स्थापित किया गया है। तमिलनाडु मे, जिन बागानो मे १,००० या इससे अधिक श्रमिक काम करते है वहाँ उद्यान अस्पताल है, जहाँ २०० से १,००० तक श्रमिक काम करते हैं वहाँ सामूहिक अस्पताल हैं और जहाँ श्रमिकों की सख्या २०० से कम है वहाँ पूर्णतया सुसज्जित चिकित्सालय है।

असम के चाय बागान के श्रमिकों के कल्याण के लिये असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण निधि अधिनियम १९५९ मे पारित किया गया जो २३ जून १९६० से लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत एक निधि कल्याण कार्यों के लिये बनाई गई है। इस निधि मे धन निम्नलिखित प्रकार से सचित किया जाता है—(१) बागान की व्यवस्था मे कर्मचारियों पर जो भी जुर्माने किये जाते हैं उनकी राशि, (२) ऐसी राशि जिसका भुगतान नहीं किया गया है और जो जमा होती चली गई है, (३) राज्य या केन्द्रीय सरकार या १९५३ के चाय अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित चाय बोर्ड द्वारा अनुदान, (४) कोई भी ऐच्छिक रूप से दिया गया दान, (५) ऋण ली हुई राशि तथा (६) कर्मचारियों के प्रॉवीडेन्ट फण्ड खाते की कोई भी ऐसी राशि, जिसका कोई भी दावेदार न हो या जो जब्त कर ली गई हो। इस निधि का प्रशासन एक बोर्ड द्वारा किया जाता है और असम चाय बागान के श्रमिकों के कल्याण के लिये राज्य सरकार द्वारा जो व्यय आवश्यक समझा जाता है इसमे से किया जाता है। इसका धन शिक्षा मनोरजन, खेल, सास्कृतिक या सामाजिक कार्यक्रम आदि पर व्यय किया जा सकता है। विधान के अन्तर्गत यदि मालिक कोई कार्य करते हैं तो उनके लिये इस निधि मे से व्यय किया जाता है। बोर्ड एक कल्याण आयुक्त की नियुक्ति कर सकता है, जो इसके कार्यांग अधिकारी का कार्य करेगा।

सन् १९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम केवल उन्ही बागानो पर लागू होता है जिनकी पैमाइश १०.११७ हैक्टेयर से कम नहीं होती और जिनमे ३० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। परिणामस्वरूप, अधिकाश बागान इस अधिनियम की परिधि मे नही आते। इसी कारण राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह सिफारिश की है कि इस अधिनियम म ऐसा सशोधन किया जाना चाहिये कि यह अधिक से अधिक बागानो पर लागू हो सके, ताकि कम से कम आवश्यक न्यूनतम कल्याण के कम सुविधायें उन बहुसख्यक श्रमिकों को प्राप्त हो सकें जो अब तक अधिनियम की परिधि मे न आने के कारण इनसे वचित थे।

कोयले की खानों में कल्याण कार्य :
१९४७ का कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम
(Labour Welfare Work in Coal Mines Coal Mines Labour Welfare Fund Act, 1947)

कोयले की खानों में सगठित कल्याण-कार्य की आवश्यकता देखते हुए भारत सरकार ने ३१ जनवरी १९४४ को एक अध्यादेश की घोषणा की जिसका उद्देश्य एक निधि निर्मित करना था, जिसे "कोयला खान श्रम-कल्याण निधि" नाम दिया गया। अध्यादेश को सन् १९४७ मे कोयला खान श्रम-कल्याण निधि अधिनियम में परिवर्तित कर दिया गया, जिसके अन्तर्गत कोयला उद्योग मे काम करने वाले कर्मचारियों के लिये अधिक सुचारु रूप मे धन देने की व्यवस्था थी। यह अधिनियम जून १९४७ मे लागू हुआ। इसके अन्तर्गत "कोयला खान श्रम आवास तथा सामान्य कल्याण निधि" के नाम से एक निधि की स्थापना की गई। इस निधि के दो खाते हैं—(१) आवास खाता तथा (२) सामान्य कल्याण खाता। इस अधिनियम के अन्तर्गत सारे भारत मे खानो से जाने वाले हर प्रकार के कोयले पर एक उपकर (Cess) लगाया गया। इस कर की दर प्रारम्भ मे प्रति टन चार आने (२५ पैसे) से कम और आठ आने (५० पैसे) से अधिक नहीं थी, परन्तु सन् १९७२ मे अधिनियम मे किये गये एक संशोधन द्वारा अब यह दर न तो २५ पैसे प्रति टन से कम होगी और न ही ७५ पैसे प्रति टन से अधिक। इसका निश्चय केन्द्रीय सरकार समय-समय पर करेगी। इस उपकर से प्राप्त राशि को आवास खाते तथा सामान्य कल्याण खाते में अनुभाजित कर दिया जाता है। अधिनियम में उन तमाम कार्यों का वर्णन किया गया है जिन पर प्रत्येक खाते में से रुपया व्यय किया जा सकता है। जून सन १९४७ से खानो से जाने वाले कोयले तथा भारी कोयले पर ३७ पैसे प्रति टन के हिसाब से एक उपकर लगाया गया था। जनवरी १९६१ से इस उपकर की दर ५० पैसे प्रति टन अथवा ४९.२१ पैसे प्रति मीट्रिक टन कर दी गई। सन् १९७२ में उपकर की दर बढ़ाने के लिये अधिनियम मे संशोधन किया गया और १७ जनवरी १९७३ से यह दर ४९.२१ पैसे प्रति टन से बढ़ाकर ७५ पैसे प्रति टन कर दी गई। सन् १९४६–४७ तक यह उपकर ७ : २ के अनुपात मे "सामान्य खाते" तथा "आवास खाते" मे विभाजित होता रहा था। सन् १९५७–५८ में आवास पर अधिक जोर देने के लिये अनुपात को ६ : ३ मे बदल दिया गया। सन् १९६१–६२ में ४० : ५० था और उसके बाद बदलकर यह ७ : ५ हो गया तथा १७ अक्तूबर १९७३ से यह अनुपात २ : २ चल रहा है। इस निधि का प्रशासन केन्द्रीय सरकार एक सलाहकार समिति के परामर्श से करती है जिसमें सरकार व कोयला खानों के मालिक तथा श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों की संख्या बराबर होती है। सभी सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते है, जिनमें एक महिला भी होती है। एक "कोयला खान श्रमिक आवास बोर्ड"

पहले में ही स्थापित किया जा चुका है। अधिनियम के अनुसार एक "कोयला खान श्रम-कल्याण कमिश्नर" की भी नियुक्ति हुई है जिसकी सहायता के लिये एक मुख्य कल्याण अधिकारी, तीन श्रम-कल्याण निरीक्षक तथा एक महिला कल्याण अधिकारी रखे गये हैं। कोयले की खानों के श्रमिकों के लिये जो कानून बने हैं उन्हें विज्ञापित करने के लिये बिहार, प० बंगाल तथा मध्य प्रदेश में पाँच प्रचार अधिकारी नियुक्त किये गये हैं।

अक्तूबर १९७९ से कोयला खान श्रम-कल्याण निधि तथा कोयला खान श्रम-कल्याण संगठन का कार्य कोयला विभाग को सौंप दिया गया है।

सन् १९५०–५१ में "कोयला खानों के कल्याण निधि नियमों" में तीन विशेष संशोधन किये गये। वे निम्नलिखित विषयों पर थे—(१) बड़े कोयला क्षेत्रों को 'कोयला क्षेत्र उपसभाओं' के सविधान बनाना (२) खानों में रेल के अतिरिक्त किसी और साधन से भेजे जाने वाले कोयले तथा भारी कोयले पर भी उपकर लगाना तथा (३) जो खानें अपने कर्मचारियों के लिये एक निश्चित स्तर के चिकित्सालय चलाती हैं उन्हें सहायता देना।

सन् १९७८–७९ में "कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि" की कुल आय ४२६·६२ लाख रुपया तथा व्यय ४५७·८० लाख रुपया था। निधि के आवास सम्बन्धी कार्य आवास समस्या के अध्याय में बताये जा चुके हैं। जहाँ तक सामान्य कल्याण का प्रश्न है व्यय का एक बड़ा भाग स्वास्थ्य सुविधाओं तथा चिकित्सा सम्बन्धी देखभाल व इलाज के साधनों पर लगाया जाता है। इस समय वहाँ तीन केन्द्रीय अस्पताल हैं जिनमें एक धनबाद में, एक आसनसोल में तथा एक मानेन्द्रगढ़ में है। इनमें क्रमश ३००, ३५१ तथा १११ बिस्तरे हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ १२ क्षेत्रीय अस्पताल हैं जिनमें ४ झरिया में, दो-दो हजारीबाग तथा रानीगंज में, तीन मध्य प्रदेश की व एक आन्ध्र प्रदेश की कोयला खानों में है। भुगी और मुगमा में दो चिकित्सालय भी हैं। सरसोल और कटरा में दो क्षय-चिकित्सालय भी खोले गये हैं। कुछ सैनिटोरियमों में खानों में काम करने वालों के लिये पलग सुरक्षित कर दिये गये हैं। भूली में एक स्वास्थ्य लाभ (Convalescent) गृह भी बनाया गया है और दो ऐसे गृह और खोले जा रहे हैं। क्षेत्रीय अस्पतालों से तथा आसनसोल, झरिया तथा हजारीबाग में खानों के स्वास्थ्य बोर्ड के द्वारा परिवार हित, मातृत्व-हित तथा शिशु कल्याण की सुविधायें भी प्रदान की जाती हैं। अन्य उल्लेखनीय कार्यों में से मुख्य ये हैं—आसनसोल तथा धनबाद के रक्त बैंक, मलेरिया के विरुद्ध प्रचुर मात्रा में होने वाले कार्य, बी० सी० जी० आन्दोलन, अनेक मातृत्व-हित व बाल-कल्याण केन्द्र, अनेक चल औषधालय तथा चन्दकुइयाँ में सक्रामक अस्पताल, परिवार नियोजन केन्द्र, कोढ़ और कैन्सर के मरीजों के इलाज की व्यवस्था, स्वास्थ्य उन्नति केन्द्र आदि। ३० पलग वाला एक और अस्पताल नसरई में खोला गया है। २८ आयुर्वेदिक औषधालय भी खोले गये हैं। खानों के अपग कर्मचारियों के लिये कृत्रिम अग देने

की भी व्यवस्था की गई है। चश्मे और नकली दाँत भी दिये जाते हैं। इस बात का निर्णय भी अभी हाल में ही किया गया है कि कोयला खानों के ऐसे तमाम कर्मचारियों को जिनका मूल वेतन ३०० रुपये प्रति मास से कम है निःशुल्क चिकित्सा सुविधा प्रदान की जायेगी। अनेक स्वास्थ्य सुधार केन्द्र भी चालू किये गये हैं।

कोयला क्षेत्रों में काफी संख्या में बहुउद्देशीय कल्याण केन्द्र भी हैं जिनमें शिक्षा, मनोरंजन तथा अन्य सुविधायें दी गई हैं। रेडियो का भी प्रबन्ध है तथा चल सिनेमाओं द्वारा चलचित्र दिखाये जाते हैं। पुस्तकालयों की भी व्यवस्था है। वयस्क शिक्षा के लिये भी कदम उठाये गये हैं और निधि द्वारा वयस्क शिक्षा के ६० केन्द्र चलाये जा रहे हैं। प्रत्येक केन्द्र में एक कैन्टीन भी है। महिलाओं के लिये ६० विशेष केन्द्र हैं जिनमें कताई, कढ़ाई गृह-अर्थव्यवस्था आदि की शिक्षा दी जाती है। निधि द्वारा कोयला क्षेत्रों में सहकारिताओं का संगठन किया गया है। मार्च १९६८ के अन्त तक, १९७ साख सहकारी समितियाँ २८४ प्रारम्भिक भण्डार और १० थोक केन्द्रीय सहकारी भण्डार काम कर रहे थे। ६१ बहुउद्देशीय संस्थायें भी हैं जिनमें से प्रत्येक में एक महिला कल्याण-केन्द्र, बाल-शिक्षा केन्द्र एवं वयस्क शिक्षा केन्द्र तथा एक बाल उद्यान की व्यवस्था है। कर्मचारियों के बालकों को ३१४ छात्रवृत्तियाँ देने की एक योजना भी लागू कर दी गई है। प्रत्येक वर्ष निधि में से १५ दिन की भारत-दर्शन यात्रा की भी व्यवस्था होती है। खानों के श्रमिकों के पुत्र और पुत्रियों के लिये सामान्य शिक्षा हेतु २० रु० प्रति माह की ७५ छात्रवृत्तियाँ तथा तकनीकी शिक्षा के लिये ३० रुपये प्रति माह की २२ छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं। बिहार में राजगीर स्थान पर खान श्रमिकों के लिये एक अवकाश गृह भी खोला गया है। श्रमिकों के स्कूली बालकों के लिये दो छात्रावास भी बनाये गये हैं—एक पश्चिमी बंगाल में तथा दूसरा मध्य प्रदेश में।

अन्य योजनायें जिनके लिये इस निधि से धन दिया गया है, निम्नलिखित हैं—आवास, चल सिनेमा, जल-वितरण व्यवस्था में उन्नति, दुर्घटना से श्रमिकों की मृत्यु पर विधवा को २५० रु० एकमुश्त रकम के रूप में और ५ वर्ष तक ७५ रु० प्रति माह भत्ता तथा बच्चों को, जो स्कूल जाते हैं, १२वीं कक्षा तक अथवा २१ वर्ष की आयु तक २० रु० से ५० रु० तक प्रति माह छात्रवृद्धि जलपूर्ति में सुधार जूते व वर्दी की व्यवस्था, पीने के पानी की व्यवस्था, प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की व्यवस्था, सफाई की सुविधायें तथा विश्राम गृह आदि। इन सुविधाओं को प्रदान करने के लिये खाननियम बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त, धनबाद में कुष्ठ रोगियों के लिये एक बस्ती की योजना तथा असमर्थ खान श्रमिकों की सहायता करने व उन्हें किसी अन्य कार्य में प्रशिक्षित करने के लिये धनबाद अस्पताल में एक पुनर्वास केन्द्र स्थापित करने की योजना भी है। कोयला खानों के ऊपर धरातल के स्नान-गृहों के लिये १९५९ में तथा खानों के शिशु-गृहों के लिये १९६६ में नियम बनाये गये और लागू किये गये। सन् १९६८ में ऊपरी धरातल के स्नानगृहों की सुविधायें

प्रदान करने वाली कोयला खानो की सख्या ३५१ थी। इस प्रकार ४५८ कोयला खानो
मे शिशु-गृहो की व्यवस्था थी। खान नियम के अधीन अनेक कल्याण अधिकारी
तथा अतिरिक्त कल्याण अधिकारी नियुक्ति किये गये है। गोरखपुर श्रम सगठन
द्वारा कोयला खानो मे जो श्रमिक भरती होन है उनके कल्याण-कार्यों की देखभाल
३ कल्याण अधिकारी करते है। कोयला खान प्रॉवीडेण्ट फण्ड तथा बोनस योजना
और खानो मे मातृत्व हित लाभ का सामाजिक सुरक्षा के अध्याय मे उल्लख किया
गया है।

अभ्रक की खानो मे श्रम-कल्याण कार्य : १९४६ का अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम (Labour Welfare Work in Mica Mines Mica Mine Labour Welfare Fund Act 1946)

सरकार ने १९४६ मे अभ्रक खान श्रम कल्याण अधिनियम भी पारित
किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत एकनिधि की स्थापना की गई जिसमे धन
मूल्य के अनुसार, एक आयात-निर्यात कर लगाकर सचित किया गया है। यह
कर उस तमाम अभ्रक पर, जो भारत से निर्यात होता है, लगाया गया है। इस
कर की दर ६½ प्रतिशत से अधिक नही हो सकती। वर्तमान दर जुलाई १९७४ मे
मूल्य के अनुसार ३·५% है। इस निधि का उपयोग अभ्रक खानो मे काम करने
वाले श्रमिको के कल्याण हेतु होता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने
त्रिदलीय सलाहकार समितियाँ बनाई है जिनमे से एक बिहार के लिये, एक आन्ध्र
प्रदेश के लिये तथा एक राजस्थान के लिये है। कोयला खानो का कल्याण कमिश्नर
ही अभ्रक खानो का कल्याण कमिश्नर बना दिया गया है। निधि के १९७९-८०
के बजट मे ८० लाख रुपये के व्यय की व्यवस्था थी। निधि की आय का अनुमान
९० लाख रुपये था। कल्याण-कार्यों से सम्बन्धित श्रमिको को निम्नलिखित सुविधायें
उपलब्ध है। चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओ के अन्तर्गत तीन केन्द्रीय अस्पताल कर्मा
(बिहार), गगापुर (राजस्थान) तथा कालीचेडू (आन्ध्र प्रदेश) मे और तीन क्षेत्रीय
अस्पताल टीसरी (बिहार), तालूपुर व सिदापुरम (आन्ध्र प्रदेश) मे हैं।
केन्द्रीय अस्पताल कर्मा (बिहार) के साथ ५० पलगो वाला एक टी० बी०
अस्पताल भी बन चुका है। टीसरी, कालीचेडू और गोरखपुर मे भी क्षय चिकित्सालय
है। अभ्रक खानो के श्रमिको के लिये नैलोर के टी० बी० अस्पताल तथा राची व
मादर (अजमेर) के टी० बी० सेनिटोरियम मे भी पलग सुरक्षित किये गये है।
अभ्रक खान के जो श्रमिक क्षय रोग से पीडित है तथा इलाज करा रहे है। उनके
आश्रितो के लिये ५० रु० प्रति माह का निर्वाह भत्ता प्रदान किया जाता है। इसके
अतिरिक्त ९ एलोपैथिक चिकित्सालय है, ५ चल चिकित्सालय हैं ५ अचल बाम
चल चिकित्सालय राजस्थान मे हैं, १२ मातृत्व हित तथा शिशु कल्याण केन्द्र है,
(४ आन्ध्र प्रदेश मे, ५ बिहार मे तथा ३ राजस्थान मे) तथा २८ आयुर्वेदिक चिकि-
त्सालय है (४ आन्ध्र प्रदेश मे, ८ बिहार मे और १६ राजस्थान मे)। प्रत्येक वर्ष

अभ्रक खानों में मलेरिया उन्मूलन कार्यवाहियां भी की जाती हैं। कर्मा में एक अंशकालीन होम्योपैथिक डाक्टर भी रखा गया है। शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के अन्तर्गत, ६ बहुउद्देशीय संस्थायें निधि द्वारा बिहार में चलाई जा रही हैं। प्रत्येक में एक वयस्क शिक्षा केन्द्र तथा एक महिला कल्याण-केन्द्र है। इनमें मनोरंजन की तथा शिक्षा की सुविधायें प्रदान की जाती हैं। सिलाई, कटाई, बुनाई आदि कलाओं का भी प्रबन्ध है। २ महिला केन्द्र आन्ध्र प्रदेश में तथा ६ राजस्थान में चालू हैं। ३६ वयस्क शिक्षा केन्द्र हैं, ७ सामुदायिक केन्द्र हैं (२ आन्ध्र प्रदेश में, तथा ४ बिहार में), ११ प्रारम्भिक और प्राइमरी स्कूल हैं (६ आन्ध्र प्रदेश में, ३ बिहार में तथा २ राजस्थान में), ७ मिडिल और हाई स्कूल हैं (२ आन्ध्र प्रदेश में, ४ बिहार में तथा १ राजस्थान में)। अभ्रक खानों के श्रमिकों के बच्चों के लिये उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्तियां भी प्रदान की जाती हैं। आन्ध्र में स्कूल के बच्चों को किताबें, दूध, दोपहर का खाना, स्लेटें, कपड़े, बस्ते आदि भी मुफ्त प्रदान किये जाते हैं। मनोरंजन सुविधाओं के अन्तर्गत, अभ्रक खान श्रमिकों के लिये ७ चलते-फिरते सिनेमा हैं। यह विभिन्न अभ्रक खानों में मुफ्त सिनेमा दिखाते हैं। खानों में मनोरंजन कक्ष तथा रेडियो भी हैं। उपभोग की वस्तुओं के लिये एक सस्ता दुकान भी है जिसमें सस्ते दामों पर वस्तुयें मिल जाती हैं। अहातों में साग-सब्जी उगाने के लिये बीज भी बांटे जाते हैं। पीने के पानी की व्यवस्था के लिये, निधि द्वारा ७४ कुयें बिहार में तथा ४ आन्ध्र प्रदेश में बनाये गये हैं। अभ्रक खान मालिकों को अनुमोदित योजना के आधार पर कुओं का निर्माण करने पर उपदान (लागत का ७५ प्रतिशत) दिया जाता है। उन क्षेत्रों में जहां पानी का अभाव है वहां ट्रकों द्वारा पानी पहुँचाया जाता है। कर्मा (बिहार) में एक केन्द्रीय उपभोक्ता सहकारी भण्डार आन्ध्र प्रदेश में ४ प्रारम्भिक भण्डार तथा राजस्थान में ६ उपभोक्ता सहकारी भण्डार हैं। दुर्घटना में श्रमिक की मृत्यु पर उसकी विधवा एवं बच्चों को वित्तीय सहायता उसी प्रकार दी जाती है जैसे कोयला खानों के श्रमिकों को दी जाती है।

कोलार की सोने की खानों में और अन्य खानों में कल्याण कार्य
(Welfare Work in Kolar Gold Fields and Other Mines)

कर्नाटक में कोलार की सोना खानों में कई वर्षों से कल्याण-कार्य एक संगठित स्तर पर हो रहा है। इसके अन्तर्गत निःशुल्क व्यापक स्वास्थ्य सेवायें, मुफ्त मातृत्व-हित गृह, अनाज, शिक्षा व मनोरंजन की सुविधाओं आदि की व्यवस्था है, जिनके लिये उपदान भी प्रदान किया जाता है। सब सुविधाओं से युक्त एक अस्पताल, २ चिकित्सालय; ८ प्राइमरी व मिडिल स्कूल, एक हाई स्कूल, २० मनोरंजन के कक्ष जिनमें रेडियो, वाचनालय व पुस्तकालय आदि हैं, तीन कैन्टीन, चार मातृत्वहित गृह, १६ स्पोर्ट्स क्लब, तीन शिशु-गृह तथा ४ सहकारी भण्डारों की व्यवस्था है। कल्याण-कार्यों को संगठित करने के लिये केन्द्रीय कल्याण समिति भी बना दी गई है। हट्टी सोना खानों में सब सुविधाओं से युक्त एक अस्पताल, एक कैन्टीन, एक

अनाज भण्डार एक सहकारी भण्डार तथा साग सब्जियां के लिये एक दुकान की व्यवस्था की गई है। शिशु गृह मनोरजन की सुविधाये कमरे के भीतर व मदान के खेल मुफ्त सिनेमा आदि की सुविधाये भी हैं। मैंगनीज की ७६ खानो मे श्रम ब्यूरो द्वारा १९५७ म एक जांच की गई थी। इसमे पता चला कि चिकित्सा की सुविधायें तो भी सभी मैंगनीज खानो म प्रदान की जा रही थी परन्तु मनोरजन शिक्षा व यातायात की सुविधाय केवल कुछ खानो में ही पाई गई। अधिकतर खानो मे विश्राम स्थल भी पाये जाते थे। कच्चे लोहे की ३३ खानो मे भी एक जांच की गई थी। इससे पता चला कि केवल ४ खानों मे अस्पताल या चिकित्सालय थ। ११ खानो म मनोरजन की सुविधायें १० में शिक्षा की सुविधायें, ५ में कन्टीनें ११ म शिशु-गृह तथा २३ में विश्राम स्थल थे। ठेके के श्रमिको के लिये कल्याण सुविधाय बहुत कम हैं।

कच्चा लोहा खानो मे श्रम कल्याण काय तथा सन् १९६१ का कच्चा लोहा खान श्रम कल्याण उपकार अधिनियम १९७६ का कच्चा लोहा खान तथा मैंगनीज खान श्रम कल्याण उपकर अधिनियम

(Labour Welfare Work in Iron Ore Mines Iron Ore Mines Labour Welfare Cess Act 1961 Iron Ore Mines and Manganese Ore Mines Labour Welfare Cess Act 1976)

१९५६ मे एक कायदल न कच्चे लोहे की खानो म श्रमिको की असतोष जनक दिशा की ओर सकेत किया था और उनके लिये भी एक कल्याण निधि स्थापित करने की सिफारिश की थी। खानो पर त्रिदलीय औद्योगिक समिति ने भी १९६१ मे इस सिफारिश का अनुमोदन किया। परिणामस्वरूप १९६१ मे कच्चा लोहा खान श्रम-कल्याण उपकर अधिनियम (Iron Ore Mines Labour Welfare Cess Act of 1961) पारित किया गया। इस अधिनियम मे १९७८ मे सशोधन किया गया जब कि इसके स्थान पर कच्चा लोहा खान तथा मैंगनीज खान श्रम-कल्याण उपकर अधिनियम, १९७६ लाया गया। इस अधिनियम के अन्तगत किसी भी खान मे उत्पादित कच्चे लोहे तथा मैंगनीज पर एक उपकर लगाया गया है और इस उपकर की राशि से कच्चा लोहा खान तथा मैंगनीज खान उद्योग मे लगे हुये श्रमिको के कल्याण के लिय धन व्यय किया जायेगा। उपकर की अधिकतम दर ५० पैसे प्रति मीट्रिक टन निर्धारित की गई। वतमान दर (१९८० मे) कच्चे लोहे की २५ पैसे प्रति मीट्रिक टन तथा मैंगनीज की एक रु० प्रति मीट्रिक टन है। सन १९७९-८० मे निधि की आय और व्यय का अनुमान क्रमश १२०० लाख रुपये और २०७ २२ लाख रुपये था। अधिनियम मे सलाहकार समितियो निरीक्षको कल्याण प्रशासको तथा अन्य अधिकारियो की नियुक्ति की व्यवस्था है।

चिकित्सा सुविधाओं के अन्तगत चार केन्द्रीय अस्पताल बारीगनूर (कर्नाटक) टिस्का (गोआ) बरजमादा (बिहार) और जोदा (उडीसा) मे स्थित हैं। टिस्का म अस्पताल का विस्तार किया जा रहा है। जोब्री व तुआमाव (उडीसा) म तथा

रैंडी (महाराष्ट्र में तीन प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सा केन्द्र हैं। टोम्का में एक प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सा केन्द्र तथा बदनपहाड़ (उड़ीसा) में एक अलग बनाम चल चिकित्सालय खोलने की अनुमति दी जा चुकी है। विभिन्न क्षेत्रों में आठ चल चिकित्सालय भी कार्य कर रहे हैं। जो प्रबन्धक चिकित्सालयों में निर्धारित स्तर बनाये रखते है, उन्हें उपदान (subsidies) तथा अनुदान (grants) भी दिये जाते हैं। विभिन्न अस्पतालों में २३ पलंग टी० बी० के रोगियों के लिये आरक्षित किये गये हैं। एक योजना अभी लागू की गई है जिसके अन्तर्गत खान-श्रमिकों को सस्ती दरों पर चश्मे दिये जाते हैं। **जलपूर्ति की सुविधाओं के अन्तर्गत** जलपूर्ति की ४२ योजनाओं की अनुमति दी जा चुकी है जिनमें से २८ योजनाएं पूरी हो चुकी हैं तथा चालू है और १३ पर काम चल रहा है। **शिक्षा के अन्तर्गत** १९७९-८० में, खान-श्रमिकों के बच्चों को छात्रवृत्तियाँ देने के लिये बजट में ४.३६ लाख रु० की व्यवस्था की गई थी। छात्रवृत्तियाँ १० रु० से लेकर २५ रु० प्रति माह तक की है। विभिन्न क्षेत्रों में खान-श्रमिकों के बच्चों के लिये दोपहर के भोजन तथा स्कूल वर्दी देने की व्यवस्था की गई है और उनके लिये एक स्कूल बस भी उपलब्ध कराई गई है। **मनोरंजन के क्षेत्र में,** ३८ बहुउद्देशीय संस्थायें। ९ कल्याण केन्द्र, २ सिनेमा २ अवकाशगृह, १५७ रेडियो केन्द्र तथा १८ पुस्तकालय है श्रव्य-दृश्य उपकरणों (audio visual sets), खेलकूद के आयोजनों तथा फुटबाल टूर्नामेन्टों के लिये सहायक अनुदान दिये जाते हैं। खान श्रमिकों के आने जाने के लिये एक बस मध्य-प्रदेश तथा एक बस उड़ीसा में पहले से ही चल रही है। इसके अतिरिक्त, मध्य-प्रदेश में एक और बस की अनुमति दी गई है। १९७९–८० में चालू की गई दो योजनाओं–अर्थात् नई आवास योजना तथा कम लागत आवास योजना के अन्तर्गत, खान श्रमिकों के लिये ९,०४४ मकान बनाये जा चुके हैं।

चूना और डोलोमाइट खानों में श्रम-कल्याण : सन् १९७२ का चूना तथा डोलोमाइट खान श्रम-कल्याण निधि अधिनियम

(Welfare of Labour in Limestone and Dolomite Mines : The Lime Stone and Dolomite Mines Labour Welfare Fund Act, 1972)

चूना और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम को २ दिसम्बर १९७२ को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई थी। यह अधिनियम १ दिसम्बर १९७३ से लागू हुआ। इस अधिनियम में ऐसे चूने तथा डोलोमाइट पर एक उपकर लगाने तथा उसका संग्रह करने की व्यवस्था की गई है जो किसी भी फैक्टरी को बेचा जाता है या दिया जाता है अथवा जिसका उपयोग सीमेन्ट, लोहा अथवा इस्पात बनाने में किया जाता है। चूने तथा डोलोमाइट पर उपकर की दर वर्तमान में (१९७९-८० में) २० पैसे प्रति मीट्रिक टन है। इस उपकर से प्राप्त धनराशि को एक निधि (Fund) में जमा किया जाता है जिसका उपयोग केन्द्र सरकार द्वारा अनेक कल्याणकारी क्रियाओं पर किया जाता है। सन् १९७९-८० में इस निधि की

अनुमानित आय तथा व्यय क्रमश ७८ ५४ लाख रु० तथा ६२ ५५ लाख रु० था। इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली चिकित्सा सुविधाओं के अन्तर्गत, खान श्रमिकों के लिये १६ चिकित्सालय कार्य कर रहे है जिनमे ८ आयुर्वेदिक, ६ चल, १ अचल तथा १ अचल बनाम चल चिकित्सालय है। डालमिया दादरी (हरियाणा), चितापुर (कर्नाटक) तथा वीरमित्रपुर (उडीसा) म तीन चल चिकित्सालयो की और फलौदी (राजस्थान) व राजूर (मध्यप्रदेश) म दो आयुर्वेदिक चिकित्सालय खोलने की अनुमति और प्रदान की गई है। डाक्टरी साज-सामान, एक्स-रे मशीन तथा एम्बुलैन्स गाडी आदि के लिये सहायक अनुदान दिये जाते हैं। शिक्षा के लिये, १९७९-८० मे खान श्रमिकों के बच्चो को छात्रवृत्तियाँ देने के लिये बजट मे ४ ५० लाख रु० की व्यवस्था की गई थी। एक केन्द्रीय पुस्तकालय बनाम वाचनालय कक्ष की स्थापना की जा रही है। जलपूर्ति के लिये, सात योजनाये स्वीकृत की गई है। मनोरंजन की सुविधाओं के लिये २७ सिनेमा प्रक्षेपी (Cinema Projectors), २९ रेडियो तथा १० चल सिनेमा है। कल्याण केन्द्रो पर टूर्नामेंट तथा खेल कूद आदि का आयोजन करने के लिये खान प्रबन्धको को सहायक अनुदान दिये जाते है। खान श्रमिको के लिये दो आवास योजनाये प्रचलित है। ये है कम लागत आवास योजना तथा दूसरी "अपना घर स्वय बनाओ योजना'। १९७९-८० तक १०८२ मकान पहली योजना के अन्तर्गत और ४० मकान दूसरी योजना के अन्तर्गत बनाये जा चुके थे।

बीडी श्रमिको का कल्याण १९७६ का बीडी श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम तथा १९७६ का बीडी श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम
(Welfare of Beedi Workers The Beedi Workers Welfare Fund Act 1976 and the Beedi Workers Welfare Cess Act 1976)

सन् १९७६ का बीडी श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम तथा बीडी श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम १५ फरवरी १९७७ को लागू हुआ। बीडी श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम १९७६ के अन्तर्गत उस तम्बाकू पर २५ पैसे प्रति किलो की दर से उपकर लगाने तथा उसका संग्रह करने की व्यवस्था थी जो बीडियाँ बनाने के लिये किसी भी व्यक्ति को गोदाम से दिया जाता था। किन्तु १९७९ मे वित्त बिल (Finance Bill) लागू होने के साथ ही, गोदामो के लायसेंस की पद्धति समाप्त कर दी गई और इसके फलस्वरूप अनिर्मित तम्बाकू उपकर से मुक्त हो गया तथा अधिनियम के अन्तर्गत उपकर के संग्रह का कार्य १ मार्च १९७९ से रोक दिया गया। बीडी श्रमिको के लिये कल्याण कार्यों की वित्तीय व्यवस्था करने के सम्बन्ध मे क्या वैकल्पिक व्यवस्थायें की जायें इस विषय मे विचार किया जा रहा है।

बीडी श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम १९७६ के प्रशासन के लिये देश को पाच क्षेत्रो मे बाँटा गया है। इन पाँचो क्षेत्रो के प्रधान कार्यालय जबलपुर (मध्यप्रदेश), भीलवाडा (राजस्थान), बगलौर (कर्नाटक), भुवनेश्वर (उडीसा) और इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) म है। इन स्थानो पर कल्याण आयुक्त (Welfare

अनुरूप ही, राष्ट्रीय श्रम आयोग ने एक 'सामान्य खान श्रमिक कल्याण निधि' की स्थापना का सुझाव दिया था ताकि सभी खानों के श्रमिकों के लिये चिकित्सा, शिक्षा तथा मनोरंजन के क्षेत्र में कल्याण-कार्य सचालित किये जा सकें। निधि की वित्तीय व्यवस्था खनिज पदार्थों की कीमतों पर आधारित उपकर लगाकर करने का सुझाव दिया गया। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि कोयला खान श्रमिकों की डॉक्टरी जाँच निर्धारित कालांशों में की जानी चाहिये और इस बात पर जोर दिया कि गोरखपुर श्रम सगठन द्वारा भर्ती किये गये श्रमिकों तथा स्थानीय रूप से चुने गये श्रमिकों के बीच कल्याण सुविधायें देने के सम्बन्ध में कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिये।

मालिकों द्वारा किये गये कल्याण कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Estimate of Welfare Work by Employers)

यह देखा गया है कि अब तक मालिकों द्वारा किये गये कल्याण-कार्य अनमने मन से तथा अहसान की भावना से किये गये हैं। उनके पीछे सेवा की सच्ची भावना का अभाव ही रहा है और जो कुछ भी कल्याण कार्य उन्होंने किये हैं वे अरुचि से किये गये हैं। मालिकों द्वारा किये गये कल्याण कार्यों को अधिकांश श्रमिक सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। यह शंका की गई है कि यदि श्रमिक सचेत नहीं रहेंगे तो जो भी कल्याण-कार्य हो रहा है उसके बदले उनकी मजदूरी कुछ अंश तक कम हो जायेगी। श्रमिक यह भी अनुभव करते हैं कि मालिक अधिकतर कल्याण-कार्यों का उपयोग श्रमिक संघों के प्रभाव को कम करने के लिये तथा श्रमिकों को उनसे दूर रखने के लिये करते हैं तथा ऐसे श्रमिकों के विरुद्ध जो संघों के सदस्य होते हैं, भेदभाव की नीति बरतते हैं। जो कल्याण-कार्य ऐसे बदले की भावना से किये जाते हैं उनके अन्तत अवश्य ही बुरे परिणाम निकलते हैं। श्रम अनुसन्धान समिति ने इस सम्बन्ध में डॉ० बी० आर० सेठ के विचार उद्धृत किये हैं। उनके शब्दों में, "भारत में उद्योगपतियों की एक बड़ी संख्या अब भी कल्याण-कार्यों को एक बुद्धिमत्तापूर्ण निवेश (Wise Investment) न समझकर निरर्थक दायित्व (Barren Liability) समझती है।"[1] बी० शिवाराव ने भी ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के एक प्रतिनिधि मण्डल के विचार उद्धृत किये हैं, जो १९२७ में भारत आया था,[2] कि "जो कल्याण-कार्य इस समय भारत में चल रहा है वह केवल एक भ्रम तथा जाल (Delusion and a Snare) है तथा कल्याण योजनाओं ने श्रम संघों के निर्माण को असम्भव कर दिया है।" श्रम अनुसन्धान समिति ने भी यह कहा है कि मालिकों की एक बड़ी संख्या कल्याण कार्य की ओर उदासीन व अनुत्सुक दृष्टिकोण रखती है और मालिक यह तर्क रखते हैं कि विश्राम स्थलों की व्यवस्था इसलिये नहीं है, क्योंकि कारखाने का सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रमिकों का है, शौचालयों

1 *Labour Investigation Committee Report* Page 349
2 B *Shiva Rao* The Industrial Worker in India Page 236

का प्रबन्ध इस कारण नहीं किया गया है क्योंकि श्रमिक जंगल में शौच जाना अधिक पसन्द करते हैं और क्योंकि कैन्टीनों व खेलों की सुविधाओं का श्रमिक उपयोग नहीं करते, इसलिये इनकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये समिति ने यह विचार व्यक्त किया है कि 'यह स्पष्ट है कि जब तक कल्याण कार्यों के बारे मालिकों के निश्चित उत्तरदायित्वों का कानून द्वारा स्पष्ट नहीं किया जायगा, तब तक इस प्रकार के मालिक उस मार्ग का अनुसरण नहीं करेंगे जिन पर उनके प्रगतिशील और दूरदर्शी भाई चल रहे हैं। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ जागरूक मालिकों ने कुछ बहुत अच्छे कल्याण कार्यों की व्यवस्था भी की है। इसलिये इस शंका का प्रमाणित होना या न होना विशिष्ट मालिकों व परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अनेक मालिकों ने यह स्वीकार कर लिया है कि कल्याण कार्य स्वयं उनके ही लाभ के लिए है। यदि कुछ मालिकों को कल्याण कार्य लाभदायक प्रतीत होता है तो यह कोई कारण नहीं है कि श्रमिक, कल्याण कार्यों के चालू होने पर शंका प्रकट करे अथवा आपत्ति करे विशेषकर जबकि यह योजना दोनों पक्षों के लिये लाभप्रद है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कल्याण कार्यों के प्रशासन में समस्त अधिकार मालिकों के ही हाथ में नहीं होने चाहियें अपितु कर्मचारियों का भी पर्याप्त रूप में प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

समाज सेवी संस्थाओं द्वारा कल्याण कार्य
(Labour Welfare Work by Social Service Agencies)

अनेक समाज सेवी संस्थायें भी कल्याण कार्य के क्षेत्र में उपयोगी कार्य कर रही है। वे मालिकों और श्रमिकों दोनों की इस क्षेत्र में सहायता करती हैं और स्वयं भी स्वतन्त्र रूप से कार्य करती है। ऐसी संस्थाओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं —*बम्बई समाज सेवा लीग जो "सरवेन्ट्स आफ इण्डिया सोसाइटी"* (*Servants of India Society*) द्वारा प्रारम्भ की गई थी, तथा तमिलनाडु व प० बंगाल *की अन्य इसी प्रकार की और लीगें, सेवासदन समितियाँ, बम्बई प्रैसीडेन्सी महिला* परिषद्, मातृत्व-हित व बाल कल्याण परिषद्, 'वाई० एम० सी० ए०', दलित वर्ग संघ, मिशन समिति तथा अन्य कई प्रचारक, समितियाँ आदि। सन् १९१८ में बम्बई समाज सेवा लीग दो जागरूक मिल मालिकों को इस बात के लिये प्रेरित करने में सफल हो गई थी कि मिल के कर्मचारियों के लाभार्थ जो दो कर्मचारी संस्थान चालू थे उनका प्रबन्ध और संगठन इस लीग को ही सौंप दिया जाये। इस बम्बई समाज सेवा लीग ने, जिसमें स्वर्गीय एन० एम० जोशी का सम्बन्ध था, कई कार्यों को चलाया। उदाहरणार्थ—रात्रि पाठशालाओं द्वारा जनता में शिक्षा का प्रचार, अनेक पुस्तकालय तथा मैजिक लालटेन की सहायता से व्याख्यान, लड़कों के लिये स्काउटिंग, जन-स्वास्थ्य की वृद्धि, श्रम-वर्ग के लिये खेल तथा मनोरंजन, श्रमिकों को दुर्घटनाओं के समय क्षतिपूर्ति दिलाना, सहकारी आन्दोलन को विस्तृत करना आदि। बम्बई व पूना की सेवासदन समितियों ने स्त्रियों व बालकों के

लिये सामाजिक शिक्षा तथा चिकित्सा सम्बन्धी कार्य किये हैं। साथ ही समाज सेवकों को प्रशिक्षण भी दिया गया है। प० बंगाल के महिला संस्थान (Women s Institute) ने गांवों में जाकर शिक्षा तथा जन स्वास्थ्य के कार्य का चलाने के लिये महिला समितियाँ स्थापित की है। इन सभी संस्थाओं के कल्याण कार्यों का वास्तविक महत्व इस बात में है कि इनसे कार्य करने तथा रहने की परिस्थितियों का उच्च स्तर स्थापित हो जाता है जो प्रचलित होने के पश्चात अन्त में कानून द्वारा निर्धारित न्यूनतम स्तर को भी ऊंचा उठाने में सहायक होते है।

नगरपालिकाओं द्वारा श्रम कल्याण कार्य
(Labour Welfare Work by Municipalities)

कुछ नगरपालिकाओं द्वारा कर्मचारियों के कल्याण हेतु विशेष कदम उठाये गये हैं। कानपुर मद्रास तथा कलकत्ता निगम तथा अजमेर नगरपालिका सहकारी साख समितियां चलाती है। बम्बई निगम ने एक विशेष कल्याण विभाग के निरीक्षण में कल्याण कार्यों का एक जाल सा फैला रक्खा है। उसके अन्तर्गत १५ कल्याण केन्द्र है जो साधारणत मिल कर्मचारियों के चालों में स्थित है। इनमें कर्मचारियों के लिये कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल शिक्षा सुविधाये चलचित्र प्रदर्शन आदि की व्यवस्था है। एक नर्सरी पाठशाला तथा एक मातृत्व हित केन्द्र भी चलाये जा रहे हैं। प्रत्येक क्षेत्र में सहकारी समितियां स्थापित कर दी गई हैं। मद्रास निगम श्रम क्षेत्रों में वयस्क शिक्षा के लिये अनेक रात्रि पाठशालायें चलाता है। श्रमिकों के बालकों के लिये एक शिशुगृह भी है और निगम की कार्यशाला में एक कन्टीन भी चालू है। शिशुगृहों का प्रबन्ध योग्य नर्स दाई तथा दाई महिला सेविकाओं के हाथों में है। बालकों के लिये खेल के मैदान पालना व खिलौना स्नानगृहो आदि का भी प्रबन्ध है। बच्चों को बिना मूल्य भोजन व दूध दिया जाता है तथा एक नर्सरी कक्षा का भी प्रबन्ध है। निगम की पाठशालाओं में पढने वाले निर्धन बालकों को दोपहर का भोजन मुफ्त दिया जाता है। कलकत्ता निगम भी रात्रि पाठशालायें चलाता है। अभी हाल ही में दिल्ली में वयस्क शिक्षा की सुविधायें प्रारम्भ की गई हैं। लगभग सभी नगरपालिकाओं और निगमों में प्राविडेण्ट फण्ड योजना लागू है। कानपुर अजमेर नागपुर मद्रास कलकत्ता लखनऊ तथा अहमदाबाद नगरपालिकाओं और निगमों में साधारणत उन व्यक्तियों के लिये जो प्राविडेण्ट फण्ड योजना के सदस्य होने की शर्त पूरी नहीं करते अवकाश प्राप्ति धन देने की व्यवस्था भी है।

श्रमिक संघों द्वारा श्रम कल्याण कार्य
(Welfare Work by Trade Unions)

श्रमिक संघों द्वारा किये गये कल्याण कार्यों को देखने हुये स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि श्रमिक संघों के कार्य व क्षेत्र के सीमित होने के कारण उनके कल्याण कार्यों में अनेक रुकावट पड़ती है। यह समझा जाता है कि श्रमिक संघ केवल

मालिकों में नाम लेने के साधन मात्र हैं तथा परस्पर सहायता में ही सकने वाले लाभप्रद कार्यों को उपेक्षित कर सकते हैं। अहमदाबाद सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद्, कानपुर की मजदूर तथा इन्दौर की मिल मजदूर यूनियन जैसे केवल कुछ ही श्रमिक संघों ने श्रम-कल्याण कार्यों के लिये कदम उठाये हैं।

अहमदाबाद की सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद् जिसे 'मजूर महाजन' कहते हैं कल्याण कार्यों पर अपनी आय का ६० प्रतिशत से ८० प्रतिशत तक व्यय करती है। यह राशि लगभग चालीस हजार रुपये तक होती है। इस कल्याण कार्य के अन्तर्गत तीन दिन की तथा तीन रात्रि की पाठशालायें, श्रमिक वर्ग की लड़कियों के लिये एक आरामयुक्त बोर्डिङ्ग हाउस लड़कों के लिये दो अध्ययन कक्ष, ८५ वाचनालय व २२ पुस्तकालय २७ सांस्कृतिक शिक्षा व समाज केन्द्र, १३ व्यायाम-शालायें आदि बन चुके हैं। छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की जाती है तथा दर्जी के काम में व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की भी योजना है। इस उद्देश्य के लिये लगभग २५ विशेष निरीक्षकों तथा कुछ महिला कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है। ये निरीक्षक प्रतिदिन श्रमिकों के सम्पर्क में आते हैं तथा उनके रहने के क्षेत्रों में जाकर उनकी कठिनाइयों का मूलज्ञान में सहायता करते हैं और श्रमिकों की अन्तःशक्ति और सामाजिक स्तर को ऊपर उठाने के हेतु उनके जीवन के बहुउद्देशीय पहलुओं पर ध्यान देते हैं। १९५५ में बाल केन्द्र भी संगठित किये गये हैं जिनकी संख्या ३५ है। यह परिषद् विभिन्न बस्तियों में पाँच चिकित्सालय चलाती है जिनमें एक एलोपैथिक, एक होम्योपैथिक व तीन आयुर्वेदिक हैं। साथ ही एक मातृत्वहित-गृह भी है। परिषद् द्वारा एक कर्मचारी सहकारी बैंक भी चालू किया गया है। इस बैंक से अनेक आवास समितियाँ, उपभोक्ता समितियाँ, और साख समितियाँ सम्बद्ध (Affiliated) हैं। अपने सदस्यों को परिषद् कानूनी सहायता भी देती है तथा उनकी ओर से विवादों को मालिकों से फैसला कराने के लिये कार्य करती है। संघवाद तथा नागरिकता में श्रमिकों को प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था करती है। "मजूर संदेश" नाम की सप्ताह में दो बार एक पत्रिका भी छापती है।

कानपुर की "मजदूर सभा" एक वाचनालय, एक पुस्तकालय तथा एक चिकित्सालय श्रमिकों के लिये चलाती है। कुछ रेलवे कर्मचारी संघों ने सहकारी समितियाँ तथा अनेक प्रकार की निधियाँ विशेष लाभों के लिये स्थापित की है, उदाहरणार्थ—कानूनी सहायता मृत्यु तथा अवकाश के समय सहायता, बेरोजगारी व बीमारी लाभ तथा जीवन बीमा आदि। उत्तर प्रदेश में भारतीय श्रम संगम ने लगभग ४८ केन्द्र खोले हैं जिनमें अनेक प्रकार के कल्याण कार्य चालू है। यह भी मालूम हुआ है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ कांग्रेस की असम शाखा ने एक समाज कल्याण सस्थान सरकारी सहायता से प्रारम्भ की है जहाँ प्रत्येक चाय बागान के कुछ श्रमिकों को सामाजिक व कल्याण कार्यों में प्रशिक्षित करने की व्यवस्था है। इन्दौर के मिल मजदूर श्रम संघ ने एक श्रम-कल्याण केन्द्र खोला है

जो तीन विभागों में कार्य कर रहा है बाल मन्दिर कन्या मन्दिर तथा महिला मन्दिर। बाल मन्दिर में चार वर्ष से लेकर १० वर्ष की आयु तक के बालकों को लिखना पढ़ना, गिनती आदि सिखाया जाता है तथा खेलों और शारीरिक शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता है। बालकों के लिये खेल का मैदान भी है। नृत्य, संगीत तथा सामाजिक उत्सव भी आयोजित किये जाते हैं। कन्या मन्दिर में श्रमिक-वर्ग के परिवारों की ऐसी लड़कियों को जिनकी आयु १० से १६ वर्ष तक की होती है प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है तथा सिलाई, बुनाई, कताई, आदि काय सिखाये जाते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान व बच्चों की देखभाल का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। महिला मन्दिर में भी इसी प्रकार की शिक्षा महिला श्रमिकों को दी जाती है। इसके अतिरिक्त संघ एक पुस्तकालय, एक वाचनालय तथा रात्रि कक्षायें भी चलाता है और मजदूर क्लबों में कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी व्यवस्था की गई है।

किन्तु साधारणतः श्रमिक संघों ने कल्याण कार्यों में अधिक रुचि नहीं ली है। इन कार्यों में सबसे बड़ी बाधा यह है कि श्रम संघों के पास धन और योग्य नेताओं का अभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि श्रमिक संघ कल्याण कार्यों को अपनायें तो वे अपनी स्थिति को विशेष रूप से दृढ़ कर सकेंगे। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह सुझाव दिया है कि श्रमिक संघों को अधिनियमित श्रम-कल्याण निधियों से अधिक सहायता दी जानी चाहिये ताकि उन्हें स्वीकृत कल्याण कार्यों को सम्पन्न करने का प्रोत्साहन मिले।

श्रम कल्याण पर समिति

(Committee on Labour Welfare)

अगस्त सन् १९६६ में भूतपूर्व उप श्रम मन्त्री श्री आर० के० मालवीय की अध्यक्षता में श्रम कल्याण पर एक समिति बनाई गई थी। इस समिति को इस बात पर विचार करना था कि खानों तथा बागानों सहित, सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र के सभी औद्योगिक संस्थानों में विभिन्न अधिनियमित तथा गैर-अधिनियमित कल्याण योजनाओं का कार्य किस प्रकार चल रहा है। समिति से यह भी कहा गया था कि वह इस बारे में सुझाव दे कि किन उद्योगों में कल्याण निधियों की स्थापना की जानी चाहिये, यह बताये कि कृषि श्रमिकों के लिये कल्याण कार्यक्रमों को लागू करने की क्या सम्भावनाएं है तथा इस बारे में अपनी सिफारिशें दे कि प्रचलित कल्याण योजनाओं में क्या सुधार किया जाये तथा कौन कौन सी योजनाएं लागू की जायें। दिसम्बर सन् १९६६ में राष्ट्रीय श्रम आयोग की नियुक्ति की गई और श्री आर० के० मालवीय इस समिति के सदस्य बन गये। आयोग ने कल्याण कार्यक्रमों के बारे में अपनी सिफारिशें करते समय समिति की रिपोर्ट को भी दृष्टिगत रखा।

कल्याण कार्यों के कुछ विशेष पहलू
(Some Special Aspects of Welfare Activities)

कैन्टीनें (Canteens)

अब हम विशिष्ट रूप से अनेक छोटे-छोटे शीर्षकों के अन्तर्गत श्रम कल्याण के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का संक्षेप में उल्लेख करेंगे। सबसे पहले यहाँ हम कैन्टीनों की व्यवस्था को लेते हैं। सारे संसार में अब इस बात को मान लिया गया है कि कैन्टीन हर औद्योगिक संस्था का एक आवश्यक अंग है। ये श्रमिकों के स्वास्थ्य कार्यक्षमता तथा उनके हित की दृष्टि से अत्यधिक लाभदायक होती हैं। एक औद्योगिक कैन्टीन के उद्देश्य हैं— श्रमिकों को अपूर्ण व असन्तुलित आहार के स्थान पर सन्तुलित आहार उपलब्ध करना, सस्ता और स्वच्छ भोजन प्रदान करना और काम करने के स्थान के निकट ही विश्राम करने का अवसर देना, फैक्टरी में कई घण्टे काम करने के पश्चात् उनके काम के स्थान से आने जाने की कठिनाइयों को दूर करना और इस प्रकार उनके समय की बचत करना, भोजन एवं खाद्य सामग्री प्राप्त करने में जो कठिनाइयाँ होती हैं उनको दूर करना आदि। इसके अतिरिक्त, कैन्टीन द्वारा एक ऐसा मिलन स्थान प्राप्त हो जाता है जिसमें कारखाने के हर विभाग के श्रमिक परस्पर मिल सकते हैं तथा जहाँ वे न केवल खाना खाते हैं वरन् बातचीत भी कर सकते हैं और विश्राम करके अपनी थकान दूर कर सकते हैं। इस प्रकार कैन्टीन का श्रमिकों के आत्म विश्वास तथा हौसले पर अधिक प्रभाव पड़ता है। "कैन्टीनों की स्थापना की ओर ध्यान देना राज्य का विशेष कार्य माना जाना चाहिये और कैन्टीन का चलाना मालिकों द्वारा एक राष्ट्रीय निवेश समझना चाहिये।"[1]

यूरोप और अमरीका के देशों के श्रमिकों में कैन्टीन अत्यधिक लोकप्रिय हैं तथा ये पोषण व आहार क्रिया पर प्रकाश करने वाली प्रयोगशालायें मानी जाती हैं। ये औद्योगिक कल्याण के एक साधन के रूप में निरन्तर प्रगति कर रही हैं। ब्रिटेन में सन् १९३७ के फैक्टरी अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को भोजनालय के लिये स्थान देना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, वहाँ फैक्टरी निरीक्षकों को, अभी हाल ही में, विशेष कारखानों में उचित तथा अच्छी कैन्टीनें बनवाने की आज्ञा देने के अधिकार दिये गये हैं। किन्तु भारत में श्रमिकों तथा मालिकों ने कैन्टीनों द्वारा की गई मूल्यवान् सेवाओं को नहीं पहचाना है। अधिकांश स्थानों में कैन्टीनें चालू नहीं की गई हैं तथा जहाँ हैं भी वे अधिकतर ठेकेदारों द्वारा चलाई जाती हैं, जो निजी चाय की दुकानों के समान भी अच्छी नहीं होतीं। ऐसी कैन्टीनों में न तो सस्ता और अच्छा भोजन ही मिलता है और न ही उनका वातावरण स्वच्छ, स्वस्थ तथा आकर्षक होता है। ठेकेदार श्रमिकों के हित की अपेक्षा अपने लाभ की ओर अधिक ध्यान देते हैं। परिणामस्वरूप, दोपहर के भोजन को श्रमिक अपने साथ लाना अधिक उचित समझते हैं तथा कैन्टीनें श्रमिकों में लोकप्रिय नहीं हो पाई हैं। अधिकांश श्रमिक इस बात से भी अनभिज्ञ हैं कि उचित तथा पौष्टिक आहार का उनके स्वास्थ्य पर क्या

1. Planning for Labour (I L O), 1947, page 100

लाभप्रद प्रभाव पड़ता है। इसलिये औद्योगिक संस्थानों में अच्छी कैन्टीनें खोली जानी अत्यन्त आवश्यक हैं।

एक कैन्टीन को सफलतापूर्वक चलाने के लिये कुछ विशेष बातें होनी आवश्यक हैं। कैन्टीन खुली, साफ तथा स्वच्छ होनी चाहिये और फैक्टरी के अन्दर होनी चाहिये। उसमें मित्रता का वातावरण पैदा करने के लिये पूरा प्रयत्न होना चाहिये, जिससे श्रमिक वास्तव में शान्ति व विश्राम का अनुभव कर सकें। कैन्टीन को लाभ के आधार पर नहीं चलाना चाहिये तथा वहाँ बनने वाली वस्तुयें अच्छे प्रकार की होनी चाहिये। मालिकों को उसके लिये आर्थिक सहायता देनी चाहिये जिससे कैन्टीन सस्ते मूल्य पर वस्तुयें बेच सकें। कारखाने के प्रबन्धकर्त्ता भवन, मेज-कुर्सियां तथा चीनी के बर्तन आदि भी बिना मूल्य के दे सकते हैं। कैन्टीन मैनेजर तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन कारखाने के सामान्य वेतन बिल में सम्मिलित किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ मालिकों ने, जैसे— टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी, देहली कपड़ा मिल, बम्बई में लीवर ब्रदर्स तथा भारतीय चाय बाजार विस्तार बोर्ड ने अपने कर्मचारियों के लिये बहुत अच्छी कैन्टीनों की व्यवस्था की है। अनुभव द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि जो कैन्टीनें केवल लाभ अर्जित करने के लिये नहीं अपितु उचित मूल्यों पर स्वास्थ्यकर भोजन देने के लिये बनाई जाती हैं, श्रमिक उन अच्छी कैन्टीनों के उपयोग करने के विरोध में नहीं होते। इसलिये मालिकों की यह आपत्ति उचित नहीं है कि श्रमिकों में कैन्टीन प्रयोग करने की प्रवृत्ति अभी विकसित नहीं हो पाई है तथा वे अपने-अपने घरों से भोजन साथ लाना अधिक पसन्द करते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने औद्योगिक कैन्टीनों के महत्व को पूर्णतः स्वीकार कर लिया है। १९४८ के कारखाना अधिनियम तथा १९५२ के खान अधिनियम के अनुसार राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे तमाम ऐसे कारखानों और खानों में जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक काम कर रहे हों, कैन्टीनें स्थापित करने के नियम बना सकती हैं। इन नियमों में निम्न बातें होनी चाहिए—कैन्टीनें स्थापित करने की तिथि, निर्माण स्थान, मेज-कुर्सी तथा सामान का स्तर आदि, भोजन व उसके मूल्य, प्रबन्ध कर्ता समिति का संविधान तथा इस समिति में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व, आदि। राज्य सरकारों ने इस सम्बन्ध में नियम बना दिये हैं तथा उन तमाम कारखानों और खानों में जिनमें २५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हों, कैन्टीनों की स्थापना अनिवार्य कर दी गई है। १९५१ के बागान श्रम अधिनियम के अन्तर्गत भी मालिकों को उन सभी बागानों में जहाँ २५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हों, कैन्टीनें स्थापित करना अनिवार्य है। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सुझाव दिया है कि कैन्टीन की व्यवस्था के लिये २५० की सीमा को घटाकर २०० कर दिया जाना चाहिये और उन्हें सहकारिता के आधार पर चलाया जाना चाहिये अथवा कैन्टीन के प्रबन्ध में श्रमिकों को भी भाग लेने का अवसर

मिलना चाहिए। मालिकों को चाहिए कि वे कैंटीनों को मुफ्त स्थान, ईंधन, प्रकाश, बर्तन तथा फर्नीचर के रूप में आर्थिक सहायता दें।

शिशुगृह (Creches)

जहां तक शिशुगृहों का प्रश्न है भारत सरकार ने कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को कुछ नियम बनाने के अधिकार दिए हैं। राज्य सरकारें यह नियम बना सकती हैं कि उन तमाम कारखानों में जहाँ ५० या इससे अधिक महिलाएं काम करती हैं उनके ६ वर्ष से कम के बालकों के लिए एक अलग उचित कमरा सुरक्षित कर देना चाहिए। इन कमरों के स्तर के लिए और बच्चों की देखरेख के लिए भी नियम बनाए जा सकते हैं। अधिकांश राज्यों ने इस अधिकार के अन्तर्गत नियम बनाए भी हैं। उत्तर प्रदेश में मातृत्व हित लाभ अधिनियम के अन्तर्गत उन तमाम कारखानों में जिनमें ५० या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करती हैं एक शिशुगृह खोलना आवश्यक है। इसी प्रकार के उपबन्ध १९५२ के खान अधिनियम तथा १९५१ के बागान श्रम अधिनियम में भी हैं। परन्तु जैसा कि श्रम अनुसंधान समिति ने भी कहा था केवल कुछ कारखानों को छोड़कर अधिकांश में शिशुगृह उचित प्रकार से स्थापित नहीं किए गए हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग[1] ने भी व्यक्त किया है कि अधिकांश फैक्टरियों व खानों में शिशुगृह के स्तर में सुधार की आवश्यकता है। साधारणतः शिशुगृह कारखानों के उपेक्षित स्थानों पर होते हैं तथा काम करने के स्थान से भी दूर होते हैं। उनमें बालकों को बहलाने के लिए खिलौने तक नहीं होते तथा बच्चों की देखरेख के लिए भी कोई व्यक्ति नहीं होता। यदि कोई आया या नर्स होती भी है तो वह बालकों की आवश्यकता की ओर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं देती है। साधारणतः इस कार्य के लिए नर्सों को कम वेतन मिलता है। जिन्हें अच्छे शिशुगृह कहा जा सकता है वहाँ भी बच्चों की देखरेख भली प्रकार नहीं होती। पालने बहुत कम होते हैं तथा बच्चे जमीन पर धूल में पड़े रहते हैं। अगर कोई अधिकारी या समिति निरीक्षण करती है तो ऊपरी दिखावट तो काफी कर दी जाती है परन्तु फिर भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं दिखाई पड़ती। इस प्रकार जहां नियम लागू भी किए गए हैं वहाँ यह देखा गया है कि केवल नियम के शब्दों को निभाया गया है और उनके पीछे छिपी हुई मूल भावना की उपेक्षा की गई है। अनेक मालिक शिशुगृहों की स्थापना के उत्तरदायित्व से बचने के लिए यह कह देते हैं कि उनके कारखाने में ऐसी स्त्रियाँ काम में लगी हैं जो या तो अविवाहित हैं या विधवा हैं या माता बनने के योग्य आयु से अधिक आयु वाली हैं। इसलिए शिशुगृहों की कोई आवश्यकता नहीं है।

शिशुगृहों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि माताओं की कार्य-कुशलता निस्सन्देह इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हें अपने बच्चों की ओर से चिन्ता न हो और उन्हें यह विश्वास हो कि उनके बच्चे सुरक्षित हैं तथा उनकी उचित प्रकार

1 Report of the National Commission on Labour, pages 118 119

मे देखभाल हो रही है। जब शिशुगृह नहीं होते हैं तब स्त्रियां अपने पास काम के समय भी मशीनों के निकट अपने बच्चों को रखती है अथवा इससे भी बुरी बात यह है कि उन्हें अफीम खिलाकर घर पर ही छोड देती हैं। किन्तु अब जैसा कि कल्याण कार्यों के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है, अधिकांश मिलो मे तथा खानो मे शिशुगृहों की व्यवस्था कर दी गई है। मदुरा मिल्स, बकिंघम एण्ड कर्नाटक मिल्स देहली कपडा मिल्स आदि ऐसे कुछ स्थानों पर शिशुगृहों की अत्यन्त सन्तोषजनक व्यवस्था है। इन मिलों मे बच्चों के लिये सब सुविधाओं से युक्त शिशुगृह है। बच्चों के लिये दूध का भी प्रबन्ध है। परन्तु बागान मे शिशुगृहों की व्यवस्था नहीं है और कुछ स्थानों पर इनकी अत्यन्त सन्तोषजनक व्यवस्था है। कारखाना बागान तथा खान अधिनियमों मे शिशुगृहों की स्थापना के लिये कुछ निश्चित स्तर बना दिये गये है। यह आशा की जाती है कि शिशुगृहों की उन्नति के लिये पर्याप्त कदम उठाये जायेंगे। राष्ट्रीय श्रम आयोग का सुझाव है कि शिशुगृह की स्थापना के लिये ५० स्त्री श्रमिकों की सीमा को घटाया जाना चाहिये। यह सीमा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिये अथवा इसका आधार उन श्रमिक माताओं के २० योग्य बच्चे होने चाहिए जिन्हे इस सुविधा का लाभ मिलना है। ठेकेदारों द्वारा काम पर लगाई गई महिला श्रमिकों के बच्चों को भी यह सुविधा मिलनी चाहिये।

मनोरंजन सुविधाएं (Recreational Facilities)

मनोरंजन की सुविधायें, जैसा श्रम अनुसंधान समिति ने भी कहा है बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी होती है। अज्ञानी श्रमिकों को शिक्षा व प्रशिक्षण देने मे भी इनका काफी महत्व है। कारखानों और खानों मे अधिक घण्टे काम करने मे जो ऊब, थकान और शारीरिक क्लान्ति उत्पन्न हो जाती है, उनको मनोरंजन सुविधायें कम कर सकती है तथा श्रमिक के जीवन मे प्रसन्नता और शान्ति लाने मे सहायक सिद्ध होती हैं। साधारण औद्योगिक श्रमिक धूल, शोर तथा गर्मी से परिपूर्ण वातावरण मे कार्य करता है तथा ऐसे भीड-भाड वाले अस्वच्छ मकानो मे रहता है जिन्हें काल कोठरी कहना अतिशयोक्ति न होगा। श्रमिक, जो गांव से आते है, अपने आप को नगरीय या औद्योगिक वातावरण के अनुकूल बनाने मे कठिनाई अनुभव करते हैं। जिस स्थान पर वे कार्य करते हैं, वह उनके घरो से प्राय दूर होता है, और वे अपने मित्रो व सम्बन्धियों आदि से महीनो दूर रहते हैं। साधारण सामाजिक जीवन से वे इस प्रकार वंचित रहते है। इसका परिणाम यह होता कि अधिकांश श्रमिक कई दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं। जब तक श्रमिकों को इन दुर्गुणों से दूर नहीं रखा जायेगा, तथा उनके मनोरंजन की व्यवस्था नहीं की जायेगी, जिससे ये अपने खाली समय को अच्छे वातावरण मे व्यतीत कर सकें, तब तक इन लोगो के जीवन स्तर को ऊंचा करने की कोई भी युक्ति सफल नहीं हो सकती। मनोरंजन तथा सांस्कृतिक कार्य-क्रम की सुविधायें, जैसे—विभिन्न प्रकार के कमरे और मैदान के खेल

गोष्ठियाँ, भ्रमण, व्याख्यान, संगीत सभा, सिनेमा, प्रदर्शनी, वाचनालय, पुस्तकालय, नाटक, अवकाश गृह आदि इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो सकती है। अनेक दुर्गुणों को जैसे शराब, जुआ तथा जिसपर वेश्यावृत्ति की जो श्रम क्षेत्रों में स्त्री व पुरुषों की संख्या में असमानता होने के कारण काफी पाई जाती हैं, दूर करने में भी मनोरंजन सुविधायें सहायक होता है। उद्योगों में अधिक यन्त्रीकरण हो जाने से तथा कार्य के घण्टों में कमी हो जाने से श्रमिकों का समय अब पहले की अपेक्षा अधिक खाली रहता है। यह बात महत्वपूर्ण है कि इस खाली समय का किस प्रकार उपयोग किया जाता है। यह कहा जाता है कि किसी भी देश की सभ्यता तथा कार्य क्षमता की कसौटी यही है कि उस देश में खाली समय का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। कार्य दिन की समाप्ति पर तथा दोपहर को विश्राम के घण्टे आदि में जो खाली समय रहता है उसमें मनोरंजन सुविधाओं की व्यवस्था से श्रमिकों के स्वास्थ्य में उन्नति होगी तथा उनके ज्ञान में भी वृद्धि होगी तथा एक स्थायी और सन्तोषी श्रमिक वर्ग बन सकेगा। इस भांति मालिक मजदूर सम्बन्ध भी सौहार्दपूर्ण होंगे और उत्पादिता में वृद्धि होगी।

१९२४ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने श्रमिकों के अवकाश के समय का उपयोग करने के हेतु कुछ सुविधाओं में वृद्धि करने के लिये एक सिफारिश की थी। उस सिफारिश में उल्लेख किया गया है कि अपने अवकाश के समय में श्रमिकों को अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक शक्तियों का स्वतन्त्रतापूर्वक विकास करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार का विकास सभ्यता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। श्रमिकों के अवकाश के समय का सबसे अच्छा उपयोग यह हो सकता है कि श्रमिक के लिये उसकी रुचियों के अनुसार कुछ न कुछ साधना की व्यवस्था की जाय। इस प्रकार श्रमिक पर उसके साधारण कार्य में जो भार पड़ता है उसमें भी कुछ कमी होगी और इससे उसकी उत्पादन क्षमता बढ़ जायगी तथा उत्पादन अधिक होगा। इस प्रकार से मनोरंजन साधन कार्य के आठ घण्टों में श्रमिक से अधिक से अधिक अच्छा कार्य लेने में सहायक हो सकते हैं। यह विषय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के १९४७ के ३०वें अधिवेशन और १९५६ के ३९वें अधिवेशन द्वारा फिर विचार के लिये उठाया गया। १९५६ के अधिवेशन ने संस्थानों में या उनके समीप श्रमिकों के लिये मनोरंजन की सुविधाओं की महत्ता पर बल दिया और इस बात की सिफारिश की कि इन सुविधाओं के प्रशासन में श्रमिकों का भी हाथ होना चाहिये परन्तु उनके लिये यह बन्धन नहीं होना चाहिये कि वे इन सुविधाओं का आवश्यक रूप से लाभ उठायें। प्रारम्भिक व्यय और अनुरक्षण प्रभार (Maintenance Charges) का मालिकों को वहन करना चाहिये और दिन प्रतिदिन का व्यय सम्भवतः शुल्क आदि के रूप में श्रमिकों द्वारा उठाया जा सकता है।

भारत में राज्य द्वारा अथवा मालिकों द्वारा मनोरंजन सुविधाओं पर बहुत

कम ध्यान दिया गया है यद्यपि जैसा कि मालिकों के कल्याण कार्य' के अन्तर्गत उल्लेख में स्पष्ट है, कई स्थानों पर अच्छे कार्य भी किये गये हैं। सरकार ने भी अनेक राज्यों के श्रम-कल्याण केन्द्रों में मनोरंजन सुविधाओं की व्यवस्था की है। कुछ मालिक शिकायत करते हैं कि श्रमिकों में कलब लोकप्रिय नहीं है। इसका कारण यह है कि इन केन्द्रों में या तो अच्छा प्रबन्ध नहीं होता या इनमें टेनिस, बिलियर्ड आदि जैसे आधुनिक खेलों की व्यवस्था होती है जिन्हें खेलना श्रमिकों की क्षमता के बाहर है। जहाँ कहीं भी उचित मनोरंजन की व्यवस्था है तथा प्रबन्ध ठीक है, वहाँ मनोरंजन सुविधायें श्रमिकों तथा उनके परिवारों में बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई है। श्रम अनुसंधान समिति के विचार में मनोरंजन सुविधाओं को मालिकों के एक ऐच्छिक कार्य के रूप में माना जाना चाहिये क्योंकि उनके लिये कानून द्वारा कोई नियम बनाना कठिन है। मनोरंजन की व्यवस्था करने में अधिक लागत नहीं आती; लेकिन श्रमिकों की कार्य-कुशलता तथा मनोवृत्ति पर इसके प्रभाव बहुत अच्छे पड़ते हैं।

चिकित्सा सुविधायें (Medical Facilities)

चिकित्सा सुविधाओं और स्वच्छ वातावरण का जीवन में अत्यधिक महत्व है। रॉयल श्रम आयोग ने इस बात पर जोर दिया था कि औद्योगिक मजदूरों के स्वास्थ्य का महत्व स्वयं उनके ही लिये नहीं है अपितु उसका सम्बन्ध साधारणतः औद्योगिक विकास व प्रगति से भी है। बीमारी तथा श्रमिकों की शारीरिक दुर्बलता अनेक बुराइयों का कारण बन जाती है। इन्हीं के कारण अनुपस्थिति होती है, नैतिकता गिर जाती है तथा समय की पाबन्दी नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप उत्पत्ति कम होती है, काम बिगड़ जाता है तथा मालिक मजदूरों के सम्बन्ध खराब हो जाते हैं। भारत में श्रमिकों के स्वास्थ्य पर कई बातों का बुरा प्रभाव पड़ता है, जैसे—अस्वस्थ जलवायु में काम करना, कारखानों में अस्वास्थ्यकर दशायें, गर्म देशों के रोग और श्रमिकों की अज्ञानता व निर्धनता के कारण बीमारी, काम करने के अधिक घण्टे, कम मजदूरी तथा उनकी प्रवासिता, जिसके वे गाँवों से आते हैं तथा शहरों के जीवन को अपने स्वास्थ्य के लिये अनुकूल नहीं पाते, आदि। इसीलिये श्रमिकों के लिये देश में चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

सारे देश में चिकित्सा व्यवस्था की काफी कमी है और मालिकों द्वारा दी गई सुविधायें भी अपर्याप्त हैं। यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि चिकित्सा सुविधाओं के लिये व्यय के वहन करने का उत्तरदायित्व कहाँ तक मालिकों पर होना चाहिये। इस बात को सब मानते हैं कि यह कर्तव्य मालिकों का ही है कि वे अपने श्रमिकों के ऐसे शारीरिक कष्टों का, जो प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक रोजगार के कारण उत्पन्न होते हैं, निवारण करें। दूसरी ओर समाज का भी यह कर्तव्य है कि औद्योगिक रोजगार तथा इससे उत्पन्न हुई बुराइयों का उत्तरदायित्व कुछ अपने ऊपर भी ले

और इस प्रकार समाज पर भी इस बात का भार होना चाहिये कि वह कुछ सीमा तक चिकित्सा सुविधाओं की लागत वहन करे। सरकार ने इस बात को माना है और अब कर्मचारी राज्य बीमा योजना लागू होने के पश्चात् चिकित्सा सहायता मालिकों का उत्तरदायित्व न रहेगा। परन्तु श्रम अनुसन्धान समिति ने कहा है कि "चिकित्सा सुविधायें प्रदान करना मुख्यत राज्य का उत्तरदायित्व होने पर भी इसमें मालिकों तथा श्रमिकों का स्वयं भी सहायता करनी चाहिये।" कुछ ऐसी चिकित्सा सुविधायें भी है जो केवल मालिकों के उत्तरदायित्व में ही आती है, विशेषकर दुर्घटनाओं अथवा आकस्मिक बीमारियों के समय प्राथमिक चिकित्सा सहायता की व्यवस्था, ऐम्बुलेंस की व्यवस्था औद्योगिक स्वच्छता के स्तर का बनाये रखना आदि मालिकों का ही कार्य है। भारत में कानून द्वारा तो मालिकों पर केवल इस बात का उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वे प्राथमिक चिकित्सा की सुविधाओं की व्यवस्था करें और इसके लिये फैक्टरी में कुछ सामान रखे। परन्तु यह देखा गया है कि ऐसे सामान की उचित व्यवस्था नहीं होती है और अगर सामान होता भी है तो आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग नहीं किया जाता। अनेक स्थानों पर एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं होता जिसको इस बात का प्रशिक्षण दिया गया हो कि वह घटना-स्थल पर तुरन्त प्राथमिक चिकित्सा सहायता दे सके। इस प्रकार कानून की ये धारायें उचित प्रकार से कार्य रूप में परिणत नहीं की गई हैं किन्तु फिर भी जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है अनेक मालिकों ने श्रमिकों के लिये अस्पताल तथा चिकित्सालयों की व्यवस्था की है, यद्यपि उनमें से अधिकांश की दशा सन्तोष-जनक नहीं है। स्वास्थ्य निरीक्षण तथा विकास समिति (भोर समिति) की सिफारिशों के परिणामस्वरूप देश में चिकित्सा व्यवस्था की उन्नति की ओर कुछ पग उठाये गये थे। स्वास्थ्य सर्वेक्षण तथा आयोजना समिति, १९६१ की रिपोर्ट १९६१ के बाद बनने वाले अधिकांश स्वास्थ्य कार्यक्रमों का आधार बन गई। कर्मचारी राज्य बीमा योजना में कारखाना श्रमिकों के लिये बीमारी में, रोजगार में उत्पन्न क्षति में तथा प्रसव के समय चिकित्सा सुविधायें दी गई हैं। इन सुविधाओं से भी श्रमिक के स्वास्थ्य में उन्नति हुई है। केन्द्र सरकार ने (१९६६ में) बम्बई में एक केन्द्रीय श्रम संस्थान (Central Labour Institute) की तथा (१९६५ में) कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में तीन क्षेत्रीय श्रम स्थानों की भी स्थापना की है। इनमें प्रत्येक संस्थान में एक औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण केन्द्र है तथा औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञापन प्रयोगशाला है जो उद्योगों में मानवीय तत्त्वों से सम्बन्धित स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, कार्य-वातावरण जैसे विविध पहलुओं पर विशिष्ट अध्ययनों तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करते है। एक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् की भी स्थापना की गई है। इस बात भी जोर दिया जा रहा है कि एक औद्योगिक चिकित्सा सेवा का ठोस आधार पर विकास किया जाये। अनेक राज्यों में फैक्टरियों के चिकित्सा निरीक्षकों की भी नियुक्तियाँ की गई है।

नहाने धोने की सुविधायें (Washing and Bathing Facilities)

कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत यह आवश्यक कर दिया गया है कि उस प्रत्येक कारखाने मे जहाँ ऐसा कोई काम हो रहा है जिसमे श्रमिको का किसी हानिप्रद या गन्दी वस्तु से सम्पर्क होता है वहाँ श्रमिक को पर्याप्त मात्रा मे धोने योग्य जल तथा उसके प्रयोग के लिए उचित स्थान एव सुविधायें दी जानी चाहिए। लगभग सारे कारखाने धोने के लिए जल प्रदान करते है परन्तु साबुन, सोडा तथा तौलिये, जो कि आवश्यक है नही दिये जाते। कई स्थानो पर नलो बाल्टिया तथा चिलमचिया की सख्या पर्याप्त नही है। केवल कुछ ही स्थानो पर धोने की सुविधाये पूर्णरूप से सन्तोषजनक हैं। कारखाने के भीतर नहाने की व्यवस्था बहुत कम मालिको ने प्रदान की है यद्यपि ये सुविधाये अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि, जैसा कि रॉयल श्रम आयोग का कथन है, कि जो श्रमिक भीड-भाड के क्षेत्रो मे रहते हैं उनके आवासो पर धोने आदि की सुविधाये अपर्याप्त है अत स्नान की सुविधाओ से उनको काफी आराम मिलेगा और स्वास्थ्य तथा कार्य-कुशलता मे वृद्धि होगी। खानो मे जहाँ स्नान की सुविधाये अत्यन्त आवश्यक हैं वहाँ केवल कुछ खानो के मालिको ने ही खानो के उपर स्नानगृहो (Pithead baths) की व्यवस्था की है। केन्द्रीय सरकार ने कोयला खानो के लिए स्नानगृहो को स्थापित करने के लिये १९५९ मे नियम बनाये है (Coal Mines Pithead Bath Rules 1959) और उनके स्तर भी निर्धारित कर दिये है। १९७९ मे ऐसी कोयला खानो की सख्या, जहाँ स्नानगृहो की व्यवस्था थी ३५१ थी। इस सम्बन्ध मे झरिया कोयला क्षेत्र मे टाटा की खानो का विशेषकर उल्लेख किया जा सकता है जहाँ पर ५२ श्रमिक एक साथ फौव्वारे से स्नान कर सकते है और पुरुषो तथा स्त्रियो के स्नानगृहो का अलग-अलग प्रबन्ध है। अन्य खानो मे नहाने की सुविधायें अत्यन्त असन्तोषजनक हैं, यद्यपि अब कोयला खान श्रमिक आवास तथा सामान्य कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध मे कुछ सुधार हो रहे है।

शिक्षा की सुविधायें (Educational Facilities)

भारत जैसे अशिक्षित देश मे श्रमिको और उनके बच्चो के लिए शिक्षा सुविधाओ की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण समाज सेवा है। हमारे देश की अनेक कठिनाइयो का मूल कारण श्रमिको मे शिक्षा का अभाव है। शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता औद्योगिक विकास के समय बहुत होती है क्योकि उद्योगो की स्थापना के समय कृषि व्यवसाय से उद्योगो मे आने वाले श्रमिको की सख्या बहुत होती है और उनको औद्योगिक तकनीकी और कुशलता सीखनी पडती है। अगर सामान्य शिक्षा की नीव अच्छी नही होगी ता प्रशिक्षण मे व्यय अधिक होगा और कठिनाई भी अधिक होगी। भारत मे इस समय विभिन्न प्रकार के कुशल श्रमिको का अभाव है। यदि शिक्षा तथा प्रशिक्षण की ओर विशेष रूप से प्रयत्न किये जायें तब ही इस अभाव की पूर्ति हो सकती है। श्रमिको की शिक्षा का उद्देश्य केवल निरक्षरता

दूर करना तथा औद्योगिक कार्यकुशलता में योग्यता प्राप्त कराना ही नहीं है। शिक्षा का तात्पर्य केवल यह नहीं है कि मनुष्य को लिखना, पढ़ना, हिसाब लगाना आ जाये। इसका उद्देश्य जीवन की समस्त बातों को सिखाना है जिनमें आर्थिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत बातें भी होती हैं। सांस्कृतिक जीवन के विकास तथा रहन-सहन के स्तर में उन्नति के साथ-साथ श्रमिकों की विचार शक्ति का भी विकास होना चाहिये और उन्हें यह जानना चाहिए कि अपने संगठनों को किस प्रकार बनाया जाना है तथा अपनी समस्याओं जैसे—काम करने के स्थानों पर कल्याण सुविधाओं की व्यवस्था करना आदि पर किस प्रकार विचार तथा कार्य किया जा सकता है। श्रमिक अब अपने कल्याण-कार्यों के प्रबन्ध तथा उन्नति में अधिक सक्रिय भाग ले रहे हैं परन्तु कल्याण-कार्यों के कुशल प्रशासन के लिए शिक्षित व्यक्ति होने चाहियें। यह बात भी कि श्रमिक किसी सीमा तक कारखाने के प्रबन्ध में भाग ले सकते हैं तथा कार्य और रहने की दशाओं में किस सीमा तक उन्नति कर सकते हैं इस बात पर निर्भर है कि शिक्षा द्वारा उनकी योग्यता का कितना विकास हुआ है। औद्योगिक शान्ति के लिए मालिक-मजदूर समितियों की सफलता भी श्रमिकों की शिक्षा पर निर्भर है। श्रमिकों के बालकों को भी उचित शिक्षा देना बहुत महत्त्वपूर्ण है विशेषकर ऐसे देशों में जहाँ बाल श्रमिकों की संख्या अब भी काफी है। रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि औद्योगिक श्रमिकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये तथा कारखानों के स्कूलों में श्रमिकों के बालकों की शिक्षा के विकास के लिये प्रयत्न करने चाहियें। रॉयल श्रम आयोग के शब्दों में 'भारत में लगभग सभी औद्योगिक श्रमिक अशिक्षित हैं। यह ऐसी बात है जो किसी अन्य महत्वपूर्ण औद्योगिक देश में नहीं पाई जाती। इस अयोग्यता के जो परिणाम होते हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। निरक्षरता का परिणाम मजदूरी में, स्वास्थ्य में, उत्पादिता में, संगठन में तथा अन्य कई रूपों में सामने स्पष्ट रूप से आता है। आधुनिक मशीन उद्योग एक विशेष सीमा तक शिक्षा पर निर्भर है तथा अशिक्षित श्रमिकों के सहयोग से इसका निर्माण करना कठिन तथा खतरनाक है।"[1] श्री हैराल्ड बटलर का कथन है कि "भारत के अधिकांश कारखानों में यह देखा गया है कि श्रमिक अपनी मशीनों के मालिक न होकर उनके दास बन जाते हैं। वे मशीनों को ठीक प्रकार से समझते भी नहीं और लापरवाही से प्रयोग करने के परिणामस्वरूप, उन देशों की अपेक्षा जहाँ कर्मचारियों में यान्त्रिक रुचि होती है अपने देश की मशीनें जल्दी खराब कर देते हैं।"[2] हमारी पचवर्षीय आयोजना की सफलता भी इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे श्रमिक नये निर्माण के वातावरण को कहाँ तक समझते हैं और स्वयं को उनके अनुकूल बनाते हैं और उत्पादन बढ़ाने में कहाँ तक सहयोग देते हैं तथा देश की अर्थव्यवस्था में अपने स्थान को उचित प्रकार से समझते हैं। इस प्रकार श्रमिकों की शिक्षा

1. Report of the Royal Commission on Labour, page 27.
2. Harold Butlor: Problem of Industry in the East, pages 24 25

के लिये विशेष रूप से प्रयत्न करने आवश्यक है।

इस प्रकार शिक्षा का अनेक कारणों से महत्व बहुत बढ़ जाता है। शिक्षा से ही श्रमिक अच्छे नागरिक बन सकते है। शिक्षा प्रसार से ही औद्योगिक सम्बन्धो मे सुधार हो सकता है तथा श्रमिक यह समझ सकते है कि आधुनिक आर्थिक समस्यायें क्या है। शिक्षा से ही श्रमिको म अनुशासन की भावना आ सकती है तथा उनकी विचार-शक्ति तथा अविकसित गुण विकसित हो सकते है। श्रम अनुसन्धान समिति के विचार मे शिक्षा देने का उत्तरदायित्व राज्य का होना चाहिये तथा मालिको पर इसका उत्तरदायित्व डालने की नीति नही अपनानी चाहिये। यदि वास्तव मे कुछ मालिक ऐसी सुविधायें देते भी है तो उसे मालिक की सहृदयता ही समझना चाहिए। परन्तु फिर भी मालिको को अपने ही हित के लिये श्रमिको की शिक्षा मे रुचि लेनी चाहिये। कम से कम रेडियो व्याख्यानो आदि के द्वारा तो वे शिक्षा दे ही सकते हैं तथा वे वयस्क शिक्षा की भी व्यवस्था कर सकते हैं। अनेक जागरूक मालिको ने श्रमिको तथा उनके बालकों को अच्छी शिक्षा सुविधायें प्रदान की है जिनका उल्लेख मालिको द्वारा कल्याण-कार्य की व्याख्या मे किया जा चुका है। इस सम्बन्ध मे टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी व बकिंघम तथा कर्नाटक मिल्स विशेषकर उल्लेखनीय हैं। किन्तु वयस्क शिक्षा की सुविधायें देहली कपडा एव जनरल मिल्स, और उत्तर प्रदेश, प० बगाल तथा महाराष्ट्र के राजकीय श्रम कल्याण केन्द्रो को छोडकर और कही अधिक सन्तोषजनक नही है। अहमदाबाद सूती कपडा मिल मजदूर परिषद् के द्वारा भी वयस्कों के लिये रात्रि पाठशालाये चलाई जाती हैं। महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा तमिलनाडु के श्रम कल्याण केन्द्रो मे भी व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश सरकार कानपुर मे सूती वस्त्र सस्थान तथा कानपुर व आगरा म चमडे के काम के स्कूल चलाती है। अपने कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने के लिए रेलवे के अपने अलग व्यावसायिक स्कूल हैं। टाटा लोहा एव इस्पात कम्पनी कुशल कर्मचारियो को उच्च तकनीकी शिक्षा देने के लिए एक तकनीकी सस्थान चलाती है। अनेक स्थानो पर रोजगार के दफ्तरों के अधीन व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना की गई है। केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा बोर्ड की रिपोर्ट (जो कि सार्जेन्ट रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है) के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने सारे देश के लिये शिक्षा विकास की एक पच-वर्षीय योजना बनाई थी। केन्द्र तथा राज्य दोनो की ही सरकारें शिक्षा सुविधाओ के पुनर्सगठन व उन्नति के लिये पग उठा रही हैं। उडीसा तथा उत्तर प्रदेश की तरह अनेक राज्यो ने वयस्क शिक्षा की योजनाये भी बनाई हैं। सामाजिक शिक्षा की एक योजना भी कई राज्यों मे लागू है जिसका औद्योगिक मजदूरी के लिये विस्तार किया जा सकता है।

श्रमिको का शिक्षा कार्यक्रम (Workers' Education Programme)—द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे सम्पूर्ण देश मे श्रमिको को शिक्षा देने की एक योजना

थी जिनमे श्रमिक मघवाद और उनके तरीकों पर अधिक जोर दिया गया था। इस सिफारिश को लागू करने के लिए फोर्ड-फाउन्डेशन के सहयोग से तथा कई विदेशी विशेषज्ञ की सहायता से जनवरी १९५७ में एक श्रमिक शिक्षा समिति की स्थापना की गई थी। इस योजना के लिये एक प्रशासक (श्री० पी० एम० एमवारन) की नियुक्ति भी की गई। मार्च १९५७ में श्रमिकों की शिक्षा पर देहली में एक वाद-विवाद गोष्ठी हुई और जुलाई १९५७ में भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें अधिवेशन में श्रमिकों के शिक्षा के कार्यक्रम को लागू करने हेतु स्वीकार कर लिया गया। इस कार्य-क्रम का उद्देश्य यह है कि श्रमिकों को अपने सगठन बनाने की तकनीक और सिद्धान्तों से परिचित कराया जाय ताकि वे इस योग्य हो सके कि सघो के चलाने और उनके प्रबन्ध में बुद्धिमत्ता तथा उत्तरदायित्व की भावना से कार्य कर सके। श्रमिकों की शिक्षा के लिये एक केन्द्रीय बोर्ड की भी स्थापना नागपुर में कर दी गई है जिसको एक समिति के रूप में रजिस्टर्ड कर दिया गया है। इस बोर्ड में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के तथा मालिकों व सघो के प्रतिनिधि तथा शिक्षा विशेषज्ञ होते है। यह बोर्ड योजना की आगे आने वाली व्यवस्था अर्थात् श्रमिक शिक्षक का प्रशिक्षण तथा फिर उनके द्वारा श्रमिकों का प्रशिक्षण करने में सम्बन्धित समस्त विषयों की देखभाल करता है।

श्रमिकों की शिक्षा के कार्य-क्रम को तीन चरणों में विभाजित किया गया है। **पहला चरण** है पर्याप्त सख्या में सगठनकर्त्ताओं के प्रशिक्षण का, ताकि क्षेत्रीय श्रमिकों को शिक्षित किया जा सके। ऐसे सगठनकर्त्ताओं को प्रारम्भ में शिक्षक-प्रशासक (Teacher-administrators) कहा जाता था किन्तु अब उन्हें शिक्षा अधिकारी (Education Officers) कहा जाता है। ये बोर्ड की सेवा में लगाये जाते है। बम्बई तथा कलकत्ता में उनके लिये प्रशिक्षण पाठ्यक्रम बनाये जाते हैं। उनके लिये अनेक पाठ्य-क्रम पूरे हो चुके है। **दूसरा चरण** यह है कि शिक्षा अधिकारियों का प्रशिक्षण पूरा होने के बाद उनको नियुक्ति विभिन्न केन्द्रों पर कर दी जाती है जहाँ वे चुने हुये श्रमिकों को प्रशिक्षण देते है। यह प्रशिक्षण पूर्णकालिक होता है, इसकी अवधि तीन माह होती है और यह २५ व्यक्तियों के समूह में दिया जाता है। इन चुने हुये श्रमिकों को 'श्रमिक-शिक्षक' (Worker-Teachers) कहा जाता है। इनका चुनाव स्थानीय समितियों द्वारा यथा क्षेत्रीय केन्द्रों के निदेशकों द्वारा क्षेत्र की विभिन्न औद्योगिक इकाइयों तथा कर्मशालाओं (Workshops) में से किया जाता है और मालिकों अथवा श्रमिक सघो द्वारा उनको विज्ञापित किया जाता है। प्रशिक्षण के लिये मालिक उन्हें पूर्ण वेतन पर छुट्टी देते है। **तीसरा चरण** यह है कि ये श्रमिक शिक्षक प्रशिक्षण के पश्चात् अपनी-अपनी औद्योगिक इकाइयों को वापिस चले जाते हैं और मुख्य काम के घण्टों के अलावा समय में श्रमिक कक्षायें चालू करके अपनी इकाइयों के श्रमिकों को शिक्षा देते है। श्रमिक शिक्षकों को इस कार्य के लिये प्रति मास ३० रुपये पारिश्रमिक के रूप में दिये जाते

है और बोर्ड के अधिकारियों द्वारा उनका मार्ग-दर्शन किया जाता है।

श्रमिक शिक्षा केन्द्रीय बोर्ड द्वारा सन् १६५८ से जब यह योजना कार्यान्वित की गई, मार्च १६८० तक ४१ क्षेत्रीय शिक्षा केन्द्र और ६४ उप-क्षेत्रीय शिक्षा केन्द्र खोले जा चुके थे। क्षेत्रीय केन्द्रों में से १४ रिहायशी (residential) है। मार्च १६८० तक इन केन्द्रों ने ५४,५८१ श्रमिक-शिक्षकों को तथा २६,६६,४१४ श्रमिकों का इकाई स्तर पर प्रशिक्षित किया था।

बोर्ड ने श्रमिकों के उपयोग के लिये श्रम सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर सरल भाषा में पाठ्य-पुस्तिकायें भी प्रकाशित की है। मार्च १६८० तक ऐसी ८३ पुस्तिकायें तो अंग्रेजी में और ८३३ क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी थी। बोर्ड तथा क्षेत्रीय केन्द्रों ने श्रम सम्बन्धी रुचि के विषयों पर अनेक गोष्ठियाँ भी आयोजित की है। प्रशिक्षण देने के लिये दृश्य श्रव्य साधनों (audio visual aids) तथा सामान्य दृश्य साधनों (Simple visual aids) का भी प्रयोग किया जाता है। शिक्षण के स्तर में सुधार लाने के लिये बोर्ड ने अनेक फ्लैश कार्ड, फिल्म चार्ट तथा रेखाचित्र आदि तैयार कराये है। कुछ विदेशी विशेषज्ञ भी आये है और उन्होंने इस योजना के कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया है और मूल्यवान सुझाव दिये है। सन् ११५६ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के डॉक्टर चारेस ए० आर०, १६६२ में बी० एन० मैकनामार, १६६४ में मिसेज बर्जीना हार्ड १६६५ में मि० ए० ई० राफन और १६६८ में श्री के० दुरियप्पा आये। सन् १६६५ में बोर्ड के ६ अधिकारी प्रशिक्षण (training) के लिये संयुक्त राज्य अमरिका को भी भेजे गये। बोर्ड श्रमिक संघो तथा संस्थाओं को कुल व्यय का ६० प्रतिशत तक सहायक अनुदान भी देता है जिससे कि उन्हें स्वयं अपनी देख रेख में श्रमिक शिक्षा के १ से १४ दिन तक के अल्पकालीन कार्यक्रम चालू रखने का प्रोत्साहन मिले। १६६० में योजना लागू होने के बाद से ३१ मार्च १६८० तक श्रमिक संघो और संस्थाओं को ३७.८० लाख रुपये के अनुदान दिये गये थे और उनके द्वारा २,४६,२६६ श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया गया था। बोर्ड ने योजना के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अनेक अनुसंधान आयोजनायें भी चालू की है और अब तक किये गये कार्य का मूल्यांकन करने के लिये एक विशेष समीक्षा समिति की भी नियुक्ति की है। शिक्षा अधिकारियों तथा श्रमिक-शिक्षकों के लाभ के लिये नवीकरण पाठ्यक्रम भी चालू किये है। कार्य समितियों तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के सदस्यों और श्रमिक संघो के अधिकारियों के लिये विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते है।

बोर्ड औद्योगिक बागान, खान तथा ग्रामीण श्रमिकों में एक व्यस्क शिक्षा कार्यक्रम भी चला रहा है। यह प्रोग्राम बागान तथा खान क्षेत्रों मे तीव्रता से लागू किया जा रहा है। बोर्ड ने अशिक्षित श्रमिक के लिये छः माह की अवधि की इकाई स्तर की कक्षाओं का एक संशोधित प्रारूप लागू किया है। इन कक्षाओं में श्रमिक की शिक्षा तथा साक्षरता कार्यक्रमों को एकीकृत रूप में लागू किया गया

जाता है। ३१ मार्च १६८० को ६०७ व्यस्क साक्षरता कक्षाएँ चालू थी और १५०४३ श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया जा रहा था।

बोर्ड द्वारा जो दूसरा कार्यक्रम हाथ में लिया गया वह ग्रामीण श्रमिकों की शिक्षा से सम्बन्धित है। १६७७-७८ में ग्रामीण श्रमिकों की शिक्षा से सम्बन्ध में सचालित एवं अग्रगामी परियोजना (pilot project) से जो लाभ प्राप्त हुआ उसके अनुभव के आधार पर यह कार्यक्रम १६७८-७६ में भी चालू रखा गया। ३१ मार्च १६८० तक, १६६ द्वि-दिवसीय शिविरों में ६ ७६६ ग्रामीण श्रमिकों को और २७७ पच-दिवसीय रिहायशी शिविरों में ११०१६ ग्रामीण श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया गया था। इन परियोजना में ग्रामीण श्रमिकों की समस्याओं का पता चला और अब उनके समाधान के लिए प्रयास किये जा रहे हैं।

मार्च १६७० में बोर्ड की एक प्रशिक्षण शाखा जो कि **श्रमिक शिक्षा का भारतीय संस्थान** (Indian Institute Workers Education) के नाम से विख्यात है इस उद्देश्य से स्थापित की गई ताकि वह एक **प्रदर्शन व सूचना केन्द्र** एवं ऐसे मध्यवर्ती केन्द्र के रूप में कार्य कर सके जिसके द्वारा और श्रमिक प्रशिक्षण तथा शिक्षा के विशिष्ट कार्यक्रम जारी रखे जा सके। उद्देश्य यह भी है कि शिक्षण की विधियों तथा साधनों का विकसित व पूर्ण किया जाए। यह सस्थान शिक्षा अधिकारियों श्रमिक सघ अधिकारियों एवं श्रमिक शिक्षकों के लिए अनेक नवीनीकरण पाठ्यक्रम (refresher course) आयोजित करता है। सन् १६७६-८० में ७० शिक्षा अधिकारियों और ११ श्रमिक सघ अधिकारियों का नवीनीकरण पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण दिया गया। इसने 'श्रमिक सघो का सगठन व प्रशासन' विषय पर एक पत्र-व्यवहार पाठ्यक्रम भी चालू किया है।

तृतीय पचवर्षीय योजना में श्रमिकों की शिक्षा के लिये २ करोड रुपये की धनराशि निर्धारित की गई थी। तृतीय योजना की अवधि में १६ क्षेत्रीय शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जानी थी और २०० शिक्षा-अधिकारियों, ६,१३८ श्रमिक-शिक्षकों और लगभग ३ लाख श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया जाना था। किन्तु वास्तव में स्थापना १८ क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना की हुई जिससे इन केन्द्रों का योग ३० हो गया। चौथी योजना में १२ नये क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना का प्रस्ताव था और ५,६५,००० श्रमिकों, ८,६६० श्रमिक-शिक्षकों एवं ४०० शिक्षा अधिकारियों का प्रशिक्षण दिये जाने की व्यवस्था की गई थी। यह कार्यक्रम को लागू करने के लिये ५ १० करोड रुपये की धनराशि नियत की गई थी। चौथी योजना में प्रशिक्षण के स्तर पर तथा श्रमिक सघो, राज्य सरकारो, स्थानीय निकायो, विश्वविद्यालयों एव कॉलिजों के पारस्परिक सम्पर्क पर अधिक जोर दिया गया। पाँचवी पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में यह प्रस्ताव है कि योजना काल में २०,००० श्रमिक-शिक्षकों को और २ लाख श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया जाय और चालू क्षेत्रीय केन्द्रों

को और सक्रिय बनाया जाये तथा नये क्षेत्रीय केन्द्र खोले जाएँ।

वैसे वतमान परिस्थितियों में श्रमिकों की शिक्षा की प्रचलित योजना सर्वोत्तम है परन्तु कुछ मामलो के अध्ययन से यह पता चलता है कि योजना ने तृतीय चरण में अर्थात इकाई स्तर की कक्षाओं में अच्छी प्रगति नहीं की है। इसका मुख्य कारण यह है कि मिल मालिक कक्षाओं को चालू करने की सुविधा प्रदान करने में पूर्णतया सहयोग नहीं करते और न ही वे श्रमिकों को ऐसी कक्षाओं में जाने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। अनेक स्थानों पर मालिकों की शिकायत यह है कि श्रमिक-शिक्षक इस माध्यम से राजनीति का प्रचार करते हैं। अत इन परिस्थितियों में योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक शिक्षकों पर अधिक नियन्त्रण रखा जाय प्रशिक्षण के लिए उनका चुनाव करते समय अधिक सावधानी बरती जाय और मालिकों का यह कानूनी दायित्व होना चाहिये कि वे कक्षाय सचालित करने के लिए यथेष्ट सुविधाय प्रदान करें।

राष्ट्रीय श्रम आयोग[1] का यह कथन है कि श्रमिकों की शिक्षा की वर्तमान योजना भी अन्य किसी भी योजना के समान ही सर्वथा पूर्ण नहीं है और आवश्यकता इस बात की है कि इसमें सुधार किया जाये तथा इसे शक्तिशाली बनाया जाये। बोर्ड द्वारा साहित्य के निर्माण के कायक्रम में भी सुधार तथा तीव्रता लाई जानी चाहिये। श्रमिकों में निरक्षरता को समाप्त करने के लिये सरकार को एक व्यापक वयस्क साक्षरता कायक्रम चालू करना चाहिये। ऐसा कायक्रम श्रमिकों को प्रशिक्षण देने के कायक्रम में बड़ा सहायक होगा। आयोग की सिफारिश है कि श्रमिकों की शिक्षा का कायक्रम श्रमिक सघों द्वारा ही बनाया तथा लागू किया जाना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये श्रमिक शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड को चाहिये कि वह श्रमिक सघो को सहायता देने की कायविधि को सरल बनाये और मालिकों को चाहिये कि व कायक्रम के लिये सुविधाय प्रदान करके सहयोग दें। श्रमिक सघ केन्द्रों को चाहिये की वे विश्वविद्यालयों एव अनुसधान सस्थाओं से तालमेल स्थापित कर उपयुक्त कायक्रमों की रूपरेखा बनाय और सरकार को चाहिये कि वह विश्वविद्यालयों को इस बात के लिये प्रोत्साहित करे कि वे सघ के नेताओं व सगठनकर्त्ताओं के लाभ के लिये विस्तृत पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करें। आयोग ने यह भी सिफारिश की कि श्रमिक शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड की स्थापना स्थायी आधार पर की जानी चाहिये परन्तु इसके सविधान में परिवर्तन किया जाना चाहिये और श्रमिक सघों द्वारा नामाकित व्यक्ति ही गवनरों के बोर्ड का अध्यक्ष तथा योजना का निदेशक बनाया जाना चाहिये।

ससद की अनुमान समिति ने सन १९७०-७१ की अवधि के श्रमिक शिक्षा कायक्रमों की जाँच की और जुलाई १९७१ में अपनी रिपोट प्रस्तुत की।

अनाज की दुकानों की सुविधायें (Grain Shop Facilities)

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ और भी कल्याण काय

1 Report of the National Commission on Labour

१२ भारत में सामाजिक सुरक्षा

SOCIAL SECURITY IN INDIA

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ (Meaning of Social Security)

सामाजिक सुरक्षा एक परिवर्तनशील विचार है जो समाज के सब उन्नत देशों में निर्धनता, बेरोजगारी तथा बीमारी को जड़ से दूर करने के लिये राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग माना जाता है। साधारणतः सामाजिक सुरक्षा औद्योगिक श्रमिकों के लिये बहुत आवश्यक समझी जाती है। परन्तु वर्तमान युग में कल्याणकारी राज्य का विचार विकसित हो जाने से इसका क्षेत्र भी समाज के सब वर्गों तक विकसित हो गया है। सामाजिक सुरक्षा का तात्पर्य उस सुरक्षा से है जिसे समाज अपने सदस्यों को संकट से बचाने के लिये समुचित रूप से प्रदान करता है। ये संकट उनकी विपत्तियाँ हैं जिनसे निर्धन व्यक्ति या श्रमिक अपनी सुरक्षा अपने साथियों के सहयोग अथवा अपनी दूरदर्शिता से भी नहीं कर पाता। इन विपत्तियों के कारण श्रमिक की कार्यक्षमता को क्षति पहुँचती है और वह अपना और अपने आश्रितों का पोषण नहीं कर पाता। राज्य की स्थापना का उद्देश्य जनसाधारण की भलाई करना है, इसलिये सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करना राज्य का ही प्रमुख कार्य है। यद्यपि राज्य की प्रत्येक नीति का सामाजिक सुरक्षा पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है, तथापि सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत केवल ऐसी योजनायें आती हैं जैसे—बीमारी की रोकथाम तथा उसका इलाज, रोजी कमाने योग्य न होने की अवस्था में श्रमिक को सहायता देना, और उसको अजविका उपार्जन के योग्य बनाना आदि। परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि इस तमाम से धन या सुरक्षा नहीं मिल सकती क्योंकि सुरक्षा का तात्पर्य किसी प्रत्यक्ष वस्तु से ही नहीं होता वरन् यह एक मानसिक अनुभूति भी है। सुरक्षा से तभी लाभ अनुभव हो सकता है जब सुरक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति का इस बात में विश्वास हो कि उसको सम्पूर्ण सुविधायें, जब भी उसे आवश्यकता होगी प्राप्त हो जायगी। यह भी आवश्यक है कि सुरक्षा प्रदान करते समय यह देख लेना चाहिये कि सहायता और सुविधाओं की मात्रा और गुण पर्याप्त हैं।

सामाजिक सुरक्षा एक अत्यधिक व्यापक शब्द है और इसके अन्तर्गत सामाजिक बीमा व सामाजिक सहायता की योजनायें और कुछ व्यवसायिक (Commercial) बीमे की योजनायें भी आ जाती हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि इन शब्दों के अन्तर को स्पष्ट किया जाय एवं प्रत्येक के क्षेत्र के बारे में स्पष्ट रूप से विचार

क्षति के समय एक न्यूनतम जीवन स्तर बने रहने का आश्वासन रहे। चतुर्थ, यह लाभ प्राप्त करने वालों का अधिकार मानकर तथा बिना जीविका साधन जाँच के प्रदान की जाती है जिससे उनके आत्म सम्मान को कोई ठेस न पहुँचे। पंचम सामाजिक बीमा अब अनिवार्य रूप से प्रदान किया जाता है जिससे ये लाभ समाज के उन सब अभीष्ट (Needy) व्यक्तियों तक पहुँच सकें जिनको इसका संरक्षण मिलना वांछनीय है। अन्त में, यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि सामाजिक बीमा व्यक्ति के किसी विशेष घटना से होने वाले कष्टों का ही निवारण करता है उन्हें रोकता नहीं। वास्तव में इन कष्टों का विरोध असम्भव होता है तब ही सामाजिक बीमे की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

सामाजिक बीमे तथा व्यावसायिक बीमे में अन्तर

(Social Insurance and Commercial Insurance)

व्यावसायिक बीमा पूर्ण रूप से ऐच्छिक होता है परन्तु सामाजिक बीमा साधारणतः अनिवार्य होता है। व्यावसायिक बीमे में दी हुई बीमा किस्तों के अनुसार ही पॉलिसी-हित प्रदान किये जाते हैं, परन्तु सामाजिक बीमे में जो लाभ श्रमिकों को प्रदान किये जाते हैं, वे उनके अंशदान से अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक बीमे में न्यूनतम जीवन-स्तर को बनाये रखने का उद्देश्य नहीं होता, परन्तु सामाजिक बीमे का यह एक मुख्य उद्देश्य होता है। सामाजिक बीमे की व्यवस्था कई प्रकार की ऐसी विपत्तियों के समय की जाती है जो विभिन्न प्रकार की होती हैं और जिनकी तीव्रता भी विभिन्न होती है। परन्तु व्यावसायिक बीमे की व्यवस्था केवल एक व्यक्तिगत संकट से सुरक्षा के लिये की जाती है।

सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता

(Social Insurance and Social Assistance)

सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता में भी कुछ अन्तर है। सामाजिक सहायता योजना वह साधन है जिसके द्वारा राज्य अपनी ही निधि में से श्रमिकों के द्वारा कुछ विशेष शर्तें पूरी हो जाने पर कानूनी तौर पर लाभ प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक सहायता सामाजिक बीमे का स्थान लेने की अपेक्षा उसकी पूरक है। दोनों ही साथ साथ चलते हैं। परन्तु अन्तर यह है कि सामाजिक सहायता तो पूर्णतया सरकार का ही कार्य है जबकि सामाजिक बीमे में राज्य द्वारा केवल आंशिक रूप से वित्त प्रदान किया जाता है। सामाजिक बीमे के लाभ वही व्यक्ति उठा सकता है जो इसमें अंशदान देता है। परन्तु सामाजिक सहायता निःशुल्क प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक बीमे में किसी प्रकार की जीविका साधन-जाँच पर जोर नहीं दिया जाता और इसके बिना ही लाभ प्रदान किये जाते हैं। परन्तु सामाजिक सहायता केवल कुछ दी हुई शर्तें पूर्ण होने पर दी जाती है। साथ ही सामाजिक बीमे में "बीमा" शब्द के अन्तर्गत अंशदान का सिद्धान्त निहित है, जोकि सामाजिक सहायता (Social Assistance) में नहीं है। इस प्रकार "सामा-

भी बल प्रदान किया। ये योजनायें देश की प्रतिरक्षा की शक्ति में वृद्धि करती हैं, क्योंकि ये जनसंख्या के विभिन्न वर्गों को एक विशेष उद्देश्य के लिये संगठित करती हैं, अन्याय को कम करती हैं, जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करती है तथा आर्थिक चिन्ताओं को दूर करने का भी प्रयत्न करती हैं। युद्ध के पश्चात् जो प्रभाव हुए उनके कारण भी कुछ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की आवश्यकता को अनुभव किया गया, क्योंकि इन प्रभावों के कारण अनेक देशों में आवश्यक वस्तुओं की दुर्लभता उत्पन्न हो गई थी और पुनर्निर्माण की समस्यायें भी उत्पन्न हो गयी थी। लगभग प्रत्येक औद्योगिक उन्नत देश ने अब सामाजिक बीमे के महत्व को स्वीकार कर लिया है तथा उनमें से अनेक ने सामाजिक बीमा के आयोजन की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कई स्थान पर तो सामाजिक बीमा योजनायें निश्चित की जा चुकी हैं तथा उनको कार्यान्वित भी कर दिया गया है। अमरीका, आस्ट्रेलिया कनाडा, तथा न्यूजीलैंड जैसे देशों में सामाजिक बीमे की विस्तृत योजनायें बनाई गई हैं तथा लागू की गई हैं। १९४२ में लन्दन में "ब्रिटेन में सामाजिक बीमा तथा सम्बन्धित सेवाओं पर बेवरिज रिपोर्ट (Beveridge Report on British Social Insurance and Allied Services) प्रकाशित हुई जो संसार भर में चर्चा का विषय बन गई। अब इसको कार्यान्वित कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था है। सामाजिक बीमा योजना जिस प्रकार विभिन्न देशों में लागू की गई है उसके विस्तृत क्षेत्र का उदाहरण कनाडा के "सामाजिक-सुरक्षा' पर मार्श की रिपोर्ट (Marsh Report) तथा अमरीका में 'मुरे-डिंगल विधेयक' (Murray-Dingell Bill) में भी मिलता है।

भारत में सामाजिक सुरक्षा के विचार की उत्पत्ति और विकास (Growth of Social Security Idea in India)

भारत में निर्धनों तथा असहायों की सहायता को सदैव से ही धार्मिक कर्तव्य माना गया है। भूतकाल में ऐसे व्यक्तियों के लिये जिनके पास जीवन निर्वाह का कोई साधन न होना था और जो कार्य करने में भी असमर्थ होते थे, उन्हें कई प्रकार की संस्थाओं और रीतियों से सहायता मिल जाया करती थी, जैसे—संयुक्त परिवार, सामुदायिक पचायतें, धार्मिक संस्थायें अनाथालय व विधवा आश्रम, भीख व्यक्तिगत दान, जन-सेवा की भावना, आदि। परन्तु पश्चिमी शिक्षा तथा देश के औद्योगीकरण के प्रभाव से ये संस्थायें और रीति-रिवाज नष्ट होने लगे हैं और परिस्थिति के अनुसार इनके अन्तर्गत अब पर्याप्त सहायता नहीं मिलती। वर्तमान समय में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना राज्य का ही कर्तव्य माना जाता है।

दोनों महायुद्धों के मध्यकाल की अवधि में तथा विशेषकर १९३९ से विभिन्न देशों में सामाजिक सुरक्षा को तीव्र गति से उन्नति तथा विस्तार हुआ है। किन्तु भारत में इसको लागू करने के प्रश्न पर कुछ समय पहले तक राज्य की ओर से

व्यय हो जाती है और कम वेतन पाने वाले मजदूर के लिए तो मात्र जीविका भी बिना ऋण लिये असम्भव होती है। आय इतनी कम है कि उसमे से बचत करने के लिये कुछ नही बचता और इस प्रकार जब कभी श्रमिकों का मासिक बजट घाटे मे चलता है तो उनके पास उसको पूरा करने के लिये पहले से बचाई हुई कोई भी निधि नही होती। **बीमारी, बेकारी, अस्थायी असमर्थता, परिवार के कमाने वाले व्यक्ति की** अचानक मृत्यु जैसी अनेक विपत्तियो (Contingencies) मे या तो श्रमिक अधिक ब्याज द्वारा ऋण ले लेता है अथवा अपने पहले से ही घिरे हुए जीवनस्तर मे वह असीम रूप से कष्ट भोगता है। इसलिए जीवन की विपत्तियों के विरुद्ध व्यवस्था करने के लिये भारत मे कुछ सामाजिक सुरक्षा योजनाओ की अत्यधिक आवश्यकता है क्योकि विपत्ति पडने पर मजदूरो के पास अपने निर्वाह के लिये कोई संचित निधि नही होती।

श्रमिक अनेक **बीमारियो** के बोझ से भी दबा रहता है। अस्वास्थ्य भीड भाड वाले तथा घने बसे औद्योगिक क्षेत्रो मे मलेरिया, हैजा, क्षय, प्लेग, इन्फ्लुएन्जा जैसी बीमारियां उग्र रूप मे फैल जाती है। ऐसी बीमारियो के कारण सैकडो व्यक्ति प्रत्येक वर्ष मे प्रतिवर्ष मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। शेष जो इनके आक्रमणो से बच भी जाते है उनमे दुर्बलता और अकुशलता आ जाती है। औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिको की उचित चिकित्सा के लिए, उनको निरन्तर आय की सुविधाए प्रदान करने के लिये और बीमारियो के पश्चात् उनको शीघ्र से शीघ्र पूर्णतः स्वस्थ करने के लिये अभी हाल तक कोई उचित व्यवस्था नहीं थी।

बेरोजगारी तथा इसके साथ ही नौकरी से हटाए जाने का भय हमारे श्रमिको के जीवन मे एक अभिशाप है। वर्तमान समाज की औद्योगिक व्यवस्था मे यह सबसे निकृष्ट (Worst) और विस्तृत बुराई है। इससे निराश्रता (Destitution), भिक्षावृत्ति, बाल श्रम, स्त्री श्रम, वेश्यावृत्ति तथा मदिरापान जैसी सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती है। जो श्रमिक अपने गांव वापस जा सकते है वे अपने सम्बन्धियों के ऊपर भार स्वरूप हो जाते है और साधारणतः उनके गांव मे वापस जाने का स्वागत भी नही किया जाता। जो वापस नही जा सकते वे औद्योगिक नगरो मे भूखे मरते हैं और निराश्रता का जीवन व्यतीत करते है।

श्रमिक पर उस समय भी मुसीबतो का पहाड टूट पडता है जब वह अस्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है या परिवार के एकमात्र रोटी कमाने वाले की मृत्यु हो जाती है जो अपने पीछे एक विधवा व अनाथ बच्चे अथवा अन्य आश्रितो को छोड जाता है जिनकी देख भाल करने वाला कोई नही रहता, अथवा जब मजदूर पूर्णतया असमर्थ हो जाता है या अवकाश ग्रहण कर लेता है अथवा वृद्ध हो जाता है और काम के अयोग्य हो जाता है। इन समस्त समय पर पडने वाली विपत्तियो के लिए कोई भी व्यवस्था न होने और इनके आने पर बडी पुरानी ऋणी होना,

जाती है अत्यधिक ऋण निम्नतम जीवन स्तर, कार्यक्षमता में क्षति तथा उत्पादन में कमी और अनेक सामाजिक बुराइयां। इस प्रकार इस तथ्य में पूर्ण सत्यता है कि श्रमिकों की निर्धनता एवं सामाजिक बुराइयों का सबसे शक्तिशाली कारण यही है कि इनकी बीमारी और बेरोजगारी में उनकी आय में विघ्न पड़ जाता है। ऐसी घटनायें भी मिलती हैं कि एक मजदूर की मृत्यु पर अथवा उसके पूर्णरूप से निकाल दिए जाने पर उसकी पत्नी और बच्चियों को समाज के भेड़ियों का शिकार होना पड़ता है और उन्हें अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

श्रमिकों की सामान्य दशा
(General Conditions of Workers)

इस प्रकार वर्तमान भारत में श्रम की अस्थिरता श्रमिकों तथा अनुपस्थिति की तीव्र समस्याओं में उन्हें अनेक कठिनाइयों सामने आती हैं। नगरों में निर्धन श्रमिकों को किसी प्रकार की कोई सुविधा नहीं मिल पाती। उनके पास नाममात्र का ही एक मकान होता है उसकी गन्दगी तथा अस्वस्थकर वातावरण में रहना पड़ता है और बीमार पड़ने पर उनकी देखभाल करने वाला भी कोई नहीं होता, नौकरी से हटा दिये जाने पर उनसे सहानुभूति करने वाला भी कोई व्यक्ति नहीं होता। जब वह पूर्णतः अथवा अस्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है तो उसकी रद्दी कागज की तरह उपेक्षा की जाती है बूढ़ा हो जाने पर उसे बेकार वस्तुओं की तरह फेंक दिया जाता है। इस प्रकार के मार कष्ट, दुःख और दुर्भाग्य आने पर उसके पास शरण लेने का स्थान केवल गांव रह जाता है। परन्तु गांव के साथ भी उनके सम्बन्ध टूटते जा रहे हैं क्योंकि आधुनिक सभ्यता के प्रभाव में संयुक्त परिवार तथा गांवों का सामूहिक जीवन समाप्त हो गया है और गांवों में भी जीवन निर्वाह के लिए कठोर परिस्थितियां पैदा हो गई हैं।

सामाजिक बीमा व्यवस्था के लाभ
(Advantages of Social Insurance Measures)

इस बात का अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उपरोक्त विपत्तियों से बचने के लिए किसी न किसी सुरक्षा व्यवस्था की अत्यधिक आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि सामाजिक बीमा व्यवस्था ही भली प्रकार से श्रमिकों के जीवन की सामान्य संकटों से सुरक्षा कर सकता है। यह संकट ऐसे होते हैं जिनसे श्रमिक स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा रक्षा नहीं कर पाता। श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा जीविका की सुरक्षा के लिए जिसके वे अधिकारी हैं सामाजिक बीमा ही कि सम्पूर्ण और कुशल साधन है। सामाजिक बीमा योजना का लाभ यह है कि इसमें श्रमिक का सहयोग भी होता है क्योंकि श्रमिकों से भी इसमें अंशदान लिया जाता है। यह निश्चित अधिकारों के आधार पर लाभ प्रदान करती है तथा लाभ प्राप्त करने वालों का आत्मसम्मान बनाये रखती है। इसका उद्देश्य मजदूर की गाढ़ी कमाई

इनको जो क्षति पहुँचाती है । सामाजिक सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था से उत्पादकों की ओर से अनुत्पादकों को लाभ प्रदान किया जाता है अर्थात् जो योग्य हैं और रोजगार पर लगे हैं वे उन व्यक्तियों की सहायता करते हैं, जो वृद्ध हैं बीमार हैं और बेरोजगार हैं। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि सामाजिक सुरक्षा द्वारा जो सहायता प्रदान की जाती उसके कारण जो बीमार और बेरोजगार व्यक्ति जो कार्य योग्य अवस्था में होते, फिर से उत्पादक बन सकते हैं। उसके अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा द्वारा उन्हें जो भी सहायता मिलती, वह उन्हें इस योग्य भी बना देगी कि अपने रोजगार को पुनः पाने पर पहले से अच्छा कार्य करें । इस सहायता के न होने पर बेकार अथवा बीमारी के कारण उनकी कार्य क्षमता को बहुत क्षति पहुँचती है । जैसा कि सर विलियम बेवरिज ने कहा है 'यह आवश्यक नहीं है कि उचित प्रकार से आयोजित नियन्त्रित तथा ठीक व्यवस्थित, अर्थात् एक समस्त सामाजिक बीमा व्यवस्था उत्पादन प्रेरणा पर बुरा प्रभाव डाले" वरन् सामाजिक सुरक्षा से उत्पादन बढ़ सकता है क्योंकि असुरक्षा के कारण जो दुःख, भय चिन्तायें और अभाव श्रमिकों के जीवन में आ जाते हैं और उनको जो क्षति पहुँचती है उस क्षति को सामाजिक सुरक्षा कम कर देती है । राज्य को सामाजिक सुरक्षा योजनायें संगठित करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सामाजिक सुरक्षा से केवल एक न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन स्तर की ही व्यवस्था होती है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को अतिरिक्त प्रयत्नों द्वारा (अपने तथा अपने परिवार के लिए इस न्यूनतम स्तर से ऊपर अधिक प्रयत्न करने के लिए) उत्साह तथा अवसर प्राप्त होता रहे।

सामाजिक बीमे की विभिन्न व्यवस्थायें
(Various Measures of Social Insurance)

किसी देश की सामाजिक बीमा व्यवस्था में पूर्णता लाने के लिये यह आवश्यक है कि ऐसी सभी परिचित स्थितियों से रक्षा करने की उचित व्यवस्था हो, जिनसे श्रमिक या कोई भी व्यक्ति कष्ट पा सकता है तथा जो उसे जीविकोपार्जन के अवसरों से वंचित कर सकती है। जो संकट श्रमिकों को उनकी अर्जन करने की क्षमता से वंचित कर सकते हैं, वे निम्न बातों से उत्पन्न हो सकते हैं :— (क) बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, प्रसव काल आदि के कारण जीविका कमाने की अस्थायी अयोग्यता, (ख) स्थायी असमर्थता, जैसे—पूर्ण असमर्थता, चिरकालीन निर्बलता, वृद्धावस्था आदि, (ग) मृत्यु, जिससे परिवार का एकमात्र रोटी कमाने वाला एवं साधन समाप्त हो जाता है। इसमें हम वैधव्य तथा अनाथ हो जाना सम्मिलित कर सकते हैं। इस प्रकार एक पूर्ण सामाजिक-बीमा व्यवस्था के निम्नलिखित भाग कहे जा सकते हैं —(१) बीमारी तथा निर्बलता बीमा, (२) दुर्घटना बीमा, (३) मातृ हित बीमा, (४) बेरोजगारी बीमा, (५) वृद्धावस्था बीमा, (६) उत्तरजीवी बीमा।

भारत में सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान अवस्था
(Present Position of Social Insurance in India)

भारत में अभी तक उल्लिखित विपत्तियों में से किसी के लिए भी पूर्णतः सामाजिक बीमा योजनायें लागू नहीं की गई हैं यद्यपि १९४८ के कर्मचारी राज्य-बीमा अधिनियम तथा १९५२ के कर्मचारी प्रोवीडेंट फण्ड अधिनियम के पारित होने से इस ओर पग उठाया जा चुका है। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य विषयों में भारत एक पिछड़े हुए देशों में से कहा जा सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यहाँ इन विपत्तियों से किसी भी प्रकार की सुरक्षा नहीं रही है। निश्चय ही यहाँ कुछ सुरक्षा की व्यवस्था रही है, यद्यपि ऐसी सुरक्षा को सामाजिक बीमा नहीं कहा जा सकता। श्रमिकों को दुर्घटनाओं, प्रसव काल और बीमारी में सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरकार ने अनेक अधिनियम पारित किए हैं तथा अभी हाल में ही अन्य दिशाओं में भी प्रयत्न किए गये हैं। एक और प्रकार की सुरक्षा जो श्रमिकों को दी गई है, वह कल्याण कार्यों की है, जिसका पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जा चुका। अब तक जो मुख्य रूप में कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई है, वह निम्न विषयों पर है —(१) औद्योगिक बीमारियों तथा दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति (Compensation) के लिए, (२) स्त्री श्रमिकों के मातृत्व-हित लाभ के लिए (३) स्वास्थ्य बीमा (४) छँटनी के समय क्षतिपूर्ति, तथा (५) प्रोवीडेन्ट फण्ड की व्यवस्था। अब हम इनमें प्रत्येक पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

भारत में श्रमिकों के लिये क्षतिपूर्ति की व्यवस्था
(Workmen's Compensation in India)

क्षतिपूर्ति की आवश्यकता (Need for Compensation)

औद्योगिक दुर्घटनाओं से, जो प्रायः देश में होती हैं, श्रमिकों की रक्षा करना आवश्यक है। संगठित उद्योगों में मशीनों तथा यान्त्रिक शक्तियों के बढ़ते हुए प्रयोग से भारत में भी औद्योगिक दुर्घटनाओं की संख्या में सामान्यतः वृद्धि हो गई है। श्रम कानूनों में कई सुरक्षा साधनों से सम्बन्धित उपबन्ध बनाये गये हैं, जिनको औद्योगिक संस्थानों व खानों आदि में लागू करना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ, मशीनों के चारों ओर रोक लगाना, 'पहले अपनी सुरक्षा' वाले इश्तहार, आग बुझाने के साधन इत्यादि, परन्तु ऐसा सब होने के पश्चात् भी दुर्घटनायें हो ही जाती हैं, जिनका कारण कुछ तो खतरनाक मशीनों में सुरक्षा करने के पर्याप्त साधनों का अभाव होता है और कुछ श्रमिकों की लापरवाही के कारण होती हैं। गलत विचार या निर्णय के कारण या आवश्यक सावधानी न रखने के कारण या खतरे से अनभिज्ञ होने के कारण अथवा अधिक कार्य करने के कारण भी दुर्घटनायें हो जाती हैं। दुर्घटनाओं की सम्भावना सदैव रहती है क्योंकि मशीनें बहुत विशाल और विकट प्रकार की हो गई हैं और उत्पादन की गति अति तीव्र हो गई है। कुछ व्यक्तियों की 'दुर्घटना प्रवृत्ति' (Accident prone) हो जाती है और

अनावश्यक दुर्घटना टल जाती है। दुर्घटनायें जिनके कारण होती हैं मृत्यु अथवा स्थायी या अस्थायी असमर्थता और जिनके कारण अर्जित साधनों व मानव क्षमता का नाश और उसके पश्चात् श्रमिकों तथा उनके आश्रितों को मिलने वाला कष्ट। इस प्रकार श्रमिकों के लिये औद्योगिक दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था प्रत्येक देश के श्रम-विधान का आवश्यक अंग हो गया है तथा अनेक देशों में यह सामाजिक बीमा योजनाओं के अन्तर्गत सम्मिलित कर दी गई है।

क्षतिपूर्ति प्रदान करने का अनुमोदन आर्थिक तथा मानवीय दोनों ही दृष्टियों से किया जा सकता है। क्षतिपूर्ति प्रदान करना और मानव जीवन के मूल्य को स्वीकार करना है, इसके कारण श्रमिकों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है जिससे उनकी क्षमता में वृद्धि होती है तथा औद्योगिक कार्यों का अनुपस्थिति कम हो जाता है। क्षतिपूर्ति के उत्तरदायित्व के कारण मालिक दुर्घटनाओं को रोकने के लिये उचित सुरक्षा के साधन प्रदान करने का भी ध्यान रखते हैं तथा इस कारण ही वे श्रमिकों को उचित चिकित्सा सुविधायें प्रदान करने के लिये प्रेरित होते हैं। यह भी स्वीकार किया गया है कि चाहे व्यवसाय छोटा हो अथवा बड़ा, चाहे कार्य को खतरनाक समझा जाता हो अथवा कम खतरपूर्ण, चाहे कार्य औद्योगिक, वाणिज्य सम्बन्धी या कृषि का हो, चाहे श्रमिक का वेतन कम हो या अधिक, चाहे उसका कार्य शारीरिक हो या न हो और चाहे वह औद्योगिक दुर्घटना का शिकार हुआ हो अथवा व्यवसायजनित बीमारी का, सब अवस्थाओं में मजदूरों की क्षतिपूर्ति का अधिकार वैसा ही रहता है।

क्षतिपूर्ति के लिये कुछ प्रारम्भिक व्यवस्थायें (Some Earlier Measures)

यद्यपि मजदूरों द्वारा क्षतिपूर्ति की माँग १८८४–१८८५ तथा १८९० में की गई थी परन्तु १९२३ में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित होने से पूर्व किसी घायल श्रमिक के लिये जिसे कार्य करते समय चोट लगी हो, यह सम्भव नहीं था कि वह कोई हर्जाना या क्षतिपूर्ति पा सके। परन्तु कुछ अवसरों पर, साधारण कानून के अन्तर्गत मालिकों पर उनकी असावधानी के कारण क्षतिपूर्ति देने का दायित्व था अर्थात् एक मृतक श्रमिक के आश्रित कुछ स्थितियों में १८५५ के भारतीय घातक दुर्घटना अधिनियम (Indian Fatal Accidents) के अन्तर्गत मुआवजे का दावा कर सकते थे। परन्तु यह मुआवजा तब ही मिल सकता था जब यह प्रमाण मिल जाता था कि किसी व्यक्ति के गलत कार्य असावधानी या भूल के कारण ही दुर्घटना में मृत्यु हुई है। परन्तु इस अधिनियम में क्षतिपूर्ति पाने की कार्य-प्रणाली इतनी कष्टप्रद थी कि यह क्षति दिलाने में अधिक सहायक सिद्ध न हो सकी। किन्तु १८९८ में कानून ने अधिनियम में एक धारा और जोड़ दी गई थी जिसमें फौजदारी न्यायालयों को इस बात का अधिकार दे दिया गया था कि वे चोट पहुँचाने वाले व्यक्ति पर हुए जुर्माने का कुछ हिस्सा चोट खाए हुए व्यक्ति या उसके आश्रितों को देने का आदेश दे सकते हैं।

१९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम
(Workmen's Compensation Act of 1923)

१९२१ में सरकार ने जनता का मत जानने के लिये कुछ क्षतिपूर्ति से सम्बन्धित प्रस्ताव परिचालित किये। उन प्रस्तावों को अधिकांश अनुमोदन प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप मार्च १९२३ में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित किया गया और १ जुलाई १९२४ से लागू करा दिया गया। इस अधिनियम में १९२६ और १९२९ में कुछ संशोधन हुए जिनका उद्देश्य कुछ छोटे छोटे परिवर्तन करना था और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के व्यवसाय-जनित बीमारियों के अभिसमय को मान्यता देनी थी तथा अधिनियम के कुछ दोषों को दूर करना था। रॉयल श्रम आयोग ने अधिनियम के उपबन्धों की विस्तृत रूप से जाँच के पश्चात् इनमें सुधार करने के कुछ सुझाव दिये। इन सिफारिशों के फलस्वरूप १९३३ में इस अधिनियम को पुनर्गठित व संशोधित करने वाला एक अधिनियम पारित किया गया जो जनवरी १९३४ से लागू कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा पहले अधिनियम का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया। इसके पश्चात् अधिनियम में १९३७, १९३८, १९३९, १९४२, १९४६, १९५९, १९६२ और १९७६ में संशोधन किया गया। इस अधिनियम को कुछ आदेशों द्वारा भी विस्तृत रूप से लागू किया गया था। यह आदेश १९४८ के भारतीय स्वतन्त्रता आदेश (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेशों का अनुकरण) और १९५८ के कानून का अनुकरण (Adaptation) करने के आदेश थे। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय दो और पग, युद्ध के कारण जो क्षति होती थी उसके लिये सुरक्षा देने के हेतु, उठाये गये। वे निम्नलिखित थे—१९४१ का युद्ध क्षति अध्यादेश और १९४३ का युद्ध क्षति (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम। इन दोनों के अन्तर्गत लड़ाई के कारण घायल कर्मचारियों को चिकित्सा सुविधायें तथा अन्य सहायता और क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती थी। यह क्षतिपूर्ति भी उसी सीमा तक मिलती थी, जो श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत मिलती है। चीनी आक्रमण के पश्चात् लड़ाई या संकटकाल कार्य के कारण क्षति होने से क्षतिपूर्ति देने के लिये १९६२ में व्यक्तिगत क्षति (संकटकाल व्यवस्था) अधिनियम [Personal Injuries (Emergency Provisions) Act] और १९६३ में व्यक्तिगत क्षति (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम [Personal Injuries (Compensation Insurance) Act] पारित किये गये। इनका उल्लेख श्रम विभाग के अध्याय में किया गया है। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में सबसे महत्वपूर्ण संशोधन सन् १९४६ और १९५९ के थे। १९४६ के संशोधन के अनुसार ३०० रुपये मजदूरी प्राप्त करने वाले श्रमिक के स्थान पर ४०० रुपये तक प्राप्त करने वाले श्रमिक भी अधिनियम के अन्तर्गत आ गए थे। १९६२ के संशोधन के अन्तर्गत यह सीमा ५०० रुपये और १९७६ के संशोधन द्वारा १००० रुपये कर दी गई थी। १९५९ के संशोधन अधिनियम के अनुसार, क्षतिपूर्ति देने हेतु वयस्क और अल्पवयस्क का अन्तर दूर कर दिया गया

और अन्य धाराओं में परिवर्तन किया गया। १९६२ में किये गये संशोधन द्वारा व्यवसाय जनित बीमारियों की धारा को स्पष्ट कर दिया गया। १९६६ के संशोधन द्वारा क्षतिपूर्ति की सीमा में फिर परिवर्तन किया गया। अधिनियम के जैसा इस समय लागू है उपबन्ध निम्नलिखित हैं —

क्षेत्र (Scope)

यह अधिनियम रेल, कारखाना, खाना, बागान, यन्त्र से चलने वाली गाड़िया, निर्माण कार्यों तथा अनेक अन्य खतरपूर्ण धन्धों में काम करने वाले सारे श्रमिकों पर लागू होता है। जो लोग क्लर्की अथवा प्रशासन कार्य करते हैं या सशस्त्र सेना में या नैमित्तिक (Casual) कार्य पर या जो उन कार्य पर लगाये जाते हैं जो मालिकों के व्यवसाय में भिन्न हैं अथवा जिनकी आय १००० रुपये से अधिक है अथवा जो श्रमिक १९४८ के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं वे इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते। नाविक (Seamen) और समुद्र पर काम करने वाले कुछ अन्य श्रमिक जो किसी शक्ति द्वारा चलने वाले जहाज पर काम करते हैं या ५० या उससे अधिक टन वाले किसी जहाज पर नौकर हैं वे भी इस अधिनियम के अन्तर्गत आ जाते हैं। साधारणतः अधिनियम उन समस्त श्रमिकों पर लागू होता है जो संगठित उद्योगों तथा खतरनाक रोजगारों में काम पर लगे हुए हैं। राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे अधिनियम का विस्तार कर इस प्रकार के अन्य व्यक्तियों पर भी लागू कर दें जिनके व्यवसाय खतरनाक समझे जाते हों। तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक तथा बिहार की सरकारों ने अधिनियम के क्षेत्र को उन लोगों तक विस्तृत कर दिया है जो किसी भी यन्त्र से चलने वाली गाड़ी में माल उतारने अथवा चढ़ाने का कार्य करते हैं अथवा ऐसी ही गाड़ियों में माल को लाने ले जाने या स्थान स्थान के कार्य में लगे हुए हैं। बिहार सरकार ने उन भंगियों के लिये भी यह अधिनियम लागू कर दिया है जो जमीन के अन्दर गहरी खुदी नालियों को सफाई का कार्य करते हैं या जल-मल निकास की नालियों में अथवा ट्रकों पर कार्य करते हैं। तमिलनाडु सरकार ने अधिनियम का विस्तार कर नारियल चुनने वालों पर शहतीर के यातायात में लगे हुए श्रमिकों पर माल लादने उतारने वालों पर तथा शक्ति का प्रयोग करने वाली उन संस्थाओं पर जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आ जाती हैं यह अधिनियम लागू कर दिया है। कर्नाटक सरकार ने किसी भी जिला बोर्ड अथवा नगरपालिका के कुएं में कार्य करने वाले कर्मचारियों पर भी यह अधिनियम लागू किया है। महाराष्ट्र व पंजाब सरकार ने इस अधिनियम को सेना के उन श्रमिकों तक विस्तृत कर दिया है जो ट्रैक्टर चलाने अथवा अन्य किसी यान्त्रिक साधन के लिये नौकर हैं। इस प्रकार उन सभी विभिन्न प्रकार के कार्यों की एक सूची है जिनमें काम करने वाले श्रमिकों पर यह अधिनियम लागू होता है। ये कार्य निम्नलिखित हैं— इमारतों के निर्माण कार्य, उनकी मरम्मत अथवा ढाने में सड़कें, पुल, बाँध सुरंग,

तार टेलीफोन या बिजली के खम्भे नहर पाइप बिछाना जल मल निकास के नाल रस्सी के पुल आग बुझाने व ल पेटाल विस्फोटक काय बिजली या गस का काय प्रकाश स्तम्भ सिनेमा दिखाना जगली जानवरा को पालना गाताखोर इत्यादि इत्यादि। १६४८ के सशोधन द्वारा इस प्रकार के रोजगारों की सूची और विस्तृत कर दी गई। यदि कोई व्यक्ति १६४८ के कमचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तगत आता है और वह कमचारी राज्य बीमा निगम से असमथता और प्रसूता लाभ पाने का अधिकारी है तब उस मालिकों से इस अधिनियम के अन्तगत क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार नही है। जम्मू व कश्मीर राज्य के अतिरिक्त यह अधिनियम समस्त भारत में लागू होता है। सितम्बर १६७१ से यह इस राज्य में भी लागू कर दिया गया है।

क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार (Title to Compensation)

क्षतिपूर्ति मालिकों द्वारा दी जाती है और ठेके के श्रमिकों के लिये भी क्षतिपूर्ति देने का उत्तरदायित्व मुख्य मालिक पर है। यह क्षतिपूर्ति उस समय दी जाती है जब श्रमिक को अपने रोजगार के कारण या काय करते समय किसी दुघटना से क्षति पहुचती है। क्षतिपूर्ति उस समय नहीं दी जाती जब कोई श्रमिक तीन दिन से अधिक अशक्त नहीं रहता या क्षति (मृत्यु न होने पर) स्वय मजदूर की गलती से होती है उदाहरणत जब श्रमिक किसी नशीली चीज या शराब के प्रभाव में हो या उसने किसी आज्ञा का जान बूझकर उल्लघन किया हो आदि। मृत्यु के अवसर पर मालिकों को प्रत्येक परिस्थिति में क्षतिपूर्ति देनी होती है। यदि क्षति २८ या इससे अधिक दिन जारी रहती है तो ३ दिन की प्रतीक्षा अवधि भी उसमें सम्मिलित कर ली जाती है।

व्यवसायजनित बीमारियां (Occupational Diseases)

शारीरिक क्षतियों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट व्यवसायजनित रोग हो जाने पर भी क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती है। ऐसे रोगों का उल्लेख अधिनियम की तीसरी सूची में किया गया है उदाहरणत सीसा धुआ फासफोरस पारे के विष प्रयोग से व बन्द हवा आदि से होने वाली बीमारियां आदि आदि। राज्य की सरकारों को बीमारियों को सूची में और नाम बढाने का अधिकार है और कुछ राज्यों की सरकारों ने ऐसा किया भी है। १६५६ के सशोधन अधिनियम के अनुसार उस सूची को जिसमें ऐसी बीमारियों और क्षतियां का उल्लेख है जिनके लिये क्षतिपूर्ति दी जाती है अधिक विस्तृत तथा व्यापक कर दिया गया है और ऐसी क्षतियां की सख्या, जिनके कारण स्थायी आशिक असमथता हो जाती है १४ से बढकर ५४ कर दी गई है। १६६२ के सशोधन ने ऐसी बीमारियों के लगने की धारा को और अधिक स्पष्ट कर दिया है।

क्षतिपूर्ति की राशि (Amount of Compensation)

क्षतिपूर्ति में दी जाने वाली धनराशि चोट के प्रकार तथा श्रमिक की

औसत मासिक मजदूरी पर निर्भर है। इस उद्देश्य से क्षतियों को तीन भागों में बाँटा गया है— (१) ऐसी क्षति जिसके कारण मृत्यु हो जाती है, (२) ऐसी क्षति जिससे स्थायी, पूर्ण या आंशिक असमर्थता हो जाती है, (३) ऐसी क्षति जिससे अस्थायी असमर्थता हो जाती है। वयस्क और अल्पवयस्कों के लिये क्षतिपूर्ति की दरें पहले भिन्न थी परन्तु अब वयस्क और अल्पवयस्क का अन्तर १९५९ के संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया है। मृत्यु हो जाने पर संशोधित अधिनियम में दी हुई क्षतिपूर्ति की दरें निम्नतम वेतन वर्ग (अर्थात ६० रुपये प्रतिमाह से कम) के व्यक्तियों पर ७,२०० रुपये से लेकर उच्चतम वेतन वर्ग (अर्थात् ९०० रुपये प्रति माह से अधिक परन्तु १०००० रु० से अधिक नहीं) वाले व्यक्तियों पर ३०,००० रुपये तक है। स्थायी पूर्ण असमर्थता के समय इसी प्रकार क्षतिपूर्ति की दरें वेतन के अनुसार १०,०८० रुपये से ४२,००० रुपये तक है। अस्थायी असमर्थता होने पर अधिनियम के अनुसार श्रमिकों को प्रत्येक आधे महीने के बाद क्षति की राशि दी जायगी और इस राशि की दर इस प्रकार होगी—मासिक वेतन की आधी राशि से (उन श्रमिकों के लिये जिनकी मजदूरी ६० रुपये मासिक से कम है) १७५ रुपये तक (उन श्रमिकों के लिये जिनकी मजदूरी ९०० रुपये मासिक है परन्तु १००० रु० से अधिक नहीं है। असमर्थता में प्रथम तीन दिनों के लिए कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती, उसके पश्चात् १६वें दिन से आधे माह के वेतन के हिसाब से क्षतिपूर्ति का दिया जाना प्रारम्भ हो जाता है जो असमर्थता काल में चलता रहता है। यह क्षतिपूर्ति अधिक से अधिक पाँच वर्ष तक दी जा सकती है। १९५९ के संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिये जो सात दिन के प्रतीक्षा काल की व्यवस्था थी उसे घटाकर ३ दिन कर दिया गया है। यदि असमर्थता का समय २८ दिन या इससे अधिक है तब असमर्थ होने के दिन से ही क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था की गई है। स्थायी आंशिक असमर्थता के समय क्षति-पूर्ति का हिसाब धनोपार्जन-शक्ति में क्षति पहुँचने के प्रतिशत के हिसाब से लगाया जाता है और इसका उल्लेख अधिनियम की प्रथम अनुसूची में दिया गया है।

आश्रित (Dependants)

यदि श्रमिक की मृत्यु हो जाती है, उस समय जो आश्रित क्षतिपूर्ति के अधिकारी हैं, अधिनियम में उनकी भी एक सूची दी गई है। उनको दो भागों में बाटा गया है—प्रथम वे जो बिना प्रमाण के ही आश्रित समझे जाते हैं तथा दूसरे वे जिन्हें यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वे मृत व्यक्ति के आश्रित थे। प्रथम श्रेणी में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—विधवा, अल्पवयस्क वैध पुत्र, वैध अविवाहित पुत्री तथा विधवा माँ। दूसरे वर्ग में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं यदि वे श्रमिक की मृत्यु के समय श्रमिक की आय पर निर्भर थे—विधुर पिता, विधवा माँ के अतिरिक्त माता या पिता, अल्पवयस्क अवैध पुत्र, अविवाहित अवैध पुत्री, विवाहित या विधवा अल्पवयस्क पुत्री, अल्पवयस्क भाई, अविवाहित या विधवा बहिन, विधवा पुत्रवधू, मृत

पुत्री अथवा मृत पुत्र का अन्य स्तक बच्चा जबकि उसके माता-पिता मे से कोई जीवित न हो, और यदि श्रमिक के माता पिता जीवित नही है तो दादा और दादी

क्षतिपूर्ति का वितरण (Distribution of Compensation)

इस बात की भी व्यवस्था है कि समस्त घातक दुर्घटनाओ की सूचना एक 'श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नर' को दी जायगी और यदि मालिक अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करता है तब उस कमिश्नर के पास क्षतिपूर्ति की राशि जमा करनी होगी। परन्तु जब मालिक अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार नही करता तो कमिश्नर जाँच करने के पश्चात आश्रितो को सूचित कर सकता है कि वे यदि दावा करना चाहे तो कर सकते है तथा इस विषय मे वह अन्य प्रकार की सूचना दे सकता है। अधिनियम मे इस बात की आज्ञा नही है कि क्षतिपूर्ति के लिये मालिक और मजदूर आपस मे समझौता कर लें। मालिको द्वारा क्षतिपूर्ति मे से केवल १०० रुपये तक अग्रिम राशि दी जा सकती है। कमिश्नर को यह भी अधिकार है कि वह क्षतिपूर्ति की राशि मे से ५० रुपय तक अन्त्येष्टि क्रिया पर व्यय करने वाले व्यक्ति को देने के लिए काट ले। १९५९ के सशोधित अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था हो गई है कि समय पर क्षतिपूर्ति न देने पर दण्ड दिया जायगा। इस बात का सुझाव दिया गया है कि क्षतिपूर्ति की राशि कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा वितरित की जाय तथा राशि का भुगतान समय समय पर किया जाय।

अधिनियम का प्रशासन (Administration of the Act)

अधिनियम का प्रशासन राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है जिन्होने अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नरो की नियुक्ति की है। विवादास्पद दावा का तय करना, किसी क्षति से मृत्यु होने पर क्षतिपूर्ति दिलवाना तथा सामयिक भुगतानो की जाँच करना आदि कमिश्नर के कर्तव्य है। अधिनियम के अनुसार सम्बन्धित प्राधिकारियो को मालिक एक रिपोर्ट देने के लिये बाध्य है जिसमे दुर्घटनाओं की सख्या क्षतिपूर्ति मे दी हुई राशि आदि का उल्लेख हो। सन् १९७५ मे, उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार दुर्घटनाओ की सख्या इस प्रकार थी जिनसे मृत्यु हुई ७८६, जिनसे स्थायी असमर्थता हुई ७,५४६, जिनसे अस्थायी असमर्थता हुई २७,५७६ कुल योग ३०,९११। उसी वर्ष मृत्यु पर क्षतिपूर्ति मे दी गई राशि ५० ६६ लाख रुपये थी और स्थायी असमर्थता के लिये दी गई राशि २८ १२ लाख रुपय तथा अस्थायी असमर्थता के लिये दी गई राशि ३५ ४९ लाख रुपय थी। क्षतिपूर्ति के लिए दी गई राशि का कुल योग १२३ ३० लाख रुपय था।

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम मे फिर कुछ सशोधन करने का सुझाव दिया गया है। इस सशोधन के अनुसार (१) श्रमिको को क्षतिपूर्ति आयु के आधार पर भी दी जायेगी, (२) ऐसी क्षतिपूर्ति की राशि मे जिसका भुगतान न हो सका हो एक कल्याण निधि बनाई जायेगी और जिसे अधिनियम के अनुसार कमिश्नरो के पास जमा

किया जायगा (३) श्रमिकों को काम की अवधि में क्षति पहुँचने पर उन्हें बाजार पर लगान की दर से धन दी जायगी (४) मालिकों अथवा ठेकेदारों की स्थिति में दावे दायर करने के लिए अवधि की सीमा को समाप्त कर दिया जायगा, (५) उन श्रमिकों को इतनी क्षतिपूर्ति अदा की जायगी जिनकी इससे स्थायी असमर्थता के कारण स्थापना हो गई हो और (६) अधिनियम के क्षेत्र को विस्तृत किया जायगा, विशेष रूप से गृह के श्रमिकों के सम्बन्ध में।

भारत में क्षतिपूर्ति अधिनियम का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(A critical Estimate of the Compensation Act in India)

इस बात को स्वीकार करते हुए कहा जा सकता है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है और इसके लागू करने में कोई कठिनाई भी नहीं हुई है क्योंकि यह अधिनियम सरल एवं स्पष्ट है और इसको लागू करने के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया है। अधिकतर मालिकों ने इसके उपबन्धों को लागू करने के लिए अपनी सहमति दिखाई है। इसके अतिरिक्त, अनेक कल्याण संस्थाओं ने कुछ श्रम संघों तथा समाज सेवकों ने भी अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति दिलाने में श्रमिकों की सहायता की है। उदाहरणार्थ के अहमदाबाद की कपड़ा मिल मजदूर परिषद बम्बई की ... ... एजेन्सियाँ और बम्बई राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ आदि ने अधिनियम के प्रचार तथा निर्धन श्रमिकों को क्षतिपूर्ति दिलाने में अच्छा कार्य किया है। कई बार वकीलों ने भी बिना फीस लिए क्षतिपूर्ति के मुकदमे लड़े हैं। श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नर का कार्यालय भी क्षतिपूर्ति के लिए प्रार्थना पत्र लिखने में श्रमिकों की सहायता करता है। आन्ध्र प्रदेश में सरकार ने मुकदमे लड़ने के लिए कई बार श्रमिकों को वित्तीय सहायता भी दी है। सन् १९५८-५९ में सरकार ने इस कार्य के लिए १००० रुपये दिए थे। प्रारम्भ में अधिनियम में जो दोष थे वे अब संशोधनों द्वारा दूर हो चुके हैं। उदाहरणार्थ, १९३४ में यह व्यवस्था की गई थी कि यदि चोट घातक है तो स्वयं श्रमिक का दोष होने पर भी मालिकों को क्षतिपूर्ति देनी ही पड़ेगी। १९३८ में उद्योगजनित बीमारियों का क्षेत्र स्पष्ट कर दिया गया तथा शीघ्र एवं धीरे-धीरे लगने वाली व्यवसायजनित बीमारियों के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया और साथ ही उद्योगजनित बीमारी होने पर क्षतिपूर्ति के लिए जो ६ माह की नौकरी की शर्त थी, उसको अब केवल धीरे-धीरे लगने वाली बीमारियों के लिए ही रखा गया है। क्षतिपूर्ति के दावे किये जाने का समय ६ माह से बढ़ाकर १ साल कर दिया गया है। मासिक वेतन की परिभाषा को अब स्पष्ट कर दिया गया है जिसके अन्तर्गत अब सम्पूर्ण माह की मजदूरी ली जाती है, चाहे उस मजदूरी के भुगतान की अवधि कोई भी क्यों न हो। १९४६ और १९५६ के संशोधनों से भी इस अधिनियम में उन्नति हुई है। १९३८ में मालिकों के दायित्व का अधिनियम (Employers Liability Act) भी पारित किया गया था। इसके अन्तर्गत इस

सुधार के लिये सुझाव (Suggestion, for Impro ement)

इन सब दोषों को दूर किया जाना चाहिये। अधिनियम की मुख्य धाराओं का भारतीय भाषाओं में प्रत्येक कारखाने के किसी मुख्य स्थान पर प्रदर्शन करना चाहिए, तथा जैसे ही श्रमिक नौकरी पर आता है उसकी अपनी भाषा में अधिनियम के सारांश की एक प्रति देना लाभदायक होगा। श्रम कल्याण अधिकारियों एवं श्रमिक संघों को सभाओं और व्याख्यानों द्वारा इस सम्बन्ध में श्रमिकों को शिक्षित करना चाहिये। यह भी आवश्यक है कि राज्य द्वारा दुर्घटनाग्रस्त श्रमिक को नि:शुल्क कानूनी सहायता प्रदान की जाय तथा उसको नि:शुल्क चिकित्सा सहायता भी दी जाये। क्षतिपूर्ति स्वतः प्रदान हो जानी चाहिये तथा सभी प्रकार की—घातक या अन्य दुर्घटनाओं की सूचना तत्काल ही श्रम कमिश्नर को दी जानी चाहिये और इसके बाद शीघ्र ही एक रिपोर्ट दी जानी चाहिए जिसमें बताया हुआ दुर्घटना के लिये दी गई क्षतिपूर्ति को नोट किया जाना चाहिये और जहाँ क्षतिपूर्ति देना अस्वीकार कर दिया जाता है उसके सम्बन्ध में [illegible] कारणों की स्पष्टोक्ति भी की जानी चाहिये। नियोक्ताओं को उन श्रमिकों के मामले अपने हाथ में लेने का अधिकार होना चाहिये जिनको कि मालिकों द्वारा उनकी क्षतिपूर्ति नहीं दी गई है। प्रशासनात्मक व्यवस्था सरल होनी चाहिये तथा क्षतिपूर्ति के मामलों का शीघ्र निपटारा किया जाना चाहिये। इस बात की भी आवश्यकता है कि क्षतिपूर्ति श्रमिक के जीवन निर्वाह व्यय व उसके परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार दी जाये। अधिनियम के अन्तर्गत 'आश्रित' (dependant) शब्द की जो परिभाषा की गई है उसको भी व्यापक बनाया जाना चाहिये तथा लिपिक वर्ग तथा पर्यवेक्षण वर्ग के कर्मचारियों को भी क्षतिपूर्ति का अधिकारी माना जाना चाहिये। फिर एक बात यह है कि क्षतिपूर्ति भी आयु के आधार पर होनी चाहिये क्योंकि यह सिद्धान्त भी न्यायोचित नहीं कि यदि एक २० वर्ष की आयु का व्यक्ति अपंग हो जाता है तो उसको भी वही क्षतिपूर्ति मिलती है जो कि ५० वर्ष के एक वृद्ध व्यक्ति को प्राप्त होती है।

इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग[2] का सुझाव था कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम १९२३ के अन्तर्गत आने वाले व्यवसायों का में काम करने वाले पर्यवेक्षकों सहित सभी श्रमिकों को क्षतिपूर्ति मिलने की व्यवस्था होनी चाहिये और मजदूरी की सीमा उसमें बाधक नहीं होनी चाहिये। आयोग ने श्रमिकों की क्षतिपूर्ति के लिए एक केन्द्रीय निधि की योजना का भी सुझाव दिया। इस अधिनियम के अधीन आने वाले सभी मालिकों को कुल मजदूरी का एक निश्चित प्रतिशत मासिक अंशदान के रूप में इस निधि को देना चाहिये ताकि उससे साथ प्रशासन व्यय की लागत की पूर्ति की जा सके। इस निधि का नियन्त्रण कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा किया जाना चाहिये और दुर्घटनाग्रस्त श्रमिकों तथा उनके आश्रितों

2 Report of the National Commisson on Labour Pages 165 166

मजदूरी-बिल के प्रत्येक १०० रुपये पर २५ पैसे हैं। इस सम्बन्ध में जीवन बीमा निगम को केन्द्र सरकार का एजेन्ट नियुक्त किया गया। राज्य सरकारों को इस अधिनियम का लागू करने वाली मशीनरी की व्यवस्था करनी थी और इस काय के लिये अतिरिक्त स्टाफ का व्यय भी किया जा सकता था। यह क्षतिपूर्ति कोष (क्षतिपूर्ति सीमा) निधि में से पूरा किया जायगा। १० जनवरी १९६८ से, जबकि आपातकाल समाप्त हो गया, इस अधिनियम का क्रियान्वयन भी रुक गया।

भारत में मातृत्व कालीन लाभ
(Maternity Benefits in India)

मातृत्व-कालीन लाभ का महत्व

(Importance of Maternity Benefits)

भारत में गर्भवती स्त्रियों को मातृत्व-कालीन लाभ और विश्राम प्रदान करने के महत्व की ओर प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने भारतीय जनता का ध्यान उस समय आकर्षित किया जब उसने १९१९ में एक बाल-जन्म अभिसमय पारित किया। भारतीय सरकार इस अभिसमय को कुछ कठिनाइयों की वजह से नहीं अपना सकी। ये कठिनाइयाँ यह थीं : स्त्री श्रमिकों की प्रवासिता, गर्भवती होने से पूर्व घर लौट जाने का रिवाज तथा बीमारी का प्रमाणपत्र बनाने के लिये महिला डाक्टरों का अभाव आदि। इस विषय पर श्री एन० एम० जोशी ने कुछ प्रयत्न किए थे। १९२४ में विधान परिषद् के समक्ष उन्होंने एक विधेयक रखा। परन्तु उसमें वे सफल नहीं हो सके क्योंकि सरकार इस बात से सहमत नहीं थी कि इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता थी। परन्तु हमारे देश में महिला श्रमिकों के लिए मातृत्व कालीन लाभों की सदैव बहुत आवश्यकता रही है। भारत में लगभग सभी स्त्री श्रमिक विवाहित हैं और निर्धनता, अज्ञानता तथा चिकित्सा सुविधाओं के अभाव के कारण यहाँ माताओं की मृत्यु संख्या अत्यधिक है। समाजसेवकों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में प्रत्येक १,००० बच्चों के जन्म होने पर औसतन २५ माताओं की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार यह देखते हुए कि भारत में औसतन ६० लाख बच्चे प्रति वर्ष पैदा होते हैं, यह कहा जा सकता है कि लगभग १,५०,००० माताओं की मृत्यु प्रतिवर्ष हो जाती है जिनमें से अधिकांश सूतिका होती है। निर्धनता के कारण अधिकतर माताओं को कोई न कोई नौकरी करनी पड़ती है और उनके साथ ही उन्हें अपने घरेलू काम-काज को भी देखना होता है। परिणामस्वरूप उन्हें अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का कोई अवसर नहीं मिल पाता। ऐसी परिस्थितियों में पैदा होने वाले शिशु के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है और बच्चे दुर्बल पैदा होते हैं, क्योंकि माताओं को गर्भावस्था और बच्चे के जन्म के पश्चात् पर्याप्त विश्राम और भोजन नहीं मिल पाता। यदि गर्भवती माताओं की ठीक प्रकार से देखभाल नहीं की जाती है तो देश की भावी सन्तति के स्वास्थ्य-विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः हमारे

देश में मातृत्व-कालीन लाभ की बहुत आवश्यकता है।

इतना होते हुये भी भारत सरकार ने मातृत्व-कालीन लाभ की महत्ता को काफी समय तक पूर्णतया नहीं समझा। किन्तु अनेक राज्य सरकारों ने समय समय पर इस विषय पर विधेयक पारित किये हैं और इस प्रकार के लाभों की महत्ता धीरे-धीरे स्वीकार की जा रही है।

विभिन्न राज्यों में मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम (Maternity Benefit Acts)

१९२९ में बम्बई सरकार ने प्रथम मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पारित किया और अगले वर्ष उसका अनुसरण करते हुये मध्यप्रान्त (अब मध्यप्रदेश) ने भी एक अधिनियम पारित किया। शाही श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप अनेक राज्यों में मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पारित किये गये। स्वतन्त्रता के पश्चात् तथा राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् इन सभी अधिनियमों में संशोधन हुए। कुछ को निरस्त (Repeal) कर दिया गया और कुछ राज्यों में नये अधिनियम पारित किये गये। विभिन्न राज्यों में जो महत्त्वपूर्ण मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम बनाये गये, वे इस प्रकार थे— असम (१९४४), बिहार (१९४७–१९५९ में संशोधित), बम्बई (१९२९–दिल्ली तक विस्तृत), हैदराबाद (१९४२–१९५० में संशोधित), केरल (१९५७), मध्य प्रदेश (१९५८), मद्रास (१९३४–१९५८ में संशोधित—आन्ध्र पर भी लागू), मैसूर (१९५९), उड़ीसा (१९५३–१९५७ में संशोधित), पंजाब (१९४३–१९५८ में संशोधित), राजस्थान (१९५३–१९५९ में संशोधित), उत्तर प्रदेश (१९३८), बंगाल (१९३९) और पश्चिमी बंगाल चाय क्षेत्र (१९४८–१९५९ में संशोधित)। इसके अतिरिक्त, तीन केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत भी मातृत्व-कालीन लाभ मिलता है। केन्द्रीय अधिनियम ये है—१९४१ का खान मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम, १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम और १९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम। इन सभी अधिनियमों के उपबन्धों में काफी भिन्नता पाई जाती है और इनके क्षेत्र, लाभ प्राप्त करने के लिये पात्रता अवधि, लाभ राशि की दर और अवधि आदि भिन्न-भिन्न है। अगस्त १९५५ में केन्द्रीय सरकार ने मातृत्व-कालीन लाभों में समानता लाने के लिये और न्यूनतम स्तर निर्धारित करने के लिए कुछ आदर्श नियम बनाकर राज्य सरकारों में परिचालित किये। उसके पश्चात् कुछ राज्य सरकारों ने अपने अधिनियमों में इन नियमों के आधार पर संशोधन किये। १९६१ में केन्द्रीय सरकार ने मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पारित किया। यह प्रचलित कानूनों में प्रगतिशील व्यवस्थायें लागू करके स्तरों को ऊँचा उठाने का प्रयास करता है।

केन्द्रीय सरकार का १९६१ मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम (Maternity Benefit Act, 1961 of the Central Government)

सन् १९६१ के केन्द्रीय मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम को १२ दिसम्बर

१९६१ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। १ नवम्बर १९६३ से इस अधिनियम को खानों पर लागू किया गया और १६ दिसम्बर १९६३ से बागानों पर। लगभग सभी राज्य सरकारों ने भी अब इसको अपना लिया है और अपने राज्य अधिनियम निरस्त कर दिये गये हैं केवल उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू व कश्मीर, नागालैण्ड, दिल्ली तथा त्रिपुरा में अलग अधिनियम हैं परन्तु वे १९६१ के केन्द्रीय अधिनियम के ही समान हैं। यह उल्लेखनीय है कि जिन क्षेत्रों में कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू है वहाँ मालिकों को मातृत्व कालीन लाभ अधिनियमों के अन्तर्गत उत्पन्न दायित्वों से मुक्त कर दिया गया है। मातृत्व-कालीन लाभ (संशोधन) अधिनियम, १९७२ द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि इन क्षेत्रों में भी मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियमों के अन्तर्गत महिला श्रमिकों को मातृत्व कालीन लाभ उस समय तक प्राप्त होंगे जब तक कि वे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत वैसे ही लाभ प्राप्त करने के योग्य न हो जायें। सन् १९७६ में मातृत्व कालीन लाभ अधिनियम १९६१ में पुनः संशोधन किया गया। इस संशोधन द्वारा अधिनियम में उल्लिखित मातृत्व-कालीन लाभों का भुगतान उन संस्थाओं की महिला श्रमिकों को भी करने की व्यवस्था की गई जो १९४८ के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत आती थीं और उस अधिनियम में उल्लिखित धन राशि से अधिक मजदूरी पाती थीं। केन्द्रीय अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्न प्रकार हैं—

यह अधिनियम सभी खानों, बागानों तथा कारखानों पर लागू होता है परन्तु जो संस्थान कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत आते हैं उन पर यह अधिनियम लागू नहीं होता। इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं—(१) महिला को, यदि वह प्रसव की अनुमानित तिथि से पूर्व के १२ महीनों में १६० दिवस की नौकरी कर लेती है, मातृत्व-कालीन लाभ देने की व्यवस्था है। इस अवधि में यदि कोई जबरी छुट्टी (Lay off) हो, वह सम्मिलित कर ली जाती है। १६० दिनों की यह पात्रता अवधि उन स्त्रियों पर लागू नहीं होगी जो असम में आने से पूर्व ही गर्भवती हों। (२) मातृत्व-कालीन लाभ काल १२ सप्ताह निर्धारित किया गया है, अर्थात् ६ सप्ताह प्रसव से पूर्व और ६ सप्ताह प्रसव के पश्चात्। (३) लाभ राशि की दर औसतन दैनिक मजदूरी, (अर्थात् महिला श्रमिक की वह औसतन मजदूरी जो उसको प्रसव के कारण अनुपस्थिति से पूर्व ३ कलेण्डर महीनों में मिलती है) या १ रुपया प्रतिदिन जो भी अधिक हो, निर्धारित की गई है। (४) मालिक द्वारा प्रसव से पहले या प्रसव के बाद यदि किसी दाई आदि का प्रबन्ध निःशुल्क नहीं किया जाता है तो २५ रुपये चिकित्सा बोनस देने की व्यवस्था है। (५) गर्भपात होने पर ६ सप्ताह की छुट्टी, जो मातृत्व-कालीन लाभ की दर के अनुसार मजदूरी सहित होगी, दिये जाने की व्यवस्था है। (६) गर्भ के कारण या प्रसव के कारण यदि स्त्री श्रमिक बीमार हो जाती है तो उसे ६ सप्ताह की अतिरिक्त छुट्टी उसी दर पर दी जायेगी। (७) जब तक बच्चे की आयु १५ माह नहीं हो

जाती, माता को दूध पिलाने के लिये दो निर्धारित समय के मध्यान्तर देने की व्यवस्था है। (८) गर्भवती स्त्रियों को मातृत्व कालीन छुट्टी में न बर्खास्त किया जा सकता है और न ही काम पर से हटाया जा सकता है। मातृत्व-कालीन छुट्टी में स्त्रियों को काम पर लगाना कानूनन अपराध है। किसी भी गर्भवती स्त्री से ऐसा काम नहीं कराया जायेगा जो कठिन और भारी हो या जिसमें उसे घण्टों खड़ा रहना पड़ता हो या ऐसा कार्य हो जिससे उसके गर्भ पर या स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता हो।

केन्द्रीय अधिनियम की तरह अन्य राज्यों में भी चिकित्सा बोनस के रूप में अतिरिक्त लाभ देने की व्यवस्था है। यह लाभ तब दिये जाते हैं जब महिला श्रमिक किसी योग्य दाई अथवा अन्य प्रशिक्षित व्यक्तियों की सेवाओं का उपयोग करती है और मालिक अपनी ओर से किसी दाई आदि का निःशुल्क प्रबन्ध नहीं करते हैं। उत्तर प्रदेश में इस प्रकार का बोनस ५ रु० है। उत्तर प्रदेश के अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई है कि जहां ५० या इससे अधिक स्त्रियां या २५ प्रतिशत स्त्री श्रमिक काम करती हैं, वहां प्रत्येक मालिक को बच्चों के लिये शिशु गृहों की व्यवस्था करनी होगी तथा स्त्री श्रमिकों के कल्याण के लिए स्वास्थ्य निरीक्षकों को नियुक्त करना होगा। वह स्त्री, जिसके एक वर्ष से कम आयु का शिशु है, किसी समय भी चाहे आधा आधा घन्टे के दो मध्यान्तर, एक दोपहर से पूर्व और एक दोपहर के बाद ले सकती है। ये मध्यान्तर उसके एक घन्टे के सामान्य मध्यान्तर के अतिरिक्त होंगे। यदि कारखाने में शिशु गृह की व्यवस्था की गई है तब ऐसे मध्यान्तर पन्द्रह पन्द्रह मिनट के होंगे। उत्तर प्रदेश के अधिनियमों में गर्भपात होने पर तीन माह की सवेतन छुट्टी की भी व्यवस्था है। गर्भकाल में बीमारी के कारण स्त्री श्रमिक को १ माह की अतिरिक्त छुट्टी भी मिल सकती है।

भुगतान के दायित्व से बचने के लिये मालिक स्त्रियों को बर्खास्त न कर दें, इसके लिये सभी अधिनियमों में उनकी सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है। प्रसवकाल की छुट्टी में किसी भी स्त्री श्रमिक को बर्खास्त नहीं किया जा सकता। प्रसवकाल की छुट्टी में स्त्रियों को काम पर लगाना कानूनन अपराध है। इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि गर्भकाल में महिला-श्रमिकों को ऐसे काम पर न लगाया जाए जिससे उनकी गर्भस्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

अधिनियमों का प्रशासन (Administration of the Acts)

सभी राज्यों में अधिनियमों के प्रशासन के लिये कारखाना निरीक्षक उत्तरदायी हैं। कोयले की खानों को छोड़कर, जिसमें कोयला खान कल्याण कमिश्नर इसके लिये उत्तरदायी हैं, अन्य खानों में इसका उत्तरदायित्व खानों के मुख्य निरीक्षक पर है। अधिनियम में मालिकों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रतिवर्ष वार्षिक विवरण प्रस्तुत करें जिसमें वर्ष भर में कितने दावे किये गये हैं, तथा कितने दावों का भुगतान हुआ है और फलस्वरूप कितनी कुल राशि प्रदान की गई है, इसका

स्त्री श्रमिकों को गर्भ के प्रथम लक्षणों पर ही बर्खास्त न कर सकें। इसके अतिरिक्त अपनी अज्ञानता के कारण या अपनी स्थायी नौकरी के छूट जाने के भय से बहुधा महिला श्रमिक मातृत्व कालीन लाभ की माँग ही नहीं करतीं। यद्यपि रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि अधिनियम का प्रशासन महिला कारखाना निरीक्षकों को सौंप देना चाहिये परन्तु अधिकतर राज्यों में अभी तक इस प्रकार की नियुक्तियाँ नहीं की गई हैं। साधारणतः स्त्रियाँ समय पर मालिकों को नोटिस देने में हिचकती हैं और उनको इसमें भी कठिनाई होती है कि वे मातृत्व कालीन लाभ के लिए नौकरी की अवधि पूरी कर पायें या प्रसव काल के चार या छः सप्ताह बाद ही अपनी नौकरी पर फिर आ जायें या लाभों को प्राप्त करने के लिए बच्चे के जन्म का प्रमाणपत्र लायें। श्रम अनुसंधान समिति ने इस प्रकार के अनेक मामलों के उदाहरण प्रस्तुत किये थे जिनमें अधिनियम का उल्लंघन किया गया था। बहुधा ऐसे मामले छोटे कारखानों के थे। जब सर्वप्रथम अधिनियम को लागू किया गया था, उस समय बहुत से मालिकों ने अपने यहाँ से स्त्री श्रमिकों को नौकरी से निकाल दिया। कई स्थानों पर तो मालिक केवल ऐसी स्त्रियों को ही अपने यहाँ नौकरी देने में प्राथमिकता देते हैं जो या तो अविवाहित लड़कियाँ होती हैं अथवा विधवायें या ऐसी स्त्रियाँ जो सन्तानोत्पत्ति की आयु को पार कर चुकी होती हैं। अनेक स्थानों पर लड़कियों को शादी होने के तुरन्त बाद ही उन्हें नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया है। कभी कभी तो लाभ देना इस आधार पर अस्वीकार कर दिया जाता है कि स्त्री श्रमिक लाभ प्राप्ति के लिए नौकरी की अवधि पूरी नहीं कर पाई है। कहीं कहीं पर मालिक स्त्री श्रमिकों के नाम रजिस्टरों में नहीं लिखते और गर्भवती स्त्रियों को बर्खास्त कर देते हैं। श्री देशपाण्डे ने अपनी एक रिपोर्ट में जो उन्होंने कोयला खान उद्योग के श्रमिकों की दशाओं की जाँच पर दी थी, खानों में अधिनियम की धाराओं का स्पष्ट उल्लंघन होने के उदाहरण दिये थे। अभ्रक खानों में भी अधिनियम का उल्लंघन होता था। कुछ खानों में स्त्री श्रमिकों की उपस्थिति का कोई उचित प्रमाण नहीं रखा जाता और जिन दावों का भुगतान भी किया जा चुका है उनका भी कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। जो केवल स्त्री श्रमिकों की हाजिरी लगाते हैं, वे अक्सर लाभ प्राप्ति के लिए नौकरी की अवधि को पूरा करने के लिए रिश्वत लेकर हाजिरी बढ़ा देते हैं। श्रम अनुसंधान समिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि जो भी लाभ दिया जाय वह स्त्रियों की वास्तविक औसत मजदूरी से कम नहीं होना चाहिये और इसका समय भी १२ सप्ताह कर देना चाहिये अर्थात् प्रसव से ६ सप्ताह पहले और ६ सप्ताह बाद तक। इस बात की सिफारिश अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अभिसमय द्वारा भी की गई है। अब यह धारा केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत लागू कर दी गई है। राष्ट्रीय श्रम आयोग का सुझाव है कि मातृत्व कालीन लाभों के लिए एक केन्द्रीय निधि की योजना उसी प्रकार बनाई जा सकती है जैसी कि असम की अन्तर्गत गठित की गई थी और उस

एक स्वास्थ्य बीमा योजना बनाई जानी चाहिये। भारत सरकार उस समय ऐसी किसी भी योजना के पक्ष मे नही थी क्योकि आर्थिक कठिनाइया थी और श्रमिको मे प्रवासिता के साथ ही साथ अशदान देने की क्षमता की भी कमी थी। फिर भी सरकार ने इस विषय पर प्रान्तीय सरकारो से लिखा पढ़ी की। परन्तु उनकी ओर से इस विषय पर कोई उत्साह नही दिखाया गया। इस समस्या पर बम्बई सूती वस्त्र श्रम जाच समिति १९३७ कानपुर व बिहार श्रम जाच समिति (१९३७ व १९३८) और १९४० १९४१ तथा १९४२ के प्रथम तीन श्रम मन्त्रियो के सम्मेलनो मे भी विचार किया गया था।

प्रो० बी० पी० अदारकर की स्वास्थ्य बीमा योजना (Prof B P Adarkar's Scheme of Health Insurance)

भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारो से काफी विचार विमर्श और पत्र व्यवहार करने के पश्चात मार्च १९४३ मे एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया (प्रो० बी० पी० अदारकर) जिसका कार्य औद्योगिक श्रमिको के लिये एक स्वास्थ्य बीमा योजना बनाना था। उन्होने अपनी रिपोर्ट अगस्त १९४४ मे भारत सरकार को दी। उन्होने निरन्तर चालू कारखानो के श्रमिको के लिये एक अनिवार्य तथा अशदान वाली स्वास्थ्य बीमा योजना की सिफारिश की जो तीन प्रकार के उद्योगो के लिये थी— अर्थात सूती वस्त्र उद्योग इन्जीनियरिंग उद्योग तथा खनिज व धातु उद्योग। इस योजना मे मालिको और मजदूरो को जो अशदान देना था उसका उल्लेख किया गया था तथा ... अशदान की भी सिफारिश की गई थी। योजना की कुल वार्षिक लागत ढाई करोड़ रु० आकी गई थी। इस बात की भी व्यवस्था थी कि ... मालिक अपने जोखिम को विस्तृत करने के लिए बीमा पालिसी ले। मजदूरो को दगने व ... चिकित्सा लाभ नकद लाभ तथा कुछ अतिरिक्त अन्य लाभ प्रदान करने का सुझाव था। मातृत्व-कालीन लाभ तथा अभिरक्षा क्षतिपूर्ति का हटाकर उनके स्थान पर एक बीमा योजना की व्यवस्था थी।

१९४५ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय के दो विशेषज्ञो (श्री ... और श्री आर० राव) द्वारा इस योजना पर पुनः विचार किया गया। यद्यपि वे प्रो० बी० पी० अदारकर के मूल सिद्धान्तो से सहमत थे फिर भी उन्होने कुछ विशिष्ट परिवर्तनो का सुझाव दिया। इन परिवर्तनो को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार ने ६ नवम्बर १९४६ को कर्मचारी राज्य बीमा विधेयक प्रस्तुत किया ... राज्य बीमा अधिनियम के नाम से अप्रैल १९४८ मे पारित किया गया। १९५१ १९६६ और १९७८ मे कुछ आपत्तियो को समाप्त करने तथा कुछ अन्य त्रुटियो को पूरा करने के लिए इसमे सशोधन हुआ। अक्टूबर १९४७ मे एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन ने भी सामाजिक सुरक्षा पर कुछ प्रस्ताव पारित किये। यह सम्मेलन ... पर विचार विमर्श के ... दिल्ली मे हुआ। इन प्रस्तावो के कारण इस अधिनियम पर विचार विमर्श करने और उसको ... पारित करने पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा।

१९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम
(The Employees' State Insurance Act, 1948)

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं—

क्षेत्र (Scope)

यह अधिनियम मौसमी कारखानों को छोड़कर प्रथम तो उन सब कारखानों पर लागू होता है जिसमें २० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं और जो शक्ति से चलते हैं परन्तु इसके साथ ही इसमें इस बात की भी व्यवस्था है कि अधिनियम को पूर्णतः या आंशिक रूप से किसी भी औद्योगिक वाणिज्य, कृषि या अन्य किसी संस्था या संस्थान पर लागू किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत वे सब कर्मचारी आ जाते हैं जिनका वेतन १,००० रुपये से अधिक नहीं है चाहे वे शारीरिक श्रम करने वाले हों अथवा क्लर्क का काम करने वाले हों और चाहे वे निरीक्षक हों अथवा तकनीकी कर्मचारी हों (प्रारम्भ में वेतन की यह सीमा ४०० रु० थी जो कि १९६३ में बढ़कर ५०० रु० तथा १९७४ में १,००० रु० हो गई)। परन्तु इसके अन्तर्गत सैनिक लोग नहीं आते। जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर यह अधिनियम समस्त भारत पर लागू था किन्तु १ सितम्बर १९६१ से इस राज्य पर भी लागू हो गया है। यह योजना अनिवार्य भी है अर्थात् जो कर्मचारी इसके अन्तर्गत आते हैं उनका बीमा होना आवश्यक है। जो बीमाकृत श्रमिक इस अधिनियम के अन्तर्गत लाभ पाने का अधिकारी है वह उसी प्रकार के लाभ किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत नहीं पा सकता। सन् १९६६ में इस अधिनियम में संशोधन किया गया ताकि योजना के क्षेत्र का विस्तार किया जा सके और अंशदानों की वापिसी तथा लाभों के भुगतान की कार्यविधि को सरल बनाया जा सके। अधिनियम में १९७५ में जो संशोधन किया गया, उसके अनुसार वेतन सीमा तो बढ़ाकर १,००० रु० कर ही दी गई, इसके अतिरिक्त अंशदानों के भुगतान में दोषी पाये जाने पर निवारणार्थ दण्डों की व्यवस्था की गई तथा इस सम्बन्ध में अपराध के लिये कैद को अनिवार्य दण्ड भी बनाया गया। संशोधन में इस बात का भी प्रावधान किया गया कि एक ही अपराध दुबारा करने पर कड़ा दण्ड दिया जाय, हानि की तथा भूराजस्व की बकाया धनराशि की वसूली कराई जाये तथा न्यायालयों को इस विषय में अधिकार भी दिया गया कि वे एक निर्धारित अवधि में अंशदानों के भुगतान का आदेश दे सकें।

अधिनियम का प्रशासन (Administration)

इस बीमा योजना का प्रशासन एक स्वायत्तशासी (Autonomous) संस्था को सौंप दिया गया है जिसे "कर्मचारी राज्य बीमा निगम" (Employee's State Insurance Corporation) का नाम दिया गया है। इसमें ३६ सदस्य हैं जिनमें पाँच पाँच सदस्य मालिकों तथा श्रमिकों के संगठनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अन्य सदस्य केन्द्र व राज्य सरकारों, चिकित्सा व्यवसाय तथा संसद् के सदस्यों का प्रति-

निश्चित करते हैं। केन्द्रीय श्रम और रोजगार मन्त्री इस निगम के अध्यक्ष है और
स्वास्थ्य मन्त्री इसके उपाध्यक्ष हैं। इसमें एक छोटी संस्था निगम की कार्यकारी
(Executive) के रूप में कार्य करती है। इसे स्थायी समिति (Standing Com-
mittee) कहा जाता है। इसमें निगम के सदस्यों में से चुने हुए १३ सदस्य होते हैं।
एक तीसरी संस्था भी है जिसे 'चिकित्सा लाभ परिषद्' में (Medical Benefit
Council) कहा जाता है जिसमें २६ सदस्य हैं। उसका कार्य यह होता है कि वह
चिकित्सा लाभ के प्रबन्ध तथा लाभ देने के लिए प्रमाण पत्र प्रदान करने आदि से
सम्बन्धित मामलों में निगम को परामर्श दे। इस परिषद में स्वास्थ्य सेवाओं के
डायरेक्टर जनरल (महा-निदेशक) और डिप्टी डाइरेक्टर जनरल (उप महा निदेशक),
चिकित्सा कमिश्नर, और राज्य, मालिकों, कर्मचारी और चिकित्सा व्यवसाय के
प्रतिनिधि होते हैं। निगम का मुख्य कार्यकारी अधिकारी डाइरेक्टर जनरल होता है
जिसके चार अन्य मुख्य सहायक अधिकारी होते हैं। ये मुख्य अधिकारी हैं—बीमा
कमिश्नर, चिकित्सा कमिश्नर, मुख्य लेखाधिकारी और रजिस्ट्री अधिकारी। डाइ-
रेक्टर जनरल अपना कार्य क्षेत्रीय, उप क्षेत्रीय, स्थानीय उपस्थानीय लघु स्थानीय
निरीक्षण तथा भुगतान कार्यालयों के द्वारा चलाता है। क्षेत्रीय कार्यालय राज्यों में
भी स्थापित कर दिये गये हैं।

वित्त (Finance)

इस योजना की वित्तीय व्यवस्था कर्मचारी राज्य बीमा निधि में से की
जाती है। यह निधि मालिकों और श्रमिकों के अंशदान से तथा केन्द्रीय और राज्य
सरकारों, स्थानीय प्राधिकारियों, किसी भी व्यक्ति या निकाय (Body) द्वारा दिये
गये दान, उपहार या सहायता से बनाई जाती है। इस बात की भी व्यवस्था थी
कि पहले पाँच वर्षों में केन्द्रीय सरकार निगम को वार्षिक अनुदान प्रदान करेगी
जिसकी राशि निगम के प्रशासन व्यय की २/३ भाग होगी, जिसमें लाभ देने का
व्यय सम्मिलित न होगा। राज्य सरकारों का भी इस योजना की वित्तीय व्यवस्था
में हिस्सा है, जो बीमाकृत व्यक्तियों की देखभाल और चिकित्सा पर हुए व्यय के
एक भाग के रूप में दिया जाता है। प्रत्येक के हिस्से का निर्णय निगम और राज्य
सरकारों के बीच समझौते द्वारा होता है। यह अनुपात पहले २ : १ था। पर तु
अब बदलकर ३ : १ कर दिया है अर्थात् निगम चिकित्सा सुविधाओं की लागत
का ३/४ भाग वहन करने को तैयार हो गया है और राज्य सरकारों के १/४ हिस्सा
के लिये यह निश्चय किया गया है कि यदि वे चाहे तो उसके लिये ऋण भी ले
सकती है। जब से चिकित्सा सुविधाओं का श्रमिक के परिवारों के लिये भी विस्तृत
कर दिया गया है तब से राज्य सरकार का हिस्सा १ : ८ कर दिया गया है। अधि-
नियम में ऐसे उद्देश्यों की एक सूची भी तैयार की गई है, जिन पर निधि में से धन
व्यय किया जा सकता है।

अंशदान (Contributions)

अधिनियम में मुख्य मालिक पर अपना तथा साथ ही अपने श्रमिकों के अंशदान का हिस्सा देने का उत्तरदायित्व रखा गया है अर्थात् श्रमिक के अंशदान का भुगतान श्रमिक और उसके मालिक दोनों के ही द्वारा किया जाता है। मजदूर का भाग मुख्य मालिक द्वारा उसकी मजदूरी से काट लिया जाता है। श्रमिक के साप्ताहिक अंशदान का हिस्सा उसकी उस सप्ताह की औसत मजदूरी के आधार पर होता है और अंशदान प्रति सप्ताह देना होता है यदि श्रमिक पूरे सप्ताह काम पर रहता है तो पूरे सप्ताह का और यदि सप्ताह में कुछ दिन काम पर रहता है तो कुछ दिनों का अंशदान उसे देना होता है— अर्थात् जब भी श्रमिक को मजदूरी मिलती है उसे अंशदान देना पड़ता है। परन्तु सवेतन छुट्टी, वैध हड़ताल और तालाबन्दी के अवसरों को छोड़कर जिस सप्ताह श्रमिक ने कोई काम नहीं किया है और जिसके लिए उसे कोई मजदूरी नहीं दी गई है, उस सप्ताह उसे अंशदान नहीं देना पड़ता। कर्मचारी राज्य बीमा (संशोधन) अधिनियम, १९५१ के अनुसार, साप्ताहिक अंशदान की संशोधित केन्द्रीय दरें पृष्ठ ४८३ पर दी गई तालिका में दिखाई गई हैं—

१९५१ के एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि जब तक सम्पूर्ण भारत में अधिनियम लागू न हो, तब तक मालिक उपरोक्त सूची के तीसरे खाने में दिये गये अंशदानों के स्थान पर एक विशेष अंशदान देंगे, जिसकी दर केन्द्रीय सरकार द्वारा निश्चित की जायगी परन्तु यह दर उनके कुल वेतन बिल की 5 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। समस्त देश में मालिकों के लिये अंशदान की दर उनके कुल वेतन बिल का 3/4 प्रतिशत निश्चित की गई, परन्तु उन स्थानों पर जहाँ यह योजना लागू हो चुकी थी और जहाँ मालिक श्रमिक क्षतिपूर्ति तथा मातृत्व कालीन लाभ के दायित्व से मुक्त हो गये थे, उन स्थानों पर मालिकों का 1 प्रतिशत अंशदान और, अर्थात् कुल मिलाकर 1¾ प्रतिशत अंशदान मालिकों का देना निश्चित हुआ। इसके पश्चात् जब बीमा किये हुये श्रमिकों के परिवारों को भी चिकित्सा लाभ देने का निश्चय किया गया तब यह निर्णय हुआ कि विशेष अंशदानों की जहाँ यह योजना लागू नहीं है, वहाँ 3/4 प्रतिशत से बढ़ाकर 1 प्रतिशत तक और जिन क्षेत्रों में लागू है वहाँ 3¼ से बढ़ाकर 2½ प्रतिशत तक कर दिया जाय। परन्तु अगस्त १९५८ में यह निश्चय किया गया कि जब तक निगम अपना व्यय अपनी चालू आमदनी से ही पूरा करने के योग्य है तब तक दरें और न बढ़ाई जायें। परन्तु १ अप्रैल १९६० से उन स्थानों पर जहाँ योजना लागू थी, मालिकों के अंशदान की दर 1¾ प्रतिशत से बढ़ाकर कुल मजदूरी बिल का 2½ प्रतिशत कर दी गई थी। सन् १९६८ में, यह दर बढ़ाकर 3 प्रतिशत कर दी गई। अपनी वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिये निगम द्वारा बनाई समिति की सिफारिश पर केन्द्र सरकार ने मालिकों के विशिष्ट अंशदान की यह दर, उन स्थानों पर जहाँ

अंश की दर ३/४ प्रतिशत ही रहेगी। जिन स्थानों पर अधिनियम के अन्तर्गत लाभ दिये जाते हैं, वहां श्रमिकों को दूसरे खाने में दी गई दर के अनुसार अंशदान देना होता है। परन्तु अन्य स्थानों पर जहां ये लाभ नहीं दिए जाते, वहां श्रमिकों को किसी भी प्रकार का अंशदान नहीं देना होता।

लाभ (Benefits)

[illegible] के अनुसार अधिनियम के अन्तर्गत बीमा कराए गए श्रमिकों अथवा उनके आश्रितों को निम्नलिखित लाभ उपलब्ध हैं : (१) बीमारी लाभ, (२) मातृत्व प्रसूति लाभ, (३) असमर्थता लाभ, (४) आश्रितों का लाभ और (५) चिकित्सा लाभ। पहले चार लाभ नकदी में दिए जाते हैं और चिकित्सा लाभ सेवा या वस्तु के रूप में प्रदान किया जाता है।

जहां तक **बीमारी लाभ** का सम्बन्ध है इसके अन्तर्गत यदि श्रमिक की बीमारी का प्रमाण पत्र अधिकृत चिकित्सक द्वारा दे दिया जाता है तो बीमा कराए हुए व्यक्तियों को समय समय पर नकदी के रूप में भुगतान किया जाता है। प्रारम्भिक प्रतीक्षा काल दो दिन का है, अर्थात् बीमारी के पहले दो दिन कोई लाभ नहीं दिया जाता। परन्तु यदि श्रमिक १५ दिन के भीतर ही दूसरी बार बीमार पड़ जाए तब यह शर्त लागू नहीं होता। बीमारी लाभ किसी भी ३६५ दिनों के काल की अवधि में श्रमिकों को अधिक से अधिक ५६ दिन तक प्राप्त हो सकता है। १ मई १९७० से बीमारी लाभ की अवधि ५६ से बढ़ाकर ९१ कर दी गई है। बीमारी लाभ की प्रतिदिन की दर एक दिन की औसत मजदूरी की राशि से आधी होती है जिसका उल्लेख अधिनियम में किया गया है। परन्तु जब ये लाभ बीमारी के सम्पूर्ण दिनों के लिए दिए जायेंगे जिनमें रविवार तथा छुट्टियाँ भी आ जाती हैं, तब इन लाभों की दर मजदूरी को ७/१२ हिस्से के लगभग होगी। औसत दैनिक मजदूरी के विभिन्न स्तरों पर जो दरें लागू होती हैं वे पृष्ठ ४८३ की तालिका के कालम नं० ५ में दी गई हैं। जो श्रमिक इन लाभों को प्राप्त करता है उसकी चिकित्सा अधिनियम के अन्तर्गत खोले गये किसी भी चिकित्सालय या दवाखाने में होनी चाहिये।

पहली जून १९५९ से निगम ने यह निश्चय किया कि बीमा कराये हुए व्यक्तियों में जो लोग क्षयरोग से पीड़ित हैं, उन्हें और १८ सप्ताह तक नकद लाभ प्रदान किया जायेगा, जिसकी दर ७५ पैसे प्रतिदिन अथवा बीमारी लाभ की दर की आधी (जो भी अधिक हो) निर्धारित की गई। परन्तु इस लाभ को प्राप्त करने वालों के लिए एक शर्त यह भी है कि उन्होंने लगातार दो वर्षों तक काम किया हो। कोढ़, कैंसर तथा मानसिक और बुरे रोगों के लिए भी इसी प्रकार अधिक बीमारी लाभ देने का निश्चय किया गया और ऐसे रोगियों को १ वर्ष तक बर्खास्त या अलग नहीं किया जा सकता। १९७६ में २१ रोगों की एक सूची बनाई गई थी। इन रोगों की स्थिति में बढ़े हुए बीमारी लाभों का भुगतान किया जाता था। १९९० में

सहायता की अवधि १८ सप्ताह से बढ़ाकर ३०६ दिवस कर दी गई। इस प्रकार ऐसे व्यक्तियों को अब ५६ दिन के चिकित्सा लाभ सहित ३६५ दिन सहायता मिलती थी। १ नवम्बर १९६१ से ये ही लाभ ऐसे बीमाकृत श्रमिकों के लिए भी देने की व्यवस्था कर दी गई जो किसी आधुनिक दवाई या इन्जेक्शन के कारण पीड़ित हो जाते हैं या कुछ प्रकार के अस्थि-भंग (Fracture) से पीड़ित होते हैं। १९६० में इस प्रकार के सभी रोगियों के लिये लाभ की दर बढ़ाकर बीमारी लाभ की पूरी दर कर दी गई थी। ये बढ़े हुये लाभ कुछ अस्वास्थ्यकर दशाओं से पीड़ित व्यक्तियों को भी उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई थी। बढ़े हुए लाभों से सम्बन्धित बीमारियों को दो वर्गों में बाँटा गया है। वर्ग "क" की बीमारियों में बढ़ा हुआ लाभ ३०६ दिन के लिए और "ख" वर्ग की बीमारियों में यह लाभ १२४ दिन के लिए होगा। उन्मादी व्यक्ति की अन्त्येष्टि पर खर्च के लिए अन्त्येष्टि लाभ (Funeral birth) प्रदान किया जाता है जो १०० रु० से अधिक नहीं होता।

मातृत्व-कालीन लाभ के अन्तर्गत समय समय पर नकद भुगतान किया जाता है। आरम्भ में इसकी दर बीमारी लाभ की दर (प्रतिदिन की औसत मजदूरी से आधी) अथवा ७५ पैसे प्रतिदिन (इन दोनों में से जो अधिक हो) थी। यह लाभ १२ सप्ताह तक दिया जाता है, जिसमें अधिक से अधिक ६ सप्ताह प्रसव काल की अनुमानित तिथि से पहले होनी चाहिये। जून १९५८ में इस लाभ की दर को महिला श्रमिक की औसत पूर्ण दैनिक मजदूरी तक बढ़ा दिया गया है। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि गर्भपात की स्थिति में अथवा गर्भधारण या समयपूर्व जन्म (Premature birth) के कारण होने वाली बीमारी की स्थिति में महिला को नियतकालीन भुगतान किये जायें। यदि किसी बीमाशुदा महिला की मृत्यु उस अवधि के दौरान हो जाती है जिसमें कि वह मातृत्वकालीन लाभ प्राप्त करने की अधिकारी थी और अपने पीछे वह बच्चे को छोड़ जाती है तो बच्चे के जीवित रहने की स्थिति में वह लाभ बराबर मिलता रहेगा।

असमर्थता लाभ, काम के समय क्षति पहुंचने पर (जिसमें कुछ व्यवसायजनित बीमारियाँ भी शामिल है), निम्न दरों से दिया जाता है—(१) अस्थायी असमर्थता — यदि असमर्थता ७ दिन से अधिक रहती है तब श्रमिकों को असमर्थता काल में पूरी दर' के अनुसार नकद भुगतान किया जाता है। (२) स्थायी आंशिक असमर्थता— इसके लिए जैसा कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में दिया हुआ है, जीवन पर्यन्त 'पूरी दर" की प्रतिशत के हिसाब से नकद लाभ प्रदान किया जाता है। यह 'पूरी दर' कमाने की क्षमता की हानि के अनुपात में होती है। (३) स्थायी पूर्ण असमर्थता— इसके लिए आजीवन "पूरी दर" के हिसाब से नकद लाभ प्रदान किया जाता है। ("पूरी दर' की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि यह वह दर है जो सम्बन्धित व्यक्तियों की उस प्रतिदिन औसत मजदूरी की आधी होती है जो उसे पिछले २८ सप्ताह में मिलती रही है। १९७२ में इसे बढ़ाकर औसत दैनिक मजदूरी का ६२.५

प्रतिशत कर दिया गया था । (सन् १९६२ में यह निश्चय किया गया कि यदि व्यवसायजनित चोट के सम्बन्ध में निर्णय होने में देर लगती है तो श्रमिक को बीमारी लाभ प्रदान किए जायेंगे बशर्ते कि वे तत्सम्बन्धी शर्तें पूरी करते हों और बाद में लाभ असमर्थता लाभों से समायोजित कर दिए जायेंगे। मार्च १९७० में यह निश्चय किया गया था कि यदि अनुमानित अस्थायी असमर्थता २५ प्रतिशत से अधिक हो, तो लाभ का ५० प्रतिशत भाग अस्थायी रूप से भुगतान कर दिया जाना चाहिए और बाद में जब चिकित्सा बोर्ड का निर्णय प्राप्त हो जाए तो उसमें तदनुसार समायोजन कर दिया जाना चाहिए। परिवार कल्याण नियोजन के उद्देश्य से अगस्त १९७६ में यह व्यवस्था की गई है कि नसबंदी रूप से शुक्रनलिका आपरेशन कराने वाले बीमाशुदा श्रमिकों को पूर्ण औसत दैनिक मजदूरी के बराबर बीमारी लाभ ७ या १४ दिन तक प्राप्त होगा।

यदि किसी बीमा कराये हुए श्रमिक की मृत्यु काम करते समय किसी दुर्घटना के फलस्वरूप हो जाती है तो आश्रितों के लाभ के अन्तर्गत, उसके आश्रितों को निम्न दर के अनुसार लाभ प्रदान किए जाते हैं—(क) विधवा पत्नी को आजीवन अथवा पुनर्विवाह तक पूरी दर का ३/५ भाग दिया जाता है। यदि एक से अधिक विधवा पत्नियाँ हों तो उनमें यह धनराशि बराबर-बराबर बाँट दी जाती है। (ख) १५ वर्ष की आयु प्राप्त होने तक मृतक के पुत्र तथा गोद लिए हुए पुत्र को "पूरी दर" का २/५ भाग दिया जाता है। (ग) १५ वर्ष की आयु अथवा विवाह होने तक, (इनमें जो भी पहले हो) प्रत्येक वैध अविवाहित पुत्री को भी पूरी दर के २/५ भाग का धन दिया जाता है। किसी भी पुत्र या पुत्री को यह सुविधा १८ वर्ष तक की आयु तक प्रदान की जा सकती है, यदि वह निगम दृष्टि से शिक्षा प्राप्त करने का कार्य सन्तोषप्रद कर रहा/रही है। (घ) यदि बीमा कराया हुआ मृत व्यक्ति अपने पीछे कोई विधवा या वैध अथवा गोद लिया हुआ पुत्र नहीं छोड़ गया है, तब आश्रित लाभ या तो उसके माता-पिता या दादा-दादी को आजीवन दिया जा सकता है या उसके किसी अन्य आश्रित को कुछ सीमित काल तक दिया जा सकता है। परन्तु ऐसे व्यक्तियों के लिये दर कर्मचारी बीमा न्यायालय (Employees Insurance Court) निश्चित करता है। परन्तु ऐसे आश्रित लाभ की राशि "पूरी दर" की राशि से अधिक नहीं हो सकती। यदि पूरी दर की राशि अधिक होने लगती है तो प्रत्येक आश्रित का हिस्सा उसी हिसाब से कम कर दिया जाता है ताकि कुल राशि पूरी दर की राशि से अधिक न हो सके।

एक बीमाकृत व्यक्ति को चिकित्सा लाभ उस प्रत्येक सप्ताह के लिये पाने का अधिकार होता है जिस सप्ताह के लिये वह अंशदान देता है या जिस सप्ताह के लिए वह बीमारी, मातृत्व-कालीन असमर्थता लाभ पाने का अधिकारी हो जाता है। (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) कुछ विशेष परिस्थितियों में ऐसे व्यक्तियों को चिकित्सा लाभ देने की व्यवस्था है, जिन्होंने अधिनियम के अन्तर्गत अंशदान

नहीं दिया है। चिकित्सा सम्बन्धी लाभ के । अन्य बीमारी या काम करते समय क्षति होने पर और प्रसूतिता के अवसर पर निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। इस प्रकार की चिकित्सा सुविधाये निगम औषधालय या अस्पताल में जाकर अथवा डाक्टर या बिना अन्तरी के मिलती है या अथवा बीमा कराये हुए व्यक्ति यदि घर पर भी बीमा डाक्टरो द्वारा जाकर प्रदान की जाती है। किसी अन्य अस्पताल चिकित्सा लय या संस्था के द्वारा भी यह चिकित्सा सुविधाये दी जा सकती है। यह लाभ ऐसे डाक्टरो द्वारा भी प्रदान किया जा सकता है जो निगम की सेवा में हो या उनके द्वारा भी प्रदान किया जा सकता है जिनका नाम डाक्टरो की नामिका (Panel) में हो। अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई है कि निगम बीमा कराये हुए व्यक्तियों के परिवारों को भी चिकित्सा सम्बन्धी लाभ दे सकता है जो सुविधा अब अनेक स्थानों पर प्रदान कर दी गई है। चिकित्सा लाभों का स्तर धीरे धीरे काफी ऊँचा कर दिया गया है और अब इन लाभों में विशेषज्ञ की सेवाये भी सम्मिलित कर ली गई है। हस्पताल की सुविधाये दो प्रकार से दी जा रही हैं या तो जो हस्पताल हैं उन्ही में बीमा कराए हुए व्यक्तियों के लिये कुछ पलग सुरक्षित कर दिये जाते है, या हस्पतालों के साथ लगी हुई कुछ इमारतो को लेकर उनमे कर दी गई है। अनेक स्थानों पर नये हस्पताल भी बनाये जा रहे है। कृत्रिम अग चश्मे और दाँत देने की भी व्यवस्था है। ऐम्बुलैन्स गाडियाँ और अन्य यातायात की सुविधाएँ भी निःशुल्क प्रदान की जाती है। बशर्ते कि चोट नौकरी के कारण या नौकरी-काल में लगी हो।

बीमाकृत व्यक्तियो को कुछ अन्य सुविधाये भी प्रदान की जा रही है, उदाहरणत सवारी का किराया, अथवा मैडिकल बोर्ड, हस्पताल या निर्णायक के सम्मुख बुलाये जाने पर मजदूरी की हानि की क्षतिपूर्ति नकद लाभ का मनीआर्डर द्वारा भेजने की व्यवस्था चश्मा को बिना कीमत या लागत मूल्य पर देने की व्यवस्था, परिवार नियोजन पर सलाह देने की व्यवस्था आदि। तपेदिक के रोगियो के लिये पृथक क्लिनिक बनाये जा रहे है। ५० या इससे अधिक पलगो वाले हस्पतालो में दातो की क्लिनिक स्थापित की गई है। परिवार नियोजन कार्यक्रम के अन्तर्गत गर्भरोधक वस्तुएँ दिए जाते हैं। यह भी निश्चय किया गया है कि कानपुर दिल्ली तथा हैदराबाद के चिकित्सालयों में एकीकृत निरोधक और रोगहर सेवाये उपलब्ध कराई जाय।

लाभ प्राप्त करने की शर्तें (Qualifying Conditions)

अधिनियम के अन्तर्गत बीमारी तथा मातृत्व कालीन लाभ पाने के लिए कुछ विशिष्ट शर्तें दी गई है। यदि कोई बीमा कराया हुआ श्रमिक लगातार २६ सप्ताह तक अपना अशदान देता है तो वह आगामी २६ सप्ताहो के लिये बीमारी या मातृत्व कालीन लाभ पाने का अधिकारी हो जायेगा। लगातार २६ सप्ताह अशदान देने वाले समय को 'अशदान काल' कहा जाता है और जिन २६ सप्ताहो में श्रमिक लाभ प्राप्त करता है उसे 'लाभ काल' कहा जाता है। अशदान काल'

के सप्ताह हों और 'लाभ काल' के प्रारम्भ होने में १३ सप्ताह का अन्तर होना आवश्यक है। इस प्रकार कोई भी बीमा कराया हुआ व्यक्ति अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखाना में भर्ती होने के दिन से लगभग ६ महीने बाद बीमारी या मातृत्व के लाभों को पाने का अधिकारी होता है। असमर्थता लाभ, आश्रित लाभ और चिकित्सा के लिये अंशदान देने की कोई शर्तें नहीं हैं। ये लाभ दिन से बीमा कराये गये व्यक्तियों को मिलते हैं जिस दिन से यह योजना लागू हो जाती है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों द्वारा स्थापित कर्मचारी बीमा न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था है जिनका कार्य झगड़ों का निपटारा करना और दावों का निर्णय करना है। १९५१ के संशोधन अधिनियम के द्वारा उन स्थानों पर जहाँ मालिकों के विशेष अंशदानों के भुगतान या उगाही से सम्बन्धित मामलों को निपटाने के लिये कर्मचारी बीमा न्यायालय नहीं है वहाँ उनके स्थान पर विशेष अधिकरणों की व्यवस्था की गई है। चिकित्सा लाभों का प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। दूसरों में इसका प्रशासन बीमा निगम द्वारा ही होता है।

योजना को लागू करने की तैयारियाँ

(Preparation for Implementation of the Scheme)

६ अक्टूबर १९४८ को गवर्नर-जनरल ने कर्मचारी राज्य बीमा निगम का उद्घाटन किया। निगम के द्वारा १३ सदस्यों की एक स्थायी समिति का चुनाव भी किया गया। डा० सी० एल० कटियाल को इस निगम का डायरेक्टर-जनरल नियुक्त किया गया। योजना का अनुभव प्राप्त करने के लिये इसे सर्वप्रथम कानपुर और केन्द्रीय शासित देहली और अजमेर के क्षेत्रों में अग्रगामी योजना के रूप में लागू करने का निश्चय किया गया। परन्तु फिर इस योजना को एक साथ ही देहली और कानपुर में लागू करने तथा देहली, कानपुर और बम्बई में तीन क्षेत्रीय शाखायें खोलने का निश्चय किया गया इस सम्बन्ध में नियमों को अन्तिम रूप दे दिया गया। एक चिकित्सा सर्वेक्षण भी इस उद्देश्य से किया गया कि कहाँ कहाँ चिकित्सालय आदि स्थापित किये जा सकते हैं। मई १९५० में निगम की एक बैठक में यह निश्चय किया गया कि यद्यपि चिकित्सा की प्रणाली मुख्यतः एलोपैथिक ही होगी परन्तु श्रमिकों द्वारा माँग करने पर या जहाँ योग्य डाक्टर मिल सकते हों वहाँ अन्य कोई चिकित्सा प्रणाली भी प्रदान की जा सकती है और पूर्ण समय देने वाले डाक्टरों के साथ साथ निजी डाक्टरों की पैनल (नामिका) प्रणाली को भी प्रयोग में लाया जा सकता है। मालिकों ने प्रशिक्षण के लिये अनेक अधिकारियों और सहयोगियों को भेजा। इसी उद्देश्य से श्रमिक संघों की ओर से भी कुछ प्रतिनिधि भेजे गये। अंशदानों के भुगतान के लिये टिकटें भी छपवाई गई।

योजना चालू होने मे देरी
(Delay in Implementation of the Scheme)

इस प्रकार अग्रगामी योजना का उदघाटन देहली कानपुर और बाद मे बम्बई मे करने के लिये सब प्रकार की तैयारियाँ कर ली गई थी। परन्तु अचानक ही उत्तर भारत के मालिको की परिषद् ने उत्तर प्रदेश सरकार के द्वारा यह अभिवेदन किया कि कानपुर मे यह योजना नही चलाई जानी चाहिये। इसी प्रकार के अभिवेदन अन्य मालिको की परिषद द्वारा भी किये गये। जो आपत्ति उठाई गई थी, वह यह थी कि योजना लागू करने के लिये यह उचित समय नही था और यदि यह योजना सब स्थानो पर एक साथ लागू नही होगी तो कानपुर का उद्योग अन्य स्थानो के उद्योगो से प्रतियोगिता मे नही खडा हो सकता। साथ ही वित्तीय कठिनाइयो के कारण राज्य सरकारों मे भी योजना के प्रति अधिक उत्साह नही पाया गया। एक और कठिनाई यह थी कि चिकित्सा सहायता प्रदान करने के लिये उचित और सन्तोषजनक व्यवस्था करने मे काफी समय लगता था। डाक्टरो की पैनल (नामिका) प्रणाली की शर्तें तय करने मे तथा कार्यालयों और चिकित्सालयो के लिये स्थान प्राप्त करने मे भी अनेक कठिनाइयाँ आई। इन कारणो से योजना के लागू होने मे देर हो गई। परन्तु फिर भी चारो ओर से योजना को कार्यान्वित करने की प्रार्थनायें और मागे आती रही। अत यह उचित समझा गया कि इन कठिनाइयो को दूर करके योजना को शीघ्र ही लागू कर देना चाहिये। इस कारण १९५१ मे एक सशोधित अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि अग्रगामी योजना को केवल कुछ स्थानो पर कार्यान्वित करने के लिये और इन स्थानो को प्रतियोगिता की हानियो से बचाने के लिये देश भर के मालिको से अशदान लेने चाहिए। उन स्थानो पर जहा पर यह योजना लागू होगी, वहाँ मालिको को अधिक अशदान देना चाहिये (देखिए पीछे अशदान की तालिका)।

मालिको की आपत्तियो पर विचार
(Objections of Employers Examined)

मालिको ने कुछ विशिष्ट आधारो पर इस योजना का विरोध किया। उनका कहना था कि 'कर्मचारी' की परिभाषा बहुत विस्तृत है और मजदूरी की परिभाषा भी स्पष्ट नही है। मजदूरी की परिभाषा के अनुसार तो महँगाई भत्ता साइकिल भत्ता आदि भी सम्मिलित किये जा सकते है। श्रमिक के अशदान की उगाही करने का उत्तरदायित्व भी मालिको पर लाद दिया गया है परन्तु ऐसी कोई व्यवस्था नही की गई है जिससे यदि मजदूर अपना अशदान देने से मना कर देता है तो मालिक कोई कार्यवाही कर सके। मासिक मजदूरी को अशदान की लिये साप्ताहिक दर का रूप देने की कठिनाइयो की ओर भी उन्होने सकेत किया। परन्तु यह सब कठिनाइयाँ ऐसी नही थी जिनके कारण योजना को कार्यान्वित न

किया जाता। वास्तव में मालिकों के लिये इस योजना की लागत इतनी नहीं होती जितनी कि दिखाई गयी थी। कर्मचारियों का अंशदान उनकी मजदूरी के ५ प्रतिशत से भी कम होता है। इस प्रकार मालिकों पर अंशदान का भार उत्पादन व्यय के ऊपर १ प्रतिशत ही और अधिक होगा। परन्तु इस योजना की लागत मालिकों को वास्तव में इससे भी कम बैठती है क्योंकि इस समय मालिकों को मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम और श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत लाभों का भुगतान करना पड़ता है। यह भुगतान अब बीमा कराये हुए कर्मचारियों के लिए निगम द्वारा किया जायगा। योजना के पूर्ण रूप से कार्यान्वित होने के तत्काल पश्चात् ही बीमा कराये हुए व्यक्ति की चिकित्सा लाभ की लागत भी निगम स्वयं वहन करेगा। इस प्रकार मालिकों के लिए वास्तविक लागत उत्पत्ति मूल्य के एक प्रतिशत के भी ३/४ भाग के लगभग बैठती। यह लागत इतनी भारी नहीं मालूम देती कि उद्योग उसका भार वहन न कर सकें। लागत और औचित्य के प्रश्न का छोड़कर एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कारखानों में काम करने वाले लाखों कर्मचारियों को किसी प्रकार की सुरक्षा कैसे प्रदान की जाय। यह योजना श्रमिकों के सकट के अवसर पर उनकी सहायक होगी। इससे श्रमिक का एक स्वस्थ और स्थायी दल बन जायगा जिससे स्वभावतः उत्पत्ति में वृद्धि होगी। इस योजना में जो थोड़ी अतिरिक्त लागत आयगी, वह अधिक उत्पत्ति और और स्वस्थ व सन्तुष्ट जनता के रूप में हम वसूल हो जायगी।

योजना का कार्यान्वित होना

(Implementation of the Scheme)

२४ फरवरी १९५२ को कानपुर में प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना का उद्घाटन किया। उसी दिन देहली में भी इसे लागू कर दिया गया। इसके पश्चात् यह योजना अन्य स्थानों पर भी लागू की गई। इस योजना का प्रशासन इस समय क्षेत्रीय, उप क्षेत्रीय, स्थानीय, उप स्थानीय, लघु स्थानीय तथा भुगतान कार्यालयों द्वारा जो समस्त देश में फैले हुये हैं, किया जा रहा है।

योजना का विस्तार-क्षेत्र (Coverage)

३१ दिसम्बर १९७६ तक कर्मचारी राज्य बीमा योजना में ५८.५३ लाख कर्मचारी सम्मिलित हो चुके थे, ३८८ केन्द्रों तक इसका विस्तार था और लगभग २.५७ करोड़ लाभ-प्राप्तकर्त्ता (अर्थात् बीमा शुदा व्यक्ति तथा उनके परिवार के सदस्य) चिकित्सा सुविधाएँ प्राप्त करने के अधिकारी थे। ३१ मार्च १९७८ तक इस योजना का विस्तार-क्षेत्र निम्न प्रकार था—

केन्द्रों की संख्या　३९६

योजना में सम्मिलित फैक्टरियों की संख्या　५१,३७५

योजना में सम्मिलित कर्मचारी की संख्या　५५,४२,३००

बीमाकृत व्यक्तियों की संख्या ६२,५०,८००

बीमाकृत व्यक्तियों की पारिवारिक इकाइयों की संख्या ६२,५०,८००

योजना से लाभ प्राप्त करने वालों की संख्या २,४२,५२,०००

इस प्रकार, ३१ मार्च १९७८ से ३१ मार्च १९७९ तक २३ अतिरिक्त केन्द्रों पर लगभग ३.११ लाख अतिरिक्त कर्मचारी योजना की परिधि में लाये गये थे।

१९७८-७९ से पूर्व तक, इस अधिनियम (कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, १९४८) की धाराएँ उन बारहमासी फैक्टरियों पर लागू होती थीं जो शक्ति (Power) का प्रयोग करती थीं तथा जिनमें २० या अधिक व्यक्ति काम करते थे। परन्तु १९७८-७९ में अधिकांश राज्य सरकारों ने इसका विस्तार निम्नलिखित नव संस्थानों तक और कर दिया—

(१) छोटी फैक्टरियाँ, जो शक्ति का प्रयोग करती थीं और जिनमें १० से १९ व्यक्ति तक काम करते थे, वे फैक्टरियाँ जो शक्ति का प्रयोग तो नहीं करती थीं किन्तु जिनमें २० या अधिक व्यक्ति कार्य करते थे, तथा

(२) दुकानें, होटल, जलपान गृह, सिनेमा, थियेटर, मोटर यातायात तथा समाचार-पत्र संस्थान, जिनमें २० या अधिक व्यक्ति काम करते थे।

३१ मार्च १९७८ को विभिन्न राज्यों में कर्मचारी राज्य बीमा के अन्तर्गत आने वाले केन्द्रों एवं कर्मचारियों आदि का विवरण पृष्ठ ४५२ पर तालिका में दिया गया है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना ३१ मार्च १९७८ को जिन ३६६ केन्द्रों पर लागू थी, उनके नाम निम्न प्रकार थे—

आन्ध्र प्रदेश (१) अदानी (२) आल्वर गौंज (३) बसन्त नगर (४) चिराला (५) चित्तीवलासी (६) चित्तूर (७) कुडुप्पा (८) दौलेश्वरम (९) एलूरू (१०) गुडूर (११) गुन्टकल (१२) गुन्तूर (१३) हिन्दूपुर (१४) हैदराबाद सिकन्दराबाद (१५) काकीनाडा (१६) कामारेड्डी (१७) कोथवलासा (१८) कुरनूल (१९) कन्नूर (२०) मचेरला (२१) महबूब नगर (२२) मार्कापुरम (२३) मसूलीपट्टनम (२४) नैल्लीमरला (२५) नन्दौर, पादुगालादु सहित (२६) पैदापारामानी (२७) प्रोद्दातूर (२८) राजामन्द्री (२९) रामागुन्डम (३०) रायदुर्ग (३१) रामीगुन्ता (३२) सीरपुर कागजनगर (३३) श्रीराम नगर (३४) तादेपल्लीगुडम (३५) तादेपल्ली (३६) तनूक (३७) तिरुपती (३८) विजयवाडा (३९) विशाखापटनम (४०) विजयनगरम (४१) वारंगल (४२) येम्मीगानौर।

असम . (१) चन्द्रपुर (२) चाछार (३) धुबरी (४) डिब्रूगढ़ (५) गाहाटी, उपनगरों सहित तथा खानापारा व नारंगी (६) जैपोर (७) जागीधापा (८) जार-हाट (९) मारघरीता (१०) मरियानी (११) मिलघाट (१२) तेजपुर (१३) तिन-सुकिया तथा माकुम।

राज्य	केन्द्रों की संख्या	कर्मचारियों की संख्या	बीमाकृत व्यक्तियों की संख्या	बीमाकृत व्यक्तियों के परिवारों की संख्या	लाभ प्राप्त करने वालों की संख्या
१ आन्ध्र प्रदेश	४२	२,२४,०००	२,५५,००	२,५५,०००	९,८९,४००
२ असम	१३	२६,०००	३०,००	३०,०००	१,१६,४००
३ बिहार	२५	१,२०,०००	१,३४,००	१,३४,०००	५,१९,९००
४ चण्डीगढ़	१	१०,०००	१२,००	१२,०००	४६,५५०
५ दिल्ली	१	२,२५,०००	२,६०,००	२,६०,०००	१०,०८,८००
६ गुजरात	१४	४,९४,०००	४,९४,०००	४,९४,०००	२३,०४,७००
७ हरियाणा	४०	१,६८,०००	१,९२,००	१,९२,०००	७,४४,९५०
८ हिमाचल प्रदेश	१	७००	८०	८००	३,१००
९ जम्मू व कश्मीर	—	—	—	—	—
१० कर्नाटक	१४	२,४३,०००	२,९४,००	२,९४,०००	११,४०,७००
११ केरल व माहे	३०	३,०६,०००	३,२५,००	३,२५,०००	१२,६१,०००
१२ मध्य प्रदेश	२१	१,७०,०००	१,८५,०००	१,८५,०००	७,१७,८००
१३ महाराष्ट्र					
(क) बम्बई व थाना	८	१०,३५,०००	११,७७,००	११,७७,०००	४५,६६,७५०
(ख) नागपुर क्षेत्र	१०	७१,०००	७७,०००	७७,००	२,९८,७५०
(ग) पूना क्षेत्र	१६	२,१०,०००	२,३१,०००	२,३१,०००	८,९६,३००
१४ उड़ीसा	१५	८४,०००	८९,००	८९,०००	३,४५,३००
१५ पाण्डेचरी	१	१५,०००	१७,००	१७,०००	६५,९५०
१६ पंजाब	२५	१,४०,०००	१,९१,००	१,९१,०००	७,४१,१००
१७ राजस्थान	१८	१,१०,०००	१,२९,०००	१,२९,०००	५,००,५००
१८ तमिलनाडु	४२	४,४०,०००	४,६७,०००	४,६७,०००	१८,११,९५०
१९ उत्तर प्रदेश	४२	४,३०,०००	४,७१,०००	४,७१,०००	१८,२७,५००
२० प० बंगाल	७	९,६५,०००	११,२०,०००	११,२०,०००	४२,४५,६००
अखिल भारतीय (१९६८)	३६६	५५,४२,७००	६२,५०,८००	६२,५०,८००	२,४२,५३,०००
अखिल भारतीय (१९६७)	४०५	५५,००,०००	५९,७५,०००	५९,२२,३५०	२,३०,३१,३४०

*कुछ राज्यों में केन्द्रों के समामेलन (amalgamation) के कारण संख्या घटी ।

बिहार . (१) आदित्य पुर (२) अम्जोना (३) बन्जारी (४) भ दानीनगर (५) भागलपुर (६) बिहारशरीफ (७) डालमियानगर (८) दरभंगा रामेश्वर नगर सहित (६) धनबाद, भुली सहित (१०) गया (११) गिरडीह (१२) जपला (१३) जुगासलाई (सेन्ट्र जमशेदपुर) (१४) कटिहार (१५) कोडरमा, डोमचन्च व झूमरी-तलैया सहित (१६) कुमारधुबी, उगरकुर सहित (१७) मारहाखड़ा (१८) मोकामह (१६) मोगघिर (२०) मातीहारी (२१) मुजफ्फरपुर (२२) पटना (२३) रामगढ छावनी (२४) राँची, घुटिया सहित (२५) समस्तीपुर, जिवालपुर-निजामत सहित ।

चण्डीगढ : (१) चण्डीगढ ।

दिल्ली (१) दिल्ली ।

गुजरात · (१) अहमदाबाद (नरौल' चाँदखेडा व ठाकरबापा सहित (२) बडोदा (३) भावनगर ४) खम्भात (५) धारगधा (६) जामनगर (७) कलोल (८) मोरबी (६) नदियाद (१०) पेटल ाद (११) पोरबन्दर (औद्योगिक क्षेत्र तथा धर्मपुर सहित) (१२) राजकाट (१३) सूरत (नवगाम आदि तथा पादमारा सहित (१४) वाकानेर, हसनपुर सहित ।

हरियाणा (१) अम्बाला (२) बहादुरगढ (रोहतक) (३) बहलगढ, बहलगढ रोड सहित (४) बल्लभगढ (५) भिवानी, इसके उपनगरों व जॉनपाल सहित (६) डालमिया दादरी (७) धुले कोठी (८) फरीदाबाद, मथुरारोड सहित (६) गनौर (१०) गुडगाव (११) हिसार तथा इसके उपनगर (१२) करनाल (१३) पानीपत (१४) रिन्जौर (१५) रिवाडा (१६) रोहतक (१७) स्वालवा (१८) सोनीपत (१६) सूरजपुर (२०) यमुनानगर (जारियन व जगाधरी सहित) ।

हिमाचल प्रदेश (१) सालन ।

कर्नाटक (१) बगलौर (i) बगलौर उपनगर (ii) कादुगोडा नहली (iii) ह्वाइट फील्ड (iv) यादुगोरी (v) कनरपुरा (vi) चन्नापटना (vii) कगेरी (viii) सरक्की-कौनानाकुन्ती (ix) होसकोटा रोड (x) दियावसन्द्रा तथा महादेव पुरा (xi) कुम्बाषा दोड्ड (xii) । (२) बेलगाम, यमुनापुर सहित (३) बेल्लारी (बेल्लारी व बाहरी क्षेत्र, होस्पेट तथा टी० बी० दाम व मुनीराबाद सहित (४) डडेली (५) देवनगेरे (थोलाहुन्से व चित्रदुर्ग व शिमोगा सहित (६) गोकाक (७) गुलबर्ग (८) हरिहर (६) हुबली (धारवार, नारगदल, गदाग व बगलकोट सहित (१०) कोलार स्वर्ण क्षेत्र (११) मगलौर (कुलसेक्र, पुताम्बुर, कुण्डापुर, उडूपीममणिपाल व माल्पी सहित) (१२) मैसूर (मेनागची, बेलगोला व हमन सहित) (१३) नन्जनगुद (कालनीगल व नरामीपुर सहित) (१४) शाहाबाद ।

केरल तथा माही (१) एलेप्पी (पुन्नापरा व शेरतलाई सहित) (२) अल्वाई (पेरम्बावूर, कोठाकुलगरा तथा मुवात्तु पुझा सहित) (३) बलियापट्टम (बलिया पटोम वभाडी पराम्बु, कन्नापुरम व मोरक्षा सहित (४) कन्नानूर (५) चेलाकुडी (कल्लो तुमकरा, पुल्लूर, कोरट्टी, कोठाकुलगरा, चेलाकुडी, पेराम्ब्रा, पोट्टा तथा वादक्कु-

मकरा सहित) (६) चयान्नूर (पेरावूर, आदिचनल्लूर, मायनाद, कल्लूवनुकल तथा पूयापल्ली सहित) (७) इलीवुलम (चेम्मानाद, पिरावाम तथा थादपुझा सहित (८) फेरोसी (फरासी के बाहरी क्षेत्र, वन्हीप्पनम व मणियूर सहित (९) कलमासरी (१०) कल्लई (११) कन्नम कन्नम (मदनूर नवरंकुलम, नेदुमागद, पन्नियमल व पजहैय्यावुन्नूमन सहित) (१२) करुनागपल्ली (थेवकुम भागम चावरा, कुलसखार पुरम मटवानप्पली तथा थादियूर सहित) (१३) कय्यामकुलम (थाजहकारा सहित) (१४) काटराक्कारा (कुन्नाराटा, मीनन, उम्मान्नूर वैनियाम तथा इलामद सहित) (१५) काट्टायम (चेगनचरी, निदनूर तथा वइकाम सहित) (१६) काजहीवाडे (१७) कुन्दारा (इदम्मुलक्कल पिरिक्कूवालवतम तथा वट्टिकवला सहित) (१८) मट्टनचरी (कोचीन व वलिगटन द्वीप सहित) (१९) मदूर (२०) आलुर (२१) पालघाट (वाटम्बा आल्टाप्पलम व इगवा बाहरी क्षेत्र, चित्तूर, काजहिनहम्पारा, थाथामनगलन काजहिपैथी वादवन्नूर तथा टलापल्ली सहित) (२२) पादकाद (अलगप्पानगर, पातूकाद, कन्नूर व पराप्पुकारा सहित) (२३) पुनालूर (अनैय्यामान, थामावर विदानूर, इत्तिग नदक्कल तथा चदैयामगलन) (२४) थयूडलान (२५) सम्थामाकोट्टा (अडूर, मुरनाद इराधू तथा इज्हामकुलम सहित) (२६) नन्नीचरी (चित्तरापरवा, थिरुवगद तथा ननलीचेरी सहित) (२७) त्रिचुर (वरामुख, चित्तनन्नूर, नट्टीमरी, नट्टिका आर्टमुक्कारा, पुलाजही, वदनापल्ली, वेलथुरा, वदक्कनचेरी, कुमारानल्लूर, मुल्लाक्करा, त्रिचूर, शारानुर, चेरुथुरूथी, पट्टम्बी, करूवनूर चवूर और कन्नाचिरा सहित) (२८) त्रिवेन्द्रम (चेट्टीविलकम, पलगप्पाग जायन्नुर, कराकुलम, पन्निववन, वोथुरल और वलरामपुरम सहित) (२९) उद्यागमण्डल (३०) माही।

मध्य प्रदेश (१) अमलाई (२) वालमोर (३) भोपाल (गोविन्दपुरा सहित) (४) बुरहानपुर (५) देवास (६) ग्वालियर, मुहलगाँव सहित (७) इन्दौर (८) इटारसी (९) जबलपुर (१०) कटनी (११) खण्डवा (१२) कुमाहारी (१३) मन्दसौर (१४) नागदा (१५) निवाड (१६) रायगढ़ (१७) रायपुर (१८) राजनांदगाँव (१९) रतलाम (२०) सतना (२१) उज्जैन, नौनागिरि सहित)।

महाराष्ट्र · (**क**) **बम्बई क्षेत्र तथा गोआ** (१) बम्बई, बेसिन सहित। **गोआ**—(२) विचालिम (३) कोरतिम (४) मारगाँव (५) जोपाखण्डेपर (पूना) (६) पानाजी (७) वास्को डि गामा (सम्भाजीनगर) (८) एवमेडन। (**ख**) **नागपुर क्षेत्र** (१) अकोला (२) अमरावती (३) औरंगाबाद (४) बल्लारपुर (५) चिन्दवारा (६) हिंगन घाट (७) एम० आई० डी० सी० (हिंगना रोड) (८) नागपुर (९) नन्देद (१०) पुलगाँव। (**ग**) **पूना क्षेत्र** (१) अमलनेर (२) बारसी (३) चालिस गाँव (४) धूलिया (५) इचलकरन्जी (६) जलगाँव (७) कोल्हापुर (८) लोनावाला (९) माधवनगर (१०) मिराज (११) नासिक (१२) पूना (१३) सागली (१४) सातारा (१५) शोलापुर (उपनगरों तथा निकेरवादी (१६) नलेगाँव।

उड़ीसा : (१) बारग (२) बारबिल (३) बरहौल (४) बह्रामपुर, गजम सहित (५) भुवनेश्वर (६) ब्रजराजनगर (७) चौद्वार (८) कटक (९) हीराकुड (१०) जजपुर (११) जेकेपुर (१२) झारसुगुडा (१३) कन्सबहल (१४) राजगगापुर नारनगढ (तापग) सहित (१५) रूरकेला ।

पाण्डेचेरी :(१) पाण्डचेरी करईक्ल सहित ।

पंजाब :(१) अबोहर (२) अमृतसर, वर्का सहित (३) बहादुरगढ (पटियाला) (४) बटाला (५) छेहराता, खासा सहित (६) धारीवाल (७) दोनानगर (८) गोबिन्दगढ (९) गोरेया (१०) जगतजीत नगर (११) जालन्धर तथा उपनगर (१२) कपूरथला (उपनगर, दीवान खान, धारीवाल तथा मन्सूरवाल सहित (१३) खन्ना (१४) खरार (१५) लुधियाना (उपनगरो, शेरपुर कला भार तथा धियागपुर सहित) (१६) मलेरकोटला (१७) मलातमण्डी (१८) मोगा (१९) नाभा (२०) पटियाला (२१) फागवाडा (उपनगरो—चक हकीमान व हदियाबाद तथा चचाक सहित (२२) फिल्लौर (२३) राजपुरा तथा उपनगर (२४) साहिबजादा अजीतसिंह नगर (मोहली) (२५) सरहिन्द ।

राजस्थान :(१) अजमेर, तवाजी सहित (२) अलवर (३) ब्यावर (४) भरतपुर, गाव श्रीनगर सहित (५) भवानी मण्डी (६) भीलवाडा (७) बीकानेर, बेछवाला सहित (८) चित्तौडगढ, चन्देरिया सहित (९) धोलपुर (१०) जयपुर, दुर्गापुर सहित (११) जोधपुर (१२) किशनगढ (१३) कोटा (१४) लखेरी (१५) पाली मारवाड़ (१६) सवाई माधोपुर (१७) श्रीगंगानगर (१८) उदयपुर ।

तमिलनाडु (१)अम्बूर (२) अरनी (३) अथुर (४) कावेरी नगर (५) कोयम्बटूर (इसके उपनगरो, पेरियानाइक्कन पलायम, पीनामेट्टु वेदपट्टी व आथसकल मन्दापम, पेन्नचेट्टी पलायम मिलेरीपलायम तथा पल्लादम सेमोपलायम सहित (६) डालमियापुरम (७) डिन्दीगुल (८) इराड, पल्लीपलायम सहित (९) गुडियमथान (१०) कम्मदाई (११) करूर (१२) काविलपट्टी (१३) कुम्बाकोनम पेरुमन्दी गाँव सहित) (१४) मद्रास नगर (मद्रास उपनगर, तिरुमगलम, अवादि, पर्गवती पुरम, पट्टाबीरम, रेडहिल (माधवराम तिरु अनवियर), नन्दमबक्कम, तिरूवमीजुर, थोरईपक्कम तथा कोनूर सहित) (१५) मदुराई (मदुराई बाहरी क्षेत्र, तिरूनगर, पारवी, थेनूर सिलईमन तथा कप्पलूर सहित) (१६) मेलूर (१७) मेट्टूपलायम (१८) मैटूर (वीरावरल पुदूर सहित) (१९) नागपट्टनम (२०) नागेरकोइल (२१) नेलीकुप्पम (२२) पल्लावी (२३) पोल्लाची (२४) पुकोट्टई, नमतागमुद्रम सहित (२५) राजापलायम (२६) रानीपेट, उपनगरों सहित (२७) सलेम (२८) शंनकोट्टाह (२९) शिवकामी (३०) सोमनूर, अरासुर सहित (३१) तिरुचिरापल्ली (काट्टापेट्ट व व रगनेरी सहित) (३२) तिरुनेलवेली, कारोमलकुलम तथा के जाई एम उद्योग सहित (३३) तिरुपुर, इसके बाहरी क्षेत्र सहित (३४) तूतीकोरन (३५) उदूमालपेट (३६) उमीलमपटटी (३७) उथुकुली (३८) वदालर (३९) वनियामवादी, वलन्द

सहित (४०) वेलोर (४१) विश्वनाथ पुरम (४२) विरुद्धनगर नगर उपनगरों सहित।

उत्तर प्रदेश (१) आगरा, नरिया सहित (२) अलीगढ़ (३) इलाहाबाद (नैनी इसके उपनगर तथा बमरौली सहित) (४) बालावाली (५) बरेली (इज्जत-नगर फतहगंज सहित) (६) भदाई (७) चुर (८) देहरादून (९) इटावा (१०) इत्मादपुर (११) फिरोजाबाद (१२) गाजियाबाद और इसके उपनगर (१३) गाजीपुर (१४) गोरखपुर (१५) हापुड़ (१६) हरनगाँव (१७) हरद्वार (१८) हाथरस (१९) झाँसी (२०) कानपुर कल्याणपुर सहित (२१) लखदऊ एवं ... सहित (२२) मारवनपुर (२३) मथुरा (२४) मेरठ (२५) मिर्जापुर (२६) मोदीनगर (२७) मुरादाबाद पुत्तीघर (धावरा गाँव) सहित (२८) मुजफ्फरनगर (२९) नजीबाबाद (३०) पिपरी (३१) रामपुर (३२) रुड़की (३३) सहारनपुर (३४) साहिबाबाद (३५) सहजनवा (३६) शाहगंज (३७) शामली (३८) सीतापुर (३९) शिकोहाबाद (४०) उझानी (४१) उन्नाव मगरवारा सहित (४२) वाराणसी उपनगरों सहित।

पश्चिमी बंगाल (१) कलकत्ता बजियाघाट व तालीगंज सहित (२) हुगली-... (३) हुगली (४) हावड़ा श्यामपुर सहित (५) कल्याणी बाटगंज सहित (६) राणाघाट ... सहित (७) परगना।

बीमाकृत श्रमिकों और उनके परिवारों के ... के लिए ३१ दिसम्बर १९६९ को ६७ हस्पताल तथा ३३ उपभवन (जिनमें १४,१४२ पलंगों की हस्पतालों में तथा ६३० पलंगों की उपभवनों में व्यवस्था थी) काम कर रहे थे। इसके अतिरिक्त अन्य हस्पतालों में पूर्णतया बीमाकृत श्रमिकों के प्रयोग के लिए ४,६१४ पलंग सुरक्षित थे। चिकित्सालयों (dispensaries) की संख्या १,००१ थी।

कर्मचारी राज्य बीमा निगम को मार्च १९७० को समाप्त होने वाले वर्ष में १४,४२४५ लाख रु० से भी अधिक की आय हुई थी। इसी वर्ष बीमाकृत श्रमिकों तथा उनके परिवारों को नकद तथा वस्तुओं के रूप में दिये जाने वाले लाभों पर, लगभग ११,७७१५ लाख रु० व्यय हुआ था जिसमें ८,७१०७ लाख रु० चिकित्सा लाभों पर, ३ ९७६८ लाख रु० नकद लाभों पर १३८ लाख रु० अन्य लाभों पर तथा ३,०६८ लाख रु० प्रशासनिक व्यय के रूप में खर्च हुआ था।

आयोजनाओं में सुझाव (Suggestion in the Plans)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस बात का सुझाव था कि कर्मचारी राज्य बीमा योजना उन सभी केन्द्रों में लागू कर दी जाय जहाँ १,५०० या उससे अधिक कारखाना कर्मचारी कार्य करते हैं। तीसरी पंचवर्षीय योजना में यह सुझाव था कि योजना को पहले तो उन ६ लाख श्रमिकों पर लागू किया जाय जो द्वितीय योजना काल में इसके अंतर्गत आने से रह गये थे और फिर उन तमाम केन्द्रों तक लागू किया जाय जहाँ ५०० या उससे अधिक औद्योगिक श्रमिक (जिन पर योजना लागू हो सकती है) कार्य करते हैं। इस प्रकार तीसरी पंचवर्षीय योजना काल में ३० लाख और अधिक औद्योगिक श्रमिक लाभ उठा सकेंगे। तीसरी योजना में यह

कि योजना को चलाने वाले उच्च अधिकारी बहुत ईमानदार हों, उनमें प्रबन्ध करने की पर्याप्त क्षमता हो और वे पारस्परिक सहयोग से कार्य करें। डॉक्टर कांग्यार जैसी घटनायें जनता के विश्वास को हिला देती है। इस प्रकार की घटनायें किसी भी हालत में नहीं होनी चाहिए।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना को समीक्षा

(Review of the ESI Scheme)

सामाजिक सुरक्षा पर अध्ययन दल (Study Group on Social Security)—अगस्त १९५७ को श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने सामाजिक सुरक्षा पर एक अध्ययन दल की नियुक्ति की। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की भारतीय शाखा के निदेशक श्री वी० के० आर० मेनन इसके अध्यक्ष थे। अध्ययन दल ने दिसम्बर १९५८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी मुख्य सिफारिश इस प्रकार थी—(१) कर्मचारी राज्य बीमा निगम तथा कर्मचारी निर्वाह निधि संगठन को एक एजेन्सी के रूप में समन्वित किया जाय, (२) कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत डॉक्टरी देखभाल के स्तर में सुधार तथा नकद लाभों में वृद्धि की जाय, साथ ही श्रमिकों के परिवारों के लिए भी अस्पताली सुविधाओं की व्यवस्था की जाय। (३) अधिक से अधिक १३ सप्ताहों की अवधि के लिए बीमारी लाभों की अदायगी की जाय और पूर्ण सामान्य लाभ दर से ३६ सप्ताहों के लिए दीर्घ बीमारी लाभ प्रदान किए जायें, (४) पूर्ण औसत मजदूरी पर मातृत्व-कालीन लाभों की अदायगी की जाये, (५) मालिकों का अंशदान बढ़ाकर मजदूरी बिल का ४½% कर दिया जाये और कर्मचारी निर्वाह निधि अधिनियम के अन्तर्गत अंशदान की दरों को भी बढ़ाकर ८⅓ प्रतिशत कर दिया जाये, (६) निर्वाह निधि योजना को वृद्धावस्था-असमर्थता तथा उत्तरजीवी पेंशन व आनुतोषिक योजना में परिवर्तित कर दिया जाय। लाभों को बढ़ाने से सम्बन्धित अनेक सिफारिशें तो पहले से ही लागू कर दी गई थी परन्तु सामाजिक सुरक्षा की एकीकृत योजना से सम्बन्धित सिफारिशें अभी विचाराधीन हैं (जिन पर अगले पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है)।

डॉ० ए० एल० मुदालियर कमेटी (Dr A L Mudaliar Committee)—सन् १९५६ में, सरकार ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना की कार्य प्रगति पर रिपोर्ट देने के लिये एक कमेटी का निर्माण किया। डॉ० ए० एल० मुदालियर इसके एकमात्र सदस्य थे। कमेटी की मुख्य सिफारिशें, जिन पर निगम की सहमति थी, इस प्रकार थी—(१) कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालों का तेजी से निर्माण, (२) क्षय रोग प्रकृति के अस्पतालों का निर्माण, (३) कम बीमा योग्य व्यक्तियों वाले क्षेत्रों में विशेषज्ञों की सेवाओं की उदारता के साथ पहुँच, (४) स्थानीय कार्यालयों के लिये अपने निजी भवनों का निर्माण तथा स्थानीय कार्यालयों को बड़ी मिलों में स्थित करना, तथा (५) बढ़े हुये बीमारी लाभों की ३०६ दिन तक के लिये तथा कम तीव्र अस्थि भंगों के लिए भी स्वीकृति।

सामान्य उद्देशीय उप समिति (General Purposes Sub Committee)—निगम की एक सामान्य उद्देशीय उप-समिति का समय-समय पर निर्माण किया जाता है । इसमे विभिन्न हितो के प्रतिनिधि होते हैं । यह उप-समिति योजना के कार्य-सचालन की समीक्षा करने के लिये समय समय पर विभिन्न केन्द्रो का निरीक्षण करती है और सुधारो के सम्बन्ध मे अपने सुझाव देती है ।

मूल्याकन (Valuation)—केन्द्र सरकार ने, कर्मचारी बीमा अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक पाँच वर्ष (अर्थात मार्च १९५४, १९५९ और १९६४ को समाप्त होने वाली अवधि) के लिए निगम की परिसम्पत्तियो एव देयताओ का मूल्याकन करने के लिए बीमा नियन्त्रक (Controller of Insurance) को नियुक्त किया । मूल्याकन रिपोर्टो से निगम की वित्तीय स्थिति का पता चलता है ।

कर्मचारी राज्य बीमा समीक्षा समिति (ESI Review Committee)—स्थायी श्रम समिति की सिफारिश के अनुसार जून १९६३ मे केन्द्र सरकार ने एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की । तत्कालीन उप-श्रम मन्त्री श्री सी० आर० पट्टाभीरमन इस समिति के अध्यक्ष थे । समिति से कहा गया कि वह कर्मचारी राज्य बीमा योजना के कार्य-सचालन का अवलोकन करे और कर्मचारी राज्य बीमा निगम के ढाँचे तथा सगठन मे सशोधनो अथवा परिवर्तनो के विषय मे अपने सुझाव दे । समिति ने फरवरी, १९६६ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । इस रिपोर्ट पर चिकित्सा लाभ परिषद्, स्थायी श्रम समिति तथा कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा तो पहले ही विचार किया जा चुका है और अब केन्द्र सरकार इस पर विचार कर रही है । समिति ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना तथा कर्मचारी निर्वाह निधि योजना के प्रशासकीय विलय का सुझाव दिया है । इसने इस बात पर जोर दिया है कि देश भर म यथेष्ट सख्या मे कर्मचारी राज्य बीमा हस्पतालो का निर्माण किया जाये और क्षयरोग के पीडितो को विशेष सुविधायें प्रदान की जायें । समिति ने सिफारिश की है कि यह मालिको का कानूनी दायित्व होना चाहिये कि वे ऐसे लोगो को रोजगार मे बनाये रखें तथा उनको उपयुक्त काम दें जो औद्योगिक दुर्घटनाओ के परिणामस्वरूप आशिक रूप से असमर्थ हो गये हों । कर्मचारी राज्य बीमा निगम स्थायी रूप मे असमर्थ व्यक्तियो के पुनर्वास, पुन प्रशिक्षण तथा पुन रोजगार का एक प्रभावी कार्यक्रम बनाये । समिति ने सुझाव है दिया कि योजना के विस्तार के सम्बन्ध मे प्राथमिकताओ का निर्धारण किया जाना चाहिये ताकि सभी फैक्टरियाँ तथा सस्थान, जिनमे १० या अधिक श्रमिको का काम पर लगाने वाली दुकानें तथा वाणिज्यिक सस्थान भी सम्मिलित हैं, इसकी परिधि मे आ जाये । समिति ने वर्तमान समय मे खानो तथा बागानो मे कर्मचारी राज्य बीमा योजना के विस्तार का समर्थन नही किया । समिति ने सिफारिश की कि योजना की परिधि मे लाने के लिए मजदूरी की सीमा को बढाकर १,००० रुपये प्रति माह कर दी जाये । कर्मचारियो के अशदान की अदायगी से छूट के लिए मजदूरी की सीमा बढाकर २ रुपये प्रतिदिन कर दी

जानी चाहिये । समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि बीमारी लाभ को ८ से १३ सप्ताह के लिए बढ़ा दिया जाना चाहिये। समिति ने यह अनुभव किया कि निगम में मालिक तथा श्रमिकों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है। अतः समिति ने सुझाव दिया कि निगम की सदस्य संख्या बढ़ाकर ४० कर दी जाये जिसमें १०-१० प्रतिनिधि मालिकों व श्रमिकों के हों। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि क्षेत्रीय बोर्डों के कार्यों तथा शक्तियों में वृद्धि की जाए ताकि योजना के प्रशासन में वे कारगर ढंग से सहायता कर सकें।

सदर्श आयोजन समिति (Committee on Perspective Planning)—सन् १६७१ में संसद् की अनुमान समिति ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना की कार्य-प्रणाली की समीक्षा की और उसके प्रति बड़ा असन्तोष व्यक्त किया। फलस्वरूप सन् १६७२ में, कर्मचारी राज्य बीमा योजना के सम्बन्ध में एक सदर्श आयोजन समिति का गठन किया गया। समिति से अनेक प्रश्न महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने को कहा गया जैसे कि योजना के विस्तार के लिए समयबद्ध कार्यक्रम, वित्तीय साधनों की प्राप्ति के उपाय, समान स्तर के चिकित्सा लाभ प्रदान करने के लिए योजना का निर्माण, राज्य सरकारों के अंशदान में वृद्धि, छूट सीमा को बढ़ाकर ३ रु० प्रति-दिन करना और जो श्रमिक उन लाभों का उपभोग नहीं करते हैं, उन्हें बिना माँग बोनस देने की व्यवस्था। समिति ने दिसम्बर १६७२ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी परन्तु उस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई।

राष्ट्रीय श्रम आयोग १६६६ की सिफारिशें (Recommendations of the National Commission on Labour 1969)—आयोग ने निम्न सिफारिशें दी (१) कर्मचारी राज्य बीमा निगम समीक्षा समिति द्वारा की गई सिफारिशों को अभियान के रूप में लागू किया जाना चाहिये। (२) उन स्थानों पर पूर्ण तया समृद्ध मेडिकल कॉलिज स्थापित किये जाने चाहिए जहाँ पर बड़े तथा सुसज्जित कर्मचारी राज्य बीमा हस्पताल चालू हों। ये कालिज या तो सीधे निगम द्वारा स्थापित किये जायें अथवा निगम की सहायता से राज्य द्वारा स्थापित किए जायें। जब वित्तीय भार निगम वहन करे तो उस स्थिति में प्रशिक्षार्थियों (trainees) के लिए यह आवश्यक होना चाहिये कि वे अपनी सेवायें एक निर्धारित अवधि के लिए, जो कि ५ वर्ष से कम न हो, कर्मचारी राज्य बीमा को दें। कर्मचारी राज्य बीमा के हस्पतालों को भी चाहिये कि व नर्सों तथा अन्य सम्बन्धित मेडिकल स्टाफ को प्रशिक्षण दें। (३) कर्मचारी राज्य बीमा अस्पतालों में यदि फालतू पलंग हों तो वे सामान्य जनता के लिए उपलब्ध करा दिए जाने चाहिए, बशर्ते कि राज्य सरकारें उनका खर्च वहन करें। (४) कर्मचारी अंशदान के भुगतान से छूट के लिए निर्धारित मजदूरी सीमा को बढ़ाकर ४ रु० प्रतिदिन कर दिया जाना चाहिए। (५) उन बीमा-कृत व्यक्तियों के लिए, जो वर्ष की अवधि में किसी भी प्रकार के लाभ का दावा न करें, एक 'दावारहित बोनस' की योजना लागू की जानी चाहिये। (६) क्षेत्रीय बोर्डों

के गठन की प्रक्रिया मे भी इस प्रकार सुधार किया जाना चाहिये ताकि उसमे मालिकों व कर्मचारियों को अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके और निगम द्वारा बोर्डों के चेयरमैन का मनोनयन (nomination) भी क्रम-चक्र (by rotation) मे किया जाये। बोर्डों को इतने पर्याप्त अधिकार प्राप्त होने चाहिये कि वे अपने अपने सम्बन्धित क्षेत्रों में योजना के कार्यों पर यथेष्ट नियन्त्रण कर सकें। (७) कर्मचारी राज्य बीमा निगम का चाहिये कि वह राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् (National Safety Council) को, उसकी एकीकृत निवारक (Preventative) तथा सुधारात्मक (curative) सेवाओं के कार्यक्रम के एक अग के रूप में, समुचित अशदान दे [1]।

सितम्बर १९७७ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अन्तर्गत नई में सामाजिक सुरक्षा पर आयोजित राष्ट्रीय विचारगोष्ठी मे तथा नवम्बर व दिसम्बर १९७७ मे पाँचवी एशियायी श्रमिक सघ विचारगोष्ठी ने भी कर्मचारी राज्य बीमा योजना पर विचार किया गया था।

उपसंहार (Conclusion)

कर्मचारी राज्य बीमा योजना एशिया मे अपने ही प्रकार की हो योजना है। भारतीय जनता के लिए सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना बनाने की दिशा में यह पहला कदम है। इसे हम एक साहसपूर्ण और साथ ही ऐसी योजना कह सकते है जो बहुत महत्वाकांक्षी नही है। परन्तु अभी तक इसके अन्तर्गत जनसख्या का एक छोटा सा ही भाग आ पाया है, अर्थात् केवल सगठित उद्योगो के मजदूरो पर ही यह योजना लागू होती है। इसके अन्तर्गत सब प्रकार के सकट और सब प्रकार के व्यक्ति, विशेषकर कृषि मजदूर नहीं आते है। सामाजिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से यह एक व्यापक योजना नहीं है। परन्तु इसको एक अधिक बडी और साहसपूर्ण योजना को लागू करने के लिए आधारशिला माना जा सकता है और यह देश की जनता के लिए व्यापक समाज सुरक्षा की योजना बनाने मे मार्ग प्रदर्शक बन सकती है। यह आशा की जाती है कि इस योजना को दृढ विश्वास के साथ कार्यान्वित किया जाएगा, और इसके लागू करने मे अधिकारियों में भी सेवा-भावना निहित रहेगी और मालिक और मजदूरों का इच्छित रूप से पूर्ण सहयोग होगा।

नाविकों के लिये सामाजिक बीमा
(Social Insurance for Seamen)

यह भी उल्लेखनीय है कि मजदूरों के एक अन्य वर्ग के लिए अर्थात् नाविकों के लिए भी भारत सरकार ने एक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की है। इस विषय पर प्रो० बी० पी० अदारकर और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की डॉक्टर (कुमारी) लौरा बोडमर द्वारा तैयार की हुई एक सयुक्त रिपोर्ट दिसम्बर १९४५ मे दी गई थी। इस अदारकर बोडमर योजना बीमारी, रोजगार, वृद्धावस्था व उत्तर-जीवी बीमे और नाविकों के 'प्रतीक्षा काल' के लिए बीमे की व्यवस्था की

1 राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशें (पृष्ठ १६६-७६)

गई है। परन्तु इस योजना के निर्माणकर्त्ताओं के विचार में नाविकों के लिए किसी भी बीमा योजना की सफलता बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करेगी कि उनकी भर्ती की उचित व्यवस्था है। इस व्यवस्था द्वारा समुद्री सेवा में भर्ती होने वाले श्रमिकों की संख्या कम करने तथा उन नाविकों के लिए, जिनको निरन्तर रोजगार नहीं होता एक क्रम-चक्र (Rotation) की योजना लागू करने का सुझाव था। इस सुझाव को ध्यान में रखते हुए सरकार ने बम्बई और कलकत्ता में सरकारी रोजगार दफ्तर खोले हैं। नाविकों के लिए सामाजिक बीमा का प्रारम्भ करना तभी सम्भव हो सकेगा जब रोजगार के ये दफ्तर अपना कार्य सरलता से सफलता पूर्वक करने लगेंगे। नाविकों के लिए एक राष्ट्रीय कल्याण बोर्ड की भी स्थापना १६५५ में हुई, जिसने नाविकों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा योजना के निर्माण हेतु एक उपसमिति की नियुक्ति की। इसके अध्यक्ष श्री एम० एन० मास्टर थे। इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल १६५६ में प्रस्तुत की और यह सुझाव दिया कि नाविकों के लिये भी कर्मचारी राज्य बीमा योजना की भाँति एक पृथक् सामाजिक सुरक्षा योजना होनी चाहिये।

बेरोजगारी बीमा

(Unemployment Insurance)

बेरोजगारी के मूल कारण (Inherent Causes of Unemployment)

सामाजिक बीमे का एक अन्य महत्वपूर्ण भाग अनिवार्य सार्वजनिक बेरोजगारी बीमा है। इस ओर आधुनिक राज्यों का ध्यान भी पर्याप्त रूप से आकर्षित हुआ है। बेरोजगारी का अर्थ होता है किसी योग्य व्यक्ति को रोजगार न मिल सकना। यह एक ऐसी अवस्था है जो अबन्ध नीति (Laissez Faire) पर आधारित आर्थिक प्रणाली में निहित है तथा इसके कारण पैदा होती है। इससे ऐसी अस्थिरता का पता चलता है जो मुक्त उद्यम प्रणाली (Free Enterprise) का एक आवश्यक लक्षण है और सम्भवतः यह एक ऐसा मूल्य है, जिसको चुकाना ही पड़ेगा यदि उत्पादन को दिन प्रतिदिन होने वाली नई-नई विधियों और अविष्कारों के द्वारा तथा बिना नियन्त्रण के आगे बढ़ाना तथा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना है। उद्योग के लिये यह हमेशा सुविधा रहती है कि कुछ मजदूर बेरोजगार रहें जिससे जब भी आवश्यकता पड़े उन्हें बुला लिया जाय। जब व्यापार उन्नति पर होता है तब बेरोजगार मजदूरों की संख्या कम होती है परन्तु जब मन्दी का समय आता है तो संख्या बढ़ जाती है। इन निरन्तर होने वाले सामयिक उतार-चढ़ाव (Cyclical Fluctuations) के अतिरिक्त नये आविष्कारों अथवा विदेशी व्यापार में हानि के कारण भी बड़ी-बड़ी मुसीबतें आ पड़ती हैं जिनसे उद्योग का सारा ताना-बाना शीघ्र नष्ट हो जाता है और मजदूरों को काफी समय तक आलस्य में समय गवाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योगों में कार्य सामयिक होना है

और कुछ कार्यों में जैसे—ठेकेदारों द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यों में, कार्य-व्यवस्था अनियमित होती है। इस प्रकार के कार्यों और उद्योगों में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था नहीं हो पाती। इस प्रकार, बेरोजगारी वह अवस्था है जो हमारे समक्ष अनेक रूपों में आती है और यह विभिन्न देशों के मुक्त उद्यम पर आधारित आधुनिक उद्योग प्रणाली की एक नियमित लक्षण बन चुकी है। (कृपया परिशिष्ट 'ख' भी देखिये।)

बेरोजगारों को सहायता देने की आवश्यकता

(Necessity for Helping the unemployed)

बेरोजगारी अनेक आर्थिक बुराइयों में से एक गम्भीरतम दोष है और यह आर्थिक संगठन के लिये एक गम्भीर खतरा भी है। यदि बेरोजगारी अधिक दिनों तक चलती है तब व्यक्ति और समाज के लिये इसके बहुत हानिकारक परिणाम होते हैं। इससे मानसिक शक्ति का ह्रास, दुःख, आलस्य, दरिद्रता आदि अनेक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। समाज का एक बड़ा तथा सामान्य उत्तरदायित्व यह है कि प्रत्येक को जीविका कमाने और निर्वाह करने का उचित अवसर प्रदान करे। जे० एस० मिल के शब्दों में "राज्य अनिवार्य रूप से एक अपराधी को दण्ड भुगतने के काल में खाने पीने की सुविधायें प्रदान करता है। परन्तु यदि गरीब व्यक्तियों के लिये जिन्होंने अपराध नहीं किया है, ऐसा नहीं किया जाता, तब स्पष्ट रूप से यह अपराध को बढ़ावा देता है।" अब अधिकतर राज्यों ने बेरोजगारी के समय लोगों को सहायता देने के अपने कर्त्तव्य को स्वीकार कर लिया है।

बेरोजगारी सहायता के लिये कुछ योजनायें

(Some Schemes of Unemployment Relief)

मन्दी के समय में १६२६ के पश्चात् अनेक देशों में बेरोजगारों को सहायता देने के लिये अनेक योजनायें बनाई गई थी। कुछ योजनाओं के अन्तर्गत पूर्णतया या मुख्यतया काम देने की सुविधायें दी गई थी और कुछ एक में भत्ता देने की व्यवस्था की गई थी। इनमें से कुछ योजनाओं की व्यवस्था तो किसी विशिष्ट विपत्ति का सामना करने के लिये अस्थायी थी, परन्तु कुछ योजनायें स्थायी थी। बेरोजगारी सहायता योजनायें अमरीका, कनाडा, स्वीडन, आस्ट्रेलिया, ग्रेट ब्रिटेन और यूरोप के अधिकतर देशों में चालू रही हैं। इस प्रकार की सहायता सार्वजनिक निर्माण कार्यों में बेरोजगारों का सामान्य मजदूरी पर रोजगार प्रदान करके दी गई हैं। लाखों मजदूरों को इस प्रकार सहायता दी गई है। बेरोजगारी सहायता की प्रत्येक योजना में यह आवश्यक है कि प्रार्थी में काम करने की योग्यता हो, रोजगार दफ्तर में उसका नाम दर्ज हो किसी भी अपने योग्य रोजगार को स्वीकार करने की उसकी इच्छा हो, किसी प्रशिक्षण लेने व सहायता कार्य करने के लिये वह तैयार रहे और उसे इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता भी हो। बरोज-

गारी-सहायता योजनाओं का मुख्य उद्देश्य लाभ प्राप्त करने वाले मजदूर और उसके आश्रितों का निर्वाह करना होता है। इसीलिए जो राशि सहायता रूप में दी जाती है उसका निर्णय सहायता दिए जाने वाले परिवार के आकार और सदस्यों की संख्या को देखकर किया जाता है। ब्रिटेन तथा आयरलैण्ड जैसे कुछ देशों में बेरोजगारी सहायता योजनाओं का केन्द्रीय सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है और उनका सारा व्यय सार्वजनिक कोष द्वारा पूरा किया जाता है। परन्तु कुछ दूसरे देशों में सरकार म्युनिस्पल बीमा निधियों को या स्थानीय बेरोजगार निधियों को इस हेतु अनुदान प्रदान करती है।

भारत में बेरोजगारी-सहायता प्रदान करने में कठिनाइयां

(Difficulties of Unemployment Assistance in India)

बेरोजगारी सहायता देने की जो प्रणाली अनेक देशों में चल रही है वह सम्भवतः भारत जैसे देश के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें अनेक कठिनाइयां हैं। प्रथम तो भारत इतना बड़ा देश है और यहां बेकारी इतने व्यापक रूप में फैली हुई है कि वर्तमान आर्थिक दशाओं में बेरोजगारी सहायता देने की कोई योजना बनाना असम्भव सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि यह सम्भव भी हो, तो इस प्रकार की प्रणाली हमारे देश के लोगों को आलसी बना सकती है। योजना का लाभ उठाकर अनेक अजिम्मेदार युवक समय बर्बाद करने और साथ में वेतन भी पाने का एक तरीका बना सकते हैं। इंगलैंड में भी ऐसे मामले हुए हैं कि अनेक युवक जो अपने माता-पिता के साथ नहीं रहते थे, उन्होंने कुछ समय तक तो कोई काम किया, फिर छुट्टियाँ मनाने के लिए उसे छोड़ दिया और सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली बेरोजगारी सहायता लेकर खर्च चलाते रहे और कुछ समय पश्चात् फिर कोई नौकरी कर ली। इसके अतिरिक्त, भारत में बेरोजगार-सहायता योजना का प्रशासन करने वाले अधिकारियों द्वारा अपने पद के अनेक दुरुपयोग किए जा सकते हैं, जैसा कि कृषकों के लिए दिए जाने वाले 'तकावी' ऋण के सम्बन्ध में किया जाता है। भारत में एक यह भी कठिनाई है कि इस प्रकार की सहायता का वितरण किन आधारों पर किया जाय क्योंकि भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली है और अधिकांश जनता अशिक्षित है। कभी-कभी यह तर्क भी दिया जाता है कि इस प्रकार की सहायता उन आत्मसम्मानी लोगों की भावना को कुचल देगी जो सरकार से इस प्रकार की सहायता पाने की अपेक्षा स्वयं कोई अच्छी नौकरी करना अधिक पसन्द करते हैं।

बेरोजगारी बीमा (Unemployment Insurance)

परन्तु बेरोजगार लोगों को बेरोजगारी-बीमा योजना के अन्तर्गत भी सहायता प्रदान की जाती है। यह विधि पिछले कुछ वर्षों में अनेक देशों में काफी लोकप्रिय हो गई है। बेरोजगारी में सहायता देना पूर्णतया सरकार का कर्त्तव्य है परन्तु बेरोजगारी बीमे के अन्तर्गत एक ऐसी निधि की स्थापना की जाती है जिसका

निमाण सरकार, मालिक और मजदूरों के त्रिदलीय अंशदान से होता है और फिर इसमें से सहायता दी जाती है। अनिवार्य बेरोजगारी बीमा योजनायें अनेक देशों में लागू की जा चुकी हैं, जैसे—कनाडा (१६४०), ब्रिटेन (१६३५–४०), इटली (१६३६), न्यूजीलैण्ड (१६३८), नार्वे (१६३६), दक्षिणी अफ्रीका (१६३७) और अमेरिका (१६३५–४१)।

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने १६३४ के एक अभिसमय में बेरोजगारी बीमा योजनाओं की सिफारिश की थी, परन्तु भारत में अभी तक बेरोजगारी बीमा के लिये किसी भी विधान की व्यवस्था नहीं की गई है। रॉयल श्रम आयोग ने भी इस प्रणाली को भारत के लिये सम्भव नहीं समझा था। उन्होंने इस सम्बन्ध में कई कठिनाइयों की ओर संकेत किया था, जैसे—किसी नियमित व स्थाई औद्योगिक जनसंख्या का अभाव, देश का बड़ा आकार तथा ऐसी योजना पर अत्यधिक व्यय का होना। परन्तु हमारा देश धीरे-धीरे इस तथ्य के प्रति सजग होता जा रहा है कि बेरोजगारी समाज के लिये बहुत खतरनाक है और बेरोजगारों के लिये किसी न किसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था करने में देर नहीं करनी चाहिये। देश के श्रमिकों के लिये इस प्रकार की योजनाओं के अभाव में जो बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं उनका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। जब मजदूर बेरोजगार होता है तब अनेक सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न होने लगती हैं। अतः सामाजिक बीमा प्रणाली के अन्तर्गत ही बेरोजगारी को भी सम्मिलित करने की अति आवश्यकता है।

परन्तु यह प्रणाली उस समय तक सम्भव नहीं हो सकती जब तक कि बीमे का कोई केन्द्रीय संगठन न हो और जिसका कार्य रोजगार दफ्तरों के माध्यम से न चलता हो। ये दफ्तर केन्द्रीय संगठन की स्थानीय एजेन्सियों के रूप में कार्य कर सकते हैं। इस बात की भी आवश्यकता है कि बेरोजगारी के सही आँकड़े एकत्रित किये जाएँ और यह जाना जाये कि किन परिस्थितियों में बेरोजगारी हो सकती है, क्योंकि किसी भी संकट का बीमा होने के लिये आवश्यक है कि उस संकट को कुछ सीमा तक पहले से ही जानना सम्भव हो। बेरोजगारी बीमा में भी नकद लाभ देने के लिये कठोर शर्तें होती हैं। प्रार्थी को यह सिद्ध करना होता है कि वह जिस रोजगार को करता रहता है वह बीमा होने योग्य है और वह सहायता के लिये एक निश्चित काल के पश्चात् ही दावा कर रहा है तथा उसकी नौकरी कभी उसके दुर्व्यवहार के कारण नहीं की गई है और न ही उसने किसी औद्योगिक विवाद के परिणामस्वरूप या स्वेच्छा से अपनी नौकरी छोड़ी है। बेरोजगार व्यक्ति में किसी न किसी ऐसे कार्य करने की इच्छा व योग्यता भी होनी चाहिये जो उसको साधारणतया मिल सकता है अथवा जो उसके साधारण कार्य के समान होता है। इस प्रकार के कार्य को जो भी प्रचलित मजदूरी की दर हो, इस पर ही स्वीकार कर लेना चाहिये। जब तक श्रमिकों को बेरोजगारी लाभ मिले तब तक

और बेरोजगारी काल मे जो आर्थिक असुरक्षा की समस्या पैदा होती है उसे भी सलझाया जाय। इस दिशा म १९५३ के 'औद्योगिक विवाद अधिनियम' मे सशोधन करके कुछ कदम उठाये गये हैं जिनके अनुसार बेरोजगारी को बेकारी के समय क्षतिपूर्ति प्रदान करने की व्यवस्था है। । (पृष्ठ २०८–२०९ तथा २१२ व २१३ भी देखिये) यह अधिनियम उन खानों और कारखानो मे लागू होता है जहा ५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते है। इस अधिनियम को मई १९५४ से बागान मे भी लागू कर दिया गया है। मौसमी कारखाने इस अधिनियम के अन्तर्गत नही आते। अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारियों को बेरोजगारी और जबरी छुट्टी (Lay off) के समय मे क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है जो उनकी मूल मजदूरी और महँगाई भत्ते का ५०% के हिसाब से होती है। उन बदली श्रमिकों के लिये यह व्यवस्था नही है, जिन्होंने पिछले १२ महीनो मे २४० या इससे अधिक दिन काम किया है। यह लाभ १२ महीनो मे अधिक से अधिक ४५ दिन मिल सकता है, परन्तु यदि कर्मचारी इस अवधि मे एक सप्ताह से अधिक एक ही समय मे जबरी छुट्टी के लिये विवश किया जाता है तो यह लाभ उसे ४५ दिन के पश्चात भी मिलता रहेगा। सन् १९६५ मे किए गये एक सशोधन के अनुसार, अब प्रथम ४५ दिन के पश्चात् भी क्षतिपूर्ति देय होगी। इस प्रकार के कर्मचारियों को प्रतिदिन अपनी हाजिरी लगवानी पडती है और कोई दूसरा उचित काम दिये जाने पर उन्हे उसे स्वीकार करना पडता है। छटनी की अवस्था मे उन्हे या तो एक माह का लिखित नोटिस दिया जाता है अथवा उसके स्थान पर एक माह की मजदूरी दे दी जाती है। छटनी हुए कर्मचारी को एक साल की नौकरी पर १५ दिन की औसत मजदूरी के हिसाब से क्षतिपूर्ति दी जाती है। ऐसी सुविधाओ को प्रदान करने का उत्तरदायित्व मालिको पर है। ऐसी सुविधायें केवल उन्ही श्रमिकों को दी जाती है जिन्होंने निरन्तर एक वर्ष या इससे अधिक कार्य किया है। जून १९५७ मे अधिनियम मे एक सशोधन के अनुसार कुछ विशेष दशाओ को छोडकर, किसी भी उद्योग के उचित बन्द होने या स्वामित्व के हस्तान्तरण होने पर भी छटनी क्षतिपूर्ति दी जायेगी। (देखिये पृष्ठ २१०-२११)। सन १९७६ मे किये गये एक सशोधन के अनुसार (देखिये पृष्ठ २१३), जबरी छुट्टी करने, छटनी करने तथा उद्योग को बन्द करने के मालिक के अधिकार पर उचित प्रतिबन्ध लगाये गये है। अब स्थिति यह है कि ३०० या इससे अधिक श्रमिको वाले सस्थानों के मालिक यदि जबरी छुट्टी या छटनी करना चाहते है अथवा उद्योग को बन्द करना चाहते है तो उन्हे इस सम्बन्ध मे स्पष्ट कारणो का उल्लेख करते हुए कम से कम तीन माह पूर्व सूचना देकर उचित अधिकारी की पूर्वानुमति प्राप्त करनी होगी। जबरी छुट्टी तथा छटनी के समय इस प्रकार जो सहायता दी जाती है वह किसी बीमा योजना के अन्तर्गत तो नही आती, परन्तु फिर भी इस प्रकार की सहायता के कारण बेरोजगारी के दिनो मे श्रमिको को अपनी कठिनाइया कम करने मे बहुत सहायता मिलती है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि इस प्रकार के लाभ उन सस्थानो के श्रमिको को भी

करने के लिए अधिक समय की मांग की। विभिन्न वर्गों द्वारा योजना पर जो टिप्पणियाँ की गई उनको दृष्टिगत रखते हुए योजना में बाद में कुछ संशोधन किये गये। योजना के संशोधन में केवल इस बात की ही व्यवस्था नहीं की गई कि भविष्य निधियों के सदस्यों को बेरोजगारी की अवधि में ६ माह की अवधि तक संरक्षण प्रदान किया जाए अपितु यह भी आश्वासन दिया गया कि निर्वाह निधि की उनकी सदस्यता को जारी रखा जाए और निधि में संचित उनके धन को वृद्धावस्था व अन्य आकस्मिकताओं के लिए सुरक्षित रखा जाए। आकस्मिकता (Contingency) से यहाँ आशय श्रमिक का रोजगार समाप्त हो जाने के कारण उसकी कमाई के स्थगन से है बशर्ते कि श्रमिक रोजगार के योग्य हो और रोजगार के लिए उपलब्ध हो। बीमा योजना में व्यवस्था थी कि भविष्य निधि की सदस्यता के लिए मासिक औसत वेतन का ५० प्रतिशत या कामगार द्वारा निर्वाह निधि की सदस्यता के लिए उनकी कुल उपलब्धियों (emoluments) का ५० प्रतिशत होगा। इस राशि का भुगतान श्रमिक को सदस्य समाप्ति से पूर्व के १२ पूरे महीनों की कमाई के आधार पर किया जाएगा। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी यह वचन दिया कि वह योजना से सम्बन्धित विस्तृत बातों के विषय में परामर्श देने के लिए एक विशेषज्ञ की सेवाएं प्रदान करेगा। श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय के केन्द्रीय मन्त्री ने जुलाई १९६७ में संसद में यह घोषणा की थी कि योजना को शीघ्र ही लागू किया जाएगा। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं लिया गया।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सिफारिश की थी कि बेरोजगारी के आकस्मिक संकट का दीर्घकालीन हल तभी प्राप्त किया जा सकता है जब कि काम पर लगे हुए सभी लोगों के लिए बेरोजगारी बीमे की एक योजना स्वीकार की जाए। किन्तु जब तक ऐसा न हो तब तक छटनी तथा जबरी छुट्टी की क्षतिपूर्ति की वर्तमान व्यवस्थाएँ जारी रहनी चाहिए। किन्तु सरकार ने बेरोजगारी बीमे की किसी भी योजना पर विचार करने के प्रश्न को १५ मार्च १९७३ को लोकसभा में यह घोषणा करके प्रकट टाल दिया कि बेरोजगारी बीमे की योजना को लागू करने के प्रश्न पर सरकार बाद में विचार करेगी इससे पहले राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा प्रस्तुत निर्वाह निधि अंशदान की वृद्धि के सम्बन्ध में निर्णय लेगी। (आयोग ने सिफारिश की थी कि निर्वाह निधि अंशदान (provident fund contributions) की दर ८% से बढ़ा कर १०% कर दी जाए और इस अतिरिक्त अंशदान का एक भाग पेन्शन सम्बन्धी लाभों की वित्तीय व्यवस्था के लिये प्रयोग किया जाए। ऐसे नये लाभों में, बेरोजगारी बीमा को भी सम्मिलित किया जा सकता है क्योंकि आयोग ने एकीकृत सामाजिक सुरक्षा योजना (integrated social security scheme) के अन्तर्गत बेरोजगारी बीमे की सिफारिश की थी।

रोजगार गारन्टी योजना

(Employment Guarantee Scheme)

महाराष्ट्र सरकार द्वारा सन् १९७२ से एक बड़ी ही आदर्श योजना लागू

की गई है जिसे रोजगार गारन्टी योजना कहा जाता है। यह कुछ चुने हुए क्षेत्रों में लागू की गई है। इसके अन्तर्गत, उन सभी समर्थ व्यक्तियों (able bodied persons) को, जो शारीरिक श्रम करने को तैयार हों कुछ विकास परियोजनाओं में काम पर लगाने का आश्वासन दिया जाता है। और यदि सरकार उन्हें रोजगार देने में असमर्थ रहती है तो उस स्थिति में लाभ प्राप्त कर्ताओं को निश्चित भत्ता दिया जाता है। इस योजना की वित्तीय व्यवस्था रोजगार पर लगे सभी व्यक्तियों पर एक विशेष कर लगाकर की जाती है जिसे व्यवसाय कर (Profession Tax) कहा जाता है। यह योजना यद्यपि अभी प्रयोगावस्था में ही है किन्तु फिर भी इसने देश के अन्य भागों में काफी रुचि उत्पन्न की है। कुछ राज्य सरकारों ने बेरोजगारों को वित्तीय सहायता देने की घोषणा पहले ही की हुई है।

वृद्धावस्था और निबल सुरक्षा
(Old Age and Invalidity Security)

आवश्यकता (Its Necessity)

वृद्धावस्था एक दूसरी औद्योगिक और सामाजिक समस्या है जिसका समाधान होना ही चाहिये। यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिकों के अवकाश प्राप्त करने पर और काम के लिये असमर्थ हो जाने के अवसर पर उन्हें सुरक्षा प्रदान की जाय। यदि मजदूर की मृत्यु हो जाये तब उसके आश्रितों को भी सुरक्षा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सुरक्षा की व्यवस्था या तो प्राविडेन्ट फण्ड या अवकाश प्राप्ति के धन (Gratuity) की योजनाओं से अथवा वृद्धावस्था व निबल पेन्शन योजनाओं से हो सकती है। यह कितने दुःख की बात है कि जिस श्रमिक ने अपने जीवन के २० या ३० वर्ष किसी कारखाने में कठोर श्रम में व्यतीत किये हों उसे उसके वृद्ध होने पर कोई भी आश्रय न दिया जाय। वृद्धावस्था के लिये कुछ न कुछ व्यवस्था तो करनी चाहिये क्योंकि औद्योगिक जीवन में संयुक्त परिवार प्रथा लगभग समाप्त हो गई है और इस प्रकार वृद्ध व्यक्ति को संयुक्त परिवार से जो सहारा मिलता था वह भी समाप्त हो गया है। औद्योगिक जीवन में आने से पहले श्रमिक के पास यदि गाँव में कुछ जमीन होती भी है तो अधिक समय व्यतीत हो जाने के बाद वह उसे भी खो बैठता है। श्रमिक की मजदूरी कम होती है, परिवार बड़ा होता है इसलिये वह वृद्धावस्था के लिये कोई बचत भी नहीं कर पाता। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुये श्रमिक को प्राविडेन्ट फण्ड की सुविधा और जहाँ सम्भव हो वहाँ पेन्शन भी दी जानी चाहिये, जिससे वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाने पर और उत्पादन कार्य में बहुत दिनों तक कठोर श्रम करने के पश्चात् वह अपना शेष जीवन आराम से व्यतीत कर सके। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो श्रमिक सदा इस बात के लिये चिन्तित रहेगा कि वृद्धावस्था में उसका क्या हाल होगा। इस चिन्ता से कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बार ऐसा देखा गया है कि वृद्धावस्था की चिन्ता के कारण कई बार समयोपरि काम

किया जाता है या हर उचित और अनुचित तरीके से रुपया कमाने का प्रबन्ध किया जाता है।

वृद्धावस्था क्या है ? (What is Old Age ?)

वृद्धावस्था या तो उस अवस्था को कहा जा सकता है जब मजदूर कार्य करने योग्य नहीं रहता अथवा जब मजदूर को वेतन सहित अन्तिम अवकाश दे दिया जाता है। अर्थशास्त्री वृद्धावस्था उस अवस्था को कहते हैं जब मजदूर को रोजगार से अवकाश दे दिया जाना चाहिये क्योंकि वह और अधिक दिनों तक उत्पत्ति के कार्य में साधारण रूप से प्रभावोत्पादक (Effective) सहयोग नहीं दे सकता। आर्थिक तथा साथ ही डाक्टरी दृष्टिकोण के आधार पर वृद्धावस्था निर्बलता अर्थात् आयु के बढ़ने के साथ-साथ स्वास्थ्य के विघटन की दशा है। इसलिये वृद्धावस्था विभिन्न व्यवसायों में विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग आयु पर आरम्भ हो सकती है। साधारणतः अधिकतर देशों में पेन्शन देने की आयु ६५ वर्ष निश्चित की गई है। इस तथ्य का भी ध्यान में रखा गया है कि स्त्रियाँ कम आयु में ही काम के अयोग्य हो जाती हैं, इसलिये उनके लिये पेन्शन देने की आयु ६० वर्ष निर्धारित की गई है। भारत में साधारणतया अवकाश ग्रहण करने की आयु ६० वर्ष मानी गई है। सरकारी नौकरियों में यह आयु ५५ वर्ष थी जिसे स्वतन्त्रता के बाद केन्द्र में तथा अनेक राज्यों में बढ़ाकर ५८ कर दिया गया।

निर्बलता क्या है ? (What is Invalidity)

जब एक बीमा कराये हुये व्यक्ति को स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत वे सब नकद लाभ दिये जा चुकते हैं जिनको वे पाने का अधिकारी होता है और उसके पश्चात् भी यदि वह बीमार रहता है उस दशा में उसे निर्बल (Invalid) कहा जाता है। इसलिये निर्बलता की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं कि "काम करने की स्थायी अशक्तता ही निर्बलता है।" अत यह भी ऐसी ही अवस्था होती है जैसी वृद्धावस्था क्योंकि दोनों में श्रमिक कार्य करने योग्य नहीं रहता।

पेन्शन की व्यवस्था (Provisions for Pensions)

वृद्धावस्था और निर्बलता की दशा में लाभ या तो अंशदान वाले प्रॉविडेन्ट फण्ड के रूप में दिया जा सकता है या अंशदानरहित पेन्शन अथवा फेमिभ बीमा के रूप में लाभ दिये जा सकते हैं। अंशदानरहित पेन्शन अनेक देशों में अपनाई गई है, जैसे—डेनमार्क, आस्ट्रेलिया, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका। भारत में, सरकारी कर्मचारियों को पेन्शन दी जाती है। कुछ अन्य मालिक और एजेन्सियाँ भी अपने मजदूरों को निर्बलता पेन्शन देती हैं। परन्तु साधारणतः अनेक देशों में अंशदानरहित पेन्शन योजनाओं को सामाजिक बीमे की योजनाओं के कार्यान्वित हो जाने के कारण अधिक महत्व नहीं दिया गया, और अंशदानरहित योजनाओं के स्थान पर अंशदान वाली योजनाओं को लागू किया गया है। पेन्शन-बीमा योजना के अन्तर्गत वृद्धावस्था और निर्बलता आती है। यह अनेक देशों में लागू हो चुकी है। पेन्शन-

बीमे के अन्तर्गत वृद्धावस्था और निर्बलता व अकाल मृत्यु भी सम्मिलित की जाती है जो ऐसी अवस्थायें हैं जिनके लिये श्रमिक क्षतिपूर्ति के अन्तर्गत भी सहायता नही मिलती। इन सभी सकटो के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि जो लाभ और सहायता दी जाये उनकी गणना वर्षों के हिसाब से की जाये। अत इनके लिये एक लम्बी नौकरी की शर्त लागू की जाती है जिसकी अवधि २० वर्ष भी हो सकती है। इस प्रकार पेंशन-बीमा सामाजिक-बीमा का वह अंग है, जिसकी लागत सबसे अधिक होती है। सामाजिक-बीमा प्रणाली के विकास मे यह काफी समय पश्चात लागू होती है।

निर्बलता की दशा में यह निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है कि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के काम के लिये योग्य या उपयुक्त है अथवा नही और कितनी अशक्तता होने पर पेंशन दी जानी चाहिये। यह निर्णय भी कठिन होता है कि किन व्यवसायो अथवा व्यवसायों की श्रेणियों के आधार पर अशक्तता की माप की जाये।

अत ऐसी व्यावहारिक कठिनाइयो के कारण इस समय भारत के औद्योगिक श्रमिकों के लिये कोई पेंशन बीमा योजना बनाना सम्भव नही है और उस समय तक सम्भव भी नही होगा जब तक कोई ऐसी पूर्ण सामाजिक सुरक्षा योजना लागू नही हो जाती जिसके अन्तर्गत सारे सकटो से सुरक्षा की व्यवस्था हो परन्तु इसमें कोई सदेह नही कि हमारे देश में इस प्रकार की सहायता की बहुत अधिक आवश्यकता है।

वर्तमान समय में प्रॉविडेन्ट फण्ड,
पेन्शन और अवकाश प्राप्त धन की व्यवस्था
(Provisions of Provident Funds Pensions and Gratuities Existing at Present)

हमारे देश में वृद्धावस्था के लिए किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था की सदैव ही आवश्यकता रही है। इस सम्बन्ध में रॉयल श्रम आयोग और अनेक श्रम जाँच समितियों का ध्यान आकर्षित हुआ था। परन्तु उनमें से किसी ने भी वृद्धावस्था पेंशन बीमे की सिफारिश नही की। १९३८ मे भारत सरकार ने १९३३ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन के उस अभिसमय को मान्यता प्रदान करने में भी अपनी असमर्थता प्रकट की जो अभिसमय निरन्तर वृद्धावस्था, वैधव्य और अनाथ के अनिवार्य बीमे से सम्बन्धित था। सरकार के इस निर्णय का मुख्य आधार प्रशासन तथा वित्त की कठिनाइयाँ थी क्योंकि भारत जैसे देश में यदि इस प्रकार के अभिसमय को लागू कर दिया जाय तो लाभ प्राप्त करने वालों की संख्या लगभग ४ करोड होगी जिनमें—वृद्ध अशक्त विधवाएँ और अनाथ बच्चे परिवार ही सम्मिलित होंगे।

इस समय औद्योगिक श्रमिकों के लिए सरकारी कारखानों और रेलों

वृद्धावस्था पेन्शन या प्रॉविडेन्ट फण्ड योजनायें चालू हैं। भारत में अनेक मालिकों ने भी अपने श्रमिकों की वृद्धावस्था के लिये प्रॉविडेन्ट फण्ड और अवकाश प्राप्ति के समय कुछ लाभों को प्रदान करने की व्यवस्था की है। इस प्रकार के प्रॉविडेन्ट फण्ड स्थापित करने के लिए और उनको अच्छी तरह चलाते रहने के लिये करों में छूट आदि देकर उत्साहित किया जाता है परन्तु फण्ड के लिये अनेक निर्धारित शर्तों को पूरा करना आवश्यक होता है। १८५५ के प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम, जिसमें संशोधन भी हो चुका है, रेलवे और राजकीय प्रॉविडेन्ट फण्डों में लागू होता है और १६२२ का भारतीय आयकर अधिनियम (Indian Income Tax Act) जिसमें भी संशोधन हो चुका है, उन कम्पनी निधियों पर लागू होता है जिनको आय कर में विशेष छूट मिली हुई है। उनके प्रॉविडेन्ट फण्ड में दिये गये अंशदानों पर आय-कर नहीं लिया जाता।

नागपुर की एम्प्रेस मिलों में अंशदान वाली प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना चालू रही है और इसके साथ ही एक पेन्शन योजना भी है जिसके अन्तर्गत वृद्ध मजदूरों को पेन्शन दी जाती है। "दिल्ली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स" में भी श्रमिकों के लिये वृद्धावस्था पेन्शन, अवकाश धन तथा प्रॉविडेन्ट फण्ड योजनायें चालू रही हैं। मद्रास की बकिंघम एण्ड कर्नाटक मिल्स में भी श्रमिक एक साल से अधिक समय तक काम करने पर प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना का सदस्य बन सकता था। इस फण्ड में मजदूर और मालिक, मँहगाई भत्ते को छोड़कर, मजदूर के वेतन का ७½ प्रतिशत अंशदान के रूप देते हैं। मदुरा की मदुरा मिल्स कम्पनी भी अपने उन मजदूरों को, जिन्होंने ३० वर्ष से अधिक कार्य किया है, पेन्शन देती थी। इस पेन्शन की राशि मजदूर के मासिक वेतन से आधी होती थी और इसके साथ सामान्य रूप से १० रु० महगाई भत्ता भी दिया जाता था। ये मिल अवकाश प्राप्ति का धन भी देती हैं। इंजीनियरिंग उद्योग में, विशेषकर उन फर्मों में, जो भारतीय इंजीनियरिंग परिषद् की सदस्य हैं और जहाँ १०० या इससे अधिक मजदूर काम करते हैं, अनिवार्य अंशदान वाली प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना को अपनाया गया था। जिन फर्मों में १०० से कम मजदूर काम करते हैं उन्होंने अवकाश प्राप्त धन की योजना को अपने यहाँ लागू किया है। पश्चिमी बंगाल की इंजीनियरिंग फर्मों में तो इसे एक निवाचन निर्णय द्वारा अनिवार्य भी बना दिया गया था। बिहार की टाटा की लोहा और इस्पात कम्पनी ने भी अपने मजदूरों के लिये प्रॉविडेन्ट फण्ड योजनाओं की व्यवस्था की। प्रॉविडेन्ट फण्ड और अवकाश प्राप्त धन की योजनायें अनेक कागज मिलों में और समस्त सीमेंट मिलों में भी चल रही थीं।

इसके अतिरिक्त, भारतीय रेलवे में भी स्थायी और पेन्शन न पाने वाले मजदूरों के लिये प्रॉविडेन्ट फण्ड और अवकाश प्राप्त धन की व्यवस्था की गई है। रेलों में अप्रैल १८५७ में एक नई योजना लागू की गई थी जिसके अन्तर्गत सेवारत रेल कर्मचारियों को यह विकल्प चुनने की छूट थी कि चाहे वे अवकाश प्राप्त लाभों

की पेन्शन योजना का चुनाव करें अथवा अंशदायी निर्वाह निधि योजना को स्वीकार करें। नवम्बर १९५७ अथवा उसके पश्चात नौकरी मे आने वाले कर्मचारियों को ता अनिवार्य रूप से पेन्शन नियमो को अपनाना होता है। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग के स्थायी कर्मचारियो को पेंशन पाने का अधिकार है। शेष कर्मचारियों मे

जिन्होने निरन्तर तीन वर्ष तक कार्य किया है उन्हे अंशदान सहित प्राविडेन्ट सेफण्ड की सुविधा दी गई है। प्रत्येक कर्मचारी के लिये जिसका वेतन २० रुपये मासिक या इससे अधिक हैं इस फण्ड का सदस्य होना अनिवार्य है और जिनका वेतन १० रुपये से २० रुपये प्रतिमाह तक है उनके लिये सदस्य बनना उनकी इच्छा पर निर्भर है। प्राविडेन्ट फण्ड योजनाये लगभग सारी नगरपालिकाओं मे भी लागू हैं। इनमे अधिकांश मे केवल स्थायी कर्मचारी ही प्राविडेंट फण्ड मे अपना अंशदान दे सकते हैं। कुछ नगरपालिकाओं मे कहीं-कहीं आय की शर्तें भी रखी गई हैं जो साधारणतया २० रु० प्रति माह है। कानपुर अजमेर नागपुर मद्रास कलकत्ता, लखनऊ और अहमदाबाद की नगरपालिकाये या निगम साधारणत उन लोगो को अवकाश प्राप्ति का धन देती हैं जो प्राविडेन्ट फण्ड योजना के सदस्य नहीं बन सकते। केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के लिये सन १९६४ से एक परिवार पेन्शन योजना लागू की गई है। इसके अन्तर्गत, यदि कोई कर्मचारी सामान्य स्थिति मे अवकाश प्राप्त करता है तो उसे मृत्यु पर्यन्त पेन्शन मिलती है और उपदान (Gratuity) के रूप मे एकमुश्त रकम भी मिलती है। कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति मे उसके आश्रित इस परिवार पेन्शन तथा उपदान के अधिकारी हो जाते है।

जुलाई १९५९ मे भिलाई के हिन्दुस्तान इस्पात कम्पनी के श्रमिकों के लिये भी एक अंशदान सहित प्राविडेन्ट फण्ड योजना १ अप्रैल १९५८ से लागू की गई। कम्पनी का अंशदान 8$\frac{1}{3}$ प्रतिशत होगा और श्रमिक अपनी आय का १/३ भाग तक अंशदान दे सकता है। डी० डी० टी० कारखाना मे अंशदान की दर 8$\frac{1}{3}$ प्रतिशत कर दी गई। तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन ने भी अपने कर्मचारियों के लिये एक प्रा[illegible] फण्ड योजना बनाई। नाविकों के लिये नाविक के निर्वाह निधि अधिनियम १९६६ लागू किया जिस पर २६ मार्च १९६६ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल चुकी है।

इस प्रकार कुछ मालिको ने काफी अच्छी योजनायें प्रारम्भ की हैं परन्तु इनमे मालिको की संख्या बहुत ही कम है। साधारणतः प्राविडेन्ट फण्ड योजना ही अधिक प्रचलित है और अवकाश प्राप्ति धन केवल कुछ ही स्थानो पर दिया जाता है। पेन्शन तो बहुत कम स्थानो पर दी जाती है। इस प्रकार के लाभ प्राप्त करने की योग्यतायें भी विभिन्न स्थानो पर भिन्न भिन्न हैं। परन्तु ये सब व्यवस्थायें मालिकों की इच्छा पर ही निर्भर रही हैं।

रियायतें दे दी गई है, अर्थात् ३ वर्ष तक यह अधिनियम उन पर लागू नहीं होगा। जिन संस्थाओं को बने हुए तीन वर्ष से भी कम समय हुआ है उनको भी निर्धारित अवधि के पूरा होने तक छूट दे दी गई है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के अथवा स्थानीय प्राधिकारियों के संस्थानों पर भी यह योजना लागू नहीं होती थी परन्तु मई १९५८ में एक संशोधन द्वारा इस उपबन्ध को समाप्त कर दिया गया और अब यह अधिनियम इन संस्थानों पर भी लागू होता है। जम्मू और कश्मीर राज्य के अतिरिक्त यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में लागू था किन्तु १ सितम्बर १९७१ से यह इस राज्य में भी लागू कर दिया था। १ अक्टूबर १९६३ से इसे पाण्डेचेरी और १ जुलाई १९६४ से इसे गोआ दमन और दीव में भी लागू कर दिया गया है। दिसम्बर १९५९ के एक संशोधन के अनुसार अब सरकार इस अधिनियम को कारखानों के अतिरिक्त अन्य संस्थानों पर भी लागू कर सकती है। इस अधिनियम को समाचार पत्र संस्थानों में जहाँ २० या उससे अधिक कर्मचारी काम करते हों ३१ दिसम्बर १९५९ से लागू किया जा चुका है।

कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड अधिनियम में १९६० में एक महत्वपूर्ण संशोधन हुआ। इस संशोधन से अब अधिनियम का क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया है और अब यह उन सब संस्थानों पर लागू होता है जहाँ २० या उससे अधिक श्रमिक काम करते है। इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि यदि किसी संस्थान में श्रमिकों की संख्या कम हो गई है तो इस कारण प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम का लागू होना बन्द नहीं किया जा सकता। अधिनियम तब ही लागू नहीं होगा जब संख्या इतनी गिर जाय कि १५ से कम श्रमिक रह जाय और यह कम संख्या निरन्तर एक वर्ष तक रहे। ऐसी संस्थाओं को जो सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत (Registered) है और जिनमें ५० से कम श्रमिक काम करते हैं और जिसमें शक्ति का प्रयोग नहीं होता, इस अधिनियम से छूट दे दी गई है। ऐसे लघु उद्योगों को भी, जिनमें केवल २० से ५० तक श्रमिक काम करते है प्रथम ५ वर्षों के लिए इस अधिनियम से छूट दे दी गई है। यह अधिनियम असम के चाय बागानों तथा चाय फैक्टरियों में लागू नहीं होता जहां कि राज्य सरकार ने एक पृथक योजना चालू कर रखी है। इसके अतिरिक्त, यह अधिनियम उन कारखानों में भी लागू नहीं होता जिनका स्वामित्व या नियन्त्रण ऐसी धर्मार्थ संस्थाओं के हाथ में होता है जो पूर्णतया अपने कर्मचारियों के लाभ के लिये कार्य करती है।

अधिनियम के अन्तर्गत प्रॉविडेन्ट फण्ड योजना की मुख्य विशेषता यह है कि यह मजदूर और मालिक दोनों के लिये अनिवार्य है और दोनों ही पक्षों को इसमें अंशदान देना होता है। पहले तो मालिक अपना और अपने मजदूरों दोनों का अंशदान देगा और तत्पश्चात मजदूरी में से श्रमिकों के अंशदान की राशि काट लेगा। श्रमिक और मालिक में से प्रत्येक को, मजदूर को मिलने वाले कुल धन का 6¼ प्रतिशत अंशदान देना होगा। मजदूर को मिलने वाले धन का अर्थ मजदूर की

मूल मजदूरी और महँगाई भत्ते तथा प्रतिधारण भत्ते से है जिसमें कर्मचारियों को दी जाने वाली भोजन सुविधाओं का नकद मूल्य भी सम्मिलित है। अधिनियम के अन्तर्गत, इस योजना में यदि कोई ऐसी व्यवस्था की गई हो, तो मजदूर अंशदान में अधिक 8⅓ प्रतिशत तक भी अंशदान दे सकता है। फरवरी १९५८ में इस योजना में फिर संशोधन हुआ, जिसके अनुसार, कर्मचारी अब 8⅓ प्रतिशत अंशदान दे सकते हैं। सन् १९६२ में योजना में संशोधन किया गया ताकि चीनी तथा अन्य मौसमी फैक्टरियों में सामान्यतः अदा किये जाने वाले "प्रतिधारण भत्ते" (Retaining Allowarce) पर किये जाने वाले अंशदान को घटाये जाने की व्यवस्था की जा सके।

नवम्बर १९६२ में अधिनियम में फिर संशोधन किया गया जिसके अनुसार केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले किसी भी औद्योगिक संस्थान में जाने के पश्चात् अंशदान की दर 6¼ प्रतिशत से ८ प्रतिशत तक बढ़ा सकती है। श्री एम० आर० मेहर की अध्यक्षता में बनाई गई तकनीकी समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप, नवम्बर १९६२ में अधिनियम में संशोधन किया गया और एक जनवरी १९६३ से, प्रथम ४ उद्योगों अर्थात् सिगरेट इंजीनियरिंग (विद्युत्, तान्त्रिक या सामान्य), लोहा व इस्पात तथा कागज में अंशदान की दर 6¼ प्रतिशत से बढ़ाकर ८ प्रतिशत कर दी गई। यह बढ़ी हुई दर उद्योगों के केवल उन संस्थानों पर लागू कर दी गई है जहाँ ५० या उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। सितम्बर १९७६ के अन्त तक, अंशदान की बढ़ी हुई ८ प्रतिशत की दर ९४ उद्योगों के २१,४५८ संस्थानों में लागू हो चुकी थी (जिनमें २,३५४ छूटप्राप्त थे और १९,१०४ गैर-छूटप्राप्त)।

नवम्बर १९६३ में, अधिनियम में फिर संशोधन किया गया। इस संशोधन में अन्य बातों के साथ निम्न व्यवस्थाएँ की गई—(१) अधिनियम के लाभ उन श्रमिकों को भी प्रदान किए जाने लगे जो ठेकेदारों द्वारा काम पर लगाये जाते हैं। मालिक इनके लिए अंशदान ठेकेदारों से वसूल कर सकता है, (२) कई प्रकार के कर्मचारियों का प्रॉविडेण्ट फण्ड ज़ब्त नहीं किया जा सकता, (३) केन्द्रीय अधिकारियों की भर्ती की जाने लगी, (४) स्वयं अधिनियम में उल्लिखित केन्द्रीय न्यासी बोर्ड (Central Board Trustees) के निर्माण के सम्बन्ध में उपबन्ध संशोधित अधिनियम में सम्मिलित किए गये, (५) निर्वाह निधि कमिश्नरों को निर्वाह निधि की दर निर्धारित करने का अधिकार दिया गया और निरीक्षकों को अधिनियम लागू करने के लिये तलाशी व ज़ब्ती के अधिकार दिये गये, (६) योजना से छूट पाने के सभी नियमों में समानता ला दी गई, और (७) इस बात की भी व्यवस्था की गई कि यदि श्रमिक एक निर्वाह निधि को छोड़ कर अन्य निर्वाह निधि में सम्मिलित हो जाता है तो उसकी निर्वाह निधि की राशि को हस्तान्तरित कर दिया जाए।

प्रॉवीडेण्ट फण्ड में सदस्यों की जो राशि होती है, उनको सदस्यों के ऋण या किसी दायित्व के कारण तथा मजदूरी व लाभों में कमी हो जाने के कारण कुर्की से बचाने के लिये भी अधिनियम में कुछ उपबन्ध हैं। कोई भी मालिक अधिनियम के अन्तर्गत कोई अशदान देने के अपने दायित्व के कारण, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, न तो किसी श्रमिक की मजदूरी में कटौती कर सकता है अथवा न किसी ऐसे लाभ को ही समाप्त या कम कर सकता है जिसको प्राप्त करने का श्रमिक अधिकारी हो। जीवन-बीमा पॉलिसी के भुगतान के लिये फण्ड में से धन निकाला जा सकता है। १९५९ में एक सशोधन के अनुसार, श्रमिक अपनी या अपने परिवार के किसी सदस्य की लम्बी और गम्भीर बीमारी के लिये भी फण्ड में से न लौटाया जाने वाला अग्रिम धन निकाल सकता था। परन्तु यह सुविधा इसका दुरुपयोग करने के कारण तथा कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत चिकित्सा मिलने के कारण २० जनवरी १९६२ से समाप्त कर दी गई। किन्तु सन् १९६४ से, ऐसे सदस्यों को बीमारी के लिये अग्रिम धन प्राप्त करने की छूट दे दी गई है जिन्हें कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत डाक्टरी चिकित्सा तो उपलब्ध है पर नकद लाभ नहीं प्राप्त हो रहे है। अप्रैल १९६० से सरकार की आवास योजनाओं के अन्तर्गत मकान बनाने या खरीदने के लिये भी श्रमिक फण्ड से रुपया निकाल सकता है और यह रुपया उसे फण्ड को वापिस भी नहीं देना पड़ता। प्रॉवीडेण्ट फण्ड कमिश्नर को यह अधिकार है कि वह विशेष परिस्थितियों में जबकि कोई सस्था १५ दिन से ज्यादा बन्द रहे (हड़ताल या तालाबन्दी को छोड़कर) तो प्रॉविडेण्ट फण्ड में से कुछ राशि श्रमिकों को दे दे। दिसम्बर १९६२ से उपभोक्ता सहकारी समिति के हिस्से खरीदने के लिये भी ३० रुपये तक की राशि प्रॉवीडेण्ट फण्ड में से मिल सकती है। निधि का आयुक्त विशेष मामलों में अग्रिम धन लेने की स्वीकृति भी दे सकता है बशर्ते कि सस्थान १५ दिन से अधिक बन्द रहे किन्तु गैर कानूनी हड़ताल या तालाबन्दी की स्थिति में ऐसा नहीं होगा। किसी श्रमिक-विशेष की छँटनी हो जाने की स्थिति में भी अन्तिम रूप से निर्वाह निधि की राशि निकालने के लिये अग्रिम धन लेने की छूट दी गई है। यह अग्रिम धन उसे अस्पताल में भर्ती किसी पारिवारिक सदस्य के इलाज के लिये, पुत्री के विवाह के लिये, या पुत्री की मेट्रिक के बाद की शिक्षा के लिये अथवा किसी आपदा के कारण सम्पत्ति की गम्भीर क्षति की स्थिति में मिल सकता है। यदि अग्रिम धन का उपयोग स्वीकृत उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य या उद्देश्य के लिये किया जाता है तो ६½% ब्याज के साथ उसे वापिस ले लिया जाता है।

जिन स्थानों पर प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजनायें पहले से ही अच्छा कार्य कर रही हैं और वर्तमान योजना के समान ही या अधिक लाभदायक शर्तें प्रदान कर रही हैं, वह उसी प्रकार चालू रहेगी और वहाँ यह अधिनियम लागू नहीं होगा, परन्तु मजदूरों के हितार्थ ऐसे स्थानों पर कुछ शर्तें लागू कर दी गई हैं। सितम्बर १९७९ में, ऐसे

छूट पाये हुय सस्थानो की सख्या ३,०६८ थी। श्रमिकों के किसी भी वर्ग की इस बात को भी सुविधा दी गई है कि अगर उस वर्ग के अधिकाश व्यक्ति चाहे तो इस अधिनियम से छूट (Exemption) ले सकते है, यदि इनको सयुक्त या पृथक्-पृथक् रूप मे ऐसे लाभ मिल रहे हो जो अधिनियम के अन्तर्गत लाभो के बराबर हैं या उनसे अधिक हे। कोई भी व्यक्ति किसी भी फैक्टरी के द्वारा चालू प्रावीडेण्ट फण्ड योजना का सदस्य बना रह सकता है, यदि ऐसे फण्ड को भारतीय आय-कर अधिनियम द्वारा मान्यता प्राप्त है और वह कुछ आवश्यक शर्तों को भी पूरा करता है।

इस योजना के अन्तर्गत आरम्भ मे वे सभी कर्मचारी आ जाते थे (उन उद्योगो मे जहा यह अधिनियम लागू होता है) जिन्होने निरन्तर एक वर्ष (२४० दिन) कार्य किया हो, और जिनकी मूल मजदूरी ३०० रुपये प्रतिमाह से अधिक न हो और जो ठेकेदारों द्वारा काम पर न लगाये गये हो अथवा काम सीखने के लिये भर्ती न किये गये हो। ३१ मई १९५७ मे पात्रता के लिये ३०० रु० तक की सीमा बढाकर ५०० रुपये प्रति माह कर दी गई और १९६२ मे यह सीमा १,००० रुपये प्रतिमाह कर दी गई है। १९५८ मे एक दूसरे सशोधन के अनुसार, जो मजदूर ठेकेदारो द्वारा किसी निर्माण-कार्य के लिये कारखाने मे भर्ती कराये जाते है, वे तथा शिक्षार्थी भी अब इस योजना के अन्तगत आ जाते हैं। इस योजना के क्षेत्र को और विस्तृत करके उन कर्मचारियो पर भी लागू कर दिया गया है जो उस सस्थान मे, जहाँ यह अधिनियम लागू होता है, कार्य के लिये नौकर तो है परन्तु सस्थान से बाहर रहकर कार्य करते हैं। इसी प्रकार उन कर्मचारियो पर भी अधिनियम लागू हो सकता है जिनका मासिक वेतन निश्चित सीमा से अधिक है परन्तु जो अपने मालिको की अनुमति से प्रावीडेण्ट फण्ड के सदस्य होना चाहते है। सशोधन मे 'निरन्तर कार्य' की भी स्पष्ट रूप से परिभाषा कर दी गई है। कोई भी मजदूर जिसने पिछले एक वर्ष मे २४० दिन कार्य किया है, प्रांवीडेण्ट फण्ड का सदस्य हो सकता है। मशीन टूटने या कच्चे माल की कमी के कारण जब श्रमिक जबरी छुट्टी पर होता है अथवा जब महिला श्रमिक मातृत्व-कालीन छुट्टी पर होती है, तब यह छुट्टी के दिन कार्य पर उपस्थिति के दिन माने जायेंगे। कानूनी हड़ताल अधिकृत छुट्टियाँ, बीमारी, दुर्घटना आदि के अवसरो को भी नौकरी मे विघ्न पड़ना नही समझा जायेगा। कुछ और छूट देकर अब यह व्यवस्था कर दी है कि जिन श्रमिकों की नौकरी १ वर्ष से कम की अवधि मे २४० दिन हैं वह भी फण्ड के सदस्य हो सकते हैं।

प्रांवीडेण्ट फण्ड के लिये जो अशदान दिये जाते है, वे एक लेखे मे जमा किये जाते है जिसे 'प्रॉवीडेन्ट फण्ड लेखा' कहा जाता है। ये प्राप्त सप्ताह केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियो (Securities) मे रिजर्व बैंक द्वारा निवेश (Invest) कर दिये जाते है। इस पर सन् १९७९-८० मे ८.२५ प्रतिशत ब्याज दिया जा रहा था। अब सुरक्षा

योजना निधि मे भी ऐसा किया जाता है। मालिको को प्रशासन व्यय के लिए अशदानो का ३ प्रतिशत और देना होता है। जिन सस्थानो को छूट दी गई है उनको भी प्रशासन व्यय का ½ प्रतिशत देना होता है। अब जो दरें निश्चित की गई है वे छूट प्राप्त करने वाले तथा छूट न प्राप्त करने वाले सस्थानो के लिये क्रमश ० ६% तथा ० ३७% है (और जहाँ अशदान की दरें ८% हैं वहाँ ये दरें क्रमश ० ६% तथा २ ५% है)। १९५७ तक मालिको के अशदान का पूर्ण भुगतान २० वर्ष की सदस्यता के बाद हो सकता था और ५ वर्ष से कम समय तक काम करने पर मालिको के हिस्से का भाग नही दिया जाता था, परन्तु पेन्शन के योग्य वृद्धावस्था हो जाने पर ये नियम लागू नही होते थे। १९५७ मे इस योजना मे सशोधन किया गया जिसके अनुसार सदस्यता समाप्ति पर मालिको के अशदान की राशि मिलने की शर्तों को उदार कर दिया गया। अब कोई भी अशदान देने वाला व्यक्ति १५ वर्ष तक सदस्य रहने पर मालिको का कुल अशदान और उसका ब्याज पा सकता है। यदि वह १० वर्ष से १५ वर्ष तक सदस्य रहा है तो उसे मालिको के अशदान का ८५ प्रतिशत भाग मिल जायेगा, ५ साल से १० साल तक सदस्य रहने पर ७५ प्रतिशत, ३ वर्ष तक सदस्य रहने पर ५० प्रतिशत और ३ वर्ष से कम समय तक सदस्य रहने पर २५ प्रतिशत भाग मिलेगा। स्वय मजदूर का अशदान हर हालत मे ब्याज सहित वापिस दिया जायेगा। मृत्यु होने पर (श्रमिक के कानूनी उत्तराधिकारी को या जिसे वह नामित करे) तथा श्रमिक की स्थायी असमर्थता होने पर या पूरी आयु प्राप्त होने पर या छँटनी पर या किसी अन्य सस्था मे तबादला होने पर या स्थायी रूप से बसने के लिये किसी अन्य देश मे चले जाने पर या ऐसे श्रमिको को जो क्षय रोग या कोढ से पीडित हैं, पूरी राशि दी जायेगी। मई १९७३ म यह निश्चय किया गया था कि श्रमिक को मालिक का वह अशदान भी मिलना चाहिए जो कि परिसमापन (liquidation) करने वाले सस्थानो पर बकाया हो। अलग होने वाले श्रमिको को सभी धनराशियाँ एकमुश्त रकम के रूप मे दी जाती हैं। मालिको के अशदान का भाग, जो कि अलग होने वाले श्रमिको को पूरा देय नही होता, ब्याज सहित एक अलग खाते मे रखा जाता है जिसे *आरक्षण तथा अपवर्तन खाता* (Reserve and Forfeiture A/c) कहा जाता है। सितम्बर १९७८ के अन्त तक इस प्रकार जब्त की हुई कुल धनराशि २० ५१ करोड रुपये थी।

प्रॉवीडेण्ट फण्ड के कार्यों मे अधिकारी कमिश्नर होते है जिनमे से एक कमिश्नर केन्द्र मे तथा एक-एक प्रत्येक राज्य मे होता है। इस समय क्षेत्रीय कमिश्नरो की नियुक्ति की गई है और उनको प्रॉवीडेण्ट फण्ड की सदस्यता से सम्बन्धित विवादो को तय करने का अधिकार दिया गया है। अशदान न देने वालो को दण्ड देने के लिये निरीक्षको की नियुक्ति की गई है। मालिको को प्रत्येक मजदूर के लिये एक अशदान-कार्ड रखना होता है जिसमे प्रत्येक मजदूर का मासिक अशदान अकित किया

जाता है। इस बोर्ड का निरीक्षण कभी भी किया जा सकता है। इस समय यह योजना एक केन्द्रीय न्यासी बोर्ड (Board of Trustees) की सहायता से केन्द्रीय सरकार के निरीक्षण में चल रही है, परन्तु इसका विकेन्द्रीयकरण कर देने के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है और यह आशा की जाती है कि कुछ ही समय के पश्चात् उसका प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा होने लगेगा। योजना की कार्यान्विति के लिये १९५९ में देश भर में १७ क्षेत्रीय कार्यालय तथा १५ उप-क्षेत्रीय कार्यालय काम कर रहे थे। क्षेत्रीय समितियाँ भी कई राज्यों में बनाई गई है। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था है कि अंशदान के बकाया (Arrears) की वसूली (Recovery) उसी प्रकार की जा सकती है जिस प्रकार मालगुजारी वसूल की जाती है और बाकीदार मालिकों से हर्जाना भी वसूल किया जा सकता है। अधिनियम की धारा का उल्लंघन करने की स्थिति में ६ माह तक की कैद या १००० रु० जुर्माना अथवा दोनों की ही व्यवस्था है। सन् १९६३ में अधिनियम में संशोधन करके, जिसका कि आगे उल्लेख किया गया है, अब कैद को अनिवार्य कर दिया गया है। यह भी व्यवस्था है कि मालिक किसी भी संस्था के स्वामित्व के सम्बन्ध में या उसे बदलने की अथवा इसी प्रकार के अन्य परिवर्तन की उचित प्राधिकारी को सूचना देंगे। ३० जून १९६९ को निर्वाह निधि की बकाया धनराशि, जो कि न देने वाले संस्थानों से वसूली की जानी थी, २२११ ५० लाख रु० थी।

सितम्बर १९६० में एक विशेष आरक्षित निधि (Special Reserve Fund) की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य समय पूरा होने पर प्रॉवीडेन्ट फण्ड के सदस्यों या उनके वारिसों या नामित व्यक्तियों को उस दशा में भुगतान देना होता है, जब प्रॉवीडेन्ट फण्ड का अंशदान श्रमिकों के वेतन से काट तो लिया जाता है परन्तु मालिकों द्वारा कुल राशि को, अपने अंशदान सहित, पूर्णरूप से जमा नहीं किया जाता या केवल आंशिक रूप से किया जाता है। बकाया राशि मालिकों से वसूल की जाती है। जो राशि आरक्षण और अपवर्तन खाते में पड़ी हुई है उसका उपयोग अब इस कार्य के लिए किया जा रहा है। प्रारम्भ में विशेष आरक्षित निधि 20 लाख रु० स्थानान्तरित किये गये थे। सितम्बर १९७८ के अन्त तक, १२७ ६२ लाख रुपये अलग होने वाले सदस्यों का अदा किये जा चुके थे। १० मार्च १९६५ से अलग होने वाले सदस्यों, उनके वारिसों या नामांकित व्यक्तियों को कर्मचारियों का केवल वह अंशदान दिया जा रहा है जो कि मालिकों द्वारा निधि में जमा नहीं किया जाता। मालिकों के अंशदान की राशि मालिकों से प्राप्त होने पर ही अदा की जाती है।

जनवरी १९६४ से एक निधन सहायता निधि (Death Relief Fund) की स्थापना की गई है। इसका उद्देश्य यह है कि श्रमिक की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को या उसके नामित किये हुये व्यक्ति को कम से कम ५०० रुपये (अगस्त १९६९ से यह राशि ७५० रुपये कर दी गई है) मिल जाएँ, यदि श्रमिक

का मासिक वेतन ५०० रुपये से अधिक नहीं है। इस निधि के लिये भी आरक्षण और अपवर्तन खाते (Reserve and Forfeiture Account) में जमा राशि का उपयोग किया जा रहा है और इसमें से १० लाख रुपये की राशि निधन सहायता निधि में हस्तान्तरित की गई है। दिसम्बर १९७८ तक, इसमें से १०१०५ लाख रुपये मृतक श्रमिकों के उत्तराधिकारियों और नामित व्यक्तियों को दिये जा चुके थे।

'बेवारसी जमा खाते (Unclaimed Deposit Account) के नाम से एक नया खाता बनाया गया है जिसमें अवकाश-मजदूरी के अवशिष्ट शेष से सम्बन्धित रकम, वेतन की बकाया रकम तथा बकाया अंशदान की किश्तों की वह रकम जमा की जायेगी, जो मालिकों से इसलिए प्राप्त होती है क्योंकि ये सदस्यों का नवीनतम पता ज्ञात न होने के कारण उन्हें भेज नहीं पाते। इसी प्रकार, ऐसी संचित रकमें भी इस खाते में स्थानान्तरित कर दी जाती है जो ऐसे सदस्यों से सम्बन्धित होती हैं जो अब काम में नहीं लगे हैं या जो मर गए है। इसके अतिरिक्त, निर्वाह निधि की जो देय रकमें श्रमिक के पते पर भेज दी जाती है किन्तु वापिस लौट आती है, वे भी इसी खाते में डाल दी जाती हैं। कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड संगठन ने उन धनराशियों की भी वापसी शुरू कर दी है जो कि अतिरिक्त उपलब्धि (अनिवार्य जमा) अधिनियम १९७४ के अन्तर्गत देय थी।

सन् १९७१ में कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट फण्ड अधिनियम में संशोधन करके यह व्यवस्था की गई कि यदि निधि के सदस्यों की सेवाकाल में मृत्यु हो जाये तो उन्हें परिवार पेन्शन का लाभ भी मिलेगा। यह लाभ जीवन बीमे के लाभ की एकमुश्त रकम के अलावा होगा। निवृत्ति लाभ के भुगतान के लिए भी समुचित व्यवस्था की गई। मार्च १९७१ मे परिवार पेन्शन-बनाम जीवन बीमा योजना भी लागू की गई। इसमें व्यवस्था है कि सन् १९५२ के कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट फण्ड अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले औद्योगिक कर्मचारियों की यदि असामयिक मृत्यु हो जाये तो उनके परिवारों को दीर्घकालीन वित्तीय सुरक्षा प्रदान की जायेगी। इस योजना के लिए धन की व्यवस्था मालिकों व कर्मचारियों के अंशदान का एक भाग प्रॉवीडेन्ट फण्ड से स्थानान्तरित करके की जायेगी। यह योजना उन सभी कर्मचारियों पर अनिवार्य रूप से लागू होती है जो कि मार्च १९७१ के बाद प्रॉवीडेन्ट फण्ड के सदस्य बने हों। योजना के अन्तर्गत, पुराने सदस्यों को विकल्प की छूट दी गई है। यदि कोई सदस्य २५ वर्ष या उससे कम की आयु में दो वर्ष या उससे अधिक अवधि तक परिवार पेन्शन निधि का सदस्य रहता है और ६० वर्ष की आयु से पूर्व ही मर जाता है तो उसकी परिवार पेन्शन निम्नलिखित को दी जायेगी (क) विधवा या विधुर को उनकी मृत्यु या पुनर्विवाह तक, जो भी पहले हो, (ख) उपर्युक्त (क) के अभाव में सबसे बड़े जीवित अवयस्क पुत्र को जब तक कि वह १८ वर्ष का न हो जाये, (ग) उपर्युक्त (क) व (ख) के अभाव में सबसे बड़ी जीवित अविवाहित लड़की को, जब तक कि वह २१ वर्ष की न हो जाये अथवा उसका विवाह न हो जाये,

इसमे जो भी पहल सम्पन्न हो, यदि किसी मृत कर्मचारी की दो विधवा हो तो पेन्शन प्रथम विवाहित विधवा को दो जायेगी। पेन्शन एक समय म दो व्यक्तियों को कदापि नही दी जायेगी। पेन्शन सदस्य के मासिक वेतन के अनुसार निम्न दरो से दी जायेगी (१) ८०० रुपये या उससे अधिक के वेतन पर—वेतन की १२% किन्तु १५० रु० से अधिक नही (२) २०० रु० या उससे अधिक किन्तु ८०० रु० से कम वेतन पर—वेतन को १५% किन्तु ६० रु० से कम नहीं और ९६ रु० से अधिक नही (३) २०० रु० से कम वेतन पर—वेतन की ३०% किन्तु ४० रु० से अधिक नही। यदि कोई कर्मचारी अपनी मृत्यु से पूर्व ७ वर्ष या उससे अधिक समय तक योजना का सदस्य रहा हो तो उसके अन्तिम वेतन की ५०% पेन्शन ७ वर्ष तक अथवा लाभ प्राप्तकर्त्ता के ६० वर्ष का होने तक, जो भी पहले हो मिलेगी। सितम्बर १९७९ के अन्त तक, योजना की सदस्यता ५० ८५ लाख तक पहुँच चुकी थी। इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि यदि परिवार पेन्शन निधि का कोई सदस्य सगणनीय सेवा (reckonable service) की अवधि मे मर जाता है तो उसके परिवार को जीवन बीमा लाभ के रूप म १,००० रु० की एकमुश्त रु० का भुगतान किया जायगा।

कोयला खान श्रमिको क लिए भी एक ऐसी ही परिवार पेन्शन योजना बनाई गई है।

कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट फण्ड तथा परिवार पेन्शन निधि (सशोधन) अधिनियम के द्वारा सन् १९७३ मे अधिनियम मे फिर सशोधन किया गया। वह सशोधन १ नवम्बर १९७३ से लागू हुआ। इसमे प्रॉवीडेन्ट फण्ड के भुगतान न होने की स्थिति म अधिक कडे दण्ड तथा न्यूनतम अनिवार्य कैद की व्यवस्था की गई है।

कर्मचारियो को निवृत्ति लाभ (Retirement Benefit) देने की भी व्यवस्था की गई है। इसके अन्तगत, निधि के सदस्य कमचारी को निवृत्ति लाभ के रूप मे ४,००० रु० एक मुश्त रकम के रूप मे दिये जाते है, बशर्ते कि उसकी आयु ६० वर्ष हो गई हो, वह २५ वर्ष या इससे कम आयु मे निधि मे सम्मिलित हो गया/हो गई हो और जिसने २ वर्ष या इससे अधिक समय तक निधि मे अपना अशदान दिता हो। यदि कोई सदस्य २५ वर्ष की आयु के बाद निधि (Fund) मे सम्मिलित हुआ हो तो एक उक्त एकमुश्त रकम की धनराशि उसी अनुपात से घट जाती है। इसी प्रकार यदि कोई सदस्य ६० वर्ष की आयु होने से पूर्व ही मृत्यु के अलावा अन्य किसी कारण से नौकरी छोडता है, यदि वह २५ वर्ष या उससे कम आयु मे ही निधि म सम्मिलित हो गया था और यदि उसने २ वर्ष अथवा इससे अधिक तक अंशदान दिया है तो उसे एक निर्धारित दर निकासी लाभ (Withdrawal Benefit) देने की भी व्यवस्था की गई है। यदि कोई सदस्य योजना म २५ साल की आयु के बाद सम्मिलित होता है तो लाभ की रकम योजना मे प्रवेश की आयु के अनुसार ही क्रमश कम होती जाती है।

सन् १९७६ मे, सरकार ने एक नई योजना लागू की जिसे कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना (Employees, Deposit Linked Insurance Scheme) का नाम दिया गया। यह योजना उन सभी कर्मचारियों पर लागू होती है जो छूट पाये हुए तथा बिना छूट पाये हुए, दोनों ही प्रकार के सस्थानों मे प्रॉवीडेंट फण्ड के सदस्य हैं। इस योजना के अन्तर्गत, यदि प्रॉवीडेन्ट फण्ड के किसी भागीदार की सेवा काल मे ही मृत्यु हो जाती है तो उसके प्रॉवीडेन्ट फण्ड की धनराशि प्राप्त करने वाले व्यक्ति को एक अतिरिक्त रकम भी दी जायेगी। यह अतिरिक्त रकम (additional amount) मृत्यु से एकदम पूर्व के तीन वर्षों मे उनके नाम मे जमा प्रॉवीडेन्ट फण्ड की धनराशि के औसत के बराबर होगी और इस अवधि के बीच किसी भी समय यह औसत धनराशि १००० रु० से कम न होगी। योजना के अन्तर्गत देय लाभ की अधिकतम रकम १०,००० रु० है। कर्मचारी सदस्य के लिए यह शर्त भी आवश्यक नहीं है कि वे बीमानिधि मे कोई अशदान दें। केवल मालिकों के लिए ही यह आवश्यक है कि वे कुल उपलब्धियों की रकम के ०.५ प्रतिशत की दर से निधि मे अशदान दें। केन्द्र सरकार भी कुल उपलब्धियों (emoluments) के ०.२५ प्रतिशत की दर से निधि (Fund) मे अशदान देती है। सरकार का यह अशदान योजना पर होने वाले प्रशासनिक व्यय के अलावा होता है।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना का विस्तार

(Extension of the Provident Fund Scheme)

जिन उद्योगों पर योजना १९७६ तक लागू हो रही थी वे निम्नलिखित है—

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
१ नवम्बर, १९५२	(१) सीमेंट, (२) सिगरेट, (३) इन्जीनियरिंग के उत्पादन (बिजली सम्बन्धी यन्त्र या सामान), (४) लोहा और इस्पात, (५) कागज, (६) कपड़ा (सूती, रेशमी या जूट का)।
३१ जुलाई १९५६	(७) खाने वाले तेल और चर्बी, (८) चीनी, (९) रबर और रबर की चीजें, (१०) विद्युत जिसमे बिजली उत्पादन, प्रसारण और वितरण भी सम्मिलित है (११) चाय (असम को छोड़कर जहाँ सरकार ने बागान और चाय उद्योग के लिए एक पृथक प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना बनाई है), (१२) छपाई और उससे सम्बन्धित उद्योग (१३) पत्थर के मल, (१४) सफाई और स्वच्छता का सामान, (१५) विद्युत प्रोसीलीन के ऊंचे और तनाव वाले इन्सूलेटर, (१६) किरण सम्बन्धी यन्त्र (१७) खपरैल (१८) दियासलाई, (१९) काँच।

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
३० सितम्बर, १९५६	(२०) भारी और शुद्ध रसायन, जिसमे ऑक्सीजन, एसेटेलीन और कार्बन-डाइ-आक्साइड गैसें भी सम्मिलित है (२१) नील, (२२) लाख जिसमे चपड़ा भी सम्मिलित है, (२३) न खाये जाने वाले वनस्पति तेल, पशुओं के तेल और चर्बी।
१ सितम्बर १९५६	(२४) समाचार पत्र संस्था।
३१ जनवरी, १९५७	(२५) खनिज तेल को शुद्ध करने वाले कारखाने।
३० अप्रैल, १९५७	(२६) चाय बागान (आसाम को छोडकर), (२७) कॉफी बागान, (२८) रबर बागान, (२९) इलायची बागान तथा सम्मिलित बागान, (३०) काली मिर्च के बागान।
३० नवम्बर, १९५७	(३१) कच्चे लोहे की खानें (३२) मैंगनीज की खानें, (३३) चूने पत्थर की खानें, (३४) सोने की खानें, (३५) औद्योगिक और चालक मद्यसार, (३६) सीमेंट की अदाह चादरें, (४७) कॉफी के कारखाने।
३० अप्रैल, १९५८	(३८) बिस्कुट बनाने के उद्योग जिनके साथ डबलरोटी, मिठाई, दूध का पाउडर आदि उद्योग भी सम्मिलित हैं।
३० अप्रैल, १९५९	(३९) सड़क मोटर यातायात संस्थायें।
३१ मई, १९६०	(४) अभ्रक के कारखाने (४१) अभ्रक की खानें।
३० जून, १९६०	(४२) चीड लकडी के कारखाने, (४३) मोटरों आदि की मरम्मत और सफाई आदि के कारखाने।
३१ दिसम्बर, १९६०	(४४) चावल की मिलें, (४५) दाल की मिलें, (४६) आटे की मिलें।
३१ मई, १९६१	(४७) रलफ उद्योग।
३० जून, १९६१	(४८) होटल, (४९) जलपान-गृह, (५०) पैट्रोल और प्राकृतिक गैस उद्योग जिनमे इनका इकट्ठा करना अथवा वितरण या ले जाना भी सम्मिलित है, (५१) पैट्रोल और प्राकृतिक गैस की खोज से सम्बन्धित उद्योग, (५२) पैट्रोल

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
	तथा प्राकृतिक गैस परिष्करण से सम्बन्धित उद्योग।
३१ जुलाई, १९६१	(५३) सिनेमा उद्योग जिनमे थियेटर भी सम्मिलित है, (५४) फिल्म स्टूडियो, (५५) फिल्म निर्माण केन्द्र, (५६) फिल्मो की वितरण सम्बन्धी संस्थायें, (५७) फिल्मो के धोने से सम्बन्धित प्रयोगशालायें।
३१ अगस्त, १९६१	(५८) चमडा और चमडे की वस्तुओ का उद्योग।
३० नवम्बर, १९६१	(५९) चिकने पत्थर के मर्तबान, (६०) चीनी के बर्तन।
३१ दिसम्बर, १९६१	(६१) गन्ने के ऐसे फार्म जो चीनी मिल-मालिको के द्वारा अथवा उनके दायित्व पर अन्य लोगो द्वारा चलाये जाते है।
३० अप्रैल, १९६२	(६२) व्यापार और वाणिज्य संस्थाये जिनमे वस्तुओ का क्रय-विक्रय, संचय, आयात-निर्यात, विज्ञापन आढतिये, विनिमय बाजार आदि सभी सम्मिलित हैं परन्तु बैंक और राज्य अधिनियम द्वारा स्थापित गोदाम सम्मिलित नही है।
३० जून, १९६२	(६३) फल और सब्जी आरक्षण उद्योग।
३० सितम्बर, १९६२	(६४) काजू उद्योग।
३१ अक्टूबर, १९६२	(६५) ऐसे संस्थान जो लकडी की सफाई आदि मे संलग्न हैं। इनमे तख्ता, डाट, लकडी की मेज, कुर्सी, लकडी का बना खेल का सामान, बेंत और बाँस का सामान, लकडी की बैटरी के खोल आदि सम्मिलित है, (६६) आरा मिल, (६७) लकडी की पकाई के भट्टे (६८) लकडी की सुरक्षा की मशीनें, (६९) लकडी के कारखाने।
३१ दिसम्बर, १९६२	(७०) बॉक्साइट की खानें।
३१ मार्च, १९६३	(७१) मिठाई बनाने का उद्योग।
३० अप्रैल, १९६३	(७२) कपडे धुलाई के कारखाने और सेवाये, (७३) बटन, (७४) ब्रुश, (७५) प्लास्टिक और प्लास्टिक का सामान, (७६) लेखन-सामग्री।

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
३१ मई, १६६३	(७७) थियेटर, टामे और अन्य मनोरंजन कार्य, जहाँ टिकट लगाया जाता है, (७८) समितियाँ, क्लब और परिषदें, जो अपने सदस्यों और मेहमानों से पैसे लेकर खाने पीने और मनोरंजन की सुविधायें प्रदान करती हैं, (७९) कम्पनियाँ समितियाँ परिषदें, क्लब या मण्डलियाँ जो किसी भी प्रकार के नाटक या मनोरंजन के खेल दिखाते हैं और जिसके लिये टिकट लगते हैं।
३१ अगस्त, १६६३	(८०) कैन्टीनें, (८१) वातित पेय (Aerated water) मृदु पेय और कार्बोनेटी जल।
३१ अक्टूबर, १६६३	(८२) स्प्रिटो का आसवान, परिशोधन तथा मिश्रण।
३१ जनवरी, १६६४	(८३) रंग और रोगन, (८४) हड्डी पीसने के कारखाने।
३० जून, १६६४	(८५) बीजन यन्त्र (Pickers), (८६) चीनी मिट्टी की खानें।
३१ अक्टूबर, १६६४	(८७) न्यायवादी, (८८) चार्टर्ड या पंजीकृत लेखाकार, (८९) लागत और कार्य लेखाकार, (९०) इंजीनियर और इन्जीनियर ठेकेदार, (९१) वास्तुशिल्पी, (९२) चिकित्सक व चिकित्सा विशेषज्ञ।
३१ दिसम्बर, १६६४	(९३) दुग्ध व दुग्ध-वस्तुयें।
३१ जनवरी, १६६५	(९४) धातुपिण्डक के रूप में अलौह धातु तथा मिश्र धातु, (९५) यात्रा अभिकरण, (९६) अग्रप्रेषण (Forwarding) अभिकरण।
३१ मार्च, १६६५	(९७) रोटी, (९८) तम्बाकू की पत्तियों को चुनना, सुखाना, छाँटकर और उनका ग्रेडिंग तथा पैकिंग करना।
३१ जुलाई, १६६५	(९९) अगरबत्ती (धूप और धूपबत्ती सहित)।
३१ अगस्त, १६६५	(१००) मैगनेसाइट की खानें।
३० सितम्बर १६६५	(१०१) नारियल की जटायें (बुनाई क्षेत्र को छोड़कर)।
३१ दिसम्बर, १६६५	(१०२) पत्थरों की खुदाई, जिसमें छतों के पत्थर, फर्श

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
	के चौके, नाप-तोल के पत्थर, स्मारको के पत्थर और पच्चीकारी के काम के पत्थर शामिल है।
३१ जनवरी, १९६६	(१०३) ऐसे बैंक जो किसी एक राज्य या सघीय क्षेत्र मे व्यवसाय कर रहे हो और जिनकी शाखाए बाहर न हो।
३० जून, १९६६	(१०४) तम्बाकू उद्योग जो सिगार, जरदा व सुंघनी आदि के निर्माण मे लगा है।
३१ जुलाई, १९६६	(१०५) कागज उत्पाद।
३० सितम्बर, १९६६	(१०६) लायसेंस प्राप्त नमक।
३० अप्रैल, १९६७	(१०७) लिनोलियम, (१०८) इण्डोलियम।
३१ जुलाई, १९६७	(१०९) विस्फोटक।
३१ अगस्त, १९६७	(११०) जूट की गाठें बनाना अथवा दबाना।
३१ अक्टूबर, १९६७	(१११) आतिशबाजी तथा दगाऊ टोपी का निर्माण।
३० नवम्बर, १९६७	(११२) टैन्ट बनाना।
३१ अगस्त १९६८	(११३) बेरीटाइस की खानें, (११४) डोलोमाइट की खानें, (११५) तापसह मिट्टी की खानें, (११६) जिप्सम की खानें, (११७) कायनाइट की खानें, (११८) सिलीमनाइट की खानें, (११९) सेलखडी की खानें।
३१ दिसम्बर, १९६८	(१२०) सिनकोना बागान।
३० अप्रैल, १९६९	(१२१) फैरो-मैगनीज।
३० जून, १९६९	(१२२) बर्फ तथा आइसक्रीम, (१२३) हीरे की खानें।
३१ जनवरी, १९७०	(१२४) ऐच्छिक रूप मे सामान्य बीमा व्यवसाय।
१९७१ के मध्य	(१२५) विशेषज्ञो की सेवाएं देने वाले सस्थान, (१२६) धागो को सूती व लपेटने का काम करने वाली फैक्टरियाँ।

योजना लागू होने की तिथि	उद्योग
१९७२ के मध्य	(१२७) ठेकेदारों तथा अन्य प्राईवेट संस्थाओं द्वारा कमीशन के आधार पर चलाई जाने वाली रेलवे बुकिंग एजेन्सियां, (१२८) कपास ओटना गाँठें बनाना व प्रेस करना।
१९७३ के मध्य	(१२९) भोजनालय, मैस व भोजनालयों को छोड़कर, (१३०) बस्ता बनाने वाले उद्योग, (१३१) व्यक्ति संघ या किसी संस्था द्वारा संचालित अस्पताल नाम के संस्थान।
१९७४ के मध्य	(१३२) जौ की शराब बनाने का उद्योग, (१३३) कच्चे सूत छटाई, सफाई तथा लुञ्चन, (१३४) समितियाँ, क्लब तथा एसोसियेशन, जो सदस्यता शुल्क या चन्दे के अलावा अन्य कोई शुल्क लिये बिना ही अपने सदस्यों को सेवाएं उपलब्ध कराते हैं, (१३५) पोशाक बनाने वाली फैक्टरियाँ, (१३६) कृषि फार्म, फर्मों के उद्यान वनस्पति उद्यान तथा प्राणि-उद्यान (चिड़िया घर)।
१९७५ के मध्य	(१३७) सेलखड़ी की खानें तथा सेलखड़ी को पीसने में लगे संस्थान।
१९७६ के मध्य	(१३८) एपेटाइट की खानें, (१३९) एसबेस्टस की खानें (१४०) मैग्नेसाइट की खानें (१४१) गट्टमिट्टी की खानें, (१४२) कोरंडम की खानें, (१४३) पन्ना की खानें, (१४४) फेल्डस्पार की खानें, (१४५) सेलखड़ी (रेत) की खानें, (१४६) स्फटिक की खानें (१४७) गेरू की खानें, (१४८) क्रोमाइट की खानें, (१४९) ग्रेफाइट की खानें, (१५०) फ्लोराइट की खानें।
१९७७ के मध्य	(१५१) घी और जिलेटिन के मकान निर्माण में लगी फैक्टरियाँ (१५२) पत्थर के चिप्स, पत्थर के चौके, पत्थर के गोले और पत्थर की गिट्टियाँ खोदने वाली खानें, (१५३) मछली साफ करने तथा गैर-वनस्पति खाद्य के परिरक्षण में लगे संस्थान, जिनमें केवल फैक्टरियाँ तथा पोर्क साफ करने वाले संयत्र भी सम्मिलित हैं, (१५४) बीड़ी उद्योग।
१९७८ के मध्य	(१५५) बैंकों के अलावा अन्य वित्तीय संस्थाएं।
१९७९ के मध्य	(१५६) लिगनाइट की खानें (१५७) फेरो क्रोम।

इस प्रकार सितम्बर १६७६ के अन्त तक, कर्मचारी राज्य बीमा योजना १४७ उद्योगों पर लागू हो रही थी। इसके अन्तर्गत आने वाली संस्थाओं की संख्या ८६ ६६७ थी, इनमें से ३०८४ ऐसी संस्थायें थीं जिनको छूट दे दी गई थी और ८६,८८३ संस्थायें ऐसी थीं जिनमें योजना जारी थी, अर्थात् जिनको छूट नहीं दी गई थी। अंशदान देने वालों की कुल संख्या १००० १० लाख थी, इनमें से ३४ ३८ लाख तो छूट देने वाली संस्थाओं में थे और ६५ ७२ लाख ऐसी संस्थाओं में थे जहाँ छूट न दी गई थी। सितम्बर १६७६ के अन्त में, कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड की मदद में कुल निवेश की राशि ५३८८ १८ करोड रु० थी जिनमें ३०६६,६२ करोड रुपये ऐसी संस्थाओं से सम्बन्धित थे जिन्हें छूट दी गई थी और २२८८ ५६ करोड रु० छूट न दी जाने वाली संस्थाओं से सम्बन्धित थे। जनवरी ७६ से सितम्बर १६७६ के मध्य कुल २,४८ ७४६ दावे प्राप्त हुए थे जिनमें २,२२,३६६ दावों का निपटारा करके ७२ ६० करोड रु० का भुगतान किया जा चुका था।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में प्रॉविडेण्ड फण्ड को उन सब उद्योगों पर लागू करने का सुझाव था जिनमें देश भर में कम से कम १० हजार मजदूर कार्य करते थे। तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस बात का सुझाव था कि यह योजना पहले उन सभी उद्योगों पर लागू कर दी जाय जो दूसरी आयोजना के अन्तर्गत नहीं आ पाये थे और उसके पश्चात् वाणिज्य संस्थाओं पर भी यह योजना लागू कर दी जाय। चौथी योजना में सुझाव दिया गया था कि अनेक ऐसे उद्योगों में भी अंशदान की दर को बढ़ा दिया जाय जहाँ कि अभी तक नीची दर चल रही थी।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह सिफारिश[1] की थी कि कर्मचारी प्रॉविडेण्ट फण्ड अधिनियम का विस्तार उन संस्थानों तक भी कर दिया जाना चाहिए जिनमें कि १० से २० व्यक्ति तक काम करते हैं और यह कि अंशदान की न्यूनतम दर ६¼% होनी चाहिये। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि इस समय वहाँ अंशदान की दर ६¼% है वहाँ उसे बढ़ा कर ८% और जहाँ ८% है वहाँ उसे बढ़ाकर १०% कर दिया जाना चाहिये। आयोग ने यह भी कहा कि प्रॉविडेंट फण्ड के एकत्रित धन को ऊँचे ब्याज वाली प्रतिभूतियों में लगाया जाना चाहिये ताकि सदस्यों को ऊँची दर से ब्याज का लाभ मिल सके। किन्तु इन सिफारिशों पर अभी तक कोई कार्यवाही नहीं की गई है। हाँ, सन् १६७३ में अधिनियम में संशोधन करके आयोग की इस सिफारिश पर अवश्य कार्यवाई की गई है कि प्रॉवीडेन्ट फण्ड की देय राशियों का भुगतान न होने की स्थिति कड़े दण्डात्मक पग उठाये जायें और प्रॉविडेण्ट फण्ड के कमिश्नरों को यह अधिकार मिलें कि वे मुकदमा दायर करने की अनुमति दे सकें और देय राशियों की वसूली के लिए प्रमाण-पत्र जारी कर सकें। आयोग ने यह भी सिफारिश की कि जहाँ अंशदान की दर बढ़ा कर १०% की जाए, वहाँ उसके एक भाग (उदाहरणत ४०%) को पेन्शन सम्बन्धी लाभों में परिवर्तित कर

1 Report of the National Commission on Labour, pages 174-75.

दिया जाए। सन् १६७१ से पेंशन परिवार सम्बन्धी एक योजना भी लागू की गई है।

प्रॉविडेन्ट फंण्ड योजना का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(A Critical Estimate of the Provident Fund Scheme)

प्राविडेन्ट फण्ड योजना बचत तथा सामाजिक सुरक्षा का एक मूल्यवान साधन है। इस योजना से मजदूर वर्ग में संतोष पैदा होता है जिससे औद्योगिक शान्ति को बल मिलता है और औद्योगिक क्षेत्रों में स्थायी श्रमिक वर्ग संगठित होता है। इससे वृद्ध मजदूर, दीर्घ समय तक उत्पादन-कार्य करने के पश्चात् घोर, निराश्रित अमानवीय तथा दुःख के जीवन से भी बच जायेंगे और उनको ऐसी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा जैसा कि आज हजारों असमर्थ और वृद्ध श्रमिकों को करना पड़ रहा है। कुछ मालिकों ने इस योजना की इस कारण आलोचना की है कि इससे उद्योग पर बहुत भार पड़ेगा जिससे अन्ततः उत्पत्ति की लागत तथा कीमतें बढ़ जायेंगी और लाभ कमाने की प्रेरणा कम हो जायगी। कुछ लोग इस योजना के विरुद्ध यह भी तर्क देते हैं कि इस योजना से श्रम की गतिशीलता कम हो जायगी क्योंकि यदि श्रमिक एक संस्थान से दूसरे संस्थान में जाना चाहेंगे तो उन्हें मालिकों के पूर्ण अथवा आंशिक अंशदान की प्राप्ति से वंचित होना पड़ सकता है। इस कारण वे एक ही उद्योग या संस्थान में बने रहना पसन्द करेंगे। परन्तु मालिकों की ये आपत्तियाँ उचित प्रतीत नहीं होतीं। मालिकों के अंशदान इतने अधिक नहीं जिनसे उन पर बहुत बड़ा भार आ पड़े और उनकी लाभ की प्रेरणा कम हो जाये अथवा कीमतों में वृद्धि हो जाये। यदि श्रमिक एक ही उद्योग में अधिक समय तक रहते हैं तब तो यह स्थिति और भी लाभप्रद होगी क्योंकि इससे श्रमिकावर्त कम हो जायगा।

फिर भी, योजना के संचालन में कुछ कठिनाइयाँ तथा असंगतियाँ प्रकट हुई हैं। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या बाकीदार संस्थानों (defaulting establishments) की है जिनमें से कुछ तो अपने कर्मचारियों की मजदूरियों में से काटा गया गया धन तक उन्हें वापिस नहीं करते। जून १६७६ में ऐसी बाकियों की मात्रा २२११ ५० लाख रु० थी। सन् १६७३ में इस विषय में अधिनियम में भी संशोधन किया गया और बाकीदारों के विरुद्ध कड़े पग उठाने एवं अनिवार्य दंड की व्यवस्था की गई। तभी से प्रतिवर्ष अधिनियम की धाराओं के उल्लंघन को रोकने तथा बकाया धनराशियों की वसूली के लिये अनेक दावे दायर किये जाते रहे हैं। फिर, एक ऐसे समय में, जबकि पूँजी पर प्राप्त होने वाले प्रतिफल की मात्रा काफी अच्छी है, न्यासी मण्डल को इस बात की छूट नहीं दी गई है वह अपनी निधियों को सरकारी प्रतिभूतियों या डाकघर अवधि जमा योजना में जमा करने के अलावा अन्य साधनों में निवेश करे क्योंकि निवेश के इन वर्तमान साधनों से प्राप्त ब्याज की मात्रा ६ प्रतिशत से अधिक नहीं है। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी इस सम्बन्ध में सिफारिश

की थी और कर्मचारियो के हित मे प्रॉवीडेन्ट फण्ड मे धन को अधिक ब्याज देने वाली प्रतिभूतियो के निवेश करने का सुझाव दिया था। प्रश्न यह है कि इस सम्बन्ध मे कर्मचारी घाटे मे क्यो रहे विशेष रूप से इस स्थिति मे जबकि कीमतें बढ़ने के साथ-साथ रुपये का मूल्य गिर रहा है और इसका प्रभाव अन्त मे प्रॉवीडेन्ट फण्ड की संचित राशि के मूल्य पर पडेगा। साथ ही, यह भी होना चाहिए कि प्रॉवीडेन्ट फण्ड की संचित राशि पर ब्याज का लेखा बैंको के समान ही नियमित रूप से किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे यह प्रतीक्षा नही की जानी चाहिए कि ब्याज का लेखा वर्ष के अन्त मे ही किया जाये, जैसा कि आजकल किया जा रहा है। वर्तमान पद्धति के कारण कर्मचारी अनावश्यक रूप से ब्याज का नुकसान उठा रहे हैं और इस हानि को न्यासी मण्डल स्वय ही रोक सकता है। इसी प्रकार, अभी अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ कि प्रॉवीडेन्ट फण्ड की योजना के संचालन मे उल्लेखनीय सुधार लाया जा सकता है। इसके लिए केवल प्रशासनिक मशीनरी को तेज करने की आवश्यकता है जिसके लिये न्यासी मण्डल के पास पर्याप्त अधिकार तथा शक्ति विद्यमान है। दावे दायर करने की प्रक्रिया भी बडी कठोर है और इस सम्बन्ध मे अनेक शिकायते पाई गई है कि दावो के निपटारे मे अत्यधिक देरियाँ की जाती है। इस अवधि मे अवकाश-प्राप्त कर्मचारियो को भारी कष्ट उठाना पडता है। एक ऐसी ही कठिनाई प्रावीडेन्ट फण्ड के खाते को एक क्षेत्रीय केन्द्र से अन्य केन्द्र को स्थानान्तरित करने मे तब आती है जबकि कोई श्रमिक अपनी नौकरी बदलता है। इन मामलो मे होता यह है कि फाइलो मे पत्र-व्यवहार तो चलता रहता है। किन्तु प्रॉवीडेन्ट फण्ड का खाता अदृश्य हो जाता है। फिर, जैसा कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सुझाव दिया था, अधिनियम का विस्तार उन संस्थानो पर भी किया जाना चाहिए जिनमे १० से २० व्यक्ति काम करते हैं और अंशदान की दरो मे भी वृद्धि की जानी चाहिये।

कोयला खानों मे प्रॉवीडेन्ट फण्ड और बोनस की योजना
(Coal Mines Provident Fund and Bonus Scheme)

कोयला खान प्रॉविडेन्ट फण्ड और बोनस योजना अधिनियम जिसे कि (१९७६ मे इसमे जमा सम्बद्ध बीमा योजना के जोडे जाने के बाद अब इसे कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड तथा विविध उपबन्ध अधिनियम, १९४८ कहा जाता है, १९४८ मे पारित किया गया था, जिसका उद्देश्य यह था कि कोयला खानो मे लगे हुए श्रमिको के भविष्य के लिए उचित व्यवस्था की जाये, उनमे मितव्ययिता की आदत पडे और कोयला खान उद्योग मे स्थायी रूप से श्रमिक रह सकें। अधिनियम मे १९५०, १९५१, १९६५ और १९७६ मे संशोधन भी किये गये। अधिनियम मे केन्द्रीय सरकार कोयला सरकार को कोयला खान कर्मचारियों के लिये एक प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना और एक बोनस फण्ड योजना बनाने के लिये अधिकार दिये गये है। अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई कोयला खान निर्वाह निधि योजना तथा कोयला खान बोनस योजना अब भारत मे स्थित सभी कोयला खानो पर लागू होती है।

कोयला खान बोनस योजना (Coal Mines Bonus Scheme)—अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार ने जुलाई १९४८ मे कोयला खान बोनस योजना तैयार की और उसे १२ मई १९४७ से बिहार और पश्चिमी बगाल की कोयला खानो पर लागू किया। तत्पश्चात् अन्य राज्यो की कोयला खानो पर यह योजना लागू की गई अर्थात् मध्य प्रदेश महाराष्ट्र और उडीसा मे अक्टूबर १९४७ से, आन्ध्र प्रदेश मे अक्टूबर १९५२ से, राजस्थान मे १९५४ से और असम मे अक्टूबर १९५५ से। राजस्थान मे, यह योजना केवल राजस्थान सरकार द्वारा अधिकृत कोयला खानो पर ही लागू होती है। राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश तथा असम के लिए योजनायें वैसे अलग-अलग हैं किन्तु उनकी रूप-रेखा १९४८ की योजना जैसी ही है। इस योजना से श्रमिको को इस बात का प्रोत्साहन मिलता है कि वह नियमित रूप से उपस्थित रहे और अवैध हडतालो मे भाग न लें। यह प्रोत्साहन इस प्रकार दिया जाता है कि श्रमिक एक तिमाही मे कुछ निश्चित दिनो तक उपस्थित रहते हैं और किसी अवैध हडताल मे भाग भी नही लेते तो उन्हे मजदूरी के अतिरिक्त एक तिमाही बोनस भी दिया जाता है। यह योजना कोयला खानो के उन सभी कर्मचारियो पर लागू होती है जिनकी मूल मासिक आय ७३० रुपये से अधिक नही है (प्रारम्भ मे यह सीमा ३०० रुपये थी)। परन्तु इनमें से कुछ विशेष प्रकार के श्रमिकों को छोड दिया जाता है, जैसे माली, भगी, घरेलू नौकर, इमारतें, ईंटें और खपरैल आदि मे लगे हुए ठेके के श्रमिक या ऐसे व्यक्ति जो कि कोयला खानों मे रेलवे का सिविल नियमो के अन्तर्गत रोजगार की शर्तों पर कार्य करते हैं। इस योजना के अनुसार, मासिक वेतन पाने वालो को एक बोनस पाने का अधिकार है जो एक तिमाही में उनकी मूल मजदूरी के २०% के बराबर होता है। तिमाही के समाप्त होने पर दो माह के अन्दर ही बोनस देने की व्यवस्था है। असम मे असम कोयला खान बोनस योजना लागू है जिसके अन्तर्गत दैनिक मजदूरी पाने वाले कर्मचारियो को निर्धारित दरो से साप्ताहिक और तिमाही दोनो बोनस मिलते हैं और मासिक वेतन पाने वालो को केवल तिमाही बोनस पाने का अधिकार है। उपस्थिति की पात्रता अवधि विभिन्न राज्यो मे विभिन्न है। उदाहरणतया, पश्चिमी बगाल व बिहार मे खान के भीतर कार्य करने वाले खनिजो तथा उजरत अर्थात् कार्यानुसार मजदूरी पाने वाले श्रमिक के लिये एक तिमाही मे ५४ दिन और अन्य श्रमिको के लिए एक तिमाही मे ६६ दिन, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और उडीसा मे खान के भीतर के खनिको और खान के भीतर कार्यानुसार मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के लिए एक तिमाही मे ६० दिन तथा अन्य श्रमिको के लिए एक तिमाही मे ६५ दिन। आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान मे कुछ विशेष प्रकार के श्रमिको के लिये, जैसे—कोयला काटने वाले फिटर, भेदक (Driller) आदि के लिये वह तिमाही मे ५२ दिन हैं। खानो के भीतर कार्यानुसार मजदूरी पाने वाले श्रमिको के लिये यह तिमाही मे ६० दिन और अन्य श्रमिको के लिये ६५ दिन हैं। असम मे खान के

भीतर के खनिक और कार्यानुसार मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के लिये जिन्हें दैनिक मजदूरी मिलती है एक सप्ताह मे कम से कम चार दिन दैनिक मजदूरी पाने वाले अन्य श्रमिकों के लिये एक सप्ताह म ५ दिन और मासिक वेतन पाने वाले श्रमिकों के लिये एक तिमाही म ६६ दिन है।

बोनस योजना म अनेक बार संशोधन भी हुए है। १६५७ मे एक संशोधन के अनुसार योजना मे सम्बन्धित सभी रिकार्ड भली प्रकार रखने का उचित व्यवस्था की गई है। अधिनियम और योजनाओं की धाराओं को न लागू करने पर दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। १६५६ म एक संशोधन के अनुसार इस बात की व्यवस्था की गई है कि यदि किसी बकायादगी का भय हो तो प्रबन्धको को एक निरीक्षक के सम्मुख बोनस का भुगतान करना होगा। प्रबन्धको के लिये यह भी अनिवार्य कर दिया है कि बिना दावे वाले बोनस को छ माह पश्चात एक आरक्षित लेख म जमा कर देगे और प्राधिकारियों को यह अधिकार दे दिया गया है कि ऐसी राशि का खनिकों के कल्याण पर व्यय कर सकते है। १६५६ म एक अन्य संशोधन के अनुसार कुछ विशेष रजिस्टरो को रखने की व्यवस्था कर दी गई है। जुलाई १८६० मे मृत श्रमिक के बोनस का उसके नामित व्यक्ति या उत्तराधिकारी को देने की व्यवस्था कर दी गई है। अगस्त १६६० म किये गये संशोधन के अनुसार बोनस की अदायगी की दृष्टि से जबरी छुट्टी के दिनो को उपस्थिति के दिन माना जाना चाहिये। सितम्बर १६६० म की गई एक व्यवस्था के अनुसार मालिको से एक बोनस रजिस्टर रखने की माग की गई। अक्तूबर १६६१ में एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि सवेतन छुट्टियों तथा अर्जित अवकाश को बोनस की गणना के लिए उपस्थिति के दिन ही माना जाए और ऐसी छुट्टियो तथा अवकाश के दिनो की मजदूरी का बोनस की गणना के लिए मूल मजदूरी म ही सम्मिलित कर लिया जाना चाहिये। एक अन्य संशोधन द्वारा श्रम आयुक्तो के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे इस बात की घोषणा तीस दिन के अन्दर कर दे कि कोई हड़ताल अवैध थी या नहीं। जून १६६३ मे किये गये एक संशोधन के अनुसार खान मालिक यदि निर्धारित अवधि मे बोनस नही देते है तो यह भार उन पर होगा कि वे इस बात का प्रमाण दे कि बोनस न देने का उचित कारण क्या था। निश्चित अवधि मे विवरण पत्रो का प्रस्तुत न करना दण्डनीय माना जायेगा। सन १६७० मे इस योजना म संशोधन करके यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रीय कोयला विकास निगम से सम्बन्धित या उसके अधीन कोयला खानो के श्रमिक भी इस योजना के अन्तर्गत बोनस प्राप्त करने के अधिकारी होंगे बशर्ते कि वे अन्य स्थिति मे इसके पात्र हो। सन १६७१ म इस योजना म जो संशोधन किया गया उसके अनुसार उन कर्मचारियों को योजना के लाभ देने पर रोक लगा दी गई जो कि प्रबन्धकीय प्रशासकीय या पर्यवेक्षक पदो पर काम कर रहे हो तथा ५०० रु० मासिक से अधिक वेतन पा रहे हो। सन १६७३ म योजना म एक और

संशोधन किया गया। इसके अनुसार कोयला खान का वह प्रत्येक कर्मचारी, जिस पर यह योजना लागू होती हो, अपने मालिक से यथानुपात आधार पर उस अवधि का बोनस प्राप्त करने का अधिकारी हो जायगा जितने समय कि वह वास्तव में खान पर उपस्थित रहा हो।

कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना

(Coal Mines Provident Fund Scheme)

केन्द्रीय सरकार ने दिसम्बर १९४८ में कोयला खान प्रावीडेन्ट फण्ड योजना बनाई जिसको १२ मई १९४७ में पश्चिमी बंगाल और बिहार की कोयला खानों पर लागू कर दिया गया। तत्पश्चात् इस योजना को मध्य प्रदेश, असम, उड़ीसा, महाराष्ट्र तथा नागालैण्ड में भी लागू कर दिया गया। आन्ध्र प्रदेश, और राजस्थान की कोयला खानों के लिए पृथक योजना बनाकर १ अक्टूबर १९५५ में लागू कर दी गई। एक जनवरी १९६७ में, एक नई योजना को भी अन्तिम रूप दिया गया है और इसे तमिलनाडु की नेवेली लिगनाइट कारपोरेशन की कोयला खानों तथा सलग्न संगठनों में लागू कर दिया गया है। यद्यपि १ सितम्बर १९७१ में जम्मू व कश्मीर राज्य के लिए इस अधिनियम का विस्तार कर दिया गया था किन्तु यह योजना वहाँ १ अक्तूबर १९७१ में लागू हुई। यह योजनाएं भी १९४८ के कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड और बोनस योजना अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई हैं। प्रावीडेन्ट फण्ड योजनाओं के अन्तर्गत इस बात का उल्लेख है कि कौन से श्रमिक फण्ड में सम्मिलित हो सकते हैं, अंशदान का भुगतान किस प्रकार और किस समय और किस दर पर किया जायगा, लेखांकन तथा लेखा परीक्षण किस प्रकार होगा, धन का निवेश किस प्रकार होगा आदि। एक न्यासी बोर्ड की स्थापना की भी व्यवस्था है। सरकारी कोयला खानों के स्थायी श्रमिकों तथा ठेके के श्रमिकों को छोड़कर प्रत्येक श्रमिक को, जो कोयला खान में काम करता है, बिना किसी मजदूरी की सीमा के निर्वाह निधि योजना में सम्मिलित होना पड़ता है। प्रारम्भ में इस सम्बन्ध में मजदूरी की सीमा ३०० रुपये प्रतिमास निर्धारित की गई थी परन्तु यह सीमा सन् १९४८ की योजना के लिए १९५७ में और राजस्थान व आन्ध्र प्रदेश की योजनाओं के लिए सन् १९६३ में समाप्त कर दी गई थी। १९६१ तक प्रावीडेन्ट फण्ड पात्रता की शर्त बोनस योजना की पात्रता थी। परन्तु १९६१ में प्रावीडेन्ट फण्ड योजना को बोनस योजना से अलग कर दिया गया और इसके लिए पात्रता अलग से बना दी गई। प्रॉवीडेण्ट फण्ड का सदस्य बनने के लिए पात्रता छः माह की अवधि में खान के भीतर कार्य करने वालों के लिए १०५ दिन की उपस्थिति और खान के ऊपर कार्य करने वालों के लिए १३० दिन की उपस्थिति कर दी गई। १ जनवरी १९७० से फण्ड की सदस्यता के लिए पात्रता की अवधि में परिवर्तन किया गया और यह तीन मास की अवधि में खान के भीतर कार्य करने वालों के लिए ४८ दिन की उपस्थिति और खान के ऊपर कार्य करने वालों के लिए ६० दिन की उपस्थिति कर दी गई। सवेतन छुट्टियों की गणना उपस्थिति के दिनों के रूप में की जाती है।

एक संशोधन के अनुसार खान मैनेजर और पर्यवेक्षक कर्मचारी, जिनका वेतन ३०० रुपय से अधिक भी है, योजना के अन्तर्गत ले लिए गये है। परन्तु उन लोगो को छोड दिया गया है जो राष्ट्रीय कोयला विकास निगम मे कार्य करते है। इन लोगो के लिए प्रॉवीडेन्ट फण्ड की सदस्यता के लिए तिमाही मे ७४ दिन की उपस्थिति की शर्त लागू की गई है प्रॉवीडेन्ट फण्ड मे जा सदस्यो की राशि होती है उसको सदस्यो के ऋण या किसी दायित्व के कारण कुडकी स बचाने के लिए भी अधिनियम मे उपबन्ध है। किसी सदस्य की मृत्यु हा जाने पर फण्ड की राशि उसके नामित व्यक्ति को मिल जायेगी और उसम से, सदस्य की मृत्यु से पूव यदि उस पर कोई ऋण या दायित्व था भी, ता उसके लिए कटौती नही की जायेगी। अधिनियम मे इस बात की व्यवस्था है कि प्रॉवीडेन्ट फण्ड के बकाया की वसूली उसी प्रकार की जा सकती है जिस प्रकार मालगुजारी की वसूली की जाती है। योजनाओ की धाराओ को न मानने पर दण्ड की भी व्यवस्था है छ माह का कारावास अथवा एक हजार रुपये तक जुर्माना या दोनो हो सकते है। योजना के प्रशासन के लिये सरकार निरीक्षको की नियुक्ति कर सकती है। सदस्यो को उपभोक्ता सहकारी समितियो का शेयर खरीदने के लिये या मकान के निर्माण या जमीन खरीदने के लिये तथा जीवन बीमा पालिसियो की वित्त व्यवस्था के लिये फण्ड से राशि दी जा सकती है जिसका वापिस भी नही करना हाता।

अशदान की दर आरम्भ म विभिन्न आय वर्ग के श्रमिको के लिए भिन्न-भिन्न थी, और लगभग मूल मजदूरी, महँगाई भत्ते और नकद व वस्तु के रूप मे भोजन और अन्य सुविधाओ के मूल का ६¼% आती थी जिसमे मालिको को भी उतनी ही राशि देनी होती थी। कोयला उद्योग मे सशोधित मजदूरियो के लागू होने के पश्चात् जनवरी १६५८ मे योजना मे सशोधन करके एक समान अशदान की दर निर्धारित कर दी गई जो कुल आमदनी का ६¼ प्रतिशत रखी गयी। १ अक्टूबर १६६२ से सभी कोयला खानो म अशदान की दर बढाकर श्रमिक की कुल आमदनी का ८% कर दी गई है। जून १६६३ स इस बात की व्यवस्था कर दी गई कि यदि श्रमिक चाहे तो वह फण्ड मे ऐच्छिक रूप से अपनी आमदनी की ८% और राशि जमा कर सकते है। सन् १६६४ मे एक सशोधन द्वारा, श्रमिको को यह अधिकार दे दिया गया कि वह अपने ऐच्छिक अशदान को किसी भी समय समाप्त कर सकता है और उस तिथि तक के ऐसे अशदानो की राशि का निकाल सकता है।

कोई भी सदस्य फण्ड की पूरी राशि पा सकता है यदि वह ५० वर्ष की आयु के पश्चात् नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लेता है या स्थायी और पूर्ण अशक्तता के कारण अवकाश ग्रहण करता है या वह स्थायी रूप स दूसरे देश म बसने के लिय चला जाता है या किसी ऐसी कोयला खान मे काम पर नही लगता है जिसमे यह याजना एक साल के लिए लागू की गई हो। मृत्यु अथवा छँटनी की स्थिति मे

पूरी रकम की भी वापिसी की जाती है। जहाँ तक श्रमिकों को मिलने वाले मालिकों के अंशदान का प्रश्न है, जुलाई १९५६ में संशोधन करके यह व्यवस्था की गई कि मालिकों के अंशदान का निधि में से जब्त किया जाने वाला भाग ब्याज सहित इस प्रकार होगा यदि श्रमिक की सदस्यता की अवधि तीन वर्ष से कम है तो ७५% यदि सदस्यता की अवधि ३ और ५ वर्ष के बीच में है तो ६०%, ५ से १० वर्ष तक की सदस्यता की स्थिति में २५ प्रतिशत, १० से १५ वर्ष तक सदस्य रहने पर १५% और यदि सदस्यता १५ वर्ष या उससे अधिक है तो मालिकों के अंशदान का कोई भी भाग जब्त न होकर पूरा भाग मिलेगा। यदि कोई श्रमिक ५० वर्ष की आयु होने के पश्चात् अवकाश ग्रहण कर लेता है तो उसे मालिकों के अंशदान की पूरी धनराशि मिलेगी, चाहे उसकी सदस्यता की अवधि कितनी ही क्यों न हो। १९६४ से पूर्व यदि श्रमिक ५० वर्ष से कम आयु पर नौकरी छोड़ देता था तो प्रॉवीडेन्ट फण्ड की राशि के लिए उसे छः माह प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। अब प्रावीडेन्ट फण्ड आयुक्त को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह इस अवधि काल को विशेष परिस्थितियों में कम कर दें। योजना में संशोधन करके इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि सभी कोयला खानों में श्रमिकों को प्राविडेन्ट फण्ड की पास बुक प्रदान की जाएँ।

योजना का प्रशासन एक न्यासी बोर्ड के द्वारा किया जाता है जिसमें सरकार, मालिकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि समान संख्या में होते हैं। निधि का मुख्य कार्यालय धनबाद में है और कोयला खान निर्वाह निधि कमिश्नर इसका मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है। आन्ध्र प्रदेश मध्य प्रदेश और पश्चिमी बंगाल में तीन क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित कर दिये गये हैं जो सहायक आयुक्तों के अधीन हैं। प्रशासन के व्यय की पूर्ति मालिकों पर एक पृथक् कर लगाकर की जाती है जिसकी दर कुल अनिवार्य अंशदानों की २.८% होती है। दिसम्बर १९७६ के अन्त तक, निधि में कुल संग्रह लगभग २८४.५६ करोड़ रुपया था जिसमें ऐच्छिक अंशदान के २८.२६ लाख रु० भी सम्मिलित थे और सदस्य संख्या ६.६३ लाख थी। अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली कोयला खानों की संख्या १०६१ थी। २,६८८ सदस्य ऐच्छिक रूप में भी अंशदान दे रहे थे। ५ सितम्बर १९७० को मण्डल द्वारा निवेश (investment) के प्रारूप का भी निर्धारण कर दिया गया था। इसके अनुसार, २५% निवेश तो केन्द्र व राज्य सरकार की प्रतिभूतियों में अथवा सरकार द्वारा गारन्टी कृत उन प्रतिभूतियों में किया जायगा जिनसे औसतन कम से कम ५½% ब्याज प्राप्त हो। शेष ७५% निवेश भारतीय स्टेट बैंक की कम से कम ७% ब्याज देने वाली अवधि जमा योजना में किया जायगा।

अक्तूबर १९७६ में, कोयला खान प्राविडेण्ट फण्ड तथा विविध उपबन्ध अधिनियम १९४८ से सम्बन्धित कार्य अब स्थानान्तरित करके कोयला विभाग को सौंप दिया गया है।

दिसम्बर १९६२ मे, ५ लाख रुपये की एक विशेष आरक्षित निधि (Special Reserve Fund) भी बनाई गई जिसमे धनराशि कर्मचारी निर्वाह निधि के आरक्षण एव अपवर्तन खाते मे स्थानान्तरित की गई। इसका उद्देश्य निर्वाह निधि के सदस्यो या उनके उत्तराधिकारियो अथवा नामित व्यक्तियो को उस दशा मे भुगतान देना होना है जब निर्वाह निधि का अशदान श्रमिको के वेतन मे काट तो लिया जाता है किन्तु मालिको द्वारा कुल राशि को अपने अशदान सहित बिल्कुल जमा नही किया जाता या केवल आंशिक रूप से जमा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सन् १९६४ मे एक निधन सहायक निधि (Death Relief Fund) भी बनाई गई जिसमे प्रारम्भ मे निर्वाह निधि के अपवर्तन खाते से एक लाख रुपये की धनराशि स्थानान्तरित की गई। इस निधि के निर्माण का उद्देश्य यह था कि श्रमिक की मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी को कम से कम १,००० रुपये मिल जायें, यदि निर्वाह निधि मे उस श्रमिक की राशि इस सीमा तक नही पहुचती है। दावो के शीघ्र निपटारे के विषय मे आश्वस्त होने के लिए ऐसी व्यवस्थायें की गई कि निर्वाह निधि की सचित धनराशियों का भुगतान नकद रूप मे कोयला खान कार्यालयो अथवा निधि के कार्यालयो मे ही किया जाये। एक कोयला खान घातक एव गम्भीर दुर्घटना लाभ योजना बनाई गई जिसकी लागत का १/१० वाँ भाग कोयला खान निर्वाह निधि मे मे दिया जाता है। इस योजना का प्रशासन कोयला खान श्रम कल्याण सगठन द्वारा किया जाता है। यह योजना उन श्रमिको के परिवार के सदस्यो को कुछ नकद अदायगियो के विषय मे आश्वस्त करती है जो खानो मे घातक दुर्घटनाओं से पीडित होते है अथवा खानो की दुर्घटनाओ के कारण पूर्णतया एव स्थायी रूप मे असमर्थ हो जाते है। ये लाभ उन लाभो के अलावा प्राप्त होते हैं जो कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत मिलते है।

सन् १९६५ का सशोधन (Amendment of 1965)—दिसम्बर १९६५ मे कोयला खान निर्वाह निधि तथा बोनस योजना अधिनियम, १९४८ मे फिर सशोधन किया गया। सशोधन १ अप्रैल १९६६ से लागू हुए। ये सशोधन अन्य के अलावा निम्न बातों से विशेषत सम्बन्धित थे अधिनियम के क्षेत्र तथा परिधि का विस्तार करना, खान-श्रमिको की अन्य निर्वाह निधियो की सचित धनराशियो का कोयला खान निर्वाह निधि मे अनिवार्य स्थानान्तरण, कोयला खान निर्वाह निधि कमिश्नर को मालिको से वसूल की जाने वाली देय राशियाँ निर्धारित करने का अधिकार देना, बार-बार अधिनियम का उल्लघन होने की स्थिति मे अधिक दण्ड की व्यवस्था, और देय धनराशियो का भुगतान देर मे होने पर हर्जाना वसूल करना, परन्तु बकाया धन-राशि का २५% से अधिक नही। उपभोक्ता सहकारी समितियो के शेयर खरीदने के लिये अग्रिम धन देने की व्यवस्था को और अधिक उदार बना दिया गया है।

कर्मचारी परिवार पेन्शन योजना १९७१, जिसका कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है, उन श्रमिकों पर भी लागू होती है जो कि कोयला खान प्रॉविडेन्ट फण्ड

योजना के अन्तर्गत आते हैं। १९७६ से कोयला खान श्रमिकों के लिये जमा सम्बद्ध बीमा योजना (Deposit Linked Insurance Scheme) भी लागू की गई है। इस योजना के उपबन्ध भी कर्मचारी प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम के उपबन्धों जैसे ही हैं।

असम चाय बागान प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना अधिनियम, १९५५

(The Assam Tea Plantations Provident Fund Scheme Act, 1955)

यह अधिनियम १५ जून १९५५ में लागू हुआ। इसके अन्तर्गत असम के चाय बागानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिये प्राविडेन्ट फण्ड की एक अनिवार्य योजना बनाई गई। यह योजना बागानों में काम करने वाले एवं मजदूरी पाने वाले (कारीगरों सहित) सभी श्रमिकों पर लागू होती है किन्तु इसमें लिपिक वर्ग तथा चिकित्सा सम्बन्धी स्टाफ कर्मचारी सम्मिलित नहीं है। श्रमिक को मिलने वाली मजदूरी तथा महँगाई भत्ते का ६¼% भाग मालिकों तथा श्रमिकों के अंशदानों के रूप में फण्ड जमा किया जाता है किन्तु यदि श्रमिक चाहे तो ८⅓% तक भाग अंशदान के रूप में जमा करा सकता है। सन् १९५२ के कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट फण्ड के समान ही इसमें भी कुर्की आदि के विरुद्ध श्रमिकों को पर्याप्त सुरक्षायें प्रदान की गई हैं। उदाहरण के लिये श्रमिक की जीवित अवस्था में अथवा उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसके किसी ऋण या देनदारी के बदले में फण्ड के धन की कुर्की नहीं किया जा सकता और न श्रमिक की किसी देनदारी के बदले में मालिक उसकी मजदूरी या उसको मिलने वाला कोई लाभ ही कम कर सकता है। प्रत्येक मालिक की यह जिम्मेदारी होती है कि वह अंशदान एकत्र करे, जमा करे और उनका आवश्यक अभिलेख रखे। अधिनियम की धाराओं का उल्लंघन करने की स्थिति में ६ माह तक कैद या १००० रु० तक जुर्माना अथवा दोनों ही सजाओं की व्यवस्था की है। फण्ड का प्रशासन ट्रस्टियों के एक बोर्ड द्वारा किया जाता है। अप्रैल १९७२ में कर्मचारी परिवार पेन्शन योजना (१९७१) को असम के चाय बागानों के श्रमिकों पर भी लागू कर दिया गया है।

नाविकों का प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम, १९६६

(The Seamen's Provident Fund Act, 1966)

जनवरी १९६४ में नाविकों के लिये बनी राष्ट्रीय कल्याण परिषद् ने एक त्रिदलीय समिति की नियुक्ति की थी। इसी समिति द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर केन्द्र सरकार ने उपर्युक्त अधिनियम का निर्माण किया। यह अधिनियम जुलाई १९६६ में लागू हुआ। इस अधिनियम का निर्माण सामान्यतः सन् १९५२ के कर्मचारी प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियम के नमूने पर ही किया गया है और यह प्रत्येक नाविक तथा उसके मालिक पर लागू होता है। 'नाविक' (seaman) से आशय उस व्यक्ति से है जो १९५८ के व्यापारिक पोत अधिनियम के अन्तर्गत जहाज के कर्मचारी-मण्डल के सदस्य के रूप में काम पर लगा हो किन्तु इसमें ये लोग सम्मिलित नहीं हैं -

कप्तान नौचालक, इंजीनियर व रेडियो, चिकित्सा व कल्याण अधिकारी तथा नर्स पायलट प्रशिक्षु (pilot apprentices), नाई, बिजली मिस्त्री जैसे व्यक्ति। 'मालिक' (employer) से आशय जहाज के कप्तान अथवा मालिक से है। यह अधिनियम केन्द्र सरकार को नाविकों के लिये प्रॉविडेन्ट फण्ड की योजना बनाने के लिये अधिकृत करता है। इसके अन्तर्गत व्यवस्था की गई थी कि १ जुलाई १९६४ से ३१ मार्च १९६८ तक तो श्रमिक अपनी मजदूरी का ६% भाग फण्ड मे अशदान के रूप मे देंगे और उसके पश्चात् ८% की दर से। इतना ही अशदान मालिकों के लिये भी देय है। कुर्की, दण्ड तथा प्रशासन आदि से सम्बन्धित सभी व्यवस्थायें अन्य प्रॉविडेन्ट फण्ड अधिनियमों के समान ही रखी गई है।

आनुतोषिक भुगतान अधिनियम, १९७२
(Payment of Gratuity Act, 1972)

उपर्युक्त अधिनियम के बनने से पूर्व, सन् १९७० व १९७१ मे इस विषय पर दो राज्य कानून बनाये गए थे। ये है (१) केरल औद्योगिक कर्मचारी आनुतोषिक भुगतान अधिनियम, १९७० (Kerala Industrial Employees Payment of Gratuity Act, 1970) और (२) पश्चिमी बगाल कर्मचारी आनुतोषिक भुगतान, अधिनियम, १९७१ (West Bengal Employees Payment of Gratuity Act, 1971)। सन १९७१ मे श्रम मन्त्री सम्मेलन तथा भारतीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशो के बाद, आनुतोषिक भुगतान अधिनियम १९७२ के नाम से एक केन्द्रीय अधिनियम बनाकर लागू किया गया। यह अधिनियम उस प्रत्येक फैक्टरी, खान, तेल, क्षेत्र, बागान, बन्दरगाह, रेलवे कम्पनी, दुकान अथवा सस्थान तथा मोटर यातायात उद्यम पर लागू होता है जिसमे कि १० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हो। अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी कर्मचारी ५ वर्ष सेवा मे रहने के बाद यदि अधिवार्षिकी (superannuation) या सेवानिवृति या त्याग पत्र या मृत्यु या असमर्थता या सेवा समाप्ति के कारण यदि नौकरी मे अलग होता है तो वह आनुतोषिक प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। मृत्यु अथवा असमर्थता की स्थिति मे, ५ वर्ष की सेवा की शर्त आवश्यक नही है और मृत्यु की स्थिति मे आनुतोषिक का भुगतान उसके उत्तराधिकारी को किया जाता है। आनुतोषिक का भुगतान प्रत्येक पूर्ण वर्ष की सेवा पर १५ दिन की मजदूरी की दर से किया जाता है किन्तु यह २० माह की मजदूरी से अधिक नही होता। (मौसमी कर्मचारियो की स्थिति मे यह भुगतान प्रत्येक मौसम के लिए ७ दिन की मजदूरी की दर से किया जाता है)। यह अधिनियम उन सब कर्मचारियो पर लागू होता है जो १,००० रु० तक के प्रारम्भिक वेतन पर काम पर लगे थे। यहाँ वेतन या मजदूरी शब्द मे महँगाई भत्ता तथा अन्य भत्ते भी सम्मिलित है।

उत्तर प्रदेश में वृद्धावस्था पेंशन योजना
(Old Age Pension Scheme) in U P.)

उत्तर प्रदेश सरकार ने १ दिसम्बर १९५७ से ७० वर्ष या इससे अधिक आयु

के निर्धन और निराश्रित व्यक्तियों को उनकी वृद्धावस्था में सहायता देने के लिये एक वृद्धावस्था पेन्शन योजना लागू की। विधवाओं तथा असमर्थ व्यक्तियों के लिये फरवरी १९६२ में आयु सीमा घटाकर ६५ वर्ष और नवम्बर १९६३ में ६० वर्ष कर दी गई है। यह हमारे देश में अपनी तरह का एक अनुकरणीय सामाजिक कदम है। यह केवल मजदूरों तक ही सीमित नहीं है वरन् यह उन सब व्यक्तियों के लिये है जो यहाँ के निवासी हैं और उत्तर प्रदेश में रहते हुए उन्हें एक वर्ष से अधिक समय हो गया है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ऐसे अभीष्ट (Needy) लोगों की सहायता करना और उन्हें किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है जिनके पास आय का कोई साधन नहीं है और जिनके सूची में दिये हुए कुछ विशिष्ट प्रकार के ऐसे कोई सम्बन्धी नहीं हैं जिनकी आयु २० वर्ष या उससे अधिक हो, या यदि है भी तो उसकी आयु ७० वर्ष (अब ६० वर्ष) से अधिक है, या वह असमर्थ है या निराश्रित है या ७ वर्ष से उसका पता नहीं है या वह परिवार छोड़ गया है या पत्नी की आयु ६० वर्ष से अधिक है। दिसम्बर १९५९, अप्रैल १९६१ और नवम्बर १९६३ में सम्बन्धियों की इस सूची में संशोधन करके और अधिक व्यक्तियों को इस योजना के अन्तर्गत ले लिया गया है। सम्बन्धियों में अब केवल पुत्र, पोता, पति या पत्नी सम्मिलित किये जाते हैं। पति और पत्नी दोनों को पेन्शन मिल सकती है यदि दोनों की आयु ६५ वर्ष से अधिक हो और उनके विशिष्ट प्रकार के सम्बन्धी न हों। इसके अन्तर्गत भिखारी या ऐसे व्यक्ति नहीं सम्मिलित किये जाते जिनका निर्वाह निर्धन सेवा गृहों (Poor Houses) में निःशुल्क होता है, किन्तु इसमें वे व्यक्ति सम्मिलित नहीं हैं जो परिस्थितियों से विवश होकर प्रसंगवश दान पुण्य पर निर्भर रहते हैं। फरवरी १९६२ में एक महत्वपूर्ण संशोधन किया गया जिसके द्वारा जहाँ अर्हता की आयु घटाकर ६५ वर्ष कर दी गई, वहाँ जिलाधीशों को यह भी अधिकार दिया गया कि यदि वे इस बात से सन्तुष्ट हैं कि प्रार्थी की आयु १० रुपये मासिक से कम है, यह उसकी पत्नी की आय पर्याप्त नहीं है अथवा उसके विशिष्ट सम्बन्धी उसकी सहायता करने की स्थिति में नहीं है तो उसका यह दावा मान लें कि उसे पेन्शन मिलनी चाहिये। नवम्बर १९६३ में अर्हता की आयु विधवाओं तथा असमर्थ व्यक्तियों के लिये फिर घटाकर ६० कर दी गई और यह व्यवस्था की गई कि कोई भी महिला उस स्थिति में भी पेन्शन पाने की अधिकारिणी होगी जब कि उसका भाई हो अथवा यदि उसका पति जीवित हो किन्तु एक वर्ष से अधिक समय से उससे अलग हो। पेन्शन की राशि १५ रुपये प्रति माह निश्चित कर दी गई थी जिसे १९६८ में बढ़ाकर २० रुपये, जनवरी १९७२ में ३० रु० और अप्रैल १९७६ में ४० रु० मासिक कर दिया गया। इस राशि को बढ़ाकर ५० रु० मासिक तक करने का प्रस्ताव है। पेन्शन दो प्रकार की होती है (१) जीवन पेन्शन, जो आजीवन दी जाती है, और (२) सीमित पेन्शन, जो कुछ समय के पश्चात् समाप्त हो जाती है, अर्थात् पेन्शन लेने वाले सम्बन्धी की आयु जब २० वर्ष की हो जाती

है, तब पेन्शन मिलनी बन्द हो जाती है। पेन्शन की न तो कुर्की हो सकती है न यह परिवर्तित की जा सकती है। पेन्शन का मिलना या तो पेन्शन पाने वाले की मृत्यु के दिन से बन्द हो सकता है अथवा जब वह निराश्रित नहीं रहता तब उसकी पेन्शन रोक दी जाती है। थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् ऐसे दावों की जांच होती रहती है। पेन्शन पाने वाले व्यक्ति के लिये एक मुख्य शर्त यह होती है कि उसका आचार-व्यवहार अच्छा होना चाहिये। यदि पेंशन पाने वाला किसी गम्भीर अपराध के कारण दण्डित होता है तो उस दशा में पेंशन देनी बन्द भी की जा सकती है और पेन्शन वापिस भी ली जा सकती है।

पेन्शन पाने के लिये प्रार्थी को एक फार्म पर अपना प्रार्थना-पत्र भेजना होता है जिसे तहसीलदार और जिलाधीश जांच पड़ताल करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश के श्रम-कमिश्नर के पास भेज देते है। श्रम-कमिश्नर ही पेन्शन की स्वीकृति देने वाला अधिकारी था। १ सितम्बर १९७५ से इस योजना का विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है और अब धन की अनुमति तथा वितरण आदि की सब कार्य जिलाधिकारियों द्वारा किया जाता है। पेन्शन की राशि मनिआर्डर से भेजी जाती है। पहले तो पेन्शन हर माह दी जाती थी किन्तु मार्च १९५८ से यह प्रति ३ महीने बाद दी जाती है। ७० वर्ष से ऊपर की आयु के निराश्रितों की संख्या उत्तर प्रदेश में लगभग ५०,००० आंकी गई थी जो कि राज्य में ७० वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्तियों की अनुमानित जनसंख्या का लगभग ४ प्रतिशत थी। दिसम्बर १९५७ मे योजना के आरम्भ होने से ३१ दिसम्बर १९७८ तक ६०,१७६ व्यक्तियों (२६,७८६ पुरुषों तथा ३३,३९३ महिलाओं) का पेन्शन की स्वीकृति दी गई थी इसमें से ३२,८७३ व्यक्ति इसी अवधि मे पेन्शन पाने के बाद मृत्यु को प्राप्त हो गये थे और जीवित पेन्शन पाने वालों की संख्या २७,३०६ थी।

इसके अतिरिक्त, वृद्धावस्था वित्तीय सहायता योजनायें (Old Age Financial Assistance Schemes) अन्य अनेक राज्यों मे भी लागू है। उदाहरण के लिये, आन्ध्रप्रदेश (१९६१—विभिन्न क्षेत्रों में १५ रुपये से २५ रुपये प्रति माह तक), हरियाणा (१९६९—२५ रुपये प्रति माह), हिमाचलप्रदेश (१९६९—५० रुपये प्रति माह), कर्नाटक (१९६४—४० रुपये प्रति माह), केरल (१९६०—३५ रुपये प्रति माह), मध्यप्रदेश (१९७०), उड़ीसा (१९७५), पंजाब (१९६८—५० रुपये प्रति माह), राजस्थान (१९६४—३० रुपये प्रति माह), तमिलनाडु (१९६२—२० रुपये प्रति माह), पश्चिमी बंगाल (१९६४—३० रुपये प्रति माह), संघशासित क्षेत्रों मे, चण्डीगढ़ (२५ रुपये प्रति माह) तथा मिजोरम (३० रुपये प्रति माह), मे वृद्धावस्था पेन्शन योजनायें लागू है और दिल्ली तथा दादरा व नगर हवेली में सामाजिक तथा शारीरिक दृष्टि से असमर्थ एवं अपंग व्यक्तियों को वित्तीय सहायता देने की योजनायें लागू हैं।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना मे वृद्ध, भिखारी, अपंग और बेसहारा व्यक्तियों के लिये एक सहायता निधि स्थापित करने के हेतु २ करोड़ रुपये की राशि की

बीमा अधिनियम की स्थिति में उपस्थिति की कोई अर्हता अवधि निर्धारित नहीं है जबकि निर्वाह-निधि अधिनियम उन लोगों पर लागू होता है जिन्होंने नौकरी का लगातार एक वर्ष (२८० दिन) पूरा कर लिया गया हो। कर्मचारी राज्य बीमा योजना केवल विनिर्माण उद्योगों पर ही लागू होती है जबकि निर्वाह-निधि योजना विनिर्माण एवं गैर-विनिर्माण, दोनों ही प्रकार के उद्योगों पर लागू होती है। कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत आने के लिए मजदूरी की सीमा ४०० रु० प्रति मास है (जिसे बढ़ाकर ५०० रु० करने का प्रस्ताव है) किन्तु निर्वाह-निधि अधिनियम के अन्तर्गत यह सीमा १००० रु० है। कर्मचारी राज्य बीमा योजना के अन्तर्गत विस्तार भौगोलिक आधार पर होता है जबकि निर्वाह-निधि योजना में विस्तार उद्योगानुसार होता है। कर्मचारी राज्य बीमा योजना का विस्तार मुख्यतः चिकित्सा कर्मचारियों, बाहरी चिकित्सा तथा हस्पतालों पलंगों आदि की उपलब्धता पर निर्भर होता है अतः उसके मुकाबले निर्वाह निधि योजना का विस्तार अधिक सरल होता है।

अतः दोनों योजनाओं का एकीकरण करने से पूर्व यह अत्यावश्यक है कि सभी सम्बन्धित पक्षों से परामर्श करते हुए इस विषय में पर्याप्त विचार एवं तदनुसार विचारों में हेर-फेर किया जाय। तथापि, योजनाओं का एकीकरण अत्यावश्यक है क्योंकि यदि अन्तिम लक्ष्य सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना को लागू करना है तो हमें अभी से इस दिशा में पहल करनी चाहिये, क्योंकि कुछ समय के पश्चात् तो पृथक्-पृथक् योजनाएँ विकसित होकर ऐसे चरण में जा पहुँचेंगी कि उस स्थिति में उनका परस्पर विलय अथवा एकीकरण करना एक बड़ी जटिल प्रशासनिक प्रक्रिया बन जायेगी। प्रत्येक योजना का अलग-अलग विकास होने से प्रशासकों तथा लाभ, प्राप्तकर्त्ताओं, दोनों के लिये काफी मात्रा में दोहराव तथा श्रम उत्पन्न होगा। अतः कर्मचारी राज्य बीमा समीक्षा समिति ने सन् १९६६ में अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि सरकार को भारतीय श्रम सम्मेलन के परामर्श से विशेषज्ञों की एक ऐसी मशीनरी स्थापित करनी चाहिये जो सामाजिक सुरक्षा की एक विस्तृत योजना की "रूपरेखा" तैयार करे। समिति इस पक्ष में नहीं थी कि वर्तमान स्थिति में कोयला खान निर्वाह निधि तथा असम चाय बागान निर्वाह निधि का कर्मचारी राज्य बीमा योजना के साथ विलय किया जाये। परन्तु समिति ने इस बात की सिफारिश की कि कर्मचारी राज्य बीमा निधि तथा कर्मचारी निर्वाह निधि को परस्पर मिला दिया जाये और निर्वाह निधि को पेन्शन सम्बन्धी लाभों में परिवर्तित कर दिया जाये। साथ ही, जो लाभ अब उपलब्ध नहीं हैं, समिति ने उनको सम्मिलित करने का एक का प्रबल वित्तीय एवं प्रशासनिक आधार प्रस्तुत किया।

केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय श्रम आयोग से इस योजना पर विचार करने को कहा था। विचार के उपरान्त आयोग ने यह सिफारिश की थी कि आदर्श व्यवस्था

तो यह होगी कि एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा की योजना की दिशा मे शनै शनै आगे बढा जाये, सामाजिक सुरक्षा की सम्पूर्ण एकत्र धनराशियो को एक निधि मे इकट्ठा कर लिया जाये। फिर उस निधि मे स विभिन्न ऐजेन्सियाँ आवश्यकता के अनुसार लाभो के वितरण हेतु धन निकाल सकती है। तत्पश्चात् अगले कुछ वर्षों मे यह सम्भव हो सकता है कि एक एकीकृत सामाजिक सुरक्षा योजना प्रचलित की जाये जो कि अशदान की प्रचलित दरो मे कुछ के साथ ही साथ, कुछ ऐसे जोखिमो की पूर्ति की भी व्यवस्था करे, जोकि वतमान मे नही है। इन जोखिमो को प्रोविडेन्ट फण्ड सवानिवृत्ति व परिवार पेन्शन तथा बेकारी के विरुद्ध बीमे तक सीमित रखा जा सकता है। [1] अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के द्वारा सामाजिक सुरक्षा पर नार्वे राष्ट्रीय विचार गोष्ठी ने, जोकि सितम्बर १६७७ म नई दिल्ली मे आयोजित की गई थी, विभिन्न सामाजिक सुरक्षा सस्थाओ को सगठित करने की सिफारिश की थी।

सामाजिक सुरक्षा पर राष्ट्रीय विचार गोष्ठी

(National Seminar on Social Security)

नई दिल्ली म १६ सितम्बर स ३० सितम्बर १६७७ तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के द्वारा सामाजिक सुरक्षा पर एक नार्वे राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी आयोजित की गई थी। यह विचार गोष्ठी त्रिपक्षीय थी। श्रमिको व मालिको के प्रतिनिधियो ने, श्रम मन्त्रालय सहित सम्बद्ध मन्त्रालयो के प्रतिनिधियो ने और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) के विशेषज्ञो न इसमे भाग लिया था। इस विचार गोष्ठी (सेमिनार) ने 'सामाजिक सुरक्षा' के विचार की नई परिभाषा की, जो इस प्रकार थी "सामाजिक सुरक्षा एक ऐसा सरक्षण है जो कि समाज द्वारा आर्थिक व सामाजिक कष्टों के विरुद्ध अनेक सार्वजनिक उपाय अपनाकर अपने सदस्यो को प्रदान किया जाता है। यदि ऐसा सरक्षण न हो तो बीमारी, प्रसूति (maternity), रोजगार के समय लगने वाली चोट (व्यवसायजनित बीमारियां सहित,) बेरोजगारी, आशिक रोजगारी, निबलता निराश्रयता (destitution), सामाजिक अशक्तता एव पिछडापन, वृद्धावस्था तथा मृत्यु के कारण श्रमिक की कमाई रुक जायेगी, कम हो जायेगी अथवा पूर्णत: समाप्त हो जायेगी। यही नही, यह सरक्षण श्रमिक स्वास्थ्य की देखभाल की भी व्यवस्था करता है जिनमे बीमारी के निरोधक उपाय (Preventive measures) भी सम्मिलित हैं।" इस नई परिभाषा के अनुसार, सामाजिक सुरक्षा मे अब य बाते सम्मिलित होगी (१) सामाजिक बीमा, (२) सामाजिक सहायता (३) पारिवारिक लाभ (४) स्वास्थ्य की देखभाल तथा अन्य समाज सेवा, (५) अन्य सम्बद्ध समाज कल्याण सेवाय।

इस प्रकार सेमिनार ने सामाजिक सुरक्षा की एक ऐसी नई परिभाषा दी

१ राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट, (पृष्ठ १७८)

जो कि मूलभूत आवश्यकताओं के अनुरूप थी विचार-गोष्ठी (सेमीनार) ने अनेक सिफारिशें की, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशों का सम्बन्ध निम्न बातों से था: (१) मूलभूत आवश्यकताओं, अनिवार्य सेवाओं डाक्टरी देखभाल तथा कानूनी सहायता की व्यवस्था (२) सामाजिक सुरक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप काम की गारन्टी (३) ग्रामीण सामाजिक सुरक्षा के लिये पर्याप्त तथा प्रभावी उपाय, (४) प्रॉविडेण्ट फण्ड के सदस्यों को दिये जाने वाले ब्याज की दर का काफी मात्रा में बैंक दर के अनुरूप होना (५) सामाजिक सुरक्षा के दीर्घकालीन लाभों का जीवन लागत सूचकांक (Cost of living index) से सम्बद्ध होना (६) ऐसे ऐच्छिक तथा वैकल्पिक अवसरों का निर्माण करना जिनके अन्तर्गत प्रॉविडेण्ट फण्ड के धन का ऐसी योजनाओं में निवेश किया जा सके जो कि सरकार द्वारा नियन्त्रित या गारन्टीकृत हों तथा अधिक ब्याज देने वाली हों (७) सामाजिक सुरक्षा के कार्य श्रमों की आय के पुनर्वितरण पर प्रभाव (८) सामाजिक सुरक्षा की अनेक संस्थाओं का एकीकरण।

नई दिल्ली में ३० नवम्बर ७७ से ३ दिसम्बर ७७ तक जो पाचवी एशियायी श्रमिक संघ सेमिनार हुई थी, सामाजिक सुरक्षा उसके विचारणीय विषयों में भी एक विषय था।

उपसंहार (Conclusion)

भारत में सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं का उक्त सर्वेक्षण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में अभी तक इस दिशा में बहुत थोड़ी प्रगति हो सकी है। इस विषय पर प्रगतिशील विधान बनाने की आवश्यकता है, जिससे औद्योगिक मजदूरों को आधुनिक औद्योगिक जीवन संकटों में उसी प्रकार की सुरक्षा मिल सके जो दूसरों देशों के मजदूरों को मिल रही है। बीमारी, स्वास्थ्य मातृत्व-कालीन और क्षतिपूर्ति बीमा को तथा निर्वाह-निधि योजनाओं को यद्यपि प्रारम्भ कर दिया गया है परन्तु अभी तक यह केवल व्यक्तियों तक ही सीमित है।

हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियाँ ऐसी नहीं है कि सामाजिक सुरक्षा की कोई एक सामान्य योजना चलाई जा सके। अनेक बीमारियों और महामारियों का फैलना, प्रसूतिकाओं और बालकों की बढ़ती हुई मृत्यु संख्या, जीवन क्षमता में कमी पैतृक ऋण के कारण दुःख एवं निराश्रयता, जनता की अशिक्षितता, देश का बड़ा आकार और इसी प्रकार के दूसरे तथ्यों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना सरल कार्य नहीं है। घोर निर्धनता और विकास की कमी को भी इन तथ्यों में गिना जा सकता है। इसलिए इस समय तो यही उचित दिखाई देता है कि सामाजिक सुरक्षा योजना का प्रारम्भ औद्योगिक मजदूरों और नाविकों में किया जाय और थोड़े समय पश्चात् योजना को वाणिज्य सम्बन्धी श्रमिकों पर भी लागू कर दिया जाय। बाद में जैसे-जैसे परिस्थितियाँ अनुकूल होती

जाये वैसे वैसे योजना का विस्तार श्रमिकों के अन्य वर्गों तक तथा स्वतन्त्र जीविका उपार्जन करने वाले व्यक्तियों तक किया जा सकता है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना केवल आवश्यक अथवा वाछनीय ही नहीं है अपितु इसका लागू होना सम्भव भी है। स्वस्थ और कुशल औद्योगिक श्रमिकों के एक ऐसे स्थायी वर्ग के विकास के लिये, जिसकी तीव्रगति से बढते हुए उद्योगों और व्यवसायों में बहुत माग है, यह आवश्यक है कि सामाजिक सुरक्षा योजना लागू की जाये। इस समय श्रमिकों का अशदान यथासम्भव कम होना चाहिये और सरकार व मालिकों को सामाजिक सुरक्षा की लागत का अधिकाश भाग वहन करना चाहिये। यह भी आवश्यक है कि देश में इस प्रकार की योजना लागू करने से पूर्व मजदूरों के जोखिम के भार से सम्बन्धित आकडे एकत्रित करने चाहिए जिनमें यह मालूम हो सके कि ऐसी घटनायें श्रमिक के जीवन में कितनी बार आती है और वे कितनी गम्भीर होती है। सरकार को यह भी समझना चाहिये कि सर्वसाधारण की भलाई के लिए आर्थिक क्षेत्र में सामान्य मनुष्य को आधारभूत और मूल सुरक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व उसी पर है। सरकार और उसके अधिकारियों के वर्तमान दृष्टिकोण में परिवर्तन होना भी बहुत आवश्यक है। यदि वही पुराना दफ्तरी व्यवहार अपनाया गया जिसमें वास्तविकता के साथ कोई सहानुभूति नहीं होती और अनेक समितियाँ व आयोग नियुक्त करने और उनकी रिपोर्टों को अलमारी में बन्द कर देने का वही तरीका चलता रहा, तब देश में निश्चय ही कोई भी सामाजिक सुरक्षा योजना सफल नहीं हो सकती।

कुछ व्यक्ति यह प्रश्न पूछते है कि क्या भारत सामाजिक सुरक्षा की सुविधाओं का व्यय वहन कर सकता है? इस सम्बन्ध में, श्री जगजीवन राम ने ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा-योजना के प्रसिद्ध निर्माता सर विलियम बेवरिज के शब्दों को दोहराया है। बेवरिज से ऐसा ही प्रश्न पूछा गया था। इस पर उनका उत्तर बहुत ही स्पष्ट था। उन्होंने कहा 'मुझ से प्राय पूछा जाता है कि क्या ब्रिटेन बेवरिज योजना का भार वहन कर भी सकेगा? मेरा उत्तर है कि यह एक ऐसा प्रश्न है जिससे भ्रम हो सकता है। इस प्रश्न में एक ऐसी बात मान ली गई है जो सत्य नहीं है, अर्थात् यह मानकर प्रश्न किया गया है कि आय का बुद्धिमत्तापूर्ण वितरण करने में कुछ लागत आती है। परन्तु मेरे विचार से आय को कम आवश्यक चीजों पर व्यय करने की अपेक्षा अधिक आवश्यक वस्तुओं पर व्यय करने से कोई लागत नहीं आती। यह तो केवल बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय करना है। जब लोग यह प्रश्न पूछते है कि क्या ब्रिटेन बेवरिज योजना के भार को वहन कर सकता है तो जैसे वह यह पूछते है कि क्या कोई गृहिणी रडियो खरीदने से पहले अपने परिवार के लिए रोटी खरीद सकती है? निश्चय ही वह खरीद सकती है और उसे खरीदनी चाहिये।' सर विलियम ने इस बात पर भी जोर दिया है कि देश जितना अधिक

निर्धन होता है उसके लिये सामाजिक सुरक्षा-योजना की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होती है।

इस प्रकार इस समय हमारे देश में सामाजिक सुरक्षा-योजना को लागू करने की बहुत आवश्यकता है और यह हमारे सम्मुख एक गम्भीर राष्ट्रीय समस्या है। जिस दुख और निर्धनता की गहरी खाई में श्रमिक आज पड़ा हुआ है, उससे उसे उबारने के लिये यही एकमात्र साधन है। डा० अम्बेदकर के शब्दों में "श्रमिकों को रोटी, मकान, पर्याप्त वस्त्र, शिक्षा, अच्छा स्वास्थ्य और इन सबसे बड़ी चीज संसार में आत्मसम्मान तथा गौरव के साथ चलने का अधिकार देना चाहिये।" इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा परिषद ने एक बड़ा ही सुन्दर नारा दिया है—**"सामाजिक सुरक्षा के बिना सामाजिक न्याय नहीं, और सामाजिक न्याय के बिना शान्ति नहीं।"** जबकि हमारे देश में राष्ट्रीय सरकार है और उसका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है तब हम यह पूरी आशा है कि सामाजिक-सुरक्षा के प्रश्न को अधिक समय तक नहीं टाला जायेगा और हमारी पंचवर्षीय आयोजनाओं में इसको उचित महत्व दिया जायेगा। सामाजिक-सुरक्षा का प्रारम्भ कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम और प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना के रूप में हो चुका है। हमें आशा है कि यह प्रारम्भ यहीं तक ही सीमित नहीं रहेगा और भविष्य में उन सभी को सुरक्षा प्रदान की जायेगी जो उत्पादक कार्यों में लगे हुए हैं।

१३ अन्य देशो ↗
SOCIAL SECURITY IN OT.

ग्रेट ब्रिटेन मे सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in Great Britain)

मध्यकालीन युग में निर्धन सहायता
(Poor Relief in the Middle Ages)

महारानी एलिजाबेथ के समय से ही अभावग्रस्त नागरिकों की आवश्यकता का पूर्ण करना इगलैण्ड म राज्य का ही वर्त्तव्य रहा है। मध्यकालीन युग म निराश्रित व्यक्तियो की सहायता देने का कार्य धार्मिक मठों द्वारा किया जाता था, परन्तु मठो के उन्मूलन के पश्चात् राज्य क लिय यह आवश्यक हो गया कि उनके स्थान पर कोई अन्य सहायता व्यवस्था की जाय। परिणामस्वरूप, इगलैण्ड म निर्धन कानून (Poor Law) पारित किया गया। इसके अन्तर्गत सहायता के लिये जो धन जमा किया जाता था, वह स्थानीय करो द्वारा होता था। निर्धन कानून, जिसका नाम बाद म 'सार्वजनिक सहायता' (Public Assistance) कर दिया गया, अभी तक विद्यमान है। पुरानी सेवाओ में से यही एक ऐसी सेवा है जो अभी तक बाकी है। इसका उद्देश्य यह है कि निराश्रित व्यक्तियो को ऐसी सहायता दी जाय जो उन्हें किसी और एजेन्सी द्वारा न मिल रही हो। आधुनिक समय मे सामाजिक सेवा का जो इतिहास है, वह वास्तव मे निर्धन कानून के अन्तर्गत जो सेवायें आती थी, उनका ही अपनाने और उनके विकास का इतिहास है, यद्यपि दाना का आधार अवश्य भिन्न है। वर्तमान व्यवस्था मे उतनी कठिन शर्तें नहीं है, जो पहले थी। निर्धन सहायता के नाम म जो एक हीनता की भावना छिपी हुई थी, वह भी अब नही है। वित्त व्यवस्था भी भिन्न प्रकार से की जाती है। ऐच्छिक सामाजिक सेवाएँ भी जारी है, परन्तु अब वे राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक सेवाओ की पूरक तथा सहायक है।

इंगलैण्ड में सामाजिक सेवाओ पर व्यय
(Expenditure on Social Services in England)

बीसवीं शताब्दी मे सार्वजनिक सामाजिक सेवाओ पर व्यय इगलैण्ड म काफी बढ गया है। यह ब्रिटिश सामाजिक जीवन की एक मुख्य विशेषता है जो कि औद्योगिक सम्बन्धो पर बहुत प्रभाव डाल रही है। ग्रेट ब्रिटेन म सामाजिक

१ १८६० में कुल व्यय लगभग २३० लाख पौंड था। इसमें प्रशासन की निर्धन होतो सम्मिलित थी। सन् १६०० में यह व्यय २६० लाख पौंड तक बढ़ गया अधिक होन् १६२० में २,१६० लाख पौंड तक और १६६५ में ४६३० लाख पौंड तक ४ गया। उन आँकड़ों में संसद द्वारा दी हुई राशि तथा स्थानीय उपकारों द्वारा वसूला हुआ धन तथा विभिन्न प्रकार की समाज सेवाओं के लिए मालिकों और कर्मचारियों द्वारा दी हुई अंशदान की राशि भी सम्मिलित थी। सन् १६३५ में संसद् ने जो सहायता स्वीकृति की, वह २,६४० लाख पौंड से अधिक अथवा कुल व्यय का ५३% के लगभग थी। १६३८-३६ में सामाजिक सेवा योजनाओं पर कुल खर्च ३ ४२० लाख पौंड था। सन् १६६५-६६ में सरकार द्वारा सामाजिक सेवाओं एवं उपादानों पर किया गया अनुमानित खर्च २४३ करोड़ पौंड तक हो गया और सार्वजनिक प्राधिकारी (Public Authorities) भी सामाजिक सेवाओं पर प्रतिवर्ष ५२३ करोड़ पौंड व्यय कर रहे हैं अर्थात् प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष ६७ पौंड समाज सेवाओं पर व्यय किया जाता है।

बैवरिज आयोजना (Beveridge Plan) से पूर्व इंगलैण्ड में जो सामाजिक बीमे की व्यवस्था थी उसका भी वर्णन करना आवश्यक है।

बैवरिज आयोजना से पूर्व योजनायें

(Schemes Before the Beveridge Plan)

निर्धन सहायता (Poor Relief)—इंगलैण्ड में निर्धन सहायता बहुत काल से चली आ रही है। सन् १६०१ में पूर्व यह माना जाता था कि स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति, यदि उनकी इच्छा हो, तो कार्य पा सकते थे, अतः उनकी निर्धनता उनके आलस्य की द्योतक थी। इसलिए बिना किसी कार्य पर लगे हुए स्वस्थ शरीर वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया जाता था। उदाहरणतः सन् १५३० में जो भी स्वस्थ शरीर वाले पुरुष एवं स्त्रियाँ भीख माँगते अथवा बिना स्थायी रोजगार के पाये जाते थे, उनको नंगा करके एक ठेले के साथ बाँध दिया जाता था और उनको तब तक कोड़े लगाये जाते थे, जब तक कि उनके शरीर से खून न निकलने लगे। सन् १५४७ में एक अधिनियम पारित किया गया, जिसमें इस बात की व्यवस्था थी कि जो भी स्वस्थ शरीर का व्यक्ति आवारा पाया जायेगा, उसके शरीर पर 'V' गुदवा दिया जायेगा और वह किसी भी मालिक का, जिसको आवश्यकता हो, दो वर्ष तक दास रहेगा और उसको रोटी, पानी और बच्चे मास का भोजन मिलेगा। इन दो वर्षों में भागने का प्रयत्न करते हुए पकड़े जाने पर उसके शरीर पर 'S' गुदवाने और जन्म भर की दासता का दण्ड दिया जाता था। उसके पश्चात् भी भागने पर मृत्यु दण्ड नियत था।

महारानी एलिजाबेथ के समय में सर्वप्रथम निर्धनों को सहायता देने के कार्य में प्रगति हुई। इसके लिए बहुत से अधिनियम पारित किये गये और "जस्टिसेज आफ पीस" (Justices of Peace) को श्रमिकों का वेतन निश्चित करने का अधिकार दिया गया। सन् १६०१ में निर्धन सहायता अधिनियम पारित हुआ,

जिसमें पुरानी अत्याचारी नीति पूर्णरूप में परिवर्तित कर दी गई। इसके अन्तर्गत निर्धनों की सहायतार्थ एक अनिवार्य नीति को अपनाया गया। प्रत्येक नगर में निर्धनों के ओवरसियर नियुक्त किये गये, जिनका कार्य वृद्ध पीड़ित अथवा रोजगार न होने के कारण ऐसे निर्धनों की सहायता हेतु कर उगाहना था, जो वृद्धावस्था निर्बलता के कारण कार्य नहीं कर सकते थे या बेरोजगार थे। कार्य करने से मना करने पर दण्डित किया जाता था। सन् १६०१ का यह अधिनियम कुछ संशोधनों के पश्चात् सन् १८३४ तक सार्वजनिक सहायता कार्यों का आधार रहा, यद्यपि इस कार्य के लिए और भी अधिनियम पारित किये गये थे।

एक महत्वपूर्ण अधिनियम १८३४ में पारित किया गया, जिसके अनुसार निर्धन कानून प्रशासन को निर्धन कानून कमिश्नरों के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Poor Law Commissioners) के अन्तर्गत लाया गया। स्वस्थ शरीर वाले व्यक्तियों के लिए 'कार्य गृह परीक्षा' (Work House Tests) की व्यवस्था की गई। 'पेरिशों' (Perishes) (कस्बा) को संघों में संगठित किया गया था। प्रत्येक संघ में उपकर देने वाले व्यक्ति एक संरक्षक बोर्ड (Board of Guardians) का चुनाव करते थे। कार्य गृह में सब स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों को भर्ती करके सहायता दी जाती थी और ६० वर्ष से अधिक आयु वाले एवं अस्वस्थ व्यक्तियों को कार्य गृह के बाहर सहायता दी जाती थी। सन् १८४७ में निर्धन कानून बोर्ड (Poor Law Board) स्थापित हुआ और उसने सन् १८७१ तक सार्वजनिक सहायता के प्रशासन का निरीक्षण किया और तब उसकी जगह स्थानीय सहकारी बोर्ड (Local Government Board) बनाया गया, जो सन् १९१९ तक रहा। इसके उपरान्त स्वास्थ्य मन्त्रालय का निर्माण हुआ, जिसने सार्वजनिक सहायता के प्रशासन कार्य को सम्भाला। सन् १८३४ के अधिनियम ने यह सिद्धान्त बना कर कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका स्वयं अपने परिश्रम से कार्य करके अर्जित करनी चाहिये ईमानदारी से कार्य करने वालों को प्रोत्साहन दिया, परन्तु इस अधिनियम में बेरोजगारी के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। सन् १८६५ में बेरोजगारों को कुछ सहायता 'फ्रेंडली सोसाइटीज' (Friendly Societies) द्वारा भी दी गई। सन् १९०५ में निर्धन कानून के लिए रायल कमीशन नियुक्त किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट सन् १९०९ में दी। कमीशन ने कहा कि देश में भिक्षा वृत्ति व्याप्त थी और उसने कार्य-गृहों में बच्चों को रखने की प्रथा की निन्दा की, और इस ओर भी संकेत किया कि गृह से बाहर दी जाने वाली सहायता का प्रशासन उचित प्रकार से नहीं हो रहा था।

सन् १९२९ में एक स्थानीय सरकारी अधिनियम (Local Government Act) पारित हुआ जिसके अनुसार निर्धन कानून की एक पूर्णतया नवीन प्रणाली का आरम्भ हुआ। निर्धन कानून के प्रशासन का कार्य काउन्टी कौंसिलों और काउण्टी बोरो कौंसिलों (County Borough Councils) को स्थानान्तरित कर दिया गया जिनको कि सार्वजनिक सहायता समितियों के द्वारा कार्य करना होता था।

यह आशा व्यक्त की गई थी। कि इस कानून के कारण कुछ बचत होगी व कार्य-क्षमता बढ़ेगी और अन्त में निर्धन कानून के प्रशासन की जिम्मेदारी समस्त समाज की न होकर स्थानीय जिला की हो जायगी।

बेरोजगारी बीमा

(Unemployment Insurance)

इगलैंड में 'बेरोजगारी बीमा' ने भी जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। जैसा कि ऊपर 'निर्धन कानून के अन्तर्गत बताया गया है, भूतकाल में बेरोजगारी को माना ही नहीं जाता था और स्वस्थ शरीर वाले बेरोजगारी व्यक्तियों को आलसी मान कर दण्ड दिया जाता था। परन्तु शीघ्र ही इस बात का अनुभव कर लिया गया कि प्रत्येक व्यक्ति को काम देने की जिम्मेदारी राज्य की है और यदि यह सम्भव न हो सके तो बेरोजगारों को सहायता दी जानी चाहिये। सन् १९०९ में कुछ उद्योगों के लिये अनिवार्य बेरोजगारी राज्य बीमा योजना लागू की गई। यह योजना अंशदान सिद्धान्त पर आधारित थी। समय-समय पर इस अधिनियम में परिवर्तन होते रहे। सन् १९१६ में यह योजना अन्य रोजगारों तक बढ़ा दी गई। महायुद्ध के तुरन्त बाद ही "काम रहित व्यक्तियों के लिये एक दान योजना" (Out of work Donations) भूतपूर्व सैनिकों, जिनको कार्य नहीं मिल सका था, और अन्य तमाम श्रमिकों के लिये चालू की गई।

सन् १९२० में अनिवार्य राजकीय बीमा योजना को शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों और उन मानसिक कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये भी जो २५० पौंड प्रति वर्ष से अधिक नहीं कमाते थे लागू कर दिया गया। कृषि से सम्बन्धित श्रमिक एवं घरेलू काम के श्रमिक इस योजना के अन्तर्गत नहीं आते थे। बेरोजगारों को मालिक, श्रमिक एवं सरकार के अंशदान (Contributions) से निर्मित निधि में से सहायता दी जाती थी। समय-समय पर अंशदान की दरों और लाभ दरों को बढ़ाया भी गया। सन् १९३१ में सरकार ने राष्ट्रीय बचत अधिनियम (National Economy Act) पारित किया, जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी बीमे का अंशदान तो बढ़ा दिया परन्तु लाभों में कमी कर दी गई। सन् १९३४ में यह तरीका भी समाप्त कर दिया गया। बेरोजगारों और निर्धन की सहायता, चाहने वालों का अन्तर स्पष्ट कर दिया गया और इनको दो वर्गों में बाटा गया—प्रथम, बीमे के अन्तर्गत आने वाले और द्वितीय, सहायता पाने वाले। सहायता चाहने वालों की, 'जीविका साधन जाँच' की जाती थी। सन् १९३६ में कृषि श्रमिकों के लिये बेरोजगारी बीमा की एक अलग योजना बनाई गयी।

बेरोजगारी बीमा योजना की इस बात पर आलोचना की गई कि इसकी लागत अधिक थी तथा अंशदान व लाभ की दरें बहुत कम थी। आगामी पृष्ठों में जैसा कि उल्लेख किया गया है, महायुद्ध के पश्चात् इस योजना के स्थान पर एक 'सामाजिक सुरक्षा योजना' लागू कर दी गई।

स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance)

ग्रेट ब्रिटेन मे अनिवार्य स्वास्थ्य बीमा योजना भी चालू रही है। इसको सन् १९११ मे प्रारम्भ किया गया था और यह अशदान सिद्धान्त पर आधारित थी। यह योजना उस मजदूर वर्ग के समस्त व्यक्तियो पर लागू थी जिनकी आयु १६ वर्ष से अधिक एव ६५ वर्ष से कम थी और जिनकी वार्षिक आय २५० पौड से अधिक नही थी। उपलब्ध लाभो मे नकदी और चिकित्सा सहायता भी सम्मिलित थी। बीमारी लाभ, असमर्थता लाभ तथा मातृत्वकालीन लाभ भिन्न-भिन्न दरो पर प्रदान किये जाते थे।

वृद्धावस्था पेंशनें (Old Age Pensions)

वृद्धावस्था पेशनों की योजना ब्रिटेन मे १९०८ के अधिनियम के अन्तर्गत आरम्भ की गई और सामान्य करो द्वारा सचित निधि मे से लाभ उपलब्ध किये जाते थे। मालिको एव श्रमिकों को अशदान नही देना पडता था। सन् १९१४ मे प्रत्येक वह व्यक्ति, जिसकी आयु ७० वर्ष स अधिक हो और जो ब्रिटेन मे कम से कम २० वर्ष तक अधिवासी रहा हो या जो कम से कम १२ वर्ष से इङ्गलैण्ड मे निवास कर रहा हो, वृद्धावस्था पेन्शन लेने का अधिकारी हो जाता था। परन्तु यह शर्त भी थी कि उसकी वार्षिक आय ३१ पौ० १० शि० से अधिक न हो और उसे निर्धन सहायता भी न मिलती हो। अधिकतम साप्ताहिक लाभ ५ शि० और न्यूनतम साप्ताहिक लाभ १ शि० था। बाद मे अधिनियम को सशोधित किया गया और उनमे अशदान सिद्धान्त को लागू कर दिया गया। सन् १९२५ एव सन् १९२९ मे पारित किए गए अधिनियम के अन्तर्गत स्वास्थ्य बीमा प्रणाली मे आने वाले सब व्यक्तियो को 'वृद्धावस्था अशदान पेन्शन योजना' के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया। मालिको तथा श्रमिको के कुल अशदानो की दरो मे बाद के वर्षो मे क्रमश वृद्धि की गई। राज्य इस कार्य के लिये वार्षिक अनुदान देता था।

आश्रित पेंशनें (Dependant's Pensions)

विधवा माताओं और अनाथ बच्चो को पेन्शन देने की योजना को भी सन् १९२५ के अशदान के लिये आधार पर लागू किया गया। विधवाओं को १० शि० प्रति सप्ताह की दर से पेन्शन दी गयी। इसके अतिरिक्त उनको १४ वर्ष की आयु तक के बच्चो के लिए अलग से भत्ता दिया गया, जिसकी दर सबसे बड़े बच्चे के लिये ५ शि० और अन्य बच्चो के लिये ३ शि० प्रति सप्ताह थी। इस योजना के अन्तर्गत विधवा को ७० वर्ष की आयु तक अथवा उसके दुबारा विवाह करने तक यह पेन्शन उपलब्ध थी। परन्तु पुनर्विवाह का बालको के भत्तो पर कोई प्रभाव नही पडता था। इस योजना के अन्तर्गत बीमाकृत मृतकों के अनाथ बच्चो के लिये पेन्शन देने की व्यवस्था थी।

श्रमिक क्षतिपूर्ति (Workmen's Compensation)

इङ्गलैंड मे प्रथम श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम सन् १९०६ मे पारित हुआ। इसके अन्तर्गत मालिको को, आयु एव स्त्री पुरुष का भेद किये बिना, अपने श्रमिको

के अन्तर्गत लागू हो गई। भत्ते की दर ५ शि० प्रति सप्ताह थी परन्तु उसे १९५२ के पारिवारिक भत्ता एवं राष्ट्रीय बीमा अधिनियम (Family Allowances and National Insurance Act) के अन्तर्गत बढ़ाकर ८ शि० प्रति सप्ताह कर दिया गया। फिर सन् १९५६ के एक ऐसे ही अधिनियम द्वारा इस भत्ते की दर तीसरे तथा उसके बाद के बच्चों के लिए १० शि० प्रति सप्ताह कर दी गई जो अब भी लागू है।

राष्ट्रीय बीमा (National Insurance)—सन् १९४६ के राष्ट्रीय बीमा अधिनियम को ५ जुलाई सन् १९४८ को पूर्णरूप से कार्यान्वित किया गया। तब से अब तक इसमें अनेक बार १९४६–६४ के राष्ट्रीय बीमा अधिनियमों द्वारा और १९५२ व १९५६ के परिवार भत्ता तथा राष्ट्रीय बीमा अधिनियमों द्वारा संशोधन किये जा चुके हैं। अधिनियम काम पर लगे हुए ऐसे सभी वयस्क व्यक्तियों पर लागू होता है जो ६ पौण्ड प्रति सप्ताह पाते हैं बशर्ते कि वे संविदा पर कार्य न करते हों। वृद्ध व्यक्तियों, बच्चों, विवाहित स्त्रियों एवं अल्प आय वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त सबको साप्ताहिक निर्धारित अंशदान देना पड़ता है। अंशदाता को तीन वर्गों में बांटा जाता है—(१) रोजगार पर लगे व्यक्ति, (२) स्वयं रोजगार करने वाले व्यक्ति, (३) ऐसे व्यक्ति जो रोजगार पर न लगे हों। अप्रैल १९६६ में अंशदान की मुख्य साप्ताहिक दरें अग्रलिखित तालिका में दी गई हैं। १९५९ के राष्ट्रीय बीमा अधिनियम के अन्तर्गत, अप्रैल १९६१ से रोजगार में लगे व्यक्तियों के लिये अब एक नई पद्धति लागू की गई है। इसके द्वारा कर्मचारियों की कमाई स्तर, उनकी अंशदान की दरों तथा सेवानिवृत्ति पेन्शन को प्रभावित करता है।

जहां तक लाभों का प्रश्न है, इस योजना में बीमारी, बेरोजगारी, मातृत्व-कालीन और वैधव्य लाभ, अभिरक्षण भत्ता, अवकाश प्राप्ति की पेन्शन और मृत्यु अनुदान की व्यवस्था है। प्रथम वर्ग के व्यक्तियों को सब लाभ मिलते हैं, द्वितीय वर्ग के व्यक्तियों को बेरोजगारी लाभ एवं औद्योगिक क्षति लाभ के अतिरिक्त सब लाभ उपलब्ध है और तृतीय वर्ग के व्यक्तियों के लिये बीमारी, बेरोजगारी, औद्योगिक क्षति और मातृत्व-कालीन लाभ के अतिरिक्त समस्त लाभ उपलब्ध हैं। इनके पाने की शर्त यह है कि एक विशेष काल के लिये कम से कम कुछ अंशदान दिये जायें, परन्तु अंशदान देने की यह शर्त अभिरक्षकों के भत्ते और औद्योगिक क्षति के लिए लागू नहीं होती। लाभों की दरों में समय-समय पर वृद्धि की गई है।

बीमारी तथा अन्य सकट काल से सम्बन्धित अन्य अधिकांश लाभों की मूल-भूत प्रामाणिक साप्ताहिक दर अब ४ पौण्ड है, यद्यपि कुछ मामलों में बढ़ी हुई दरें भी अदा की गई हैं। बेरोजगारी लाभ प्रारम्भ में तो ३० सप्ताह के लिये दिए जाते हैं परन्तु बाद में ये अधिक से अधिक १९ माह के लिये दिये जा सकते हैं। मातृत्व-कालीन अनुदान एक प्रसव के लिए २२ पौण्ड दिया जाता है। जुड़वाँ बच्चों के जन्म

साप्ताहिक अशदान[1]
(Weekly Contributions)

	राष्ट्रीय बीमा की सम दर	आराही अशदान से	आराही अशदान तक	स्वास्थ्य सेवायें	योग से	योग तक
	शि० प०	शि० प०	शि० प०	शि० पं०	शि० प०	शि० प०
वर्ग १—[3]						
रोजगार पर लग हुए ऐसे व्यक्ति जो आराही प शन याजना मे भाग लेत है— कमचारिया द्वारा अशदान	१० ११½	१	७ ८	२ ८½	१३ ८	२१ ४
मालिको द्वारा अशदान	२ ३½	१	७ ८	७½	१३ ०	२० ७
योग	२३ ३	४	१५ ४	३ ४	२६ ९	४१ ११
					शि०	प०
राजगार पर लग हुए व्यक्ति जा सविदा द्वारा काय करते है— कमचारियो द्वारा अशदान	१३ ४½			७ ८½	१६	१
मालिका द्वारा अशदान	१४ ८½			७½	१५	४
याग	२८ १			३ ४	३१	५
वग २— स्वय रोजगार करन वाल व्यक्तियो का अशदान—	१५ १०			२ १०	१८	८
वग ३— ऐसे व्यक्तियो का अशदान जो राजगार पर नही लगे है—	१२ १			२ १०	१४	११

1 ऊपर लिखित अशदान की सभी दर ऐसी है जो पुरुष द्वारा दी जाती है। महिलाओ और १८ वष से कम आयु के लडके लडकिया को कम दर स अशदान देना पडता है।

2 वग एक म औद्योगिक क्षति बीमा के लिये अशदान भी आ जात है। इनकी दर कमचारियो के लिय ६ पैस और मालिको के लिय १२ पैस है।

3 काम पर लगे हुए ऐसे व्यक्ति जो ६ पाण्ड प्रति सप्ताह स कम कमाते तथा उनके मालिक केवल राष्ट्रीय बीम की समान दर और स्वास्थ्य सेवा अदा करत है।

पर यदि बच्चा जन्म के १२ घण्टे बाद तक जीवित रहता है तो २२ पौण्ड प्रति बच्चे पर अतिरिक्त सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त विधवा लाभ तथा विधवा माताओं के भत्ते हैं जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं विधवा भत्ता प्रथम १३ सप्ताहों के लिये ५ पौण्ड १२ शि० ६ पें० प्रति सप्ताह की दर से, प्रथम बच्चे के लिये २ पौण्ड दूसरे बच्चे के लिये १ पौण्ड १२ शि० और आगे प्रत्येक बच्चे के लिये १ पौण्ड १० शि०। ४ पौण्ड प्रति सप्ताह की अभिरक्षण सहायता (Guardians Allowance) उस व्यक्ति को दी जाती है जिसके परिवार में एक ऐसा बच्चा हो जिसके बीमा-कृत माता पिता मर गये हों। अवकाश प्राप्ति पेंशन ६५ वर्ष से ऊपर आयु वाले पुरुषों और ६० वर्ष से ऊपर आयु वाली स्त्रियों को उस दशा में दी जाती थी जबकि वे नियमित काय से अवकाश ग्रहण करते थे और शेष दशाओं में यह आयु पुरुषों के लिये ७० वर्ष और स्त्रियों के लिये ६५ वर्ष थी। इसके लिये प्रमाणित दर ५० शि० प्रति सप्ताह है। किसी वयस्क व्यक्ति की मृत्यु पर अन्तिम संस्कार के लिये २५ पौण्ड और बच्चों एवं वृद्धों की मृत्यु पर इससे कुछ कम मृत्यु-अनुदान दिया जाता है।

औद्योगिक क्षति बीमा योजना (Industrial Injuries Insurance Scheme)— इस योजना ने जुलाई सन् १९४८ से श्रमिकों की क्षतिपूर्ति योजना का स्थान लिया। इससे सम्बन्धित अधिनियम १९४६ से सन् १९६४ तक पारित राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक क्षति) अधिनियम (National Insurance Industrial Injuries Act) है। रोजगार के काल में हुई दुर्घटनाओं के कारण क्षति अथवा कुछ विशेष बीमारियों के लगने पर यह लाभ दिये जाते हैं। क्षति लाभ दर वयस्क के लिये ६ पौंड १२ शि० प्रति सप्ताह है। यह लाभ अधिक से अधिक २६ सप्ताह तक दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, एक वयस्क आश्रित के लिये २ पौण्ड १० शि०, प्रथम बालक के लिये १ पौण्ड २ शि० ६ पें० तथा शेष बालकों के लिये, पारिवारिक भत्ता के अतिरिक्त १४ शि० ६ पें० प्रति बालक और दिया जाता है। **असमर्थता लाभ** की दर १०० प्रतिशत असमर्थता के लिए ६ पौण्ड १५ शि० से लेकर २० प्रतिशत असमर्थता के लिये १ पौण्ड ७ शि० प्रति सप्ताह तक है। २०% से कम असमर्थता के लिये ४५० पौंड तक की सहायता दी जाती है। असमर्थता की सीमा एक चिकित्सा बोर्ड निश्चित करता है। असमर्थता लाभ कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ अधिक भी दिया जाता है। यदि दुर्घटना अथवा बीमारी के फलस्वरूप किसी बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाय, तो मृत्यु लाभ आश्रितों को दिया जाता है और लाभ की राशि मृतक व्यक्ति और उसके आश्रितों के बीच जो सम्बन्ध रहा हो, उसके आधार पर निश्चित होती है। परन्तु विधवाओं और बालकों की सहायता उसी प्रकार मिलती रहती है।

राष्ट्रीय सहायता (National Assistance)—सन् १६४८ के राष्ट्रीय सहायता अधिनियम के अन्तर्गत राज्य द्वारा अभीप्ट व्यक्तियो के लिये वित्त सहायता प्रदान करने के लिये एक सगठित व्यवस्था है। यह सुविधा उन सेवाओं के स्थान पर है जो भूतकाल मे राज्य और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा प्रदान की जाती थी। सहायता अथवा भत्ते उन व्यक्तियो की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये सरकार द्वारा दिये जाते हैं, जो कि अपने स्तर को कायम रखने में असमर्थ हैं एव जो सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत नही आते। इस सहायता का उद्देश्य यह भी है कि बीमा लाभ यदि अपर्याप्त हो तो उसकी कमी को पूरा करें। कुछ कल्याण सेवाओं की भी व्यवस्था है, जैसे बूढे और कमजोर व्यक्तियों के लिये गृह उपलब्ध करना, बेघर व्यक्तियो के लिये आश्रम और अन्धे, बहरे और अपाहिजो के लिये विशेष कल्याण सेवाओं की व्यवस्था।

युद्ध पेन्शन—युद्ध मे या अन्य सैनिक सेवा से सम्बन्धित कार्यों में अशक्त हुए व्यक्तियो के लिये अथवा उनके आश्रितो के लिये शाही अधिपत्रो (Royal Warrants) आदि के अन्तर्गत पेन्शन तथा भत्ते दिये जाने की व्यवस्था है। शत-प्रतिशत असमर्थ व्यक्तियों के लिये चालू मूल पेन्शन ६ पौ० १५ शि० प्रति सप्ताह है परन्तु असमर्थता की मात्रा तथा श्रेणी के अनुसार पेन्शन की मात्रा भी भिन्न-भिन्न है। अनुपूरक भत्तो की भी व्यापक व्यवस्था है। युद्ध के कारण हुई विधवाओं एवं अनाथों के लिए भी पेन्शन दिये जाने की व्यवस्था है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा—(National Health Service)—इसके अन्तर्गत ब्रिटेन के सभी नागरिको के लिये चिकित्सा व्यवस्था की जाती है, चाहे वह राष्ट्रीय बीमा के लिये अशदान देते हो अथवा न देते हो। यह व्यवस्था हस्पताल और अन्य रूपो मे भी होती है। लागत का अधिकतर भार सरकारी कोष पर ही पडता है। लागत तो केवल थोडी सी सेवाओ के लिये ली जाती है, जैसे—१ शि० प्रति नुस्खा बनाने के हेतु, १ पौण्ड तक दन्त चिकित्सा के हेतु और दांत बनाने का आधा खर्च और चश्मो की कीमतों का कुछ भाग ही वसूल किया जाता है। इस लागत से कुछ विशेष परिस्थितियो मे छूट भी मिल जाती है। इस विषय से सम्बन्धित जो अधिनियम हैं, वह सन् १६४६, १६४६, १६५१ व १६५२ 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा अधिनियम' (National Health Service Act) हैं।

प्रथम तीन व्यवस्थाओ के प्रशासन के लिये एक पेन्शन और राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय (Ministry of Pensions and National Insurance) स्थापित किया गया है, जिसका मुख्य कार्यालय लन्दन मे है। इसमें ५०० कर्मचारी कार्य करते हैं। एक केन्द्रीय रिकार्ड कार्यालय भी, जो इगलैण्ड के प्रत्येक नागरिक का रिकार्ड फाइल रखता है, न्यूकैसल मे है। इसमे लगभग ७,००० कर्मचारी हैं। क्षेत्रीय कार्यालयो एव स्थानीय कार्यालयो का भी निर्माण हुआ है। राष्ट्रीय बीमा योजना के प्रशासन के लिये कुल कर्मचारियो की संख्या ३५,००० और ४०,००० के बीच

मे है। ये कर्मचारी बहुत कार्य-दक्ष भी है। राष्ट्रीय सहायता का प्रशासन राष्ट्रीय सहायता बोर्ड द्वारा होता है और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का प्रशासन स्वास्थ्य मन्त्री द्वारा होता है। युद्ध पेंशन देने का उत्तरदायित्व पेंशन तथा राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय का है।

सामाजिक कल्याण की अन्य व्यवस्थाएं
(Other Social Welfare Measures)

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्रिटेन मे सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना विद्यमान है। जो समाज सेवायें अब प्रदान की जा रही हैं, उनको भी हमे उन कई प्रकार की सेवाओ की पृष्ठभूमि को दृष्टि मे रखते हुए देखना चाहिए जो सेवायें सबके लिये एक समान उपलब्ध हैं। ऐसी सेवाएं निम्नलिखित हैं—शिक्षा, स्कूल मे नि शुल्क भोजन स्थानीय प्राधिकारियो की आवास योजनाएं, असमर्थ व्यक्तियो एव अनाथो की देखभाल, माताओ एव शिशुओ के लिये नि शुल्क दूध, प्रसूतिका एव बाल कल्याण केन्द्र, आदि। सन् १९४८ के बालक अधिनियम और १९६३ के युवा अधिनियम के अनुसार स्थानीय प्राधिकारियो का कर्त्तव्य है कि वह ऐसे सब बालको की देखभाल करें जिनकी आयु १७ वर्ष से कम हो और जिनके माता-पिता व अभिरक्षक भी न हो या जो परित्यक्त हो या जिनके माता-पिता उनकी व्यवस्था करने मे असमर्थ हो। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐच्छिक सगठन भी जनता के हेतु कल्याण-कार्य कर रहे हैं। सामाजिक सेवा योजनाओ मे उनका महत्वपूर्ण योग रहा है। ब्रिटेन मे ऐच्छिक दान समितियो एव सस्थाओ की सख्या हजारो मे है और उनमे बहुत सी सस्थाओ ने आपस मे मिल-जुल कर और उसी कार्य मे रत स्थानीय प्राधिकारियों से मिलकर अपने कार्य को सगठित किया है। इस प्रकार की समितियो के नाम ये हैं—राष्ट्रीय सामाजिक सेवा कौंसिल (National Council of Social Service), परिवार कल्याण परिषद् (Family Welfare Association), राष्ट्रीय वृद्ध कल्याण समिति, राष्ट्रीय युवक ऐच्छिक सघ का स्थायी सम्मेलन (Standing Conference of National Voluntary Youth Organization), शिशु गृहो की राष्ट्रीय सगठित कौंसिल (National Council of Association of Children's Home), राष्ट्रीय मातृत्व-कालीन एव शिशु कल्याण कौंसिल, अपगो की देखभाल के लिये केन्द्रीय कौंसिल और मातृत्व कालीन, शिशु और असमर्थ व्यक्तियों के कल्याण के लिये अन्य सस्थायें। इसके अतिरिक्त, ब्रिटिश रैडक्रास सोसायटी भी असमर्थ, दुर्बल एव बीमार व्यक्तियो के लिए अमूल्य कार्य कर रही है। महायुद्ध के बाद एक नई ऐच्छिक सेवा विवाह पथ प्रदर्शक कौंसिल (Marriage Guidance Council) के नाम से विवाह एव पारिवारिक जीवन की शिक्षा का प्रसार करने के लिये बनी है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन मे बहुत से समाज सेवक सघ भी हैं जो कि ब्रिटिश समाज सेवक सगम (British Federation of Social Workers) से सम्बन्धित है।

उपरोक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि रूस के अतिरिक्त शायद विरले ही ऐसा देश है जहाँ कि राज्य ने जनता को सामाजिक सुरक्षा देने का पूर्ण दायित्व लिया है और जहाँ राज्य द्वारा अधिकतम सीमा तक सामाजिक सेवायें उपलब्ध की जाती हैं।

सोवियत रूस में सामाजिक बीमा प्रणाली
(Social Insurance System in Soviet Russia)

यहाँ सोवियत रूस की सामाजिक प्रणाली का विवरण देना भी रुचिकर होगा। सत्तारूढ़ होने के कुछ दिन पश्चात् १४ नवम्बर सन् १९१७ को सोवियत सरकार ने सामाजिक बीमे के लिये प्रथम बार आदेश निकाला। इसका उद्देश्य यह था कि 'जार' के समय में जो अपर्याप्त सामाजिक बीमा प्रणाली थी, उस में यथा सम्भव उन्नति की जाय। उसमें निम्नलिखित बातों की व्यवस्था थी—(१) नगरों के श्रमिकों एवं कर्मचारियों के लिये बीमा योजना का विस्तार करना, (२) बेरोजगारी अथवा और किसी कारण वश शक्ति की हानि को पूरा करना, (३) उद्योग द्वारा ही बीमा अंशदान का भुगतान, (४) असमर्थता में पूर्ण मजदूरी देने की व्यवस्था (५) बीमाकृत व्यक्तियों द्वारा ही बीमा व्यवस्था का स्वयं प्रशासन करना।

सोवियत शासन के आरम्भ की कठिनाइयों के कारण सामाजिक बीमा योजना के मूल सिद्धान्त केवल सन् १९२२ में ही नई आर्थिक नीति (New Economic Policy) के अन्तर्गत कार्यान्वित किये जा सके। एक श्रमिक संहिता भी घोषित की गयी, जिसके अन्तर्गत निम्न सुविधाओं को प्रदान करने की व्यवस्था थी—चिकित्सा सम्बन्धी सहायता, अस्थायी असमर्थता के लिये लाभ, कुछ अतिरिक्त लाभों का दिया जाना, जैसे—बच्चों के लिये भोजन, निराश्रितों की सहायता, मृत्यु संस्कार भत्ता और असमर्थता, वृद्धावस्था एवं जीविका कमाने वाले की मृत्यु होने पर पेन्शनें. रूस में एक ऐसा नियम भी बना दिया गया है जो दूसरे देशों की सामाजिक बीमा योजनाओं में नहीं पाया जाता। इस नियम के अनुसार बीमा प्रीमियम केवल कार्य पर लगाने वालों के द्वारा ही देने की व्यवस्था है। यह प्रीमियम उद्योग के मजदूरी बिल की एक निश्चित प्रतिशत के बराबर राशि के रूप में काटकर एक सामाजिक बीमा निधि में जमा कर दिया जाता है। इससे बीमाकृत कर्मचारियों और श्रमिकों की मजदूरी में कोई कमी नहीं होती। इसकी प्रतिशत दर ४४ और ६८ के मध्य रहती है, जो उत्पादन की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। श्रमिकों को कोई अंशदान नहीं देना होता है। चिकित्सा सम्बन्धी सहायता, जो कि जिन्स में दी जाती है, सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत नहीं आती, परन्तु वह सामाजिक सेवाओं एवं अन्य सुविधाओं से सम्बन्धित है। रूस में सामाजिक बीमा प्रणाली केवल नौकरी-पेशा श्रमिकों के लिए ही है और इस प्रकार कृषि श्रमिकों को छोड़ दिया गया है। इनकी रक्षा कृषक सामूहिक सगठनों द्वारा की जाती है।

रूस में सामाजिक बीमे के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—सन् १९३३ से इसका प्रशासन श्रमिक संघों के हाथ में है और इसका संगठन, निधि और

कार्य सब श्रमिकों के हाथ में हैं। (२) केवल रोजगार पर लगे हुए व्यक्तियों का ही सामाजिक बीमा किया जाता है। (३) सामाजिक बीमा वह बीमा है जिसमें बीमा किश्त (प्रीमियम) बीमाकृत व्यक्तियों द्वारा नहीं, वरन् कार्य पर लगाने वालों के द्वारा दिया जाता है, यह प्रीमियम उद्योग व मजदूरी बिल के एक प्रतिशत मान के रूप में एकमुश्त दिया जाता है। यहाँ तक कि यदि कार्यों पर लगाने वालों के द्वारा प्रीमियम किसी कारणवश न दिया जा सका हो तो भी व्यक्तिगत रूप से श्रमिक का बीमा बना रहता है। (४) बीमा लाभ का पूरा लाभ उठाने के लिये श्रमिक संघ की सदस्यता एक शर्त है और जो श्रमिक संघ के सदस्य नहीं होते उनको आधा ही लाभ मिलता है। (५) सामाजिक बीमा श्रमिकों को स्थायी बनाने और उत्पादन में वृद्धि करने की सरकारी आयोजना से सम्बन्धित है। अधिकतम भुगतान उनको मिलता है, जिन्होंने एक ही उद्योग में अधिक से अधिक समय तक कार्य किया हो। रोजगार में बर्खास्त किये गये व्यक्तियों को कम सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध है। (६) सन् १६३० में जब प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत श्रम शक्ति की माँग के बढ़ने पर बेरोजगारी समाप्त हो गई तो बेरोजगारी बीमा को भी समाप्त कर दिया।

अब रूस में सामाजिक बीमे की मुख्य विशेषतायें निम्नांकित हैं—(क) अस्थायी रूप से अशक्त श्रमिकों की सहायता, (ख) स्थायी असमर्थता और वृद्धावस्था में पेंशन की व्यवस्था।

अस्थायी रूप से अशक्त श्रमिकों को बिना शर्त के सहायता मिलती है और यदि यह अशक्तता रोजगार से सम्बन्धित बीमारी अथवा क्षति के कारण हुई हो तो औसत वेतन के १००% तक सहायता मिलती है। अन्य दशाओं में सहायता सेवा-अवधि के आधार पर मिलती है, जैसे ६ वर्ष अथवा अधिक समय कार्य करने के पश्चात् औसत वेतन का १००% भाग, ३ से ६ वर्ष कार्य करने पर ८०%, २ से ३ वर्ष कार्य करने पर ६०% और २ वर्ष से कम समय कार्य करने पर ५०% भाग मिलता है। जो श्रमिक संघ के सदस्य नहीं हैं, उनको आधा भाग उपलब्ध होता है। ऐसे श्रमिक, जो या तो कार्य से बर्खास्त कर दिये गये हैं अथवा जिन्होंने अपनी रुचि से कार्य छोड़ दिया है, अस्थायी असमर्थता लाभ के अधिकारी तभी हो सकते हैं जबकि नये रोजगार में वह कम से कम ६ मास तक कार्य कर चुके हों।

रूस में ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जिसकी आयु ६० वर्ष हो गयी हो, और प्रत्येक ऐसी महिला को, जिसकी आयु ५५ वर्ष हो गयी हो, पेन्सन पाने का अधिकार है। स्थायी असमर्थता में पेन्शन केवल तभी प्रदान की जाती है, जब यह असमर्थता रोजगार से ही सम्बन्धित बीमारी अथवा क्षति द्वारा हुई हो और अन्य परिस्थितियों में यह पेन्शन आयु एवं सेवा अवधि पर निर्भर होती है। पेन्शन की राशि इस बात पर निर्भर करती है कि श्रमिक को क्षति के समय कितना वेतन मिलता था। इस राशि की प्रतिशत मात्रा असमर्थता की सीमा के अनुसार निर्धारित होती है।

अधिकतम पेंशन की राशि अन्तिम मजदूरी का ६६ प्रतिशत होती है।

रूस मे सामाजिक बीमा प्रणाली के साथ-साथ अन्य सामाजिक सेवाओं की भी व्यवस्था है। इस व्यवस्था मे वे सब प्रयत्न आ जाते हैं, जो जनसाधारण की बीमारी के दिनो मे जीवन की सुविधायें उपलब्ध करने के लिये किये जाते हैं। यह निम्नलिखित है—

(१) 'जनता स्वास्थ्य व्यवस्था' के अन्तर्गत, कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये चिकित्सालयो मे नि शुल्क चिकित्सा। (2) एक ही उद्योग मे कम से कम ११ माह तक निरन्तर कार्य करने के पश्चात् सवेतन २ सप्ताह का अवकाश। (३) विश्राम-गृहो और सेनीटोरियम की व्यवस्था। यह आंशिक रूप से श्रमिक सघो द्वारा और आंशिक रूप से अपने श्रमिको के लिये औद्योगिक सस्थाओ द्वारा चलाए जाते हैं। इनके प्रयोग के लिये सेवा अवधि की शर्त भी है और इसके लिये मजदूरो के अनुसार सम्भार भी लगाया जाता है। (४) नगरो और उपनगरो में विश्राम और सास्कृतिक कार्यों के लिये पार्कों की व्यवस्था, जिनमें रविवार अथवा अन्य सार्वजनिक छुट्टियो मे लोग जाया करते है। (५) प्रारम्भिक शिक्षा के लिये नि शुल्क सुविधाओं की उपलब्धि। (६) गर्भवती माताओ को और प्रसवकाल के तुरन्त बाद ही महिला श्रमिको को मातृत्व कालीन लाभ देने की व्यवस्था है, जिसको देना राज्य अपना कानूनी कर्तव्य समझता है।

माताओ का कल्याण एव उनकी रक्षा राज्य का सर्वप्रथम कार्य माना जाता है। कुछ श्रमिक अधिनियम गर्भवती माताओ के लिये बनाए गए हैं उनके अनुसार गर्भवती माताओं को काम पर लगे रहने का आश्वासन होता है। किसी महिला को गर्भवती होने के कारण कार्य न देने पर ६ मास का कारावास अथवा १,००० रूबल का दण्ड दिया जा सकता है। ऐसे ही अपराध को दोहराने पर दो वर्ष के कारावास का दण्ड मिलता है। गर्भवती माता को अपनी उसी मजदूरी मिलने का भी आश्वासन होता है, जो उसको गर्भवती होने से पूर्व मिलती थी और इस कारण मजदूरी मे कटौती करने पर वही दण्ड दिया जाता है, जो नौकरी न देने पर दिया जाता है। गर्भावस्था मे उसको वेतन मे कटौती किये बिना, हल्का कार्य करने को दिया जाता है और गर्भ के चार मास पूरे होने के पश्चात् गर्भवती स्त्री को समयोपरि (Overtime) कार्य करना वर्जित है। गर्भवती स्त्री को प्रसव से पूर्व ५६ दिन की छुट्टी एव राज्य से अनुदान प्राप्त करने का अधिकार है। पहले कानून के अनुसार यह अनुपस्थिति-अवकाश प्रसव के बाद २८ दिन तक चलता था। परन्तु जुलाई सन् १९५४ मे यह अवधि बढाकर ४२ दिन तक कर दी गई और अब यह ५६ दिन है। यह अवकाश पूरे वेतन सहित मिलता है। असाधारण प्रसव पर इस छुट्टी की अवधि बढ सकती है। युद्धकाल में गर्भवती माताओं के लिये राशन की पूर्ण सुविधायें उपलब्ध थी। ट्रामो, बसो और रेलों में उनके लिये विशेष स्थानो की व्यवस्था होती है और यात्रा के समय उनको लाईन मे लगाकर प्रतीक्षा

किये बिना ही स्थान दिया जाता है। समस्त देश में स्त्रियों व बच्चों की स्थितियों का ध्यान रखने वाले हजारों केन्द्र हैं। फैक्ट्रियों में बच्चों को दूध पिलाने वाली माताओं के लिये पृथक् कक्षों की, और विशेष "स्त्री स्वास्थ्य विज्ञान" कक्षों की व्यवस्था है। प्रसव काल के पश्चात् छुट्टी समाप्त होने पर स्त्रियों को विशेष कार्य सुविधायें दी जाती हैं। कार्य काल में बच्चों को दूध पिलाने के लिये उन्हें अतिरिक्त अवकाश दिया जाता है। यदि दो वर्ष से कम आयु का बालक बीमार पड़े तो उसकी माता को विशेष छुट्टी प्रदान की जाती है। माता को अपने प्रथम बालक के लिये वस्त्रादि बनाने के लिये नकद भत्ता भी दिया जाता है। देश में प्रसूति गृहों में २,१५,००० पलगों की व्यवस्था है।

रूस में अविवाहित माताओं की भलाई एवं उनके बच्चों की रक्षा के लिये एक विशेष व्यवस्था है। अपने बच्चे के पालन पोषण करने के लिए उन्हें राज्य द्वारा विशेष भत्ता मिलता है और माताओं और बच्चों की रक्षा करने की उपरोक्त सभी सुविधायें अविवाहित माताओं को भी उपलब्ध होती हैं। सोवियत परिस्थितियों के अन्तर्गत एक अविवाहित माता देश के सब अधिकारों से परिपूर्ण नागरिक है और सोवियत कानून उसका अपमान करने वाले और उसके मातृत्व का अपमान करने वाले को दण्ड देता है। रूस में अधिक बालकों वाली माताओं को पारितोषिक दिये जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमरीका में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था
(Social Security System in the U S A)

अमरीका में आरम्भ में सामाजिक सुरक्षा इस रूप में दी जाती थी कि जो भी व्यक्ति कृषि-कार्य करना चाहता था उसे सरकार द्वारा १६० एकड़ भूमि तक निःशुल्क मिल जाती थी।[1] अमेरिका प्राकृतिक साधनों में बहुत धनवान है। देश की अर्थव्यवस्था सदा विकसित ही होती रहती है। वहाँ पूर्ण रोजगार भी है और मजदूरी दर भी ऊँची है। अमरीका एक धनवान देश है। प्रत्येक अमेरिकन कुछ बचत करता है अपना जीवन-बीमा कराता है और उसके पास मकान, मोटर और अन्य व्यक्तिगत सम्पत्ति होती है। उसका न केवल जीवन स्तर ऊँचा है वरन् धनवान होने के कारण उसे स्वतः ही सुरक्षा मिल जाती है। परन्तु फिर भी एक ऐसे देश में जहाँ औद्योगीकरण की सीमा बहुत अधिक है, व्यक्तिगत प्रयत्नों से सभी सामाजिक संकटों में पूर्ण रूप से सुरक्षा नहीं मिल पाती। इसलिये सरकार ने भी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के लिये कुछ पग उठाये हैं जो सभी के लिए एक मकान है। परन्तु यह सुरक्षा केवल एक आधारशिला का ही कार्य करती है और अपने प्रयत्नों तथा अपने मालिकों की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति उस आधारशिला पर अपनी सुरक्षा की विस्तृत रूप से व्यवस्था करता है।

1 Essentials of Social Security in the United States

अमरीका मे सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत सभी नागरिक आ जाते है। राष्ट्रीय स्तर पर तो इस व्यवस्था में जो कार्यक्रम है वह वृद्धावस्था, उत्तरजीवी और असमर्थता बीमे से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य (State) द्वारा श्रमिक क्षतिपूर्ति तथा बेरोजगारी बीमे की व्यवस्था की जाती है। सामाजिक बीमे के कार्य क्रम के पूरक के रूप मे सघीय सरकार द्वारा राज्यो को इस हेतु अनुदान दिया जाता है कि वे अभीष्ट व्यक्तियो के लिए चिकित्सा सुविधायें, वित्तीय सहायता तथा अन्य सेवाएँ प्रदान कर सकें। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सेवाएँ भी है, जैसे— व्यवसायिक पुनर्वास सेवा, सयुक्त राज्य सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा तथा माताओ और बच्चो के लिए कल्याण कार्य आदि, जिनके लिए भी सघीय सरकार द्वारा अनुदान प्रदान किये जाते हैं। यह सब अनुदान १६३५ के सामाजिक-सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत दिये जाते है। सामाजिक बीमा तथा सार्वजनिक-कल्याण कार्यक्रमों के पूरक के रूप मे अनेक गैर सरकारी सस्थाओ के द्वारा भी कार्यक्रम किये जाते हैं। यह कार्य आर्थिक सुरक्षा हेतु किये जाते हैं। यह गैर-सरकारी कार्य मालिको और श्रमिको श्रमिक सघो के मध्य सामूहिक सौदाकारी समझौते के अन्तर्गत होते हैं। ऐसे निजी कार्यक्रम, निजी पेन्शन योजनाये, अस्पताल व शल्य-चिकित्सा की निजी सुविधायें बीमारी छुट्टी, बेरोजगारी पूरक लाभ आदि हैं। इनके अतिरिक्त, निजी निधियो द्वारा स्थापित अनेक ऐच्छिक सामाजिक अभिकरण भी अनेक प्रकार की सेवायें नगरीय क्षेत्रो मे रहने वाले व्यक्तियो और परिवारो को प्रदान करते हैं। यह सेवायें कई प्रकार की है, जैसे—सन्तान की देखभाल, पारिवारिक जीवन, विवाह, पारिवारिक प्रबन्ध तथा अन्य समस्याओ पर पारिवारिक परामर्श तथा मानसिक रूप से खिन्न व्यक्तियो के लिये मानसिक स्वास्थ्य क्लीनिक या अन्य कही पर व्यक्ति गत रूप मे चिकित्सा की सुविधायें आदि।

वृद्धावस्था, उत्तरजीवी तथा असमर्थता बीमा योजना का जो मूल कार्यक्रम है और जिसे साधारणतया सामाजिक-सुरक्षा का नाम दिया जाता है तथा जिसको एक कार्यक्रम मानकर प्रशासन किया जाता है उसका उद्देश्य यह है कि उसके अन्तर्गत ऐसे सभी व्यक्ति आ जाएँ जो लाभकर रोजगार पर लगे हुए हैं, चाहे उनकी आय का स्तर कितना ही हो और उनका रोजगार किसी भी प्रकार का हो। यह लाभ प्रत्येक व्यक्ति को उसका अधिकार मानकर दिये जाते है और उसकी आवश्यकता, सम्पत्ति या अर्जित आय का ध्यान नहीं किया जाता। इस कार्यक्रम की वित्तीय-व्यवस्था श्रमिको, मालिको तथा स्वय रोजगार पर लगे व्यक्तियो (जिनका कोई मालिक नही है) के अशदान द्वारा की जाती है। यह व्यवस्था सामाजिक सुरक्षा करो तथा स्थायी निधियो के ब्याज (जिन निधियो मे अशदान जमा कर दिया जाता है) द्वारा आत्म-निर्भर व्यवस्था है। इन निधियो का सर्वेक्षण समय समय पर एक परामर्श परिषद् द्वारा किया जाता है जिनमे श्रमिको,

व्यावसायिक पुनर्वास (Vocational Rehabilitation)—इसके अन्तर्गत जो सघीय राज्य कार्यक्रम है उनके द्वारा अशक्त तथा अपग व्यक्तियों को कुछ सेवायें प्रदान की जाती है, जैसे—अपगता का दूर करना, परामर्श देना, कोई, रोजगार दिलाना आदि। इस प्रकार अशक्त व्यक्तियों को पुन उत्पादन-कार्य मे लगा दिया जाता है।

मातृत्व-कालीन सुरक्षा (Maternity Protection) सयुक्त राज्य मे मातृत्व कालीन लाभ ऐच्छिक रूप मे मालिको व श्रमिक सघो द्वारा प्रदान किये जाते है और विधान द्वारा नही दिय जात। परन्तु एक राज्य मे (रोड द्वीप) अस्थायी असमर्थता बीमा अधिनियम के अन्तगत रोजगार पर लगी हुयी स्त्रियो को प्रसवकाल से ६ सप्ताह पूर्व और ६ सप्ताह पश्चात् तक नकदी लाभ दिये जाते हैं। एक सघीय विधान है जिसके अन्तर्गत मातृत्व-कालीन लाभ, रेल-सडक उद्योग मे लगी हुई महिला श्रमिको को तथा फौज मे कार्य करने वाले पुरुषो की पत्नियो को, प्रदान किये जाते हैं। गर्भवती स्त्रियो को यदि चिकित्सा की आवश्यकता होती है तो मातृत्व-कालीन लाभ एक सार्वजनिक सेवा मानकर सघीय, राज्य और स्थानीय सरकारो के सहयोग से प्रदान किये जाते हैं। कई राज्यो मे इस बात का भी विधान बना दिया गया है कि प्रसवकाल से पूर्व व पश्चात् स्त्रियो को कार्य पर न लगाया जाय। सामाजिक सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत सघीय अनुदान की सहायता से राज्यो द्वारा शिशु व स्वास्थ्य कल्याण के कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं।

सरकारी सहायता (Public Assistance)—सामाजिक बीमा के पूरक के रूप में १९३५ के सामाजिक अधिनियम के अन्तर्गत कुछ सघीय-राज्य सरकारी सहायता भी प्रदान की जाती है। यह सहायता मासिक नकदी भुगतान और सामाजिक सेवाओ के रूप मे होती है। यह सहायता अभीष्ट, वृद्ध, अन्धे, पूर्णरूप से असमर्थ, टूटे परिवारो के आश्रित बच्चे अथवा ऐसे परिवारो के बच्चे जिसके उपार्जक माता-पिता असमर्थ हो या बेरोजगार हो, आदि को दी जाती है। इस बात की व्यवस्था है कि व्यक्तियों को चिकित्सा की कुछ लागत भी दे दी जाये। चिकित्सा लागत ऐसे वृद्ध व्यक्तियो को भी दी जाती है जिनकी आयु ६५ वर्ष से अधिक है और जो अपने रहन-सहन का व्यय तो उठा लेते हैं परन्तु असाधारण चिकित्सा सेवाओ का व्यय नही उठा पाते। ऐसे आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियो को भी आम सहायता (General Assistance)—दी जाती है जो किसी सहायता पाने वाले वर्ग मे तो नहीं आते, किन्तु जिनको आवश्यकता होती है।

इस प्रकार सयुक्त राज्य अमेरिका मे सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था का तत्व यह है कि जनता को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये कई प्रकार से कदम उठाये जाते हैं। उस देश मे यह पाया गया है कि अत्यधिक मजदूरी वाले पूर्ण रोजगार को आधार मानकर आर्थिक सुरक्षा की आवश्यकता को पूरा करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि इस आवश्यकता को तीन प्रकार से पूरा किया जाए, अर्थात्

सामाजिक लक्ष्यो को पूरा करने के लिये पर्याप्त सार्वजनिक कार्यक्रम, ऐच्छिक सामूहिक कार्य को शक्ति देने के लिये निजी मालिको द्वारा लाभ योजनायें, जिनसे पारस्परिक सुरक्षा प्रदान की जा सके, और निजी बचत तथा अन्य व्यक्तिगत कार्य जिनसे रुचि के अनुसार अधिक से अधिक कार्य और सहायता हो सके।

आस्ट्रेलिया मे सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था
(Social Security System in Australia)

सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था आस्ट्रेलिया की एक विशेषता है। इस शताब्दी के आरम्भ में सामाजिक सेवाओ पर होने वाले बहुत से प्रयोगो के कारण, उसे ससार की सामाजिक प्रयोगशाला (Social Laboratory of the World) का नाम दिया गया था। सन् १९०१ के सघीय (Federal) विधान के पूर्व भी स्वास्थ्य शिक्षा, फैक्टरी कानून, क्षतिपूर्ति, बाल कल्याण आदि सामाजिक कल्याण कार्य करना राज्य का ही उत्तरदायित्व था। सघीय विधान के पश्चात् से कॉमनवल्थ सरकार ने सामाजिक सेवाओ मे अधिक रुचि ली है और सरकार के कल्याण कार्यों की नीति, लक्ष्य एव क्षेत्र को देखते हुये उसे वास्तव मे राष्ट्रीय कहा जा सकता है। प्रथम सघीय सामाजिक सेवा (Federal Social Service) वृद्धावस्था पेन्शन की थी जो सन् १९०६ मे आरम्भ हुई और इसके पश्चात् सन् १९४० मे असमर्थता पेन्शन की व्यवस्था की गई। सन् १९१२ में मातृत्व-कालीन भत्ता दिया जाता था। उसके पश्चात् बहुत वर्षों तक सघीय सरकार द्वारा बहुत थोडा कार्य किया गया यद्यपि बहुत से राज्यो ने सामाजिक सेवा व्यवस्था को अपनाया। सन् १९३६ मे सामाजिक सेवाओ के लिये राज्य के कार्यों मे बहुत वृद्धि हुई है। सन् १९४१ मे बाल-हित योजना को भी कार्यान्वित किया गया जिसके पश्चात् सन् १९४२ में वैधव्य पेन्शन योजना चालू की गई। सन् १९४३ मे एक नवीन प्रकार के मातृत्व-कालीन भत्ते का प्रारम्भ हुआ और मृत्यु सस्कार सहायता की व्यवस्था भी हुई। सन् १९४४ मे रोजगार और बीमारी लाभ अधिनियम लागू किया गया। सामाजिक सेवाओ का उत्तरदायित्व सघीय ससद एव विभिन्न राज्य पर ही है। परन्तु सामाजिक सेवा योजनाओ के लिये कानून बनाने का अधिकार सघीय ससद् का ही है और इस अधिकार को १९४६ मे एक लोक मतदान प्राप्त करने के बाद मान्यता भी प्राप्त हो गई है।

आस्ट्रेलिया मे मातृत्व-कालीन भत्ते (Maternity Allowances) मे तात्पर्य उस भुगतान से लिया जाता है, जो सरकार द्वारा माताओ को बच्चो के जन्म से सम्बन्धित व्यय के लिये वित्तीय सहायता के रूप मे दिया जाता है। यह भुगतान नि शुल्क देख-रेख चिकित्सा तथा उस स्थान व्यवस्था के अतिरिक्त है जो किसी माता को एक सार्वजनिक अस्पताल के जनरल वार्ड मे मिलती है और यदि बच्चा प्राइवेट वार्ड मे पैदा हुआ है तो खर्च के लिये ८ शि० प्रतिदिन का

आय को दृष्टि म रखते हुये भारत इतना व्यय वहन नही कर सकता। इससे पूर्व कि हम और देशो क समान अपने देश मे अनेक प्रकार के लाभो की व्यवस्था के लिये कोई योजना लागू करने के लिये पग उठायें राष्ट्रीय आय मे वृद्धि की जानी चाहिये। देश का बडा आकार, अत्यधिक जनसख्या और जनता की अशिक्षा को भी ध्यान म रखना होगा। चरित्र निर्माण, स्वय अनुशासन, आत्म सयम एव विस्तृत दृष्टिकोण की बहुत आवश्यकता है और जब तक यह सब न होगा, सुधार सम्भव नही है।

यह भी विचारणीय है कि सामाजिक सुरक्षा योजनाओ को आर्थिक विकास की अन्य योजनाओ स पृथक् रखकर कार्यान्वित नही किया जा सकता। इग्लैंड मे भी सर बैवरिज द्वारा योजना की सफलता के लिय यह आवश्यक समझा गया था कि सन्तान भत्ते पूर्ण रोजगार एव एक व्यापक स्वास्थ्य सेवा पहले से ही होनी चाहिये। भारत मे भी, सवप्रथम तो पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का प्रयत्न होना चाहिय एव व्यक्तियो के स्वास्थ्य एव कल्याण की योजनाओ की व्यवस्था होनी चाहिये और तब अन्य क्षेत्रो मे लाभो के विस्तृत करने पर विचार करना चाहिये। फिर भी इसका प्रारम्भ कुछ सीमित व्यक्तियो के लिया किया जा सकता है, और जैसे कि बताया जा चुका है, भारतीय औद्योगिक श्रमिको के लिये सामाजिक सुरक्षा योजना को लागू करना वांछनीय ही नही वरन् सम्भव भी है। यह प्रसन्नता का विषय है कि सरकार ने इस सम्बन्ध मे अपने दायित्व को समझ लिया है और भारत के औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण और सुरक्षा की दिशा मे कदम उठाये गये हैं और उठाये जा रहे है।

१४ कार्य की दशायें तथा कार्य के घण्टे, आदि

WORKING CONDITIONS AND HOURS OF WORK ETC

कार्य की दशाओं की महत्ता (Importance of Working Conditions)

मनुष्य जिन परिस्थितियो मे कार्य करता है, उनका उसके स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता, मनोवृत्ति तथा कार्य के गुणो पर विशेष प्रभाव पडता है। यह कहा जाता है कि वातावरण मनुष्य का निर्माण करता है यदि वातावरण में सुधार कर दिया जाय तो मनुष्य स्वय ही सुधर जायेगा।[1] अस्वस्थ दशाओ मे कठिन श्रम करते रहना सम्भव नहीं है। यह सर्वविदित तथ्य है कि गन्दे उदास और अस्वास्थ्यकर वातावरण की अपेक्षा स्वस्थ, उज्ज्वल और प्रेरणात्मक (Inspiring) वातावरण में मनुष्य अधिक और अच्छा कार्य कर सकता है। यदि वातावरण गन्दा और कोलाहलपूर्ण है तो श्रमिक का ध्यान बँट जायेगा। कार्य मे एकाग्रता (Concentration) होना आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब बाह्य विघ्नों से श्रमिकों का ध्यान न बँटे। दीवारों के रग और मशीनो की दशा तक श्रमिक मनोवृत्ति पर प्रभाव डालते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सन्तोषप्रद कार्य करने की दशाये केवल श्रमिकों की कार्यकुशलता को ही प्रभावित नही करता अपितु उसके वेतन, प्रवासिता और औद्योगिक सम्बन्धो पर भी प्रभाव डालती है। प्रत्येक श्रमिक की कार्यकुशलता प्रत्यक्ष रूप से उसके स्वास्थ्य तथा उसकी कार्य करने की इच्छा पर निर्भर करती है। यदि कार्य की दशाये सन्तोषजनक है तो श्रमिक के शरीर व मस्तिष्क पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव पडेगा, श्रमिक प्रसन्न रहेगा और कार्यकुशलता बढ जाने से उत्पादन भी अधिक होगा। इस प्रकार मालिको को भी लाभ होगा। इसके विपरीत, यदि कार्य करने की दशाये असन्तोषजनक है तो श्रमिक अपने कार्य को कठिन समझेगा, कार्य धीरे धीरे करेगा और उसके लिए समय व्यतीत करना भी कठिन हो जायेगा। सन्तोषजनक कार्य की दशायें प्रदान कर नकद मजदूरी व वास्तविक मजदूरी के बीच की खाई को बहुत कुछ कम किया जा सकता है। जहाँ

1 Environments create a man and if we improve the environments we improve the man

पर कार्य का वातावरण स्वस्थ है और मालिकों ने श्रमिक के कल्याण व सुख-सुविधा के लिए प्रबन्ध किया है वहां पर श्रमिक कम मजदूरी पर भी कार्य करने को तत्पर हो जाते हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त श्रमिकों की प्रवासिता का एक मुख्य कारण यह है कि जो श्रमिक गाँव के खुले वातावरण से आता है उसे कारखानों में एकदम भिन्न और असन्तोषजनक परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है। फलतः वह ऊब उठता है और शीघ्रातिशीघ्र अपने गाँव वापिस लौट जाने का प्रयत्न करता है। सन्तोषजनक एवं स्वास्थ्यप्रद कार्य की दशाएँ श्रमिकों की अस्थिरता के इस मुख्य कारण को दूर कर सकती है और उनमें अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त को भी बहुत सीमा तक कम कर सकती है। यदि कार्य का उज्ज्वल और स्वच्छ वातावरण प्रदान किया जाता है तब ऐसा वातावरण मालिक व मजदूर के बीच भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होता है। सन्तोषजनक वातावरण में श्रमिकों में थकान और उदासी भी नहीं आ पाती और वह अपना समय स्वयं के संगठन, परिवार व कल्याण कार्यों में व्यतीत कर सकता है।

कार्य करने की दशाओं का क्षेत्र
(Scope of Working Conditions)

कार्य करने की दशाओं के अन्तर्गत अनेक विषय आते हैं, उदाहरणतः जल-मल निकास की व्यवस्था, धूल और गन्दगी, तापक्रम, नमी, सवातन, कारखाने के अन्दर उचित स्थान और सुरक्षा की दृष्टि से मशीनों के चारों ओर रोक आदि तथा अनेक कल्याणकारी सुविधायें, जैसे—कैन्टीन, स्नानगृह, हाथ मुँह धोने के लिये चिलमियाँ, पीने के पानी की व्यवस्था, जलपान गृह, कार्य के घण्टे, रात्रि कार्य, पारी प्रणाली आदि। उपरोक्त विषयों में से अनेक सुविधाएँ कल्याणकारी सुविधाओं के अन्तर्गत प्रदान की जाती है तथा अनेक कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आती है। परन्तु कानून द्वारा न्यूनतम आवश्यकताओं के निर्धारित होने पर भी जल-मल निकास की व्यवस्था, सवातन, तापक्रम, प्रकाश आदि अर्थात् सामान्य वातावरण इस बात पर निर्भर करता है कि मालिक इसका अनुभव कर लें कि अच्छे वातावरण का श्रमिकों के स्वास्थ्य और कार्यकुशलता के लिए बहुत महत्व है।

कार्य करने की दशाओं के विभिन्न रूप
(Various Aspects of Work Conditions)

जल मल निकास की व्यवस्था (Sanitation) एवं स्वच्छता सम्भवतया सन्तोषजनक कार्य की दशाओं का सबसे मुख्य अंग है। इनसे तात्पर्य कारखाने के अन्दर सफाई, दीवारों पर सफेदी, पक्का फर्श साफ और स्वच्छ मशीनें, शौचालय तथा पेशाबघर का उचित प्रबन्ध, पानी निकालने के मार्ग नालियाँ, कूड़े करकट के लिए कनस्तर व टोकरियों आदि से है।

कारखाने के अन्दर से धूल व गन्दगी (Dust and Dirt) दूर करने का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए। बहुत से कारखानों में निर्माण-प्रक्रिया कुछ ऐसी होती

कि बहुत गन्दगी उत्पन्न हो जाती है। गन्दगी और धूल उत्पन्न होने का कारण यह भी है कि कारखानो के अन्दर की सड़कें कच्ची होती हैं, और यदि उन पर भी उचित रूप से पानी नहीं छिडका जाता, या कारखाना बिल्कुल मुख्य सड़क पर होता है तो धूल सदा आती रहती है। भारत की जलवायु भी इस प्रकार की है कि ग्रीष्म ऋतु मे बडी मात्रा मे धूल व गन्दगी उत्पन्न हो जाती है। धूलग्रस्त वातावरण मे श्रमिक ठीक प्रकार से साँस भी नही ले सकते जिसके कारण अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है और उनकी आँखो पर भी कुप्रभाव पडता है। अत सडको तथा मार्गो पर पानी छिडकने का तथा पक्के फर्शों और पक्के मार्गो का प्रबन्ध होना चाहिये। इसके अतिरिक्त धूल और गन्दगी दूर करने के लिये उचित रूप से हवा के आने जाने और सफाई की व्यवस्था होनी चाहिये।

तापक्रम (Temperature) व **नमी** (Humidification) का भी कार्य करने की दशाओ मे विशेष महत्त्व है। देश की जलवायु ऐसी है कि ग्रीष्म-ऋतु मे, विशेष तया गर्म तापक्रम के कारण शारीरिक कार्य अरुचिकर हो जाता है। उच्च तापक्रम मे कमी करना या उसके प्रभाव को कम करना अत्यन्त सरल है, यद्यपि बहुत से लोग इस बात को नही समझते हैं। बिजली के पखे, दूषित वायु निकालने के पखे, खस की टट्टियाँ और वातानुकूल यन्त्र इन दशाओ मे सुधार कर सकते है।

पर्याप्त सवातन (Ventilation) और हवा के आने की व्यवस्था एक अन्य आवश्यकता है। यह व्यवस्था खिडकियो तथा सवातनो द्वारा की जाती है। यह व्यवस्था कृत्रिम उपायो द्वारा भी हो सकती है, जैसे मशीनो या पखो द्वारा हवा को फेंकना। ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता वस्त्र उद्योगो मे विशेष रूप में होती है, क्योंकि वहाँ कार्य धूलग्रस्त व नम वायु म सम्पन्न होता है। अनेक उद्योगो मे धूल तथा हानिकारक गैसें उत्पन्न होती है, जिनको तत्काल कारखाने स निकालने के लिये उचित सवातन का होना आवश्यक है। उचित रूप स सवातन व्यवस्था न होने जो हानिकारक परिणाम होते है वह भली भाँति ज्ञात है। परन्तु फिर भी भारतीय कारखानो मे इस ओर उचित ध्यान नही दिया जाता।

प्रकाश (Lighting) की व्यवस्था भी बहुत आवश्यक है। कार्य करने के स्थानो पर उचित तथा पर्याप्त प्रकाश का प्रबन्ध कर्मचारियो की नेत्र दृष्टि की रक्षा करता है और उत्पादन मे वृद्धि करता है। प्राकृतिक प्रकाश का प्रबन्ध छतो से अथवा खिडकियो से किया जा सकता है। कृत्रिम प्रकाश का प्रबन्ध बिजली, मिट्टी के तेल या गैस की लालटेनो द्वारा किया जा सकता है। असन्तोषजनक प्राकृतिक प्रकाश प्राय पुरानी अयोग्य इमारतो अन्य इमारतो की समीपता, गन्दी खिडकियो, दीवारो व छतों के कारण होता है। भारत में अनेक कारखानो मे इस प्रकार की दशायें पाई जाती है। लगातार कृत्रिम प्रकाश का प्रयोग भी अप्राकृतिक होता है और आँखो पर कुप्रभाव डालता है। असन्तोषजनक प्रकाश स दुर्घटनायें हो जाती हैं और उत्पादन मे कमी हो जाती है। कम प्रकाश से गन्दगी बढती है क्योकि बहुत से कोनो म

गन्दगी दिखाई नहीं देनी है। प्रकाश पर्याप्त मात्रा में होना चाहिये और कार्य के ठीक स्थान पर उस प्रकाश से परछाई भी न पड़नी चाहिये। इस बात का भी प्रबन्ध होना चाहिये कि कर्मचारियों की आँखों पर प्रकाश सीधा न पड़े।

दुर्घटनाओं को रोकने के लिये **मशीनों के चारों ओर रोक लगाना** (Fencing) व **श्रमिकों की सुरक्षा के पर्याप्त साधनों** (Safety provisions) **का होना** आवश्यक है। इस दृष्टि से विभिन्न कारखाना अधिनियमों में उपबन्ध बनाये गये हैं। परन्तु उनको उचित रूप में लागू करना भी अत्यन्त आवश्यक है। कारखाने ऐसी ही इमारतों में बनाने चाहिये जिनमें काफी जगह हो, जिसमें कि मशीनों के मध्य काफी स्थान रह सके।

कारखानों के अन्दर **पीने के शुद्ध पानी** तथा खाना खाने के लिये भी **उचित स्थान का प्रबन्ध** होना आवश्यक है। कार्य के घण्टे भी लम्बे नहीं होने चाहिये तथा बीच-बीच में अल्पविराम का प्रबन्ध भी होना चाहिये।

सन् १९४८ का कारखाना अधिनियम—
कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में इसके मुख्य उपबन्ध
(Factory Act of 1968 Its Provisions Regarding Working Conditions)

यहाँ हम १९४८ के कारखाना अधिनियम (Factory Act of 1948) के उन उपबन्धों की चर्चा करेंगे जिनको मालिकों द्वारा श्रमिकों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिये लागू करना आवश्यक है। इस प्रकार की व्यवस्था समय-समय पर अनेक कारखाना अधिनियमों द्वारा की गयी थी। परन्तु अब उनको एक स्थान पर समायोजित कर १९४८ के अधिनियम में व्यापक रूप प्रदान कर दिया गया।

जहाँ तक **स्वच्छता** (Cleanliness) का सम्बन्ध है, अधिनियम के अनुसार प्रत्येक कारखाना, नालियों या अन्य कारणों से उत्पन्न दुर्गन्ध से मुक्त रहना चाहिये। झाड़ू अथवा किसी अन्य साधन द्वारा प्रतिदिन फर्श, कार्य करने के कमरों की बैंचों सीढ़ियों, मार्गों आदि में से गन्दगी और कूड़ाकरकट के ढेर साफ होने चाहिये तथा उनको फेंकने की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये। सप्ताह में कम से कम एक दिन कार्य करने के प्रत्येक कमरे का फर्श कीटाणुनाशक (Disinfectant) पदार्थ द्वारा धुलना चाहिये। यदि निर्माण प्रक्रिया के समय फर्श गीला हो जाता है तो नालियों की उचित व्यवस्था करनी होगी। अन्दर की दीवारें और कमरों की ऊपर और नीचे की छतें, सीढ़ियाँ मार्ग आदि सभी पर प्रत्येक पाँच वर्ष में कम से कम एक बार पुन. रोगन या वार्निश करनी चाहिये। प्रत्येक १४ महीने में एक बार सफाई करनी चाहिये। यदि रोगन अथवा वार्निश नहीं की जाती, तब १४ महीनों में एक बार पुताई या सफेदी करनी चाहिये।

जहाँ तक **कूड़ा-करकट और दुर्गन्ध की** निकासी (Disposal of Wastes and Effluents) का सम्बन्ध है, निर्माण के समय उत्पन्न होने वाली ऐसी वस्तुओं

की निकासी के लिये राज्य सरकारो को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। इन नियमो के अनुसार प्रत्येक कारखाने मे उचित सवातन (Ventilation) की व्यवस्था होनी चाहिए और प्रत्येक कमरे में शुद्ध वायु के आने जाने के लिए माग तथा ऐसा तापक्रम (Temperature) जिससे श्रमिको के स्वास्थ्य को हानि न पहुचे और व आराम से काम कर सके रखने के लिए भी प्रभावात्मक और उचित व्यवस्था होनी चाहिए। दीवारें और छतें इस प्रकार और ऐसे पदार्थों की बनानी चाहिए कि तापक्रम जितना भी सम्भव है कि कम रखा जा सके। यदि किसी काय के लिए अधिक तापक्रम की आवश्यकता पडती है तब ऐसी व्यवस्था मे जिस प्रक्रिया से अधिक तापक्रम पैदा होता है उसे काय के कमरे से या किसी अन्य साधन द्वारा पृथक करके श्रमिको को बचाना चाहिए। राज्य सरकारो का पर्याप्त सवातन और उचित तापक्रम के स्तरो को निर्धारित करने का अधिकार है और राज्य सरकार किसी भी कारखाने से तापक्रम को कम करने की माग कर सकती है जिसके लिए कोई भी साधन अपनाया जा सकता है जैसे—दीवारो पर सफेदी करना पानी छिडकना यत्र लगाना बाहर की दीवारो कमरो और खिडकियो पर पर्दे लटकाना छत को ऊचा करना या कोई अन्य साधन।

यदि किसी कारखाने मे उत्पादन के समय धूल (Dust) धुआ (Fumes) या अन्य किसी प्रकार की गन्दगी होती है जिससे श्रमिको को हानि पहुचती है और दुर्गन्ध उत्पन्न होती है तब काय के कमरो में से इसे तत्काल निकालने और एकत्रित न होने देने की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि दूषित वायु मे साँस न ली जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हवा फकने वाले यन्त्रो का प्रयोग किया जाना चाहिये और इस प्रकार का कोई इजिन किसी भी कमरे मे चालू नही करना चाहिए जब तक धुएँ को एकत्रित होने से रोकने के लिए कोई व्यवस्था न कर ली जाय।

उन सभी कारखानो के सम्बन्ध मे जहाँ हवा का नमी को कृत्रिम रूप से बढाया जाता है राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वह इस बात के लिये नियम बनाये कि नमी (Humidification) का क्या स्तर होगा और हवा की नमी को कृत्रिम रूप से बढाने के ढग पर नियन्त्रण रखने और पर्याप्त सवातन और काय के कमरो को ठडा रखने की व्यवस्था होगी। नमी को बढाने के लिये केवल शुद्ध जल का ही प्रयोग करना होगा।

भीड भाड को रोकने के लिये—अधिनियम मे यह व्यवस्था की गई है कि उन कारखानो मे जो अधिनियम के लागू होने के पूर्व मे चल रहे थे काम के प्रत्येक कमरे मे प्रत्येक श्रमिक के लिये कम से कम ३५० घन फीट की जगह (Space) होगी तथा उन कारखानो मे जो अधिनियम बनाने के बाद स्थापित हो कम से कम प्रति श्रमिक ५०० घन फीट जगह होगी। कारखाना मे मुख्य निरीक्षक को

निर्धारित करने का अधिकार है कि किसी कमरे में अधिक से अधिक कितने श्रमिक काम कर सकते हैं।

प्रकाश के लिये—अधिनियम में यह व्यवस्था है कि कारखाने के प्रत्येक भाग में, जहाँ श्रमिक आते जाते है, अथवा जहाँ वे काम करते हैं कृत्रिम एवं प्राकृतिक अथवा दोनों ही प्रकार के प्रकाश (Lighting) की पर्याप्त और उचित व्यवस्था होगी। प्रत्येक फैक्ट्री के कमरों में प्रकाश रखने के लिये यदि शीशेदार खिड़कियाँ और रोशनदान हो तो वे भीतर और बाहर दोनों ओर से साफ रहनी चाहियें। उनमें तापक्रम के घटाने के समय के अतिरिक्त और किसी समय कोई रुकावट नहीं होनी चाहिये। यदि किसी प्रकार के साधन से सीधे तौर पर या किसी चिकने स्थान से चकाचौंध होती है तो उसको रोकने के लिये भी व्यवस्था करनी चाहिये। इसी प्रकार ऐसी परछाईं को जिससे श्रमिक की आँखों पर जोर पड़ता हो अथवा दुर्घटना की सम्भावना हो, दूर करने की व्यवस्था होनी चाहिये। विभिन्न श्रेणियों के कारखानों के लिये राज्य सरकारों को सन्तोषजनक और उपयुक्त प्रकाश के स्तर का निर्धारित करना होता है।

यह भी व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक कारखाने में उचित और सुविधाजनक स्थानों **पर पीने के पानी** (Drinking Water) की पर्याप्त पूर्ति का प्रबन्ध करना होगा। ऐसे स्थानों पर, उस भाषा में जिसे श्रमिक समझ सकें, **"पीने का पानी"** लिखा जायेगा। ऐसा स्थान धोने की जगह, शौचालय तथा पेशाबघर से कम से कम २० फुट की दूरी पर होगा। उन कारखानों में जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, गर्मी के दिनों में पीने के पानी को ठण्डा करने की भी व्यवस्था करनी होगी।

अधिनियम के अनुसार विशेष प्रकार के **शौचालय** (Latrines) **तथा पेशाबघर** (Urinals) भी पर्याप्त मात्रा में बनाने चाहियें। यह ऐसे स्थानों पर होने चाहियें, जहाँ श्रमिक, कारखानों में रहते हुए, किसी भी समय सरलतापूर्वक पहुँच सकें। इस प्रकार के स्थानों पर पर्याप्त प्रकाश और संवातन की व्यवस्था होनी चाहिये तथा ये हर समय स्वच्छ रहने चाहियें। इस कार्य के लिये भंगियों को नौकरी पर लगाना होगा। स्त्री और पुरुषों के लिये अलग-अलग व्यवस्था करनी होगी। ऐसे प्रत्येक कारखाने में, जहाँ २५० या अधिक कर्मचारी कार्य करते हैं, फर्श और तीन-तीन फीट तक दीवारें चमकदार टाइलों की बनानी होगी तथा सप्ताह में एक बार सबकी खूब सफाई व कीटाणुनाशक पदार्थों से धुलाई होगी। राज्य सरकारों को प्रत्येक कारखाने के सम्बन्ध में शौचालय तथा पेशाब-घरों की संख्या व सफाई के लिए नियम बनाने का अधिकार है।

अधिनियम में इस बात का भी उपबन्ध है कि प्रत्येक कारखाने में उचित स्थानों पर **पीकदानों** (Spittoons) की व्यवस्था की जाये और उनको स्वच्छ अवस्था में रखा जाय। कारखाने के अन्दर कोई भी व्यक्ति पीकदान के अलावा कहीं नहीं

थूकेगा। राज्य सरकार प्रत्येक कारखाने मे पीकदान की संख्या तथा उनके आकार के रूप को निर्धारित करेगी। उस व्यक्ति पर, जो नियम का उल्लघन कर और कही थूकता है, ५ रु० का जुर्माना किया जा सकता है।

श्रमिकों की सुरक्षा और दुर्घटनाओं की रोक-थाम (Prevention of Accidents) के लिए भी अधिनियम मे उपबन्ध है। खतरनाक मशीनों उनके घूमने वाले भागो और पहियो के चारो और पर्याप्त रूप से रोक लगाने का आदेश है। गतिशील मशीनों को इस प्रकार से लगाना होगा जिससे कोई दुर्घटना न हो सके। यदि जाँच-पड़ताल के हेतु या उनमें तेल डालने के लिए अथवा पट्टा चढ़ाने के लिए चलती हुई मशीन पर या उसके पास काम करना आवश्यक भी हो तो यह कार्य किसी विशेष प्रशिक्षित वयस्क पुरुष द्वारा किया जाना चाहिये। इस व्यक्ति के कपड़े कसे हुए होने चाहिये और उसको किसी भी ऐसे पट्टे को, जिसकी चौडाई ६ इच से अधिक हो, चलायमान (Moving) अवस्था में नही छूना चाहिये। मशीन के उन सभी भागो के चारो ओर, जिनसे श्रमिक का अधिक सम्पर्क हो सकता है, रोक लगानी चाहिये। किसी भी कारखाने म, जब मशीन चल रही हो, किसी भी स्त्री या बालक को मशीन साफ करने, उसमे तेल देने अथवा उसके किसी पुर्जे आदि को लगाने के काम पर नही लगाया जा सकता और न उनको मशीनो के चलते हुए भागो के बीच म कोई कार्य दिया जा सकता है। बिना पर्याप्त प्रशिक्षण और बिना पर्याप्त निरीक्षण व देख रेख के कोई भी युवक खतरनाक मशीनो पर कार्य नही कर सकता। इस बात की व्यवस्था होनी चाहिये कि सकटकाल मे चलती हुई मशीनो से चालू शक्ति (Power) को तत्काल ही बन्द किया जा सके। पट्टो को चलाने के लिए यान्त्रिक साधनो की व्यवस्था करना जरूरी है। इस बात के बचाव की भी व्यवस्था है कि स्वय चलन वाली मशीनो से सम्पर्क न हो पाए। १६४८ के कारखाना अधिनियम मे एक नया उपबन्ध इस बात का भी है कि जो भी नई मशीन बने, उसके चारो ओर रोक होने की व्यवस्था उसके साथ ही होनी चाहिये। इसका उत्तरदायित्व कारखाने के मालिको पर ही नही वरन् मशीन के बनाने वाले या मशीन को बेचने वाले एजेन्ट के ऊपर भी है। मशीनो म रूई ले जाने के मार्ग के पास औरतों व बच्चो को काम पर लगाने की भी मनाही है। लिफ्ट या उठाने वाले यत्र के सम्बन्ध में भी उपबन्ध बनाये गये हैं। उनकी यान्त्रिक रचना अच्छी होनी चाहिये, वे अच्छे पदार्थ के बने होने चाहिए, मजबूत होने चाहिए, उनको उचित दशा मे रखना चाहिये और उनकी जाँच भी होती रहनी चाहिए। उनके लिए दरवाजे, जाली और अधिकतम बोझ आदि के सम्बन्ध म भी उपबन्ध हैं। 'क्रेन' और अन्य भार उठाने वाली मशीनो, घूमती हुई मशीनो, दबाव डालने वाली मशीनो आदि से रक्षा करने के लिए भी उपबध बनाए गए हैं। इस बात की भी व्यवस्था है कि तमाम फर्श, सीढियाँ और पहुँचने के साधन अच्छे प्रकार के बने हुए होंगे और उनको अच्छी हालत मे रखा जायेगा। अगर फर्श मे कोई

मिलो ने वातानुकूलित व्यवस्था भी की है। बम्बई और अहमदाबाद की कुछ मिलो मे कपास व रेशे को हटाने के लिए भी की मशीना की व्यवस्था है। अन्य स्थाना पर दशायें असहनीय है। बिजली के पखे ना सामान्यत सभी मिलो मे है परन्तु जूट मिलो मे गन्दी हवा को बाहर फेंकने वाले पखो तथा भीतर पखा की व्यवस्था नहीं है। पुराना स्थापित कपडा व जूट मिलो म केवल उन न्यूनतम आवश्यकताओ के जिन्हे कानून करना आवश्यक है, स्वास्थ्य व आराम के लिये कुछ नही किया गया है। काम के समय बैठन का की व्यवस्था नही की गई है। अधिकाश रेशमी तथा ऊनी वस्त्र मिलो म श्रीनगर के अतिरिक्त जहाँ अधिनियम लागू नही है, कार्य की दशाएँ साधारणतया सन्तोषजनक है।

अधिकाश इन्जीनियरिंग मिलो मे सवातन तथा प्रकाश का प्रबन्ध पर्याप्त व सन्तोषजनक है। कलकत्ता तथा ग्वालियर के चीनी और मिट्टी के बर्तन उद्योग मे सवातन तथा प्रकाश की दृष्टि से बहुत कुछ सुधार होना आवश्यक है। बगलौर के अतिरिक्त सुरक्षा साधनो की कही व्यवस्था नही है।

छापेखानो मे कार्य की दशाए बहुत ही असन्तोषजनक है। कुछ बडे छापेखानो को छोडकर शेष छापेखाने ऐसे घरो म स्थित है जिनका निर्माण छापेखाने की दृष्टि से किया ही नही गया है। कई स्थानो पर यदाकदा ही पुताई होती है। दीवारो पर गर्द की मोटी तह जमी रहती है और मकडी के जाले लगे रहते है। यह कमरे छोटे होते है और इनमे भीड-भाड भी अधिक रहती है। सीसे के धुएँ को, जो विषैला होता है, निकालने की भी कोई उचित व्यवस्था नही है। इससे एक प्रकार की उद्योगजनित बीमारी हो जाती है। मालिको और श्रमिको का इससे उत्पन्न होने वाले खतरो का सम्भवत: ज्ञान भी नही है। गन्दी हवा को बाहर फेंकने वाले पखो अथवा नलो की व्यवस्था नही है। छापेखानो म प्रकाश का भी उचित प्रबन्ध नही होता है, जिसके कारण कम्पोजीटरो के नेत्रो पर बहुत जोर पडता है और शीघ्र ही उनकी नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाती है। कुछ छापेखानो को छोडकर और कही नाखून साफ रखने वाले ब्रुशो का प्रयोग नही किया जाता है।

काँच उद्योग मे आग लगने व जल जाने जैसी छोटी-छोटी दुर्घटनायें बहुत अधिक सख्या मे होती है। छोटे छोटे काँच के कारखाना मे फर्श के अधिकतर भाग पर भट्टी बनी रहती है जहाँ पर श्रमिक पिघले हुए काँच को नलियो द्वारा मुँह से ढालते हैं। काँच के छोटे-छोटे कण फर्श पर बिखरे पडे रहते है और जब श्रमिक नगे पैरो चलता है तो वह उसकी त्वचा मे घुस जाते है। काँच की नलियो को काटने के लिय बिजली के तेज गर्म तारो का प्रयोग किया जाता है। इसके कारण जल जाने की घटनायें बहुत हो जाती हैं। मुँह से फूँक मारने के कारण श्रमिको के फेफडो पर बहुत अधिक प्रभाव पडता है और इस प्रकार फेफडो की बीमारियाँ प्राय उन्हे घेरे रहती है। कारखानो के अन्दर तापक्रम बहुत ऊँचा रहता है। अत श्रमिक जब बाहर आते हैं, विशेषतया वर्षा मे तो उन्हे ठड लगने का डर रहता

है। फिरोजाबाद में छोटे पैमाने के चूड़ी के कारखानो मे कार्य करने की दशायें बहुत ही शोचनीय है, यद्यपि गत कुछ वर्षों मे उत्तर प्रदेश सरकार के हस्तक्षेप के कारण इनमे कुछ सुधार हुआ है। फिरोजाबाद मे यह उद्योग बेहवादार एक कमरे वाली इमारतो म स्थित है जहाँ सफाई अथवा प्रकाश की उचित व्यवस्था नही है।

चीनी उद्योग म तमिलनाडु तथा महाराष्ट्र के कारखानो मे उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कारखानो की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यप्रद कार्य करने की दशायें हैं। उत्तर प्रदेश एव बिहार के चीनी कारखानो मे दुर्गन्ध रहती है। कारखानो तथा निकटवर्ती क्षेत्रो मे भी शीरा व गन्दे पानी के कारण स्वच्छता की समस्या बनी रहती है। फैक्ट्री मे निकले हुए गन्दे पानी को कच्चे तालाब अथवा सोखने वाले गड्ढो मे बहने दिया जाता है। गोरखपुर के दो चीनी कारखानो मे गन्दे पानी को नदी मे बहा दिया जाता है। केवल मेरठ मे एक चीनी मिल ने इस कार्य के लिये पक्की नालियो की व्यवस्था की है। सोखने वाले गड्ढे बिहार की एक मिल मे पाये जाते है। कच्चे तालाबो मे शीरे को एकत्रित करने से असहनीय दुर्गन्ध आती है। 'खाई' का मिल की इमारत में ही ढेर लगा देते हैं। अनेक मिलो मे फर्श टूटा-फूटा और गन्दा रहता है। श्रम अनुसधान समिति ने यह उल्लेख किया था कि उत्तर प्रदेश, बिहार व अहमदनगर की कुछ मिलो मे यह भी देखा गया कि भाप को नालियो मे छिद्र होने के कारण भाप बाहर निकलती रहती थी, तथा तमिलनाडु व महाराष्ट्र की कुछ मिलो मे जीने खडे और फिसलने वाले थे। गोरखपुर की दो मिलो मे लकडी का जीना जीर्ण-शीर्ण (Dilipidated) अवस्था मे पाया गया है। कुछ कारखानो मे मशीनो तथा तेज गति से घूमने वाली गरारी व पेटी के चारो ओर ठीक प्रकार से रोक नही लगाई गई थी। जहाँ तक प्रकाश और सवातन का सम्बन्ध है चीनी मिलो की दशा, तमिलनाडु की चीनी मिलो को छोडकर, साधारणतया सन्तोषजनक पाई गई थी।

कपास और रूई धुनने के कारखानो मे प्रकाश और सवातन की व्यवस्था असन्तोषजनक है। वातावरण मे धूल और कपास के रेशे रहते हैं। साधारणतया सुरक्षा साधनो की व्यवस्था नही है। तमिलनाडु मे अनेक चावल के कारखानो अनुपयुक्त अधेरी इमारतो मे हैं जिनमे दिन मे भी कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता पडती है। सफाई की दशाये शोचनीय हैं। धान भोखने वाले तालाबो के कारण बदबू और धूल रहती है। कुछ मिलो मे सभी स्थानो पर गन्दगी पाई जाती है।

बडी-बडी अभ्रक खानों में अवस्थायें सतोषजनक है परन्तु छोटे-छोटे कारखानो मे श्रमिक गन्दी अवस्था मे, अधेरे और बेहवादार कमरो मे काम करते हैं। चपडा फैक्टरियो मे केवल कलकत्ते की कुछ शक्ति प्रयोग करने वाली फैक्टरियो को छोडकर, श्रमिक कानूनो का ठीक प्रकार से पालन नही किया जाता है। ऐसे कारखानो मे सवातन, सफाई और नालियो की अवस्था घोर असन्तोषजनक है।

मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र मे बीडी कारखानो मे तो दशायें बहुत ही खराब हैं। श्रमिको को अधेरे मे या धुंधले प्रकाश मे कार्य करना पडता है। स्त्री, पुरुष या

करने वालों पर दण्ड की व्यवस्था लागू किये जाने की अत्यन्त आवश्यकता है। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि जो लोग इस सम्बन्ध में जान बूझकर कानून का उल्लंघन करें उनके विरुद्ध वर्तमान से भी अधिक कड़े दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए। गम्भीर उल्लंघनों को प्रकाश में लाया जाना चाहिये।

शौचालयों तथा पेशाबघर (Latrines and Urinals)

शौचालयों तथा पेशाबघरों की व्यवस्था करना एक अन्य आवश्यक सेवा है। अधिकांश नियन्त्रित कारखाने केवल कानून का अक्षरशः पालन करते हैं और श्रमिकों के अनुपात में उन्होंने इस सम्बन्ध में व्यवस्था भी की है। परन्तु उनकी उपयुक्तता तो इस बात पर निर्भर है कि शौचालय किस प्रकार से बनाये गये हैं तथा उनमें सफाई की कैसी व्यवस्था है। फ्लश के शौचालय सेवा वाले तथा खुले शौचालय से निश्चित रूप से अच्छे और अधिक सेवा प्रदान करने वाले होते हैं। अधिकांश स्थानों पर शौचालयों का ढाँचा, उनका स्थान तथा उनकी सफाई की अवस्था बहुत ही असन्तोषजनक है। कुछ शौचालयों में छतें नहीं है और कुछ में पर्दे का भी अभाव है। कीटाणुनाशक पदार्थों का प्रयोग तो कभी-कभी ही किया जाता है। टट्टी का भी नियमित रूप से थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् साफ नहीं किया जाता, क्योंकि भंगियों की संख्या कम होती है और निरीक्षण का भी अभाव होता है। इस कारण श्रमिक खुले मैदानों में ही शौच के लिये जाना अधिक पसन्द करते हैं। शौचालयों तथा पेशाबघरों की अलग-अलग व्यवस्था नहीं है। यह बहुत ही गन्दे स्थानों पर बनाये जाते हैं। अनियन्त्रित कारखानों में तो दशायें और भी खराब हैं और अधिकांश में तो शौचालय तथा मूत्रालय हैं ही नहीं। इस ओर सफाई व्यवस्था की तीव्र आवश्यकता है। १९४८ के कारखाना अधिनियम की धाराओं को कठोरता से लागू करना आवश्यक है।

पीने का पानी (Drinking Water)

पीने के पानी की व्यवस्था भी सन्तोषजनक नहीं है। अगर पीने के पानी की व्यवस्था की भी जाती है तो पानी बहुधा गन्दे बर्तनों में रख दिया जाता है। अधिकतर तो पानी पीने के लिये केवल टोंटी के नलों की व्यवस्था कर दी जाती है। गर्मी के दिनों में पानी ठण्डा करने के लिये अथवा बर्फ के पानी की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। पीने के पानी की उचित व्यवस्था करने की, विशेषतया ग्रीष्म ऋतु में ठण्डा पानी प्रदान करने की, तीव्र आवश्यकता है।

विश्राम-स्थल (Rest Shelters)

एक अन्य महत्वपूर्ण सेवा श्रमिकों के लिये ऐसे विश्राम-स्थलों की आवश्यकता है, जहाँ वह बैठकर खाना खा सकें अथवा मध्यान्तर में आराम कर सकें। केवल कुछ ही मिलों में इसकी व्यवस्था है। बड़े-बड़े कारखानों में तो विश्राम-स्थल अथवा भोजन के लिये सायें की व्यवस्था पाई जाती है, परन्तु छोटे तथा अनियन्त्रित कारखानों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। जहाँ कहीं कुछ व्यवस्था है भी, वहाँ दशायें सन्तोषजनक

नही है । विश्राम स्थल ऐसे स्थानो पर बना दिये जाते है, जहाँ मालिको को सुविधा होती है । साधारणतया सब श्रमिकों के लिये पर्याप्त स्थान भी नही होता । इनका निर्माण बिना किसी पूर्व योजना के उल्टा-सीधा कर दिया जाता है । इनमे गन्दगी भी रहती है तथा इनकी सफाई भी नही की जाती । इसी कारण श्रमिक इनकी अपेक्षा पेडो का साया अधिक पसन्द करते हैं । अधिकाश स्थानो मे तो बैठने की भी व्यवस्था नही होती और श्रमिको को धरती पर बैठकर ही भोजन ग्रहण करना पडता है । स्त्री और पुरुष श्रमिको के लिये अलग अलग विश्राम स्थलो की व्यवस्था नही की जाती । इसलिये ऐसी परिस्थितियो मे यदि श्रमिक विश्राम स्थलो का उपयोग नही करते, जैसा कि कुछ मालिक शिकायत करते हैं, तो इसका कारण भी स्पष्ट ही है । श्रमिको को पेड के नीचे, जमीन पर, गन्दगी मे अथवा कार्य के कमरे के अन्धेरे कोने मे बैठकर खाना खाते हुए देखकर दु ख होता है । स्त्री और पुरुष श्रमिको के लिये अलग-अलग विश्राम-स्थलों का प्रबन्ध होना चाहिये, जिनमे बैठने की उचित व्यवस्था हो । १६४८ के कारखाना अधिनियम मे साये, विश्राम-स्थल तथा खाना खाने के लिये कमरो की व्यवस्था की गई है । परन्तु यह उन्ही कारखानो के लिए है, जहाँ १५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते है ।

दुर्घटनाओं की रोकथाम (Prevention of Accidents)

श्रमिको की सुरक्षा के लिये एक अन्य आवश्यक व्यवस्था दुर्घटनाओ की रोकथाम है । ऐसी दुर्घटनायें, जैसा कि श्रमिक क्षतिपूर्ति के अन्तर्गत बताया जा चुका है, आधुनिक औद्योगिक जीवन की सामान्य बाते हो गई हैं । औद्योगिक दुर्घटनाओ की ओर अब अधिक से अधिक ध्यान दिया जा रहा है । एच० डब्लू० हेनरिच नामक एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक का अनुमान है कि ६८ प्रतिशत औद्योगिक दुर्घटनाओ को रोका जा सकता है । ८८ प्रतिशत दुर्घटनाये दोषपूर्ण निरीक्षण, श्रमिको की अयोग्यता, हीन अनुशासन, एकाग्रचित्तता की कमी, सुरक्षा सम्बन्धी बातो की अवहेलना करने की आदतो व कार्य के लिये मानसिक व शारीरिक अयोग्यता के कारण होती है । १० प्रतिशत दुर्घटनायें दोषपूर्ण मशीनरी अथवा कार्य की बुरी दशाओ के कारण होती है । दुर्घटनायें इसलिये भी होती है कि कुछ मनुष्यो की मनोवृत्ति ऐसी हो जाती है कि वह दुर्घटनाये कर ही बैठते है, चाहे वह उनसे कितना ही बचना चाहे । औद्योगिक केन्द्रो मे श्रमिको की क्लान्ति (Fatigue) तथा उनमे मानसिक परिवर्तन भी दुर्घटनाओ की प्रवृत्तियो को बढा देते हैं ।

औद्योगिक दुर्घटनाओ पर स्थायी श्रम समिति द्वारा अप्रैल १६६१ म एक समीक्षा प्रस्तुत की गई थी । इसके अनुसार भारत मे दुर्घटनाये केवल बढ ही नही रही हैं वरन् अधिकाश दुर्घटनायें इस कारण होती है कि प्रबन्धको द्वारा अपने सस्थानो मे उचित प्रबन्ध करने का अभाव है । औद्योगिक दुर्घटनाओं के कारणो का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अधिकाश दुर्घटनाओ का कारण मशीन, व्यक्तियो

अथवा वस्तुओं का गिरना तथा किसी पिंड (Body) अथवा वस्तु पर पैर पड़ना या पिंड अथवा वस्तु से टकरा जाना है। इनमें से अन्तिम दो का कारण स्पष्ट रूप से मालिकों द्वारा उचित प्रबन्ध का अभाव है। इंगलैण्ड में व्यक्तियों के गिरने से दुर्घटनायें अधिक होती है और वस्तु पर पैर पड़ने अथवा वस्तुओं से टकराने के कारण कम होती है, जबकि भारत में इसके विपरीत बात है। व्यक्तियों का गिरना तो व्यक्तिगत कारणों से होता है। भारत में जिन उद्योगों में अधिक दुर्घटनायें होती है वे वस्त्र, यातायात का सामान, मूल धातु, पैट्रोल, कोयला, मशीन आदि के उद्योग हैं। समीक्षा में यह भी कहा गया है कि यह बात गलत है कि हाल के वर्षों में अधिक दुर्घटनाओं का कारण छोटे उद्योगों का विस्तार है। यह भी कहा गया है कि दुर्घटनाओं की रोकथाम एक पारस्परिक कार्य है, जिसमें मालिकों, श्रमिकों तथा कारखाने के सभी विभागों को प्रयत्न करना चाहिये।

दुर्घटनाओं को दो वर्गों में बाँटा जाता है (क) मशीनों से होने वाली दुर्घटनायें और (ख) अन्य कारणों से होने वाली दुर्घटनायें। पहली श्रेणी में वे दुर्घटनायें आती है जो दोषपूर्ण अथवा असुरक्षित मशीनों द्वारा होती है। यही बात नही है कि मशीनें केवल दोषपूर्ण ही हों, बल्कि कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि मशीनों को चलाने व रोकने आदि की प्रक्रिया भी पूर्णतया ठीक नही होती। इस स्थिति में दुर्घटना या खतरे की अवस्था में मशीन को एकदम रोकना सम्भव नही होता। दूसरी श्रेणी में वे दुर्घटनायें आती है जिनमें लोग या तो अपने दोषपूर्ण व्यवहार के कारण फंसते है अथवा कार्यस्थल के वातावरण सम्बन्धी किसी कारण से, जैसे कि प्रकाश, रोशनदान, नमी, फिसलने वाला अथवा असमान फर्श, सीढ़ी का गिर जाना, हथौड़े का छूट जाना, लापरवाही से फेंकी हुई कीलें चुभ जाना, यथेष्ट सावधानी के बिना भारी वस्तुओं को उतारना अथवा शोर आदि के कारण विचलित हो जाना। श्रमिक का दोषपूर्ण व्यवहार कभी-कभी कुछ मनोवैज्ञानिक कारणों से अथवा यथेष्ट मात्रा में सुरक्षात्मक उपायों का ध्यान न रखने के कारण भी होता है, जैसे कि असुरक्षात्मक स्थिति, चलती मशीनरी पर काम करना, असुरक्षित वेशभूषा पहनना, मशीन को असुरक्षित चाल से चलाना, विचलित होना, किसी को परेशान करना या गाली देना, काम के घण्टों में भी नशीली वस्तुओं का प्रयोग करना आदि। कुछ लोग अपनी मनोवृत्ति या स्वभाव के कारण भी दुर्घटनाओं में फँस जाते हैं जब कि अन्य लोगों के साथ ऐसा नही होता। यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग एक चौथाई दुर्घटनायें मशीनों के कारण होती है जबकि तीन चौथाई अन्य कारणों से।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का कहना था कि दुर्घटनाओं के कारणों को जिन बातों से बढ़ावा मिलता है वे है—अपर्याप्त निरीक्षण तथा लापरवाही, अज्ञानता, अपर्याप्त कुशलता एवं अपूर्ण देखभाल के कारण श्रमिकों द्वारा की जाने वाली भूलें। दुर्घटनाओं में योगदान करने वाले अन्य कारण हैं: (i) तीव्र औद्योगीकरण

(ii) चालू फैक्टरियों का विस्तार तथा उनमें परिवर्तन, (iii) ऐसे खतरों वाले नये उद्योगों की स्थापना जिनकी जानकारी पहले से नहीं होती, (iv) श्रमिकों व प्रबन्धकों में सुरक्षा के सम्बन्ध में यथेष्ट जागरण का अभाव, (v) दुर्घटनाओं के वित्तीय परिणामों की यथेष्ट जानकारी न होना। सुरक्षा के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशों को तीन वर्गों में बाँटा जाता है (क) सुरक्षा के उपाय, (ख) सुरक्षा बारे में प्रशिक्षण और (ग) सुरक्षा से सम्बन्धित सामान। जहाँ तक सुरक्षा तथा उससे सम्बन्धित साज-सामान का प्रश्न है, फैक्टरी अधिनियमों, खान अधिनियम, रेलवे अधिनियम तथा गोदी श्रमिक अधिनियमों आदि में इनके सम्बन्ध में जो कानूनी व्यवस्थायें की गई हैं, वे पर्याप्त हैं यदि किसी चीज की आवश्यकता है तो यह कि उन व्यवस्थाओं को कारगर ढंग से लागू किया जाये। आयोग ने सुझाव दिया कि जिन फैक्ट्रियों में १००० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हों, अथवा जहाँ विनिर्माण प्रक्रिया में विशिष्ट औद्योगिक खतरे सम्बद्ध हों, उनमें सुरक्षा अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिये। मशीनों के निर्माताओं, उनका प्रयोग करने वालों तथा सुरक्षा विशेषज्ञों की एक ऐसी स्थायी समिति (Standing Committee) बनाई जानी चाहिये जो मशीनरी की निर्माण अवस्था में ही उसकी बनावट में सुरक्षा सम्बन्धी तत्वों का समावेश करने के लिए सुझाव दे। जिन राज्यों में अभी तक सुरक्षा परिषदों का निर्माण नहीं हुआ है अथवा जहाँ अभी तक सुरक्षा सम्बन्धी निर्णयों को लागू नहीं किया गया है वहाँ यह कार्य शुरू होना चाहिए। सभी बड़े उद्योगों में तथा खतरे वाले व्यवसायों को अपनाने वाले उद्योगों में सुरक्षा परिषदें बनाई जानी चाहिये। ऐसी प्रत्येक फैक्टरी में सुरक्षा समितियाँ बनाई जानी चाहियें जिनमें १०० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हों। श्रमिक संघों तथा मालिकों के संगठनों को चाहिये कि वे सुरक्षा को बढ़ाने के काम में अधिकाधिक रुचि लें।

आयोग ने यह भी सिफारिश की कि फैक्टरी का निरीक्षण करने वाले अधिकारियों को चाहिये कि वे सुरक्षा के सम्बन्ध में प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बनाने में मालिकों को सलाह दें तथा इस कार्य में उनकी मदद भी करें। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रबन्ध कर्मचारियों, पर्यवेक्षण कर्मचारियों तथा श्रमिकों को सम्मिलित किया जाना चाहिये। दुर्घटनाओं की रोकथाम के सम्बन्ध में समय समय पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का गठन किया जाना चाहिए। खानों के सम्बन्ध में आयोग का सुझाव यह था कि सुरक्षा के स्तरों का उल्लंघन करने के कारण खानों के बन्द होने की अवधि में श्रमिकों की मजदूरी का जो नुकसान हो, उसकी क्षतिपूर्ति उन्हें प्रदान की जानी चाहिये। प्रत्येक बन्दरगाह में एक पूर्ण अर्हताप्राप्त सुरक्षा अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए। फैक्टरियों के निरीक्षण की बारम्बारता में वृद्धि की जानी चाहिए। १५०० फैक्टरियों पर एक फैक्टरी निरीक्षक नियुक्त करने की वर्तमान व्यवस्था पर पुनर्विचार किया जाना चाहिये तथा निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि करनी चाहिये और उन्हें अधिक कार्यकुशल बनाया जाना चाहिये। दैनिक कार्यों के लिए गैर-तकनीकी योग्यता वाले व्यक्तियों का उपयोग किया जा सकता है।

का अन्य देशों से मंगाना, भारत में सुरक्षा सामान बनाये जाने की ओर ध्यान देना तथा सामान की आवश्यकताओं को देखते रहना और सलाह देना है। यही नहीं, कोयला खान बचाव नियमों के अन्तर्गत कोयला खानों में "बचाव स्टेशन" (Rescue Stations) भी स्थापित किये गये हैं। इनका कार्य आग लगने तथा विस्फोट आदि होने की स्थिति में लोगों को निकालने तथा बचाने के कार्यों में सहायता देना है। वर्तमान समय में ग्यारह बचाव स्टेशन काम कर रहे हैं। श्रमिकों को व्यवसायिक प्रशिक्षण देने तथा उनकी डाक्टरी जाँच के लिये भी नियम बनाये गये थे क्योंकि प्रशिक्षित एवं सक्षम व्यक्ति दुर्घटनाओं को रोकने की दिशा में महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकते हैं। सन् १९५७ के कोयला खान विनियमों द्वारा ऐसी भी व्यवस्था की गई है कि खान मैनेजरों सर्वेक्षकों (surveyors), अतिरिक्त समय काम करने वाले व्यक्तियों तथा सीरदारों आदि के लिये सक्षमता प्रमाणपत्र स्वीकार किए जाए ताकि इस विषय में आश्वस्त हुआ जा सके कि केवल योग्य एवं सक्षम व्यक्ति ही इन पदों पर नियुक्त किये जा रहे हैं।

दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिये सुरक्षा सम्बन्धी वैधानिक उपबन्ध कारखाना अधिनियम, भारतीय खान अधिनियम, भारतीय रेलवे अधिनियम तथा भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियमों में दिए गए हैं। कारखाना अधिनियम की धाराएं १९४८ के अधिनियम में और अधिक विस्तृत कर दी गई हैं। प्रत्येक कारखाने के स्थानीय स्वामी पर ही श्रमिकों की सुरक्षा का भार डाला गया है और अब इन्सपैक्टर द्वारा पूर्व सूचना अथवा चेतावनी आवश्यक नहीं रह गयी है। कारखानों में अधिकतर दुर्घटनाओं (विशेषतया घातक तथा गम्भीर" दुर्घटनाओं) का कारण साधारणतया मशीनों को कहा जाता है। अत कारखाना इन्सपैक्टरों द्वारा मशीनों के चारों ओर रोक लगाने पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। पर्याप्त मात्रा में लोहा उपलब्ध न होने के कारण उचित रोक लगाने में आज्ञा दे दी गई है। कारखानों के इन्सपैक्टर कुछ विशेष प्रकार की रोक लगाने के उपयुक्त ढंग का प्रदर्शन करते हैं। बिहार, महाराष्ट्र, उत्तर-प्रदेश और आन्ध्रप्रदेश में "सुरक्षा समितियों" के संगठनों को प्रोत्साहन दिया गया है तथा "दुर्घटना न हो" आन्दोलन (No Accident Campaigns) सचालित किये जाते हैं। कारखानों के मुख्य सलाहकार (Chief Adviser of Factories) के कार्यालय द्वारा समय-समय पर सुरक्षा और दुर्घटनाओं की रोकथाम के उपायों पर पुस्तिकायें, पर्चे तथा विज्ञापन पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। जनवरी १९५८ से एक "औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य पत्रिका" भी प्रकाशित की जा रही है। केन्द्रीय सरकार ने बम्बई में एक 'औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान संगठन' (Industrial Hygiene Organisation) तथा एक केन्द्रीय श्रम संस्था (Central Labour Institute) की स्थापना की है। इन दोनों संस्थाओं ने खतरनाक व्यवसायों के सम्बन्ध में अनेक सर्वेक्षण किये

हैं। कानपुर, कलकत्ता और मद्रास में औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण के तीन प्रादेशिक श्रम संस्थानों की स्थापना भी की गयी है। इसका उद्घाटन जुलाई १९६५ में किया गया था। ये संस्थान एक ऐसी समायोजित योजना का भाग है जिसका उद्देश्य सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण की शिक्षा देना है, जिससे औद्योगिक क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। बम्बई की केन्द्रीय श्रम संस्थान इस योजना को लागू करने में केन्द्रीय संगठन का कार्य कर रही है। इसका उद्घाटन फरवरी १९६६ में हुआ था। केन्द्रीय श्रम संस्थान तथा तीनों प्रादेशिक श्रम संस्थानों में एक महत्वपूर्ण अनुभाग (Section) है औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण केन्द्र, जिनमें से औद्योगिक श्रमिकों की सुरक्षा, उनके स्वास्थ्य एवं कल्याण के विभिन्न पहलुओं पर वस्तुओं ??? दृश्यों का प्रदर्शन किया जाता है। ये केन्द्र औद्योगिक प्रक्रियाओं के कारण जीवन, शरीर के अंगों तथा स्वास्थ्य को उत्पन्न होने वाले खतरों की व्याख्या तथा स्पष्टीकरण करते हैं और उनसे बचाव के प्रभावशाली तरीकों का प्रदर्शन करते हैं। मालिकों के कुछ संगठन, श्रमिक संघ तथा "सुरक्षा-प्रथम परिषद्" (Safety First Associations) जैसी कुछ ऐच्छिक संस्थायें भी औद्योगिक सुरक्षा को प्रोत्साहित कर रही हैं। यद्यपि १९४८ के अधिनियम के श्रमिकों की सुरक्षा के लिये अनेक धारायें दी हुई हैं, परन्तु उनको कठोर रूप से लागू करना आवश्यक है।

मार्च १९५५ में कारखानों के मुख्य इन्सपैक्टरों के एक सम्मेलन में दुर्घटनाओं की रोकथाम के प्रश्न पर विचार किया गया था। इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि खतरनाक मशीनों से सुरक्षा करने हेतु कुछ सामान्य सिद्धान्तों की "सुरक्षा पुस्तिकायें" प्रकाशित की जायें तथा सुरक्षा पुस्तिकाओं की तैयारी के लिए मूल आँकड़ों को एकत्रित करने के लिये समितियाँ बनाई जायें। अधिनियम में दिये गये सुरक्षा सम्बन्धी उपबन्धों का भी कठोरता से पालन किया जाना चाहिये। जनवरी १९६० में श्रम मंत्रियों के सम्मेलन में औद्योगिक दुर्घटनाओं के विषय पर काफी विचार विमर्श किया गया था। इस सम्मेलन ने फैक्टरी निरीक्षक व्यवस्था को दृढ़ करने, छोटे-छोटे मालिकों को परामर्श देने, सुरक्षा उपायों में श्रमिकों को प्रशिक्षण देने निरन्तर प्रचार करने, पारितोषिक देने, सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं का सर्वेक्षण करने आदि के सम्बन्ध में सिफारिशें की थी। राष्ट्रीय सुरक्षा पारितोषिक की एक योजना बनाने के लिये एक विशेष समिति का निर्माण किया था। विभिन्न प्रकार के पोस्टर और दृश्य-दृष्टि की रंगीन स्लाइड भी तैयार की गई। नई दिल्ली में ११ से १३ दिसम्बर १९६५ तक औद्योगिक सुरक्षा पर राष्ट्रपति का सम्मेलन आयोजित किया गया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति ने किया। सम्मेलन का उद्देश्य यह था कि विभिन्न दलों तथा हितों से सम्बन्धित व्यक्ति परस्पर विचार विनिमय करके उद्योगों में सुरक्षा के महत्व पर प्रकाश डालें और उद्योगों में होने वाली दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिये सिफारिशें करें। सम्मेलन ने स्थायी श्रम समिति द्वारा अप्रैल १९६१

मे किय गये उस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमे राष्ट्रीय एवं राज्य-स्तरो पर सुरक्षा परिषदो की स्थापना की बात कह गयी थी। स्थायी श्रम समिति ने फरवरी १६६६ मे फिर इस प्रस्ताव से सहमति प्रकट की। परिणामस्वरूप श्री नवल एच० टाटा की अध्यक्षता मे एक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् (National Safety Council) की स्थापना की गयी। परिषद् के प्रधान कार्यालय अब बम्बई के केन्द्रीय श्रम संस्थान मे है। आरम्भ में इसके संचालन के लिये भारत सरकार ने एक अनुदान दिया और साथ ही यह आशा कि गयी कि कुछ समय पश्चात् परिषद् एक ऐच्छिक संगठन के रूप मे विकसित होगी और उसका पोषण उद्योग तथा अन्य सम्बन्धित हितो द्वारा किया जायेगा। परिषद् के वर्तमान अध्यक्ष श्री बागदेस तलपुले है। परिषद् के गवर्नरो के बोर्ड मे ५० सदस्य है जिनमे ३२ का चुनाव होना है और १८ सरकार द्वारा नामांकित किये जाते है। १६७५ म खानो के महानिदेशालय मे दुर्घटना जांच दावा सेल (Accident Investigation Claim Cell) के नाम म एक विशेष सेल स्थापित किया गया। सन् १६७७ मे, अधिकारियो को प्रेरणा प्रदान करने की दृष्टि से खानो के महानिदेशालय के ढांचे म परिवर्तन किया गया। गम्भीर दुर्घटनाओं के लिये जांच अदालतें भी बैठायी जाती है और सुरक्षा उपायो की समीक्षा करने के लिये 'खान सुरक्षा समीक्षा समिति' अपनी नियमित बैठको का आयोजन करती है।

श्रमिको द्वारा अच्छा कार्य करने की तथा औद्योगिक उद्यमो मे अच्छे सुरक्षा रिकार्ड को मान्यता प्रदान करने के लिये श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने सन् १६६५ मे उन श्रमिकों के लिये एक श्रमवीर राष्ट्रीय पारितोषिक योजना लागू की जो उत्पादन, मितव्ययिता अथवा कार्यक्षमता बढाने के लिये उपयोगी सुझाव दें। श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय न उद्योगो मे सुरक्षा सम्बन्धी जागरण उत्पन्न करने के लिये राष्ट्रीय सुरक्षा पारितोषिक योजनायें (कुल ४) भी लागू की। योजना के अन्तर्गत दिये जाने वाले पुरस्कारो मे सर्वप्रथम मार्च १६६६ मे ५७ पुरस्कार विजेताओं को टाफी, कप तथा प्रमाण-पत्रो के रूप मे इनाम दिये गये—जिनमे २७ श्रमवीर राष्ट्रीय पारितोषिक योजना के अन्तर्गत थे और ३० राष्ट्रीय सुरक्षा पारितोषिक योजनाओं के अन्तर्गत। २० अप्रैल १६७८ को, श्रमवीर योजना के अन्तर्गत ३५ और सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत ७८ को इनाम १६७६ के वर्ष के बांट गये।

रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था

(Provision of Recorded Music)

कुछ व्यक्तियों का यह सुझाव है कि अच्छा वातावरण बनाये रखने के लिये कार्य के घण्टो की अवधि मे ही रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था होनी चाहिये। परन्तु यह सुझाव व्यावहारिक प्रतीत नही होता, क्योंकि बडे पैमाने के उद्योगो मे श्रमिकों पर इसका कोई विशेष प्रभाव नही पडेगा। कारखानो मे मशीन का शोरगुल इतना अधिक होता है कि कार्य के समय रिकार्ड के संगीत की बात हास्यास्पद प्रतीत होती है। यदि इसकी व्यवस्था की भी जाती है तो यह श्रमिकों के लिये सहायक होने की

अपेक्षा उनके ध्यान को बाँट देगी। मध्यान्तर अथवा भोजन के समय मे तो रेडियो अथवा रिकार्ड के सगीत मे कोई आपत्ति नही हो सकती। इसकी व्यवस्था कैन्टीन द्वारा सरलता से तथा कुशलतापूर्वक की जा सकती है अन्यथा कारखाने के अन्दर रिकार्ड के सगीत की व्यवस्था के सुझाव पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नही देना चाहिये। अन्य देशो मे, जहाँ कारखानो के अन्दर मशीनो द्वारा इतना शोर पैदा नही होता और सगीत भी भिन्न प्रकार का होता है, इस सम्बन्ध मे विचार किया जा सकता है। अन्य देशो मे इस सम्बन्ध मे सफलतापूर्वक कुछ प्रयोग भी किये गये है।

उपसंहार (Conclusion)

देश मे औद्योगिक श्रमिको की कार्य की दशाओ मे उन्नति करने की बहुत आवश्यकता है। किसी भी कारखाने को उस समय तक चलाने की अनुमति नही दी जानी चाहिये, जब तक कि कारखाने के स्थान आदि की पूर्व स्वीकृति सरकार द्वारा प्राप्त नही कर ली जाती। १६४८ के कारखाना अधिनियम मे यद्यपि श्रमिको के स्वास्थ्य एव सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था है तथापि सबसे बडी आवश्यकता तो इस बात की है कि उन्हें उचित प्रकार मे लागू किया जाये तथा उनका उचित प्रकार से निरीक्षण भी हो। अधिनियम का क्षेत्र अनियन्त्रित कारखानो और छोटे-छोटे सस्थानो तक भी विस्तृत होना चाहिये। ऐसे कारखानो मे कार्य दशाये अत्यन्त असन्तोषजनक है।

गत कुछ वर्षों मे निरीक्षण की व्यवस्था से सुधार हुआ है तथा अधिनियमो के अन्तर्गत दण्ड भी अधिक दिये गये हैं। कारखाना निरीक्षको के लिये नई दिल्ली मे प्रशिक्षण पाठ्य क्रम भी प्रारम्भ किये गये हैं। कोलम्बो आयोजना और अमेरिका प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत अनेक निरीक्षको को प्रशिक्षण हेतु अन्य देशो मे भेजा गया है। उद्योग मे तापक्रम अवस्थाओ तथा कार्य के अनुपात मे विश्राम अवधि का निर्धारण करने के लिये अमेरिका के एक विशेषज्ञ की सहायता से अध्ययन किया गया था, जिसका उद्देश्य यह मालूम करना था कि श्रमिको की 'ताप सहनशीलता' कितनी है और अत्यधिक ताप और हवा की नमी का उनके स्वास्थ्य और कार्य-कुशलता पर क्या प्रभाव पडता है। इस प्रकार का अध्ययन अहमदाबाद की ६ सूती कपडा मिलो मे किया गया है। रग बनाने वाली फैक्ट्रियो मे भी वातावरण का सर्वेक्षण किया जा रहा है। केन्द्रीय और प्रादेशिक श्रम सस्थानो ने भी औद्योगिक सुरक्षा के सम्बन्ध मे अनेक सर्वेक्षण तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किये गये हैं।

कार्य के घण्टे
(Hours of Work)

कार्य के घण्टों को नियन्त्रित करने का महत्व
(Importance of Regulating Hours of Work)

श्रमिको का स्वास्थ्य एवं कार्यकुशलता अधिकतर इस बात पर निर्भर

करनी है कि उन्हें कितने घण्टे काम करना पड़ता है। अधिक घण्टों तक काम करने से स्वाभाविकतया श्रमिक को थकान हो जाती है तथा वह अपने कार्य के प्रति शिथिल भी हो जाता। थकान के कारण बहुधा श्रमिक का स्वास्थ्य गिर जाता है। इससे उसकी कार्यकुशलता पर भी प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, यदि कार्य के घण्टे अधिक हैं तब श्रमिकों में इधर-उधर घूमने और अनेक बहानों से समय नष्ट करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। भारत में मालिकों को बहुधा यह शिकायत रहती है कि भारतीय श्रमिक स्थिर चित्त होकर निरन्तर कार्य करने में असमर्थ हैं। श्रमिक अधिकतर अपनी मशीनों पर से अनुपस्थित पाये जाते हैं तथा उनके स्थान पर अतिरिक्त श्रमिकों को लगाना पड़ता है। श्रमिकों की इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण भारतीय कारखानों में चले आ रहे कार्य के अधिक घण्टों का होना है। अधिक घण्टों से न केवल शारीरिक थकान होती है वरन् श्रमिकों को अधिक समय तक अपने घर से बाहर भी रहना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक घरेलू काम काज तथा अपने परिवार की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाता और न ही अपने मानसिक और शरीरिक मनोरंजन तथा सामाजिक कल्याण के लिये समय निकाल पाता है। भारत में जलवायु की दशा तथा कार्य की अस्वास्थ्यकर दशायें भी देश में कार्य के घण्टों को घटाने की आवश्यकता की ओर संकेत करती हैं। यदि कार्य के घण्टे सामान्य हों, बीच विश्राम के लिये मध्यान्तर भी हो, तब श्रमिक अपने कर्त्तव्यों का कुशलता से और प्रसन्नतापूर्वक पालन कर सकता है। अतः भारत में कार्य के घण्टों को कम करने का प्रश्न भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के लिये सदैव ही बड़ा महत्वपूर्ण रहा है, परन्तु देश में ४८ घण्टे का सप्ताह १६४८ तक लागू नहीं किया जा सका था।

कारखाना अधिनियमों द्वारा कार्य के घण्टों का निर्धारण
(Hours of Work as Fixed by Factories Acts)

देश में समय-समय पर विभिन्न कारखाना अधिनियमों द्वारा कार्य के घण्टे निर्धारित किये गये हैं। सन् १८८१ के प्रथम कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत केवल सात से बारह वर्ष तक आयु के बालकों के कार्य के घण्टे निर्धारित किये गये थे। इनके काम करने की अवधि ६ घण्टे प्रतिदिन थी, जिसमें प्रतिदिन एक घण्टे का विश्राम और मास में चार दिन की छुट्टियों की भी व्यवस्था थी। वयस्कों के लिये कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। सन् १८६१ के कारखाना अधिनियम द्वारा स्त्रियों के कार्य करने के घण्टे प्रतिदिन ११ निर्धारित किये गये थे, और १½ घण्टे विश्राम मध्यान्तर की भी व्यवस्था थी। ६ से १४ वर्ष के बालकों के लिये कार्य करने के घण्टे प्रतिदिन ७ कर दिये गये। स्त्रियों और बालकों के लिये रात्रि में काम करना निषिद्ध कर दिया गया। पुरुष श्रमिक के लिये भी एक घण्टे के विश्राम की व्यवस्था की गई थी। सन् १६११ के कारखाना अधिनियम में प्रथम बार वयस्क पुरुष श्रमिकों के लिये अधिकतम कार्य के घण्टे प्रतिदिन १२

निर्धारित किये गये, जिसमे एक घण्टे के विश्राम की भी व्यवस्था थी। १६२२ के कारखाना अधिनियम द्वारा वयस्क पुरुष श्रमिकों के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन ११ अथवा ६० घण्टे प्रति सप्ताह कर दिये गये। १२ से १५ वर्ष तक की आयु के बालकों के लिये कार्य के घण्टे प्रतिदिन ७ निर्धारित किये गये। स्त्रियों और बालकों के लिये रात्रि मे काम करना निषेध कर दिया गया। १६३४ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत मौसमी कारखानों मे वयस्कों के कार्य के घण्टे प्रतिदिन ११ अथवा ६० घण्टे प्रति सप्ताह तथा निरन्तर चालू कारखानो मे प्रतिदिन १० अथवा ५४ घण्टे प्रति सप्ताह निर्धारित किये गये। बालकों के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन ५ कर दिये गये। श्रम-समय-विस्तार (Spread Over) का नियम भी प्रथम बार लागू किया गया और वयस्कों के लगातार काम करने के घण्टे १३ और बालकों के ६½ निर्धारित किये गये। समयोपरि (Overtime) के लिये यह आवश्यक कर दिया गया कि सामान्य मजदूरी से डेढ़ गुनी अधिक मजदूरी दी जाये।

नवम्बर, १६४५ मे सातवें श्रम सम्मेलन ने ४८ घण्टे प्रति सप्ताह के सिद्धान्त की सिफारिश की और उसके परिणामस्वरूप १६४६ मे एक सशोधित अधिनियम पारित किया गया। तब से निरन्तर चालू कारखानो मे कार्य के घण्टे घटा कर अधिकतम प्रतिदिन सप्ताह ४८ अथवा प्रतिदिन ६ और मौसमी कारखानो मे प्रति सप्ताह ५४ अथवा प्रतिदिन १० कर दिये गये। श्रम-समय-विस्तार १३ घण्टो से घटाकर निरन्तर चालू कारखानों मे १०½ घण्टे और मौसमी कारखानो मे ११½ घण्टे कर दिया गया। समयोपरि कार्य के लिये सामान्य वेतन से दुगुनी दर से भुगतान की व्यवस्था कर दी गई। इसके पश्चात् १६४८ का कारखाना अधिनियम आता है। इसके अनुसार कार्य के घण्टे पहले की ही भाँति प्रति सप्ताह ४८ अथवा प्रतिदिन ६ हैं और श्रम समय-विस्तार भी १०½ घण्टे है। इस अधिनियम मे निरन्तर चालू और मौसमी कारखानो के अन्तर को समाप्त कर दिया गया है। बालकों और किशोरो के लिये कार्य के घण्टे प्रतिदिन ४½ निर्धारित किये गये हैं और श्रम-समय-विस्तार उसके लिये पाँच घण्टो का कर दिया गया है। प्रति ५ घण्टे कार्य करने के पश्चात् वयस्क श्रमिक के लिये आधे घण्टे के मध्यान्तर की व्यवस्था की गई है। एक साप्ताहिक छुट्टी तथा वेतन सहित अवकाश की भी व्यवस्था है। स्त्रियों और बच्चो का रात्रि ७ बजे से लेकर प्रातः ६ बजे तक कार्य करना निषिद्ध है। समयोपरि के लिये सामान्य वेतन से दुगुना देना होता है। कोई भी श्रमिक एक ही दिन मे दो कारखानो मे काम नही कर सकता। रात्रि पारी मे कार्य करने वाले श्रमिको के लिये यह आवश्यक हो गया है कि उन्हे हर सप्ताह २४ घण्टे का निरन्तर विश्राम प्रदान किया जाये। राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वे कुछ विशेष वर्गों के श्रमिको को काम के घण्टों मे सम्बन्धित उपबन्धो से छूट दे सकें परन्तु ऐसी छूट की स्थिति मे काम के घण्टो की कुल सख्या १ दिन मे १० से अधिक और सप्ताह मे ५० दिन से अधिक नही होनी चाहिये। इसी प्रकार

की पर्याप्त वैधानिक व्यवस्था है। परन्तु समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि इन कानूनों को अनियमित कारखानों कृषि श्रमिकों तथा घरेलू नौकरों पर भी लागू किया जाए। हमारे विचार में इस समय १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा निर्धारित ४८ घण्टे प्रति माह की व्यवस्था पर्याप्त व सन्तोषजनक है। इन कार्य के घण्टों को अधिक नहीं कहा जा सकता, विशेषतया इस स्थिति को देखते हुए कि हमारे श्रमिकों की मनोवृत्ति ऐसी है कि वह पूर्ण रूप से एकाग्रचित न होकर धीरे-धीरे कार्य करते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उत्पादन पर किसी बुरे प्रभाव के पड़े बिना यदि सम्भव हो सके तो कार्य के घण्टे न घटाये जायें। हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि कार्य के घण्टों को और भी कम किया जा सकता है, यदि श्रम की बचत करने वाली मशीनों का प्रयोग किया जाय श्रमिक की कार्य कुशलता में वृद्धि की जाय तथा उन पर अधिक अनुशासन रखा जाये। दुर्भाग्यवश "श्रम की बचत करने वाले उपायों (Labour Saving Devices) का गलत अर्थ लिया जाता है। यह समझ लिया जाता है कि इसका अर्थ कुछ श्रमिकों को बर्खास्त करके शेष श्रमिकों से और अधिक काम लेना है। श्रम को कम करने वाले उपायों पर हमें श्रमिकों के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। ऐसे उपायों से श्रमिकों के कार्य के घण्टों को कम करना चाहिये, जिससे उन्हें लाभ हो और उत्पादन भी उतना ही या उससे अधिक होता रहे। 'श्रम की बचत' का अर्थ 'श्रमिक की बचत' से नहीं है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि जून १९६१ से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में यह सुझाव आया था कि मजदूरी में बिना कटौती के ४० घण्टे का सप्ताह होना चाहिये। परन्तु बहुमत न होने के कारण यह प्रस्ताव पास न हो सका।

प्रो० पीगू के अनुसार कुछ समय पश्चात् साधारण कार्य के घण्टों से यदि अधिक कार्य के घण्टे किसी भी उद्योग में लागू किये जाते हैं अतः अन्ततः इससे राष्ट्रीय लाभांश (National Dividend) में बढ़ोत्तरी के स्थान पर कमी ही जायेगी, क्योंकि श्रमिकों को थकान बहुत जल्द हो जाती है। शरीर विज्ञान से यह पता चलता है कि किसी भी विशेष प्रकार के कार्य करने की कुछ अवधि के पश्चात् शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है ताकि शरीर पुनः अपनी पूर्वावस्था में आ जाय। जैसे-जैसे कार्य की अवधि बढ़ती है वैसे ही इस मध्यान्तर की आवश्यकता और भी अधिक होती जाती है। यदि मनुष्य को पर्याप्त रूप से मध्यान्तर प्रदान नहीं किये जाते तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। अधिक कार्य करके यदि कुछ अधिकतर कमाकर अधिक भोजन भी किया जाता है तो इससे अधिक लाभ नहीं होता, क्योंकि थकान के कारण अधिक भोजन को हजम करना भी कठिन हो जाता है। कार्यकुशलता में इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से जो क्षति पहुँचती उसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी हानि पहुँचती है। इसका कारण यह कि

थकान होने से मनुष्य नशीले पदार्थों का सेवन करने लगता है और उसमे चिड-चिडाहट, झुंझलाहट जैसी बुरी, उत्तेजित भावनायें आ जाती है। इसका परिणाम यह होता है श्रमिक अनुपस्थित हाने लगता है और समय का पाबन्द नही, रहता, तथा साथ ही साथ कार्य करत समय भी उसम उत्साह कम हो जाता है और कार्य मे उसका मन नही लगता। इन दानो कारणो से उत्पादन कम हो जाता है।

परन्तु कई बाता का ध्यान मे रखत हुए यह कहना कठिन है कि कार्य के घण्टे और राष्ट्रीय लाभाश मे पारस्परिक क्या सम्बन्ध है। दोनो का सम्बन्ध कई कारणो से भिन्न होगा। उदाहरणतया—भिन्न प्रकार की जलवायु, विभिन्न वर्गों के श्रमिक, विभिन्न प्रकार क कार्य, प्राप्त मजदूरी, श्रमिक अपना अवकाश समय किस प्रकार व्यतीत करते हैं, मजदूरी का भुगतान किस प्रकार किया जाता है आदि आदि बातो पर यह सम्बन्ध निर्भर करेगा। गर्म देशो म यदि कार्य धीरे धीरे मन्दगति से अधिक घण्टा तक किया जायगा तो इससे उत्पादन अधिक होगा। इसके विपरीत ठडे देशो म कार्य तीव्रता से परन्तु कम घण्ट करन पर उत्पादन अधिक होगा। बच्चो और स्त्रियो मे वयस्क पुरुषो की अपेक्षा साधारणतया सहन शक्ति कम होती है। यदि अधिक घण्टो तक कठिन शारीरिक श्रम किया जावेगा या अधिक घण्टों तक ऐसा कार्य किया जावेगा जिसमे मानसिक बोझ पडता है तो इससे कार्यकुशलता को क्षति पहुचगी। परन्तु यह बात उस समय नही होगी जब अधिक घण्टो तक ऐसा कार्य किया जायगा जिसमे केवल हल्के प्रकार से देखरेख की आवश्यकता पडती हो। इसी प्रकार यदि कोई ऐसा निपुण कार्य है जिसमे निर्णय और समझबूझ की आवश्यकता पडती है तो उसके लिये मनुष्य मे ताजगी और स्फूर्ति होनी चाहिए। इसके विपरीत अगर कार्य ऐसा है जिसे मशीन की भाँति किया जा सकता है, तो ऐसा कार्य थके हुए मनुष्य भी भली-भाँति कर सकते है। इसक अतिरिक्त ऐसे श्रमिक जिनकी आय अधिक है, अच्छा खा पी भी सकते हैं और निर्धन श्रमिको की अपक्षा अधिक समय तक कार्य कर सकते हैं। कार्य के घण्टा का प्रभाव इस बात से भी भिन्न होगा कि श्रमिक अपना अवकाश का समय किस प्रकार व्यतीत करत हैं अर्थात् वे समय व्यय गवाते हैं अथवा अपने उद्यान मे परिश्रम करते हैं या भली प्रकार के मनोरजन म व्यतीत करत है। आवश्यक तत्व यह है कि प्रत्येक उद्योग मे तथा प्रत्येक श्रमिक वर्ग के लिए कार्य दिवस की कुछ निश्चित सीमा होती है जिससे यदि अधिक कार्य किया जाएगा तो राष्ट्रीय लाभाँश का हानि पहुंचेगी।

श्रमिको पर काय म अधिक घण्टा का प्रभाव कई वर्षों तक देखना चाहिय। आधुनिक उद्योग की कार्यप्रणाली ऐसी है कि श्रमिको पर बहुत भार पडता है। कार्य के कम घण्टे इस कार्य को हल्का कर देते है। कोई भी श्रमिक किसी भी कार्य को एक दिन म १२ घण्ट या उसस भी अधिक समय तक कर सकता है, परन्तु इससे

उसके स्वास्थ्य का हानि होगी और उसका श्रमिक जीवन उस श्रमिक की अपेक्षा जिसके काय के घण्टे उचित हैं कम होगा। औसतन काय के अधिक घण्टे और कम श्रमिक जीवन, काय के कम घण्टे और दीर्घ श्रमिक जीवन की अपेक्षा कम उत्पादक होते है। थकान की रोकथाम से श्रमिक की कार्यक्षमता बढ जाती है दुघटना और बीमारी की सम्भावनायें कम हो जाती हैं, सगठन में सुधार हो जाता है, रोजगार नियमित होता चला जाता है और श्रमिकों में समय नष्ट करने की प्रवृत्ति दूर हो जाती है और तब श्रमिक अपने परिवार और कल्याण की ओर अधिक ध्यान दे सकता है। कम घण्टे काय करने से अन्य व्यक्तियों को रोजगार पर लगाया जा सकता है और यह तब सरलता से हो सकता है जब रेलों की तरह समयानुसार कार्य होता है या जब उत्पादन लागत कम हो जाने से कीमतें गिर जाती हैं और उत्पादित वस्तु की मांग बढ जाती है। अत आर्थिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोणों से कार्य के अधिक घण्टों की भर्त्सना करनी चाहिए।

विश्राम मध्यान्तर (Rest Intervals)
और अल्प-विराम (Rest Pauses)

यहाँ विश्राम मध्यान्तर और अल्प विराम का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। भारत के सगठित उद्योगों में सुव्यवस्थित अल्प विरामों की तीव्र आवश्यकता है। भारत में कारखाना अधिनियम के अनुसार साधारणतया एक अथवा आधे घण्टे का विश्राम मध्यान्तर प्रदान किया जाता है। साधारणतया विश्राम मध्यान्तर की व्यवस्था मालिकों की स्वेच्छा से की जाती है तथा इनमें श्रमिकों की आवश्यकताओं का कोई ध्यान नही रखा जाता। विश्राम मध्यान्तरों के अतिरिक्त १०–१५ मिनट के अल्प विरामों का मालिकों द्वारा कोई विशेष प्रयोगात्मक प्रयत्न नही किया गया है। अन्य देशों में इस दृष्टि से किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि कार्य के बीच में इस प्रकार के अल्प विरामों से कार्यकुशलता बढती है और उत्पादन भी अधिक होता है। भारत में ऐसे अल्प विरामों की आवश्यकता और भी अधिक है। भारत की जलवायु ऐसी है कि निरन्तर कार्य करने से व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है और थकान अनुभव करने लगता है। श्रमिक साधारणतया गाँवों से आते हैं, जहाँ कृषि-कार्य नियमित नही होता। अत उनको नियमित रूप से लम्बे समय तक कार्य करने की आदत नही होती। भारत के श्रमिक की मनोवृत्ति पश्चिम के श्रमिक की अपेक्षा अधिक आराम करने की है। अत यह सुझाव दिया जाता है कि काय के सामान्य घण्टों में भी चार-चार, पाँच पाँच घण्टों के पश्चात् अल्प विराम की व्यवस्था सगठित रूप से करनी चाहिए और इस बात पर निर्भर नही होना चाहिए कि श्रमिकों को ऐसे अल्प विराम कच्चे माल आदि की प्रतीक्षा करते समय कार्य में सयोगवश रुकावट के कारण मिल जाते हैं। अधिकांश व्यक्ति लगभग दो घण्टे एकाग्रचित होकर तथा लगन से काय कर सकते हैं। परन्तु पाँच पाँच घण्टे तक लगातार काम करने से गति में बाधा पड जाती है और उत्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पडता

है। अतः काम के घण्टो के बीच अल्प विरामो की व्यवस्था से कार्यक्षमता की हानि, थकान, असावधानी और दुर्घटनाओ की रोकथाम हो सकेगी और उत्पादन भी बढ जायेगा। अतः भारत मे उद्योगपतियो को, जहाँ कहीं भी सम्भव हो, इस दिशा मे कदम उठाने चाहिये। समयोपरि (Overtime) को भी इस प्रकार नियमित करना चाहिये जिससे कार्य-कुशलता में किसी प्रकार की हानि न हो। अधिकतर श्रम अधिनियमों मे समयोपरि के लिए सामान्य मजदूरी से दुगुनी मजदूरी देने की व्यवस्था की गई। आवश्यकता इस बात की है कि समयोपरि का हिसाब इस प्रकार न लगाया जाय कि वह श्रमिको के हित के विरुद्ध हो।

पारी प्रणाली
(Shift System)

पारी प्रणाली की आवश्यकता (Necessity of Shift System)

पारी प्रणाली आधुनिक उद्योगो मे सभी जगह नियमित प्रकार की एक विशेषता बन गई है। इसकी आवश्यकता अधिक उत्पादन की माँग के कारण हुई है तथा यह आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के कारण सम्भव भी हो गई है। पारी प्रणाली से सबसे बडा लाभ यह है कि इसके कारण मशीनो एव यन्त्रो का पूर्ण उपयोग होता है, जिससे उत्पादन की स्थायी लागत कम हो जाती है। इस प्रकार से जो लाभ होता है, वह श्रमिको के कार्य दिवस के घण्टे कम हो जाने से यदि उत्पादन में कुछ हानि भी पहुचती है तो उसे पूरा कर देता है।

पारी प्रणाली के रूप (Kinds of Shifts)

भारत के विभिन्न उद्योगों मे सामान्यतः तीन प्रकार की पारियाँ पाई जाती है। पहली तो **एक पारी पद्धति** (Single Shift System) है। इसमे साधारणतया कार्य दिन मे होता है और एक या आधा घण्टे के विश्राम मध्यान्तर को मिलाकर इसमे ८ से ११ घण्टे तक कार्य करना पडता है। दूसरी **दो पारी पद्धति** (Double Shift System) है। इसमे एक पारी रात्रि के समय और एक दिन मे होती है, जिसमे एक घण्टे का विश्राम मध्यान्तर मिलाकर कार्य करने की अवधि ९ या १० घण्टे या इससे भी अधिक होती है। तीसरी 'परस्पर व्यापी पारी पद्धति' (Multiple Shift System) है। इसमें दिन मे एक सामान्य पारी के अतिरिक्त आठ-आठ घण्टे की पारियाँ और होती है, जिनमे आधा घण्टे का विश्राम मध्यान्तर कभी दिया जाता है और कभी नही भी। कुछ परिस्थितियो मे तीन लगातार पारियो के अतिरिक्त दो सामान्य पारियाँ होती हैं। परस्परव्यापी पारी पद्धति विभिन्न अवधियों (Durations) की भी होती हैं और परस्परव्यापी (Overlapping) भी।

परस्पर-व्यापी पारियाँ (Multiple or Overlapping Shifts)

यह कहा जाता है कि परस्पर व्यापी पारियो मे उत्पादन प्रक्रिया निरन्तर चालू रहती है। इसके लिये कुछ श्रमिक उस समय तक रोक लिये जाते है, जब तक कि सामान्यतया उनके स्थान पर दूसरे श्रमिक उन्हे अवकाश देने के लिये नही आ

जाते। परन्तु इस प्रकार श्रमिकों को रोकना न्यायसंगत नही है, क्योंकि निरन्तर क्रम चालू रखने के उद्देश्य की पूर्ति श्रमिकों में ठीक समय पर आने की भावना को प्रोत्साहित कर तथा अनुपस्थित श्रमिकों के स्थान पर कार्य करने के लिये कुछ श्रमिक सुरक्षित रखकर की जा सकती है। इस निरन्तर कार्य की आड़ में कभी-कभी श्रमिकों को अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता है तथा कारखाना निरीक्षकों को इसका पता नही चल पाता।

इसके अतिरिक्त परस्पर-व्यापी पारी पद्धति के और भी अनेक दोष है—प्रथम तो विश्राम मध्यान्तर और खाने के समय मे कोई मेल नही रह पाता और जब परिवार के विभिन्न सदस्य मिल मे भिन्न-भिन्न समय पर काम करते है, जैसे कि साधारणतया होता है, तब वे सब साथ बैठकर भोजन नही कर पाते। दूसरे, देख-भाल करने का कार्य बहुत कठिन हो जाता है और कभी-कभी मालिक उन्हीं श्रमिकों से काम लेते रहते है जब कि रजिस्टर में ऐसे बहुत से श्रमिकों को नाम दर्ज कर दिया जाता है, जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व ही नही होता। इन अस्तित्व-हीन श्रमिकों का वेतन तक दिखा दिया जाता है, जिनको क्लर्को, मध्यस्थो तथा उन श्रमिको मे बाँट लिया जाता है, जो अतिरिक्त काम करते है। जहाँ ऐसी बातें पाई जाती हैं वहाँ दैनिक काम के घण्टे कानून द्वारा निर्धारित सीमा से भी अधिक बढ़ जाते हैं। परस्पर व्यापी-पारी पद्धति मे इन दोनों की चरम सीमा बालको के सम्बन्ध में होती हैं जिनको अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता है। जिन स्थानों पर कई पारियाँ होती है, वहाँ कार्य करने के अधिक घण्टे श्रमिकों के लिए कष्टदायक हो जाते है, यदि उनके रहने का प्रबन्ध करखाने के परिसर (Premises) में नही होता है।

रॉयल श्रम आयोग ने परस्पर-व्यापी-पारी-प्रणाली को अच्छा नही बताया था तथा श्रमिकों के संगठनों ने भी इसका घोर विरोध किया है। साधारणतया मत यही रहा है कि केवल विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर परस्पर-व्यापी-पारी-पद्धति की अनुमति नही देनी चाहिये। यह प्रसन्नता का विषय है कि १९४८ के कारखाना अधिनियम में परस्पर-व्यापी-पारियों को निषेध कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब किसी भी कारखाने में पारी प्रणाली ऐसी नहीं हो सकती कि एक ही समय पर समान कार्य के लिये एक से अधिक श्रमिक दल कार्य करते हों। राज्य सरकारों को किसी कारखाना विशेष को विशेष परिस्थितियों में इस धारा से छूट देने का अधिकार है।

रात्रि पारियाँ (Night Sifts)

रात्रि पारी की वांछनीयता के प्रश्न पर मतभेद है। निरन्तर उत्पादन में रत रहने वाले उद्योगों के लिये तो रात्रि पारियाँ आवश्यक हो सकती हैं, परन्तु अन्य उद्योगों में इनको साधारणतया सामान्य काल मे उचित नही समझा जाता। कुछ मालिकों का कहना है कि मशीनों की कमी तथा उत्पादन की माँग के कारण

रात्रि पारी चालू करनी पडती है। इस सम्बन्ध मे श्रम अनुसन्धान समिति ने अहमदाबाद मिल मालिक परिषद् के मत को उद्धृत किया था। इसके अनुसार रात्रि पारी से एक विशेष लाभ यह है कि इससे बधी लागत कम हो जाती है तथा रात्रि पारी मे कार्य करने से वर्तमान तीव्र प्रतिस्पर्धा के युग म उद्योगो द्वारा अस्थायी रूप से बढी हुई माग की पूर्ति, अतिरिक्त स्थिर पूंजी लगाए बिना की जा सकती है। इसी प्रकार अहमदाबाद के एक मिल मालिक के कथनानुसार, 'एक पारी' पद्धति मे कार्य करने की अपेक्षा रात्रि पारी मे कार्य करने की प्रवृत्ति अधिक हो गई है, क्योकि वास्तविकता यह है कि दिन प्रतिदिन नवीन आविष्कार होते जा रहे है और मशीने महँगी होती जा रही है। इसलिय इन मशीनो पर ब्याज और मूल्य ह्रास के व्यय को पूरा करने के लिय उत्पादन एक निश्चित समय मे करना पडता है जो कि रात्रि पारी मे काम द्वारा ही सम्भव है।

इसमे कोई सन्देह नही कि रात्रि पारी म बधी लागत मे कमी हो जाती है, कच्चे माल का शीघ्रतापूर्वक उपयोग हो जाता है तथा उत्पादन लागत घट जाती है। परन्तु रात्रि मे कार्य करने से श्रमिको के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है तथा रात्रि मे श्रमिको द्वारा जो उत्पादन होता है, उसकी मात्रा भी कम होती है तथा वह इतना अच्छा भी नही होता। कुछ मालिको की धारणा है कि रात्रि पारिया म श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नही पडता। परन्तु विश्वसनीय मत यही है कि रात्रि पारी मे काम करना अप्राकृतिक है तथा इससे श्रमिको के स्वास्थ्य और कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पडता है। श्रमिक आवश्यक न्यूनतम नीद भी नही ले पाता, क्योकि दिन के समय कोलाहल पूर्ण और भीड भाड के वातावरण मे उसको अपनी नीद पूरी करना सम्भव नही होता। फिर, रात्रि मे काम करने और दिन मे सोने की आदत डालने के लिये बहुत अधिक समय लगता है। रात्रि पारिया के कारण श्रमिको को अपना भोजन समय असमय करना पडता है, जिसके कारण उनकी पाचन शक्ति खराब हो जाती है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। रात्रि पारियो मे दिन की पारियो की अपेक्षा निश्चित रूप से काम कम होता है तथा उत्पादन उतना उत्तम भी नही हो पाता। रात्रि पारी मे प्रकाश भी काम के ऊँचे स्तर को ध्यान मे रखते हुए अच्छा नही होता है। रात्रि पारियो मे अनुपस्थितता अधिक होने के कारण उत्पादन की मात्रा भी कम होती है। रात्रि मे प्रभावात्मक रूप से निरीक्षण करना भी बहुत कठिन हो जाता है। रात्रि मे कार्य करते रहने पर प्रात काल के घण्टो मे स्वाभाविक थकान आ जाती है। श्रमिक सगठनो द्वारा भी रात्रि पारियो का विरोध किया जाता है। अहमदाबाद कपडा मिल मजदूर परिषद् का मत है—"रात्रि मे काम करने से श्रमिको के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है अनुपस्थिति बढ जाती है तथा सामाजिक जीवन के उच्च अवसरो के पान म बाधा उत्पन्न हो जाती है।"

साधारणतया यह सुझाव दिया जाता है कि रात्रि पारी मे कार्य तभी

किया जाना चाहिये, जबकि इसके बिना कार्य चल ही न सके। अत यह आवश्यक है कि रात्रि मे कार्य करने वाले श्रमिको की कठिनाइयो को कार्य के घण्टे सीमित करके एवम् अन्य सुविधायें प्रदान करके रात्रि पारी के बुरे प्रभावो को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। कोई भी कारखाना रात्रि के १ बजे के पश्चात् चालू नही रहना चाहिये। रात्रि म पारी का प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिये कि सभी मिल अर्द्धरात्रि के पश्चात् बन्द हो जायें। बस यातायात का भी पर्याप्त प्रबन्ध होना चाहिये, जिससे श्रमिक शीघ्र ही अपने निवास स्थानो को पहुच सकें। रात्रि के समय श्रमिकों के लिये कैंटीन पीने के पानी की सुविधा, नि शुल्क चाय आदि की व्यवस्था होनी चाहिये। मौसमी तथा एसे कारखानो मे, जिनमे कार्य निरन्तर रूप से चलाना आवश्यक होता है रात्रि के समय भी काय चालू करना आवश्यक हो जाता है, परन्तु इनमे थोडे थोडे समय बाद श्रमिको का परस्पर परिवर्तन करने की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। उदाहरणत प्रतिमास रात्रि पारी एवं दिन की पारी के श्रमिकों की परस्पर अदल बदल होती रहनी चाहिये। रात्रि पारियो को पूर्णतया समाप्त कर देना कठिन है क्योंकि इससे कभी लागत मे कमी हो जाती है और उद्योगो के लिये बिना अतिरिक्त मशीनें आदि लगाये हुए, माँग का पूरा करना सम्भव हो जाता है। श्रम अनुसधान समिति का कथन है कि यदि इस विषय पर कोई राष्ट्रीय अथवा अन्तराष्ट्रीय समझौता हो, तभी रात्रि पारी का प्रभावपूर्ण तरीके से नियन्त्रित किया जा सकता है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, विभिन्न श्रम अधिनियमो मे स्त्रियों एवं बच्चो के रात्रि म काम करने पर रोक लगा दी गई है। यह अत्यन्त सराहनीय पग है। स्त्रियाँ एवं बालक असमय कार्य करने के लिये शारीरिक दृष्टि से अयोग्य होते है। दूसरे, भारत मे रात्रि के समय कार्य करने से स्त्रियों को अनेक नैतिक एवं सामाजिक सकटो का भय रहता है। रात्रि म काम करने से बालको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है और कार्य करते समय उन्हे नीद आ जाना स्वाभाविक है। अत यह सब मानते हैं कि स्त्रिया एवं बालको के लिए रात्रि-कार्य पर रोक लगानी आवश्यक है। राष्ट्रीय श्रम आयोग का सुझाव है कि रात्रि की पारी मे काम के घण्टो की संख्या कम होनी चाहिये। रात्रि पारी मे काम के प्रत्येक घण्टे पर १० मिनट की छूट दी जानी चाहिये। इस प्रकार, काम के छः घण्टो पर श्रमिकों को एक घण्टे का अतिरिक्त भुगतान किया जाना चाहिये।

श्रम-समय-विस्तार (Spread Over)

कार्य के घण्टो और पारी प्रणाली के साथ ही श्रम-समय विस्तार की समस्या भी बहुत महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ उस अवधि से है, जिसके अन्दर कार्य के अधिकतम घण्टों का विस्तार किया जा सकता है। यह बात स्पष्ट है कि यदि इस अवधि का अनुचित रूप से विस्तार किया जाता है, तब इससे सभी श्रेणियों के श्रमिकों को रात्रि मे आराम करने म और कुछ मनोरजन करने म, विशेषतया

अपने पारिवारिक जीवन और स्त्रियां को अपने घरेलू कर्त्तव्यों को निबाहने में, बाधा पड़ेगी। साधारणतया श्रम समय विस्तार की अवधि कार्य करने के अधिकतम घण्टों के ही बराबर होती है। इसमें एक या आधा घण्टे का विश्राम मध्यान्तर भी आ जाता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में कार्य करने के अधिकतम घण्टों को दो भागों में बाँट दिया जाता है और बीच में एक लम्बा मध्यान्तर हो जाता है। बागान जैसे अनेक उद्योगों में श्रम समय विस्तार का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि यहाँ मध्याह्न के विश्राम को छोड़कर, जो और उद्योगों की अपेक्षा लम्बा होता है, कार्य तब तक होता रहता है जब तक वह समाप्त नहीं हो जाता। परन्तु अब बागान में भी १९५१ के अधिनियम द्वारा श्रम समय विस्तार की सीमा १२ घण्टे प्रतिदिन कर दी गई है। परन्तु यह समस्या खानों में, विशेषतया खानों के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये, बड़ी ही गम्भीर रही है। १९३५ के खान अधिनियम ने खान के अन्दर कार्य ९ घण्टों की मर्यादा प्रतिदिन ६ निश्चित कर दी थी और इससे श्रम समय विस्तार के दोष को बड़ी सीमा तक दूर किया जा सका था। १९५२ के भारतीय खान अधिनियम में श्रम-समय विस्तार की सीमा खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये प्रतिदिन ८ घण्टे और खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिकों के लिये प्रतिदिन १२ घण्टे निर्धारित की गई है। कारखानों में श्रम समय-विस्तार की समस्या तो और भी जटिल है, क्योंकि यहाँ पर बहुत रात तक काम को बढ़ाया जा सकता है। जहाँ परस्पर पारी-पारी प्रणालियाँ हैं, वहाँ पर पारियों के बीच मध्यान्तर अधिक होते हैं और इस प्रकार श्रम-समय विस्तार लम्बा हो जाता है। परन्तु १९३४ के कारखाना अधिनियम द्वारा प्रथम बार इस श्रम समय विस्तार को सीमित किया गया था और इसके अन्तर्गत वयस्कों के लगातार प्रतिदिन कार्य करने के घण्टे १३ और बालकों के ६½ निर्धारित किये गये थे। १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा इसको और भी सीमित कर प्रतिदिन १०½ घण्टे निर्धारित कर दिया गया है। यदि छूट भी दी जाती है तो श्रम-समय-विस्तार १२ घण्टे से अधिक नहीं हो सकता। हमारे विचार से यह सीमा उचित है। दूकान एवं वाणिज्य संस्थान अधिनियमों द्वारा भी विभिन्न राज्यों में श्रम समय-विस्तार के घंटे निर्धारित कर दिये गये हैं।

रोजगार की कुछ दशायें

(Some Employment Conditions)

पिछले पृष्ठों में भरती, अनुपस्थिति, श्रमिकावर्त वेतन सहित अवकाश, स्थायी आदेश, आदि समस्याओं पर विचार किया जा चुका है। अब हम भारतीय उद्योगों में रोजगार से सम्बन्धित कुछ और दशाओं का वर्णन करेंगे, जिसका श्रमिक के स्वास्थ्य तथा कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है और जो श्रम कल्याण, समाज सुरक्षा तथा कार्य और रोजगार की समस्याओं से सम्बन्धित हैं।

करे। अनुशासन तथा उद्योग का घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध है। श्री गुलजारी लाल नन्दा के शब्दों में जब श्रमिक अनुशासन की भावना खो बैठते हैं तो इसका अर्थ यह होता है कि समाज ने तथा उन्होंने कोई बहुत मूल्यवान वस्तु खो दी है। जब तक अनुशासन का स्तर ऊँचा नहीं होगा तब तक उत्पादकता में उन्नति की तथा श्रमिकों के प्रबन्ध में प्रभावात्मक रूप से भाग लेने की आशा नहीं की जा सकती। कर्मचारियों का कोई वर्ग एक साथ मिलकर तालमेल से कार्य कर सके, इसके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे कार्य व आचरण सम्बन्धी कुछ नियमों का पालन करें।

श्रमिकों में अनुशासनहीनता के अनेक कारण हैं, उदाहरणार्थ—श्रमिक संघों में पारस्परिक द्वेष, श्रमिकों में अज्ञानता तथा अशिक्षा, बाहरी आदमियों द्वारा श्रमिकों को भड़काना और गलत राह पर ले जाना तथा श्रमिकों में भय की मनोवृत्ति आदि। इसलिए दृढ़ श्रमिक संघ, उचित शिक्षा, श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग और उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों (Human Relations) पर बल देने से ही श्रमिकों में अनुशासन आ सकता है। (अनुशासन संहिता के लिये परिशिष्ट 'ग' देखिये)। अनुशासन सम्बन्धी नियम तथा उपनियम भी काफी स्पष्ट और विशिष्ट होने चाहिए और उनका निर्माण कर्मचारियों के परामर्श से ही करना चाहिए, साथ ही उन कर्मचारियों को भी उन नियमों का समुचित रूप से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। अनेक नियमों का उल्लंघन कर्मचारियों द्वारा अज्ञानता के कारण भी होता है। यदि कर्मचारी कुछ नियमों को आदतन ही तोड़ते हैं तो उनके कारणों की खोज की जानी चाहिये तथा नियमों में तदनुसार संशोधन किया जाना चाहिये।

उद्योगों में श्रमिकों के लिए अनुशासन तथा दण्ड व्यवस्था का प्रश्न एक अन्य समस्या है। सामान्यतया अनुशासनहीनता अथवा दुर्व्यवहार के मामलों में श्रमिकों को या तो बर्खास्त अथवा मुअत्तल कर दिया जाता है या जबरी छुट्टी, जुर्माना या और किसी तरीके से दण्ड दिया जाता है। साधारणतः अनुशासनहीनता के मामले कार्यशाला के फोरमैन द्वारा अथवा माध्यमिक सर्वेक्षण कर्मचारियों द्वारा प्रबन्धक अथवा व्यवस्थापक अभिकर्त्ता (Managing Agents) को प्रस्तुत किये जाते हैं, जो उनके बारे में विचार करते हैं। बर्खास्तगी अथवा अलहदगी के मामले में श्रमिकों पर सरलता से अत्याचार किया जा सकता है और इस प्रकार का दण्ड साधारणतः श्रमिक संघ की कार्यवाहियों में भाग लेने वाले श्रमिकों को दिया जाता है। बर्खास्तगी से मध्यस्थों को श्रमिकों को ठगने का मौका मिलता है। बर्खास्तगी (Dismissal), अलहदगी (Discharge) की अपेक्षा दण्ड का उग्र रूप है, क्योंकि अलहदगी में बदले की उतनी भावना नहीं होती और पुनः नौकरी मिलने में कठिनाई नहीं होती। श्रमिकों को कार्य समाप्त होने के बाद भी हटा दिया जाता है, परन्तु बर्खास्तगी में बदले की भावना आ जाती है और श्रमिक का रिकार्ड दोबारा नौकरी के समय उसके विरुद्ध प्रयोग में लाया जा सकता है। इस कारण

इस प्रकार का दण्ड केवल घोर दुर्व्यवहार के समय ही देना चाहिये। अनेक बार बर्खास्तगी के कारण ही अनेक गम्भीर औद्योगिक विवाद हुए हैं और इससे सभी श्रमिकों में मन मुटाव उत्पन्न हो जाता है। बर्खास्तगी या अलहदगी के लिये उचित नोटिस अथवा इसके बदले वेतन देने की वैधानिक व्यवस्था होनी चाहिये। सन् १९५३ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में संशोधन द्वारा अब यह व्यवस्था कर दी गई है। अपराधों के लिये मुअत्तल (Suspend) करने की प्रथा सामान्यतया अधिक नहीं पाई जाती। पहले तो चेतावनी दी जाती है और यदि श्रमिक अपराध दोबारा करता है तो उसे बर्खास्त कर दिया जाता है। फिर भी, इस प्रकार के दण्ड के लिए मुअत्तली की अवधि नियत कर दी जानी चाहिये और वे परिस्थितियाँ जिनमें कि मुअत्तली की जा सकती है, स्पष्ट शब्दों में दी जानी चाहिये। इन सबका उल्लेख स्थायी आदेशों (Standing Orders) में किया जा सकता है। जहाँ तक जुर्माना का प्रश्न है मजदूरी अदायगी अधिनियम (Payment of Wages Act) में, जिसके विषय में हम मजदूरी के अध्याय में विचार करेंगे, जुर्माने करने तथा उसकी वसूली के सम्बन्ध में श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने के कुछ उपबन्ध हैं। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था है कि सरकार या निर्धारित प्राधिकारी की पूर्वानुमति के बिना जुर्माना नहीं किया जा सकता। अधिनियम में उस प्रक्रिया का भी उल्लेख है जिसके अनुसार और जितनी मात्रा तक जुर्माने किये जा सकते हैं। विशेष अपराधों के अतिरिक्त या जब तक श्रमिक को अपने व्यवहार का ब्यौरा देने के अवसर न दिया जाये, किसी मामले में जुर्माना नहीं किया जा सकता और जुर्माने की यह राशि मजदूरी में से तीन पैसे प्रति रुपये से अधिक नहीं हो सकती। यह जुर्माना ६० दिन के अन्दर वसूल कर लिया जाना चाहिये तथा एक रजिस्टर में दर्ज कर दिया जाना चाहिये और इसकी राशि श्रम कल्याण कार्यों के हेतु काम में लानी चाहिये। ऐसे उपबन्ध यद्यपि सन्तोषजनक है, किन्तु बहुत से ऐसे उदाहरण हैं जहाँ जुर्माने के रजिस्टरों की व्यवस्था नहीं की गई है और वसूल किया हुआ धन भी श्रम कल्याण कार्यों में नहीं लगाया गया है। इस दोष को फैक्ट्री निरीक्षकों के कठोर निरीक्षण द्वारा दूर किया जा सकता है। श्रमिकों को दण्ड देने की और भी विधियाँ हैं, जैसे—वेतन दरों में कमी, ग्रेड का घटाना, इत्यादि। ऐसी कटौती मजदूरी अदायगी अधिनियम के अन्तर्गत अवैध है, परन्तु इस अधिनियम को कठोरता से कार्यान्वित करने की आवश्यकता है।

यह तो वांछनीय और ध्यान देने योग्य बात है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में श्रमिक को कोई ऐसा दण्ड न मिले, जिससे उसके रोजगार पाने की सम्भावना में कोई कमी हो जाये। दण्ड भी सिद्ध अपराध के लिये ही होना चाहिये और यह नियमानुसार ही मिलना चाहिये। यह तो बहुत ही अच्छा होगा यदि श्रमिकों तथा व्यवस्थापकों में आपसी सहयोग तथा आपसी सहायता की भावना पैदा करके अनुशासन रखा जा सके। यदि अनुशासनीय पग लेना आवश्यक हो जाये में दूसरा

तथा नवीनतम मशीनो को अपनाकर श्रमिको की सख्या कम कर दी जाये। इसके फलस्वरूप बेरोजगारी बढती है। दूसरे व्यावहारिक रूप मे विवेकीकरण कार्य-तीव्रता का रूप ले लेता है, क्योकि वस्तुत होता यह है कि श्रम व्यय का कम करने हेतु मालिक कार्य की दशाओ, कच्चे माल, औजारो आदि म सुधार किये बिना कार्य भार म वृद्धि कर देत हैं। मालिको द्वारा प्रबन्ध के सभी कार्यों मे विवेकीकरण लागू करने का प्रयत्न नही किया जाता। इस प्रकार विवेकीकरण से श्रमिको पर अत्यधिक भार पड जाता है। तीसरे, श्रमिक यह शिकायत करत है कि विवेकीकरण द्वारा होने वाले समस्त लाभो को मालिक हडप जाते है और जिन श्रमिको पर अधिक कार्य-भार पडता है उन्हे बहुत कम अथवा कुछ भी नही मिलता।

विवेकीकरण की किसी भी योजना के सफल होन के लिये यह आवश्यक है कि इन आपत्तियो का समाधान किया जाय। विवेकीकरण की योजना ऐसी होनी चाहिये जिसमे कम मूल्य पर अधिक उत्पादन हो सके तथा उद्योग के विस्तृत होने के साथ साथ श्रमिको का अलग करने की अपेक्षा और अधिक श्रमिको को कार्य पर लगाया जा सके। अत विवेकीकरण को सुनियोजित एव नियमित रूप से लागू करना चाहिये, जिससे बेरोजगारी बिल्कुल न हो और यदि हो भी तो बेरोजगारी सहायता की कोई योजना पहले से ही तैयार रहनी चाहिये। दूसरे, विवेकीकरण की किसी भी योजना को कार्यान्वित करने से पूर्व कार्य-भार को वैज्ञानिक रीति तथा उचित प्रकार से 'समय अध्ययन', 'गति अध्ययन' तथा 'श्रान्ति अध्ययन' आदि स निर्धारित कर लेना चाहिये। मालिको को कार्य की दशाओ, मशीनो, कच्चे माल, आदि मे भी सुधार करना चाहिये एव श्रमिको के कल्याण के विभिन्न कार्य भी करने चाहियें। तीसरे, विवेकीकरण के फलस्वरूप होने वाले अधिक लाभ मे से श्रमिको को उचित लाभ मिलना चाहिये। विवेकीकरण से जो लाभ होते है, उनसे मजदूरी का पर्याप्त मजदूरी (Living Wage) के स्तर तक बढाया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त, विवेकीकरण के फलस्वरूप अधिक कार्य-कुशल व्यवस्था एव श्रेष्ठ सगठन होना चाहिये और इसके परिणामस्वरूप मालिको एव श्रमिको के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने चाहियें।

भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण
(Rationalization in Indian Industries)

ससार के विभिन्न औद्योगिक देशो की भाँति विवेकीकरण को भारत मे भी आर्थिक मन्दी के समय कुछ सीमित रूप तक अपनाया गया था। इसका कारण यह था कि इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि श्रम-बचत उपायो तथा वस्तुओ और उत्पादन मे समानीकरण द्वारा श्रमिको की कार्यकुशलता और दक्षता को बढाया जाये और सब प्रकार से बचत की जाये। उदाहरण के लिये, 'ससून मिल ग्रुप' के सर फ्रैड्रिक स्टोन ने १६२८ मे बम्बई की कुछ कपडा मिलो मे विवेकीकरण

को कार्यरूप दिया। तभी से भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली एवं प्रतिनिधि श्रमिक संगठन, अर्थात् अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद् ने विवेकीकरण योजना का विरोध किया है तथा भारतीय उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में विवेकीकरण के लागू होने से जो गम्भीर कमियाँ एवम् दोष पाये गये, उन पर प्रकाश डाला है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने कपड़ा, इंजीनियरिंग एवम् तम्बाकू उद्योगों में विवेकीकरण की समस्या की समालोचना की है तथा उन सुरक्षात्मक उपायों को भी बताया है, जिनका विवेकीकरण की किसी भी योजना को लागू करने से पूर्व अपनाया जाना आवश्यक है, ताकि श्रमिकों के उचित हितों को हानि न पहुँचे।[1]

कपड़ा उद्योग के सम्बन्ध में १९२७ में टैरिफ बोर्ड ने भारत में प्रति श्रमिक उत्पादन बढ़ाने एवं कार्यकुशलता में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया था। उसने बताया था कि जापान में प्रति श्रमिक द्वारा नियन्त्रित किये जाने वाले तकुओं की संख्या २४०, इंगलैण्ड में ६०० एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में १,१२० थी, जबकि भारत में इनकी संख्या केवल १८० तकुए प्रति श्रमिक ही थी। भारत में एक बुनकर द्वारा देखभाल किये जाने वाले करघों की संख्या २ थी, जबकि अमेरिका में ९ एवं इंगलैण्ड में ४ से ६ तक थी। जापान में एक बुनकर लड़की ६ करघों की देखभाल करती थी, जबकि हमारा बुनकर केवल दो करघों की ही देखभाल कर पाता था। इस कारण यह सुझाव दिया गया था कि भारतीय उद्योगों में माल एवं कार्य की दशाओं में सुधार होना चाहिये तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विभिन्न देशों के श्रमिकों की कुशलता की तुलना भारतीय श्रमिकों के जलवायु के प्रभाव एवं रहने की असन्तोषजनक दशाओं को दृष्टि में रखकर ही करनी चाहिये। परन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कार्यकुशलता में वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा उन्नति हो सकती है। विवेकीकरण से न केवल मिल के विभिन्न विभागों में कार्यकुशलता बढ़ेगी, वरन् इससे उन्नत सामंजस्य (Co ordination) एवं सर्वेक्षण में भी वृद्धि होगी। यदि भारतीय सूती मिल उद्योग को इंगलैण्ड एवं जापान से सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करनी है तो विवेकीकरण की नितान्त आवश्यकता है। अभी तक विवेकीकरण बम्बई एवं अहमदाबाद में लागू किया गया है, जहाँ १९३५ में श्रमिकों एवं मालिकों के बीच समझौते के पश्चात् कार्यकुशलता के उपाय (Efficiency Methods) अपनाये गये थे। रिंग कताई एवं बुनाई के विभाग को इससे अत्यधिक लाभ हुआ है। बम्बई की कपड़ा मिल के करघा विभाग में भी काफी उन्नति हुई है। यहाँ ५७६ बुनकर ३ तथा २,७१६ बुनकर ४ एवम् ६०१ बुनकर ६ करघे प्रति बुनकर चलाते हैं। अधिकांश कताई करने वाले ४०० तकुए अथवा इससे भी अधिक प्रति श्रमिक देखभाल कर लेते हैं। अहमदाबाद में कपड़ा मिल मजदूर परिषद् द्वारा किये गये विरोध के कारण इस क्षेत्र में अधिक उन्नति नहीं हो सकी

1 Dr R K Mukerjee *Indian Working Class* p 246-59

है। शोलापुर में विवेकीकरण बहुत कम हुआ है और यह केवल रिंग कताई के विभाग तक ही सीमित है। यहाँ ११४ श्रमिक दुतरफा कार्य प्रणाली (Double Side System) पर कार्य करते हैं। अन्य स्थानों पर कपड़ा मिलों में उन्नत मशीनों एवं स्वचालित (Automatic) करघों के कारण श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होने के अतिरिक्त और कोई सुधार नहीं हुआ है। कानपुर में मशीनों की गति में वृद्धि की गई है। परन्तु यह वास्तव में विवेकीकरण न होकर कार्य की तीव्रता है।

फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय उद्योगों में विशेषकर सूती वस्त्र जूट मिल एवं कोयला खान उद्योगों में विवेकीकरण अत्यधिक आवश्यक है। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् भारतीय सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन सामान्यतया ४० से ३० प्रतिशत तक घट गया है जबकि जापान इंगलैण्ड एवम् अमरीका जैसे सूती कपड़े के अन्य उत्पादक देशों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। भारत का पिछड़ापन इस बात से स्पष्ट है कि इस समय भी भारतीय सूती उद्योग का एक कर्मचारी औसतन २८० रिंग तकुओं की देखभाल करता है जबकि इंगलैण्ड में एक कर्मचारी ८०० तकुओं एवं अमेरिका का एक श्रमिक १,२०० तकुओं की देखभाल करता है। इसी प्रकार एक भारतीय श्रमिक औसतन २४ साधारण करघों पर कार्य करता है जबकि इंगलैण्ड में ४ साधारण करघे तथा अमेरिका में ३३ स्वचालित करघे एक श्रमिक द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश भारतीय मिलों में मशीन एवं सामग्री अपेक्षाकृत पुरानी है। यह अनुमान लगाया गया है कि ८६ प्रतिशत करघे ३६ प्रतिशत 'इण्टर फ्रेम्स', ३१ प्रतिशत 'ड्राइंग फ्रेम्स' २३ प्रतिशत 'स्लबर एवं रोविंग फ्रेम्स' एवं १७ प्रतिशत 'वार्प रिंग' और वैफ्ट रिंग फ्रेम्स लगभग ४४ वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। बम्बई के मिल मालिकों द्वारा सूती वस्त्र उद्योग के कार्यदल (Working Party) को प्रस्तुत किये गये परिपत्र (Memorandum) के अनुसार बम्बई मिलों में ६० प्रतिशत मशीनें २४ वर्ष से अधिक पुरानी हैं। ऐसी मशीनें जिनसे दूसरे महायुद्ध में परस्पर-व्यापी-पारियों (Multiple Shifts) में कार्य लिया गया था तथा जो १९३० से पहले लगाई गई थी, पुरानी और बेकार हो गई हैं। संसद में एक बार श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने कहा था कि लगभग ६३ सूती मिलों को, पुरानी एवं घिसी पिटी मशीनों के कारण, बन्द होने की नौबत आ गई थी। जुलाई १९५८ में सूती कपड़ा उद्योग की समस्याओं का अवलोकन करते हुये जोशी समिति ने भी कहा था कि "वर्तमान मशीनों में से अधिकांश ४० वर्ष पूर्व लगाई गई थी और उनकी उपयोगिता अब लगभग समाप्त हो चुकी है।" स्वचालित करघों का प्रतिशत कुल करघों के अनुपात में जनवरी १९५८ में भारत में ६.८ था जबकि यह अनुपात अन्य देशों में इस प्रकार था: अमेरिका में १००, फ्रांस में ४२, इटली में ४२.२, सोवियत संघ में ४२.४, पश्चिमी जर्मनी में २८.२, पाकिस्तान में २६, जापान में १७.६, इंगलैण्ड में १५ और चीन में ११.७। अतः विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करने और निर्यात बाजार

को व्यवस्थित रखने हेतु भारतीय कपडा उद्योग मे विवेकीकरण अत्यन्त आवश्यक है जूट मिल उद्योग मे भी ऐसी ही दशा है। जूट मिल उद्योग के यन्त्रो एव मशीनो के आधुनिकीकरण की आवश्यकता और भी अधिक हो गई है, क्योकि योरोपीय एव डण्डी के अनेक प्रतिस्पर्धियो ने अपनी उत्पादन लागत को कम करने के लिये अपनी मशीनों एव यन्त्रो का आधुनिकीकरण करने पर बहुत बडी मात्रा मे पूंजी लगाई है। इससे ससार मे भारतीय जूट मिल उद्योग के एकाधिकार (Monopoly) को एक बहुत गम्भीर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड रहा है। पाकिस्तान, ब्राजील तथा फिलिपाइन्स ने नवीन प्रकार की मशीनो से नई जूट मिलो की स्थापना की है और वे जूट से बनी वस्तुओ को कम कीमत पर देने मे समर्थ हो सकते है। १६५४ मे जूट जाँच आयोग की रिपोर्ट मे भी जूट मिलों मे तत्काल विवेकीकरण लागू करने की आवश्यकता पर बहुत बल दिया गया था। १६५१ मे कोयला उद्योग पर कार्यदल की रिपोर्ट मे भी कोयला खान उद्योग के लिये आधुनिकीकरण तथा विवेकीकरण की योजनायें लागू करने का सिफारिश की गई थी ताकि खानो की उत्पादन क्षमता बढ सके तथा उनकी उत्पादन लागत कम हो सके। राष्ट्रीय कोयला विकास निगम के कार्यरत होने के साथ ही भारतीय दशाओ के अनुरूप तकनीकी स्तर पर यन्त्रीकरण आरम्भ हो गया है।

अधिकाश राज्यो की कपडा मिलो मे विवेकीकरण की योजनाओं को कार्य-रूप मे परिणत कर दिया गया है तथा भारतीय-श्रम-सम्मेलन द्वारा नियुक्त की गई जूट उद्योग पर त्रिदलीय औद्योगिक समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप जूट मिलो मे भी विवेकीकरण योजनाये लागू कर दी गई है। इसके लिए वित्तीय सहायता राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा प्रदान की गई है। विवेकीकरण के सम्बन्ध मे मालिको को मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए भारतीय-श्रम-सम्मेलन ने १६५७ म एक आदर्श समझौते का मसविदा भी तैयार किया था, जिसको केन्द्रीय श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय द्वारा परिचालित किया गया है। परन्तु विवेकीकरण की योजनाओ का श्रमिक सघो द्वारा बहुत विरोध हुआ है। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सन् १६६६ मे रिपोर्ट दी थी कि जूट उद्योग मे, कताई वर्ग मे तो उद्योग का आधुनिकीकरण कर दिया गया किन्तु बुनाई वर्ग मे आधुनिकीकरण अधिक सफल न हो सका जो कि गम्भीर विचार का विषय था।

भारत में विवेकीकरण के खतरे
(Dangers of Rationalization in India)

भारत मे अधिकतर यह देखा गया है कि पूर्णत नई मशीनो को लगाने की अपेक्षा पुरानी मशीनो को ही फिर से नया कर दिया जाता है तथा मशीनो की गति काफी बढा दी जाती है और उन्नत मशीनो की व्यवस्था अथवा उन्नत कार्य नियोजन, वस्तुओ का समानीकरण अथवा सुधार एव अच्छा सर्वेक्षण आदि कुछ नही किया जाता। केवल कार्य करने की गति मे वृद्धि होती है, जिससे कार्य की

तीव्रता या अधिकता ही कहा जा सकता है। इस प्रकार भारत मे कार्यतीव्रता (Intensification) विवेकीकरण के रूप मे आ रही है। यद्यपि कपड़ा मिलों की मशीनों मे सुधार किया गया है, परन्तु इसके साथ रुई के गुण एवं मजदूरी मे सुधार नही हुआ है। मशीनों की गति अहमदाबाद एवं बम्बई की कपड़ा मिलों मे अमेरिका मे भी अधिक है परन्तु इससे श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ जाती है धागे अधिक टूटने लगते हैं एवं श्रमिकों पर अधिक भार पड़ता है। इसके अतिरिक्त, भारत मे यन्त्रीकरण के साथ-साथ बहुधा छंटनी एवं तीव्रता दोनों ही होते हैं, जिनसे शक्तिशाली श्रमिक संगठन के अभाव के कारण, श्रमिक अपनी रक्षा नही कर पाते। फिर, कारखाने मे वातावरण की दशाओं के सुधार की ओर नियोजित प्रयत्न बहुत कम होता है, जिनमे सुधार होने से श्रमिकों की कार्यगति, चुस्ती एवं कार्यकुशलता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अन्य देशों मे शक्तिशाली श्रमिक संघों के कारण श्रमिक विवेकीकरण द्वारा उद्योग के बढ़े हुए लाभों मे से उचित भाग पाने से वंचित नही हुए हैं। परन्तु भारत मे अहमदाबाद के अतिरिक्त, जहाँ श्रमिक संघ शक्तिशाली हैं, यह बात और कहीं नही पाई जाती। बम्बई मे विवेकीकरण के परिणामस्वरूप विभिन्न कार्यों मे जो मजदूरी दी जाती है इसमे २३ प्रतिशत से ५५ प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। परन्तु श्रमिक इस बात की बहुधा शिकायत करते है कि उन पर अतिरिक्त भार पड़ता है, उनकी संख्या घटा दी गई है और यह सब बात कच्चे माल एवं कार्य की दशाओं मे सुधार किए बिना ही की गई हैं। साथ ही उन रोजगारो मे, जहाँ विवेकीकरण योजनाओं को लागू किया गया है, श्रमिकों की आय मे पर्याप्त वृद्धि नही हुई है। विवेकीकरण के होने पर बेरोजगारी का भय भी सदा ही बना रहता है।

अहमदाबाद मे शक्तिशाली श्रम संगठन के कारण कार्यकुशलता प्रणाली (Efficiency System) सन्तोषपूर्वक कार्य कर रही है, परन्तु अन्य स्थानों मे विशेष कर इन्जीनियरिंग उद्योगों मे, अनियन्त्रित विवेकीकरण के कारण अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं। उदाहरणार्थ, जमशेदपुर के लोहा एवं इस्पात कारखानों के विभिन्न यन्त्रों एवं विभागों मे उत्पादन प्रति इकाई बढ़ा तो है, परन्तु श्रमिकों की संख्या बहुत घटा दी गई है और इनकी मजदूरी मे कोई उचित वृद्धि नही की गई है। यह स्थिति लगभग समस्त इन्जीनियरिंग मिलों मे, जहाँ विवेकीकरण के साथ-साथ श्रमिकों की संख्या घटाई गई है या कार्यतीव्रता पाई जाती है, व्याप्त है। भारतीय टीन प्लेट कं० मे भी ऐसी ही दशायें पाई जाती है। लोहे के तार उद्योग मे तो कार्य-तीव्रता की सीमा ही पहुंच चुकी है। इस प्रकार की, बिना उचित वेतन वृद्धि के, कार्यतीव्रता की समस्या सिगरेट उद्योग मे भी है, जहाँ कि आरम्भ से अन्त तक समस्त प्रक्रियायें मशीनों से होती है। कार्यगति मे वृद्धि एवं श्रमिकों की संख्या मे कमी दोनों ही श्रमिकों मे घोर असंतोष एवं हड़तालों के कारण बने हैं।

सुझाव (Suggestions)

इसलिये, अधिक कार्यदक्षता और मेहनत के कारण उत्पादन तथा मजदूरी मे वृद्धि, कार्य गति मे वृद्धि, श्रान्ति उचित अल्प विरामो की आवश्यकता, मशीनों को लगाने एव कार्य दशा मे सुधार, विवेकीकरण के कारण बेरोजगारी आदि सभी महत्वपूर्ण प्रश्नो का सभी दृष्टिकोणो से अवलोकन करना आवश्यक है। विवेकीकरण की किसी योजना को कुशलता एव सफलतापूर्वक चलाने के लिये पूंजी व श्रमिकों के हितों मे सामञ्जस्य लाना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि विवेकीकरण को कार्यान्वित करने से पूर्व कार्यकुशलता के सभी उपायो का, श्रमिको व मालिको के प्रतिनिधियो की एक सयुक्त समिति द्वारा, अध्ययन किया जाये। इस समिति मे कुछ तकनीकियो को विशेषज्ञो के रूप मे होना चाहिये, जिससे कार्य की दशाओं का तथा श्रमिको और प्रबन्धको मे विवेकीकरण के लाभ को किस प्रकार से वितरित किया जाय, दोनो का निर्णय हो सके। यदि श्रमिको की छँटनी की जाती है तो उन्हे क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिये तथा उनको यथासम्भव शीघ्र ही पुन नौकरी पर लगाया जाना चाहिये। आजकल के महगे समय म उत्पादन लागत तथा मूल्यो से कमी की अत्यन्त आवश्यकता है और इसको विवेकीकरण के द्वारा ही किया जा सकता है। कम मूल्यो के कारण माग बढ़ेगी और उद्योगो का विस्तार और विकास हो सकेगा तथा अधिक उत्पादन के कारण निकाले हुए श्रमिकों को पुन नौकरी मिल सकेगी। इस प्रकार विवेकीकरण के दीर्घकालीन प्रभाव यह होगे कि सस्ता उत्पादन होगा, अधिक उपभोग एव अधिक रोजगार होगा और यदि विवेकीकरण को ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाये और पर्याप्त रूप मे इस पर नियन्त्रण रखा जाय तो इससे धन मे वृद्धि होगी एव सामान्य जीवन स्तर म उन्नति हो सकेगी।

फिर भी डॉ० मुकर्जी ने अन्त मे सावधानी बरतने की चेतावनी दी है। भारत मे विवेकीकरण इस समय केवल पूंजिपतियो के हित व आर्थिक लाभ के लिये ही किया जाता है और इसमें छँटनी, कार्यतीव्रता, कार्य स्तर का गिरना और मजदूरी मे कमी एव हड़तालो का एक दूषित चक्र चालू हो जाता है। इससे पूंजी एव श्रम शक्ति का अपव्यय होता है और उद्योगो मे ऐसी अस्थिरता और श्रमिकों एव मालिकों के बीच ऐसी कटुता पैदा हो जाती है कि भविष्य मे काफी समय तक इस योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करना सम्भव नही हो पाता।

परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारत के अनेक उद्योगो मे विवेकीकरण की नितान्त आवश्यकता और वांछनीयता है। इस समय उत्पादन मे काफी अपव्यय होता है तथा लागत भी अनावश्यक रूप से अधिक बैठती है। इसको वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा यदि समाप्त नही, कम से कम घटाया अवश्य जा सकता है। इसलिये यह तो स्पष्ट ही है कि वर्तमान समय के बड़े उद्योगो को और उन उद्योगों को जो निकट भविष्य मे स्थापित होने वाले हैं, दोनो को ही, यदि अधिक

पर गम्भीर आरोप लगाये गये और दोनों ही पक्षों को इससे काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। सारा विवाद मुख्यतः एक बात पर ही केन्द्रित था कि इस योजना का अर्थ विवेकीकरण है अथवा कार्यतीव्रता। सरकार ने नैनीताल सम्मेलन में तय किये गये सिद्धान्तों से पीछे हटने से इन्कार कर दिया और श्रमिकों ने इस प्रश्न पर फिर से विचार करने की माँग की। अन्त में सरकार ने अगस्त १९५५ में एक समिति की स्थापना की, जिसके अध्यक्ष इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री बी० बी० प्रसाद थे। इस समिति का कार्य जून १९५४ के नैनीताल त्रिदलीय सम्मेलन के निर्णयों पर विस्तृत रूप से विचार करना और इनके आधार पर कानपुर की सात कपड़ा मिलों में अलग-अलग विवेकीकरण को लागू करना था। समिति ने सितम्बर १९५६ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और बताया कि किसी भी दल को कष्ट पहुँचाये बिना किस प्रकार कानपुर की कपड़ा मिलों में विवेकीकरण लागू किया जा सकता था। यह भी अनुभव किया गया कि नैनीताल सम्मेलन में अपनाए गए सिद्धान्तों का अन्य तीन कपड़ा मिलों में भी लागू करना चाहिये। इसलिये श्री बी० बी० प्रसाद की एक 'एक-सदस्य समिति' अन्य मिलों के विषय में सिफारिश करने हेतु बनाई गई जिसने फरवरी १९५७ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। बी० बी० प्रसाद समिति की रिपोर्ट पर जून १९५७ के रानीखेत में हुये त्रिदलीय सम्मेलन ने विचार किया गया। इसके तुरन्त बाद ही जुलाई १९५७ में विवेकीकरण के लिये भारतीय श्रम सम्मेलन में एक आदर्श समझौते का सुझाव दिया, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस रिपोर्ट पर और भारतीय श्रम सम्मेलन की विवेकीकरण से सम्बन्धित सिफारिशों पर राज्य सरकार द्वारा विचार किया गया। विवेकीकरण और कार्यकुशलता-उपायों पर अध्ययन जारी रहा। अन्ततः डा० सम्पूर्णानन्द को विवेकीकरण की योजनाओं को कानपुर की सूती मिलों में लागू करने हेतु विवाचक नियुक्त किया गया। डा० सम्पूर्णानन्द ने अपना जो निर्णय दिया उसको सरकार ने सही अर्थों में पूर्ण रूप से लागू करने का निश्चय किया और उनके निर्णय को कार्यान्वित करने के लिये एक विभाग (Cell) भी स्थापित किया गया था। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सन् १९६९ में रिपोर्ट दी थी कि सूती वस्त्र उद्योग में विवेकीकरण की प्रगति धीमी रही है। इसका कारण श्रमिक संघों का रवैया तो था ही, उद्योग के पास पर्याप्त साधनों का अभाव भी इसका प्रमुख कारण था।

उपसंहार (Conclusion)

कानपुर की हड़ताल का परिणाम यह हुआ कि उद्योग में विवेकीकरण के लागू करने के प्रश्न पर काफी वाद विवाद आरम्भ हो गया। भारत में इसके लाभ-हानि, खतरों एवं इनसे सुरक्षा के उपायों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। सबका एकमात्र यही विचार है कि विवेकीकरण योजनाओं के परिणामस्वरूप बेरोजगारी एवं श्रमिकों की छँटनी और उन्हें कष्ट नहीं होना चाहिये। सरकार

का दृष्टिकोण तो १० सितम्बर, सन् १९५४ में लोक सभा द्वारा स्वीकृत विवेकीकरण से सम्बन्धित प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है, जो इस प्रकार है ' संसद् का विचार है कि जहाँ देश के हित में आवश्यक हो, वहाँ कपड़ा एवं जूट उद्योगों में विवेकीकरण में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। परन्तु इस प्रकार की योजना ऐसे ढंग से कार्यान्वित की जानी चाहिये कि श्रमिकों का विस्थापन कम से कम हो। विस्थापित श्रमिकों के रोजगार के लिये भी उचित सुविधायें प्रदान करनी चाहियें।" तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री खन्डुभाई देसाई ने मई १९५५ में बम्बई में हुये श्रम सम्मेलन में कहा था, ' विवेकीकरण स्वयं में अति अच्छा हो सकता है। परन्तु जैसे बढ़िया खाना भूख से पीड़ित मनुष्य के लिये विष बन सकता है, वैसे ही यदि विवेकीकरण से बेरोजगारी में वृद्धि होती है तब यह उद्योग के उत्थान के लिये बहुत खतरनाक उपचार हो सकता है। विशेषत श्रम बचत उपायों के विषय में हमें अधिक सावधान रहना चाहिये। ऐसे उपाय श्रमिकों को मशीनों की वेदी पर बलिदान कर देते हैं।" स्वर्गीय प० नेहरू ने भी कहा था, "विवेकीकरण एक अच्छी चीज है, परन्तु हम अधिक कार्यकुशलता के लिये भी मानव के दुख और पीड़ा को सहन नहीं कर सकते।" उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मन्त्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा था "जैसी आजकल हमारी राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियाँ हैं उनको देखते हुये विवेकीकरण का तात्पर्य केवल यही हो सकता है कि इससे देश के वर्तमान साधनों का पूर्णत लाभ उठाया जा सके तथा विवेकीकरण के कारण बेरोजगारी न हो।" उनका यह भी कथन था कि मालिकों ने भी बिना हिचक के इस बात को स्वीकार कर लिया है। उनके अनुसार यदि विवेकीकरण योजना कार्यान्वित न हुई तो लगभग ५ से ६ हजार श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे, क्योंकि कानपुर का कपड़ा उद्योग कानपुर में मजदूरी की ऊँची दरें होने के कारण, अन्य स्थानों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता और बिना विवेकीकरण के श्रमिकों को 'औद्योगिक विवाद (संशोधित) अधिनियम' के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति देकर छँटनी करने की सम्भावना हो सकती है। श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने भी कहा था कि वह समय आ गया है जबकि विवेकीकरण की नीति को अपनाना चाहिये। इसको कार्यरूप में सरलता से लाया जा सकता है और श्रमिकों को यह आश्वासन दिया जा सकता है कि इससे उन्हें हानि न होगी। ' बिना कष्ट के विवेकीकरण (Rationalization Without Tears) एक नया नारा था, जो उन्होंने आलोचकों को सुझाया और जिसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि विवेकीकरण से श्रमिकों को कोई हानि न होगी, क्योंकि यदि श्रमिक गतिशील हो तो रोजगार के नये क्षेत्रों का निर्माण हो सकता है।

फिर भी कथनी और करनी में बहुत अन्तर होता है और यही वाद विवाद और मतभेद का कारण है। स्वर्गीय प० हरिहर नाथ शास्त्री ने कहा था "विवेकीकरण को विभिन्न उद्योगों में जिस प्रकार लागू किया गया है, वह भारतीय सरकार

कर दिया जाए तो वह बडा दुर्भाग्यपूर्ण होगा। वैसे, उपयुक्ता की परवाह किये बिना, नकल की बात वाञ्छनीय भी नही है। तथ्य यह है कि उन्नत राष्ट्रो में पूंजी फालतू मात्रा मे पाई जाती है और वहाँ श्रम की लागत ऊँची होती है। इसके विपरीत, एक विकासशील देश मे पूंजी की कमी पाई जाती है और मानव-शक्ति की अधिकता होती है। हमारे अपने देश मे ही, समस्या मानव शक्ति के ससाधनो के पूरी तरह उपयोग करने की है। यदि बढती हुई बेरोजगारी की बाढ को रोकना है तो हमे जहाँ भी और जब भी सुविधाजनक हो, श्रम प्रधान तकनीका को अपनाना होगा। समस्या केवल यही नही है कि स्वचालन (आटोमेशन) लागू होन के बाद फालतू बचे श्रमिको को उनत तकनीकी के द्वारा खपाया जाए, अपितु समस्या उन लोगो की है जिन्हे कतई कोई काम मिला ही नही है। इस स्थिति मे हम स्वचालन (ऑटोमेशन) को कैसे अपना सकते हैं। फिर स्वचालन (ऑटोमेशन) की साजसज्जा व सामग्री का निर्माण अभी तक भारत मे नही होता और यदि इनका आयात किया गया तो विदेशी मुद्रा का भारी बोझ देश को उठाना होगा। देश मे उत्पादन के अनेक क्षेत्रो मे धन की कमी है। उदाहरण के लिये धन की कमी के कारण ही देश मे मूलभूत वस्तुओ का उत्पादन तथा जीवन के लिये आवश्यक सुविधाओ का जुटाना सभव नही हो रहा है। उधर स्वचालन (ऑटोमेशन) की सामाजिक लागत तो वैसे भी बहुत अधिक है। उन्नत देशो तक मे आज फुरसत (leisure) के समय का उपयोग रचनात्मक एव उत्पादक क्रियाओ मे न होकर अपराधात्मक गतिविधियो मे ही अधिक हो रहा है। इस प्रकार उद्योग-विद्या सम्बन्धी एव तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप नैतिक मूल्यो एव मानवता के ह्रास की समस्या उत्पन्न हुई है। अत जैसा कि विवेकीकरण के अन्तर्गत बताया जा चुका है, तथाकथित आर्थिक प्रगति की वेदी पर मानव-कल्याण (humanwelfare) की बलि नही चढाई जानी चाहिये।

●

१५ औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी

WAGES OF INDUSTRIAL WORKERS

परिभाषा : असल तथा नकद मजदूरी
(Definition Real and Nominal Wages)

मजदूरी का अभिप्राय उत्पादन म श्रम-सेवा के मेहनताने से है। यह मालिकों द्वारा श्रमिकों को उनके उत्पादन के प्रयत्नों के लिए दी गई अदायगी है। यदि अबन्ध नीति (Laissez faire) के दृष्टिकोण से देखा जाय तो मजदूरी की परिभाषा मे मालिकों और श्रमिकों की परस्पर निश्चित या निर्धारित संविदा (Contract) आय को लिया जा सकता है। श्रमिक कुछ धन अथवा वस्तुओं अथवा दोनों के लिए अपना श्रम बेचता है। मजदूरी की एक व्यापक परिभाषा यह भी हो सकती है कि मजदूरी का अर्थ धन के रूप मे दिए गये ऐसे मेहनताने से है जो रोजगार के संविदा की शर्तों के अनुसार रोजगार में लगे व्यक्ति को दिया जाता है या ऐसा रोजगार में किए गए कार्य के लिये दिया जाता है। अतः मजदूरी मे यात्रा-भत्ता, प्रोविडेन्ट फण्ड मे मालिकों का अशदान, अवकाशप्राप्ति धन अथवा आवास-भत्ता या मालिकों द्वारा श्रमिकों का दी जाने वाली कल्याण सेवाएँ सम्मिलित नहीं होती।

किन्तु इस दृष्टिकोण से नकद मजदूरी (nominal wages) और असफल मजदूरी (real wages) मे अन्तर किया जाता है। मालिक श्रमिकों को प्रति सप्ताह, प्रति माह या कार्य की मात्रा के अनुसार कुछ निश्चित धन देते हैं। यह राशि नकद अथवा मुद्रा मजदूरी को प्रकट करती है। किन्तु केवल नकद मजदूरी हमे श्रमिक की आर्थिक स्थिति का उचित परिचय नहीं देती। जीवन स्तर का निश्चित करने वाली असल मजदूरी को ज्ञात करने के लिए हमे मुद्रा की क्रय शक्ति का ध्यान रखना होगा और अतिरिक्त प्राप्ति, जैसे—नि शुल्क आवास, सस्ता अनाज, अतिरिक्त आय के अवसर, बोनस की अदायगी, समयोपरि कार्य के लिए अदायगी तथा कार्य करने और रोज-की दशाओ आदि को भी दृष्टि मे रखना होगा।

मजदूरी अदायगी की पद्धतियाँ (Methods of Wage Payment)
प्रेरणात्मक व्यवस्थायें (Incentive systems)

मजदूरी अदायगी की विभिन्न पद्धतियाँ हैं। कार्य के अनुसार, अथवा श्रमिक के रोजगार की समय अवधि के अनुसार दी जा सकती है। कार्य के अनुसार दी जाने वाली मजदूरी "कार्यानुसार मजदूरी" (उजरत) (Piece Wages) तथा समय की अवधि के अनुसार दी जाने वाली मजदूरी "समयानुसार मजदूरी"

का स्तर कभी-कभी इतना ऊँचा निश्चित कर दिया जाता है कि उसे प्राप्त करने में श्रमिक को कठिनाई होती है।

एक अन्य तरीका "रोवन बढ़ोती प्रणाली" (Rowan Premium System) है इसके अन्तर्गत श्रमिको को समयानुसार कम से कम मजदूरी का आश्वासन दिया जाता है। इसके पश्चात् प्रत्येक कार्य को पूर्ण करने का एक मानक समय निश्चित किया जाता है और यदि वह इसी निश्चित समय से कम मे कार्य पूर्ण कर ले तो पूर्ण समय एवं बचाये गये समय म समानुपात के अनुसार बोनस मिलता है। उदाहरणत, यदि कार्य १० घण्टे मे करना है और कार्य ६ घण्टे म पूरा हो जाता है तो बचा हुआ समय ४ घण्टे है अर्थात् निश्चित समय के २/५वें भाग के आधार पर बोनस दिया जायेगा। इस प्रकार यदि समय की दर १० रुपये प्रति घण्टा है तब, "रोवन प्रणाली" के अनुसार बढ़ोती $= \frac{\text{बचाया हुआ समय}}{\text{निश्चित समय}} \times$ लिया गया समय $\times$ दर

अर्थात् ४/१० × ६ × १० = १४ रुपये अर्थात् श्रमिक को कुल मिलाकर ६ × १० + २४ = ८४ रुपये मिलेंगे। इस प्रकार इस प्रणाली म हैल्से प्रणाली की अपेक्षा अधिक बोनस प्राप्त होता है। किन्तु रोवन प्रणाली द्वारा अधिक बढ़ोती तभी मिलती है जब बचाया हुआ समय निश्चित समय के ५०% से कम हो। ५०% पर रोवन तथा हैल्से प्रणाली दोनो मे समान बोनस प्राप्त होता है और यदि बचाया हुआ समय निश्चित समय के ५०% से अधिक हो तो रोवन प्रणाली की अपेक्षा हैल्से प्रणाली म बढ़ोती अधिक प्राप्त होती है।

एक अन्य प्रेरणात्मक योजना को जिसे कभी कभी अपनाया जाता है, बारथ प्रणाली (Barth system) का नाम दिया जाता है। ऊपर उल्लेख की गई दोनो प्रणालियो की तरह ही, बारथ प्रणाली भी मानक समय (Standard time) पर आधारित है। बारथ प्रणाली के दो विशिष्ट लक्षण ये हैं: (१) इनमे श्रमिको को न्यूनतम समय की दर की गारन्टी नही दी जाती और (२) मजदूरी गणना के लिये मानक समय को लिये गये समय (time taken) से गुणा किया जाता है और गुणनफल का वर्ग मूल (square root) निकाल कर उसे घण्टेवार दर (hourly rate) से गुणा कर दिया जाता है। इससे यह सूत्र बनता है:

$\sqrt{(\text{मानक समय} \times \text{लिया गया समय})} \times$ घण्टेवार दर।

इस प्रकार, ऊपर के उदाहरणो के अन्तर्गत, श्रमिक की कमाई यह होगी —

$\sqrt{(१० \times ६)} \times$ ६० १० = ६० ७० १०

मजदूरी अदायगी की एक अन्य पद्धति भी है जिसे "नियत कार्य-मजदूरी" (Task Wages) कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को एक नियत कार्य दे दिया जाता है। इस कार्य को उसे एक निश्चित पद्धति के अनुसार तथा एक विशेषज्ञ के सर्वेक्षण म एक निश्चित समय मे पूरा करना होता है। अनुसधान और प्रशिक्षित विशेषज्ञो की सहायता से मानक कार्य निर्धारित कर दिया जाता है अर्थात् निश्चित

समय में श्रमिक द्वारा कितना उत्पादन हो सकता है। विशेषज्ञ जितने समय की अनुमति देता है, यदि उसी समय में कार्य पूरा कर लिया जाता है और निर्धारित स्तर के अनुसार ही होता है तो श्रमिक को अपने दैनिक वेतन के अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ भी दिया जाता है। यह लाभ साधारणतया अनुमोदित समयानुसार वेतन का २०% से ५०% तक होता है। यदि कार्य अनुमोदित समय में पूरा नहीं होता या निर्धारित गुण के स्तर को नहीं पहुँचता तो श्रमिक को केवल उस दिन का वेतन मिलता है। इस पद्धति में यह दोष है कि विवेकशून्य मालिक कार्य के स्तर निर्धारित करने के अपने अधिकार से अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

फिर एक 'टेलर प्रणाली' (Taylor System) भी है जिसके अन्तर्गत प्रथम श्रेणी के श्रमिकों को शीघ्र पदोन्नति दी जाती है, यदि वे अपना कार्य निर्धारित समय से पहले कर लेते है। अत. कभी-कभी तो एक समयानुसार मूल मजदूरी तय कर दी जाती है जिसके साथ-साथ उत्पादन के अनुसार उजरत भी दी जाती है और कभी-कभी अतिरिक्त कार्य के लिये बोनस भी दिया जाता है।

मजदूरी, 'समजित मजदूरी मान' (Sliding Scale System of Wages) की प्रणाली से भी निश्चित की जा सकती है। इसके अन्तर्गत मजदूरी को उत्पादन वस्तुओं के मूल्य, जीवन निर्वाह के व्यय तथा लाभ के अनुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है। मालिक इस प्रणाली को तभी अच्छा समझते हैं जब उत्पादित वस्तु के मूल्य घटते बढते रहते हैं। परन्तु इस प्रणाली में काफी दोष हैं। विभिन्न कारणों से मूल्यों के परिवर्तित होने से गणना करना बहुत कठिन हो जाता है तथा श्रमिक से आशा नहीं की जा सकती कि वह बाजार के जोखिम में भाग लेगा। वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns) के नियम के अन्तर्गत मूल्य गिर सकते है किन्तु लाभ बढ जाते हैं। इसके अतिरिक्त, मालिक तथा श्रमिक अपने लाभ हेतु मूल्य में परिवर्तन लाने का प्रयास कर सकते है। कुछ मालिक अपने कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग तथा सहानुभूति प्राप्त करने के लिये लाभ सहभाजन (Profit Sharing) योजना को अपना लेते हैं। कुछ स्थानों में मजदूरी कानून द्वारा नियमित होती है और कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी जाती है। कभी-कभी 'कार्यकुशलता अनुसार मजदूरी' (Efficiency Wages) की प्रणाली भी लागू की जाती है जिससे श्रमिक की समस्त मजदूरी ही नहीं वरन् मूल मजदूरी भी कार्यकुशलता के अनुसार परिवर्तित होती रहती है, अर्थात् एक व्यक्ति जितना अधिक उत्पादन करता है उसे उतनी ही कार्यानुसार अधिक मजदूरी मिलती है, और जितना कम उत्पादन करता है उतनी ही कम कार्यानुसार मजदूरी मिलती है, अथवा, जैसा टेलर प्रणाली के अन्तर्गत होता है प्रथम श्रेणी के श्रमिकों को शीघ्र पदोन्नतियाँ दी जाती हैं। कार्यकुशलतानुसार मजदूरी मालिकों के लिये लाभप्रद है। यद्यपि मालिकों को अधिक उत्पादन के लिये अधिक मूल्य देना पड़ता है तथापि वृद्धी लागत में बचत हो जाती है। किन्तु इसके अन्तर्गत कभी-कभी औसत योग्यता के श्रमिक को अपने

निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी भी नहीं मिल पाती। अतः कार्यकुशलतानुसार मजदूरी प्रणाली न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन देने के पश्चात् ही अपनायी जानी चाहिए।

मजदूरी देने की यह पद्धतियाँ श्रमिकों की कुल आय, उनकी कार्यकुशलता, राष्ट्रीय लाभांश तथा आर्थिक कल्याण पर प्रभाव डालती हैं। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि श्रमिक जो उत्पादन करता है वह अधिक होगा यदि मजदूरी देने की जो पद्धति लागू की जा रही है वह ऐसी है कि अदायगी व्यक्तिगत उत्पादन के अनुसार ही की जाती है। इसलिए प्रो० पीगू के अनुसार, "राष्ट्रीय लाभांश और उसके द्वारा आर्थिक कल्याण में सभी उन्नति हो सकती है जब तत्काल पारितोषिक को जितना भी सम्भव हो, तत्काल उत्पादन से समजन कर दिया जाय। सामान्यतया प्रभावात्मक रूप से यह तभी हो सकता है जब कार्यानुसार मजदूरी दी जाये जिस पर सामूहिक सौदाकारी द्वारा नियन्त्रण किया जाता हो।"[1] परन्तु यह भी सम्भव है कि कार्यानुसार मजदूरी अदायगी पद्धति के अन्तर्गत जो श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं वह इतनी अधिक मेहनत के द्वारा प्राप्त होता है कि उससे श्रमिक समय से पूर्व ही थक जाते हैं तथा उनकी कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार दीर्घकाल में उत्पादन कम हो जाता है। जब कार्यानुसार मजदूरी अदायगी पद्धति श्रमिकों में प्रथम बार लागू की जाती है तो श्रमिक, क्योंकि इसके वे पहले से अभ्यस्त नहीं होते हैं, कई बार बहुत अधिक कार्य करने का प्रयत्न करते हैं। यह अधिक दिन नहीं चल पाता और अन्त। इसके बुरे परिणाम निकलते हैं। परन्तु प्रो० पीगू का विचार है कि अनुभव से यह पता चलता है कि इस पद्धति में अति क्लान्ति नहीं होती क्योंकि जिन श्रमिकों पर यह पद्धति लागू की जाती है वे अपने आपको कुछ समय में नयी परिस्थितियों के अनुकूल बना लेते हैं। इसके अतिरिक्त जब कार्य अधिक तीव्रता से होता है तो इसका अर्थ प्राय यह होता है कि कार्य अधिक सोच-विचार से, सावधानी से और रुचि से किया जा रहा है और इसका अर्थ यह नहीं होता कि अधिक थकान हो रही है। यदि उचित प्रकार से प्रशिक्षण दिया जाता है तो श्रमिक साधारणतया इस बात का खोजने का प्रयत्न करता है कि कार्य का शीघ्रातिशीघ्र और सबसे कम थकान वाला कौनसा तरीका है। कार्यानुसार मजदूरी दिये जाने पर यह पाया गया है कि उत्पादन समयानुसार मजदूरी देने की अपेक्षा अधिक होता है। इसका मुख्य कारण यह होता है कि कार्यानुसार मजदूरी देने पर कार्य करने के अच्छे साधन अपनाये जाते हैं। यह विशेषकर उन उद्योगों में

1 "The interest of the national dividend, and through that, of economic welfare will be best promoted when immediate reward is adjusted as closely as possible to immediate results and this can, in general, be done most effectively by piece wage scales controlled by collective bargaining."

—Pigou—*Economics of Welfare*

होता है जहाँ हाथ से कार्य किया जाता है। इसलिये प्रो० पीगू के विचार में उनका ऊपरलिखित निष्कर्ष ही ठीक है।

इनके अतिरिक्त, मजदूरी की अन्य भी अनेक प्रेरणात्मक योजनायें हैं जिन्हें अनेक लेखकों ने प्रतिपादित किया है और जिनमें प्रेरणात्मक मजदूरी (incentive wages) की गणना भिन्न-भिन्न तरीकों से की जाती है।[1] अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की एक रिपोर्ट में जिसका शीर्षक "फलानुसार भुगतान" (Payment by Results) था, प्रेरणात्मक योजनाओं को चार मुख्य वर्गों में बाँटा गया है और वह इस प्रकार कि (१) क्या श्रमिकों की कमाई उसी अनुपात में घटती-बढ़ती है जिसमें कि कुल उत्पादन घटता बढ़ता है (जैसा कि सीधी उजरत प्रणाली तथा मानक घण्टा प्रणाली में होता है), (२) श्रमिकों की कमाई कुल उत्पादन के मुकाबले कम अनुपात में घटती-बढ़ती है, (जैसा कि हैल्से, रोवन तथा बारथ प्रणालियों में) किया जाता है); (३) क्या श्रमिकों की कमाई कुल उत्पादन के मुकाबले अधिक अनुपात में घटती बढ़ती है (जैसाकि ऊँची कार्य-दर तथा उच्च मानक घण्टा प्रणालियों में होता है), (४) क्या श्रमिकों की कमाई के घटने बढ़ने का अनुपात उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर बदलता रहता है (जैसा कि टेलर, मैरिक, गेण्ट, एमर्सन तथा आरोही बढ़ोती प्रणालियों में होता है)।

आर० मेरियट ने ब्रिटेन में प्रेरणात्मक भुगतान प्रणालियों के बारे में किये गये अनुसंधानों एवं प्रकट किये गये मतों का गहन अध्ययन किया और कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I. L. O.) द्वारा किये गये वर्गीकरण व्यापक नहीं हैं और इसमें केवल अल्पकालीन भुगतान योजनायें ही सम्मिलित की गई हैं। उसने इन चारों योजनाओं को साप्ताहिक मजदूरी प्रेरणात्मक योजनाओं (Weekly wage incentive systems) का नाम दिया। उसने इन योजनाओं में दो और नये वर्गीकरण जोड़े। ये हैं. (१) दीर्घकालीन सामूहिक प्रणालियाँ (Long-term collective systems) तथा (२) वे प्रणालियाँ जो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन पर निर्भर नहीं होतीं। पहले वर्गीकरण में उसने जिन प्रणालियों को सम्मिलित किया, वे हैं: (क) वे प्रणालियाँ जो मानक उत्पादन, लागत अथवा बिक्री पर आधारित हों) (उदाहरण के लिए, वे योजनायें जिन्हें प्रीस्टमैन, रसन व स्केलन प्रणालियाँ कहा जाता है) और (ख) वे प्रणालियाँ जो लाभों पर आधारित हों (उदाहरण के लिये, लाभ सहभाजन तथा सहसाझेदारी योजनायें)। दूसरे वर्गीकरण में, उसने जिन प्रणालियों को सम्मिलित किया, वे हैं: (क) वे प्रणालियाँ जो व्यक्तिगत मूल्यांकन पर आधारित हों (उदारण के लिये, गुणमापन, उपस्थिति बोनस तथा सेवा अवधि बोनस) तथा (ख) वे प्रणालियाँ जो उत्पादन की पूरक हों (उदाहरण के लिए गुणानुसार बोनस तथा अपव्यय बोनस)।

1 For details reference may be made to "Incentive system—Principles and Practice India" —*Labour Bureau Publication*

प्रेरणात्मक प्रणालियाँ (incentive systems) निश्चितरूप से इस मनो वैज्ञानिक नियम पर आधारित होती हैं कि मानवीय व्यवहार या मानवीय प्रयास मुख्यतः उद्दीपन (stimulas) से प्रभावित होता है। मजदूरी प्रेरणा प्रणाली wage incentive system) का प्रमुख उद्देश्य किसी श्रमिक अथवा श्रमिकों के वर्ग के लिए वित्तीय प्रेरणा प्रस्तुत करना है ताकि वे निर्धारित किस्म, या स्तर का अथवा विशिष्ट मात्रा में माल का उत्पादन करें। अतः यह आवश्यक है कि माल की किस्म अथवा स्तरों को निर्धारित करने के लिये समय-अध्ययन (time study) और गत्यध्ययन (motion study) पर आधारित यथार्थ अथवा सही विधियाँ लागू की जायें। किसी भी मजदूरी-प्रेरणा योजना की सफलता मुख्य रूप से उन उचित तथा यथार्थ अथवा परिशुद्ध विधियों पर ही आधारित होती है जिनके द्वारा माल की विशिष्ट किस्मों अथवा स्तरों का निर्धारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त, इस सम्बन्ध फलानुसार भुगतान की पद्धतियाँ भी अपनाई जानी चाहिये और इन पद्धतियों को श्रमिकों की पूर्ण सहमति से और अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के वातावरण में लागू किया जाना चाहिये। वित्तीय प्रेरणाओं के अलावा, समुचित और गैर-वित्तीय प्रेरणाओं की भी व्यवस्था होनी चाहिये क्योंकि केवल वित्तीय प्रेरणाओं के सहारे ही समाजवादी ढांचे की समाज की स्थापना नहीं की जा सकती। इसके लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों व मालिकों में समाज सेवा की भावना हो और समाज ऐसी सेवाओं की कद्र करे। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह निर्धारित की गई थी कि फलानुसार (payment by results) की योजनायें लागू की जानी चाहिए। आयोजना में इस बात पर जोर दिया गया था कि न्यूनतम मजदूरी से अधिक मात्रा की कमाई को अनिवार्य रूप से उत्पादन अथवा परिणामों से ही सम्बन्धित कर दिया जाना चाहिए। सन् १९५५ तथा १९६५ में श्रम मन्त्रियों के जो सम्मेलन हुए थे उनमें भी यह सिफारिश की गई थी परिणाम अथवा फल के अनुसार भुगतान के सिद्धान्त को लागू किया जाना चाहिये। सम्मेलन में कहा गया था कि बोनस के भुगतान तक के मामले में भी प्रयास ये होने चाहिये कि उसका भुगतान लाभ पर आधारित न होकर कार्य-सम्पादन पर आधारित होना चाहिये। प्रेरणात्मक प्रणालियाँ न केवल श्रमिक की आय में वृद्धि करती हैं, जो कि भारत में बहुत थोड़ी है, बल्कि श्रमिकों को इस बात के लिए भी प्रोत्साहित करती है कि वे उद्योगविद्या सम्बन्धी उन्नत तरीकों को अपनायें। इससे औद्योगिक इकाई की कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है, लागत घटती है और उससे कीमतें इस प्रकार प्रभावित होती हैं कि उनसे समाज लाभान्वित हो। यही कारण है कि आयोजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में ऐसी योजनाओं को भारी महत्व दिया जाता है।

भारत की अनेक औद्योगिक इकाइयों में मजदूरी के वितरण की प्रेरणात्मक योजनाएं (Incentive schemes) लागू की गई हैं। उदाहरण के लिए लोहा व इस्पात, ऐलुमिनियम, इंजीनियरिंग, सीमेन्ट, कागज, सिगरेट, वस्त्र, रसायन व रसायन

उत्पाद, खनन तथा कांच उद्योगों में। इन योजनाओं की कार्य प्रणाली के मूल्यांकन के लिये भी अनेक अध्ययन किये गये है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग का सुझाव है कि प्रेरणात्मक योजनाओं में पर्यवेक्षक कर्मचारियों सहित अधिक से अधिक कर्मचारियों को सम्मिलित किया जाना चाहिये। परन्तु ये योजनायें ऐसी चुनीदा उद्योगों तथा व्यवसायों में ही लागू की जानी चाहियें जिनमें कि अध्ययन दलों की सहायता से सर्वसम्मत आधार पर सम्बन्धित श्रमिकों अथवा श्रमिकों के वर्ग के उत्पादन का माप करना सम्भव हो सके और जिनमें यह भी सम्भव हो सके कि उत्पादन की किस्म या कोटि पर काफी मात्रा में नियन्त्रण बनाये रखना सम्भव हो सकेगा। ये योजनायें इतनी सरल भी होनी चाहियें कि श्रमिक उनके कार्यान्वयन में परिणामों को अच्छी प्रकार समझ सकें। उत्पादन का सगठन भी इस प्रकार नही किया जाना चाहिये कि एक दिन तो श्रमिक को प्रेरणात्मक मजदूरी मिले और अगले दिन बेरोजगारी का सामना करना पड़े। इसके अतिरिक्त, कच्चे माल व मशीनों के पुर्जों की अनुपलब्धता, परिवहन की कठिनाइयों तथा तैयार माल के संचय से विरुद्ध भी यथेष्ट सुरक्षात्मक व्यवस्थायें होनी चाहियें।

मजदूरी के सिद्धान्त (Theories of Wages)

कदाचित् भारत में मजदूरी की समस्याओं का विवेचन करने से पूर्व मजदूरी के सिद्धान्तों का भी उल्लेख करना असंगत नहीं होगा। हम मजदूरी की समस्याओं को दो भागों में बांट सकते हैं, अर्थात् सामान्य मजदूरी (General Wages) की समस्या तथा सापेक्ष मजदूरी (Relative Wages) की समस्या। सामान्य मजदूरी की समस्या यह है कि श्रमिकों को राष्ट्रीय लाभांश में अपना भाग किस आधार पर मिलता है। सापेक्ष मजदूरी की समस्या यह है कि विभिन्न स्थानों तथा विभिन्न समयों पर एक श्रेणी तथा दूसरी श्रेणी के श्रमिकों में मजदूरी की दर किस आधार पर निर्धारित होती है। सामान्य मजदूरी को निर्धारित करने के विभिन्न तर्कों को "मजदूरी के सिद्धान्त" कहते है। हम संक्षेप में ही इन सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे क्योंकि यह "अर्थशास्त्र के सिद्धान्त" का विषय है जिसमें अन्तर्गत इसका विस्तार से अध्ययन करना चाहिये।

मजदूरी के जीवन-निर्वाह सिद्धान्त (Subsistence Theory of Wages)

मजदूरी को निश्चित करने के लिये एक सिद्धान्त "मजदूरी का निर्वाह सिद्धान्त" है जिसका आविर्भाव (Origin) फिजीयोक्रेटिक (Physiocratic) अर्थात् प्रकृतिवादी विचारधारा के फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों द्वारा हुआ और जो १८वीं शताब्दी में साधारणतः मान्य था। जर्मनी का अर्थशास्त्री 'लासाले' (Lassalle) इसे 'मजदूरी का लौह सिद्धान्त' (Iron Law of Wages) कहता था। कार्लमार्क्स ने अपने 'शोषण सिद्धान्त' का आधार भी इस सिद्धान्त को बनाया था। रिकार्डो का नाम भी इस सिद्धान्त से सम्बन्धित है यद्यपि वह इससे पूर्णतया सहमत नहीं

है। जे० एस० मिल ने स्वयं दूसरे संस्करण में इस सिद्धान्त में संशोधन किया था। इस सिद्धान्त की सबसे अधिक आलोचना इस बात पर की गई है कि मजदूरी निधि केवल अल्पकालीन अवधि को छोड़कर निश्चित और पूर्व निर्धारित नहीं होती। निधि का विचार ही अवैज्ञानिक है। राष्ट्रीय लाभांश निधि न होकर एक बहाव है, तथा मजदूरी की अदायगी किसी ऐसी निधि में से नहीं होती जो मजदूरी भुगतान के लिये अलग रखी हो, वरन् राष्ट्रीय लाभांश से की जाती है। यह सिद्धान्त विभिन्न व्यवसायों में विभिन्न मजदूरी के अन्तर को भी स्पष्ट नहीं करता। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त श्रमिकों की एकरूपता मान लेता है, जो वास्तव में नहीं होती है, वास्तविक जीवन में मजदूरी श्रमिक संघों की कार्यवाही के फलस्वरूप भी बढ़ जाती है और यह कहना असत्य है कि यदि एक उद्योग के श्रमिकों की मजदूरी बढ़ा दी जाय तो अन्य उद्योगों के श्रमिकों को हानि होगी। मजदूरियाँ सदा पूँजी की लागत पर ही नहीं बढ़ती। उदाहरण के लिये, तेजी के काल में मजदूरी तथा पूँजी दोनों में ही वृद्धि होती है। फिर पूँजी भी कोई ऐसी भावुक (sensitive) नहीं होती कि मजदूरी में होने वाली किसी भी वृद्धि के कारण वह अन्य उद्योगों में जाने लगे। इस सिद्धान्त का विवेचन अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों, जैसे—टौसिग, कीन्स आदि ने भी किया है यद्यपि यह वास्तविक जीवन में मजदूरी निर्धारित करने वाला सिद्धान्त नहीं माना जा सकता।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
(Marginal Productivity Theory of Wages)

मजदूरी का अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त "मजदूरी की सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त" है। इस सिद्धान्तानुसार मालिक के लिये श्रम की एक इकाई की जो सीमान्त उत्पादकता होती है उसी के अनुसार मजदूरी निश्चित हो जाती है। एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में मजदूरी ऐसे श्रमिक के निवल (Net) उत्पादन के बराबर होती है जिसे श्रमिक का रोजगार सीमान्त कहा जाता है। निवल उत्पादन से अर्थ कुल उत्पादन के मूल्य में उस अतिरिक्त निवल योग से है जो किसी एक उपादान को अतिरिक्त रूप से लगाने में होती है, अर्थात् यह सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। अन्य शब्दों में, यदि हम यह मान लें कि वस्तुओं की पूर्ति तथा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य स्थिर है तो श्रमिक की इकाई जितनी अधिक संख्या में एक उद्योग में लगाई जायेगी उतनी ही उन इकाइयों द्वारा घटती दर से उत्पादन बढ़ेगा। मालिक उस समय तक श्रमिक की इकाई बढ़ाता जायगा जब तक श्रमिक द्वारा निवल उत्पादन मजदूरी की दर से अधिक है। किन्तु एक स्थिति ऐसी भी आयेगी जब श्रमिक की इकाई को रोजगार में लगाये जाने से जो उत्पादन में वृद्धि होगी वह श्रमिक को दी गयी मजदूरी के बराबर होगी। श्रमिक की इस इकाई को सीमान्त श्रमिक कहा जायेगा तथा प्रत्येक अन्य श्रमिक की मजदूरी की दर इस श्रमिक को दी गई मजदूरी की दर पर निर्भर होगी। सरल शब्दों में, मालिक उस समय तक

श्रमिकों को रोजगार देता रहेगा जब तक श्रमिको को दी गई मजदूरी उत्पादित वस्तुओ के मूल्य से कम रहती है । यदि मजदूरी सीमान्त निबल उत्पादन से अधिक है तो मालिक श्रमिको के रोजगार मे कमी कर देगा और यदि मजदूरी सीमान्त निबल उत्पादन से कम है तो वह अधिक श्रमिको को रोजगार देकर अपने लाभ को बढाएगा । अन्य शब्दो मे, मालिक श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी उसको नही देगा । यह भी नही समझना चाहिये कि सीमान्त श्रमिक न्यूनतम कार्य-कुशलता का श्रमिक होता है वरन् वह भी साधारण कार्यकुशलता का श्रमिक होता है । वह इस अर्थ मे सीमान्त है कि वर्तमान मूल्य तथा मजदूरी को देखते हुये उसको रोजगार देने के पश्चात् मालिक के लिये श्रम की पूर्ति पूर्ण हो जाती है ।

यह सिद्धान्त भी कई आधारो पर आलोचित हुआ है । श्रमिको की पूर्ति पर जिन बातो का प्रभाव पडता है यह उन पर विचार नही करता । मजदूरी केवल एक उपादान के लिये दिया गया मूल्य ही नही है वरन् वह एक श्रमिक की आय भी है तथा इसका प्रभाव श्रमिक की कार्यकुशलता पर पडता है । मजदूरी केवल श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही नही होनी चाहिये बल्कि उसके जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिये यथेष्ट होनी चाहिये । यदि मजदूरी श्रमिको के जीवन-स्तर की दृष्टि से अधिक नही है तो या तो जीवन-स्तर गिर जायेगा अथवा उनकी कार्यकुशलता घट जायेगी या जन्म-दर मे कमी हो जायेगी । ऐसी परिस्थिति मे श्रम की पूर्ति कम होगी और मजदूरी बढ जायेगी । इसके अतिरिक्त, यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की परिस्थितियाँ मान लेता है यद्यपि वास्तविक जीवन मे कई बार श्रमिक परस्पर संगठित होकर श्रमिक संघो के द्वारा श्रम की पूर्ति पर नियन्त्रण कर अपनी मजदूरी बढ़वा लेते है । वास्तविक जीवन मे मजदूरी को निश्चित करने मे मानवीय धारणायें भी कार्य करती हैं । इसके अतिरिक्त, सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि वह अनुपात जिसमे उत्पादन के विभिन्न उपादान रोजगार पर लगाये जाते हैं स्वतन्त्रतापूर्वक बदले जा सकते हैं । अत यदि फर्म मे अचल पूंजी लगी हो तो यह सिद्धान्त लागू नही होगा यद्यपि लम्बे समय मे यह बात सम्भव नही है । यह सिद्धान्त यह भी मान लेता है कि किसी एक उपादान मे परिवर्तन किया जा सकता है जबकि अन्य उपादान एक से रहेंगे, परन्तु वास्तविक जीवन मे ऐसा नहीं होता क्योंकि श्रमिक की एक इकाई मे परिवर्तन करने के साथ ही अन्य उपादानो को भी घटाना-बढाना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त, यह सिद्धान्त श्रम की इकाइयो (श्रमिको) की कार्यकुशलता समान मान लेता है क्योंकि यदि श्रमिक एक जैसे नही होते तो श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता भी नही बतायी जा सकती । परन्तु एक अर्थ मे एक ही व्यापार मे लगे विभिन्न कार्यकुशलता के श्रमिक एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी होते है । फिर यह पूर्व धारणा सर्वथा सत्य नही है कि प्रत्येक औद्योगिक इकाई अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये कार्य करती है ।

इस प्रकार, इस सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त के विरुद्ध विभिन्न आपत्तियाँ

सरकार के विधान तथा सरकार का हस्तक्षेप, आर्थिक विकास की योजना, राष्ट्रीय आय, जीवन-निर्वाह लागत, उद्योग की भुगतान क्षमता, सामाजिक न्याय की आवश्यकतायें, मालिकों का उपभोग और निवेश, तथा उनके एकाधिकार की सीमा, आदि-आदि अब सभी देशों में मजदूरी नीति-निर्धारण पर प्रभाव डाल रही हैं। भारत जैसे देश में, जहाँ आर्थिक विकास हो रहा है, एक ठोस और उचित मजदूरी नीति के निर्धारण की एक गम्भीर समस्या है। अब औद्योगिक अधिकरणों और मजदूरी बोर्डों द्वारा उन सिद्धान्तों को मजदूरी निर्धारण में अपनाया जाता है, जो उचित मजदूरी समिति ने अपनी रिपोर्ट में दिये हैं। न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के लिये भी कुछ आदर्श सिद्धान्त (Norms) बनाये गये हैं। इन सबका उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया गया है।

भारत में मजदूरी समस्या का महत्व
(Importance of wages Problem in India)

मजदूरी की समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि समस्त देशों के विवेकशील व्यक्तियों का ध्यान सदैव इसकी ओर आकर्षित हुआ है। यह समस्या भारत में वर्तमान समय में अधिक जटिल तथा गूढ़ हो गई है और इसका शीघ्र समाधान होना चाहिये। इस सत्य को भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि मजदूरी वह धुरी है जिस पर अधिकतम श्रम समस्यायें घूमती हैं। औद्योगिक संघर्षों का मुख्य कारण मजदूरी ही है। यह श्रमिक की आय का मुख्य स्रोत है। उसका तथा उसके परिवार का जीवन-निर्वाह उसकी प्राप्त मजदूरी पर निर्भर करता है। अन्य स्रोतों से कोई आय यदि होती भी है तो अत्यन्त सीमित होती है। अतः मजदूरी श्रमिक के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। श्रमिक का कल्याण तथा कार्यकुशलता उसकी आय की राशि पर निर्भर करती है। अधिक आय का तात्पर्य यह होता है कि श्रमिक अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। अगर खेतीहर श्रमिक को भी ले लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि जनसंख्या का अधिकांश भाग श्रमिकों का है। अतः समाज का कल्याण श्रमिक के कल्याण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यदि बेरोजगारी और अर्द्ध-रोजगारी देश में आर्थिक विपत्ति की ओर संकेत करती हैं तो मजदूरी और आय इस बात की सूचक है कि जो जनसंख्या कार्य में लगी हुई है उसकी आर्थिक समृद्धि कितनी है। यही मजदूरी की समस्या का सबसे अधिक महत्व है।

यह भी उल्लेखनीय है कि उस समय मजदूरी की समस्या इतनी गम्भीर नहीं थी जब अधिकांश श्रमिक ग्रामों से कृषि ऋतु के अतिरिक्त खाली समय में अपनी आय बढ़ाने औद्योगिक क्षेत्रों में आ जाते थे और कम मजदूरी स्वीकार कर लेते थे। अधिकांश श्रमिक अपने परिवार को ग्राम में ही छोड़ आते थे जहाँ इनका निर्वाह कृषि-धन्धे से होता था। किन्तु वर्तमान समय में भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने से कृषि-धन्धा इतना लाभप्रद नहीं रहा है और औद्योगिक श्रमिक, जो

अब तक स्थायी नहीं थे अधिकाधिक स्थायी होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था भी द्रुत गति से टूटती जा रही है तथा अब श्रमिक अधिकतर अपनी ही आय पर निर्भर है। अतः मजदूरी की समस्या और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।

इसके अतिरिक्त श्रमिक साधारणतया अज्ञानी तथा अशिक्षित होते हैं और अधिकांश अपने अधिकार तथा कर्त्तव्य समझने से असमर्थ होते हैं। श्रम की निर्बलताओं के कारण मालिकों की ओर से श्रमिकों को सौदाकारी शक्ति कम होती है। श्रमिकों का संगठन अभी भी बहुत दुर्बल है। इसका परिणाम यह है कि मालिकों द्वारा श्रमिकों का सरलता से शोषण होता है तथा उनको अल्प मात्र मजदूरी दी जाती है। अतः मानवी दृष्टिकोण से भी मजदूरी की समस्या का शीघ्र समाधान आवश्यक है। सरकार के लिये भी मजदूरी समस्या महत्वपूर्ण है क्योंकि यह देश के समस्त वर्गों के लिये न्याय का मापदण्ड है। मालिकों के दृष्टिकोण से भी मजदूरी महत्वपूर्ण है क्योंकि मजदूरी उत्पादन मूल्य का एक मुख्य अवयव (Component) है। मिल मालिक कच्चे माल मशीनों तथा ईंधन की लागत में और यातायात व्यय में इच्छानुसार कमी नहीं कर सकता। इनका नियंत्रण मुख्यतः बाह्य शक्तियों द्वारा होता है जो उसके नियंत्रण से बाहर होती हैं। मिल मालिक यह अनुभव करता है कि मजदूरी का बिल ही उसके नियंत्रण में होता है, अतः जब कभी भी मितव्ययिता की आवश्यकता होती है तभी मजदूरी की दरों में ही हेर-फेर करने का आश्रय लिया जाता है। अतः मजदूरी की समस्या मालिकों तथा श्रमिकों के बीच संघर्ष का मुख्य कारण बन जाती है।

मजदूरी की समस्या का महत्व इस तथ्य में भी है कि औद्योगिक कारखानों में अगणित मजदूरी की दर एवं अवैज्ञानिक अन्तर पाये जाते हैं तथा विभिन्न मजदूरी की दरों में अन्तर निर्धारित करने हेतु किसी भी योजना का अभाव है। प्रत्येक कारखाने ने स्वयं कार्य का विभाजन कर लिया है और विभिन्न श्रेणियां बना ली हैं। इन्होंने इन श्रेणियों की शब्दावली का भी स्वयं निर्धारण किया है। विभिन्न उद्योगों में विभिन्न विनिर्माण प्रक्रियायें (Manufacturing Processes) हैं तथा विभिन्न प्रकार की मशीनें प्रयोग में लाई जाती हैं। इन बातों ने मजदूरी के मानकीकरण (Standardisation) की समस्या को अधिक जटिल कर दिया है। ये अन्तर एक उद्योग से दूसरे उद्योग में यहां तक कि एक कारखाने से दूसरे कारखाने में भी श्रमिक प्रवासिता का कारण हो जाते हैं और कभी कभी ऐसे अन्तर औद्योगिक अशान्ति और झगड़ा का कारण बन जाते हैं क्योंकि कम मजदूरी देने वाले उद्योगों के श्रमिक अधिक मजदूरी मांगते हैं जो अन्य उद्योगों में पाई जाती हैं। वर्तमान समय में श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी दिलाना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मालिकों में श्रमिक का शोषण करने की प्रवृत्ति अधिक है। अतः उचित मजदूरी नीति निर्धारित करने में अनेक समस्याओं का उदाहरणतया जीवन [illegible] दर परिवार का विस्तार (

उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रान्त मे ४३४ रुपये, मद्रास मे ३०५ रुपये, बम्बई में ·६५ रुपये, बगाल मे १६५ रुपये, मध्य प्रदेश मे १८७ रुपये, उत्तर प्रदेश मे १२६ रुपये, एवं असम मे ६३ रुपये थी। रॉयल श्रम आयोग ने श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मामलो के आधार पर मजदूरी के आँकडे एकत्रित किये थे। इसके अनुसार भी विभिन्न प्रान्तो मे कम मजदूरी दी जाती थी। आयोग ने यह भी बताया कि जहाँ तक अकुशल श्रमिकों का सम्बन्ध है वे औसत सख्या के परिवार का पालन तब तक नहीं कर सकते जब तक परिवार मे एक से अधिक मजदूरी कमाने वाले न हो।

इस प्रकार, युद्ध से पहले मजदूरी बहुत कम थी और यद्यपि युद्ध काल में तथा उसके पश्चात् मजदूरी स्तर में अधिकतर वृद्धि हुई है किन्तु मूल्य वृद्धि को विचार मे रखते हुए यह वृद्धि अधिक प्रतीत नहीं होती। श्री वी० वी० गिरि ने भी अपनी अंग्रेजी की पुस्तक "भारतीय उद्योग की श्रम समस्यायें" मे इगित किया है, "यद्यपि औद्योगिक अधिकरणो एव विचारकों के प्रयत्नो के फलस्वरूप तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम क लागू होने के पश्चात बहुत से उद्योगो में गत वर्षो मे मजदूरी की दर मे वृद्धि हुई है तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज भी श्रमिकों की अधिक सख्या केवल निर्वाहमात्र मजदूरी प्राप्त कर रही है और कई स्थानों पर असल मजदूरी या तो वैसी ही है जैसी युद्ध से पूर्व थी या कहीं-कहीं उससे भी कम है। असल मजदूरी के सामान्य स्तर को ऊँचा करने हेतु, जहाँ कहीं मजदूरी अब भी कम है और श्रमिक तथा उसके परिवार का निर्वाह नहीं हो पाता वहाँ मजदूरी बढाने का सगठित रूप से प्रयास किया जाना चाहिए।"

फैक्टरी उद्योगों में मजदूरी एवं आय[1]

(Wages and Earnings in Factory Industries)

श्रमिक की समस्त आय मूल मजदूरी, महँगाई भत्ता तथा बोनस को मिला कर होती है। महँगाई भत्ता समान नहीं मिलता क्योंकि इसका सम्बन्ध विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों के निर्वाह लागत सूचकांकों से है। इसी प्रकार बोनस समान नहीं है क्योंकि यह प्रत्येक उद्योग द्वारा घोषित लाभ पर निर्भर करता है। मूल मजदूरी की दरें विभिन्न विचारकों तथा औद्योगिक अधिकरणों के पचाट (Awards) द्वारा निश्चित की गई हैं तथा न्यूनतम मजदूरी की दर १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित की गई है। त्रिदलीय मजदूरी बोर्डों की स्थापना भी कुछ उद्योगों के लिये की गई है जिससे मालिक व मजदूर स्वय मिलकर मजदूरी निर्धारित कर सकें। कई उद्योगो के सम्बन्ध में इन मजदूरी बोर्डों की रिपोर्ट

1 For details, see the Indian Labour Year Books, Labour Journals and the Indian Labour Statistics.

प्रकाशित भी हो चुकी हैं और उनकी सिफारिशों को लागू भी किया जा चुका है। विभिन्न केन्द्रों में उद्योगों की कई इकाइयों में वार्षिक लाभ बोनस देने की पद्धति भी प्रचलित है। यह बोनस उद्योग के लाभ और श्रमिकों की मूल मजदूरी के आधार पर अनुमानित किया जाता है, किन्तु इसको देने की कुछ शर्तें हैं, उदाहरणतया श्रमिक की उपस्थिति, उसका गैर कानूनी हड़तालों में भाग न लेना आदि। बोनस के भुगतान के सम्बन्ध में अनेक समझौते तथा निर्णय होते रहे हैं। आजकल इसकी अदायगी बोनस भुगतान अधिनियम १९६५ के अन्तर्गत की जाती है। बोनस की समस्या का उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया गया है।

निम्नलिखित तालिका के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों व संघ-शासित क्षेत्रों में विनिर्माण उद्योगों में लगे और ४०० रु० प्रतिमास से कम पाने वाले श्रमिकों की औसत वार्षिक आय दिखाई है :—

	१९७३			१९७४		
	औसत दैनिक श्रमिक (हजारों में)	कुल मजदूरी बिल (हजार रु० में)	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय (रु०)	औसत दैनिक श्रमिक (हजारों में)	कुल मजदूरी बिल (हजार रु० में)	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय (रु०)
१	२	३	४	५	६	७
राज्य —						
आन्ध्र प्रदेश	१८४	३,४५,६४१	१,८८१	१३९	३,५९,६७३	२,६०३
असम	१६	३८,०७८	२,४४९	१६	३८,२५२	२,४५७
बिहार	१६८	४,२६,४६६	२,५३९	१३६	२,९४,९८३	२,१७६
गुजरात	३४६	११,७४,५०६	३,३९३	२०७	५,५३,३४१	२,६७०
हरियाणा	६४	१,९२,९१८	३,०१३	७२	२,४८,९१९	३,४६६
हिमाचल प्रदेश	६	१६,४८३	२,८४९	४	१३,५०३	३,३४३
जम्मू व कश्मीर	६	१३,००७	२,२८६	८	२१,१९८	२,७८५

१	२	३	४	५	६	७
केरल	३८	१,०५,८५४	२,७८८	३०	८६,७४८	२,९५७
मध्य प्रदेश	७०	२ २३,२६९	३,७१५	७६	२,९६,८६१	३,८९२
महाराष्ट्र	६७६	२३,३६,६८०	३,४६१	५०१	१६,८,१५२६	३.३५३
कर्नाटक	१३८	३ ९६,८१२	२,८७७	१११	३,३३.३९२	२,७४६
उड़ीसा	१७	५७,६७१	३.३२३	१६	६३ ३२६	३,३०३
पंजाब	६७	१,६४,७०७	२,४६७	६८	१.७५.९३४	२,५७७
राजस्थान	५४	१,७३,४८५	३ २२६	५४	१,७३,४८५	३,२२६
तमिलनाडु	२८१	७.९४,०११	२ ८२४	२९१	८,०२,५१४	२,७५६
त्रिपुरा	—	—१,१४६	२,४२०	१	२.१४४	२.८२४
उत्तर प्रदेश	२३३	६.६८,९५४	२,८६७	२१४	६,६०,४७६	३,०९१
पश्चिमी बंगाल	५२२	१९,१०,४२६	३,६५७	४१३	१५,९३,४३६	३,८५६
संघशासित क्षेत्र—						
अण्डमान निकोबार द्वी० स०	१	२,५३७	२,१२६	११	३४,५२२	३,२६२
दिल्ली	७५	२,४१,०२४	३,२२६	६०	१,९७,७७२	३,२७६
गोआ	५	१४,६०१	२,९८८	४	१४,४५५	३,२१३
पाण्डेचेरी	१०	१४ ६७७	३,४६२	१०	३३,८६७	३,३७४
योग	२,९७७	९३,६५,९३०	३,१३६	२,४५४	७६,८३,३८२	३,१३?

निम्नलिखित तालिका मे विनिर्माण उद्योगो मे लगे और ४०० रु० प्रति माह से कम पाने वाले श्रमिकों की विभिन्न वर्षों की औसत वार्षिक आय दिखाई गई है—

	१९६१	१९६६	१९६८	१९७२	१९७५
१ श्रमिको की सख्या (हजारो मे)	२,३८९	२,६२२	२ ८४८	३,१६१	२,१७०
२ कुल मजदूरी बिल (लाख रु० मे)	६६ ८००	६१,७२२	७३ ७६३	९४,८२१	६८,८२०
३ औसत वार्षिक आय (रु० मे)	१,५४०	२,१२२	२,५९१	३,०००	३,१९१
४ द्रव्य आय का सूचकाक (१९६१=१००)	१००	१३६	१७१	६६६	२०५
५ असल आय का सूचकाक (१९६१=१००)	१००	९५	१०१	१०३	५७ .*

सूती वस्त्र मिलों मे सबसे कम वेतन पाने वाले कर्मचारी-वर्ग की आय अगस्त १९८० मे विभिन्न स्थानो पर (रुपयो मे) निम्न प्रकार थी अहमदाबाद ५२६.०५, बगलौर ४१४.९९ बडोदा ५००.०६, बम्बई ५७७.१४, कोयम्बटूर व मद्रास ५११.१३, दिल्ली ५१७.७२, इन्दौर ४७९.४४, कानपुर ५३६.०६, नागपुर ४२१.२६, शोलापुर ४६०.४६, पश्चिमी बगाल ५२९.४५।

* श्रम ब्यूरो के अधिकारियो के सर्वेक्षण के अनुसार (Indian Labour Statistics 1977)

निम्न तालिका में ४०० रु० प्रति माह से कम पाने वाले कर्मचारियों की औसत वार्षिक आय दिखाई गई है।—

वर्ष	प्रति व्यक्ति द्रव्य आय		प्रति व्यक्ति द्रव्य आय का सूचकांक	
	चालू मूल्यों के आधार पर	१९६० के मूल्यों के आधार पर	चालू मूल्यों के आधार पर	स्थिर मूल्यों के आधार पर
१	२	३	४	५
१९६०	१५१७	१४५९	१०० ०	१००.०
१९६१	१५४०	१४८१	१०१ ५	१०१ ५
१९६२	१६०६	१५०१	१०५ ९	१०२.९
१९६३	१६६१	१५१०	१०९ ५	१०३ ५
१९६४	१७४५	१३९६	११५ ०	९५.७
१९६५	१९५५	१४२७	१२८ ९	९७.८
१९६६	२११२	१३९९	१३९ २	९५ ९
१९६७	२२७४	१३२२	१४९ ९	९० ६
१९६८	२४७३	१४१४	१६३.०	९६.८
१९६९	२५८८	१४०५	१७०.६	९६.३
१९७०	२७२६ .	१४३५	१७९.७	९८ ३
१९७१	२८५२	१४१२	१८०.०	९६.८
१९७२	३०००	१४८५	१९७.८	१०१.८

१	२	३	४	५
१९७३	३१३६	१३२९	२०६७	९११
१९७४	३११९	१०२६	२०५.६	७०३
१९७५	३१५८	९८४	२०८.२	६७४
१९७६ (अस्थायी)	५२०३	—	—	—
१९७७ (अस्थायी)	५६१४	—	—	—

१९७६ व १९७७ के अस्थायी आंकड़े १,००० रु० प्रति मास से कम पाने वाले कर्मचारियों से सम्बन्धित हैं।

स्रोत : श्रम ब्यूरो, सितम्बर १९८० के 'इण्डियन लेबर जरनल' में धोलका के लेख में उद्धृत।

१९७६ में फैक्टरी कर्मचारियों की औसत वार्षिक आय

(Average Annual Earnings of Factory Workers, 1977 by Industries)

(१००० रु० प्रति माह से कम पाने वाले कर्मचारी)
(राष्ट्रीय औद्योगिक वर्गीकरण १९७० के अनुसार)

(रुपयों में)

उद्योग	१९७६
१	२
१. सूती वस्त्र मिलें	३,०००
२. ऊनी, रेशमी तथा कृत्रिम रेशे की वस्त्र मिलें	४ ७४८
३. जूट, सन तथा मेस्ता मिलें	४,०५७
४. वस्त्र उत्पाद (परिधान सहित, जूतों को छोड़कर)	४,५३
५. काष्ठ तथा काष्ठ उत्पाद फर्नीचर व फिक्सचर	२ ५७६
६. कागज व कागज उत्पाद तथा छपाई, प्रकाशन व सम्बद्ध उद्योग	५ ३१७
७. चमड़ा तथा चमड़े व समूर की वस्तुयें (मरम्मत को छोड़कर)	४,३६०
८. रबड़ प्लास्टिक, पेट्रोलियम व कोयला उत्पाद	३,०३०
९. रसायन तथा रासायनिक पदार्थ (पेट्रोलियम व कोयला उत्पाद को छोड़कर)	४ ४३०
१०. अधातु खनिज उत्पादन	[illegible],४०६
११. मूल धातु तथा सम्बद्ध उद्योग	६,४०७
१२. धातु उत्पादन तथा पुर्जे (मशीनरी तथा परिवहन सामग्री को छोड़कर)	४,६१७
१३. मशीनरी औजार व पुर्जे (विद्युत मशीनरी को छोड़कर)	४,८६६

१४ विद्युत मशीनरी उपकरण सामग्री संभरण तथा पुर्जे	६ ६५७
१५ परिवहन सामग्री तथा पुर्जे	६,२६०
१६ अन्य विनिर्माण उद्योग	५ ०७५
१७ बिजली	६ ३८६
१८ गैस तथा भाप	५ ४३६
१९ जल बल तथा पूर्ति	४,६८५
२० खाद्य वस्त्र उद्योग जीवित पशु मद्यसार तथा मादक पदार्थों का थोक व्यापार	१ ८५६
२१ ईंधन रोशनी रसायन सुगंधित द्रव्य मृत्तिका शिल्प तथा कांच का थोक व्यापार	३ ५०१
२२ काष्ठ, कागज अन्य वस्त्र चमड़ा व खालें तथा अखाद्य तेल	७ ०६८
२३ फुटकर व्यापार	८,१६०
२४ वायु परिवहन	१० ७७७
२५ परिवहन से सम्बद्ध सेवायें	५ ३३२
२६ भण्डारण तथा गोदाम	५,६२२
२७ सफाई सेवायें	४ २००
२८ शिक्षा वैज्ञानिक तथा अनुसंधान सेवायें	५ ६१०
२९ चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सेवायें	२,०३७
३० निर्माण तथा इससे सम्बद्ध कार्य	६ ४४५
३१ मनोरंजन तथा सांस्कृतिक सेवायें	४ ७८४
३२ व्यक्तिगत सेवायें	२ ५४१
३३ मरम्मत सेवायें	५ ८२६
३४ सेवायें जो अन्य किसी वर्ग में नहीं आतीं	६ ३२०
३५ क्रियायें जिनकी यथेष्ट व्याख्या नहीं की गई	३ ३२२
३६ मरम्मत सेवायें (बशर्ते कि नं० ३३ में सम्मिलित न हों)	४ ८३५

प्रति माह है और इसके अतिरिक्त १८ रुपये प्रतिमास महँगाई भत्ता तथा १ रुपये प्रति मास मकान भत्ता भी है। यदि अनियत मजदूरी को रुपये १ ७५ प्रति दिन दिया जाता है। कोचीन बन्दरगाह मे दैनिक दर कुशल श्रमिक के लिये रुपये ३ ०८, अर्धकुशल श्रमिक के लिए रुपये २ ६० और अकुशल श्रमिक के लिये रुपये २ ६६ है। कांधला बन्दरगाह म, मजदूरी की दैनिक दरें रुपये २·७५ से लेकर ४ रुपये तक हैं। मारमागोवा बन्दरगाह मे ठेकेदार द्वारा दी जाने वाली मजदूरी स्त्री खलासी के लिए रुपये २ ५० स लेकर मिस्त्री के लिए ६ रुपये तक है। १९७१ मे, विभिन्न श्रेणियों के श्रमिको के लिए नाविको की मासिक मजदूरी दर ४३५ रु० से ७२५ रु० तक थी।

नगरपालिकाओ मे स्वतन्त्रता के पश्चात् से मूल मजदूरी बढ गई है किन्तु अभी तक देश के विभिन्न भागो मे मूल वेतन व महँगाई भत्ते, दोनो मे ही काफी अन्तर पाया जाता है। सार्वजनिक निर्माण विभाग मे भी विभिन्न राज्यो मे तथा केन्द्र मे मूल वेतन, दैनिक मजदूरी तथा महँगाई भत्ते मे काफी अन्तर पाया जाता है।

ऊपर भारत क विभिन्न उद्योगो तथा विभिन्न राज्यो मे प्रचलित मजदूरी स्तर का केवल एक संक्षिप्त रूप मे उल्लेख किया गया है। इन आँकडो को ध्यान मे रखकर हम भारत में मजदूरी से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओ का विवेचन कर सकते हैं। यद्यपि विभिन्न उद्योगों के लिये स्थापित मजदूरी बोर्डों तथा वेतन आयोगो की सिफारिशों के फलस्वरूप, अभी हाल के ही वर्षों मे मजदूरियो व वेतनो के स्तरो मे काफी सुधार हुआ है।

न्यूनतम मजदूरी—इसकी वांछनीयता
(Minimum Wages Its Desirability)

सबसे महत्वपूर्ण समस्या भारत मे औद्योगिक श्रमिको की कम मजदूरी की, तथा श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की आवश्यकता की है। ऊपर दिये गये आकडो से यह स्पष्ट है कि श्रमिको की आय पर्याप्त नही है। यदि कुछ सुधार हुआ भी है तो वह गत कुछ वर्षों से ही हुआ है। वर्तमान समय मे देश की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी प्रदान करना है। भारत के अधिकतर श्रमिक असगठित है, अत मालिकों द्वारा सरलतापूर्वक उनका शोषण किया जाता है। मालिक इन्हे कम से कम मजदूरी देते है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि जेल के कैदी औद्योगिक श्रमिकों की अपेक्षा अधिक सुविधायें तथा अधिक आहार पाते हैं। श्रमिको को स्वतन्त्र प्रतियोगिता म अपनी सौदा करने की दुर्बल स्थिति तथा श्रम की अन्य विशेषताओ के कारण, शक्तिशाली पूँजीपतियो के समक्ष अपनी स्थिति सुधारने का कोई अवसर नही मिल पाता। श्रमिक की सीमांत उत्पादकता पूँजी की उत्पादकता से सदैव कम होती है अत श्रमिको को कम प्रतिफल मिलता है। तथापि श्रमिक मानव हैं और मानवीय दृष्टिकोण से उनकी रक्षा

होनी चाहिये। श्रमिकों के लिये सभी देशों में एक न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की समस्या उपस्थित हो गई है। यह मजदूरी केवल उनकी कार्यकुशलता के अनुसार ही न होकर इतनी पर्याप्त होनी चाहिये कि श्रमिक अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपना निर्वाह कर सकें। अत १९२८ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में न्यूनतम मजदूरी पर एक अभिसमय का मसौदा तैयार किया गया था। इसके अनुसार सब सदस्य राष्ट्रों को एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने और बनाये रखने के लिये कहा गया जिसके अन्तर्गत कुछ विशेष व्यवसायों में रोजगार में लगे श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित की जा सके। इन विशेष व्यवसायों से तात्पर्य ऐसे व्यवसायों से है जिनमें सामूहिक समझौते या अन्य किसी प्रकार से प्रभावात्मक रूप में मजदूरी निर्धारित करने की कोई व्यवस्था नहीं है और जिनमें मजदूरी भी बहुत कम है। १९५५ में इस अभिसमय को भारत सरकार द्वारा अपना लिया गया था।

ऊपर दिये गये मजदूरी के आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में मजदूरी असाधारण रूप से कम है। कम मजदूरी की यथार्थता इतनी स्पष्ट है कि इसके लिये विस्तृत खोज अथवा आंकडों के सकलन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। औद्योगिक विवाद, निम्न जीवन-स्तर, श्रमिक की कार्य-अकुशलता, उसकी ऋण-ग्रस्तता आदि जैसी अनेक समस्यायें कम मजदूरी की समस्या से सम्बन्धित हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से भी यह अनुभव किया जाना चाहिये कि यदि हम समाज में स्थिरता चाहते हैं तो श्रमिक के लिये पर्याप्त निर्वाहिका (Living Wage) अत्यन्त आवश्यक है। श्रमिकों की निर्धनता ही साम्यवाद का उत्पत्ति स्रोत कही जाती है। यदि हम क्रान्तिकारी विचारों को फैलने से रोकना चाहते हैं तो सभी श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन मिलना चाहिए। औद्योगिक हड़तालों के दोषों को कम करने तथा मालिकों एव श्रमिकों के सद्भावना एव विश्वास उत्पन्न करने के लिये न्यूनतम मजदूरी का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी देना कोई दान का कार्य नहीं है। उद्योग के लाभ में श्रमिक का अधिकारपूर्ण (Rightful) भाग होना चाहिये जो वर्तमान समय में श्रमिक की दुर्बल सौदाकारी सामर्थ्य के कारण उसे नहीं दिया जाता। अत औद्योगिक श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी उनके औद्योगिक जीवन, उनके स्वास्थ्य, शक्ति तथा नैतिकता के लिये बहुत अधिक महत्त्व रखती है। इससे श्रमिक की कार्यकुशलता बढ जायेगी, उत्पादन भी अधिक होगा तथा अनेक औद्योगिक समस्यायें स्वय हल हो जायेंगी।

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य
(Objects of a Minimum Wage)

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य विभिन्न है। मजदूरी दर निश्चित करने का आधार तथा इसके लिये प्रशासन व्यवस्थाएँ भी अलग-अलग उद्देश्य के अनुसार

जहाँ तक न्यूनतम आवश्यकताओं का सम्बन्ध है इसके लिए विभिन्न अनुमान दिये गये हैं। डा० एक्रोइड का विचार है कि एक साधारण श्रमिक को भोजन की २,६०० कैलोरी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। डा० आर० के० मुकर्जी ने इस अनुमान को कम माना है तथा एक औद्योगिक श्रमिक के लिए ३,००० से ३,५०० कैलोरी भोजन प्रतिदिन की आवश्यकता का सुझाव दिया है। डा० पटवर्धन का यह सुझाव है कि श्रमिक के लिये २७०० कैलोरी भोजन प्रतिदिन की साधारण आवश्यकता है इस सम्बन्ध में गणना के लिये आधार माना जा सकता है। श्रम सम्मेलन में इस विषय में एक्रोइड का सुझाव माना है। आवास के विषय में यह सुझाव दिया गया था कि छत के साथ १०० वर्ग फीट रहने के लिये न्यूनतम स्थान होना चाहिये। श्रम सम्मेलन ने इस विषय में सरकार की उपदानप्राप्त आवास योजना के स्तर को माना है। वस्त्र के विषय में यह सुझाव था कि एक व्यस्क श्रमिक के लिये प्रति वर्ष ४५ गज कपड़ा होना चाहिये। श्रम सम्मेलन का अनुमान यह है कि प्रति वर्ष व्यक्ति १८ गज कपड़ा होना चाहिये अर्थात् श्रमिक के ४ सदस्यों के परिवार के लिये ७२ गज कपड़ा।

न्यूनतम मजदूरी को निश्चित करने में एक अन्य विचारणीय विषय कीमतों को ध्यान में रखते हुए निर्वाह लागत को निर्धारित करना है। निर्वाह लागत सूचकांक (Cost of Living Index Number) समय-समय पर बनाना पड़ता है और न्यूनतम मजदूरी का इस सूचकांक के अनुसार समजन (Adjustment) करना होता है।

एक अन्य समस्या यह है कि मजदूरी निश्चित करने के लिये एक कुशल व्यवस्था (Efficient Machinery) होनी चाहिये। किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या यह व्यवस्था केन्द्रीय, प्रदेशीय अथवा स्थानीय स्तर पर हो? सबसे अधिक उचित तो यह होगा कि केन्द्रीय सरकार मुख्य सिद्धान्त निर्धारित कर दे और प्रदेशीय सरकारें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार इस व्यवस्था की अन्य विस्तृत बातें निर्धारित करें।

भारत मे श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी : उसकी समस्यायें

A Minimum (Wage for Workers in India Its Problems)

रॉयल श्रम आयोग ने यह सुझाव दिया था कि इस बात की जाँच की जाय कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारण करने वाली कोई व्यवस्था हो सकती है या नहीं, किन्तु उस समय कुछ कठिनाइयों की ओर संकेत किया गया और यह सुधार १९४८ तक नहीं किया जा सका। रॉयल श्रम आयोग ने स्वयं न्यूनतम मजदूरी लागू करने के लिये उचित व्यवस्था स्थापित करने की कठिनाइयों का उल्लेख किया है। अपने देश में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने से सम्बन्धित कुछ समस्याओं का पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। कानपुर श्रम जाँच समिति के शब्दों में इन कठिनाइयों को संक्षेप में बताया जा सकता है—"न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने

मे हमे निर्वाह लागत का ध्यान रखना होगा। मजदूरी स्तर भी निर्धारित करना पडेगा। यह सरल कार्य नही है। समस्या के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धी तत्वो की सावधानीपूर्वक जाँच करनी होगी तथा आँकड़े एकत्रित करने होगे। परिवार के बजट प्राप्त करने होंगे तथा उनका अध्ययन और विश्लेषण करना होगा। आवश्यक मदो को सावधानी से छाटना होगा तथा उनको गुण तथा मात्रा दोनो रूप से भली-भाँति महत्वांकित करना होगा। यह सब कठिन कार्य हैं जिनके लिये धैर्य और यथार्थता की आवश्यकता होगी तथा उन वर्गों को उचित रूप से समझना होगा जिनकी निर्वाह लागत निर्धारित की जा रही है। परिवार इकाई की भी परिभाषा उचित प्रकार से करनी पडेगी तथा उसे निश्चित करना होगा। भारतीय सामाजिक पद्धति मे यह सब कठिन कार्य हैं। व्यक्तियो की परम्पराओ तथा सामाजिक आचारो को भी ध्यान मे रखना होगा तथा इनका समुचित मूल्याकन करना पडेगा।

यह भी उल्लेखनीय है कि मालिको ने भारत की विशेष परिस्थितियो को इंगित करके मजदूरी मे वृद्धि के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किये है। प्राय यह कहा जाता है कि मजदूरी में वृद्धि होने से श्रमिक या तो मदिरा पर अधिक व्यय करने लगेगे या अधिक आलसी हो जायेगे। आय में यदि आकस्मिक वृद्धि हो जाएगी तो उसका बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय नही हो सकेगा। इसके अतिरिक्त, श्रमिक की पूर्ति भी आय की वृद्धि के साथ बढेगी। यह भी कहा गया है कि मजदूरी मे वृद्धि के प्रभाव निर्वाह लागत मे वृद्धि होने से समाप्त हो जायेंगे क्योकि बढी हुई मजदूरी मुद्रा-स्फीति उत्पन्न करेगी। परन्तु यह सभी तर्क एक-पक्षीय है और हम पहले ही अपने देश मे न्यूनतम मजदूरी की वाछनीयता का उल्लेख कर चुके है। मजदूरी निश्चित करने मे जो कठिनाइयाँ आती हैं केवल उन्ही को ध्यान मे रखना है तथा इन्हे सावधानीपूर्वक हल करना है।

यह भी उल्लेखनीय है कि एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना के बिना एक राष्ट्रीय न्यूनतम समयानुसार मजदूरी निर्धारित करना कठिन होगा, क्योकि यदि एक राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर लागू किया जायगा तो अनेक श्रमिको की छटनी हो सकती है। इसके अतिरिक्त, एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी से राष्ट्रीय लाभाश मे श्रमिकों के भाग मे तो वृद्धि हो जायेगी किन्तु उद्यमकर्ताओ के लाभ मे कमी हो जायेगी। इससे बचत पर प्रभाव पड़ेगा तथा उपभोग वस्तुओ की माँग भी बढ जायेगी। यह बात देश के लिये हितकर न होगी, यदि देश मे विकास योजनायें चालू हैं। फिर भी न्यूनतम मजदूरी आरम्भ मे ऐसे सभी उद्योगो मे लागू की जानी चाहिये, जिनमे श्रमिको का शोषण होता है।

सन् १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम
(The Minmum Wages Act of 1948)

भारत मे विधानीय मजदूरी निर्धारण व्यवस्था की स्थापना करने के प्रश्न पर मई १९४३ मे त्रिदलीय सगठन की स्थायी श्रम समिति के तीसरे सम्मेलन में

विचार-विमर्श हुआ तथा त्रिदलीय श्रम समिति ने १६४३, १६४४ तथा १६४५ के अधिवेशनों में इस पर विचार किया गया। इनमें से अन्तिम अधिवेशन में इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया कि न्यूनतम मजदूरी विधान बनाया जाना चाहिये। ११ अप्रैल सन् १६४६ को डॉ० बी० आर० अम्बेदकर ने, जो उस समय भारतीय सरकार के श्रम मन्त्री थे, न्यूनतम मजदूरी विधेयक प्रस्तुत किया। किन्तु भारत में संवैधानिक परिवर्तन होने के कारण विधेयक के पास होने में कुछ विलम्ब हो गया। मार्च १६४८ में फिर यह न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के नाम से पारित हुआ। इस अधिनियम का अभिप्राय उन कुछ रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना है जिनमें श्रमिकों से बहुत परिश्रम लिया जाता है अथवा जहाँ श्रमिक के शोषण की अधिक सम्भावना है। अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं—

अधिनियम में केन्द्रीय अथवा प्रदेशीय सरकारों को एक निर्धारित समय में विशेष सूची में दिये गये रोजगार में लगे क्लर्कों सहित कर्मचारियों की मजदूरी की न्यूनतम दरें निश्चित करने का अधिकार दिया गया है। कर्मचारियों की परिभाषा के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो कुशल या अकुशल शारीरिक या लिपिक का कोई भी कार्य पारिश्रमिक या वेतन पर करते हैं। अधिनियम में यह भी उपलब्ध है कि यदि राज्य सरकार चाहे तो वह किसी ऐसे उद्योग में, जिसमें १,००० से कम कर्मचारी कार्य पर लगे हों न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित न करें। अधिनियम में दी गई अनुसूची में जिन उद्योगों का उल्लेख किया गया है वे इस प्रकार हैं—ऊनी कालीन बनाने या शाल बुनने वाले व्यवसाय, तम्बाकू एवं बीडी बनाने वाले व्यवसाय, चावल मिल, आटा मिल, दाल मिल, तेल मिल, बागान, किसी स्थानीय प्राधिकार के अन्तर्गत रोजगार, सड़क निर्माण या इमारत बनाना, पत्थर तोड़ना या कूटना, लाख उत्पादन, अभ्रक कार्य, सार्वजनिक मोटर यातायात, चमड़ा रंगने एवं साफ करने तथा चमड़े की चीजें बनाने के कारखाने तथा कृषि। विभिन्न राज्य सरकारों को अधिनियम को किसी भी ऐसे उद्योग पर लागू करने का अधिकार भी दिया गया है जहाँ सरकार के विचार में न्यूनतम मजदूरी कानूनी रूप से निश्चित हो जानी चाहिये। १६६२ में एक संशोधन के अनुसार अनुसूचित सूची में जिप्सम, बैराइटीज तथा बौक्साइट की खानों के रोजगार भी सम्मिलित कर लिये गये।

अधिनियम में निम्नलिखित बातों को निर्धारित करने की व्यवस्था है—(क) न्यूनतम उजरत दर (Piece rate), (ख) न्यूनतम समानी दर (Time rate), (ग) गारन्टी कृत समानी-दर (घ) समयोपरि दर (Overtime rate), जो स्थानों, व्यवसायों, श्रम तथा श्रमिक की विभिन्न श्रेणियों तथा वयस्कों, किशोरों, बालकों और शिक्षार्थियों के लिये उचित समझी जाए। एक न्यूनतम दर में निम्नलिखित बातें सम्मिलित होनी चाहियें—(क) मजदूरी की मूल दर (Basic rate) एवं निर्वाह लागत (Cost of Living) भत्ता अथवा (ख) निर्वाह लागत भत्ते के साथ या

उसके बिना मजदूरी दरें तथा कम दरों पर आवश्यक वस्तुओं को प्रदान करने जैसी सुविधाओं की नकद कीमत अथवा (ग) सब सम्मिलित (All Inclusive) दर। अधिनियम के अनुसार मजदूरी नकदी में दी जानी चाहिये यद्यपि उपयुक्त सरकारें न्यूनतम मजदूरी का पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से जिन्स में अदायगी करने का अधिकार दे सकती है। उपयुक्त सरकारें जाँच करने तथा न्यूनतम मजदूरी की दरें निश्चित करने के लिये परामर्श देने के लिये समितियाँ नियुक्त कर सकती है। सलाहकार समितियों के कार्यों का समन्वय करने तथा सरकार को मजदूरी की न्यूनतम दरों के निश्चित करने तथा पुन अवलोकन की सलाह देने के लिये एक सलाहकार बोर्ड नियुक्त करने की व्यवस्था है। केन्द्रीय तथा प्रादेशीय सरकारों को सलाह देने तथा प्रादेशीय सलाहकार बोर्डों के कार्यों का समन्वय करने के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की स्थापना भी केन्द्रीय सरकार कर सकती है। इन सस्थाओं में मालिक तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि बराबर की सख्या मे होगे तथा कुल सदस्यों की एक तिहाई से कम की सख्या में स्वतन्त्र व्यक्ति होंगे। उपयुक्त सरकारें अधिनियम के अन्तर्गत सूची में अंकित रोजगारों मे कार्य के दैनिक घण्टे भी निश्चित कर सकती है एक साप्ताहिक अवकाश दे सकती है तथा समयोपरि मजदूरी की अदायगी का नियम बना सकती है। इस अधिनियम के अनुसार उचित रिकार्ड और रजिस्टर भी रखने होंगे। मजदूरी की न्यूनतम दरों से कम अदायगी के कारण उत्पन्न दावों को जाँचने, सुनने तथा निश्चित करने के लिये निरीक्षक तथा प्राधिकारी नियुक्त किये जा सकते है तथा अपराधियों के दण्ड की भी व्यवस्था की गई है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम में संशोधन

(Amendments to the Minimum Wages Act)

इस अधिनियम के अनुसार कृषि रोजगार में (अधिनियम से लगी अनुसूची भाग २) अग्रिम तीन वर्षों में तथा अन्य रोजगार में (अनुसूची भाग १) अग्रिम दो वर्षों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था थी। निश्चित न्यूनतम मजदूरी दरों में समय-समय पर, परन्तु अधिक से अधिक ५ वर्षों में सशोधन किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार ने १९४९ में कुछ नियम भी बनाये तथा राज्य सरकारों में इन नियमों को प्रसारित किया तथा उनको १५ मार्च १९५० से पूर्व न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की आज्ञा दी। एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड तथा राज्यों में सक्षम प्राधिकारियों की नियुक्ति भी कर दी गई। परन्तु तब भी निर्धारित समय में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में विलम्ब हुआ तथा सरकार ने एक अध्यादेश तथा बाद में सशोधित अधिनियम द्वारा न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की तिथि १८ मार्च १९५१ तक बढ़ा दी। यह तिथि फिर ३१ मार्च १९५२ तक बढ़ाई गई। कृषि श्रमिकों की, जिनकी अपनी विशेष समस्यायें हैं, न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के लिये एक अतिरिक्त वर्ष दिया गया। तथापि ३१ मार्च

१६५२ तक अनुसूची में दिये गये समस्त रोजगारों के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित न हो सकी और अप्रैल १६५४ में अधिनियम में संशोधन करके यह समय ३१ दिसम्बर १६५४ तक बढ़ा दिया गया। बार-बार तारीखों का बढ़ाना इंगित करता है कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना कितना कठिन कार्य है। १६५७ में अधिनियम में एक अन्य महत्वपूर्ण संशोधन हुआ। १६५७ के संशोधित अधिनियम ने मजदूरी के निश्चित करने की अवधि ३१ दिसम्बर १६५६ तक बढ़ा दी तथा अधिनियम का कार्यान्वित करने में कुछ अन्य कठिनाइयों को दूर किया। इसके अनुसार मजदूरी की न्यूनतम दरों का पाँच वर्ष पूरे होने पर पुनः विचार तथा पुनः निर्धारण हो सकता है।

परन्तु अनुसूची में दिये गये उद्योगों में दिसम्बर १६५६ तक भी सभी प्रदेशों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं की जा सकी। जनवरी १६६० में श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन ने इस बात का सुझाव दिया कि न्यूनतम मजदूरी लागू करने की तिथि निर्धारित करने के लिये राज्य सरकारें अपने कार्यक्रम के अनुसार स्वयं अधिनियम पारित करें। केन्द्रीय न्यूनतम मजदूरी सलाहकार बोर्ड ने यह सिफारिश की कि न्यूनतम मजदूरी लागू करने का कोई निश्चित समय रखा ही न जाये। इन सिफारिशों को मानते हुए सरकार ने १६६१ में न्यूनतम मजदूरी (संशोधित) अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार न्यूनतम निर्धारित मजदूरी करने के लिये जो निश्चित तिथि की धारा थी उसे समाप्त कर दिया गया। राज्य सरकारें अब आवश्यकतानुसार किसी भी समय, किसी भी रोजगार या किसी भी वर्ग के श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी की दरें राज्य के किसी भी भाग में निर्धारित कर सकती हैं। यदि कोई विवाद किसी अधिकरण (Tribunal) के सम्मुख है या अधिकरण का निर्णय लागू है तो अनुसूचित रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं की जायेगी। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत, यदि सरकार कोई नियम बनाती है, तो उसे तीस दिनों के अन्दर संसद के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का कार्यान्वित होना
(Implemetation of the Minimum Wages Act)

अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत कुछ राज्यों को छोड़कर सभी राज्य सरकारों ने अधिनियम में लगी सूची नम्बर १ में दिये गये रोजगारों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी है। कुछ राज्यों में इन दरों में मँहगाई या निर्वाह लागत भत्ता सम्मिलित कर लिया गया है और कुछ राज्यों में ये भत्ते सम्मिलित नहीं किये गये हैं। विभिन्न राज्यों में तथा विभिन्न रोजगारों में दरें भिन्न-भिन्न हैं तथा समय-समय पर इनको दोहराया भी गया है। (दरों के विस्तृत विवरण के लिये कृपया भारतीय श्रम वार्षिक पुस्तिकायें देखिये)। राज्य सरकारों ने इस अधिनियम का क्षेत्र अधिनियम में लगी सूची में दिये गये उद्योगों के अतिरिक्त अन्य अनेक उद्योगों तक भी बढ़ा दिया है। न्यूनतम दैनिक मजदूरी पाने वाले अकुशल

पुरुष श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी की सीमा विभिन्न राज्यों में ३० सितम्बर १९७८ को निम्न प्रकार थी —

केन्द्र/राज्य/संघ शासित क्षेत्र	सम्मिलित रोजगारों की संख्या	न्यूनतम दैनिक मजदूरी की सीमा (रुपयों में)	
		न्यूनतम	अधिकतम
१	२	३	४
(क) केन्द्र सरकार	२२	३ ४०	६ ९६
(ख) राज्य			
१ आन्ध्र प्रदेश	२९	२ ५०	६ ००
२ असम	१४	३ १३	७ ००
३ बिहार	२९	१ १९	६ ००
४ गुजरात	२३	३ ६०	७ १२
५ हरियाणा	३८	२ ००	७ ००
६ हिमाचल प्रदेश	१७	२ ००	४ ००
७ कर्नाटक	२१	२ ००	५ ६०
८ केरल	३१	१ ५०	१३ २८
९ मध्यप्रदेश	२०	१ २५	४ ००
१० महाराष्ट्र	३९	० ९७	८ ५०
११ मणिपुर	२	२ ००	४ ००
१२ मेघालय	३	५ ००	६ ००
१३ उड़ीसा	१९	२ २४	५ ००
१४ पंजाब	३१	३ १५	८ ७०
१५ राजस्थान	२७	४ २५	६ ००
१६ तमिलनाडु	२८	० ६३	७ ५०
१७ त्रिपुरा	५	४ ००	५ २०
१८ उत्तर प्रदेश	४०	३ ००	६ ८६
१९ पश्चिमी बंगाल	१६	१ १३	७ २[illegible]
(ग) संघ शासित क्षेत्र			
१ अण्डमान निकोबार द्वीप समूह	०	५ ४०	[illegible] ५०
२ चण्डीगढ़	२६	६ २४	७ ५०
३ दादरा व नगर हवेली	१	५ ५०	[illegible] ५०
४ दिल्ली	२१	४ ५०	७ २०
५ गोवा दमण द्वीप	३	४ ००	५'००
६ पाण्डेचेरी	१	३ ५०	८ ००

२०	दादरा व नगरहवेली	१९७५	रु० ५.४० प्रतिदिन।
२१	दिल्ली	१९७४	रु० ६.७५ प्रतिदिन तथा रु० १७५.५० प्रतिमाह।
२२	गोआ, दमण दीव	१९७५	रु० ४ से रु० ५ तक प्रतिदिन।
२३	पाण्डेचेरी	१९७६	रु० ३.५० से रु० ८ प्रतिदिन।

कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरियों के प्रश्न पर अगस्त १९६५ में गोष्ठी में विचार किया गया था। गोष्ठी में सिफारिश की गई कि किसी भी कृषि-कार्य के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें १ रुपया प्रतिदिन से कम नहीं होनी चाहिये और सम्बन्धित सरकारों को ऐसी कमेटियाँ नियुक्त करनी चाहियें जो इस बात का निश्चय करें कि क्या मजदूरी की ऊँची न्यूनतम दरें निर्धारित की जा सकती हैं। गोष्ठी में लागू करने की यथेष्ठ मशीनरी की व्यवस्था करने की भी सिफारिश की गई।

इस प्रकार भारत में श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की दिशा में कार्य प्रारम्भ हो गया है। यह पूर्णरूप से आशा की जाती है कि मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था शनैः-शनैः सुधरेगी तथा एक समान मूल मजदूरी दर का प्रादुर्भाव होगा और उसका कार्यान्वित होना भी सम्भव होगा।

न्यूनतम मजदूरी के प्रश्न से सम्बन्धित मजदूरी के समानीकरण की भी समस्या है तथा "उचित मजदूरी" की परिभाषा देने तथा उसे लागू करने की समस्या भी है। सबसे पहले हम "उचित मजदूरी" के प्रश्न पर विचार करेंगे।

उचित मजदूरी की समस्या (The Problem of a Fair Wage)

उचित मजदूरी की समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या है। प्रत्येक देश में अर्थशास्त्रियों ने इस समस्या पर विचार किया है। युद्ध के पश्चात् उत्पादन में वृद्धि करने के लिये ऐसी सभी सम्भावनाओं पर विचार किया गया जिनसे देश में श्रमिकों तथा प्रबन्धकों के सम्बन्धों में सुधार हो सके। यह सब ही मानते हैं कि श्रमिकों तथा प्रबन्धकों के व्यवहार तथा दृष्टिकोण में केवल मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही नहीं होना चाहिए वरन् कुछ ऐसे स्पष्ट प्रमाण भी प्रस्तुत किये जाने चाहिये जिनसे ऐसा प्रतीत हो कि मालिक तथा उद्योगों के प्रबन्ध श्रमिकों के प्रति उचित व्यवहार रखते हैं। इस प्रकार ही संघर्षों के मूल कारणों को दूर किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण समस्यायें लाभ-सहभाजन तथा उचित मजदूरी की हैं। यह समस्यायें १९४७ के उद्योग-सम्मेलन में उस समय प्रकाश में आयीं जिस समय औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव पारित हुआ था। इस सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित किया गया था कि पूँजी के प्रतिफल तथा श्रमिक के पारिश्रमिक देने की प्रणाली की इस प्रकार व्यवस्था की जानी चाहिए कि पूँजीपतियों तथा श्रमिक, दोनों को ही अपने संयुक्त प्रयत्न से किये गये उत्पादन में उचित भाग मिलता रहे। उपभोक्ताओं तथा मूल उत्पादकों के हित को ध्यान में रखते हुए,

कर लगाकर एवं अन्य तरीकों द्वारा अत्यधिक लाभ पर रोकथाम लगाई जा सकती है। श्रमिक को उचित मजदूरी मिलने की व्यवस्था भी इसके साथ ही होनी चाहिये। उद्योग में लागू पूंजी पर उचित प्रतिफल मिलने तथा व्यवसाय को विस्तृत करने व उसे कायम रखने के लिए समुचित आरक्षित निधि (Reserve Fund) की भी व्यवस्था होनी चाहिये। ६ अप्रैल १९४८ को केन्द्रीय सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के वक्तव्य में इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। लाभ सहभाजन की समस्या की जांच करने के लिए एक समिति भी नियुक्त की गई थी। इस समिति ने १९४८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी। केन्द्रीय सलाहकार परिषद् ने एक 'उचित मजदूरी समिति' भी नियुक्त की जिसकी रिपोर्ट १९४९ में प्रकाशित हुई। जून १९५१ में इसकी सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक का मसौदा तैयार करके संसद् में प्रस्तुत किया गया। परन्तु यह विधेयक स्वीकृत न हो सका और 'व्यपगत' (Lapse) हो गया। संविधान में इस बात का उल्लेख है कि राज्य को इस बात का प्रयास करना होगा कि समस्त श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी मिलती रहे। मजदूरी बोर्ड और अधिकरण मजदूरी निर्धारित करते समय उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते है।

उचित मजदूरी क्या है ? इसके बारे में विभिन्न विचार
(What is a Fair Wage ? Various Opinions)

उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट में उचित मजदूरी पर विभिन्न दृष्टिकोण से बड़ा रोचक अध्ययन किया गया है। समिति के शब्दों में, "राष्ट्रीय आय की स्थिति को मजदूरी की समस्या से सबसे अधिक सम्बद्ध (Relevant) कहा जा सकता है क्योंकि किसी भी मजदूरी नीति को उस समय तक न्यायोचित और आर्थिक दृष्टि से ठोस नहीं कहा जा सकता जब तक उस नीति द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं होती और उस वृद्धि में से श्रमिकों को वैध अथवा उचित भाग नहीं मिलता।" प्रथम तो यही प्रश्न सामने आता है कि 'उचित मजदूरी क्या है' ? उचित मजदूरी की परिभाषा सीधी एवं सरल भाषा में देना बहुत कठिन है। उचित मजदूरी को निश्चित करने में देश की विभिन्न परिस्थितियों और देश के विभिन्न उद्योगों एवं क्षेत्रों की परिस्थितियों को दृष्टि में रखना आवश्यक है। "एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सेज" नामक पुस्तक के अनुसार 'उचित मजदूरी श्रमिकों द्वारा प्राप्त उस मजदूरी को कहते है जो उनको एक समान (Equal) कुशल, कठिन और अरुचिकर कार्य करने के लिए मिलती है, किन्तु यह परिभाषा इस बात को मालूम करती है कि देश की आर्थिक स्थिति की दृष्टि से किसी भी विशेष औद्योगिक संस्था में एक ऐसा आदर्श स्तर बनाने की आवश्यकता है जिस स्तर के अनुसार एक समान तथा एक ही स्थिति के उद्योगों में मजदूरी निश्चित की जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ ने 'न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था" (Minimum Wage Fixing Machinery) के नाम

व्यावहारिक प्रणाली अपनाई जाय। समिति के विचारानुसार, उचित मजदूरी की कम से कम सीमा तो न्यूनतम मजदूरी द्वारा निश्चित हो जाती है किन्तु उच्चतम सीमा उद्योग की भुगतान क्षमता द्वारा निर्धारित होती है। यह भुगतान क्षमता निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है—(i) श्रमिकों की उत्पादकता (ii) मजदूरी की प्रचलित दर (iii) राष्ट्रीय आय का स्तर तथा उसका वितरण, (iv) देश की आर्थिक व्यवस्था में उस उद्योग का स्थान। न्यूनतम मजदूरी का विस्तृत विवरण ऊपर दिया जा चुका है। अब हम उद्योग की भुगतान क्षमता की समस्या का विवेचन करेंगे क्योंकि इस महत्वपूर्ण समस्या पर भी सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

उद्योग की भुगतान-क्षमता (Capacity of Industry to Pay)

किसी उद्योग की उत्पादकता ही एक ऐसी बात है जिससे मजदूरी दी जाती है। न तो शक्तिशाली श्रमिक संघों के दबाव से और न ही राज्य की किसी व्यवस्था द्वारा कुछ हेर-फेर करके असल मजदूरी को उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक बढ़ाया जा सकता है। यह केवल अस्थायी रूप में सम्भव हो सके, वरना यदि मजदूरी को उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक बढ़ाने के प्रयत्न किये जायेंगे, तो बेरोजगारी मुद्रास्फीति (Inflation) आदि जैसे कुछ दुःखदायी परिणाम प्रकट हो जायेंगे। यदि किसी समय एक उद्योग में मजदूरी इतनी अधिक बढ़ा भी दी जाय कि उस उद्योग में मशीनरी के घिस जाने पर भी उसे पूर्ण रूप से बदला न जा सके, तब इसका परिणाम यह होगा कि उत्पादन कम हो जायगा और इसके फलस्वरूप भविष्य में मजदूरी गिर जायेगी। कोई भी उद्योग अपनी भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी तभी दे सकता है जब उस उद्योग को सरकार द्वारा उपदान (Subsidy) दिया जाता हो। परन्तु इसका अर्थ यह होगा कि अन्य उद्योगों की भुगतान क्षमता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कम कर दिया जाता है। यह भी सम्भव है कि यदि कोई उद्योग किसी ऐसी कठिनाई में ग्रस्त हो जिससे उसे छुटकारा मिलने की शीघ्र ही सम्भावना हो, तब अस्थायी काल के लिये वह अपनी भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी देने के लिये तैयार हो जाय।

श्रमिकों द्वारा जब भी ऊँचे दर पर मजदूरी की माँग की जाती है तभी मालिक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि उद्योग ऊँची मजदूरी देने की परिस्थितियों में नहीं है। दूसरी ओर श्रमिक यह तर्क देते हैं कि ऊँची दर से मजदूरी देने में बचत होती है। श्रमिक कहते हैं कि अधिक मजदूरी वास्तव में कम मजदूरी है। 'ऊँची दर से मजदूरी देने में बचत होती है' इस कथन का आधार यह है कि मजदूरी जितनी ऊँची होगी उद्योग की भुगतान-क्षमता उतनी ही अधिक होगी क्योंकि ऊँची मजदूरी के साथ साथ श्रमिकों की कार्य-कुशलता में भी वृद्धि होगी और इसलिये प्रति इकाई उत्पादन लागत भी घटेगी। अतः इसके परिणामस्वरूप उत्पादन की उन्नत पद्धतियों को भी अपनाया जा सकेगा। साथ ही साथ मूल्यों में भी कमी होगी वस्तुओं की

माँग बढ़गी बाजार विस्तृत होग और इसस उत्पादन म वृत्त-स्तर को इंगित करता इस प्रकार ही चलता रहेगा और अ त मे इन सब बातो के ने नये नये आविष्कारों अथाह लाभ होगा। इस प्रकार उद्योग की भुगतान क्षमता भ तनी कम मजदूरी होता जायगी। नर्ण नहीं होती

उद्योग की भुगतान क्षमता क्या है यह निश्चित करने म अ य कुछ्न देंगी। ध्यान म रखनी चाहियें। कम आय वाल श्रमिको की मजदूरी तब ही बढ़ायी जा सकनी है जब सब श्रमिको की मजदूरी का पुन वितरण कर दिया जाये जिसम कि न्यूनतम आय वाले श्रमिको को अधिक मजदूरी मिल सके तथा अधिकतम आय वाल श्रमिको की मजदूरी कम हो जाय। पर नु ऐसा तभी सम्भव है जबकि कुशल श्रमिको की मजदूरी बहुत अधिक हो और उनमे कुछ कमी करने की सम्भावना हो। इसके अतिरिक्त यह समस्या भी उठती है कि भुगतान क्षमता का निणय उद्योग की किस प्रकार की फम के अनुसार किया जाना चाहिये। डा मार्शल का प्रति निधि फम (Representative Firm) का विचार भी इस मामले म कुछ अधिक सहायक नही है। क्योंकि यह प्रश्न उठता है कि यह प्रतिनिधि फम किसी फम के आकार का प्रतिनिधित्व करती है या उसकी लागत का। जब लागत का प्रश्न उठा है तो लाभ की समस्या सामने आती है जिसका समाधान आवश्यक है। मालिक तो सदा सामा य लाभ पर जोर देगे और श्रमिक उसका सदैव विरोध करेगे। एक प्रश्न यह भी उठता है कि उद्योग की भुगतान क्षमता का अथ किसी विशेष उद्योग इक ई की भुगतान क्षमता से है अथवा किसी विशेष सम्पूर्ण उद्योग की भुगतान क्षमता से है अथवा देश के समस्त उद्योगों की भुगतान क्षमता से है। उद्योग की भुगतान क्षमता के प्रश्न को तय करने स पूर्व इन सब ही कठिनाइयों को ध्यान मे रखना होगा।

इस समस्या पर उचित मजदूरी समिति ने अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किये है। उसके शब्दों मे हमारा विचार यह है कि उद्योग की भुगतान क्षमता का निश्चय करते समय किसी विशेष उद्योग इकाई या देश के समस्त उद्योगों की भुगतान क्षमता को लेना गलत होगा। इसका उचित आधार तो किसी निर्धारित क्षेत्र के किसी विशेष उद्योग की भुगतान क्षमता होनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो उस क्षेत्र मे उस उद्योग की समस्त इकाइयों म एक समान मजदूरी निर्धारित होनी चाहिये। मजदूरी निश्चित करने वाले बोर्ड के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह प्रत्येक क्षेत्र के किसी उद्योग की प्रत्येक इकाई की भुगतान क्षमता को नाप और व्यावहारिक रूप से यही उचित है कि उस उद्योग का एक उचित मिश्रित (G o) भाग लेकर मजदूरी निर्धारित की जाये। पर तु फिर यह प्रश्न उठता है कि इस भुगतान क्षमता को नापा कैसे जाये? इस सम्बन्ध मे यह सुझाव दिया गया कि भुगतान क्षमता के दो आधार है (क) पूँजी पर उचित प्रतिफल और प्रबन्धकर्त्ताओं को उचित पारिश्रमिक (ख) उद्योग को स्वस्थ दशा म रखने के लिए

व्यावहारिक प्रणाली अपनाई
कम से कम सीमा तो न मी
सीमा उद्योग की भु
निम्नलिखित का
की प्रचलित
आर्थिक
की अर्थव्यवस्था

ciation) के लिये धन की उचित
सिद्धान्त, जिसका मजदूरी का स्तर
ना चाहिये, यह है कि मजदूरी स्तर
सके और दक्षता-पूर्वक उत्पादन की
ूरी निश्चित करने के लिये इस तथ्य
उस क्षेत्र के अन्य उद्योगों में प्रचलित
स्या म अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता
और इस आय के विभाजन पर निर्भर
नियम है कि व्यवहार में श्रमिकों की
या के अनुसार तथा उस उद्योग की दक्ष
पर निर्भर होनी चाहिये।

लागत से सम्बन्धित मजदूरी की समस्या तथा उत्पादकता
(Wages in Relation to Costs and Productivity)

अब हमारे सम्मुख यह समस्या आती है कि मजदूरी का उत्पादन लागत से क्या सम्बन्ध है ? मजदूरी एवं लागत का सम्बन्ध व्यावहारिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रमिकों के पक्षपाती यह तर्क देते हैं कि ऊँची मजदूरी से उत्पादकता बढ़ती है और परिणामस्वरूप लागत घट जाती है। दूसरी ओर, मालिक यह कहते हैं कि मजदूरी में बढ़ोतरी से उत्पादन की लागत बढ़ती है। समस्या यह है कि ऊँची मजदूरी से कार्य-कुशलता बढ़ती है या नहीं तथा ऊँची मजदूरी के साथ-साथ उत्पादकता किसी सीमा तक एवं किस गति से बढ़ती है ?

यह इस बात पर निर्भर करेगी कि जिस वर्ग से श्रमिक सम्बन्धित है, उस वर्ग के व्यक्तियों का आदर्श जीवन स्तर कैसा है ? आदर्श जीवन की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि यह वह स्तर है जिसके फलस्वरूप अधिकतम कार्य-कुशलता एवं न्यूनतम लागत प्राप्त होती है। परन्तु यह कहना कठिन है कि ऐसा स्तर क्या होगा ? यह स्तर जलवायु, जीवन के संस्कारों, रिवाजों, सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक एवं नैतिक विचारों द्वारा निर्धारित होता है। इन आदर्श जीवन-स्तरों का अन्तर ही विभिन्न देशों में समान कार्य-कुशलता के होते हुए भी विभिन्न मजदूरी दरों के प्रचलित होने का एक कारण है। किसी भी देश में ऊँची मजदूरी अधिक कार्य-कुशलता ला सकती है परन्तु एक सी कार्य-कुशलता होने पर या एक सी लागत आने पर भी यह आवश्यक नहीं है कि विभिन्न देशों में या विभिन्न वर्गों को एक सी ही ऊँची मजदूरी दी जाये। इसके अतिरिक्त, उस कार्य-कुशलता की भी एक सीमा है जो मजदूरी में वृद्धि करने से प्राप्त की जा सकती है। मजदूरी को असीमित प्रकार से बढ़ाने से लागत असीमित रूप से नहीं घटाई जा सकती। इस सम्बन्ध में भी एक उच्चतम बिन्दु (Optimum point) होता है

जो कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत उच्चतम जीवन-स्तर को इंगित करता है। परन्तु यह बिन्दु भी जीवन को सुखमय बनाने हेतु किये गये नये-नये आविष्कारों के साथ-साथ आगे बढ सकता है। इसके अतिरिक्त, यदि श्रमिक इतनी कम मजदूरी अर्जित कर रहे हों कि उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकतायें भी पूर्ण नहीं होतीं तो मजदूरी में तनिक सी वृद्धि भी उनकी कार्य-कुशलता को काफी बढा देगी। परन्तु यदि मजदूरी पहिले से ही इतनी अधिक है कि श्रमिकों को न केवल आवश्यकताएँ वरन् सुखमय जीवन भी उपलब्ध है तो मजदूरी में वृद्धि होने से कार्य-कुशलता में पहले जैसी बढोत्तरी नहीं होगी। अत आरम्भ में तो अधिक मजदूरी से लागत अधिक घट सकती है परन्तु कुछ समय पश्चात् लागत धीमी गति से घट सकेगी।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मजदूरी बढने पर तुरन्त लागत का घटना आवश्यक नहीं है। मजदूरी को श्रमिकों के उस जीवन-स्तर से ऊँचा उठाने में, जिसका उनको अभ्यास पड गया है, कुछ समय लगता है। यदि जीवन-स्तर को ऊँचा कर भी दिया जाये तो भी श्रमिक के स्वास्थ्य एव साधारण बुद्धिमत्ता के सुधारने में कुछ समय लगेगा। यदाकदा ऊँची मजदूरी के फलस्वरूप बचत भी हो सकती है। इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिये कि एक श्रमिक को अपनी आय से कितने व्यक्तियों का पालन करना पडता है। मजदूरी में बढोत्तरी जीवन-स्तर पर, परिवार के आकार और सदस्यों की संख्या के अनुसार, पृथक् पृथक् प्रभाव डालेगी। इसके अतिरिक्त मानसिक शक्ति, बुद्धिमत्ता का स्तर एव शिक्षा इत्यादि भी विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न है और यह आवश्यक नहीं है कि मजदूरी वृद्धि से सब पर एक सा ही प्रभाव पडे। फिर अधिकतर उद्योगों में मजदूरी तो कुल लागत का छोटा-सा भाग होती है। किन्तु यह भी उद्योग की प्रकृति पर निर्भर करता है अर्थात् कोई उद्योग छोटा है या विशाल, उस उद्योग को अधिक कुशल श्रमिक की आवश्यकता है या नहीं, आदि। उत्पादन की क्षमता न केवल व्यक्तिगत उपादानों (Factors) की कार्यकुशलता पर वरन् कुशल सम्मिश्रण (Combination) और समन्वय (Co-ordination) पर भी निर्भर है। इन बातों के कारण यह कहना अत्यन्त कठिन है कि मजदूरी और लागत में क्या सम्बन्ध है? फिर भी, चाहे मजदूरी का लागत पर प्रत्यक्ष प्रभाव कम हो परन्तु अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत अधिक होता है। पूँजी की वृद्धि देश में मजदूरी के सामान्य स्तर से प्रभावित होती है। इन समस्त बातों को दृष्टि में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऊँची मजदूरी से लागत कम हो जाती है किन्तु यह तभी होता है जब इससे श्रमिक की कार्यकुशलता बढे। परन्तु इस प्रणाली से अधिकतम बचत सीमित मात्रा में ही हो सकती है।

उत्पादकता (Productivity) के प्रश्न को भी भारी महत्त्व प्रदान किया जाता है। श्रमिकों के जीवन-स्तर में कोई वास्तविक उन्नति होना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि न हो, क्योंकि मजदूरी की मात्रा

में यदि निर्धारित सीमा से थोड़ी भी अधिक वृद्धि की गई तो कीमतों में होने वाली बढ़ोत्तरी उसका प्रभाव समाप्त कर देगी। उत्पादकता पर आधारित मजदूरी से उद्योग इस स्थिति में हो जायगा कि वह अपनी विद्यमान श्रम शक्ति का उच्चतम तथा प्रभावी उपयोग में लगा सके और ऐसा करने पर श्रमिकों के लिए अतिरिक्त मेहनताना प्राप्त करना सम्भव हो जायगा। उत्पादकता की विधियों से लागत कम होती है, वस्तुएँ सस्ती होती हैं तथा वस्तुओं की किस्म भी सुधरती है जिससे निर्यात बढ़ता है। मजदूरी को उत्पादकता से सम्बन्धित करने की महत्ता को उचित मजदूरी समिति द्वारा तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं में समझा गया था और राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी इस पर जोर दिया था। किन्तु मजदूरी को उत्पादकता से सम्बद्ध करना कोई सरल काम नहीं है क्योंकि उत्पादन में प्रति श्रमिक जो वृद्धि होती है उससे स्वयमेव मजदूरी की दर बढ़ जाती हो, ऐसी बात नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि श्रमिकों व मालिकों के बीच पूर्ण सहयोग हो और यह तब हो सकता है जबकि औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे व सौहार्द्रपूर्ण हों तथा श्रमिक संघ भी अच्छे शक्तिशाली हों। यदि कार्य दर पद्धति (Piece rated system) को मजदूरी को उत्पादकता से सम्बद्ध करने का प्रतिरूप माना जाय तो यह नहीं कहा जा सकता कि श्रमिक संघ भी इस बात के लिए तैयार हो जायेंगे कि मजदूरी की समय दर पद्धति (time rate system) को एक ऐसी पद्धति में बदल दिया जाय जो मजदूरी को उत्पादकता से सम्बद्ध करती हो। मजदूरी को उत्पादकता से सम्बद्ध करने में एक अन्य बाधा यह है कि ऐसा कोई सर्वसम्मत सूत्र (formula) नहीं है जिसके अनुसार बढ़ी हुई उत्पादकता के लाभों को उत्पादन के विभिन्न उपादानों के बीच बाँटा जा सके। हुआ यह कि भूतकाल में उत्पादकता में जो वृद्धि हुई उसके लाभों का श्रमिकों के बीच समान रूप से वितरण नहीं हुआ। अतः श्रमिकों में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी इस विचारधारा के प्रति कोई उत्सुकता नहीं है। एक समस्या यह भी है कि उद्योग की अथवा श्रमिक की उत्पादकता को माप कैसे हो। इसके अतिरिक्त उत्पादन प्रणाली की कई अपूर्णतायें (imperfections) भी उत्पादन को गम्भीर रूप से प्रभावित करती हैं। ये अपूर्णतायें जिन कारणों से उत्पन्न होती हैं वे हैं बिजली की कमी, यन्त्र सम्बन्धी दोष, कच्चे माल का अभाव, उत्पादित माल के सम्बन्ध में बाजार में उतार चढ़ाव, उत्पादन क्षमता का कम उपयोग आदि और ये कारण श्रमिकों के नियन्त्रण से बाहर होते हैं। प्रश्न यह है कि इन कारणों से यदि उत्पादन की हानि हो तो श्रमिकों को उसकी क्षतिपूर्ति कैसे की जाय? इन व्यावहारिक कठिनाइयों को देखते हुए यह सम्भव नहीं है कि मजदूरी को पूर्णतया उत्पादकता से सम्बद्ध कर दिया जाय। इसके लिए यह जरूरी होगा कि मजदूरी की दरों का निर्धारण करते समय कुछ अन्य ऐसे तत्वों का भी ध्यान रखा जाय जैसे कि निर्वाह खर्च (Cost of living) में होने वाले परिवर्तन, विभिन्न उद्योगों की लाभोपार्जन क्षमता, व्यवसायजनित कुशलता, उद्यम की श्रम प्रबन्ध नीतियाँ

और कुल मजदूरी भार, जिसमें महगाई भत्ता, बोनस तथा अनुषगी लाभ (fringe benefits) भी सम्मिलित है।

पचवर्षीय आयोजनाओ के दस्तावेजों मे प्राय इस बात का उल्लेख किया गया है कि एक आय नीति निर्धारित करना अत्यन्त आवश्यक है और चौथी पचवर्षीय आयोजना मे तो एक एकीकृत आय नीति लागू करने के लिये कार्यक्रम निर्धारित करने पर जोर दिया गया था। ठोस रूप म आय नीति के निर्धारण का विचार सर्वप्रथम काफी समय पहले फरवरी १६५३ मे श्री टी० टी० कृष्णामाचारी ने दिया था। इसके बाद इस सम्बन्ध मे तभी डॉ० बी० के० मदान की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की गई थी। समिति की रिपोर्ट मे इस मूलभूत सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है कि भारत मे बढती हुई आय का अधिकाधिक भाग बचतो मे तथा पूँजी निर्माण में लगाया जाये। इसका अर्थ यह है कि मजदूरी तथा गैर मजदूरी द्रव्य आय मे वृद्धि की दर राष्ट्रीय उत्पादकता की वृद्धि की दर से नीची रखी जानी चाहिये। रिपोर्ट मे उत्पादकता पर भारी जोर दिया गया है और कहा गया है कि जब भी मजदूरी बढती है तो वह उत्पादकता मे होने वाली वृद्धि के प्रभाव को निरस्त कर देती है। अत इस बात की अत्यधिक आवश्यकता है कि बचत-अभियान चलाने के लिये प्रभावी कार्यक्रम लागू किये जायें। समिति ने राष्ट्रीय न्यूनतम आय (National minimum income) के लक्ष्य की बात को अस्वीकार कर दिया और कहा कि इसे सरलता से प्राप्त कर सकना सम्भव नही है। रिपोर्ट मे आय की सीमा निर्धारित करने के विचार को भी स्वीकार नही किया गया और कहा गया कि इससे कर वचन (tax evasion) को प्रोत्साहन मिलेगा। रिपोर्ट म इस बात पर जोर दिया गया है कि लाभोपार्जन की दरें ऐसी होनी चाहियें कि जिससे प्रगति हो और बचतो का प्रोत्साहन मिले। वास्तविकता यह है कि आय के किन्ही भी सिद्धान्तो का निर्धारण करना तो बडा सरल है किन्तु उन्हे कारगर ढग से लागू करना सर्वाधिक कठिन काम है। देश के ग्रामीण भागो मे क्षेत्र, फसल एव मौसमो की भिन्नता के अनुसार मजदूरियो मे भी भारी विभिन्नतायें पाई जाती हैं। स्वय अपना काम कर रहे लोगो को किसी भी आय नीति से बाहर नही रखा जा सकता। फलत एक सुविचारपूर्ण आय-मूल्य मजदूरी नीति (income-price wages policy) का भी शेष आर्थिक गतिविधियो से पृथक नही माना जा सकता। इसको सामान्य आर्थिक नीति के एक अभिन्न अग के रूप मे ही देखा जाना चाहिये। अत किसी भी आय नीति का निर्धारण करने से पूर्व इस सम्बन्ध मे विस्तृत अध्ययन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है कि आर्थिक प्रगति पर उसके क्या सम्भावित प्रभाव होगे। आय नीति निश्चित रूप स ही ऐसी होनी चाहिय जो सम्पूर्ण आर्थिक ढाचे के अनुकूल हो तीव्र गति से होने वाले विकास की जरूरता को पूरा करती हो और आय तथा धन का अपेक्षाकृत अधिक न्यायोचित वितरण करती हो।

उचित मजदूरी और आधार वर्ष की समस्या
(Problem of the Base year and Fair Wages)

उचित मजदूरी का निश्चित करने में आधार वर्ष की समस्या का भी समाधान करना पड़ेगा। अनेक व्यक्तियों का सुझाव है कि १९३९ से १९४८ तक के समय के बीच कोई वर्ष आधार वर्ष नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि उस समय असाधारण आर्थिक परिस्थितियाँ थी। उचित मजदूरी समिति के विचारों के अनुसार केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा लिए गए आधार वर्ष को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि १९३९ के निर्वाह लागत सूचकांक को १०० मान कर १६० से १७५ तक निर्वाह लागत सूचकांकों के आधार पर मूल मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए। किन्तु अब प्रश्न उठता है कि क्या महँगाई-भत्ता दिया जाना चाहिए? जब तक कि निर्वाह लागत १६० से १७५ के स्तर तक न आकर जाय तब तक तो निर्वाह लागत में वृद्धि का आशिक या पूरे तौर पर पूरा करने के लिए महँगाई भत्ता दिया ही जाना चाहिए। यह भी प्रश्न उठता है कि विभिन्न वर्गों के श्रमिकों के लिए १०० % क्षतिपूर्ति होनी चाहिए। परन्तु ऊँची मजदूरी पाने वाले श्रमिक वर्गों के लिए क्षतिपूर्ति की दर कम होनी चाहिए। इस क्षतिपूर्ति की सीमा भी वेतन दर आदि पर आधारित होनी चाहिए।

उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था
(Machinery for Fixation of Fair Wages)

जहाँ तक उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था स्थापित करने का सम्बन्ध है, समिति इसके लिए मजदूरी बोर्डों (Wage Boards) को स्थापित करने के पक्ष में थी। प्रत्येक राज्य में लिए एक प्रदेशीय बोर्ड होना चाहिए जिसमें स्वतन्त्र सदस्य एवं बराबर संख्या में मालिकों व श्रमिकों के प्रतिनिधि हों। प्रदेशीय बोर्ड के अतिरिक्त प्रत्येक मुख्य उद्योग में, जहाँ कि मजदूरी निर्धारित करने के लिए चुना गया हो, क्षेत्रीय बोर्ड होना चाहिए। क्षेत्रीय बोर्ड के कार्य का भी प्रदेशीय बोर्ड द्वारा समन्वय किया जाना चाहिए। अन्त में एक केन्द्रीय अपीलीय बोर्ड होना चाहिए जिसके सम्मुख मजदूरी बोर्डों द्वारा दिये गये निर्णयों की अपील की जा सके।

सन् १९५० का उचित मजदूरी विधेयक
(Fair Wages Bill of 1950)

यहाँ उल्लेख किया जा सकता है कि उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक तैयार करके अगस्त, १९५० में विचार सभा में समक्ष प्रस्तुत किया गया था। किन्तु अब वह व्यपगत (Lapse) हो गया है। सबसे प्रथम तो इस विधेयक में फैक्ट्री एवं खानों में लगे श्रमिकों में उचित मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था थी। इस विधेयक में दी गई उचित मजदूरी में एक मूल दर तथा निर्वाह लागत भत्ता का समायोजन था किन्तु यह समायोजन तभी तक था जब तक

निर्वाह लागत सूचकांक १८५ से २०० तक की स्थिर सीमा से अधिक रहे (१९३९ के निर्वाह लागत सूचकांक को १०० मानकर)। निर्वाह भत्ता, समय-समय पर विशिष्ट राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित आरोही स्तरों (Graduated Scale) के अनुसार निश्चित होता था। विधेयक में मजदूरी अन्तरों को निश्चित करने के लिये समयोपार की गणना के लिये, पुरुष एवं स्त्रियों को समान मजदूरी देने के सिद्धान्त को निश्चित करने के लिये और समय-समय पर उचित मजदूरी को दोहराने के लिये व्यवस्था थी। उचित मजदूरी का निर्धारण करने की व्यवस्था उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के अनुसार ही निश्चित की गई थी। कर्मचारियों के लिये मजदूरी की उचित दर किसी भी स्थिति में १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत दी गई मजदूरी की न्यूनतम दरों से कम नहीं हो सकती थी। न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा उसी प्रकार दी गई थी जिस प्रकार की उचित मजदूरी समिति ने दी थी। उचित मजदूरी की परिभाषा एवं उद्योग की भुगतान क्षमता के प्रश्न भी उसी प्रकार लिये गये थे जिस प्रकार की समिति ने सिफारिश की थी। मजदूरी की उचित दर भी उस उचित कार्य की मात्रा से सम्बन्धित की गई थी, जिसको करने की श्रमिकों से आशा की जाती थी। मजदूरी कार्य की मात्रा के अनुसार निश्चित की जाने की व्यवस्था थी और अगर श्रमिक निर्धारित समुचित कार्यभार सम्भालने में असफल रहे तो उनके आधार पर वह बर्खास्त किया जा सकता था। जब उचित मजदूरी देने का विषय बोर्ड के विचाराधीन हो उस समय हड़ताल करने तथा तालाबन्दी घोषित करने पर रोक लगाई गई थी।

सरकार ने अनेक बार उचित मजदूरी विधेयक को संशोधित करने तथा उसे प्रस्तुत करने के विषय पर विचार किया है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को पर्याप्त नहीं समझा जाता क्योंकि वह उन बड़े उद्योगों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित नहीं करता जिनमें मजदूरी सम्बन्धी विवाद भी अन्य साधारण औद्योगिक विवादों के समान समझ लिये जाते हैं। फिर भी उद्योगपतियों ने इसका विरोध किया है और बढ़ती हुई लागत की आवाज उठाई है। यह कहा जाता है कि न्यूनतम मजदूरी का लागू करने में भी कठिनाई हुई है और अब उचित मजदूरी निश्चित करना तो एक हास्यास्पद-सा ढंग होगा। परन्तु उचित मजदूरी निश्चित करने की वाञ्छनीयता इतनी अधिक है कि इस कार्य को अब अधिक समय के लिये स्थगित नहीं करना चाहिये। मजदूरी बोर्डों की नियुक्ति करते समय सरकार ने उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया है, ताकि मजदूरी निर्धारण करते समय इस रिपोर्ट में दिये गये सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाये। इसके अतिरिक्त, सरकार ने मजदूरी निर्धारण में निम्नलिखित बातों पर विचार करने के लिये कहा है—(क) विकासोन्मुख आर्थिक व्यवस्था (Developing Economy) में उद्योग की आवश्यकताएँ, (ख) सामाजिक न्याय की माँग और (ग) मजदूरी अन्तरों का समजन इस प्रकार से हो कि श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने में प्रोत्साहन मिले।

पंचवर्षीय आयोजनायें तथा मजदूरी
(Wages and the Five Year Plans)

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में मजदूरी नीति की महत्ता पर समुचित रूप से बल दिया गया था। परन्तु आयोजना मुद्रा-स्फीति के वातावरण में बनी थी। इस कारण आयोजना आयोग के विचारानुसार मजदूरी में वृद्धि केवल साधारण रूप से कम आय वाले उद्योगों के अतिरिक्त अधिक सहायक न थी क्योंकि उसका प्रभाव उत्पादन मूल्य और साधारण मूल्य स्तर पर पड़ता। अत लाभ के वितरण पर रोक लगाने के साथ-साथ मजदूरी पर रोक लगाने का भी पक्ष लिया गया। आयोजना में यह भी सिफारिश थी कि सरकारी एवं निजी उद्योगों में मजदूरी समान रहनी चाहिये त्रिदलीय आधार पर बने स्थायी मजदूरी बोर्ड होने चाहिये। मजदूरी की असमानतायें दूर की जानी चाहिये और मजदूरी का समानीकरण होना चाहिये तथा न्यूनतम मजदूरी विधान को प्रभावात्मक रूप में कार्यान्वित किया जाना चाहिये।

तथापि वास्तव में न तो मजदूरी पर और न ही लाभों पर रोक लगायी गयी और अधिकतर सिफारिशें ता केवल कागज पर ही लिखी रह गयी। अतः द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इस बात पर बल दिया गया कि मजदूरी सम्बन्धी ऐसी नीति बनाई जानी चाहिये जो ऐसे स्तर की स्थापना करे जिसका उद्देश्य वास्तविक मजदूरी में वृद्धि करना हो। श्रमिकों को उचित मजदूरी पाने के अधिकार को मान्यता दी गई थी। किन्तु उसको व्यावहारिक रूप में लाने के किसी स्थायी नियम को नहीं बनाया जा सका था। मजदूरी स्तर निर्धारित करने में एक बड़ी कठिनाई यह आती है कि मजदूरी वृद्धि में सीमान्त इकाइयाँ रुकावट उत्पन्न कर देती है। यदि मजदूरी निश्चित करने का आधार प्रत्येक केन्द्र की औसत इकाई की आर्थिक स्थिति को लिया जाय तो उचित मजदूरी को प्राप्त करने की ओर अधिक शीघ्रता से उन्नति हो सकती है। किन्तु सीमान्त इकाइयों को उद्योग में बनाये रखने के लिये कुछ पग उठाये जाने आवश्यक है। इस कार्य को करने की एक पद्धति यह है कि इन सीमान्त इकाइयों को मिलाकर एक बड़ी इकाई में परिवर्तित कर दिया जाय। इस बात पर बल दिया गया था कि मजदूरी में सुधार मुख्यतः उत्पादकता में वृद्धि द्वारा ही हो सकता था और इसके लिये विभिन्न पग उठाये जाने चाहियें। जो भी लाभ हो उनमें श्रमिकों को बराबर के भाग का आश्वासन दिया जाना चाहिये। समाज की समाजवादी व्यवस्था के ध्येय की पूर्ति के लिये एक सम्पूर्ण मजदूरी नीति का निर्माण करने के हेतु एक मजदूरी आयोग की नियुक्ति करने की भी सिफारिश की गई थी परन्तु इसके पूर्व मजदूरी के आँकड़ों की गणना करने का सुझाव था। इस बीच मजदूरी सम्बन्धी विवादों को निबटाने के लिये त्रिदलीय मजदूरी बोर्ड स्थापित किये जाने चाहिए।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में, जहाँ तक मजदूरियों का सम्बन्ध है, यह कहा गया था कि सरकार ने इस बात की जिम्मेवारी ली है कि वह उद्योग तथा कृषि

में मजदूरों के कुछ ऐसे वर्गों को न्यूनतम मजदूरी दिलाने की व्यवस्था करेगी जो कि आर्थिक दृष्टि से कमजोर है तथा जिन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। परन्तु न्यूनतम मजदूरी अधिनियम अनेक मामलों में प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। यदि इसको अच्छी प्रकार से लागू किया जाना है तो यह जरूरी है कि निरीक्षण व्यवस्था मजबूत बनाई जाये। योजना में कहा गया था कि प्रमुख उद्योगों में मजदूरी निर्धारण का कार्य सामूहिक सौदे की प्रक्रिया, सुलह, पंच निर्णय तथा न्याय-निर्णय पर छोड़ दिया जाता है। परिस्थितियों के अनुसार मजदूरी बोर्डों का विस्तार अन्य उद्योगों में भी किया जाना चाहिए। योजना में मजदूरी-निर्धारण के उन सिद्धान्तों का भी उल्लेख किया गया जो कि उचित मजदूरी समिति द्वारा निर्धारित किये गये थे। और उन आदर्श सिद्धान्तों का भी हवाला दिया गया जो भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा प्रस्तावित किये गये थे और जिनमें संशोधन किया गया था और यह स्वीकार किया गया था कि न्यूनतम मजदूरियाँ निश्चित करने के अलावा इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उचित मजदूरियाँ निर्धारित की जायें जिससे कुशलता की वृद्धि को प्रोत्साहन मिले तथा माल की उपज व किस्म में सुधार हो। यह भी कहा गया कि एक ओर तो श्रमिक-वर्ग की मजदूरियाँ और दूसरी ओर प्रबन्ध के उच्च स्तरों के वेतनों के बीच भारी असमानतायें विद्यमान हैं। योजना में इस बात का भी उल्लेख किया गया कि एक ऐसे बोनस आयोग की नियुक्ति की जाए जो बोनस के दावों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करे और बोनस की अदायगी के लिए निर्देशक सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन करे।

चौथी पंचवर्षीय योजना के मसौदे में कहा गया था कि योजनाबद्ध विकास की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि एक एकीकृत आय-नीति अपनाई जाए। मूल्य स्थिरता का प्रश्न मजदूरी नीति का आधार है क्योंकि वर्तमान समय में मजदूरियाँ बढ़ाने का दबाव प्रत्यक्षतः तभी डाला जाता है जबकि निर्वाह-व्यय की कीमतें बढ़ती हैं। सिद्धान्त रूप में, यह ठीक है कि मँहगाई भत्ते का निर्वाह-व्यय के साथ सम्बन्धन कर दिया जाता है, यद्यपि निर्वाह-व्यय की वृद्धियों का सभी स्तरों पर पूर्ण निराकरण करना सम्भव नहीं होता। कुल मजदूरी के तीन अंग होते हैं, अर्थात् मूल अथवा न्यूनतम मजदूरी निर्वाह-व्यय से सम्बन्धित तत्व और उत्पादकता में वृद्धि से सम्बन्धित तत्व। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिये कि मजदूरियों का मानकीकरण हो जाये और मजदूरियों के अन्तर कम हो जायें, विशेष रूप से उन वर्गों के श्रमिकों के सम्बन्ध में जिनकी मजदूरियाँ वर्तमान में अत्यधिक कम हैं। प्रयत्न इस बात के किये जाने चाहियें कि ऐसी मजदूरी प्रणालियों के क्षेत्र का विस्तार किया जाये जो परिणामों द्वारा अदायगी पर आधारित हों। मजदूरी-बोर्डों के कार्यों की तथा उनके द्वारा अपनाये जाने वाले सिद्धान्तों की भी सावधानी के साथ समीक्षा की जानी चाहिये। उत्पादन के ऊँचे स्तर पर पहुँचने के लिये महान् प्रयास किया जाना चाहिए और मालिकों एवं श्रमिकों द्वारा सयत्न

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि ४४ मुख्य उद्योगों में जो कारखानों, बागान और खानों से सम्बन्धित हैं, दो मजदूरी सर्वेक्षण (Wage surveys) किये गये थे। इनका उद्देश्य व्यावसायिक मजदूरी के विश्वसनीय आंकड़े एकत्रित करना था। ये सर्वेक्षण सन् १९५८/५९ में तथा १९६३/६४ में किये गये थे। श्रम ब्यूरो ने इनकी रिपोर्टें भी जारी कर दी हैं। तृतीय व्यावसायिक मजदूरी सर्वेक्षण ८१ उद्योगों में किया गया है। यह सर्वेक्षण सन् १९७० से १९८८ तक चार चरणों में सम्पन्न किया गया। इसकी अंतिम रिपोर्ट तैयार की जा रही है।

इसके अतिरिक्त मजदूरी में सम्बन्धित एवं स्टायरिंग दल की भी स्थापना की गई है जिसमें केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त व्यक्ति तथा श्रमिक एवं मालिकों के प्रतिनिधि हैं। यह दल मजदूरी, उत्पादन व मूल्य सम्बन्धी प्रवृत्तियों का अध्ययन करता तथा यह दल भारत में उद्योग और श्रम के अनुसार एक मजदूरी का नक्शा बनाने के लिये एवं आंकड़े एकत्रित करता जिनसे मजदूरी निश्चित करने के लिये मुख्य सिद्धान्त बनाये जा सकें और प्राधिकारियों को मजदूरी निर्धारित करने में सहायता मिल सके। इस स्टीयरिंग दल की बहुत सी सभायें हो चुकी हैं। दिसम्बर १९६१ में एक बोनस आयोग की स्थापना की गई थी और इसके सिफारिशों को कार्यरूप देने के लिये सन् १९६५ में बोनस अदायगी अधिनियम पास किया गया जिस पर आगे विचार किया गया है।

एक और उल्लेखनीय कार्य यह है कि भारत सरकार द्वारा वेतन आयोगों की नियुक्ति की गई जो कि केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के वेतन-ढांचा, महंगाई भत्ता एवं नौकरी की दशाओं और अन्य इसी प्रकार के विषयों में सम्बन्धित हैं। एक और महत्वपूर्ण घटना मार्च १९५८ में यह हुई कि उच्चतम न्यायालय ने श्रमजीवी पत्रकारों के लिये वेतन बोर्डों के निर्णयों को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि वे गैरकानूनी थे। अतः में जून १९५८ में एक अध्यादेश निकाला गया। इस अध्यादेश में एक समिति के निर्माण की व्यवस्था थी जिसकी सहायता से केन्द्रीय सरकार श्रमजीवी पत्रकारों के लिये वेतन की दरों को निश्चित कर सके। यह अध्यादेश सितम्बर १९५८ में एक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। एक समिति भी स्थापित कर दी गई। इसने अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कर दी हैं जिनको सरकार ने कुछ संशोधनों के बाद स्वीकार कर लिया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि श्रमिक संघों ने जब श्रमिकों की मजदूरी में २५ प्रतिशत वृद्धि की मांग की है जबकि मालिकों के संघों ने मजदूरी कम करने की तथा मजदूरी को उत्पादकता से सम्बन्धित करने की मांग की है। मजदूरी दरों को जड़ करने (Wage Freeze) के विषय में भी कुछ आवाज उठाई गई है पर उनको जड़ना को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता। विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों को अपनाये बिना विशेषकर आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों पर नियन्त्रण किये बिना, मजदूरी जड़ नहीं की जा सकती। जनवरी १९६० में द्वितीय श्रम [illegible] ने इस बात का सुझाव दिया था कि अन्ततः भारत के औद्योगिक श्रमिकों

के लिये ११० रु० मासिक न्यूनतम मजदूरी होनी चाहिये। नवम्बर १९६६ में श्रम नीति पैनल ने भी यह सुझाव दिया कि कम से कम कुछ एम चुने हुए उद्योगों में, जहाँ कि मजदूरियाँ बहुत कम हैं राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी अवश्य निश्चित की जानी चाहिये।

मार्च १९७३ में श्रम नीति समिति द्वारा की गई सिफारिशों के परिप्रेक्ष्य में, श्रम मन्त्रालय में एक मजदूरी कोष्ठ (Wage Cell) स्थापित किया गया है। यह कोष्ठ (सेल) मजदूरी के निर्धारण राष्ट्रीय मजदूरी नीति के निर्माण तथा एक राष्ट्रीय मजदूरी ढाँचे मे सम्बन्धित मामलों की देखभाल करता है। कोष्ठ (सेल) को जो कार्य सौंपे गये हैं उनमें मुख्य हैं (१) सरकारी क्षेत्र के उद्यमों एवं भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों सहित विभिन्न उद्योगों में मजदूरियों भत्तों एवं अन्य सम्बन्धित मामलों के ऐसे पर्याप्त आँकड़े तैयार करना जो एकदम काम में लाये जा सकें तथा (२) असंगठित एवं कृषि श्रमिकों की तथा स्त्री व बाल श्रमिकों की समस्याओं का अध्ययन करना।

मजदूरी अन्तर और मजदूरी समानीकरण

(Wage Differentials and Standardisation of Wages)

भारत में मजदूरी से ही सम्बन्धित एक अन्य समस्या मजदूरी अन्तर और मजदूरी का समानीकरण है जिसका अध्ययन मजदूरी नीति के निर्माण के लिए काफी महत्त्व का है। मजदूरी-अन्तरों को कम करने की आवश्यकता को सामान्यतः स्वीकार किया जाता है यद्यपि इस बात पर भी सामान्य सहमति है कि मजदूरी के अन्तरों को कम करने की प्रक्रिया का इतना विस्तार नहीं होना चाहिए कि उससे कुशलता-वृद्धि पर अप्रेरणात्मक प्रभाव पड़े। मजदूरी अन्तर अनेक प्रकार के हो सकते हैं, उदाहरणतः—क्षेत्र, उद्योग, व्यवसाय, कुशलता, लिंग आदि के कारण अन्तर।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारत में मजदूरी राज्य राज्य में, उद्योग-उद्योग और व्यवसाय-व्यवसाय में भिन्न है तथा वर्ष-वर्ष में बदलती भी रहती है। मजदूरी स्तर का उपरोक्त विवेचन भी इस बात को स्पष्ट करता है। प्रत्येक राज्य के प्रत्येक उद्योग में मजदूरी दरों में अन्तर पाया जाता है परन्तु क्षेत्रीय अन्तर अधिक स्पष्ट है। कुछ श्रमिक वर्गों की न्यूनतम मूल मजदूरी दरें देखने से ज्ञात होता है कि अन्य ऐसे क्षेत्रों की अपेक्षा, जहाँ सूती उद्योग फैले हुए हैं, बम्बई की सूती मिलों में मजदूरी दरें अधिक हैं। असमानी तथा उजरत की दरों में भी क्षेत्र-क्षेत्र में अन्तर है जिसके कारण स्त्री और पुरुषों की निवल (Net) आय में भी अन्तर पाया जाता है। कुशल, अर्द्धकुशल तथा अकुशल श्रमिकों की मजदूरियों में भी भिन्नता पाई जाती है और इनकी मजदूरी में अन्तर अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक है। भारत में मजदूरी की दरों के अध्ययन के अन्तर्गत, जिसका कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विभिन्न वर्षों में श्रमिकों की औसत वार्षिक आय [illegible]

चलता है कि विभिन्न उद्योगों में मजदूरियों में भारी असमानतायें हैं।

महँगाई भत्ता भी स्थान स्थान पर भिन्न है तथापि उसकी दर का आधार भी अलग अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न पाया है। कुछ स्थानों में तो महगाई भत्ता निर्वाह व्यय से सम्बन्धित है तथा उसकी दर विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिये पृथक पृथक है। कुछ में सभी में महगाई भत्ता समान है जबकि अन्य स्थानों में महगाई भत्ता आय के समानुपात में घटता बढ़ता है। यह कभी कभी मालिकों के संघों द्वारा भी निर्धारित किया जाता है और केवल उन्हीं उद्योगों में लागू होता है जिनके मालिक संघ के सदस्य है। यह समय समय पर औद्योगिक अधिकरणों के पंचाटों द्वारा भी निर्धारित किया गया है। विभिन्न केन्द्रों में उपभोक्ता मूल्यों के जो सूचकांक है उनके सन्दर्भ में महगाई भत्ते को अब निर्वाह व्यय से सम्बद्ध कर दिया गया है। इन सब परिस्थितियों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ है कि मजदूरी में विभिन्न क्षेत्रों में बहुत अधिक असमानता आ गई है।

श्रमिकों की औसत आमदनी भी राज्य राज्य में भी पृथक पृथक है। जूट उद्योग में मिल मजदूरी की दर पश्चिमी बंगाल में सर्वाधिक है जबकि उत्तर प्रदेश की जूट मिलों के श्रमिकों की औसत आय बोनस मिलने के कारण अधिक है। बिहार एवं तमिलनाडु की जूट मिलों के श्रमिकों की आय कम है। पश्चिमी बंगाल के श्रममन्त्री के जनवरी १९६० में दिये गए वक्तव्य के अनुसार चाय के बागान में श्रमिकों को १.८४ पैसे प्रतिदिन मिलते हैं। जूट उद्योग में ६७.१८ रुपये प्रति माह मजदूरी है। इन्जीनियरिंग उद्योग में ७१ रुपये प्रतिमाह मजदूरी है परन्तु बम्बई के कपड़ा मिलों में महगाई भत्ते के अतिरिक्त श्रमिकों को १२४.९५ प्रति माह मिलते हैं। अन्य उद्योगों में मजदूरी दरों की असमानता इसी प्रकार प्रचलित है। खानों में मजदूरी दरों में इतनी अधिक असमानता नहीं है जितनी कि फैक्टरी की मजदूरी दरों में है फिर भी विभिन्न खानों और विभिन्न क्षेत्रों में मूल मजदूरी तथा अर्जित आय में अन्तर है। बागान में भी मजदूरी में काफी अन्तर पाया जाता है।

सन १९५८-५९ तथा १९६३-६५ में श्रम ब्यूरो द्वारा व्यावसायिक मजदूरियों के जो दो सर्वेक्षण किये गए उनके परिणामों से भी मजदूरी के अन्तर के आँकड़े उपलब्ध होते हैं। प्रथम सर्वेक्षण के परिणाम तो प्रकाशित हो चुके हैं। सूती वस्त्र उद्योग में यदि हावड़ा तथा कलकत्ता को आधार (१००) माना जाय तो अग्रलिखित स्थानों पर आय के स्तर और अर्थात् इस प्रकार थे—बम्बई तथा बम्बई उपनगर (१८७) अहमदाबाद (१७६) इन्दौर (१६०) कानपुर (१५६) दिल्ली (१५३) नागपुर (१५१) मदुराई व रामनाथपुरम (१४२) कोयम्बटूर (१३३) शोलापुर (१२०) अवशिष्ट (१२०) तथा जयपुर तथा अजमेर (१२०)। बंगलौर में आय का स्तर नीचा (८७) था। जूट उद्योग में पश्चिम बंगाल के (१००) की तुलना में अवशिष्ट क्षेत्रों में आय का स्तर ८८ था। रेशमी वस्त्र उद्योग में जम्मू

व कश्मीर (१००) की तुलना मे अग्रलिखित स्थानो के आय-स्तर ऊँचे अर्थात् इस प्रकार थे—बम्बई तथा बम्बई उपनगर (३०७), अमृतसर (१७०) और अवशिष्ट (Residual) (१८८)। ऊनी वस्त्र उद्योग मे, अमृतसर के (१००) की तुलना मे आय का स्तर बम्बई तथा बम्बई उपनगर मे (२१०) तथा अवशिष्ट क्षेत्र मे (१४४) था। विभिन्न उद्योगो मे मजदूरी के अन्तरो के सम्बन्ध मे मजदूरी के स्तर पर जूट के (१००) की तुलना मे सूती वस्त्र मे (१२७), ऊनी वस्त्र मे (११६) तथा रेशमी वस्त्र के (१११) थे। इन्जीनियरिंग उद्योगों मे, कृषि-उपकरणो के निर्माण के उद्योग (१००) की तुलना मे मजदूरी का स्तर इस प्रकार है—कावले और ढिबरी के निर्माण मे (११६), धातु-निष्कर्षण व शुद्धिकरण (२०६) और जलयान-निर्माण व मरम्मत मे (२०८)। विभिन्न उद्योगो मे पृथक्-पृथक् केन्द्रो पर कुशल तथा अकुशल श्रमिको की औसत दैनिक मजदूरी मे भी अन्तर है।

मजदूरी के समानीकरण की आवश्यकता
(Necessity of Standardization of Wages)

मजदूरी दरो मे अन्तर किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। प्रत्येक फैक्टरी ने अपना अलग अलग कार्य-विभाजन विभिन्न वर्गो मे किया है तथा प्रत्येक वर्ग की अपनी विशेष शब्दावली बना ली गई है। विभिन्न उद्योगो मे उत्पादन हेतु विभिन्न कार्य-प्रणाली अपनाई जाती है और विभिन्न प्रकार की मशीनें कार्य मे लाई जाती हैं। इस प्रकार बहुत-सा समय, धन तथा श्रम व्यर्थ जाता है क्योकि अधिकतर श्रमिको के साथ अधिकाश प्रशासन कार्यों के लिये पृथक् पृथक् आधार पर व्यवहार करना पडता है। उद्योग-उद्योग मे, एक उद्योग की फैक्टरी-फैक्टरी मे तथा स्थान-स्थान मे मजदूरी दरो के अवैज्ञानिक अन्तर के कारण श्रमिको का एक फैक्टरी से दूसरी फैक्टरी मे प्रवसन होता रहता है। कभी-कभी मजदूरी के ये अन्तर औद्योगिक असन्तोष और विवाद के कारण बन जाते है। अधिकतर श्रमिक उत्तम मजदूरी देने वाले उद्योगो की ओर आकर्षित होते है तथा कम मजदूरी देने वाले उद्योगो मे श्रमिक मजदूरी मे वृद्धि की माँग करते है। यदि यह माँगें पूर्ण नहीं की जाती है तो हडताल आदि का अवलम्बन लिया जाता है, जिसके फलस्वरूप उद्योग की शान्ति भग हो जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन तथा लाभ मे कमी हो जाती है। इस प्रकार यदि मजदूरी की विभिन्न दरें प्रचलित होती है तो उनके कारण प्रत्येक फैक्टरी एव उद्योग मे न केवल अधिक समय, श्रम एव कर्मचारी लगाने पडते हैं वरन् ये विभिन्न दरें श्रमिको मे असन्तोष तथा श्रमिको एव मालिको मे विवाद का कारण बन जाती हैं क्योकि या तो श्रमिको को अपर्याप्त एव अपूर्ण मजदूरी दी जाती है अथवा श्रमिक विभिन्न दरो के कारण उत्पन्न जटिलता को समझ नहीं पाते।

अत श्रमिको एव मालिको दोनो की ही ओर से मजदूरी के समानीकरण की बहुत माँग की गई है। समानीकरण का सरल तौर पर अर्थ उद्योग मे समान

कार्य वर्ग के लिये मजदूरी के एक समान स्तर को निर्धारित करना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब श्रमिकों को एक समान मजदूरी दी जाये। समान स्तर की मजदूरी का अर्थ अधिकतम मजदूरी निश्चित करना भी नहीं है वरन् एक ऐसी उचित एवं सन्तोषपूर्ण मजदूरी निश्चित करना है जो व्यवहार में एक समान हो। समान स्तर की मजदूरी समानी तथा उजरत के अनुसार भी हो सकती है। समानी दर की मजदूरी का समानीकरण निश्चित करना तब सरल प्रतीत होता है जब अकुशल, अर्द्धकुशल, कुशल एवं बहुत कुशल श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित हो और यह मजदूरी उद्योग के विभिन्न व्यवसायों में कार्यानुसार, कुशलता के अनुसार तथा श्रमिक के अनुभव के अनुसार दी जाती हो। उजरत (कार्यानुसार मजदूरी) के समानीकरण में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि एक अपेक्षाकृत अधिक उत्तम श्रमिक अपने अधिक उत्पादन के कारण अधिक मजदूरी पाता है किन्तु इस उजरत मजदूरी देने से सम्बन्धित समस्या अधिकतर तकनीकी है। कार्य के प्रकार, पद्धति तथा उत्पादक वस्तुओं में अनेक भिन्नतायें होती हैं। अतः उन विभागों में, जहाँ उजरत मजदूरी दी जा रही हो, समानीकरण योजना को कार्य रूप देने में काफी तकनीकी ज्ञान होना आवश्यक है। फिर भी, विभिन्न मिलों में स्पर्धा को समाप्त करके औद्योगिक विवादों को कम करने तथा मिलों एवं श्रमिकों दोनों की ही कार्यकुशलता को बढ़ाने में मजदूरी का समानीकरण बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

मजदूरी समानीकरण का प्रश्न विशेषकर बम्बई के सूती मिल उद्योग में बहुत समय से विचार-विमर्श का विषय रहा है। १९२२ की बम्बई औद्योगिक विवाद समिति द्वारा भी इस विषय पर विचार किया गया था और १९२७ में कपड़ा टैरिफ बोर्ड ने इस पर पुनः विचार किया था। सन् १९२८ में एक योजना भी बनाई गई परन्तु उसे कार्यरूप न दिया जा सका। इस प्रश्न ने रॉयल श्रम आयोग का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया था। उनके शब्दों में, "जहाँ तक कुछ विशेष प्रमुख उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों का सम्बन्ध है वहाँ प्रमुख आवश्यकता एक जैसा कार्य करने वाले श्रमिक वर्गों के लिये मजदूरी के एक समान स्तर की है। हम इस बात से सन्तुष्ट हैं कि कुछ उद्योगों में उनकी आर्थिक स्थिति को विशेष हानि पहुँचाये बिना समान स्तर में मजदूरी दी जा सकती है, साथ ही साथ कम मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को एक उच्चतर मजदूरी स्तर भी प्रदान किया जा सकता है।" श्रम अनुसन्धान समिति ने भी भारतीय उद्योगों में अवैज्ञानिक मजदूरी स्तरों का उल्लेख किया था और सुझाव दिया था कि विभिन्न उद्योग तथा उद्योगों के समान केन्द्रों की इकाइयों में व्यवसायों के मानकरण एवं मजदूरी के समानीकरण की समस्या शीघ्रतापूर्वक सुलझाई जानी चाहिये। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में भी सिफारिश की गई थी कि मजदूरियों की असमानताओं को दूर किया जाना चाहिये और उनका समानीकरण किया जाना चाहिये। चौथी आयोजना के मसौदे में भी

इस बात पर जोर दिया गया कि मजदूरियों का समानीकरण किया जाये और मजदूरियों के अन्तरों को दूर किया जाये, विशेष रूप से श्रमिकों के उन वर्गों में जिनकी मजदूरियाँ वर्तमान में अत्यधिक कम हैं।

सूती मिल उद्योग आदि में मजदूरी का समानीकरण
(Standardisation of Wages in the Cotton Mill Industry, Etc.)

केवल सूती मिल उद्योगों में मजदूरी के समानीकरण में कुछ प्रगति हुई है। बम्बई औद्योगिक न्यायालय के पचाट ने बम्बई तथा इसके उपनगरों के सूती मिल उद्योगों के विषय में १९४७ में एक अस्थायी योजना बनाने की व्यवस्था की थी जिसका निरीक्षण इसी कार्य हेतु निर्मित एक समानीकरण समिति द्वारा किया जाना था। बम्बई औद्योगिक न्यायालय द्वारा विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिये मजदूरी की समानीकरण दरें अहमदाबाद एवं शोलापुर की सूती मिलों के लिये निश्चित की गई हैं। सन् १९४६ के औद्योगिक सम्बन्धी अधिनियम के अन्तर्गत सूती कपड़ा एवं रेशम की फैक्टरियों में मजदूरी निश्चित करने के लिये मजदूरी बोर्ड बना दिये गये हैं। मद्रास पचाट ने राज्य की समस्त सूती मिलों के लिये समानीकरण योजना बनाने के हेतु एक मजदूरी बोर्ड तथा समानीकरण समिति नियुक्त करने का सुझाव दिया था। उसके द्वारा सुझाई गई योजना को कार्यान्वित कर दिया गया है। बंगाल के औद्योगिक न्यायालय के पचाट ने विभिन्न व्यवसायों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी थी किन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण समानीकरण योजना नहीं बनाई जा सकी। इन्दौर में विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिये मजदूरी दरों का समानीकरण कर दिया गया है। मध्य प्रदेश की सूती कपड़ा मिलों में भी औद्योगिक अधिकरण तथा समानीकरण समिति के सुझाव के आधार पर मजदूरी तथा कार्य-भार का समानीकरण कर दिया गया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि द्वितीय पचवर्षीय आयोजना की सिफारिशों पर कई उद्योगों के लिये मजदूरी बोर्डों की स्थापना की गई थी। इनका कार्य उचित मजदूरी के सिद्धान्तों पर आधारित मजदूरी ढाँचा बनाना तथा उद्योग एवं सामाजिक न्याय को ध्यान में रखकर मजदूरी के अन्तरों को इस प्रकार दूर करना था जिससे कि श्रमिकों को अपनी कुशलता में वृद्धि करने का प्रोत्साहन मिले, तथा फल के अनुसार मजदूरी देने की प्रणाली की वाछनीयता के प्रश्न पर सिफारिश करना था। ऐसे मजदूरी बोर्ड क्षेत्रीय मजदूरी अन्तरों में छानबीन कर सकते हैं और जहाँ तक सम्भव हो सके अन्त क्षेत्रीय समानता लाने के लिये आवश्यक पग उठा सकते हैं। एक सुझाव यह भी हो सकता है कि विभिन्न उद्योगों के विभिन्न मजदूरी बोर्डों के कार्यों का समन्वय करने के लिये एक अखिल भारतीय वेतन बोर्ड होना चाहिये जोकि विभिन्न बोर्डों के निर्णयों का अवलोकन कर सके तथा मजदूरी के समानीकरण में सहायता दे सके।

१९४६–४८ की उ० प्र० श्रम जाँच समिति ने भी मजदूरी दरों के समानीकरण की एक योजना बनाई थी जिसको केवल तीन उद्योगों—अर्थात् सूती, चीनी एवं बिजली—में लागू करने की सिफारिश की थी। १९५० में चीनी उद्योग में मजदूरी समानीकरण के लिये भी एक समिति नियुक्त की गई थी, परन्तु इस विषय में अब तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। इस समय सरकार में मजदूरी समानीकरण का उत्साह प्रतीत होता है। यह इस बात से प्रकट है कि भारतीय उद्योगों में न्यूनतम एवं उचित मजदूरी तथा मजदूरी बोर्डों को स्थापित करने के लिये सरकार ने कुछ कानूनी एवं प्रशासनीय पग उठाये हैं, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है।

समान कार्य के लिये समान मजदूरी
(Equal Pay for Equal Work)

यह भी उल्लेखनीय है कि "समान कार्य के लिये समान मजदूरी" का सिद्धान्त अपने विरोधी सिद्धान्त "असमान कार्य के लिये असमान मजदूरी" के साथ-साथ मजदूरी की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। फिर भी "समान कार्य के लिये समान मजदूरी" का अर्थ एक जैसे कार्य के लिये बराबर मजदूरी देना है और इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी प्रकार के श्रमिकों को एक-सी ही मजदूरी दी जाये। यह भी नहीं सोचना चाहिये कि इसका यह अर्थ है कि एक से उत्पादन के लिये या एक-से प्रयत्न एवं परिश्रम के लिये समान मजदूरी दी जाये क्योंकि दोनों दशाओं में उत्पादन के स्तर या प्रयत्नों एवं परिश्रम की मात्रा को नापना कठिन है और इसलिये इस सिद्धान्त पर मजदूरी निश्चित करने में बहुत अधिक कठिनाई होगी। हो सकता है कि बहुत से व्यक्ति एक-सा कार्य करते हों अर्थात् उनके कार्य की दशा, यन्त्र, कच्चा माल आदि एक से हों तथा उत्पादित वस्तुयें भी समान हों फिर भी उनकी कार्यकुशलता एवं अनुभव में काफी अन्तर हो सकता है। अतः उनके उत्पादन की मात्रा एवं गुण में भी अन्तर हो सकता है। इसलिये विभिन्न रोजगारों में विभिन्न स्थानों पर सदैव ही विभिन्न मजदूरी रहेगी और समानीकरण का अर्थ यह नहीं है कि सब स्थानों पर मजदूरी को समान कर दिया जाये। इसका अर्थ तो केवल यह हो सकता है कि वैज्ञानिक आधार पर मजदूरी निश्चित करने का समान स्तर लागू कर दिया जाये और मजदूरी में जो असमानता है उसे इस प्रकार कम कर दिया जाये कि उत्पादकता और कुशलता बढ़ाने में जो प्रोत्साहन मिलता है वह बना रहे। मजदूरी विभिन्न रोजगारों, व्यवसायों और स्थानों में अलग-अलग होती है। इसके अनेक कारण होते हैं, जैसे—किसी रोजगार के कार्य में रुचि या अरुचि होना, नौकरी का स्थायी और अस्थायी होना, पदोन्नति की सम्भावना, उत्तम वेतन-स्तर, पद का सम्मान, अतिरिक्त आय के साधनों की सम्भावना, कार्य-दशायें, अतिरिक्त सुविधायें, जैसे—बिना किराये के मकान, आदि, रोजगार खोजने में कठिनाइयाँ इत्यादि। इन सब कारणों से ही कुछ रोजगारों में मजदूरी कम है और कुछ में अधिक। इसके अतिरिक्त मूल्यों में अन्तर, विभिन्न

स्थानों में निर्वाह खर्च में अन्तर तथा उद्योग की दशाओं में अन्तर आदि भी मजदूरी में अन्तर उत्पन्न कर देते है। जैसा कि प्रथम पचवर्षीय आयोजना मे उल्लेख किया गया था। मजदूरी मे विभिन्नता निम्नलिखित कारणों से होती है (i) कुशल श्रमिकों की आवश्यकता के अनुसार, (ii) कार्य के भार तथा थकान के अनुसार, (iii) प्रशिक्षण और अनुभव के अनुसार, (iv) उत्तरदायित्व की सीमा के अनुसार, (v) कार्य के लिये इच्छित, मानसिक तथा शारीरिक आवश्यकताओ के अनुसार, (vi) कार्य की अरुचि के अनुसार, (vii) कार्य मे निहित जोखिम के अनुसार। इन समस्त कारणों को पचवर्षीय आयोजनाओ में सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के अनुसार मापक (Standard) मजदूरी निश्चित करते समय ध्यान मे रखना चाहिये।

पुरुषो एवं स्त्रियो की मजदूरी
(Wages of Men and Women)

सदैव से ही समान कार्य के लिये स्त्री श्रमिक को पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा कम मजदूरी देने की प्रवृत्ति रही है। स्त्रियाँ प्रकृति से ही पुरुषो के समान शारीरिक कार्य मे कुशल नही होतीं तथा वे अधिक समय तक कार्य नही करती। स्त्रियाँ परिवार की आय मे वृद्धि करने के लिये ही कार्य करती हैं और उन पर पुरुषो के समान कोई उत्तरदायित्व भी नही होता। स्त्रियाँ अपने कार्य को जीवन वृत्ति नही समझती और बहुत-सी अविवाहित स्त्रियाँ विवाह के पश्चात् कार्य छोड देती है। इसी कारण स्त्रियाँ स्वय को श्रमिक सघो में सगठित नहीं कर पाती तथा सयुक्त प्रयत्नो द्वारा ऊँची मजदूरी प्राप्त नही कर पाती। मालिको को इनके लिये अनेक प्रकार के हित देने पडते है तथा बहुत सी सुविधायें उपलब्ध करनी पडती है और मालिक पुरुष श्रमिकों के समान उनके साथ व्यवहार नही कर सकते। उन कार्यों में जिनमे स्त्रियाँ कार्य कर सकती है, स्त्रियो की पूर्ति भी अधिक होती है, अत उनको मजदूरी भी कम मिलती है।

आधुनिक प्रगति और स्त्रियो की अधिक शिक्षा के साथ-साथ स्त्री एव पुरुषों के लिये समान मजदूरी की माँग बढ रही है क्योकि स्त्रियाँ अपने को पुरुषो से हीन नही समझती। भारतीय सविधान का एक नीतिनिर्देशक सिद्धान्त यह भी है कि "स्त्री एव पुरुषो को समान कार्य के लिये समान मजदूरी दी जाये।" अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने भी इस विषय पर एक अभिसमय पारित किया है जिसको भारत ने भी अपना लिया है। परन्तु हमारा यह विचार है कि व्यावहारिक रूप से यह सिद्धान्त उचित नही है। ऊपर दिये गये कारको के परिणामस्वरूप मालिक को सदा स्त्रियो को काम मे लगाने से हानि होती है। अत स्वाभाविक ही है कि वह उनको कम मजदूरी देता है। निस्सन्देह सामाजिक जीवन में स्त्री एव पुरुष दोनो से समान स्तर पर ही व्यवहार अवश्य किया जाना चाहिये, परन्तु इस सिद्धान्त को औद्योगिक मजदूरी पर लागू करने का अर्थ केवल स्त्रियो के रोजगार में कमी

वर्ष	आय के सामान्य सूचकांक	अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक	असल आय के सूचकांक
१	२	३	४
	(आधार वर्ष १६३६ १००)		
१६३६	१०० ०	१००	१००·०
१६४०	१०५ ३	६७	१०८ ६
१६४५	२०१ ५	२६६	७४ ६
१६४७	२५३ २	३२३	७८ ४
१६४८	३०४ ०	३६०	८४·४
१६४६	३४० ३	३७१	६१·७
१६५०	३३४ २	३७१	६० १
१६५१	३५६·८	३८७	६२·२
१६५२	३८५ ७	३७६	१०१ ८
१६५३	३८४ ६	३८५	६६ ६
१६५४	३८१·२	३७१	१०२ ७
	(आधार वर्ष १६४७=१००)		
१६५३	१५२	१२२	१२५
१६५४	१५२	११६	१३१
१६५५	१५६	११०	१४५
१६५६	१६३	१२१	१३५
१६५७	१७०	१२८	१३४
१६५८	१६७	१३३	१२६
१६५६	१७३	१४६	१२४
१६६०	१८६	१४३	१३२
१६६१	१६५	१४५	१३५
१६६२	२०३	१४६	१३६
१६६३	२०५	१५४	१३३
१६६४	२१०	१७५	१२०
	(आधार वर्ष : १६६१=१००)		
१६६२	१०६	१०३	१०३
१६६३	१०६	१०६	१०३
१६६४	११४	१२१	६४
१६६५	१२८	१३२	६७
१६६६	१३६	१४६	६५
१६६७	१५१	१६६	६१
१६६८	१६०	१७१	६४
१६६६	१७०	१६६	१०१
१६७०	१८०	१७८	१०१
१६७१	१८५	१८३	१०१
१६७२	१६८	१६४	१०३
१६७३	२०६	२२८	६५

श्रमिक को वस्तुओं के रूप में मजदूरी का भुगतान करना है), मजदूरी भुगतान में देरी, अनुचित जुर्माने और मजदूरियों में से कटौती आदि जैसी बातें बहुत साधारण रही है तथा अब तक कुछ सीमा तक प्रचलित है, यद्यपि १९३६ के मजदूरी अदायगी अधिनियम के पारित हो जाने से स्थिति में बहुत कुछ सुधार हुआ है।

१९३६ का मजदूरी अदायगी अधिनियम

(Payment of Wages Act, 1936)

सन् १९३६ से पूर्व, १९६० के मालिक तथा श्रमिक विवाद अधिनियम के अतिरिक्त, श्रमिकों की मजदूरी अदायगी को नियन्त्रित करने वाला अन्य कोई कानून नहीं था। सन् १९२५ में एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा इस विषय पर एक विधेयक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया था परन्तु सरकार के इस आश्वासन पर कि वह स्वयं इस ओर कदम उठायेगी, इसको वापिस ले लिया गया था। रॉयल श्रम आयोग के सुझावों के परिणामस्वरूप, जिसने मजदूरी अदायगी की प्रणालियों के दोषों पर काफी प्रकाश डाला था, सरकार ने १९३३ में एक विधेयक प्रस्तुत किया जोकि १९३६ में "मजदूरी भुगतान अधिनियम" के नाम से पारित हुआ। यह अधिनियम मार्च १९३७ से लागू हुआ। इसमें १९३७, १९५७, १९६२, १९६४, १९६७, और १९७६ में संशोधन भी हुए। अनेक राज्य सरकारों ने भी अपने-अपने राज्यों में अधिनियम लागू करने के लिए इसमें संशोधन किये हैं। जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर यह अधिनियम समस्त भारत में लागू होता है जहाँ कि पृथक अधिनियम लागू है जिसे जम्मू व कश्मीर मजदूरी अदायगी अधिनियम, १९५६ कहा जाता है।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध (Main Provisions of the Act)

यह अधिनियम प्रत्येक कारखाने और प्रत्येक रेलवे के उन श्रमिकों पर लागू होता है जोकि १,००० रु० प्रतिमाह से कम मजदूरी और वेतन प्राप्त करते हैं। पहले यह सीमा २००) रु० थी परन्तु १९५७ से यह सीमा बढ़ाकर ४००) रु० और १९७६ में १,००० रु० कर दी गई। अधिनियम को १९४८ में कोयले की खानों पर तथा १९५१ में तमाम खानों पर, १९५७ में निर्माण उद्योग पर और १९६२ में तेल क्षेत्रों पर लागू कर दिया गया। सन् १९६४ में संशोधन करके अधिनियम को नागरिक वायु परिवहन सेवाओं, मोटर परिवहन सेवाओं तथा उन संस्थाओं पर भी लागू कर दिया गया है जिन्हें सन् १९४८ के फैक्ट्री अधिनियम की धारा ८५ के अन्तर्गत फैक्ट्री घोषित किया गया हो। उपयुक्त सरकारें अधिनियम के उपबन्धों को इसके अन्तर्गत की गई व्याख्या के अनुसार किसी भी औद्योगिक संस्थान में लागू कर सकती हैं। अधिनियम में दी गई व्याख्या के अनुसार मजदूरी उस तमाम मेहनताने को कहते हैं जिस द्रव्य के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता हो तथा जो रोजगार में लगे हुये श्रमिकों को दिया जाना हो। इसमें बोनस व अन्य सभी प्रकार का पारिश्रमिक भी सम्मिलित होता है, परन्तु इसमें आवास की सुविधा, रोशनी, पानी व

की माना । लिये भारत सरकार ने श्रमिक क्षतिपूर्ति आयुक्त की नियुक्ति की है। १९७७ में किये गये संशोधन के अनुसार दावा का रद्द करने की आज्ञा के विरुद्ध अपील करने का अधिकार श्रमिकों को दे दिया गया है। प्राधिकारियों को यह भी अधिकार है कि यदि यह भय हो कि मजदूरी का भुगतान नहीं किया जायेगा या किसी व्यवसाय के बन्द होने पर मजदूरी भुगतान को प्राथमिकता नहीं दी जावेगी तो वह मालिक की या मजदूरी के भुगतान करने के लिये उत्तरदायी व्यक्तियों की सम्पत्ति को मालगुजारी वत्‌ गमन है। बम्बई में १९७४ में किये संशोधन के अनुसार इस नियम के अन्तर्गत यदि कोई राशि शेष रह जाती है तो उसकी उगाही उसी प्रकार की जा सकती है जैसे मालगुजारी के बकाया की उगाही होती है।

अधिनियम का कार्यान्वयन व इसकी सीमाएँ
(Working of the Act and its Limitations)

विभिन्न राज्यों द्वारा इस अधिनियम पर प्रस्तुत की जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट से यह पता चलता है कि अधिनियम के उपबन्ध उचित रूप से लागू किये जा रहे हैं। परन्तु कुछ राज्यों में शक्तिशाली तथा उत्तरदायी श्रमिक संघों की कमी के कारण श्रमिक इससे लाभ उठाने में असफल रहे हैं। मुख्य श्रम आयुक्त के द्वारा अधिनियम के प्रतिपालन (Observance) की कुछ अनियमितताओं (Irregularities) की रिपोर्ट दी गई है। १९७६ में रेलों में अनियमितताओं में ३३,०५२ मामले पाये गये, ३८,८६० मामले ठीक किये गये जिनमें पिछले वर्ष के अन्त में लम्बमान (pending) मामले भी सम्मिलित हैं। सन्‌ १९७६ में खानों में, २३,६८७ अनियमिततायें पाई गईं और २३,३२८ अनियमिततायें ठीक की गईं। परन्तु सब बातों को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि छोटे पैमाने के उद्योगों को छोड़कर, जहाँ कि गड़बड़ी होना आम बात है, श्रमिकों को इस अधिनियम से बहुत लाभ हुआ है।

श्रम अनुसन्धान समिति के कथनानुसार, यद्यपि अधिकांश बड़े-बड़े संस्थानों द्वारा अधिनियम का ठीक पालन किया गया है तथापि ठेके के श्रमिकों के सम्बन्ध में तथा छोटे-छोटे संस्थानों में, जहाँ पर किसी प्रकार का कोई रिकार्ड तथा उचित रजिस्टर आदि नहीं रखे जाते, इस अधिनियम से बचने का काफी प्रयत्न किया जाता है। अधिकांश मामलों में यह पाया गया है कि कटौती, समयोपरि मजदूरी का रिकार्ड, मजदूरी की समयानुसार अदायगी, बोनस, महँगाई भत्ता आदि से सम्बन्धित अधिनियम के उपबन्धों का ठीक प्रकार से पालन नहीं किया जाता है तथा रजिस्टर भी ठीक-ठीक नहीं रखे जाते हैं। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि यद्यपि अधिनियम के अन्तर्गत जुर्माने की मात्रा बहुत कम है तथापि अनेक मालिक श्रमिकों को एक या आधे दिन के लिये मुअत्तल कर देते हैं और उनकी मजदूरी में से कटौती कर लेते हैं। समिति के अनुसार रेलों में अधिनियम के कार्यक्रम के विषय में यह एक बहुत गम्भीर शिकायत है। बीड़ी तथा चमड़ा जैसे कुछ कारखानों में

दान तथा असन्तोषजनक कार्य आदि के लिये मजदूरी से अनधिकृत कटौती की प्रथा भी प्रचलित है। हानि या क्षति के लिये कटौती का जो उपबन्ध है वह श्रमिकों के विरुद्ध जाता है क्योंकि मजदूरी की अदायगी को इस आधार पर रोक लिया जाता है कि औजार तथा पदार्थ खराब हो गये हैं। बहुत से मामला में यह देखा गया है कि मजदूरी अदायगी मे देरी की जाती है। सबसे अधिक हानि ठेके में श्रमिको को उठानी पडती है तथा उनके मामले मे अधिनियम के उपबन्धो से बचने का प्रयत्न भी किया जाता है। उनका कोई भी रिकार्ड नही रखा जाता और निरीक्षको के लिये अधिनियम को लागू करना कठिन हो जाता है। समिति ने बहुत से मामलो मे यह पाया कि जुर्माना निधि मे बहुत बड़ी-बडी राशियाँ एकत्रित हो गई थी तथा इन राशियो को कर्मचारियो के लाभ के लिये उपयोग मे नही लाया जा रहा था। अनेक मामलो मे तो जुर्माना निधियाँ ही नहीं बनाई गई थी। अधिनियम मे इस निधि को किसी निश्चित समय के अन्दर ही श्रमिको के लाभ के लिये व्यय करने का बन्धन मालिको पर नही लगाया गया है। इन दोषों और कमियो के कारण ही सरकार ने १९५७ मे इस अधिनियम म संशोधन किया जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। संक्षेप मे १९५७ के संशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार हैं (i) मजदूरी सीमा को २०० से बढकर ४०० रुपये कर दिया गया है, (ii) अधिनियम को निर्माण उद्योग तक विस्तृत कर दिया गया है, (iii) मजदूरी की परिभाषा मे संशोधन किया गया है, (iv) बीमा किस्तो, मकान का किराया सरकारी प्रतिभूतियों के लिये चन्दा तथा सेवा नियमो के अन्तर्गत लगाये गये जुर्मानो आदि के लिये कटौती को अधिकृत रूप दे दिया गया है, (v) दावो को रद्द कर देने के विरुद्ध अपील करने और श्रमिको के हित की सुरक्षा के लिये मालिको की सम्पत्ति को कुर्क कराने की व्यवस्था भी की गई है।

मजदूरी अदायगी अधिनियम मे १९६४ मे जो संशोधन हुआ उसे १ जनवरी १९६५ से लागू कर दिया गया है इसके मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं—(i) अधिनियम के क्षेत्र का विस्तार करके वायु यातायात सेवायें, मोटर यातायात सेवायें तथा ऐसे संस्थानो को ले लिया गया है जिन पर धारा ८५ के अन्तर्गत १९४८ का कारखाना अधिनियम लागू कर दिया गया है। (ii) साइकिल खरीदने, मकान निर्माण के लिये ऋण लेने तथा श्रम कल्याण निधि म से ऋण लेने पर जो अग्रिम राशि दी जाती है उसकी वसूली के लिये मजदूरी मे से कटौती की जा सकती है। (iii) मजदूरी मे से कटौती की सीमा मजदूरी की ५० प्रतिशत निर्धारित कर दी गई है, परन्तु सहकारी समितियो को जो राशि आंशिक अथवा पूर्णरूप से देनी होती है उसके लिये कटौती ७५ प्रतिशत तक हो सकती है। (iv) निरीक्षको को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह मालिको से मजदूरी अदायगी के सम्बन्ध मे कोई भी कागज ले सकते है। (v) अधिनियम के अन्तर्गत दावे के प्रार्थना पत्र देने की अवधि ६ माह स बढ़ाकर १२ माह कर दी गई है।

के बोनस के दावों का निर्णय करने के लिए औद्योगिक विवाचकों के लिये एक आधार बन गया है। यह भी माना गया है कि श्रमिक के 'बोनस दावा' की मान्यता देने में एक निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—(i) उचित मजदूरी जीवन स्तर के लिए पर्याप्त मजदूरी से कम हो, (ii) जबकि उद्योग का अवशिष्ट लाभ होता है जिनका अधिकांश श्रमिकों के सहयोग द्वारा बनाए गए उत्पादन के कारण ही सम्भव होता है।

बोनस आयोग और बोनस अदायगी अधिनियम, १९६५
(Bonus Commission and Payment of Bonus Act, 1965)

मार्च १९६० में स्थायी श्रम समिति ने एक 'बोनस आयोग' की स्थापना की सिफारिश की थी। इस आयोग का कार्य यह होगा कि नकदी या अन्य रूप में बोनस की अदायगी के लिए कुछ सिद्धान्त बना दे। ऐसे सिद्धान्त बोनस के झगड़ों का निपटारा में बहुत सहायक होंगे। तत्कालीन केन्द्रीय श्रम मन्त्री श्री नन्दा ने इस बात की घोषणा भी की थी कि ऐसे बोनस आयोग के कार्य-क्षेत्र को बढ़ा दिया जायेगा और यह बोनस से सम्बन्धित अन्य प्रश्नों पर भी विचार करेगा। उदाहरणार्थ मजदूरी निर्धारण, मूल्यों की स्थिरता, विवाद खर्च, तथा उत्पादकता आदि जिनका बोनस के प्रश्न से सम्बन्ध है। मालिकों के प्रतिनिधियों ने ऐसे आयोग का विरोध किया। उनका कहना था कि जब सर्वोच्च न्यायालय ने बोनस से सम्बन्धित निश्चित सिद्धान्त बना दिये हैं तो ऐसे आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु फिर भी सरकार ने दिसम्बर १९६१ में श्री एम० आर० मिहिर की अध्यक्षता में बोनस आयोग की नियुक्ति की। मालिकों ने श्री मिहिर की नियुक्ति पर आपत्ति की परन्तु सरकार ने इस आपत्ति की परवाह नहीं की। यह आयोग त्रिदलीय था। यह उल्लेखनीय है कि किसी भी प्रकार के वैधानिक नियमों के अभाव में बोनस योजनायें ऐच्छिक या विवाचकों के पंचाट के परिणामस्वरूप निर्धारित की गई हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त देय राशि की गणना के लिये कोई समान या निर्धारित नियम नहीं है और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि श्रमिकों को इसमें से कितना भाग मिलना चाहिए। श्रमिकों तथा मालिकों, दोनों ही के सदस्यों ने विवाचकों तथा अदालतों के स्तर की अनेक आधारों पर आलोचना की है तथा यही बात अनेक वाद-विवाद और हड़तालों का कारण बनी है। इसलिए यह वांछनीय ही है कि बोनस की प्रकृति तथा लाभ से इसका सम्बन्ध, सब व्यय का निर्धारण कर कुल लाभ में से देने योग्य लाभ की गणना, बोनस तथा लाभ के लिये आदर्श स्तर पर आदि प्रश्नों पर किसी विशिष्ट समिति द्वारा सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिये और जो भी निर्णय हो उसे वैधानिक रूप से लागू करना चाहिये। अतः कहा जा सकता है कि बोनस आयोग की नियुक्ति सही दिशा में उठाया गया पग था।

बोनस आयोग की नियुक्ति दिसम्बर १९६१ में हुई थी। इसका कार्य औद्योगिक व्यवसायों के श्रमिकों को बोनस की अदायगी के प्रश्न पर विचार करना तथा

उस सम्बन्ध में उपयुक्त सिफारिशें प्रस्तुत करना था। आयोग से कहा गया था कि वह बोनस की स्पष्ट व्याख्या करे और लाभों पर आधारित बोनस अदायगी के प्रश्न पर विचार करे तथा ऐसे सिद्धान्तों की सिफारिशें करे जिनके द्वारा बोनस की गणना, उसकी अदायगी के तरीकों तथा बोनस की मात्रा आदि का निर्धारण किया जा सके। आयोग ने जनवरी १९६४ में सरकार को अपनी रिपोर्ट दे दी।

बोनस की परिभाषा के सम्बन्ध में आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि बोनस सस्थान की समृद्धि में से उन कर्मचारियों का एक भाग है जो उसमें कार्य करते हैं। इससे उस खाई को पाटने में सहायता मिलेगी जो कम मजदूरी वाले श्रमिकों की स्थिति में असल मजदूरियों तथा आवश्यकता पर आधारित मजदूरियों के बीच पाई जाती है। आयोग ने बोनस को मजदूरी में मिलाये जाने के विचार का इस आधार पर विरोध किया कि जहाँ मजदूरी की दरें उद्योग एवं क्षेत्र के आधार पर निश्चित की जाती हैं वहाँ लाभ सदा एक से नहीं रहते और उनका सम्बन्ध इकाई की अदा करने की योग्यता से जुड़ा रहता है। आयोग ने इस विचार को भी स्वीकार नहीं किया कि बोनस को प्रोत्साहन एवं प्रेरणाओं के साथ सम्बन्ध कर दिया जाये क्योंकि लाभ-बोनस प्रेरणा-बोनस से एक बिल्कुल अलग चीज है। कार्यकुशलता को प्रोत्साहन केवल तभी मिलता है जबकि समुचित रूप से बनाई गई ऐसी उत्पादन-बोनस योजनायें लागू की जाती हैं जोकि अच्छ उत्पादन, कार्य कुशलता तथा ऊँची मजदूरी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर देती हैं।

आयोग ने एक सूत्र दिया है जिसके द्वारा मूल्य-ह्रास, आय कर, अति कर, पूंजी पर प्रतिफल (७ प्रतिशत) तथा आरक्षित निधि (४ प्रतिशत) निकाल कर कुल लाभ निर्धारित करना चाहिये। उपलब्ध शेष का ६० प्रतिशत बोनस भुगतान के लिए होना चाहिये तथा शेष अवकाश-प्राप्त धन, आवश्यक आरक्षित निधि, अति लाभ-कर आदि के लिये व्यय किया जा सकता है। आयोग की योजनानुसार प्रत्येक ऐसे श्रमिक को, जिसने एक वर्ष नौकरी कर ली हो, अपनी मूल मजदूरी और मँहगाई भत्ते द्वारा जो वार्षिक आय होती है उसका ४% या ४० रु० जो भी अधिक हो, बोनस के रूप में मिलना चाहिये। जिस श्रमिक ने एक वर्ष से कम समय काम किया हो उसे आनुपातिक आधार पर बोनस मिलना चाहिये। बोनस की अदायगी की अधिकतम सीमा निश्चित की गई। यह सीमा मूल मजदूरी तथा मँहगाई भत्ते द्वारा होने वाली आय की २०% थी। इस सूत्र को गैर-सरकारी क्षेत्र के उद्योगों पर लागू करना था तथा सरकारी क्षेत्र के ऐसे उद्योगों पर लागू करना था जिनकी उपज की कुल बिक्री के कम से कम २०% तक भाग की गैर-सरकारी क्षेत्र की उपज से प्रतियोगिता होती है। नये सस्थानों को ६ वर्ष के लिये छूट देने की सिफारिश थी। आयोग ने सिफारिश की थी कि उसके इस सूत्र को १९६२ में हिसाब के वर्ष की समाप्ति के किसी भी दिन से लागू किया जाए, किन्तु जिन मामलों में समझौते हो चुके हैं अथवा निर्णय दे दिये गए हैं उनमें इस सूत्र को लागू

लागू न किया जाये। प्रारम्भ में योजना को जूट उद्योग, कोयला तथा अन्य खान उद्योगों स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, अन्य बैंकों, चीनी उद्योग तथा विद्युत संस्थान पर लागू करने की सिफारिश थी।

यह उल्लेखनीय है कि जहाँ श्रम अपनी न्यायाधिकरण के बोनस सूत्र में केवल मूल वेतन को ही दृष्टिगत रखा गया है, वहाँ बोनस अदायगी के सम्बन्ध में आयोग का सूत्र श्रमिक के मूल वेतन तथा मँहगाई भत्ते, दोनों को ही दृष्टिगत रखता है। बोनस के लिये उपलब्ध बेशी की गणना करने के उद्देश्य से कुल लाभों में से घटाई जाने वाली मदों की जो सूची बनाई गई है, बोनस आयोग ने तो उसमें से पुनर्वास लागतों को भी बाहर रखा है, किन्तु न्यायाधिकरण के सूत्र में उक्त लागतों को सूची में सम्मिलित किया गया है।

बोनस आयोग की रिपोर्ट सर्वसम्मत नहीं थी अपितु उसके साथ असहमति की टिप्पणी संलग्न थी। इससे काफी मतभेद उत्पन्न हुआ किन्तु सरकार ने सितम्बर १९६४ में रिपोर्ट की सिफारिशों को कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार करने की घोषणा कर दी। सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिये पहले सरकार ने मई १९६५ में एक अध्यादेश जारी किया और बाद में इस अध्यादेश का स्थान बोनस अदायगी अधिनियम १९६५ ने लिया जिस पर १५ सितम्बर १९६५ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिली। अधिनियम २९ मई १९६५ से पश्चाद्दर्शी प्रभाव के साथ लागू हो गया। मुख्य संशोधन लेखा-वर्ष के सम्बन्ध में, बोनस के लिये उपलब्ध बेशी के निर्धारण के सम्बन्ध में और बाद के वर्षों में उसमें हेर-फेर करने के सम्बन्ध में थे।

बोनस भुगतान अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार हैं: (१) यह अधिनियम उन सभी कारखानों और संस्थानों पर लागू होता है जिनमें २० या उससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं और सरकारी क्षेत्र के उन संस्थानों पर भी लागू होता है जो विभाग द्वारा नहीं चलाये जाते तथा निजी क्षेत्र के संस्थानों से २०% की सीमा तक स्पर्धा करते हैं। वित्तीय विभाग और संस्थायें, रिजर्व बैंक, बीमा कम्पनियाँ, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, जीवन बीमा निगम, नाविक, गोदी श्रमिक, विश्वविद्यालय तथा शिक्षा संस्थायें, अस्पताल तथा समाज कल्याण संस्थायें (यदि ये लाभ-हेतु स्थापित नहीं किये गय हैं), इमारती कार्यों में ठेके के श्रमिक, केन्द्र या राज्य सरकार अथवा स्थानीय सत्ता द्वारा विभागीय रूप से सञ्चालित संस्थान, भारतीय रेडक्रास सोसाइटी तथा ऐसे अन्तर्देशीय जल यातायात संस्थान, जो अन्य किसी देश से गुजरने वाले मार्गों पर कार्य करते हैं, छोड़ दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त, अधिनियम ऐसे कर्मचारियों पर भी लागू नहीं होगा जिन्होंने लाभ अथवा उत्पादन बोनस की अदायगी के लिये २९ मई १९६५ के पूर्व अथवा पश्चात् अपने मालिकों से समझौता कर लिया है। (२) अधिनियम में उल्लिखित बोनस सूत्र १९६४ के उस विशेष दिन से लागू होगा जिस दिन से संस्था के हिसाब का

वर्ष आरम्भ होता है। परन्तु यदि २६ मई १९६५ तक बोनस विषय पर विवादों का किसी संस्थान में निर्णय नहीं हुआ था तो सूत्र १९६२ या उसके पश्चात् के हिसाब के वर्ष के दिन से लागू होगा। (३) हिसाब के वर्ष के सम्बन्ध में उपलब्ध बचतों की गणना कुल लाभों में से कुछ पूर्व खर्चों (prior charges) को निकाल कर की जायेगी। पूर्व खर्चों में मूल्य-ह्रास, प्रत्यक्ष कर, विकास निधि, पूँजी पर प्रतिफल और कार्य करने वाले साझेदारों तथा प्रोप्राइटरों का पारिश्रमिक सम्मिलित है। सहकारी समितियों तथा विद्युत संस्थानों के सम्बन्ध में अतिरिक्त पूर्व खर्चों की अनुमति प्रदान की गई है। प्रत्येक हिसाब के वर्ष में उपलब्ध बेशी का ६०% (विदेशी कम्पनियों के लिये ६७%) बोनस भुगतान के लिये रखा जायेगा। (४) प्रत्येक हिसाब के वर्ष में हर एक श्रमिक को न्यूनतम बोनस उसकी मजदूरी या वेतन का ४% अथवा ४० रु० जो भी अधिक हो, दिया जायेगा (बाल श्रमिकों के लिये २५ रु०)। अधिकतम बोनस श्रमिक के वेतन या मजदूरी का २०% होगा। 'वेतन या मजदूरी" में मूल मजदूरी तथा मँहगाई भत्ता सम्मिलित किया गया है और अन्य भत्तों तथा कमीशन को छोड़ दिया गया है। अधिनियम में यह भी कहा गया है कि जहाँ वितरण योग्य बेशी कर्मचारी को दिये जाने वाले अधिकतम बोनस की राशि से अधिक हो जाय तो अतिरिक्त राशि आगामी लेखा वर्षों में समायोजित करने के लिये आगे ले जाई जायेगी किन्तु यह राशि कर्मचारी के कुल वेतन या मजदूरी के २०% से अधिक नहीं होगी। इसी प्रकार, जहाँ बेशी न हो अथवा वितरण योग्य बेशी संस्थान में सभी कर्मचारियों को अदा किये जाने वाले न्यूनतम बोनस के कम पड़ जाये और जहाँ इतनी पर्याप्त राशि न हो कि जिसे न्यूनतम बोनस की अदायगी के उद्देश्य से आगे ले जाया जा सके, तब ऐसी राशि अथवा घाटे की राशि आगामी लेखा वर्षों में समायोजन के लिये आगे ले जाई जायेगी। (५) बोनस उन कर्मचारियों को मिलेगा जिनका वेतन या मजदूरी १,६०० रु० प्रति माह तक है। परन्तु ७५० रु० प्रति माह से अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों के लिये बोनस की गणना उसी प्रकार की जायेगी जैसे उनका वेतन ७५० रु० प्रति माह हो। बोनस केवल उन्हीं कर्मचारियों को मिलेगा जो वर्ष के सभी कार्य-दिवसों में काम करते हैं। यदि कार्य कम दिनों किया जाता है तो उसी अनुपात में बोनस घट जायेगा। परन्तु बोनस पाने का अधिकारी होने के लिये वर्ष में कम से कम ३० दिन कार्य करना आवश्यक है। जबरी छुट्टी के दिनों, मजदूरी सहित छुट्टियों, मातृत्वकालीन छुट्टियों अथवा व्यावसायिक चोट के कारण अनुपस्थिति के दिनों को कर्मचारी के काम करने के दिनों के रूप में माना जायेगा। (६) बोनस का भुगतान हिसाब का वर्ष समाप्त होने

के ३ इर-अ दर किया जायगा

है। (७) नये संस्थान या तो

वर्ष उन्हें लाभ हो अथवा छठे

ः सरकार ०।०

से बोनस देना

ृक्ति के

बेचना आरम्भ करेंगे, इनमें से जो भी पहले हो। (८) किसी संस्थान के कर्मचारियों को इस बात की अनुमति होगी कि वे अधिनियम में दिये गये सूत्र से भिन्न आधार पर बोनस देने के लिये अपने मालिकों से समझौता कर सकें। (९) बोनस से सम्बन्धित विवादों को भी औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७ तथा समवर्ती राज्यों विधियों के अन्तर्गत आने वाले अन्य औद्योगिक विवादों के समान ही माना जायगा। (१०) अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर दण्ड (६ माह की कैद या १००० रु० तक जुर्माना या दोनों) की व्यवस्था की गई है और इसको लागू करने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति का भी प्रावधान किया गया है। (११) यदि किसी कर्मचारी को जालसाजी, हिंसक व्यवहार, चोरी, दुर्विनियोग या तोड़-फोड़ के कारण पदच्युत कर दिया गया हो तो उसे बोनस प्राप्ति के अयोग्य माना जायेगा।

बोनस भुगतान अधिनियम बोनस के प्रश्न पर बार-बार उत्पन्न होने वाले औद्योगिक विवादों को रोकने में बड़ा सहायक सिद्ध होगा, क्योंकि इस अधिनियम के द्वारा बोनस की अदायगी के लिये एक निश्चित सूत्र बनाया गया है। यही नहीं अधिनियम उपलब्ध बेशी (surplus) के निपटारे के लिये एक आदर्श सिद्धान्त का भी निर्धारण करता है जिसके आधार पर बोनस की अदायगी का निश्चय किया जाता है।

बोनस भुगतान अधिनियम, १९६५ की कुछ धाराओं की संवैधानिक वैधता को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। न्यायालय ने धारा १० (न्यूनतम बोनस की अदायगी), धारा ११ (अधिकतम बोनस की अदायगी) और धारा १५ (वितरण योग्य बेशी का समायोजन या मुजराई) की वैधता की पुष्टि की किन्तु धारा ३३ (कुछ विवादों पर अधिनियम का लागू करना), धारा ३४ (२) (ऊँचे बोनस लाभों का संरक्षण) तथा धारा ३७ (अधिनियम को लागू करने में उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिये अधिकार) को संविधान के विरुद्ध घोषित किया। उच्चतम न्यायालय के निर्णय से जो स्थिति उत्पन्न हो गई उस पर २९ अक्टूबर १९६६ को स्थायी श्रम समिति ने विचार किया। समिति ने मामले पर आगे विचार करने के लिये एक द्विदलीय समिति की स्थापना की। समिति की दो बैठकें हुईं किन्तु किसी समझौते पर न पहुँचा जा सका।

सरकार ने १० जनवरी १९६९ को अध्यादेश जारी करके बोनस भुगतान अधिनियम १९६५ में संशोधन किया और बाद में मार्च १९६९ में पहले अधिनियम के स्थान पर एक नया संशोधित अधिनियम पास किया। संशोधित अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई कि पिछले लेखा-वर्ष के सम्बन्ध में दिये गये या देय बोनस के कारण मालिकों को जो करों में छूट मिलती है उसकी धनराशि को आगामी लेखा-वर्ष की उपलब्ध बेशी में जोड़ दिया जायेगा और फिर मालिकों तथा श्रमिकों के बीच ६० : ४० के अनुपात में बाँट दिया जायेगा। इस व्यवस्था के फलस्वरूप

बोनस के रूप में श्रमिकों को बाँटी जाने वाली धनराशि में वृद्धि हो जायेगी।

सन् १९७१ में मालिकों तथा श्रमिकों के बीच इस प्रश्न पर समझौता हुआ कि सन् १९७० के वर्ष के लिये कितना बोनस दिया जाये। इस समझौते में यह व्यवस्था की गई कि कानूनी न्यूनतम बोनस के अलावा कुछ और भी अग्रिम धनराशि अदा की जाये और इसकी मात्रा कमाये गये कुल लाभ की १% से लेकर ४½% तक हो। बाद में इस अग्रिम धनराशि का समायोजन भविष्य में देय उस बोनस की अदायगी में कर दिया जाए जोकि इस कार्य के लिये बनाई जाने वाली बोनस समिति की सिफारिशों पर लिये गये निर्णयों के परिणामस्वरूप दिया जायेगा।

अक्टूबर १९७१ में भारतीय श्रम सम्मेलन के २७वें अधिवेशन में लिये गये निर्णय के फलस्वरूप, अप्रैल १९७२ में डॉ० बी० के० मदान की अध्यक्षता में एक बोनस समीक्षा समिति की स्थापना की गई। समिति से सन् १९६५ के बोनस भुगतान अधिनियम के साथ ही साथ बोनस के सम्पूर्ण प्रश्न पर पुनर्विचार करने को कहा गया। इस समिति की अन्तरिम रिपोर्ट के आधार पर अधिनियम में संशोधन करके इस बात की व्यवस्था की गई कि अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले श्रमिकों को देय न्यूनतम बोनस की मात्रा ८⅓% कर दी जाये, किन्तु शर्त यह है कि उन कर्मचारियों को तो कम से कम ५० रु० अवश्य मिल जाएँ जिन्होंने कि लेखा-वर्ष के आरम्भ में १५ वर्ष की आयु पूरी न की हो, और अन्य कर्मचारियों को कम से कम ८० रु० अवश्य मिल जाएँ।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने सुझाव दिया कि वार्षिक बोनस देने की व्यवस्था स्थिर सी गई है। यह व्यवस्था भविष्य में बराबर जारी रखनी चाहिये। बोनस की मात्रा का निर्धारण तो सामूहिक सौदाकारी द्वारा होना चाहिये किन्तु ऐसे समझौते के मार्गदर्शन के लिये कानूनी रूप से एक सूत्र (formula) का निर्माण अवश्य किया जाना चाहिये। सन् १९६५ के बोनस भुगतान अधिनियम का दीर्घकालीन परीक्षण जारी रहना चाहिये और अनुभव के साथ-साथ उसमें संशोधन किये जाने चाहियें। अनेक संस्थान जो बोनस अधिनियम के पास होने से पूर्व बोनस देते थे उन्होंने बोनस देना इसलिए बन्द कर दिया क्योंकि वह अधिनियम उन पर लागू नहीं होता था। इन संस्थानों को इस कारण से बोनस की अदायगी नहीं रोकनी चाहिये। सरकार को चाहिये कि ऐसे संस्थानों के सम्बन्ध में अधिनियम में आवश्यक संशोधन करे।

सितम्बर १९७२ में राष्ट्रपति ने बोनस के सम्बन्ध में एक अध्यादेश (Ordinance) जारी किया। बाद में इसका स्थान बोनस भुगतान संशोधन अधिनियम, १९७२ (Payment of Bonus Amendment Act, 1972) ने लिया। संशोधित अधिनियम द्वारा बोनस की न्यूनतम दर में वृद्धि की गई। यह वृद्धि सन् १९७१ में किसी भी दिन से प्रारम्भ होने वाले लेखा वर्ष (accounting

न्यूनतम मजदूरी के बारे में आयोग का विचार था कि सन् १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रियाओं के अनुसार एक बार जब मजदूरी की न्यूनतम दरें निश्चित कर दी गई हैं, यह मालिकों का दायित्व है कि वे उन दरों में मजदूरियों का भुगतान करें और इस बात का बहाना न करें कि उनकी क्षमता कम है। सरकार को चाहिए कि प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात् अधिनियम में निर्धारित मजदूरियों में संशोधन करे और मूल्यस्थिति के अनुसार यदि उनमें कोई हेर-फेर करना आवश्यक हो, तो करे। अधिनियम की धाराओं में भी समय समय पर आवश्यकतानुसार संशोधन किया जाना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए किसी भी रोजगार में १,००० श्रमिकों की सीमा को घटाकर ५०० कर दिया जाना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी के रूप में कोई भी ऐसी अपरिवर्तनीय रकम देय नहीं होनी चाहिए जोकि अधिनियम न्यूनतम मजदूरी के बराबर हो क्योंकि अधिनियम न्यूनतम मजदूरी परिवर्तनशील होती है।

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (national minimum wage) के बारे में आयोग का विचार यह था कि सम्पूर्ण देश के लिए पारिश्रमिक की एक समान मौद्रिक दर न तो सम्भव है और न वान्छनीय ही। इसका कारण यह है कि भारत एक अत्यन्त विस्तृत क्षेत्रफल वाला देश है और यहाँ के विभिन्न क्षेत्रों, प्रदेशों तथा उद्योगों में विकास के स्तरों में भारी अन्तर पाये जाते हैं। यदि मजदूरी की ऐसी कोई न्यूनतम दर आशावादी दृष्टिकोण से निश्चित कर दी जाती है तो कई क्षेत्र ऐसे हो सकते हैं जो उस न्यूनतम की भी अदायगी न कर सकें। यदि न्यूनतम दर का निर्धारण किसी निर्धन क्षेत्र या उद्योग की सामर्थ्य को दृष्टिगत रखकर किया गया, तब सभी श्रमिकों के लिए उसकी क्या उपयोगिता होगी? हाँ, यह अवश्य सम्भव हो सकता है कि प्रत्येक राज्य के विभिन्न समान क्षेत्रों के लिए एक-एक न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित कर दी जाए। इस दिशा में अवश्य प्रयत्न किया जाना चाहिए।

जहाँ तक आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी (need based minimum) का सम्बन्ध है, आयोग का कहना था कि आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी और न्यायोचित मजदूरी के उच्च स्तरों को मजदूरी सुविधानुसार लागू की जा सकती है किन्तु ऐसा करते समय उसको अदा करने की मालिक की क्षमता अवश्य दृष्टिगत रखी जानी चाहिये। आयोग ने इस बात पर भी जोर दिया कि उद्योग में भुगतान करने की क्षमता है या नहीं यह सिद्ध करने की जिम्मेदारी मालिक पर ही छोड़ दी जानी चाहिये।

महँगाई भत्ते के सम्बन्ध में आयोग का कहना था कि निर्वाह-लागत में होने वाले परिवर्तनों का ध्यान रखते हुये मजदूरियों में भी समय-समय पर हेर-फेर की जानी चाहिये। अच्छा यह होगा कि यह बात मजदूरी का निर्धारण करने वाली सत्ता पर ही छोड़ दी जाये कि वह महँगाई भत्ते को मजदूरी से जोड़ने के लिये किस

सूचकांक (स्थानीय या अखिल भारतीय) का उपयोग करना उचित समझे। गैर-अनुसूचित रोजगारों में न्यूनतम वेतन वाले श्रमिकों के लिये निर्वाह खर्च होने वाली वृद्धि के विरुद्ध ६५ प्रतिशत की दर से मध्यगीकरण (neutralisation) स्वीकृत किया जाना चाहिये। परन्तु इसका उस महँगाई भत्ते की दर पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये जो कि समझौते अथवा पंचाट (award) के फलस्वरूप पहले से ही दिये जा रहे हो। न्यूनतम स्तर पर महँगाई भत्ते का भुगतान करने के लिये भुगतान-क्षमता (capacity to pay) पर विचार नहीं किया जाना चाहिये। महँगाई भत्ते में समायोजन करने के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (आधार वर्ष १९६०) के सन्दर्भ में एक पाद सूत्री शिला की व्यवस्था उचित रहेगी। न्यूनतम मजदूरी से अधिक उपलब्धियों वाले कर्मचारियों को उतना ही महँगाई भत्ता मिलना चाहिये जितना कि न्यूनतम मजदूरी वाले कर्मचारियों को मिलता है, परन्तु जिन्हें पहले से ही अधिक महँगाई भत्ता मिल रहा है, उन्हें उससे वंचित नहीं किया जाना चाहिये। आयोग का सुझाव था कि आधार वर्ष १९६८ के मूल्य स्तर के आधार पर महगाई भत्ते को मूल मजदूरी में मिला दिया जाना चाहिये। किन्तु यह कार्य सन् १९६९-७० के परिवार निर्वाह सर्वेक्षणों के आधार पर बनाये गये श्रमिक वर्ग उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों की सशोधित सूचियाँ बनाने के बाद ही किया जाना चाहिये।

मजदूरी निर्धारण की व्यवस्था (wage fixing machinery)—के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिश थी कि वर्तमान में शोषित उद्योगों (sweated industries) की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का तरीका यह है कि अधिकारियों द्वारा इस सम्बन्ध में अधिसूचना जारी कर दी जाती है। आयोग ने कहा कि इसके स्थान पर ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि सभी पक्ष समिति आदि के रूप में मिल कर बैठें और उत्पन्न मसलों के बारे में फैसला करें। इस प्रकार जो समितियाँ बनाई जायें, वे तीन माह के अन्दर ही अपनी रिपोर्ट दे दें। सम्बद्ध अनुसूचित व्यवसायों के लिये एक ही अध्यक्ष तथा एक स्थायी सचिवालय होना चाहिये। सगठित उद्योगों के क्षेत्र के लिये, आयोग ने मजदूरी बोर्डों को ही जारी रखने की सिफारिश की। साथ ही, यह सुझाव भी दिया कि इन बोर्डों में स्वतन्त्र व्यक्तियों को सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिये। हाँ, यदि आवश्यक समझा जाय तो एक असेसर के रूप में किसी अर्थशास्त्री को उसमें सम्मिलित किया जा सकता है। मजदूर बोर्डों के अध्यक्ष की नियुक्ति सभी पक्षों की सहमति से की जानी चाहिये। अच्छा हो, कि वह प्रस्तावित औद्योगिक सम्बन्ध आयोगों का सदस्य हो, ताकि यह सम्बद्ध पक्ष किसी समझौते पर न पहुँच सकें तो वह मध्यस्थता करके निर्णय दे सके। कोई भी व्यक्ति एक समय में दो से अधिक मजदूरी बोर्डों का अध्यक्ष नहीं होना चाहिये। मजदूरी बोर्ड को चाहिये कि वह सामान्यत एक वर्ष के अन्दर ही अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर दे और एक विशेष तिथि से वे लागू हो जायें तथा पाँच वर्ष

ने मजदूरी नीति पर जिस समिति की स्थापना की थी, उसने जून १९७८ में अपनी अंतरिम रिपोर्ट में यह सुझाव दिया है कि प्रमिक परिवतन वरन श्रमिकों के लिए एक नया पदक्रम ढाँचा बनाया जाना चाहिये जो कि कुशलता के अन्तर पर तथा गारन्टीकृत न्यूनतम मजदूरी पर आधारित हो। रिपोर्ट में मजदूरी निर्धारण के लिए एक अधिक अनुशासित एवं युक्ति सगत मशीनरी की स्थापना पर भी बल दिया गया है। समिति की अन्तरिम रिपोर्ट मूल्य-मजदूरी व आय नीति के सम्बन्ध में वर्तमान में सरकारी स्तर पर होने वाले उच्च स्तरीय विचार-विमर्श का आधार बनी। रिपोर्ट के अनुसार किसी श्रमिक अथवा कर्मचारी को देय कुल मजदूरी का हिसाब लगाते समय कई बातें दृष्टिगत रखी जानी चाहिये, जैसे कि न्यूनतम मजदूरी पदक्रम (grade) पर आधारित कुशलता का अन्तर असाधारण जोखिमों अथवा असाधारण हानियों की क्षतिपूर्ति, बढ़ता हुआ लाभांश महँगाई भत्ता तथा लाभों में हिस्सा। तथ्य यह है कि संगठित क्षेत्र में तो न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था को लागू करना सरल है परन्तु यह हो सकता है कि कुछ उद्योग, केन्द्र, क्षेत्र अथवा व्यक्तिगत इकाइयाँ ऐसी हों जिनमें न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था को लागू करने से उनकी उत्पादन क्षमता प्रभावित हो। इस स्थिति में न्यूनतम मजदूरी के तत्काल क्रियान्वयन का परिणाम इकाइयों के बन्द होने तथा काम व उत्पादन की हानि के रूप में सामने आ सकता है। अतः न्यूनतम मजदूरी के क्रियान्वयन के लिये एक चरणबद्ध कार्यक्रम (phased progarmme) बनाना होगा। उन उद्योगों, केन्द्रों अथवा इकाइयों की स्थिति में जिन्हें कि प्रारम्भ में इससे मुक्त रखा जाय, समस्या का गहराई से अध्ययन करना होगा और १९७८-७९ तक इस सम्बन्ध में उचित कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित कर लेनी होगी।

समिति का मत है कि एक समुचित मजदूरी ढाँचे में श्रेष्ठ कार्य के पुरस्कार को कुशलता-अन्तर (skill differentials) से सम्बन्धित किया जाना चाहिये। यद्यपि कुशलता-अन्तरों का द्रव्य के रूप में परिमाणन (quantification) तथा मूल्यांकन कोई सरल कार्य नहीं था, किन्तु फिर भी, केन्द्रीय वेतन आयोग तथा मजदूरी बोर्ड यह कार्य करते थे। अतः अब यह जरूरी हो गया था कि इस सम्बन्ध में एक अधिक उद्देश्यपूर्ण तथा वैज्ञानिक कसौटी को अपनाया जाए। मजदूरी के प्रस्तावित ढाँचे में प्रत्येक पदक्रम (grade) के लिये प्रीमियम बिन्दु (premium points) नियत किये जायेंगे जो कि कुशलता-अन्तर के प्रतीक होंगे। किसी भी पदक्रम में श्रमिक की जो मूल मजदूरी निर्धारित की जायेगी वह न्यूनतम मजदूरी तथा उस प्रीमियम बिन्दु के द्रव्य मूल्य के बराबर होगी जो उस पदक्रम के लिये नियत किया गया था। नया ढाँचा मजदूरी की स्थिति में कोई एकदम तीव्र परिवर्तन नहीं करता अपितु मजदूरी का नया ढाँचा बनाते समय वेतन तथा मजदूरियों में पाई जाने वाली वर्तमान भारी विषमताओं को भी दृष्टिगत रखा जायगा। कुछ उपाय अपनाकर इन असमानताओं अथवा विषमताओं को क्रमशः धीरे-धीरे सामान्य

बनाया जायेगा। आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी एक सापेक्षिक विचारधारा है। निर्वाह मात्र-स्तर (bare subsistence level) से ऊपर इसका सम्बन्ध अर्थ-व्यवस्था में विकास के स्तर से होना चाहिये। "लाभांश बढ़ने के साथ साथ जैसे ही अर्थव्यवस्था (economy) उन्नत हो, पाँच वर्ष या इससे अधिक के समयान्तरों पर न्यूनतम मजदूरी में भी कुछ वृद्धि परिलक्षित होनी चाहिये। इसका अर्थ यह होगा कि पदक्रम के सभी स्तरों पर मूल मजदूरी (base wage) में भी उतनी ही वृद्धि होगी और उच्चतर पदक्रमों में प्रतिशत वृद्धि की मात्रा अपेक्षाकृत कम होगी। 'निर्धारित कालावधियों में वेतन व मजदूरी की विषमताओं को कम करने का यह एक अन्य उपाय है। सभी मामलों में, वृद्धियों को लागू करके ही विषमताओं में कमी की जायेगी। पदक्रम का स्तर जितना ऊँचा होगा, वेतन वृद्धि की मात्रा उतनी ही कम होगी। एक स्तर के बाद यह भी होगा कि कोई वृद्धि न की जाये। "यही एक ऐसा व्यावहारिक तरीका है जिसके द्वारा निर्धारित कालावधि में एक ऐसा मूलभूत मजदूरी ढाँचा बनाया जा सकता है जिसमें मजदूरी की असमानतायें बहुत कुछ कुशलता-अन्तरों (skill differentials) के अनुरूप रहती है।'

समिति का कहना है कि चूँकि ४० प्रतिशत जनसंख्या भूख की रेखा से भी नीचे जीवन-यापन कर रही थी जिसका कि प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग १९७१ ७२ के मूल्यों के आधार पर ४० रु० से भी कम था, अत यह उपयुक्त होगा कि धनी लोगों के उपभोग स्तरों में समुचित कमी की जाये। लाभांश वृद्धि के प्रतिशत का निर्धारण करते समय, यह अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिये कि यह प्रतिशत इतना ऊँचा न निश्चित कर दिया जाये कि अन्य भुगतानों के साथ साथ यह भी निजी उपभोग में व्यय हो जाये और उपभोग निर्धारित सीमा को भी लाँघ जाये। अच्छा वेतन पाने वाले श्रमिकों को तो लाभांश वृद्धि का उपयोग उपभोग के बजाय बचत के लिये करना चाहिये। हर १० वर्ष की अवधि के बाद, बढ़े हुये लाभांश को मूल मजदूरी में मिला दिया जाना चाहिये। निर्वाह लागत की वृद्धि में मजदूरी का उपयोग न हो, इसके लिये यह आवश्यक है कि महँगाई भत्ता देने की व्यवस्था की जाये। महगाई भत्ते का प्रतिशत मूल मजदूरी स्तर के अनुसार भिन्न भिन्न हो सकता है। मजदूरी के न्यूनतम स्तर पर यह शत प्रतिशत हो सकता है और उच्च स्तरों पर यह प्रतिशत क्रमश कम रखा जा सकता है। १,००० रु० के मूल मजदूरी स्तर से ऊपर कोई महँगाई भत्ता नहीं दिया जाना चाहिये। महगाई भत्ते की इस विचारधारा का निर्धारण इसलिये किया गया है ताकि मूल मजदूरी ढाचे में पाई जाने वाली विषमताओं के प्रभाव को कम किया जा सके।

यह तर्कसंगत होगा कि निर्वाह लागत के दो सूचकांक लिये जायें जिसमें एक सूचकांक तो २५० रु० से कम आय वाले श्रमिकों के उपभोग-ढाँचे पर आधारित हो और दूसरा २५० रु० से १,००० रु० तक आय वाले श्रमिकों के उपभोग ढाँचे

किया जाये। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पूँजीपति वर्ग द्वारा सारे लाभ का स्वायत्तीकरण (Appropriation) श्रम और पूंजी में तीव्र मतभेद उत्पन्न कर देता है जिसका परिणाम औद्योगिक झगड़े, उत्पादन में कमी और उत्पादन के उपादानों का अपव्यय होता है। वर्तमान समय में सारा लाभ व्यवसायी ही हड़प जाते हैं। लेकिन यदि वह अपने लाभ का एक भाग श्रमिक को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त दे दें तब यह आशा की जा सकती है कि श्रम और पूँजी के बीच संघर्ष कम हो जायेंगे जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन भी अच्छा होने लगेगा। लाभ सहभाजन श्रम और पूँजी के सामान्य हितों को सुदृढ़ कर देता है। इससे श्रमिकों में स्थायी रूप से एक स्थान पर काम करते रहने की प्रवृत्ति भी आ जायगी तथा निरन्तर श्रमिकावर्त के दोष दूर हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त व श्रमिक जिन्हें लाभ में हिस्सा प्राप्त होता है बहुत सावधानी तथा परिश्रम से अपना कार्य करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक माल का अपव्यय कम करते हैं तथा मशीन व उत्पादन के औजारों का विशेष ध्यान करते हैं। उत्पादन की क्षमता बढ़ जाती है जिसका अन्तत परिणाम अधिकाधिक लाभ होता है। रॉबर्ट ओवन के बारे में कहा जाता है कि जब एक बार एक मिल मालिक ने उनसे कहा कि "यदि मेरे श्रमिक चाहें तो वह अच्छा कार्य करके तथा अपव्ययता को दूर करके मेरे १०,००० पौंड प्रति वर्ष बचा सकते हैं", तो ओवन ने प्रत्युत्तर में कहा कि "तब आप उनको ५,००० पौंड प्रतिवर्ष इस कार्य के लिये क्यों नहीं दे देते हैं।" लाभ सहभाजन का एक और लाभ यह होता है कि उच्च योग्यता वाले श्रमिक लाभ सहभाजन वाले संस्थानों की ओर आकर्षित होते हैं और इससे उत्पादन क्षमता और भी बढ़ जाती है।

लाभ सहभाजन योजना में बाधायें
(Limitations of Profit-Sharing Schemes)

लाभ सहभाजन योजना की व्यवस्था से जहाँ लाभ है वहाँ अनेक दोष तथा त्रुटि भी है। यह योजना श्रमिक नेताओं द्वारा पसन्द नहीं की गई है क्योंकि इसके द्वारा मालिक प्राय श्रमिक संघों को निर्बल करने का अवसर ढूंढते हैं और श्रमिकों को श्रमिक संगठनों पर निर्भर होने के स्थान पर अपने ऊपर आश्रित कर लेते हैं। लाभ सहभाजन में कभी-कभी श्रमिक अपनी सामर्थ्य से अधिक काम करते हैं। अन्त में इसका परिणाम कम मजदूरी होना है। अनेक बार श्रमिकों को जो लाभ में से भाग मिलता है अधिक नहीं होता और श्रमिक वर्ग लाभ को बाँटने में मालिकों की ईमानदारी और सच्चाई में सन्देह करता है। अत श्रमिक लाभ सहभाजन की योजनाओं में अधिक रुचि नहीं लेते। भारत में इस प्रकार की शंका अधिक है क्योंकि जब चतुर पूँजीपति अपने लाभ के बारे में आय कर अधिकारियों तक को चकमा दे सकते हैं तब उनके लिये बेचारे निर्धन और अशिक्षित श्रमिकों को धोखा देना तो बहुत ही सरल है। इसके अतिरिक्त जब यह व्यवस्था प्रारम्भ

की जाती है तो मालिक और श्रमिक दोनों ही यह दिखाने का प्रयत्न लाभ में जो वृद्धि हुई है वह केवल उनके अपने ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हुई है। श्रमिक यह सोचते है कि क्योंकि उन्होंने मन लगाकर तथा अधिक उत्साह से कार्य किया है इसलिये लाभ विशेषकर उन्हीं के प्रयत्नों द्वारा हुआ है, परन्तु मालिक इस बात को स्वीकार नहीं करते। परिणामस्वरूप विवाद उत्पन्न होने लगते हैं।

लाभ सहभाजन योजना के विरुद्ध अनेक आपत्तियाँ और भी हैं। यह बताया जा चुका है कि निवल लाभ का ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन है क्योंकि मूल्य-ह्रास, कराधान (Taxation), आरक्षित धन (Reserves), चुकती पूँजी पर लाभ आदि ऐसी अनेक बातें है, जिनके बारे में निवल लाभ (Net profits) के निश्चित करने में बहुत अधिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त मालिक सदा यह कहते है कि यदि श्रमिक लाभ में अपने भाग का दावा करते है तो क्या व्यवसाय में हानि होने पर उस हानि का एक भाग देने को तैयार होंगे ? दूसरे शब्दों में, क्या श्रमिक व्यवसाय की जोखिम को उसी अनुपात में वहन करने को तैयार है जिस अनुपात में वह लाभ में हिस्सा चाहते है ? लाभ सहभाजन से श्रमिक आलसी भी हो सकते है और इस प्रकार उत्पादन बजाय बढने के घट सकता है।

उपसंहार (Conclusion)

अत प्रो० टॉजिग का कथन है, "यह आशा बिल्कुल नहीं की जा सकती कि लाभ सहभाजन विश्वव्यापी रूप ग्रहण कर लेगा। इसके विस्तृत रूप में अपनाये जाने की आशाएँ भी बहुत कम है।" तब भी अनेक ऐसे अर्थशास्त्री हैं जिनका विश्वास है कि लाभ सहभाजन ही श्रमिक वर्ग की मुक्ति का एकमात्र मार्ग है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि लाभ सहभाजन योजनाओं से श्रमिकों में सन्तुष्टि उत्पन्न होगी और वह अपना कार्य भी अच्छी प्रकार से करेंगे परन्तु वस्तुत इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में अनेक बाधाएँ है। जब तक कि मालिकों और श्रमिकों के मध्य पारस्परिक विश्वास तथा पारस्परिक सौहार्द्र का वातावरण पैदा नहीं होता ऐसी योजनाएँ कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। यह सोचना भी बहुत ज्यादा आशावादी हो जाना होगा कि लाभ सहभाजन योजनाएँ औद्योगिक विवादों को समाप्त कर देंगी। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि ऐसी योजनाओं से विवाद कम हो जायेंगे।

श्रमिक सह-साझेदारी (Labour Co-partnership)

भारतवर्ष में लाभ सहभाजन की प्रस्तावित योजना पर विचार करने से पूर्व इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि व्यवसाय के प्रबन्ध और निर्देशन में किसी भी प्रकार के अधिकार के बिना श्रमिकों का लाभ में से भाग लेना लाभ सहभाजन का एक आन्तरिक दोष है। इस दोष को दूर करने के लिये बहुत से देशों में श्रमिकों को प्रबन्धक मण्डल में प्रतिनिधित्व देने के प्रयत्न किये गये

हैं। इसको सह-साझेदारी के नाम से जाना जाता है। इसका क्षेत्र लाभ सहभाजन के क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। वास्तव में इसमें लाभ सहभाजन और प्रबन्ध में भाग दोनों ही का समावेश हो जाता है और इसके अन्त में श्रमिक पूँजी में हिस्सेदार होने के भी योग्य हो जाते हैं। आरम्भ में श्रमिक सह-साझेदारी को सहकारिता का ही एक रूप समझा जाता था। इस ओर रोबर्ट ओवन द्वारा प्रयत्न किये गये थे। यह प्रयत्न असफल रहे क्योंकि सहकारिता प्रणाली बड़े पैमाने की उत्पत्ति के अनुकूल नहीं है। रोबर्ट ओवन के आदर्श बहुत ही ऊँचे थे जिनको प्राप्त करना बहुत कठिन था। परन्तु यह एक पृथक् प्रश्न है जिसका अध्ययन 'श्रम और सहकारिता' के अध्ययन में किया जायगा।

सामान्यतः सह-साझेदारी उन योजनाओं में होती है जो पूँजीवादी प्रकृति की होती हैं तथा उनमें, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, लाभ सहभाजन व श्रमिकों के प्रबन्ध में नियन्त्रण की योजनाएँ भी सम्मिलित होती हैं। व्यवसाय का नियन्त्रण प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि या तो शेयर पूँजी प्राप्त की जाये और इस प्रकार से शेयरधारी के साधारण अधिकार तथा उत्तरदायित्व प्राप्त कर लिये जायें या श्रमिकों की एक सह-साझेदारी समिति बना ली जाय जिसकी आन्तरिक प्रबन्ध में कुछ सुनवाई हो। जहाँ तक शेयर पूँजी प्राप्त करने का सम्बन्ध है, हम भारतीय श्रमिकों से उनकी निर्धनता तथा कम मजदूरी के कारण इसकी आशा नहीं कर सकते। इस कारण इस प्रश्न पर विचार करना कोई विशेष लाभदायक नहीं है। सह-साझेदारी समिति का निर्माण निःसन्देह उपयोगी हो सकता है। इससे श्रमिक आन्तरिक प्रबन्ध में भी अपना हाथ रख सकते हैं। परन्तु यह भी श्रमिकों की शिक्षा, उनकी बुद्धिमत्ता तथा मालिकों की उन पर कितना विश्वास है, इन बातों पर निर्भर करती है। जब तक देश में एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन न हो, इस प्रकार की समितियाँ न तो बनाई जा सकती हैं और न ही सफल हो सकती हैं फिर भी यदि इस प्रकार की समितियाँ बनाई गईं तो समिति के सदस्यों को व्यवसाय की गुप्त बातें नहीं बताई जायेंगी तथा मुख्य-मुख्य देखभाल के कार्यों का काम उनको नहीं दिया जायेगा। यह भी बहुत कुछ सम्भव है कि श्रमिक अपने सह श्रमिकों की आज्ञाओं का पालन भी न करें। इसमें भी सन्देह है कि सह-साझेदारी की कोई भी योजना बिना शक्तिशाली श्रमिक संघों के सफल हो सकेगी। श्रम और प्रबन्ध में अधिक सहयोग देने के लिये पंचवर्षीय आयोजनाओं में भी जोर दिया गया था जिससे उत्पादन अधिक हो सके तथा औद्योगिक शान्ति स्थापित की जा सके। श्रमिकों को प्रबन्ध में भी कुछ हिस्सा देने की ओर टाटा जैसे कुछ जागरूक उद्योगपतियों द्वारा पग उठाये गये हैं। प्रबन्ध में श्रम के भाग लेने की योजनायें कई संस्थाओं में लागू की गई हैं। (देखिये परिशिष्ट 'ग')।

भारत में लाभ सहभाजन के विचार का विकास

(Growth of Profit-Sharing Idea in India)

परन्तु उपरोक्त बातें लाभ सहभाजन योजना के विषय में लागू नहीं होतीं।

इसके लिये तो देश में एक शक्तिशाली आन्दोलन चालू है और इसकी श्रम नीति में भी बहुत महत्व है। दिसम्बर १९४७ में तत्कालीन वित्तमंत्री श्री षनमुगम चेट्टी ने अंतरिम बजट पर बहस के समय यह बताया था कि सरकार उद्योग में लाभ सहभाजन की योजनाओं की सम्भावनाओं पर विचार कर रही थी जिसमें श्रमिकों को अधिक उत्पादन करने का पर्याप्त प्रोत्साहन मिल सके। उसी समय सरकार ने एक उद्योग सम्मेलन बुलाया जिसमें प्रान्तीय और देशी राज्य सरकारों के प्रतिनिधि, अनेक महत्वपूर्ण व्यापारी तथा उद्योगपति एवं संगठित श्रम के नेताओं ने भाग लिया। औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution) इसी सम्मेलन में पारित किया गया था। इसमें यह बताया गया कि श्रमिकों को वेशी लाभ में से उचित भाग दिया जाये। सन् १९४८ में सरकार द्वारा औद्योगिक नीति की घोषणा में यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। प्रान्तीय श्रम मन्त्रियों का एक सम्मेलन नई देहली में यह सलाह देने के लिये हुआ था कि पूँजी का क्या उचित पारिश्रमिक होना चाहिये तथा श्रम और पूँजी के बीच लाभ का वितरण किस प्रकार हो। इस सम्मेलन के निर्णय के परिणामस्वरूप एक विशेषज्ञ लाभ सहभाजन समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने सितम्बर १९४८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

सन् १९४८ की लाभ सहभाजन समिति
(Profit-Sharing Committee of 1948)

इस समिति के मुख्य निष्कर्ष संक्षेप में निम्न प्रकार है—

इस समिति ने सम्बन्धित अनेक पहलुओं की विस्तारपूर्वक जाँच करने के पश्चात् यह परिणाम निकाला कि लाभ सहभाजन की ऐसी प्रणाली का निर्धारण करना सम्भव नहीं है जिसमें कि श्रमिकों के लाभ का अंश उत्पादन के अनुपातानुसार घटता-बढ़ता रहे। समिति ने ६ उद्योगों में ५ वर्ष के लिये लाभ सहभाजन की योजना को प्रयोगात्मक दृष्टि से लागू करने का सुझाव दिया। उद्योगों के नाम निम्नलिखित है—सूती वस्त्र उद्योग, जूट, इस्पात, सीमेंट, टायरों का उद्योग और सिगरेट उद्योग। समिति ने बताया कि उद्योग के द्वारा प्राप्त किया गया लाभ श्रम के अतिरिक्त और बहुत से साधनों पर निर्भर करता है। लाभ द्वारा श्रमिक के कार्य की कोई सापेक्षिक माप नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, उद्योग उद्योग में और हर उद्योग की इकाई-इकाई में उत्पादन भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त श्रम की उत्पादकता अन्य बहुत-सी बातों पर निर्भर करती है, जैसे सामान किस प्रकार का है और संगठन व निर्देशन उचित प्रकार से हो रहा है या नहीं, आदि। अतः समिति इस परिणाम पर पहुँची कि वेशी लाभ में श्रमिक का भाग केवल एक स्वेच्छ रीति (Arbitrary Way) से ही निश्चित किया जा सकता है। यदि एक बार श्रमिकों का कुल भाग वेशी लाभ में से निश्चित हो जाये तब उसे व्यक्तिगत श्रमिकों के मध्य, किसी एक पिछले समय में उनकी प्राप्त कुल आय के अनुपात में, वितरित

किया जाना चाहिये। इस प्रकार की पद्धति से व्यक्तिगत पारिश्रमिक व्यक्तिगत प्रयत्नों के अनुसार कुछ सीमा तक सम्बद्ध हो जायेगा।

समिति ने यह बताया कि लाभ सहभाजन पर विचार-विमर्श अन्ततः तीन मुख्य दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये। लाभ सहभाजन उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये होना चाहिये या लाभ सहभाजन औद्योगिक शान्ति को प्राप्त करने के लिये होना चाहिये या लाभ सहभाजन श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने के उद्देश्य से होना चाहिये। प्रथम बात पर अर्थात् लाभ सहभाजन उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये होना चाहिये, समिति का मत यह था कि यदि पिछली अवधि की कुल आय के अनुपात में श्रम के उत्पादन का भाग व्यक्तिगत रूप में वितरित कर दिया जाय तब उत्पादन अधिक करने में इससे व्यक्तिगत रूप से प्रोत्साहन मिलेगा। समिति ने जिस कारण लाभ सहभाजन को लागू करने की सिफारिश की वह मुख्यतया यह था कि इससे औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहन मिलेगा। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुये उन्होंने यह सुझाव दिया कि किसी एक वर्ष में जब श्रमिक या श्रमिकों के वर्ग उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा घोषित अवैध हड़ताल में भाग लेते हैं, लाभ का सहभाजन पूर्ण अथवा आंशिक रूप से रोक लेना चाहिये। इसी प्रकार यदि कोई अवैध तालाबन्दी है तो वैसी लाभ की गणना इस प्रकार लाभ सहभाजन के लिये की जानी चाहिये मानो कोई तालाबन्दी हुई न हो।

पूंजी पर उचित प्रतिफल क्या होना चाहिये, इस प्रश्न को लेकर समिति ने पूंजी की व्याख्या की। पूंजी को चुकती पूंजी माना और इसके साथ-साथ सारी सेवाओं के भुगतान के लिये राशि के साथ उस आरक्षित निधि (Reserve Fund) को भी ले लिया जो व्यवसाय के लिये सुरक्षित रखी जाती है। आरक्षित निधि में मूल्य-ह्रास राशि को सम्मिलित नहीं किया जायेगा वरन् सिर्फ उसी आरक्षित राशि को लिया जायेगा जो लाभ में से ली जाती है और जिसके ऊपर करों का भुगतान भी किया जाता है। समिति की राय में कुल लाभ में से सर्वप्रथम तो मूल्य-ह्रास के लिये निधि निकाल देनी चाहिये और निवल लाभ में से सबसे पहले आरक्षित निधि निकाल लेनी चाहिये। निवल लाभ के अर्थ यह लिये गये हैं कि कुल लाभ में से मूल्य-ह्रास राशि, प्रबन्धक अभिकर्ताओं (Managing Agents) को अदायगी और करों की भुगतान राशि निकाल देने के बाद जो कुछ रह जाता है वह निवल लाभ है। पूंजी के उचित प्रतिफल के प्रश्न पर समिति इस परिणाम पर पहुंची कि स्थापित उद्योग में, जिनके लिये लाभ सहभाजन योजना का सुझाव दिया गया था पूंजी का उचित प्रतिफल कम से कम इतना होना चाहिये जिससे प्रोत्साहन मिले और विनियोग (Investment) भी बढ़े। सब परिस्थितियों को देखते हुये समिति के विचार में वर्तमान परिस्थितियों में पूंजी पर उचित प्रतिफल की दर चुकती पूंजी पर ६ प्रतिशत होनी चाहिये और इसके साथ-साथ यह सब आरक्षित निधि भी लेनी चाहिये

जो व्यवसाय के लिये सुरक्षित रखी जाये। उन उद्योगों की इकाइयों ने चुने थे, आरक्षित निधि की सीमा की जाच करने के पश्चात् स[illegible] पर पहुँची कि जो पूंजी लगाई जाती है उस पर यदि ६% प्रतिफल मिल जाये और बेशी लाभ मे से १०% मिल जाये तो उद्योग उचित लाभांश घोषित करने मे समर्थ हो सकता है।

बेशी लाभ मे से श्रम का भाग कितना हो इस बारे में समिति ने निर्णय दिया कि यह व्यवसाय के बेशी लाभ का ५० प्रतिशत होना चाहिये। प्रत्येक श्रमिक का भाग उसके पिछले १२ महीनो की कुल आय के अनुपात म होना चाहिये। परन्तु इस आय म महँगाई भत्ता या अन्य कोई बोनस जो उसके द्वारा प्राप्त किया गया हो, सम्मिलित नही होना चाहिये। वह भुगतान, यदि कोई लाभ सहभाजन बोनस दिया जा रहा हो उसके बदले म होना चाहिये। यदि किसी श्रमिक का भाग उसकी मूल मजदूरी के २५ प्रतिशत से बढ जाता है तब नकद भुगतान उसकी मूल मजदूरी के २५ प्रतिशत तक सीमित होना चाहिये तथा शेष राशि उसके प्रॉविडेण्ट फण्ड या अन्य किसी हिसाब म रखी जानी चाहिये।

प्रत्येक व्यवसाय या प्रत्येक उद्योग या क्षेत्र विशेष में किसी उद्योग द्वारा श्रम के भाग का वितरण किस प्रकार हो—इसके गुण एवं दोषो तथा कठिनाइयो पर विचार करने के पश्चात् समिति ने यह बताया कि साधारणतया लाभ सह-भाजन का आधार उद्योग की इकाई ही होना चाहिये। लेकिन कुछ विशेष स्थितियो मे इसका आधार एक उद्योग अथवा क्षेत्र भी हो सकता है। समिति के विचार म आरम्भ म उद्योग व क्षेत्र के आधार को बम्बई अहमदाबाद और शोलापुर के सूती वस्त्र उद्योग म लागू करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये और सूती वस्त्र उद्योग म अन्य स्थानों पर इसके विस्तार पर सरकार द्वारा बाद मे विचार किया जा सकता है। इन स्थितियों मे हर इकाई के बेशी लाभ को इस उद्देश्य से पूल (*Pool*) कर लेना चाहिये कि उस क्षेत्र के उद्योग के श्रमिकों को लाभ सहभाजन बोनस कितना मिलना चाहिये। यह बोनस प्रत्येक इकाई द्वारा अपने श्रमिकों को बिना लाभ का विचार करते हुए एक न्यूनतम भुगतान के रूप मे देना चाहिये। परन्तु उन इकाइयो मे जहाँ बेशी लाभ का आधा भाग (अर्थात् वह राशि जो श्रमिक मे बाँटी जानी चाहिये) उस बोनस से, जोकि कम से कम अदा करना है, बढ जाता है, तब यह बढी हुई राशि भी उसी इकाई के श्रमिको को ही अदा की जानी चाहिये। इसका प्रभाव यह होगा कि उस क्षेत्र की प्रत्येक इकाई म लगे हुए श्रमिको को एक न्यूनतम भाग मिल जायेगा। यह भाग उस क्षेत्र मे लगी सारी इकाइयो के कुल बेशी लाभ की आधी राशि के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिये यदि उन इकाइयो मे बेशी लाभ होता हो। इसी प्रणाली द्वारा लाभ सहभाजन के आधारभूत उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। उद्देश्य यह है कि श्रमिक जिस व्यवसाय म, कार्य करते है उसके हित मे उन्हे प्रत्यक्ष रूप से रुचि हो। इकाई के अनुसार लाभ मे

वितरण की नीति का निश्चित रूप से यही अर्थ है कि श्रमिकों को उन इकाइयों में जो लाभ उत्पन्न नहीं करती कोई लाभ का भाग नहीं मिल सकता। इस प्रकार विभिन्न इकाइयों में श्रमिकों के पारिश्रमिक में भिन्नता आ जायगी। एक कुशल श्रमिक को, जो कि दुर्भाग्यवश एक ऐसे व्यवसाय में लगा है जो लाभ नहीं कमा रहा है केवल अपनी मूल मजदूरी पर सन्तोष करना पड़ेगा जबकि एक अकुशल श्रमिक यदि वह लाभ कमाने वाले व्यवसाय में लगा है लाभ भी प्राप्त कर सकेगा। परन्तु यह कठिनाई दूर की जा सकती है यदि लाभ सहभाजन का उद्योग व क्षेत्र के आधार पर लागू किया जाय। लेकिन मालिक मूलतः इस प्रकार लाभ का मिलान का विरोध करते हैं क्योंकि उनके अनुसार इसका अर्थ यह होगा कि उद्योग में अधिक योग्य इकाइयों को अयोग्य इकाइयों की मदद करनी पड़ेगी। मालिकों द्वारा उद्योग आधार पर लाभ सहभाजन के विरोध के कारण ही समिति ने कुछ विशिष्ट स्थितियों को छोड़कर इस में लाभ सहभाजन का आधार इकाई ही रखा था।

लाभ सहभाजन का आलोचनात्मक मूल्यांकन

(A Critical Estimate of the Profit Sharing Scheme)

लाभ सहभाजन समिति की यह रिपोर्ट एकमत नहीं थी। मालिकों तथा श्रमिकों, दोनों ही के द्वारा विभिन्न कारणों तथा विभिन्न आधारों पर अनेक आपत्तियाँ उठाई गईं। राष्ट्रीय सलाहकार परिषद जिसने इस रिपोर्ट पर विचार किया किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी। अगस्त व सितम्बर १९५१ तथा जून १९५२ में यह मामला बार-बार संयुक्त सलाहकार मण्डल की सभाओं में विचारार्थ आया। औद्योगिक विकास समिति द्वारा स्थापित संयुक्त सलाहकार मण्डल के प्रधान श्री गुलजारी लाल नन्दा ने विचार प्रकट किया कि लाभ सहभाजन तथा बोनस जैसी समस्याओं की जटिलता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि अमरिका इंगलैण्ड, जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ एवं भारतवर्ष के विशेषज्ञों की सहायता से कुछ सिद्धान्त आदर्श और स्तर बनाये जायें। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने उल्लेख किया था कि लाभ सहभाजन तथा बोनस के प्रश्न के लिये विशेष अध्ययन की आवश्यकता है तथा नकदी के रूप में बोनस की अदायगी सीमित होनी चाहिये तथा शेष राशि श्रमिकों की बचत में जमा कर देनी चाहिये। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में भी यह उल्लेख किया गया था कि इससे पूर्व कि कोई योजना सब पक्षों को मान्य हो यह आवश्यक है कि लाभ सहभाजन तथा बोनस सम्बन्धी सिद्धान्तों का और अधिक अध्ययन कर लिया जाय। तृतीय और चतुर्थ पंचवर्षीय आयोजनाओं में लाभ सहभाजन के बारे में कोई उल्लेख नहीं था। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी मामला लाभ सहभाजन समिति को सौंपने के अलावा इस सम्बन्ध में और कोई सिफारिश नहीं की।

इस प्रकार लाभ सहभाजन योजना को वैधानिक रूप से लागू करने का प्रश्न जोस वर्षों से भी अधिक समय से सरकार के विचाराधीन है। मालिकों ने,

जैसा कि आशा थी ही, इस योजना का पूर्णरूप से विरोध किया है
न इसको बिल्कुल असम्भव बताया है। यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान समय में,
जबकि पूंजी तथा निवेश बाजारों में विश्वास स्थापित करने में बहुत कठिनाई है,
इस प्रकार के प्रयोग तो विशेषतया जोखिमपूर्ण है। यह भी कहा गया है कि श्रमिकों
को पुराने और अनुभवसिद्ध उत्पादन बोनस की पद्धति से कहीं अधिक लाभ हो
सकता है और लाभ सहभाजन के इस नये प्रयोग से जो इतना अस्पष्ट है, न श्रमिकों
को और न ही पूंजी को लाभ होगा।

परन्तु क्योंकि लाभ सहभाजन योजना को लागू नहीं किया गया है, अतः
इस नये प्रस्ताव की उपयुक्तता अथवा व्यावहारिकता पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं
दिया जा सकता। अन्य देशों में लाभ सहभाजन सम्बन्धी प्रयोग उत्साहवर्द्धक
सिद्ध नहीं हुए है, और इससे मालिकों और श्रमिकों में विश्वास पैदा हो गया है।
परन्तु हमारे विचार में भारत में वर्तमान परिस्थितियों में लाभ सहभाजन योजना
को लागू करना उचित ही होगा। देश घोर औद्योगिक अशान्ति से पीड़ित है और
उद्योग में शान्ति स्थापित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह तब ही हो सकता
है जब श्रमिक उद्यमकर्त्ता (Entrepreneur) पूंजीपति के साथ ही बराबर का भागी-
दार हो। इसलिये ऐसा प्रयोग अवश्य करना चाहिये क्योंकि प्रयोग और त्रुटियों के
आधार पर ही लाभ सहभाजन तथा श्रमिक सह-साझेदारी का ऐसा व्यावहारिक
सिद्धान्त बनाया जा सकता है जिससे राष्ट्रीय समृद्धि में वृद्धि हो। यह स्वीकार
करना पड़ेगा कि उद्योगपति अनिश्चित समय तक श्रमिकों का शोषण नहीं कर सकते।
अब समय आ गया है जबकि उन्हें उद्योग में लगे अपने निर्धन साथियों को अपनी
आय का कुछ भाग स्वेच्छा से देना चाहिये। यदि वे इच्छा से ऐसा नहीं करते हैं तब
सामाजिक शक्तियाँ उनको पूर्ण भाग लेने के लिये बाध्य कर सकती हैं। देश परिवर्तन
काल से गुजर रहा है तथा पंचवर्षीय आयोजनायें देश में चालू हैं। अधिक और
अधिक उत्पादन वर्तमान युग की सबसे बड़ी मांग है। हमें अधिक उत्पादन के हित में
श्रमिकों को सन्तुष्ट रखना पड़ेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये इससे अच्छा और
कोई मार्ग नहीं हो सकता कि श्रमिकों को भी उद्योग के लाभ में साझीदार बना
लिया जाये।

———

१६ औद्योगिक श्रमिकों की ऋण-ग्रस्तता

INDEBTEDNESS OF INDUSTRIAL WORKERS

भारत के औद्योगिक श्रमिकों के, विशेषकर कारखाना में कार्यरत लोगों के, आर्थिक जीवन का एक विशेष लक्षण यह है कि वह अधिकतर जन्म से ही ऋण-ग्रस्त होते हैं ऋण में ही रहते हैं तथा ऋण में ही मरते हैं। रॉयल श्रम आयोग के अनुसार "श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर के उत्तरदायी कारणों में ऋण-ग्रस्तता को उच्च स्थान दिया जाना चाहिये।" आयोग का यह भी कथन है कि "अधिकांश श्रमिक तो वास्तव में ऋण में ही पैदा होते हैं। इस बात से हृदय में दुःख भी होता है और प्रशंसा भाव भी आता है कि प्रत्येक पुत्र साधारणतः अपने पिता के ऋण का उत्तरदायित्व ले लेता है। यह एक ऐसा उत्तरदायित्व होता है जो कानूनी आधारों की अपेक्षा धार्मिक एवं सामाजिक कारणों पर अधिक आधारित है।"[1] इसलिये आयोग के अनुसार औद्योगिक श्रमिकों की एक बड़ी संख्या अपने श्रमिक जीवन के अधिकांश समय में ऋण-ग्रस्त ही रहती है।

ऋण-ग्रस्तता की व्यापकता (Extent of Indebtedness)

यह अनुमान लगाया गया है कि अधिकतर औद्योगिक केन्द्रों में कम से कम दो-तिहाई श्रमिक ऋण-ग्रस्त हैं और ऋण की राशि ३ माह के वेतन से भी अधिक है। कुछ जाँचों द्वारा श्रमिक वर्ग की ऋण-ग्रस्तता की व्यापकता ज्ञात होती है[2] यद्यपि इस सूचना को अधिक विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि जाँच अधिकारियों को श्रमिक अपनी आर्थिक स्थिति बताने में संकोच करता है। श्रमिकों को भी कई बार अपनी ऋण की व्यापकता का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। इसके अतिरिक्त रॉयल श्रम आयोग तथा सन् १९४६ की श्रम अनुसन्धान समिति ने भी ऋण-ग्रस्तता के प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया था। यह भी आश्चर्य की बात है कि राष्ट्रीय श्रम आयोग ने औद्योगिक श्रमिकों की ऋण-ग्रस्तता की समस्या पर कोई विचार नहीं किया। ऋण के विषय में हमें कुछ ऐसी रिपोर्टों द्वारा भी आँकड़े प्राप्त होते हैं जो रिपोर्ट ऐसी पारिवारिक बजट जाँचों की हैं जोकि भारत सरकार की "निर्वाह खर्च सूचकांक" को तैयार करने की योजना के अन्तर्गत की गई थीं। इस विषय पर भारतीय श्रम वार्षिक पुस्तिका, १९४७–४८ (Indian Labour Year Book, 1947–48) के पृष्ठ १६५, पर दिये गये आँकड़े अग्रलिखित तालिका में उद्धृत हैं—

---

1 Report of the Royal Commission on Labour, p 224

2 Labour Bulletin (U P) June 1955, Report by Dr. Vidya Dhar Agnihotri

औद्योगिक श्रमिकों में ऋण ग्रस्तता

१ केन्द्र	२ सर्वेक्षित परिवारों की संख्या	३ ऋण ग्रस्त परिवारों की संख्या	४ ऋण ग्रस्त परिवारों का प्रतिशत मान	५ ऋण ग्रस्त परिवारों का प्रति परिवार औसत ऋण
१ बम्बई				रुपये आने पाई
(क) बम्बई	२०३०	१३०१	६४ १	१२३ १४ ७
(ख) जलगाँव	३३१	२०५	६० ७	२२७ ० ०
(ग) शोलापुर	७७८	६६७	८५ ७	आंकड़े प्राप्य नहीं
२ पश्चिमी बंगाल				
(क) कलकत्ता	२७०७	११२४	४१ ५	११७ ६ १
(ख) हावड़ा व बाली	१४३५	१००८	७० २	आंकड़े प्राप्य नहीं
३ बिहार				
(क) देहरी ऑनसोन	२३१	१३४	५८ ०	१५७ ० ०
(ख) जमशेदपुर	६९१	४३०	६२ २	२३४ ११ ८
(ग) झरिया	९९९	२२३	२२ २	२८ ८ ९
(घ) मुंगेर व जमालपुर	५७८	४२६	७३ ७	२०३ १० ७
४ असम				
(क) गोहाटी	२४१	३२	१३ ३	१९७ १ ४
(ख) तिनसुकिया	१८५	२२	११ ९	७० ० ०
५ मध्य प्रदेश व बरार				
(क) अकोला	३१५	२५८	८१ ९	९९ १५ ३
६ पूर्वी पंजाब				
(क) लुधियाना	२१३	६९	३२ ४	१५० ८ ४
७ उड़ीसा				
(क) बहरामपुर	१२३	७३	५९ ४	१९१ १२ ११
(ख) कटक	१६८	५२	३१ ०	१९९ ० ०
बागान				
१ चाय				
(क) मद्रास	२७४	१९८	७२ ३	७९ ० ०
(ख) कोचीन	२०	१७	८५ ८	५५ ० ०
२ कॉफी				
(क) मद्रास व कुर्ग	१२२	८७	७१ ३	आंकड़े प्राप्य नहीं
(ख) कोचीन	२१	१२	१०० ०	२६ २ ८
३ रबड़				
(क) मद्रास व कुर्ग	१५	१४	९३ ३	४८ ३ ५
(ख) कोचीन	१५	११	७३ ३	४४ १४ १

यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक श्रमिक की ऋणग्रस्तता का एक मुख्य कारण यह है कि उसका व्यय अधिक है और आय कम है। पूँजीपतियों के द्वारा शोषण के कारण उसे अपर्याप्त वेतन मिलता है और इसी कारण उसकी आय भी कम है। संघों के शक्तिशाली संगठन न होने के कारण श्रमिक अधिक मजदूरी पाने में असमर्थ रहता है। अभी हाल के ही वर्षों में, यद्यपि श्रमिकों की नकद मजदूरी में वृद्धि हुई है, किन्तु जैसा कि 'मजदूरी' के पिछले अध्याय में बताया गया, कीमतों की वृद्धि के साथ ही श्रमिकों की असल आय घटी है। जब श्रमिक को अपने व अपने परिवार को पालने के लिये पर्याप्त धन प्राप्त नहीं होता, विशेष रूप से तब जबकि कीमतों के बढ़ने से निर्वाह लागत काफी बढ़ चुकी हो, तो उसके लिये, यदि मिले तो, केवल ऋण लेने का मार्ग ही खुला रह जाता है। उसका व्यय अधिक होता है क्योंकि उसे सामाजिक उत्सवों, रीतियों और रिवाजों पर व्यय करना पड़ता है और यदि ऐसे व्यय को त्यागा भी जा सकता हो, तो भी श्रमिक अपनी अशिक्षितता के कारण नहीं त्याग पाता। फिर शराब व जुआ भी ऋणग्रस्तता के लिये उत्तरदायी हैं। श्रमिक को परिवार में बीमारी, बेरोजगारी, बरखास्तगी, हड़ताल अथवा तालाबन्दी के समय में भी ऋण लेना पड़ता है। सामाजिक उत्सवों पर, विशेषकर विवाहोत्सवों पर, व्यय ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण पाया गया है और ऋणग्रस्तता में सामाजिक उत्सवों पर व्यय का अनुपात, जमशेदपुर में ३१.८%, बिहार की कोयला खानों में ३८.२% तथा कानपुर में ३३% पाया गया है। विभिन्न स्थानों में विवाह के कारण लिये गये ऋण का प्रतिशत मान ३६ व ८० प्रतिशत के बीच है।

ऋणग्रस्तता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि श्रमिकों को ऋण सरलता से मिल जाता है। श्रमिक को नगर में महाजन द्वारा, जोकि अधिकतर मारवाड़ी, पठान अथवा पंजाबी होता है, ऋण आसानी से मिल जाता है। बहुधा यह भी देखा गया है कि मिस्त्री अथवा मध्यस्थ भी ऋण देने का धन्धा करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में परचूनिये भी ऋण देते हैं और ऋण जिन्स अथवा सामग्री के रूप में भी दिया जाता है। दूकानदार भोजन एवं मदिरा भी उधार देते हैं। वास्तव में यह देखा गया है कि कोई भी व्यक्ति जिसके पास तनिक भी बची धन हो, ऊँची दर पर ऋण देने के विषय में सोचने लगता है। बहुधा छोटे-मोटे क्लर्क, दिवंगत श्रमिकों की विधवाएँ, अथवा वेश्याएँ इस प्रकार से अत्यधिक ब्याज की दरों पर (जो १५% से ३००% तक होती हैं) उधार देकर अपनी आय में वृद्धि कर लेती हैं। ब्याज की दरें बहुत ऊँची होती हैं क्योंकि श्रमिक के पास अपनी जमानत के अतिरिक्त कोई जमानत नहीं होती और उसकी प्रवासिता के कारण उसको ऋण देने में बहुत जोखिम भी होता है। अधिकतर श्रमिक महाजनों के चंगुल में फँस ही जाता है और कभी-कभी अपने नीच मित्रों के बहकाने से भी जो बहुधा महाजन के एजेन्ट ही होते हैं, उधार धन लेने के लिये तैयार हो जाता है। अशिक्षित औद्योगिक श्रमिक के अंगूठे का निशान प्रोनोट पर ले लिया जाता है, और इसमें

धोखे की गुंजाइश बहुत अधिक रहती है। यदि लिखित प्रलेख न भी हो तब भी श्रमिक मे औद्योगिक क्षेत्रो के महाजन की माँग को ठुकराने का साहस नहीं होता। ये लोग बहुत ऊँची दरो पर ब्याज वसूल करते हैं और श्रमिक ऋण चुकाने मे कुछ आनाकानी करें तो शारीरिक शक्ति प्रयोग करने का भय दिखाकर प्रत्येक मास वेतन का अधिकांश ब्याज के रूप म ही ले लेते है।

ऋणग्रस्तता के दुष्परिणाम (Evils of Indebtedness)

सरलता से मिला हुआ ऋण श्रमिक के लिये सबसे बडा अभिशाप साबित हुआ है और इस रीति का सबसे दुखदायी दोष यह है कि ऐसे बडे-बडे ऋण भी आसानी से मिल जाते है, जिनको श्रमिक कभी भी चुकाने की आशा नही कर सकते। उनकी अशिक्षिता उनमे व्यावसायिक समझ और दूरदर्शिता पैदा करने में बाधक सिद्ध होती है और उनकी हिसाब लगाने की असमर्थता के कारण उन्हे इस बात के लिये विवश होना पडता है कि महाजनो के द्वारा ही ऋण की राशि, अधिक या कम, जितनी भी बतायी जाये, उसे स्वीकार कर ले। अधिकतर महाजनो को पूरा ब्याज लगातार नही मिलता और इसलिये इस बकाया ब्याज को भी वह मूलधन मे जोड देते है। कुछ ही वर्षों म यह मूल ऋण बहुत बडे व स्थायी ऋण मे परिवर्तित हो जाता है। बहुत बार तो महाजन वेतन मिलने वाले दिन ही श्रमिक एव उसके सम्पूर्ण परिवार का कुल वेतन ले लेते है और उनको केवल जीवन-निर्वाह हेतु धन फिर ऋण के रूप म दे देते है। बहुत से परिश्रमी श्रमिक केवल ब्याज देने ही के लिये अपने जीवन की आवश्यकताओ को छोडने पर विवश हो जाते है और मूल ऋण चुकाने का तो उन्हे मौका ही नही मिल पाता। इसलिये ऋणग्रस्तता कार्य-कुशलता की वृद्धि म बाधक है। ऋणग्रस्त श्रमिक जो कुछ अतिरिक्त प्रयत्न करते है, उसका लाभ केवल महाजन को ही होता है और ऋणग्रस्त श्रमिक सदा ही परेशान रहता है। "इस प्रकार ऋण की विडम्बना श्रमिकों के आत्मसम्मान के लिये एक अभिशाप सिद्ध हुई है और उनकी कार्यकुशलता का ह्रास करती है।"[1]

ऋणग्रस्तता की समस्या को सुलझाने के उपाय
(Measures for Dealing with Indebtedness Problem)

ऋणग्रस्तता के उपरोक्त दुष्परिणामो के निवारणार्थ रॉयल श्रम आयोग ने अनेक उपाय सुझाये है। उनम प्रमुख यह है कि श्रमिको की ऋण प्राप्त करने की सुविधा को कम किया जाय और महाजन के लिये श्रमिको की शक्ति के बाहर ऋण देना असम्भव बना दिया जाये। ऋणग्रस्तता की समस्या को सुलझाने हेतु राज्यो एव केन्द्रीय सरकारो द्वारा जो वर्तमान वैधानिक पग उठाये गये हैं वे रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप ही हैं।

मजदूरी की कुर्की के विरुद्ध लिये गये पग
(Measures against Attachment of Wages)

आयोग ने पहले मजदूरी की कुर्की के प्रश्न पर विचार किया। उस पता

1 The tyranny of debt degrades the employee and impairs his efficiency."

तक हो सकती है और इसकी अदायगी ३६ माह से भी अधिक अवधि तक हो सकती है। ब्याज की कुल राशि को 'दामदुपट' के सिद्धान्त के अनुसार कम कर दिया गया है अर्थात् ब्याज ऋण की मूल राशि से अधिक नहीं हो सकता।

औद्योगिक संस्थानों को घेरने के विरुद्ध उपाय
(Measures against Besetting of Industrial Etablishments)

एक अन्य समस्या, जिस पर रॉयल श्रम आयोग ने विचार किया, औद्योगिक संस्थानों का घेर जाने की थी। घेरने से तात्पर्य किसी भी संस्थान के दरवाजे, फाटक या अहाते के समीप या दिखाई पड़ने तक की दूरी तक घूमना-फिरना लिया जाता है। रॉयल श्रम आयोग ने यह पाया कि "बहुत से साहूकार ऐसे हैं जो कानूनी मार्ग ग्रहण करने की अपेक्षा श्रमिकों पर झपट पड़ते हैं और हिंसात्मक उपायों पर निर्भर रहते हैं। उनके लिये लाठी ही एक ऐसी अदालत है जहाँ वह अपील करते हैं और वेतन वाले दिन कारखानों के फाटक पर श्रमिकों के बाहर आते ही उन पर तत्काल झपट पड़ने के लिए प्रतीक्षा करते हुए दिखाई पड़ते हैं।" इसलिये साहूकारों के इन कार्यों को रोकने के लिये आयोग ने सिफारिश की कि ऋण वसूली के लिये औद्योगिक संस्थानों को घेरना फौजदारी व प्रज्ञेय (Congizable) अपराध बना देना चाहिये।

फिर भी, भारत सरकार द्वारा इस सिफारिश पर कोई पग नहीं उठाया गया परन्तु बंगाल सरकार ने १९३४ में बंगाल श्रमिक संरक्षण अधिनियम (Bengal Workmen's Protection Act) पारित किया, जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति कारखानों, कार्यशालाओं आदि में कार्य करने वालों से अपने ऋण वसूल करने की दृष्टि से उनके समीप चक्कर काटता हुआ पाया जायेगा तो उसको २५० रु० के जुर्माने का दण्ड अथवा कारावास का दण्ड, जो कि ६ माह हो सकता है, अथवा दोनों ही दण्ड दिये जा सकते हैं। आरम्भ में तो इस अधिनियम का क्षेत्र केवल कलकत्ता एवं निकटवर्ती तीन क्षेत्रों तक (२४ परगने, हुगली और हावड़ा) ही सीमित था, परन्तु सरकार को इस अधिनियम के क्षेत्र को और भी अधिक विस्तृत कर देने का अधिकार था। अधिनियम के उपबन्धों को अधिक स्पष्ट करने के लिए तथा स्थानीय निकायों, जनोपयोगी सेवाओं व समुद्री कर्मचारियों तक विस्तृत करने के लिये इस अधिनियम में १९४० में संशोधन किया गया। मध्य प्रदेश सरकार ने भी १९३७ में 'मध्य-प्रान्त-ऋणी संरक्षण अधिनियम' पारित किया, जो बंगाल के अधिनियम पर ही अधिकतर आधारित था, परन्तु उसका विस्तार कुछ अधिक था। मद्रास सरकार ने भी मद्रास शहर में पठान साहूकारों की निर्दयता को रोकने के लिये १९४१ में 'मद्रास श्रमिक संरक्षण अधिनियम' पारित किया। १९४८ का बिहार श्रमिक संरक्षण अधिनियम भी श्रमिकों के कार्य स्थानों को अथवा श्रमिकों की वेतन प्राप्ति की जगहों को घेर कर ऋण वसूली की रीति को रोकने का प्रयास करता है

और ऐसे श्रमिको को महाजनो के द्वारा तग किये जाने अथवा डराये धमकाये जाने से बचाता है। ऐसे स्थानो पर ऋण वसूली की दृष्टि से घेरा डालने पर जुर्माना अथवा ६ माह के कारावास का दण्ड अथवा दोनो ही दिये जा सकते है। उ० प्र० सरकार भी इस प्रकार का विधान बनाने का विचार कर रही है।

अधिनियमों का मूल्यांकन (Working of the Acts)

श्रम अनुसन्धान समिति की रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता के विषय से सम्बन्धित अधिनियमो से बहुत अधिक लाभ नहीं हुआ है। फिर भी समिति ने यह सिफारिश की है कि इस प्रकार के ही कानून अन्य राज्य सरकारो द्वारा भी अपनाये जाने चाहियें। समिति के विचार के अनुसार इस प्रकार के प्रयत्नो से श्रमिक की स्थिति मे काफी सुधार हो सकता है क्योंकि उनके कष्ट बहुत सीमा तक ऋणग्रस्तता के कारण ही है।

उपसंहार एवं सुझाव (Conclusion and Suggestions)

श्रम अनुसन्धान समिति ने इस ओर सकेत किया था कि इन उपायो के होते हुये भी औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता देश मे कम होती दिखाई नही देती। यह तथ्य सत्य प्रतीत होता है क्योकि महाजनो को औद्योगिक क्षेत्रो मे समाप्त कर देना कठिन है। कानून बनाने से महाजन का मार्ग कठिन अवश्य हो सकता है परन्तु महाजन के लिये श्रमिको से उनके घरो से अपना ऋण वसूल करना कठिन नही है, विशेषकर ऐसी परिस्थिति मे जबकि बहुधा ऋणदाता कारखाने के अन्दर का मध्यस्थ ही होता है। ऐसे अवसर भी आते हैं जबकि श्रमिक को धन की अत्यधिक आवश्यकता होती है। महाजन सकटकालीन परिस्थिति मे श्रमिको को सहायता देकर एक बहुत उपयोगी कार्य करते है। इसम सन्देह नही कि रॉयल श्रम आयोग श्रमिको द्वारा ऋण पाने की सुविधाओ को कम करने के पक्ष मे था परन्तु चाहे जो भी कानून बनाया जाये, जब तक अत्यन्त अल्प मजदूरी, भरती तथा पदोन्नति मे चलने वाली सर्वव्यापी घूस और भ्रष्टाचार को समाप्त नही किया जायेगा, श्रमिक महाजन के बिना नही रह सकता और इस समस्या का कोई विशेष समाधान नही हो सकता। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि श्रमिक इतना अर्जित करने योग्य हो जाये कि वह न केवल अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओ को पूर्ण कर सके वरन् कुछ बचत भी कर सके जो कि भविष्य मे एकायक आने वाले सँकटो के समय और कुछ विवाह जैसी रीति-रिवाज की आवश्यकताओ के अवसरो पर व्यय की जा सके। युद्ध काल मे मालिको द्वारा अनाज की दुकानो की सुविधा प्रदान की गई थी, जिनका उल्लेख कल्याण कार्यों के अन्तर्गत किया जा चुका है। विभिन्न वस्तुओं को लागत मूल्य पर देने का प्रबन्ध औद्योगिक श्रमिको को महाजनो एव दुकानदारो के चगुल से बचाने मे निस्सन्देह सहायक सिद्ध होगा। यह एक ऐसा कार्य है जो शान्ति काल मे भी श्रमिको के हितो को सुरक्षित रखने हेतु चालू रखने के योग्य है। सन् १९६२ मे श्रम व रोजगार मन्त्रालय ने सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्र के ऐसे उद्यमो मे उपभोक्ता सहकारी

भण्डारो अथवा उचित मूल्य की दुकानों के सगठन की एक योजना लागू की है जिनमें ३०० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। सन् १९८० में औद्योगिक श्रमिकों के लिये खोली गई प्रारम्भिक उपभोक्ता सहकारी समितियों या उचित मूल्य की दुकानो की सख्या ५०० से अधिक थी।[1] इसके अतिरिक्त, ऋणग्रस्तता की समस्या को हल करने के लिये श्रमिकों म शिक्षा के विस्तार एव प्रचार द्वारा अपव्यय को रोकना भी नितात आवश्यक है।

ऋण-ग्रस्तता की समस्या का निवारण करने की दृष्टि से सहकारी साख समितियों और श्रमिक बचत निधियों की स्थापना भी बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। औद्योगिक केन्द्रों म अधिक ऋण लेन को रोकने, श्रमिकों मे दूरदर्शिता उत्पन करने तथा कम ब्याज पर ऋण प्रदान करने की सुविधा देने के लिये सहकारी साख समितियां और उत्तम रहन-सहन के हेतु समितियों का विस्तृत रूप से होना नितान्त आवश्यक है। भारत मे विभिन्न स्थानो पर औद्योगिक सस्थानों मे सहकारी साख समितियाँ और श्रमिकों के बैंक स्थापित किय गय है जो श्रमिकों का कम ब्याज पर रुपया उधार दत हैं। इनका उदाहरण बगाल की जूट मिलो म और कई रेलवे केन्द्रो म मिलता है। अनक स्थानों पर इन साख समितियों का कार्य बहुत सफल रहा है। १९७८ म कोयला खानों म ऐसी ४६१ सहकारी समितियाँ तथा भण्डार (१६७ ऋण सहकारी समितियाँ, २८४ प्रारम्भिक भण्डार तथा १० थोक केन्द्रीय सहकारी भण्डार) कार्य कर रहे थे, जो अपने सदस्यों को उचित दर पर ऋण दत हैं और उपभोक्ता का माल बेचते हैं। सरकार द्वारा इन समितियो को सहायक अनुदान (Grants-in-aid) के रूप मे वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। परन्तु अभी तक श्रमिकों के लिये सहकारी साख समितियो की स्थापना की ओर उतना ध्यान नही दिया गया है जितना दिया जाना चाहिय। इस ओर मालिक अग्रणी कदम उठा सकते हैं तथा ऐसी समितियो की स्थापना एव व्यवस्था कर सकते हैं। मालिकों द्वारा बोनस अथवा प्रॉवीडेन्ट फन्ड मे से सकट काल मे धन देने की सुविधा भी दी जा सकती है। यह धन श्रमिक की मजदूरी मे से छोटी-छोटी किश्तो मे काटा जा सकता है। अब सहकारी समितियो के शेयर खरीदन के लिये निर्वाह निधियो मे स भी रुपये निकालने की अनुमति दे दी गई है।

इन सब बातो पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि मजदूरी समानीकरण, न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन, साप्ताहिक अदायगी, सहकारी आन्दोलन का विस्तार, सामाजिक बीमा योजनायें, ऋणी श्रमिकों की सुरक्षा के लिय कानून एव ऋण का अपाकरण (Liquidation) तथा निष्क्रमण (Redemption) आदि सभी बातो की व्यवस्था करने पर ही श्रमिकों की आर्थिक दशा मे सुधार हो सकता है और तब ही ऋण-ग्रस्तता की समस्या का भी समाधान हो सकेगा।

1, भारत १९८१

१७ जीवन-स्तर
THE STANDARD OF LIVING

जीवन-स्तर की परिभाषा एवं उसका अर्थ
(Definition and Meaning of the Standard of Living)

'जीवन-स्तर' एक लचीला वाक्यांश है। इस बात की व्याख्या करना कि जीवन-स्तर क्या है, वास्तव में बड़ा कठिन है क्योंकि यह व्यक्ति-व्यक्ति का, वर्ग-वर्ग का और देश-देश का भिन्न होता है। किसी के जीवन-स्तर को मापने के लिये कोई विशेष नियम नहीं है। जीवन स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व भी निश्चित नहीं है। अतः ऐसी दशा में किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचना कठिन ही नहीं, दुःसाध्य भी है। कभी कभी यह कहते हुये सुना जाता है कि तुलनात्मक दृष्टि से भारत की अपेक्षा संयुक्त राज्य अमेरिका में जीवन स्तर बहुत ऊँचा है। इस बात से सम्पूर्ण समाज के स्तर का बोध होता है और यह जीवन स्तर किसी देश के प्राकृतिक धन, लोगों की कार्य-कुशलता और उनकी संख्या तथा देश की औद्योगिक अवस्था पर आधारित होता है। कभी कभी यह कहने में आता है कि किसी कुशल कारीगर की अपेक्षा डाक्टर का जीवन-स्तर उत्तम है और कुशल कारीगर का स्तर साधारण मजदूर के जीवन-स्तर से उत्तम है। इस कथन से समाज में स्थित भिन्न-भिन्न वर्गों के जीवन-स्तर का पता लगता है और यह जीवन-स्तर अधिकतर इस बात पर निर्भर होता है कि सामाजिक आय में से प्रत्येक वर्ग प्रतियोगिता द्वारा अपना कितना भाग पाता है। फिर भी, जब तक इसके विषय में विशेष रूप से कुछ कहा न जाये, 'जीवन-स्तर' शब्द का प्रयोग प्रायः वर्ग विशेष के लिये ही किया जाता है।

यद्यपि जीवन-स्तर शब्द की परिभाषा करने में कई कठिनाइयाँ है, तथापि जीवन-स्तर को सामान्य रूप से मालूम किया जा सकता है। जीवन-स्तर का भाव यह कहकर भली प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि जीवन स्तर शब्द का तात्पर्य आवश्यकता, आराम और विलासिता की वस्तुओं की उस मात्रा से है जिनका कि व्यक्ति उपभोग करता है। इस प्रकार, आवश्यकता, आराम और विलासिता सम्बन्धी वस्तुयें, जिनका व्यक्ति जीवन में अभ्यस्त हो जाता है, उसका जीवन स्तर नियत करती है। परन्तु आवश्यकता, आराम और विलासिता सापेक्ष शब्द है, और स्थान, काल तथा व्यक्ति के अनुसार उनमें भिन्नता पाई जाती है। इसलिये व्यक्ति का सामाजिक स्तर, सामाजिक वातावरण तथा जलवायु की दशा आदि सभी बातें

उसके जीवन-स्तर को मालूम करने मे देखनी पडती है ।

इस बात मे अन्तर है कि जीवन-स्तर वास्तव मे कैसा है और कैसा होना चाहिये और कौनसा स्तर ऐसा हो सकता है जिसमे आरामदायक और स्वास्थ्यकर रीति से रहने के लिये सब वस्तुयें प्राप्त हो सकें । वर्तमान काल म कुछ ही लोग इस बात को अस्वीकार कर सकते है कि न्यूनतम जीवन-स्तर जीविका निर्वाह के स्तर से स्पष्ट रूप से ऊँचा होना चाहिये । यहाँ यह बात विशेष ध्यातव्य है कि जीवन-स्तर का उच्च और निम्न होना व्यक्ति की आदतो पर अवलम्बित होता है और आदतें शीघ्र नही बदला करती । इसी प्रकार, जीवन-स्तर को परिवर्तित करने मे समय लगता है । फिर भी, सच तो यह है कि जीवन-स्तर को गिराने की अपेक्षा बडी सुगमता से ऊँचा उठाया जा सकता है क्योकि उच्च स्तर से अभिप्राय यह है कि अधिक से अधिक आवश्यकताओ की सन्तुष्टि की जाये । इसकी अपेक्षा कि एक मनुष्य उसी आवश्यकताओ को, जिनका कि वह अभ्यस्त हो गया है, कम करे, उसके लिय नई-नई आवश्यकताओ और नई-नई रुचियो को अपना लेना आसान होता है ।

जीवन-स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व
(Factors Governing Standard of Living)

कुछ तत्व ऐसे भी है, जिनके द्वारा देश मे जीवन-स्तर निर्धारित होता है । मनुष्य व व्यक्तित्व के विकास मे उसके **वातावरण** (environments) का बडा प्रभाव पडता है । जो भावनायें उसके वर्ग मे होती है, वही उसमे आ जाती है । वर्ग के प्रभाव के अतिरिक्त जीवन-स्तर निर्धारित करने मे व्यक्ति की आय (income) का भी बडा महत्वपूर्ण योग है । क्रय-शक्ति उसकी इच्छाओ की मात्रा और गुणो को निश्चित करती है । इस प्रकार जीवन-स्तर आय द्वारा निर्धारित होता है । मार्शल के शब्दो मे : "सफलता के सोपान पर व्यक्ति जितना ही ऊँचा चढता है, उसका दृष्टिकोण उतना ही विस्तृत और व्यापक होता है । जितना वह देखने की चेष्टा करता है, उसमे उतनी ही ढूंढने की प्रवृत्ति की वृद्धि होती है ।" एक अन्य तत्व है—सभ्यता (civilization) की प्रगति । सभ्यता का ज्यो-ज्यो विकास होता है और व्यक्ति अपने उपभोग की अधिक से अधिक वस्तुयें प्राप्त करता है । उसकी चिन्तायें भी बढती जाती हैं । परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता अधिक जटिल होती है जीवन स्तर का उत्थान भी होता है, यद्यपि यह अनियमित रूप से होता है । इसके अतिरिक्त मनुष्य की व्यक्तिगत विशिष्टतायें (personal traits), उसकी आदतें, शिक्षा और दृष्टिकोण तथा उसके धन व्यय करने का ढग आदि भी जीवन-स्तर निर्धारण करने मे महत्वपूर्ण हैं । मनुष्य की आय अधिक भी हो सकती है । परन्तु यदि उसमे बुरी आदतें पड जाती हैं और वह अपना धन व्यर्थ ही नष्ट करता है तो उसके जीवन स्तर मे किसी प्रकार की प्रगति नही हो सकती । कजूस व्यक्ति जीवन के आराम और सुविधाओ पर अधिक व्यय नही करता । परिणाम यह होता है कि

उसका जीवन-स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा नही हो पाता।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण का (outlook on life)—अर्थात् किसी मनुष्य का भौतिक उन्नति मे विश्वास है, या आध्यात्मिक उन्नति मे—भी जीवन स्तर पर बडा महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। बहुत से मनुष्य सादा जीवन तथा उच्च विचार के अनुयायी हैं और यद्यपि सुविधायें उपलब्ध करने की उनकी स्थिति भी होती है, तथापि बहुत से जीवन के आनन्दो से वे अपने आपको वचित रखते हैं। डाक्टर मार्शल के शब्दो मे "जीवन-स्तर को उठाने के लिये यह आवश्यक है कि बुद्धिमत्ता, बल और आत्मसम्मान मे वृद्धि हो, क्योकि इन्ही बातों से व्यय करने मे मनुष्य उचित निर्णय और प्रयत्न कर सकता है और ऐसे खान-पान से दूर रह सकता है, जिससे भूख की तृप्ति तो हो जाती है, लेकिन कोई शक्ति प्राप्त नही होती। वह उन बातो से भी दूर रह सकता है, जो शारीरिक और नैतिक दृष्टि से बुरी हैं।" इसके अतिरिक्त, रीति-रिवाज और फैशन (customs and fashions) की भी जीवन-स्तर पर बडी प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है। क्या चाहिये, क्या नही चाहिये—इस प्रकार की व्यक्ति की आवश्यकतायें मनुष्य के जीवन व्यतीत करने के उस ढङ्ग पर निर्भर करती हैं जिसमे कि वह समाज मे प्रचलित रीति रिवाजो और फैशन के अनुसार अपने आपको ढाल लेता है। यदि डाक्टर और दूकानदारो की एक ही आय हो, तब भी उनके रहन-सहन का स्तर भिन्न ही होगा। डाक्टर अपनी वेश-भूषा अच्छी बनाकर रहेगा, सुन्दर और स्वच्छ मकान मे अपने रहने की व्यवस्था करेगा, स्वास्थ्यकर भोजन आदि पर अधिक धन व्यय करेगा, जबकि दूकानदार अपने अधिक से अधिक समय धन और शक्ति को अपने व्यापार सम्बन्धी कार्यों के प्रसार मे लगायेगा, गन्दे कपडे पहन कर और कभी-कभी मामूली खाना खाकर साधारण जीवन-व्यतीत करेगा। सभी जानते हैं कि दूकानदार वर्ग के लोग, जिनका भारत मे एक विशेष वर्ग होता है, मकान बनवाने और विवाह आदि के अवसरो पर असाधारण रूप से व्यय करते हैं अन्यथा वे सादा जीवन ही व्यतीत करते है।

किसी देश की सामाजिक और धार्मिक संस्थाओ (social and religious institutions) का भी आर्थिक कार्यों और जीवन स्तर पर गहरा प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, जाति प्रथा ने भारत मे जनता के एक विशेष वर्ग को निम्न स्तर की कोटि में पहुचा दिया है और उनकी आय चाहे कुछ भी हो, यह कल्पना भी नही की जा सकती कि किसी मेहतर के घर मे सोफासेट या रेडियो भी हो सकता है। सामाजिक प्रथायें, जैसे—विवाह, जन्म, मरण के समय टेलीविजन सस्कार आदि पर अत्यधिक व्यय आदि मनुष्य की आय का एक बहुत बडा अश ले लेती हैं और इससे उसका जीवन निम्न कोटि की श्रेणी मे आ जाता है। सयुक्त परिवार प्रणाली (joint family system) भी मनुष्य की आय को अन्य मनुष्यो मे वितरित कर देती है। इससे बाल-विवाह और जनसख्या मे वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है और

इस प्रकार जीवन-स्तर नीचा होता चला जाता है। इस प्रकार यह बात भी कि **परिवार (family)** में कितने सदस्य हैं या कितने आश्रित हैं, जिनका एक व्यक्ति को पालन-पोषण करता है, जीवन-स्तर पर प्रभाव डालती है। इसके अतिरिक्त, **कीमतों (prices) और निर्वाह खर्च (cost of living)** का भी रहन-सहन के स्तर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह बातें तुलनात्मक रूप से मनुष्य की असल मजदूरी और नकद मजदूरी में डाल देती हैं।

इस प्रकार, ऐसे अनेक तत्व हैं जिनका किसी देश के या किसी भी वर्ग या समुदाय से सम्बन्धित लोगों के जीवन-स्तर की समस्या की विवेचना करते समय ध्यान में रखना पड़ता है।

जीवन स्तर किस प्रकार ज्ञात होता है
(How to Find Out Standard of Living)

जीवन-स्तर को ज्ञात करने की एक चिरपरिचित विधि है—आय और व्यय की मदों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना। इसका अभिप्राय है—परिवार बजट निर्माण और उसके विश्लेषण की विधि को अपना लेना। इस आधार पर कोई भी व्यक्ति बड़ी आसानी से यह निर्णय कर सकता है कि कितनी आवश्यकताओं, आराम और विलासितापूर्ण वस्तुओं का कोई मनुष्य उपभोग कर रहा है। इसके विश्लेषण के उपरान्त, जीवन स्तर उच्च कोटि का है या निम्न कोटि का, यह ज्ञात किया जा सकता है। इसलिए हम पहले भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के परिवार बजटों का अध्ययन करेंगे।

परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ (Family Budget Enquiries)

औद्योगिक श्रमिकों से सम्बन्धित कुछ परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ सन् १९२१-२२ में बम्बई में की गई थी। परन्तु इससे भी अधिक व्यापक आँकड़े उस परिवार बजट पूछताछ के परिणामस्वरूप मिलते हैं, जो भारत सरकार ने सन् १९४३-४५ में निर्वाह खर्च-सूचकांक बनाने की योजना के अन्तर्गत की थी। २८ केन्द्रों में व्यापक परिवार बजटों के बारे में मालूम किया गया था। इसमें लगभग २७,००० बजट एकत्रित किये गये और उनका विश्लेषण किया गया। इन २८ केन्द्रों में से ६ पाकिस्तान में चले गये थे और भारत में २२ केन्द्रों में से २० की रिपोर्ट प्रकाशित की जा चुकी थी। इसी प्रकार की पूछताछ सन् १९४७ में असम, बंगाल और दक्षिण भारत के चुने हुए बागान में भी की गई थी और इस पूछताछ पर आधारित रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दी गई थी। सन् १९४५ में भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार के कार्यालय ने भी केन्द्रीय सरकार के मध्य वर्ग के कर्मचारियों के पारिवारिक बजटों की पूछताछ की थी। इसका उद्देश्य यह था कि इस पूछताछ के आधार पर निर्वाह-खर्च सूचकांक बनाये जायें। इनकी रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दी गई थी। भारतीय सांख्यिकी संस्थान, बम्बई ने भी बम्बई नगर के मध्यम श्रेणी

के परिवारों से सम्बन्धित स्वास्थ्य और आहार सर्वेक्षण पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी। १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को लागू करते समय भी अनेक राज्य सरकारों और श्रमिक ब्यूरो ने कुछ महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों में पारिवारिक बजट सम्बन्धी पूछताछ आरम्भ कर दी थी और उनके परिणाम प्रकाशित भी किये जा चुके हैं। इस प्रकार की पूछताछ श्रम ब्यूरो के निदेशक ने सन् १९४६ और १९५० में बागान में भी की थी। बाद में श्रम ब्यूरो ने ब्यावर, भोपाल, सतना, कुर्ग और विन्ध्य प्रदेश आदि में भी परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ की। त्रिपुरा के चाय बागान में काम करने वाले कर्मचारियों के लिये न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के हेतु अक्टूबर १९५९ में पारिवारिक बजट सम्बन्धी एक जाँच की गई। १९६१-६२ में, त्रिपुरा प्रशासन ने भी गैर-शारीरिक एवं गैर-कृषि कर्मचारियों के परिवारों के विषय में परिवार बजट सम्बन्धी जाँच की। डा० बी० अग्निहोत्री ने सन् १९५० में कानपुर के ६०० श्रमिक परिवारों से पारिवारिक बजट की पूछताछ की थी। आयोजना आयोग की अनुसन्धान कार्य क्रम समिति ने भी परिवार बजट पूछताछ के सम्बन्ध में कई योजनाओं को स्वीकृति दी थी। १९५९ में बम्बई सरकार ने ८ पारिवारिक सर्वेक्षण किये और औद्योगिक श्रमिकों के परिवार बजटों की भी पूछताछ की। मगलौर में औद्योगिक श्रमिकों के ८२ परिवार बजटों की मैसूर सरकार ने पूछताछ की। आन्ध्र में ६ केन्द्रों में इस प्रकार की पूछताछ की गई और पश्चिमी बगाल के बागान में भी परिवार बजट पूछताछ की गई थी।

सितम्बर सन् १९५८ से भारत सरकार ने ५० चुने हुए केन्द्रों के श्रमिकों के परिवारों में रहन-सहन का सर्वेक्षण आरम्भ किया था। इन केन्द्रों में ३२ फैक्ट्रियाँ, ८ खान केन्द्र और १० बागान केन्द्र थे। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य विभिन्न केन्द्रों पर और सारे भारत के लिये समान रूप से ऐसे आंकड़े प्राप्त करना था, जिनके आधार पर श्रमिकों के उपभोक्ता सूचकांक फिर से बनाये जा सकें, और श्रमिकों के जीवन-स्तर का अध्ययन भी हो सके। ऐसा सर्वेक्षण करते समय श्रमिकों के कुछ परिवारों को छाँटकर—परिवार का आकार, आय, उपभोग, विभिन्न मदों का व्यय, जन्म, मरण, बीमारी, शिक्षा, वृद्धि, तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण, कार्य करने की दशायें, मकानों की स्थिति, श्रम विधान के मुख्य उपबन्धों का ज्ञान, परि-सम्पत्ति और देयता आदि से सम्बन्धित आंकड़ों को नमूने के तौर पर एकत्रित किया गया था। यह सर्वेक्षण सितम्बर १९५९ में पूरे किये गये तथा इनके आधार पर औद्योगिक श्रमिकों के लिये नये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (आधार वर्ष १९६०=१००) बनाये गये तथा सभी ५० केन्द्रों के लिये प्रकाशित भी किये जा चुके हैं। इन केन्द्रों की रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी थी। ये सर्वेक्षण हाल के वर्षों में श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को ज्ञात कराने में बड़े सहायक सिद्ध हुए है। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की सहायता से ४५ केन्द्रों में मध्यम वर्गीय कर्मचारियों के लिये भी इसी प्रकार के सर्वेक्षण किये गये थे और उनकी सामान्य रिपोर्टें प्रकाशित भी की जा चुकी है।

१९६५ में, श्रम ब्यूरो ने पांच निम्न अतिरिक्त केन्द्रों में परिवार-जीवन से सम्बन्धित सर्वेक्षण किये कोठागुडिमन (आन्ध्र प्रदेश), भीलवाडा (राजस्थान), छिंदवाडा और भिल्लई (मध्य प्रदेश) तथा रूरकेला (उड़ीसा)। ये सर्वेक्षण अगस्त १९६६ में पूरे हुए और इनका सम्बन्ध इन केन्द्रों में पंजीकृत फैक्टरियों तथा खानों में लगे श्रमिकों से था। इसके साथ ही, पांच केन्द्रों के १० चुने हुए बाजारों में मूल्य संग्रह अभिकरण (Price Collection Agency) की भी स्थापना की गई थी, ताकि वहाँ की फुटकर कीमतों के आँकड़े निरन्तर प्राप्त होते रहें। श्रम ब्यूरो ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत १९६४–६५ में हिमाचल प्रदेश के शहरी तथा अर्ध-शहरी औद्योगिक श्रमिकों के बीच मजदूर वर्ग के पारिवारिक बजटों से सम्बन्धित जाँच भी की, त्रिपुरा में चाय बागान श्रमिकों के परिवार-बजटों की जाँच की गई ताकि सन् १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत उनकी न्यूनतम मजदूरियाँ निर्धारित की जा सकें। १९६४–६५ में हिमाचल प्रदेश में और १९६६–६७ में गोवा में औद्योगिक श्रमिकों के परिवार निर्वाह का सर्वेक्षण किया गया था। इन सब सर्वेक्षणों का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक श्रमिकों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांक श्रेणी तैयार करना रहा है। सन् १९६६–६७ में, एक और परिवार-बजट सम्बन्धी जाँच की गई, जिसका उद्देश्य ८ केन्द्रों में रेलवे कुलियों तथा विक्रेताओं की आय तथा व्यय के सामान्य प्रतिरूप का अध्ययन करना था।

सन् १९६८ में भारतीय श्रम सम्मेलन के २५ वें अधिवेशन में जो सिफारिशें की गई थीं, उनके संदर्भ में श्रम ब्यूरो ने सन् १९७१ में ६० महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों (अर्थात् ४४ फैक्ट्रियों, ७ खान केन्द्रों व ९ बागान केन्द्रों) पर श्रमिक वर्ग के परिवारों की आय व व्यय का नया सर्वेक्षण किया। इस नये सर्वेक्षण का उद्देश्य एक तो यह है कि प्रत्येक केन्द्र के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों की एक नई शृंखला का निर्माण किया जा सके और साथ ही साथ १९६०=१०० के चालू आधार (Existing base) के स्थान पर ऐसे नवीन आधार पर अखिल भारतीय औसत सूचकांक निकाला जा सके जिसमें सन् १९५८-५९ से, जबकि पहले निर्वाह सर्वेक्षण पूरे किये गये थे, अब तक श्रमिक वर्ग के उपभोग की प्रकृति में हुए परिवर्तनों को दृष्टिगत रखा गया हो। मार्च १९७४ तक, १६ केन्द्रों के मूल्य सूचकांक पूरे हो चुके थे, ६ केन्द्रों के सूचकांक का कार्य काफी प्रगति पर था, १५ केन्द्रों के आँकड़े जोड़े जा रहे थे और २३ केन्द्रों के आँकड़े सारणीबद्ध किये जा रहे थे।

परिवार बजट सम्बन्धी इन जाँचों के अलावा, महत्त्वपूर्ण उद्योगों में श्रमिकों की दशाओं का सर्वेक्षण करने की एक योजना भी चालू की गई है जिसका उद्देश्य ऐसी व्यापक जानकारी एकत्र करना है जिसके द्वारा स्वतन्त्रता के बाद से श्रमिकों के लिये लागू किये गये सुधारात्मक पगों का मूल्यांकन किया जा सके। इस योजना के अन्तर्गत, सन् १९७३-७४ तक ५१ उद्योग आ चुके थे। इनमें से ४८ उद्योगों से सम्बन्धित रिपोर्टें छप कर प्रकाशित हो चुकी हैं और एक रिपोर्ट छपने को है। जूट

और ऊनी वस्त्र उद्योगों के पुन सर्वेक्षण किये गये हैं और उनकी रिपोर्टों को अन्तिम रूप दिया गया है। सरकारी क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों में भी श्रमिकों की दशाओं का अध्ययन किया गया है और ४१ में से ३९ उद्योगों से सम्बन्धित रिपोर्टों को अन्तिम रूप देकर वितरित किया जा चुका है। ठेके के श्रमिकों की प्रकृति तथा मात्रा का पता लगाने के लिये २१ उद्योगों में ठेका श्रमिक सर्वेक्षण भी किये गये हैं।

हाल में कई राज्यों में भी परिवार सम्बन्धी पूछताछ फिर की गई है। १९६३-६४ में असम में विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों के परिवार बजट से सम्बन्धित पूछताछ के अन्तर्गत जो परिवार बजट बनाये गये उनकी संख्या इस प्रकार थी : धुबरी ३००, गोहाटी ३५०, जोरहट २५०, तिनसुखिया २५० और सिलचर २६०। मध्य प्रदेश सरकार ने भी जून १९६३ और मई १९६४ में थाना, कल्याण, नासिक और सांगली में कारखाना श्रमिकों के ४८० परिवार बजट एकत्रित किए। कर्नाटक में हुबली—धारवार क्षेत्र में परिवार बजट पूछताछ की गई है। नवम्बर १९६४ से अक्टूबर १९६५ तक, महाराष्ट्र सरकार ने अकोला, धूलिया, कम्पटी (कन्हान) और खाम-गाँव केन्द्रों पर रजिस्टर्ड फैक्टरियों में काम पर लगे श्रमिकों की परिवार-बजट सम्बन्धी जाँच की। राजस्थान सरकार ने जनवरी १९६५ से दिसम्बर १९६५ तक गंगानगर में परिवार बजट सम्बन्धी जांच की। ऐसी ही जाँच कोटा तथा ब्यावर में भी की जा रही है। मजदूर वर्ग के परिवारों के सम्बन्ध में केरल सरकार ने अक्टूबर १९६५ में १३ केन्द्रों में परिवार बजट सम्बन्धी जाँच की। केन्द्रीय सर्वेक्षण के नमूने के आधार पर ही जम्मू व कश्मीर, महाराष्ट्र तथा राजस्थान की सरकार ने श्रमिक वर्ग के परिवारों की आय तथा व्यय का सर्वेक्षण किया है। परिवार बजट जाँच हरियाणा में १९७२-७३ में और पंजाब में १९७५-७६ में सम्पन्न की गई थीं। उड़ीसा के सांख्यिकी तथा अर्थशास्त्र सम्बन्धी ब्यूरो का भी प्रस्ताव था कि चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हीराकुंड, बुरला, रायगोढा, चौनद्वार, बरग, जयपुर, कटक तथा बरहामपुर के औद्योगिक श्रमिकों के सम्बन्ध में पारिवारिक जीवन सम्बन्धी सर्वेक्षण किये जायें।

जहाँ तक कृषि श्रमिकों का सम्बन्ध है १९५०-५१ तथा १९५६-५७ में की गई कृषि श्रमिक पूछताछ से, सन् १९६३-६५ और १९७४-७५ में की गई ग्रामीण श्रमिकों की जाँचों से तथा श्रम ब्यूरो द्वारा ग्रामीण श्रम पर किये गये गहन प्रकृति के अध्ययनों से, कृषि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति के विषय में उपयोगी जानकारी मिलती है। (कृषि श्रमिकों का अध्याय देखिये)।

पूछताछ के समय उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ

(Difficulties in Conducting Enquiries)

सर्वेक्षण और पूछताछ से देश के औद्योगिक श्रमिकों के जीवन-स्तर सम्बन्धी व्यापक आँकड़े प्राप्त हो जाते हैं परन्तु प्रत्येक केन्द्र और प्रत्येक उद्योग में कार्य और

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर, कपड़ा श्रम जाँच समिति, डा० राधाकमल मुकर्जी और डाक्टर अनवर इकबाल कुरैशी आदि ने भी भारतीय आहार स्तर की समस्याओं का अध्ययन करने पर यह ही निष्कर्ष निकाला कि भारतीय श्रमिकों का आहार अपर्याप्त और असन्तुलित होता है और इसमें कैलोरीज की मात्रा बहुत कम होती है। डा० मुकर्जी के अनुसार श्रमिकों को आहार में कैलारीज की मात्रा अधिकतर अनाज और दालों से ही मिलती है अर्थात् लगभग ७५% कार्बोहाइड्रेट्स से प्राप्त होती है और जितनी कैलोरीज चाहियें, उनमें से मुश्किल से १०% प्रोटीन से प्राप्त होती है। प्रतिदिन औसतन ३,००० कैलोरीज की आवश्यकता होती है, परन्तु भारत में अधिकतर श्रमिकों के आहार में यह मात्रा नहीं पायी जाती। इस प्रकार अधिकतर श्रमिकों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता और वह अनेक बीमारियों के सरलता से शिकार हो जाते हैं। भारत में १९३५ से अब तक किये गये सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि भारतीय जनता के आहार में मात्रा तथा गुण दोनों की कमी है। विगत वर्षों में भोजन सामग्री में अशुद्धता व मिलावट भी अत्यधिक पाई गई है। आहार में कमी इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि एक ओर तो वे अनाज का अत्यधिक उपभोग करते हैं और दूसरी ओर माँस-मछली, अण्डा, फल, सब्जी और दूध आदि पदार्थों का बहुत ही कम सेवन करते हैं जिसके कारण विटामिन्स, प्रोटीन, चर्बी आदि की कमी रहती है। साधारण भोजन में आनुपातिक रूप से सभी आवश्यक तत्वों का समावेश होना चाहिये और आहार सन्तुलित होना चाहिये। असन्तुलित भोजन का शरीर और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है और कार्य-क्षमता में भी कमी आ जाती है।

भोजन के बाद दूसरी मूल आवश्यकता कपड़े (Clothing) की है। कपड़े और जूते पर प्रतिशत व्यय विभिन्न स्थानों में ३ से १४ तक आता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये कहा जा सकता है कि श्रमिक कपड़ों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दे पाते। भारत की जलवायु की दशाओं के अनुसार भी आनुपातिक रूप से कपड़ों पर व्यय इतना अधिक नहीं है, जितना यूरोपीय देशों में होता है। यहाँ पुरुष अपने शरीर के निचले भाग में धोती, लुंगी, तथा पायजामा या पैन्ट पहनते हैं और स्त्रियाँ पेटीकोट या साड़ी जिनसे उनका समस्त शरीर ढक जाता है। शरीर के ऊपरी भाग के लिये पुरुष बनियान, कमीज, कोट या बन्डी और चादर आदि कपड़ों का प्रयोग करते हैं और स्त्रियाँ चोली या जाकिट पहनती हैं। बहुत से पुरुष सर्दियों को छोड़कर शेष समय में अपने शरीर के ऊपरी भाग पर कोई कपड़ा नहीं पहनते। पैरों में अधिकतर जूते या सैंडिल पहनते हैं, परन्तु फिर भी बहुत से पुरुष और स्त्रियाँ नंगे पैरों ही घूमते हैं। ऊँची आय वाले वर्ग के लोग कपड़ा और जूतों पर अधिक व्यय करते हैं। उनके व्यय की प्रतिशत इन मदों पर प्राय एक सी ही रहती है, क्योंकि उन्हें एक न्यूनतम जीवन-स्तर बनाये रखना पड़ता है। परन्तु निम्न आय वर्ग के लोगों का प्रतिशत व्यय अपेक्षाकृत इन मदों पर अधिक हो जाता है। डाक्टर

१७·६२%, कलकत्ते में १०.५६%, दिल्ली में १८.१२% और मद्रास में १६.४४ प्रतिशत था।

मदिरा पर किये गये व्यय के निश्चित आँकड़े देना तो सम्भव नहीं है, क्योंकि जो श्रमिक शराब पीता है, वह अधिकांशतः यह बताने के लिये तैयार नहीं होता कि वह शराब पीता भी है या पीता है तो कितनी शराब पीता है। फिर भी अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि श्रमिकों के कुल व्यय का १०% केवल शराब और अन्य मादक पदार्थों पर होता है। शराब पर आय का औसत व्यय असम में १२% और प० बंगाल में ११.६% होता है। यह भी पता लगा कि श्रमिकों के परिवारों में से ७२% बम्बई में, ४३% शोलापुर में और २६% अहमदाबाद में शराब पीते थे। कहा जाता है कि श्रमिक शराब पीकर कठिन परिश्रम के भार को हल्का करता है क्योंकि जीवन की और कोई सुविधायें उसे प्राप्त नहीं होतीं। अनेक राज्यों और औद्योगिक नगरों में, विशेषतया मद्रास, बम्बई और कानपुर में, मद्यपान निषिद्ध कर दिया गया है, परन्तु इस बात की छानबीन आवश्यक है कि इस मद्य निषेध से अवैध रूप से कितनी शराब खींची जाती है और इसके अवैध रूप से क्रय करने में श्रमिक का कितना व्यय बढ़ गया है।

स्वास्थ्य (health) के मद में हम उस व्यय को लेते हैं, जो औषधियों और चिकित्सा पर होता है। कुछ स्थानों पर मालिक अपने कर्मचारियों के लिये ही नहीं, अपितु उनके परिवार के सदस्यों के लिये भी डाक्टरी सहायता की व्यवस्था करते हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत कुछ विशेष स्थानों पर ही कुछ व्यय होता है। अनेक अवसरों पर श्रमिक को अपने परिवार के सदस्यों के लिये चिकित्सा सहायता की बड़ी आवश्यकता होती है। लेकिन उन्हें कष्ट भी भोगना पड़ता है क्योंकि डाक्टर की फीस देने के लिए और दवाइयाँ आदि खरीदने के लिये भी उनके पास धन नहीं होता।

शिक्षा (education) के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि बच्चों को स्कूल भेजने का व्यय केवल कुछ ही पारिवारिक बजटों में पाया जाता है। प्रायः वे ही परिवार शिक्षा पर कुछ व्यय करते हैं जिनकी आय ३० रु० प्रति मास से अधिक होती है। कठिनता से १५% से २०% श्रमिक परिवार बच्चों को स्कूल भेजने पर व्यय करते हैं। शिक्षा पर व्यय इसलिये अधिक नहीं होता, क्योंकि श्रमिकों के पास इसके लिये कुछ बचता ही नहीं।

इसी प्रकार मनोरंजन (recreation) पर भी व्यय बहुत कम होता है। इसका कारण यह है कि श्रमिक की आय कम होती है और मनोरंजन की सुविधाओं का अभाव होता है। मनोरंजन के लिये कल्याण-कार्यों के अतिरिक्त यदि कोई अन्य सरल सुविधा उपलब्ध है तो वह केवल सिनेमा है। इस पर श्रमिक कुछ धन व्यय करते हुये पाये जाते हैं।

पान, तम्बाकू और बीड़ी आदि भी कुछ ऐसी उल्लेखनीय वस्तुयें हैं, जिन

पर श्रमिक कुछ धन व्यय करते है। श्रमिक और उनके परिवार की एक बहुत बडी सख्या लगभग ७०% से ८०% तक, ऐसी होती है, जो पान, बीडी और खाने की तम्बाकू की अभ्यस्त होती है। श्रमिक वर्ग मे केवल यही विलासिता की वस्तुयें कही जा सकती हैं और इन पर प्रतिशत व्यय कभी-कभी २% से ५% तक हो जाता है।

फुटकर व्यय के अन्तर्गत एक और मद यात्रा की है। श्रमिको मे अधिकाश प्रवासी होते है इसलिये कम से कम साल म एक बार वे अपने घर जाने का अवश्य प्रयत्न करते है, परन्तु यात्रा पर किया गया प्रतिशत व्यय बहुत कम है। यह तथ्य भी पिछडी हुई दशा और निम्न कोटि के रहन सहन का स्तर प्रकट करता है।

इसके अतिरिक्त, श्रमिको को लिये गये ऋण पर ब्याज के रूप मे भी कुछ न कुछ देना पडता है। यह ऋण उसको सामाजिक रीति-रिवाजो और सकट काल, जैसे—बीमारी, बेरोजगारी, हडताल आदि मे व्यय करने के लिये लेना पडता है। जैसा कि स्पष्ट है, श्रमिको की आय का अधिकतर भाग जीवन की आवश्यकताओ पर खर्च हो जाता है और इसलिये सामाजिक मान्यताओ को सम्पन्न करने के लिये उनके पास किसी प्रकार की आरक्षण निधि नही होती। इस मद पर उसका व्यय अधिक हो जाता है और जो धन वह व्यय करता है आमतौर से वह महाजनो से ऋण के रूप मे लिया हुआ धन होता है। ऋण-ग्रस्तता की यह समस्या पिछले अध्याय मे बतायी जा चुकी है। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि ऋण-ग्रस्तता का श्रमिको के जीवन-स्तर पर बडा बुरा प्रभाव पडता है और उनकी कार्य-कुशलता भी कम हो जाती है।

(कोष्ठ मे दिये हुये आँकडे कुल व्यय पर प्रतिशत के सूचक हैं)

व्यय की मदें	व्यय (रु० मे) (कोष्ठ मे प्रतिशत)			
	बम्बई	कलकत्ता	दिल्ली	मद्रास
(१) भोजन, पेय, तम्बाकू व मादक पदार्थ	७८ ३५ (५६ ५४)	५४ ४६ (६७ ६२)	६५ ३० (५३ ६८)	८७ ०८ (५६ ४७)
(२) ईंधन व प्रकाश	६ ३८ (४ ८२)	४ ०६ (४·६४)	६ २५ (५·१७)	८·५६ (५ ८५)
(३) मकान, घरेलू वस्तुएँ व सेवाएँ	७ ०६ (५ ३६)	७ ५३ (८ ६०)	९ २० (७ ६१)	१३·२६ (९ ०५)
(४) कपडे, बिस्तरा, टोपी व जूते	१६ ६६ (१२ ६६)	७ २३ ८ २५	१८·२९ (१५ २२)	१३ ४५ (९ १९)
(५) विविध	२३ १९ (१७ ६२)	९ २८ (१० ५९)	२१ ९२ १८ १२	२४ ०८ (१६ ४४)

सन् १९५८-५९ के श्रमिक वर्ग के परिवार-बजट सर्वेक्षण के अनुसार, श्रमिक वर्ग के प्रति परिवार का औसत मासिक व्यय पीछे पृष्ठ ७३५ पर दी गई तालिका में दिखाया गया है—

सामान्य निष्कर्ष (General Conclusion)

श्रमिकों के व्यय करने की मदों का संक्षिप्त अवलोकन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि औद्योगिक श्रमिकों का जीवन-स्तर बड़ी निम्न श्रेणी का है। यह भी देखने में आता है कि भारतीय श्रमिक का जीवन ऐसा नहीं होता जिसे आधुनिक सभ्य संसार में एक अच्छा और आरामप्रद जीवन कहा जा सके। न तो श्रमिक को पर्याप्त भोजन मिलता है और न कपड़ा। मकानों की दशा ऐसी होती है कि कल्पना भी नहीं की जा सकती कि ऐसे वातावरण में भी मनुष्य रह सकते हैं।

निम्न जीवन-स्तर के कारण (Causss of Low Standard of Living)

औद्योगिक श्रमिकों का निम्न जीवन-स्तर होने के अनेक कारण हैं। मुख्य कारण वास्तव में यह है कि श्रमिक की आय कम होती है और निर्वाह-खर्च अधिक होता है। भारत में श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी नहीं दी जाती, यह बात भारतीय मजदूरी स्तर का अध्ययन करने से भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि मजदूरी में युद्धकाल के समय और बाद में भी कुछ सुधार किये गये हैं तथापि मूल्यों की वृद्धि के कारण निर्वाह-खर्च अधिक हो गया है। सन् १९४७ में श्री सी० डी० देशमुख ने कहा था, "भारत इस समय एक मजदूरी-मूल्य-चक्र से पीड़ित है। जैसे ही श्रमिकों को अधिक मजदूरी दी जाती है, उसका लाभ निर्वाह-खर्च के अधिक बढ़ जाने से अपने आप समाप्त हो जाता है।" युद्ध के पश्चात् एशिया के कुछ देशों में असाधारण अनुपात में निर्वाह-खर्च में वृद्धि हुई है, परन्तु अधिकांश पश्चिमी देशों में इतनी वृद्धि नहीं हुई है। यह बात निम्न तालिका[1] से स्पष्ट हो जाती है।

निर्वाह-खर्च सूचकांक
(आधार वर्ष १९३७=१००)

वर्ष	इंगलैंड	अमरीका	कनाडा	भारत (बम्बई)
१९३९	१०३	९७	१००	१००
१९४५	१३२	१२५	११८	२२२
१९४८	१०८	१६७	१५३	२८६
१९४९	१११	१६५	१५९	२९०

भारत के श्रमिक वर्ग का निर्वाह-खर्च और उनकी वास्तविक आय का

1 See "A Survey of Labour in India" by V R K Tilak, Chapter III, Reserve Bank of India Reports and Indian Labour Statistics 1973

तुलनात्मक विवेचन करने से यह सिद्ध होता है कि श्रमिकों का जीवन-स्तर गिर गया है। यह किस सीमा तक गिर गया है, यह मजदूरी की वृद्धि और सूचकांक की वृद्धि में भिन्नता से ज्ञात हो जाता है। यह बात भी पृष्ठ ६८० पर दी गई तालिका से स्पष्ट हो जायेगी। जो महँगाई भत्ता दिया जाता है, वह अपर्याप्त होता है और वह सामान्य मूल्य-स्तर और निर्वाह-खर्च में जो वृद्धि हुई है, उसकी क्षतिपूर्ति करने में असमर्थ है। अतः मूल्यों में वृद्धि का सारा भार श्रमिकों के जीवन-स्तर पर पड़ता है।[1]

१९५९ में औसत सूचकांक
(आधार वर्ष १९५५=१००)

देश	थोक मूल्य	निर्वाह खर्च
भारत	१२६	१२८
कनाडा	१०५	१०६
मिस्र	११७	१०६
जापान	१०१	१०४
नीदरलैण्ड	१०४	१११
स्वीडन	१०५	११४
स्विटजरलैण्ड	१००	१०३
इंगलैण्ड	१०९	११२
अमरीका	१०७	१०९

श्रमिक वर्ग के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक
(आधार वर्ष १९४९=१००)

वर्ष	अखिल भारतीय (अन्तरिम श्रेणी)	पाकिस्तान (कराची)	बंगला देश (नारायण गंज)	श्रीलंका (कोलम्बो)	ब्रिटेन	संयुक्त राज्य अमेरिका
१९६१	१२६	१३०	१२१	११४	१५९	१२६
१९६६	१८४	१५७	१४५	१२२	१९०	१३६
१९६७	२०९	१६७	१५५	१२५	१९१	१४०
१९६८	२१५	१६७	१५९	१३२	२०४	१४६
१९६९	२१३	१७२	१६८	१४२	२१५	१५४
१९७०	२२४	१८२	१६९	१५१	२२८	१६३
१९७१	२३०	१९१	—	१५५	२४९	१७०
१९७२ (सितम्बर)	२५३	२१३	—	१६६	२७२	१७७

1 'निर्वाह-खर्च सूचकांक' (Cost of Living Index Numbers) के लिए, जो अब "उपभोक्ता मूल्य सूचकांक" (Consumer Price Index) कहलाते है, परिशिष्ट 'ब' देखिए।

जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयत्न
(Measures to Raise the Standard of Living)

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि केवल मजदूरी समजन (Adjustment) कर देने या महगाई भत्ता के भुगतान आदि से ही समस्या का समाधान नहीं हो सकता। हमारे सामने वर्तमान जीवन-स्तर को बनाये रखने की ही समस्या नहीं है, अपितु इसको इतना ऊँचा उठाना है कि श्रमिक भली-भाँति अपना निर्वाह कर सकें। इसलिये जहाँ तक सम्भव हो, श्रमिकों को जल्दी से जल्दी पर्याप्त मजदूरी देनी चाहिए और इस बीच में औद्योगिक श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी और उचित मजदूरी निर्धारित करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये। भारतीय उद्योगों की मजदूरी का ढाँचा विवेकपूर्ण (Judiciously) इस प्रकार बनाना चाहिये कि श्रमिक वर्ग का आर्थिक स्तर भी ऊँचा हो सके और न तो मूल्य सन्तुलन (Price Equilibrium) में किसी प्रकार का विघ्न पड़े और न ही देश के औद्योगिक विकास में बाधा आये। श्रमिकों के लिये जब तक पर्याप्त आय की व्यवस्था नहीं की जाती, हम उनका जीवन-स्तर ऊँचा नहीं उठा सकते। उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति के शब्दों में, "यह बात स्वयं सिद्ध है कि मजदूरी एक धुरी (Pivot) है, जिसके चारों ओर श्रमिकों की अधिकांश समस्यायें घूमती रहती हैं। इस प्रकार जीवन-स्तर से सम्बन्धित प्रश्न, श्रमिक की सामान्य आर्थिक क्षमता, उसकी सापेक्ष कुशलता, श्रम की लागत आदि सभी बातें इसी समस्या के अन्तर्गत आती हैं।"

श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा करने का एक अन्य उपाय यह है कि उनके लिए पर्याप्त मात्रा में कल्याण-कार्यों और सामाजिक सुरक्षा के साधन उपलब्ध किये जायें। पृथक्-पृथक् अध्यायों में इन बातों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और श्रमिकों के स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता एवं जीवन-स्तर को उन्नत करने के लिये उनका महत्व भी बताया जा चुका है। इसी प्रकार आवास, ऋणग्रस्तता, काम करने की परिस्थितियों की कार्य-कुशलता पर प्रतिक्रिया, आदि दूसरी समस्याओं पर भी विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

कुछ अन्य सुझाव (Some other Suggestions)

यह कहा जा सकता है कि जीवन-स्तर एक ऐसी समस्या है, जो श्रमिकों के सुधार सम्बन्धी सभी उपायों से सम्बन्धित है। सच तो यह है कि हमारी सभी आर्थिक प्रक्रियाओं का लक्ष्य आवश्यकताओं की पूर्ति है और इसलिये श्रमिकों के कल्याण के लिये जो भी पग उठाया जाये, उससे उनके जीवन-स्तर में उन्नति होनी चाहिये अन्यथा ऐसे पग उठाने के लिये सोचना भी नहीं चाहिये।

इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या भारतीय सामाजिक रीति-रिवाजों में यथासम्भव सुधार करने की है। श्रमिकों को उचित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिये, जिससे कि वे सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानों तथा त्यौहारों पर व्यर्थ अपव्यय न करें। अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व ऐसे होते हैं जिन पर श्रमिक को

धन व्यय करना पडता है, यद्यपि वह यह भली-भाँति अनुभव भी करता है कि उसकी स्थिति ऐसी नही है कि अपने धन को वह इस प्रकार व्यय करे। उदाहरणार्थ पुत्री या बहन के विवाह मे श्रमिक को भारी दहेज देना पडता है।

इसके अतिरिक्त, श्रमिको को बडे परिवार की हानियों से भी अवगत कराना चाहिये। विस्तृत दृष्टिकोण से भी वर्तमान समय मे जनसख्या की रोकथाम सबसे बडी आवश्यकता है। खाद्य समस्या का समाधान तब तक नही किया जा सकता, जब तक उत्पादन मे वृद्धि के साथ-साथ जनसख्या की वृद्धि मे रोक नही लगाई जाती। आधुनिक समय मे जनसख्या इस प्रकार बढ रही है कि निर्धनो मे बच्चे अधिक होते है इसलिये परिवार का आकार श्रमिक वर्ग मे अपेक्षाकृत बडा होता है। अनेक बार यह बात सामने आई है कि अपनी सीमित आय के कारण जब श्रमिक को अपने परिवार का भरण-पोषण करना और अपने शरीर और आत्मा को सबल बनाये रखना-भी कठिन होता है, तब इस आडे समय मे उसके परिवार मे कोई नया बच्चा जन्म ले लेता है। ऐसे अवसरो पर उसके समक्ष इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही रहता कि वह महाजनो के पास जाये और उनसे ऋण ले। ऋणग्रस्तता की बुराइयां पहले ही बताई जा चुकी है। इसलिये परिवार नियोजन के प्रचार की बहुत आवश्यकता है। श्रमिक वर्ग को इस बात की सुविधायें प्रदान की जानी चाहियें कि वे अपने परिवार मे जन्म-दर को कम कर सकें। इससे उनके जीवन-स्तर पर बहुत अच्छा प्रभाव पडेगा।

इसके अतिरिक्त, श्रमिको को उचित रीति से धन को व्यय करने का ढग भी बताया जाना चाहिये। अधिकाश श्रमिको को तो यह भी ज्ञान नही होता कि वे कितना कमाते है और कितना उपभोग करते है। अनपढ श्रमिको से इस बात की आशा नही की जा सकती कि वे अपना बजट ठीक प्रकार से बनायेंगे और अपने धन को सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम (Law of Equi-marginal Utility) के अनुसार व्यय करेंगे। इस समस्या का समाधान तो केवल अधिक प्रचार, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ के प्रसार और श्रमिक वर्ग की महिलाओ मे शिक्षा के विकास से ही हो सकता है।

इसके अतिरिक्त, जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने मे छुट्टियो, सवेतन अवकाश तथा मनोरजन की सुविधाओ के महत्व को भी ध्यान मे रखना चाहिये। इनकी महत्ता का पूर्व अध्यायो मे उल्लेख किया जा चुका है।

औद्योगिक श्रमिको की कार्य-कुशलता पर जीवन-स्तर का भी बडा प्रभाव पडता है। उन श्रमिको से जो निर्धनता, अपर्याप्त भोजन, कपडे के अभाव, बेरोज-गारी, बीमारी और ऋण-ग्रस्तता के वातावरण मे पल कर बडे होते है, अच्छे काम की आशा नही की जा सकती। मालिको को अपने कर्मचारियो की अकुशलता की शिकायत रहती है। वे इस बात का अनुभव नही करते कि जब तक श्रमिको के जीवन-स्तर मे सुधार नही हो जाता उनसे काम मे कुशलता की आशा करना व्यर्थ

है। वर्तमान समय में शारीरिक, नैतिक और मानसिक भार वहन करने में श्रमिक असमर्थ हैं और इसीलिये वे अधिक परिश्रम नहीं कर पाते।

उपसंहार (Conclusion)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व अनेक अन्य सुधारों की आवश्यकता है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि, "उद्योग में तब तक न शान्ति स्थापित हो सकती है, न प्रगति आ सकती है जब तक श्रमिकों को केवल उत्पादन का उपादान न मानकर अपितु उन्हें मनुष्य समझकर उनकी मूल आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं किया जाता ····। औद्योगिक शान्ति और प्रगति की नींव, श्रमिक वर्ग की कार्यकुशलता, उन्नत जीवन-स्तर, सामाजिक सुरक्षा तथा समस्त जनता में क्रय-शक्ति के उचित वितरण पर ही आधारित होती है।"

१८ औद्योगिक श्रमिकों का स्वास्थ्य और उनकी कार्यकुशलता

HEALTH AND EFFICIENCY OF INDUSTRIAL WORKERS

श्रमिको के स्वास्थ्य की समस्या (The Problem of Health)

औद्योगिक श्रमिको की स्वास्थ्य समस्या दो पहलुओ से अध्ययन किया जा सकता है। प्रथम, स्वास्थ्य को हानि की दृष्टि से, जो सभी नागरिको के लिये स्वाभाविक है और द्वितीय, व्यवसायजनित स्वास्थ्य सकट की दृष्टि से जिनका कुछ उद्योगो मे औद्योगिक श्रमिको के लिये भय रहता है। औद्योगिक श्रमिक भी एक नागरिक होता है, इसलिये अन्य नागरिको के समान सब पर आने वाले स्वास्थ्य सकट उसको भी झेलने पडते हैं। नागरिक होने के नाते श्रमिक की आवश्यकताओ की पूर्ति सामान्य स्वास्थ्य सेवाओ द्वारा, जो समाज म सब के लिये उपलब्ध है, होनी चाहिये। परन्तु औद्योगिक श्रमिक के रूप मे उसके व्यवसायजनित सकट, जिनको उसे भय रहना है, उचित रीति से निर्मित औद्योगिक श्रम स्वास्थ्य सेवा द्वारा ही दूर किये जा सकते है। ऐसी सेवायें काम करने के स्थान के वातावरण से सम्बन्धित उन बातो की रोकथाम करने की व्यवस्था करती है जो श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है। (देखिये पृष्ठ ३९३–३९८)। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि भारत मे जहाँ सम्पूर्ण समाज के लिये सगठित स्वास्थ्य सेवायें विद्यमान है वहाँ अभी कोई सुव्यवस्थित औद्योगिक स्वास्थ्य सेवा देश मे नही है।

असन्तोषजनक स्वास्थ्य पर कुछ रिपोर्टें (The Poor State of Health Some Reports)

हमारे देश के लोगों का असन्तोषजनक स्वास्थ्य इस बात से विदित होता है कि यहाँ के जीवन की औसत आयु अपेक्षाकृत कम है। अनुमान किया गया था कि सन् १९४१-५० के बीच भारत मे यह औसत आयु पुरुषो की ३२ ५ तथा स्त्रियो की ३१ ७ वर्ष रही। अभी हाल के वर्षों म औसत आयु कुछ बढी है। यह आयु सन् १९५१-६० के बीच पुरुषो के लिये ४१ ९ वर्ष तथा स्त्रियो के लिये ४० ६ वर्ष थी और सन् १९६१-७० के बीच पुरुषो के लिये ४० ४ वर्ष और स्त्रियो के लिये ४४ ७ वर्ष थी परन्तु अन्य देशो की तुलना मे यह अभी भी कम है। यह आयु आस्ट्रेलिया मे ६३ वर्ष, इगलैंड और वेल्स म ५९ वर्ष, जर्मनी मे ६० वर्ष

उत्तर भारत की अपेक्षा बहुत अच्छी पाई गई थी। डा० जान्स ने सिफारिश की थी कि चिकित्सा सेवाओं की व्यवस्था को दो चरणों में विभक्त कर देना चाहिये। प्रथम चरण में, राजकीय अस्पतालों तथा औषधालयों की व्यवस्था पर तथा दूसरे चरण में, सामूहिक तथा केन्द्रीय अस्पतालों की व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। उन्होंने अस्पतालों और औषधालयों में कुछ स्तरों को बनाये रखने की सिफारिश की। मार्च, अप्रैल १९४८ में नई दिल्ली में बागान की औद्योगिक समिति के द्वितीय अधिवेशन में सरकार द्वारा उनकी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया गया। (पृष्ठ ३६९–३७१ भी देखिये)। चाय बागान में १९६१ में श्रमिकों की मृत्यु दर प्रति ६ ३६ थी तथा सभी बागानों के लिए ११ ३८ प्रति हजार थी।

बुरे स्वास्थ्य के मुख्य कारण और उनको दूर करने के लिए सरकारी प्रयास

**(*Main Causes of Bad Health*
Govt Measures to Remove Them)**

भोर समिति के अनुसार भारत में बुरे स्वास्थ्य के निम्नलिखित कारण हैं—(क) गन्दी अवस्थाओं का होना, (ख) त्रुटिपूर्ण आहार, और (ग) चिकित्सा व रोग निवारक संगठनों की अपर्याप्तता। भारत सरकार ने औद्योगिक श्रमिकों की स्वास्थ्य-रक्षा की आवश्यकता को मान्यता प्रदान कर दी है और जिन परिस्थितियों में वे काम करते हैं उनका अन्वेषण करने के लिये अनेकानेक पूछताछ की गई है। इन जाँचों की रिपोर्टों में निहित कुछ सिफारिशों को सरकार ने लागू करने का निश्चय किया है और औद्योगिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित रोकथाम और उपचार के उपायों को वैधानिक रीति से कार्यान्वित किया है। इन उपायों में सन् १९४८ का कारखाना अधिनियम, १९५२ का खान अधिनियम, १९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम, १९३४ का भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, १९६१ का मोटर यातायात कर्मचारी अधिनियम, १९७२ का कोयला खान अधिनियम, बागानों, खानों तथा राज्यों में श्रम कल्याण निधि अधिनियम और १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पिछले पृष्ठों में अथवा श्रम विधान के अन्तर्गत इन सबका उल्लेख किया जा चुका है। औद्योगिक श्रमिकों के हेतु मालिकों द्वारा किये गये कल्याण-कार्यों के अन्तर्गत औषधालयों के प्रबन्ध के विषय में उल्लेख किया जा चुका है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण पग जो उठाया गया है वह यह है कि भारतीय गवेषणा निधि परिषद् (Research Fund Association) के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट उद्योगों की स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने के लिये एक विशेष सलाहकार समिति की स्थापना की गई है। इस परिषद् की औद्योगिक स्वास्थ्य गवेषणा इकाई ने स्वास्थ्य समस्याओं पर कुछ अनुसन्धान (Investigations) किये हैं। वर्तमान काल की कुछ ऐसी समस्यायें जिन पर अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है, अग्रांकित हैं :

(क) श्रमिकों पर शोरगुल की अधिकता का प्रभाव, (ख) दुर्घटनाओं के कारण बीमारियाँ होने से अनुपस्थिति, (ग) छापेखानों में सीसे द्वारा उत्पन्न मादक विष का प्रभाव, और (घ) औद्योगिक गर्द के विषय का मूल्यांकन। कुछ उद्योगों, जैसे—लोहा उद्योग, इंजीनियरिंग और कपड़ा उद्योग में इतना अधिक शोरगुल होता है कि अन्त में श्रमिकों की कार्यकुशलता और उनके सुनने की शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पहले शोरगुल के मध्य और उसके बाद शान्त वातावरण में काम करते हुए अनेक श्रमिकों की जूट के कारखानों में डाक्टरी परीक्षा की गई। प्राथमिक परिणामों से यह सिद्ध होता है कि शोरगुल जब कम होता है, तब कार्यकुशलता में लगभग २.१८ प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। कलकत्ता के निकट बाटा शू कम्पनी में दुर्घटनाओं के कारण बीमार होने से अनुपस्थिति के विषय में भी अनुसन्धान किये जा रहे हैं। अन्य महत्वपूर्ण अनुसन्धान जो किये गये हैं, उनका सम्बन्ध कागज और कपड़ा मिलों के श्रमिकों की क्लान्ति (Fatigue) तथा कार्य-कुशलता से है। इसके अतिरिक्त यातायात की दुर्घटनाओं और कलकत्ता के बस तथा ट्राम चालकों के दुर्घटनाओं के रूझान (Proneness) से सम्बन्धित अनुसन्धान भी हुये हैं। यौन सम्बन्धी रोगों से पीड़ित रोगियों का भी सर्वेक्षण किया गया था। इससे यह स्पष्ट हो गया कि विवश होकर परिवारों से पृथक् रहने के कारण इस प्रकार की बीमारियाँ श्रमिकों में बहुत पाई जाती थीं। जूट के कारखानों में महिला श्रमिकों के विषय में यह देखा गया कि उनके ११ प्रतिशत गर्भ गिर जाते थे।

इसके अतिरिक्त, भारत सरकार ने औद्योगिक स्वास्थ्य में प्रशिक्षण देने हेतु सुविधायें प्रदान की हैं। औद्योगिक श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा से सम्बन्धित एक पत्रिका का नियमित रूप से प्रकाशन हो रहा है। जो भी चिकित्सा या चिकित्सा से सम्बन्धित कर्मचारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन उद्योगों से सम्बन्धित हैं उनके प्रशिक्षण के हेतु कलकत्ता में अखिल भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान (All India Institute of Hygiene and Public Health), में एक विशेष औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान पाठ्यक्रम का आयोजन किया गया है। कारखानों के मुख्य सलाहकार ने राज्य के कारखानों के राज्य-निरीक्षकों को औद्योगिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधायें भी प्रदान की हैं। आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, हरियाणा, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, प० बंगाल व दिल्ली में *तथा कारखानों में चिकित्सा-निरीक्षकों की नियुक्ति की गई है।* श्रमिकों व मालिकों में सुरक्षा सम्बन्धी विचारों को उत्पन्न करने के लिये एक स्वास्थ्य, सफाई व सुरक्षा परिषद् की भी स्थापना महाराष्ट्र में की गई है। ये राज्य के कारखाना में श्रमिकों के काम करने की परिस्थितियों और उनके सामान्य स्वास्थ्य में अनुसन्धान और सुधार करने के उद्देश्य को दृष्टि में रखकर उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य संगठन की स्थापना की है। एक अनुसन्धान इकाई कानपुर के चमड़ा उद्योग में स्वास्थ्य संकटों की जाँच के लिये १९६१ में बनाई गई थी। इसके अतिरिक्त,

की संख्या तथा अवधि का भी ऐसी रीति से समायोजन होना चाहिये कि उसका श्रमिकों की कार्यकुशलता पर कम से कम प्रतिकूल प्रभाव पड़े जो कि रात्रि की पारियों में काफी कम होती है। श्रमिक द्वारा ली जाने वाली छुट्टियाँ तथा अवकाश भी उसकी कार्यकुशलता को प्रभावित करते हैं।

पारिवारिक जीवन (family life) का भी श्रमिक की कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। घर के जिस वातावरण में व्यक्ति का पालन-पोषण होता है, और जिस पारिवारिक जीवन को व्यक्ति को अपनाना पड़ता है उसका श्रमिक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है। इसका कारण यह है कि घर में ही व्यक्ति को शान्ति मिलती है और वह अधिक अच्छा काम करने के लिये अपनी शक्तियों को पुनः अर्जित कर लेता है। बच्चे पर माता का भी अधिक प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त छोटे या *अधिक दिनों के लिये सैर-सपाटे (trips) भी व्यक्ति के दृष्टिकोण को विस्तृत कर देते* हैं और उसकी कार्यकुशलता अपेक्षाकृत बढ़ जाती है। जीवन के प्रति व्यक्ति के सामान्य दृष्टिकोण की भी कार्य की मात्रा पर बड़ी प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है। कुछ लोग आरम्भ से ही भाग्यवादी होते हैं। वे समझते हैं कि उनके कारण कुछ नहीं होता, जो कुछ होता है, सब भाग्य से ही होता है। वे अपने प्रयत्नों से अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की स्वतः कभी चेष्टा नहीं करते। इस प्रकार के दृष्टिकोण से व्यक्ति में उन्नति करने की भावना कभी उत्पन्न नहीं हो पाती। धर्म को गलत प्रकार से समझने का भी इस प्रवृत्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लेकिन सामाजिक और राजनैतिक तत्व भी जीवन के प्रति इस उदासीनता के लिए उत्तरदायी हैं। उदाहरण के लिये, देश की जातीयता, सामाजिक मर्यादायें और राजनैतिक दासता आदि भी बहुत समय तक भारत में अधिकांश लोगों के दृष्टिकोण को विस्तृत करने के अनुकूल नहीं थी।

इसके अतिरिक्त किसी व्यक्ति की कार्यकुशलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उस व्यक्ति की कार्य करने में रुचि या इच्छा है या नहीं अथवा वह जीवन में तथा रोजगार में उन्नति करने की आशा कर सकता है या नहीं तथा उसे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में कोई बाधा तो नहीं है। स्वतन्त्र व्यक्ति की तुलना में परतन्त्र व्यक्ति कभी अधिक कार्यकुशल नहीं हो सकता। पदोन्नति के अवसरों तथा किसी पद में भावी उन्नति की आशाओं से श्रमिक कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और वह कठिन परिश्रम करता है। नौकरी की अच्छी शर्तों व उसकी सुरक्षा आदि की व्यवस्था से भी श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ती है। इसके अतिरिक्त श्रमिक का चरित्र, ईमानदारी, नियमितता, आत्मविश्वास, आत्मसम्मान, कठिन परिश्रम की आदत तथा अन्य नैतिक गुणों से भी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। हीन बुद्धि वाले श्रमिक की अपेक्षा बुद्धिमान श्रमिक कहीं अधिक कार्यकुशल होता है। एक *अन्य महत्वपूर्ण तत्व जिसका श्रमिक की कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है,* **उद्योग का संगठन और उसके कार्य की सामग्री** है। किसी श्रमिक को उसी काम

पर लगाना चाहिये, जिसके लिये वह उपयुक्त है। इसके साथ ही साथ उसे काम के लिये सही प्रकार की मशीन और उपकरण दिये जाने चाहियें। एक कम बुद्धिमान उद्यमकर्त्ता, जो पुरानी मशीन और रद्दी सामान का प्रयोग करता है, कभी उत्तम श्रेणी का उत्पादन नहीं कर सकता। इस प्रकार श्रमिक की कार्यकुशलता प्रबन्धक की योग्यता और बुद्धि तथा कार्याध्ययन और मशीन व्यवस्था की आधुनिक तकनीकी पद्धित अपनाने पर भी निर्भर होती है। **मजदूरी वितरित करने की प्रणाली**, जैसे—परिणाम के अनुसार मजदूरी देने की विधि, से भी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त, **श्रमिक संगठन** से भी श्रमिकों की कार्यकुशलता में उन्नति होती है। जब श्रमिक उचित रूप से श्रमिक संघ में संगठित होता है, तब उसे अधिक आत्म-विश्वास हो जाता है और उसमें अधिक काम करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। **उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों की नीति को लागू करने से**, कार्मिक वर्ग प्रबन्ध से तथा अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों से भी श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। **कल्याण कार्य** भी आमोद-प्रमोद और मनोरंजन की व्यवस्था करके श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर बड़ा प्रभाव डालते हैं, जिससे वे अपनी शक्तियाँ पुन. अर्जित कर लेते हैं। फिर, यह भी आवश्यक है कि श्रमिक उस पद के बिल्कुल अनुकूल हो जिसके लिये कि उसकी भर्ती हुई है। अत श्रमिकों की भर्ती के तरीके का भी उसकी कार्य-कुशलता पर भारी प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार, श्रमिक की कार्यकुशलता अनेक परिस्थितियों पर निर्भर होती है और यह कहना बड़ा ही कठिन है कि किसी एक देश के श्रमिक किसी अन्य देश के श्रमिकों की तुलना में अधिक कार्यकुशल हैं या नहीं। किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले हमें इन सभी तत्वों को ध्यान में रखना चाहिये।

कार्यकुशल श्रमिकों के लाभ
(Advantages of an Efficient Labour Force)

यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि किसी देश की कार्यकुशल श्रम शक्ति उस देश के लिये बहुत बड़ा वरदान होती है। देश के आर्थिक जीवन में उन्नति करने के लिये और देश के आर्थिक विकास के लिये भी यह एक शक्तिशाली उपकरण है। कार्यकुशल श्रमिकों के लिये अधिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता नहीं होती। न तो वे अधिक सामग्री नष्ट करते हैं और न ही मशीनों को कोई हानि पहुँचाते हैं। वे अपना काम बड़ी चतुरता से करते हैं और उनके कार्य से दक्षता और उत्तरदायित्व का बोध होता है। इस प्रकार वे उद्योग में स्वदेशानुरागी रुचि लेने में समर्थ हो जाते हैं। जब चारों ओर मैत्रीपूर्ण सहयोग का वातावरण होता है तो देश के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

भारतीय श्रमिकों की कार्यकुशलता
(Efficiency of Indian Workers)

भारतीय श्रमिक अन्य देशों के श्रमिकों की अपेक्षा सामान्यत कम कार्य-कुशल समझा जाता है। यदि इस बात से हम यह अर्थ लें कि योरोपियन श्रमिक

भारतीय श्रमिक से किसी निर्धारित समय में अधिक उत्पादन करने में समर्थ होता है तो इस प्रकार के वक्तव्य का विरोध करना सम्भव नहीं है। टैरिफ बोर्ड ने सन् १९२७ में यह कहा था कि भारत में प्रत्येक श्रमिक केवल १८० तकुओं की देखभाल करता था, जबकि यह संख्या जापान में २४०, इंगलैण्ड में ५४० से ६०० तक और अमेरिका में १,१२० थी। एक बुनकर जितने करघों पर काम करता है, उन करघों की संख्या औसत रूप से जापान में २.५, इंगलैण्ड में ६ तक और संयुक्त राज्य में ९ थी, जबकि भारत में यही संख्या साधारणतया लगभग २ थी। कानपुर श्रम जाँच समिति ने भी कहा था कि जापान में प्रत्येक एक हजार तकुओं के लिये ६.१ श्रमिक हैं जबकि भारत में ११ हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में एक श्रमिक कताई के चरखे के एक ओर ही ध्यान देता है जबकि जापान में एक लड़की श्रमिक दोनों ओर ध्यान देती है। जापान में एक लड़की बुनकर ६ करघों की देखभाल करती है परन्तु हमारे यहाँ का बुनकर लगभग दो करघों की ही देखभाल करता है। सर अलेक्जेन्डर मैकरावर्ट ने औद्योगिक आयोग के समक्ष यह कहा था कि अंग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा ३½ या चार गुना अधिक कार्यकुशल है। सर क्लेमेन्ट सिम्पसन की गणना के अनुसार, भारतीय कपास की कताई व बुनाई मिल के २.६७ श्रमिक लंकाशायर की मिल के एक श्रमिक के समान हैं। (पृष्ठ ५६४-६८ भी देखिये)

परन्तु इस प्रकार के विवरण से यह स्पष्ट नहीं हो सकता कि भारतीय श्रमिकों में कोई सहज स्वाभाविक हीनता है। भारत में प्रत्येक मशीन पर अधिक श्रमिक इसलिये लगाये जाते हैं कि श्रमिक सस्ते हैं और मशीनें महँगी हैं। इंगलैण्ड में मजदूरी अपेक्षाकृत अधिक है और इसलिये श्रम की बचत करना आवश्यक हो जाता है। भारत में प्रति श्रमिक कम उत्पादन होने का दायित्व केवल इसकी कम-कार्यकुशलता पर ही नहीं डाला जा सकता। प्रबन्ध की अकुशलता, कच्चे माल की घटिया किस्म, अच्छी मशीनों का अभाव और उत्पादन क्रिया में आधुनिक तकनीक को न अपनाने के कारण भी उत्पादन कम हो सकता है। इसके अतिरिक्त, भारत में काम करने के घण्टे अधिक और मजदूरी कम है, साथ ही रहन-सहन की दशायें भी शोचनीय हैं। अतः विभिन्न देशों के श्रमिकों की कार्यकुशलता की तुलना करते समय हम भारतीय श्रमिकों की अकुशलता के सम्बन्ध में बिना सोचे समझे कोई निर्णय नहीं दे सकते।

लेकिन वर्तमान समय में जो परिस्थितियाँ हैं, उनसे यह विदित होता है कि भारतीय श्रमिक इतना कार्यकुशल नहीं है, जितना उसे होना चाहिये। बहुत से ऐसे कारण हैं जिन्होंने हमारे श्रमिकों को अकुशल बना दिया है और उन्हीं कारणों के प्रकाश में हम यह देखना है कि श्रमिकों की अकुशलता वास्तविक है या मालिकों द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर कही जाती है, क्योंकि मालिक अकुशलता की दुहाई देकर मजदूरी कम देने का एक बहाना बना लेते हैं।

भारतीय श्रमिक की अकुशलता के कारण
(Causes Which Make Indian Labour Inefficient)

प्रथम तो हमारे देश की जलवायु कुशल-कार्य के अनुकूल नही है। भारतीय जलवायु गर्म है और कठोर तथा सुस्थिर कार्य करने के लिए इसका अच्छा प्रभाव नही पडता, विशेषतया गर्मी की ऋतु मे घण्टो बैठकर निरन्तर काम करना सम्भव नही हो पाता। लेकिन जैसा कि सकेत किया जा चुका है, कारखानो मे, तापक्रम को नियन्त्रित करके जलवायु की परिस्थितियों पर नियन्त्रण हो सकता है और कठोर परिश्रम के लिये उपयुक्त वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। 'कार्य की दशाओ' के अन्तर्गत यह उल्लेख किया गया है कि मालिक तापमान पर नियन्त्रण रखने की ओर बहुत ही कम ध्यान देते है। इसलिए कठोर और निरन्तर कार्य श्रमिक के लिये बडा कठिन हो जाता है और वह अपनी थकान मिटाने के लिये कुछ न कुछ समय अवश्य नष्ट करता है।

इसके अतिरिक्त, जैसा कि शिक्षात्मक सुविधाओ के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है भारतीय श्रमिक मे अशिक्षितता अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त उसे मशीनो का दक्षतापूर्वक सचालन करने के लिये समुचित प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता। रॉयल श्रम आयोग और मिस्टर हैराल्ड बटलर ने इस विषय मे अपने विचार जोरदार शब्दो म व्यक्त किये है (देखिये पृष्ठ ३६५-६६)। काम मे उचित प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए श्रमिको को न तो स्वय और न ही सस्थानो मे सुअवसर प्राप्त हो पाते है। इसलिये यह कहना नितान्त अनुचित है कि औसत भारतीय श्रमिक ब्रिटेन के औसत श्रमिक की अपेक्षा कम बुद्धिमान है। वास्तविकता यह है कि श्रमिक की मानसिक शक्तियाँ प्रशिक्षण के अभाव मे विकसित नही हो पाती है।

कम मजदूरी और निम्न कोटि का जीवन स्तर सम्भवतया भारतीय श्रमिको की कार्य-अकुशलता का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। श्रमिको को मजदूरी इतनी कम मिलती है कि यह आशा नहीं की जा सकती कि श्रमिक कुछ प्रगति कर सकेंगे या अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकेगे। श्रमिको को अस्वास्थ्यकर असन्तुलित भोजन तथा पहनने के लिये फटे-पुराने अपर्याप्त कपडे ही मिल पाते है और जिन मकानो म वे रहते है उनकी भी दशा अत्यन्त शोचनीय होती है। इन सबका पिछले पृष्ठो मे विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। निम्न कोटि के जीवन-स्तर के कारण श्रमिको की आदतें बिगड जाती हैं और उनके रहने का वातावरण भी दूषित हो जाता है। परिणामस्वरूप वे अनेक बीमारियो के शिकार हो जाते हैं और उनकी कार्य शक्ति तथा कार्यकुशलता का ह्रास हो जाता है। इसके अतिरिक्त, काम करने की परिस्थितियाँ भी अत्यन्त विषम हैं तथा कारखानो का वातावरण भी सन्तोषजनक नही होता। ऐसी अस्वस्थ परिस्थितियो के होते हुये, हम यह कैसे आशा कर सकते हैं कि श्रमिक अपना कार्य परिश्रम से तथा मन लगाकर करेंगे।

श्रमिकों की प्रवासिता (migratory character) भी उनकी कार्यकुशलता पर प्रभाव डालती है । प्रवासिता के कारण न केवल उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है वरन् उन्ह शहरी जीवन मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। इसक अतिरिक्त श्रमिक की मदिरा-पान की आदत भी उसकी कार्य-अकुशलता के लिय उत्तरदायी है। परन्तु इस विषय मे साधारणतया यही कहा जाता है कि श्रमिक अपन कठोर परिश्रम की क्लान्ति को मिटाने क लिये ही मदिरा का सहारा लेता है और शराब पीकर वह अपन जीवन की कटुताआ को भूलने का प्रयत्न करता है। जब श्रमिको के लिय अच्छी सुख-सुविधायें उपलब्ध नही है और उन्ह उचित शिक्षा देन की भी व्यवस्था नही है तथा यह कोई आश्चय की बात नही है कि उनमे मद्यपान तथा वेश्यागमन जैसी बुरी आदतें पड जाती हैं जिनसे उनके स्वास्थ्य और कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पडता है। श्रमिको की ऋणग्रस्तता भी उनकी अकुशलता के लिये कुछ सीमा तक उत्तरदायी है ।

कार्यअकुशलता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण कारखानों मे अच्छी व्यवस्था का अभाव है। अधिकतर प्रबन्ध दोषपूर्ण और अनुभव-शून्य होता है। न तो मशीनें अच्छी होती हैं और न काम करने के लिय श्रमिको को अच्छा सामान दिया जाता है। *अत यह स्वाभाविक है कि पुरानी व अप्रचलित मशीनो और घटिया प्रकार के* कच्चे माल के कारण श्रमिक उत्पादन नहीं कर पाता । निरीक्षण कर्मचारी वर्ग को इसका प्रशिक्षण नही दिया जाता कि वे श्रमिको का उचित प्रकार से निर्देशन कर सकें। उत्पादकता बढाने के लिये आधुनिक तकनीक का भी नहीं अपनाया जाता। अनेक मालिक यह भी नही समझते कि उद्योग मे मानवीय सम्बन्धो की नीति को लागू करने क लिये एक कुशल एव सुसगठित कार्मिक वर्ग विभाग की स्थापना करना कितना अधिक महत्वपूर्ण है । बार-बार होने वाले औद्योगिक विवाद भी श्रमिकों की कुशलता वृद्धि मे बाधक होते हैं ।

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव मे कार्य-अकुशल है ?

(Is Indian Labour Really Inefficient) ?

जैसा कि पिछले पृष्ठों मे उल्लेख किया जा चुका है श्रमिक की रहन-सहन और कार्य करने की शोचनीय दशायें ही उनकी कार्य-अकुशलता का प्रमुख कारण हैं। *यदि आज का भारतीय श्रमिक इतना अधिक कार्यकुशल नहीं है जितना कि* ससार के अन्य उन्नत देशो के श्रमिक हैं तो इसका कारण यह नही है कि भारतीय श्रमिक मे अधिक कार्यकुशल होने की क्षमता का अभाव है। यदि श्रमिक की शोचनीय दशाओं को देखा जाये तो उस पर यह दोष नहीं लगाया जा सकता कि वह अपने कार्य म रुचि नही लेता। श्रमिक बचारा अपने परिवार और घरेलू वातावरण से दूर होता है तथा घनी और गन्दी बस्तियों म उसे रहना पडता है। उसको कार्य भी अधिक घण्टो तक घुटन और धुएँ से भरे वातावरण मे करना पडता है। उसे उचित प्रकार से निर्वाह करने के लिये पर्याप्त मजदूरी भी नहीं मिलती । महाजनों

और मध्यस्थों द्वारा उचित एवं अनुचित, हर प्रकार से श्रमिकों से रुपया वसूल किया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में यह कठिन है कि श्रमिक कुशलतापूर्वक काम कर सके। यदि हमारे देश में भी वे सब परिस्थितियाँ आ जायें जिनसे श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ती है और जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है तो भारतीय श्रमिक भी थोड़े ही समय में आश्चर्यजनक रूप से उन्नति कर लेगा। भारतीय श्रमिकों की यह विशेषता है कि वह कठिन और असाध्य (Trying) परिस्थितियों में भी कुशलतापूर्वक कार्य कर लेता है और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको बड़ी शीघ्रता से ढाल लेता है।

श्रम अनुसन्धान समिति के शब्दों में "हमें जो भी प्रकाशित प्रमाण मिले हैं और अपनी जाँच-पड़ताल की अवधि में जो भी सूचनायें एकत्रित कर सके हैं उन से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय श्रमिक की तथाकथित कार्य-अकुशलता एक कोरी कल्पना है। यदि हम अपने श्रमिकों को वैसे ही कार्य करने की दशायें, मजदूरी, उचित व्यवस्था, मशीनें और यन्त्र आदि प्रदान करें जो दूसरे देशों में श्रमिकों को मिलते हैं तो भारतीय श्रमिकों की कार्यकुशलता भी अन्य देशों के श्रमिकों से कम न होगी। यही नहीं, वरन् जिस कार्य में भी यान्त्रिक सामान और संगठन की व्यवस्था सन्तोषप्रद होती है वहाँ भारतीय श्रमिकों ने दूसरे देश के साथियों की अपेक्षा अधिक कार्य-कुशलता का प्रमाण दिया है।"[1]

ग्रेडी मिशन ने भी भारतीय उद्योगों की तकनीकी कार्यकुशलता पर अपनी रिपोर्ट में इस प्रकार का विचार व्यक्त किया था। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में जनरल मोटर्स लिमिटेड के जनरल मैनेजर ने भी यह कहा था कि यदि भारतीय श्रमिक को प्राथमिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाये तो वह व्यक्तिगत रूप से उतना ही कार्यकुशल होगा जितना की एक साधारण अमेरिकन श्रमिक होता है। सन् १९१५ में, जब सर थॉमस हालैण्ड ने दक्षिण भारत के चमड़ा उद्योग के विकास का कार्य अपने हाथ में लिया था तो सबसे पहले उन्होंने भारतीय श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की थी। उस समय उन्हें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ था और साथ ही प्रसन्नता भी हुई थी कि उत्पादन की नवीन प्रणालियों को भारतीय श्रमिक ने बहुत जल्दी सीख लिया था। टाटा के लोहे और इस्पात के बड़े-बड़े कारखानों में भारतीय श्रमिकों को कुशलतापूर्वक कार्य करता देखकर अनेक योरोपियन व्यक्तियों ने भी इसी प्रकार का आश्चर्य प्रकट किया है। टाटा की सारी कम्पनियाँ भारतीय श्रम और भारतीय प्रबन्ध से चलती हैं। मि० 'सी० डब्यू कैसे' ने भी यह कहा था कि भारतीय श्रमिक प्रथम श्रेणी के मिस्त्री हैं। वे संसार के किसी भी देश के श्रमिकों से होड़ ले सकते हैं। पिछले महायुद्ध में खाई खोदने वाले भारतीय श्रमिक और इंजीनियरों ने भिन्न भिन्न स्थानों पर किये गये आश्चर्यजनक कार्यों से अपनी जिस

1 Report of the Labour Investigation Committee, Page 381 82.

योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत किया था उसकी सबने सराहना की है।

गत कुछ वर्षों म औद्योगिक श्रमिकों की कार्यकुशलता म तीव्र गति से वृद्धि हुई है। यह बात इसस स्पष्ट है कि महाराष्ट्र की कुछ मिलो म जुलाहे छ छ करघो पर काफी समय स काय कर रहे है और काय की दशायें अपक्षाकृत असन्तोषजनक होत हुय भी प्रत्येक श्रमिक का औसत उत्पादन लकाशायर के श्रमिक के उत्पादन क ८८% तक पहुच गया है। इजीनियरिंग और विद्युतीय इजीनियरिंग विभागो म भी कुशल और अद्धकुशल भारतीय श्रमिक कठिन काम भी वैसी ही रुचि स करत है जसा की अन्य देशो म इजीनियरिंग विभाग क श्रमिक करत है। यह भी सर्वविदित है कि भारतीय शिल्पी अपनी कलात्मक कृतियो क लिये ससार मे प्रख्यात है। ससार का कोई भी शिल्पकार भारतीय शिल्पकार की तकनीकी की बारीकी और चित्रकारी की स्निग्धता की न तो बराबरी कर सका है और न मुकाबला ही कर पाया है।

अतएव जैसा की श्रम अनुसन्धान समिति न कहा है, 'यदि यह देखा जाये कि इस देश म काय क घण्ट बहुत लम्ब है, अल्प विराम (Rest Pauses) बहुत कम है, प्रशिक्षण और प्रशिक्षार्थियो क लिय बहुत कम सुविधायें है, आहार का स्तर और कल्याण सम्बन्धी सुविधाओं का स्तर बहुत निम्न है तथा अन्य देशो की अपक्षा मजदूरी भी बहुत कम है तो श्रमिको की तथाकथित कार्य अकुशलता का कारण यह नही हो सकता कि हमार देश के लोगो की बुद्धिमता म कुछ कमी है या हमार श्रमिको म कार्य करन की रुचि नही है।" श्रमिको की कार्य अकुशलता का करण वैज्ञानिक प्रबन्ध का आभाव, व्यवसाय मे उच्चतम नैतिक स्तरो का अभाव, वातावरण म गर्मी और नमी तथा श्रमिको की निधनता आदि कुछ एसी परिस्थितियाँ हैं जिनके लिये श्रमिको को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। इसलिये श्रमिको के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये, उनके काम करने और रहने की अच्छी दशायें उपलब्ध करन के लिये तथा उनको उचित प्रशिक्षण की सुविधायें देने के लिये यदि निरन्तर प्रयत्न किये जायें तो वह दिन दूर नही जब भारतीय श्रमिक, यदि अधिक नही तो अन्य देशो के श्रमिको क समान ही, कार्यकुशल हो जायेगा। इन विषयो म यदि उनके लिय सरकार द्वारा आवश्यक पग उठाये जायें तो भारतीय श्रमिक बहुत शीघ्र अपन मे सुधार कर लेगा क्योकि उसम सीखन और उन्नति करने की बहुत क्षमता है। भारतीय श्रमिक मे मूलत कोई कमी नही है और कोई कारण नही है कि भारत के निवासी इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करें।

गत वर्षों मे कार्य-अकुशलता की शिकायतो के कारण
(Causes of Complaints of Inefficiency in Recent Years)

गत कुछ वर्षों मे श्रमिको की कार्यकुशलता की कमी हो जाने की शिकायतें सुनन म आई हैं। यह कहा जाता है कि अब श्रमिक अपन अधिकारो क प्रति तो

बहुत सजग हो गया है और अधिक से अधिक मजदूरी माँगने लगा है, परन्तु वह अपने कर्त्तव्यों को भूल गया है और काम करने में रुचि नहीं लेता है। सन् १९४९ में टाटा लोहा इस्पात की कम्पनी के अध्यक्ष ने वार्षिक उत्सव के अवसर पर यह कहा था कि इस्पात का औसत उत्पादन सन् १९३९-४० में प्रति कर्मचारी २४ ३६ टन था जो सन् १९४८ ४९ में गिर कर १९ ३० टन रह गया। उन्होने इस बात की भी शिकायत की कि कुछ विभागों म श्रमिक अधिकतर अपनी वास्तविक क्षमता से आधा या एक तिहाई काम कर रहे थे। श्रमिक ऐसा क्यों करते है, इसका कारण ढूँढने के लिये हमें दूर नहीं जाना पड़ेगा। देश की परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियाँ, श्रम आन्दोलन की बढती हुई शक्ति, निर्वाह खर्च में वृद्धि, कुछ राजनैतिक दलों का अनुचित प्रचार, आदि सभी बातो ने मिलकर श्रमिकों में असन्तोष की भावना उत्पन्न कर दी है और वे अपनी परिस्थितियों में तत्काल सुधार की माँग करने लगे है। प्रबन्ध में जो परम्परागत प्रणालियाँ चली आ रही है, उनसे भी वह सन्तुष्ट नहीं है और कठोर अनुशासन की वह अवहेलना करने लगे है। विवेकीकरण और कार्य तीव्रता की योजनाओं ने भी श्रमिकों मे बेरोजगारी का भय उत्पन्न कर दिया है और उनमे यह धारणा उत्पन्न हो गई है कि यदि वह अधिक कार्य करेंगे तो उनमें से कुछ श्रमिको की छँटनी हो जायेगी। इसलिये अधिक कार्य करके रोजगार को कम करने की अपेक्षा वे अपने सहयोगियों के साथ मिल बाँट कर कार्य करना चाहते है। अत मजदूरी के ढाँचे में किसी प्रकार का परिवर्तन न होने के कारण और कार्य करने के तथा रहने की दशाओं में किसी उल्लेखनीय सुधार के अभाव मे श्रमिक पहले की अपेक्षा आज अधिक असन्तुष्ट है।

उत्पादकता (Productivity)

भारत में श्रमिकों की उत्पादकता बढाने का बहुत महत्व है, विशेषकर जब देश म आर्थिक विकास के लिये पंचवर्षीय आयोजनायें चालू की गई हैं। श्री गुलजारी लाल नन्दा ने कहा था "उत्पादकता प्रगति का लगभग पर्यायवाची है। हमारे लिये इसका अर्थ केवल प्रगति ही नहीं वरन् जीवन है।" ससार की वर्तमान प्रतियोगी अर्थ व्यवस्था को देखते हुये यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने देश के माल को अधिक अच्छे प्रकार का बनायें, उत्पादन लागत को कम करे और कीमतों को घटायें। इस प्रकार ही हम विश्व बाजार में अपने देश के माल के लिये स्थान बना सकते है तथा अपने देश के भीतर भी बाजार को विस्तृत कर सकते है। यदि हम विश्व बाजार मे सफलतापूर्वक स्पर्धा करना चाहते हैं तो श्रमिकों की उत्पादकता बढाने की ओर पग उठाने आवश्यक है। अधिक उत्पादकता से जो लाभ होंगे वे सभी वर्गों को उपलब्ध होंगे। बाजारों के विस्तृत होने से उत्पादन लाभ भी बढेगा और उद्योग को भी फायदा पहुँचेगा। उत्पादन लागत घटने से मूल्यों में कमी हो जायेगी, अधिक अच्छे प्रकार का माल तैयार होगा और उपभोक्ताओं

को भी लाभ होगा। अधिक उत्पादकता के कारण श्रमिकों को भी अधिक मजदूरी मिलेगी और उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो जायगा। उद्योग की उत्पादकता ही वह स्रोत है जिसमें से ऊँची मजदूरी का भुगतान किया जाता है। किसी प्रकार या किसी ओर से कोई भी दबाव उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी दिलाने में समर्थ नहीं हो सकता क्योंकि यदि ऐसा किया जायगा तो बेरोजगारी व मुद्रा-प्रसार जैसी दुखदायी स्थितियों का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उत्पादकता बढ़ने से देश के प्रत्येक प्राकृतिक साधन से अधिक उत्पादन उपलब्ध होगा, कुल उत्पादन बढ़ जायेगा, और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी, निवेश भी अधिक होगा, रोजगार अधिक मिलेगा तथा जीवन-स्तर भी ऊँचा हो जायेगा। उत्पादकता बढ़ाने का उद्देश्य यह है कि प्राप्य (Available) साधनों द्वारा अधिकतम उत्पादन हो और किसी भी प्रकार की सामाजिक या आर्थिक विपत्ति (Distress) का सामना न करना पड़े। ऐसे उचित वातावरण बनाने के लिये जिसमें मालिक व मजदूरों के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण हों तथा श्रमिकों की कार्यकुशलता अधिक हो और उनका जीवन स्तर ऊँचा हो, उत्पादकता आन्दोलन की ओर अच्छी प्रकार से ध्यान देना चाहिये तथा उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अधिक उत्पादकता से अधिक उत्पादन होता है तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि उत्पादन में वृद्धि होती है तो आवश्यक रूप से उत्पादकता में भी वृद्धि होती है। हम उत्पादन में दो प्रकार से वृद्धि कर सकते हैं—प्रथम तो अधिक साधन और उपादानों को लगाकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और द्वितीय, उत्पादन में वृद्धि, प्रति श्रमिक, प्रति घण्टे, प्रति दिन या प्रति वर्ष उत्पादन बढ़ाकर की जा सकती है। उत्पादकता में वृद्धि का अर्थ द्वितीय प्रकार की वृद्धि से लिया जाता है। किसी भी संस्था में एक ही समान मात्रा और विशिष्ट गुण वाला उत्पादन एक निश्चित समय में यदि १० व्यक्तियों द्वारा किया जाता है और दूसरी संस्था में उसी समान मात्रा और गुण वाला उत्पादन उतने ही समय में १५ व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो 'उत्पादन' तो बराबर होगा, परन्तु पहली संस्था में 'उत्पादकता' अधिक होगी।

श्रम उत्पादकता की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि "श्रम-समय के अनुपात में प्रत्येक इकाई में जितना निपज (Output) होता है उसे श्रम उत्पादकता कहते हैं"। श्रम ब्यूरो द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार श्रम उत्पादकता का अर्थ भौतिक उत्पादन या निपज के उस अनुपात से है जो उद्योग में श्रम निवेश (Input) की मात्रा में प्राप्त होता है। परन्तु यह एक बहुत विस्तृत परिभाषा है। श्रम के निपज और उद्योग में श्रम के निवेश की मात्रा को किस प्रकार मापा जाता है, उसके अनुसार इसके कई अर्थ हो सकते हैं। इस प्रकार से श्रम उत्पादकता श्रम की आन्तरिक कार्यक्षमता से हुये परिवर्तनों को स्पष्ट नहीं करती वरन् उस परिवर्तनशील प्रभाव को प्रदर्शित करती है जिसमें श्रम का अन्य

साधनों के साथ प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार श्रम उत्पादकता पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है। परन्तु इससे बड़ी संख्या मे अलग-अलग, परन्तु फिर भी एक दूसरे से आपस मे सम्बन्धित साधनों का सम्मिलित प्रभाव होना प्रकट होता है, उदाहरणत तकनीकी सुधार, उत्पादन की गति, उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं मे प्राप्त की गई कार्यक्षमता की मात्रा, सामग्री की उपलब्धि, माल आदि के प्राप्त होने की गति, मालिक मजदूर सम्बन्ध, श्रमिकों की कुशलता और उनके प्रयत्न, प्रबन्ध की कार्यक्षमता, आदि-आदि। उत्पादन के सभी उपादानों की उत्पादक कार्यक्षमता मे परिवर्तन और उपादानों की स्थानापत्ति के कारण वास्तविक श्रम लागत मे जो बचत प्राप्त होती है अथवा उससे जो अधिव्यय होता है, उससे श्रम उत्पादकता के परिवर्तनों का पता लग सकता है। भौतिक निपज से सम्बन्धित प्रश्नों के अध्ययन के लिये श्रम निवेश को ही उपयुक्त समझा गया है क्योंकि श्रम निवेश अन्य उपादानों के निवेश की अपेक्षा सरलता से मापा जा सकता है। इसके अतिरिक्त श्रम निवेश मे एक ऐसी समानता होती है जो तमाम उद्योगों, प्रक्रियाओं और मशीनों मे पायी जाती है। लेकिन यदि आवश्यक हो तो किसी भी उपादान की उत्पादकता का अध्ययन करने के लिये उस उपादान की एक इकाई की उत्पत्ति को लिया जा सकता है।

ब्यूरो द्वारा किये गये अध्ययन मे, निपज (output) तथा **श्रम-निवेश** (labour input) की दो दो विचारधाराओं का प्रयोग किया गया है। निपज या पैदावार के सम्बन्ध मे जिन दो विचारधाराओं का उपयोग किया गया, वे है **स्थिर मूल्यों पर कुल तथा निवल निपज** *(gross and net output)*। *कुल निपज या* **कुल पैदावार** *(gross output)* उद्योग की *अन्तिम निपज (final output)* की मापक होती है किन्तु *निवल या शुद्ध निपज (net output) विनिर्माण प्रक्रिया द्वारा सामग्री-निवेश (Materials input) के मूल्य मे होने वाली वृद्धि का माप करती है।* कुल निपज मे आमतौर पर माल या सामग्री की लागत का ऊँचा अनुपात सम्मिलित होता है, अत वह श्रम-निवेश के परिवर्तनों से अधिक प्रभावित नहीं होती। किन्तु इसके विपरीत, निवल-निपज (net output) चूँकि ईंधन तथा मूल्यह्रास जैसी सामग्री को कुल निपज मे से घटाने के बाद प्राप्त होती है, अत श्रम-निवेश (labour input) मे होने वाले परिवर्तनों के प्रति यह अधिक संवेदनशील (sensitive) होती है। श्रम निवेश का माप **श्रम वर्षों** (man years) तथा **श्रम घण्टों** *(man hours)* मे किया जाता है। इस प्रकार इन विचारधाराओं के आधार पर श्रम उत्पादकता (labour productivity) के चार मापक इस प्रकार बनते है—

(क) प्रति श्रमिक कुल निपज $= \dfrac{\text{कुल निपज}}{\text{काम पर लगे श्रमिक}}$

(ख) प्रति व्यक्ति श्रम-घण्टा कुल निपज $= \dfrac{\text{कुल निपज}}{\text{काम मे लाये गये श्रम घण्टे}}$

कार्य करने आता है तो वह कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता। इसलिये हमें उन तत्वों में, जिनका प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है, सामाजिक तथा संस्थावादी (Institutional) तत्व भी सम्मिलित कर लेने चाहियें।

इसके अतिरिक्त, जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के दल का कथन है, जिन बातों से उत्पादकता में वृद्धि होती है वह बातें तभी आ सकती हैं जबकि उद्योग में मानवीय सम्बन्ध पारस्परिक मान्यताओं पर आधारित हों और इस बात का विश्वास हो कि परिवर्तित और नवीन पद्धतियों से न केवल सभी दलों को लाभ होगा वरन् आय तथा कार्य करने की दशाओं में भी उन्नति होगी और रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। यह बहुत आवश्यक है कि उद्योग में श्रमिक और मालिकों के आपसी सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण और रचनात्मक ढंग के हों। श्रमिक संघ श्रमिकों के समझाने और इस बात का विश्वास दिलाने में कि अधिक उत्पादकता से उनको भी लाभ होगा, बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। मालिकों में भी विश्वास उत्पन्न करने की बहुत आवश्यकता है और समाजवाद या पूंजीवाद के विवादों को समाप्त कर देना चाहिये। मालिकों और श्रमिकों के बीच जो आपसी सन्देह का वातावरण है उसे दूर करना होगा और अधिक उत्पादकता लाने के लिये दोनों का सहयोग बहुत आवश्यक है। मालिकों को चाहिये कि उत्पादकता से जो लाभ हो उनमें श्रमिकों को वंचित रखने का प्रयत्न न करें।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अधिक उत्पादकता का वातावरण बनाने के लिये श्रम सम्बन्धी अधिनियमों को पूर्ण और प्रभावात्मक रूप से लागू करना चाहिये। यदि किसी अधिनियम में कोई दोष है तो उस अधिनियम में संशोधन कर देना चाहिये या उसे परिवर्तित कर देना चाहिए। परन्तु जब तक अधिनियम लागू है उसके अपवंचन का कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिये और न ही उसकी कमियों से अनुचित लाभ उठाना चाहिये।

भारत में श्रमिकों की उत्पादकता के अध्ययन का प्रारम्भ अभी हाल ही में हुआ है। २२ जनवरी १९५२ के एक समझौते के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने इंगलैंड के पांच प्रमुख विशेषज्ञों के एक दल को दिसम्बर १९५२ में भारत भेजा था। इस दल का कार्य यह बताना था कि कार्य-अध्ययन की आधुनिक तकनीकी प्रणालियों से और मशीनों के उचित संगठन से तथा उत्पादन के अनुसार भुगतान करने की पद्धति में कपड़ा और इंजीनियरिंग उद्योगों के श्रमिकों की उत्पादकता और आय में किस प्रकार वृद्धि की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एक अन्य दल १९५४ में आया। कलकत्ता के इंजीनियरिंग उद्योग में तथा अहमदाबाद और बम्बई की कपड़ा मिलों में इन दलों ने सराहनीय कार्य किया। उसी मशीन, यन्त्र व सामग्री और उन्हीं कर्मचारियों के होते हुए इस दल ने उत्पादकता की तकनीकी बातों में बहुत उन्नति कर दी। दल निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचा—(१) भारत में कार्य-अध्ययन की तकनीक को लागू किया जा

सकता है और इससे उत्पादन बढ़ाने में बहुत सफलता मिलेगी। (२) अगर उचित रीति से लागू की जाय तो कार्य-अध्ययन की तकनीक औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार कर सकती है। (३) पूंजी के निवेश के बिना भी उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। (४) कार्य करने की दशाओं में सुधार करना भी एक ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जिससे उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है। (५) कार्य करने की दशाओं में सुधार करके शारीरिक श्रम को कम करके और उत्पादन तथा मजदूरी में वृद्धि करके कार्य-अध्ययन पद्धति श्रमिकों को लाभ पहुँचा सकती है।

इन सुझावों के परिणामस्वरूप, अक्तूबर १९५४ में सरकार ने बम्बई में 'केन्द्रीय श्रम संस्थान' के एक भाग के रूप में एक "राष्ट्रीय उत्पादकता केन्द्र" की स्थापना की। तभी से कुछ कार्य-अध्ययन की व्यापक प्रयोजनाओं को विभिन्न केन्द्रों में आरम्भ कर दिया गया है। पूना के निकट दापोदी नामक स्थान पर महाराष्ट्र राज्य की यातायात कार्यशाला में एक कार्य-विधि सुधार प्रायोजना चालू की गई। दिल्ली और श्रीनगर में भी यातायात-कार्यशालाओं में कार्य-अध्ययन प्रायोजनाओं को कार्यान्वित किया जा चुका है। पर्यवेक्षकों के लिये एक 'अन्तकार्य-प्रशिक्षण केन्द्र' की भी व्यवस्था की गई है (देखिये परिशिष्ट 'ग')। सन् १९५७ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सहायता के उत्पादक दल ने मद्रास और कायम्बटूर के उद्योगों में तथा कलकत्ता की इंजीनियरिंग परिषद् के कारखानों में भी उत्पादकता प्रायोजनायें चालू की थी। मद्रास प्रायोजना की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी गई है। १९५८ और १९५९ के बम्बई में उच्च कार्य अध्ययन पाठ्यक्रमों का आयोजन किया गया था, तथा एक उत्पादकता प्रदर्शनी की भी व्यवस्था की गई थी और एक शिखर प्रबन्ध सेमिनार का आयोजन भी किया गया था। केन्द्र ने अनेक प्रायोजनाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा क्षेत्रीय अनुसंधानों का संगठन किया है। कार्यालयों में कार्य सरल बनाने के लिये १९६१ में एक प्रायोजना चलाई गई। दिसम्बर १९६१ में मजदूरी प्रशासन तकनीक पर एक आठ दिन की गोष्ठी भी हुई। अप्रैल १९५८ में कलकत्ता में एक शिखर प्रबन्ध सेमिनार का भी आयोजन किया गया और अनेक प्रायोजनायें चालू की की गईं। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने संयुक्त रूप से १४ नवम्बर १९६० से बंगलौर में एक उच्च प्रबन्ध प्रायोजन प्रारम्भ की। सन् १९६१ में, श्रम शासन पर एक आठ दिन की सेमिनार का आयोजन किया गया। अभी हाल के वर्षों में केन्द्र ने विभिन्न केन्द्रों व उद्योगों में अपनी गतिविधियां वार्ताओं, सेमिनारों, कार्य-अध्ययन पाठ्यक्रमों व कार्य माप, रीति-अध्ययन, प्रबन्ध, प्रक्रिया उद्योगों में उत्पादकता कार्य-मूल्यांकन, कार्य-भार और उत्पादकता-वृद्धि मजदूरी तथा वेतन प्रशासन, कार्यालय संगठन की पद्धतियों, सामग्री प्रबन्ध मूल्य-विश्लेषण, बहु परिवहन सेवा आदि को संगठित करने में भी चालू की है।

उत्पादकता अभियान में एक महत्वपूर्ण पग उठाया गया है कि वह राष्ट्रीय

उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council) की स्थापना की है। परिषद् की रजिस्ट्री फरवरी १६५८ में हुई थी। ऐसी परिषद् की स्थापना का विचार सर्वप्रथम भारतीय उत्पादकता प्रतिनिधि मण्डल द्वारा सुझाया गया था। यह मण्डल अक्तूबर १६५६ में इस उद्देश्य से जापान गया था कि उस देश में उत्पादकता योजनाओं का अध्ययन करे। नवम्बर १६५७ में एक उत्पादकता सेमिनार में दल की रिपोर्ट पर विचार किया गया। इस सेमिनार की सिफारिशों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना फरवरी १६५८ में की गई जिससे उत्पादकता की विशेष समस्याओं पर अनुसन्धान किया जा सके और उत्पादकता सम्बन्धी सूचनाओं का प्रसार हो सके। यह परिषद् एक स्वायत्त (Autonomous) संस्था है। परिषद् का उद्देश्य उन्नत पद्धतियों, साधनों के उचित प्रयोग, उच्च जीवन-स्तर और उन्नत कार्यदशाओं के द्वारा उत्पादकता में वृद्धि का आन्दोलन करना है। इस परिषद् में मालिकों और श्रमिकों के राष्ट्रीय संगठनों के, सरकार के तथा अन्य हितों, जैसे—तकनीकी व्यक्ति सलाहकार, छोटे उद्योग व विद्वानों आदि के प्रतिनिधि सदस्य हैं जिनकी संख्या लगभग ६० है। डा० पी० एस० लोकनाथन इस परिषद् के प्रथम अध्यक्ष थे। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने देश भर में उत्पादकता तकनीक सम्बन्धी अनेक पाठ्यक्रमों का आयोजन किया है। परिषद् औद्योगिक इंजीनियरिंग, औद्योगिक प्रबन्ध और औद्योगिक सम्बन्धों में प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षार्थियों को विदेश भी भेजती है। परिषद् ने उत्पादकता बढ़ाने, गहन कार्य अध्ययन और उद्योग के अन्दर ही तकनीकी ज्ञान के विनियम के लिये देश भर में उत्पादकता दलों का भी आयोजन किया है। परिषद् कार्यक्रम में सहायता देने के लिये भाषण, सेमिनार सम्मेलन, वाद-विवाद व गोष्ठियों आदि का भी आयोजन करती है। अनेकों सेमिनार तथा प्रशिक्षित-कार्यक्रम पहले ही संगठित किये गये हैं। परिषद् प्रशिक्षणार्थियों को औद्योगिक इंजीनियरिंग, प्रबन्ध तथा औद्योगिक सम्बन्धों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये विदेशों में भी भेजती है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, बंगलौर तथा लुधियाना में विशेषज्ञों से युक्त ६ क्षेत्रीय उत्पादकता निदेशालय भी स्थापित किये गये हैं और महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों में ४६ स्थानीय उत्पादकता परिषदों की भी स्थापना की जा चुकी है। इन स्थानीय परिषदों में मालिक, श्रमिक, राज्य सरकार और अन्य हितों के प्रतिनिधि होते हैं। इनमें मालिक और श्रमिक दोनों मिलकर अधिक उत्पादकता के ध्येय की प्राप्ति का प्रयत्न करते है। इन परिषदों के माध्यम से ही संयन्त्र-स्तर पर उत्पादकता-समितियाँ बनाकर अधिक उत्पादकता अभियान को औद्योगिक इकाइयों तक पहुँचाया जाता है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने भौतिक उत्पादन, कार्मिक प्रबन्ध तथा उत्पादकता विधियों आदि पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संगठित किये है। इसने अनेक सेवाओं की स्थापना की है, उदाहरणतः उत्पादकता सर्वेक्षण तथा कार्यान्वयन सेवायें, राष्ट्रीय प्रमाणपत्रों का पुरस्कार, ईंधन कुशलता सेवायें आदि। इन सेवाओं का संचालन तथ्यान्वेषण सर्वेक्षण, सेमिनारों, परिसम्वादों तथा

सम्मेलनों द्वारा किया जाता है। कृषि उपज में वृद्धि करने के लिये उठाये जाने वाले पगों पर विचार करने के लिये इसने एक कृषि उत्पादकता सभाग भी स्थापित किया है। परिषद् ने १९६६ के वर्ष को राष्ट्रीय उत्पादकता वर्ष के रूप में मनाया। इसका उद्देश्य था कि उत्पादकों के महत्व के सम्बन्ध में राष्ट्रीय जागरण उत्पन्न किया जाये क्योंकि उत्पादकता ही विकास की कुंजी है। भारत एशियायी उत्पादकता सगठन का एक निर्माता देश है। यह सगठन एक अन्तर्सरकारी संस्था है जिसकी स्थापना मई १९६१ में उत्पादकता के क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग बढ़ाने के लिये की गई थी।

इस प्रकार भारत में उत्पादकता आन्दोलन तीव्र गति से प्रगति कर रहा है। इसका अर्थ अब केवल श्रमिकों की उत्पादकता से ही नहीं वरन् सभी उपादानों की उत्पादकता से लिया जाता है। परन्तु श्रमिक वर्ग को इस उत्पादकता आन्दोलन से कुछ सन्देह भी उत्पन्न हो गये हैं। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि श्रमिक वर्ग को इस बात का विश्वास दिलाया जाये कि उत्पादकता का अर्थ कार्य-भार में वृद्धि करना नहीं है और इसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी नहीं होगी तथा श्रमिकों को, अधिक उत्पादकता से जो लाभ होंगे, उसमें से उचित भाग दिया जायेगा।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना में उत्पादकता पर बहुत बल दिया गया था। आयोजना में कहा गया था : "उत्पादकता के अनेक पहलू होते हैं परन्तु उत्पादकता को इसलिये हानि पहुँचती है कि मालिक और श्रमिक दोनों निम्न कुशलता स्वीकार करते हैं। उत्पादकता का वास्तविक आधार तो यह है कि सब प्रयत्नों को विवेकपूर्ण दृष्टि से करना चाहिए। उत्पादकता का प्राय यह त्रुटिपूर्ण अर्थ लगा लिया जाता है कि कार्य-भार को बढ़ाया जाये तथा निजी लाभ में वृद्धि करने के लिये श्रमिकों पर अधिक भार डाला जाय। वास्तव में बिना श्रमिकों पर भार डाले, उनके स्वास्थ्य को बिना हानि पहुँचाये तथा बिना अधिक व्यय के उत्पादकता से अधिक लाभ तथा लागत में कमी प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में अधिक उत्तरदायित्व प्रबन्धकों का है। प्रबन्धकों को चाहिये कि वे श्रमिकों के लिये सर्वोत्तम मशीनें व सामग्री, काम करने की उपयुक्त स्थिति और तरीके, पर्याप्त प्रशिक्षण तथा उपयुक्त मनोवैज्ञानिक और भौतिक प्रेरणायें प्रदान करें। कार्य में रत श्रमिकों तथा नये श्रमिकों की योग्यता तथा दक्षता में वृद्धि करने के लिए उद्योग, श्रमिक संघों तथा सरकार को मिलजुल कर प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ करने चाहियें। इस देश में जब तक उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि नहीं होती तब तक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर में वास्तविक सुधार नहीं हो सकता। श्रमिकों को अपने तथा देश के हित में विवेकीकरण के रास्ते में रुकावटें नहीं डालनी चाहियें, बल्कि उन्हें इसकी माँग करनी चाहिए। विवेकीकरण का अधिक से अधिक विस्तार हो सकता

इसके फलस्वरूप निकाले हुये लोगों का श्रमिकों की सहमति से

दूसरे कार्यों में लगाने की उचित प्रकार से व्यवस्था हो। यदि ठीक प्रकार का वातावरण बनाया जाता है तो यह पूर्ण आशा है कि श्रमिक भी पीछे नही रहेंगे। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा आयोजित सेमिनार में जो समझौता हुआ है वह अधिक उत्पादकता मे सहयोग देने के लिये आधार माना जा सकता है। भारतीय श्रम सम्मेलन अब कार्य-कुशलता और कल्याण महिता बनाने के कार्यों को अपने हाथ में लेगा। उत्पादकता केन्द्र और अन्तकार्य-प्रशिक्षण केन्द्रों द्वारा जो कार्यक्रम इस सम्बन्ध में किये जा रहे है वह प्रशसनीय है।"

विभिन्न उद्योगो व प्रत्येक उद्योग के विभिन्न संस्थानो के लिये १९५० में निर्माण उद्योग की सख्या के आधार पर १९५२ म श्रम उत्पादकता सम्बन्धी आँकडो का सकलन किया गया था। निम्न तालिका से कुछ विशिष्ट उद्योगो में ऐसे आँकडो का पता चलता है।

श्रम की उत्पादकता (१९५०)

प्रति व्यक्ति कार्य घण्टे के मूल्य के आधार पर (रुपयो मे)

उद्योग	सभी आकार के	छोटे आकार के	मध्यम आकार के	बड़े आकार के
चीनी	१ ५	१ ४	१ ५	१ ४
सीमेंट	१ ४	१ ३	१ ४	१·५
सूती वस्त्र	०·७	० ७	० ८	०·७
ऊनी वस्त्र	१ २	०·४	१ २	१·४
जूट वस्त्र	० ५	० ५	०·७	०·६
लोहा व इस्पात	१ ४	०·४	० ८	१·५
रसायन	१·९	१ ५	१ ७	२ ६
सब उद्योग	० ८	० ६	०·८	१·०

खानो के मुख्य निरीक्षक द्वारा प्रकाशित आँकडो से पता चलता है कि १९७७ मे कोयला खानो में लगे हुये श्रमिकों की उत्पादकता (प्रत्येक श्रमिक पारी की निपज) निम्न प्रकार थी—(औसत) खनिक और ढोने वाले—२·१३ टन, भूमि के नीचे और खुले मे काम करने वाले सभी श्रमिक—१ ३ टन, भूमि के उपर और भूमि के नीचे काम करने वाले सभी श्रमिक—० ७० टन।

कुछ उद्योगो मे उत्पादकता और आय के सम्बन्ध मे जो परिवर्तन हुए उसके अध्ययन की रिपोर्ट १९५५ मे प्रकाशित हुई थी। इससे यह पता चलता है कि—(१) कोयला खान उद्योग में खनिज और ढोने वालो की उत्पादकता मे १९५१ और १९५४ के मध्य वृद्धि की दर ० ७६ प्रति माह थी। परन्तु उनकी औसत साप्ताहिक नकदी आय मे वृद्धि की दर ० २६ थी। (२) कागज उद्योग मे १९४८ तथा १९५३

के बीच श्रमिको की औसत आय तो बढ गई थी परन्तु उनकी उत्पादकता बढोत्तरी का कोई प्रमाण नही मिलता था। (३) जूट कपडा उद्योग मे, उत्पादकता की वृद्धि की दर १९४८ और १९५३ के मध्य २ ६ प्रति वर्ष थी और आय मे वृद्धि की दर ३ ७ थी, तथा (४) सूती कपडा उद्योग मे १९४८ और १९५३ के मध्य उत्पादकता मे वार्षिक वृद्धि की दर २ २८ थी तथा आय मे वृद्धि की दर १ १४ थी।

१९५५ मे कारखाना श्रमिको की उत्पादकता के सूचकाक और वास्तविक आय के सूचकाक के सम्बन्धो का अध्ययन किया गया था और इसके जो परिणाम निकले वह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेगे।[1] (मजदूरी के अध्याय मे दी गई तालिकायें भी देखिये)।

(आधार वर्ष—१९३९=१००)

वर्ष	वास्तविक आय सूचकाक	रोजगार सूचकाक	उत्पादन सूचकाक	उत्पादकता सूचकाक
१९३९	१०० ०	१००	१००	१०० ०
१९४०	१०८ ६	१०४	१०८	१०४ २
१९४५	७४ ९	१४१	११२	७९ ५
१९४७	७८ ४	१३७	९९	७२ ५
१९४८	८४ ४	१४१	११२	७९ ४
१९४९	९१ ७	१४३	१०८	७५ ६
१९५०	९० १	१३६ ०	१०७ २	७८ ८
१९५१	९२ २	१३५ ७	१२० ४	८८ ७
१९५२	१०१ ८	१३६ ७	१३३ २	९७ ४
१९५३	९९ ९	१३३ १	१४० ८	१०५ ८
१९५४	१०२ ७	१३५ ९	१५३ ६	११३ ०

"भारतीय निर्माण उद्योगो की गणना तथा उद्योगो के वार्षिक सर्वेक्षण" की रिपोर्टों के आधार पर श्रम ब्यूरो ने द्वितीय आयोजना की अवधि मे जूट वस्त्र, चीनी, सूती वस्त्र, काँच, सीमेंट, कागज, दियासलाई मृत्तिका शिल्प तथा खाने योग्य हाइड्रोजनीकृत तेलो के उद्योग म, जिन उद्योगो की सख्या ९ है, उत्पादकता सूचकाक बनाने के लिये प्रायोजनायें आरम्भ की। यह वार्षिक सूचकाक १९४८ से १९५६ तक के वर्षों के तैयार किये गये और इनके लिये १९४७ को आधार वर्ष माना गया। अब १९५६ तक इनको अद्यावधिक (uptodate) बनाया गया है।

[1] *Indian Labour Gazette* November 1955 and India 1961

इनकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। लोहा व इस्पात, ऊनी वस्त्र, साइकिल तथा बिजली के लैम्पों के उद्योगों के सम्बन्ध में सन् १९५८ तक के उत्पादकता सम्बन्धी सूचकांकों को भी अब अन्तिम रूप दे दिया गया है। सन् १९६६ में श्रम ब्यूरो द्वारा उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण के अन्तर्गत लिये गये ३६ चुने हुए उद्योगों के सम्बन्ध में, १९६०=१०० को आधार वर्ष मानकर, कुल उपादानों के उत्पादकता सूचकांकों का निर्माण किया गया था। ८ उद्योगों के सम्बन्ध में १९६१ से १९६५ तक की अवधि के लिये और एक उद्योग के सम्बन्ध में १९६६ के लिये कुल उपादानों के उत्पादकता सूचकांकों को तथा आंशिक रूप से श्रम व पूँजी के उत्पादकता सूचकांकों को अन्तिम रूप दिया गया था। इसके अतिरिक्त वर्ष १९६१ से १९६६ तक के लिये अन्य भी कुछ सूचकांकों को अन्तिम रूप दिया गया। ये सूचकांक महाराष्ट्र क्षेत्र में प्रकाशीय कांच (Optical Glass) तथा विविध कांच-सामग्री के लिये, उत्तर प्रदेश क्षेत्र में कांच की गोलाकी वस्तुओं के लिये और पश्चिमी बंगाल क्षेत्र में कांच की विविध वस्तुओं के सम्बन्ध में एकत्र किये गये थे। ७ उद्योगों के सम्बन्ध में १९४७=१०० को आधार वर्ष मानकर और सीमेंट उद्योग के सम्बन्ध में श्रम समय उपयोग के सूचकांकों के एकत्रीकरण का कार्य पूरा कर लिया गया था। ब्यूरो ने अन्य जो अध्ययन किये हैं वे इस सम्बन्ध में थे (१) सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में प्रेरणात्मक मजदूरियों का उत्पादन बोनस का श्रम-उत्पादकता पर प्रभाव और (२) चुने हुए उद्योगों में इकाई स्तर का अध्ययन। चुने हुए उद्योगों के उत्पादकता सूचकांक 'भारतीय श्रम सांख्यिकी' (Indian Labour Statistics) में प्रकाशित किये जाते हैं।

सुझाव (Suggestions)

कार्यकुशलता में उन्नति करने के हेतु यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि श्रमिकों के उत्थान के लिए और उत्पादन की वैज्ञानिक प्रणालियों को लागू करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम को अपनाया जाए। तकनीकी और सामान्य शिक्षा का अधिक से अधिक विस्तार, मजदूरी में उपयुक्त स्तर तक वृद्धि, काम करने के घण्टों में कमी, रहने-सहने और काम करने की दशाओं में आवश्यक सुधार आदि से निश्चय ही श्रमिकों की कार्यकुशलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। हमारे आदर्शों में आमूल परिवर्तन की भी बड़ी आवश्यकता है। जब तक श्रमिक के मन में असुरक्षा की भावना तथा बेरोजगारी का भय रहता है, और श्रमिक यह अनुभव करता है कि वह दूसरों के लिए कार्य कर रहा है, तब तक उसकी कार्यकुशलता में उच्चतम सीमा तक कभी भी वृद्धि नहीं हो सकती, और वह कम से कम कार्य करने तथा अधिक से अधिक मजदूरी पाने का प्रयत्न करता रहेगा। उसे इस बात का अनुभव करा दिया जाना चाहिए कि उसके कार्य से किसी सामाजिक लक्ष्य की भी पूर्ति होती है। साथ ही उसे अपनी आवश्यकताओं के पूर्ण होने और किसी भी प्रकार

का भय न होने का पूरा-पूरा आश्वासन मिलना चाहिये। इसी प्रकार श्रमिकों में उचित प्रकार की नैतिकता तथा हौसले का विकास हो सकता है। यह बड़े खेद का विषय है कि जब हमारे श्रमिकों में अधिक से अधिक और अच्छे से अच्छा काम करने की क्षमता है तो भी परिस्थितियों ने उन्हें इस स्थान के लिये विवश कर दिया है कि वे अपने कर्तव्यों की ओर से उदासीन हो जायें तथा देश के उत्पादन को इस प्रकार धक्का पहुंचाएँ जिस प्रकार वे आजकल कर रहे हैं। हम यह आशा करते हैं कि समस्या पर उचित प्रकार से विचार किया जायगा और श्रमिकों की कार्य-कुशलता के प्रश्न को केवल एक साधारण समस्या नहीं समझा जायगा।

१९ भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

INDIA AND THE INTERNATIONAL LABOUR ORGANISATION

जिन निराशावादियों को इस बात का विश्वास नहीं होता कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से बहुत व्यावहारिक लाभ हो सकते है और जो अपनी इस विचारधारा का प्रमाण संयुक्त राष्ट्र संघ के कटु वाद-विवादों से देते हैं, उनको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के उस कार्य से प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है, जो कार्य यह संगठन ६० वर्षों से शान्त भाव से और चुपचाप करता चला आ रहा है। प्रथम तो यह 'लीग ऑफ नेशन्स' (राष्ट्र संघ) के एक अंग की भाँति कार्य करता रहा और १९४६ से यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशेषज्ञ संस्था की भाँति कार्य कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रारम्भ (Origin of the I. L. O.)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना प्रथम महायुद्ध के अन्त में 'वरसाइल की सन्धि' (Treaty of Versailles) के परिणामस्वरूप हुई। इस सन्धि का प्राथमिक उद्देश्य शान्ति बनाये रखना था, परन्तु यह अनुभव किया गया कि "शान्ति केवल उसी दशा में स्थापित हो सकती है, जबकि यह सामाजिक न्याय पर आधारित हो।" इसलिए यह विचार किया गया कि औद्योगिक परिस्थितियों के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रणों का होना आवश्यक है। साथ ही श्रमिकों में शान्ति बनाये रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी किसी अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक था। अतः २८ जून, सन् १९१९ को "उच्च कोटि के समझौते करने वाले दल" (High Contracting Parties) श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के निमित्त किसी स्थायी संगठन की स्थापना करने पर सहमत हो गये। यह सुधार विभिन्न उपायों द्वारा किया जा सकता था, जैसे—"कार्य के घण्टों का नियमन और साथ ही साथ अधिक कार्य दिवस और सप्ताह को निश्चित कर देना, श्रम सम्भरण (Supply) का नियमन, बेरोजगारी की रोकथाम, निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी, रोजगार से उत्पन्न होने वाली बीमारियाँ, रोग और क्षति से श्रमिकों की सुरक्षा, बालकों, किशोरों और स्त्रियों की सुरक्षा, वृद्धावस्था और क्षतिपूर्ति आदि के लिए प्रबन्ध, अपने देश से बाहर जब श्रमिक दूसरे देशों में रोजगार पर लग जाते हैं तब उनके हितों की सुरक्षा, संघ बनाने की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त की मान्यता, व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था तथा अन्य

साधन।" अन्तर्राष्ट्र संघ के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग के रूप में 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का निर्माण हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आधारभूत सिद्धान्त
(Fundamental Principles of the I. L. O)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का आधार ऐसे नौ आधारभूत सिद्धान्तों पर है, जो कि एक 'श्रमिक चार्टर' अथवा श्रमिकों की 'स्वतन्त्रता के चार्टर' में दिये गये है। राष्ट्र संघ के प्रत्येक सदस्य को सिद्धान्तों को स्वीकार करना होता है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—(१) मार्गदर्शक सिद्धान्त यह होगा कि श्रम को केवल पदार्थ अथवा वाणिज्य की वस्तु नहीं समझा जाना चाहिए। (२) मालिक और कर्मचारियों को सभी प्रकार के वैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संघ बनाने के अधिकारों की मान्यता प्रदान की जानी चाहिये। (३) देश और समय के अनुसार उचित प्रकार के जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिये कर्मचारियों को पर्याप्त मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था होनी चाहिये। (४) दिन में घण्टे के कार्य और सप्ताह में ४८ घण्टे के कार्य के सिद्धान्त को उन सभी स्थानों पर लागू कर देना चाहिये जहाँ अब तक लागू नहीं है। (५) सप्ताह में कम से कम २४ घण्टे का अवकाश मिलना चाहिये और जहाँ भी सम्भव हो यह अवकाश रविवार को होना चाहिये। (६) बालकों से काम लेना बन्द कर देना चाहिये और किशोरों के रोजगार पर भी रोक-थाम होनी चाहिये, ताकि उनकी शिक्षा के चालू रहने के साथ साथ उन्हें उचित रीति से शारीरिक विकास का भी अवसर प्राप्त हो सके (७) यह सिद्धान्त लागू करना चाहिये कि समान मूल्य के कार्यों के लिये स्त्री तथा पुरुषों को समान पारिश्रमिक मिले। (८) श्रमिकों के लिये किसी देश में जो भी कानून बनायें जायें, उनमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सभी श्रमिकों को, चाहे वे देशवासी हों अथवा विदेशी, बराबर का आर्थिक व्यवहार मिले। (९) प्रत्येक राज्य को निरीक्षण की ऐसी पद्धति अपनानी चाहिये, जिसमें स्त्रियाँ भी भाग ले सकें ताकि कर्मचारियों की सुरक्षा के लिये जो भी नियम अथवा विधान बनें, उन्हें उचित रीति से लागू किया जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से पूर्व श्रमिकों की दशाओं के लिये अन्तर्राष्ट्रीय नियमन
(International Regulation of Labour Conditions Before the I L O)

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का जन्म सन् १९१९ में हुआ था, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि द्वारा श्रमिकों की दशाओं को नियमित करने का विचार बहुत समय से लोगों के मस्तिष्क में घूम रहा था। इंगलैंड के राबर्ट औवन तथा फ्रांस के कुछ अर्थशास्त्रियों ने श्रमिकों के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमन (Regulations) के बनाने पर सदैव बल दिया था। इसी विषय को लेकर जर्मन सरकार द्वारा

आयोजित प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन १८६० में हुआ और १८६७ में ब्रूसेल्स में एक अन्य सम्मेलन हुआ। सन् १९०० में श्रम विधान के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण किया गया। इस परिषद की १५ राष्ट्रों में समितियाँ थी, और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रथम निदेशक एलबर्ट थामस इस परिषद् की फ्रांसीसी समिति के सदस्य थे। १९०५ तथा सन् १९०६ में बर्न नामक स्थान पर दो औपचारिक (Official) श्रम सम्मेलनों का आयोजन किया गया। इनमें दो अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय पारित किए गये, जिनमें से एक में स्त्री श्रमिकों का रात्रि में काम करना तथा दूसरे में दियासलाइयों के निर्माण में सफेद फास्फोरस का प्रयोग करना निषिद्ध कर दिया गया।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि सन् १८००-६० के बीच श्रमिकों की सुरक्षा के सम्बन्ध में पाँच प्रस्तावों पर समान रूप से सभी ने अपनी सहमति प्रकट की थी। यह प्रस्ताव निम्नलिखित थे (क) औद्योगिक रोजगार में बालकों के लिये कम से कम १४ वर्ष की आयु निर्धारित की जाय, (ख) काम करने के घण्टों का नियमन, (ग) साप्ताहिक अवकाश, (घ) किशोरों तथा स्त्रियों के लिये रात्रि में काम करने पर निषेध, तथा (ङ) व्यवसाय सम्बन्धी संकटों से श्रमिकों की सुरक्षा।

सन् १८६० और १९२० की अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के समर्थक दस अन्य सिद्धान्तों पर सहमत हो गये। ये सिद्धान्त निम्नलिखित थे : (१) श्रम विधान से सम्बन्धित तथ्यों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय, (२) फास्फोरस से सम्बन्धित विषों से सुरक्षा, (३) सीसे से सम्बन्धित विषों से सुरक्षा, (४) अन्य व्यावसायिक विषयों और रोगों से सुरक्षा, (५) सामाजिक बीमे में, विशेषतया प्रत्येक देश के दुर्घटना बीमा नियमों में, देशवासी और विदेशियों के लिये समान व्यवहार के सिद्धान्तों को अपनाना, (६) क्रमबद्ध निरीक्षण तथा काम का नियमन, (७) स्त्रियों और किशोरों के लिये कार्य दिवस की सीमा निर्धारण करना, (८) बेरोजगारी की समस्या, (९) प्रसव से पहले या बाद में स्त्रियों को रोजगार पर लगाना, तथा (१०) समुद्री कर्मचारी की सुरक्षा।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से पहले भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक श्रम समस्याओं पर विचार-विनिमय किया गया था। कुछ भी हो, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना ने पहली बार एक नियमित अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समस्याओं को रखा। तभी से यह सभी देशों के श्रमिकों की उन्नति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर स्थापित करने में बहुत उपयोगी कार्य कर रहा है। सन् १९२० से आज तक अनेकानेक अभिसमयों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने उन सभी बातों को, जिनका उल्लेख किया जा चुका है, तथा अन्य कई बातों को अपना लिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन का संविधान
(Constitution of the I L O.)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन जो कि एक त्रिपक्षीय सगठन है, के अनेक देश सदस्य है। १९७८ मे इनकी कुल सख्या १३३ थी। इस प्रकार सरकारो द्वारा वित्त-प्रदत्त (Financed) यह राष्ट्रो की परिषद् है और श्रम सगठनो, मालिको तथा सरकारो के प्रतिनिधि इस पर प्रजातान्त्रिक रूप से नियन्त्रण रखते हैं। इसका उद्देश्य ससार के सभी देशो मे सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करना है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह श्रमिको और उनकी सामाजिक परिस्थितियो से सम्बन्धित तथ्यो का सकलन करती है, उनके लिये न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करती है और उनके प्रत्येक देश मे लागू होने का पर्यवेक्षण करती है। भारत इस सगठन का प्रारम्भ से ही सक्रिय सदस्य रहा है और ससार के आठ महत्वपूर्ण औद्योगिक देशो मे इसकी गणना की गई थी। सगठन की कुल आय का लगभग ३ से ७ प्रतिशत तक भारत ने वार्षिक अशदान दिया है। सन् १९५० मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने अपने सदस्य देशो के लिये अशदान का एक पैमाना निश्चित किया। यह पैमाना वैसा ही है जैसा की सयुक्त राष्ट्र सघ मे है, अन्तर केवल सदस्यता का ही है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के अशदान का पैमाना सयुक्त राष्ट्र सघ के पैमाने से ऊँचा रहा है। इसका कारण सयुक्त राष्ट्र सघ के (भारत सहित) सदस्य-देशो की सख्या का अत्यधिक होना है। भारत सरकार ने वर्षो पूर्व से ही इस बात पर जोर दिया था कि इन दोनो पैमानो के बीच काफी एकरूपता रहनी चाहिये। इसी के फलस्वरूप, भारत द्वारा दिये जाने वाले अशदान की दर मे शनै शनै कमी होती रही है। सन् १९७३ से १९७७ तक भारत द्वारा दिए गए अशदान निम्न प्रकार रहे हैं—

वर्ष	अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का कुल बजट (अमरीकी डालरो मे)	भारत के अशदान का भाग (अमरीकी डालरो मे)	कुल अशदान मे भारत का प्रतिशत भाग
१	२	३	४
१९७३	३,४८,०७,०१७	७,५५,९६३	२·१७
१९७४	४,५१,२४,५००	९,२०,७४४	२ ०४
१९७५	४,५१,३४,५००	६,७२,५०४	१·४९
१९७६	८,१०,४१.०००	१०,६९,७४२	१ ३२
१९७७	७,९५,७५,४०६	९,५४,९०५	१·२०

अंशदान की दरें वर्ष के वर्ष अनौपचारिक विचार-विमर्श द्वारा निश्चित की जाती हैं। सन् १९७० से वार्षिक बजट के स्थान पर द्विवार्षिक बजट बनाने की पद्धति अपनाई गई है। १९८०-८१ के दो वर्षों के लिये, सम्मेलन ने ७०.३८ करोड डालर का बजट स्वीकार किया है। बजट के अंशदान के रूप में भारत की स्थिति अब भी संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, सोवियत रूस, फ्रांस, जर्मन गणराज्य तथा कनाडा के बाद सातवीं है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ३ प्रधान अंगों के माध्यम से कार्य करता है—(क) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, जो इसका स्थायी सचिवालय है, (ख) अन्तरंग सभा (Governing Body) जो इसकी कार्यांग (Executive) है, तथा (ग) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन, जो कि संगठन की सर्वोच्च नीति निर्धारक संस्था है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय एक सचिवालय, एक संसार सूचना केन्द्र तथा एक प्रकाशन गृह के रूप में कार्य करता है। इसके प्रधान कार्यालय जेनेवा में स्थित है। यह श्रम सम्बन्धी समस्याओं पर अनुसन्धान और अध्ययन करने के कार्यों में निरन्तर व्यस्त रहता है और एक अनुसन्धान केन्द्र तथा सामाजिक व औद्योगिक प्रश्नों पर जानकारी प्रदान करने वाले गृह के रूप में कार्य करता है। संक्षेप में इसके मुख्य कार्य हैं अनुसन्धान, खोज, तकनीकी सहयोग तथा प्रकाशन। भिन्न-भिन्न देशों के विशेषज्ञ इसमें कार्य करते हैं, जिनके ज्ञान, अनुभव और परामर्श सभी सदस्य राष्ट्रों के लिये उपलब्ध हैं। विभिन्न देशों में इसके १२ शाखा कार्यालय, ४० राष्ट्रीय संवाददाता तथा ६ क्षेत्र कार्यालय है। महानिदेशक इस संगठन का मुख्य कार्यांग अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति अन्तरंग सभा द्वारा की जाती है और वह इसी के नियन्त्रण में कार्य करता है। आजकल फ्रांस के श्री फ्रांसिस ब्लेन्चर्ड महानिदेशक हैं जिनकी नियुक्ति २६ फरवरी १९७४ को ५ वर्ष के लिये हुई थी और २६ फरवरी १९७९ से पाँच वर्ष के लिये वे फिर इस पद पर नियुक्त हुए। इससे पूर्व ये संगठन के उप-महानिदेशक थे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय में कर्मचारियों की कुल संख्या १,४०३ थी। जेनेवा में इसके कार्यालय में लगे उन भारतीय कर्मचारियों की संख्या २३ थी जो 'मेम्बर ऑफ डिवीजन' तथा इससे ऊपर के पदाधिकारी थे। ये संख्या विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों के रूप में काम करने वाले भारतीय कर्मचारियों के अलावा थी। कर्मचारियों की नियुक्तियों में भारत को मिलने वाला भाग अपर्याप्त ही है। इसमें एक भारतीय अधिकारी सहायक डायरेक्टर जनरल के पद पर भी रहा है, दो सलाहकार हैं, जिनमें एक सदस्य विभाग का अध्यक्ष है तथा एक महानिदेशक के कार्यालय में कार्यांग सहायक रहा है। कार्यालय द्वारा 'इण्टरनेशनल लेबर रिव्यू' के नाम से एक मासिक पत्रिका, 'इण्डस्ट्री एण्ड लेबर' के नाम से एक 'पाक्षिक पत्रिका' तथा कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन होता है। कार्यालय ने जिनेवा में श्रम अध्ययन के अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान की

तथा तुरिन (इटली) मे उन्नत तकनीकी व व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिये एक अन्त र्राष्ट्रीय केन्द्र की भी स्थापना की है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की भारतीय शाखा सन् १९२८ मे नई दिल्ली मे खोली गई थी। इसमे कर्मचारियों म एक डायरेक्टर श्री वी० के० आर० मेनन के अतिरिक्त अन्य पाँच अधिकारी भी हैं। यह शाखा अन्तराष्ट्रीय श्रम कार्यालय, भारत सरकार, मालिको एव श्रमिकों के सगठनो के मध्य घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखती है और यह श्रम सम्बन्धी सूचनाओ को देने के लिय एक समाशोधन गृह (Clearing House) का कार्य करती है। इसने श्रम तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यों मे सम्बन्धित उपयोगी साहित्य का भी प्रकाशन किया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की गतिविधियो मे विकेन्द्रीकरण की नीति को नियान्वित करन की दृष्टि से, नई दिल्ली के शाखा कार्यालय को १ अप्रैल १९७० से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के क्षेत्रीय कार्यालय म बदल दिया गया। यह क्षेत्रीय कार्यालय (Area Office) भारत, भूटान, श्रीलका, नेपाल तथा मालदीव समूह म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) की गतिविधियों को सचालित करता है। अगस्त १९७० म पहले तो श्री एफ० जी० सेव ने इस क्षेत्रीय कार्यालय के निदेशक का पद सभाला और मार्च १९७२ म ब्रिटेन के श्री आर्थर डेनिस फ्रेजर नई दिल्ली के इस क्षेत्रीय कार्यालय के निदेशक के पद पर नियुक्त किये गये।

अन्तरंग सभा (Governing Body)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की अन्तरग सभा इस सगठन की कार्यांग परिषद् है। यह कार्यालय के कार्य का सामान्य पर्यवेक्षण करती है, इसके बजटों का निर्माण करती है, और प्रभावात्मक कार्यक्रमो के लिये नीति बनाने और औद्योगिक विशेषज्ञ समितियो आदि की स्थापना करने का भी इस पर उत्तरदायित्व है। महानिदेशक का चुनाव भी यही करती है। वर्ष मे इसकी बैठकें साधारणतया तीन बार होती हैं तथा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का चुनाव हर वर्ष होता है। प्रारम्भ मे इसके ३२ सदस्य थे, जिनमे १६ सरकारो के प्रतिनिधि थ, ८ मालिका के तथा ८ श्रमिकों के। सरकार के सदस्यों म से ८ स्थान स्थायी रूप से ८ औद्योगिक महत्व के सदस्य देशों के लिये सुरक्षित कर दिये गये थे। मई सन् १९५४ म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की इस अन्तरग सभा म रूस, जापान और पश्चिमी जर्मनी को सम्मिलित कर लिया गया और प्रमुख औद्योगिक देशों के रूप मे उनको कायाग मे स्थायी स्थान दे दिया गया। स्थायी स्थाना की सख्या को बढाकर ८ से १० कर दिया गया और इसमे से ब्राजील को स्थायी स्थान से निकाल दिया गया। इस प्रकार अन्तरग सभा के ४० सदस्य हो गये। जून १९६२ म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सविधान मे किये गये सशोधन के आधार पर, सन् १९६३ मे अन्तरग सभा का फिर निमाण किया गया। १९६३ म सदस्यों की सख्या बढाकर ४८ कर दी गई—इसम २४ सरकारो के, १२ मालिकों के और १२ श्रमिकों के प्रतिनिधि होते है। जून १९७५ म अन्तरग सभा का पुनर्गठन किया

देश की ससद् के सम्मुख अथवा किसी अन्य उचित अधिकारी सस्था के सम्मुख प्रस्तुत करे जो इसके लिए विधान बनाए अथवा इसको कोई और कार्य-रूप दे। 'सिफारिशें' केवल श्रम विषयो पर सदस्य सरकारो का मार्ग प्रदर्शन करती है, परन्तु अभिसमयों को सदस्य सरकारो द्वारा पूर्ण रूप से या तो अपनाना होता है या अस्वीकार करना होता है। यदि कोई अभिसमय सदस्य सरकार की ससद् द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, तब यह कहा जाता है कि उसे अपना (Ratified) लिया गया है। इसके बाद इसको लागू करना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सविधान मे इस बात का उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक राष्ट्र सदस्य को इस सम्बन्ध म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय को एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी कि उसने किसी ऐसे अभिसमय को, जिसको पारित करने म उसका भी हाथ था, कार्यान्वित करने म क्या-क्या पग उठाये है। फिर, अभिसमयों तथा सिफारिशो को लागू करने के सम्बन्ध मे बनाई गई विशेषज्ञो की एक समिति इस रिपोर्ट की जाँच-पड़ताल करती है और सदस्य-देश द्वारा अपनाये गये अभिसमय के परिपालन से सम्बन्धित इस समिति की रिपोर्ट पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे वाद-विवाद किया जाता है। उदाहरण के लिये, भारत के मामले म, समिति ने सूचित किया कि भारत मे लागू युद्ध अधिनियम (Acts), जो कि पचायतो को आपातकाल मे श्रम के अधिग्रहण का अधिकार देते है, बेगार के अभिसमय (Forced Labour Convention) की धाराओ का उल्लघन करते है और जहाँ तक 'समान पारिश्रमिक अभिसमय' की बात है, इसमे सदेह है कि पुरुषो व स्त्रियों की मजदूरी की दरो मे वर्तमान मे जो अन्तर पाये जाते हैं वे पूर्णतया पैदावार या निपज (output) मे अन्तर के कारण है। इस प्रकार, जब कोई राज्य सदस्य किसी अभिसमय को अपना लेता है, तो उसे उसकी सरकार को लागू करना पड़ता है। यदि अपनाये गये अभिसमय को लागू नही किया जाता है अथवा किसी ऐसे अभिसमय को, जिसको पारित करने मे राज्य सदस्य का हाथ होता है, मान्यता नही दी जाती है तो उसके विरुद्ध मालिको या श्रमिको द्वारा शिकायत की जा सकती है। तथापि प्रत्येक राज्य सदस्य को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन मे अभिसमयों को अपनाने या अस्वीकार करने के पूरे-पूरे अधिकार प्राप्त हैं।

यह प्रस्ताव या अभिसमय (Conventions) और सिफारिशें (Recommendations) श्रम विधान बनाने तथा श्रम सम्बन्धी अन्य पग उठाने के लिये न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करती हैं। ये अभिसमय और सिफारिशें यत्नपूर्वक की गयी खोजो और वाद-विवादो पर आधारित होती हैं और एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सहिता का निर्माण करती हैं। क्योंकि सम्मेलन के दो तिहाई बहुमत से इनको अपनाया जाना आवश्यक होता है, इसलिये इनसे इस बात की ओर भी सकेत मिल जाता है कि विश्व की समस्याओं के प्रति जागरूक व्यक्ति इनमे दी गई बातो मे सहमत है। सन् १९१९ मे हुए प्रथम सम्मेलन से लेकर जून १९८० तक

इस सम्मेलन ने अपने ९६ अधिवेशनों में १४७ अभिसमय और १५६ सिफारिशें अपनाई है। इन अभिसमय और सिफारिशों में काम करने के घण्टों, सवेतन छुट्टियाँ, स्त्रियों के कार्य, बच्चों की सुरक्षा, औद्योगिक दुर्घटनाओं की रोकथाम और उनकी क्षतिपूर्ति, बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था तथा मृत्यु आदि से बीमा, न्यूनतम मजदूरी, उपनिवेशों की श्रम समस्यायें समुद्री कर्मचारियों और मछेरों की दशायें आदि जैसे प्रश्नों का विवेचन किया गया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है सम्मेलन के निर्णय आप से आप सदस्यों के लिए अनिवार्य नहीं हो जाते वरन् सदस्य देशों की सरकारों का कर्त्तव्य है कि व इन अभिसमयों को अपने-अपने राष्ट्रीय विधान मण्डलों के समक्ष प्रस्तुत करें। यदि विधान म इन अभिसमयों को स्वीकार कर लिया जाता है, तब सरकार को इन्हें अनिवार्य रूप से लागू करना पड़ता है। किसी भी अभिसमय को या तो अक्षरशः स्वीकार करना होता है अथवा एकदम अस्वीकार। परन्तु किसी सिफारिश को पूर्णतया लागू करना आवश्यक नहीं है। यह तो राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए पथ-प्रदर्शन मात्र है। सदस्य राष्ट्र सिफारिशों को अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार कार्यरूप दे सकते हैं। भारत ने अब तक ४ अभिसमय अपनाए हैं, जिनमें से ३३ लागू हैं। लेकिन इसके साथ ही साथ भारत ने अन्य अभिसमयों के आवश्यक तत्वों को भी अपने राष्ट्रीय विधान में सम्मिलित कर लिया है।

फिलाडेलफिया की घोषणा (Declaration of Philadelphia)

सन् १९३९ म युद्ध छिड़ जाने के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यालय को जनेवा से हटाकर कनाडा में माण्ट्रियल' नामक स्थान पर ले जाया गया था। यद्यपि लीग ऑफ नेशन्स (राष्ट्रसंघ) इस समय अधिक क्रियाशील नहीं रहा था, तथापि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने माण्ट्रियल में अपना कार्य जारी रक्खा। मई, सन् १९४४ में फिलाडेलफिया की घोषणा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उद्देश्यों और लक्ष्यों की फिर से व्याख्या की गई। यह घोषणा अन्तर्राष्ट्रीय नीति में सामाजिक लक्ष्यों को प्राथमिकता देती है और इस उद्देश्य से उन परिस्थितियों की भी व्याख्या करती है, जिनमें कि सभी मनुष्यों को, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म के हों, अथवा स्त्री या पुरुष हों, इस बात का अधिकार हो कि वह अपने भौतिक कल्याण और आध्यात्मिक विकास के लिए स्वतन्त्र रूप से और आत्म-सम्मान से कार्य कर सकें और उन्हें आर्थिक सुरक्षा तथा समान अवसर आदि प्राप्त हो सकें। यह घोषणा कई बातों पर बल देती है, जैसे-पूर्ण रोजगार, जीवन-स्तर को ऊँचा करना, श्रमिकों को प्रशिक्षण के लिए सुविधायें देना, मजदूरी और आय में सम्बन्धित नीति अपनाना, काम करने की परिस्थितियों और समय में सुधार करना, सामूहिक सौदाकारी के अधिकार को मान्यता देना, मालिकों और श्रमिकों के मध्य सहयोग स्थापित करना, सामाजिक सुरक्षा साधनों का विस्तार करना, कल्याण कार्य, शिक्षात्मक और व्यावसायिक अवसरों में

यही था कि सदस्य राज्यों के क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनों की व्यवस्था की जाये। इसलिए १९३६ और १९३९ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अमेरिकन राज्यों में प्रथम तथा द्वितीय क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनों का आयोजन किया। समय-समय पर एशियाई देशों के लिए भी इस प्रकार के सम्मेलनों का सुझाव दिया गया। सन् १९२७-२८ में जापान के प्रतिनिधि तथा १९३० में भारत के श्री एन० एम० जोशी ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को इस बात के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया कि वह एक विशेष एशियाई श्रम सम्मेलन बुलाये। श्री जोशी ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक प्रस्ताव का मसौदा रखा, जिसे कोरम के अभाव में अस्वीकार कर दिया गया। लेकिन सन् १९३५ में जब इसी प्रस्ताव को भारत के श्री आर० आर० बाखले द्वारा पुनः रखा गया, तो यह निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। परन्तु फिर भी अनेक कारणों से एशियाई सम्मेलन की व्यवस्था करना सम्भव नहीं हो सका, यद्यपि अन्तरंग सभा ने इसके महत्त्व का अनुभव अवश्य कर लिया था। १९३५ तथा १९३६ में इस बात के लिये प्रस्ताव भी पारित किए गए थे।

इस विषय पर १९४४ में ही फिलाडेल्फिया में हुए २६वें अधिवेशन में प्रस्ताव पारित करना सम्भव हो सका। इस प्रस्ताव में इस बात की सिफारिश की गई कि एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन की व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र की जाये। भारत सरकार ने भारत में एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन का आयोजन करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को आमन्त्रित किया और इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया गया। सन् १९४७ में २७ अक्तूबर से लेकर ८ नवम्बर तक एक प्रारम्भिक एशियाई क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। सम्मेलन में अनेक देशों के प्रतिनिधि-मण्डलों ने भाग लिया था। इनमें निम्नलिखित देश थे—अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, बर्मा, लंका, कोचीन, चायना, चीन, फ्रांस, भारत में फ्रांस की बस्तियाँ, इंगलैण्ड, मलाया, हिन्दचीन, नीदरलैंड, न्यूजीलैंड, स्याम, सिंगापुर, भारत और पाकिस्तान। इस सम्मेलन में पर्यवेक्षक प्रतिनिधि-मण्डल अमेरिका और नेपाल से भी आये तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की अन्तरंग सभा के अध्यक्ष श्री जी० एम० ईवान्स ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया। इस अवसर पर पं० नेहरू ने इस बात की आशा प्रकट की कि सम्मेलन एशिया के सामान्य व्यक्ति के दृष्टिकोण से समस्त समस्याओं पर विचार करेगा, ताकि केवल यही नहीं कि "इस या उस देश में जीवन-स्तर ऊँचा हो वरन् प्रत्येक स्थान पर जीवन-स्तर ऊँचा हो सके।" भारत सरकार के तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री जगजीवन राम को इस सम्मेलन का सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। इस सम्मेलन में २३ प्रस्ताव पारित किये गये। इनमें से महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित थे—सामाजिक सुरक्षा, श्रम नीति, उत्पादन कार्यकुशलता कृषि उत्पादन तथा सहकारिता पद्धति का महत्त्व, रोजगार सेवायें, पारिवारिक बजट पड़ताल, कार्यवाही का कार्यक्रम, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियाई कार्य में तीव्रता, जापान और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन,

विषयो पर प्रस्ताव बहुमत से पारित किया गया, जिस प्रस्ताव को मेलबोर्न प्रस्ताव कहा जाता है:—(क) श्रम शक्ति का अपव्यय दूर करने के लिये तथा आर्थिक विकास के लिए मानवीय साधनो का पूर्ण रूप से उपयोग करने के लिये रोजगार मे वृद्धि करना, (ख) व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध व्यवस्था का विकास, तथा (ग) श्रमिक प्रबन्धक सम्बन्धो मे उन्नति करने के लिये तथा औद्योगिक विवादो के निपटारे के लिये सरकारी सेवाओ की व्यवस्था। इस सम्मेलन मे १९ देशो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। भारत को इस समय चीनी आक्रमण से उत्पन्न राष्ट्रीय सकट-कालीन अवस्था के कारण अपने प्रतिनिधि-मण्डल को इस सम्मेलन से वापिस बुलाना पडा परन्तु भारत का प्रतिनिधित्व एक पर्यवेक्षक द्वारा किया गया।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का छठा एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन २ सितम्बर से १३ सितम्बर १९६८ तक टोकियो मे हुआ। केन्द्रीय श्रम मन्त्री के नेतृत्व मे एक त्रिदलीय भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल ने सम्मेलन मे भाग लिया। सम्मेलन का मुख्य निर्णय एशियाई जनशक्ति योजना का निर्माण व क्रियान्वयन था जिसका उद्देश्य एशिआई क्षेत्र के देशो द्वारा ऐसी मिली-जुली व प्रभावी कार्यवाही करना था कि उसके द्वारा अधिकतम सम्भव उत्पादक रोजगार की स्थिति लाई जा सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम' से वित्तीय सहायता लेने की भी व्यवस्था थी। सम्मेलन ने एशियाई मानव शक्ति आयोजना एव जनसख्या नीति पर प्रस्ताव स्वीकार करने के अतिरिक्त, अन्य भी कई विषयो के सम्बन्ध मे प्रस्ताव पास किये, जैसे कि एशिया मे सामाजिक सुरक्षा का विकास, कार्मिक नीति तथा व्यवहार के सम्बन्ध मे प्रबन्धकीय विकास और एशिया मे सगठन की स्वाधीनता।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का सातवाँ एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन ४ दिसम्बर से १५ दिसम्बर १९७१ तक तेहरान (ईरान) मे हुआ था। किन्तु भारत पाकिस्तान युद्ध के कारण भारत सरकार इस सम्मेलन मे अपना पूर्ण प्रतिनिधि-मण्डल नही भेज सकती थी। सम्मेलन मे निम्न मुख्य प्रस्ताव पास किये गये —(१) एशियाई देश अपनी मानव शक्ति के उपयोग की योजनाओ को मिल-जुलकर लागू करें और विकसित देश अपनी सहायता व व्यापार की नीतियो को इस प्रकार निर्धारित करें कि एशियाई देशो मे रोजगार का विस्तार हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन इस दिशा मे तकनीकी सहयोग प्रदान करे। (२) एशियाई देशो मे जहाँ मालिको व श्रमिको के सगठनो पर कुछ प्रतिबन्ध लगे है, वे हटाये जायें। (३) चुने हुये अभिसमयो (Conventions) को अपनाने से सम्बन्धित निष्कर्षो मे कहा गया था कि अभिसमयो को अपनाने तथा लागू करने के सम्बन्ध मे एशियाई देशो की स्थिति मे काफी सुधार की गुंजाइश है तथा सरकारो से कहा गया कि वे अभिसमयो को और भी अपनाने तथा लागू करने की सम्भावनाओ की समय-समय पर समीक्षा करते रहा करें। उपर्युक्त तीन प्रस्तावो के अतिरिक्त, सम्मेलन ने दो और प्रस्ताव भी स्वीकार किये, जिनका सम्बन्ध

ग्रामीण श्रमिको व किसानो के सगठनो मे सुधार से तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की त्रिदलीय प्रकृति से था।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का आठवाँ एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन ३० सितम्बर से ६ अक्तूबर १९७८ तक कोलम्बो मे हुआ। सम्मेलन मे जिन विषयो पर विचार किया गया, वे थे (१) एशिया के ग्रामीण क्षेत्रो म मानवीय ससाधनो का विकास तथा इसमे ग्रामीण सस्थाओं का योगदान, और (२) एशिया मे श्रम प्रशासन का दृढ़ीकरण तथा मालिको व श्रमिको के सगठनो के सक्रिय सहयोग सहित राष्ट्रीय विकास मे उसका योगदान। इस सम्मेलन मे भारत सरकार के प्रतिनिधि-मण्डल का नेतृत्व तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री के० वी० रघुनाथ रेड्डी ने किया था।

यह उल्लेखनीय है कि फिलीपाइन्स की सरकार की प्रेरणा पर मनीला मे १२ से १६ दिसम्बर १९६६ तक एशियाई श्रम मन्त्रियों का एक सम्मेलन आयोजित हुआ था। तब से मार्च १९७८ तक ऐसे सात सम्मेलन हो चुके हैं। एशियाई श्रम मन्त्रियो का दूसरा सम्मेलन जनवरी १९६९ मे नई दिल्ली मे, तीसरा सम्मेलन सितम्बर १९७१ मे सियोल (द० कोरिया) मे, चौथा सम्मेलन अक्तूबर १९७३ मे टोकियो मे, पाचवां अप्रैल १९७५ मे, छठा सितम्बर १९७६ मे तेहरान मे और सातवाँ मार्च १९७८ मे वेलिंगटन (न्यूजीलैण्ड) मे हुआ था। भारत से केन्द्रीय श्रम मन्त्री इन सम्मेलनो मे सम्मिलित हुये थे। प्रथम सम्मेलन मे १३ देशो ने भाग लिया था और इस बात पर विचार किया था कि श्रम कल्याण, मानवशक्ति के नियोजन तथा आर्थिक विकास के मामलो मे एशिया के देशो के बीच पारस्परिक सहायता एव विचार-विमर्श की कितनी अधिक आवश्यकता है। दूसरे सम्मेलन मे नौ देशों के प्रतिनिधि-मण्डलो ने भाग लिया था। इस सम्मेलन मे जिन विषयो पर विचार किया गया था, वे थे श्रमिक सघो के नियम व कार्य, औद्योगिक सम्बन्ध, मजदूरी का निर्धारण, तकनीकी सहयोग तथा एशिया मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का योगदान। तीसरे सम्मेलन मे चौदह देशो ने भाग लिया था और इसमे इन विषयो पर विचार हुआ था : आर्थिक विकास मे श्रमिक सघो का योगदान, श्रमिको की शिक्षा का कार्यक्रम आदि। चौथे सम्मेलन मे १७ देशो ने भाग लिया था और उसमे श्रम प्रशासन के कार्य व योगदान तथा रोजगार विकास जैसे विषयो पर विचार किया गया था। पाँचवें सम्मेलन मे सिफारिश की गई कि श्रम तथा सम्बन्धित क्षेत्रो मे तकनीकी सहयोग पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के विशेषज्ञो के एक क्षेत्रीय दल का गठन किया जाये और मार्च १९७६ मे यह कार्य कर भी दिया गया। छठे सम्मेलन मे (i) उत्पादकता की प्रेरणाओ व उपायो तथा (ii) श्रम के प्रशिक्षण एव गतिशीलता पर विचार किया गया। सातवें सम्मेलन, जिसमे कि २१ देशो ने भाग लिया, एशियाई तथा प्रशान्त क्षेत्रीय श्रम मन्त्रियो का पहला सम्मिलित सम्मेलन था। इस सम्मेलन मे जिन महत्वपूर्ण विषयो पर विचार किया गया, वे थे (i) एक सक्रिय रोजगार नीति और (ii) क्षेत्रीय तकनीकी सहयोग।

इसके पश्चात् २४ अप्रैल से २६ अप्रैल ७८ तक ट्यूनिस में गुट निरपेक्ष तथा अन्य विकासशील देशों के श्रम मन्त्रियों का पहला सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में भारत सहित ७२ देशों के प्रतिनिधियों ने तथा कुछ अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संगठनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन ने गुटनिरपेक्ष एवं विकासशील देशों के बीच, (i) रोजगार, (ii) प्रशिक्षण तथा शिक्षा और (iii) उपयुक्त तकनीक विद्या के मामलों के सम्बन्ध में सहयोग के सक्रिय कार्यक्रम को स्वीकार किया। यह भी स्वीकार किया कि रोजगार-वृद्धि तथा मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति को राष्ट्रीय नीति के प्राथमिक लक्ष्यों में से एक लक्ष्य माना जाय।

इसके अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारत तथा विभिन्न एशियाई देशों में सम्मेलनों के लिए सामग्री एकत्रित करने, सहकारिता आन्दोलन का अध्ययन करने, सामाजिक सुरक्षा पर सलाह देने, श्रम शक्ति के क्षेत्र में तकनीकी सहायता की आवश्यकताओं की जाँच करने, उत्पादकता और प्रशिक्षण आदि के लिए अनेक मिशन भेजे हैं। इसने एशियाई देशों में केवल अपने विशेषज्ञ ही नहीं भेजे हैं, अपितु एशियाई देशों के नागरिकों के लिए अधिछात्र-वृत्तियाँ और छात्र-वृत्तियाँ भी प्रदान की हैं। सन् १९५९ में जनेवा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के ४०वें अधिवेशन में भारत और अमेरिका ने संयुक्त रूप में यह प्रस्ताव रखा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की क्षेत्रीय कार्यवाहियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। एशियन सलाहकार समिति के आधार पर ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक विशेष अफ्रीकन सलाहकार समिति बनाई गई है। दिसम्बर १९६० में लागोस (Lagos) नामक स्थान (नाइजीरिया) में पहला अफ्रीकन क्षेत्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमें अफ्रीका के ३० राज्यों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में अफ्रीका में व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण तथा मालिक-मजदूर सम्बन्धों में विचार-विमर्श हुआ।

यहाँ यह बात भी विशेष उल्लेखनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने एशियाई श्रमिकों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किये हैं। इस कार्यक्रम के अनुसार पहला क्षेत्रीय कार्यालय सन् १९४९ में बना, जबकि बंगलौर में एशियाई श्रमशक्ति फील्ड कार्यालय (Asian Manpower Field Office) के नाम से एक संस्था की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य यह था कि संसार की श्रम-शक्ति का कठिन कार्यों में भी उचित प्रकार से उपयोग हो सके। यह कार्यालय एशियाई तथा सुदूर पूर्व के देशों को उनके तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार करने के लिये तकनीकी सहायता प्रदान करता है। यह तकनीकी प्रशिक्षण में एक क्षेत्रीय अनुसन्धान तथा सूचना केन्द्र के रूप में भी कार्य करता है। भारतीयों के अन्तरार्ष-प्रशिक्षण कार्य-क्रम के दो अधिवेशन पहले ही हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अर्द्ध-विकसित देशों के लिये 'तकनीकी सहायता कार्यों' के अन्तर्गत २६ अप्रैल सन् १९५१ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के साथ किये गये समझौते पर भारत सरकार ने हस्ताक्षर किये। वेतनभोगी कर्मचारियों तथा व्याव-

सायिक श्रमिकों पर बनी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की सलाहकार समिति का एक अधिवेशन सितम्बर १६७४ मे जेनेवा मे हुआ था। १६७५ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के ६०वें अधिवेशन मे "अवसरो की समानता तथा महिला श्रमिकों से व्यवहार" विषय पर विचार किया गया था। श्रम सांख्यिकी पर दिसम्बर, १६५१ मे नई दिल्ली मे, कारखाना निरीक्षण पर फरवरी १६५२ मे कलकत्ते मे, पर्यवेक्षण प्रशिक्षण पर अगस्त, १६५७ मे सिंगापुर मे और व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन तथा रोजगार सम्बन्धी परामर्श पर नवम्बर, १६५७ में नई दिल्ली मे, अगस्त १६७६ मे श्रम सम्बन्धों पर और नवम्बर १६७६ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तरो पर क्षेत्रीय गोष्ठियो का आयोजन किया गया। एशियाई देशों के नागरिकों के लिये सहकारिता पर १६५२ म कोपेनहैगन, १६५३ तथा १६५४ में लाहौर, १६५५ मे याडुंग, १६५६ मे मैसूर तथा १६५७ मे श्रीलका मे प्रशिक्षण पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की गई। भारत सरकार ने अनेक समस्याओं पर तकनीकी परामर्श और सहायता की प्रार्थना की है। सरकार १६५३ की शरद ऋतु मे कर्मचारी 'राज्य बीमा योजना' के सगठन तथा चिकित्सा लाभ के लिये डाक्टरो की सूची प्रणाली पर परामर्श देने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के तीन विशेषज्ञों की सेवायें भारत द्वारा प्राप्त की गई। दिसम्बर १६५२ मे परिणाम देखकर भुगतान करने की पद्धति पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के पाँच विशेषज्ञ भारत मे आये। इन्होंने कपडा तथा इजीनियरिंग उद्योगो मे इन विषयो पर तकनीकी सहायता प्रदान की। फरवरी १६५३ मे बागान कर्मचारियों को अन्य रोजगार प्राप्त करने के सम्बन्ध में परामर्श देने के निमित्त एक जापानी व्यावसायिक प्रशिक्षण के विशेषज्ञ की सेवायें अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के द्वारा प्राप्त की गयी। अगस्त, १६५३ मे 'अन्तकार्य-प्रशिक्षण तकनीकी' को प्रसार और बढ़ावा देने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के एक विशेषज्ञ की सेवायें भी प्राप्त की गयी। १६५४ में एक अन्य विशेषज्ञ आये। जून, १६५६ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने दो प्रवर शिक्षक भेजे जिनमे से एक तो इजीनियरिंग और उससे सम्बन्ध व्यवसायो के लिये था तथा दूसरा मशीनों को चालू रखने का विशेषज्ञ था। भारत ने सन् १६५७ तथा १६५८ मे भी उत्पादकता, रोजगार सूचना, नेत्रहीनो के लिये व्यावसायिक शिक्षा, व्यावसायिक विश्लेषण तथा सुरक्षा आदि के क्षेत्रो म विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त की। १६५८ मे औद्योगिक सम्बन्धो के ब्रिटिश विशेषज्ञ प्रो० जे० एम० रिचर्डसन की सेवायें प्राप्त की गई। १६५६–६० तथा उसके पश्चात् भी विशेषज्ञों की सेवायें चालू रही हैं। सन १६५६ मे प्रशिक्षण और श्रमिक शिक्षा के लिये भी दो विशेषज्ञ आये और तीन विशेषज्ञ—एक उत्पादकता पर और दो खानों की सुरक्षा पर—१६६० मे भारत आये। श्रमिक सघवाद, श्रम प्रशासन, सामाजिक सुरक्षा, श्रमिक शिक्षा सुरक्षा, निरीक्षण आदि के प्रशिक्षण के लिये ५० प्रशिक्षार्थियों को विभिन्न देशो मे भेजा गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की छात्रवृत्ति के लिए इन्डोनेशिया, थाइलैण्ड, श्रीलका

व चीन के चार छात्रों ने भारत में प्रशिक्षण पाया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विशेषज्ञों के रूप में दो भारतीयों को विदेशों में भेजा गया जिनमें एक कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में सहायता देने के लिए भेजा गया तथा दूसरा सहकारिता के क्षेत्र में सहायता देने के लिए फिलीपाइन्स गया था। कुछ अन्य विशेषज्ञों को भी भारत से बुलाया गया। १९५९ के अन्त तक सात भारतीय विशेषज्ञों के रूप में दूसरे देशों में काम कर रहे थे। १९६२ में इनकी संख्या २३ हो गयी थी। नवम्बर १९६० में नई दिल्ली में एक 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एशियाई क्षेत्रीय सामाजिक सुरक्षा में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम' का भारत सरकार तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा परिषद् के सहयोग से आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न एशियाई देशों के तीस व्यक्तियों ने भाग लिया। १९६१ में इंजीनियरिंग उत्पादकता प्रशासन तथा कार्मिक प्रबन्ध पर चार विशेषज्ञ भारत आये। ९ व्यक्ति विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भेजे गये और सात व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अन्य देशों से भारत आये। सन् १९६२ में, उत्पादकता में दो विशेषज्ञों की और 'व्याव-सायिक मार्ग दर्शन' में एक विशेषज्ञ की सेवायें भारत को प्राप्त हुई। सन् १९६४ में, 'औद्योगिक मनोविज्ञान' पर एक विशेषज्ञ, पत्र निर्माण, स्वच्छता व सुरक्षा' पर एक और श्रमिक संघ सेवाओं के क्षेत्र में एक विशेषज्ञ भारत आये। संयुक्तराष्ट्र विशिष्ट निधि कार्यक्रम के अन्तर्गत, भारत को प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण संस्थानों के लिये अनेक विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त हुई हैं। इन संस्थानों ने निधि से मूल्यवान उपकरण भी प्राप्त किये हैं। सन् १९६८ तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के ६१ विशेषज्ञ भारत को प्राप्त हुए और १९६ भारतीय नागरिकों को विदेशों में अध्ययन के लिये अधिछात्रवृत्तियाँ दी गई। बाद के वर्षों में भी अनेक प्रायोजनाओं का अनुमोदन करके संगठन ने तकनीकी सहायता प्रदान की है तथा अनेक गोष्ठियों का आयोजन किया है। उदाहरण के लिये, मार्च १९७१ में, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने नई दिल्ली में जनसंख्या तथा परिवार नियोजन पर और नवम्बर १९७१ में औद्योगिक सम्बन्धों पर तथा विकास एवं विशेष रूप से रोजगारी के लिये ग्रामीण संस्थाओं के अवदानों पर गोष्ठियाँ आयोजित की थीं।

भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के माध्यम से जहाँ अन्य देशों से सहायता प्राप्त की, वहाँ स्वयं भारत ने भी अपनी अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को सहायता दी है। भारत ने संगठन की अधिछात्रवृत्तियों पर अनेक एशियाई देशों को प्रशिक्षण की सुविधायें दी हैं। अनेक भारतीय संगठन के मुख्य कार्यालय, जिनेवा में कार्य कर रहे हैं और अनेक विश्व भर में संगठन की तकनीकी सहयोग की प्रायोजनाओं में क्षेत्र-स्तरों पर कार्य कर रहे हैं।

श्रम तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में तकनीकी सहयोग पर बना अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विशेषज्ञों का ६ सदस्यीय क्षेत्रीय दल अप्रैल १९७४ में भारत-भ्रमण पर आया। अनेक उद्योगों, खानों, बागानों, निर्माणों, नागरिक उड्डयन, व्यावसायिक

श्रमिकों, बहुराष्ट्रीय उद्यमों, खाद्य-पदार्थों व पेयों व सामाजिक सुरक्षा आदि पर बनी सलाहकार व तकनीकी समितियाँ भी समय-समय पर मिलती रही है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सहयोग से औद्योगिक लोकतन्त्र पर एक एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन बैंगकोक में सितम्बर १९७९ में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन का उद्देश्य भारत में औद्योगिक लोकतन्त्र का विकास करना था। जून १९८० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का ६६वाँ अधिवेशन हुआ जिसमें संसार के ५० करोड़ पुराने श्रमिकों के लिये कार्य की श्रेष्ठतर दशाओं की व्यवस्था वाला नया मानक स्वीकार किया गया। इस अधिवेशन ने पारिवारिक दायित्वों वाले श्रमिकों के साथ समान व्यवहार, सुरक्षा व स्वास्थ्य तथा सामूहिक सौदाकारी के भावी मानकों का मार्ग भी प्रशस्त किया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने जनवरी १९८० में एशिया तथा प्रशान्त क्षेत्रीय देशों में श्रम प्रशासन के विकास पर एक उच्चस्तरीय बैठक का भी आयोजन किया। इस बैठक का उद्घाटन केन्द्रीय श्रम मन्त्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने किया था। उन्होंने कहा कि विकासशील देशों में बेरोजगारी व गरीबी में कमी करने के लिये बड़े पैमाने पर स्वय-रोजगार प्रायोजनाएँ (self-employment Projects) लागू की जानी चाहिये। श्री तिवारी ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को इस विषय में सतर्क किया कि श्रम प्रबन्ध की उन विचारधाराओं को विकासशील देशों में लागू न किया जाए जो किसी समय विकसित देशों में विचित्र सिद्ध हो चुकी हैं। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एशियाई क्षेत्रीय प्रायोजना (Asian Regional project) जैसी एजेंसी द्वारा किये गये योगदान के महत्त्व पर भी जोर दिया। यह एजेंसी एशिया में श्रम तथा मानव-शक्ति प्रशासन को मजबूत करने के लिये बनाई गई थी।

क्षेत्रीय सम्मेलनों का महत्त्व तथा उनसे लाभ

(Importance and Value of Regional Conferences)

क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनों के अनेक लाभ है और यदि स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखना है तो ऐसे सम्मेलनों की बहुत आवश्यकता है। एशिया की श्रम शक्ति की कुछ अपनी विशेषतायें हैं, जो पश्चिमी औद्योगिक उन्नत देशों में नहीं पाई जाती। एशियाई देशों में यह भावना बहुत दिनों से चली आ रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आम सम्मेलनों में उनकी विशेष सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं पर पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि इन सम्मेलनों में पश्चिमी देश ही अधिकतर छाए रहते है। इस प्रकार के क्षेत्रीय सम्मेलन होने से ऐसी शिकायतें दूर हो जाएँगी। भारत और अन्य एशियाई देश अब अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन अपना महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते जा रहे है। अत यह स्वाभाविक ही है कि वे इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों के केवल पर्यवेक्षक (Observers) मात्र न रहे, अपितु उनके अधिक से अधिक सक्रिय भाग लें। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की जब स्थापना हुई थी तब पश्चिमी देशों में औद्योगिक विकास में

परिपक्वता प्राप्त कर ली थी और उनकी मुख्य समस्यायें पूंजी तथा श्रम में समझौता, श्रमिकों की परिस्थितियों में सुधार तथा सामाजिक सुरक्षा आदि थी। ये समस्यायें एशिया के लिये भी बहुत महत्वपूर्ण हैं, लेकिन जैसा कि १९४७ में एशियाई श्रम सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए पं० नेहरू ने अपने भाषण में कहा था कि एशियाई देशों की मुख्य आर्थिक और श्रम समस्यायें ऐसी हैं जिनके अन्तर्गत हमें यह देखना है कि मध्यकालीन कृषि अर्थव्यवस्था को बदल कर आधुनिक वैज्ञानिक कृषि और औद्योगिक अर्थव्यवस्था में कैसे लाया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने इन समस्याओं पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया था। क्षेत्रीय सम्मेलन अब इन दोषों को दूर कर देंगे। इन सम्मेलनों के उपरान्त अब इस बात का अनुभव कर लिया गया है और इस बात पर जोर भी दिया जा रहा है कि अधिक विकसित देशों द्वारा अर्द्ध-विकसित देशों को तकनीकी और आर्थिक सहायता मिलने की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अब अफ्रीका देशों की ओर भी अधिक ध्यान दे रहा है।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि एशियाई समस्याओं के लिये क्षेत्रीय रूप से जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, वह सराहनीय है। परन्तु इसके साथ ही हमें अन्तरंग सभा के अध्यक्ष की इस चेतावनी को भी ध्यान में रखना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मूल आधारों में जो सामान्य आदर्श और सामान्य जीवन-स्तर का आधार है उसमें किसी प्रकार की रुकावट नहीं पड़नी चाहिये। एशिया के आर्थिक पिछड़ेपन को केवल एक अस्थायी अयोग्यता समझना चाहिये और जितनी जल्दी सम्भव हो उसको समाप्त कर देने के प्रयत्न करने चाहियें। यदि क्षेत्रीय सम्मेलनों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस पिछड़ेपन को स्थिर रखने के लिये कोई कार्य किया जाता है और यह सम्मेलन एशिया को एक हीन आर्थिक इकाई के रूप में मानकर चलते हैं तो उससे लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होगी। क्षेत्रीय श्रम सम्मेलनों को एशिया के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने भावना से ही कार्य करना चाहिये जिससे इन देशों के ग्रामीण और शहरी श्रमिक इसी प्रकार का जीवन-स्तर अपना सकें और सामाजिक बुराइयों से अपनी इसी प्रकार रक्षा कर सकें जिस प्रकार कि प्रगतिशील देशों के श्रमिक करते हैं। इसके साथ ही जो भी क्षेत्रीय कार्य करते हैं उनको अन्तर्राष्ट्रीय ढांचे में ही करना चाहिये क्योंकि निर्धनता और अभाव की समस्याओं के समाधान के लिये केवल उन्हीं लोगों का सहयोग नहीं चाहिये जो उनसे पीड़ित हैं वरन् सभी लोगों के सहयोग की आवश्यकता है।

भारत द्वारा अपनाये गये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय
(I L O Conventions Ratified by India)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने १९८० तक अपने ६६ अधिवेशनों में १४७ अभिसमय और १५६ सिफारिशें पारित की हैं जिसमें से केवल ३३ अभिसमय भारत द्वारा अपनाए गए हैं। अभिसमय अग्रलिखित हैं—

(१) कार्य के घण्टो (उद्योग) से सम्बद्ध सन् १९१९ का अभिसमय न० १— यह अभिसमय औद्योगिक व्यवसायो म काम करने के घण्टो को एक दिन मे ८ और सप्ताह मे ४८ तक सीमित करने क सम्बन्ध म है। इस अभिसमय को भारत ने अपने लिये पारित किये गये कुछ विशेष नियमो क आधार पर १४ जुलाई १९२१ को अपनाया था। वह आधार यह था कि "ब्रिटिश भारत मे उन समस्त श्रमिको के लिये जो कारखाना अधिनियम के अन्तगत आने वाले उद्योगो मे काम करते है, या खानो मे काम करते है या रेलवे कार्य के उन विभागो मे कार्य करते हैं जो किसी उचित प्राधिकारी द्वारा निश्चित कर दी गई हैं, "६० घन्टे प्रति सप्ताह" का सिद्धान्त लागू किया जाए।

(२) स्त्रियों क लिये रात्रि मे काम करने से सम्बद्ध १९१९ का अभिसमय न० ४—यह अभिसमय रात्रि मे स्त्रियो को कार्य पर लगाने का निषेध करता है। भारत सरकार ने एक विशेष नियम के आधार पर १४ जुलाई १९२१ को इसे अपनाया था। इस विशेष नियम के अनुसार भारत सरकार को यह अधिकार है कि किसी भी औद्योगिक व्यवसाय के सम्बन्ध मे इस अभिसमय को निलम्बित (Suspend) कर सकती है।

(३) किशोरो के रात्रि मे काम करने से सम्बद्ध १९१९ का अभिसमय न० ६—इसके अन्तर्गत उद्योगों मे लगे हुए किशोरो को रात्रि म काम पर लगाना निषिद्ध है। एक विशेष नाम के आधार पर १४ जुलाई १९२१ को इसे अपनाया गया था, अर्थात् भारतीय कारखाना अधिनियम द्वारा पारिभाषित कारखानो मे १४ वर्ष से कम आयु के बालको को रात्रि के समय कार्य पर नही लगाया जा सकता।

(४) कृषि कर्मचारियो के सगठन और समुदाय बनाने के अधिकार मे सम्बद्ध १९२१ का अभिसमय न० ११—यह ११ मई १९२३ को अपनाया गया।

(५) 'साप्ताहिक अवकाश (उद्योग) अभिसमय' नामक १९२१ का अभिसमय न० १४—यह अभिसमय औद्योगिक व्यवसायो मे कर्मचारियो के लिये सप्ताह मे २४ घण्टे के अवकाश की व्यवस्था करता है। इसे ११ मई १९२३ को अपनाया गया।

(६) सन् १९२१ का अभिसमय न० १५—ट्रीमर या स्टोकर्स का कार्य करने वाले किशोरों को रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु इस अभिसमय द्वारा निर्धारित की गई है। यह अभिसमय २० नवम्बर १९२१ को भारत द्वारा अपनाया गया।

(७) समुद्र मे रोजगार पर लगे हुए किशोरो और बालको के लिये अनिवार्य चिकित्सा जाच उपलब्ध करने से सम्बद्ध १९२१ का अभिसमय न० १६—यह अभिसमय २० नवम्बर १९२२ को अपनाया गया।

(८) व्यवसायजनित रोगो मे श्रमिकों की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करने से सम्बद्ध १९२५ का अभिसमय न० १८—इसे ३० सितम्बर १९२७ को भारत ने अपनाया।

तथा विदेशी लोगो से व्यवहार की समानता का अभिसमय कहा जाता है। यह अभिसमय भारत ने १६ अगस्त १६६४ को अपनाया।

(३०) १६६५ का अभिसमय न० १२३—जिसे न्यूनतम आयु (खान के भीतर का कार्य) अभिसमय कहा जाता है। भारत ने इसे २० मार्च १६७५ को अपनाया।

(३१) १६६० का अभिसमय न० ११५—जिसे विकिरण सुरक्षा अभिसमय कहा जाता है। भारत ने इसे १७ नवम्बर १६७५ को अपनाया।

(३२) १६७५ का अभिसमय न० १४१—जिसे ग्रामीण श्रमिक सगठन अभिसमय की सज्ञा दी गई है। भारत न इसे १८ अगस्त १६७७ का अपनाया।

(३३) १६७६ का अभिसमय न० १४४—जिसे त्रिदलीय विचार-विमर्श (अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानक) अभिसमय कहा गया है। भारत ने इसे २७ फरवरी १६७८ का अपनाया।

इन अभिसमयो को अपनाये जाने से विभिन्न कारखाना अधिनियमो में सशोधन किये गये है। यह सशोधन इन अभिसमयों को कार्यान्वित करने के लिये किये गये है जो काम करने के घण्टो, स्त्रियो के रात्रि मे काम करने, साप्ताहिक अवकाश आदि से सम्बन्धित है तथा कई अधिनियमो मे, जैसे—भारत खान अधिनियम, रेलवे अधिनियम, श्रमिक क्षति-पूर्ति अधिनियम आदि मे सशोधन हुए है। अनेक अन्य अभिसमयो को सरकारी अधिसूचना द्वारा अपनाया गया है।[1]

१६५४ मे सरकार ने ३ सदस्यो की एक त्रिदलीय समिति अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के ऐसे अभिसमयों और सिफारिशो पर विचार करने के लिये बनाई जो भारत ने नही अपनाये थे ताकि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तर को भारत मे भी लागू करने का कार्य तेजी से हो सके। इस समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप ही अन्तिम ६–७ अभिसमय, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, भारत द्वारा अपनाये गये हैं। कुछ अन्य अभिसमयों को भी अपनाने का सुझाव दिया गया है, उदाहरणतया 'काम करने के घण्टो तथा मजदूरी के आंकडो से सम्बद्ध १६३८ का अभिसमय न० ६३' तथा 'कृषि मे न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करने से सम्बद्ध १६५१ का अभिसमय न० ६६'।

अन्य अभिसमयों का प्रस्ताव (Influence of Other Conventions)

इसके अतिरिक्त भारत ने विभिन्न अभिसमयो के अनेक आवश्यक भागो को अपने राष्ट्रीय विधान मे सम्मिलित कर लिया है। उदाहरणतया १६१६ के प्रसव-काल से सम्बद्ध अभिसमय न० ३ की धारणायें विभिन्न मातृत्व-कालीन-लाभ अधिनियमों मे आ गई है, १६३६ के सवेतन छुट्टियो से सम्बद्ध अभिनियम न० ५२ के

1 अभिसमय न० २ (१६१६ का बेरोजगारी अभिसमय) को भारत ने अपनाया था परन्तु सन् १६३८ में इसे त्याग दिया। १६३४ का अभिसमय न० ४१ भी अब प्रचलन मे नही है, क्योकि इसके स्थान पर अब १६४८ के अभिसमय न० ८६ को अपना लिया गया है।

परिणामस्वरूप ही अनेक राज्यो मे श्रमिको को छुट्टियाँ देने के लिये पग उठाये गये है, आदि-आदि।

भारत में अधिक अभिसमय न अपनाये जाने के कारण
(Why More Conventions Have Not Been Ratified)

साधारणतया यह शिकायत की जाती है कि भारत द्वारा अपनाये गये अभि-
समयों की सख्या बहुत कम है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के १४८ अभिसमयो मे
से भारत ने अब तक केवल ३३ अभिसमय अपनाये है, जिनमें से एक को त्याग
दिया गया है। परन्तु सच यह है कि इन अभिसमयो के न अपनाये जाने के कारण
यह नही है कि इनमें जो आवश्यक अच्छाइयाँ निहित है उनको मान्यता नही दी
गई है, वरन् इसका कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का वह नियम है जिसके अनु-
सार यह अनिवार्य है कि प्रत्येक अभिसमय को बिना किसी परिवर्तन या सशोधन
के अपनाया जाये। अत यह तो किसी भी अभिसमय को पूर्ण रूप से स्वीकार करना
होता है अथवा अस्वीकार करना पडता है। भारत मे अनेक अभिसमय कुछ शर्तों के
अनुसार ही अपनाये जा सकते थे, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के नियमों ने इस
बात की अनुमति नहीं दी। अत इस विषय मे सशोधन की आवश्यकता है, जिससे
कुछ विशेष अभिसमयो को यदि पूर्ण रूप से सम्भव न हो सके तो शनैः शनैः
अपनाया जा सके। इसके अतिरिक्त, अनेक अभिसमय ऐसे विषयों से सम्बद्ध हैं
जिनका भारत से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। अत. उनके अपनाने का प्रश्न ही
नही उठता।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का श्रम विधान पर प्रभाव
(Influence of the I L. O On Labour Legislation)

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठनो ने भारतीय श्रम विधान की प्रगति को
अत्यधिक मात्रा मे प्रभावित किया है। जैसे कि ऊपर सकेत किया गया है, भारत
ने अनेक महत्वपूर्ण अभिसमय अपनाये हैं, जिनको देश के श्रम विधान म सम्मिलित
कर लिया गया है। अन्य अभिसमयो का भी अनेक अधिनियमो की प्रगति पर प्रभाव
पडा है। इसके अतिरिक्त, इस बात को भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि
भारतीय विधान सभा द्वारा कई अभिसमयो पर विचार-विनिमय करने के फल-
स्वरूप सामाजिक प्रगति को एक नई प्रेरणा मिली है, जिस पर विभिन्न मत के लोगो
द्वारा भी एकमत प्रकट किया गया है। किसी अभिसमय पर वाद विवाद करने से
ही अनेक श्रम समस्यायें प्रकाश मे आ जाती है। 'सर एण्ड्रयू क्लोव' ने, जो किसी
समय भारत सरकार के सदस्य थे, एक बार कहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन
श्रमिको की समस्याओ मे जनता की रुचि को उभारने का साधन रहा है। कभी-
कभी तो इस सगठन ने श्रमिको के हित के लिये ऐसे पग उठाने के लिये प्रोत्साहित
किया है जो सगठन के अभाव मे कदाचित् कभी सम्भव न हो पाते। परोक्ष या
प्रत्यक्ष रूप से भारतीय श्रम सुधार कार्यों मे जो भी प्रगति हुई है, उसके लिये रॉयल

प्रगति की हर देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिरता के लिये बहुत आवश्यकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के ५०वें अधिवेशन के अवसर पर एक प्रसारण मे तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने कहा था कि—"अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के ५० वर्षों के कार्यकाल मे सम्पूर्ण ससार म, विशेष रूप से एशिया व अफ्रीका मे जहाँ कि दूरगामी आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं, अनेक नाटकीय विकास-कार्य सम्पन्न हुए हैं। हमे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का उन ऐतिहासिक कार्यों के लिए धन्यवाद देना चाहिये जिनके कारण ससार के देशो के बीच जागरण उत्पन्न हुआ है और यह भावना उत्पन्न हुई है कि वे एक साथ मिलकर अपने आर्थिक विकास के लिये सगठित प्रयास करें ताकि उनके श्रमिक वर्गों का जीवन-स्तर ऊँचा उठे।"

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने अपना ५०वाँ वर्ष सन् १९६९ मे पूरा किया। सयुक्त राष्ट्र सघ (U. N O) के तत्कालीन महासचिव श्री यू० थान्त ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) के ५०वें सम्मेलन मे भाषण करते हुए कहा था कि उन्हे विश्वास है कि श्रम सगठन सयुक्त राष्ट्र सघ की सम्पूर्ण व्यवस्था को विश्वव्यापी बनाने के लिये अपना यथेष्ट योगदान देगा। उन्होंने प्रतिनिधि मण्डलों से कहा कि—सयुक्त राष्ट्र सघ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन "दोनो ही यह अच्छी तरह जानते हैं कि बिना शान्ति के हम सामाजिक न्याय नहीं प्राप्त कर सकते और सामाजिक न्याय के बिना शान्ति नहीं प्राप्त कर सकते।' ये निष्कर्ष इस बात पर अच्छी तरह प्रकाश डालते हैं कि वर्तमान ससार मे सामाजिक शान्ति तथा सुरक्षा की एक ऐजेन्सी के रूप मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की कितनी अधिक आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के शान्ति समर्थक प्रयासो को इससे ही समझा जा सकता है कि सन् १९६९ मे सगठन की ५०वी जयन्ती के अवसर पर इसकी ओर से नोबल शान्ति पुरस्कार देने की घोषणा की गई थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की ५०वी जयन्ती विश्व भर मे मनाई गई थी।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन अपने सदस्यो की तीन प्रकार से सेवा करता है। प्रथम, यह तथ्यों की खोज करने वाली एजेन्सी के रूप मे कार्य करता है और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास की वर्तमान स्थिति मे सामाजिक और श्रमिक सम्बन्धों के क्षेत्रो मे उठाने वाले कई प्रकार के प्रश्नो का अध्ययन करता है और विशिष्ट समस्याओं पर इसके द्वारा प्रकाशित साहित्य की मात्रा भी काफी होती है। इस सगठन के विशेषज्ञ, जो सभी सदस्य राष्ट्रों की सरकारों, मालिको और श्रमिकों के प्रतिनिधियों मे से चुने जाते हैं और इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापक सगठन के कार्यों और उद्देश्यो मे जिन्हे विशेष प्रशिक्षण प्राप्त होता है, प्रत्येक देश की अनेक समस्याओं पर अपनी रिपोर्ट देते हैं कि अमुक देश इन विशेष समस्याओं का कैसे समाधान कर सकते हैं। ऐसी समस्यायें निम्नलिखित हैं—कुशल श्रम-शक्ति, बेरोजगारी,

अपूर्ण रोजगार, रोजगार दफ्तर, श्रमिक संघों को संगठित करने का श्रमिकों का अधिकार आदि तथा सामाजिक सुरक्षा के प्रश्न, कार्य करने की दशायें, औद्योगिक कल्याण आदि आदि ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का द्वितीय कार्य भी प्रथम कार्य का ही एक अंग है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, जिसका स्थायी सचिवालय जेनेवा में है, सदा ऐसे प्रत्येक राष्ट्र को जो सामाजिक विधान बनाने या सामाजिक संगठन से सम्बन्धित अपनी कोई छोटी या बड़ी समस्या को हल करना चाहते हैं, सम्पूर्ण आवश्यक सूचना, परामर्श और व्यावहारिक सहायता देने के लिये इच्छुक और तत्पर रहता है। सदस्य सरकारों द्वारा आमन्त्रित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मिशन ऐसा विशिष्ट परामर्श देते हैं जो सम्पूर्ण संसार की विशिष्ट समस्याओं के अनुभव पर आधारित होता है।

इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का तीसरा कार्य अपने निर्वाचित क्षेत्रों में सामाजिक प्रगति के रीति-निर्धारक (Pace-setter) के रूप में कार्य करना है। यह सामाजिक न्याय के एक केन्द्रीय अन्तर्राष्ट्रीय अन्तःकरण का रूप ले लेता है, क्योंकि अपने वार्षिक सम्मेलनों में यह अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों, निबन्धों और सिफारिशों के मसौदे प्रस्तुत करता है, जो स्वीकृत होने के पश्चात् उचित कार्यवाही या अपनाने के लिये सदस्य सरकारों को प्रस्तुत कर दिये जाते हैं। इनमें से बहुत से अभिसमय ऐसे होते हैं जिनका उद्देश्य यह होता है कि प्रत्येक राष्ट्र के सुधार करने के उपायों को एक निश्चित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर दे दिया जाये। यह अभिसमय सदस्य सरकारों द्वारा अपना लिये जाते हैं और अनेक देशों के श्रम विधान में बहुत से अन्य अभिसमयों का सारांश पाया जाता है।

सन् १९६४ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने अपने ४८वें अधिवेशन में जातीय पृथग्वासन (Apartheid) को रद्द करने की घोषणा को सर्वसम्मति से स्वीकार किया और श्रम सम्बन्धी मामलों में जातीय पृथग्वासन को समाप्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यक्रम का अनुमोदन किया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में संशोधन किया गया और सम्मेलन को यह अधिकार दिया गया कि वह किसी भी ऐसे सदस्य देश को सम्मेलन में भाग लेने से रोक सकता है जो वर्ण भेद की नीति को अपनाता हो। इसी कारण दक्षिणी अफ्रीका को संगठन छोड़ना पड़ा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एक उल्लेखनीय कार्य, जिसका भारत जैसे देश के लिये विशेष महत्व है, उसका **विश्व रोजगार कार्यक्रम** (World Employment Programme) है जिसे कि उसने सन् १९६९ में अपनी ५०वीं जयन्ती पर प्रारम्भ किया था। इस कार्यक्रम के द्वारा संगठन इस दिशा में अपना योगदान करता है कि सभी देश आर्थिक और सामाजिक विकास की अपनी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों के लक्ष्य के रूप में उत्पादकीय रोजगार की योजनायें लागू करें। इस कार्य-

अपनाये जाने की आवश्यकता है। ऐसा करते समय सम्मेलन मे विचार-विमर्श हेतु रखे जाने वाले विषयो की जटिलता को भी दृष्टिगत रखना होगा। हमारा देश, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के माध्यम से जहा अन्य देशो से तकनीकी सहायता प्राप्त कर रहा है, वहाँ वह अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को स्वय भी सहायता दे रहा है। इस दोहरी सहायता-प्रणाली को और भी अधिक आगे बढाने की पर्याप्त गु जाइश है। सरकार को चाहिये कि वह यथासमय उन अभिसमयो को भी अपनाये जिन्हे कि तकनीकी एव प्रशासनिक कठिनाइयो के कारण अब तक नही अपनाया जा सका था। मौलिक मानवीय अधिकारो से सम्बन्धित कुछ अभिसमय और भी ऐसे है जिन्हे हमारे देश ने अभी तक नही अपनाया है। सरकार को चाहिये कि उन्ह औपचारिक रूप से अपनाने के बारे म स्थिति का पुनर्मूल्याकन करे। आयोग ने यह भी कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन से हमारे दीर्घकालीन सम्बन्धो के फलस्वरूप भारत पर जो अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व आते है उनको कई उपायो द्वारा निभाये जाने की आवश्यकता है उदाहरणार्थ, (i) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के उद्देश्यो एव लक्ष्यो का राष्ट्रीय कार्रवाई क रूप मे अपनाकर, (ii) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के कार्यक्रमो मे अन्तर्राष्ट्रीय एव क्षेत्रीय स्तरो पर सहयोग करके, और (iii) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा निर्धारित मानको (standards) को क्रमिक रूप मे लागू करके। हमारे देश ने इन सभी दिशाओ मे काफी प्रगति की है और इसको और भी गतिशील बनाने के लिये यह प्रक्रिया बराबर जारी रहनी चाहिये।

भारत में श्रम विधान
LABOUR LEGISALTION IN INDIA

श्रम विधान का सामान्य सर्वेक्षण—इतिहास
(A General Survey of Labour Legislation History)

पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत मे उद्योग धन्धो के आरम्भ होने के समय की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि पूँजीपति इस बात के लिये बहुत उत्सुक रहते थे कि उन्हे शीघ्र और अधिकतम लाभ हो। मालिक कम मजदूरी पर अधिक समय तक काम करने वाले असहाय और निर्धन श्रमिको को काम पर लगाने का प्रलोभन न छोड सके थे और उन्होने पुरुषो, स्त्रियो तथा बच्चो से कठोर परिश्रम करा कर और कम वेतन देकर अत्यधिक लाभ उठाया। उस समय सरकार की नीति श्रमिकों से सामाजिक प्रणाली की रक्षा करने की थी न कि सामाजिक प्रणाली से श्रमिको की रक्षा की। अत १८५६ और १८६० मे जो विधान बनाये गये—अर्थात १८५६ का श्रमिको का सविदा की शर्तों को भग करने का अधिनियम और १८६० का मालिक व श्रमिक (विवाद) अधिनियम—दोनो ही सविदा की शर्तों को भग करने वाले श्रमिको को, अपराधी मानकर, दण्ड देने के हेतु बनाये गये थे और सविदा भग करना फौजदारी अपराध मान लिया गया था। प्रारम्भ मे जो भी श्रम विधान बनाये गये वह औद्योगिक श्रमिको के सामान्य वर्ग से सम्बन्धित न होकर उद्योग विशेष से सम्बन्धित होते थ। भारत मे पहला सगठित उद्योग, जिसके कारण वैधानिक नियन्त्रण हुआ, असम का बागान उद्योग था। यहाँ श्रमिको की भर्ती की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण भर्ती को नियन्त्रित करने के लिये बगाल तथा केन्द्रीय सरकार ने कुछ वैधानिक कदम उठाये, जिनको असम श्रमिक अधिनियमो के नाम से पुकारा गया। प्रथम कारखाना अधिनियम तथा खान अधिनियमो क्रमश १८८१ तथा १९०१ म पारित किये गये। कारखाना अधिनियम १८९१ तथा १९११ मे भी पारित किये गये। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध से पूर्व, श्रमिक क्षतिपूर्ति, श्रमिक सघ व व्यावसायिक विवाद आदि से सम्बन्धित औद्योगिक श्रमिको के सामान्य वर्ग के लिये कोई विधान नही था।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् श्रम विधान
(Labour Legislation After World War I)

प्रथम महायुद्ध के अनुभवो के कारण श्रम के प्रति सरकार और मालिकों के दृष्टिकोण मे काफी परिवर्तन आया। राज्य के हस्तक्षेप के सिद्धान्तो को औद्योगिक

मामलों में और भी विस्तृत रूप में लागू कर दिया गया। एक सन्तुष्ट श्रमजीवी वर्ग की आवश्यकता की तीव्रता से अनुभव किया जाने लगा तथा मालिकों और श्रमिकों के द्वारा सामूहिक कार्यवाही के लाभों की ओर भी ध्यान गया। युद्ध के पश्चात् श्रमिकों में चेतना अधिक आ गई तथा श्रमिक संघों का भी विकास हुआ और साथ ही औद्योगिक अशान्ति भी बढ़ी (देखिये पृष्ठ १०६–१०७)। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से भारत में श्रम विधान को काफी प्रोत्साहन मिला क्योंकि उसने अनेक अभिसमय और सिफारिशें पारित कीं तथा श्रम के उत्थान के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों को निर्धारित किया।

१९२० के पश्चात् भारत में श्रम विधान बनाने की ओर तीव्र गति से प्रगति हुई। कारखाना से सम्बन्धित कानूनों को १९२२ के कारखाना अधिनियम में समायोजित कर दिया गया। अनेक नवीन और महत्वपूर्ण अधिनियम भी पारित किये गये। उदाहरणार्थ, १९२३ का भारतीय खान अधिनियम, १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, १९२६ का भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम तथा १९२९ का व्यापार विवाद अधिनियम। भारतीय व्यापारिक जहाजरानी अधिनियम १९२३ में पारित किया गया। १८९० के रेलवे अधिनियम में कार्य के घण्टों को नियमित करने के लिये १९३० में संशोधन किया गया। १९२९ में भारत में रॉयल श्रम आयोग की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट १९३१ में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में श्रम समस्याओं के सभी पहलुओं पर तथा श्रम कानूनों को बनाने और उनके प्रशासन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सिफारिशें की गई थीं। इसके परिणामस्वरूप अनेक वैधानिक कदम उठाये गये। १९३२ में चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक अधिनियम पारित किया गया। १९३४ में कारखाना अधिनियम को पूर्णतया दोहराया गया। व्यापार विवाद अधिनियम में संशोधन किया गया तथा १९३८ में इसे वैधानिक पुस्तिका में स्थायी स्थान दे दिया गया। १९३६ में मजदूरी अदायगी अधिनियम पारित किया गया। १९३३ में बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम तथा १९३४ में भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम पारित हुए। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के सम्बन्ध में रॉयल श्रम आयोग की अधिकांश सिफारिशों को इस समय लागू किया गया तथा १९३५ में खान अधिनियम में भी संशोधन किया गया। किसी भी कम्पनी अर्थात् समवाय को श्रमिकों के रहने के लिये मकान बनाने तथा उनसे सम्बन्धित सुविधाओं की व्यवस्था करने हेतु अनिवार्य रूप से भूमि प्राप्त करने के लिये १८९४ के भूमि अभिग्रहण अधिनियम में १९३३ में संशोधन हुआ। आयोग की रिपोर्ट के प्रकाशित होने से पूर्व मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम केवल बम्बई तथा मध्य प्रदेश में बनाये गये थे। अन्य प्रदेशों में भी इसी प्रकार के विधान बनाये गये। केन्द्रीय सरकार ने भी सभी खान उद्योगों के लिये १९४१ में खान मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पारित किया।

प्रान्तों (राज्यों) में श्रम विधान
(Labour Legislation in the States)

१६३५ के भारत सरकार अधिनियम से पूर्व श्रम के क्षेत्र में यद्यपि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के विधान बनाने के अधिकार संयुक्त थे तथापि प्रान्तों ने इस ओर बहुत कम पग उठाये थे। मुख्यत प्रान्तों के अधिनियम निम्नलिखित थे बम्बई (१६२६), मध्य प्रान्त (१६३०) और मद्रास (१६३५) के मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम, १६३४ का बम्बई औद्योगिक विवाद सुलह अधिनियम, १६३४ का गोदी श्रमिक अधिनियम, १६३५ का बगाल श्रमिक सरक्षण अधिनियम १६३६ का मध्य प्रान्त औद्योगिक श्रमिक ऋण समजन एव अपाकरण अधिनियम, १६३७ का मध्य-प्रान्त अनियन्त्रित कारखाना अधिनियम और १६३७ का मध्य-प्रान्त ऋणी सरक्षण अधिनियम।

१६३७ में प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् जनप्रिय सरकारों ने और अधिक उत्साह के साथ श्रम विधान बनाये। प्रान्तो में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने कांग्रेस की श्रम नीति को ही ध्यान में रखा। कांग्रेस की श्रम नीति यह थी कि "जहाँ तक देश की आर्थिक स्थिति वहन कर सकती हो वहाँ तक औद्योगिक श्रमिकों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अनुकूल रहन सहन के स्तर, कार्य के घण्टो तथा रोजगार की दशाओं को प्राप्त करना चाहिये तथा मालिको और श्रमिको के विवादो को सुलझाने की उचित व्यवस्था करनी चाहिये तथा वृद्धावस्था, बीमारी और बेरोजगारी के आर्थिक दुष्परिणामों से रक्षा होनी चाहिये तथा श्रमिको को सघ बनाने और अपने हितो की रक्षा के लिए हड़ताल करने का अधिकार भी होना चाहिये।" बम्बई, मध्य प्रान्त, उत्तर प्रदेश तथा बिहार की सरकारों ने श्रम दशाओं का अध्ययन करने के लिये समितियाँ नियुक्त की। इससे पूर्व कि इन समितियों की सिफारिशो को पूर्णतया कार्यान्वित किया जा सकता, कांग्रेस सरकार ने नवम्बर १६३६ में त्याग-पत्र दे दिये। परन्तु गैर-कांग्रेस सरकारो ने भी श्रम समस्याओं में बहुत रुचि ली। अनेक प्रान्तो ने अपने-अपने क्षेत्र की श्रम समस्याओं के लिये श्रम कमिश्नरों अर्थात् आयुक्तो की नियुक्तियाँ की। कमिश्नरो का यह पद आज तक चला आ रहा है। इस अवधि में प्रान्तीय श्रम विधान का सबसे महत्वपूर्ण अधिनियम १६३८ का 'बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम' था। प्रान्तीय स्तर पर अपनी प्रकार का यह एकमात्र ऐसा विधान था जिसमें औद्योगिक विवादों को शान्तिपूर्ण ढग से सुलझाने की व्यवस्था की गई थी। एक अन्य महत्वपूर्ण श्रम विधान बम्बई में १६३६ का दूकान तथा सस्थान अधिनियम था। इसके अतिरिक्त बगाल, उत्तर प्रदेश, पजाब, असम और सिन्ध में मातृत्व कालीन लाभ अधिनियम, बगाल और सिन्ध में दुकान और सस्थान अधिनियम तथा पजाब में व्यावसायिक कर्मचारी अधिनियम आदि श्रम दशाओं को उन्नत करने के लिये जनप्रिय सरकारों के उत्साह के प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हाल के वर्षों में श्रम विधान (Labour Legislation in Recent Years)

इतनी प्रगति होने पर भी इन विधानों में समायोजना का अभाव था तथा इनके प्रशासन में कुछ कमियाँ रह गई थी। इन दोषों को दूर करने के लिये भारत सरकार १९४० से श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन का आयोजन करती आ रही है। सरकार को श्रम समस्याओं पर सलाह देने के लिये १९४२ में त्रिदलीय श्रम सम्मेलन की व्यवस्था की गई। १९४३ में इसकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप श्री डी० वी० रीगे की अध्यक्षता में एक श्रम अनुसन्धान समिति की नियुक्ति की गई। इसने अपनी रिपोर्ट १९४६ में प्रस्तुत की। विभिन्न श्रम समस्याओं पर इस समिति ने व्यापक रूप से सिफारिशें कीं। एक स्थायी श्रम समिति की भी स्थापना की गई। इस त्रिदलीय व्यवस्था से सरकार और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बीच नियमित रूप से समय-समय पर विचार-विमर्श का जो अवसर प्राप्त हुआ उससे श्रम की मुख्य समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित होने में सहायता मिली। १९४२ से १९४८ के वर्षों में श्रम विधान के क्षेत्र और विषयों का काफी विस्तार हुआ। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार द्वारा श्रम की दशाओं को सुधार कर उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता को और अधिक अनुभव करने के कारण देश में श्रम विधान की गति और तीव्रतर हो गई।

वर्तमान में देश में जो विभिन्न श्रम कानून प्रचलित हैं, उनका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है —

(१) **कारखाने**—१९४८ का कारखाना अधिनियम, (२) **खानें**—१९५२ का खान अधिनियम, (३) **बागान**—(क) १९५१ का बागान श्रम अधिनियम, (ख) १९७० का चाय जिला उत्प्रवासी श्रम (निरसन) अधिनियम, (४) **परिवहन**—(क) १८९० का भारतीय रेल अधिनियम, (ख) १९४८ का गोदी कर्मचारी (रोजगार नियमन) अधिनियम, (ग) १९५८ का व्यापार पोत अधिनियम, (घ) १९६१ का मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम, (५) **दूकान तथा वाणिज्य संस्थान**, (६) **औद्योगिक आवास**—(क) १९४८ का बम्बई आवास बोर्ड अधिनियम, (ख) १९५० का मध्य प्रदेश आवास बोर्ड अधिनियम, (ग) १९५५ का उत्तर प्रदेश आवास अधिनियम, (घ) १९५६ का आन्ध्र प्रदेश आवास बोर्ड अधिनियम, (ङ) १९५६ का पंजाब औद्योगिक आवास अधिनियम, (च) १९६२ का मैसूर आवास बोर्ड अधिनियम, (छ) १९७२ का असम राज्य आवास बोर्ड अधिनियम, (ज) १९७६ का जम्मू व कश्मीर आवास बोर्ड अधिनियम, (झ) राज्यों में आवास नियम, (७) **सुरक्षा तथा कल्याण**—(क) १९३४ का भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, (ख) १९४७ का कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, (ग) १९४६ का अभ्रक खान-श्रम कल्याण निधि अधिनियम, (घ) १९७२ का चूना व डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, (ङ) १९५२ का कोयला खान (बचत व सुरक्षा) अधिनियम, (च) १९५६ का असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण निधि

अधिनियम, (छ) १६५३ का बम्बई श्रम कल्याण निधि अधिनियम, (ज) १६६५
का मैसूर श्रम कल्याण निधि अधिनियम, (झ) १६६५ का पंजाब श्रम कल्याण निधि
अधिनियम, (ञ) १६७२ का तमिलनाडु श्रम कल्याण निधि अधिनियम, (ट) १६५०
का उत्तर प्रदेश चीनी एव चावल मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण एव विकास निधि
अधिनियम, (ठ) १६६५ का उत्तर प्रदेश श्रम कल्याण निधि अधिनियम, (ड) १६६६
का महाराष्ट्र मथादी, हमाल तथा अन्य दस्तकार श्रमिक नियमन, रोजगार तथा
कल्याण अधिनियम, (ढ) १६७४ का पश्चिमी बंगाल श्रम कल्याण निधि अधिनियम,
(ण) १६७६ का कच्चा लोहा खान तथा कच्चा मेगनीज खान श्रम कल्याण निधि
अधिनियम, (त) १६७३ का कच्चा लोहा खान तथा कच्चा मेगनीज खान श्रम
कल्याण उपकर अधिनियम, (थ) १६७६ का बीडी श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम,
(द) १६७६ का बीडी श्रमिक कल्याण उपकरण अधिनियम, (८) मजदूरी तथा बोनस—
(क) १६३६ का मजदूरी भुगतान अधिनियम, (ख) १६४८ का न्यूनतम मजदूरी
अधिनियम, (ग) १६६५ का बोनस भुगतान अधिनियम, (घ) १६७६ का समान
पारिश्रमिक अधिनियम (६) सामाजिक सुरक्षा—(क) १६२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति
अधिनियम, (ख) १६४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, (ग) १६४८ का
कोयला खान भविष्य निधि तथा विविध उपबन्ध अधिनियम, (घ) १६५२ का
कर्मचारी भविष्य निधि विविध उपबन्ध अधिनियम, (ङ) मातृत्व कालीन लाभ
अधिनियम (केन्द्र व राज्यो द्वारा बनाये गये अधिनियम), (च) १६५५ का असम
चाय बागान भविष्य निधि योजना अधिनियम, (छ) १६६६ का नाविक भविष्य
निधि अधिनियम, (ज) १६७२ का आनुतोपिक (gratuity) भुगतान अधिनियम,
(१०) औद्योगिक सम्बन्ध–केन्द्रीय अधिनियम—(क) १६२६ का श्रमिक संघ अधि-
नियम, (ख) १६४६ का औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, (ग)
१६४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम। राज्यो के अधिनियम—(क) १६४६ का
बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, (ख) १६४७ का उत्तर प्रदेश औद्योगिक
विवाद अधिनियम, (ग) १६६० का मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम,
(११) विविध—(क) १६३३ का बाल श्रमानुबंधन अधिनियम, (ख) १६३८ का
बाल रोजगार अधिनियम, (ग) ऋणग्रस्तता से सम्बन्धित विधान, (घ) १६५३ का
सांख्यिकी संचय अधिनियम, (ङ) १६५६ का रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानो की
अनिवार्य सूचना) अधिनियम, (च) शिक्षुता (Apprentices) अधिनियम १६६१,
(छ) बीडी व सिगार श्रमिक (रोजगार की शर्ते) अधिनियम १६६६, (ज) ठेका
श्रमिक (नियमन व उन्मूलन) अधिनियम १६७०, (झ) समान पारिश्रमिक अधि-
नियम १६७६, (ञ) बन्धक मजदूर तथा (उन्मूलन) अधिनियम १६७६, (ट) बिक्री
सुधार कर्मचारी (सेवा की शर्ते) अधिनियम १६७६, (ठ) अन्तर्राज्य प्रवासी श्रमिक
(रोजगार तथा सेवा नियमन) अधिनियम १६७६।

इनके अतिरिक्त, कुछ अधिनियम ग्रामीण श्रमिको के कल्याण तथा उन्हें

करने की मांग की जाने लगी। भारत में राज्य सचिव से पुनः प्रार्थना की गई। परिणामस्वरूप १८८४ में महाराष्ट्र सरकार ने एक और कारखाना आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने बालकों और स्त्रियों की रक्षार्थ विधान बनाने की सिफारिश की परन्तु इसका परिणाम कुछ भी नहीं निकला। १८९० में बर्लिन में एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन हुआ था जिसकी सिफारिशों को इंगलैंड ने स्वीकार कर लिया था। अब यह वाञ्छनीय समझा गया कि इन सिफारिशों को भारत में भी कार्यान्वित किया जावे। अतः भारत सरकार ने १८९० में एक कारखाना आयोग की नियुक्ति की और इसकी सिफारिशों के आधार पर १८९१ में दूसरा कारखाना अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम ५० या इससे अधिक श्रमिकों को काम पर लगाने वाले तथा शक्ति का प्रयोग करने वाले सभी संस्थानों पर लागू होता था। स्थानीय सरकारों को यह अधिकार था कि यदि वे चाहें तो अधिनियम को २० या इससे अधिक श्रमिकों को काम पर लगाने वाले कारखानों पर लागू कर सकती थीं। ९ वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया तथा ९ से १४ वर्ष तक के बच्चों से प्रतिदिन ७ घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था। स्त्रियों एवं बच्चों को रात्रि ८ बजे से प्रातः ५ बजे के बीच काम पर नहीं लगाया जा सकता था। स्त्रियों से ११ घण्टे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था तथा उनको दिन में कुल मिलाकर १½ घण्टे का विश्राम देने की भी व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक श्रेणी के श्रमिक को एक साप्ताहिक अवकाश देने की व्यवस्था थी तथा पुरुष श्रमिक को दोपहर १२ बजे से लेकर २ बजे के भीतर आधा घण्टे का विश्राम समय देना अनिवार्य कर दिया गया था। कारखानों के निरीक्षण, संवातन और सफाई आदि के सम्बन्ध में भी इस अधिनियम में विस्तृत उपबन्ध थे।

१९११ का कारखाना अधिनियम (The Factory Act 1911)

१८९१ के कारखाना अधिनियम पारित हो जाने के पश्चात् आगामी २० वर्षों तक कारखाना विधान के बारे में कोई पग नहीं उठाया गया। सन् १९०५ में बम्बई की मिलों में विद्युत प्रकाश के आ जाने से सूती वस्त्र मिलों के लिये रात्रि में भी कार्य करना सम्भव हो गया और इस प्रकार से कार्य के घण्टे अत्यधिक लम्बे हो गये। कलकत्ते की जूट मिलों में भी काम के घण्टे अधिक होने की शिकायतें आने लगीं। इसके परिणामस्वरूप लंकाशायर के उत्पादकों ने पुनः आन्दोलन शुरू कर दिया। इसी समय देश में समाचार-पत्रों तथा समाज-सेवकों ने श्रम दशाओं की आलोचना शुरू कर दी तथा उन्होंने मांग की कि श्रमजीवी वर्ग को और अधिक रियायतें तथा सुविधायें प्रदान की जावें। परिणामस्वरूप एक श्रम आयोग की फिर नियुक्ति की गई जिसने १९०८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी सिफारिशों के फलस्वरूप १९११ में तीसरा कारखाना अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम में कारखाने की परिभाषा वही रही जो १८९१ के अधिनियम में थी। इसके द्वारा प्रथम बार पुरुष श्रमिकों के कार्य के अधिकतम घण्टे प्रतिदिन १२ निश्चित कर दिये गये जिनके बीच में एक घण्टे का विश्राम समय भी था। पारियों

की स्वीकृत प्रणाली को छोड़कर कोई भी श्रमिक किसी भी कारखानों में रात्रि ७ बजे से प्रात ५ बजे के बीच काम नहीं कर सकता था। बच्चों के लिये सूती वस्त्र मिलों में कार्य के अधिकतम घंटे प्रतिदिन ६ निश्चित कर दिये गये तथा उनका रात्रि में कार्य करना निषेध कर दिया गया। स्त्रियों के कार्य के घण्टे ११ ही रहे परन्तु उनका विश्राम समय घटाकर एक घण्टा कर दिया गया। उनके लिये रात्रि में कार्य भी निषिद्ध कर दिया गया। मौसमी कारखानों को भी अधिनियम के नियन्त्रण में ले आया गया। बच्चों के लिये आयु का प्रमाण-पत्र रखना आवश्यक कर दिया गया। श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिये तथा निरीक्षण को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये अधिनियम में अनेक नये उपबन्ध भी थे।

१९२२ का कारखाना अधिनियम (The Factory Act of 1922)

तत्पश्चात् १९१४–१८ का महायुद्ध शुरू हो गया। इससे देश में तीव्र गति से औद्योगिक विकास हुआ। साथ ही साथ श्रमिक वर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होता गया। वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाने से उद्योगपतियों के लाभ अधिक बढ गये थे परन्तु श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि मूल्य-वृद्धि की अपेक्षा कम हुई। १९१८ के पश्चात् देश में औद्योगिक विवाद बहुत सामान्य हो गये। १९२० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना के परिणामस्वरूप कारखाना अधिनियम में सशोधन करना अनिवार्य सा हो गया। फलत चतुर्थ कारखाना अधिनियम सन् १९२२ में पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत वे सभी कारखाने आ गये जिनमें शक्ति का प्रयोग होता था तथा जिनमें २० या इससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाया जाता था। स्थानीय सरकारों को यह अधिकार प्रदान कर दिये गये कि यदि वह चाहे तो इस अधिनियम को १० या उससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों पर भी लागू कर सकती थी। वयस्क श्रमिकों के लिये अधिकतम कार्य घण्टे प्रतिदिन ११ तथा प्रति सप्ताह ६० निश्चित कर दिये गये। सभी प्रकार के कारखानों में बालकों के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन ६ कर दिये गये। बालकों के लिये रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु ९ वर्ष से बढाकर १२ वर्ष कर दी गई तथा कार्यावस्था की उच्चतम सीमा १२ वर्ष से बढाकर १५ वर्ष कर दी गई। महिलाओं और बालकों को रात्रि के ७ बजे के पश्चात् तथा प्रात ५-३० से पूर्व कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया। बच्चों के लिये प्रति चार घण्टे कार्य के करने के पश्चात् आधे घण्टे का विश्राम-समय अनिवार्य कर दिया गया। रविवार या अन्य किसी दिन एक छुट्टी की भी व्यवस्था थी। सभी श्रमिकों को कार्य अवधि ६ घण्टे से अधिक हो जाने पर एक घण्टे का विश्राम-समय देना आवश्यक था। श्रमिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि के उपबन्धों का भी विस्तृत कर दिया गया। श्रमिकों की स्वास्थ्य की हानि को रोकने के लिये प्रान्तीय सरकारों को सवातन, नमी आदि के स्तरों को निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। निरीक्षण की व्यवस्था में और अधिक सुधार किया गया।

कारखाना अधिनियम १९४८ के मुख्य उपबन्ध
(Main Provisions of The Factories Act of 1948)

अधिनियम के मुख्य मुख्य उपबन्ध निम्न प्रकार हैं—(पृष्ठ ६२ ३५२-३५८, तथा अध्याय १८ भी देखिए) —

जहा तक क्षेत्र का सम्बन्ध है, १९४८ का अधिनियम शक्ति प्रयोग करने वाले उन सभी कारखानों पर लागू होता है जिनमे १० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। जिन कारखानो म शक्ति का प्रयोग नहीं होता वहा २० श्रमिकों के होने पर यह अधिनियम लागू हो जाता है। इसमें राज्य सरकारों को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि यदि वे चाहे तो इस अधिनियम को निर्माण-कार्य करने वाले किसी भी स्थान पर लागू कर सकती है, चाहे उसम कितने ही श्रमिक कार्य करते हों, तथा चाहे उसम शक्ति का प्रयोग होता हो या न होता हो। परन्तु यह उन स्थानों पर लागू नहीं होगा जहा कार्य केवल परिवार के सदस्यों की सहायता से किया जाता हो। इस अधिनियम द्वारा मौसमी एव निरन्तर चालू कारखानों के अन्तर को भी समाप्त कर दिया गया है। यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर राज्य को छोडकर सारे भारत म लागू होना था। जम्मू व कश्मीर मे सन् १९५७ मे पास किया गया अधिनियम लागू था, परन्तु सितम्बर १९७१ से अधिनियम जम्मू व कश्मीर में भी लागू हो गया था। १९७६ मे किये गये संशोधन द्वारा इसका विस्तार ठेका श्रमिकों पर भी कर दिया गया है।

स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध मे १९३४ के अधिनियम मे जो उपबन्ध थे वह सामान्य प्रकार के थे और यह प्रान्तीय सरकारों का काम था कि वह नियम बनाकर इस सबन्ध में ठीक-ठीक आवश्यकताओं का उल्लेख कर दें। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रान्तों द्वारा निर्धारित स्तरों में भिन्नता आ गई। इस दोष को दूर करने के लिये १९४८ के अधिनियमों में विस्तृत उपबन्ध दिये गये हैं तथा इन विषयों के लिये स्पष्ट और ठीक-ठीक शब्दों म आवश्यकताओं का उल्लेख किया गया है। सफाई, प्रकाश, संवातन आदि के उपबन्धों के अतिरिक्त, जिनका उल्लेख १९३४ के अधिनियम में भी किया गया था, १९४८ के अधिनियम में २५० या इससे अधिक श्रमिकों वाली फैक्टरियों में निरर्थक और क्षेप्य पदार्थों को फेंकने, धूल और धुयें को समाप्त करने, थूकदानों की व्यवस्था करने, तापक्रम को नियन्त्रित करने, ग्रीष्म काल में पीने के लिये ठण्डे पानी की व्यवस्था करने तथा पानी रखने के स्थान को साफ करने के लिये नौकर लगाने की भी व्यवस्था की गई है। भीड़-भाड़ को समाप्त करने के लिये उन तमाम कारखानों में जो इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् बने यह बात अनिवार्य कर दी गई है कि प्रत्येक श्रमिक के लिये कम से कम ५०० घन फीट का स्थान होना चाहिये। अन्य कारखानों में प्रत्येक श्रमिक के लिये कम से कम ३५० घन फीट स्थान की व्यवस्था की गई है। (पृष्ठ ५४६-५५० देखिये।)

अधिनियम मे उन सावधानियो का भी विस्तृत रूप मे उल्लेख किया गया है जिनको श्रमिको की सुरक्षा के लिये लागू करना आवश्यक है। इनका उल्लेख कार्य की दशाओ वाले अध्याय मे किया जा चुका है। कुछ नए उपबन्ध जो इस सम्बन्ध मे इस अधिनियम मे बनाये गये है वह निम्नलिखित बातो के लिये है नई मशीनो के खोल की व्यवस्था, शक्ति को तत्काल बन्द करने की व्यवस्था तथा पानी ऊपर फेंकने के यन्त्र व लिफ्ट, क्रेन व दूसरे बोझ उठाने वाले यन्त्र प्रशर मशीनें, आंखो की सुरक्षा, खतरनाक गैसो व विस्फोटक तथा आग पकडने वाले पदार्थों से सुरक्षा आदि। अधिनियम मे इस बात की व्यवस्था भी है कि कोई भी श्रमिक न तो इतना बोझ उठायेगा और न ले जायेगा जिससे उसे क्षति पहुचने की सम्भावना हो। राज्य सरकारो को यह अधिकार है कि वह स्त्री, पुरुषो तथा बच्चा द्वारा उठाये जाने अथवा ले जाने वाले बोझ की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दें। १९७६ के सशोधन द्वारा यह अनिवार्य कर दिया गया है कि जिन कारखानो मे एक हजार अथवा इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हो वहाँ सुरक्षा अधिकारी की नियुक्ति की जाए तथा घातक दुर्घटनाये होने पर उनके घटित होने के १ माह के अन्दर उनकी जाँच-पडताल की व्यवस्था की जाए। इस सशोधन मे सुरक्षा तथा व्यवसायजनित स्वास्थ्य सर्वेक्षणो की व्यवस्था का भी प्रावधान किया गया है।

अधिनियम मे धोने की सुविधाओ, प्राथमिक चिकित्सा साधनो, कैन्टीन, विश्राम स्थानो तथा शिशु गृहण आदि जैसे कल्याण कार्यों के लिये एक अलग अध्याय है। इनमे से अधिकतर तो १९३४ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गये नियमो मे आ जाते है। १९४८ के अधिनियम मे दो नये कल्याणकारी उपबन्ध और जोडे गए है जो श्रमिको के बैठने की व्यवस्था से सम्बन्धित है और राज्य सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वे कारखानो मे ऐसे उपयुक्त स्थान बनाने के लिये नियम बनाये जहाँ श्रमिक अपने कपडे रख सके और गीले कपडो को सुखा सकें। अधिनियम मे राज्य सरकारो को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह ऐसा नियम बना दें जिनके अनुसार इस बात की व्यवस्था हो कि श्रमिको के प्रतिनिधि भी कल्याण-कार्यों के प्रबन्ध मे हाथ बटा सकें। अधिनियम के एक अन्य उपबन्ध के अनुसार प्रत्येक ऐसे कारखाने के मालिक को, जहा ५०० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते है, कल्याण अधिकारियो की नियुक्ति करनी होगी। उनके कार्य, योग्यताय आदि राज्य सरकारें निश्चित करेंगी। जिन कारखानो मे १५० या अधिक श्रमिक रोजगार म लगे हैं वहा कैन्टीन की तथा जिन कारखानो मे २५० से अधिक श्रमिक काम करते है वहा भोजन कक्ष की तथा जहा ३० या अधिक स्त्री श्रमिक कार्य करती है वहा शिशु गृहो की व्यवस्था करने के लिये भी उपबन्ध हैं। मुख्य अधिनियम मे स्त्री श्रमिकों की सख्या ५० थी किन्तु १९७६ के सशोधन द्वारा यह सख्या ३० कर दी गई है।

जहाँ तक युवा व्यक्तियो को रोजगार पर लगाने का सम्बन्ध है, १९३४ के

है कि प्रत्येक श्रमिक साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त निरन्तर १२ माह का सेवा काल (जिसका अर्थ एक वर्ष में २४० दिन होते है) पूरा हो जाने के पश्चात् निम्न-लिखित हिसाब से सवेतन अवकाश प्राप्त करने का अधिकारी होगा वयस्क श्रमिक २० दिन कार्य करने के पश्चात् एक दिन का सवेतन अवकाश तथा वर्ष मे कम से कम १० दिन का सवेतन अवकाश। बालक १५ दिन कार्य करने के पश्चात् १ दिन का तथा वर्ष मे कम से कम १४ दिन का सवेतन अवकाश। यदि कोई श्रमिक अपने अर्जित अवकाश का लाभ प्राप्त किये बिना नौकरी से निकाल दिया जाता है या नौकरी छोड़ जाता है तो ऐसी दशा मे मालिको को उसे उन दिनो का वेतन देना होगा। वयस्क श्रमिक छुट्टियों को ३० दिन तक तथा बालक ४० दिन तक एकत्रित कर सकते हैं। ये छुट्टियाँ अन्य होने वाली सामान्य छुट्टियो के अलावा है और इनका उपयोग वर्ष मे तीन किश्तों से अधिक मे नही किया जा सकता। (सशोधन के लिये पृष्ठ ६२ देखें)।

व्यवसायजनित बीमारियो (Occupational diseases) के सम्बन्ध मे भी अधिनियम मे व्यवस्था की गई है। कारखानो के प्रबन्धको के लिये यह अनिवार्य है कि ऐसी सभी विशेष दुर्घटनाओ की सूचना दे जिनके कारण श्रमिको की मृत्यु हो गई हो अथवा उन्हे गम्भीर शारीरिक चोट पहुची हो अथवा श्रमिको को कोई व्यवसायजनित बीमारी लग गई हो। व्यवसायजनित बीमारियो के रोगियो की चिकित्सा करने वाले डाक्टरो के लिये यह आवश्यक है कि वह भी ऐसे रोगियो की सूचना कारखानो के मुख्य निरीक्षक को दें। अधिनियम के अन्तर्गत कारखाना निरीक्षकों को यह अधिकार है कि वे उत्पादन प्रक्रिया मे प्रयोग होने वाले पदार्थों का नमूना ले सकें जिससे यह पता चल सके कि उनका प्रयोग अधिनियम के उप-बन्धो के प्रतिकूल तो नही हो रहा है या इससे श्रमिको को कोई शारीरिक चोट या उनके स्वास्थ्य को कोई हानि तो नहीं पहुंच रही है। राज्य सरकारो को यह अधि-कार है कि वह किसी भी दुर्घटना के कारणो अथवा व्यवसायजनित बीमारी के किसी भी कारण की जाँच के लिये उपयुक्त व्यक्तियों को नियुक्त कर सके।

जहा तक कानून के प्रशासन तथा लागू करने का सम्बन्ध है १६४८ के अधिनियम ने पूर्व के अधिनियमो द्वारा की गई व्यवस्था मे कोई परिवर्तन नही किया है। अधिनियम के प्रशासन की जिम्मेवारी राज्य सरकारो पर आती है जो इसका प्रशासन फैक्टरी निरीक्षको तथा प्रमाणित सर्जनो द्वारा करती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक जिला मजिस्ट्रेट अपने जिले का निरीक्षक होता है। परन्तु अधिनियम के विस्तार और विस्तृत क्षेत्र के कारण राज्य सरकारो के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वह कारखाना निरीक्षको की सख्या मे वृद्धि करें। इस कारण अनेक राज्य सरकारो ने कारखाना निरीक्षको की सख्या मे वृद्धि की है यद्यपि कारखानो की बढती हुई सख्या को देखते हुए निरीक्षको की सख्या बहुत अपर्याप्त है। इस कारण लगभग १५ से २० प्रतिशत कारखाने प्रतिवर्ष बिना

निरीक्षण के रह जाते हैं। यद्यपि अधिनियम के प्रशासन के लिये केन्द्रीय सरकार का कोई उत्तरदायित्व नहीं है तथापि उसने एक सलाहकारी संगठन की स्थापना की है। इसको कारखाने के मुख्य सलाहकार के कार्यालय के नाम से जाना जाता है। यह संगठन श्रम सूचनाओं के विषय में एक प्रकार से निकासी गृह का काम करता है तथा सुरक्षा, कल्याण व ऐसे ही सम्बन्धित विषयों में मालिकों और श्रमिकों की जानकारी हेतु छोटी-छोटी पुस्तिकायें, पोस्टर्स आदि प्रकाशित करता है। इसने कारखाना निरीक्षकों हेतु कुछ प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था की है। १९५१ के श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया था कि राज्यों में प्रति २५० कारखानों के लिये कम से कम एक निरीक्षक अवश्य होना चाहिये। १९५२ में श्रम निरीक्षकों के एक सेमिनार का आयोजन किया गया था। अनेक निरीक्षकों को विदेश भी भेजा गया है (देखें पृष्ठ ५६५)। अधिनियम के उपबन्ध लागू न करने पर दण्ड की भी व्यवस्था है (५०० रु० तक जुर्माना या तीन माह का कारावास या दोनों) दूसरी बार दण्ड दुगुना हो सकता है। बच्चों से दुगुना काम कराने पर तथा निरीक्षकों के कार्य में बाधा डालने पर भी दण्डों की व्यवस्था है। निरीक्षण के सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशों का उल्लेख पीछे अध्याय १५ में किया गया है।

अनियन्त्रित कारखानों अथवा कार्यशालाओं के सम्बन्ध में विधान
(Legislation Relating to Unregulated Factories or Workshops)

अनियन्त्रित (Unregulated) कारखानों अथवा कार्यशालाओं (Workshops) के सम्बन्ध में विधान मध्य प्रदेश तथा तमिलनाडु में पारित हुए हैं। भारत में रॉयल श्रम आयोग ने अपनी जाँच के समय अनियन्त्रित कारखानों में अनेक दोष पाये तथा उनको दूर करने की अनेक सिफारिशें कीं। आयोग का सुझाव था कि अधिनियम की कुछ धाराओं को शक्ति प्रयोग करने वाले तथा १० से २० श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले छोटे कारखानों तक विस्तृत कर देना चाहिये। उन्होंने यह भी सिफारिश की कि शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानों में कार्य की दशाओं को नियन्त्रित करने के लिये एक साधारण सा अधिनियम अलग से भी बनाना चाहिये।

यद्यपि शक्ति का प्रयोग करने वाले कारखानों के सम्बन्ध में १९४० में कारखाना अधिनियम में संशोधन करके आयोग की सिफारिशों को कार्य रूप दे दिया गया था, परन्तु शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानों के सम्बन्ध में उनकी सिफारिशों को कार्य रूप देने के लिये कोई अखिल भारतीय पग नहीं उठाया गया। केवल 'कारखाना (संशोधन) अधिनियम १९४०,' में "छोटे कारखाने" (Small Factories) नामक एक और अध्याय जोड़ दिया गया था। यह अध्याय शक्ति का प्रयोग करने वाले तथा १० से १९ व्यक्तियों को रोजगार पर लगाने वाले छोटे-छोटे औद्योगिक संस्थानों में बालकों के शोषण तथा उन्हें अस्वास्थ्यकर एवं खतरनाक

दशाओं मे रोजगार पर लगाने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता था। प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार था कि जहाँ बालक कार्य करते हो ऐसे किसी भी संस्थान को "छोटा कारखाना" घोषित कर सकती थी, चाहे श्रमिकों की संख्या १० से भी कम क्यो न हो।

जहाँ तक शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानों का सम्बन्ध है, मध्य प्रदेश सरकार ने सबसे पहले १९३७ मे 'सी० पी० अनियन्त्रित कारखाना अधिनियम' पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत अनियन्त्रित कारखाने की परिभाषा किसी भी ऐसे संस्थान से की गई थी जहाँ कारखाना अधिनियम लागू नही होता था तथा ५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते थे तथा जहाँ बीड़ी बनाने, चमडा उत्पादन करने व चमडा रंगने व साफ करने का काम होता था। अधिनियम के द्वारा दैनिक कार्य के घण्टे पुरुषो के लिये १०, स्त्रियो के लिये ९ तथा बालको के लिये ७ निर्धारित किये गये थे तथा ५ घण्टे कार्य करने के पश्चात् कम से कम आधा घण्टे के विश्राम मध्यान्तर की व्यवस्था थी। अधिनियम के अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियो को बालक माना गया था। किसी भी बालक को उस समय तक काम पर नही लगाया जा सकता था जब तक कि उसने १० वर्ष की अवस्था न पार कर ली हो तथा किसी भी प्रामाणिक चिकित्सक द्वारा कार्य करने के लिये योग्य होने का उसे प्रमाण-पत्र न मिल गया हो। अधिनियम मे स्त्रियो और बालकों की कार्य अवधि को भी नियमित करने की व्यवस्था थी। अधिनियम मे साप्ताहिक छुट्टी के भी उपबन्ध थे। इस अधिनियम के अतिरिक्त बीडी कारखानो की दशाओ को नियन्त्रित करने के लिये मध्य प्रदेश सरकार के द्वारा १९४१ और १९४८ मे मध्य प्रदेश नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत भी अनेक उपनियम बनाये गये थे। १९४७ मे इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखानो की कुल संख्या १३६ थी। श्रम अनुसधान समिति की जाँच के अनुसार इन दोनों अधिनियमो से कोई अधिक सफलता प्राप्त नही हुई।

तमिलनाडु मे १९४७ मे 'मद्रास गैर-शक्ति कारखाना अधिनियम' (Madras Non-power Factories Act) पारित किया गया। मध्य प्रदेश मे अधिनियम की भाँति इस अधिनियम मे भी उन संस्थानो के श्रमिकों की कार्य की दशाओ को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया था जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नही आते थे। परन्तु इस अधिनियम का विस्तार और क्षेत्र अधिक था। प्रारम्भ मे यह अधिनियम २३ ऐसे विशिष्ट उद्योगो और दस्तकारो से लागू किया गया जहाँ १० या अधिक श्रमिक कार्य करते थे, परन्तु सरकार को यह अधिकार था कि वह रोजगार की अनुसूची मे परिवर्तन कर सकती थी तथा अधिनियम को ऐसे स्थानो अथवा कारखानो मे भी लागू कर सकती थी जहाँ १० से कम श्रमिक कार्य करते हो। अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक गैर-शक्ति कारखाने के स्वामी को कारखाना चलाने के लिये लाइसेन्स लेना होता था। रोजगार के लिये न्यूनतम

आयु १४ वर्ष निर्धारित कर दी गई थी। १४ से १७ वर्ष तक के श्रमिकों को कार्य करने के योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण-पत्र रखना पड़ता था। काम के घण्टे प्रतिदिन ६ अथवा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित किये गये थे और श्रम समय-विस्तार की सीमा प्रतिदिन १० घण्टे निर्धारित की गई थी। एक साप्ताहिक छुट्टी की भी व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक वर्ष की नौकरी पर १२ बीमारी की छुट्टियों तथा मजदूरी सहित १२ आकस्मिक छुट्टियों के लिये भी उपबन्ध थे। मौसमी कारखानों में अवकाश की अवधि का निर्धारण श्रमिक द्वारा किये गये काम-दिनों के अनुसार होता था। स्वास्थ्य और सुरक्षा सम्बन्धी उपबन्ध १९३४ के कारखाना अधिनियम जैसे ही थे। किसी भी श्रमिक को, जिसने लगातार ६ मास तक काम किया हो, बिना कोई उपयुक्त कारण बताये अथवा एक माह का वेतन या इसके बदले में एक माह का नोटिस दिये बिना बर्खास्त नहीं किया जा सकता था।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अनियन्त्रित कारखाने अब १९४८ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत भी आते हैं। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, कार्य के घण्टे, रोजगार के लिये कम से कम आयु का निर्धारण, आदि से सम्बन्धित अधिनियम के कुछ उपबन्धों को किसी भी कारखाने पर लागू कर सकती हैं, चाहे उनमें कितने ही श्रमिक कार्य करते हों या शक्ति का प्रयोग होता हो अथवा नहीं। सी० पी० (मध्य प्रदेश) अनियन्त्रित कारखाना अधिनियम को जुलाई १९५२ में १९५२ के मध्य प्रदेश अधिनियम VII तथा मद्रास गैर-शक्ति कारखाना अधिनियम १९४७ को मई १९५१ में १९५१ के मद्रास अधिनियम XIV द्वारा निरस्त कर दिया गया। मद्रास सरकार ने एक अधिसूचना द्वारा १९४८ के कारखाना अधिनियम को उन सभी स्थानों पर लागू कर दिया जहाँ (क) बिना शक्ति की सहायता के उत्पादन प्रक्रियायें होती हैं, या साधारणतया शक्ति का उपयोग नहीं किया जाता, तथा (ख) १० या अधिक परन्तु २० से कम श्रमिक कार्य करते हैं।

१९५८ में मद्रास सरकार ने मद्रास बीड़ी औद्योगिक स्थान (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम [Madras Beedi Industrial Premises (Regulation of Conditions of Work) Act] भी पारित किया। इसके अन्तर्गत १९५९ में नियम बनाये गये और लागू कर दिये गये। अधिनियम में बीड़ी औद्योगिक स्थानों के लिये लाइसेंस लेने, निरीक्षकों की नियुक्ति और उनके अधिकारों का निर्धारण करने, स्वच्छता और मकान के स्तर को निर्धारित करने, बीड़ी उद्योग के स्थानों में भीड़-भाड़ को रोकने, पीने के पानी की व्यवस्था करने, तथा शौचालय और मूत्रालय, धोने की सुविधायें, शिशु गृह, प्राथमिक चिकित्सा, श्रमिकों के लिये कैन्टीन, कार्य के घण्टे (प्रतिदिन ६ और प्रति सप्ताह ४८ घण्टे), आराम समय, साप्ताहिक छुट्टियाँ, सवेतन वार्षिक छुट्टी, समयोपरि काम के लिये मजदूरी, बालकों को रोजगार पर लगाने की रोक आदि के १९४८ के कारखाना

अधिनियम के समान ही उपबन्ध है। इसी प्रकार के उपबन्ध केरल में "बीड़ी व सिगार औद्योगिक (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम १६५६" नामक अधिनियम में तथा कर्नाटक में "बीड़ी औद्योगिक (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम, १६५६" में भी किये गये थे।

केन्द्र सरकार ने नवम्बर १६६६ में एक अधिनियम पास किया जिसे **'बीड़ी व सिगार श्रमिक (काम की शर्तें) अधिनियम'** का नाम दिया गया। अधिनियम में निम्न बातों की व्यवस्था की गई— ठेके द्वारा काम की पद्धति का नियमन, बीड़ी तथा सिगार औद्योगिक संस्थानों के लिये लाइसेंस देना तथा स्वास्थ्य, काम के घण्टे, श्रम समय-विस्तार, विश्राम के घण्टे, समयोपरि काम, सवेतन वार्षिक अवकाश, कच्चे माल का वितरण, काम की दशायें, शिशुगृह व कैंटीन तथा बच्चों को काम पर लगाना आदि। ये सब व्यवस्थायें कारखाना अधिनियम की व्यवस्थाओं जैसी ही थी। कुछ अन्य विशेष व्यवस्थायें भी थीं, जैसे—श्रमिकों व मालिकों के बीच विवादों के शीघ्र निपटारे के उपाय, कच्चे माल का प्रबन्ध, रद्द की गई बीडियों की मजदूरियों का भुगतान आदि।

सरकार ने सन् १६७० में *ठेका श्रमिक (नियमन व उन्मूलन) अधिनियम* भी पास किया है जिसका उल्लेख पीछे अध्याय ३ में किया जा चुका है। भवन व अन्य निर्माण कार्यों में लगने वाले श्रमिकों की काम की शर्तों के नियमन के लिये भी कानून बनाने का प्रस्ताव है। यह प्रस्ताव सन् १६६५ से विचाराधीन है।

भारत में कारखाना विधान का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(A Critical Estimate of Factory Legislation in India)

१६४६ की श्रम अनुसन्धान समिति ने कारखाना अधिनियमों के अनेक दोषों की ओर संकेत किया था। इनमें से कुछ का उल्लेख तो कार्य की दशाओं वाले अध्याय में किया जा चुका है। इनमें से अधिकांश दोष अभी तक पाये जाते हैं। बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों में तो आमतौर पर अधिनियम के उपबन्धों का सन्तोषजनक रूप से पालन किया जाता है परन्तु छोटे या मौसमी कारखानों में अधिनियम के उपबन्धों का—विशेषतया कार्य के घण्टे, समयोपरि, बालकों को काम पर लगाने, सुरक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि के उपबन्धों का अपवचन (Evasion) किया जाता है। कभी-कभी मुफस्सिल स्थानों में छोटे छोटे कारखानों के प्रबन्धक श्रमिकों से अधिक काम लेने के लिये घड़ी की सुइयां को आगे पीछे कर देते हैं। कारखानों के निरीक्षण से, और यहाँ तक कि यकायक जाँच करने से भी कोई विशेष लाभ नहीं होता क्योंकि साधारणतया प्रबन्धकों को कारखाना निरीक्षकों के आने की सूचना पहले ही मिल जाती है। जहाँ परस्परव्यापी पारियों के काम होता था वहाँ पर श्रमिकों से अधिक कार्य लिया जाता था तथा कारखाना निरीक्षकों के लिये इसे रोकना बहुत कठिन था। अनेक कारखानों में समयोपरि काम के लिये अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार भुगतान नहीं किया जाता। कुछ

भी देखा गया है कि प्रबन्धक दो प्रकार के रजिस्टर रखते हैं, एक तो कारखाना निरीक्षक को दिखाने के लिये और दूसरा अपने लिए। बाल-श्रमिकों का अधिनियम कारखानों मे विशेषतया बहुत ही अधिक शोषण होता है। अक्सर बालकों को निर्धारित आयु से कम आयु पर ही रोजगार पर लगा लिया जाता है और इस हेतु उनके लिये झूठे प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिए जाते हैं। स्वास्थ्य और सुरक्षा के उपबन्धों का भी अपवचन होता है। इनका उल्लेख कार्य की दशाओं वाले अध्याय में किया जा चुका है।

कानून के अपवचन का एक मुख्य कारण यह है कि विभिन्न राज्यों में कारखाना निरीक्षकों की संख्या बहुत कम है। अभी हाल के वर्षों में फैक्टरियों की संख्या मे वृद्धि हुई है और छोटी फैक्टरियों में भी प्रमग अधिनियम का विस्तार हुआ है। परन्तु अधिकांश राज्यों म फैक्टरी निरीक्षकों की संख्या पूर्ववत् ही बनी हुई है। अनेक राज्यों म स्त्री निरीक्षकों की नियुक्ति नहीं की गई है, यद्यपि रॉयल श्रम आयोग ने इस सम्बन्ध मे सिफारिश की थी। अधिकतर राज्यों में इस बात की प्रवृत्ति पाई जाती है कि निरीक्षक दल का महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों में नियुक्त करने के स्थान पर केन्द्रीय या प्रधान कार्यालय म ही नियुक्त कर दिया जाता है। बहुधा कारखाना निरीक्षक रोजगार, कार्य के घण्टे, कार्य की दशाओ आदि जैसे मानवीय पहलुओं पर कम ध्यान देते हैं और कारखाना निरीक्षण के तकनीकी पहलुओं पर ही ध्यान एकत्रित करते हैं। निरीक्षकों का वेतन भी कम है और समाज म उनकी प्रतिष्ठा भी कम ही होती है। अत वह प्रभावशाली उद्योगपतियों के विरुद्ध कोई कार्य करने मे अपने आपको असहाय पाते हैं और हिचकिचाते हैं।

अधिनियम के अपवचन का एक कारण यह भी है कि नियम भंग करने वालों को, विशेषतया मुफस्सिल न्यायालयों द्वारा, बहुत कम दण्ड दिया जाता है। इस सम्बन्ध मे रॉयल श्रम आयोग के शब्दों म कहा जा सकता है कि "अधिकांश प्रान्तों म ऐसे अनेक मामले मिलते हैं जिनमे बहुत कम जुर्माना किया गया है, विशेषतया ऐसे मामलों मे जहाँ नियम बार-बार भंग किए गए हों। नियम भंग से अपराधी का जो लाभ होता है उसकी अपेक्षा जुर्माना बहुत कम किया जाता है।" रॉयल श्रम आयोग की रिपोर्ट के बाद से इस अवस्था मे कोई सुधार नहीं हुआ है। हल्का दण्ड देने का परिणाम यह होता है कि इसकी अपेक्षा कि अपराधियों पर अच्छा प्रभाव पड़े, उन्हें अपराध के लिये प्रोत्साहन मिलता है। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को अनेक छूटें प्रदान करने का अधिकार है। परन्तु ऐसी छूटें सब जगह एक समान नहीं हैं और अनेक मामलों मे तो ये न्यायोचित भी नहीं होतीं।

कारखाना विधान का एक अन्य दोष यह रहा है कि १९४८ के कारखाना अधिनियम से पूर्व संस्थानों की एक बड़ी संख्या पर कोई कानून लागू नहीं होता

था। १९४८ का कारखाना अधिनियम भी उन संस्थाओं पर लागू नहीं होता जो शक्ति का प्रयोग नहीं करते तथा जहाँ २० से कम श्रमिक काम करते हैं, यद्यपि राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वह अधिनियम को, यदि चाहे तो ऐसे संस्थानों पर भी लागू कर सकती है। बीड़ी अभ्रक, चमड़ा, कालीन बुनने, चमड़े को देशी विधि से साफ करने, ऊन साफ करने, चटाई बुनने, दस्तकारी आदि जैसे अनियन्त्रित उद्योगों में औद्योगिक श्रमिकों को सबसे कम सुरक्षा प्रदान की गई है और तमिलनाडु, मध्य प्रदेश और केरल को छोड़कर इनके ऊपर कोई विधान लागू नहीं होता। ऐसे उद्योगों को 'शोषित उद्योग' (Sweated Trades) कहा जाता है। इस बात की बहुत अधिक आवश्यकता है कि विधान को इन उद्योगों तक विस्तृत किया जाये। ऐसे उद्योगों में कार्य की दशायें अत्यन्त शोचनीय हैं, श्रमिकों को बहुत कम मजदूरी दी जाती है तथा बाल श्रमिकों का खूब शोषण किया जाता है। शिशुओं को विविध प्रकार के सभी काम करने पड़ते हैं, यहाँ तक कि मालिकों का घरेलू काम भी करना पड़ता है। इस प्रकार उन्हें कार्य सीखना बहुत महँगा पड़ता है। केन्द्रीय सरकार का उसके लिये अलग से विधान बनाना चाहिए और इस विषय को राज्य सरकारों पर ही नहीं छोड़ देना चाहिये। शिशुओं के लिये अब १९६१ का शिक्षुता अधिनियम, जिसका उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया गया है, पारित किया गया है।) देश में कारखाना अधिनियम को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिये यह आवश्यक है कि अधिनियम को दृढ़तापूर्वक लागू किया जाये, निरीक्षक दल की संख्या में वृद्धि की जाये, निरीक्षकों को अधिक अधिकार और प्रतिष्ठा दी जाये, विभिन्न राज्यों के कानूनों में समानता लाई जाये तथा अधिनियम को अनियन्त्रित कारखानों तक विस्तृत कर दिया जाये। जहाँ तक अधिनियम के उपबन्धों का सम्बन्ध है वह जिस उद्देश्य से अधिनियम बनाया गया है, उसके लिये पर्याप्त प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशें पृष्ठ ५५८-५९ पर दी गई हैं।

खानों में श्रम विधान
(Mining Legislation)

१९२३ का भारतीय खान अधिनियम
(The Indian Mines Act, 1923)

कोयले की खानों में श्रमिकों के रोजगार की दशाओं को विनियमित करने के हेतु सर्वप्रथम प्रयास १८९४ में किया गया था, जब खानों के एक निरीक्षक की नियुक्ति की गई थी। यह नियुक्ति १८९० में बर्लिन में हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के फलस्वरूप हुई थी, परन्तु कारखाना में कार्य की दशाओं को विनियमित करने वाला प्रथम भारतीय खान अधिनियम १९०१ में पारित हुआ। इसके अन्तर्गत निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम में अनेक दोष थे तथा कई बार संशोधन के पश्चात् इस अधिनियम को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया

गया और इसके स्थान पर १९२३ का अधिक व्यापक "भारतीय खान अधिनियम" पारित किया गया। इस अधिनियम में १९२८ में संशोधन हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा १९३१ में पारित एक अभिसमय व मसौदे के परिणामस्वरूप, जो अभिसमय कोयले की खानों में काम के घण्टों व सम्बन्ध में था तथा रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के अनुसार इस अधिनियम में १९३५ में फिर संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत इसमें कुछ आमूल परिवर्तन किये गये। इस अधिनियम में इसके पश्चात् भी १९३६, १९३७, १९४० तथा १९४६ में संशोधन हुए तथा अन्त में इसके स्थान पर १९५२ का भारतीय खान अधिनियम पारित किया गया।

१९५२ से पूर्व संशोधित १९२३ के भारतीय खान अधिनियम के मुख्य उपबन्धों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

यह अधिनियम समस्त खानों पर लागू होता था। खान की परिभाषा इस प्रकार की गई थी "कोई खुदाई जहाँ खनिज पदार्थों को प्राप्त करने या उनकी खोज करने के हेतु कार्य किया जाता है या किया जा रहा है।" इस अधिनियम में खान के ऊपर कार्य में लगे हुए व्यक्तियों के लिए कार्य के घण्टे प्रतिदिन १० निर्धारित किए गए थे और अधिकतम श्रम समय विस्तार भी १२ घण्टे निश्चित कर दिया था जिसमें प्रत्येक ६ घण्टे कार्य के पश्चात् १ घण्टे के विश्राम मध्यान्तर की भी व्यवस्था थी। खान के भीतर रोजगार में लगे व्यक्तियों के लिए दैनिक कार्य-समय तथा श्रम-समय-विस्तार ९ घण्टे निश्चित किया गया था। समय कर्मचारियों के लिए साप्ताहिक कार्य घण्टे ५४ निर्धारित किए गए थे। किसी भी व्यक्ति को खान में सप्ताह के ६ दिन से ज्यादा कार्य करने की अनुमति नहीं थी। निरीक्षण तथा प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी इन उपबन्धों के अन्तर्गत नहीं आते थे। १५ वर्ष की आयु से कम के बालकों का रोजगार में लगाना निषेध था तथा १७ वर्ष से कम आयु वाले व्यक्तियों को खान के भीतर कार्य करने की तब तक अनुमति नहीं थी जब तक वे इसके योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण पत्र न दें।

अधिनियम में पीने के पानी का समुचित प्रबन्ध, चिकित्सा यन्त्रों की व्यवस्था तथा उचित रूप से जल-मल निकास के प्रबन्ध की व्यवस्था भी की गई थी। १९४६ के संशोधित अधिनियम द्वारा इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई कि खानों के ऊपर या उनके समीप स्त्री और पुरुषों के लिए अलग-अलग ऐसे स्नानगृह बनाये जायें जो बन्द हों और जिनमें फव्वारे से स्नान करने की व्यवस्था हो। १९४५ में खान (संशोधित) अध्यादेश द्वारा खानों में शिशुगृह की व्यवस्था की गई थी। १९४७ में इस अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया। किन्तु इसके उपबन्धों को अधिनियम में समावेश कर लिया गया। खान में कार्य करने वालों की सुरक्षा के लिए विनियम भी बनाए गए। इसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण खान क्षेत्रों में ऐसे खान बोर्डों के निर्माण की व्यवस्था थी जिनमें मालिकों, कर्मचारियों तथा सरकार के प्रतिनिधि हों। ऐसे बोर्डों का कार्य सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत

नियम बनाने मे सहायता करना था। उत्पादन, रोजगार, श्रमिको की आय, कार्य के घण्टे आदि के विषय मे आँकडे एकत्रित करने के हेतु सरकार ने कोयला खान विनियमों मे सशोधन भी किया। यह अधिनियम हिमाचल प्रदेश तथा मध्य प्रदेश मे एव कुछ भारतीय राज्यों मे भी लागू होता था तथा तिरवांकुर व कर्नाटक की खानो के लिये अलग अधिनियम थे। अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व भारत सरकार का था तथा इस अधिनियम का प्रशासन करने तथा उसे लागू करने के लिए खानो का एक मुख्य निरीक्षक नियुक्त किया गया था।

खानो मे रोजगार की दशाओं की विनियम खान अधिनियम के अतिरिक्त खानो मे स्वास्थ्य बोर्डों की स्थापना करके भी किया गया है। ये बोर्ड श्रमिको के स्वास्थ्य की देखभाल करते हैं। इन बोर्डों को यह अधिकार दिया गया है कि वह खानो के मालिको को इस बात के लिये बाध्य करे कि वे खानो के क्षेत्र मे आवास, जल, सफाई की सुविधायें एव चिकित्सा सहायता की व्यवस्था करे।

जहाँ तक खान के भीतर कार्य करने वाली स्त्रियों के रोजगार का सम्बन्ध है मार्च १९२९ में ऐसे विनिमय बनाए गए थे, जिनसे अगले १० वर्षों में, अर्थात् १९३९ तक, स्त्रियो का खान के भीतर कार्य करना धीरे-धीरे समाप्त कर दिया जाये। परन्तु १९३७ मे एक अधिसूचना द्वारा स्त्रियो का खान के भीतर कार्य करना निषेध कर दिया गया। युद्ध काल मे श्रमिकों की कमी के कारण १९४३ में यह रोक हटा ली गई थी, किन्तु पुन १९४६ मे यह रोक लगा दी गई।

१९५२ का भारतीय खान अधिनियम
(India Mines Act of 1952)

खानो के श्रमिक सम्बन्धी विधान को कारखानो के श्रमिक सम्बन्धी विधान के समान करने के लिये भारत सरकार ने १८ दिसम्बर १९४९ को ससद् मे एक विधेयक प्रस्तुत किया जो १५ फरवरी १९५२ को पारित किया गया। इसे भारतीय खान अधिनियम १९५२ को कहा जाता है। १९५९ मे इसमे सशोधन किया गया। यह अधिनियम पिछले सभी ऐसे अधिनियमो को निरस्त करके उनका समन्वय करता है जो खानो मे सुरक्षा तथा श्रमिको के विनियमन से सम्बन्धित थे। यह अधिनियम अन्य बातो के अतिरिक्त कम कार्य घन्टे, समयोपरि तथा वेतन सहित छुट्टियों की भी व्यवस्था करता है तथा सुरक्षा व स्वास्थ्य सम्बन्धी उपबन्धों को दृढ बनाता है। अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित है—

(क) यह अधिनियम उन समस्त व्यक्तियो पर लागू होता है जो खान के कार्यों मे, या उससे सम्बन्धित किसी भी कार्य मे लगे हुए है। जम्मू व कश्मीर के अतिरिक्त समस्त भारत पर यह लागू होता है। खानो के अन्तर्गत खानो से सम्बन्धित अन्य कार्य तथा स्थान, जहाँ भी श्रमिक कार्य करते है, सम्मिलित कर लिये गए है। खान की परिभाषा अधिक विस्तृत कर दी गई है और उसमे निम्नलिखित सम्मिलित किए गए है—खानो के रास्ते, समतल क्षेत्र, मशीन, ट्रामगाड़ियाँ, कार्यशालायें,

बिजली घर, ट्राम गाड़ियों आदि के ठहरने के स्थान, खनिज पदार्थ और कोयला धोने के स्थान आदि। (ख) खान के ऊपर तथा खान के भीतर कार्य करने वाले समस्त वयस्क श्रमिकों के कार्य घण्टे घटाकर प्रति सप्ताह ४८ कर दिये गये हैं तथा अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि खान के अन्दर प्रतिदिन ८ घण्टे से अधिक एवं खान के ऊपर प्रतिदिन ९ घण्टे से अधिक किसी श्रमिक को कार्य करने की अनुमति नहीं होगी। काम करने के प्रत्येक पाँच घण्टों के पश्चात् आधे घण्टे का एक विश्राम मध्यान्तर देना होगा और कोई भी श्रमिक सप्ताह में ६ दिन से अधिक कार्य नहीं करेगा। १९२३ के अधिनियम ने समयोपरि दर की दर निश्चित नहीं की थी किन्तु १९५२ के अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी की साधारण दरों से १½ गुनी दरों पर समयोपरि दी जायगी तथा खान के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी की साधारण दर से दुगुनी दर पर समयोपरि दी जायगी परन्तु कोई भी श्रमिक समयोपरि सहित एक दिन में १० घण्टों से अधिक कार्य नहीं कर सकता। कार्य का अधिकतम समय-विस्तार खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए १२ घण्टे तथा खान के भीतर कार्य करने वालों के लिये ८ घण्टे निश्चित किया गया है। (ग) अधिनियम के अन्तर्गत खान के अन्दर रोजगार में लगे व्यक्तियों की आयु-सीमा बढ़ाकर १७ से १८ कर दी गई है, तथा किशोर (अर्थात् १५ से १८ वर्ष की आयु के बीच के व्यक्ति) श्रमिकों के लिए प्रतिदिन ४½ घण्टे काम की सीमा निर्धारित की गई है। (घ) खान के अन्दर स्त्रियों को रोजगार पर लगाने पर प्रतिबन्ध इस अधिनियम में भी है, तथा इस बात की व्यवस्था है कि खान के ऊपर किसी भी स्त्री को प्रातः ६ बजे से सन्ध्या ७ बजे के अतिरिक्त कार्य करने की अनुमति नहीं दी जायेगी। राज्य सरकारें इन सीमाओं को कम या अधिक कर सकती हैं, किन्तु १० बजे रात्रि से ५ बजे प्रातः के बीच कार्य करने की अनुमति नहीं दे सकती। (ङ) अधिनियम में एक साप्ताहिक विश्राम दिवस के अतिरिक्त श्रमिकों को वेतन सहित छुट्टियाँ तथा एवजी छुट्टियों को प्रदान करने की भी व्यवस्था है। श्रमिक १२ माह की निरन्तर नौकरी पूर्ण करने के पश्चात् निम्न दरों पर छुट्टी ले सकते हैं— (i) मासिक वेतन पाने वाले श्रमिक १४ दिन, (ii) साप्ताहिक मजदूरी पाने वाले श्रमिक अथवा सामान चढ़ाने वाले या खान के भीतर उतरने पर कार्य करने वाले श्रमिक ७ दिन। मासिक मजदूरी पाने वाले श्रमिक ३८ दिन तक छुट्टियाँ एकत्रित कर सकते हैं। (च) १९४८ के फैक्टरी अधिनियम के आधार पर इस अधिनियम में स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा कल्याण सम्बन्धी पर्याप्त उपबन्ध भी बनाए गए हैं। कल्याण अधिकारी की नियुक्ति, प्राथमिक उपचार का सामान, शिशु-गृह, विश्राम-गृह, खान के ऊपर स्नानघर, बचाव करने वाले केन्द्रीय स्थान, कैंटीन, एम्बुलेंस तथा रोगी को ले जाने वाले स्ट्रेचर, ठण्डा और शुद्ध पीने का जल, शौचालय, मूत्रालय आदि की अधिनियम में व्यवस्था है। (छ) अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने

वालो का समुचित दण्ड देने की भी व्यवस्था है, यह दण्ड कारावास या जुर्माना या दोनो के रूप मे दिया जा सकता है। (ज) प्रशासन हेतु अधिनियम मे खानो के मुख्य निरीक्षको की नियुक्ति की व्यवस्था है, जिसकी सहायता खानो के निरीक्षक तथा जिलाधीश करेंगे। निरीक्षक ऐसे औपचारिक कार्यों को करने की आज्ञा दे सकते है जो श्रमिको की सुरक्षा के लिये आवश्यक हो।

१९५२ के भारतीय खान अधिनियम मे १९५९ के खान (सशोधन) अधिनियम द्वारा सशोधन किया गया है। यह सशोधित अधिनियम १६ जनवरी १९६० को लागू किया गया। सशोधित अधिनियम की कुछ मुख्य धारायें निम्नलिखित है— 'खान' शब्द की परिभाषा को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया है और अब इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के बोरिंग, बरमे के छेद, तेल के कुऐं, खानो के मार्ग, पत्थर की खानें, खुले स्थान पर किये जाने वाले कार्य, रेलें, हवाई, रज्जु मार्ग, वाहक, ट्राम्बे, सरकनें (slidings), निर्माणशालायें तथा विद्युत घर आदि और वे समस्त स्थान जो खानो के समीप या खानो से सम्बन्धित हैं और जिनमे खानो से सम्बन्धित कार्य होते है, खान के अन्तर्गत आ जाते है। सशोधित अधिनियम मे यह व्यवस्था भी है कि जिन खानो मे १५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहां प्राथमिक उपचार के लिये पृथक् कमरे होने चाहिये। १९५२ के अधिनियम मे इसके लिए ५०० श्रमिको की शर्त थी। अधिनियम मे यह भी धारा है कि उस खान म श्रमिकों को रोजगार पर नही लगाया जा सकता जिसका मालिक खान निरीक्षक की चेतावनी पर भी ऐसी बातों को ठीक नही करता जिनमे मानव-जीवन को, अगो अथवा सुरक्षा को खतरा हो। इस अधिनियम मे खान के अन्दर और खान के ऊपर दोनो ही स्थानो पर किये जाने वाले समयोपरि काम के लिए साधारण मजदूरी से दुगुनी मजदूरी देने की व्यवस्था की गई है जबकि मूल अधिनियम मे ये दरें खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिको के लिये डेढ गुनी और खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिको के लिए दुगुनी थी। सशोधित अधिनियम मे यह भी व्यवस्था की गई है कि खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिको को प्रति २० दिन काम के उपरान्त एक सवेतन छुट्टी दी जायेगी और खान के ऊपर काम करने वालो को प्रति १६ दिन काम के उपरान्त एक सवेतन छुट्टी मिलेगी। इस प्रकार की छुट्टियाँ ३० दिन तक एकत्रित की जा सकती है। अधिनियम के उपबन्धो का उल्लघन करने पर और अधिक दण्ड देने की व्यवस्था है।

सन् १९५२ के खान अधिनियम मे सशोधन का प्रस्ताव किया गया था ताकि अधिनियम को लागू करने मे आने वाली कठिनाइयो को दूर किया जा सके और सुरक्षा के उपबन्धो को और मजबूत बनाया जा सके। इस सम्बन्ध मे खान (सशोधन) विधेयक १९७२ लाया गया जो विचार के लिये ससद् की सयुक्त समिति को सौंपा गया था। किन्तु लोक सभा के भग हो जाने के कारण यह विधेयक समाप्त हो गया था।

है। बागान में कार्य भी साधारणतया मौसमी होता है। अन्य कारखानों की तुलना में बागान में श्रमिकों की आय भी कम होती है। बागान में चिकित्सा तथा शिक्षा की सुविधाओं का अभाव है और कल्याण सुविधायें भी अपर्याप्त हैं। मलेरिया बुखार आम बात है तथा श्रमिकों का स्वास्थ्य साधारणतः असन्तोषजनक रहता है। आवास की दशाओं में काफी सुधार की आवश्यकता है। ये समस्त बातें बताती हैं कि बागान के श्रमिकों के जीवन के सब पहलुओं पर ध्यान देने वाले एक व्यापक विधान की बहुत अधिक आवश्यकता रही है। परन्तु १९५१ तक इस दिशा में कोई पग नहीं उठाया गया। १९५१ में ही एक पृथक् बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया गया, परन्तु इसको भी अप्रैल १९५४ तक लागू नहीं किया गया।

आरम्भ में उठाये गये कुछ पग (Early Measures)

भारतीय श्रम विधान के इतिहास में आरम्भ में उठाए गये वैधानिक पग बागान में चाय पर लगे हुए श्रमिकों से सम्बन्धित थे। असम के बागान उद्योग को अपने विकास के प्रारम्भिक चरणों में श्रमिकों की कमी की समस्या का सामना करना पड़ा था। मालिकों को दूर-दूर से तथा अन्य राज्यों से श्रमिक भर्ती करने पड़ते थे जिसके कारण अनेक कठिनाइयाँ तथा समस्यायें उत्पन्न हो गई थीं। इन कठिनाइयों को हल करने के लिये १८६३ से १९०१ तक अनेक अधिनियम पारित किये गये थे जिनमें पाँच बंगाल में थे तथा एक तमिलनाडु में था। इन अधिनियमों में भर्ती करने वालों के लाइसेंस, परावासी (Emigrants) श्रमिकों की रजिस्ट्री, यात्रा में स्वास्थ्य सम्बन्धी सावधानियाँ, श्रमिकों से संविदा की ३ से ५ साल तक की अवधि तथा मजदूरी निर्धारण आदि की व्यवस्था की गई थी। मालिकों को यह अधिकार दे दिया गया था कि भागे हुये श्रमिकों को गिरफ्तार करा लें। संविदा भंग करना एक कानूनी अपराध बना दिया गया था। किन्तु इन सब व्यवस्थाओं ने अनुबन्ध श्रम (Indentured Labour) पद्धति को जन्म दे दिया। इस पद्धति ने श्रमिकों की पर्याप्त रूप से पूर्ति की समस्या को हल करने के स्थान पर नवीन कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दीं। अतः १९०१ में असम श्रम तथा परावासी अधिनियम पारित किया गया। १९०८ में तथा १९१५ में दो संशोधित अधिनियम पारित किये गये, जिन्होंने अनुबन्ध श्रम पद्धति समाप्त कर दी तथा मालिकों द्वारा श्रमिकों का निजी रूप से गिरफ्तार कर लेने के अधिकार को वापिस ले लिया। तथापि यह अधिनियम उद्योग की समस्याओं को हल करने में असफल रहा। १९२६ तथा १९३२ में १८५९ एवं १८६० के अधिनियम निरस्त कर दिये गये। भारत में रॉयल श्रम आयोग ने इन सब प्रश्नों पर विस्तार से विचार किया था तथा अनेक सिफारिशें भी की थीं। इन सिफारिशों के आधार पर ही चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम १९३२ में पारित किया गया जो अक्टूबर १९३३ में लागू कर दिया गया। सन् १९७० में इसे

निरस्त कर दिया गया (देखिये पृष्ठ ४३-४४) और इसके स्थान पर 'बार क्षेप परावामी श्रम' (निरसन) अधिनियम १९७० में पास किया गया।

१९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम
(The Plantation Labour Act of 1951)

बागान की कार्य दशाओं को विनियमित करने के पूर्ण अभाव पर श्रम अनुसन्धान समिति (१९४६) ने अपने विचार प्रकट किये तथा बागान के लिये एक पृथक् अधिनियम बनाने की सिफारिश की थी। १९४७ में बागान के लिये एक औद्योगिक समिति की नियुक्ति की गई तथा भारत सरकार ने राज्य सरकारों, मालिकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों का बागान उद्योग की समस्याओं पर विचार करने के लिये एक सम्मेलन बुलाया। औद्योगिक समिति ने सिफारिश की कि उपयुक्त मजदूरी निश्चित करने के लिये बागान में श्रमिकों के जीवन-स्तर तथा निर्वाह लागत की जाँच की जानी चाहिये। यह कार्य श्रम ब्यूरो के निदेशक को सौंपा गया। सम्मेलन में यह भी तय हुआ कि बागान में डाक्टरी सहायता के वर्तमान स्तर का अध्ययन करने तथा उसमें सुधार के लिये सुझाव देने हेतु एक चिकित्सक विशेषज्ञ नियुक्त किया जाये। यह कार्य स्वास्थ्य सेवाओं (सामाजिक बीमा) के उप-महानिदेशक, मेजर ई० लायड जोन्स को सौंपा गया था। मार्च १९४८ में इन सबकी रिपोर्टों पर औद्योगिक समिति द्वारा विचार किया गया। इस समिति ने सिफारिश की कि बागान में १२ वर्ष से कम आयु वाले बालकों को रोजगार देने पर रोक लगा देनी चाहिये तथा डाक्टरी सहायता का स्तर कानून द्वारा निर्धारित कर दिया जाना चाहिये तथा बागान में कार्य की दशाओं में भी सुधार होना चाहिये। इन सबके परिणामस्वरूप अक्तूबर १९५१ में सरकार ने बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया। परन्तु बागान में मन्दी आने के कारण इसे लागू करने में विलम्ब हो गया। अप्रैल १९५४ में यह अधिनियम लागू किया गया। १९६० में इसमें एक संशोधन किया गया। अधिनियम का उद्देश्य बागान के श्रमिकों को कल्याण सुविधायें प्रदान करना तथा उनकी कार्य की दशाओं को नियन्त्रित करना है। अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्न प्रकार हैं—

(१) यह अधिनियम उन समस्त चाय, कॉफी, रबर तथा सिनकोना बागान में लागू होता है जिनका २५ एकड़ या अधिक क्षेत्र हो तथा जो ३० या अधिक व्यक्तियों को रोजगार में लगाये हुए हों। केन्द्रीय सरकार की अनुमति से किसी भी राज्य सरकार द्वारा यह अधिनियम अन्य बागान पर भी लागू किया जा सकता है। केरल, तमिलनाडु तथा कर्नाटक में, इलायची बागान को भी अधिनियम की परिधि में रखा गया। यह अधिनियम जम्मू तथा कश्मीर के अतिरिक्त समस्त भारत में लागू होता है।

(२) यह अधिनियम बनाने के लिय निरीक्षक कर्मचारी-वर्ग की राज्य सरकार द्वारा नियुक्ति की व्यवस्था करता है। इसके अन्तर्गत बागान का एक मुख्य

निरीक्षक तथा इसके अधीन अन्य निरीक्षक नियुक्त किये जाते हैं। इन निरीक्षकों के अधिकारों तथा कार्यों को स्पष्ट कर दिया गया है।

(३) अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों से यह कहा गया है कि वे पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था करें, स्त्री तथा पुरुषों के लिये पर्याप्त मात्रा में शौचालयों एवं मूत्रालयों की व्यवस्था करें तथा उचित डाक्टरी सुविधायें भी दें। यदि कोई मालिक इन सुविधाओं को प्रदान करने में असफल रहे तो मुख्य निरीक्षक इन सुविधाओं का प्रदान कर सकता है तथा मालिकों से इनका व्यय वसूल कर सकता है।

(४) बागान श्रमिकों के कल्याण के लिये भी अधिनियम में उपबन्ध है, जैसे— प्रत्येक उस बागान में, जिसमें १५० या अधिक श्रमिक रोजगार में लगे हों, एक कैन्टीन स्थापित करने की व्यवस्था है तथा उन बागान में, जहाँ ५० या अधिक स्त्री श्रमिक रोजगार में लगी हैं, वहाँ विशिष्ट प्रकार के शिशु गृहों के बनाने की व्यवस्था है। श्रमिक तथा उनके बालकों के लिये मनोरंजन तथा शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने की व्यवस्था भी है। राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित किये गये नियमों के अनुसार बीमारी व मातृत्व-कालीन-लाभ भत्ते भी दिये जायेंगे। प्रत्येक श्रमिक तथा उसके परिवार को आवश्यक आवास सुविधा देने का उत्तरदायित्व भी मालिक का है तथा राज्य सरकारें मकानों की विशेषतायें एवं स्तर तथा किराये के लिये नियम बना सकती हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकारें मालिकों द्वारा श्रमिकों के लिये पीने के पानी की सुविधा, शौचालय, मूत्रालय तथा छतरी, कम्बल, बरसाती आदि जैसी वस्तुयें प्रदान करने के लिये नियम बना सकती हैं, जिससे श्रमिकों का वर्षा तथा शीत से बचाव हो सके। प्रत्येक उस बागान में कल्याण अधिकारी भी नियुक्त करने की व्यवस्था है जहाँ ३०० या इससे अधिक श्रमिक साधारणतया रोजगार में लगे हों।

(५) अधिनियम वयस्क श्रमिकों के लिये प्रति सप्ताह ५४ घण्टे तथा किशोरों (१५ से १८ वर्ष की आयु के श्रमिक) एवं बालकों (१२ से १५ वर्ष की आयु के श्रमिक) के लिये प्रति सप्ताह ४० घण्टे कार्य समय निर्धारित करता है। अधिनियम कार्य के दैनिक घण्टे तो निर्धारित नहीं करता किन्तु यह निर्धारित करता है कि कोई भी श्रमिक आधे घण्टे के विश्राम मध्यान्तर के बिना ५ घण्टे से अधिक कार्य नहीं करेगा। श्रम समय-विस्तार प्रतिदिन १२ घण्टे निश्चित किया गया है। राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वह विश्राम के लिये साप्ताहिक दिन की व्यवस्था के लिये नियम बनायें तथा यदि साप्ताहिक छुट्टी के दिन काम कराया जाता है तो उसका भुगतान कैसे किया जाये, इसके लिये भी नियम बनायें। श्रमिकों को इस बात की छूट है कि वे विश्राम के किसी भी दिन का काम कर सकें बशर्ते कि विश्राम का वह दिन बन्द छुट्टी का दिन न हो। परन्तु उन्हें बिना एक दिन के विश्राम दिवस के लगातार १० दिन से अधिक काम करने की अनुमति

नही दी जाती । यदि कोई श्रमिक दैनिक कार्य के लिये निश्चित समय से आधे घण्टे के अन्दर नही आता तो मालिक उसे रोजगार म लगाने से मना कर सकता है। १२ वर्ष से कम के बालक बागान से काम नही कर सकते तथा ७ बजे साय से ६ बजे प्रात के बीच का रात्रि कार्य स्त्रियो तथा बालको के लिये निषेध कर दिया गया है। समस्त बालकों एव किशोरो को (१५ से १८ तक की आयु के बीच के व्यक्तियों को) अच्छा स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र देना होता है तथा उनकी प्रमाणित (Certifying) सर्जन द्वारा जाच की जा सकती है। यह प्रमाण-पत्र केवल १२ माह तक ही वैध होता है।

(६) प्रत्येक श्रमिक को सवेतन अवकाश निम्नलिखित दर पर दिये जाने की व्यवस्था है—(क) यदि श्रमिक वयस्क है तो कार्य के प्रत्येक २० दिनो पर एक दिन का अवकाश, (ख) यदि किशोर है तो कार्य के प्रत्येक १५ दिनो पर एक दिन का अवकाश। छुट्टिया ३० दिन तक एकत्रित की जा सकती है।

(७) अधिनियम के उपबन्धों का उल्लघन करने पर अथवा कार्य योग्यता का झूठा प्रमाण-पत्र देने पर भी दण्ड निर्धारित कर दिये गये है।

अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाकर अनेक राज्यों मे लागू भी कर दिये गये है। परन्तु अनेक राज्य ऐसे है जिन्होंने नियमों को अभी तक पूर्ण रूप से लागू नही किया है। असम, पश्चिमी बगाल एव केरल मे मातृत्व कालीन लाभ अधिनियमो के अन्तर्गत बागान की स्त्री श्रमिको को मातृत्व-कालीन लाभ प्रदान किये जाते थे जहाँ अब केन्द्रीय मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम १९६१ लागू है।

बागान श्रमिक अधिनियम को १९६० मे सशोधित किया गया और सशोधित अधिनियम २१ नवम्बर १९६० से लागू कर दिया गया है। इस सशोधित अधिनियम का उद्देश्य यह है कि इस बात को रोका जाये कि मालिक १९५१ के अधिनियम से बचने के लिये अपने बागान को छोटे छोटे टुकडो मे न बाटें क्योकि मालिको ने ऐसा करना आरम्भ कर दिया था। सशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार है—(क) राज्य सरकारो को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह अधिनियम के सभी या किसी भी उपबन्ध को किसी भी ऐसे बागान मे लागू कर सकते है जिसका क्षेत्रफल १० ११७ हैक्टर्स (२५ एकड) से कम है या जिसमे ३० से कम श्रमिक कार्य करते है। परन्तु यह बात उन बागान पर लागू नहीं होती जो अधिनियम के लागू होने से पहले ही मौजूद थे। (ख) चिकित्सा सुविधाओ को श्रमिको के परिवारो तक विस्तृत कर देने का उपबन्ध है। (ग) नौकरी समाप्ति की दशा मे श्रमिक को अर्जित छुट्टी प्रदान करने या उसके बदले म मजदूरी देने की व्यवस्था है। (घ) छुट्टी के दिनो मे जो मजदूरी दी जाये उसकी गणना किस प्रकार हो इसका भी उपबन्ध है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग का कहना था कि बागान श्रमिक अधिनियम १९५१ का विस्तार किया जाना चाहिये ताकि यथासम्भव अधिक से अधिक बागान इसकी

परिधि मे आ सकें। (देखिये पृष्ठ ३७२–३७४)। बागान श्रमिक (संशोधन) बिल १९७३ राज्य सभा मे १९७३ में प्रस्तुत किया गया था और ससद की सयुक्त प्रवर समिति को सौंप दिया गया था। समिति ने ३ मार्च १९७५ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी। समिति की सिफारिशें विचाराधीन हैं। बिल म अन्य बातों के साथ ही इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि एकड की सीमा को कम करके तथा कार्यरत श्रमिकों की सीमा को घटाकर अधिनियम को बागानों पर भी लागू कर दिया जाए। बिल मे बागानों के अनिवार्य पजीकरण की तथा वयस्क एव बाल श्रमिकों के लिये साप्ताहिक काम के घण्ट कम करने की भी व्यवस्था है।

यातायात श्रम विधान
(Transport Labour Legislation)

रेलवे श्रम विधान (Railway Labour Legislation)

भारत म यातायात के श्रमिकों क लिये जा विधान बने है उनमे सबसे महत्वपूर्ण विधान रेलवे श्रमिकों के लिये है। रेलवे कारखान या वर्कशाप तो फैक्टरी अधिनियम क अन्तर्गत आ जाती है, परन्तु रेलवे क अन्य श्रमिकों के लिये १९३० तक कोई वैधानिक सुरक्षा नही थी। १९३० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के दो अभिसमयों, अर्थात् १९१९ का काम के घण्ट (उद्योग) अभिसमय और १९२१ का साप्ताहिक विश्राम (उद्योग) अभिसमय को मान्यता देने के परिणामस्वरूप १८९० के भारतीय रेलवे अधिनियम में सशोधन किया गया है और इस अधिनियम मे एक नया अध्याय VI (A) जोड दिया गया। यह उन कर्मचारियों के लिये कार्य के घण्टे तथा विश्राम अवधि की व्यवस्था करता है जो कारखाना अधिनियम, खान अधिनियम तथा भारतीय व्यापारिक जहाज अधिनियम के अन्तर्गत नही आते। अधिनियम म १९५६ में भी सशोधन हुआ।

१९३० में संशोधित १८९० का भारतीय रेलवे अधिनियम
(The Indian Railways Act of 1890 as Amended in 1930)

भारतीय रेलवे अधिनियम के अन्तर्गत जो श्रमिक नही आते थे उनको दो वर्गों म विभाजित किया गया था। 'निरन्तर कार्य करने वाले श्रमिक" तथा "आवश्यक रूप से सविराम (Intermittent) श्रमिक"। अधिनियम के अनुसार एक महीने म औसत कार्य घण्टे सविराम श्रमिकों क लिये प्रति सप्ताह ८४ तथा निरन्तर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिय प्रति सप्ताह ६० निश्चित हुए थे। समस्त रेलवे कर्मचारियों को रविवार से आरम्भ होने वाले प्रत्येक सप्ताह म कम से कम २४ घण्टे का विश्राम देना आवश्यक था। परन्तु यह विश्राम उस समय देना आवश्यक नही था जब काम का अधिक जोर हो या रेलवे सेवा मे विघ्न आने जैसी कोई अकस्मात आवश्यकता आ जाये। ऐसी स्थिति म श्रमिकों को अपनी छुट्टी छोड़ने पर क्षतिपूर्ति मिलती थी। समयोपरि कार्य के लिये भुगतान की दर साधारण मजदूरी से १¼ गुनी निर्धारित की गई थी। अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को यह

अधिकार भी था कि अधिनियम मे दी हुई कुछ विशेष बातो के लिये सरकार नियम बनाये। इस प्रकार के बनाये गये नियमो को रेलवे कर्मचारियो के (रोजगार के घण्टो से सम्बन्धित) नियम कहा जाता है। परन्तु अधिनियम तथा नियम दोनो को साधारणतया "रोजगार घण्टो के विनियम" (Hours of Employment Regulations) कहा जाता है।

१९५६ का भारतीय रेलवे (संशोधन) अधिनियम

[Indian Railways (Amendment Act, 1956]

श्रम अनुसंधान समिति की रिपोर्ट तथा रोजगार घण्टो के विनियमो के कार्य पर वार्षिक रिपोर्टों मे अधिनियम के उपबन्धो की नए सिरे से जाच करने की आवश्यकता की ओर सकेत किया गया था। मई १९४७ मे न्यायाधीश राजाध्यक्ष के विवाचन निर्णय मे भी (जिसका नीचे उल्लेख किया गया है) नियमो के दोहराने की सिफारिश की गई थी। नियमो मे सशोधन कर दिये गये थे। परन्तु सरकार ने यही उचित समझा कि अधिनियम के अध्याय VI (A) मे सशोधन कर दिया जाय जिससे विवाचको के विवाचन निर्णयो को वैधानिक मान्यता मिल सके। परिणामस्वरूप भारतीय रेलवे (सशोधन) अधिनियम १९५६ के द्वारा इस अध्याय मे सशोधन कर दिया गया यद्यपि विवाचन निर्णय १९५१ तक धीरे-धीरे सभी रेलो पर लागू हो गया था। न्यायाधीश राजाध्यक्ष के विवाचन निर्णय मे रेलवे कर्मचारियो के वर्गीकरण, काम के घण्टे और विश्राम अवधि आदि के विषयो मे जो सिफारिशें की गई थी, सशोधित अधिनियम उन्ही से सम्बन्धित है। सभी रेलवे कर्मचारियों को कम से कम २४ घण्टे का लगातार विश्राम देना होगा जो रविवार को प्रारम्भ होगा। आपातकाल अथवा काम की असाधारण अधिकता के समय अधिनियम के अनुसार उपयुक्त अधिकारियों को यह भी अधिकार है कि वह काम के घण्टे और विश्राम समय के उपबन्धो मे अस्थाई रूप से छूट दे दें। समयोपरि काम के लिये साधारण मजदूरी की अपेक्षा कम से कम डेढ गुनी मजदूरी देने की व्यवस्था है।

न्यायाधीश राजाध्यक्ष का विवाचन निर्णय

(Justice Rajadhyakaha Award)

१९४६ मे अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी सगम ने रेलवे कर्मचारियो की कुछ मागो के सम्बन्ध मे भारत सरकार से एक विवाचक नियुक्त करने की प्रार्थना की, तथा अप्रैल १९४६ मे भारत सरकार द्वारा न्यायाधीश श्री० जी० एम० राजाध्यक्ष विवाचक नियुक्त किये गये। विवाद के विषय दैनिक मजदूरी पर कार्य करने वाले एव अवर (Inferior) वर्ग के कर्मचारियों की निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित थे काम के घण्टे, अवधि पश्चात विश्राम व्यवस्था, अवकाश, बदली श्रमिक, अवकाश के नियम, छुट्टियो की सुविधायें आदि। विवाचक ने अपना पचाट सरकार को मई १९४७ मे प्रस्तुत किया तथा रोजगार घण्टो के विनियमो के

क्षेत्र का विस्तार करने की सिफारिश की ताकि अब तक जिन विभिन्न अन्य श्रमिक वर्गों को सम्मिलित नहीं किया जाता था उन्हें भी सम्मिलित कर लिया जाय। पञ्चाट में श्रमिकों के निम्न चार वर्ग बनाने का सुझाव दिया गया—(क) श्रम प्रधान (Intensive) अर्थात वे श्रमिक जो ऐसा काम करते जो कठोर प्रकार का है और जिसमें निरन्तर ध्यान अथवा कठिन शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता होती है। इनके कार्यों के घण्टे महीने में औसतन प्रति सप्ताह ४५ होने चाहिये और उन्हें प्रत्येक सप्ताह ३० घण्टे की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये। (ख) निरन्तर (Continuous)— इस प्रकार के श्रमिकों के लिये कार्य के घण्टे महीने में औसतन प्रति सप्ताह ५४ होने चाहिये और प्रत्येक सप्ताह में ३० घण्टे की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये ये श्रमिक अन्य किसी वर्ग में नहीं आते। (ग) आवश्यक रूप से सविराम श्रमिक (Essentially Intermittent)—अर्थात वे श्रमिक जिनके दैनिक कार्य घण्टों में कुछ समय अवधि आ जाती है जब उन्हें काम नहीं करना पड़ता। इनके साप्ताहिक घण्टे ७५ होने चाहिये और साथ साथ एक पूर्ण रात्रि सहित प्रति सप्ताह २४ घण्टों की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये। (घ) इनके अतिरिक्त (Excluded) श्रम शक्ति कार्य पर लगे हुए कुछ चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी आते हैं जैसे सैलून परिचारक (Attendant) गेटकीपर आदि तथा विश्वसनीय कार्यों में लगे प्रबन्ध कर्मचारी तथा स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी कर्मचारी। इन कर्मचारियों को एक महीने में कम से कम ४८ घण्टों की एक लगातार विश्राम अवधि अथवा प्रत्येक पखवाड़े में २४ घण्टों की एक लगातार विश्राम अवधि प्राप्त होनी चाहिये। गाड़ी पर काम करने वाले कर्मचारियों के लिये विवाचक ने सिफारिश की थी कि उनका एक बार में काम का समय १० घण्टे से अधिक नहीं होना चाहिये तथा उनका नियमित रूप से समय एक माह में ३० निरन्तर घण्टों की चार अवधि रखी जाय अथवा २२ निरन्तर घण्टों की पाँच अवधियाँ होना चाहिये। विवाचक ने छुट्टियाँ देने कर्मचारियों को लगाने सवेतन अवकाश तथा छुट्टियों के सम्बन्ध में भी कुछ सिफारिशें कीं।

भारत सरकार ने कार्य के घण्टे विश्राम अवधि तथा छुट्टियों आदि पर अन्य कर्मचारियों के लाभ के विषय में पञ्चाट को स्वीकार कर लिया तथा एक आदेश द्वारा जून १९४८ में इस पञ्चाट को ३ वर्ष की अवधि के लिये रेलवे प्रशासन पर लागू कर दिया। अवकाश नियमों तथा छुट्टी की सुविधाओं के सम्बन्ध में निर्णय स्थगित कर दिया गया था। जुलाई १९४८ में तथा पुनः फरवरी १९५० में रेलवे मन्त्रालय ने निर्धारित तिथियों में तथा विभिन्न चरणों में पञ्चाट को लागू करने की आज्ञायें दीं। १९३१ के रेलवे कर्मचारी (रोजगार के घण्टे) के जो नियम थे उनको विवाचक की सिफारिशों का समावेश करके १९५१ के नवीन नियमों द्वारा स्थानान्तरित कर दिया गया। ३१ मार्च १९५१ तक पञ्चाट समस्त रेलवे में लागू कर दिया गया था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है सरकार ने नियमों को कानूनी मान्यता

देने हेतु १९५६ मे इस अधिनियम मे संशोधन किया। सन् १९५१ के नियम को समाप्त करके सरकार ने रेलवे कर्मचारी (काम के घण्टे) नियम १९६१ मे बनाए जो २३ दिसम्बर १९६१ से लागू हुए। नये नियमो मे अधिक रेल कर्मचारियो को लाने की व्यवस्था है। सन् १९६७-६८ मे इन नियमो मे ऐसा संशोधन किया गया कि बगलो के चपरासी, स्वास्थ्य व विस्तार प्रशिक्षक तथा परिवार नियोजन कर्मचारी भी इसकी परिधि मे आ गये। रोजगार घण्टो के इन विनियमो का प्रशासन मुख्य श्रम आयुक्त (केन्द्रीय) का उत्तरदायित्व है यद्यपि प्रशासन का वास्तविक कार्य प्रत्येक रेलवे क्षेत्र मे नियुक्त केन्द्रीय श्रम कमिश्नरो मुलह अधिकारियो तथा श्रम निरीक्षको के द्वारा किया जाता है। १९७६-७७ मे इन विनियमो के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियो की संख्या १४,०६,१५३ थी। कार्य की प्रकृति के अनुसार इनका वर्गीकरण इस प्रकार था—श्रम प्रधान : २५६३ (०·२%); निरन्तर. १२,३०,०७६ (८७.५%), सविराम : १,३०,६५३ (९.३%), अतिरिक्त ४२,५५८ (३.०७%)। मई १९७४ मे, रेल कर्मचारियो ने बोनस देने व काम के घण्टो मे कमी करने के प्रश्न पर २० दिन की हड़ताल की। सरकार ने बोनस की माँग तो स्वीकार नही की, किन्तु काम के घण्टे पहले ही घटाकर ८ घण्टे प्रतिदिन कर दिये गये थे।

जहाज सम्बन्धी श्रम विधान (Shipping Labour Legislation)

जहाजो मे रोजगार पर लगे किशोरो तथा बालको के कार्यो के विनियमन का महत्व सर्वप्रथम भारत सरकार के समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा लाया गया जिसने १९२० मे नाविको की न्यूनतम आयु से सम्बन्धित एक अभिसमय का मसौदा पारित किया गया था। यह अभिसमय भारत सरकार ने उस समय नही अपनाया। परन्तु १९२१ मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने जब दो और अभिसमय पारित किये तो भारत सरकार ने इन्हे स्वीकार कर लिया। १९२३ मे भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम पारित किया गया जिससे भारतीय नाविको के रोजगार की दशाओ का विनियमन हो सके। अधिनियम बनने के पश्चात् इसमे अनेक अवसरो पर संशोधन किया गया और अन्ततः १९५८ मे 'व्यापारी जहाज अधिनियम' द्वारा इसे निरस्त कर दिया गया। १९४९ का संशोधन नाविको के लिये रोजगार दफ्तर खोलने की व्यवस्था करता था तथा १९५१ का संशोधन नाविको की डाक्टरी जाँच की व्यवस्था से सम्बन्धित था।

१९२३ का भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम
(Indian Merchant Shipping Act, 1923)

इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित थे—

अधिनियम के अनुसार एक जहाजी कर्मचारी अर्थात् नाविक की भारतीय, ब्रिटिश अथवा विदेशी जहाज पर भर्ती केवल जहाज के 'मास्टर' (मुख्य प्रबन्धक) द्वारा या उसकी उपस्थिति मे तथा अधिनियम मे दिये गए एक निर्धारित ढग से ही

हो सकती थी। ऐसे जहाजों के अतिरिक्त जो स्वदेशी व्यापार में लगे हैं और जिनका भार ३०० टन से अधिक नहीं है, प्रत्येक अन्य भारतीय और ब्रिटिश जहाज के मास्टर को रोजगार के समय प्रत्येक नाविक के साथ एक करार करना होता था। इस करार में, जो एक निर्धारित फार्म पर होता था, कार्य की दशायें एवं मजदूरी आदि के विषयों में विस्तृत विवरण होता था। ऐसी स्थिति में जब किसी भारतीय नाविक की नौकरी विदेशी बन्दरगाह पर समाप्त कर दी गई हो, तो अधिनियम के अनुसार उसे किसी ऐसे जहाज पर नौकरी दिये जाने की व्यवस्था थी, जो या तो उस बन्दरगाह को जा रहा हो जहां से उस नाविक की भर्ती की गई थी या किसी ऐसे अन्य भारतीय बन्दरगाह को जा रहा हो जहां जाने के लिये कर्मचारी सहमत हो। इसके अतिरिक्त, यह भी व्यवस्था की जा सकती थी कि ऐसे नाविक को किसी अन्य भारतीय बन्दरगाह को बिना किराया आदि लिए या आपसी शर्तों के अनुसार भेज दिया जाये। विदेशी जहाज के मास्टर के लिये भी यह अनिवार्य था कि यदि कोई नाविक विदेशी यात्रा के लिए किसी भारतीय बन्दरगाह पर भर्ती किया गया है तो उस नाविक से इसी प्रकार का करार करे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ऐसे नाविक की, जो विदेश जाने वाले किसी भारतीय या ब्रिटिश जहाज पर नौकरी करता हो, अलहदगी भी जहाज के मास्टर के सम्मुख ही होती थी और उसे अलहदगी का सर्टिफिकेट भी मिलता था। १९३१ में एक संशोधित अधिनियम के अनुसार नाविक को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि वह जहाज के मास्टर से इस बात का सर्टिफिकेट ले कि उसका कार्य कैसा रहा था और उसने करार के अन्तर्गत अपने उत्तरदायित्व को पूरा किया था या नहीं।

१३ दिसम्बर १९४९ को जहाजी श्रमिकों के सम्भरण का विनियमन करने हेतु एक संशोधित अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम को भारतीय व्यापारी जहाज (संशोधित) अधिनियम कहते हैं। अधिनियम में बन्दरगाहों पर नाविकों के लिए रोजगार दफ्तरों की स्थापना की व्यवस्था थी जिससे व्यापारिक जहाजों के लिये नाविकों की भर्ती और पूर्ति की उचित व्यवस्था हो सके। जहाँ भी ऐसे दफ्तर स्थापित किए गए हो वहाँ ऐसे दफ्तरों के द्वारा किसी भी जहाज पर नाविकों को रोजगार पर लगाया जा सकता था। अधिनियम की इस धारा को भंग करने वाले व्यक्तियों पर १०० रुपये तक जुर्माना किया जा सकता है। बम्बई में जून १९५४ तथा कलकत्ता में मार्च १९५५ में ऐसे दफ्तर स्थापित किये जा चुके थे। १९५१ में अधिनियम में एक अन्य संशोधन द्वारा नाविकों की एक निर्धारित ढंग से डाक्टरी जाँच करने की व्यवस्था की गई थी तथा यह नियम बनाया गया था कि कोई भी व्यक्ति नौकरी योग्य स्वास्थ्य के प्रमाण-पत्र के बिना जहाज पर किसी रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता था।

कुछ अपवादों के अतिरिक्त १४ वर्ष से कम आयु वाले बालकों को रोजगार पर लगाना इस अधिनियम द्वारा निषेध कर दिया गया था। इसी प्रकार कुछ

विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त १८ वर्ष की आयु से कम आयु वाले किशोरों को भारत के किसी भी रजिस्टर्ड जहाज मे ट्रीमर्स और स्टोकर्स के रोजगार पर लगाना निषेध कर दिया गया था। जहाँ तक मजदूरी की अदायगी का सम्बन्ध है, नाविक का मजदूरी प्राप्त करने का अधिकार उस समय से प्रारम्भ हो जाता था जब वह कार्य आरम्भ करता था अथवा जब करार के अन्तर्गत वह जहाज पर उपस्थित होता था (इनम से जो भी अवधि पहले हो)। जहाजी माल के लादने अथवा उतारने के तीन दिन के अन्दर या नाविक की अलहदगी के पाँच दिन के अन्दर (जो भी अवधि पहले हो) मजदूरी की अदायगी कर देनी होती थी। यदि अदायगी म जो विलम्ब होता हो तो नाविक को प्रत्येक दिन के विलम्ब पर दो दिन के वेतन की दर से क्षति-पूर्ति प्राप्त करने का अधिकार था। परन्तु ऐसी क्षति-पूर्ति की कुल राशि दस दिन के दुगुने वेतन से अधिक नही हो सकती थी। प्रत्येक भारतीय तथा ब्रिटिश जहाज को मजदूरी तथा कटौती का ब्यौरा भी प्रस्तुत करना होता था। अधिनियम मजदूरी से कटौती करने तथा नाविक को पेशगी देने की व्यवस्था पर भी विनियमन करता था। यदि करार निश्चित अवधि के पहले समाप्त कर दिया जाए जो ऐसी स्थिति मे मजदूरी अदायगी की व्यवस्था कर दी गई थी। यदि कोई नाविक करार की शर्तों के विरुद्ध हटा दिया जाता था तब उसे न केवल अपनी मजदूरी पाने का अधिकार था वरन् वह एक माह की मजदूरी भी क्षति-पूर्ति के रूप म पाने का अधिकार था। अदायगी से पूर्व मजदूरी को न तो किसी के नाम किया जा सकता था, न ही मजदूरी की कुर्की कराई जा सकती थी।

अधिनियम मे नाविकों के स्वास्थ्य एव कल्याण के लिए भी उपबन्ध थे। उदाहरणतया, जहाज पर पर्याप्त पीने के पानी के लिए, यात्रा पर बीमारी एव दुर्घटनाओं आदि की स्थिति म उचित सामग्री के लिए तथा औषधियों की पर्याप्त रूप से प्राप्ति के लिए व्यवस्था की गई थी। मास्टर, नाविक तथा शिक्षार्थी नि शुल्क चिकित्सा सहायता पाने के अधिकारी थे। जहाज पर प्रत्येक नाविक को कम से कम १२ साधारण फीट ७२ घन फीट रहने का स्थान दिए जाने की व्यवस्था थी। अधिनियम क अन्य उपबन्ध अनुशासन सम्बन्धी विषयों, मृत नाविकों की सम्पत्ति का निबटारा, विपदाग्रस्त नाविकों की सहायता आदि के सम्बन्ध म थे। ऐसा नाविक जिसको वैधानिक रूप से रोजगार पर लगाया गया है, अपने करार के समाप्त होने तक जहाज नही छोड सकता था। नौकरी से भागने वाले नाविक की जहाज पर छोडी हुई समस्त वस्तुएँ तथा उसकी मजदूरी जब्त की जा सकती थी। यदि भारत के बाहर वह जहाज से भागे तो उसे १२ सप्ताह तक का कारावास भी दिया जा सकता था। कार्य करने से मना करने पर अथवा अपने जहाज पर समय पर नौकरी पर न आने पर या बिना पर्याप्त कारण के बगैर छुट्टी अनुपस्थिति होने पर नाविक को दण्ड दिये जाने की व्यवस्था थी। १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम कुछ परिवर्तनो के साथ किसी शक्ति से चलने वाले जहाज पर अथवा ५० या अधिक टन

की सुरक्षा एव काय पर पहुचने न रास्त म सुरक्षा प्रदान बाड (Fence) आदि का प्रब ध जहाजा पर पहुचन और आन जान क मार्ग एव यातायात मशीनो क चारा ओर घरा तथा अ य कई सुरक्षात्मक व्यवस्थाय प्राथमिक उपचार क यन्त्र डूबत हुए व्यक्ति का जीवन रक्षा का सामान आदि। अधिनियम को लागू करन क लिय विभि न बन्दरगाहो म गोदी सुरक्षा निरीक्षक नियुक्त किय गय ह। १९५३ म मन्त्रालय द्वारा दुघटनाओ की सूचना का उत्तरदायित्व पूणरूप स मालिका को कर दिया गया है। अधिनियम का प्रशासन कारखाना क मुख्य सलाहकार का उत्तरदायित्व है।

१९४८ का गोदी श्रमिक (रोजगार विनियमन) अधिनियम

[The Dock Workers (Regulation of Employment) Act 1948]

यह अधिनियम गतवष क एक एस ही अधिनियम क सामान्य सिद्धान्तो का अनुसरण करता है। अधिनियम मुख्य ब दरगाहो क लिय क न्द्रीय सरकार को अधिकार देता है तथा अन्य बन्दरगाहो क सम्ब ध म राज्य सरकारो को अधिकार दता है कि व गोदी श्रमिको की रजिस्ट्री की योजना ब नाय जिसस उनक रोजगार म अधिक नियमितता आ सक तथा गोदी श्रमिको क चाहे व पजीकृत हो या न हो रोजगार को एव किसी भी बन्दरगाह म एस रोजगार की दशाओ तथा शर्तों का विनियमन किया जा सक। योजना म निम्नलिखित बातें विशष रूप स होनी चाहियें (क) गोदी कमचारियो की भर्ती का विनियमन तथा उनका पजीकरण (ख) रोजगार की दशाओ एव शर्तों का विनियमन जसे—मजदूरी दर काय क घण्ट सवेतन अवकाश आदि (ग) उन गोदी कमचारियो क रोजगार पर जिन पर योजना लागू नहीं होती निय त्रण रखन या प्रतिब ध लगाना (घ) गोदी कमचारियो क लिये प्रशि क्षण एव कल्याण काय (च) एस स्थानो म जहा गोदी कमचारी काय पर लग हैं वहाँ उनक स्वास्थ्य एव सुरक्षा की व्यवस्था (छ) एसी अवधि म जब योजना क अन्तगत आय हुए गोदी कमचारियो को रोजगार या पूण रोजगार प्राप्त न हो उनको एक न्यूनतम वतन की अदायगी।

अधिनियम म इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि एक एसी सलाहकार समिति बनाई जाय जो इस अधिनियम क प्रशासन या योजना स सम्बन्धित अ य विषयो पर सरकार को परामश द। इस समिति म १५ स अधिक सदस्य नहीं होंगे और यह सदस्य बराबर की सख्या म सरकार श्रमिक और मालिको क प्रतिनिधि होंग और सरकार द्वारा मनोनीत एक अध्यक्ष होगा। निरीक्षको की नियुक्ति की व्यवस्था भी की गई है। जून १९४८ म केन्द्रीय सरकार क नियम बनाय तथा फरवरी १९५० म इस अभिप्राय म एक सलाहकार समिति की स्थापना की है। नियमो म १९६२ म सशोधन भी हुआ। इसक अतिरिक्त बम्बई म गोदी कम चारियो तथा उनक मालिको म हुए आपसी समझौते क आधार पर भारत सरकार न एक समिति इस हेतु नियुक्त की कि स्थानापन्न श्रमिको की पजीकरण करन,

उनकी मजदूरी निश्चित करने तथा बारी-बारी से उन्हें रोजगार पर लगाने के सम्बन्ध में एक व्यापक योजना बनायें। यह योजना, जिसे बम्बई गोदी कर्मचारी (रोजगार विनियमन) योजना कहते है, १९५१ में बनाई गई थी। इस योजना के प्रशासन के लिये बम्बई गोदी श्रमिक बोर्ड की स्थापना की व्यवस्था है तथा नित्य-प्रति के प्रशासन के लिये बम्बई स्टेवडोर संघ की नियुक्ति की व्यवस्था है। अनुशासनात्मक विषयों के लिये एक विशेष अधिकारी और अपीलों को सुनने के लिये अपीलीय अधिकरण भी नियुक्त किये गये है। योजना में मालिकों के लिये एक रजिस्टर, एक सुरक्षित पूल रजिस्टर तथा एक मासिक रजिस्टर बनाने की भी व्यवस्था है। जिन श्रमिकों को जिस मालिक के साथ काम करना होता है वे उसके अतिरिक्त किसी अन्य मालिक के साथ कार्य नही कर सकते और न ही वह मालिक पंजीकृत श्रमिकों के अतिरिक्त किसी अन्य को अपने यहाँ कार्य पर लगा सकता है। अप्रैल १९५१ में १२ सदस्यों के बम्बई गोदी श्रमिक बोर्ड की स्थापना हुई। इसी प्रकार की योजनाओं के अन्तर्गत ही कलकत्ता (सितम्बर १९५२), मद्रास (जुलाई १९५३), कोचीन (जुलाई १९५९) विशाखापट्टनम (नवम्बर १९५९), मारमागोवा (अप्रैल १९६५) और कांधला (अक्तूबर १९६८) में विद्तीय गोदी श्रमिक बोर्डों की स्थापना हो गई है। इन योजनाओं को जनवरी १९५५ में सरकार द्वारा नियुक्त गोदी कर्मचारी जाँच समिति की सिफारिशों के आधार पर १९५६ में दोहराया भी गया था। १९५७ में एक अन्य योजना, जिसको अपंजीकृत गोदी कर्मचारी (रोजगार का विनियमन) योजना [Unregistered Dock Workers (Regulation of Employment) Scheme] कहते है, बम्बई, कलकत्ता व मद्रास में नये वर्ग के गोदी श्रमिकों के लिये लागू की गई थी।

१९४८ के गोदी कर्मचारी (रोजगार विनियमन) अधिनियम को मार्च १९६२ में संशोधित किया गया। संशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध, जो कि १ जून १९६२ से लागू हुए, निम्न बातों से सम्बन्धित थे—(क) मालिकों का रजिस्ट्रेशन तथा उनसे रजिस्ट्रेशन शुल्क लिया जाना, (ख) योजनाओं के प्रशासन के लिये गोदी श्रमिक बोर्डों की स्थापना, (ग) लेखा-परीक्षकों (Auditors) की नियुक्ति, और (घ) गोदी श्रमिक सलाहकार समितियों में जहाज से सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रतिनिधित्व दिया जाना। सन् १९७० में अधिनियम में फिर संशोधन किया गया और उसमें गोदी श्रमिक बोर्डों के अधिकारियों व कर्मचारियों तक कल्याण सुविधाओं का विस्तार करने की तथा नियमों का उल्लंघन करने वाली कम्पनियों को दण्डित करने की व्यवस्था की गई। सन् १९७३ में किये गये नवीन संशोधन द्वारा सफाई कर्मचारियों को भी योजना में सम्मिलित कर लिया गया।

मोटर यातायात के श्रमिकों के लिये विधान

(Legislation For Motor Transport Workers)

१९३९ का मोटर गाड़ी अधिनियम (Motor Vehicles Act of 1939)

दूरियों की अदायगी, समयोपरि वेतन, सवेतन अवकाश, वार्षिक छुट्टी, बच्चों तथा युवा व्यक्तियों आदि को काम पर लगाना। अनेक राज्यों में समय-समय पर इन अधिनियमों में संशोधन एवं परिवर्तन किया जाता रहा है और कुछ राज्यों में इनके स्थान पर नये अधिनियम लागू हो गये हैं।

जहाँ तक कार्य के घण्टों का सम्बन्ध है, यह विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है (देखें पृष्ठ ५७२–७३)। अधिनियमों में संस्थानों के खोलने और बन्द करने के घंटे, विश्राम मध्यान्तर, समय-विस्तार, समयोपरि दर आदि के सम्बन्ध में भी उपबन्ध किए हुये हैं। छुट्टी और अवकाश के सम्बन्ध में उपबन्धों का उल्लेख पृष्ठ ६०-६१ पर किया गया है। जहाँ तक किशोरों और बालकों का रोजगार की न्यूनतम आयु का सम्बन्ध है, यह आयु आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, केरल, उत्तर प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु, चण्डीगढ़ व पान्डेचेरि को छोड़कर (जहाँ १४ वर्ष है), सब राज्यों में १२ वर्ष है। हरियाणा में यह १८ वर्ष है। उनके लिए रात्रि में कार्य करना निषेध है। बालकों और किशोरों के कार्य के घण्टे आन्ध्र प्रदेश, तामिलनाडु, त्रिपुरा, पाडेचेरि और पश्चिम बंगाल में प्रतिदिन ७ हैं तथा महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा देहली में प्रतिदिन ६ हैं और कर्नाटक, उड़ीसा, पंजाब, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा में प्रतिदिन ५ हैं, राजस्थान में प्रतिदिन ३ हैं। इनमें अधिकतर स्थानों में एक या आधे घण्टे का विश्राम समय भी सम्मिलित है। बिहार में कार्य के ये घण्टे बालकों के लिये प्रतिदिन ५ तथा किशोरों के लिये प्रतिदिन ७ है। बंगाल में बालकों के रोजगार के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। असम तथा केरल में काम के घण्टे निश्चित नहीं हैं।

इसके अतिरिक्त, सभी अधिनियमों में श्रमिकों की मजदूरी की अदायगी को नियमित करने वाले उपबन्ध हैं। उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब, बिहार, केरल व देहली में मजदूरी समय एक माह से अधिक नहीं होना चाहिये। असम में यह अवधि एक माह है। मजदूरी अवधि के समाप्त होने के पश्चात् मजदूरी का भुगतान प० बंगाल और असम में १० दिन के अन्दर, उत्तर प्रदेश, पंजाब व देहली में ७ दिन के अन्दर तथा तामिलनाडु व आन्ध्र प्रदेश में ५ दिन के अन्दर हो जाना चाहिये। समयोपरि काम तथा कटौती और जुर्माने के लिये भी उपबन्ध बनाये गये हैं। सभी अधिनियमों में यह व्यवस्था की गई है कि समयोपरि काम के लिये सामान्य मजदूरी का दुगुना दिया जाना चाहिये, किन्तु राजस्थान व पश्चिम बंगाल में तथा महाराष्ट्र के मनोरंजन स्थानों के लिये डेढ़ गुनी मजदूरी दिए जाने की व्यवस्था है। अधिकांश अधिनियमों में यह व्यवस्था की गई है कि नौकरी समाप्ति की अवस्था में या तो एक माह का नोटिस देना चाहिये अथवा इसके स्थान पर एक माह का वेतन देना चाहिये। पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश और पंजाब में अधिनियमों के प्रशासन के लिये दुकानों और वाणिज्य संस्थानों के मुख्य निरीक्षक नियुक्त किये गये हैं। कुछ राज्यों में इस कार्य के लिये कारखाना निरीक्षकों

की ही नियुक्ति कर दी गई है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश तथा देहली के अधिनियमो मे यह भी व्यवस्था की गई है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के उपबन्ध दुकानो और वाणिज्य सस्थानो के श्रमिको पर भी लागू होंगे। महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश व राजस्थान के अधिनियमो मे राज्य सरकारो को इस बात के अधिकार है कि वह मजदूरी अदायगी अधिनियमो के उपबन्धो को किसी भी सस्थान अथवा सब सस्थानो अथवा श्रमिको के वर्ग या वर्गों पर लागू कर सकती हैं। मध्य प्रदेश के अधिनियम मे प्राविडेण्ट फण्ड के सम्बन्ध मे भी उपबन्ध हैं। उडीसा और राजस्थान के अधिनियम मातृत्व-कालीन-लाभ की भी व्यवस्था करते हैं। कुछ प्रदेशो के अधिनियमो मे सफाई, सवातन, प्रकाश, सुरक्षा आदि से सम्बन्धित उपबन्ध भी है।

विभिन्न राज्यो मे उपबन्धो की कार्यान्विति से पता चलता है कि निरीक्षक दल की अपर्याप्तता के कारण उनका उचित रूप मे पालन नही किया जाता है। छुट्टी आदि के सम्बन्ध मे अधिनियम के उपबन्धो को साधारणतया माना ही नही जाता। उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यो मे, जहाँ अधिनियमो को हाल ही मे लागू किया गया है, श्रमिको और मालिको को अधिनियम के उपबन्धो के विषय मे पूर्ण ज्ञान भी नही है। बहुधा देखा गया है कि श्रमिको को साप्ताहिक छुट्टियो के दिन भी काम पर बुलाया जाता है, समयोपरि की अदायगी नही की जाती, कोई ब्यौरा नही रखा जाता तथा मजदूरो की अदायगी नियमित रूप से नही की जाती। अत इन अधिनियमो को दृढ रूप से लागू करने की आवश्यकता है। यह भी सुझाव है कि दुकानो और वाणिज्य सस्थानो के लिये केन्द्रीय अधिनियम बनाया जाये तथा कुछ ऐसे स्तर निर्धारित कर दिये जाये जिनका सभी राज्य अनुसरण करें।

१९४२ का औद्योगिक साँख्यिकी अधिनियम
(Industrial Statistics Act, 1942)

१९४२ मे सरकार ने औद्योगिक साख्यिकी अधिनियम पारित किया जिसमे निम्नलिखित विषयो से सम्बन्धित आंकडो को एकत्रित करने के उपबन्ध थे. (क) कारखानो से सम्बन्धित कोई भी विषय, (ख) श्रम दशाओ और कल्याण से सम्बन्धित विषय। अधिनियम केन्द्र सरकार के निर्देशन के अन्तर्गत राज्य सरकारो द्वारा नियुक्त साख्यिकी अधिकारियों को यह अधिकार देता था कि वह आवश्यक ब्यौरे की माग कर सके तथा सम्बन्धित कागज-पत्रो की जाँच पडताल कर सकें। सूचना देने से मना करने अथवा गलत सूचना देने पर दण्ड की व्यवस्था भी की गई थी। १९४५ मे राज्य सरकारो से २९ उद्योगो की पूंजी, उत्पादन लागत और उत्पादन मात्रा के सम्बन्ध मे सूचना एकत्रित करने को कहा गया। बाद मे ३४ और उद्योगो को सम्मिलित कर लिया गया था। परन्तु यह अनुभव किया गया कि अधिनियम और ब्यौरा देने के फार्म सरल होते हुए भी ब्यौरे

संस्थानों तथा कारखानों से आँकड़े एकत्र करने के लिये सांख्यिकीय प्राधिकारी नियुक्त कर दिया गया था। औद्योगिक विवादों के आँकड़े एकत्र करने के लिये नियम भी बनाये गये थे तथा स्वीकार व लागू करने के लिए वे राज्य सरकारों को भेजे गये थे। सन् १९७५ तथा १९७७ में सम्पन्न हुये केन्द्रीय व राज्य सांख्यिकीय संगठनों के सम्मेलनों में इस बात पर विचार किया गया था कि १९५३ के अधिनियम के क्षेत्र को व्यापक बनाया जाये और इस सम्बन्ध में एक कार्यकारी दल की सिफारिशें सरकार को प्रेषित भी कर दी गई हैं जो कि सरकार के विचाराधीन है।

श्रमजीवी पत्रकार (काम की शर्तें) तथा विविध उपबन्ध-अधिनियम, १९५५

[The Working Journalists' (Conditions of Service) and Miscellaneous Provisions Act 1955]

२० दिसम्बर १९५५ में श्रमजीवी पत्रकार (काम की शर्तें व विविध उपबन्ध) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के महत्वपूर्ण उपबन्ध वेतन बोर्डों की नियुक्ति, उनके निर्माण और अधिकारों से सम्बन्धित हैं। श्रमजीवी पत्रकारों के लिये वेतन की दरों को निर्धारित करते समय बोर्ड को इस बात का ध्यान रखकर चलना होगा कि अन्य तुलनात्मक नौकरियों में निर्वाह लागत और मजदूरी कितनी है। जिस समय तक वेतन बोर्ड की रिपोर्ट प्रकाशित न हो उस समय तक सरकार को वेतन की अन्तरिम दरें निर्धारित करने का अधिकार है। यदि छँटनी करनी हो तो यह आवश्यक है कि मालिक सम्पादक को ६ माह का तथा अन्य श्रमजीवी पत्रकारों को ३ माह का पूर्व नोटिस दें। मृत्यु, अवकाश प्राप्ति, त्याग पत्र और सेवा समाप्ति के मामलों को निर्धारित दर पर अवकाश प्राप्ति धन देना होगा। उन सभी समाचार पत्र संस्थानों में जहाँ २० या अधिक श्रमजीवी पत्रकार कार्य करते हैं १९५२ के श्रमिक प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियम तथा १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम को लागू कर दिया है। अधिनियम में यह व्यवस्था है कि चार लगातार सप्ताहों में किसी पत्रकार से अधिक से अधिक १४४ घण्टे काम लिया जा सकता है। अधिनियम में पत्रकारों के लिए साप्ताहिक छुट्टी, आकस्मिक छुट्टी, अर्जित छुट्टी और बीमारी की छुट्टी प्रदान करने की भी व्यवस्था है। यदि मालिक पर श्रमिक के किसी धन की देनदारी है तो उसकी उगाही उसी प्रकार से हो सकती है जैसे मालगुजारी के बकाया की होती है। १९५५ के श्रमजीवी पत्रकार (औद्योगिक विवाद) अधिनियम को निरस्त कर दिया गया है और इसके उपबन्धों को नये अधिनियम में समायोजित कर दिया गया है। अप्रैल १९५६ से अधिनियम के प्रशासन का दायित्व, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय से हटाकर श्रम मन्त्रालय को स्थानान्तरित कर दिया गया है। मई १९५६ में श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन दरों का निर्धारण करने हेतु एक वेतन बोर्ड बनाया

गया। परन्तु वेतन बोर्ड के निर्णयों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "अवैध और शून्य" घोषित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप जून १९५८ में पहले एक अध्यादेश जारी किया गया और फिर इसके स्थान पर सितम्बर १९५८ में **श्रमजीवी पत्रकार (वेतन दरों का निर्धारण)** अधिनियम पारित किया गया। अधिनियम में केन्द्रीय सरकार द्वारा श्रमजीवी पत्रकारों के लिये वेतन दरों का निर्धारण करने हेतु एक समिति बनाने की व्यवस्था थी। यह समिति स्थापित की गई और इसने अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कर दी थी। सरकार ने इन सिफारिशों का कुछ रूपान्तरण के पश्चात् स्वीकार कर लिया था। उक्त अधिनियम में, जिसे कि **श्रमजीवी पत्र व अन्य समाचार-पत्र कर्मचारी (काम की शर्तें) तथा विविध उपबन्ध अधिनियम १९५५** कहा जाता था, जनवरी १९७६ में एक अध्यादेश द्वारा संशोधन किया गया। बाद में इसका स्थान एक अन्य अधिनियम ने लिया जिसमें अन्य बातों के साथ ही यह भी व्यवस्था की गई थी कि यदि केन्द्र सरकार की यह राय हो कि मजदूरी बोर्ड प्रभावी ढंग से काम नहीं कर रहे हैं तो वह मजदूरियों के निर्धारण तथा संशोधन के सभी मामले एक न्यायाधिकरण (Tribunal) को सौंप सकती है। फलस्वरूप, जैसा कि मजदूरियों के पाठ में बताया जा चुका है, इस सम्बन्ध में पालेकर न्यायाधिकरण की नियुक्ति की गई। न्यायाधिकरण ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है और केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों से इन सिफारिशों को लागू करने को कहा है।

१९५५ और १९५८ के इन अधिनियमों में "श्रमजीवी पत्रकार (संशोधित) अधिनियम १९६२" द्वारा संशोधन किया गया। इसके मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं: (१) यदि कोई पत्रकार अपनी इच्छा से किसी भी कारण दस वर्ष की नौकरी के बाद त्यागपत्र देता है या तीन वर्ष की नौकरी के पश्चात् ही किसी ऐसे कारण से त्यागपत्र देता है जिसमें उसके अन्तःकरण का प्रश्न आ जाता है, तो उसे अवकाश प्राप्ति धन दिया जायेगा; (२) केन्द्रीय सरकार को श्रमजीवी पत्रकारों के लिये मजदूरी बोर्ड नियुक्त करने का अधिकार होगा, (३) श्रमजीवी पत्रकारों के अधिनियमों को प्रभावात्मक रूप से लागू करने के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति का अधिकार राज्य सरकारों को दे दिया गया है।

शिशु अधिनियम, १९६१ (The Apprentices Act, 1961)

इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह है कि विभिन्न व्यवसायों में शिशुओं को प्रशिक्षण देने और उससे सम्बन्धित अन्य बातों पर नियन्त्रण किया जाए। शिशु उस व्यक्ति को कहा जायेगा जो किसी विशिष्ट व्यवसाय में शिशुता के संविदा के अन्तर्गत शिशुता प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा है। अधिनियम में अब तक २१६ उद्योगों को सम्मिलित किया जा चुका है तथा १०२ व्यवसायों को इस हेतु निर्दिष्ट (designate) किया जा चुका है। शिशु की न्यूनतम आयु १४ वर्ष निर्धारित की गई है। अधिनियम के अन्तर्गत, निर्धारित उद्योगों के सभी मालिकों के लिये यह

अनिवार्य है कि वे निर्दिष्ट व्यवसायों के लिए निश्चित अनुपात के अनुसार अपने यहाँ शिशुओं का लगायें। शिशु को या उसके अभिभावक को मालिक से एक शिक्षुता की संविदा करनी होगी और इस संविदा को 'शिक्षुता सलाहकार' के पास रजिस्ट्री कराना होगा। अधिनियम में शिक्षा के स्तर, शिशुओं की शारीरिक योग्यता, प्रशिक्षण की अवधि, संविधा की समाप्ति, छात्रवृत्ति की अदायगी आदि के लिए नियम बनाने की व्यवस्था है। छात्रवृत्ति की दर प्रशिक्षण के प्रथम वर्ष में १३० रु० प्रति मास, दूसरे वर्ष में १४० रु० प्रतिमास, तीसरे वर्ष में १५० रु० प्रतिमास और चौथे वर्ष में २०० रु० प्रतिमास है। उत्तर संस्थागत प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले इंजीनियरिंग स्नातकों के लिए यह दर २८० रु० प्रतिमास और डिप्लोमा धारकों के लिए १८० रु० प्रतिमास है (सेण्डविच पाठ्यक्रमों के लिए यह क्रमश १८० रु० व १५० रु० प्रतिमास है)। यदि समय से पूर्व किसी भी पक्ष द्वारा संविदा समाप्त कर दिया जाता है तो मालिकों द्वारा समाप्त किए जाने की स्थिति में शिशु को क्षतिपूर्ति दी जायेगी और शिशु द्वारा समाप्ति की स्थिति में उसके द्वारा मालिक को प्रशिक्षण की लागत अदा करनी होगी। शिशुओं के स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध में १९४८ के कारखाना अधिनियम और १९५२ के खान अधिनियम के उपबन्ध लागू होंगे। १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम भी इन पर लागू कर दिया गया है। अधिनियम के अन्तर्गत काम के घन्टों, छुट्टियों तथा अवकाश का भी निर्धारण कर दिया गया है। शिक्षुता सलाहकार के अनुमोदन के बिना समयोपरि काम का निषेध कर दिया गया है। केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह विशिष्ट व्यवसायों में श्रमिकों की कुल संख्या के अनुपात में शिशुओं की संख्या निर्धारित कर दे। यदि किसी संस्थान में ५०० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं तो शिशुओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था मालिक द्वारा की जायेगी, और जहाँ ५०० से कम श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ उनको प्रशिक्षण सरकार द्वारा स्थापित संस्थानों में दिया जायेगा। अधिनियम के प्रशासन के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई है: (१) एक राष्ट्रीय परिषद्, (२) एक केन्द्रीय शिक्षुता परिषद्, (३) एक राज्य परिषद्, (४) एक राज्य शिक्षुता परिषद्, (५) एक केन्द्रीय शिक्षुता सलाहकार, तथा (६) एक राज्य शिक्षुता सलाहकार। अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर दण्ड देने की व्यवस्था है। इस अधिनियम से पूर्व शिशुओं के लिए १८५० में एक अधिनियम पारित हुआ था जो इस अधिनियम के पश्चात् निरस्त कर दिया गया है। इस अधिनियम को बाद में शिशु (संशोधन) अधिनियम, १९७३ द्वारा संशोधित किया गया था। इस संशोधन द्वारा स्नातक इंजीनियरिंग तथा डिप्लोमा धारकों को अधिनियम की परिधि में लाने की व्यवस्था की गई है।

व्यक्तिगत क्षति (संकटकाल व्यवस्था) अधिनियम, १९६२

[Personal Injuries (Emergency Provisions) Act, 1962]

अधिनियम के अन्तर्गत संकटकाल में कुछ विशेष व्यक्तिगत क्षति होने पर

सहायता देने की व्यवस्था है। केन्द्र सरकार को इस अधिनियम के अन्तर्गत यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह (क) काम पर लगे हुए व्यक्तियों को या किसी भी विशेष वर्ग के व्यक्तियों की और (ख) नागरिक सुरक्षा स्वयंसेवकों को व्यक्तिगत क्षति पहुंचाने पर सहायता के लिए योजना या योजनायें बनाये। इस अधिनियम के अनुसार संकटकाल में काम पर लगे व्यक्तियों तथा नागरिक सुरक्षा स्वयं-सेवकों को व्यक्तिगत क्षति पहुंचाने पर क्षतिपूर्ति देने का दायित्व केन्द्र सरकार का हो गया और कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम तथा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति देने का जो मालिकों का दायित्व है वह संकटकालीन क्षति के लिए नहीं रहा। परन्तु अधिनियम के अन्तर्गत चूंकि सहायता एक सामान्य व सामान्य दर पर दी जाती है अतः अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों को कम क्षतिपूर्ति मिलने की सम्भावना हो गई है। अतः १९६३ में, व्यक्तिगत क्षति (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम इसलिए पारित किया गया ताकि इस विषय में आश्वस्त हुआ जा सके कि इसे श्रमिकों को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति उसी स्तर की हो जैसी कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत होती है। अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों पर अब यह दायित्व डाल दिया गया कि वे शत्रु की कार्यवाहियों के कारण व्यक्तिगत चोटों से पीड़ित श्रमिकों की क्षतिपूर्ति करें। यही नहीं, वे अपने इस दायित्व को निभाने के लिये सरकार से बीमा पालिसियां लें और प्रत्येक तिमाही के बाद बीमे की किस्त अदा करें। अधिनियम को १ नवम्बर १९६५ से लागू किया गया और इसके अन्तर्गत योजनायें व नियम बनाये गये। इस कार्य के लिए जीवन बीमा निगम को केन्द्र सरकार का एजेन्ट नियुक्त किया गया। जनवरी १९६८ में जब आपातकालीन स्थिति समाप्त हो गई तो यह अधिनियम भी कार्यशील नहीं रहा। परन्तु सन् १९७१ में भारत-पाकिस्तान युद्ध के कारण जब पुनः आपातकाल की घोषणा की गई तो ३ दिसम्बर १९७१ से यह फिर लागू हो गया।

बिक्री वृद्धि कर्मचारी (काम की शर्तें) अधिनियम, १९७६

[The Sales Promotion Employees (Conditions of service) Act, 1976]

कुछ उद्योगों में बिक्री वृद्धि कर्मचारियों की सेवा की शर्तों का नियमन करने के लिये, केन्द्र सरकार ने सन् १९७६ में बिक्री वृद्धि कर्मचारी (काम की शर्तें) अधिनियम बनाया जो ६ मार्च १९७६ से लागू हुआ। अधिनियम के अन्तर्गत, "बिक्री वृद्धि कर्मचारी" (sales promotion employee) में आशय (शिक्षु सहित) ऐसे किसी भी कर्मचारी से है जिसे किसी भी संस्थान में किराये पर अथवा पारिश्रमिक के आधार पर बिक्री अथवा व्यवसाय की अथवा दोनों को बढ़ाने से सम्बन्धित कोई भी काम करने के लिये लगाया गया हो और जो (कमीशन के अलावा) ७५० रु० प्रति मास मजदूरी पाता हो अथवा जो अधिनियम के लागू होने के एक दम पूर्व के १२ महीनों में ९,००० रु० तक कमीशन सहित मजदूरी पाता हो अथवा

इतना केवल कमीशन ही पाता हो। परन्तु इसमे ऐसे किसी व्यक्ति को सम्मिलित नहीं किया जाता जो मुख्यत किसी प्रबन्धकीय या प्रशासकीय पद पर काम कर रहा हो। प्रथम पग के रूप मे, यह अधिनियम औषध निर्माण उद्योग म लग प्रत्येक सस्थान पर लागू किया गया परन्तु अधिनियम मे यह व्यवस्था है कि केन्द्र सरकार अनुसूचित उद्योगो मे लगे किसी भी सस्थान पर इस अधिनियम की धाराओ को लागू कर सकती है। कुछ अन्य कानूनो, जैसे कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम १९२३, मातृत्वकालीन लाभ अधिनियम १९६१, औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८, बोनस भुगतान अधिनियम १९६५ और आनुतोषिक भुगतान अधिनियम १९७२ की धाराओ को बिक्री वृद्धि कर्मचारियो पर भी लागू किया गया है। अधिनियम मे बिक्री वृद्धि कर्मचारियो के लिए छुट्टियो एव अवकाशो के निर्धारण की भी व्यवस्था की गई है। मार्च १९७६ मे राज्य सभा मे एक विधेयक प्रस्तुत किया गया था। इस विधेयक द्वारा अधिनियम म सशोधन करके अधिनियम के अन्तर्गत बनाये गय नियमो की किसी भी धारा को कानूनी समर्थन प्रदान करने की व्यवस्था की गई है।

अन्तर्राज्य प्रवासी श्रमिक (रोजगार नियमन तथा काम की शर्तें) अधिनियम, १९७९

[The Inter-State Migrant Workmen (Regulation of Employment and Conditions of Service) Act, 1979]

उपर्युक्त अधिनियम अन्तर्राज्य प्रवासी श्रमिको के रोजगार का नियमन करने तथा उनको सेवा की शर्तों की व्यवस्था करने के लिए १९७९ मे पास किया था। इस अधिनियम की मुख्य धारायें इस प्रकार हैं : (१) यह अधिनियम उस प्रत्येक सस्थान अथवा ठेकेदार पर लागू होता है जिसने अधिनियम के लागू होने क पूर्ववर्ती १२ महीनो के किसी भी दिन ५ अथवा ५ से अधिक अन्तर्राज्य प्रवासी श्रमिको को काम पर लगा रखा है या काम पर लगाता है, (२) अधिनियम मे उस सस्थान के, जिस पर कि यह अधिनियम लागू होता है, प्रत्येक मुख्य मालिक के लिए यह व्यवस्था की गई है कि वह सस्थान के रजिस्ट्रेशन के लिये उपर्युक्त प्राधिकारियो द्वारा नियुक्त पजीकरण अधिकारी को प्रार्थना-पत्र दे, (३) अधिनियम म ठेकेदार को एक लायसेंस देने की व्यवस्था की गई है जिनम उन शर्तों का उल्लेख होता है जिनके अन्तर्गत श्रमिक को भर्ती किया गया था, (४) अधिनियम मे यह भी व्यवस्था है कि अन्तर्राज्य प्रवासी श्रमिक को किसी भी स्थिति मे उससे कम मजदूरी नहीं दी जायेगी जो कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८ क अन्तर्गत निश्चित की गई है, (५) अधिनियम के अनुसार, अन्तर्राज्य प्रवासी श्रमिक को काम पर लगाने वाले प्रत्येक ठेकेदार के लिए यह आवश्यक है कि वह अन्य बातो के अतिरिक्त, ऐसे श्रमिको के लिए काम की अवधि म रहने की समुचित व्यवस्था करे तथा नि शुल्क चिकित्सा सुविधाओ एव बचाव वस्त्रो (protective clothing)

की भी व्यवस्था करे, और (६) अधिनियम मे निरीक्षको की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गई है जो यह देखेंगे कि अधिनियम की धाराओं का समुचित रूप से पालन हो रहा है या नही।

फिल्म उद्योग तथा भवन व निर्माण श्रमिको की नौकरी की शर्तों का नियमन करने के लिए विधान

[Legislation for regulating the Conditions of Work of Building and Construction Workers and Film Industry)

भवन तथा निर्माण उद्योग म श्रमिको की सुरक्षा के सम्बन्ध मे देश मे कोई कानून नही था। जुलाई १९६५ म भवन तथा निर्माण उद्योग की औद्योगिक समिति के प्रथम अधिवेशन मे सबसे पहल एसे श्रमिको के लिए पृथक् विधान बनाने पर विचार किया गया और इसकी सिफारिश पर भवन तथा निर्माण श्रमिको की नौकरी की शर्तों का नियमन करने के लिये एक विधेयक तैयार किया गया और इसे समालोचना के लिये प्रसारित किया गया। प्राप्त हुई समालोचनाओ के सन्दर्भ मे विधान की योजना को अन्तिम रूप दिया गया। विधान के उपबन्धो मे निम्न बातें सम्मिलित की गई : भवन व निर्माण-कार्य के लायसेंस, निरीक्षको की नियुक्ति, स्वास्थ्य व कल्याण सम्बन्धी अनेक सुविधायें, व्यापक सुरक्षात्मक कार्यवाहियाँ, काम के घण्टे, सवेतन अवकाश आदि। प्रस्ताव सन् १९६५ से ही विचाराधीन था और अब १९७६ मे एक विधेयक तैयार किया गया जिसे भवन-निर्माण तथा इ जीनियरिंग बिल, १९७६ कहा गया।

फरवरी १९६६ मे स्थायी श्रम समिति द्वारा फिल्म उद्योग मे काम की दशाओं का नियमन करने के लिये विधान तैयार किया गया और उस पर विचार किया गया। इस प्रस्तावित विधान की बारीकियो की जाँच करने के लिये एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की गई थी। मामला अभी भी विचाराधीन है।

एक सर्कस उद्योग बिल, १९७६ भी तैयार किया गया है जिसके द्वारा सर्कस उद्योग मे लगे कर्मचारियो की सुरक्षा, स्वास्थ्य व काम की शर्तों आदि की व्यवस्था की गई है।

सरकार एक ऐसा व्यापक औद्योगिक सम्बन्ध कानून बनाने के प्रस्ताव पर सक्रिय रूप से विचार कर रही है जिसमे वे सभी बातें आ जायें जो वर्तमान मे औद्योगिक विवाद अधिनियम, १९४७, श्रमिक सघ अधिनियम १९२६ तथा औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम १९४६ मे निहित हैं तथा जिसमे श्रमिक सघो की मान्यता एव औद्योगिक सम्बन्ध आयोगो की स्थापना आदि की भी व्यवस्था हो। १९७८ मे, सरकार ने औद्योगिक सम्बन्धो के बारे मे तीन नये विधेयक लोक सभा मे प्रस्तुत किये थे। ये थे औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक, अस्पताल व शिक्षा सस्था (कर्मचारियो की काम की शर्तें तथा रोजगार विवादों का निपटारा) विधेयक तथा रोजगार सुरक्षा तथा विविध उपबन्ध (प्रबन्धकीय कर्मचारी) विधे-

यक। किन्तु लोकसभा के भग हो जाने के कारण ये तीनो ही विधेयक कालातीत हो गये।

श्रम विधान का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(A Critical Estimate of Labour Legislation)

किसी भी देश मे श्रम विधान का बनना कई बातो पर निर्भर करता है; उदाहरणतया—उस देश का संविधान, सरकार द्वारा देश के साधनो के विकास के लिये अपनाई गई आर्थिक तथा सामाजिक नीतियाँ, श्रम विषयो पर जनता मे चेतना, श्रमिक सघो का शक्तिशाली होना आदि। जिस समय श्रम अनुसन्धान समिति ने अपनी रिपोर्ट दी थी उस समय से भारत मे श्रम विधान के क्षेत्र मे यद्यपि पर्याप्त प्रगति हो चुकी है तथापि श्रम विधान के विषय मे उसके विचार बहुत महत्वपूर्ण है। समिति के विचार मे यद्यपि लगभग आधी शताब्दी बीत चुकी है जब राज्य ने श्रम विधान बनाने शुरू किये थे परन्तु जो कुछ भी प्रगति हुई है वह बहुत उत्साहवर्धक नही है। इसके मुख्यत: तीन कारण हैं। प्रथम तो श्रमिकों और श्रमिक सघो की सापेक्ष शक्ति सब स्थानो पर एक समान न होने के कारण विभिन्न उद्योगो म कार्य की दशाओ और मजदूरी दरो मे भिन्नता पाई जाती है। दूसरे, श्रमिक वर्ग की अवस्थाओ को सुधारने म राज्य सरकारो द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नो मे भिन्नता पाई जाती है। तीसरे, विभिन्न राज्यो मे श्रम विधानो को लागू करने के लिये जो स्तर निर्धारित किये गये हैं उनमे महान् अन्तर पाया जाता है। इसमे कोई सन्देह नही कि हाल ही के वर्षों मे अनेक श्रम कानून पारित किये गये है। परन्तु जैसा कि श्री वी० के० आर० मेनन ने श्रम विधान के ऊपर एक लेख मे कहा है "सामाजिक न्याय की राह मे अभी हमे बहुत लम्बी यात्रा तय करनी है।"

दूसरी ओर कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनका कहना है कि हाल ही के वर्षों म श्रम विधान की एक बाढ सी आ गई है। परन्तु श्री खण्डूभाई देसाई का कथन है कि प्रजातन्त्र मे विधान बनाने का तात्पर्य केवल नियन्त्रण रखना ही नहीं वरन् मुख्य उद्देश्य यह होता है कि विधान श्रमिको और प्रबन्धको के लिये मार्गदर्शक का कार्य करे। विधान से अव्यवस्था फैलाने वाली शक्तियों को रोका जा सकता है और शोषण को दूर किया जा सकता है।

छोटे पैमाने के उद्योगों के लिये विधान की आवश्यकता
(Need for Legislation for Small Scale Industries)

देश के श्रम विधान मे एक भारी कमी यह है कि असगठित और अनियन्त्रित छोटे पैमाने के और कुटीर उद्योगो के श्रमिको के लिये कोई उपयुक्त विधान नही है। ऐसे उद्योग निम्नलिखित हैं चपडा, अभ्रक काटना, चटाई बुनना, कांच की चूड़िया बनाना, कालीन बुनना, देशी प्रणाली मे चमडे को रगना तथा साफ करना, ऊन साफ करना व हाथ करघो से बुनाई आदि। इन तथाकथित कुटीर उद्योगो मे श्रम की दशायें अत्यन्त शोचनीय हैं और इनको 'शोषित' (Sweated) उद्योग कहा

इनका विस्तार करना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, प्रशासन अधिकारियों से अधिनियम के उन धाराओं व नियमों का पालन के लिए परामर्श किया जाना चाहिये जिनके कारण मालिक कानून से बचने के लिए लाभ उठाते हैं और फिर अधिनियम में इन धाराओं को दूर करने के लिए संशोधन कर देना चाहिए। बागान में १९५१ के अधिनियम के दायित्व से बचने के लिए मालिकों द्वारा अलग बागों का विभाजन किया जा रहा है। खदान अधिनियम में श्रमिकों की नौकरी की सुरक्षा की उचित व्यवस्था नहीं है और इसके कारण श्रमिक मालिकों के विरुद्ध गवाही देने से हिचकते हैं। कानून के उल्लंघन के लिए अथवा उसे टालने के लिए कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। अब एक केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्वित प्रभाग की व्यवस्था केन्द्र और राज्यों में कर दी गई है जिसका उद्देश्य यह है कि श्रम विधान, विवाचन निर्णय, संहिता नियम, मालिक-मजदूर करार आदि की कार्यान्विति की ओर ध्यान रखा जाय। (तृतीय पृष्ठ २२२—२३)

एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि वैधानिक उपबन्ध श्रमिकों की रुचि और आदतों का ध्यान में रखते हुए बनाये जायें। उदाहरण के लिये, कोयला खानों में श्रमिकों के लिए खानों के ऊपर स्नानगृहों की व्यवस्था है। परन्तु अनेक स्थानों पर उनका निर्माण दोषपूर्ण ढंग से किया गया है जिसके कारण श्रमिकों में वह लोकप्रिय नहीं हो पाये। ऐसे दोषों को दूर करना चाहिये।

इस बात की भी शिकायत है कि श्रम विधान को सार्वजनिक अर्थात् सरकारी उद्योगों में उचित प्रकार से लागू नहीं किया जाता। विधान को लागू करने में सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र में भेद नहीं होना चाहिये। इस दोष को दूर करने के लिये अब ध्यान दिया जा रहा है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति और जनप्रिय उत्तरदायी सरकार की स्थापना के पश्चात् श्रम समस्याओं के प्रति सरकार का दृष्टिकोण अधिक सहानुभूतिपूर्ण हो गया है। श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये जो पग उठाये जायें आवश्यक हैं, उनके लिये सरकार ने अपने उत्तरदायित्व को भली-भाँति अनुभव कर लिया है। श्रमिकों को मान्यता देने में एक नये प्रकार की यह भावना आ गई है कि श्रमिक उद्योग में एक अवर (junior) साथी नहीं है जिसे केवल निर्वाह मजदूरी ही मिलनी चाहिये वरन् उत्पादन में उसका स्थान पूँजी-पतियों के साथ बराबर का है और वह उद्योगों के लाभ में बराबर का हिस्सा पाने का अधिकारी है। सरकार के इस उत्तरदायित्व का भारत के संविधान में भी उल्लेख किया गया है। अतः आगामी वर्षों में यह आशा की जा सकती है कि शिल्पी और कृषि श्रमिकों और यहाँ तक कानूनी सुरक्षा का विस्तार धीरे-धीरे कर दिया जायेगा तथा रोजगार के बढ़ती हुई जनसंख्या के सभी महत्वपूर्ण वर्ग सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत धीरे-धीरे आ जायेंगे और निश्चित रूप से श्रम सुरक्षा के स्तरों को ऊँचा उठाकर देश में श्रम विधान को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता के उपबन्धों के अनुरूप बना दिया जायेगा।

२१ बाल तथा स्त्री श्रमिक
CHILD AND WOMAN LABOUR

बालकों को रोजगार पर लगाने की समस्या
(Employment of Children)

आधुनिक औद्योगीकरण के आगमन के साथ मालिको मे यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई कि कम लागत लगाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जाये। अत प्रत्येक देश मे बालको को अधिक संख्या मे कारखानो मे रोजगार पर लगाया गया। इन बालको को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी और उनसे अत्यधिक समय तक कार्य कराया जाता था। ये बालक अत्यन्त कष्टप्रद परिस्थितियो मे कार्य करते थे। इगलैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ मे बालको की दशा बडी दयनीय थी। बडे पैमाने के उद्योगो की स्थापना के बाद, कारखानो के मालिको ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि स्त्रियो और बालको से अधिकाश कार्य लिया जा सकता था और वे पुरुष श्रमिको की अपेक्षा सस्ते पडते थे। इगलैण्ड मे १६०१ के निर्धन कानून (Poor Law) द्वारा यह आदेश दिया गया कि भिखमगे बालको को किसी भी व्यवसाय मे शिशुओ के रूप मे लगा देना चाहिये। अत, मालिको के लिए यह साधारण बात हो गई कि वे कार्य-भवनो (Work Houses) मे जाते थे और भिखमगे बालको की टोलिया की टोलिया शिशुओ के रूप मे भर्ती कर लेते थे। इन बालको को कारखानो मे ले जाया जाता था और इनसे दिन मे १२ से १६ घण्टो तक काम लिया जाता था। उनको रविवार तक की छुट्टी नही दी जाती थी और इस दिन उन्हे साधारणतया चिमनियो को साफ करना पडता था। कई बार चिमनी के नीचे आग जला दी जाती थी ताकि बालक सफाई के लिए मजबूरन चिमनी के ऊपर की ओर ही चढे। ऐसे मौको पर घुटन के कारण बहुत से बालको की मृत्यु तक हो जाती थी। बालको के लिये कारखाने के मालिको की ओर से भोजन, कपडे और रहने की व्यवस्था तो होती थी परन्तु कुछ मालिको को छोडकर अधिकतर मालिक बाल श्रमिक प्रणाली को लाभ का ही साधन समझते थे। बालको को कार्य के लिये ओवरसियरो के अधीन लगाया जाता था। इन ओवरसियरों का वेतन बालको से लिए गए काम की मात्रा पर निर्भर होता था। अत बालको को कोडे लगाए जाते थे, बेडियाँ बाँधी जाती थी, सताया जाता था, उनका हर प्रकार से दमन होता था और उनके साथ क्रूर व्यवहार किया जाता था। उनकी अवस्था अमरीका मे उन दिनो के दास प्रथा वाले राज्यो से भी अधिक खराब थी।

शत (कोष्ठक में) निम्न प्रकार था :—(हजारों में) आन्ध्र प्रदेश—१६२७ (६.०४), असम—२३६ (५.६४), बिहार—१०५६ (६.०६) गुजरात—५१८ (६.१७); हरियाणा—१३८ (५.२०), हिमाचल प्रदेश—७१ (८.५५), जम्मू तथा कश्मीर—७० (५.०६), कर्नाटक—८०६ (७.६५) केरल—११२ (१.८०), मध्य प्रदेश—१११२ (७.२७), महाराष्ट्र—६८८ (५.३७) मणिपुर—१५ (४.३१); मेघालय—३० (६.७१), नागालैण्ड—१४ (५.३४), उड़ीसा—४६२ (७.१८), पंजाब—२३३ (५.६६), राजस्थान—५८७ (७.२६) तमिलनाडु—७१३ (४.८४), त्रिपुरा—१७ (३.६३), उत्तर प्रदेश—१३२७ (४.८१), पश्चिमी बंगाल—५११ (४.१३), अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह—०१ (१.२६), अरुणाचल प्रदेश—१८ (६.६८), चण्डीगढ़—०१ (१.२७), दादरा व नगर हवेली—३ (८.५७), दिल्ली—१७ (१.३८), गोआ—७ (२.५८), लक्षद्वीप—०.०३ (१.१७), पाण्डेचेरी—४ (२.८४), भारत—१०,७३४ (५.६५)।

बागान में बाल श्रमिक
(Child Labour in Plantation)

बागान के क्षेत्रों में बालकों की अधिक संख्या मूलतः चाय एवं कॉफी की उपज में लगी है। बागान में बालक ५ या ७ वर्ष की आयु से ही कार्य करना आरम्भ कर देते हैं। श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार समस्त श्रमिकों में से १५ वर्ष की आयु से कम के बालकों की प्रतिशत संख्या इस प्रकार थी बंगाल के 'द्वारस' नामक क्षेत्र में २५·७%, दार्जिलिंग में २१%, असम की तराई में १४.५%, सुरमा घाटी में १६% दक्षिणी भारत के चाय एवं कॉफी के बागान में ११% और रबर के बगीचों में १६%, दक्षिणी भारत के चाय एवं कॉफी के बागान में ११%, और रबर के बगीचों में ४.१%। बागान में लगे बालकों के विस्तृत आंकड़े केवल असम के चाय बागान से प्राप्त हैं। चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक नियन्त्रक की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार १६३८–३६ में रजिस्टर में लिखित बालकों की संख्या इस प्रकार थी: बसे हुए बाल श्रमिकों ८१,६६८ और फालतू बाल श्रमिक ६,६८७। १६४४–४५ में बसे हुये बाल श्रमिकों की संख्या ८६,६३५ थी और फालतू बाल श्रमिकों की संख्या ६,०२५ थी। १६५०–५१ में बसे हुए बाल श्रमिक ७३,७७६ और फालतू बाल श्रमिक ६,१६८ थे। १६५३ में चाय के बागान में रोजगार पर लगे बालकों की संख्या १,३६,२६४ थी, अर्थात् श्रमिकों की दैनिक औसत संख्या में से १३.६% बालक थे। १६५४ में यह प्रतिशत घटकर १० रह गया था। अन्य बागान के विषय में आंकड़े प्राप्त नहीं हैं, किन्तु श्री पी० एस० नरसिंहमन के मतानुसार अन्य बागान में बालकों की कुल संख्या ६५,००० हो सकती है।[1] अतः बागान में कार्य करने वाले बालकों की कुल संख्या लगभग २ लाख से अधिक अनुमानित की जा

---

1 A N Agrawal *Indian Labour Problems* Page 142

सकती है। १९४८ मे १२ वर्ष की आयु से कम के बालक बागान में रोजगार पर नही लगाये जा सकते तथा १९५१ के बागान श्रम अधिनियम ने बालको की आयु १२ एवं किशोरो की आयु १५ से १८ वर्ष तक निर्धारित कर दी है।

कारखानो मे बाल श्रमिक

(Employment of Children in Factories)

केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय के ब्यूरो द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण की रिपार्ट ने, जो १९५४ में प्रकाशित हुई थी, विभिन्न उद्योगो मे बालको के रोजगार की दशाओ पर काफी प्रभाव डाला है। कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त विवरण से ज्ञात होता है कि कारखाना उद्योगो मे लगे बालको की संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है। इनके सम्बन्ध मे आँकडे निम्न प्रकार है—

वर्ष	रोजगार मे लगे बालको की संख्या	कुल श्रमिक संख्या मे से बालको का प्रतिशत
१८९२	१८,८८८	५ ९
१९२३	७४,६२०	५ ३
१९३३	१९,०९१	१ ८
१९४३	१२,४८४	०·५
१९४८	११,४४४	० ४८
१९५०	७,७६४	० ३१
१९५१	६,८५३	० २७
१९५२	६,१५९	० २५
१९५३	५,०५६	०·२०
१९५४	४,६६५	० १८
१९५५	४,९७५	० १९
१९५६	४,३१०	० १५
१९६०	३,२२०	० १०

सन् १९६२ मे यह प्रतिशत गिरकर ० ०७ और १९७० मे ०·०५ रह गया।

परन्तु इन आँकडो से वास्तविक स्थिति का पता नही चलता। बहुत से स्थानो पर बालको को यह सिखा दिया जाता है कि वे अपनी आयु १८ वर्ष बता दें। अधिकतर यह भी देखा गया है कि कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत जो आयु के प्रमाण-पत्र लिये जाते हैं वह भी ठीक नही होते। श्रम ब्यूरो की रिपोर्ट के शब्दो मे, "इसमे सन्देह है कि कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त विवरण से बाल श्रमिको के विषय मे जो आँकडे मिलते है उनसे वास्तविक स्थिति का पता चलता है क्योंकि कार्य-क्षेत्रो की जाँच मे लगे हुए अधिकारी तथा कारखाना निरीक्षको का प्राय

कृषि में बाल श्रमिक
(Child Labour in Agriculture)

गाँव में बालक बचपन से ही खेतों में अपने माता-पिता की सहायता करना आरम्भ कर देते हैं और साधारणतया उनका स्कूल जाना एक अपवाद माना जा सकता है। श्रम मन्त्रालय की प्रथम कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार कुल कृषि श्रमिकों में से लगभग ४६ प्रतिशत १५ वर्ष से कम आयु के बालक हैं। इस प्रकार कृषि में बालक श्रमिकों की संख्या लगभग २० लाख १९५०-५१ में आंकी थी। द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार बाल श्रमिकों की संख्या १९५६-५७ में ३० लाख (३.३%) थी। रजिस्ट्रार जनरल की रिपोर्ट के अनुसार १९६१ में खेती और कृषि श्रमिकों के रूप में लगभग १ करोड़ ५½ लाख बालक-बालिकायें कार्य करते थे। इन बालकों से अनेक कार्य कराये जाते हैं, जिनमें पशु चराना, खेतों की रखवाली करना, रोपाई करना, फसलें इकट्ठी करना तथा बोझा लादना आदि मुख्य हैं। यह बालक केवल खेतों में ही अपने माता-पिता की सहायता नहीं करते, अपितु मजदूरी पर भी कार्य करते हैं तथा एक पारिवारिक श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं, जिनको कोई मजदूरी नहीं दी जाती। गाँवों में लगभग ७ वर्ष से लेकर ९ वर्ष तक की आयु के बालकों को खेतों में कार्य करते हुये देखा जा सकता है। १९७१ की जनगणना के अनुसार, १.०७४ करोड़ काम करने वाले बच्चों में ३९.०३ प्रतिशत कृषक हैं, और ४२.७० प्रतिशत कृषि श्रमिक हैं। ये दोनों मिलकर कुल कृषि श्रमिकों का १८६ प्रतिशत है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग[1] का कहना है कि "संगठित उद्योगों में बच्चों को काम पर लगाने की स्थिति लगभग न के बराबर ही है। असंगठित क्षेत्रों में यह अवश्य विभिन्न मात्राओं में पाया जाता है, जैसे कि छोटे बागानों, जलपानगृहों, होटलों कपास से बिनौले निकालने व बुनाई के काम में, चटाई की बुनाई, पत्थर तोड़ने, ईंटें बनाने, दस्तकारी के काम तथा सड़क के निर्माण के काम में। निर्धारित आयु से कम के बाल श्रमिकों को काम पर लगाने की प्रथा दूरस्थ जगहों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अभी जारी है जहाँ कि कानून व्यवस्थाओं को लागू करना कुछ कठिन होता है।" आयोग के अनुसार हाथ कर्घे व शक्ति चालित कर्घे के काम में भी बाल श्रमिकों की उपस्थिति पाई जाती है।

बाल श्रमिकों के कार्य करने की दशायें तथा उनकी मजदूरी
(Conditions of Work and Wages of Child Labour)

इन सब बातों से यह ज्ञात होता है कि भारत के विभिन्न उद्योगों में बालकों की एक बड़ी मात्रा रोजगार में लगी हुई है। उनके कार्य करने की दशायें, अनियन्त्रित कारखानों में विशेष रूप से, बहुत ही असन्तोषजनक है। इन अनियन्त्रित कारखानों में बाल श्रमिक तंग-हवादार, कम-प्रकाश तथा भीड़-भाड़ वाले और अत्यन्त

1. राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट, पृष्ठ ३८६।

की अनुमति देकर उनके श्रम को अनुबन्धित कर देते हैं। परन्तु इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसा कोई समझौता अवैध नहीं है जिसके अनुसार बालकों की सेवाओं के बदले केवल मजदूरी के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ नहीं लिया जाता है और जो बालकों के हित के विरुद्ध नहीं है और जिसे एक सप्ताह की सूचना पर समाप्त किया जा सकता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत १५ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बालक माना जाता है। इस कानून का उल्लंघन करने पर मालिकों पर २०० रु० तक जुर्माने की तथा माँ-बाप पर ५० रु० तक जुर्माने की व्यवस्था की गई है।

बाल श्रमिकों के अनुबन्ध के सम्बन्ध में स्थिति
(Conditions About Pledging of Child Labour)

श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार, उसकी जाँच के समय दक्षिण भारत तथा कर्नाटक राज्य के बीड़ी उद्योग के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्योग में बाल श्रमिकों की अनुबन्धन जैसी बुराई नहीं पाई गई। बीड़ी, चुरट, सूंघनी, तम्बाकू माफ करने तथा चमड़ा रंगने के उद्योग में लगे हुये श्रमिकों की दशाओं के विषय में पूछ-ताछ करने के लिये सन् १९४६ में तमिलनाडु सरकार द्वारा नियुक्त किये गये एक जाँच न्यायालय ने इस बात की भी रिपोर्ट दी थी कि तमिलनाडु के बीड़ी उद्योग में छोटे छोटे बालकों की सेवाओं की अनुबन्धन की प्रणाली पाई जाती थी। तमिलनाडु में यह बुराई इसलिये चली आ रही है कि वहाँ के श्रमिक बहुत निर्धन हैं। बीड़ी उद्योग में प्रवर श्रमिक अपने बालकों या सहायक लड़कों को कुछ अग्रिम धन देते रहते हैं। ये बालक वैसे तो इस कर्ज को चुकाने के लिये स्वतन्त्र होते हैं और कहीं भी जाकर अपने लिये नौकरी ढूँढ सकते हैं, परन्तु वास्तविक जीवन में इस कर्ज के कारण ये बालक इन विशेष श्रमिकों में बंध जाते हैं। अभी हाल में ही तमिलनाडु सरकार ने इस अधिनियम को दृढ़ रूप से लागू करने के लिये आदेश जारी किये हैं। कर्नाटक श्रम आयुक्त द्वारा दी गई सूचनाओं से भी यह ज्ञात होता है कि कर्नाटक के कृषि श्रमिकों की दलित जातियों में बाल श्रमिकों के अनुबन्धन की प्रथा अब भी पाई जाती है। सरकार इस बुराई को बन्धक मजदूरी के उन्मूलन के साथ ही समाप्त करने का प्रयास कर रही है जिस पर कि कृषि श्रमिकों के पाठ में विचार किया जा चुका है।

सन् १९३८ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम
(The Employment of Children Act 1938)

इस अधिनियम के अनुसार उन समस्त व्यवसायों में १५ वर्ष से कम आयु के बालकों को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया है जो रेलवे यातायात द्वारा ले जाये गये यात्रियों, सामान या डाक से सम्बन्धित हैं या जिनका सम्बन्ध भारतीय बन्दरगाह अधिनियम के द्वारा विनियमित बन्दरगाहों में सामान चढ़ाने या उतारने से है। इस १९३८ के अधिनियम के अनुसार उपर्युक्त व्यवसायों में, शिशुओं का

छोड़कर अन्य १५ वर्ष से लेकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के बालकों को एक दिन में निरन्तर १२ घण्टे का अवकाश मिलना चाहिये। इनमें से ७ घण्टे रात्रि के १० बजे से लेकर प्रातःकाल के ७ बजे तक होने चाहिये। बीड़ी बनाने, कालीन बनाने, सीमेंट बनाने तथा उसे बोरियों में भरने कपड़े की छपाई, रंगाई तथा बुनाई करने, दियासलाइयाँ बनाने, विस्फोटक तथा आतिशबाजी का सामान तैयार करने, अभ्रक काटने तथा उसे कूटने, चमड़ा बनाने साबुन बनाने, चमड़ा रंगने तथा ऊन साफ करने से सम्बद्ध कारखानों में १२ वर्ष से कम आयु के बालकों का रोजगार पर लगाना निषिद्ध करने के लिये सन् १९३९ में इस अधिनियम में संशोधित किया गया। क्योंकि सन् १९४८ के फैक्टरी अधिनियम द्वारा बालकों के रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु १२ वर्ष से १४ वर्ष कर दी गई थी, इसलिये सन् १९४८ में उपयुक्त कारखानों में बालकों के रोजगार की न्यूनतम आयु १२ वर्ष से १४ वर्ष करने के लिये इस अधिनियम में पुनः संशोधन किया गया। सन् १९४९ में निरसन तथा संशोधन अधिनियम द्वारा इस अधिनियम में कुछ छोटे-छोटे परिवर्तन भी किये गये, जिनके अन्तर्गत बालकों की आयु के सत्यापन (Verification) के सम्बन्ध में मालिकों और निरीक्षकों के बीच हुए मतभेद और विवाद के निबटारे की भी व्यवस्था की गई है। राज्य सरकारों को इस अधिनियम में संशोधन करने या इसके क्षेत्र का विस्तार करने के अधिकार दिये गये हैं। सन् १९४७ में मद्रास सरकार ने मोटर यातायात कम्पनियों से सम्बद्ध कारखानों में सफाई करने वाले बाल श्रमिकों पर भी इस अधिनियम को लागू कर दिया। अगस्त सन् १९३८ में पीतल के बर्तनों तथा काँच की चूड़ियों के उद्योगों में रोजगार पर लगे हुए बाल श्रमिकों के लिये उत्तर प्रदेश सरकार ने इस अधिनियम का विस्तार किया। किशोरों के रात्रि में काम करने से सम्बद्ध अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय को कार्यान्वित करने के लिये सन् १९५१ में इस अधिनियम में पुनः संशोधन किया गया। इस संशोधन के अन्तर्गत रेलवे तथा बन्दरगाह के प्राधिकारियों द्वारा ऐसे रजिस्टर रखना अनिवार्य कर दिया गया है, जिनमें १७ वर्ष से कम आयु के बालकों के नाम, जन्म-तिथि तथा उनके विश्राम मध्यान्तरों आदि का विवरण हो। इसके साथ ही १५ से लेकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के किशोरों को रेलवे और बन्दरगाहों में रात्रि में कार्य पर लगाना निषेध कर दिया गया है। इस अधिनियम का उल्लंघन करने पर १ मास के कारावास या ५०० रु० जुर्माने के दण्ड या दोनों की व्यवस्था है। सन् १९७८ में अधिनियम में फिर संशोधन किया गया था ताकि कारखानों तथा अन्य विशिष्ट व्यवसायों में बाल श्रमिकों के शोषण को रोका जा सके और रेलवे के अन्य धन्धों तक इस अधिनियम का विस्तार किया जा सके। यह अधिनियम राज्यों में मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा प्रशासित किया जाता है। रेलवे में इस अधिनियम का प्रशासन मुख्य श्रम आयुक्त, प्रादेशिक श्रम आयुक्त तथा श्रम निरीक्षक द्वारा होता है। बन्दरगाहों में श्रम निरीक्षक इस अधिनियम का प्रशासन करते हैं।

शक्तियों का विकास हो सके । इस प्रकार जब वे बड़े होंगे तो अपने और समाज
के हित के लिये कार्यकुशल श्रमिक, बुद्धिमान नागरिक और ऐसे स्त्री और पुरुष
बन सकेंगे, जो अपना उत्तरदायित्व समझते हों । भारत के संविधान में भी इस बात
का उल्लेख है कि "१४ वर्ष से कम आयु का कोई भी बालक किसी भी कारखाने,
खान या अन्य किसी खतरे वाले कार्य में रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता और
यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह यह देखे कि सुकुमार आयु के बालकों से अनुचित
लाभ तो नहीं उठाया जाता तथा शैशवकाल व युवावस्था का शोषण नहीं होता है
और उनको निर्धनता और नैतिक पतन के गर्त में नहीं गिरने दिया जाता है ।"

उद्योगों में स्त्री श्रमिक
(Woman Labour in Industries)

भारत के औद्योगिक व्यवसायों में स्त्री श्रमिकों की संख्या भी काफी अधिक
है । राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में जिन क्षेत्रों में स्त्री श्रमिकों को अधिक संख्या में कार्य
पर लगाया जाता है, वह निम्नलिखित है (१) कृषि, (२) बागान, (३) खानें,
(४) कारखाना उद्योग, (५) लघु उद्योग-धन्धे, (६) समाज सेवा के कार्य, (७) सफेद
पोष नौकरियां (White-Collar Jobs) । अन्य संगठित उद्योगों की अपेक्षा बागान
में स्त्रियों को रोजगार पर अधिक लगाया जाता है । ब्यौरा देने वाली फैक्टरियों
में काम पर लगी हुई स्त्रियों की विभिन्न वर्षों की दैनिक औसत संख्या पृष्ठ ११
पर दी गई है । सन् १९७७ में कारखानों में काम पर लगी स्त्रियों की संख्या
४,६५,००० (१०%) थी । जैसा कि आकड़ों से स्पष्ट है, कारखाना उद्योगों में काम
पर लगी स्त्रियों की संख्या में अभी हाल के वर्षों में गिरावट आई है । जिन राज्यों
में फैक्टरियों में काम करने वाली स्त्रियों की संख्या सन् १९७१ में अधिक थी, वे
है : केरल (७४,०७३), महाराष्ट्र (६७,१२८), आन्ध्र प्रदेश (६६,६७८), तमिलनाडु
(५५,६३६), गुजरात (३८,०३०), कर्नाटक (२४,६८०) और पश्चिमी बंगाल
(२३,८७२) । कुछ अन्य राज्यों में यह संख्या इस प्रकार थी बिहार (८,६६६),
मध्य प्रदेश (६,६५०), असम (५,५५६), उत्तर प्रदेश (३,२२६), उड़ीसा (२,३६६),
पंजाब (२,२५७), हरियाणा (२,८३०), राजस्थान (२,६६३) और दिल्ली (२,६८६)।
वे कारखाना उद्योग, जहाँ कि काम पर लगी स्त्रियों की संख्या सर्वाधिक थी, वे
थे : खाद्य व तत्सम्बन्धी पदार्थ जिनका सम्बन्ध कृषि से है, तम्बाकू, वस्त्र, रसायन,
मूल धातु, विद्युत मशीनरी तथा धातु के पदार्थ ।

सन् १९२९ में खानों में भीतर काम करने वाली स्त्रियों की संख्या २४,०८९
थी । इसके पश्चात् खानों के भीतर काम करना उनके लिये निषिद्ध कर दिया
गया । लेकिन युद्धकाल में यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया था और सन् १९४५ में
खानों के भीतर कार्य करने वाली स्त्रियों की संख्या २२,५१७ तक पहुँच गई थी ।

सन् १९८६ में यह संख्या घटकर केवल १०,७८२ रह गई थी। उसी समय से खानों के भीतर स्त्रियों का कार्य पर लगाना फिर से निषेध कर दिया गया है। खानों में, विभिन्न वर्षों में स्त्री श्रमिकों की संख्या (हजारों में) निम्न प्रकार थी। कुल श्रमिकों में महिला श्रमिकों का प्रतिशत कोष्टकों में दिया गया है १९६१—१०६ (१६), १९६६—१०१ (१४), १९७१—७५ (१२), १९७२—७७ (१२), १९७३—८९ (१२), १९७४—९४ (१३), १९७५—९७ (१३), १९७६—९५ (१२), १९७७—९० (१२)। सन् १९७८ में विभिन्न खानों में स्त्री श्रमिकों की संख्या निम्न प्रकार थी (कुल श्रमिकों में उनका प्रतिशत कोष्टकों में दिखाया गया है) कोयला—४५,२६४ (८.७), चीनी मिट्टी, मिट्टी तथा खड़िया—२६८९ (३६.४), तांबा—३१ (०.३), डोलोमाइट—११७६ (३०.१), स्वर्ण—१२३ (१.३), जिप्सम—१,२११ (३७.६), कच्चा लोहा ११,८९८ (२२.४) चूना पत्थर—१०,६८१ (२०.९), मैग्नेसाइट—२६१४ (३६.४), मैंगनीज—९,८२४ (३८.२), अभ्रक—८५० (८.३), पत्थर १,७०० (४१.४) टिन—३६ (०.३), अन्य—८,८१६ (२२.३) सभी खनिज—९७,४११ (१२.७)।

ब्यौरा देने वाले बागानों में, सन् १९७५ में काम करने वालों की औसत दैनिक संख्या इस प्रकार थी —वयस्क—पुरुष ३,१६,०४८ (४४.१८%), स्त्रियाँ ३,७७,०१५ (४६.७९)। किशोर—पुरुष १२,२०० (१.५२%), स्त्रियाँ ८,५०८ (१.०६%)। बच्चे—पुरुष ४७,४४६ (५.८९%), स्त्रियाँ ४,५२६ (०.५६%)। योग—८,०५,८३३ (१००%)। विभिन्न राज्यों के बागानों में, वयस्क स्त्री श्रमिकों की संख्या सन् १९७१ में इस प्रकार थी —असम १,७९,५८९, बिहार ३०६, हिमाचल प्रदेश २९२, कर्नाटक ९,७९८, केरल ६६,२९९, तमिलनाडु ३०,९८१; त्रिपुरा २,४६९, उत्तर प्रदेश ६७३, पश्चिमी बंगाल ८६,९२५, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह १३। बागानों में विभिन्न वर्षों में स्त्री श्रमिकों की संख्या (हजारों में) निम्न प्रकार थी (कुल श्रमिकों में उनका प्रतिशत कोष्टकों में दिया गया है) १९६६—१९९९ (४७), १९७१—३७७ (४७) १९७२—३४६ (४७), १९७३—४५१ (५०), १९७४—४४० (५०), १९७५—४१३ (५०), १९७६—५११ (५०), १९७७—४९५ (५०)।

कपड़ा तथा बीड़ी उद्योगों में भी अधिक संख्या में स्त्रियों को रोजगार पर लगाया जाता है। अन्य उद्योग जिसमें स्त्रियों को रोजगार पर अधिक लगाया जाता है, वह चावल की मिलें हैं। यह मिलें प० बंगाल, बिहार तथा तमिलनाडु में अधिक पाई जाती हैं इन मिलों में स्त्रियों को चावल सुखाने, फैलाने तथा उन्हें उलटने पलटने के काम पर लगाया जाता है। ये स्त्रियाँ धान में से चावल निकालने तथा भूसी आदि के फटकने का भी काम करती हैं। इन स्त्रियों को अपने पैरों या करछुल से चावल फैलाने तथा उन्हें उलट-पलट करने के लिये आंगन में घण्टों कड़ी धूप में इधर-उधर चलना पड़ता है। नगरपालिकाओं तथा सार्वजनिक कार्यों में

भी स्त्री श्रमिको को रोजगार पर लगाया जाता है। सन् १९५७ मे विभिन्न राज्यो की नगरपालिकाओ मे रोजगार पर लगी हुई स्त्रियो की कुल सख्या ११,७७६ थी तथा सार्वजनिक कार्यो मे सीधे रूप से भर्ती की हुई स्त्रियो की सख्या केन्द्र म ७७ थी तथा राज्यो मे ९,६१७ थी। ठेकेदारो द्वारा लगाई हुई स्त्री श्रमिको की सख्या केन्द्र मे ४,३१२ थी तथा राज्यो मे २४ ७६७ थी। मार्च सन् १९७० मे सरकारी रेलवे मे १६,०५० स्त्रियाँ रोजगार पर लगी हुई थी तथा रेलवे बोर्ड और कार्यालयो मे रोजगार पर लगी हुई स्त्रियो की सख्या ८७ थी। कृषि म स्त्री श्रमिको की सख्या कृषि श्रम-जाच के अनुसार १९५०-५१ म एक करोड चालीस लाख थी तथा १९५६-५७ मे एक करोड बीस लाख थी और ग्रामीण श्रम जाच के अनुसार १९६४-६५ मे १ १ करोड थी।

जनगणना के आकडो के अनुसार महिला श्रमिको की सख्या सन् १९०१ मे ३ ७३ करोड थी तथा १९११ मे ४ १८ करोड १९२१ मे ४ ०१ करोड और १९३१ ३ ७६ करोड महिला श्रमिक थी। १९५१ मे इनकी सख्या ४ ०४ करोड आती थी। इस प्रकार १९०१ व १९५१ के मध्य महिला श्रमिको की सख्या म ता बहुत अन्तर नही हुआ, परन्तु क्योकि कुल श्रमिको की सख्या घट गई थी इसलिये कुल श्रमिको म से इनका अनुपात घट गया था। १९६१ की जनगणना के अनुसार महिला श्रमिको की सख्या बढी थी। १८ ८४ करोड कुल श्रमिको म स ५ ६४ करोड महिला श्रमिक थी अर्थात् प्रत्येक १०० पुरुष श्रमिको पर ४६ ०४ महिला श्रमिक आती थी। जैसा ऊपर बताया जा चुका है इनमे से अधिकाश (लगभग ८०%) कृषक के रूप मे (३ ३१ करोड) या कृषि श्रमिक के रूप म (१ ४२ करोड) काम कर रही थी। १९७१ की जनगणना के अनुसार, पृष्ठ १६ पर दी हुई तालिका म विभिन्न व्यवसायो मे काम पर लगी महिलाओ की सख्या दिखाई गई है।

सन १९७१ की जनगणना के अनुसार प्राप्त अन्तिम आँकडो से पता चलता है कि ५४,७९,५०,००० (५४ ७९ करोड) की कुल जनसख्या मे श्रमिको की कुल सख्या १८ ०३,७३ ००० (१८ ०४ करोड) थी। कुल जनसख्या मे श्रमिको की सख्या का प्रतिशत ३२ ९२ था (जबकि १९६१ मे यह प्रतिशत ४२ ९८ था)। जैसा कि पृष्ठ १६ पर बताया जा चुका है कि श्रमिको के रूप मे काम पर लगे लोगो का प्रतिशत १९६१ की तुलना मे १९७१ म गिर गया था। इस गिरावट का मुख्य कारण यह था कि श्रमिका के रूप मे 'पजीकृत महिलाओ को परिभाषा १९७१ की जनगणना म बदल गई थी। सन १९६१ म, उन स्त्रियो को भी श्रमिक ही माना जाता था जोकि खेतो पर अपने घर वालो की सहायता करती थी। किन्तु सन् १९७१ मे, उनको मूल रूप म गृहिणी ही समझा गया और यह माना गया कि कृषि कार्य तो उनका गौण व्यवसाय है। सन् १९७१ म ५४ ७९ करोड की कुल जनसख्या मे २८ ३९ करोड पुरुष और २६ ४० करोड स्त्रियाँ थी। श्रमिको की कुल १८ ०४ करोड की सख्या मे १४ ९१ करोड पुरुष और ३ १३ करोड स्त्रियाँ थी। १९७१

स्त्रियों के रोजगारों में कमी हो गई थी। अन्य औद्योगिक समूहों, जैसे—कृषि सम्बन्धी प्रक्रियाओं, मादक पेयों के अतिरिक्त खाद्य तथा अधातु खनिज उत्पादनों में स्त्रियों का रोजगार कुछ अधिक स्थिर था। कपड़ा मिलों तथा जूट उद्योगों में जहाँ तक स्त्रियों के रोजगार का प्रश्न था सन् १९५० में स्त्रियों की संख्या ३७,००० से घटकर सन् १९५६ में २१,००० रह गयी थी। बीड़ी तथा दियासलाई उद्योगों में रोजगार की स्थिति अच्छी थी। काजू के उद्योग तथा चाय की फैक्ट्रियों में स्त्रियों के रोजगार में अत्यन्त महत्वपूर्ण कमी आ गई थी। जहाँ तक खानों का सम्बन्ध है, मैंगनीज तथा कच्चे लोहे की खानों में स्त्रियों के रोजगार में अधिक वृद्धि हुई थी। लेकिन इसके साथ ही कोयला तथा अभ्रक की खानों में उनका रोजगार अधिकतया कम हो गया था। चाय बागान में स्त्रियों का रोजगार सन् १९५०-५१ में ७.४८ लाख से घटकर सन् १९५६-५७ में ६.६६ लाख रह गया था लेकिन स्त्री तथा पुरुष दोनों प्रकार के वयस्क श्रमिकों की कुल संख्या में जो कमी हुई थी, स्त्रियों के रोजगार में यह कमी उसी अनुपात में हुई थी। जहाँ तक कारखाना उद्योगों का प्रश्न है इनमें स्त्रियों का कुल रोजगार १९५१ में २.३३ लाख से बढ़कर १९५७ में २.५७ लाख हो गया था। परन्तु स्त्री श्रमिकों की संख्या इस अवधि में ५.१ लाख से घटकर ४.६६ लाख रह गई थी।

इस अध्ययन के अनुसार देश में जैसे-जैसे औद्योगीकरण में वृद्धि होती जायेगी वैसे-वैसे स्त्री श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि होती जायेगी और इस संख्या में तृतीय वर्ग की अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत विशेष रूप से वृद्धि होगी।

ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं जो स्त्री श्रमिकों के रोजगार की कमी के लिये उत्तरदायी हैं। यह बातें तकनीकी, वैज्ञानिक तथा आर्थिक हैं। एक महत्वपूर्ण कारण तो यह है कि प्राचीन काल में जो कार्य स्त्रियाँ अपने हाथों से किया करती थीं, उनके स्थान पर अब नई मशीनों व आधुनिक शिल्प कला का प्रचलन हो गया है। कारण यह भी है कि स्त्रियों के लिये खानों के भीतर कार्य करना तथा सब उद्योगों में रात्रि में कार्य करना वैधानिक रूप से निषेध कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, स्त्रियों से सम्बन्धित विभिन्न श्रम कानूनों के अन्तर्गत मालिकों पर जो अधिक वित्तीय भार पड़ता है, उसके कारण भी स्त्री श्रमिकों को रोजगार देने में कमी हो गयी है। ऐसे वैधानिक विषय निम्नलिखित हैं—मातृत्व-कालीन-लाभ की अदायगी, शिशुगृहों की व्यवस्था, रात्रि में काम करने पर प्रतिबन्ध, समान कार्य के लिये समान वेतन का सिद्धान्त तथा मजदूरी समानीकरण प्रणाली का लागू करना, आदि।

१९५६ में पश्चिमी बंगाल में स्त्रियों की बेरोजगारी की समस्या पर एक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि स्त्रियों के रोजगार में पिछली कई दशाब्दियों (Decades) से कमी होती जा रही है।

स्त्री श्रमिकों के कार्य की प्रकृति
(Nature of Jobs of Women Workers)

इन आँकडो से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश मे बाल श्रमिको को रोजगार पर लगाने के समान ही स्त्रियो को रोजगार पर लगाना एक आम बात है। वास्तविकता भी यह है कि यदि स्त्रियो के कार्य करने की दशाओं को उचित रूप से विनिश्मित कर दिया जाये तो वे भी उत्पादन के क्षेत्र म अत्यन्त महत्वपूर्ण योग दे सकती हैं। कुटीर उद्योगो में पारवारिक कर्त्तव्यो की पूर्ति के साथ साथ स्त्रियाँ कातने और बुनने जैसे व्यवसायों में भी पुरुषों की सहायता करती हैं। कृषि मे भी स्त्रियाँ खेतो मे पुरुषो की बडी सहायता करती हैं। परन्तु बडे पैमाने के उद्योगो में स्त्रियो को रोजगार देना कुछ वर्षों से ही आरम्भ हुआ है। अधिकाश स्त्री श्रमिक पुरुष श्रमिको के परिवारो से ही सम्बन्ध होती है और वे प्राय. अपने परिवारो की आय के अनुपूरण हेतु ही कार्य करती है। कारखानो मे रोजगार पर लगी हुई ऐसी बहुत कम स्त्रियाँ है, जो किसी पुरुष पर आश्रित नही है। विभिन्न उद्योगो मे उनके कार्यों की प्रकृति भी भिन्न-भिन्न होती है। सगठित तथा निरन्तर चालू कपास और जूट, आदि जैसे कारखानों मे स्त्रियाँ सामान्यतया कुलियो के रूप मे चर्खी लपेटने तथा वेंठन करने के विभागो मे अधिक सख्या मे रोजगार पर लगाई जाती है। मौसमी कारखानो मे, विशेषतया कपास मे से बिनौले निकालने और उसे दबाने तथा चावल के कारखानो मे स्त्रियो को साधारण कुलियो के रूप मे रोजगार पर लगाया जाता है। बागान मे भी अधिक सख्या मे स्त्री श्रमिक पाई जाती हैं, क्योंकि बागान मे कार्य करने की पद्धति पारिवारिक आधार पर है और वहाँ केवल छोटे-छोटे बच्चों और अशक्त प्राणियो को छोडकर परिवार के शेष सभी सदस्य कार्य करते है। प्राय यह देखा गया है कि असम मे बागान श्रमिको के परिवार मे औसतन लगभग ४ १५ व्यक्ति होते है, जिनमे से कम से कम २ ४४ व्यक्ति कमाने वाले होते हैं। इनमे १ १७ पुरुष, ० ९६ स्त्रियाँ तथा ० ३१ बालक होते हैं। खानो मे, विशेषतया कोयले की खानो मे, स्त्रियो को सामान्यतया बोझा ढोने या ठेला लादने के कार्य पर नियुक्त किया जाता है, यद्यपि कुछ विशेष परिस्थितियो मे उन्हे ट्रामे चलाते हुये भी देखा जाता है।

स्त्री श्रमिको की मजदूरी तथा उनकी आय
(Wages and Earnings of Women Workers)

स्त्रियो की मजदूरी तथा उनकी आय के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है, कि जब स्त्रियो को उसी या उसी प्रकार के व्यवसायो पर नियुक्त किया जाता है जिनमे पुरुष कार्य करते है, तो भी उनकी मजदूरी अपेक्षाकृत पुरुषों से कुछ कम ही होती है। कपडा मिल उद्योगो के अनेक केन्द्रों मे स्त्रियो की आय दो बातो पर निर्भर करती है : (क) कार्य की उपलब्धता तथा (ख) उनको कितने घण्टों के लिये काम पर लगाया जाता है, क्योंकि स्त्रियो के लिये नियमानुसार कार्य के घण्टे कई

बार लागू नहीं किये जाते जिसका कारण यह है कि उन्हें फैक्ट्री कानूनों का भी पालन करना पड़ता है। कुछ विचारों से यह भी ज्ञात हुआ है कि कपड़े की मिलों तथा बागान में कुछ कार्यों में स्त्रियाँ उतनी ही कार्यकुशल पाई गई हैं जितने कि पुरुष यद्यपि उनकी मजदूरी में थोड़ा अन्तर है। जहाँ तक भारतीय संगठित उद्योगों में स्त्री श्रमिकों का सम्बन्ध है सन् १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम ने समान कार्य के लिये समान वेतन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु इस सिद्धान्त के अपनाये जाने के कारण अनेक स्थानों पर स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर लगाना कम कर दिया गया है क्योंकि जैसा कि मजदूरी के अध्याय में उल्लेख किया गया है मालिकों का स्त्रियों की नौकरी देने में हानि उठानी पड़ती है। इसका कारण यह है कि इन स्त्रियों को उन्हें बहुत से लाभ देने पड़ते हैं और स्त्रियाँ बहुत समय तक नौकरी पर टिकती भी नहीं। इसलिये मालिक उन्हें केवल कम मजदूरी पर ही नौकरी देते हैं। इस प्रकार कारखानों, खानों तथा बागानों में पुरुषों तथा स्त्रियों की मजदूरियों के बीच काफी अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के कारण हैं शारीरिक क्षमता, शिक्षा व प्रशिक्षण के स्तरों तथा कुछ खास कामों के प्रति झुकाव में पाये जाने वाले अन्तर। यहाँ तक देखा गया है कि मजदूरियों की दरों के निर्धारण के समय कुछ राज्य सरकारों तक ने इस भेदभाव को बनाये रखा है। 'समान कार्य के लिये समान वेतन' वाले संविधान में तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के भारत द्वारा अपनाये गये अभिसमय (convention) में उल्लेखित सिद्धान्तों को अब तक केवल गैर-शारीरिक श्रम वाले कर्मचारियों पर ही लागू किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की उस विशेषज्ञ समिति ने भी इस अभिसमय के पूर्णतः पालन न करने की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया है जोकि अभिसमयों को लागू करने के तत्सम्बन्धी सुझाव देने के लिये बनाई गई थी। किन्तु विगत वर्षों में, इस अन्तर को कम करने की प्रवृत्ति पाई गई है जिसके निम्न कारण रहे हैं : (क) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी का कानूनी निर्धारण, (ख) औद्योगिक न्यायालयों व न्यायाधिकरणों आदि द्वारा विभिन्न कामों के लिये मजदूरियों का मानकीकरण, और (ग) समान पारिश्रमिक अधिनियम, १९७६ का लागू होना, जिसका उल्लेख 'मजदूरी' के अध्याय में किया जा चुका है।

स्त्री श्रमिकों के लिये लाभ
(Benefits for Women Workers)

स्त्री श्रमिकों के लिये मातृत्व-कालीन-लाभ अधिनियम अब अधिकांश राज्यों में प्रचलित है इनका उल्लेख सामाजिक सुरक्षा के अध्याय में विस्तृत रूप से किया जा चुका है। सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम और १९५२ के खान अधिनियम के अनुसार जहाँ भी स्त्री श्रमिकों से अधिक स्त्रियाँ कार्य करती हैं, वहाँ शिशु गृहों की व्यवस्था कर दी गई है। सन् १९८० के अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित

कोयला खान श्रम कल्याण निधि की एक विशेष शाखा भी स्त्रियों तथा बालकों के हितों की देखभाल करने के लिये खानों में प्रारम्भ कर दी गई है। सभी उद्योगों में स्त्रियों के लिये रात्रि में काम करना तथा खानों में धरती के नीचे काम करना निषिद्ध कर दिया गया है। मातृत्व-कालीन लाभ, रात्रि के काम करने तथा खानों के नीचे काम करने पर निषेध के अतिरिक्त, कार्य करने के घण्टों, मध्यान्तरों तथा छुट्टियों, आदि के सम्बन्ध में स्त्री श्रमिकों को कोई अन्य विशेष अधिकार नहीं दिये गये हैं, यद्यपि जब कारखाना विधान बने थे तो प्रारम्भ में स्त्रियों तथा बालकों के ही कार्य करने के घण्टे विनियमित किये गये थे। किन्तु १९४८ का कारखाना अधिनियम राज्य सरकारों और १९५२ का खान अधिनियम केन्द्र सरकार को यह अधिकार देता है कि वे खतरनाक व्यवसायों में स्त्रियों को काम करने से रोकें।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्त्री श्रमिकों के कल्याण एवं उनकी सुरक्षा के लिये विधान बनाने की प्रेरणा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम के सगठन के अभिसमयों में ही प्राप्त हुई है। इस सम्बन्ध में मुख्य अभिसमय ये हैं (१) मातृत्व-कालीन सुरक्षा अभिसमय १९१९, जिसे १९५२ में संशोधित किया गया, (२) रात्रि-कालीन काम (महिला) अभिसमय १९१९, जिसे १९३४ व १९४८ में संशोधित किया गया, (३) धरती के अन्दर काम (महिला) अभिसमय, १९३५, (४) समान पारिश्रमिक अभिसमय, १९५१, (५) भेदमूलक (रोजगार व व्यवसाय) अभिसमय, १९५८; महिलाओं में ही सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की दो सिफारिशें भी हैं : (१) सीसा ज़हर (स्त्री तथा बच्चे) सस्तुति १९ ९, और (२) समान पारिश्रमिक सस्तुति, १९५१, भारत ने मातृत्व कालीन सुरक्षा को छोड़कर अन्य सभी अभिसमयों को अपना लिया है परन्तु केन्द्र व राज्य सरकारों ने जो मातृत्व-कालीन लाभ अधिनियम पास किये हैं, उक्त अभिसमय ने उन्हें काफी प्रभावित किया है।

स्त्रियों के लिये खानों के भीतर कार्य करने की समस्या
(Problem of Underground Work for Women)

स्त्रियों के खानों के भी कार्य करने पर रोक लगाने से भी कई विशेष प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। इस प्रकार के कार्यों को निषिद्ध करने की सदा से बहुत आवश्यकता रही है और कोई भी सभ्य देश इस बात को सहन नहीं कर सकता कि उनके देश में महिलाओं को, जो सामान्यतया शरीर से अत्यन्त कोमल होती हैं, ऐसे अस्वास्थ्यकर वातावरण में खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति दी जाये। इसके अतिरिक्त, यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि यदि स्त्रियाँ खानों के भीतर पुरुषों के साथ कार्य करें तो इससे कई सामाजिक और नैतिक दोष पैदा हो सकते हैं। जैसा कि खान विधान के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है, सन् १९२९ में इस बात के विनियम बनाये गये थे कि १० वर्ष की अवधि के भीतर, अर्थात् १९३९ तक, स्त्रियों का खान के भीतर कार्य करना धीरे-धीरे

बिल्कुल समाप्त कर दिया जाये। सन् १९३७ में एक अधिसूचना के द्वारा स्त्रियों के लिये खानों के भीतर कार्य करना निषिद्ध कर दिया गया, परन्तु युद्ध की आवश्यकताओं के कारण सन् १९४३ में यह प्रतिबन्ध उठा लिया गया था। लेकिन सन् १९४६ में इसे पुनः लागू कर दिया गया और तब से आज तक यह प्रतिबन्ध लागू है। इस प्रकार वर्तमान समय में स्थिति यह है कि स्त्रियों को खानों के भीतर रोजगार पर नहीं लगाया जाता।

डॉ० आर० के० मुकर्जी ने कुछ ऐसी बुराइयों का उल्लेख किया है, जो स्त्रियों को खानों के भीतर कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगाने से आ गई हैं। यह प्रतिबन्ध लगाने के बाद कोयले की खानों से अधिकांश स्त्रियाँ गाँव वापिस चली गई और उसके बाद उनका गाँव से आना भी बन्द हो गया। केवल बड़ी-बड़ी खानों में ही स्त्री श्रमिकों को खानों के ऊपर कुछ कार्य देना सम्भव हो सका और उनमें से बहुत सी स्त्रियों को ठेला लादने, सड़कें तथा नालियाँ बनाने और उनकी मरम्मत करने बस्तियों को साफ करने राजगीरों के साथ कार्य करने तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य दशाओं में सुधार करने के कार्यों पर रोजगार मिल गया, परन्तु इन सब बातों को देखते हुये ऐसी स्त्रियों की, जो खानों के भीतर कार्य करती थी, एक बहुत थोड़ी प्रतिशत, अर्थात् कठिनाई से १० प्रतिशत ही खान के ऊपर विविध प्रकार के कार्यों में रोजगार पा सकी। इसके पूर्व जब खानों के भीतर पति-पत्नी दोनों मिलकर कार्य करते थे, तो कोयला काटने तथा लादने में यह दम्पत्ति बड़ी सुगमता से कोयले की कम से कम तीन नांदें भर लिया करते थे अर्थात् उनकी कुल आय १५ आना (९४ पैसे) प्रतिदिन थी, परन्तु स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर न लगाये जाने के बाद से पुरुष श्रमिक अकेले प्रतिदिन कोयला काटकर एक नांद से अधिक नहीं भर सकता अर्थात् उसकी आय घटकर ५ आना (३१ पै०) प्रतिदिन रह गई है। यदि कोई कम्पनी उसकी पत्नी को खान के ऊपर रोजगार पर लगा भी लेती है, तो भी उसे ४ आना या ५ आना (२५ या ३१ पैसे) प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती है और यदि वह ठेकेदारों के लिये आकस्मिक रूप से कार्य करती है, तो भी उसे २ आने से ५ आने प्रतिदिन तक ही मजदूरी मिल पाती है। इस प्रकार पति और पत्नी दोनों की कुल आय कम हो गई है और उनका जीवन-स्तर गिर गया है। अविवाहित स्त्रियों तथा विधवाओं की स्थिति तो और भी सोचनीय हो गई है, क्योंकि स्त्रियों के लिये खानों के ऊपर बहुत ही कम नौकरियाँ उपलब्ध होती हैं। प्रबन्धकर्त्ता खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों की पत्नियों को ही रोजगार पर लगाने में प्राथमिकता देते हैं और असम्बद्ध (Unattached) स्त्रियों को ठेकेदारों द्वारा संयोग से कोई कार्य मिल जाये, इस बात पर निर्भर रहना पड़ता है।

रॉयल श्रम आयोग ने आशा व्यक्त की थी यदि स्त्रियों को खानों के भीतर काम करने से मना कर दिया जाये तो इससे कोयले की खानों में कार्य

करने वाले श्रमिकों के जीवन की दशाओं में सुधार हो जायेगा तथा उनकी कार्य कुशलता में भी वृद्धि होगी। इस कारण यदि पारिवारिक आय में कुछ कमी भी हो तो उसकी क्षतिपूर्ति इस सुधार द्वारा हो जायेगी, परन्तु प्रतिबन्ध लगाने के पश्चात् से खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के जीवन की दशाओं में कुछ अधिक सुधार नहीं हुआ है। इसलिये जब स्त्रियाँ आय अर्जन के योग्य नहीं रहीं हैं तो खान-श्रमिक अपनी स्त्रियों को खानों के क्षेत्र में लाते ही नहीं हैं। इस प्रकार स्त्रियों की संख्या पुरुषों के अनुपात में बहुत कम हो गई है और इस कारण पुरुषों में अनुपस्थिति अधिक बढ़ गई है। स्थानीय खान-श्रमिक अपने परिवारों को देखने के लिये प्रायः नित्य ही अपने घर जाया करते हैं। इसी कारण बिलासपुरी तथा सथल के श्रमिकों की संख्या खानों में कम हो गई है, क्योंकि ये लोग अपनी स्त्रियों को गाँवों में छोड़ना पसन्द नहीं करते। स्त्री पुरुषों की संख्या में समान अनुपात न रहने के कारण कोयला खान क्षेत्रों में नैतिक पतन बहुत हो गया है। पहले पति और पत्नी दोनों ही खानों के भीतर साथ साथ जा सकते थे और हर समय पत्नी को अपने पति का संरक्षण मिलता रहता था। लेकिन अब, जब श्रमिक खानों के भीतर कार्य करने जाते हैं, तो वे अपनी युवा पत्नियों या युवा पुत्रियों को पीछे छोड़ने में संकट अनुभव करते हैं।

परन्तु इस समस्या का समाधान यह नहीं है कि स्त्रियों को पुनः खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति दे दी जावे। डॉ० मुकर्जी ने यह सुझाव दिया है कि श्रमिकों को अपने परिवारों को साथ लाने के लिये कुछ सुविधायें तथा आकर्षण देने चाहियें ताकि वर्तमान बुराइयों को दूर किया जा सके। खान के ऊपर यदि कोई नौकरी खाली होती है तो जहाँ तक सम्भव हो उसे स्त्री श्रमिक को देना चाहिये, तथा उनके लिये सहायक उद्योगों की स्थापना की सम्भावना पर भी ध्यान देना चाहिए। इन सहायक उद्योगों में कोलतार तथा कोयले के अन्य गौण उत्पादनों का उपयोग हो सकता है। इसके अतिरिक्त, मकानों तथा जल-मल निकास व्यवस्था में सुधार करने के लिये नियमित रूप से प्रबन्धकों द्वारा प्रयत्न किये जाने चाहियें, ताकि खान श्रमिकों का अपनी स्त्रियों को खान क्षेत्रों में लाने के लिये प्रेरित किया जा सके। अन्त में यह कहा जा सकता है कि खान श्रमिकों की औसत आय तथा कार्य-कुशलता में वृद्धि किये बिना उसकी पारिवारिक आय में जो वर्तमान हानि हुई है, उसका न तो किसी प्रकार प्रतिकार ही किया जा सकता है और न ही उनके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। गत वर्षों में कोयला, अभ्रक कच्चा लोहा तथा चूना व डोलोमाइट की खानों में श्रम कल्याण निधियों की स्थापना में और न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण से खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों की स्थिति में सुधार हुआ है और स्त्रियों का खानों के भीतर कार्य करना निषिद्ध करने से जो आय की हानि हुई है वह इन श्रमिकों को स्वास्थ्यकर तथा मधुर पारिवारिक जीवन

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशें[1]
(Recommendations of the National Commission on Labour)

राष्ट्रीय श्रम आयोग का विचार था कि शिक्षा के विस्तार ने, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, स्त्रियों को रोजगार के नये अवसर प्रदान किये हैं। ये अवसर लिपिक एवं प्रशासकीय पदों में, विशेष रूप से सरकारी सेवाओं में, तथा अध्यापन एवं नर्सिंग जैसे व्यवसायों में बढ़े हैं। किन्तु स्त्रियों के रोजगार के रास्ते में कई कठिनाइयाँ भी आती हैं। ये कठिनाइयाँ स्त्रियों की सीमित गतिशीलता तथा प्रशिक्षण एवं घरेलू सुविधाओं की कमी के कारण आती हैं विशेष रूप से अकेली महिला की स्थिति में। महिलाओं के संरक्षक अपनी महिलाओं को काम के लिये घर से दूर भेजना सुरक्षित नहीं समझते। महिलायें आमतौर पर स्थानीय रूप से उपलब्ध होने वाले काम को ही प्रमुखता देती हैं। आवास की सुविधाओं की अनुपलब्धता भी अकेली महिला की स्थिति में काम की प्राप्ति में बड़ी बाधक सिद्ध होती है। स्थानीय रूप में तो यह सुविधा उपलब्ध हो जाती है किन्तु शादी के बाद जब महिला का स्थान परिवर्तन होता है तो उसे अपना रोजगार जारी रखने में बड़ी कठिनाई का सामना करना होता है। आयोग ने आशा प्रकट की थी कि शहरी क्षेत्रों में अधिकाधिक महिलायें वेतनिक काम की प्राप्ति के लिये घरों से दूर जाने लगेंगी। आयोग ने यह आशा इसलिये प्रकट की थी क्योंकि शिक्षा का प्रसार अब तेजी से हो रहा है, परिवहन तथा संचार के साधन विकसित हो रहे हैं, महिलायें भी चाहती हैं कि वे आर्थिक दृष्टि से अधिक अच्छा जीवन बितायें, और एक बात यह कि वे परम्परागत सामाजिक मान्यतायें ढीली पड़ती जा रही हैं जो स्त्रियों द्वारा काम किये जाने के विरुद्ध थीं, उदाहरण के लिये महिलाओं द्वारा पुरुषों के साथ काम करने की प्रतिकूल सामाजिक मान्यतायें अब अपनी पकड़ छोड़ रही हैं। यह भी आशा की जाती है कि समाज कल्याण की संस्थायें तथा सामाजिक विज्ञानों एवं मानवतावाद के विकास में लगी संस्थायें शिक्षित महिलाओं के लिये काम के और भी अधिक अवसर उपलब्ध करायेंगी।

आयोग का कहना था कि कारखानों व खानों में काम करने वाली महिलाओं की संख्या में कमी आई है किन्तु बागानों में यह स्थिति स्थिर रही है। इस स्थिरता का कारण यह है कि बागानों के कृषि जैसे कार्य के लिये महिलायें अधिक उपयुक्त रहती हैं और वे काफी समय से इस काम की अभ्यस्त भी रही हैं। आयोग का कहना था कि स्त्रियों के रोजगार की प्रकृति के अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांश स्त्रियाँ या तो अकुशल प्रकृति के कामों पर लगी थीं अथवा ऐसे कामों में लगीं थीं जिनमें बहुत सरल किस्म की और परम्परागत कुशलता की ही आवश्यकता होती है। स्त्री-श्रमिकों की निम्न श्रेणी की कौशल-योग्यताओं के कारण उनका रोजगार-प्राप्ति का दायरा भी सीमित हुआ है और तकनीकी प्रगति के वर्तमान

१. राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट, अध्याय २७।

दौर में विशेष रूप से। आयोग ने स्त्री और पुरुष श्रमिकों की मजदूरी के अन्तरों की ओर भी ध्यान दिलाया और महिलाओं को रोजगार देते समय की जाने वाली उन भेदमूलक कार्यवाइयों का भी उल्लेख किया जो स्त्री श्रमिकों के लिये बने कानूनों के साथ ही वित्तीय बोझ बढ़ जाने के कारण मालिकों द्वारा की जाती है। आयोग की सिफारिश थी कि एक स्त्री के रोजगार पाने के अधिकार को पुरुष के अधिकार की तुलना में किसी भी प्रकार गौण नहीं माना जाना चाहिये। महिलाओं के लिये आवश्यक प्रशिक्षण सुविधायें उपलब्ध कराई जानी चाहिये और उनमें वृद्धि की जानी चाहिये। व्यावसायिक मार्गदर्शन के कार्यक्रम भी महिलाओं को वाछित जानकारी प्रदान करने में बड़े उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। यह भी उचित होगा कि ऐसे धन्धों एवं व्यवसायों में प्रशिक्षण के लिये महिलाओं को प्रमुखता दी जाये जिनके लिये कि उनमें विशेष योग्यता हो। 'समान कार्य के लिये समान वेतन' के सिद्धान्त का क्रियान्वयन वर्तमान के मुकाबले अधिक सन्तोषजनक ढंग से होना चाहिये। महिलाओं की नियुक्ति मालिकों के लिये अधिक किफायती सिद्ध हो, इसके लिये महिलाओं को अधिकाधिक मात्रा में कुशल श्रेणी के कामों पर लगाना होगा। महिलाओं में समुचित कुशलता लाने के पश्चात् और सामाजिक एवं आर्थिक नियोजन के एक अंग के रूप में स्त्री श्रम शक्ति का युक्तिसंगत वितरण हो जाने के बाद मालिकों के लिये यह सम्भव हो सकेगा कि स्त्रियों को रोजगार देते समय वे बिना भेद-भाव की नीति अपना सकें।

१६ दिसम्बर १९७८ को श्रम मन्त्रालय द्वारा स्त्री श्रमिकों का एक सम्मेलन बुलाया गया था। इस सम्मेलन में कई बातों पर विचार किया गया था, जैसे कि स्त्रियों से सम्बन्धित श्रम कानून, श्रमिक संघों में महिलाओं की भागीदारी, महिलाओं में रोजगार-प्राप्ति की क्षमता को बढाने के लिये उनके प्रशिक्षण की आवश्यकतायें, जिसमें ग्रामीण प्रशिक्षण पर अधिक जोर दिया गया हो। स्त्री-श्रमिकों के हितों की रक्षा हेतु विभिन्न कानूनों की धाराओं को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिये श्रम-मन्त्रालय में एक 'महिला कोष्ठ' (Women's Cell) की स्थापना गई है। कुछ राज्यों ने भी महिला कोष्ठ तथा सलाहकार समिति की स्थापना की है। महिलाओं द्वारा चलाये जाने वाले उद्यमों की वित्तीय व्यवस्था के लिये विशिष्ट ऋण योजनायें प्रारम्भ की जा रही है। राज्य सरकारों से ऐसी योजनायें बनाने के लिये कहा गया है जिनमें महिलाओं को रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध हों। संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा द्वारा १९७५ का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाने की भी घोषणा की गई थी। इस वर्ष में महिलाओं के लिये निम्न कार्यक्रमों पर जोर दिया गया था (१) समानता की वृद्धि, (२) सभी स्तरों पर विकास कार्यों का एकीकरण, (३) समान कार्य के लिये समान वेतन, और (४) महिलाओं के साथ किये जाने वाले सभी भेद-भावों की समाप्ति।

अपनाई गई श्रमिकों की भिन्न परिभाषा के कारण, (जिसका कि पृष्ठ १७ पर उल्लेख किया जा चुका है) यद्यपि श्रमिकों की कुल संख्या में कमी हुई है किन्तु कृषि श्रमिकों की संख्या बढ़ी है।

प्रथम तथा द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार १९५०–५१ में देश में लगभग ३½ करोड़ कृषि श्रमिक थे जिनमें से १ करोड़ ९० लाख पुरुष, १ करोड़ ४० लाख स्त्रियाँ तथा २० लाख बालक थे। १९५६–५७ में कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या ३ करोड़ ३० लाख थी, जिनमें से १ करोड़ ८० लाख पुरुष, १ करोड़ २० लाख स्त्रियाँ तथा ३० लाख बालक थे। १९५६–५७ में कृषि श्रमिक परिवारों की अनुमानित संख्या १ करोड़ ६३ लाख थी और १९५०–५१ में यह संख्या १ करोड़ ७९ लाख थी। ५७% १९५६–५७ में तथा ५०% १९५०–५१ में भूमिहीन श्रमिक थे। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार खेतिहर श्रमिकों की संख्या लगभग ४ करोड़ ४० लाख है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि सन् १८८२ में कृषि श्रमिकों की कुल संख्या केवल ७५ लाख थी। इस प्रकार गत ८० या ९० वर्षों में उनकी संख्या में बड़ी तीव्रगति से वृद्धि हुई है। उसका कारण भी स्पष्ट है। डॉ० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में, "ऐसी प्रत्येक परिस्थिति ने जिसने छोटे-छोटे काश्तकारों की आर्थिक दशा को गिराया है, कृषि श्रमिकों के सम्भरण (Supply) में वृद्धि की है, उदाहरणार्थ ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सामान्य अधिकारों का नष्ट हो जाना, जोतों का उपविभाजन, सामूहिक उद्यम (Collective Enterprise) का प्रचलित न रहना, लगान प्राप्त-कर्त्ताओं की संख्या में बढ़ोतरी, बिना किसी रोक के भूमि का हस्तान्तरण तथा बन्धक रखना और कुटीर-उद्योगों का पतन।" इसके अतिरिक्त, जनसंख्या में निरपेक्ष वृद्धि, जमींदारी और जागीरदारी प्रथाओं का उन्मूलन, जैसे—भूमि सुधार के कार्य (जिनके कारण व्यक्तिगत कृषि और कृषि यन्त्रीकरण में वृद्धि हुई), छोटे छोटे काश्तकारों द्वारा भूमि का विक्रय, आदि-आदि भी कृषि श्रमिक-वर्ग की संख्या में वृद्धि का कारण बने हैं।

अग्र तालिका में कुल जनसंख्या, श्रमिकों की कुल संख्या और कृषि श्रमिकों (agricultural labourers) सहित कृषि कर्मियों (agricultural workers) की संख्या दी गई है। ये आंकड़े (१९४१ को छोड़कर) १९०१ से १९७१ तक की जनगणना (census) से लिये गये हैं—

कृषि श्रमिकों के प्रकार (Kinds of Agricultural Workers)

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत में कृषि श्रमिक निम्नलिखित परिवारों से प्राप्त होते हैं—(१) भूमिहीन ग्रामीण श्रमिक परिवारों से (२) असाम्पत्तिक कृषक परिवारों से, तथा (३) असाम्पत्तिक शिल्पकारों अथवा ग्रामीण मजदूरों के परिवारों से। इस प्रकार कृषि श्रमिकों को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) खेतों में कार्य करने वाले श्रमिक, जैसे—कटाई करने वाले, हल चलाने वाले, इत्यादि। (२) साधारण श्रमिक, जैसे—कुआँ खोदने

(दस लाख की संख्या में)

वर्ष	कुल जनसंख्या	कुल श्रमिक	कृषि कर्मी			कुल श्रमिकों व कृषि कर्मियों में कृषि श्रमिकों का प्रतिशत		
			कृषि श्रमिक	कृषक	योग	कुल श्रमिकों का प्रतिशत	कुल श्रमिकों में	कृषि कर्मियों में
१	२	३	४	५	६	७	८	९
१९०१	२३६ २८	११० ७१	१७ २६	५१ ९५	६९ २१ (२९ ३)	६२ ५२	१५·५९	२४ ९४
१९११	२५२ १२	१२१ ३०	२४ ०६	५८ ४७	८२ ५३ (३२ ७)	६८ ०४	१९ ८४	२९ १५
१९२१	२५१·३५	११७ ७५	१९ ६५	६१ ६०	८१ २५ (३२ ३)	६९ ००	१६ ६९	२४·१८
१९३१	२७९ ०२	१२० ६७	२२ ११	५७ ६७	७९ ७८ (२८ ६)	६६ १२	१८ ३३	२७ ७२
१९५१	३६१ १३	१३९ ४२	२७ ५०	६९ ७४	९७ २४ (२६ ९)	६९ ७५	१९ ७२	२८ २८
१९६१	४३९ २३	१८८ ६८	३१ ५२	९९ ६२	१३१ १४ (२९ ९)	६९ ५०	१६ ७१	२४ ०४
१९७१	५४७ ९५	१८० ३७	४७ ४८	७८ १७	१२५ ६५ (२२ ९)	६८ ३१	२६ ३३	३७·७९

टिप्पणी—(१) ये आंकड़े इण्डियन लेबर ईयर बुक १९७७ से लिए गये हैं।
(२) कालम नं० ६ में कोष्ठ के अन्दर जो आंकड़े दिये गये हैं, वे कालम नं० २ का प्रतिशत प्रकट करते हैं।

वाले और विविध कार्य करने वाले व्यक्ति, इत्यादि । (३) कुल श्रमिक, जैसे— राज, मिस्त्री, बढई इत्यादि । कृषि श्रमिकों की सख्या में उपरोक्त वर्ग किस अनुपात में होने हैं, यह बात एक-समान नहीं पाई जाती वरन् क्षेत्र-क्षेत्र में भिन्न होती है। खेत जोतने वाले दास श्रमिकों (Serf Labour) का भी देश के कुछ भागों में प्रचलन है। दासता अधिकतर ऋण-ग्रस्तता में फँस जाने के कारण होती है। श्रमिक साधारणतया कुछ सामाजिक या धार्मिक दायित्वों को सम्पन्न करने के लिए ही जमींदार से ऋण लेता है। ऋण के बदले में उसे ऋण का भुगतान करने तक काम करने की सहमति देनी पड़ती है। लेकिन यह ऋण घटने की अपेक्षा बढ़ता ही चला जाता है। कभी-कभी तो केवल श्रमिक ही नहीं, अपितु उसका परिवार भी जीवन-भर के लिये इस दासता में बंध जाता है। ऐसे श्रमिकों के रहने और कार्य करने की दशायें भी बड़ी शोचनीय होती हैं। इस प्रकार के दास बहुधा आदिम जातियों और दलित जातियों के होते हैं, और विभिन्न राज्यों में इन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। उदाहरणतया, इन्हें बम्बई में 'कोलीज' और 'हालीज', मद्रास में 'पुलियान', बिहार में 'कामया', उड़ीसा में 'चाकर', मध्य प्रदेश में 'हल-वारी' और उत्तर प्रदेश में 'गोवरी' कहते हैं।

यहाँ यह बात भी विशेष ध्यातव्य है कि कृषि श्रमिक शब्द के अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति आ जाते हैं, जो नकद या जिन्स के रूप में मजदूरी लेकर कृषि कार्य करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की अपनी भूमि होती भी है और नहीं भी होती। कृषि में रोजगार का अर्थ खेतों तथा बागों आदि में रोजगार से है तथा रोपाई करना (planting), मिट्टी तैयार करना, जोतना, बोना, निराई करना, काट-छाँट करना तथा फसल की कटाई करने से सम्बन्धित उन विभिन्न कार्यों से है जो किसी अन्य व्यक्ति के निर्देशन में किये जायें। १९६१ की जनगणना में कृषि श्रमिकों की परिभाषा निम्न प्रकार की गई है . "कृषि श्रमिक उस व्यक्ति को कहते हैं जो किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर केवल एक मजदूर के रूप में कार्य करता है (कृषि में कोई निरीक्षण या निर्देशन का कार्य नहीं करता) और उसके लिए नकद, वस्तु के रूप में या उपज के भाग के रूप में मजदूरी प्राप्त करता है। उसे अन्तिम या चालू काम के मौसम में कृषि श्रमिक के रूप में ही काम करना होता है।" द्वितीय पचवर्षीय आयोजना के अनुसार, कृषि श्रमिकों की परिभाषा में ऐसे व्यक्तियों को ले सकते हैं जो वर्ष में जितने दिनों वास्तव में कार्य करते हैं, उनमें से आधे से अधिक दिनों कृषि श्रमिक का कार्य करते हैं। इस आधार पर, प्रथम कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार ग्रामीण परिवारों में से ३०.४ प्रतिशत कृषि श्रमिक थे जिनमें से आधे व्यक्तियों के पास भूमि भी नहीं थी। अधिक स्पष्ट शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि कृषि श्रमिकों की परिभाषा में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—हलवाहे फसल की कटाई करने वाले, बीज की बुवाई करने वाले, निराई करने वाले और रोपाई करने वाले, आदि। यह भी विशेष उल्लेखनीय है कि खेतीहर श्रमिकों की

संख्या मे स्त्री तथा बाल श्रमिको की प्रतिशत संख्या काफी अधिक है। कृषि-कार्य, जैसे—निराई करना, सँवाई करना, फटकोरना, खाद डालना, फसलो की देखभाल करना आदि, बहुधा स्त्रियो और बाल श्रमिको द्वारा किये जाते हैं। प० बगाल के कुछ जिलो मे संथल जाति मे यह बात अधिक पाई जाती है। सच यह है कि संथल जाति की स्त्रिया खेलिहर कार्यों और कृषि-कार्यों मे अपने पुरुषो की अपेक्षा कई बातो मे अधिक श्रेष्ठ होती है। बाल श्रमिको को जो, निर्धन माता-पिता के यहाँ जन्म लेते हैं और रूढिवादी रीति-रिवाजो मे जिनका पालन पोषण होता है, अत्यन्त कोमल आयु मे ही कृषि कार्यों पर लगा दिया जाता है। मुख्यतया बाल श्रमिक कार्य इसलिये करते हैं कि अपने परिवार की आय मे, जो पहले ही बहुत कम होती है, कुछ उन्नति कर सके या कम से कम मालिक से खाना या जिन्स के रूप मे मजदूरी लेकर परिवार का भार हल्का कर सकें। देश के लगभग सभी प्रदेशो मे इन अल्प-व्यस्क श्रमिको का अत्यधिक शोषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कृषि श्रमिक भी है, जो भूमि पर कार्य करते है और कुल उपज का एक निश्चित भाग उन्हे मजदूरी के रूप मे दे दिया जाता है। यह श्रमिक बटाई पर कार्य करते है और सामान्यतया बडे-बडे जमीदारो से पट्टे पर जमीन ले लेते है। ऐसे श्रमिको की दशा अन्य श्रमिको की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है। इसका कारण यह है कि उनके पास कुछ अपनी पूंजी होती है और उनमे उद्यम करने का उत्साह भी होता है।

कृषि कार्यों की प्रकृति रोजगार

(Nature of Work in Agriculture Employment)

कृषि रोजगार बहुधा मौसमी और सविराम प्रकृति का होता है। इसलिये कुशलता के अनुसार श्रमिको का वर्गीकरण नही किया जा सकता और यह वर्गीकरण केवल रोजगार की अवधि के आधार पर किया जा सकता है। कृषि श्रमिको को कृषि मौसम मे या तो अवकालिक आधार पर स्थायी रूप से नियुक्त किया जाता है या कार्य की आकस्मिक आवश्यकताओ के अनुसार उन्हे नैमित्तिक रूप से रोजगार पर लगाया जाता है। रोजगार की अवधि फसल की किस्म तथा कृषि की उस पद्धति पर निर्भर होती है, जो सामान्यतया अपनाई जाती है। उदाहरणार्थ, नहर द्वारा सिंचित उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र के भूखण्डो मे तथा उत्तर प्रदेश के केन्द्रीय तथा उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रो के उन भूखण्डो मे जहाँ गेहू पैदा होता है, रोजगार की अधिकतम अवधि, जिसके लिये श्रमिको को कृषि कार्य पर लगाया जाता है, वर्ष मे लगभग ९ महीने आती है। पूर्वी प्रदेश के उन भूखण्डो मे जहाँ गेहू पैदा नही होता वहाँ अवधि वर्ष मे केवल चार माह की होती है। कृषि श्रमिक साधारणतया दो प्रकार के होते हैं 'सम्बद्ध' (Attached) तथा 'नैमित्तिक' (Casual)। श्रमिक वे श्रमिक होते है, जो एक ही बार मे एक या एक से अधिक महीने लिये काम पर नियुक्त किये जाते है। ऐसे श्रमिक निरन्तर कार्य मे लगे

और उनका मालिकों से किसी न किसी प्रकार का संविदा (Contract) भी होता है। नैमित्तिक श्रमिकों को समय-समय पर कार्य की आवश्यकताओं के अनुसार रोजगार दिया जाता है। सम्बद्ध श्रमिकों की संख्या कृषि श्रमिकों की कुल संख्या का लगभग १० प्रतिशत से १५ प्रतिशत तक होती है। कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार नैमित्तिक वयस्क पुरुष श्रमिक को १९५०-५१ में औसत रूप से वर्ष में २०० दिन रोजगार मिलता था और १९५६-५७ में केवल १९७ दिन रोजगार मिलता था। १९५०-५१ में ७५ दिन और १९५६-५७ में ४० दिन वे स्वयं के कार्य पर लगे रहते थे। १९५०-५१ में ९० दिन तथा १९५६-५७ में १२८ दिन वे बेरोजगार रहते थे। रोजगार के सम्बन्ध में कृषि तथा ग्रामीण श्रमिक जाँचों के निष्कर्ष निम्न पृष्ठों में दिये गये हैं।

कृषि श्रमिकों की दशायें (Conditions of Agricultural Workers)

देश के अधिकांश श्रमिक नितान्त दुःखी हैं। उनकी शोचनीय अवस्था के विषय में भी सभी जानते हैं। उनका रोजगार स्थायी नहीं होता है, और वे बार-बार अनेक प्रकार की सामाजिक कठिनाइयों में फंस जाते हैं। ये कठिनाइयाँ उनकी दुर्बलता का गम्भीर कारण बन जाती हैं और वर्तमान कृषि-पद्धति में अस्थिरता आ जाती है। श्री जगजीवन राम ने इन अभागे करोड़ों श्रमिकों का अपने एक लेख में बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।[1] ये श्रमिक बहुधा अब भी आधे पेट भोजन करके ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी आय इतनी भी नहीं होती कि वे दो समय ढंग से भोजन भी कर सकें। किसी आरामदायक या सुख की वस्तु का तो उनके लिये प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। जिन झोपड़ियों और छप्परों में ये श्रमिक रहते हैं, वे मनुष्य के आवास के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं। कृषि श्रमिकों का वर्ग देश की अर्थव्यवस्था का सबसे अधिक दुर्बल वर्ग है और इन्हों सदा बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ और कष्ट सहे हैं। ऊँचे मूल्यों और वस्तुओं के अभाव के भी सर्वप्रथम यही लोग शिकार होते हैं। सन् १९४५ में अकाल जाँच आयोग ने बताया था कि बंगाल के अकाल में भूख से मरने वालों की सबसे अधिक संख्या कृषि श्रमिकों की ही थी। कृषि में चाहे जितने सुधार किये जायें, लेकिन खाद्य के उत्पादन में तब तक वृद्धि नहीं हो सकती जब तक कि प्राथमिक उत्पादकों, अर्थात् भूमि को जोतने वालों को न्यूनतम आय की सुरक्षा का आश्वासन नहीं दिया जाता और उनके देखभाल की समुचित व्यवस्था नहीं की जाती।

कार्य करने के घण्टे (Hours of Work)

कृषि श्रमिकों के कार्य-घण्टे किसी श्रम विधान द्वारा नियमित नहीं किये गये हैं। इनके कार्य-घण्टे स्थान-स्थान पर, मौसम मौसम में, तथा फसल फसल में भिन्न-भिन्न होते हैं। सामान्यतया कृषि में कार्य करने के घण्टे सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक होते हैं, जबकि कारखानों में कृत्रिम प्रकाश की सहायता से किसी

1 Sri Jagjivan Ram in an article "The Unfortunate Millions"

भी समय काम किया जा सकता है। कृषि के मजदूरी पुरुषों की मजदूरी की अपेक्षा
चलाने, सिंचाई तथा कटाई करने में, कार्य-घण्टे भिन्न अपेक्षा निश्चय ही कहीं अधिक
काल की ठंडी-ठंडी वायु के समय तथा यदाकदा चाँदनी
और फटकोरने आदि जैसे कार्य कर लिए जाते हैं। हलवाहे या न्यूनता पाई जाती है।
लगातार कार्य करते हैं या फिर दो पारियों म कार्य करते हैं जिनमे से (कुछ राज्यों में
काल की होती है तथा दूसरी सन्ध्या की। दोनों पारियों के मध्य म साधारणतया जिन्स और
से लेकर ६ घण्टे तक कार्य नहीं होता। ढेंकलों से सिंचाई करने वाले श्रमिक (नों के
समय में एक या दो घण्टे की पारियों में कार्य करते हैं। इस कार्य के लिए साधारणतया
श्रमिकों को दो टोलियों में काम पर लगाया जाता है। इनमें से एक टोली पानी
निकालने का काम करती है तथा दूसरी नालियों के माध्यम से इस पानी को खेतों
में पहुँचाने की व्यवस्था करती है। श्रमिकों की अपेक्षा छोटे छोटे काश्तकार और उनकी
पत्नियाँ लगातार कई घण्टों तक अधिक कार्य कर लेते हैं और मजदूरी पर लगाये गये
ऐसे श्रमिकों को वे पसन्द नहीं करते जो कार्य के घण्टों में कमी और अधिक मजदूरी
की माँग करते हैं। यदि श्रमिकों को मजदूरी कार्य के अनुसार या परिणाम के अनुसार
मिलती है तो वह अधिक घण्टों तक कार्य करने में आपत्ति नहीं करते। सच तो यह
है कि यदि उन्हें इस प्रकार मजदूरी दी जाती है तो फसल की कटाई के समय वे
अधिक श्रम करने को तैयार हो जाते हैं, परन्तु यह बात वर्ष में कुछ ही दिनों के लिये
लागू होती है। इस बात को देखते हुए कि कृषि में कार्य इतना थकाने वाला नहीं
होता, जितना कारखानों में होता है, यह कहा जा सकता है कि कृषि में कार्य के घण्टे
अधिक नहीं हैं। श्रमिक सामान्यतया दैनिक मजदूरी पर दिन में लगभग ८ घण्टे कार्य
करते हैं और दोपहर म उन्हें दो घण्टे का मध्यान्तर भी मिल जाता है। सामान्यतया
कार्य की आकस्मिक प्रकृति के कारण श्रमिकों को वर्ष के कुछ दिनों म बहुत अधिक
घण्टों तक कार्य करना पड़ता है, जबकि अन्य दिनों में वे प्रायः बेकार ही रहते हैं।
उजरत पर कार्य करने वाले श्रमिक अन्य श्रमिकों की अपेक्षा बहुत कम घण्टे कार्य
करते हैं, परन्तु उनकी आय अधिक हो जाती है।

भारत की वर्तमान दशाओं में कार्य के घण्टों से सम्बन्धित कोई भी विनियमन कृषि में लागू करना सरल नहीं है। इसका कारण यह है कि भारत में खेत बहुत छोटे-छोटे हैं और प्रायः टुकड़ों में बँट गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन भी आज तक कृषि श्रमिकों के लिये उनके कार्य करने के घण्टों से सम्बद्ध कोई अभिसमय पारित नहीं कर सका है। कुछ देशों में वर्ष भर के तथा दिन भर के कार्य करने के घण्टों को नियत करने के लिये विधान बनाये गये हैं। परन्तु इन विधानों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कार्य के घण्टे नियमित करने के लिये छूट देनी पड़ी है। श्रमिकों को केवल अति-श्रम करने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की गई है।

रोजगार पर तो लगाया जाता है परन्तु उनकी मजदूरी पुरुषों की मजदूरी की अपेक्षा कम होती है, यद्यपि यह भी सत्य है कि वे पुरुषों की अपेक्षा निश्चय ही कहीं अधिक कार्यकुशल होती है।

मजदूरी की अदायगी की पद्धतियों में भी अधिक भिन्नता पाई जाती है। कुछ राज्यों के गाँवों में नकद रूप से अदायगी करने की प्रथा है और कुछ राज्यों में केवल जिन्स के रूप में ही अदायगी की जाती है, तथा कुछ राज्यों में जिन्स और नकदी दोनों रूप में मजदूरी दी जाती है। इसके अतिरिक्त, कुछ कृषि कार्यों के लिये, जैसे—कटाई करने तथा फटकारने आदि के लिये, मजदूरी की अदायगी उजरत के रूप में की जाती है। कृषि श्रमिकों के पारिश्रमिक कभी-कभी विभिन्न रीतियों से नियत किये जाते हैं, जैसे—जोत के लिये भूमि देना, कपड़ा और अनाज देना, नकदी देना, भोजन और मकान की व्यवस्था कर देना, आदि। इस प्रकार उनकी वित्तीय क्षमता का मूल्यांकन करना सरल नहीं है। यद्यपि नकद रूप में अब मजदूरी की अदायगी करने का अधिक प्रचलन हो गया है, तथापि जिन्स के रूप में मजदूरी देना अब भी काफी प्रचलित है, विशेषतया कृषि अनुचरों को जिन्स के रूप में ही मजदूरी मिलती है।

कृषि श्रमिकों के लिये मजदूरी की दरों का अनुमान करने के हेतु विभिन्न राज्यों में पूछताछ की गई है। बम्बई में सन् १९४९-५० के खेतिहर श्रमिकों के लिए प्रतिदिन मजदूरी की दरें लगभग १ रु० २ आने से लेकर १ रु० ८ आ० ४ पा० तक अनुमानित की गई थी। अकुशल श्रमिकों के लिये यही दरें १ रु० ६ आ० १ पा० और १ रु० ९ आ० १ पा० के मध्य अनुमानित की गई थीं। इसके अतिरिक्त कुशल श्रमिकों के लिये यह दरें २ रु० ७ पा० और ३ रु० ६ आने ६ पा० के मध्य थीं। बिहार में जिन्स के रूप में अदायगी करने की प्रथा अब भी प्रचलित है, यद्यपि कुछ स्थानों में नकद रूप में भी मजदूरी दी जाती है। अगस्त सन् १९५१ में पुरुष खेतिहर श्रमिकों की मजदूरी १ रु० २ आ० ६ पाई तथा १ रु० १० आने के मध्य और स्त्री श्रमिकों की मजदूरी १२ आ० तथा १ रु० ८ आ० ४ पाई के मध्य थी। उत्तरी बिहार में दक्षिण बिहार की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती थी। 'सम्बद्ध' श्रमिकों को सामान्यतः १½ सेर धान और ६ छटांक पका हुआ चावल प्रतिदिन दिया जाता था, जिसकी लागत ११ आने ६ पाई प्रतिदिन आती थी। अनेक जिलों में मजदूरी बहुत कम पाई जाती थी। पश्चिमी बंगाल के विभिन्न गाँवों में अनेक पूछताछें की गईं, जिनसे यह ज्ञात हुआ कि दैनिक मजदूरी विभिन्न स्थानों पर १ रु० ८ आ० से लेकर २ रु० १२ आने तक थी।

उत्तर प्रदेश के चार गाँवों में ग्रामीण मजदूरी के विषय में पूछताछ की गई थी। इनमें से दो गाव मेरठ जिले में और दो गाव झांसी जिले में थे। मेरठ जिले के एक गाव में पूछताछ करने से यह ज्ञात हुआ कि 'सम्बद्ध' श्रमिकों को हल आदि चलाने के लिये एक रुपया प्रतिदिन दिया जाता था और साथ ही ४ छटांक आटा

और २ छटांक गुड़ भी दिया जाता था। नैमित्तिक हलवाहों को दो रुपया प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। भरठ के एक अन्य गांव में नकद रूप में मजदूरी दिये जाने का प्रचलन था। सम्बद्ध हलवाहों को २० रु० मासिक मजदूरी के अतिरिक्त ३ छटांक आटा भी प्रतिदिन दिया जाता था। जिन श्रमिकों को निराई तथा कटाई आदि के कार्यों में उजरत दर पर नियुक्त किया जाता था, उन्हें बिना किसी अन्य लाभ के आठ आना प्रति बीघा के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिये पुरुष श्रमिकों को ५ सेर और स्त्री श्रमिकों को ३ सेर कटा हुआ अनाज अतिरिक्त उजरत के रूप में दिया जाता था। झाँसी के एक गाँव में खेतिहर अनुचरों को हल चलाने और हेंगी चलाने आदि कार्यों के लिये प्रतिदिन आठ आना मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिये मजदूरी जिन्स के रूप में दी जाती थी। यह जिन्स २ सेर ८ छटांक गेहूँ या अनाज के रूप में होती थी। नैमित्तिक श्रमिकों को १२ आना प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। झाँसी के अन्य गांवों में स्थायी खेतिहर अनुचरों को १६ रु० मासिक तो मिलता ही था, इसके अतिरिक्त, उन्हें चार रोटियाँ भी प्रतिदिन दी जाती थीं। दो बीघा भूमि भी उन्हें प्रदान की जाती थी, जिस पर उन्हें किसी प्रकार का लगान नहीं देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त, निराई के लिये उन्हें १० आना प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी और कटाई के लिये उन्हें तीन सेर अनाज मिलता था। निराई और कटाई के लिये स्त्रियों को भी नैमित्तिक श्रमिकों के रूप में रोजगार पर लगाया जाता था। निराई की दर आठ आना प्रतिदिन थी। कटाई के लिये काटे गये अनाज का २ सेर ८ छटांक अनाज मजदूरी के रूप में दिया जाता था। इस गांव के हलवाहे दिन में १० घण्टे कार्य करते थे जबकि अन्य कार्यों में लगे हुये श्रमिक दिन में केवल ८ घण्टे ही कार्य करते थे। आजमगढ़ जिले के एक अन्य पाचवें गाँव में की गई पूछताछ से यह ज्ञात हुआ है कि नैमित्तिक कृषि श्रमिकों को चार आने से लेकर ८ आने तक प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी और २ आने प्रतिदिन इसके अतिरिक्त मिलते थे। सम्बद्ध श्रमिकों को दो रुपया प्रतिमाह इस मजदूरी से ऊपर मिलते थे या उनको बिना लगान की एक बीघा भूमि तथा ४ रुपया प्रतिवर्ष इसके अतिरिक्त मिलता था।

कृषि श्रमिकों की कमाई व आय के सम्बन्ध में कृषि तथा ग्रामीण श्रमिक जांचों के निष्कर्षों का उल्लेख आगे के पृष्ठों पर किया गया है।

कृषि श्रमिकों और औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी का अन्तर भी बहुत अधिक रहा है। कृषि श्रमिकों की प्रति व्यक्ति अनुमानित वार्षिक आय औद्योगिक श्रमिकों की अपेक्षा इस प्रकार थी प० बंगाल में १६० रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की २६८ रु०, बिहार में ११६ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की ३३२ रु०), उड़ीसा में ७६ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की १८८ रु०), मध्य प्रदेश में ८७ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की २६२ रु०), पंजाब में १२१ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की २१६ रु०), महाराष्ट्र में ८८ रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की ३६८ रु०)।

कृषि श्रमिकों का जीवन स्तर
(Standard of Living of Agricultural Workers)

कृषि श्रमिकों की यह न्यून मजदूरी ही इस बात के लिये उत्तरदायी है कि उनका जीवन-स्तर मानवीय स्तर से भी नीचा होता है। वर्ष में लगभग ६ माह कृषि-कार्य करके अर्जित की गई इस थोड़ी सी मजदूरी से कृषि श्रमिक के लिये निर्वाह करना असम्भव हो जाता है, क्योंकि शेष समय उसके पास कोई अन्य रोजगार नहीं होता। इसका परिणाम यह निकलता है कि वे प्राय आधे पेट भूखे रहते हैं। सभी प्रकार के कृषि-कार्यों को उचित रीति से काम करने के लिये भी उनमें पर्याप्त शारीरिक बल नहीं होता। उनके पारिवारिक बजटों में सदा घाटे का ही रोना रहता है।

कृषि श्रमिकों के पारिवारिक बजटों का विश्लेषण करने से यह भी ज्ञात होता है कि कृषि श्रमिक का आहार, स्तर और मात्रा दोनों ही रूप में, असन्तोषजनक होता है। भोजन पर सबसे अधिक व्यय होता है जिस पर कृषि श्रमिकों के परिवार की कुल आय की ७० प्रतिशत से लेकर ८४ प्रतिशत राशि व्यय हो जाती है। सामान्यतया कुल व्यय का ८८ प्रतिशत तो भोजन सामग्री पर तथा १.५% चीनी तथा साग सब्जियों पर और २.४ प्रतिशत केवल नमक और मसालों पर होता है। अन्य आवश्यक भोजन सम्बन्धी वस्तुओं जैसे—दूध तथा घी आदि, का तो कभी-कभी ही प्रयोग किया जाता है। जहाँ तक मांस का प्रश्न है, यह केवल विशेष सामाजिक अवसरों पर ही खाया जाता है। २.२ प्रतिशत वार्षिक व्यय ईंधन, प्रकाश और मकान के किराये आदि पर होता है। पान-सुपारी, तम्बाकू और मद्यपान तथा अन्य विविध मदों पर ८.३ प्रतिशत व्यय होता है। उपभोग व्यय के सम्बन्ध में कृषि तथा ग्रामीण श्रमिक पूछताछों के निष्कर्ष आगे दिये गये हैं।

इस प्रकार श्रमिक के पास किसी आराम या विलासिता की वस्तु पर व्यय करने के लिये कुछ नहीं बच पाता और न ही वह कुछ बचत कर सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि आकस्मिक संकट या सामाजिक उत्सवों तथा धार्मिक त्यौहारों के अवसरों आदि पर वह धन उधार लेने के लिये विवश हो जाता है। क्योंकि श्रमिकों का भोजन बड़ा असन्तोषजनक होता है, इसलिये वे सामान्यतया बड़ी आसानी से अनेक प्रकार के रोगों का शिकार हो जाते हैं और इसका उनके स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यकुशलता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी एक छोटी सी महामारी भी श्रमिक वर्ग के असंख्य प्राणियों का संहार कर देती है।

केवल मजदूरी की दरों से ही हमें कृषि श्रमिकों के जीवन स्तर का ज्ञान नहीं हो सकता अपितु उनके रोजगार की मौसमी प्रकृति का भी विचार करना होगा। जैसा कि मिसेज होवर्ड ने अपनी पुस्तक 'कृषि में श्रमिक' (Labour in Agriculture) में लिखा है 'श्रमिकों की सबसे बड़ी समस्या यह नहीं है कि उनकी मजदूरी की दर कितनी मिलती है, अपितु यह है कि उन्हें काम मिलता भी है या नहीं। इस

स्तरों पर बनाई गई ऐसी त्रिपक्षीय सलाहकार समितियों द्वारा होने चाहियें जिनमें कृषि श्रमिकों मालिकों व राज्य सरकारों के प्रतिनिधि हों। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को कम मजदूरी वाले क्षेत्रों से आरम्भ करके शनैं शनैं अन्य क्षेत्रों तक भी विस्तार करना चाहिये। ऐसी भी कोई तरकीब निकाली जानी चाहिये जो ग्रामीण पंचायतों को अधिनियम के क्रियान्वयन से सम्बद्ध कर दे।

सरकार द्वारा की गई कृषि श्रमिक पूछताछ
(Agricultural Labour Enquiries by the Government)

भारत सरकार ने अब तक ऐसी चार पूछताछ की हैं। पहली कृषि श्रमिक पूछताछ सन् १९५०-५१ में की गई थी दूसरी १९५६-५७ में और तीसरी व चौथी, जिन्हें ग्रामीण श्रमिक पूछताछ का नाम दिया गया था क्रमशः सन् १९६३-६५ में और १९७४-७५ में की गई थी।

इन पूछताछों का मुख्य उद्देश्य यह था कि कृषि श्रमिकों/ग्रामीण श्रमिकों की सामाजिक व आर्थिक दशाओं के कुछ पहलुओं के सम्बन्ध में सूचनायें एकत्र की जायें और उन सूचनाओं का जनसंख्या के इस वर्ग के सामाजिक व आर्थिक जीवन में परिवर्तन लाने का तथा नीति-निर्माण का आधार बनाया जाये। एकत्र की गई सामग्री का सम्बन्ध श्रमिकों के पारिवारिक ढांचे, रोजगार तथा बेरोजगारी की अवधि, कमाई, उपभोग व्यय तथा ऋणग्रस्तता आदि से है। उपभोग व्यय की सूचनाओं को अन्य उपयोग भी है। ये सूचनाएँ भारित रेखा चित्र (weighting diagram) उपलब्ध कराती हैं जिनकी आवश्यकता कृषि/ग्रामीण श्रमिकों के लिये उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों के निर्माण के समय होती है।

पहली और दूसरी कृषि श्रमिक पूछताछ की रिपोर्ट पहले ही प्रकाशित हो चुकी है। जहाँ तक ग्रामीण श्रमिक पूछताछ (Rural Labour Enquiry) का सम्बन्ध है, अखिल भारतीय स्तर पर अभी तक केवल संक्षिप्त सारांश ही प्रकाशित किया गया है। उसकी विस्तृत रिपोर्ट छप रही है।

पहली कृषि श्रमिक पूछताछ और दूसरी कृषि श्रमिक पूछताछ के आंकड़ों की कोई ठोस तुलना करना तो इसलिये संभव नहीं क्योंकि दोनों पूछताछों (Enquiries) में कृषि श्रमिक परिवारों की परिभाषा में मूलभूत अन्तर था। प्रथम पूछताछ में कृषि श्रमिक के रूप में रोजगार को इन श्रमिक परिवारों के निर्धारण की कसौटी माना गया, जबकि दूसरी पूछताछ में ऐसे रोजगार से होने वाली आय को कसौटी माना गया। ग्रामीण श्रमिक पूछताछ की स्थिति में वे परिभाषायें काम में लाई गई जो कि द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ में उपयोग की गई थी ताकि तुलना करना सरल हो सके। तुलनात्मक अध्ययन को सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से तीनों पूछताछों के स्थूल निष्कर्ष नीचे दिये जा रहे हैं—

कृषि श्रमिक परिवारों का ढांचा (Structure of Agricultural Labour Households)—कृषि श्रमिक परिवारों की संख्या, उनके पास भूमि होने तथा न होने का प्रतिशत एवं उनके औसत आकार के सम्बन्ध में व्यापक आंकड़े अग्र तालिका पृष्ठ ६१५ में दिये गये हैं—

	कृषि श्रमिक परिवार				सम्पूर्ण ग्रामीण श्रमिक परिवार	
	१९५०–५१	१९५६–५७	१९६४–६५	१९७४–७५	१९६४–६५	१९७४–७५
१	२	३	४	५	६	७
१ परिवारो की अनुमानित सख्या (१० लाख मे)	१७ ९	१६ ३	१५ ३	२०·७	१७ ८	२४ ८
२ कुल ग्रामीण परिवारो मे परिवारो का प्रतिशत	३०·३९	२४ ४७	२१ ७९	२५ ३	२५ ४३	३० ३
३ परिवारो का प्रतिशत—						
(i) भूमि सहित	४९ ९३	३२ ८७	४३ ९२	४१·१	४३ ४६	४८ ८
(ii) भूमि रहित	५० ०७	५७·१३	५६ ०८	४२ ४	५६·५	५१ २
४. परिवारो का औसत आकार	४ ३	४ ४	४ ५	४ ७	४ ८	४ ७
५ प्रति श्रमिक परिवार कमाने वालो की औसत सख्या	—	—	२ ०	२ ३	२ ०	२ ३

तालिका से स्पष्ट है कि कृषि श्रमिक परिवारों की संख्या में तथा कुल ग्रामीण परिवारों के अन्तर्गत उनके अनुपात में गिरावट की प्रवृत्ति पाई जाती है। कृषि श्रमिक परिवारों की संख्या में १६५०–५१ तथा १६५६–५७ के बीच १५ लाख की कमी हुई और आगे १६६४–६५ तक इस संख्या में १० लाख की और गिरावट आई। भूमियुक्त परिवारों के प्रतिशत में १६५६–५७ की तुलना में कुछ वृद्धि हुई लेकिन उनकी बहुसंख्या अभी भी भूमिरहित है। परिवारों का औसत आकार भी जो कि १६५०–५१ में ४.३ था, १६५६–५७ में बढ़कर ४.४, १६६४–६५ में ४.५ और १६७४–७५ में ४.७ हो गया था।

रोजगार (वर्ष में दिनों की संख्या)—इन पूछताछों में रोजगार की धारणा में कुछ अन्तर रहे हैं। प्रथम पूछताछ (enquiry) में विविध आर्थिक क्रियाओं का सख्यात्मक माप करने की दिशा में कोई प्रयास सावधानीपूर्वक नहीं किया गया। आधे दिन अथवा उससे अधिक के मजदूरी पर रोजगार का पूर्ण दिन का रोजगार माना गया और आधे दिन से कम के रोजगार को छोड़ दिया। यदि किसी माह में किसी व्यक्ति ने एक दिन भी काम किया तो उसे लाभ के रोजगार पर लगा हुआ माना गया। दूसरी ओर, बेरोजगारी से सम्बन्धित आँकड़े केवल उन वयस्क पुरुषों श्रमिकों के एकत्र किये गये जिन्होंने प्रत्येक माह पर मजदूरी पर रोजगार की सूचना दी। जिन श्रमिकों ने मजदूरी पर रोजगार की सूचना नहीं दी (जो कि कुल वयस्क पुरुष श्रमिकों के १६% थे), उनके सम्बन्ध में यह मान लिया गया कि वे आधी अवधि में तो स्वतः रोजगार पर लगे थे और शेष आधी-अवधि में बेरोजगार थे। प्रथम जाँच में स्वतः रोजगार के आँकड़े पृथक् से एकत्र नहीं किये गये थे, अपितु वे केवल अनुमानिक प्रकृति के थे और ३६५ दिनों में से मजदूरी पर रोजगार तथा बेरोजगार को घटा कर प्राप्त किये गये थे।

द्वितीय पूछताछ में, विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं में लगे दिनों की संख्या रोजगार की निर्धारित परिभाषाओं के अन्तर्गत पृथक्-पृथक् दर्ज की गई थी। काम के दिनों की गणना आंशिक रोजगार को जोड़कर की गई थी। ग्रामीण श्रमिक पूछताछ में रोजगार की परिभाषा वही काम में लाई गई जो कि द्वितीय कृषि श्रमिक जाँच में प्रयुक्त की गई थी।

अग्र तालिका पृष्ठ ६१७ में तीनों पूछताछों की अवधियों में रोजगार की अवधि के सम्बन्ध में पूर्ण गहनता के आधार पर सूचनायें दी गई हैं—

अग्र तालिका पृष्ठ ६१७ से स्पष्ट है कि १६५६–५७ के पश्चात् से कृषि पुरुष श्रमिकों को उपलब्ध रोजगार के अवसरों में कुछ वृद्धि हुई है। ये श्रमिक १६६४–६५ में औसतन २४२ दिन मजदूरी पर रोजगार में लगे थे जबकि १६५६–५७ में औसतन दिनों की यह संख्या २२२ थी। मजदूरी पर रोजगार के दिनों की यह वृद्धि हुई अवधि केवल कृषि व्यवसायों के सम्बन्ध में ही थी। दूसरी ओर गैर-कृषि व्यवसायों में रोजगार के दिनों की संख्या, जो कि १६५६–५७ में २८ थी, गिरकर १६६४–६५ में २५ रह गई। स्वयं के रोजगार के दिनों की संख्या भी इस अवधि में ३३ से गिरकर २५ रह गई।

कृषि श्रमिकों का रोजगार (वर्ष मे दिनो की सख्या)

	कृषि श्रमिक परिवार				श्रमिक ग्रामीण परिवार	
	१९५०–५१	१९५६–५७	१९६४–६५	१९७४–७५	१९६४–६५	१९७४–७५
१	२	३	४	५	६	७
१. वयस्क पुरुष—						
(क) मजदूरी पर रोजगार	२१८	२१२	२४२	२१५	२४५	२१४
(i) कृषि	१८९	१८४	२१७	१९३	२१९	१९२
(ii) गैर-कृषि	२९	२८	२५	२२	२६	२२
(ख) स्वय का रोजगार	४९[1]	३३	१५	२८	२५	२८
२ वयस्क स्त्री—						
(क) मजदूरी पर रोजगार	१३४	१४१	१६०	१४९	१७२	१४८
(i) कृषि	१२०	१३१	१४९	१३८	१६१	१३७
(ii) गैर-कृषि	१४	१०	११	११	११	११
(ख) स्वय का रोजगार	अनुपलब्ध	१७	१८	२४	१८	४२
३. बच्चे—						
(क) मजदूरी पर रोजगार	१६५	२०४	२२४	१९४	२२३	१९३
(i) कृषि	१५०	१८७	२०७	१७८	२०७	१७७
(ii) गैर-कृषि	१५	१७	१७	१६	१६	१६
(ख) स्वय का रोजगार	अनुपलब्ध	४४	२२	३९	२२	३९

1. इस आंकडे म १६ प्रतिशत ऐसे कृषि श्रमिक भी सम्मिलित है जिन्होने वर्ष के किसी दिन के लिये भी मजदूरी पर रोजगार की सूचना नही दी थी परन्तु उन्हे आधे समय के लिये स्वय के रोजगार पर लगे हुए माना गया ।

कमाई (Earnings)—विभिन्न समयों की कमाई व आँकड़ों की तुलना में भी कठिनाई सामने आती है। जिस रूप में मजदूरियों का हिसाब प्रथम कृषि श्रमिक पूछताछ में तो फुटकर कीमतों के आधार पर लगाया गया था और द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ में तथा ग्रामीण श्रमिक पूछताछ में थोक कीमतों के आधार पर। उपरोक्त तालिका (पृष्ठ ६१८–१६) में कृषि तथा गैर कृषि कार्यों के सम्बन्ध में कमाई (धनोपार्जन) के व्यापक आँकड़े दिये गये हैं—

कृषि और गैर कृषि, दोनों ही प्रकार के कार्यों में पुरुष श्रमिकों की औसत दैनिक कमाई में सन् १९५६–५७ के बाद से ४७ पैसे की वृद्धि दर्ज की गई। स्त्री श्रमिकों की कमाई में आनुपातिक रूप में अधिक वृद्धि हुई। इसका कारण था लिंग के आधार पर मजदूरी के अन्तरों का कम होना। कृषि कार्यों में पुरुष श्रमिकों ने १९६४–६५ में जो कमाया उसका ६६ प्रतिशत उनकी साथी महिला श्रमिकों ने कमाया जबकि १९५६–५७ में यह प्रतिशत ६१ था। विभिन्न कृषि कार्यों में पौध लगाने के कार्य से कमाई में सर्वाधिक वृद्धि दर्ज की गई।

पारिवारिक आय (Household Income)—कृषि श्रमिक परिवारों की औसत वार्षिक आय जैसी कि तीनों पूछताछों से प्राप्त हुई है निम्न तालिका में दी गई है—

श्रमिक परिवारों को विभिन्न स्रोतों से होने वाली औसत वार्षिक आय

(रुपया में)

आय के स्रोत	कृषि श्रमिक परिवार			सम्पूर्ण ग्रामीण श्रमिक परिवार
	१९५०–५१	१९५६–५७	१९६३–६४	१९६३–६४
१	२	३	४	५
(क) भूमि की जुताई से	५९ १०	३० ०७	४३ ५४	४६ ०५
(ख) मजदूरी प्राप्त शारीरिक श्रम	३४० १६	३५४ ४६	५४४ ८५	५६८ ६२
(ग) मजदूरी प्राप्त मानसिक श्रम	*	*	१० ८३	१३ ३२
(घ) खेती के अलावा घरेलू काम	*	*	२२ ५०	२८ ००
(ङ) अन्य स्रोत	४६ ६४	५२ ६१	३९ ३७	३८ २३
	४४७ ००	४३७ ७५	६६० १९	६९५ २२

* अन्य स्रोतों में सम्मिलित।

कृषि श्रमिक परिवारो की औसत वार्षिक आय १९६३–६४ मे रु० ६६,०१९ थी। १९५६–५७ के मुकाबले यह आय लगभग ५१ प्रतिशत अधिक थी। इस वृद्धि का मुख्य कारण था मजदूरी पाने वाले शारीरिक श्रमिकों की ऊँची आय, जो कि कुल आय की लगभग ८३ प्रतिशत थी। भूमि की जुताई से होने वाली आय भी इस अवधि मे बढी थी यद्यपि कुल आय म उसका भाग लगभग वैसा ही रहा अर्थात लगभग ६ प्रतिशत।

कृषि श्रमिक परिवारो की तुलना मे श्रमिक परिवारो की आर्थिक स्थिति अच्छी थी।

उपभोग व्यय (Consumption Expenditure)—कृपि श्रमिक परिवारो के औसत वार्षिक उपभोग व्यय के विस्तृत आँकडे तालिका मे दिये गये है—

श्रमिक परिवारो का औसत वार्षिक उपभोग व्यय

(रुपयो मे)

	कृषि श्रमिक परिवार			सम्पूर्ण ग्रामीण श्रमिक परिवार
	१९५०–५१	१९५६–५७	१९६३–६४	१९६३–६४
१	२	३	४	५
कुल व्यय (रु०)	४६१	६१७	१,०२९	१,०५२
कुल व्यय मे प्रतिशत				
(१) खाद्य	८५ ३	७७ ३	७४ ०	७३ ४
(२) वस्त्र तथा जूते	६ ३	६ १	६·७	६ ८
(३) ईंधन तथा प्रकाश	१ १	७ ९	७ ६	७ ५
(४) विविध तथा सेवायें	७ ३	८ ७	११ ७	१२ ३

कृषि श्रमिक परिवारों का औसत वार्षिक उपभोग व्यय, जो कि १९५६–५७ मे ६१७ रु० था, १९६३–६४ मे बढकर १०२९ रु० हो गया, अर्थात् इसमे लगभग ६७ प्रतिशत की वृद्धि हुई। किन्तु कुल व्यय म खाद्य पर होने वाले व्यय का भाग ७७ प्रतिशत से घटकर ७४ प्रतिशत रह गया। वस्त्र जूते तथा ईंधन व प्रकाश पर होने वाले प्रतिशत व्यय मे अधिक अन्तर नही था।

सम्पूर्ण ग्रामीण श्रमिक परिवारो का उपभोग व्यय कुछ ऊँचा (अर्थात् १०५२ रु०) था।

ऋण ग्रस्तता (Indebtedness)—पारिवारिक ऋण ग्रस्तता के सम्बन्ध मे तीनो पूछताछो से जो जानकारी प्राप्त हुई है, वह अग्र तालिका मे दी गई है—

सन १९६४–६५ मे लगभग ६१ प्रतिशत कृषि श्रमिक परिवार ऋणग्रस्त थे जबकि १९५६–५७ म यह प्रतिशत ६४ था। इन ऋणग्रस्तता की व्यापकता घटती पर थी। दूसरी ओर इस अवधि म ऋण की गहनता (intensity) म वृद्धि हुई। एक ऋणग्रस्त परिवार का औसत ऋण, जो कि सन् १९५६–५७ मे १३८ रु० था,

श्रमिक परिवारों की ऋणग्रस्तता

	कृषि श्रमिक परिवार				सम्पूर्ण ग्रामीण श्रमिक परिवार	
	१९५०–५१	१९५६–५७	१९६४–६५	१९७४–७५	१९६४–६५	१९७४–७५
१	२	३	४	५	६	७
१ ऋणग्रस्त परिवारों का प्रतिशत	४४.५	६३.९	६०.६	६६.४	५९.२	६५.४
२. प्रति परिवारों औसत ऋण (रु०)	४७	८८	१४८	३८७	१४८	३९५
३. प्रति ऋणग्रस्त परिवार औसत ऋण (रु०)	१०५	१३८	२४४	५८४	२५१	६०५
(क) ऋण लेने के स्रोत (रु०)						
(i) मालिक	२२	२१	४८	५९	४५	५८
(ii) दूकानदार	६	७	१८	३९	२१	४४
(iii) महाजन	३८	४७	७५	२७९	८०	२८१
(iv) सहकारी समितियाँ	१	२	१२	३१	१४	३४
(v) अन्य	३८	६१	९१	१५५	९१*	१६३
(vi) बैंक	—	—	—	२१	—	२४
(ख) ऋण का उद्देश्य (रु०)						
(i) उत्पादन	१०	२६	२९	७४	३०	७७
(ii) उपभोग	७८	६४	१३०	२८१	१३०	२८४
(iii) सामाजिक कार्य	१७	३३	५९	११०	६२	११७
(iv) अन्य	—	१५	२६	११८	२९*	१२७

* इसमें १ रु० भी सम्मिलित हैं जिसके स्रोत का पता नहीं था।

१९६४-६५ मे बढ़कर २४४ रु० हो गया अर्थात् इसमे लगभग ७७ प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस तीव्र वृद्धि को यदि आय और व्यय से सम्बन्धित करके देखा जाये तो यह कोई आश्चर्यजनक प्रतीत नही होगी। दोनो के बीच अन्तर जो १९५६-५७ मे १८० रु० था १९६३ ६४ म दुगुने से भी अधिक हो गया था।

महाजन ही ऋण के मुख्य श्रोत थे। ऋण की औसत मात्रा का लगभग ५३ प्रतिशत भाग उपभोग व्यय के लिए लिया था।

कृषि श्रमिक परिवारो की तुलना मे श्रमिक परिवारो म ऋण की बाहुलता कुछ कम थी किन्तु औसत ऋण की राशि अपेक्षाकृत अधिक थी।

यह भी उल्लेखनीय है कि ग्रामीण श्रमिकों की समस्याओ के सम्बन्ध म देश के विभिन्न भागो मे समय समय पर अनुसधान छात्रो द्वारा तथा आयोजना आयोग की अनुसधान कार्यक्रम समिति द्वारा चालू कार्यक्रमो के अन्तर्गत गहन अध्ययन किया जाता रहा है। इन सर्वेक्षणो की रिपोर्टों से भी ऐसे महत्वपूर्ण आँकड़े प्राप्त होगे जिनके द्वारा कृषि श्रमिका की समस्याओ के समाधान के लिये नीतियो का निर्माण करने मे सहायता मिलेगी।

बेगार की समस्या - बन्धक मजदूर
(Problem of Forced Labour Bonded Labour)

बेगार या अनिवार्य श्रम का उस कार्य या सेवा से अभिप्राय है जिसके लिये चाहे मजदूरी अदा की जाती हो या न की जाती हो, परन्तु जो किसी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक कराई जाती है। बेगार की समस्या एक गम्भीर सामाजिक बुराई है और यह बुराई ग्रामीण भारत के अनेक भागों मे पाई जाती है। जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है कृषि श्रमिक पूछताछ ने कुछ पिछड़े हुये गाँवो म इस दासता की प्रथा के पाये जाने की ओर सकेत किया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सन् १९३० के बेगार से सम्बन्धित अभिसमय के परिणामस्वरूप सन् १९३१ म भारतीय विधान सभा मे एक प्रस्ताव पारित किया था, जिसम भारत सरकार से यह माँग की गई थी कि वह इस बेगार की बुराई को दूर करने के लिये कुछ आवश्यक कार्यवाही करे। फलस्वरूप, भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारो को यह आदेश दिया कि वे उन विभिन्न अधिनियमो की जाँच करे, जिनके अन्तगत बेगार ली जाती थी। ऐसे अधिनियम अपराधी प्रवृत्ति की जातियो के तथा अच्छा व्यवहार करने वाले कैदियो को छोडने के सम्बन्ध म थे। इसी प्रकार के कुछ अन्य सामाजिक विधान भी थे। राज्य सरकारा को यह भी आदेश दिया गया कि वे यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र इस बेगार की प्रथा को समाप्त कर दे। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने केन्द्रीय अधिनियमों की भी जाँच की। जमीदार या अन्य लोग वैधानिक रूप से बेगार न ले सकें, इसके लिये सन् १८०६ के बगाल विनियम अधिनियम मे तथा मालगुजारी के कुछ अधिनियमो मे सशोधन किये गये। कुछ प्रान्तीय सरकारो ने

दौरा करने वाले अधिकारियो द्वारा इस बेगार लेने की प्रथा को रोकने के लिये प्रशासनिक आदेश भी जारी किये। अनेक देशी राज्यों ने भी बेगार के विषय पर विधान बनाये थे।

परन्तु इस दशा में अधिक परिवर्तन नही हो सका। इसीलिये सन् १९४७ में भारत सरकार ने केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा भारतीय राज्यों के विभिन्न अधिनियमो तथा बेगार पर उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करने के लिये एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया। इस अधिकारी को इस विषय पर रिपोर्ट देनी थी कि तत्कालीन विधान किस सीमा तक बेगार को रोकने में समर्थ था तथा भविष्य में इस बेगार को रोकने के लिये क्या करना आवश्यक था। यह रिपोर्ट, जो प्रस्तुत की जा चुकी है, कई स्थानो पर बेगार की बुराइयो की ओर सकेत करती है तथा बेगार करने वाले श्रमिको के प्रकार आदि के सम्बन्ध में व्यापक सूचनायें देती है।

निम्नाङ्कित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत बेगार का वर्गीकरण किया जा सकता है—(१) सार्वजनिक कार्यों के लिये सरकार द्वारा वैध रूप से ली गई अधिग्रसित (Requisitioned) बेगार। (२) जमीदारो या ऋण-दाताओं द्वारा बलपूर्वक ली गई बेगार, तथा (३) रीति-रिवाजों के अन्तर्गत ली जाने वाली बेगार जो, निजी व्यक्तियों द्वारा ली जाती है।

अपने कर्त्तव्य-पालन में सार्वजनिक अधिकारियो द्वारा अनिवार्य श्रम या बेगार सार्वजनिक कार्यों के लिये सभी वर्गों के व्यक्तियो से ली जाती है। उदाहरणार्थ, लोगों को अनिवार्य रूप से कुछ कार्य करने पड़ते हैं, जैसे—पुलिस या मजिस्ट्रेट को किसी अपराध की सूचना देना, किसी अपराधी को पकडना, किसी सार्वजनिक अधिकारी को उसके कर्त्तव्य-पालन में सहायता देना, सार्वजनिक सम्पत्ति की सफाई या देख-रेख करना, आग, बाढ, महामारी आदि जैसे सकटों में सहायता देना और सार्वजनिक हित के कार्य करना, आदि। यह भी देखा गया है कि कुछ अधिनियमो में ऐसे उप-बन्ध हैं जिनके अन्तर्गत कुछ विशेष कार्यों के लिये बेगार की अनुमति या सुविधा है। भारत सरकार इन अधिनियमों में सशोधन करने का विचार कर रही है।

अन्य प्रकार की एक बेगार भी है। यह बेगार जमीदार अपने आसा-मियों तथा गाँव के अन्य निवासियों से अपने स्वामित्व के बल पर लेते रहे हैं। वास्तव में इन जमीदारों को अपने आसामियो से लगान लेने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त करने का अधिकार नही होता। सभी राज्य सरकारों ने अपने रैयतदारी विधान में ऐसी व्यवस्था की है, जिसके अन्तर्गत आसामियो से अवैधानिक रूप में बेगारें या सेवायें लेना एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। लेकिन इन सब बातों के होते हुए भी मालिक वर्ग में कई बार आसामियों को बिना मजदूरी दिये या थोडी सी मजदूरी देकर अपने खेतो पर कार्य करने के लिये विवश कर देते हैं। कभी-कभी यह जमीदार गाँव के कुछ निवासियो को मकानों के लिये या खेती के लिये भूमि दे देते हैं, जिसका लगान उन्हें या तो नकद रूप में अदा करना पड़ता है

या फिर उपज के कुछ भाग के रूप में। ऐसे आसामी को प्राय या तो अपने जमींदार के खेतों में कार्य करना पड़ता है या फिर उसके घरेलू कार्य करने पड़ते हैं। अनेक बार तो उसके परिवार के सदस्यों को भी जमींदार के लिये कार्य करना पड़ता है, जिसके लिये प्राय उन्हें कोई मजदूरी नहीं दी जाती है और यदि दी भी जाती है, तो वह बहुत कम होती है। इस सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि आसामी न तो कार्य करने के लिये मना ही कर सकते हैं और न मजदूरी ही के लिये किसी प्रकार का मोल-भाव कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें इस बात का भय होता है कि कहीं ऐसा न हो कि उन्हें उनके खेतों या मकान की भूमि से निकाल दिया जाय। भारत में अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ-जहाँ यह जमींदारी प्रथा विद्यमान थी या विद्यमान है, जमींदारों द्वारा बेगार लिये जाने के विषय में साधारणतया यही बातें अधिक पाई गई हैं।

इसके अतिरिक्त एक और बेगार है। यह बेगार ऋणदाता लेते हैं। दास श्रमिकों का वर्णन करते समय इस बेगार का उल्लेख किया जा चुका है। कभी-कभी जमींदार अपने आसामियों को ऋण देते हैं, तथा मकानों के लिये भूमि देते हैं और इस प्रकार सदा के लिये उन्हें अपने यहाँ नौकरी करने के बन्धन में आबद्ध कर लेते हैं। यह प्रथा ग्रामीण भारत के अनेक भागों में प्रचलित है। इस प्रथा को भिन्न-भिन्न नाम भी दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य भारत के कुछ भागों में इस प्रथा को 'हरवाही' पद्धति कहते हैं। यही प्रथा बिहार के अन्य भागों में 'कँमुली' उड़ीसा तथा तमिलनाडु के कुछ भागों में 'गोठी', तमिलनाडु के कुछ अन्य भागों में 'वेथ', गुजरात में 'हाली', पंजाब में 'सैरी', या 'सान्जी', उत्तर प्रदेश में 'सेवक' या 'हरीस' और राजस्थान में 'सगरी', आदि कहलाती है। ऋण के लेने-देने में कानूनी दायित्व केवल इतना ही होता है कि ऋण को ब्याज सहित चुका दिया जाये। लेकिन इस प्रथा के अन्तर्गत जब तक ऋण की अदायगी नहीं हो जाती, देनदार को अपने ऋणदाता के लिये शारीरिक श्रम करना पड़ता है। यह ऋण यथार्थ में घटने की अपेक्षा बढ़ता ही चला जाता है। ऐसा भी होता है कि देनदार तथा कभी-कभी उसके परिवार के सदस्य भी आजीवन इस बन्धन में बँध जाते हैं, और देनदार की मृत्यु के बाद भी उसके पुत्र को पैतृक सम्पत्ति के रूप में अपने पिता के सभी अधिकारों तथा दायित्वों का भार वहन करना पड़ता है। अनेक राज्य सरकारों ने इस बुराई को दूर करने के लिये पग उठाये हैं। सन् १९२० में बिहार तथा उड़ीसा सरकार ने इस बुराई को जड़ से दूर करने के लिये "बिहार तथा उड़ीसा कँमुली समझौता अधिनियम" पारित किया। मद्रास सरकार ने सन् १९४० में "मद्रास अभिकरण ऋण दासत्व उन्मूलन विनियम" (*Madras Agency Debt Bondage* Abolition Regulation) पारित किया। उड़ीसा सरकार ने सन् १९४८ में उड़ीसा ऋण दासत्व उन्मूलन विनियम बनाया। अन्य राज्य सरकारों के ऋण विधान ने भी कुछ सीमा तक इस प्रथा की बुराई को कम करने में सहायता दी है।

देश मे बधुंआ मजदूरो की सख्या कितनी है, इसका पता लगाने का कोई प्रामाणिक स्रोत नही है। अत इस सम्बन्ध म जो अनुमान लगाये गये है, उनमे अन्तर पाया जाता है। राज्य सरकारो स प्राप्त सूचनाओ क अनुसार, सन् १६८० तक पता लगाये गये और मुक्त किये गये बधुंआ मजदूरो की सख्या १,२०,६८६ थी जिनम स ६८,८७३ को किसी न किसी कार्यक्रम क अन्तगत फिर स बसा दिया गया था। इनम से १८,५६६ बधुंआ मजदूरो को उस केन्द्रीय वित्तीय सहायता के द्वारा लाभ प्राप्त हुआ जो केन्द्र द्वारा अब तक राज्य सरकारो को दी गई थी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (N S S) के ३२वें चक्र क अनुसार, अप्रैल १९७९ मे विभिन्न राज्यो म बधुंआ मजदूरो की सख्या लगभग ३ ४ लाख थी। किन्तु राष्ट्रीय श्रम सस्थान तथा गांधी शान्ति प्रतिष्ठान द्वारा १६७८ म किये गये एक सयुक्त सर्वेक्षण के प्रारम्भिक निष्कर्षों क अनुसार, आठ राज्यो म बधुंआ श्रमिको की कुल सख्या लगभग २१ ७ लाख थी (अर्थात् आन्ध्रप्रदेश म ३,२५,०००, बिहार म १,११,०००, गुजरात म १ ७१,०००, कर्नाटक म १,६३,०००, मध्यप्रदेश म ५ ००,०००, राजस्थान म ६७,०००, तमिलनाडु म २,५०,००० और उत्तरप्रदेश म ५ ५०,०००)। राज्य सरकारो न ३१ अक्टूबर १६८० तक जिन बधक श्रमिको का पता लगाया, उनकी सख्या निम्न प्रकार थी —आन्ध्रप्रदेश १२,७०१, बिहार ४,२१८, गुजरात ६२, कर्नाटक ६२,६८६ केरल ७००, मध्यप्रदेश १५२१, उडीसा ३३७, राजस्थान ६,०००, तमिलनाडु २८८०८, उत्तरप्रदेश ८६६६, बधुंआ श्रमिको मे अनुसूचित जातियो तथा अनुसूचित जनजातियो की सख्या सर्वाधिक है। यद्यपि इनके कोई राज्यवार आँकडे तो उपलब्ध नही है कि सन् १६७८ मे किये गये एक राष्ट्रीय स्तर के सर्वेक्षण के अनुसार, अनुमान लगाया गया था कि पता लगाये गये बधुंआ श्रमिको म ६६% अनुसूचित जातियो से और १८ ३% अनुसूचित जनजातियो से सम्बन्धित थे।

मुक्त किये गये बधुंआ श्रमिक राज्य सरकारो द्वारा फिर से बसाये तथा अपने पैरो पर खडे किये जा रहे हैं। यह कार्य मुख्यत उन प्रचलित विभिन्न कार्यक्रमो के अन्तर्गत ही किया जा रहा है जो कि क्षेत्रीय विकास पिछडे वर्गों के कल्याण से सम्बन्धित हैं। राज्य सरकारो क पुनर्वास प्रयासो को और आगे बढाने की दृष्टि स सन् १६७८–७६ म श्रम मन्त्रालय द्वारा 'एक केन्द्र प्रेरित योजना' लागू की गई, जिसके लिये छठी योजना म २५ करोड रु० रखे गये। इस योजना के अन्तर्गत, मुक्त किये गये बधक श्रमिको के पुनर्वास के लिये राज्य सरकारो ५० प्रतिशत तुल्य अनुदान (matching grants) दिये जाते हैं। इस योजना म मुक्त किये गये बधक श्रमिको को ४,००० रु० प्रति श्रमिक की दर से सहायता दी जाती है। यह सहायता आय उपार्जित करने वाली इकाइयो या वस्तुओं के रूप म दी जाती है जैसे कि कृषि सम्बन्धी उपकरण दूध वाले पशु, मुर्गी, बकरी, भेड तथा

नाड़ तथा एशियाई देशों ने आर्थिक विकास के सामाजिक पहलू के विषयों पर कृषि में पूंजी निर्माण और उत्पादकता के सम्बन्ध में विचार किया। नवम्बर १९५७ में चौथी एशियायी क्षेत्रीय सम्मेलन ने भी बटाई वाले श्रमिक किसान श्रमिक तथा अन्य कृषि श्रमिकों के कार्य व रहन-सहन के विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। जून १९६० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के ४४वें अधिवेशन में ऐसे देशों के जिनमें विकास कार्यक्रम हो रहे थे, ग्रामीण समुदाय की आय तथा रहन-सहन की दशाओं में उन्नति के सम्बन्ध में एक व्यापक प्रस्ताव पारित किया तथा १९६१ के अधिवेशन ने १९६२ के बजट में ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों के सम्बन्ध में १९६३ के लिये एक विशेष व्यवस्था की गई जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार देने की समस्या पर अधिक बल दिया गया।

कृषि श्रमिकों की दशा में उन्नति करने के सम्बन्ध में कार्यक्रम

(Programmes of Improvement)

कृषि श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के लिए सर्वांगीण प्रयत्नों की बड़ी आवश्यकता है। यह समस्या कृषि में सामान्य सुधार तथा परती भूमि के पुनरुद्धार तथा अन्य ऐसे विषयों से सम्बन्धित है, जैसे—ग्रामीण आवास, स्वच्छता तथा स्वास्थ्य योजनायें, वयस्क शिक्षा, श्रमिकों की ऋणग्रस्तता से निवृत्ति, बहु-उद्देशीय सहकारी समितियों की स्थापना, ग्राम पंचायतों का निर्माण, आदि। अनेक राज्य सरकारें कृषि श्रमिकों के कल्याण के लिए इन विषयों पर पहले ही कुछ पग उठा चुकी हैं। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में भी भूमिहीन श्रमिकों तथा छोटे की जोतों के मालिकों को भूमि देने की नीति पर अधिक बल दिया गया था। अभी हाल ही में पुनरुद्धारित की गई भूमि तथा ऐसी भूमि जो अब तक बेकार पड़ी हुई थी, उनके लिये पहले ही अलग कर दी गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये २ करोड़ रुपये की धनराशि निश्चित की गई थी। एक करोड़ रुपये भूमिहीन श्रमिकों के पुनर्वास के लिये व्यय किये गये थे। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना ने यह सुझाव दिया गया था कि भूमिहीन श्रमिकों को भूमि पर फिर से बसाने के लिये व्यापक योजनायें तैयार की जायें तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बाड़े बनवाये जायें। श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों का प्रोत्साहन किया जाना चाहिये तथा कृषि श्रमिकों को मकान बनाने के लिये भूमि भी बिना लागत के उपलब्ध होनी चाहिये। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में ५ करोड़ रुपये की लागत से २० हजार भूमिहीन श्रमिक परिवारों को १ लाख एकड़ भूमि पर बसाने की योजना थी तथा ऐसे श्रमिकों की कठिनाइयों को करने के लिये निम्नलिखित ४ सुझाव दिये गये थे—(१) कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने और पशु पालन के लिये पग उठाने चाहिएँ। (२) कृषि कार्यों और ग्रामीण व कुटीर उद्योग धन्धों का विस्तृत रूप से विकास करके ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ही रोजगार के अवसर प्रदान करने चाहियें। (३) भूमि का पुनर्वितरण करके तथा शिक्षा की सुविधाओं को

विस्तृत करके हीन कृषि श्रमिको का सामाजिक स्तर, कार्य कुशलता, उत्साह तथा *योग्यता मे वृद्धि करनी चाहिये। (४) ग्रामीण क्षेत्र मे जो विकास सम्बन्धी व्यय हो* रहा है उसम मे अधिकाश व्यय कृषि श्रमिको की रहने की दशाओ मे उन्नति करने पर होना चाहिये।

तीसरी पचवर्षीय आयोजना मे कहा गया था कि कृषि श्रमिक की दो प्रमुख समस्याय भावी ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे उनत्र स्थान तथा उनके लिए काय की *व्यवस्था से सम्बन्धित हैं। उनकी मुख्य समस्या ग्रामीण क्षेत्रो मे बरोजगारी तथा* अपूर्ण रोजगार की व्यापक समस्या का ही एक अ ग है। तीसरी आयोजना मे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के लिये बहुत बडी राशि व्यय करने की व्यवस्था की गई थी। इसम कृषि श्रमिको को भी लाभ होगा। आयोजना आयोग द्वारा हाल ही मे स्थापित केन्द्रीय कृषि श्रमिक सलाहकार समिति की सिफारिश के अनुसार ५० लाख एकड स *भी अधिक क्षत्र मे भूमिहीन कृषि श्रमिको के ७ लाख परिवारो को बसाने के प्रयत्न* किये गये। राज्यो ने कृषि श्रमिको को बसाने के लिए ४ करोड रुपये की योजना बनाई थी। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकारों को इस कार्य के लिये केन्द्र द्वारा भी ८ करोड रुपये दिये गये। मार्च १९६९ के अन्त तक १ १० लाख भूमिहीन परिवारो का २ लाख हैक्टेयर कृषि योग्य घटिया भूमि पर बसाया गया। सभी राज्यो मे भूमि की सीमा नियत करने के लिए विधान बनाये गए है और फालतू भूमि का उपयोग भूमिहीन श्रमिको को बसाने के लिये किया गया है। कृषि श्रमिको के लाभ के लिये जो *सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम उठाने का सुझाव है, वह है देहाती क्षेत्रो मे सरकार्य प्रायो-* जनाओ (Work Projects) का कार्यक्रम। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत विशेषकर उस समय जब खेती का कार्य मन्दा हो, अतिरिक्त रोजगार देने की व्यवस्था है। मजदूरियां ग्रामीण दरो पर दी जाती है। सन् १९६०–६१ मे ३२ अग्रगामी प्रायोजनायें चालू की गई। इनमे सिचाई, वन लगाने, भूमि सरक्षण, पानी का निकासी, भूमि को खेती योग्य बनाने तथा सडको के विकास की अनुपूरक योजनायें सम्मिलित हैं। तृतीय आयोजना के अन्त तक, देश भर मे फैले हुए ९९८ विकास खण्ड इनके अतर्गत आ गए थे। इन कार्यक्रमो के अन्तर्गत रोजगार की मात्रा तृतीय आयोजना के प्रथम वर्ष के १९ लाख श्रम दिनो स बढ कर आयोजना के अन्त म ८२४ लाख श्रम दिन हो गई। चौथी आयोजना मे भी एक बडे ग्रामीण मानव शक्ति कार्यक्रम की व्यवस्था थी जिसे १ अप्रैल १९६९ से राज्यो को स्थानान्तरित कर दिया गया था। कृषि श्रमिको की श्रमिक सहकारी समितियो पर भी जोर दिया जा रहा है। तृतीय आयोजना मे भी *ऐसी व्यवस्था की गई थी कि निर्माण कार्यक्रमो के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रथम वर्ष मे* लगभग १ लाख व्यक्तियों का, द्वितीय वर्ष म लगभग ४ या ५ लाख व्यक्तियों को, तृतीय वर्ष मे लगभग १० लाख व्यक्तियो को और आयोजना के अतिम वर्ष तक लगभग २५ लाख व्यक्तियो को वर्ष मे लगभग १०० दिन के लिये, विशेषकर उस समय जब कि खेती का कार्य मन्दा हो, रोजगार दिया जाये। इन कार्यक्रमो पर

लगभग १५० करोड रु० व्यय होने का अनुमान था।

लगभग सभी राज्यो मे ऐसे नियम बनाये गये हैं कि सरकारी खाली तथा बेकार भूमि के वितरण में भूमिहीन श्रमिको को, विशेष रूप से उनको जो परिगणित जाति तथा परिगणित जनजाति से सम्बन्धित हो, प्राथमिकता दी जाय। सन् १९७९ के अन्त तक, विभिन्न राज्यो तथा सघशासित क्षेत्रो द्वारा ६८.६ लाख हैक्टेयर बेकार भूमि बाँटी जा चुकी थी। इसके अतिरिक्त, भूमि की सीमाबन्दी के कानूनो के लागू होने से जो भूमि अतिरिक्त बची, उसमे से भी ५.३ लाख हैक्टेयर भूमि का वितरण किया गया। सन् १९७५ मे प्रधान मन्त्री के २० सूत्री कार्यक्रम के अधीन भूमिहीन श्रमिको को भूमि देने के कार्य का बहुत तेजी से सम्पन्न किया गया और ग्रामीण क्षेत्रो के १ करोड २२ लाख भूमिहीन श्रमिको मे से ६० लाख श्रमिको को ३१ जनवरी १९७६ तक मकान बनाने के लिये प्लाट दिये जा चुके थे। नई टैक्नोलोजी के विस्तार द्वारा छोटे किसानो, सीमान्त किसानो तथा कृषि श्रमिकों का सूखे क्षेत्रो के किसानो को सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिये चौथी आयोजना मे कुछ विशिष्ट कार्यक्रम सम्मिलित किये गये, जैसे कि लघु कृषक विकास अभिकरण (Small Farmers Development Agency), सीमान्त कृषक तथा कृषि श्रमिक विकास अभिकरण (Marginal Farmers and Agricultural Labourers Development Agency) और एकीकृत शुष्क भूमि कृषि विकास (Integrated Dry Land Agricultural Development)। दूसरे अभिकरण के अन्तर्गत कार्यक्रमो को लागू किया जा रहा है और इसके लिये ४१ प्रायोजनाओ (projects) पर कार्य हो रहा है। प्रत्येक प्रायोजना में ऐसे १५,००० सीमान्त कृषक सम्मिलित किये गये हैं जिनके पास २.५ एकड से कम भूजोत है और ५,००० ऐसे कृषि श्रमिक सम्मिलित किये गये हैं जिनके वासभूमि (homestead) हो और जिनकी ५० प्रतिशत से अधिक आय कृषि-मजदूरी से होती हो। कृषि के साथ-साथ यह योजना पशु-पालन, मुर्गीपालन तथा मछलीपालन के विकास के लिये तथा कृषि श्रमिकों व सीमान्त कृषकों को मौसमी बेरोजगारी से बचने के लिये भी आरम्भ की गई है। ये प्रायोजनाएं ऐसी एजेन्सियो द्वारा चलाई जा रही है जो रजिस्टर्ड सोसाइटियां हैं। पाँचवी योजना मे एजेन्सियो की सख्या बढकर १६८ हो गई थी।

सन् १९७१-७२ में, ग्रामीण विकास की एक क्रैश योजना (Crash Scheme for Rural Development) गैर-आयोजना कार्यक्रम के रूप मे देश भर मे लागू की गई, जिसके लिय ५० करोड रुपये की व्यवस्था की गई ताकि प्रत्येक जिले मे एक न्यूनतम निर्धारित सख्या मे लोगो को शीघ्र एव सीधा रोजगार दिया जा सके। यह योजना दो उद्देश्यो से लागू की गई थी, वे उद्देश्य हैं : (१) प्रत्येक जिले मे प्रतिवर्ष औसतन १,००० लोगो का रोजगार देना, और (२) स्थानीय विकास योजनाओ के सहयोग से स्थायी प्रकृति की परिसम्पत्तियो (assets) का उत्पादन करना। योजना के अन्तर्गत ऐसे काम हाथ मे लिये जाने थे जो दो वर्षों

की अवधि में पूरे हो जाएँ। इस योजना (scheme) को चौथी पंचवर्षीय आयोजना में वर्ष १९७२-७३ तथा १९७३-७४ के लिये सम्मिलित कर लिया गया और प्रत्येक वर्ष के लिये ५० करोड रु० का व्यय निर्धारित किया गया। सन् १९७१-७२ में इस कार्य पर ३१ २९ करोड रु० व्यय किया गया और ८०० लाख श्रम दिनों के बराबर रोजगार दिया गया। सन् १९७२-७३ में व्यय की मात्रा ५२ करोड रु० रही और १,३०० लाख श्रम दिनों के बराबर रोजगार दिया गया। इस कार्यक्रम के सचालन के अनुभव से यह बात स्पष्ट हुई कि साधनों को अत्यन्त छोटी-छोटी अनेक प्रायोजनाओं पर बिखरा दिया गया था और खर्च का काफी बड़ा, अर्थात् लगभग ८० प्रतिशत भाग, सूचनाओं और पत्रों के आदान-प्रदान पर ही व्यय किया गया था।

ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना के एक अंग के रूप में, सन् १९७२-७३ में १५ चुने हुये खण्डों (blocks) में एक अग्रगामी गहन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (*Pilot Intensive Rural Employment Programme*) चालू किया गया। इस प्रायोजना का उद्देश्य एक ऐसे कार्यक्रम से सम्बन्धित आवश्यक सामग्री एकत्र करना था जिसके द्वारा कि ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण रोजगार दिया जा सके जो काम करना चाहता हो। यह कार्यक्रम ३ वर्षों की अवधि में पूर्ण होना था। परन्तु अप्रैल, १९७४ से इस कार्यक्रम को समाप्त कर दिया गया।

पांचवीं पंचवर्षीय आयोजना में कृषि श्रम की समस्याओं के सभी पहलुओं से अध्ययन व जाँच पड़ताल करने की व्यवस्था की गई है। कृषि श्रम पर १८ सदस्यों की एक स्थायी समिति का गठन किया गया है जिसमें अर्थशास्त्री, सलाहकार तथा केन्द्र व राज्य सरकारों के वरिष्ठ अधिकारी हैं। स्थायी समिति की एक उप समिति भी बनाई गई है। स्थायी समिति की पहली मीटिंग १७ नवम्बर १९७३ को तत्कालीन श्रम मन्त्री श्री रघुनाथ रैडी की अध्यक्षता में हुई थी। समिति द्वारा फिलहाल निम्न मामलों के सम्बन्ध में अध्ययन करने का प्रस्ताव है (१) श्रम सगठनों के मसले, (२) विभिन्न राज्यों में न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी विधानों की समीक्षा और (३) कृषि पर यन्त्रीकरण के प्रभाव।

इस सम्बन्ध में विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस आन्दोलन का उद्देश्य बड़े बड़े जमींदारों में दानशीलता की प्रवृत्ति को उभार कर भूमिहीन श्रमिकों को भूमि दिलाना है। इस आन्दोलन की सहायता के लिये उत्तर प्रदेश में भूदान योजना अधिनियम पारित किया जा चुका है। ऐसे ही विधान अन्य राज्यों में भी बनाये गये हैं। विभिन्न राज्यों में लगभग १२ लाख एकड भूमि, जोकि भूदान के रूप में प्राप्त हुई थी, भूमिहीन श्रमिकों में बाँटी भी जा चुकी है। सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत भी कृषि श्रमिकों के कल्याण कार्यों पर बल दिया जा रहा है। परिगणित और पिछड़ी हुई जाति के बच्चों के लिये, जो अधिकतर भूमिहीन कृषक वर्ग के होते हैं, अब शिक्षा के लिए वजीफे, निःशुल्क पढ़ाई, पुस्तकों के लिये अनुदान, छात्रावास की सुविधायें आदि प्रदान की जा रही हैं। ग्राम पंचायतें भी भूमिहीन श्रमिकों के लिये कल्याण कार्य करती हैं। आयोजना आयोग द्वारा चालू किया गया एक अन्य कार्यक्रम यह

का भी अध्ययन करेगी। तीसरी उपसमिति को इस सम्बन्ध मे रिपोर्ट देनी है कि ग्रामीण श्रमिकों के संगठन को दृढ बनाने के लिए तथा ग्रामीण श्रमिकों के प्रशिक्षण तथा शिक्षा पर समुचित ध्यान देने के लिये कौन-कौन से प्रशासनिक तथा कानूनी पग उठाये जायें।

उपसंहार (Conclusion)

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि कृषि श्रमिको की समस्याओ को हल करने का प्रश्न वर्तमान समय का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। कृषि श्रमिको की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रत्येक ऐसी परिस्थिति, जिसके कारण छोटे छोटे काश्तकारो की आर्थिक दशा दुर्बल हो जाती है, कृषि श्रमिको की संख्या मे वृद्धि कर देती है। इसके फलस्वरूप उनकी मजदूरी की दरें बहुत कम हो गई है। मूल्यो मे वृद्धि होने का लाभ भूमिधर कृषक वर्ग को ही मिलता है। इसके साथ ही निर्वाह खर्च मे वृद्धि होने से कृषक श्रमिको पर ऋण का भार और भी बढ गया है। भूमि की मांग के बढ जाने के कारण गावों मे चरागाह समाप्त होते जा रहे है। इसलिये कृषि श्रमिक अपनी आय की कमी को पूरा करने के लिये दुग्धधारी पशुओं को भी नही पाल पाते। उद्योगो मे जो विकेन्द्रीकरण किया जा रहा है, उसका प्रभाव भी कृषि श्रमिको पर पडेगा, क्योकि कृषि व्यवसाय पर भार अधिक हो जायेगा। कृषि मे मध्यस्थो की प्रथा के समाप्त हो जाने से भी भूमिधर किसान और कृषि श्रमिको के मध्य आपसी सम्बन्ध अच्छे नही रहे है। छोटे-छोटे ऐसे जमीदार भी विभिन्न राज्यो मे अनेक 'जमीदारी उन्मूलन अधिनियमों' के लागू हो जाने से समाप्त हो गये है, इस कृषि श्रमिक वर्ग की संख्या मे वृद्धि कर रहे है। इस प्रकार कृषि श्रमिको की वर्तमान दशायें बहुत ही असन्तोषजनक है। "उन्हे वर्ष मे केवल ६ महीने के लिये रोजगार मिलता है, चौपायो और पशुओं के साथ एक ही मकान मे रहना पडता है, तथा भोजन भी उन्हे बहुधा आधे पेट ही मिलता है। परिणाम यह होता है कि वे बडी आसानी से महामारियो और साहूकारो के शिकार हो जाते है, और बहुत ही कम मजदूरी पर वे बेगार करने के लिये विवश हो जाते है। जनसंख्या मे वृद्धि से तथा बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार मे कोई विशेष अन्तर न होने की कठिनाई से यह समस्या और भी जटिल हो गई है। जमीदारी प्रथा के उन्मूलन से कृषि श्रमिको ने जमीदारो का परम्परागत संरक्षण भी खो दिया है। गावों मे अब जो नये स्वामी और नेता बने है, उनका इन श्रमिकों के प्रति व्यवहार और भी बुरा। इसके अतिरिक्त, जैसा कि राष्ट्रीय श्रम आयोग का कहना है, कृषि श्रमिको का एक बडा भाग परिगणित जातियो एवं परिगणित जनजातियो से सम्बन्धित होता है। उनको समान सामाजिक स्तर देने की समस्या की जडें चूंकि बडी गहराई तक उतरी हुई है, अत इस समस्या का कोई अल्पकालीन समाधान नहीं निकाला जा सकता। इस समस्या का हल तो सामाजिक विधानो को निरन्तर दृढता से लागू करने तथा शिक्षा के प्रसार के अथक प्रयासो द्वारा ही निकाला जा सकता है।

यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि जब तक कृषि श्रमिक निराश और असन्तुष्ट रहते हैं, वे खाद्य उत्पादन की वृद्धि दत्तचित्त होकर प्राप्य नहीं दे सकते। सर्वत्र खाद्य की कमी के परिणामस्वरूप अधिक लागत पर अनाज का बहुत मात्रा से आयात करना पड़ता है। देश में जो सामान्य आर्थिक तंगी है, उससे भी इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि खाद्य के उत्पादन में व्यापक रूप से वृद्धि की जाये ताकि अनाजों की लागत में आशातीत कमी की जा सके। परन्तु कितने खेद की बात है कि प्रति वर्ष लाखों टन अनाज की हमारे देश में हानि हो रही है। इसका कारण यह है कि कृषि श्रमिकों को अच्छी मजदूरी नहीं दी जाती भूमि पर उनका कोई अधिकार नहीं होता और वे काम करने में कोई रुचि नहीं लेते। श्री जगजीवन राम के शब्दों में 'यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि यदि किसी भी स्थान पर निर्धनता होगी तो उसके कारण हर स्थान पर सम्पन्नता को खतरा उत्पन्न हो जायेगा। जो व्यक्ति कृषि वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं उनकी निर्धनता और मलिनता से उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। उत्पादन के लिये जो मानवी साधन आवश्यक होता है उसकी यदि हम उपेक्षा करेंगे, तो उससे सारे राष्ट्र को संकट पैदा हो जायेगा। अतीत काल से उपेक्षित तथा बुरी तरह शोषित कृषि श्रमिक वर्तमान समाज के अत्यन्त ही मार्मिक अंग हैं। अव्यवस्था और अशान्ति फैलाने वाले लोगों के यह बड़ी जल्दी शिकार हो जाते हैं। अतः इस खतरे को दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि निर्धन परिश्रमी श्रमिकों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया जाये। प्रत्येक विचारशील प्राणी का यह अनुभव करना चाहिये कि इस समस्या का शीघ्रातिशीघ्र समाधान होना आवश्यक है। यदि इस समस्या की अधिक दिनों तक उपेक्षा की गई तो इसका सम्भालना कठिन हो जायेगा और यह फिर इतनी गम्भीर बन जायेगी कि इससे सामाजिक ढाँचे को न केवल धक्का ही पहुँचेगा, वरन् उसके नष्ट होने का भय उत्पन्न हो जायेगा। हमें आशा है कि भारत सरकार द्वारा पारित न्यूनतम मजदूरी अधिनियम कृषि तथा ग्रामीण श्रमिक पूछताछें, राज्य सरकारों की विभिन्न योजनायें और पंचवर्षीय आयोजनाओं के सुझाव सभी कृषि श्रमिकों की समस्या का समाधान करने में सहायक होंगे।

---

२३ श्रम और सहकारिता
LABOUR AND CO OPERATION

सहकारिता का अथ और उसके सिद्धान्त
(Meaning and principles of Co operation)

सहकारिता व्यक्तियों की उस सामुदायिक भावना को कहते है जिसका उद्देश्य उचित साधना द्वारा सामान्य आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है। विभिन्न लेखको ने सहकारिता की अनेक प्रकार से व्याख्या की है जिनका विशद उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नही है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि जिनका किसी वर्ग द्वारा शोषण किया जा रहा है तब वह उस वर्ग से छुटकारा पाने के लिए स्वय ही कार्य को अपने हाथ मे ले लेते है। सहकारिता कि अनेक ऐसी विशेषताए है जिनके कारण एक सहकारी समिति और श्रम संघ जैसे अन्य सगठनो मे अन्तर होता है। सहकारिता एक ऐसा सगठन है जिसमे पारस्परिक आर्थिक हित सम्पादन के लिये व्यक्ति समानता के आधार पर ऐच्छिक रूप से सगठित होते है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति मानव प्राणी के रूप मे न कि पूजीपति के रूप मे सगठित होते है। यह सहकारिता का प्रथम सिद्धान्त है। दूसरे सब सदस्य समानता के आधार पर सगठित होते है और आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के उद्देश्य से उनके बीच कोई अन्तर नही होता। तीसरा सिद्धान्त यह है कि सगठित होने का काम ऐच्छिक होता है और उसमे कोई बन्धन नही होता। चौथे सदस्य केवल स्वय के हितो का सम्पादन करने हेतु सगठित होते है और जो सदस्य नही है उनसे उनका सम्बन्ध नही होता। यह ध्यान देने योग्य बात है कि सहकारिता व्यवसाय सगठन का ही एक प्रकार है। अतः यह एक व्यवसाय सस्था भी है। सहकारी सगठन मे लाभ का उद्देश्य भी हो सकता है परन्तु इस प्रकार के लाभ को स्वय सदस्यो मे बाँट लिया जाता है जो मालिक व कर्मचारी दोनो स्वय ही होते है। सहकारिता का आधार पारस्परिक सहायता है अर्थात प्रत्येक सदस्य सबके लिए और सब प्रत्येक सदस्य के लिए (All for each and each for all) कार्य करते हैं।

सगठन के अन्य प्रकार तथा सहकारिता
(Cooperation and other forms of organization)

सहकारिता पूजीवादी व्यवस्था से भिन्न है। सहकारिता का उद्देश्य सदस्यो की आर्थिक स्थिति का सुधारना ही नही है वरन उनके नैतिक स्तर को भी उन्नति करना है। यह समाजवाद से भी भिन्न है क्योकि यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थक है। इसका उद्देश्य यह है कि व्यक्ति भूमि और पूजी का स्वामी बना रहे।

सहकारिता राज्य के स्वामित्व का समर्थन नही करती। सहकारिता वर्तमान प्रणाली का ही एक अग है और इसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था और वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को उखाड फेंकना नही है। इसका उद्देश्य यह है कि शान्ति बनी रहे और झगडा न हो तथा व्यक्ति नि स्वार्थ हो और केवल स्वय का ही लाभ न देखे।

सहकारिता मिश्रित पू जी कम्पनियो से भिन्न होती है क्योकि कम्पनियाँ पूँजी की सस्था होती है। सहकारिता व्यक्तियो की एक सस्था है। मिश्रित पूँजी कम्पनियो (Joint Stock Companies) मे मत का अधिकार व्यक्ति द्वारा क्रय किए गए शेयरो के आधार पर होता है, और इस प्रकार एक व्यक्ति एक से अधिक मत दे सकता है। सहकारिता 'एक व्यक्ति एक मत' के सिद्धान्त पर आधारित होती है। इसमे इस बात का विचार नही किया जाता कि एक व्यक्ति के पास कितने शेयर हैं या उसका पू जी मे कितना अ शदान है। सहकारिता मे मनुष्य प्रधान है, पू जी नही। इसका आधार केवल भौतिक ही नही है वरन् सामाजिक और नैतिक भी है।

सहकारिता श्रमिक सघो से भी भिन्न होती है। श्रमिक सघ श्रमिको के ऐसे सगठन होते हैं जो सामूहिक सौदाकारी और सामूहिक कार्यवाही क द्वारा अपने रहन-सहन और कार्य की दशाओ को सुधारने तथा मजदूरी म वृद्धि करने के लिए बनाए जाते है। इस प्रकार श्रमिक सघ मजदूरी-प्रणाली को मानकर चलते है और मालिको से सौदा करते है। सहकारिता के अन्तर्गत किसी मजदूरी प्रणाली का मालिको का प्रश्न ही पैदा नही होता; प्रत्येक व्यक्ति स्वय ही मालिक और श्रमिक होता है। श्रमिक सघ श्रमिको क सगठन मात्र हैं जबकि सहकारिता एक व्यावसायिक सगठन का रूप है। श्रमिक सघ राजनीतिक विधियो म भी भाग लेते है किन्तु सहकारी समितियो का ऐसा कोई उद्देश्य नही होता है।

सहकारिता के विचार का विकास
(Development of the idea of Cooperation)

समाज मे निर्धनता व शोषण के होने से तथा उनके दुष्परिणामो से बचने की आवश्यकता के कारण सहकारिता का अभ्युदय हुआ। जब पू जीवाद और स्वतन्त्र प्रतियोगिता के दोष बहुत गम्भीर हो गए, तब ऐसे व्यक्तियो ने, जो राज्य के हस्तक्षेप मे विश्वास नही करते थे, शोषक वर्ग से बचने के लिए विभिन्न कार्यो को अपनी ही भलाई के लिये स्वय ही करना शुरू कर दिया। इस प्रकार सहकारिता को हम पू जीवाद एव समाजवाद के बीच एक समझौता कह सकते हैं।

सहकारिता के अनेक प्रकार : विभिन्न देशो मे सहकारिता आन्दोलन
(Various forms of Coperation Movement in Different Countries)

सहकारिता की आर्थिक गतिविधि से किसी भी क्षेत्र म प्रारम्भ किया जा सकता है। समाज मे अनेक प्रकार को सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। सहकारिता के विचार का जन्म इ गलैंड मे उस समय हुआ जब औद्योगिक क्रांति के दोषो के कारण श्रम-जीवी-वर्ग के हितो का हनन होने लगा था तथा मध्यस्थो के द्वारा उपभोक्ताओ का शोषण होता था। इस आन्दोलन के नेता रोबर्ट ओवन थे जिन्होने

न्यू लेनार्क मे, जहाँ इनका कारखाना था, श्रमिको की एक बस्ती का निर्माण किया। उन्होने श्रमिको को व्यवसाय प्रबन्ध में यथासम्भव भाग देने की व्यवस्था की। बाल श्रम को समाप्त करने, काम के घण्टे घटाने तथा जुर्माने को समाप्त करने जैसे महत्वपूर्ण सुधार भी रोबर्ट ओवन ने किए और श्रमिकों के लिये अनेक कल्याण कार्य भी किये। ओवन चाहते थे कि सहकारिता के आधार पर श्रमिको को स्वय ही प्रबन्ध का उत्तरदायित्व सौपा जाय। उन्होने निर्धन, असहाय एव बेकारो के लिये सहकारी गाँवो अथवा सहकारी बस्तियो के निर्माण का समर्थन किया, जहाँ श्रमिकों को काम दिया जा सके और इस प्रकार उन्हे आत्म-निभर बनाया जा सके। ओवन के अनुगामियो ने एक सहकारी समिति 'National Equitable Labour Exchange' के नाम से स्थापित की। इस समिति मे सब कारखानो के मजदूर ही थे जो माल बनाते भी थे और खरीदते भी थे। वस्तुओ का मूल्य मुद्रा में नही वरन् उन घण्टो मे नियत किया जाता था जो हर वस्तु के बनाने मे लगते थे। इस प्रकार 'लाभ' का विचार ही समाप्त कर दिया गया था। रोबर्ट ओवन को अपने प्रयत्नो मे विशेष सफलता न मिली क्योकि उसने जनता के सामने ऐसे ऊ चे आदर्श रक्खे थे जिनको व्यावहारिक रूप मे प्राप्त करना कठिन था।[1]

विभिन्न देशो मे सहकारी आन्दोलन के उदगम और उसके इतिहास का यहाँ विस्तृत रूप से उल्लेख करना आवश्यक नही है। यहाँ इतना उल्लेख करना ही पर्याप्त होगी कि मालिको द्वारा श्रमिको का शोषण करने के कारण ही श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियो अर्थात् उत्पादक सहकारी समितियो का जन्म हुआ। इन समितियो मे श्रमिक स्वय ही विभिन्न कार्यों के प्रबन्धक बन जाते है और विभिन्न प्रकार की वस्तुओ का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार की सहकारी समितियो मे कोई मालिक अथवा कोई नौकर नही होता। इस विचार का जन्म रोबर्ट ओवन द्वारा इगलैंड में हुआ और फ्रांस मे भी फैला जहाँ यह कुछ सीमा तक सफल रहा। मध्यस्थो द्वारा उपभोक्ताओ का शोषण होने से इगलैंड मे राकडेल के अग्रगामियो (Rochdale Pioneers) द्वारा वितरण सहकारिता अथवा उपभोक्ता सहकारी समितियो की स्थापना की गई जो बाद को अन्य देशो मे भी फैल गई। महाजन द्वारा ऋणी के शोषण के कारण जर्मनी मे 'रेफिसन' और 'शूलजे' के तथा इटली म 'सीनोर लज्जटाई' के प्रयत्नो के द्वारा सहकारी साख समितियो की स्थापना हुई जो अन्य देशो मे भी लोकप्रिय हो गयी। शीघ्र ही सहकारी आन्दोलन शक्तिशाली हो गया तथा कई अन्य प्रकार की सहकारी समितियों का भी जन्म हुआ। डेनमार्क मे दुग्ध-उत्पादन (डेयरी) उद्योग म सहकारिता का प्रयोग बहुत सफल रहा है। उपज की बाजार मे बिक्री और आवास निर्माण जैसी अनेक अन्य आर्थिक क्रियाओ के लिये भी सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। इसके

1. रोबर्ट ओवन और उसके प्रयत्नों के विषय मे प्रो० नन्दलाल भटनागर की पुस्तक 'सहकारिता के सिद्धान्त एव भारतीय सहकारिता', पृष्ठ १८-३६ देखिये।

अतिरिक्त सहकारी समितियाँ सदस्यो की शिक्षा, मितव्ययिता तथा नैतिक उत्थान को शिक्षा जैसे अन्य कार्य भी करती हैं।

सहकारिता के लाभ (Advantages of Cooperation)

सहकारी आन्दोलन का यह संक्षिप्त वर्णन यहाँ केवल इस तथ्य की ओर संकेत करने के लिए दिया गया है कि सहकारिता निर्धन व असहाय व्यक्तियो के उत्थान के लिये बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। पिछडे हुए देशो एव देश मे पिछडी हुई जातियो के विकास व उन्नति के लिये सहकारिता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। इसमे कोई सन्देह नही कि किसी वाह्य सहायता की अपेक्षा अपने ही प्रयत्नो एव पारस्परिक सहायता द्वारा अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। सहकारिता देश मे श्रमजीवी वर्ग की अवस्था को सुधारने मे भी बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। भारत जैसे देश मे सामान्य जनता के उत्थान के लिए तो सहकारिता की बहुत ही महत्ता है।

भारत में सहकारी आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास (A Brief History of the Cooperative Movement of India)

भारत मे सहकारिता का जन्म ग्रामीण ऋणग्रस्तता एव महाजन के अत्याचारो के कारण हुआ। १६वी शताब्दी के अन्त मे मद्रास सरकार ने ग्रामीण ऋण की समस्या का अध्ययन करने के लिये श्री फ्रेडरिक निकलसन को नियुक्त किया। उनकी रिपोर्ट १८६७ मे प्रकाशित हुई। उन्होंने ग्रामीण ऋण की समस्या को सुलझाने के लिये रेफिसन आधार की सहकारी साख-समितियो को स्थापना का सुझाव दिया और अपनी रिपोर्ट का साराश दो शब्दो मे व्यक्त किया—"रेफिसन को लाओ" (Find Raifiesien)। प्रारम्भ मे उनकी रिपोर्ट पर कोई विशेष ध्यान नही दिया गया। १६०२ मे उत्तर प्रदेश के उच्च अधिकारी श्री डुपरनेक्स ने "The People's Bank of India" नामक पुस्तक लिखी तथा स्वय अपने उत्तरदायित्व पर उत्तर प्रदेश मे कुछ सहकारी समितियाँ चलाई। १६०१ के अकाल आयोग ने भी जोरदार शब्दो मे साख सस्थाओ को प्रारम्भ करने की सिफारिश की थी। इन सबसे परिणामस्वरुप १६०४ मे प्रथम सहकारी साख समिति अधिनियम पारित किया गया और इससे देश मे सहकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस अधिनियम के अनुसार सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा सकती थी, जिनको 'ग्रामीण' एव 'शहरी' दो श्रेणियों मे विभाजित किया गया था। ग्रामीण समितियो मे असीमित देयता के सिद्धान्त को रखा गया था। समितियो के कार्य की देख-रेख करने के हेतु प्रत्येक प्रान्त मे रजिस्ट्रार नियुक्त किये गये। सरकार ने आय-कर, रजिस्ट्रेशन शुल्क तथा स्टाम्प-कर आदि से छूट आदि की अनेक रियायतें भी दी।

इस अधिनियम का विस्तार करने तथा इसके दोषो को दूर करने के लिये १६१२ मे 'सहकारी समिति अधिनियम' पारित किया गया। इसमे क्रय, विक्रय, उत्पादन, बीमा, आवास जैसी गैर-साख समितियो के गठन की भी आज्ञा दे दी गई

और देख भाल करने के लिये केन्द्रीय संगठनों को भी मान्यता दी गई। समितियों का वैधानिक रूप से वर्गीकरण किया गया, अर्थात ग्रामीण व शहरी समितियां के स्थान पर अब इनका वर्गीकरण सीमित व असीमित दयता वाली समितियों के आधार पर किया गया।

इस अधिनियम के पारित होने के बाद समितियों की संख्या और सदस्यता में काफी वृद्धि हुई। १९१४ में सरकार ने आन्दोलन की समालोचना करने के लिये मैक्लागन समिति नियुक्त की। समिति ने आन्दोलन के अनेक दोषों की ओर संकेत किया तथा सुधार के लिये कई महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये परन्तु युद्ध छिड़ जाने के कारण इस पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी। १९१९ के पश्चात सहकारिता एक ऐसा प्रान्तीय विषय बन गया जिसके लिये मन्त्रीगण विधान सभा के सम्मुख उत्तरदायी थे। मन्त्रियों ने लोकप्रियता प्राप्त करने के उद्देश्य से सहकारिता का तीव्रता से विस्तार किया। बहुत बड़ी संख्या में समितियाँ बनाई गईं परन्तु उनके गुण एवं सुनियोजन की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। १९२६ में रायल कृषि आयोग और प्रान्तीय व केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति ने भी सहकारिता के विचार और साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

१९२९ में आर्थिक मन्दी के आरम्भ होने से पूर्व यह आन्दोलन प्रगति करता रहा। परन्तु कृषि मूल्यों के गिरने तथा साथ ही किसानों की आय में कमी हो जाने के कारण आन्दोलन को बहुत बड़ा धक्का लगा। अनेक समितियों का समापन (Liquidation) हो गया तथा आन्दोलन के अनेक दोष सामने आ गये। १९३५ में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की स्थापना के पश्चात् यह आशा प्रकट की गई कि यह बैंक आन्दोलन की प्रगति में सहायता करेगा। कृषि साख की समस्याओं का अध्ययन करने के लिये रिजर्व बैंक ने एक कृषि साख विभाग भी खोला। परन्तु रिजर्व बैंक ने आरम्भ में इस सहकारिता आन्दोलन को कोई भी सहायता देने से तब तक के लिये इन्कार कर दिया जब तक कि आन्दोलन स्वयं ही अपने दोषों को दूर न कर ले। परन्तु रिजर्व बैंक ने समय समय पर अनेक रिपोर्टों एवं समालोचनाओं के द्वारा देश में सहकारिता आन्दोलन के पुनर्गठन एवं पुनर्वास के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये तथा बहु-उद्देशीय सहकारी समितियों की महत्ता पर बल दिया। १९३७ में प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् मन्त्रियों ने किसानों की अवस्थाओं में सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया और इसका प्रभाव सहकारी आन्दोलन पर भी पड़ा। परन्तु फिर भी युद्ध से पूर्व आन्दोलन की स्थिति विशेष सन्तोषजनक नहीं थी।

१९३९-४५ के युद्ध के समय और उसके पश्चात कृषि वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाने के कारण आन्दोलन की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। सहकारी समितियों के सदस्यों ने अपने अधिकांश ऋणों का भुगतान कर दिया और समग्र आन्दोलन की वित्तीय स्थिति अच्छी बन गई। उपभोक्ता सहकारिता पर सहकारी ऋती जैसी

अन्य सहकारी क्रियाओ मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई। आन्दोलन की प्रगति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि १९३८-३९ मे सहकारी आन्दोलन केवल ६ प्रतिशत जनसख्या तक पहुँच पाया था। १९४५-४६ मे यह प्रतिशत १६ हो गया था। १९४५ मे भारत सरकार ने सहकारिता आयोजन समिति' की नियुक्ति की। इसने आन्दोलन का विकास करने, बहु उद्देशीय समितियो का गठन करने तथा रिजर्व बैंक द्वारा अधिकाधिक सहायता देने की सिफारिश की। १९५१ म रिजर्व बैंक ने एक निर्देशन समिति नियुक्त की, जिसने देश मे ग्रामीण साख व्यवस्था का अध्ययन किया और १९५४ मे अपनी रिपोट प्रस्तुत की। इसने ग्रामीण साख के लिये एक सगठित (Integarted) योजना की सिफारिश की। इसके परिणाम-स्वरूप १ जुलाई, १९५५ को इम्पीरियल बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के रूप मे परिणत कर दिया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्रो मे ४०० नई शाखायें खोली जा सके। १९५६ मे रिजर्व बैंक ने कृषि साख के लिय दो निधियो की स्थापना की। १९५७ मे केन्द्रीय गोदाम निगम की स्थापना हुई ताकि मुख्य-मुख्य केन्द्रो मे १०० गोदामो की स्थापना की जा सके। १९५३ मे भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक ने सहकारी कर्मचारियो को सहकारिता मे प्रशिक्षण देने के लिये सयुक्त रूप से मिलकर एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की। पूना म एक सहकारी कालिज तथा पाँच अन्य सहकारी प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना भी की जा चुकी है। पचवर्षीय आयोजनाओ मे भी देश मे सहकारिता को, जा विकास का मुख्याधार बन गया है, भारत मे विकास कार्यक्रमों के लिये बहुत महत्वपूर्ण बना या गया है। इस प्रकार आन्दोलन का, विशेषतया गैर-साख समितियों का, निरन्तर विकास हुआ है तथा आन्द लनो का भविष्य भी उज्ज्वल प्रतीत होता है। जनवरी १९५९ में कांग्रेस दल ने अपन नागपुर अधिवेशन मे एक नय कृषि ढाँचे (सहकारी खती) की घोषणा की। पचवर्षीय आयोजनाओं का मुख्य आधार भी सहकारिता को ही माना गया है। उत्तर प्रदेश म पचायतो के साथ साथ बहु-उद्देशीय सहकारी समितियो की योजना चालू की जा चुकी थी। सेवा सहकारी समितियो की स्थापना का कार्यक्रम भी आरम्भ कर दिया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि चाहे उत्पादन या खेती का कार्य सदस्यो द्वारा व्यक्तिगत रूप स किया जाये, परन्तु सामान्य सेवायें 'सेवा सहकारी समितियो' द्वारा प्रदान की जायें। यह भी प्रस्ताव था कि तृतीय पचवर्षीय आयोजना के अन्त तक तमाम ग्रामीण परिवारो को सहकारिता आन्दोलन के अन्तर्गत ले लिया जाये। चौथी आयोजना मे भी कृषि तथा उपभोक्ता सहकारी समितियो पर जोर दिया गया था। पाँचवी आयोजना मे प्रयास यह है कि सहकारी आन्दोलन को ऐसा समठित एव शक्तिशाली बनाया जाए कि सामाजिक न्याय के साथ विकास करन की हमारी राष्ट्रीय नीति के क्रियान्वयन मे यह महत्वपूर्ण स्थान अदा कर सके। एक अनुमान के अनुसार, जून, १९७१ क अन्त तक ५४८ करोड की कुल जनसख्या मे लगभग ३६ करोड व्यक्ति

सहकारी आ दालन की सेवाओ का लाभ उठा रह थ। १६७६ ७७ म ३२ लाख प्रारम्भिक समितियाँ थीं और उनक ८६६ लाख सदस्य थ।

भारत मे सहकारी आन्दोलन के दोष
(Defects of the movement in India)

भारत म सहकारी आ न्दोलन का कुछ कठिनाइयो क कारण अभी तक विकास बहुत उत्साहवद्ध क ढग स नही हो पाया है यद्यपि रायल कृषि आयोग न कहा था कि य द भारत म सहकारिता असफल होती है तब भारतीय कृषि की उज्जवलतम आशायें असफल रहगा। हमार दश क सहकारी आ न्दोलन म अनेक त्रुटियाँ पाई गई है। सबस बडा दोष जनसाधारण की अशिक्षतता है। लोग सहकारिता क सिद्धा ता को ठीक प्रकार स नही समझत। गाव म यह धारणा सी बन गई है कि सहकारी समितियाँ केवल महाजनो की स्थापनापन्न म त्र है। शहरो म भी अधिकतर यह देखा गया है कि लोग लाभ पान क अधिक उत्सुक रहते हैं और अपनी समितियो क प्रबन्ध म विशेष रुचि नहा लेत। अधिकतर समितियो म प्रबन्ध भी बडा ही दोषपूर्ण पाया जाता है। हिसाब किताब ठीक स नही रखा जाता लेखा-परीक्षा ठीक स नही होता और केवल फाइल व रिकाड रखन म ही अधिकतर समय और शक्ति नष्ट की जाती है। ऋण देने म पक्षपात होता है और परिणामस्वरूप जरूरतमन्द व्यक्तियो को कभी कभी ऋण नही मिल पाता। किसी भी कृषक अथवा श्रमिक को कर्ज की तत्काल ही आव यकता हुआ करता है पर तु इसक लिय उस प्रार्थना पत्र देना पडता है और कई सप्ताह तक प्रतीक्षा करनी पडती है। वह हताश होकर महाजन के पास जाने को बाध्य हो जाता है। समितियो क कर्मचारी भी अधिकतर प्रशिक्षित नहीं होत। समितियो क धन म बेईमानी और गबन क भी अनेक उदाहरण पाय जात है। ऋण का निश्चित तिथि पर भुगतान भी बहुत कम किया जाता है और बकाया राशि की मात्रा भी बहुत अधिक पाई जाती है दिन प्रतिदिन क कार्यों क लिय बिना वेतन पर काम करन वालों पर बहुत अधिक निर्भर रहा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रबन्ध म अकुशलता आ जाती है। आरम्भ क सहकारिता आन्दोलन केवल साख-समितियों पर बल देता रहा और काफी समय तक गैर साख सहकारी कार्यों पर ध्यान नहीं दिया गया।

सहकारी आ दालन का एक अन्य दोष यह है कि अभी तक यह बहुत कम अनुभव किया गया है कि सहकारिता जनसाधारण का आन्दोलन है एव इसक प्रबन्ध का भार भी जनता पर ही सौंपना चाहिये। जनसाधारण पर सहकारिता सरकार द्वारा थोपी गई है। समितियो क दिन प्रतिदिन क कार्यों म भी रजिस्ट्रार और सहायक रजिस्ट्रार द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप किया जाता है। इसक अतिरिक्त सरकारी आ न्दोलन म राजनीति भी आ गई है और सहकारी नेता प्रबन्ध म

1 If Co-operation fails there will fail the best hope for Indian agriculture

भी यह देखा गया है कि न केवल आपसी मतभेद है वरन् जो कुछ भी किया जा रहा है वह स्थानीय राजनैतिक नेताओं के कहने से और उनके प्रभावों से किया जा रहा है।

सहकारिता आन्दोलन का ढांचा
(Structure of the Cooperative Movement)

आन्दोलन के ढांचे को केन्द्रीय सहकारी समितियों व प्रारम्भिक सहकारी समितियों के बीच विभाजित किया जा सकता है। केन्द्रीय सहकारी समितियाँ इस प्रकार है प्रान्तीय अर्थात् राज्य या शिखर सहकारी बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक, तथा सहकारी संघ। इनका कार्य मुख्यत निरीक्षण का तथा प्रारम्भिक समितियों को ऋण देने का है। समस्त राज्य के लिये सहकारी सगम भी स्थापित किये गये है। प्रारम्भिक समितियाँ कृषि अथवा गैर-कृषि होती है तथा साख अथवा गैर-साख समितियाँ होती है। कृषि सहकारी साख समितियाँ कृषकों को रुपया उधार देने के लिए बनाई जाती है। बाजार मे बिक्री करने, जोतों की चकबन्दी करने, अच्छे बीज व खाद का प्रबन्ध करने आदि कार्यों के लिये कृषि गैर साख समितियों की स्थापना की जाती है। औद्योगिक श्रमिकों, शिल्पियों आदि को ऋण देने के लिये गैर-कृषि साख समितियाँ बनाई जाती है। आवास, निर्माण, बिक्री, उपभोक्ता, उत्पादन, आदि अनेक कार्यों के लिये गैर-कृषि गैर-साख समितियाँ स्थापित की जाती है। इस प्रकार राज्य स्तर पर शिखर सहकारी समितियाँ, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी समितियाँ तथा स्थानीय स्तर पर प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ होती है। एक अन्य नये प्रकार की समिति बहु-उद्देश्य सहकारी समिति है। इसमें साख व गैर-साख दोनों ही प्रकार के कार्य सम्मिलित रहते है। एक नई प्रकार 'सेवा सहकारी समितियों' की है जिसमे सामान्य सेवायें तो समिति द्वारा प्रदान होती हैं, परन्तु उत्पादन व्यक्तिगत रूप से सदस्यों द्वारा किया जाता है।

सहकारिता एव श्रम : सहकारी उत्पादन
(Cooperation and Labour : Cooperative Production)

सहकारिता आन्दोलन के इस संक्षिप्त विवरण को ध्यान मे रखते हुए अब हम भारत मे श्रमिक वर्ग एव सहकारिता के विषय पर विचार करेंगे। देश मे औद्योगिक श्रमिकों के लिये सहकारी समितियों को प्रारम्भ करने की ओर अभी तक कोई विशेष ध्यान नही दिया गया है। प्रथम समस्या तो यह है कि देश मे सहकारी उत्पादन समितियाँ स्थापित हो सकती है या नही। इगलैंड मे रोबर्ट ओवन द्वारा औद्योगिक सहकारी समितियों को चलाने का प्रयत्न किया गया था। परन्तु इसमे वह सफल न हो सका था। वास्तव मे सच तो यह है कि किसी भी देश मे बड़े पैमाने के उद्योग मे सहकारी उत्पादन सफल नही हुआ है। इसके कारण स्पष्ट है प्रथम तो आर्थिक जीवन के विकास के साथ-साथ उत्पादन प्रक्रिया बड़ी विषम हो गई है। उद्यमकर्ता के कार्य इतने कठिन एव अधिक हो गये है कि प्रत्येक व्यक्ति

उन्हें सन्तोषजनक ढंग से पूरा नहीं कर सकता । उद्यमकर्त्ता के लिये पर्याप्त कुशलता एवं चातुर्य का होना आवश्यक है । इस प्रकार की उच्च योग्यता एवं कुशलता किसी साधारण श्रमिक में अथवा कारखाने में श्रमिकों के द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों में पाना कठिन है । यह आशा नहीं की जा सकती कि उद्यमकर्त्ता के कार्यों को श्रमिक उतनी ही कुशलतापूर्वक निभा सकेंगे जितना कि योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति कर सकते हैं और फिर उत्पादन की आधुनिक प्रक्रिया में अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता होती है, जिसको विनियोजित अथवा एकत्र करना श्रमिकों की क्षमता के बाहर है । यह भी कहा जा सकता है कि एक बड़ी सीमा तक श्रमिक स्वयं ही उत्पादन सहकारिता की असफलता के लिये उत्तरदायी हैं । उनमें पारस्परिक ईर्ष्या होती है तथा वह अपने ही साथी द्वारा दिये गये आदेशों एवं निर्देशों को उतनी ही तत्परता व वफ़ादारी से पालन नहीं करते जितना कि वे किसी बाह्य उद्यमकर्त्ता अथवा प्रबन्धकर्त्ता के द्वारा दिये गये आदेशों का पालन करते हैं । अतः इंग्लैण्ड व अन्य देशों में अनेक बार प्रयत्न करने पर भी उत्पादन सहकारिता बड़े पैमाने के उद्योगों में कहीं भी सफल नहीं हुई है । भारत में तो इसकी सम्भावना बहुत ही कम है, क्योंकि यहाँ के श्रमिक अत्यन्त निर्धन एवं अशिक्षित हैं । इस सम्बन्ध में देश में प्रचलित कुछ सहकारी उद्यम वस्तुतः मिश्रित पूँजी संगठन जैसे ही हैं ।

श्रम सह साझेदारी समितियाँ : उत्पादन सहकारी समितियाँ
(Labour Co-Partnership Societies Producers' Co operatives)

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उत्पादन सहकारिता किसी भी क्षेत्र में सम्भव नहीं है । छोटे पैमाने के उद्योगों में तथा कृषि में श्रमिक स्वयं उत्पादन कार्य कर सकते हैं । औद्योगिक सहकारिता का एक मुख्य रूप श्रम सह-साझेदारी समितियाँ हैं जो इंगलैंड में स्थापित की गई हैं । ये समितियाँ उत्पादन के उन क्षेत्रों से अलग रहने का प्रयत्न करती हैं जहाँ फैक्ट्री उत्पादन से संघर्ष होने की सम्भावना होती है । वह केवल ऐसी ही वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जो छोटे पैमाने के उत्पादन के लिये उपयुक्त होती हैं और जिनकी बिक्री शीघ्र हो सकती है । इंगलैंड में उपभोक्ता आन्दोलन ने इन समितियों के संचालन को सरल बनाने में सहायता दी है, क्योंकि इसने इनकी वस्तुओं की बिक्री का भार अपने ऊपर ले लिया है तथा इन समितियों को ही विभिन्न वस्तुओं के लिये आर्डर दिया जाता है । भारत में भी, ग्रामीण तथा लघु उद्योगों और हाथकर्घा बुनाई के क्षेत्र में औद्योगिक सहकारी समितियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । ३० जून १९७७ को औद्योगिक सहकारी समितियों की संख्या ४५,२५७ तथा उनकी सदस्य संख्या २४०९ लाख थी । इसके अतिरिक्त, औद्योगिक सहकारी समितियों के एक राष्ट्रीय संघ (Federation) की स्थापना की गई है । यह संघ उत्पादित माल की बिक्री में अपनी सदस्य समितियों की सहायता करता है । भारतीय कृषक खाद सहकारी समिति लिमिटेड (IFFCO) भारत में बड़े स्तर पर खाद उत्पादन का एक अद्वितीय सहकारी उद्यम है । १९७७

मे अन्य उत्पादन सहकारी समितियो की सख्या इस प्रकार थी चीनी १८८, कताई मिलें ७१, जुलाहे १०,१६६, कपास ओटना तथा साफ करना २२७, रेशम उत्पादन १२६, अन्य ३४,९१४, पाँचवी आयोजना की अवधि मे यह प्रस्ताव था कि ६५० नई कृषि प्रोसेसिंग इकाइयाँ, ७६ चीनी फैक्टरियाँ, ४५ कपास ओटने व साफ करने की इकाइयाँ, २ जूट मिलें, ४० तेल मिलें, ४ वनस्पति तेल की मिलें, १५५ चावल व ३५ दाल मिले तथा अन्नभण्डारो की स्थापना की जाए।

श्रमिक सहकारी कार्य समितियाँ :
श्रम ठेका तथा निर्माण सहकारी समितियाँ

(Labour Co-operatives :
Labour Contract and Construction Co-operatives)

श्रम सहकारी कार्य समितियाँ भी बहुत लोकप्रिय रही है और फ्रास, इटली, इंग्लैण्ड और न्यूजीलैंड जैसे देशो मे इनको पर्याप्त सफलता भी मिली है। ऐसी समितियाँ श्रमिको के समूहो को रोजगार पर लगाने के लिये सगठित की जाती है और इनमे श्रमिक सयुक्त रूप से कार्य करने के लिये सगठित होते है। भारत मे, अनेक राज्यो मे श्रम ठेका तथा निर्माण सहकारी समितियो का सगठन किया गया है। इनका उद्देश्य है कि भूमिहीन श्रमिको जैसे कमजोर वर्गों को जितना रोजगार अब प्राप्त है उससे अधिक तथा लगातार रोजगार उचित मजदूरी पर प्राप्त कराने मे तथा ठेकेदारो द्वारा उनका शोषण रोकने म उनकी सहायता की जाये। ऐसी श्रमिक सहकारी समितियो के सगठन को प्राथमिकता दी जाती है, विशेष रूप से ग्रामीण निर्माण तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमो के सम्बन्ध मे। कृषि श्रमिक इन समितियो के द्वारा अपनी सौदा करने की क्षमता मे वृद्धि कर सकते है और ठेके के श्रम के दोषो को दूर कर सकते है। सन् १९७६-७७ मे श्रम ठेका तथा निर्माण समितियो की सख्या ७८३६ सदस्यता की सख्या ४,६६,३०५ तथा कार्यकर पूँजी २,५८८ लाख रु० थी। सन् १९७२-७३ मे इन समितियो द्वारा १८४८ करोड रुपये के मूल्य के कार्य किये गये जबकि सन् १९७१-७२ मे १७ ९५ करोड रुपये के मूल्य के कार्य किये गये जबकि सन् १९७१-७२ मे १७ ९५ करोड रुपये के मूल्य के कार्य किये गये थे। उडीसा, पजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश मे ऐसी सहकारी समितियो ने काफी प्रगति की है। अन्य राज्यो मे भी काम आगे बढाया जा रहा है।

सितम्बर १९६२ मे नागपुर मे श्रम ठेका तथा निर्माण सहकारी समितियो की एक अखिल भारतीय गोष्ठी (सेमिनार) हुई थी। सेमिनार मे श्रमिक सहकारी समितियो की महत्ता पर जोर दिया गया और कहा गया कि ऐसी समितियाँ विकास कार्यों के सम्पादन करने तथा श्रमिकों को उचित मजदूरी दिलवाने की उपयोगी साधन है। सेमिनार मे ऐसी सहकारी समितियो के विकास के लिये अनेक सुझाव दिये गये, उदाहरणत, काम का आरक्षण, बयाना और जमानत की रकम की

अदायगी से छूट, प्रारम्भिक अग्रिम धन की स्वीकृति, निविदाओं के सम्बन्ध में मूल्य-अधिमान अथवा छूट और नियमित पाक्षिक अदायगियाँ आदि। अनेक राज्य सरकारों ने सिफारिशों को कार्यान्वित किया है। उड़ीसा, गुजरात तथा केरल में इन श्रमिक सहकारी समितियों को बिना टेंडर माँगे ही ५०,००० रु० के मूल्य का कार्य, पंजाब में सभी प्रकार के अकुशल कार्य, कर्नाटक में २५,००० रु० तक के कार्य, राजस्थान, दिल्ली, महाराष्ट्र में और केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग को २०,००० रु० के मूल्य के कार्य और आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा मणिपुर में १० ००० रु० तक के मूल्य के कार्य सौंपे जाते हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, उड़ीसा और राजस्थान में श्रमिक सहकारी समितियों को बयाने तथा जमानत की अदायगी से भी मुक्त कर दिया गया है किन्तु अन्य राज्यों में सीमित छूट प्रदान की गई है। कर्नाटक में २५% अग्रिम राशि दी जाती है। इसके अतिरिक्त, श्रमिक सहकारी समितियों के टेण्डरों पर ५% की छूट दी जाती है (यह छूट गुजरात तथा उड़ीसा में ५० हजार रु० से लेकर १ लाख रु० तक के काम पर, राजस्थान में २० हजार रु० से लेकर १ लाख रु० तक के काम पर और महाराष्ट्र में २० हजार रु० से लेकर २ लाख रु० तक के काम पर दी जाती है)।

सामुदायिक विकास तथा सहकारिता मन्त्रालय ने श्रमिक सहकारी समितियों के लिये राष्ट्रीय स्तर पर एक सलाहकार बोर्ड की स्थापना की है। बोर्ड ने एक योजना तैयार की है जिसमें कुछ चुने हुए जिलों तथा क्षेत्रों में श्रमिक सहकारी समितियों के गहन विकास की व्यवस्था है। अब तक ११ राज्यों ने ऐसे अग्रगामी जिलों का चुनाव कर लिया है जहाँ यह कार्यक्रम आरम्भ हो चुका है। तृतीय आयोजना में भी श्रमिक सहकारी समितियों के विकास पर काफी जोर दिया गया है और कहा गया है कि ये समितियाँ विकास कार्यों को लागू करने तथा रोजगार प्रदान करने का मुख्य साधन हैं। चौथी आयोजना में भी मुख्य जोर इस बात पर दिया गया है कि प्रारम्भिक श्रमिक सहकारी समितियों की स्थापना की जाये, शिखर निकायों तथा जिला निकायों का निर्माण किया जाये, ग्रामीण मानव शक्ति कार्यक्रम से उन्हें सम्बद्ध किया जाये और कार्यकर पूँजी तथा पर्याप्त तकनीकी सहायता की व्यवस्था की जाए। आशा की गई थी कि चौथी आयोजना की अवधि में ३,३०० प्रारम्भिक श्रमिक सहकारी समितियां और १२५ जिला संघों की स्थापना हो जायेगी। सन् १९७२–७३ में, देश के १२ राज्यों में जिला स्तर की ६२ श्रम सहकारी समितियाँ थीं। ये श्रम समितियाँ पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, और उत्तर प्रदेश में स्थित इन राज्य स्तरीय सहकारी संघों के अलावा थीं जो सहकारी समितियों के कार्यों में तालमेल रखते थे और उनके लिये काम जुटाने व उसे पूरा करने में मदद करते थे। इन श्रम सहकारी समितियों के कार्यों को राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित करने के लिये श्रम सहकारी समितियों का एक राष्ट्रीय संघ (Federation) बनाने का प्रस्ताव है।

इसके अतिरिक्त, वनों का उपयोग करने के लिये अनेक राज्यों मे वन श्रमिक सहकारी समितियां बनाई गई है। राष्ट्रीय वन नीति सम्बन्धी प्रस्ताव मे कहा गया है कि वन श्रमिक सहकारी समितियो को, जहाँ तक भी सम्भव हो सके, वनो का शोषण करना चाहिये। वन सहकारी समितियों पर एक कार्यकारी दल बनाया गया है जो विभिन्न प्रकार की प्रचलित वन समितियो के कार्यो से प्राप्त अनुभव की इस उद्देश्य से समीक्षा कर रहा है ताकि उनके तीव्र विकास के लिये अन्य सुझाव दिये जा सके। १६७६–७७ में वन श्रमिक सहकारी समितियो की सख्या १,४२३, सदस्यता १,७६,८२२ और कार्यकर पूँजी ३,६२७ लाख रु० थी।

श्रमिक सहकारी कार्य समितियों की विशेषतायें
(Characteristics of Labour Co-operatives)

इस प्रकार की श्रमिक सहकारी कार्य समितियाँ श्रमिक व मालिक दोनो ही के लिये बहुत लाभदायक होती हैं। इन श्रमिक सहकारी कार्य समितियो की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित है : (क) श्रमिक अपने साथ कार्य करने वालो को स्वय छाँटते है तथा अपने नेता को चुनते हैं, (ख) श्रमिक अपनी सामूहिक श्रम की आय को अपनी इच्छानुसार बाँट लेते है, (ग) श्रमिको को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह जिस प्रकार चाहे कार्य करने की व्यवस्था कर सकते हैं। (घ) श्रमिक किसी बाह्य ठेकेदार की अधीनता मे कार्य नही करते, वे कार्य को स्वय तथा अपने उत्तरदायित्व पर करते है, (ङ) श्रमिक मालिक के निरीक्षण मे कार्य नही करते। कार्य पूरा हो जाने के बाद मालिक केवल यह देखता है कि कार्य योजनानुसार किया गया है अथवा नही, (च) यदि कार्य उत्पादन के हिसाब से निर्धारित होता है तब उनको उजरत दर पर मजदूरी दी जाती है। ऐसी समितियो को कार्य सौपने से मालिक को लाभ होता है क्योकि एक तो कार्य शीघ्र पूरा हो जाता है तथा दूसरे उसको ऊपरी खर्चों मे बचत हो जाती है। मालिक को श्रमिको मे अनुशासन रखने का भार भी नही लेना पड़ता क्योकि श्रमिक स्वय ही कार्य को हाथ मे ले लेते हैं और पूरा करते है।

अन्य क्षेत्रों में सहकारिता
(Cooperation in Other Fields)

कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन सहकारिता से तात्पर्य सहकारी खेती से है। परन्तु उसका विवेचन इस अध्याय के क्षेत्र की परिधि मे नही आता। जहाँ तक श्रमिक सह-साझेदारी का सम्बन्ध है, यह भी उत्पादन सहकारिता से एक भिन्न समस्या है और वह उद्योग मे प्रबन्धकों के साथ श्रमिकों के सहयोग से सम्बन्धित है। इस पर विचार 'लाभ सहभाजन' के अन्तर्गत अध्याय १५ के अन्त मे किया जा चुका है। कमजोर वर्गों की कुछ अन्य सहकारी समितियाँ भी है जिनकी सख्या १६७२-७३ मे इस प्रकार थी—रिक्शा खीचने वालो तथा रेहड़ी वालो की सहकारी समितियाँ ३३३, डेयरी समितियाँ १४,३३८, प्रिंटिंग प्रेस २२८, १६७६-७७ मे यातायात सहकारी

श्रमिकों की आवास दशाओं में पर्याप्त सुधार हो सकता है। उपादान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत सरकार सहकारी गृह-निर्माण समितियों को आर्थिक सहायता व ऋण प्रदान करती है। परन्तु इस सम्बन्ध में विशेष सफलता नहीं मिल सकी है।

सहकारिता और कैन्टीन (Cooperation and Canteens)

कार्य के घण्टों के मध्य में कारखानों में श्रमिकों को भोजन प्रदान करने में भी सहकारिता के लिये पर्याप्त क्षेत्र है। इस उद्देश्य के लिये कारखानों में कैन्टीन की व्यवस्था की गई है (देखिये पृष्ठ ३८८–८९), परन्तु अधिकांशतः उनका संचालन कारखाना मालिकों या ठेकेदारों द्वारा किया जाता है। यदि कैन्टीन का संचालन सहकारिता के आधार पर किया जाय तो उससे तीन लाभ होंगे—श्रमिकों को स्वच्छ भोजन मिलेगा, मूल्य कम होंगे तथा वे स्वयं-सहायता व स्वयं निर्भरता के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे। परन्तु सहकारी आधार पर कैन्टीन चलाने के लिये आरम्भ में मालिकों की पर्याप्त सहायता की आवश्यकता है। मदुरा की श्री मीनाक्षी मिल्स में सहकारी आधार पर कैन्टीन का संचालन किया जाता है। पहले कैन्टीन का संचालन मिल प्रबन्धकर्त्ताओं द्वारा किया जाता था, परन्तु मई, १९४० में इसका प्रबन्ध सहकारी भण्डार को स्थानान्तरित कर दिया गया। कैन्टीन अब सहकारी भण्डार के एक पृथक विभाग के रूप में चलाया जाता है तथा अपनी सभी आवश्यकताओं की चीजें भण्डार से प्राप्त कर लेता है। कैन्टीन विभाग में भोजन का लागत मूल्य या लागत मूल्य से कम पर बेचने के कारण जो हानि होती है उसकी पूर्ति मिल के द्वारा की जाती है। मिल ने सहकारी भण्डार को बिना मूल्य लिये भोजन बनाने के बर्तन तथा फर्नीचर भी प्रदान किये हैं। इस सहकारी आधार पर प्रबन्ध करने की प्रणाली को कारखानों की सभी कैन्टीनों में लागू करने का प्रयत्न करना चाहिये तथा प्रारम्भिक अवस्था में मालिकों को पर्याप्त वित्तीय सहायता देनी चाहिये।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार (Consumer's Co-operative Stores)

कारखाने के अहाते या श्रम बस्ती में 'उपभोक्ता सहकारी भण्डार' की यदि स्थापना करके उसका संचालन किया जाये तो उसमें अनेक लाभ होंगे—प्रथम तो दिन भर कार्य करने के पश्चात् श्रमिक को इस बात के लिये कठिनता से ही समय मिल पाता है कि वह बाजार जाकर अपनी आवश्यकता की वस्तुयें खरीद सके। दूसरे, दूकानदार के बहुत अधिक लाभ लेने के कारण वस्तुओं का मूल्य बहुत अधिक होता है और मिलावट होने के कारण शुद्ध वस्तुयें भी नहीं मिल पाती। तीसरे, जब श्रमिकों को आर्थिक कठिनाई होती है तो उन्हें उधार चीजें लेनी पड़ती हैं। इसमें उन्हें दोहरी हानि होती है—एक तो वस्तुओं का अधिक मूल्य देना पड़ता है और दूसरे, उनसे ब्याज भी लिया जाता है। सहकारी भण्डार की स्थापना से ये सब दोष

दूर हो सकते हैं। उधार खरीदने के लिये उप-नियमों में संशोधन किया जा सकता है। तमिलनाडु में विशेषतया ऐसी समितियाँ मालिकों द्वारा स्थापित की गई है और उनको प्रशंसनीय सफलता भी प्राप्त हुई है। कुछ स्थानों पर मालिक श्रमिकों की मजदूरी में से वह राशि काट लेते हैं जो श्रमिकों को उपभोक्ता सहकारी भण्डार को देनी होती है। कुछ स्थानों पर मालिकों ने अनेक रियायतें भी प्रदान की हैं। उदाहरणत भण्डार के लिये निःशुल्क इमारत एकाउन्टेन्ट व बनक आदि का कार्य करने के लिये कर्मचारियों की निःशुल्क सेवा देना, कागज, पेन्सिल फर्नीचर आदि को भी बिना दाम के देना, भण्डार तक सामान लाने ले जाने के लिये यातायात की सुविधायें प्रदान करना, कपड़ा आदि क्रय करने के लिये उपदान देना आदि आदि। यह तो ठीक है कि प्रारम्भ में श्रमिक सहकारी भण्डारों को इस प्रकार की सहायता मिलनी चाहिये परन्तु सहकारिता के सच्चे आदर्शों को प्राप्त करने के लिये इन भण्डारों को शीघ्र ही आत्म निर्भर व स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करना चाहिये।

केन्द्रीय श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने औद्योगिक श्रमिकों के लिये उपभोक्ता सहकारी भण्डार स्थापित करने की एक योजना चालू की है। यह योजना १९६२ से लागू की गई है और इसका उद्देश्य यह है कि बढती हुई कीमतों के कारण जो श्रमिकों को हानि पहुँच रही है उससे उनकी रक्षा की जा सके। ऐसे भण्डार उन सभी सम्पानों पर स्थापित किये जाने की योजना है जहाँ ३०० से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। उपभोक्ता सहकारी भण्डार के शेयर खरीदने के लिये श्रमिकों को अपनी निर्वाह निधि से २० रु० तथा ३० रु० तक की पेशगियाँ देने की अनुमति है। ये पेशगियाँ लौटाई नहीं जाती। सरकार ऐसा विधान बनाने का भी विचार कर रही है जिसके अन्तर्गत उचित कीमत वाली दूकानों (Fair Price Shops) की स्थापना का वैधानिक दायित्व मालिकों पर डाल दिया जाये।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार को अब एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य सौंपा गया है और वह है उपभोक्ता वस्तुओं के सार्वजनिक वितरण की व्यवस्था। उपभोक्ता सहकारिता के ढाँचे में १९७९ से एक चार स्तरीय प्रणाली है जिसके अन्तर्गत, सबसे निचले स्तर पर १६,३४८ प्रारम्भिक समितियाँ हैं, ४८१ केन्द्रीय या थोक समितियाँ है जिनकी जिला स्तर पर ३,६६० शाखाएँ है, स्तर पर १४ राज्य उपभोक्ता सहकारी संघ है और राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय सहकारी उपभोक्ता संघ (NCCF) है। इस ढाँचे के अलावा, ५,००० से अधिक सहकारी समितियाँ और हैं जो कि औद्योगिक श्रमिकों तथा रेल व डाक तार कर्मचारियों के बीच कार्यरत है। ग्रामीण क्षेत्रों में, लगभग १,६०० प्रारम्भिक क्रय-विक्रय समितियाँ ३,७०० से भी अधिक ग्रामीण सेवा समितियाँ तथा अन्य सहकारी समितियाँ उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण में सलग्न हैं।

उपसहार श्रमिको के लिये सहकारिता का महत्व
(Conclusion Importance of Cooperation of Workers)

पिछले पृष्ठो म श्रमिको क द्वारा सहकारी प्रयत्नो का जो विवेचन किया गया है उसस स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता द्वारा श्रमिक काफी सीमा तक ऋणग्रस्तता स बच सकते ह और गन्दी बस्तियो म रहने स छुटकारा पा सकते हैं। सहकारिता से ही वह निजी भोजनालयो म ग दा व अशुद्ध और इस पर भी महँगा भोजन करने से छुटकारा पा सकते ह तथा अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये लोभी व अत्यधिक लाभ लेने वाले दूकानदारो क चगुल स भी बच सकते हैं। परिणामस्वरूप श्रमिको क सामाजिक व आर्थिक कल्याण म अधिक उन्नति हो सकेगी। सहकारिता से श्रमिको म मितव्ययिता और पारस्परिक सहायता की भावनायें भी बढेंगी तथा वह अच्छे नागरिक बन सकग। उनम अनुशासन से रहने और काय करने का स्वभाव पड जायेगा और उनका नतिक स्तर भी ऊँचा हो जायगा। श्रम कल्याण काय भी श्रमिक स्वय अपने हाथो म ले सकते हैं। स्वय श्रमिको द्वारा इन कार्यों को अपने हितो के लिय अधिक कुशलतापूवक चलाया जा सकता है। चूकि कमजोर वर्गों विशेषकर आदिवासी क्षेत्रो म शोषण करने वालो का उन्मूलन करने क लिये सहकारी आ दोलन का भारी महत्व है अत सहकारी समितिया वन श्रमिक समितिया बहु उद्देशीय श्रम ठेका व निमाण समितिया क्रय विक्रय समितियो तथा एक शीप सहकारी सगठन या निमाण सहकारी सहायता मे किया गया है। शीप सहकारी सगठन की एक सम वय समिति भी बनाई गई है।

पर तु फिर भी जैसा की आ दोलन के सक्षिप्त विवेचन म ऊपर बताया जा चुका है देश म सहकारी आ दोलन क दोषो और कमियो को दूर करने के प्रयत्न किये जाने चाहियें। यह आवश्यक है कि श्रमिको को सहकारिता के सिद्धान्त को समझाया जाय तथा उन्ह स्वय अपने ही कल्याण म रुचि लेने के लिये उचित शिक्षा दी जाय। जो कठिनाइयाँ एक शक्तिशाली श्रमिक सघ को बनाने मे सामने आती है बहुधा वही कठिनाइयाँ श्रमिक सहकारी समिति क सफलतापूवक सचालन मे आती हैं। पर तु जसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सहकारी समितियाँ श्रमिक सघ स भिन्न होती ह और उनके निमाण म मालिको स कोई सघप नही होता। मालिको को तो श्रमिको क कल्याण क लिए सहकारी समितियो की स्थापना को प्रोत्साहन ही देना चाहिय। प्रारम्भिक अवस्था म तो सहकारिता भारतीय श्रमिको मे बिना किसी बाह्य सहायता क सफल नही हो सकती, पर तु अ तत श्रमिको का स्वय अपने पैरो पर ही खडा होना पडगा अ यथा यह सच्चे अर्थों म सहकारिता नही होगी।

———

२४ श्रम प्रशासन
LABOUR ADMINISTRATION

१९३५ का भारत सरकार अधिनियम
(The Government of India Act, 1935)

अप्रैल, १९३७ से पूर्व भारत सरकार को श्रम मामलो मे प्रान्तीय सरकारो के ऊपर निरीक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण का अधिकार था। परन्तु १९३७ मे प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् से राज्य अधिकांशत इस सम्बन्ध मे अपने अपने क्षेत्रो मे स्वतन्त्र हो गये थे। १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार श्रम विधान बनाने और अधिनियमो और विनियमो के प्रशासन के कार्यो को केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारो के बीच स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया गया था। संक्षेप मे खानो और तेल निकालने वाले क्षेत्रो मे श्रम की सुरक्षा और विनियम, बन्दरगाहो मे सगरोध (क्वारंटाइन), नाविको और जहाजो के लिये हस्पताल, बन्दरगाहो के सगरोधो के सम्बन्धित हस्पताल के विषयो को सघीय (केन्द्रीय) विधायी सूची मे रखा गया था तथा निर्धन और बेरोजगारो की सहायता के विषयो को प्रान्तीय विधायी सूची रखा गया था। समवर्ती (Concurrent) विधायी सूची मे, अर्थात् ऐसी सूची जिसमे दिये हुए विषयो पर केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनो ही के विधान मण्डल कानून बना सकते थे, निम्न विषय थ कारखाने, श्रम कल्याण, श्रम की दशायें, प्रोविडेन्ट फण्ड, मालिको की देयता और श्रमिको की क्षतिपूर्ति, स्वास्थ्य बीमा, जिसम असमर्थता पेन्शन भी सम्मिलित है, वृद्धावस्था पेन्शन, बेरोजगारी बीमा, व्यापार सघ, औद्योगिक व श्रम विवाद। श्रम कानूनो के प्रशासन का उत्तरदायित्व प्रान्तो पर था।

युद्ध-काल और इसके बाद से केन्द्रीय नियन्त्रण
(Central Control During and after the war)

परन्तु द्वितीय महायुद्ध छिड जाने के पश्चात् इस बात की तीव्र आवश्यकता अनुभव की गई कि उत्पादन को अधिकतम बढाने के लिये पर्याप्त और सन्तुष्ट श्रमिको का होना नितान्त आवश्यक है। इस कारण केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करना पडा और औद्योगिक श्रमिको के कल्याण और कार्य दशाओ को नियन्त्रित और विनियमित करने के लिये सरकार ने विस्तृत अधिकारो को ग्रहण किया। जैसे-जैसे युद्ध बढता गया और गतिविधियाँ विस्तृत होती गई वैसे ही समय-समय पर भारत सरकार के श्रम विभाग को अनेक दिशाओ मे दृढ किया गया। उदाहरणर्थ,

केन्द्रीय नियन्त्रित संस्थाओं में औद्योगिक सम्बन्धों की देख रेख के लिये व्यवस्था की गई तथा एक समायोजित पुन स्थापन संस्था की स्थापना की गई जिसका कार्य सेना से निकले हुए सैनिकों का पुनर्स्थापन करना और उन्हें पुन रोजगार पर लगाना था। एक अन्य संस्था कारखानों के मुख्य सलाहकार के अधीन स्थापित की गई जिसका कार्य कारखाना में कार्य की दशायें सुधारने के लिये केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को सलाह देना था। युद्ध के तत्काल पश्चात् ही श्रम समस्याओं की अनेक रूपता और गम्भीरता के कारण सरकार को श्रम विभाग का विभाजन करना पड़ा तथा ऐसे अनेक विषयों को, जिनका श्रम से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं था, परन्तु जिनको श्रम विभाग द्वारा प्रशासित किया जाता था, नवीन स्थापित निर्माण खान और शक्ति विभाग को हस्तान्तरित कर दिया गया। अक्तूबर १६४६ में प्रान्तीय मन्त्रियों से सम्मेलन में यह बात स्वीकार कर ली गई कि जहाँ तक हो सके, श्रम विधान बनाने का कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा ही हो ताकि समान रूप से इस सम्बन्ध में तीव्र गति से पग उठाये जा सकें। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय ने श्रमिकों के स्वास्थ्य, कार्यक्षमता, कार्य की दशाओं और जीवन-स्तर में सुधार के लिये श्रम विधान और श्रम प्रशासन का एक पंचवर्षीय कार्यक्रम तैयार किया।

युद्ध काल में श्रम सम्मेलन

(Labour Conferences During the War)

युद्ध-काल में यह भी अनुभव किया गया कि युद्धोपरान्त श्रम कार्यक्रमों की योजना बना लेनी चाहिये तथा श्रम कानूनों में भी कुछ समायोजन होना चाहिये। फलस्वरूप १६४०, १६४१ और १६४२ में प्रान्तीय श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन आयोजित किये गये। १६४१ और १६४२ में भारत सरकार ने श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधियों से परामर्श भी किया। इन सम्मेलनों से सरकार आश्वस्त हो गई कि यदि सरकार, श्रमिकों और मालिकों की संयुक्त सभा आयोजित की जाती है तो अधिक प्रभावात्मक रूप से और शीघ्रता से कार्य किया जा सकता है क्योंकि इसमें मालिकों और श्रमिकों के पारस्परिक मतभेदों को वाद-विवाद और पारस्परिक समझौते से दूर करना सरल हो जायेगा। फलस्वरूप, अगस्त १६४२ के चतुर्थ श्रम सम्मेलन में केन्द्रीय और प्रान्तीय अधिकारियों के अतिरिक्त मालिक और श्रमिकों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया गया। इस सम्मेलन ने स्थायी त्रिदलीय संगठन व्यवस्था करने का निर्णय किया तथा परिपूर्ण (Plenary) श्रम सम्मेलन और स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) का गठन किया। परिपूर्ण सम्मेलन का कार्य "उन विषयों पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देना था जो विषय सलाह के लिये इस सम्मेलन को भेजे जाते थे। सलाह देते समय यह सम्मेलन उन सुझावों को ध्यान रखता था जो श्रमिकों और मालिकों के मान्यता प्राप्त संगठनों के प्रतिनिधियों द्वारा तथा प्रान्तीय और देशी राज्य सरकारों द्वारा तथा

राजा-महाराजाओ की परिषद् द्वारा दिये जाते थे।" स्थायी श्रम समिति की सभा, जब भी आवश्यक हो तो तब ही बुलाई जा सकती थी। इसका कार्य 'सरकार द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले किसी भी मामले पर सलाह देना था।' अक्तूबर १९४४ के छठे श्रम सम्मेलन मे यह निर्णय किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के आधार पर भारत मे औद्योगिक समितियाँ बनाई जाए। सरकार द्वारा उन सुझावों को मान लिया गया और तब से बागान, सूती वस्त्र, कोयला खान, सीमेंट, चमडा व चमडा रगने, अन्य खानें, जूट, आवास का निर्माण, रसायन तथा लोहा व इस्पात जैसे महत्व-पूर्ण उद्योगो के लिए औद्योगिक समितियाँ स्थापित की जा चुकी हैं। इन समितियों की समय समय पर बैठकें होती रहती है और उद्योग से सम्बन्ध रखने वाली विशेष समस्याओं पर विचार किया जाता है तथा श्रमिको के कल्याण के लिए सुझाव भी दिये जाते है।

त्रिदलीय श्रम व्यवस्था (Tripartite Labour Machinery)

सरकारी त्रिदलीय व्यवस्था मे भारतीय श्रम सम्मेलन, जिसको साधारणतया त्रिदलीय श्रम सम्मेलन कहते हैं, स्थायी श्रम समिति, औद्योगिक समितियाँ और कुछ त्रिदलीय प्रकार की समितियाँ आती है। इसके अतिरिक्त श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन का, यद्यपि वह त्रिदलीय नहीं है, इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त १९५१ से उद्योग और श्रम अर्थात् मालिक और मजदूरो का एक सयुक्त सलाहकार बोर्ड मे बनाया गया है। इस व्यवस्था मे श्रम विधान, श्रम नीति तथा श्रम प्रशासन से सम्बन्धित अनेक बातो पर विचार और वाद-विवाद करने का अवसर मिलता है। अनेक राज्यो ने भी श्रम और पूजी के बीच सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाने के लिये त्रिदलीय श्रम व्यवस्था गठित की है (देखिये पृष्ठ ६२६-६२७)। श्रम और रोजगार मन्त्रालय की एक अनौपचारिक (Informal) सलाहकार समिति भी है। अन्य समितियाँ, सलाहकार बोर्ड आदि निम्नलिखित है अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के अभिसमयो पर एक समिति, 'केन्द्रीय कार्यान्वित तथा मूल्याकन प्रभाग' (देखिये पृष्ठ २२२), मजदूरी से सम्बन्धित एक स्टीयरिंग दल, मजदूरी अर्थात् वेतन बोर्ड, केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड तथा सुरक्षा, निरीक्षण, श्रम अनुसन्धान आदि पर कई सम्मेलन तथा गोष्ठियाँ। इसी प्रकार श्रम अनुसन्धान पर एक केन्द्रीय समिति, रोजगार पर एक केन्द्रीय समिति तथा औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव पर एक स्थायी समिति भी बनाई गई है।

भारत सरकार का श्रम और रोजगार मन्त्रालय

(Ministry of Labour of Employment of the Govt of India)

भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय का सम्बन्ध मुख्यत ऐसे विषयो से है जैसे कि औद्योगिक सम्बन्ध, मजदूरी, रोजगार, श्रम कल्याण तथा श्रमिको की सामाजिक सुरक्षा। ये सभी विषय भारत के सविधान की ७वी अनुसूची की सघ सूची तथा समवर्ती सूची मे उल्लिखित है। मन्त्रालय इन सभी विषयो के सम्बन्ध

में राष्ट्रीय नीतियों का निर्धारण करता है। श्रम नीतियों को लागू करने का दायित्व सामान्यतः राज्य सरकारों का होता है और उन्हें केन्द्र सरकार के निर्देशों के अनुसार तालमेल रखते हुए कार्य करना होता है किन्तु रेलों, खानों, तेल-क्षेत्रों, बड़े बन्दरगाहों, बैंकों तथा बीमा कम्पनियों (जिनकी शाखाएँ एक से अधिक राज्यों में फैली होती हैं) तथा संघ सूची के अन्य उद्यमों में कार्यरत श्रमिक राज्य सरकारों की कार्य-परिधि से बाहर होते हैं। श्रम मन्त्रालय का यह भी सीधा दायित्व होता है कि वह कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम १९४८ के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं तथा कर्मचारी भविष्य निधि तथा विविध उपबन्ध अधिनियम १९५२ के अन्तर्गत भविष्य निधि योजनाओं को लागू करे और बीड़ी उद्योग व खानों (कोयला खानों को छोड़कर) के श्रमिकों के सम्बन्ध में कल्याण निधियों का प्रशासन करे। कोयला खान श्रम कल्याण निधि, कोयला खान श्रम कल्याण संगठन तथा कोयला खान भविष्य निधि तथा विविध उपबन्ध अधिनियम १९४८ का प्रशासन, जो कि विगत कुछ वर्षों तक श्रम मन्त्रालय के अधीन था, अक्तूबर १९७९ में कोयला विभाग को स्थानान्तरित कर दिया गया था। श्रम मन्त्रालय उन लोगों के लिए प्रशिक्षण सुविधाओं की भी व्यवस्था करता है जो अधिक अच्छे रोजगार के लिए अपनी कुशलता बढ़ाना चाहते है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा संघ में सम्बन्धित सभी गतिविधियों के लिए श्रम मन्त्रालय एक संगम-संगठन के रूप में कार्य करता है। इन संगठनों की बैठकों तथा सम्मेलनों में शामिल होने, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तरों को लागू करने तथा इन संगठनों की अन्य सिफारिशों को कार्यरूप देने के कार्यों में यह तालमेल स्थापित करता है। श्रम मन्त्रालय त्रिदलीय सम्मेलनों तथा श्रम मन्त्रियों व सचिवों, स्थायी श्रम समिति तथा ऐसी ही अन्य संस्थाओं के सम्मेलनों के लिए सचिवालय की भी व्यवस्था करता है।

मन्त्रालय से संलग्न ४ कार्यालय, २० सहायक कार्यालय तथा सात स्वायत्तशासी संगठन हैं।

संलग्न कार्यालयों के कार्य निम्न प्रकार हैं—

(१) **रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय**. यह महानिदेशालय निम्न कार्य सम्पन्न करता है नीतियों, कार्य प्रणालियों तथा स्तरों का निर्धारण करता तथा देश भर में रोजगार सेवा की कार्य प्रणालियों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना।

(२) *मुख्य श्रमायुक्त (केन्द्रीय) केन्द्र सरकार से सम्बद्ध उद्योगों तथा संस्थानों* में श्रम कानूनों को लागू करता है। केन्द्रीय श्रमिक संगठनों से सम्बद्ध श्रम संघों की सदस्यता की जाँच-पड़ताल का कार्य भी यही श्रमायुक्त करता है।

(३) **कारखाना सलाह सेवा तथा श्रम संस्थानों के महा निदेशालय** का सम्बन्ध कारखानों तथा गोदियों (docks) के श्रमिकों की सुरक्षा, उनके स्वास्थ्य तथा कल्याण से होता है। यह महानिदेशालय कारखाना अधिनियम की कार्य-

प्रणाली में समन्वय लाने तथा उसके सम्बन्ध में आदर्श नियम बनाने के लिए भी उत्तरदायी होता है। इसका सम्बन्ध भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम १९३४ उसके अन्तर्गत बने नियमों तथा गोदी कर्मचारी (सुरक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण) योजना १९६१ के प्रशासन से भी होता है। यह औद्योगिक सुरक्षा, व्यवसाय जनित रोगों, औद्योगिक स्वास्थ्य-विज्ञान, औद्योगिक मनोविज्ञान तथा औद्योगिक क्रिया विज्ञान के सम्बन्ध में किये जाने वाले अनुसंधान से भी सम्बद्ध होता है। यह उत्पादकता, औद्योगिक इंजीनियरिंग तकनीक तथा प्रबन्ध सेवाओं में प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करता है।

(४) **श्रम ब्यूरो का** निदेशालय रोजगार, मजदूरी, कमाई, औद्योगिक विवाद तथा कार्य की दशाओं आदि के सम्बन्ध में सांख्यिकी आँकड़ों तथा सूचनाओं के एकत्रीकरण व प्रकाशन के लिए उत्तरदायी होता है। यह औद्योगिक व कृषि श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों का संकलन तथा प्रकाशन भी करता है।

श्रम मन्त्रालय के कुछ सहायक कार्यालय निम्न प्रकार हैं —

(i) **खान सुरक्षा महानिदेशालय** को खान अधिनियम १९५२ के उपबन्धों तथा उसके अन्तर्गत बने विनियमों व नियमों को लागू करने का काम सौंपा गया है। इसके अतिरिक्त, गैर-कोयला खान के सम्बन्ध में मातृत्व लाभ अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत बने नियमों का प्रशासन भी यही महानिदेशालय करता है।

(ii) **कल्याण निधि संगठन** : ये संगठन लोहा, मैंगनीज, अभ्रक, चूना पत्थर तथा डोलोमाइट खानों में इनमें लगे श्रमिकों के कल्याण के लिए तथा बीड़ी श्रमिकों के कल्याण के लिए बनाये गये हैं। कोयला खान कल्याण निधि संगठन जो कि अब तक श्रम मन्त्रालय के अधीन कार्य कर रहा था, अब उसका नियन्त्रण कोयला विभाग को सौंप दिया गया है।

स्वायत्तशासी संगठनों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्य निम्न प्रकार हैं—

(ii) **कर्मचारी राज्य बीमा निगम** *कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम १९४८* को लागू करने के लिए उत्तरदायी होता है। यह अधिनियम बीमारी, मातृत्व तथा व्यवसायजनित चोट के मामलों में डाक्टरी देखभाल तथा नकद लाभों की व्यवस्था करता है।

(i) कर्मचारी भविष्य निधि तथा विविध उपबन्ध अधिनियम १९५२ के अन्तर्गत बनाया गया **कर्मचारी भविष्य निधि संगठन** भविष्य निधि, परिवार पेंशन तथा जमा सम्बद्ध बीमा योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी होता है। कोयला खान भविष्य निधि संगठन जो अब तक श्रम मन्त्रालय के अन्तर्गत काम कर रहा था, कोयला विभाग के नियन्त्रण में चला गया है।

(iii) कोयला खान बचाव नियम, १९५९ के अन्तर्गत बनाई गई **केन्द्रीय कोयला खान बचाव स्टेशन समिति** को इस हेतु बनाये जाने वाले बचाव स्टेशनों

की स्थापना, रख-रखाव तथा उनके समुचित कार्य संचालन का दायित्व सौंपा गया है।

(iv) खानों मे सुरक्षा की राष्ट्रीय परिषद एक रजिस्टर्ड समिति है। इस परिषद् का उद्देश्य प्रत्येक खनिज (miner) को खानों की सुरक्षा के सम्बन्ध मे जनजाना तथा सुरक्षा सम्बन्धी सभी प्रकार की गतिविधियो मे सक्रिय रूप से उन्हें भाग लेने के लिए प्रेरित करना है।

(v) राष्ट्रीय रक्षा परिषद् भी रजिस्टर्ड सस्था है जो फैक्टरियों मे सुरक्षा को बढावा देती है।

(vi) श्रमिक शिक्षा केन्द्रीय बोर्ड एक रजिस्टर्ड सस्था है। यह श्रमिक सघ-वाद के तरीको म श्रमिकों को प्रशिक्षित करन की योजनाओं की देखभाल करती है तथा श्रमिकों को उनके दायित्वो के प्रति जागरूक बनाती है। बोर्ड ने ग्रामीण श्रमिको की शिक्षा तथा कार्यात्मक प्रौढ शिक्षा के कार्यक्रम भी हाथ म ले लिये है।

(vii) राष्ट्रीय श्रम सस्थान एक रजिस्टर्ड सस्था है जो कार्यो पर आधारित अनुसधान की व्यवस्था करती है तथा शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों मे श्रम सघ आन्दोलन मे श्रमिको को तथा उन अधिकारियो को प्रशिक्षित करती है जो औद्योगिक सम्बन्धो, कार्मिक प्रबन्ध तथा श्रम कल्याण आदि की देखभाल करते है।

राज्यों मे श्रम प्रशासन (Labour Administration in States)

१९५१ के 'ब' भाग राज्य (कानून) अधिनियम मे अन्तर्गत केन्द्रीय श्रम कानून सभी 'ब' भाग के राज्यो पर लागू कर दिये गये थे। राज्यो के पुनर्गठन के पश्चात् यह अधिनियम सब राज्यो पर लागू होते है। अपने क्षेत्र के लिये पारित किये गये एव अपने क्षेत्र मे लागू श्रम कानूनो के प्रशासन और कार्यान्विति के लिये तथा श्रम से सम्बन्धित आँकडो तथा अन्य सूचनाओं को एकत्रित, सचित तथा विज्ञापित करने के लिये सभी उद्योग प्रधान राज्यो ने अपनी अलग-अलग व्यवस्था की है। सभी राज्यों मे श्रम विभाग की स्थापना के अतिरिक्त श्रम आयुक्तो, सहायक या उपश्रमायुक्तों को भी नियुक्त किया गया है जो श्रम प्रशासन के लिये उत्तरदायी है। इनके अधीन अनेक अधिकारी होते है, उदाहरणतया कारखानो के मुख्य निरीक्षक तथा बॉयलर्स के मुख्य निरीक्षक क्रमश कारखाना अधिनियम १९४८ तथा भारतीय बॉयलर अधिनियम १९२३ के अन्तर्गत रोजगार, दुर्घटनाओं आदि से सम्बन्धित आँकडे तथा मजदूरी भुगतान अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी एवं आय की सूचनायें एकत्रित करते है, श्रमिक सघो के रजिस्ट्रार, श्रमिक सघो, उनकी सदस्यता एव उनकी निधि से सम्बन्धित आँकडे एकत्रित करते है; श्रमिक क्षतिपूर्ति के आयुक्त, दुर्घटनाओ, क्षतिपूर्ति भुगतान आदि से सम्बन्धित आँकडो को एकत्रित करते है; आदि। १९४२ के औद्योगिक सास्यिकी अधिनियम के अन्तर्गत अनेक राज्यों मे समान आधार पर विस्तृत रूप से आँकडो को एकत्रित करने के लिए

सांख्यिकी प्राधिकारियो की भी नियुक्ति की गई हैं। इस प्रकार से जो आँकड़े एकत्रित होते है उनका विश्लेषण किया जाता है और उनमे से कुछ को राज्य सरकारो द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओ तथा 'इण्डियन लेबर जनरल' मे प्रकाशित किया जाता है।

उत्तर प्रदेश मे श्रम प्रशासन (Labour Administration in U. P)

जिस प्रकार की सूचना का ऊपर उल्लेख किया गया है वह उत्तर प्रदेश मे श्रम आयुक्त की अधीनता मे सांख्यिकी संगठन द्वारा एकत्रित तथा प्रकाशित की जाती है। हाल ही मे इस संगठन का पुनर्गठन किया गया है तथा इसको और अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। कानपुर के लिये श्रमिक-वर्ग के जीवन-निर्वाह सूचनांको को एकत्रित करने के अतिरिक्त अनेक ग्रामो मे कृषि श्रमिको की मजदूरी से सम्बन्धित, तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले रोजगारो मे औद्योगिक श्रमिको की दशाओ से सम्बन्धित तथा कुछ विशेष क्षेत्रों मे औद्योगिक श्रमिको के पारिवारिक बजट मे सम्बन्धित पूछताछ भी की गई है और की जा रही है।

उत्तर प्रदेश मे श्रम विभाग के अध्यक्ष श्रम आयुक्त है। यह १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के अन्तर्गत प्रमाण अधिकारी का, कर्मचारी प्रोविडेन्ट फण्ड योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश मे क्षेत्रीय प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त का, १९५१ के उत्तर प्रदेश चीनी एव चालक मद्यसार उद्योग श्रमिक कल्याण तथा विकास निधि 'अधिनियम' के अन्तर्गत श्रम कल्याण आयुक्त का तथा १९५३ के औद्योगिक आवास अधिनियम के अन्तर्गत आवास आयुक्त का भी कार्य सम्पन्न करते हैं। श्रम आयुक्त को अनेक कार्यो मे सहायता देने के लिए दो अतिरिक्त श्रम आयुक्त, चार उप श्रम आयुक्त, एक कारखानो का मुख्य निरीक्षक, दो कारखानो के उपमुख्य निरीक्षक, एक 'बॉयलर्स' का मुख्य निरीक्षक, एक कार्य-कुशलता सलाहकार, एक आवास तथा कल्याण सलाहकार, चार सहायक श्रमायुक्त तथा राजपत्रित अधिकारी होते हैं। ये अधिकारी श्रम आयुक्त के कार्यालय के विभिन्न अनुभागो (Sections) के कार्यों की उच्चस्तर पर देख-भाल के लिये उत्तरदायी होते है। कानपुर मे श्रम आयुक्त के कार्यालय मे निम्नलिखित पूर्ण विकसित अलग-अलग भाग है और प्रत्येक अनुभाग मे अनेक अधिकारी, निरीक्षक आदि नियुक्त है—(१) कल्याण अनुभाग—यह अनुभाग अतिरिक्त श्रम आयुक्त (कल्याण) के अधीन है और इसकी सहायता के लिये एक सलाहकार, एक सहायक श्रम आयुक्त और दो सहायक कल्याण अधिकारी हैं। इसके अन्तर्गत छ क्षेत्रीय कल्याण कार्यालय हैं, जो कानपुर, आगरा, बरेली, इलाहाबाद लखनऊ तथा मेरठ मे है। (२) औद्योगिक सम्बन्ध अनुभाग—यह अनुभाग एक उप-श्रम आयुक्त के अधीन है। इसके अन्तर्गत एक श्रम अधिकारी की अनेक सुलह अधिकारी, स्थानीय श्रम निरीक्षक, श्रम निरीक्षक तथा श्रम सहायक आते है। कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, गोरखपुर, आगरा, बरेली,

मेरठ, वाराणसी, झांसी, फैजाबाद, देहरादून और नैनीताल में १२ क्षेत्रीय कार्यालय हैं। इलाहाबाद, मेरठ, आगरा, बरेली, गोरखपुर और लखनऊ क्षेत्र उप-श्रम आयुक्त के अधीन है और वाराणसी, झांसी, फैजाबाद, देहरादून और नैनीताल क्षेत्र सहायता श्रम आयुक्तों के अधीन हैं। कानपुर क्षेत्र अतिरिक्त श्रम आयुक्त के अधीन है। रामपुर, सहारनपुर, फिरोजाबाद, गाजियाबाद, मोदीनगर, पिपरी और अलीगढ में उप-क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं। (३) कारखानों के मुख्य निरीक्षक की अध्यक्षता में कारखाना अनुभाग—इसमें कारखानों का एक उप-मुख्य निरीक्षक तथा अनेक कारखाना निरीक्षक हैं। कारखानों के मुख्य निरीक्षक बागान के मुख्य निरीक्षक भी है। यह अनुभाग फैक्टरी अधिनियम, मजदूरी अदायगी अधिनियम तथा मातृत्व-कालीन अधिनियम आदि के प्रशासन की देखभाल करता है। इसमें ग्यारह क्षेत्रीय कार्यालय आगरा, इलाहाबाद, बरेली, लखनऊ, गोरखपुर, कानपुर, मेरठ, वाराणसी, अलीगढ, गाजियाबाद और सहारनपुर में हैं। (४) न्यूनतम मजदूरी और दुकान अनुभाग - यह अनुभाग उप-श्रम आयुक्त (न्यूनतम मजदूरी) की अधीनता में है। इसकी सहायता के लिये दो सहायक श्रम आयुक्त तथा उप-श्रम आयुक्त (सामान्य) है जिसकी सहायता के लिये दुकान और वाणिज्य संस्थानों का एक मुख्य निरीक्षक तथा अनेक श्रम निरीक्षक और अन्य कर्मचारी हैं। (५) 'बॉयलर्स' के मुख्य-निरीक्षक की अधीनता में एक बॉयलर्स अनुभाग—इसमें बॉयलर्स के ६ निरीक्षक हैं। (६) एक सहायक रजिस्ट्रार और श्रमिक संघ निरीक्षक की अधीनता में एक श्रमिक संघ तथा (७) स्थायी आदेश अनुभाग। (८) सांख्यिकी अनुभाग—इसकी चार शाखायें हैं—सांख्यिकी, अन्वेषण, प्रचार और प्रशिक्षण। प्रत्येक शाखा एक उत्तर-प्रदेश राजकीय सेवा के अधिकारी के अधीन है। इसमें प्रवर और अवर अन्वेषक, सांख्यिकी सहायक, आंकड़ों का सकलन करने वाले क्लर्क तथा अन्य सहायक होते हैं। सभी अनुभाग उप-श्रम आयुक्त (सामान्य) के अधीन हैं। (९) उत्तर-प्रदेश राजकीय सेवा के एक लेखा अधिकारी की अधीनता में एक लेखा और (१०) संस्थान अनुभाग। (११) आवास से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१२) कार्यक्षमता और विवेकीकरण से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१३) वृद्धावस्था पेंशन योजना से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१४) मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम से सम्बन्धित एक अनुभाग और (१५) प्रचार से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१६) विभागीय पुस्तकालय तथा वाचनालय से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१७) पुराने रिकार्ड के रख-रखाव से सम्बन्धित एक अनुभाग और (१८) भण्डार, फरनीचर, भवन तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से सम्बन्धित एक अनुभाग।

औद्योगिक विवादों की रोकथाम करने और उनके निबटारे से सम्बन्धित व्यवस्था का उल्लेख सातवें अध्याय में किया जा चुका है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने श्रम प्रशासन पर एक पूरा अध्याय (अध्याय ३०) लिखा था। इसने इस सम्बन्ध में निम्न सिफारिशें की थी कि—फैक्टरियों से सलग्न

खानों और खानों से सलग्न फैक्टरियों में औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना का प्रश्न केन्द्र या राज्य, दोनों में से एक ही एजेन्सी के अन्तर्गत लाया जाना चाहिये, श्रम प्रशासन के मामलों की निपटाने में अन्तर्राज्य सहयोग होना चाहिये, राज्य के श्रम सचिव/आयुक्त के पद की अवधि अधिक लम्बी होनी चाहिये और जो अधिकारी श्रम आयुक्त के रूप में काम कर चुका हो, श्रम सचिव की नियुक्ति में उसको प्रमुखता दी जानी चाहिये, रोजगार सेवा के सचालन के लिये पद की अवधि छोटी नहीं होनी चाहिये, श्रम कानूनों के प्रशासन के लिये जो बोर्ड या निगम बनाये जायें उन्हें अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये, छोटी इकाइयों में श्रम कानूनों को लागू करते समय सरकार को अधिक सतर्कता से काम लेना चाहिए, श्रम विधानों का क्रियान्वयन एक दैनिक कार्यकलाप माना जाना चाहिये, श्रम सम्बन्धी मामलों का निपटारा करने वाले अधिकारियों को औद्योगिक संस्थानों के कार्य में निकट सम्पर्क रखना चाहिये, और उन्हें कार्मिक प्रबन्ध के बारे में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये, सार्वजनिक निर्माण विभाग और वन विभागों को चाहिये कि वे ठेकेदारों के दावों का निपटारा करने से पूर्व सम्बन्धित श्रम आयुक्तों से परामर्श करें, श्रम कानूनों को आदतन भग करने वालों को जो दण्ड दिये जायें, उनमें निवारण की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये, श्रम आयुक्त के कार्यालय का यह दायित्व होना चाहिये कि वह दुकान तथा प्रतिष्ठान अधिनियम का प्रशासन करे तथा सम्पूर्ण निरीक्षण स्टाफ की देखभाल करे, श्रम मन्त्रालय के मूल्यांकन तथा क्रियान्वयन सम्बन्धी कार्य और केन्द्र सरकार के श्रम अधिकारियों की देखभाल का कार्य मुख्य श्रम आयुक्त को स्थानान्तरित किया जाना चाहिए, कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को लागू करने की क्षेत्र-एजेन्सी ग्रामीण स्तर पर जिला परिषद तथा उसकी सहायक संस्थायें होनी चाहियें, इस उद्देश्य के लिये संचालन एजेन्सी जहाँ श्रम आयुक्त के कार्यालय को बनाया जाना चाहिए, वहाँ समन्वय एजेन्सी के रूप में राज्य के श्रम विभाग को कार्य करना चाहिये।

वर्तमान संविधान में श्रम विषय

(Labour in the Present Constitution)

संविधान सभा द्वारा पारित भारत के नये संविधान को राष्ट्रपति द्वारा २६ नवम्बर, १९४९ को प्रमाणित किया गया। यह संविधान २६ जनवरी १९५० से लागू हुआ जब भारत को सम्पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया।

संविधान के प्रारम्भ में कहा गया है कि हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय देने के लिये, तथा विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता के लिये, तथा स्थिति और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा सब में बन्धुत्व की ऐसी भावना, जिससे व्यक्ति का गौरव और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित हो सके, वर्धन करने के

लिये, दृढ़ संकल्प करके इस संविधान को स्वीकृत, अधिनियमित और आत्म-अर्पित करते हैं।

संविधान के अनुच्छेद २३ के अन्तर्गत मानव के पणन (Traffic), बेगार तथा अन्य जबरदस्ती से कराये गये श्रम का निषेध कर दिया गया है। अनुच्छेद २४ के अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु के बालकों को कारखाना, खाना या किसी भी संकटमय कार्यों में रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता।

संविधान के भाग IV में राज्य के नीति-निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। यह देश के शासन के लिये मूल सिद्धान्त हैं और विधान बनाने में इनको लागू करना तथा जन-कल्याण को विकसित करना राज्य का कर्त्तव्य है। संविधान के अनुच्छेद ३९, ४१, ४२ और ४३ श्रम नीति से सम्बन्धित हैं और उन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है—

अनुच्छेद ३९ में उन अनेक नीति सिद्धान्तों का उल्लेख है जिनका राज्य को पालन करना चाहिये। राज्य अपनी नीति का विशेषतया ऐसा संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से (क) नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो, (ख) समुदाय के भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से वितरित हो जिससे सार्वजनिक हितों का सर्वोत्तम अनुसेवन हो, (ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण इस प्रकार न हो पाये कि जनसाधारण के हितों को हानि पहुँचे। (घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिये समान वेतन मिले। (ङ) पुरुषों और स्त्री श्रमिकों का स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा नागरिक आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ऐसे व्यवसायों को करने को बाध्य न हों जो उनकी आयु और सामर्थ्य को देखते हुए अनुपयुक्त हों। (च) बालक और किशोरों की शोषण तथा नैतिक पतन से रक्षा हो और उनको आर्थिक अभाव न रहे।

अनुच्छेद ४१ कार्य करने के अधिकार, शिक्षा पाने के अधिकार, तथा विशेष मामलों में राज्य सहायता पाने के अधिकार से सम्बन्धित है। इसमें उल्लेख है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर कार्य और शिक्षा पाने के तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, असमर्थता तथा अनावश्यक अभाव की अन्य अवस्थाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकारों की पूर्ति की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद ४२ में उल्लेख है कि राज्य कार्य की यथोचित और मानवीय दशाओं को सुनिश्चित करने के लिये तथा मातृत्व-कालीन लाभ के लिये व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद ४३ श्रमिकों के लिये निर्वाह मजदूरी इत्यादि से सम्बन्धित है। इसमें उल्लेख है कि राज्य उपयुक्त विधान, आर्थिक व्यवस्था के संगठन अथवा अन्य किसी प्रकार से सभी कृषि, औद्योगिक एवं अन्य प्रकार के श्रमिकों के लिये ऐसे कार्य, निर्वाह मजदूरी, तथा कार्य की दशाओं को प्राप्त करने की व्यवस्था करेगा, जिनसे उनका रहन सहन का स्तर ऊँचा और उचित हो सके तथा उनको विश्राम

और सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुविधाओं का पूर्ण लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो सके। ग्रामीण क्षेत्रों में राज्य निजी अथवा सहकारिता के आधार पर कुटीर उद्योग धन्धों को विकसित करने का प्रयत्न करेगा।

संविधान के भाग ११ अध्याय १ में केन्द्र और राज्यों (संघीय इकाइयों) के बीच विधायी सम्बन्धों की व्यवस्था की गई है। विधान बनाने के सम्बन्ध में विषयों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया है—

(१) केन्द्रीय सूची—इस सूची में दिये गये विषयों में से किसी पर भी विधान बनाने का एकमात्र अधिकार संसद को है।

(२) समवर्ती सूची—इस सूची में दिये गये विषयों में से किसी पर भी विधान बनाने का अधिकार संसद् अथवा राज्य विधान मण्डलों, दोनों को ही है।

(३) राज्य सूची—कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत इस सूची में दिये गये विषयों में से किसी पर भी या इसके किसी भाग के लिये विधान बनाने का एकमात्र अधिकार राज्य विधान मण्डलों को है।

संसद् को ऐसे किसी भी विषय पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार है जिसका उल्लेख समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में नहीं है।

संविधान के भाग २२, अनुसूची ७ में केन्द्रीय सूची, राज्य और समवर्ती सूची के विषयों का उल्लेख है। इन सूचियों में श्रम से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख निम्नलिखित है—

(१) केन्द्रीय सूची—

मद संख्या १३—अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, परिषदों एवं अन्य निकायों (Bodies) में भाग लेना और उनके द्वारा किये गये निर्णयों को लागू करना।

मद संख्या २८—बन्दरगाह संगरोध (क्वारंटाइन) और उनसे सम्बन्धित हस्पताल तथा नाविकों के जहाजी हस्पताल।

मद संख्या ५५—खानों तथा तेल क्षेत्रों में श्रम सम्बन्धी व सुरक्षा की व्यवस्था का विनियमन।

मद संख्या ६१—केन्द्रीय कर्मचारियों में सम्बन्धित औद्योगिक विवाद।

मद संख्या ६५—(क) रोजगार, व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण तथा (ख) विशेष अध्ययन एवं अनुसन्धान के विकास के लिये केन्द्रीय एजेन्सी एवं संस्थाओं की व्यवस्था।

मद संख्या ९४—इस सूची में दिये गये किसी भी विषय पर जाँच पड़ताल, सर्वेक्षण एवं आँकड़े एकत्रित करना।

(२) समवर्ती सूची—

मद संख्या २०—आर्थिक एवं सामाजिक आयोजन।

मद संख्या २१—वाणिज्य एवं औद्योगिक एकाधिकार, गुट (Combines एवं प्रन्यास (Trust)।

मद संख्या २२—व्यापार संघ, औद्योगिक एवं श्रम विवाद।

मद संख्या २३—सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा, रोजगार तथा बेरोजगारी।

मद संख्या २४—श्रम कल्याण, इसमें कार्य की दशायें, प्रॉविडेन्ट फण्ड, मालिकों की दयता, श्रमिक क्षतिपूर्ति, निवृत्ति एवं वृद्धावस्था की पेंशनें एवं मातृत्व-कालीन लाभ आदि सम्मिलित हैं।

मद संख्या २५—श्रमिकों का व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रशिक्षण।

मद संख्या ३६—कारखाने।

मद संख्या ४५—समवर्ती सूची तथा राज्य सूची में दिये गये किसी भी विषय के लिए जाँच पड़ताल एवं आँकड़े एकत्रित करना।

(३) राज्य सूची—

मद संख्या ६—बेरोजगार एवं असमर्थ व्यक्तियों की सहायता।

उपसंहार (Conclusion)

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रम प्रशासन में सरकार की अनेक कार्यवाहियाँ और संविधान में श्रम का विशेष रूप से उल्लेख श्रम समस्याओं की बढ़ती हुई महत्ता और राज्य द्वारा उसकी मान्यता के स्पष्ट प्रमाण हैं। यह आशा की जा सकती है कि श्रम समस्याओं के सम्बन्ध में एक उचित व्यवस्था करने तथा श्रम कानूनों को उचित रूप से प्रशासित करने पर देश में श्रमिक वर्ग की अवस्थाओं में बहुत सीमा तक सुधार हो सकेगा। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सम्मेलन, समितियाँ, प्रस्ताव और कानून कितने भी क्यों न हों, परन्तु उस समय तक यह सहायक नहीं हो सकते जब तक इन प्रस्तावों, सिफारिशों और कानूनों को सच्चे हृदय, ईमानदारी और उचित प्रकार से लागू नहीं किया जाता। दुर्भाग्य-वश हमारे देश में कागजी कार्यवाही एवं लालफीताशाही अधिक है। अधिकारी-वर्ग अधिकतर कागजों पर आँकड़ों द्वारा परिणाम दिखाने में लिप्त रहते हैं। परिस्थिति का इस व्यावहारिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया जाता कि वास्तव में श्रमिकों का हित हो भी रहा है या नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि सुधार करने के लिए सरकार के अनेक प्रयत्नों का कोई लाभदायक फल नहीं निकलता और वास्तविक स्थिति वैसी ही बनी रहती है। सरकार को यह नहीं करना चाहिये कि, जिस प्रकार से ब्रिटिश शासन में होता था उसी प्रकार से, समितियों की नियुक्ति करने और सम्मेलनों को बुलाने की व्यवस्था ही करती रहे, वरन् उसका यह कर्त्तव्य है कि जन-साधारण के उद्धार के लिए व्यावहारिक पग उठाने की ओर अधिक ध्यान दे।

२५ पंचवर्षीय आयोजनायें और श्रम

THE FIVE YEAR PLANS AND LABOUR

अबन्ध नीति का सिद्धान्त (The Doctrine of Laissez Faire)

अबन्ध नीति का प्रभाव बहुत समय तक प्रत्येक देश में व्यक्तियों पर छाया रहा और राष्ट्रों की आर्थिक नीतियाँ भी इस नीति से प्रभावित रहीं। यह विश्वास किया जाता था कि यदि स्वहित सम्पादन को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये तो इससे अधिकतम निजी हित प्राप्त हो सकेगा। अबन्ध नीति में विश्वास करने वालों की धारणा थी कि आर्थिक साधनों से सर्वाधिक परिणामों को प्राप्त करने के लिये राज्य को आर्थिक क्षेत्र से बाहर ही रहना चाहिए। निजी उद्यम ही सब आवश्यक बातों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है क्योंकि इससे उपभोक्ताओं को तो कम मूल्यों के कारण तथा उत्पादकों को अधिक लाभ प्राप्ति के कारण फायदा होगा। लाभ कमाने की इच्छा का परिणाम यह होगा कि अधिकतम उत्पादन हो सकेगा। प्रतियोगिता के कारण लाभ अधिक न हो पायेंगे और जितना कि उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये आवश्यक होंगे वहीं तक सीमित रहेंगे। परिणामस्वरूप, प्रत्येक उत्पादक यथासम्भव कुशल होने का प्रयत्न करेगा और उपभोक्ताओं की इच्छाओं का यथा-सम्भव ध्यान रखेगा।[1]

जब स्वहित स्वतन्त्र रूप से छाया रहता है तो उसके अन्तर्गत आर्थिक प्रणाली निजी लाभ की प्रेरणा से चालित होती है। उत्पादक वही वस्तुयें और उतनी ही मात्रा में उत्पन्न करते हैं जितनी कि उपभोक्ताओं द्वारा माँग की जाती है। उपभोक्ता अपनी तरजीह (Preferences) को मूल्यों के रूप में प्रकट करता है। विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों से ही इस बात का निर्धारण होता है कि कौन-कौन सी वस्तुयें तथा कितनी मात्रा में उत्पन्न की जायें। उत्पादन के साधनों का विभिन्न उपयोगों में किस प्रकार विनिधान (Allocation) किया जाये इसका निर्धारण भी मूल्यों के द्वारा होता है इस प्रकार मूल्य वह अदृश्य शक्ति है जिसके द्वारा सम्पूर्ण आर्थिक गतिविधियों का नियन्त्रण और पथ-प्रदर्शन होता है।

---

1 G D H. Cole : *Practical Economics*, Pages 7—8

आयोजना के विचार का विकास[1]
(Growth of the Idea of Planning)

अहस्तक्षेप नीति सदैव ही अपने दृष्टिकोण में पूँजीवादी रही है। यह नीति निजी सम्पत्ति के आधार पर बनाई गयी थी जिनके पास उत्पादन के विभिन्न साधन तथा श्रम को रोजगार पर लगाने की क्षमता होती है। इस नीति में पूँजी को निजी सम्पत्ति भी मान लिया गया था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इस अहस्तक्षेप नीति पर से लोगों का विश्वास उठ गया है। यह देखा गया है कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता में उत्पादन प्रणाली बहुधा अस्त-व्यस्त हो जाती है और इसके कारण जनसाधारण को घोर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पूँजीवादी समाज की प्रगति बिना बाधाओं के नहीं हो पाती। पूँजीवादी प्रणाली में आर्थिक मन्दी और तेजी जैसी कई अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है। निर्धन का धनी द्वारा शोषण किया जाता है और सामाजिक कल्याण की क्षति होती है। अतः यह आवश्यक समझा गया कि आर्थिक प्रणाली को इस प्रकार संगठित किया जाना चाहिए कि शोषण तथा तेजी व मन्दी जैसी आर्थिक अस्थिरता से छुटकारा पाया जा सके। रूस ने यह सिद्ध कर दिया कि आर्थिक आयोजना के द्वारा यह सम्भव हो सकता है। १९२९ में जब समस्त संसार मन्दी और बेरोजगारी से पीड़ित था तब रूस में श्रमिकों की कमी की समस्या थी।

जब आर्थिक मन्दी के समय में जब संसार ने यह असाधारण और बुरी स्थिति देखी कि वस्तुओं की बहुलता होने पर भी लोग भूख से मर रहे थे तब से समस्त संसार के लोगों में आयोजना का विचार दृढ़ होता चला गया है। अब आर्थिक प्रणाली को माँग और पूर्ति की दशाओं के अन्दर स्वतन्त्र छोड़ देना सुरक्षित नहीं समझा जाता। अब ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो इस बात में विश्वास करते हैं कि यदि आर्थिक शक्तियों को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो उनके द्वारा देश के आर्थिक साधनों का स्वतः सर्वोत्तम वितरण हो जायगा। सर विलियम बेवरिज ने कहा है 'यह आशा करना कि व्यक्तिवादी रूप में छोटे-छोटे और पृथक् उद्योग करने से एक उद्योग बन जायगा जिसमें हर प्रकार से अधिकतम कुशलतापूर्वक कार्य होगा, वैसा ही होगा जैसे—यह आशा की जाय कि असंख्य छोटे-छोटे सम्पत्ति के मालिक और निर्माणकर्त्ता अपनी अनियन्त्रित व असम्बन्धित कार्यवाहियों से कोई ऐसा नियोजित नगर बना देंगे जिसमें अनावश्यक स्थान, टेढ़ी गलियाँ तथा यातायात की अवरुद्ध गलियाँ जैसी बातें न हों।" उत्पादकता और आय को बढ़ाने के लिए तथा देश के बहुमुखी विकास में तीव्रता लाने के लिए अब नियोजित अर्थ व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया है।

---

1 आयोजना की समस्याओं का विस्तृत विवरण हेतु तथा प्रो० पी० सी० माथुर द्वारा लिखित पुस्तक 'सार्वजनिक अर्थशास्त्र' में देखिए।

आयोजना का अर्थ और उसकी परिभाषा
(Definition and Meaning of Planning)

आयोजना केन्द्रीय नियन्त्रण को मान कर चलती है और इसमें यह अन्तर्निहित है कि राष्ट्र के साधनों का जो भी उपयोग होता है वह सोच समझकर और विचारपूर्वक तथा एक निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इसमें जितनी भी आर्थिक क्रियायें हैं उन सबको निश्चित रूप से समायोजित और समन्वित कर लिया जाता है ताकि व्यय की प्रतियोगिता और कार्य का दुहरापन समाप्त हो जाये। जार्ज फ्रेड्रिक ने अपनी एक पुस्तक 'Readings in Economic Planning' में 'लुई लारविन' की परिभाषा उद्धृत की है जिसने एक आयोजित अर्थव्यवस्था की व्याख्या इस प्रकार की है "आयोजित अर्थव्यवस्था आर्थिक संगठन की एक ऐसी योजना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति तथा पृथक् पृथक् मशीन, उद्यम और उद्योग सबको एक ही प्रणाली की समायोजित इकाइयाँ माना जाता है और इसका उद्देश्य यह होता है कि जितने भी उपलब्ध साधन हैं उनका इस प्रकार से उपयोग किया जाए कि एक निश्चित समय में मनुष्य की आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि हो सके।" डिकिन्सन के शब्दों में "आर्थिक आयोजना का अर्थ यह है कि समस्त आर्थिक प्रणाली के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारित करने वाली सत्ता द्वारा सोच-समझ कर इरादतन मुख्य आर्थिक निर्णय लिये जाते हैं, जैसे—क्या और कितना उत्पादन होना चाहिये और किन किन में उसका विनिधान होना चाहिये।" डब्लू० एन० लूक ने आयोजना की निम्नलिखित शब्दों में व्याख्या की है "आयोजना से तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय भावना से प्रेरित व्यापक सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये समस्त आर्थिक क्रियाओं को राष्ट्रीय आधार पर निश्चित किये और ढाले हुए क्षेत्रों में तथा एक समायोजित इकाई में इस प्रकार यथास्थान स्थित कर दिया जाता है, जैसे—किसी पच्चीकारी का भाग हो।"[1]

इस प्रकार आर्थिक आयोजना से आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित करने वाली सत्ता मूल्य के स्थान पर राज्य हो जाता है। आर्थिक प्रणाली का मूल्य पर नियन्त्रण समाप्त हो जाता है। विभिन्न उद्योगों में साधनों का विनिधान राज्य द्वारा किया जाता है, और जिस मात्रा में राज्य चाहता है उसी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन होता है। इस प्रकार आयोजना द्वारा अबन्ध नीति की अर्थव्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसके स्थान पर देश की आर्थिक प्रणाली पर प्रभावात्मक नियन्त्रण लागू कर दिया जाता है। उत्पादन, विनिमय, वितरण आदि सब एक

---

1 '*The Shaping of all economic activities into group—defined spheres of action which are nationally mapped out and fitted, as parts of a mosaic into a coordinated whole, for the purpose of achieving certain nationally conceived and socially comprehensive goals.*'

पूर्व निश्चित आयोजना के अनुसार होता है। उपभोक्ता के स्थान पर आर्थिक विषयों में राजनीतिक विषयों के साथ साथ राज्य का प्रभुत्व आ जाता है। स्वहित के स्थान पर समाज हित के उद्देश्य से आर्थिक प्रक्रियायें प्रभावित होती हैं। आर्थिक आयोजना का उद्देश्य विभिन्न देशों में विभिन्न हो सकता है परन्तु सामान्य लक्ष्य यही है कि आर्थिक जीवन में स्थिरता लाई जाय, न्यायोचित वितरण हो और देश के साधनों का अधिकतम उपयोग हो, जिससे अधिक उत्पादन हो, पूर्ण रोजगार हो तथा जीवन स्तर ऊँचा हो जाय। इस प्रकार आर्थिक आयोजना को एक व्यापक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग समझा जाना चाहिये जिसका लक्ष्य केवल नवीन तकनीकी ज्ञान से ही साधनों का विकास करना नहीं होता बल्कि जो मानवीय गुणों के विकास पर तथा एक नए समाज के निर्माण पर भी ध्यान देती है ताकि जनता की आवश्यकताओं तथा महत्वाकांक्षाओं की दृष्टि से भी पर्याप्त हो।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आयोजना से तात्पर्य यह नहीं है कि राज्य का उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व हो। आयोजना के लिये मुख्य बात तो यह है कि सम्पत्ति पर राज्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से नियंत्रण हो। अतः पूँजीवादी व्यवस्था में भी नियोजन सम्भव है। आयोजित अर्थव्यवस्था किसी भी प्रकार की अर्थव्यवस्था में चल सकती है। परन्तु क्योंकि आयोजना में राज्य का नियन्त्रण अधिक होता है इस कारण समाजवादी अर्थव्यवस्था में आयोजना अधिक सरल और स्थायी होती है। परन्तु हम भारत जैसे मिश्रित व्यवस्था में भी आयोजना लागू कर सकते हैं। आर्थिक आयोजन एक तो निर्देशन (Direction) द्वारा किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत निजी उद्यम कि कुछ भी नहीं होता तथा आयोजना करने वाली सत्ता कुछ उद्देश्य और लक्ष्य निश्चित कर देती है। फिर इन उद्देश्यों और लक्ष्यों की पूर्ति के लिये वह लोगों को कुछ विशेष रीतियों के अनुसार कार्य करने का आदेश देती है तथा कुछ अन्य विशेष रीतियों के अनुसार कार्य करने से रोकती भी है। आयोजन की दूसरी रीति प्रोत्साहन (Inducement) द्वारा है। इसके अन्तर्गत निजी उद्यम सरकारी उद्यम के साथ साथ चलता है तथा आयोजना करने वाली सत्ता राजकोषीय (Fiscal) व वित्तीय (Financial) नीतियों द्वारा तथा कीमत पद्धति के द्वारा लोगों को इस बात के लिये प्रोत्साहित करती है कि वे कुछ वांछित रीतियों व तरीकों के अनुसार ही कार्य करें। अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा न्यू डील आयोजना को लागू करना रूस की पंचवर्षीय आयोजनायें हिटलर के अधीन जर्मनी में आर्थिक अर्थव्यवस्था, आदि सभी से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आयोजित अर्थव्यवस्था से अनियोजित आर्थिक प्रणाली की अपेक्षा थोड़े समय में अधिक समृद्धि प्राप्त की जा सकती है और देश में उन्नति हो सकती है। अतः आज यह समस्या नहीं है कि आयोजना हो या न हो। वरन् जो कुछ भी मतभेद है वह विभिन्न प्रकार की आयोजनाओं पर और राज्य द्वारा किस सीमा तक आयोजना की जाय इस विषय पर है।

आयोजना के कुछ आवश्यक तत्व
(Essentials or Pre requisites of Planning)

प्रत्येक देश म आयोजना के लिये कुछ आवश्यक बात होनी है तथा आयोजित अथव्यवस्था की सफलता के लिये कुछ सिद्धा तो का होना बहुत आवश्यक है। प्रथम तो एक ऐसी राष्ट्रीय सरकार होनी चाहिये जिसे जनता का पूण विश्वास व सहयोग प्राप्त हो। इसके अभाव मे आर्थिक आयोजना को स देह की दृष्टि से देखा जायेगा और उसका सफल होना सम्भव नही होगा। दूसरे आयोजकों और विचारको का एक विशषज्ञ दल होना चाहिये जो नि स्वाथ कायकर्त्ता कुशल सगठनकर्त्ता और पूणरूप से देश भक्त हो। ऐसे व्यक्तियो के हृदय म देश हित के अतिरिक्त और कोई विचार नही होना चाहिये। तीसरे आयोजना को कार्यान्वित करने के लिये प्रशिक्षित और विशषज्ञ व्यक्ति होने चाहियें। चौथे विभि न आर्थिक गतिविधियो को समायोजित और आयोजित करने के लिये एक अविभाज्य (Definite) सत्ता होनी चाहिये चाहे वह राजकीय हो या अ य कोई सस्था हो। पाँचवें, आयोजना सोच विचार विवेकपूण व निश्चित उद्देश्यो को सामने रखकर की जानी चाहिये। छठ आयोजना के लिये एक आवश्यक बात यह है कि पर्याप्त मात्रा मे सामग्री, सूचनाओ तथा आंकडों को एकत्रित कर लेना चाहिए। किसी भी आयोजना को बनाने से पूव आयोजकों को देश की तथा उसकी आवश्यकताओं उसकी क्षमता और उसकी कठिनाइयो का पूण ज्ञान होना चाहिये। सातवें आयोजना काफी व्यापक होनी चाहिये, जिससे उसके अ तगत देश के सम्पूण आर्थिक जीवन को लिया जा सके। आयोजना विभि न उद्योगो और सरकारी विभागो की अलग अलग विकास योजनाओ की मिली जुली योजना पेबन्दार कपड की तरह नही होनी चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञान होना चाहिए कि उसको आयोजना के अ तगत क्या करना है और क्या नही करना है। आयोजना की सफलता के लिये सुदृढ वित्तीय और मुद्रा प्रणाली का होना भी आवश्यक है। अन्त मे यह भी आवश्यक है कि जन साधारण आयोजना को ठीक प्रकार से समझ सक और आयोजना की अ तत सफलता के लिए वतमान म कुछ कष्ट सहने को भी तैयार हो। 'बिना कष्टो के आयोजना (Planning Without Tears) बहुत कठिन है।

भारत मे आयोजना के विचार का विकास
विभि न आयोजनाओ की सक्षिप्त रूपरेखा
(Growth of the Idea of Planning in India)
(A Brief Outline of Various Plans)

भारत म आयोजना विचार का विकास उस समय हुआ जब देश म घोर आर्थिक मन्दी क दुष्परिणाम प्रकट होने लगे थे। भारत के लिये आयोजित अथव्यवस्था के ऊपर अनेक लेख व छोटी छोटी पुस्तिकाय आदि प्रकाशित हुइ।

१६३४ में सर एम० विश्वेश्वरैया ने भारत के लिए आयोजित अर्थव्यवस्था (Planned Economy for India) नामक एक पुस्तक प्रकाशित की। १६३७ में कुछ प्रान्तीय आयोजनायें भी बनाई गईं, उदाहरणतः बिहार के विकास के लिए माननीय सईद महमूद द्वारा तथा पंजाब के प्रो० के० टी० शाह द्वारा। १६३७ में भारतीय राष्ट्रीय आयोजना समिति की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा महामन्त्री प्रोफेसर के० टी० शाह थे। परन्तु यह समिति अध्यक्ष और कुछ सदस्यों की गिरफ्तारी के कारण अपने कार्य को पूरा न कर सकी। इस समिति ने देश के सामने विभिन्न समस्याओं की जाँच करने के लिए जो अनेक उप-समितियाँ बनाई थीं उनकी रिपोर्ट युद्ध के पश्चात् ही प्रकाशित की जा सकी। अन्तिम रिपोर्ट काफी समय पश्चात् १६४८ में प्रकाशित की गई। श्रम उप-समिति की रिपोर्ट दिसम्बर १६४७ में प्रकाशित हुई। राष्ट्रीय आयोजना समिति ने समाजवाद और निजी व्यवसाय के बीच समझौता करने का प्रयत्न किया था। इसके सुझावों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान अवसर तथा पिछड़े हुए वर्गों के लिए विशेष अवसर प्रदान किये जाने चाहियें। निजी सम्पत्ति का उन्मूलन नहीं होना चाहिए परन्तु मूल उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में ही होने चाहियें। यह भी सुझाव दिया गया था कि भूमि का प्रबन्ध सहकारी आधार पर हो तथा जमींदारी प्रणाली का उन्मूलन कर दिया जाय। छोटे पैमाने के उद्योगों का संगठन सहकारी आधार पर किया जाना चाहिए तथा उनको ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोत्साहन देने की भी सिफारिश थी।

आयोजना में दस व्यापारिक रुचि वास्तव में बम्बई आयोजना के प्रकाशन से उत्पन्न हुई। यह आयोजना १६४४ में बम्बई के आठ उद्योगपतियों द्वारा बनाई गई थी। आयोजना में १५ वर्षों के दौरान १०,००० करोड़ रुपये व्यय करके राष्ट्रीय आय को दुगुना करने का सुझाव था। इसने देश के लिए सन्तुलित अर्थ व्यवस्था की दलील दी तथा उद्योग, कृषि, संचार, शिक्षा और आवास के लिए लक्ष्य निर्धारित किये। आयोजना के दूसरे भाग में वितरण की समस्या का उल्लेख किया गया था तथा इसका उद्देश्य राज्य द्वारा समाजवाद और पूँजीवाद के बीच समझौता स्थापित करना था। इस आयोजना की आलोचना इस आधार पर की गई कि यह पूँजीवादी थी। इसकी महत्ता भी अब समाप्त हो गई है क्योंकि मूल्यों में वृद्धि तथा देश में बदली हुई राजनैतिक व आर्थिक परिस्थितियों के कारण इसके अनुमान सब गलत हो गए हैं।

इसके अतिरिक्त श्री० एम० एन० राय द्वारा बनाई गई 'जन आयोजना' (People's Plan) भी थी। इसकी लागत १० वर्षों के दौरान १५,००० करोड़ रुपया अनुमानित की गई थी जो कृषि, उद्योग, संचार व स्वास्थ्य पर व्यय की जानी थी। इस आयोजना में कृषि के विकास पर बल दिया गया था। भूमि के

राष्ट्रीयकरण की दलील दी गई थी तथा कृषि के क्षेत्र को ५०% तक बढ़ाये जाने का सुझाव दिया गया था। परन्तु यह अनुमान असम्भव प्रतीत होते थे। अतः इस आयोजन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

वर्धा के प्रा० एस० एन० अग्रवाल (श्री श्रीमन नारायण) ने भी 'गांधीवादी आयोजना' (Gandhian Plan) बनाई। इस आयोजना के उद्देश्य बहुत ऊंचे नहीं थे। इसमें घोषणा की गई थी कि भारतवर्ष एक निर्धन देश था अतः आयोजनाओं पर बड़ी धनराशि व्यय नहीं कर सकता था। इसकी अनुमानित लागत ३,५०० करोड़ रुपये थी और उसको कृषि, उद्योग, यातायात, जन स्वास्थ्य, शिक्षा आदि-आदि अनेक मदों में बांटा गया था। आयोजना का मुख्य उद्देश्य कुटीर उद्योगों की पुनर्स्थापना, कृषि में सुधार और आत्म-निर्भरता का आदर्श था। यह आलोचना पश्चिमी प्रणाली अपनाने के विरुद्ध थी। आयोजना की यह आलोचना की गई कि यह आधुनिक संसार में घोर आदर्शवादी व अव्यावहारिक थी।

युद्धोत्तर पुनर्निर्माण के लिये भारत सरकार ने भी कुछ आयोजनायें बनाई। जून १९४१ में अनेक पुनर्निर्माण समितियों की स्थापना की गई। जुलाई १९४४ में आयोजना और विकास विभाग की स्थापना की गई। सरकार की आयोजना दो भागों में विभाजित थी तत्कालीन और दीर्घकालीन। तत्कालीन आयोजना में युद्ध से शांतिकालीन अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन की समस्या को सुलझाना था— उदाहरणतः, युद्ध सामग्री व अतिरिक्त स्टॉक को काम में लाना, युद्ध सैनिकों का पुनर्वास, युद्धकालीन नियन्त्रणों का कम करना और धीरे-धीरे दूर करना आदि। यह १,००० करोड़ रुपये की लागत की पंचवर्षीय आयोजना थी। दीर्घकालीन आयोजना में विद्युत-शक्ति के विकास, सिंचाई, ग्रामीण एवं बड़े उद्योग धन्धे, यातायात सेवा तथा कृषि में सुधार के द्वारा देश के आर्थिक जीवन का सर्वांगीण विकास करने का उद्देश्य था। धन के समान वितरण पर जोर दिया गया था।

१९५० का आयोजना आयोग (Planning Commission of 1950)

ये सब आयोजनायें इस आधार पर आधारित थी कि भारतवर्ष अविभाजित रहेगा। शरणार्थी पुनर्वास, कश्मीर युद्ध, युद्धोत्तर मुद्रा-प्रसार, खाद्य की कमी और व्यापार अवरोध जैसी घोर समस्याओं के बारे में किसी ने सोचा भी न था। युद्धोत्तर घटनाओं से यह सब आयोजनायें बेकार हो गयीं। अतः यह आवश्यक हो गया कि भारत में उपलब्ध मानवीय व भौतिक साधनों का ध्यान में रखकर एक नई आयोजना बनाई जाये। अतः मार्च १९५० में श्री नेहरू की अध्यक्षता में एक आयोजना आयोग की स्थापना की गई। इसका कार्य यह था कि भौतिक, पूंजीगत व मानवीय साधनों का ठीक-ठीक अनुमान लगाये तथा "देश में स्रोतों के सन्तुलित व बहुत प्रभावात्मक उपयोग के लिये एक आयोजना बनाये जिससे देश के हर नागरिक को, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो सकें।" राज्यों में आयोजना तथा विकास प्रभागों की स्थापना की गई। आयोग ने तत्काल ही अपना

कालान्तर मे जीवन स्तरो मे सुधार हो। १६५१ मे देश को ४७ लाख टन खाद्यान्न आयात करना पडा और अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति का प्रभाव था। इसीलिये आयोजना मे सर्वोच्च प्राथमिकता सिंचाई और बिजली परियोजना सहित कृषि को दी गई और इसके विकास के लिये सरकारी क्षेत्र के २,०६६ करोड रु० के कुल परिव्यय (जो बाद मे बढकर २,३५६ करोड रु० कर दिया गया) का ४४ ६ प्रतिशत रखा गया। इस आयोजना का उद्देश्य निवेश को राष्ट्रीय आय के ५ प्रतिशत से बढाकर लगभग ७ प्रतिशत करना था। प्रथम आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा जुलाई १६५१ म प्रकाशित हुई थी और ८ दिसम्बर १६५२ को संसद के समक्ष *प्रथम आयोजना का अन्तिम रूप प्रस्तुत किया गया था।* आयोजना का मुख्य उद्देश्य विकास की ऐसी प्रक्रिया को चालू करना था जिससे जीवन-स्तर ऊँचा उठे तथा व्यक्तियो को अधिक सम्पन्न और विविध प्रकार का जीवन व्यतीत करने के नये-नये अवसर प्राप्त हो सकें। इस आयोजना पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाना था कि "इससे इस बात की नीव पड सके कि देश का भावी विकास तीव्र गति से हो।"

दिसम्बर १६५४ मे लोकसभा ने घोषित किया कि आर्थिक नीति का व्यापक उद्देश्य "समाज के समाजवादी ढांचे' की प्राप्ति होनी चाहिए। समाज के समाजवादी ढांचे के *अन्तर्गत प्रगति की रूपरेखा निर्धारित करने की आधारभूत कसौटी निजी* मुनाफा नही, बल्कि सामाजिक लाभ और आय तथा सम्पत्ति की अधिकतर समानता होनी चाहिये। इस बात पर बल दिया गया कि समाजवादी अर्थव्यवस्था, विज्ञान और टेक्नॉलोजी के प्रति कुशल तथा प्रगतिशील दृष्टि अपनाये और उस स्तर तक क्रमिक प्रगति के लिये समक्ष हो कि आम जनता खुशहाल हो सके। इसलिये दूसरी आयोजना (१६५६-५७ से १६६०-६१) मे भारत मे समाजवादी समाज की स्थापना की दिशा मे विकास ढांचे का प्रोत्साहन करने के प्रयत्न किये गये। इस आयोजना मे विशेष बल इस बात पर दिया गया कि आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ *समाज के अपेक्षाकृत कम साधन-प्राप्त वर्गों को मिले और आय, सम्पत्ति और आर्थिक* शक्ति के चद हाथो मे सिमटने की प्रवृत्ति मे लगातार कमी हो। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा फरवरी १६५६ मे प्रकाशित की गई थी। इससे पूर्व मार्च, १६५५ मे प्रो० पी० सी० महलानवीस द्वारा आयोजना के मसौदे की रूपरेखा प्रकाशित की गई थी तथा आयोजना आयोग तथा वित्त मन्त्रालय के अर्थविभाग द्वारा भी कुछ मसौदे प्रस्तुत किये गये थे। *आयोजना की अन्तिम रूपरेखा १५ मई,* १६५६ को ससद के समक्ष प्रस्तुत की गई।

द्वितीय आयोजना के उद्देश्य ये थे—(१) राष्ट्रीय आय मे २५ प्रतिशत वृद्धि, (२) आधारभूत और भारी उद्योगो के विकास पर विशेष बल देते हुये द्रुत औद्योगीकरण, (३) रोजगार के अवसरो मे वृद्धि, और (४) आय और सम्पत्ति की *विषमताओं मे कमी तथा आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण।* इस

आयोजना का उद्देश्य निवेश-दर को राष्ट्रीय आय के लगभग ७ प्रतिशत से बढ़ाकर १९६०–६१ तक ११ प्रतिशत करना था। आयोजना में औद्योगीकरण पर विशेष बल दिया गया। लोहे तथा इस्पात और नाइट्रोजन उवरकों सहित रसायनों के उत्पादन में वृद्धि और भारी इंजीनियरी तथा मशीन निर्माण उद्योग के विकास पर जोर दिया गया। आयोजना में सरकारी क्षेत्र का कुल परिव्यय ४८०० करोड रु० था। इसमें से ३,६५० करोड रु० निवेश लिये था और निजी क्षेत्र का परिव्यय ३,१०० करोड रु० था।

दूसरी आयोजना के बाद तीसरी पंचवर्षीय आयोजना (१९६१–६२ से १९६५–६६) शुरू हुई जिसका मुख्य उद्देश्य स्वयं स्फूर्त विकास की दिशा में निश्चित रूप से बढ़ाना था। तृतीय आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा ६ जुलाई, १९६० को प्रकाशित की गई थी और उसकी अन्तिम रूपरेखा ७ अगस्त, १९६१ को संसद के समक्ष प्रस्तुत की गई थी। इसके तात्कालिक उद्देश्य ये थे—(१) राष्ट्रीय आय में ५ प्रतिशत वार्षिक से अधिक की वृद्धि करना और साथ ही ऐसा निवेश ढाँचा तैयार करना कि यह वृद्धि दर आगामी योजना अवधियों में बनी रहे, (२) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और कृषि उत्पादन बढ़ाना जिससे उद्योग तथा निर्यात की जरूरतें पूरी हो सकें, (३) इस्पात, रसायनों, ईंधन और बिजली जैसे आधारभूत उद्योगों का विस्तार करना और मशीन निर्माण-क्षमता स्थापित करना ताकि आगामी लगभग १० वर्षों में औद्योगीकरण की भावी माँगों को मुख्यतः देश के अपने साधनों से पूरा किया जा सके, (४) देश के जन शक्ति के साधनों का अधिकतम उपयोग करना और रोजगार के अवसरों का पर्याप्त विस्तार करना, और (५) उत्तरोत्तर अवसरों की समानता में वृद्धि करना और आय तथा सम्पत्ति की विषमताओं को कम करना और आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण करना। राष्ट्रीय आय में लगभग ३० प्रतिशत वृद्धि करके १९६०-६१ में १४,५०० करोड रु० से बढ़ाकर (१९६०-६१ के मूल्यों पर) १९६५-६६ में १९००० करोड रु० करना और प्रति व्यक्ति आय में लगभग १७ प्रतिशत वृद्धि करके ३३० रु० के बजाय इस अवधि के दौरान लगभग ३८५ रु० करना।

परिव्यय और निवेश

पहली आयोजना में, सरकारी क्षेत्र में २,३५६ करोड रु० के संशोधित परिव्यय (outlay) के मुकाबले व्यय १,९६० करोड रु० हुआ। दूसरी आयोजना में, सरकारी क्षेत्र में ४,८०० करोड रु० की व्यवस्था के मुकाबले वास्तविक खर्च ४,६७२ करोड रु० रहा जबकि निजी क्षेत्र में ३,१०० करोड रु० का विनियोग हुआ। तीसरी आयोजना में सरकारी क्षेत्र के लिये ७,५०० करोड रु० के परिव्यय का प्रावधान था। इसके मुकाबले सरकारी क्षेत्र में वास्तविक खर्च ८,५७७ करोड रु० रहा। निजी क्षेत्र में ४,००० करोड रु० से अधिक का विनियोजन हुआ।

सारणी १, २ और ३ में तीनों आयोजनाओं के परिव्यय, निवेश और वित्तीय कार्यक्रम दिये गये हैं।

तीनों आयोजनाओं में उपलब्धियाँ (Achievements during the Three Plans)

पन्द्रह सालों के आयोजन से समय-समय पर बाधाओं के बावजूद अर्थव्यवस्था में सर्वांगीण प्रगति हुई है। आधारभूत सुविधायें, जैसे—सिंचाई, बिजली और परिवहन में काफी विस्तार हुआ और छोटे-बड़े उद्योगों के लिये बहुमूल्य खनिज भण्डार स्थापित किये गये।

पहली आयोजना में, मुख्यतः कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी से, राष्ट्रीय आय में वृद्धि निर्धारित लक्ष्य १२ प्रतिशत से अधिक यानी १८ प्रतिशत हुई। दूसरी आयोजना में राष्ट्रीय आय में २५ प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य के मुकाबले २० प्रतिशत वृद्धि हुई और तीसरी आयोजना में राष्ट्रीय आय (संशोधित) १९६०–६१ के मूल्यों पर पहले चार सालों में २० प्रतिशत बढ़ी और अन्तिम वर्ष में इसमें ५.७ प्रतिशत की कमी आई। जनसंख्या में २.५ प्रतिशत की वृद्धि के कारण १९६५-६६ में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय वही रही जो १९६०-६१ में थी।

पहली दो आयोजनाओं में कृषि उत्पादन लगभग ४१ प्रतिशत बढ़ा। तीसरी आयोजना में कृषि उत्पादन सन्तोषजनक नहीं था। १९६५-६६ और १९६६-६७ में व्यापक सूखा पड़ा और कृषि उत्पादन तेजी से गिरा। इसमें अर्थ-व्यवस्था की वृद्धि-दर में ही कमी नहीं आई, बल्कि खाद्यान्नों के आयात पर भी हमारी निर्भरता बढ़ी। तीसरी आयोजना में देश ने २५० लाख टन खाद्यान्नों का आयात किया। हमें कपास की ३६ लाख और पटसन की १५ लाख गाँठें भी आयात करनी पड़ी।

पहली दो आयोजनाओं में संगठित निर्माता उद्योगों में शुद्ध उत्पादन लगभग दुगुना हुआ। इसमें सरकारी क्षेत्र के उद्योगों का योग, जो पहली आयोजना के शुरू में १·५ प्रतिशत था, दूसरी आयोजना के अन्त तक बढ़ कर ८·४ प्रतिशत हो गया। यह वृद्धि अधिकतर इस्पात, कोयला, खान, भारी रसायन जैसे आधारभूत उद्योगों में हुई। तीसरी आयोजना के पहले चार वर्षों में संगठित उद्योग का उत्पादन ८.१० प्रतिशत वार्षिक बढ़ा। लेकिन आयोजना के अन्तिम वर्ष में भारत-पाकिस्तान युद्ध से हुई गड़बड़ी और विदेशी सहायता में आई बाधाओं के कारण वृद्धि-दर घट कर ५.३ प्रतिशत रह गई। कुल मिलाकर तीसरी आयोजना में संगठित उद्योगों की वृद्धि-दर ११ प्रतिशत के लक्ष्य के मुकाबले ८.२ प्रतिशत रही। लेकिन इसी काल में एक उल्लेखनीय बात उत्पादन-क्षमता में वृद्धि तथा विविधता रही। यह बात प्रमुख रूप से इस्पात और ऐल्युमिनियम, मशीनी औजार, औद्योगिक मशीनें, बिजली और परिवहन-उपकरण, उर्वरकों, औषध, औषधियों और पैट्रोलियम के उत्पादन में हुई। इन सब ने औद्योगिक ढाँचे को सुदृढ़ बनाने में योग दिया।

आयोजना के इन वर्षों में स्वास्थ्य और शैक्षणिक सुविधाओं का उल्लेखनीय विस्तार हुआ। १९५०-५१ में जन्म पर अपेक्षित आयु ३२ वर्ष थी जो १९७१ में ५० वर्ष हो गई। स्कूलों में प्रवेश की संख्या १९५०-५१ में २३५ लाख थी जो १९६५-६६ तक बढ़कर ६६३ लाख हो गई। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों की दशा सुधारने के लिये विशेष कार्यक्रम बनाये गए जिनसे उन्हें अनेक लाभ मिले और उनकी दशा बेहतर हुई।

सारणी १

तीन आयोजनाओं में सरकारी और निजी क्षेत्र मे विनियोग (Investment)

(करोड रु० मे)

आयोजना	सरकारी क्षेत्र का परिव्यय				निजी क्षेत्र का निवेश	आयोजना का कुल व्यय
	आयोजना प्रावाधन	वास्तविक व्यय	चालू व्यय	निवेश		
पहली पचवर्षीय आयोजना	२,३५६	२,९६०	४००	१,५६०	१,८००	३,७६०
दूसरी पचवर्षीय आयोजना	४,८००	४,६७२	९४१	३,७३१	३,१००	७,७७२
तीसरी पचवर्षीय आयोजना	७,५००	८,५७७	१,४४८	७,१२९	४,१९०	१२,७६७

सारणी २

पहली तीन आयोजनाओं मे सरकारी क्षेत्र का परिव्यय (Outlay)

(करोड रु० मे)

विकास की मद	पहली आयोजना १९५१–५६	दूसरी आयोजना १९५६–६१			तीसरी आयोजना १९६१–६६		
	योग	केन्द्र[1]	राज्य	योग	केन्द्र	राज्य	योग
१ कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	२९० (१४.८)	५३ (९.७)	४९६ (९०.३)	५४९ (११.७)	११७ (१०.७)	९७२ (८९.३)	१,०८९ (१२.७)
२ सिचाई और बाढ नियन्त्रण	४३४ (२३.२)	५५ (१२.८)	३७५ (८७.२)	४३० (९.२)	१० (१.५)	६५५ (९८.५)	६६५ (७.८)
३. बिजली	१४९	२८	४२४	४५२	११३	१,१३९	१,२५२

	(७ ६)	(६ २)	(६३ ८)	(६·७)	(६ ०)	(६१·०)	(१४ ६)
४. गांव और लघु उद्योग	४२ (२·१)	१०६ (५६ ७)	८१ (४३·३)	१८७ (४·०)	१,३६४ (८६ ७)	२०३ (१० ३)	२४१ (२ ८)
५. उद्योग और खनिज	५५ (२·८)	८६८ (६५ ७)	४० (४ ३)	९३८ (२० १)			१,७२६ (२० १)*
६. यातायात और सचार	५१८ (२६ ४)	१,०९२ (८६ ६)	१६६ (१३ ४)	१,२६१ (२७ ०)	१,८१८ (८६ १)	२६४ (१३ ९)	२,११२ (२४ ६)
७. अन्य	४७२ (०४·१)	३५७ (२४ १)	४९८ (५८ २)	८५५ (१८ ३)	५६० (३९ ६)	६०२ (६०·४)	१,४६२ (१७ ४)
जिसमे से							
(अ) शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसधान	१४९ (७·६)	—	—	२७३ (५ ८)	—	—	६६० (७ ७)
(ब) स्वास्थ्य	९८ (५·०)	—	—	२१६ (४·६)	—	—	२२ ६ (२ ६)
(स) परिवार नियोजन	—	—	—	—	—	—	२५ (० ३)
योग	१,९६० (१००·०)	२,५८९ (५५·४)	२,०८३ (४४ ६)	४,६७२ (१०० ०)	४,४१२ (५१ ४)	४,१६५ (४८ ६)	८,५७७ (१०० ०)

1. शेष आकडे। जिस हद तक राज्यो के हिस्से से कुल का परिव्यय ४,६०० करोड रुपये (जो बाद मे सशोधित कर दिया गया और जिसके लिए केन्द्र और राज्य-वार ब्योरा उपलब्ध नही है) में से है उस हद तक केन्द्र का परिव्यय अधिक हो सकता है। 'केन्द्र' और 'राज्य' मदों (कॉलमो) के नीचे कोष्ठको मे दिये आकडे सम्बद्ध क्षेत्रो मे परिव्यय का प्रतिशत बताते हैं।

सारणी ३

सरकारी क्षेत्र मे आयोजना परिव्यय की वित्त-व्यवस्था

(करोड रु० मे)

मद	पहली पचवर्षीय आयोजना आरंभिक अनुमान	पहली पचवर्षीय आयोजना वास्तविक	दूसरी पचवर्षीय आयोजना आरंभिक अनुमान	दूसरी पचवर्षीय आयोजना वास्तविक	तीसरी पंचवर्षीय आयोजना आरंभिक अनुमान	तीसरी पंचवर्षीय आयोजना वास्तविक
१. मुख्यतया अपने साधनो से	७४० (३५ ७)	७५२ (३८ ४)	१,३५० (२८·१)	१,२३० (२६ ३)	२,८१० (३७ ५)	२,९०८ (३३ ९)
(१) कराधान की योजना पूर्व दरो पर चालू राजस्व से बचत	५७०	३८२	३५०	११	५५०	४१९
(२) अतिरिक्त कराधान, जिसमे सार्वजनिक उद्यमो की बचत बढाने के उपाय शामिल है	अ	२५५ब	८५०ब	१,०५२ब	१,७१०	२,८९२
(३) रिजर्व बैंक के लाभ	—	—	—	—	—	—
(४) आयोजना के लिये अतिरिक्त साधन जुटाने के लिये उठाये गए उपायो से हुई आय को छोडकर सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की बचत	१७०	११५	१५०	१६७	५५०	४३५
(क) रेल	१७०ई	११५ई	१५०ई	१६७ई	१००	६२
(ख) अन्य	फ	फ	फ	फ	४५०	३७३
२. मुख्यतया घरेलू ऋणो के जरिए	८०८ (३९ १)	१,०१९ (५२ ०)	२,६५० (५५·२)	२,३९३ (५१ २)	२,४९० (३३ २)	३,२४६ (३७ ६)

संशोधित आँकड़ा तक भी नहीं पहुँच सकी। सार्वजनिक क्षेत्र में भी साधनों का प्रशंसनीय विकास नहीं हुआ तथा विनियोग की दर भी इतनी ऊँची न थी जिससे रोजगार की स्थिति पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ सके। परन्तु साथ ही उत्पादन अधिक करने तथा देश की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में आयोजना अपने मुख्य उद्देश्य में सफल रही। उत्पादन सामान्यतः निर्धारित लक्ष्यों से भी बढ़ गया। देश की अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण की गति भी बढ़ी। मुद्रा स्फीति पर पर्याप्त नियन्त्रण कर लिया गया था तथा वस्तुओं के अभाव का वातावरण भी समाप्त हो गया था। सफलता असफलता दोनों को देखते यह कहा जा सकता है कि आयोजना सफलता रही परन्तु आशातीत रूप से नहीं। आयोजना आयोग का कहना था कि सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वित्तीय आयोजना के आरम्भ होने के समय आर्थिक स्थिति प्रथम आयोजना प्रारम्भ होने के समय से अपेक्षाकृत अच्छी थी, व्यक्तियों में विश्वास अधिक था और सब ओर से रिक प्रयत्नों में नित्य बढ़ती तत्परता दिखाई देती थी। परन्तु इसके साथ ही कोलम्बो समिति के शब्दों को भी भूलना नहीं चाहिये। समिति ने कहा था कि सब कुछ होते हुए भी हमारे अन्दर भविष्य के लिये आत्म में तुष्टि की भावना नहीं आनी चाहिये।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना ने हमारी शक्ति और हमारी कमजोरियों, दोनों को ही प्रकट कर दिया। शक्ति इस बात में प्रकट होती थी कि समस्त देश आयोजना के विचार के प्रति सजग हो गया। हम अनेक बाधाओं और कठिनाइयों के होते हुए भी आयोजनाओं की नाव को खेते रहे। परन्तु कठिनाइयाँ और बाधायें यह प्रकट करती हैं कि आयोजना के संगठन और विचारधारा में कुछ कमजोरियाँ थीं। प्रथम, आयोजना की आलोचना जहाँ लोगों ने उसे 'कृपण व सीमित' कह कर की, वहाँ द्वितीय आयोजना को 'अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी' बताया गया। योजना काल में अनेक संकट तथा दबाव उत्पन्न हुये और अर्थव्यवस्था भी गहरे आर्थिक पानी में डूब गई थी। खाद्य पदार्थ तथा आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि, विदेशी मुद्रा की घोर कमी, बढ़ती हुई बेरोजगारी, बजट के साधनों की अपर्याप्तता उद्गम करने की योग्यता की कमी, प्रशासनीय दोष, कम अनुमान, निष्कपटता और अनुशासन का अभाव, आदि अनेक कारण थे जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी और जो भविष्य के लिये हमारे लिये चुनौती बन गये।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में संविधान के सामाजिक लक्ष्यों को अधिक यथार्थ रूप दिया गया था और वास्तविक दृष्टि में यह आयोजना उन लक्ष्यों की सिद्धि की दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण पग थी। इसमें प्रथम दो आयोजनाओं की सफलता तथा विफलता का ध्यान में रखा गया था और वह कार्य निर्धारित किये गये थे जो आगामी पाँच वर्षों में तथा उससे भी आगे के विकास की दृष्टि में रख कर पूर्ण करने थे परन्तु कुछ लोगों के विचारानुसार द्वितीय आयोजना की भाँति तृतीय आयोजना भी बहुत महत्त्वाकांक्षी थी तथा इसमें कार्यक्रमों को पूर्ण करना

कठिन था। इसमें भी सन्देह था कि घाटे की वित्त-व्यवस्था केवल ५५० करोड़ रु० तक सीमित रहेगी। वास्तव में यह राशि आयोजना की अवधि में बढ़कर १,१३३ करोड़ रु० तक हो गई थी। बहुत अधिक मात्रा तक विदेशी सहायता पर निर्भर रहना भी वांछनीय नहीं था। विदेशी सहायता में एक बड़ा दोष यह उत्पन्न हो जाता है कि योजनाओं के लागू करने में बहुत अधिक व्यय कर दिया जाता है और अपव्यय होता है। आयोजना में बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं किया गया और प्रत्येक आयोजना के अन्त में जो बेरोजगारी की बड़ी संख्या रह जाती थी वह बहुत गम्भीर परिस्थिति थी।

तृतीय आयोजना, जोकि ३१ मार्च १९६६ को समाप्त हुई, पूरे पांच वर्ष तक बड़ी उलट फेर तथा परिवर्तित परिस्थितियों के बीच से गुजरती रही। आयोजना का केवल डेढ़ वर्ष ही बीता था कि अक्तूबर, १९६२ में चीन ने भारत पर विशाल आक्रमण कर दिया और यद्यपि लड़ाई केवल एक महीने ही चली, किन्तु चीन की ओर से दी जाने वाली धमकी एक आये दिन की चीज बन गई। परिणामस्वरूप प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं को भी आयोजना की आवश्यकताओं में सम्मिलित करना पड़ा। आयोजना-काल के अन्त में, अगस्त, १९६५ में, जम्मू कश्मीर में पाकिस्तान घुसपैठियों ने धमका आरम्भ कर दिया जिसने अन्त में बड़े पैमाने के सशस्त्र पाकिस्तानी आक्रमण का रूप ले लिया। इस प्रकार, प्रतिरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाने की आवश्यकता और भी तीव्रता से अनुभव की जाने लगी। तृतीय आयोजना के प्रारम्भ से ही मौसम बड़ा प्रतिकूल रहा। आयोजना के प्रथम तीन वर्षों में वर्षा पर्याप्त तथा समयानुकूल नहीं हुई जिससे कृषि उत्पादन पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। आयोजना के चौथे वर्ष (१९६४-६५) में मौसम अच्छा रहा और फसल भी अच्छी हुई, परन्तु आयोजना के अन्तिम वर्ष १९६५-६६ में भारी सूखा पड़ा जिसके कारण अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक प्रतिकूल दबाव पड़ा। खाद्यान्न का उत्पादन, जोकि द्वितीय आयोजना के अन्तिम वर्ष में ८.१ करोड़ टन तक पहुँच गया था, तृतीय आयोजना के प्रथम वर्ष, १९६१-६२ में उसी स्तर पर बना रहा और अगले दो वर्षों में तो और भी गिर कर क्रमशः ७.८४ तथा ७.६४ करोड़ टन रह गया। सन् १९६४-६५ में, जबकि मानसून अनुकूल रहा, यह बढ़कर ८.९० करोड़ टन हो गया, परन्तु आयोजना के अन्तिम वर्ष १९६५-६६ में फिर इसमें तेजी से गिरावट आई और यह घटकर ७.२० करोड़ टन रह गया। तृतीय आयोजना में खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य प्रारम्भ में १० करोड़ टन रखा गया था, किन्तु बाद में संशोधित करके ९.२० करोड़ टन रखा गया था। परन्तु इसके बावजूद यह संशोधित लक्ष्य भी पूरा न हो सका। इस प्रकार, सम्पूर्ण आयोजना की अवधि में देश की खाद्य अर्थ-व्यवस्था को गम्भीर संकट के बीच से गुजरना पड़ा। देश खाद्यान्न उत्पादन की कमी पूरी करने के लिये बड़े पैमाने पर आयात करना पड़ा।

औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में, तृतीय आयोजना की अवधि के लिये

आय में प्रति वर्ष ५ प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य अपूर्ण ही रहा। तृतीय आयोजना के प्रथम चार वर्षों में वृद्धि की औसत दर ८.० प्रतिशत रही और अन्तिम वर्ष की तीव्र गिरावट के कारण आयोजना की सम्पूर्ण अवधि में राष्ट्रीय आय में वृद्धि की औसत दर केवल २.५ प्रतिशत रही। प्रति व्यक्ति आय भी (१९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर) सन् १९६०–६१ में ३२६ रु० थी जो १९६४–६५ में बढ़कर ३४८ रु० और १९६५–६६ में घटकर ३०५ रु० रह गई।

इस प्रकार तृतीय आयोजना काल में लगातार कठिनाइयों ही कठिनाइयाँ उत्पन्न होती गई, जिनमें मुख्य थीं चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमण और सीमाओं पर बना रहने वाला लगातार खतरा, लगातार सर्वोत्तम मौसम के कारण फसलों को हानि पहुँचना विशेषतः १९६५–६६ में सूखा पड़ना और सम्पूर्ण आयोजना की अवधि में विशेषतः अन्त में विदेशी मुद्रा की कठिन स्थिति। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश क्षेत्रों में आयोजना की उपलब्धियाँ लक्ष्य तक न पहुँच सकी। आयोजना के प्रारम्भिक वर्षों में यातायात व्यवस्था तथा बिजली की कमी बनी रही। अन्त में तो कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में कमी होने के कारण और अंशतः (प्रतिरक्षा तथा विकास का व्यय बढ़ने एवं जनसंख्या की स्वाभाविक वृद्धि होने व जनसंख्या का शहरीकरण होने के फलस्वरूप) माँग में वृद्धि हो जाने के कारण कीमतों में तेजी वृद्धि हुई जिससे परेशानी उत्पन्न हुई और विशेषत आयोजना के अन्तिम वर्षों में। खाद्यान्नों तथा अन्य आवश्यक पदार्थों के वितरण में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के कारण यह मूल्य-स्थिति और गम्भीर हो गई। अदायगी-शेष की स्थिति सम्पूर्ण आयोजनाकाल में बड़ी कष्टपूर्ण बनी रही, विशेषत आयोजना के अन्तिम वर्षों में। इसका कारण यह था कि खाद्यान्नों तथा अन्य पदार्थों के आयात में वृद्धि हो गई थी और आयोजना के अन्तिम काल में विदेशी सहायता मिलनी बन्द हो गई थी। ऐसा उन तथ्यों के बावजूद हुआ कि निर्यात बढ़ाने के लिये, आयात घटाने के लिये और विदेशी पूँजी के आगमन को प्रोत्साहन देने के लिये अनेक कार्यवाहियाँ की जाती रहीं। इससे मजबूर होकर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार लेना पड़ा और अन्त में रुपये का अवमूल्यन भी करना पड़ा (यद्यपि यह पग तृतीय आयोजना के पश्चात् उठाया गया था)।

जैसा कि आयोजना आयोग ने स्वयं ही चौथी आयोजना की रूपरेखा में कहा था कि तृतीय पंचवर्षीय योजना का रिकार्ड पहली दृष्टि में ही अच्छा प्रतीत नहीं हुआ। परन्तु जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, तृतीय आयोजना का काल अनेक पहलुओं में बड़ा असाधारण रहा। इसके अतिरिक्त, जैसा कि राष्ट्रीय आय एवं उसकी वृद्धि की दर के आँकड़ों तथा खाद्य उत्पादन की कुछ प्रमुख मदों के समस्त आँकड़ों से स्पष्ट है, तृतीय आयोजना में प्राप्त सफलता बड़ी निराशाजनक रही, परन्तु फिर भी अनेक क्षेत्र एवं कार्यक्रम ऐसे थे जिनमें विकास की पर्याप्त मात्रा में प्रगति हुई, जैसे कि मशीनरी, धातुओं, रसायनों व उर्वरक आदि के मूलभूत औद्योगिक क्षेत्र, जिनमें कि

वृद्धि की दर १५% वार्षिक से भी अधिक रही थी। अनेक मामलों में क्षमता की वृद्धि की दर उत्पादन-वृद्धि की दर से भी तेज रही—अर्थात् भविष्य में अधिक तीव्र दर से वृद्धि की सम्भावनायें उत्पन्न हो गई थी। अनेक प्रायोजनायें, जिनमें कि पूर्वोक्त कारणों से देरी हो गई थी, अब पूर्ण होने को थी और यह आशा की गई थी कि चौथी आयोजना के आरम्भ में ही उनमें उत्पादन-कार्य शुरू हो जायेगा। इस प्रकार, आयोजना आयोग के इस निष्कर्ष में कुछ औचित्य अवश्य था कि "तृतीय आयोजना की सभी कमियों एवं निराशाओं के बावजूद, चौथी आयोजना के प्रारम्भ में तथा आने वाले वर्षों की अवधि में देश अधिक तीव्र गति से विकास के लिये प्रस्तुत है।" (चौथी आयोजना की रूपरेखा)।

यदि हम आयोजना की अब तक की सम्पूर्ण अवधि पर विचार करें, तो कहा जा सकता है कि आयोजना के प्रारम्भिक काल की अपेक्षा तृतीय आयोजना के अन्त में अर्थ-व्यवस्था निश्चय ही अधिक बड़ी तथा शक्तिशाली थी। राष्ट्रीय आय की मात्रा जोकि (१९६०–६१ के मूल्यों के आधार पर) सन् १९५०–५१ में ९८५० करोड़ रु० थी, सन् १९६४–६५ में बढ़कर १६,६३० करोड़ रु० हो गई। इस प्रकार इसमें कुल लगभग ६९ प्रतिशत की अथवा प्रति वर्ष ३.८ प्रतिशत की संयुक्त दर से वृद्धि हुई। आयोजना में निर्धारित लक्ष्य के मुकाबले यद्यपि वृद्धि की यह दर नीची थी परन्तु दर्शनीय बात यह थी कि राष्ट्रीय आय की दर में ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति पाई गई थी। राष्ट्रीय आय में वृद्धि की औसत दर, जोकि आयोजना से पूर्व की अनेक दशाब्दियों तक केवल १ प्रतिशत ही थी, आने वाली अनेक बाधाओं एवं कठिनाइयों के बावजूद बढ़कर प्रथम आयोजना में ३.४ प्रतिशत, द्वितीय आयोजना में ४ प्रतिशत और तृतीय आयोजना के प्रथम चार वर्षों में ४.१ प्रतिशत हो गई। प्रति व्यक्ति आय की मात्रा में १९५०–५१ तथा १९६४–६५ के मध्य कुल २८ प्रतिशत की तथा प्रति वर्ष औसतन १.८ प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। कृषि उत्पादन के क्षेत्र में, आयोजना के १४ वर्षों में लगभग ६५ प्रतिशत की औसत वृद्धि हुई। खाद्यान्नों का उत्पादन १९५०–५१ में ५.४६ करोड़ टन था जो बढ़कर १९६४–६५ में ८.९ करोड़ टन हो गया। आयोजना के प्रारम्भिक वर्षों में कृषि उपज में जो बढ़ोत्तरी हुई वह प्रति एकड़ उत्पादन की वृद्धि से उतनी नहीं थी जितनी कि कृषिक्षेत्र के विस्तार से थी। आयोजना के कुछ वर्षों के पश्चात् से ही प्रति एकड़ उपज में वृद्धि का क्रम रहा। उद्योगों के क्षेत्र में, १४ वर्षों की उक्त अवधि में लगभग १४६ प्रतिशत की वृद्धि हुई और अनेक प्रकार के नये-नये उद्योग चालू हुये। उद्योगों में बड़े महत्त्वपूर्ण रचना सम्बन्धी परिवर्तन हुए और उत्पादन वृद्धि में महत्त्व हुआ। महत्त्वपूर्ण उद्योगों, जैसे—इस्पात, एल्युमिनियम, रसायन, उर्वरक, मशीनरी तथा पैट्रोल पदार्थों के उद्योगों में प्रगति की दर बड़ी उल्लेखनीय एवं विस्मयकारी रही। यद्यपि औद्योगिक मोर्चे पर किये गये सभी प्रयत्न समय पर फलदायी नहीं हो सके अथवा उतनी मात्रा में फल नहीं प्रदान कर सके जितनी की आशा की गई थी, फिर भी जैसा कि आयोजना

सारणी ४
१९६६–६९ से वार्षिक आयोजनाओं का वित्त

(करोड रु० मे)

क्रम संख्या	मद	अन्तिम अनुमान		
		केन्द्र	राज्य	कुल
१	बजट के घरेलू साधन	२३६७	१२५१	३६१८
२	१९६५–६६ की कराधान दरो पर चालू राजस्व से बचत	१८८	११६	३०३
३	१९६५–६६ किराया भाडो और चुंगी पर सार्वजनिक उद्यमो की बचत	२१५	१९४	४०९
४	रेल	(—) ११२	—	(—) ११२
५	अन्य	३०७	२१४	५२१
६.	अतिरिक्त कराधान (सार्वजनिक उद्यमो की बचत बढाने के उपायो सहित)	६११	२९९[1]	९१०
७	जनता से ऋण (शुद्ध)[2]	३८४	३३५	७१९
८	लघु बचतें	१२५	२३०	३५५
९	वार्षिक जमा, अनिवार्य जमा, इनामी बांड और स्वर्ण बांड	६५	—	६५
१०	राज्य भविष्य निधियां	१७६	१२५	३०१
११	विभिन्न पूंजी प्राप्तियां (शुद्ध)	६३७	(—) ५१८[3]	५८८
१२.	बजट सम्बन्धी प्राप्तियां, विदेशी सहायता के अनुरूप (शुद्ध)	२४२६	—	२४२६
१३.	सार्वजनिक कानून पी०-एल ४८० से भिन्न	१५०७	—	१५०७
१४	पी०-एल ४८० सहायता	९१९	—	९१९
१५.	घाटे का वित्त	६४४	३८	६८२
१६	कुल साधन (१+१२+१५)	५४६७	१२८९	६७५६
१७	राज्य योजनाओं के लिये केन्द्रीय सहायता	(—)१७६३	१७६३	—
१८.	योजनाओं के लिये साधन (१६+१७)	३७०४	३०५२	६७५६

१ केन्द्र द्वारा लगाये गए अतिरिक्त कराधान मे अनुमानित १४८ करोड रुपये के हिस्से को मिलाकर।

२ सार्वजनिक उद्यमो द्वारा बाजार और जीवन बीमा निगमो से शुद्ध उधारों सहित।

३ केन्द्र से राज्यो को २२६ करोड रु० के तदर्थ ऋण के लिये स्वीकृति के बाद।

सेवाओं पर सार्वजनिक व्यय में ८ से ९ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो और रक्षा तथा गैर विकास उपभोग के खर्चों में ४ से ५ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो तो सरकारी बचत के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये किये गये कराधान प्रयत्नों से कराधान आय के अनुपात में वृद्धि, जो १९६८-६९ में १३ प्रतिशत से कम रही, १९८०-८१ में बढ़कर लगभग १८.५ प्रतिशत हो जायेगी। शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज सेवाओं पर बढ़ते सरकारी खर्च से लोगों के जीवन स्तर में सुधार होगा।

उद्देश्य (Objectives)

चौथी आयोजना का उद्देश्य सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देने के उपायों द्वारा लोगों का जीवन स्तर ऊंचा करना था। योजना में—विशेषकर रोजगार और शिक्षा की व्यवस्था के जरिये—कमजोर वर्गों और कम सुविधा प्राप्त वर्गों की दशा सुधारने पर विशेष बल दिया गया था। इस योजना में सम्पत्ति, आय और आर्थिक शक्ति का अधिकाधिक लोगों में प्रसार करने और इन्हें चन्द हाथों में एकत्र होने से रोकने के प्रयत्न भी किये जाते थे।

अधिक स्पष्ट शब्दों में आयोजना के मुख्य उद्देश्य थे—

(१) राष्ट्रीय आय में ५.५ प्रतिशत वार्षिक से अधिक की वृद्धि करना। कृषि उत्पादन में ५ प्रतिशत वार्षिक और औद्योगिक उत्पादन में ८ से १० प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करना।

(२) राष्ट्रीय आय में कुल मिलाकर और खण्डवार उक्त वृद्धि की दरें प्राप्त करने के लिये निवेश-आय के अनुपात को, जो १९६८-६९ में ११.३ प्रतिशत था, १९७३-७४ में बढ़ाकर १४.५ प्रतिशत करना।

(३) चौथी आयोजना के अन्त तक विदेशी सहायता के शुद्ध ऋण खर्चों और सूद भुगतान के वर्तमान स्तर को घटाकर लगभग आधा करना। इसके लिये निर्यात में लगातार लगभग ७ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करने और गैर-खाद्य आयात में वृद्धि को लगभग ५.५ प्रतिशत वार्षिक तक सीमित रखने की जरूरत थी। सार्वजनिक कानून ४८० (पी एल ४८०) के अधीन रियायती खाद्यान्न आयात को १९७१ तक समाप्त करना।

(४) कुल साधनों की जरूरत और विदेशी सहायता की मात्रा सम्बन्धी नीति के फैसले का मतलब यह था कि बचत-आय अनुपात को, जो १९६८-६९ में ८.८ प्रतिशत था, बढ़ाकर १९७३-७४ में १३.२ प्रतिशत करना होगा। इस हिसाब से बचत-आय अनुपात की वृद्धि २८ प्रतिशत बैठती थी।

परिव्यय : आकार और ढांचा (Outlays : Size and Pattern)

चौथी आयोजना में कुल २४,८८२ करोड़ रु० के परिव्यय का प्रावधान था जिसमें से १५,९०२ करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र में और ८,९८० करोड़ रु० का निवेश निजी क्षेत्र में था सरकारी क्षेत्र के परिव्यय में १३,६५५ करोड़ रु० निवेश के लिये थे और २,२४७ करोड़ रु० चालू परिव्यय के लिये। इस प्रकार उत्पादक पूंजी निर्माण

सारणी ५

चौथी आयोजना मे परिव्यय और निवेश सरकारी और निजी क्षेत्र

(करोड रु० मे)

विकास की मद	सरकारी क्षेत्र				निजी क्षेत्र		सरकारी और निजी क्षेत्र		
	कुल परिव्यय	चालू परिव्यय	निवेश	कुल व्यय का प्रतिशत	निवेश	वितरण का प्रतिशत	कुल निवेश (४+६)	कुल परिव्यय (२+६)	वितरण का प्रतिशत
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	२७,२८	६,१०	२१,१८	१७ १	१६,००	१७ ८	३७,१८	४३,१८	१७ ४
सिंचाई और बाढ नियन्त्रण	१०,८७	१४	१०,७३	६ ८	—	—	१०,७३	१०,८७	४ ४
बिजली	२४,४८	—	२४,४८	१५ ४	७५	० ८	२५,२३	२५,२३	१० १
गॉव और लघु उद्योग	२,९३	१,०७	१,८६	१ ८	५,६०	६ २	७,४६	८,५३	३ ४
उद्योग और खनिज	३३,३८	४०	३१,९८	२१ ०	२०,००	२२ ३	५२,९८	५६,३८	२१ ४
परिवहन और सचार	३२,३७	४०	३१,९७	२० ३	९,२०	१० २	४१,१७	४१,५७	१६ ७
शिक्षा	८,२३	५,४५	२,७८	५ २	५०	० ६	३,२८	८,७३	३ ५
वैज्ञानिक अनुसधान	१,४०	४५	९५	० ९	—	—	९५	१,४०	० ६
स्वास्थ्य	४,३४	३,०३	१,३१	२ ७	—	—	१,३१	४,३४	१ ७
परिवार नियोजन	३,१५	२,६२	५३	२ ०	—	—	५३	३,१५	१ ३
जल पूर्ति और सफाई	४,०७	२	४,०५	२ ६	—	—	४,०५	४,०७	१ ६

आवास, शहरी और क्षेत्रीय विकास	२,३७	२	२,३५	१५	२१,७५	२४३	२४,१०	२४,१२	९७
पिछड़ी जातियो का कल्याण	१,४२	१,४२	—	०९	—	—	—	१,४२	०६
समाज कल्याण	६१	४१	—	०३	—	—	—	४१	०२
श्रम कल्याण और कारीगरो का प्रशिक्षण	४०	२०	२०	०३	—	—	२०	४०	०२
अन्य कार्यक्रम	१,६२	७४	१,१८	१२	—	—	१,१८	१,६२	०८
चल सम्पत्ति की सूचियाँ	—	—	—	—	१६,००	१७८	१६,००	१६,००	६४
योग	१५,९०२	२,२४७	१३,६५५	१००'०	८,९८०	१०००	२२,६३५	२४,८८२	१०००

सारणी ६

चौथी आयोजना के लिये साधन—केन्द्र और राज्य

(करोड रु० मे)

मद	(चौथी आयोजना आरम्भिक)			चौथी आयोजना (संशोधित)		
	केन्द्र	राज्य	कुल	केन्द्र	राज्य	कुल
१ १९६८-६९ की कराधान दरो पर चालू राजस्व से बचत	१,६२५	४८	१,६७३	६९६	०६	८०२[1]
२ १९६८-६९ की दरो, भागो और चुंगी दरो पर सार्वजनिक उद्यमो का योग	१,५३४	४९५	२,०२९	८३७	३३४	११७१
३. रिजर्व बैंक के रोके हुये लाभ	१६५	३७	२०२	२२०	४९	२६९
४. बाजार के उधार	९००	५१५	१,४१५	१,०००	५७५	१,७५
५ शर्तों पर उधार देने वाली संस्थाओ और भारत के खाद्य निगम द्वारा उधार	४०५	—	४०५	४०५	—	४०५

६. लघु बचतें	२७४	४९५	७६९	३३३	६३७	१,०००
७. वार्षिक जमा आदि	(—) १०४	—	(—) १०४	९८	—	(—) ९८
८ राज्य भविष्य निधियाँ	३४३	३१७	६६०	४३९	३४३	७८२
विभिन्न						
९ पूंजी प्राप्तियाँ (शुद्ध)	२,०९०	(—) ४०५	१,६८५	१,९९६	(—) २२१	१,७७५
१० अतिरिक्त साधन व्यवस्था	२,१००	१,०९८	३,१९८	२,६३०	१,०९८	३,७२८
११ जीवन बीमा निगम से आवास और जल पूर्ति के लिये ऋण	—	१००	१००	—	१२६	१२६
१२ राज्य उद्यमो के बाजार से उधार	—	२५८	२५८	—	४००	४००
१३ राज्य उद्यमो को जीवन बीमा निगम से ऋण	—	१४८	१४८	—	२२०	२२०
१४ विदेशी सहायता के अनुरूप बजट सबधी प्राप्तियाँ	२,६१४	—	२,६१४	२,५४०	—	२,५४०
१५. घाटे का वित्त	८५०	—	८५०	१,१००	१०३	१,२०३
१६ कुल साधन	१२,७९६	३,१०६	१५,९०२	१२,१२८	३,७७०	१५,८९८
१७ राज्य योजनाओ के लिये सहायता	(—) ३,५००	३,५००	—	(—) ३५६७[2]	३,५६७	—
१८ योजना के लिये साधन	९,२९६	६,६०६	१५,९०२	८,५६१	७,३३७	१५,८९८

१. १९६९–७० से केन्द्रीय करो में राज्यो के भाग सहित

२. १९७१–७४ के लिये हिमाचल प्रदेश के लिये सहायता शामिल है ।

के लिये दोनो क्षेत्रो का कुल निवेश २२,६३५ करोड रु० था जो पीछे सारणी ५ मे दिया गया है।

विकास परिव्यय के अनुमानो मे स्थानीय निकायो द्वारा अपने साधनो से जुटाये अधिकतर वित्तीय खर्चे या पूर्व योजनाओ मे स्थापित सेवाओ और सस्थानो के रख-रखाव सम्बन्धी खर्चे नही दिये गये हैं। इस खर्चों की व्यवस्था साधारण बजटो से की जाती थी।

साधन (Resources)

चौथी आयोजना के सरकारी क्षेत्र के १५,९०२ करोड रु० के परिव्यय मे से केन्द्र द्वारा १२,७९६ करोड रुपये की व्यवस्था करने की आशा थी—९,२९६ करोड रुपये केन्द्रीय योजनाओ के लिये और ३,५०० करोड रुपये राज्यो की योजनाओ के लिये केन्द्रीय सहायता के रूप मे राज्यो को देने के लिये। शेष ३,१०६ करोड रुपये राज्यो को जुटाने थे। इस तरह राज्यो की आयोजना के लिये कुल ६,६०६ करोड रुपये की व्यवस्था थी।

चौथी आयोजना के मध्यावधि मूल्यांकन के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र की योजनाओ के लिये साधनो का फिर से जायजा लिया गया। पहले तीन वर्षों मे योजना के लिये वित्तीय व्यवस्था करने के अनुभवो के आधार पर पुन मूल्यांकन से पता चला कि सरकारी क्षेत्र की योजना के लिये ५ वर्षों मे अनुमानो के अनुसार १५,८९८ करोड रुपये की जरूरत थी। इसमे से १२,१२८ करोड रुपये की व्यवस्था केन्द्र को करनी थी और ३,७७० करोड रुपये की राज्यो को। योजना के मूल अनुमानो के मुकाबले अब केन्द्र को लगभग ७३६ करोड रुपये कम जुटाने थे और राज्यो को लगभग इतनी ही रकम अधिक जुटानी थी। राज्य योजनाओ के लिये केन्द्रीय सहायता की मात्रा पहले जितनी ही रखी गयी। लेकिन क्योंकि हिमाचल प्रदेश जनवरी १९७१ से पूर्ण राज्य बन गया, इसलिये सब राज्यो (हिमाचल प्रदेश सहित) के लिये जुटाई जाने वाली रकम अब ३,५६७ करोड रुपये दिखाई गई, जबकि मूल योजनाओ में ३,५०० करोड रुपये थी।

सारणिया ६ व ७ योजना परिव्यय के सरकारी और निजी क्षेत्र के आरम्भिक और सशोधित वित्तीय दर्शाती है।

सारणी ७

निजी क्षेत्र के लिए साधन (करोड रु० मे)

मद	चौथी आयोजना अवधि	
	आरम्भिक	सशोधित
१. निजी बचत	१४,१६०	१६,२३५
२ सरकार क्षेत्र द्वारा हुंडी	(—) ५,६९५	(—) ६,७३२
३ रोकी गई बचते	८,४६५	९,५०३
४ विदेशो से निधियो का शुद्ध अन्त प्रवाह	३०	(—) २५७
५ निजी निवेश के लिये उपलब्ध साधन	८,४९५	९,२४६

मूल्यो की सामान्य अस्थिरता, १९७१ मे बगला देश का जन्म और युद्ध, १९७१ के ही बुरे मौसम के बाद १९७२ मे असाधारण सूखा तथा मुद्रास्फीति सम्बन्धी दबाव, ये कुछ ऐसी घटनायें थी जिन्होंने उन उपलब्धियो को लूट लिया जो चौथी आयोजना अर्थव्यवस्था को प्रदान करती।

सारणी ८
राज्यों की अपनी आयोजनाओं का परिव्यय

(करोड़ रु० में)

राज्य	तीसरी आयोजना	वार्षिक आयोजनायें १९६६–६९	चौथी आयोजना		
			राज्यों के साधन	केन्द्रीय सहायता	कुल परिव्यय
आन्ध्र प्रदेश	३४४ ७८	२३२ ०२	१८० ५०	२४० ००	४२० ५०
असम	१३२ २४	८७ ११	४१ ७५	२२० ००	२६१ ७५
बिहार	३३१ ७४	२२३ २३	१९३ २८	३३८ ००	५३१ २८
गुजरात	२३७ ६८	२०७ १४	२९७ ००	१५८ ००	४५५ ००
हरियाणा	—[1]	७२ ८२	१४६ ५०	७८ ५०	२२५ ००
जम्मू और कश्मीर	६१·२४	६२ ०९	१३ ४०	१४५ ००	१५८ ४०
केरल	१८१ ५६	१३९ ७५	८३ ४०	१७५ ००	२५८ ४०
मध्य प्रदेश	२८८ ३५	१७२ ६४	१२१ ००	२६२ ००	२८३ ४०
महाराष्ट्र	४३३ ६०	४०८ ६७	६५२ ६२	२४५ ५०	८९८ १२
मैसूर (कर्नाटक)	२५० ६६	१७९ ७७	१७७ ००	१७३·००	१५० ००
नागालैंड	१० ८०	१६ ७०	५ ००	३५ ००	४० ०६
उड़ीसा	२२४·०६	१३१ ५८	६२ ६०	१६० ००	२२२ ६०
पंजाब	२५४ २३	११२ ७७	१९२ ५६	१०१ ००	२९३ ५६
राजस्थान	२१० ६९	१३५ ६५	८२ ००	२२० ००	३०२ ००
तमिलनाडु	३४२ ३३	२४९ ९५	३१७ ३६	२०२ ००	५१९ ३६
उत्तर प्रदेश	५६० २५	४५६ ०३	४३९ ००	५२६ ००	९६५ ००
पश्चिम बंगाल	३०० ४८	१६८ ८३	१०१ ५०	२२१·००	३२२·५०
योग	४,१६४ ७५	३,०५१ ७५	३,१०६ ४७	३,५०० ००	६,६०६ ४७

1 पंजाब के अन्तर्गत शामिल।

सारणी ६

राज्यों की आयोजनाओं का परिव्यय : विकास की मुख्य मदों के अनुसार

(करोड़ रु० म)

विकास मद	तीसरी आयोजना	वार्षिक आयोजनायें १९६६–६९	चौथी आयोजना
कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र	६७२	७७६	१,४२६
सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण	६५५	४४८	१,०५०
बिजली	१,१३९	९७०	१,९१९
उद्योग और खनिज	२०३	१४६	३१२
परिवहन और सचार	२९४	२१०	४८३
सामाजिक सेवायें	८४४	४५६	१,३२४
अन्य कार्यक्रम	५८	४३	९२
योग	४,१६५	३,०५२[1]	६,६०६

इसी प्रकार, सूखे व बाढ़ से पीड़ित राज्यों की सहायता के कारण गैर-आयोजना क्षेत्र के व्यय मे भी भारी वृद्धि हुई।

राज्य आयोजनायें
(State Plan)

अखिल भारतीय योजनाओं के ढांचे के अन्तर्गत राज्य अपनी पचवर्षीय आयोजनायें तैयार करते है। इसके लिये राज्य अपने साधनों से और केन्द्रीय सहायता से वित्त जुटाते है। केन्द्रीय सहायता से ढांचा और आवटन के सिद्धान्तों का निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद करती है। वर्तमान तरीका यह है कि केन्द्रीय सहायता की सम्पूर्ण मात्रा म से पहले असम, नागालैंड और जम्मू व कश्मीर की जरूरतें पूरी की जाती हैं और शेष अन्य सभी राज्यों मे बाटा जाता है। अन्य सभी राज्यों में बाँटी जाने वाली राशि के ६० प्रतिशत का वितरण जनसख्या के आधार पर, १० प्रतिशत का प्रति व्यक्ति आय के आधार पर (यदि यह राष्ट्रीय औसत से नीचे है) १० प्रतिशत का प्रति व्यक्ति आय को ध्यान में रखते हुये कराधान के प्रभाव के आधार पर और १० प्रतिशत सिचाई और बिजली की चालू बड़ी परियोजनाओं पर किये जाने वाले खर्च के आधार पर किया जाता है। राशि का शेष १० प्रतिशत राज्यों को अपनी विशेष समस्याओं के समाधान के लिये दिया जाता है, जैसे— मुख्य नगरीय क्षेत्र, बाढ़, सूखा और जनजातीय क्षेत्र।

सारणी ८ व ९ म हर राज्य की अपनी योजनाओं का परिव्यय और विकास की मुख्य मदों के अनुसार परिव्यय दिखाया गया है।

1 १९६६-६७ और १९६७ ६८ के लिये वास्तविक और १९६८-६९ के लिये पूर्वानुमानित।

पाँचवीं पंचवर्षीय आयोजना (Fifth Five Year Plan)

पाचवी पचवर्षीय आयोजना १ अप्रैल १९७४ से प्रारम्भ होनी थी। योजना के निर्देशक सिद्धान्त आयाजना आयोग के मसविद 'पाचवी आयाजना के दृष्टिकोण की ओर' म दिय गये थ जो मई, १९७२ मे प्रकाशित किया गया था। इसके पश्चात् राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक १९ और २० जनवरी, १९७३ को हुई जिसमे एक अन्य ममविदा 'पाचवी आयोजना के प्रति दृष्टिकोण' स्वीकृत किया गया। इसके अन्तर्गत १९७४-७९ के दौरान एक अधिक लम्बी अवधि के विकास को ध्यान मे रखते हुये वृद्धि-दर और परिव्यय का निश्चित व्यापक अनुमान लगाया गया। इस ममविदे के आधार पर आयोजना को अन्तिम रूप दिया गया जिसे राष्ट्रीय विकास परिषद ने ९ दिसम्बर, १९७३ को स्वीकृत किया। १९ दिसम्बर, १९७३ को योजना मन्त्री श्री दुर्गा प्रसाद धर ने पाचवी पचवर्षीय आयोजना की रेपरेखा के दस्तावेज मसद के ममक्ष रखे। किन्तु कीमतो की वृद्धि तथा तेल के सकट आदि के कारण आयोजना को अन्तिम रूप देने का कार्य स्थगित कर दिया गया और इस बीच पांचवीं आयोजना के प्रथम वर्ष, १९७४ ७५ के लिय वार्षिक योजना जारी की गई।

पाँचवी पचवर्षीय आयोजना के दो मुख्य उद्देश्य निर्धारित किये गये थे। गरीब का उन्मूलन और आर्थिक आत्म-निर्भरता। इसके लिये विकास की ऊँची दर प्राप्त करनी होगी। आय श्रेष्ठतर वितरण करना होगा और घरेलू बचत की दर बढाने के लिये उल्लेखनीय पग उठाने होंगे। पाचवीं आयोजना मे कुल परि-व्यय ५३,४११ करोड रु० (३७,२५० करोड रु० मरकारी क्षेत्र मे और १६,१६१ करोड रु० निजी क्षेत्र मे) करने की व्यवस्था की गई और योजना की अवधि मे अर्थव्यवस्था मे ५ ५ प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की दर निश्चित की गई। योजना के मसविदे मे १९७१-७२ की कीमतो के अनुमार पाँचवी आयोजना का कुल परिव्यय ४५,३१५ करोड रुपये था (२८,७८८ करोड रु० मरकारी क्षेत्र मे और १७,४७० करोड रु० निजी क्षेत्र मे)।

पाचवी पचवर्षीय आयोजना अन्तिम रूप से मितम्बर, १९७६ मे तैयार हो गई थी जिसमे ६९,३८३ करोड रु० के कुल व्यय की व्यवस्था की जबकि आयोजना की प्रारम्भिक रूपरेखा मे इस व्यय की मात्रा ५३,४११ करोड रुपये थी। ६९,३८३ करोड रु० के इम कुल परिव्यय मरकारी क्षेत्र का अशदान ३९,३०३ करोड रुपये और निजी क्षेत्र का २७,०४८ करोड रु० था। पाचवीं पचवर्षीय आयोजना उस समय बनाई गई थी जबकि अर्थव्यवस्था को मुद्रास्फीति के भारी दबाव का सामना करना पड रहा था। आयोजना का मुख्य उद्देश्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और गरीबी के रेखा से नीचे जीवन बिताने वाले लोगों के उपभोग का स्तर ऊँचा उठाने के लिये पग उठाना था। आयोजना मे इस बात को भी प्रमुखता दी गई थी कि मुद्रास्फीति को नियन्त्रित किया जाये और अर्थव्यवस्था म स्थिरता लाई जाये।

पाचवी आयोजना मे वार्षिक आय मे ५.५% की वार्षिक वृद्धि की दर का लक्ष्य रखा गया था। पाँचवी पचवर्षीय आयोजना से सम्बन्धित चार वार्षिक योजनायें पूर्ण हो गई थी।

सारणी १० मे पाचवी पचवर्षीय आयोजना के वित्तीय साधन दिखाये गये है और सारणी ११ मे आयोजना व्यय की प्रगति दिखाई गई है।

बाद म यह निश्चय किया गया था कि १९७७-७८ की वार्षिक योजना के साथ ही पाँचवी पचवर्षीय आयोजना को समाप्त कर दिया जाये और अगले पाच वर्षों (अर्थात् १९७७-८३) के लिये एक नयी आयोजना बनाने का कार्य शुरू किया जाये। फलस्वरूप, आयोजना आयोग ने १९७७-८३ की अवधि म लिये पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा तैयार की जिसके उद्देश्य थे बेरोजगारी समाप्त करना, गरीबी तथा असमानतायें कम करना, आत्मनिर्भरता की दिशा के लगातार आगे बढना और भूतकाल की अपेक्षा अर्थव्यवस्था के विकास की ऊँची दर प्राप्त करना। आयोजना मे कुल परिव्यय १,१६,२४० करोड रुपये निर्धारित किया गया था। जिसमे सरकारी क्षेत्र का भाग ६६,३८० करोड रुपये था। इस आयोजना को 'अनवरत आयोजना' (Rolling plan) का नाम दिया गया। इसका उद्देश्य यह था कि थोड-थोडे समय बाद उदाहरण एक-एक वर्ष बाद इसकी समीक्षा की जाये और फिर अगले पांच वर्ष के लिये आयोजना की रूपरेखा का निर्धारण कर लिया जाये। इस विधि के अनुसार १९७८-८३ की पचवर्षीय अनवरत आयोजना का अर्थ है कि एक वर्ष अर्थात् १९७८-७९ के बीतने पर यह वर्ष तो आयोजना से निकाल दिया जायेगा और आगे की ओर एक वर्ष अर्थात १९८३-८४ उसमे जोड दिया जायेगा। इसका परिणाम यह होगा कि एक वर्ष बाद ही १९७९-८४ की अवधि के लिए फिर पचवर्षीय आयोजना तैयार हो जायेगी। इसमे विशेष बात यही है कि प्रत्येक वर्ष के बाद आयोजना की अवधि मे से प्रारम्भ का एक वर्ष समाप्त हो और अन्त मे एक वर्ष बढ जायेगा। इस प्रकार, हर वर्ष के बाद आयोजना पांच वर्ष की ही बनी रहेगी। किन्तु केन्द्र मे हुये राजनीतिक परिवर्तन के साथ ही १९७८-८३ के लिये बनी पचवर्षीय आयोजना न केवल छोड दी गई, अपितु अनवरत आयोजना क विचार को भी त्याग दिया गया। ऐसा इसलिये किया गया ताकि सुनिश्चित आयोजना की वह प्रक्रिया ही जारी रहे जो कि प्रथम आयोजना के साथ ही आरम्भ की गई थी। परिणामस्वरूप वर्ष १९७८-७९ और १९७९-८० के लिये दो पृथक् वार्षिक आयोजनायें लागू की गई और यह निश्चय किया गया कि नई छठी पचवर्षीय आयोजना का निर्माण किया जाये।

छठी पचवर्षीय आयोजना १९८०-८५

Sixth Five Year Plan (1980 85)

छठी पचवर्षीय आयोजना १९८०-८५ की रूपरेखा पहले उस ढाँचे के आधार पर तैयार की गई थी जो राष्ट्रीय विकास परिषद (National Develop-

सारणी ११

छठी आयोजना के वित्तीय साधन

(१९७९-८० की कीमतों पर करोड़ रु०)

	केन्द्र	राज्य	योग
१ १९७९-८० की कराधान दरों पर चालू राजस्व की बकाया राशि	१,१७८	१३,३००	१४,४७८
२. सरकारी उद्यमों का अंशदान	९,९११	(—)५१६	९,३९५
३ बाजार उधार (वित्तीय संस्थाओं के बाजार उधार को छोड़कर	१५,०००	४,५००	१९,५००
४ अल्प बचतें	२,११२	४,३५१	६,४६३
५ भविष्य निधि	१,६६०	२,०४२	३,७०२
६ वित्तीय संस्थाओं से सावधि ऋण		२,७२२	२,७२२
७ विविध पूँजीगत प्राप्तियाँ (निवल)	६,१७०	(—)२,१६१	४,००९
८ विदेशी साधनों की प्राप्ति	९,९२९	—	९,९२९
[i] निवल सहायता	५,८८९	—	५,८८९
[ii] अन्य प्राप्तियाँ	४,०४०	—	४,०४०
९ विदेशी विनिमय कोष से आहरण	१,०००	—	१,०००
१० अतिरिक्त साधन जुटाना	१२,२९०	९,०१२	२१,३०२
११. बिना पटी खाई/घाटे की वित्त व्यवस्था	५,०००	—	५,०००
१२. कुल साधन	६४,२५०	३३,२५०	९७,५००
१३ राज्य आयोजनाओं के लिये केन्द्रीय सहायता	(—)१५,३५०	(+) १५,३५०	—
१४ आयोजना के लिये उपलब्ध साधन (१२, १३) संघीय क्षेत्रों सहित	४८,९००	४८,६००	९७,५००

(Development Council) ने अपनी ३० और ३१ अगस्त, १९८० की मीटिंग में अनुमोदित किया था। इस रूपरेखा में ९०,००० करोड़ रु० सरकारी क्षेत्र के लिये निर्धारित किये गये थे। १९८० में तैयार की गई यह रूपरेखा १४ फरवरी १९८१

सारणी १२

छठी योजना के लक्ष्य

वस्तु	इकाई	१९७९-८०	१९८४-८५
खाद्यान्न	दस लाख टन	१०९	१४९-१५४
गन्ना	दस लाख टन	१२८	२००-२१५
जूट तथा मेस्ता	लाख गांठ (प्रत्येक १८० किलो)	८०३	९१
कपास	लाख गांठ (प्रत्येक १७० किलो)	७७	९२
तिलहन (५ प्रमुख)	दस लाख टन	८१	११०
कोयला	दस लाख टन	१०३ ९६	१६५
लिगनाइट	दस लाख टन	३ १२	८
लोहा अयस्क—पिण्ड तथा सूक्ष्म	दस लाख टन	३९	५५
लोहा अयस्क—सान्द्रीकृत	दस लाख टन	—	५
कपड़ा	दस लाख मीटर	१०,४३५	१३,०३०
कागज तथा गत्ता	हजार टन	१०५०	१,५००
एल० डी० पोलीथलीन	हजार टन	७१ ३	१००
एच० डी० पोलीथलीन	हजार टन	२५ ४	२७
पोलीप्रापीलीन	हजार टन	१३ ४	२७
पी० वी० सी०	हजार टन	४६ ०	१२८
नेत्रजन उर्वरक	हजार टन	२,२२६	४,२००
फास्फेट उर्वरक (पी २०५)	हजार टन	७५७	१,४००
सीमेंट	दस लाख टन	१७,९८	३३-३४
बिक्री योग्य इस्पात	दस लाख टन	७ ३८	११,५१
एल्यूमिनियम	हजार टन	१९२	३००
तांबा (परिष्कृत)	हजार टन	१८ ८	४५
जस्ता	हजार टन	५२ ९५	८५
सीसा	हजार टन	११ ४	२५
विद्युत उत्पादन	दस खरब (KWH)	११२	१९१
रेलों में ढुलाई	दस लाख टन	२१७	३०९

विवादों के लिये, सम्पूर्ण उद्योग के लिये व केन्द्र में, संयुक्त समितियों की स्थापना का सुझाव दिया गया था।

विवादों की रोकथाम के लिये आयोग ने यह सुझाव दिया था कि मालिकों व श्रमिकों के कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का उल्लेख स्पष्ट रूप से होना चाहिये। प्राधिकारियों तक श्रमिकों की पहुंच होनी चाहिये। उन्हें उद्योग से सम्बन्धित बातों तथा उनके हित में परिवर्तन लाने वाली सभी बातों का ज्ञान होना चाहिये और उनके सम्बन्ध में सूचनायें मिलती रहनी चाहियें। श्रमिकों में सामाजिक मेल-मिलाप बढ़ाने के लिये भी कार्य करने चाहियें। सार्वजनिक क्षेत्र के सम्बन्ध में आयोग का कथन था कि श्रमिक एक नागरिक के रूप में मालिक तथा श्रमिक के रूप में सेवक है। ऐसे संस्थानों में कार्य की दशायें तथा कल्याण सम्बन्धी प्रबन्ध ऐसे होने चाहियें जो दूसरों के लिये आदर्श हों। इनमें समस्त श्रम कानूनों को भी लागू किया जाना चाहिये तथा निर्देशकों के मण्डल में कुछ व्यक्ति श्रमिकों से सहानुभूति रखने वाले भी होने चाहियें। आयोग के आयोजना की सफलता लिये श्रमिक व मालिकों के सघों के सहयोग पर भी जोर दिया था।

(२) मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा (Wages and Social Security)

आयोजना आयोग के अनुसार हाल ही के वर्षों के युद्धों में वृद्धि होने के साथ-साथ मजदूरी और लाभ में भी बढ़ोत्तरी हुई है। आयोजना अवधि में मुद्रा स्फीति को रोकने के लिये लाभ और मजदूरी को नियन्त्रित करना आवश्यक है। आयोग मजदूरी में वृद्धि करने के पक्ष में नहीं था, सिवाय उन परिस्थितियों के जहाँ मजदूरी में अनुचित रूप से असमानतायें थीं या जहाँ पर मजदूरी बहुत कम थी। मजदूरी बोर्डों तथा अधिकरणों की मजदूरी नीति यह होनी चाहिये कि आय की असमानतायें कम हों तथा राष्ट्रीय आय में श्रमिक को उचित भाग मिले। न्यूनतम मजदूरी विधान का पूर्ण और प्रभावशाली ढंग से आयोजना काल में कार्यान्वित करने का सुझाव था। मजदूरी के समानीकरण का भी सुझाव दिया गया था। बोनस की अदायगी नकदी में शामिल रूप से करनी चाहिये तथा शेष राशि श्रमिक की बचत में जमा हो जानी चाहिये। लाभ सहभाजन तथा योगदान के बारे में आयोग ने केवल इतना ही संकेत किया था कि इन समस्याओं के लिये एक विशेष स्तर पर अध्ययन की आवश्यकता थी। मजदूरी की समस्यायें सुलझाने के लिये त्रिदलीय आधार पर स्थायी मजदूरी बोर्डों की स्थापना की सिफारिश थी। (पृष्ठ ६६६ तथा ७०० भी देखिये)।

सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में आयोग का कथन था कि इसकी कमी के कारण स्थायी एवं कार्य-कुशल श्रमिक वर्ग की स्थापना में बाधा पड़ती है। तथापि आयोजना की अवधि में, आयोग ने सुझाव दिया कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, कर्मचारी

प्रोविडेन्ट फन्ड अधिनियम, कोयला खान प्रोविडेन्ट फण्ड निधि और बोनस योजनाओं को पूर्ण तथा उचित रूप से कार्यान्वित करना चाहिये।

(३) कार्य की दशायें (Working Conditions)

आयोग के अनुसार कारखानों में कार्य की दशाओं में बहुत अधिक सुधार करने की आवश्यकता थी। इस दृष्टि से सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम, सन् १९५१ का बागान श्रम अधिनियम तथा दुकानों एवं वाणिज्य संस्थानों व मोटर यातायात आदि के लिये जो विधान थे वह पर्याप्त थे परन्तु उनको उचित रूप से कार्यान्वित किये जाने की आवश्यकता थी। आयोग ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य, सुरक्षा व कल्याण के राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना करने का भी सुझाव दिया था (पृष्ठ ५६३ तथा ७४६ भी देखिये)।

(४) रोजगार और प्रशिक्षण (Employment and Training)

आयोजना आयोग ने मानव शक्ति के उचित प्रकार से प्रयोग करने की महत्ता पर विशेष बल दिया था और भर्ती प्रणाली में सुधार करने के लिये सुझाव दिये थे। रोजगार दफ्तरों का संगठन सुदृढ़ रूप से किया जाना चाहिये। प्रशिक्षण सुविधाओं का उचित रूप से समन्वय किया जाना चाहिये। उत्पादन व्यय को कम करने के लिये कुछ उद्योगों में सतर्कतापूर्वक विवेकीकरण लागू करने का भी सुझाव दिया गया था।

(५) उत्पादकता (Productivity)

मालिक श्रम की उत्पादकता की शिकायत करते हैं परन्तु श्रमिक इस बात को स्वीकार नहीं करते। अतः आयोग ने सुझाव दिया था कि कार्य-प्रणाली, नौकरियों का वर्गीकरण, मजदूरी दर आदि की चालू व्यवस्था का अध्ययन किया जाना चाहिये ताकि कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि करने के लिये सुझाव दिये जा सकें। एक अन्तर-कार्य प्रशिक्षण योजना का भी सुझाव दिया गया था।

आयोजना आयोग ने आवास व्यवस्था का एक पृथक् अध्याय में विवेचन किया था। इसका उल्लेख आवास समस्या वाले अध्याय में किया जा चुका है।

कृषक श्रमिकों का भी आयोग ने एक पृथक् अध्याय में विवेचन किया था। १९५१ की जनगणना के अनुसार २९.५ करोड़ ग्रामीण जनसंख्या में से २४.९ करोड़ व्यक्ति कृषि-कार्य में लगे हुए थे। इनमें से १८ प्रतिशत कृषक मजदूर एवं उनके आश्रित थे। पंचवर्षीय आयोजना में कृषि व गाँव की उन्नति के लिये जो कार्यक्रम दिये गये थे। उनका उद्देश्य इन श्रमिकों की सहायता करना भी था। आयोग ने कृषि श्रमिकों के हित के लिये निम्नलिखित अन्य सुझाव भी दिये गये थे। मकानों की जमीनों में मौरूसी अधिकार प्रदान करना, भूदान आन्दोलन का अनुमोदन, श्रम उत्पादन, सहकारी समितियों की स्थापना, वित्तीय सहायता, शिक्षा छात्रवृत्ति और न्यूनतम मजदूरी आदि।

द्वितीय पचवर्षीय आयोजना के २७वें अध्याय मे श्रम, नीति और कार्यक्रमों का उल्लेख किया गया था। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे औद्योगिक श्रमिक की महत्ता के प्रति बढ़ती हुई चेतना का दृष्टिगत रखते हुये प्रथम पचवर्षीय आयोजना का निर्माण किया गया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रमिको को उनके एसे अधिकारो को मान लेने के लिये अनेक आश्वासन दिये गय थे जिनकी बहुत समय से उपेक्षा होती रही थी। इन आश्वासनो को वास्तविक रूप देने तथा अर्थ-व्यवस्था के अन्य क्षेत्रो की आवश्यकताओ के अनुसार श्रमिकों से उचित व्यवहार करने के लिये प्रथम आयोजना के अन्तर्गत कुछ प्रयत्न किये गये थे। द्वितीय पचवर्षीय आयोजना मे यह उल्लेख था कि औद्योगिक सम्बन्धो मे सुधार, विभिन्न स्तरो पर सयुक्त परामर्श की व्यवस्था की सफलता तथा गत पाँच वर्षों मे श्रमिको की वास्तविक आय म वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि श्रम के क्षेत्र मे प्रथम आयोजना सफल रही थी। द्वितीय आयोजना मे प्रथम आयोजना के अन्तर्गत निर्धारित श्रम नीति को कुछ सशोधनो के साथ चालू रखा गया। यह सशोधन समाज के समाजवादी ढाँचे के उद्देश्य को मान लेने के कारण किये गये थे। (पृष्ठ १९–२० भी देखिये)।

आयोजना मे इस ओर सकेत किया गया था कि औद्योगिक प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिये शक्तिशाली श्रमिक सघ आन्दोलन का होना आवश्यक है। यह तभी हो सकता है जबकि श्रमिक सघों की वित्तीय स्थिति मे सुधार किया जाये, श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने के अधिकार को मान लिया जाये तथा श्रमिको के नेता भी श्रमिको मे से ही बनाने के प्रयत्न किये जायें। इन सब कार्यो के लिये श्रमिको को श्रमिक सघवाद और सघ प्रणाली मे प्रशिक्षण देना आवश्यक है। (पृष्ठ १२९–१३० भी देखिये)।

औद्योगिक सम्बन्धो के विषय मे द्वितीय आयोजना की सिफारिशो का उल्लेख पृष्ठ २२३ पर किया जा चुका है। आयोजना मे औद्योगिक अनुशासन के विभिन्न पहलुओ पर जोर दिया गया है। समाज के समाजवादी ढाचे के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिको की यह माग कि उनके आर्थिक एव सामाजिक स्तर मे सुधार हो, स्वीकार कर लेनी चाहिये। परन्तु दूसरी ओर भी यह आवश्यक है कि श्रमिक अपने उत्तरदायित्व को समझें। इसका अर्थ यह है कि हिंसा व अनुशासनहीनता की प्रवृत्तियो को रोकने के लिये उनके ऊपर कड़ी निगरानी रखनी पड़ेगी।

मजदूरी के सम्बन्ध मे आयोजना के प्रस्तावो का उल्लेख पृष्ठ ६६६ पर किया जा चुका है। कर्मचारी प्राविडेन्ट फण्ड योजना और कर्मचारी राज्य बीमा योजना को विस्तृत करने का प्रस्ताव था तथा प्रोविडेण्ट फण्ड म अशदान की दर ६¼% से बढ़ाकर ८⅓% करन का सुझाव दिया गया था। बोनस और लाभ सहभाजन के सिद्धान्त का और अधिक अध्ययन करने का सुझाव दिया गया था। (पृष्ठ ७०० भी देखिये)।

आयोजना के अनुसार विकेन्द्रीकरण की योजनाओं से सम्बन्धित पक्षों में आपसी समझौते के अनुसार लागू करना चाहिये। विशेष समस्याओं के समाधान हेतु केन्द्रीय सरकार द्वारा एक उच्च अधिकारी की नियुक्ति की भी सिफारिश की गई थी।

निर्माण उद्योग व यातायात सेवाओं के कार्य की दशाओं को विनियमित करने का सुझाव था। ठेके के श्रमिकों को निरन्तर रोजगार प्रदान करने के लिए तथा उनकी कार्य की दशाओं को उत्तम बनाने के लिए भी पग उठाये जाने चाहियें। कृषक श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने तथा उन्हें रोजगार की अन्य सुविधायें प्रदान करने के लिए भी हर प्रकार के प्रयत्न करने चाहियें। स्त्री श्रमिकों की विशेष समस्याओं की ओर भी उचित ध्यान देना आवश्यक है।

द्वितीय आयोजना में श्रम और श्रम-कल्याण से सम्बन्धित योजनाओं पर १६८१ करोड़ रुपये की धनराशि व्यय किये जाने की व्यवस्था थी। इसमें से १२ करोड़ रुपए केन्द्र की तथा ७८१ करोड़ रुपये राज्यों की आयोजनाओं पर व्यय किये जाने का सुझाव था। इस सम्बन्ध में जो मुख्य योजनायें थीं वह प्रशिक्षण सुविधायें, नये कारखानों की स्थापना तथा रोजगार सेवा संगठन का विस्तृत करने की थीं। 'श्रव्य दृष्ट' (Audio-visual) के माध्यम से श्रमिकों को शिक्षा देने के लिये एक शिविर शाखा की स्थापना भी करने का सुझाव था। आयोजना में यह भी प्रस्ताव था कि कृषि श्रमिकों, मजदूरों और श्रमिक-वर्ग के पारिवारिक बजटों से सम्बन्धित विषयों पर सर्वेक्षण और जाँच की जायें। राज्यों द्वारा प्रदान की गई कल्याण सुविधाओं की प्रशंसा की गई थी। कोयला व अभ्रक खान कल्याण निधियों के समान ही मैंगनीज उद्योग के लिये एक कल्याण निधि बनाने की सिफारिश की गई थी। आयोजना में औद्योगिक आवास के लिये भी धनराशि निर्धारित की गई थी जिसका उल्लेख अध्याय ६ में किया जा चुका है।

आयोजना के सुझावों को कार्यान्वित करने के लिये जो पग उठाये गये थे उनकी प्रगति का उल्लेख भी प्रत्येक सम्बन्धित अध्याय के ऊपर दिया जा चुका है।

यह सुझाव दिया गया था कि तृतीय आयोजना में श्रम-नीति का लक्ष्य यह होना चाहिये कि प्रथम दो आयोजनाओं की नीतियों व कार्यक्रमों में जो भाग अपूर्ण रह गये हैं उन्हें पूर्ण किया जाये, विशेष रूप से इन बातों के सम्बन्ध में उचित तथा आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी, प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग, अधिक रोजगार और औद्योगिक विवादों का शीघ्र एवं अन्तिम निपटारा। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने एक स्मृति-पत्र में यह सुझाव दिया था कि तेजी से बढ़ती हुई कीमतों के विरुद्ध श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए खाद्यान्न की उपदान-प्राप्त कीमतें निश्चित की जायें, इस बात का निश्चय करने के लिये बोनस की मात्रा तथा उसके देने की कसौटी क्या हो एक बोनस आयोग की नियुक्ति की

जाये, सरकारी, गैर-सरकारी तथा सरकारी क्षेत्रों के लिये एक-सी श्रम-नीति निश्चित की जाये मुख्य उद्योगों की जर्जरित, सीमान्त तथा कुप्रबन्धित इकाइयों को अपने हाथ में लेने के लिये प्रत्येक उद्योग के लिये एक राज्य द्वारा सहायता-प्राप्त एवं प्रेरित निगम की स्थापना की जाये और उपर्युक्त तीनों ही क्षेत्रों के लिये खातों के लेखा-परीक्षण के कार्य का राष्ट्रीयकरण किया जाये। कांग्रेस ने औद्योगिक सम्बन्धों में प्रत्यक्ष बातचीत, श्रम समितियों तथा ऐच्छिक पंचनिर्णयों के योगदान पर भी जोर दिया और सुझाव दिया कि सरकार को जो यह अधिकार प्राप्त है कि वह किसी पचाट (Award) को स्वीकृत, अस्वीकृत अथवा संशोधित कर सके, केवल संकट काल के लिये ही सीमित कर दिया जाना चाहिये। मार्च १९६० में स्थायी श्रम समिति ने यह सिफारिश की कि विवादों का निपटारा करने के लिये ऐच्छिक विवाचन का अधिकाधिक आश्रय लिया जाये, मालिकों व श्रमिकों के संगठनों के परामर्श में विवाचकों (Arbitrators) की सूची तैयार की जाये तथा मालिकों द्वारा श्रमिक संघों को मान्यता प्रदान की जाये।

जनवरी १९६० में, मद्रास में तृतीय अखिल भारतीय श्रम आर्थिक सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया था कि तृतीय आयोजना में श्रम-नीति इस बात पर आधारित होनी चाहिये कि औद्योगिक मामलों में राज्य का कम से कम हस्तक्षेप हो और श्रमिक ही अधिकाधिक हिस्सा लें तथा विधान पर कम से कम निर्भर रहा जाये। परन्तु श्रम सम्बन्धित जो भी विधान बने, उसे दृढ़ता से लागू किया जाये और श्रम निरीक्षकों को इतने अधिकार दिये जायें कि श्रम कानूनों के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन के सम्बन्ध में आश्वस्त हुआ जा सके। श्रम-प्रशासन से सम्बन्धित सरकारी अधिकारियों तथा प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी वर्ग को समुचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। अभी तक बेरोजगारी बराबर बढ़ रही है और श्रमिकों में भारी निराशा व्याप्त है। इन दोनों ही बातों से यह प्रकट होता है कि हम प्रथम दो योजनाओं में निर्धारित विभिन्न लक्ष्यों को पूरी तरह लागू करने में समर्थ नहीं हुए हैं। इस बात में भी सन्देह व्यक्त किया गया था कि सामाजिक रचना तथा संस्थागत ढाँचे पर परिवर्तन किये बिना क्या हम औद्योगिक लोकतन्त्र की स्थापना कर भी सकते हैं।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में श्रम नीति
(Labour Policy in the Third Five Year Plan).

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना की अन्तिम रिपोर्ट का अध्याय २५ श्रम नीति के विषय में है। रिपोर्ट में कहा गया है कि उद्योग और श्रमिक वर्ग की विशेष आवश्यकताओं और आयोजित अर्थ-व्यवस्था की जरूरतों को देखते हुए श्रम नीति का विकास किया गया है। मालिकों, मजदूरों और सरकार—तीनों दलों की राय विचार विनिमय से जान ली जाती है तथा तीनों दलों के प्रतिनिधियों के संयुक्त परामर्श के फलस्वरूप कुछ सिद्धान्त और व्यावहारिक नीति योजना ली गई

है। यह परामर्श विभिन्न स्तरों पर किया जाता है और इस त्रिदलीय व्यवस्था के सर्वोच्च शिखर पर भारतीय श्रमिक सम्मेलन है। उक्त त्रिदलीय मत के अनुसार सरकार द्वारा जो वैधानिक तथा प्रशासनिक कार्य श्रम-क्षेत्र में किये जाते हैं वे राष्ट्रीय श्रम नीति का आधार बनकर उसकी शक्ति तथा प्रकृति में परिणत हो जाते हैं। यह नीति ऐच्छिक आधार पर चालू रहती है।

दूसरी आयोजना की अवधि में अनुचित प्रवृत्तियों को रोकने और औद्योगिक सम्बन्धों को शुद्ध करने के लिये एक नये दृष्टिकोण को अपनाया गया था, जो कानूनी शक्ति के स्थान पर नैतिक मान्यताओं पर आधारित था। इस समय प्रत्येक स्तर पर तथासम्भव कार्यवाही करके अशांति को रोकने पर बल दिया जा रहा है। दूसरी आयोजना की अवधि में जो उल्लेखनीय विकास हुए उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—उद्योग में अनुशासन संहिता और आचरण संहिता का लागू करना, प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजनायें और उद्योग में उत्पादकता बढ़ाने के प्रति बढ़ती हुई जागरुकता। आगामी वर्षों में उन विचारों का पूर्ण रूप से लागू करना है जिनको दूसरी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में लागू करके उपयोगी पाया गया। औद्योगीकरण की बढ़ती हुई गति को देखते हुए, तीसरी आयोजना में श्रमिकों को महत्वपूर्ण योग देना है और बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों को पूरा करना है। सरकारी क्षेत्र के विस्तार के फलस्वरूप श्रम आन्दोलन के कर्त्तव्यों में गुणगत (Qualitative) अन्तर आ जायेगा और इसके फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था को समाजवाद की ओर ले जाने में आसानी होगी। (देखिये पृष्ठ १६)

तृतीय आयोजना में जो श्रम सम्बन्धी कार्यक्रम व सुझाव दिये गये हैं उनका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। औद्योगिक सम्बन्धों के बारे में पृष्ठ २२३, २२४ व २२५ देखिये। आयोजना में इस बात पर भी बल दिया गया है कि औद्योगिक सम्बन्धी व्यवस्था में जो कर्मचारी कार्य करते हैं उनके चुनाव और प्रशिक्षण की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिये एक प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू करने का प्रस्ताव है। श्रमिक शिक्षा कार्य-क्रम के लिये पृष्ठ ३६५ देखिये। श्रमिक संघों के सम्बन्ध में आयोजना के सुझाव पृष्ठ १२६, १३० पर देखिये। मजदूरी के सम्बन्ध में पृष्ठ ६३८ पर देखिये। सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में पृष्ठ ४८६, ४८६, ५०७ व ५१० देखिये। कृषि श्रमिकों के लिये आयोजना के सुझाव पृष्ठ ८७१ व ८६६ पर देखिये। आवास के लिये पृष्ठ २८२, २६१, २६६, व ३२१ देखिये। प्रशिक्षण कार्य-क्रमों के लिये पृष्ठ ७४ तथा रोजगार दफ्तरों के सम्बन्ध में सुझाव के लिये पृष्ठ ६८ देखिये। मिलों के बन्द हो जाने से श्रमिकों की सहायता के लिये कार्यक्रम पृष्ठ ४६७ पर देखिये। उत्पादकता के सम्बन्ध में आयोजना के विचार ७६० पर देखिये।

कार्य की दशायें, सुरक्षा और कल्याण सम्बन्धी जो कानूनी व्यवस्थायें हैं उनको और अच्छी तरह कार्यान्वित करवाने के लिये, आयोजना के अनुसार,

आवश्यक पग उठाने होंगे। इस सम्बन्ध मे कार्य की दशाओ और कुशलता मे उन्नति करने मे केन्द्रीय श्रम संस्थान और क्षेत्रीय श्रम संस्थानो का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। कारखाना सम्बन्धी अधिनियमो के प्रशासन के लिये जो राज्य सरकारो ने व्यवस्था की है उसे दृढ बनाना होगा। कारखानो मे दुर्घटना कम करने के लिये आवश्यक पग उठाने के लिये एक स्थायी सलाहकार समिति की नियुक्ति की जायेगी। खान उद्योग मे सुरक्षा शिक्षा और प्रचार के लिये एक राष्ट्रीय खान सुरक्षा परिषद की स्थापना करने का सुझाव है। इमारती और निर्माण कार्य के श्रमिको के लिये अलग सुरक्षा कानून बनाने के प्रश्न पर विचार किया जायेगा। जिस प्रकार कोयला और अभ्रक खान श्रमिको के लिये कल्याण निधियाँ है उसी प्रकार मैंगनीज और कच्चा लोहा खान उद्योगो के श्रमिको के लिये कल्याण निधियो की स्थापना की जायेगी।

जहाँ तक श्रमिक सहकारी समितियो का सम्बन्ध है। आयोजना मे यह कहा गया है कि श्रमिक वर्ग के लिये सहकारिता ने अभी तक कुछ अधिक कार्य नही किया है। केवल खान के श्रमिको के लिये कुछ खान समितियाँ हैं तथा कुछ सहकारी आवास समितियाँ भी है परन्तु सहकारिता और विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियो का श्रमिको के लिये बहुत लाभ होगा। सहकारी साख समितियो और सहकारी उपभोग समितियो के चलाने मे श्रमिक संघों और स्वय सेवी संस्थाओ को अधिक रुचि लेनी चाहिये।

ठेके के श्रमिको के सम्बन्ध मे आयोजना मे यह कहा गया है कि विभिन्न अध्ययनो की सहायता से ऐसे व्यवसाय चुनना सम्भव हो सकता है जिनमे ठेके के श्रमिको की पद्धति को चलाने की इजाजत दी जा सकती है और जहाँ इस पद्धति को समाप्त करना सम्भव नही है वहाँ ऐसे श्रमिको के हितो की सुरक्षा के लिये पग उठाये जाने आवश्यक हैं। कृषि और असगठित उद्योगों मे काम करने वाले श्रमिको की समस्याओ पर सरकार और श्रमिक संघों को विशेष ध्यान देना चाहिये।

तृतीय पचवर्षीय आयोजना अवधि मे श्रम अनुसन्धान का कार्य भी विस्तृत किये जाने की व्यवस्था है। श्रम अनुसन्धान का समन्वय करने के लिये एक छोटी केन्द्रीय समिति की नियुक्ति की जायगी। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र के बाहर श्रम सम्बन्धी मामलों पर अनुसन्धान करने के लिये संस्थाओ को सुविधायें देने का विचार है।

तृतीय आयोजना मे श्रम और श्रम कल्याण के कार्यक्रमो पर जो व्यय होना था उसका अनुमान ७१·०८ करोड रुपये था। इसमे से ४४ करोड रुपये केन्द्र द्वारा २५·१९ करोड रुपये राज्यो द्वारा तथा १·८६ करोड रुपये केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्रो मे व्यय किये जाने का कार्यक्रम था।

चौथी आयोजना के मसौदे की रूपरेखा के अध्याय २२ मे श्रम नीति व तत्सम्बन्धी कार्यक्रमों की विवेचना की गई थी जिनका उल्लेख अध्याय १, ३, ५,

७, ९, ११, १७ २१ और २२ में विभिन्न स्थानों पर किया गया है। चौथी आयोजना की रूपरेखा में श्रमिकों के प्रशिक्षण एवं अन्य कार्यक्रमों के लिये १६५ करोड़ रुपये नियत किये गये थे। चौथी आयोजना की अन्तिम रूपरेखा में श्रम कल्याण तथा कारीगरों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिये ३९.६० करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। इनमें से १० करोड़ रु० केन्द्रीय आयोजना के लिये, २७.०२ करोड़ रु० राज्यों की आयोजनाओं के लिये और ० ८८ करोड़ रु० संघीय क्षेत्रों की आयोजनाओं के लिये थे। पाँचवीं पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में कारीगरों के प्रशिक्षण, रोजगार सेवा तथा श्रम कल्याण के लिये ७० करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। इनमें से ७७.७७ करोड़ रु० केन्द्रीय आयोजना के लिये और ८२.८२ करोड़ रुपये तथा संघशासित क्षेत्रों की आयोजनाओं के लिये थे। पाँचवीं पंचवर्षीय आयोजना के अन्तिम प्रारूप में कारीगरों के प्रशिक्षण तथा श्रम कल्याण के लिये ५०.१८ करोड़ रु० निर्धारित थे जिसमें से १८.१८ करोड़ रु० केन्द्र में, ३०.६७ करोड़ रु० राज्यों में और ८.०५ करोड़ रु० संघ शासित क्षेत्रों में व्यय होने थे।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (A Critical estimate)

इसमें सन्देह नहीं कि आयोजना के सभी सुझाव एवं प्रस्ताव अति सुन्दर है परन्तु बहुत कुछ उनके उचित प्रकार से कार्यान्वित होने पर निर्भर करता है अन्यथा केवल कोरी आशाओं में अधिक सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। औद्योगिक श्रमिकों से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिये एक निश्चित मार्ग को अपनाना अति आवश्यक है। तृतीय आयोजना की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि इसमें बेरोजगारी की समस्या का कोई समाधान नहीं है। जब तृतीय आयोजना आरम्भ हुई थी तो देश में ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार थे, जबकि द्वितीय आयोजना के प्रारम्भ में यह संख्या ५३ लाख थी। तृतीय आयोजना के अन्त में, देश में बेरोजगार लोगों की अनुमानित संख्या १ करोड़ २० लाख थी। चौथी आयोजना की अवधि में इसमें २ करोड़ ३० लाख और रोजगार ढूंढने वालों की वृद्धि सम्भावित थी। चौथी आयोजना के अन्तर्गत अपनाये जाने वाले कार्यक्रमों से इन ३ करोड़ ५० लाख लोगों में से केवल १ करोड़ ९० लाख लोगों को ही रोजगार मिलना था। परिणामस्वरूप १ करोड़ ६० लाख व्यक्ति फिर भी अगली आयोजना के प्रारम्भ में बेकार होंगे। एक आयोजना से दूसरी में पुरानी बेरोजगारी का बढ़ना बहुत गम्भीर समस्या है। तृतीय आयोजना में लाभ सहभाजन के बारे में भी कुछ नहीं कहा गया है। अनिवार्य विवाचन के सम्बन्ध में भी आयोजना में कोई निश्चित बात नहीं कही गई है। श्रमिक संघों में जो बाहरी नेता पाये जाते हैं उनके बारे में भी आयोजना में और अधिक ध्यान देना चाहिये था। कई स्थानों पर इन बाहरी नेताओं की मालिकों द्वारा तथा श्रम विभाग के अधिकारियों द्वारा भी खुशामद की जाती है और इस कारण श्रमिकों को कई बार उचित व्यवहार प्राप्त नहीं हो पाता। इसके कारण मालिकों को भी कई बार ऐसी माँगों

का सामना करना पड़ता है, जिन्हें वह पूरा नहीं कर सकते। मालिक मजदूर सम्बन्धों की समस्या को सुलझाने के लिये अभी तक पूर्ण रूप से मानवीय दृष्टिकोण को नहीं अपनाया गया है। इस ओर अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। मालिकों को यह बात समझनी है कि वह श्रमिकों से एक भाई-चारे के नाते से व्यवहार करें तथा उद्योग में उन्हें बराबर का भागी मानें। मालिकों को युद्ध तथा उसके पश्चात् के काल में जो अत्यधिक लाभ हुए, उन्हें उनकी आदत सी पड़ गई है। उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में भी एक दृढ़ नीति अपनानी होगी। औद्योगिक क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक वातावरण की ओर भी अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। इस सम्बन्ध में सामाजिक कार्यकर्ताओं के कार्य की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए। इस आरोप की ओर भी अधिक जाँच की आवश्यकता है कि श्रम सम्बन्धी कानूनों का अवरचन किया जाता है तथा कई स्थानों पर उन्हें लागू नहीं किया जाता। गन्दी बस्तियों की समस्या का समाधान भी तब तक कठिन प्रतीत होता है जब तक सरकार अथवा स्थानीय निकायों द्वारा उनका अधिग्रहण नहीं कर लिया जाता। जब जमींदारी प्रथा को कृषि अर्थव्यवस्था में समाप्त कर दिया गया है तो सरकार द्वारा इन गन्दी बस्तियों के मालिकों को भी सहन नहीं करना चाहिये क्योंकि जैसा श्री गिरराज एम० पी० ने कहा है कि गन्दी बस्तियों के मालिकों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई जानी चाहिये। आयोजना में इन बस्तियों के लिये वित्तीय व्यवस्था होनी चाहिये थी।

उपसंहार (Conclusion)

किसी भी आयोजना की सफलता के लिये देश के नागरिकों के हृदय में उत्साह, आयोजना में विश्वास व्यक्तियों में राष्ट्रीय चरित्र तथा अपने कर्त्तव्यों के प्रति स्पष्ट बोध होना अति आवश्यक है। भारत जैसे निर्धन देश में जहाँ व्यक्ति पिछड़े हुये व अज्ञानी हैं तथा अपने ही हितों को ठीक-ठीक नहीं समझते, एक अधिक तकनीकी आयोजना को लागू करने में कोई विशेष लाभ नहीं होगा। आयोजना सरल होनी चाहिये जिसे देश का प्रत्येक व्यक्ति सरलता से समझ सके और जो देश के हर नागरिक को स्पष्ट रूप से बता सके कि उसे क्या करना चाहिए। आयोजना जनसाधारण के लिये होनी चाहिये जिसमें सब ही उसमें रुचि ले सकें और आयोजना पर विचार विमर्श और वाद-विवाद कर सकें। सर्वप्रथम तो व्यक्तियों के चरित्र-निर्माण का प्रयत्न करना चाहिये तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में कार्यकुशलता, ईमानदारी, सच्चरित्रता आदि पर बल देना चाहिये। देश के नेताओं को जनता से निकट सम्पर्क स्थापित करना चाहिये, और उन्हें यह नहीं करना चाहिये कि स्वयं तो भाषण देते रहें तथा दूसरों से कार्य करने के लिए कहते रहें। भारत में ईमानदार और निष्कपट व्यक्तियों की कमी नहीं है, आवश्यकता केवल इस बात की है कि उनके लिये कार्य करने का उचित वातावरण उत्पन्न किया जाये। हमें आशा करनी चाहिये कि सरकार, आयोजना एवं जनता का इस महान कार्य में पूर्णरूप से

योग होगा और वास्तविक दृष्टिकोण से सब कार्य किये जायेंगे। यह स्मरण रखना चाहिये कि देश का भविष्य इन पचवर्षीय आयोजनाओं की सफलता अथवा विफलता पर ही निर्भर करता है।

अन्त म, हम तृतीय पचवर्षीय आयोजना के शब्दों में कह सकते हैं कि—"कार्य की विशालता और उसकी बहुमुखी चुनौती को कम नहीं आंकना चाहिये। आयोजना में सबसे अधिक बल उस कार्यान्वित करन, शीघ्र गति और सम्पूर्ण रूप से उसके *व्यावहारिक परिणामों पर पहुंचने, अधिकाधिक उत्पादन और रोजगार* की स्थिति उत्पन्न करने और मानवी साधनों का विकास करने पर ही होगा। अनुशासन और राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एव आर्थिक उन्नति तथा समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति के मूल आधार हैं। तीसरी आयोजना के प्रत्यक पग पर निष्ठापूण नेतृत्व, सार्वजनिक सवाओं की अधिकतम कर्त्तव्यपरायणता और कार्यकुशलता, जनता के व्यापक सहयोग और सहानुभूति तथा अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभाने और भविष्य म अधिक भार वहन करने की तत्परता की आवश्यकता होगी।" हम आशा करत हैं कि हम सब इस चुनौती को स्वीकार करेंगे, ताकि "भारतीय जनता के लिये सुखी जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान किया जा सके और विदेशी आक्रमणों स देश की रक्षा सफलतापूर्वक की जा सके।"

———

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक
(CONSUMER PRICE INDEX NUMBERS)

सूचकांक का अर्थ तथा उसका महत्व
(Meaning and Importance of Index Numbers)

सूचकाक एक ऐसी प्रणाली है जिसके माध्यम से किसी आर्थिक क्रिया के स्तर मे हुये परिवर्तनो को मापा जाता है। ऐसे परिवर्तन सदा होते रहते है। विभिन्न अभिप्रायो की पूर्ति के लिये प्राय यह आवश्यक होता है कि ऐसे परिवर्तनो की दिशाओ और सीमाओ को मापा जाये। उदाहरणार्थ—मूल्य कभी घटते है कभी बढते है, उत्पादन भी कभी अधिक होता है कभी कम, मजदूरी में भी कभी बढोतरी होती है और कभी घटोतरी, आदि-आदि। सूचकांक द्वारा इस प्रकार के परिवर्तनो को न केवल मापा जाता है वरन् उसके माध्यम से किसी स्थान या वर्ग के निर्वाह खर्च मे बढोतरी या घटोतरी का भी ज्ञान हो सकता है। अनेक ऐसे कारण हैं जिन से इन विशिष्ट घटनाओ या क्रियाओ से सम्बन्धित सूचनाओ को प्राप्त करने की आवश्यकता पड जाती है। ऐसे सूचकाको से जीवन स्तर का बोध होता है इसके अतिरिक्त जीवन-स्तर पर मूल्यो के परिवर्तन की क्या प्रतिक्रिया होती है, यह भी विदित हो जाता है। आर्थिक, सामाजिक तथा प्रशासनिक कार्यों मे भी इस प्रकार की सूचनाओ का विशेष महत्व होता है। सम्भवत इन सूचकाको की सबसे महत्व-पूर्ण व्यावहारिक उपयोगिता यह है कि मजदूरी को इन सूचकाको से सम्बन्धित कर दिया जाता है और इन सूचकाको के साथ-साथ मजदूरी भी घटती-बढती रहती है। इस प्रकार मूल्यो तथा निर्वाह-खर्च के बढने या घटने के साथ-साथ मजदूरी मे भी वृद्धि या ह्रास स्वत: होते रहते है।

निर्वाह-खर्च स्वभावत: उपभोग के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न वस्तुओ के मूल्यों पर निर्भर रहता है। किन्तु सभी वस्तुओ के मूल्य सदा एक साथ नही घटते-बढते हैं। कुछ वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि होती है तो कुछ वस्तुओ के मूल्य गिरते भी हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न वस्तुओ के मूल्यो मे भिन्न-भिन्न दरो पर बढोतरी या कमी हो सकती है। अत विभिन्न समयो पर विभिन्न वस्तुओ के मूल्यों की सूची से स्थिति स्पष्ट रूप से प्रकाश मे नही आ पाती। सूचकाको का उद्देश्य यह होता है कि ऐसी विभिन्नताओ को कम कर दिया जाये और मूल्य परिवर्तनो की मुख्य प्रवृत्तियो या उनके व्यापक आँकडो को ज्ञात करने मे सहायता मिले। सूचकाको द्वारा आर्थिक क्रियाओ की तुलना करना सम्भव हो जाता है, इसलिये उन्हें कभी-कभी "आर्थिक बैरोमीटर" (Economic Barometers) भी कहा जाता है।

गत कुछ वर्षों में निर्वाह-खर्च सूचकांक से सम्बद्ध साहित्य का पर्याप्त मात्रा में प्रकाशन हुआ है। इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय द्वारा तैयार की गई निर्वाह-खर्च सांख्यिकीय रिपोर्ट से भी बहुमूल्य सूचना प्राप्त होती है। यह रिपोर्ट श्रम सांख्यिकीय शास्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के उस छठे अधिवेशन में प्रस्तुत करने के लिये तैयार की गई थी जो अगस्त १९४७ में 'मान्ट्रीयल' नामक स्थान पर हुआ था। नवीनतम परिभाषा के अनुसार 'निर्वाह खर्च सूचकांक इस उद्देश्य से बनाये जाते हैं कि जिन सेवाओं और वस्तुओं को उपभोक्ता मांग करता है उनके फुटकर मूल्यों के परिवर्तनों का उचित प्रकार से महत्वांकन (Weighting) करके मापा जाये।' अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के प्रयोग के अनुसार निर्वाह-खर्च सूचकांक के स्थान पर अब उपभोक्ता मूल्य सूचकांक वाक्यांश का प्रयोग होने लगा है। यह नया वाक्यांश इस कारण से भी अधिक उपयुक्त है कि सूचकांक वास्तव में उपभोक्ता की वस्तुओं के मूल्यों को ही मापते हैं।

सूचकांक की निर्माण विधि
(Method of construction of Index Numbers)

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की निर्माण विधि में उपरोक्त बात और भी स्पष्ट हो जायगी। क्योंकि जीवन स्तर तथा निर्वाह खर्च स्थान-स्थान तथा वर्ग-वर्ग से भिन्न होता है इसलिये यह आवश्यक है कि सूचकांक के निर्माण में प्रारम्भ में उस वर्ग या क्षेत्र की सीमायें नियत कर ली जायें जिसके लिये सूचकांक का निर्माण किया जा रहा हो। इसके पश्चात् एक आधार काल (Base Period) का निर्वाचन किया जाता है। इस आधार काल से भावी वर्षों के मूल्य का तुलनात्मक स्तर नियत किया जाता है। किसी एक वर्ष का सूचकांक यह सूचित करता है कि आधार वर्ष के मूल्यों के अनुसार उस वर्ष के मूल्य का क्या प्रतिशत है। एक साधारण उदाहरण से ही यह बात स्पष्ट हो जायेगी। यदि किसी विशेष वर्ष के मूल्य निर्वाचित किये गये आधार वर्ष के मूल्यों से चार गुना अधिक है तो उस वर्ष का सूचकांक ४०० माना जायेगा जबकि आधार वर्ष का सूचकांक सदा १०० माना जाता है। तुलना करने वाले स्तर को आधारित करने के लिये आधार वर्ष को स्पष्टतया साधारण वर्ष होना चाहिये, अर्थात उस वर्ष में मूल्य न तो बहुत अधिक होने चाहियें और न बहुत कम। कभी-कभी केवल एक वर्ष को ही आधार वर्ष मानने के स्थान पर सभी असाधारणताओं को दूर करने के लिये एक लम्बी अवधि को भी आधार वर्ष के रूप में मान लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त, जो वस्तुयें किसी सम्बन्धित वर्ग के रहन-सहन के अन्तर्गत आती हैं, उनका निर्वाचन करके उनके मूल्यों के आंकड़े एकत्रित कर लिये जाते हैं। समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों से उनके मूल्यों के भाव प्राप्त किये जाते हैं, ताकि उनका प्रतिनिधित्यात्मक (Representative) रूप में ज्ञान हो सके।

जाँच एक ऐसी समिति द्वारा की जानी चाहिये जिसमें श्रम ब्यूरो के निदेशक तथा केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन, आर्थिक सलाहकार के कार्यालय और औद्योगिक विकास व कम्पनी मामलों के मन्त्रालय का एक-एक प्रतिनिधि हो। किन्तु इस प्रक्रिया को अपनाने के कारण सूचकांकों के जारी होने में देरी नहीं होनी चाहिये। सूचकांकों की शुद्धता के सम्बन्ध का मुख्य उत्तरदायित्व श्रम ब्यूरो का ही होना चाहिए।

जो अधिकारी उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों का संकलन करें, उन्हें चाहिये कि वे सूचकांकों का उपयोग करने वालों को नियमित रूप से आवश्यक तकनीकी सूचनायें प्रदान करते रहें। इसके अतिरिक्त परिवार बजट पूछताछ के समय औपचारिक विचार-विमर्श की व्यवस्था की जानी चाहिये। श्रम आयुक्त के कार्यों में सङ्कलित मूल्यों का चार्ट प्रदर्शित किया जाना चाहिए तथा सूचकांकों का उपयोग करने वालों द्वारा यदि कुछ शंकायें उठाई जायें तो वरिष्ठ अधिकारी द्वारा उनका समुचित रूप से समाधान किया जाना चाहिये और उस विषय में कुछ तकनीकी समस्यायें सामने आयें तो उनका स्पष्टीकरण किया जाना चाहिये।

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक इण्डियन लेबर जरनल में प्रकाशित होते हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं

(१) सम्पूर्ण भारत के श्रमिक वर्ग के औसत उपभोक्ता मूल्य सूचकांक

(सामान्य तथा खाद्य)

(आधार १९४९=१०० तथा १९६०=१००)

वर्ष	आधार वर्ष (१९४९ = १००)		आधार वर्ष (१९६०=१००)	
	सामान्य सूचकांक	खाद्य सूचकांक	सामान्य सूचकांक	खाद्य सूचकांक
१९६१	१२६	१२६	१०४	१०९
१९६२	१३०	१३०	१०७	११२
१९६३	१३४	१३५	११०	११७
१९६४	१५२	१५५	१२५	१३४
१९६५	१६६	१७२	१३७	१४९
१९६६	१८४	१९०	१५१	१६४
१९६७	२०९	२२२	१७२	१९२
१९६८	२१५	२२८	१७७	१९६
१९६९	२१३	२२०	१७५	१९०
१९७०	२२४	२३१	१८४	२००
१९७१	२३०	२३५	१९०	२०३
१९७२	२४५	२५०	२०२	२१६
१९७३	२८७	३०४	२३६	२६२
१९७४	३६९	३९६	३०४	३४२
१९७५	३९०	४१३	३२१	३५७
१९७६	३६०	३६१	२९६	३१२
१९७७	३९०	३९७	३२१	३४३
१९७८	४००	४००	३२९	३४६
१९७९	४२५	४१९	३५०	३६२
१९८०	४८९	४८८	४०२	४२२

(२) श्रम ब्यूरो की उपभोक्ता मूल्य सूचकांक शृंखला
(सामान्य सूचकांक)
(आधार वर्ष १९६०=१००)

राज्य/केन्द्र	१९६१	१९६६	१९७०	१९७७	१९७८	१९७९	१९८० (सित०
	१	२	३	४	५	६	७
आन्ध्र प्रदेश :							
गुडूर	१०६	१४७	१८०	३०९	३२०	३२८	३८५
गन्टूर	१०५	१४९	१८९	३५६	३७२	३८७	३२३
हैदराबाद	१०४	१५४	१८८	३३२	३४२	३५८	४०३
असम :							
डिगबोई	१०४	१५५	१८८	३३१	३३८	३५७	४२१
डोमडूमा	१०२	१४४	१६४	२८२	२८४	३०५	३५६
लवाक	१०२	१५४	१५२	२६६	२७८	३१४	३३७
मरियानी	९९	१४५	१७२	२७२	२८६	३१२	३४५
रंगपुर	१०५	१५४	१७७	२८६	२९३	३१९	३७०
बिहार							
जमशेदपुर	१०१	१५२	१८१	३१४	३१९	३३९	३९४
झरिया	१००	१५९	१८२	३१३	३१५	३३२	३८२
कोडरमा	१०६	१७९	२११	३४८	३४६	३६४	४२२
मोंगहिर	१०४	१७५	२०४	३४५	३४६	३६८	४४३
न्योमण्डी	९९	१७५	१९७	३२६	३१५	३४७	३८५
गुजरात							
अहमदाबाद	१०२	१४०	१७५	३०५	३२०	३३९	३७४
भावनगर	१०२	१४३	१८५	३१७	३४०	३५९	४१०

हरियाणा :							
यमुनानगर	१०२	१५३	१६३	३४४	३५८	३७३	४२६
जम्मू तथा कश्मीर :							
श्रीनगर	१०४	१५१	१७१	३१८	३३०	३४७	४१०
केरल :							
अलेप्पी	१०२	१४७	१६५	३२२	३३०	३४४	४०८
अलवाई	१०४	१५६	१६७	३१८	३३०	३५८	४०४
मुन्दकायम	१०३	१४६	१६६	२६६	३११	३३०	३६३
मध्य प्रदेश :							
बालाघाट	१०५	१५३	१८३	३४८	३५४	३७१	४१७
भोपाल	१०८	१५५	१८८	३२५	३३६	३५०	४०६
ग्वालियर	१०६	१५४	१६१	३४०	३५०	३६३	४२७
इन्दौर	१०६	१५४	१६४	३४७	३५४	३६८	४२८
महाराष्ट्र :							
बम्बई	१०३	१४३	१८०	३१५	३२३	३४७	३६१
नागपुर	६७	१४४	१८६	३१२	३२२	३४१	३६५
शोलापुर	६६	१४५	१८३	३२२	३४०	३६२	४०७
कर्नाटक :							
अम्मालकी	१०५	१७३	१८४	३३४	३२८	३५२	४२१
बंगलौर	१०५	१५६	१८४	३४४	३३७	३६४	४३०
चिकमोगलूर	१०२	१८०	१८१	३३०	३३३	३५७	४०५
कोलार स्वर्ण क्षेत्र	१०२	१५०	१७६	३३०	३२७	३४५	४०६

उड़ीसा :							
बरबिल	९८	१५९	१८४	३०९	३१२	३२२	३६२
सम्भलपुर	१००	१५७	१९२	३३४	३५०	३७६	४४९
पंजाब :							
अमृतसर	१०२	१५१	१९१	३३६	३४६	३६४	४२४
राजस्थान							
अजमेर	१०५	१४७	१८५	३३१	३४०	३५५	४२२
जयपुर	१०६	१५५	१८८	३४२	३५६	३७२	४५५
तमिलनाडु :							
कोयम्बटूर	१०१	१४२	१६०	३१७	३२३	३५३	४१३
कुनूर	१०४	१४१	१७५	३१२	३२१	३४८	४०५
मद्रास	१०३	१४१	१९९	३०६	३१६	३४१	३८१
मदुराई	१०५	१३८	१८१	३२८	३३५	३६१	४१०
उत्तर प्रदेश :							
कानपुर	१०१	१५०	१८९	३२५	३३६	३४९	४०७
सहारनपुर	१०२	१५२	१८४	३२०	३४४	३५४	४११
वाराणसी	१०२	१७४	२०४	३७६	३९५	४०१	४६१
पश्चिमी बंगाल :							
आसनसोल	९९	१४५	१८६	३३७	३३८	३६२	४१२
कलकत्ता	१०१	१४४	१८१	३१८	३२६	३४५	३९६
दार्जिलिंग	९९	१६०	१९५	२७२	२७५	२९१	३३७
हावड़ा	१००	१५१	१८४	३११	३१६	३३३	३७४
जलपाईगुड़ी	१०१	१५९	१७२	२७९	२७७	२९६	३४८
रानीगंज	९८	१६८	१८३	३२४	३२२	३४७	४००
दिल्ली :							
दिल्ली	१०३	१४७	१९५	३५४	३६५	३५२	४२०

(३) श्रम ब्यूरो द्वारा निर्मित उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की अन्य शृंखला
(सामान्य सूचकांक)

	१९६६	१९७०	१९७७	१९७८	१९७९	१९८० (सित०)
	१	२	३	४	५	६
१. कृषि श्रमिक (अ० भारतीय) (आधार जुलाई १९६० — जून १९६१ = १००)	१७२	१९४	३२०	३१९	३३३	३९९
२. बागान श्रमिक—त्रिपुरा (आधार १९६१ = १००)	१५०	१८०	२७९	२९८	३२६	३४९
३. औद्योगिक श्रमिक—						
(क) हिमाचल प्रदेश (आधार १९६५ = १००)	१११	१४५	२३४	२४१	२५४	२९३
(ख) गोआ (आधार १९६६ = १००)	—	१२५	२२०	२२९	२४५	२८७
(ग) भिलाई (आधार १९६६ = १००)	—	१२५	२१७	२३१	२४०	२७३
(घ) कोठागुडम (आधार १९६६ = १००)	—	१२२	२०७	२१८	२३२	२६७
४. गैर-शारीरिक काम करने वाले शहरी कर्मचारी (अ० भा०—आधार १९६० = १००)	१४२	१७३	२९२	३०४	३२१	३७०

परिशिष्ट 'ख'

बेरोजगारी

UNEMPLOYMENT

बेरोजगारी का अर्थ व परिभाषा :
(Meaning and Definition of Unemployment) :

बेरोजगारी का अध्ययन बहुत ही जटिल है क्योंकि इसके अध्ययन में सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली के कार्य-सचालन की जांच करनी पडती है। बेरोजगारी जैसी बुराई के प्रस्तावित उपचार अनेक हैं। परन्तु बेरोजगारी के कारणो की जितनी अधिक जाच की जाती है उतना ही अधिक यह ज्ञात होता है कि किसी एक उपचार से इस बुराई को दूर नही किया जा सकता। प्राय लोग यह ठीक-ठीक नही समझते कि बेरोजगारी के कारण आर्थिक प्रणाली मे जड़ें बहुत गहराई तक पहुँची होती है। आर्थिक विकास के लिये रोजगार की समस्या जितनी अधिक महत्व रखती है उतना अन्य किसी समस्या का महत्व नही है। जब तक आर्थिक क्रियाओ का मूल उद्देश्य मानव आवश्यकताओ की सन्तुष्टि करना रहेगा तब तब बेरोजगारी एव अपूर्ण रोजगार के होने का अर्थ यही होगा कि देश मे आर्थिक असन्तोष तथा निर्धनता व्याप्त है। रोजगार के अवसर जितने अधिक होगे उतनी ही व्यक्तियो की समृद्धि अधिक होने की सम्भावना होगी तथा वस्तुओं का उत्पादन बढ़ेगा और सेवाओ मे वृद्धि होगी। इनसे अन्तत राष्ट्रीय कल्याण मे भी वृद्धि होगी।

किसी विशेष काल मे किसी व्यवसाय या उद्योग मे रोजगार की मात्रा से तात्पर्य उन मानव घण्टो के कार्य से होता है जो उस विशेष समय मे किया जाता है। परन्तु बेरोजगारी का विचार इतना स्पष्ट नही है। बेरोजगारी की परिभाषा इस प्रकार से नही दी जा सकती कि जब भी कोई व्यक्ति कार्य नही कर रहा है तो वह बेरोजगार है। उदाहरणत, यदि रात्रि मे भी व्यक्ति सोता है तो उसे बेकार अथवा बेरोजगार नहीं कहा जा सकता। प्रोफेसर पीगू के अनुसार, किसी व्यक्ति को तभी बेरोजगार कहा जा सकता है जब उसे रोजगार, प्राप्त करने की इच्छा तो होती है परन्तु उसे रोजगार, नही मिलता। इसके अतिरिक्त, रोजगार प्राप्त करने की इच्छा के विचार की विवेचना प्रतिदिन कार्य करने के घण्टे, मजदूरी की दरें तथा मनुष्य के स्वास्थ्य की दशाओं को ध्यान मे रखकर करनी चाहिये। यदि किसी उद्योग मे कार्य करने के सामान्य घण्टे आठ है परन्तु कोई व्यक्ति नौ घण्टे कार्य करने की क्षमता तथा इच्छा रखता है तो कोई यह नही कह सकता कि वह दिन मे एक घण्टा बेकार रहता है। दूसरे, मजदूरी प्राप्त करने की इच्छा का अर्थ प्रचलित मजदूरी की दरों पर कार्य करने की इच्छा से लेना चाहिये। उदाहरण के लिये, एक

ऐसे व्यक्ति को बेरोजगार नहीं कहा जा सकता जो तब कार्य करना पसन्द करता है जब प्रचलित मजदूरी की दर १० रुपये प्रतिदिन हो, परन्तु उस समय कार्य नहीं करना चाहता जब प्रचलित मजदूरी की दर ५ रु० प्रतिदिन हो। इसके अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति का बेरोजगार नहीं कहा जा सकता जो कार्य करने की इच्छा तो रखता है परन्तु बीमारी के कारण कार्य नहीं कर पाता।

अत बेरोजगारी की परिभाषा में उस अवस्था को लिया जाता है जिस अवस्था में देश में कार्य करने वाली आयु के योग्य व समर्थ व्यक्ति बहुसंख्या में होते हैं और ऐसे व्यक्ति कार्य करना चाहते है परन्तु उनको प्रचलित मजदूरी पर कार्य प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसे व्यक्ति जो शारीरिक व मानसिक कारणों से कार्य करने के लिये अयोग्य है अथवा जो कार्य करना नहीं चाहते, बेरोजगारी की श्रेणी में नहीं आते। जो काय करने के अयोग्य हैं उनका 'रोजगार अयोग्य" (Unemployables) कहा जा सकता है और जो योग्य हैं परन्तु काय करन स मना करते है वे समाज के लिये पराश्रयी (Parasites) हैं। बालक, रोगी, वृद्ध तथा अपाहिज ऐसे व्यक्ति है जिनका रोजगार अयोग्य कहा जा सकता है और साधु, पीर, भिखमंगे तथा कार्य न करन वाले जमींदार आदि ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें पराश्रयी कहा जा सकता है।

बेरोजगारी पर भिन्न विचार तथा उनके सिद्धान्त
(Various Views and Theories of Employment)

रोजगार व बेरोजगारी के सिद्धान्तों की विवेचना अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का एक रोचक परन्तु जटिल विषय है जिसके विस्तार में जाना यहाँ हमारे लिये शायद आवश्यक नहीं है। यहाँ केवल इतना कहा जा सकता है कि सस्थापक अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) ने बेरोजगारी का वर्णन श्रम की माँग व पूर्ति की दशाओं के अनुसार किया था। उन्होंने दो प्रकार की बेरोजगारी का उल्लेख किया था। असतुलनात्मक (Frictional) तथा ऐच्छिक (Voluntary)। असतुलनात्मक बेरोजगारी श्रम की माँग मे परिवर्तन के कारण होती है, जिसके परिणामस्वरूप श्रम की माँग व पूर्ति की अवस्थाओं में अस्थायी असन्तुलन हो जाता है। ऐच्छिक बेरोजगारी तब होती है जब मजदूर अपनी वास्तविक मजदूरी की दर में कटौती को स्वीकार नहीं करते। परन्तु इस प्रकार की बेरोजगारी पूर्ण सन्तुलन की अवस्था मे नहीं हो सकती जबकि स्वतन्त्र प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार से सस्थापक अर्थशास्त्रियों के अनुसार बेरोजगारी श्रम की माँग व पूर्ति की असतुलित दशा का प्रमाण है।

प्रो० जे० एम० कीन्स सस्थापक अर्थशास्त्रियों के इस तर्क को नहीं मानते कि बेरोजगारी सतुलन की अवस्था मे नहीं हो सकती। उन्होंने रोजगार का अपना अलग सिद्धान्त दिया है और अनैच्छिक (Involuntary) बेरोजगारी की धारणा को भी उसमे सम्मिलित कर लिया है। इस अनैच्छिक बेरोजगारी की परिभाषा उन्होंने इस प्रकार दी है जब कोई व्यक्ति प्रचलित वास्तविक मजदूरी से कम

वास्तविक मजदूरी पर कार्य करने के लिये तैयार हो जाता है, चाहे वह कम नकद मजदूरी पर कार्य करने के लिये तैयार न हो, तब इस अवस्था को अनैच्छिक बेरोजगारी कहते हैं। इस प्रकार किसी उत्पादक व्यवसाय में केवल लगे रहने का अर्थ आवश्यक रूप से यह नहीं लिया जा सकता कि अब बेरोजगारी नहीं है। ऐसे व्यक्तियों को पर्याप्त रूप से रोजगार पर लगा हुआ नहीं कहा जा सकता जो केवल आंशिक रूप से रोजगार में लगे हैं या जो उच्च प्रकार के कार्य करने की क्षमता रखते हुए भी निम्न प्रकार के कार्य करते हैं।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी में भेद किया जा सकता है। ऐच्छिक बेरोजगारी उस समय उत्पन्न होती है जब व्यक्ति स्वयं कार्य से हाथ खींच लेते है अथवा जब कोई श्रमिक उस पारिश्रमिक को स्वीकार करने से इन्कार कर देता है या स्वीकार नहीं कर पाता जो पारिश्रमिक उसकी सीमान्त उत्पादकतानुसार दिया जाता है। ऐसी परिस्थिति का कारण कोई कानून हो सकता है, उदाहरणत जब मजदूरी निर्धारित कर दी जाती है। सामाजिक चलन और रीति-रिवाज द्वारा भी ऐसी परिस्थिति आ सकती है, उदाहरणत जब किसी व्यक्ति को उत्तराधिकार में बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है या रीति-रिवाज के कारण उसे कुछ विशेष कार्यों को करने की मनाही होती है। इस परिस्थिति का एक अन्य कारण यह भी है कि सामूहिक सौदाकारी के लिए श्रमिक सगठन बना लेते हैं या किसी भी परिवर्तन के प्रति उनका उत्साह मन्द होता है। कभी कभी केवल मनुष्य के हठ के कारण भी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। अनैच्छिक बेरोजगारी दृश्य (Visible) या अदृश्य (Invisible) किसी प्रकार की हो सकती है। दृश्य बेरोजगारी का अर्थ अल्पकाल या दीर्घकाल के लिये रोजगार के पूर्ण अभाव से है। अदृश्य बेरोजगारी किसी भी प्रकृति की हो सकती है, जैसे—छिपी हुई (Disguised) बेरोजगारी, अपूर्ण रोजगार और असतुलनात्मक बेरोजगारी। छिपी हुई बेरोजगारी उस समय उत्पन्न होती है जब बर्खास्त या छटनी किये गये श्रमिक, या अपनी योग्यता व कुशलतानुसार कार्य न पाने वाला श्रमिक, ऐसे विभिन्न उद्योगों में काम करने को विवश हो जाते है, जो घटिया प्रकार के अथवा कम उत्पादक होते हैं। उदाहरणत भारत में बहुत से श्रमिकों को जब कोई उचित कार्य नहीं मिलता तो वे रिक्शा चलाने लगते हैं। अपूर्ण रोजगार की अवस्था उस समय होती है जब श्रमिक को उस प्रकार का कार्य नहीं मिलता जिस प्रकार का कार्य करने की वह क्षमता रखता है। यह अपूर्ण रोजगार, कार्य की मात्रा, कार्य के घण्टे या श्रमिक की मजदूरी के रूप में किसी भी रूप में प्रदर्शित हो सकता है। असन्तुलनात्मक बेरोजगारी उस समय होती है जबकि माँग और पूर्ति की अवस्थाओं में कुसमायोग होने के कारण श्रमिक अस्थायी रूप से बेरोजगार हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति श्रमिक की अगतिशीलता, काम की मौसमी प्रकृति, कच्चे पदार्थों की कमी या मशीनरी के टूट जाने आदि के कारण उत्पन्न हो जाती है।

कीन्स ने रोजगार का अपना अलग सिद्धान्त दिया है जो कि रोजगार और निपज (Output) में तकनीकी सम्बन्ध पर आधारित है। इस सिद्धान्त का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—जनता की मनोवृत्ति यदि एक सामान रहे रोजगार की मात्रा समर्थ माग (Effective Demand) की मात्रा पर निर्भर करती है, परन्तु यह तभी हो सकता है जब वास्तविक राजगार पूर्ण रोजगार से अधिक न हो। समर्थ माँग निवेश की दर तथा उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to consume) से निर्धारित होती है। (उपभाग प्रवृत्ति ज्ञात करने के लिये उपभोग पर कुल राष्ट्रीय आय का जितना प्रतिशत व्यय होता है उसको कुल आय से भाग दे देते है) निवेश की दर, ब्याज की दर तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Efficiency of Capital) पर निर्भर होती है और ब्याज की दर द्रव की मात्रा तथा नकदी तरजीह (Liquidity Preference) की स्थिति से निश्चित होती है। कीन्स ने निवेश तथा राजगार को स्पष्ट करने के लिये सर्वप्रथम निवेश गुणाक (Investment Multiplier) का विचार प्रस्तुत किया था। कुल निवेश मे हुई वृद्धि तथा उसके परिणामस्वरूप कुल राष्ट्रीय आय मे हो जाने वाली वृद्धि के अनुपात को निवेश गुणाक कहा गया है। उद्योगो में जो समस्त पूँजी लगाई जाती है उसे कुल निवेश कहते हैं। यदि उद्योगो मे कुल निवेश को बढा दिया जाये तो देश की आय मे केवल इतनी ही वृद्धि नही होगी जितनी निवेश मे हुई है बल्कि इससे भी अधिक होगी। यदि समाज के सदस्यो की उपभोग मनोवृत्ति ऐसी है कि वह बढी हुई आय का ९/१० भाग उपभोग मे लगा देते है तो गुणांक १० होगा और इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों मे वृद्धि द्वारा जो समस्त रोजगार उत्पन्न होगा वह उस मूल रोजगार से दस गुना होगा जो स्वय सार्वजनिक कार्यों द्वारा उत्पन्न होता है।

इस प्रकार पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित समर्थ माँग उस समय फलीभूत होती है जब उपभोग प्रवृत्ति और निवेश की प्रेरणा दोनों का एक दूसरे से एक निश्चित सम्बन्ध रहता है। ऐसी स्थिति तब ही उत्पन्न हो सकती है जब सयोग से या योजना से, चालू निवेश द्वारा ऐसी माँग उत्पन्न हो जाये जो पूर्ण रोजगार के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है और यह माँग उस माँग से अधिक हो जो पूर्ण रोजगार की स्थिति मे जनता द्वारा उपभोग की वस्तुओ पर व्यय करने से उत्पन्न होती है। अन्य शब्दों म कीन्स के अनुसार, बेराजगारी का मूल कारण आय के कुविभाजन के कारण उत्पन्न अधिक-बचत (Over-saving) और अपूर्ण व्यय (Under-spending) हैं। व्यक्तियों द्वारा जो भी उपभोग पर व्यय होता है उससे रोजगार उत्पन्न होता है परन्तु उनके द्वारा जो भी बचाया जाता है उससे रोजगार तभी उत्पन्न होता है जब इस बचत का पूँजी पदार्थों मे वृद्धि करने के लिये निवेश होता है।

बेरोजगारी के कारण (Causes of Unemployment)

बेरोजगारी के सम्बन्ध मे जो कुछ ऊपर वर्णन किया गया है वह रोजगार

तथा बेरोजगारी उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों को समझाने हेतु केवल सैद्धान्तिक विचार-विमर्श है। आधुनिक सिद्धान्तों की गूढ़ता में उतरे बिना यह कहा जा सकता है कि बेरोजगारी के कारण व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत दोनों ही हो सकते है जिन्हे आन्तरिक एव बाह्य कारण कहा जा सकता है। व्यक्तिगत कारण चरित्र म दोष, तथा शारीरिक अयोग्यता है, अर्थात् श्रमिक की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक कमियों के कारण बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। कई बार यह देखा गया है कि इच्छा होते हुए भी एक व्यक्ति अपनी शारीरिक विकृति, दुर्बल मानसिक अवस्था, *किसी दुर्घटना, दोषपूर्ण शिक्षा एव प्रशिक्षण आदि के कार्य नही कर पाता। तथापि* यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इन कारणों को पूर्णतया व्यक्तिगत कह देने का तात्पर्य यह हो जाता है कि इन कारणों का उत्तरदायित्व हम ऐसी परिस्थितियों पर डाल देते है जो इसके लिये उत्तरदायी नही है। इसमें कोई सन्देह नही कि अनेक शारीरिक कमियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से फैक्ट्री प्रणाली के कारण ही उत्पन्न होती हैं। यदि यह कारण मालिक से सम्बन्धित है तो इन कमियों का उत्तरदायित्व मालिक का ही होना चाहिये अन्यथा यदि कारण कम विशिष्ट प्रकार का है तो इसका उत्तरदायित्व राज्य पर होना चाहिये।

इस अतिरिक्त बेरोजगारी के बाह्य कारण भी है जिन्हे आर्थिक कारण कहा जा सकता है। इनमे से प्रथम कारण सामयिक उतार चढ़ाव (Cyclical Fluctuations) हैं। यह देखा गया है कि समृद्धि तथा मन्दी के काल लगभग नियमित रूप से कुछ मध्यान्तर पर एक दूसरे के पश्चात् आते है तथा इस चक्र ने इस विश्वास को जन्म दे दिया है कि आर्थिक व्यवस्था मे कुछ ऐसे अन्तर्निहित दोष है जो व्यापार मे चक्र उत्पन्न कर देते है। मन्दी के काल मे व्यवसाय मे कमी आ जाती है तथा बेरोजगारी बढ जाती है। समृद्धि और मन्दी कालों के विभिन्न कारण है जिन्हे व्यापार चक्रों के सिद्धान्तो द्वारा समझाया गया है। यह एक पृथक् विषय है। द्वितीय कारण औद्योगिक परिवर्तन है, अर्थात् माँग मे परिवर्तनों के कारण अथवा नवीन खोजो या तकनीकी उन्नति के कारण उत्पादन प्रणालियों मे परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् विवेकीकरण योजनायें लागू करने के कारण बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। तृतीय कारण यह है कि कुछ आर्थिक क्रियायें अल्पकालीन या मौसमी होती है जिनके कारण अपूर्ण रोजगार ही मिल पाता है। मकान, सड़के आदि बनाने वाले तथा खेती मे कार्य करने वाले श्रमिक वर्ष भर पूर्णतया रोजगार नही पाते। इसके अतिरिक्त, नैमित्तिक श्रमिक प्रणाली से यह स्पष्ट है कि कुछ कार्यों के लिये अस्थायी रूप से श्रमिक रखा लिये जाते है। ऐसे व्यक्ति तभी रोजगार पाते है जब व्यापार तीव्र होता है अन्यथा अन्य काल मे वह बेरोजगार ही रहते है। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि यदा-कदा श्रमिक संघ मालिकों को श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी देने को विवश करके बेरोज-

भी बहुत अधिक गिर जाता है। माता का स्वास्थ्य इतना गिर जाता है कि आने वाली सन्तानों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। बालक बड़े होने पर उचित प्रकार से अपना जीवन निर्वाह करने के योग्य नहीं रह जाते क्योंकि उन्हें उचित शिक्षा नहीं मिल पाती। इस प्रकार बेरोजगारी के जो आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक परिणाम होते हैं वह आरम्भ में भी और अन्त में भी बहुत गम्भीर होते हैं। अतः देश में बेरोजगारी होने से राष्ट्रीय लाभांश तथा समाज कल्याण दोनों को ही हानि पहुँचती है।

बेरोजगारी के उपचार (Remedies of Unemployment)

जैसा कि पीछे भी बताया जा चुका है, बेरोजगारी की जड़ें सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में उससे कहीं अधिक गहराई में बैठी हुई हैं जितना कि सामान्यतः समझा जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिये बहुमुखी प्रयास किये जायें। अधिक निवेश तथा पूँजीगत साज-सज्जा का निर्माण करके राष्ट्र के साधनों का विकास, बड़े तथा छोटे दोनों ही पैमाने के क्षेत्रों में औद्योगीकरण की रफ्तार में तेजी, कृषि का पुनर्गठन, रोजगार प्रधान शैक्षणिक व्यवस्था, मानव-शक्ति का नियोजन, जनसंख्या की वृद्धि पर रोक तथा ठोस मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियाँ आदि—ये कुछ ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा देश की बेरोजगारी की समस्या पर काबू पाया जा सकता है। बेरोजगारी के उपचार के लिये यह सुझाव दिया जाता है कि श्रम की माँग तथा पूर्ति में सन्तुलन लाने, श्रमिकों को अधिक नियमित प्रकार का कार्य दिलाने, तथा नैमित्तिक श्रम की बुराइयों को कम करने के लिए रोजगार दफ्तरों की स्थापना करनी चाहिये। व्यापार-चक्रों के कारण उत्पन्न बेरोजगारी—अर्थात् मन्दी के काल में उत्पन्न बेरोजगारी को राजकीय कार्यवाहियों द्वारा कम किया जा सकता है। मन्दी से प्रभावित समस्त व्यवसायों में कार्य के घण्टों को कम करके अथवा कम समय की पारियाँ चलाकर श्रम की माँग बढ़ाई जा सकती है। श्रमिकों की माँग सार्वजनिक इमारतों रेलों, सड़कों, नहरों आदि का निर्माण जैसे सार्वजनिक कार्यों को करके भी बढ़ाई जा सकती है। यह कार्य न केवल उनमें लगे हुए व्यक्तियों को रोजगार देते हैं वरन् इनमें लगे हुए श्रमिकों में विभिन्न वस्तुओं की माँग उत्पन्न करके इन वस्तुओं के निजी उत्पादन को भी प्रोत्साहित करते हैं। किन्तु इन समस्त कार्यों को सावधानी से आयोजित करना चाहिये जिसके लिये विशेष संस्थायें, जैसे—राष्ट्रीय रोजगार तथा विकास बोर्ड, स्थापित हो सकें, जिनके द्वारा ऐसे सार्वजनिक व्यय को ठीक प्रकार से किया जा सके जो व्यय मन्दी के प्रभाव को दूर करने के लिये किया जाता है। सरकार को भी तेजी के व्यापार काल में ऐसी सार्वजनिक प्रायोजनायें नहीं चालू करनी चाहियें जिन्हें स्थगित किया जा सकता है या जिन्हें निजी उद्योगपतियों को दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मौसमी तथा अल्पकालीन बेरोजगारी विभिन्न व्यापारों का सम्मिश्रण करके दूर की जा सकती है, जिससे पूर्ण वर्ष रोजगार मिलता रहे। रोजगार के अयोग्य व्यक्तियों में से उनका राज्य द्वारा उपचार होना

चाहिये जो शारीरिक रूप से अयोग्य है किन्तु ठीक हो सकते हैं। जो सामाजिक पराश्रयी है उनके सुधार का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिये। बेरोजगारी के काल में कष्टों को कम करने के लिये बेरोजगारी बीमा योजनाओं को लागू किया जाना चाहिये। इनका विवेचन सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत किया जा चुका है।

भारत में बेरोजगारी तथा उसके विभिन्न प्रकार
(Unemployment in India its Various Types)

भारत जैसे देश मे बेरोजगारी के दुष्परिणाम पूर्णतया असहनीय हो जाते है। बेरोजगारी देश के लिये बहुत महगी पडती है। ऐसा देश जो खनिज, कृषि तथा शक्ति के साधनों मे धनी माना जाता है, परन्तु जिन साधनों का अभी तक पूर्ण लाभ नहीं उठाया गया है, तथा जिसमे निःसन्देह मानव-शक्ति का अभाव नही है, उस देश मे बेरोजगारी होने का अर्थ यह होता है कि सम्भाव्य (Potential) राष्ट्रीय धन की बहुत हानि हो रही है।

भारत मे साधारण समय से भी समस्त वर्गों मे बेरोजगारी व्यापक रूप से पाई जाती है। शिक्षित वर्ग मे, अशिक्षित वर्ग मे, औद्योगिक श्रमिकों मे तथा खेतीहरों मे बेरोजगारी की विकट समस्या है। देश मे अपूर्ण रोजगार भी बहुत अधिक है। जैसा कि स्वर्गीय पडित नेहरू ने ससद् मे प्रथम पचवर्षीय आयोजना पर वाद-विवाद के समय बताया था, भारत मे दो प्रकार के बेरोजगार व्यक्ति है—एक अपेक्षाकृत कम सख्या वाले वर्ग के व्यक्ति है और दूसरी बडी सख्या वाले वर्ग के। कम सख्या वाला वर्ग तो उन व्यक्तियों का है जो बिल्कुल परिश्रम नही करते और न कोई उत्पादक प्रयत्न करते है, बल्कि दूसरो के श्रम पर जीवित रहना चाहते है। इनकी आय किराये के रूप मे या अन्य किसी प्रकार की होती है। ये व्यक्ति अनुत्पादक तथा बेरोजगार होते हैं। ये ऐसे व्यक्ति है जो समाज के उच्च शिखर पर आसीन है। इन्हे कार्य करने की आवश्यकता नही है, क्योंकि अन्य व्यक्ति इनके लिये पहले से ही या अन्य किसी समय धन उपार्जन कर चुके थे। यह उच्च स्तर पर बेरोजगार व्यक्ति होते हैं। ये न ही कार्य करते है और न ही उत्पादन करते हैं वरन् सम्भवत दूसरो से अधिक उपभोग करते है। अत ये समाज पर भार हैं। दूसरी प्रकार की बेरोजगारी दो श्रेणियों मे विभाजित की जा सकती है। बेरोजगारी म से कुछ व्यक्ति आलसी होते हैं क्योंकि हमारे देश मे आलस्य को दान देने वाले व्यक्तियों द्वारा बढावा दिया जाता है। ऐसे आलसी व्यक्तियो की सख्या कई लाख भी हो सकती है, किन्तु तब भी ऐसे व्यक्ति अपेक्षाकृत कम है। इसके पश्चात् वास्तविक रोजगार आते है, अर्थात् वे व्यक्ति जो यदि अवसर दिया जाये तो कार्य कर सकते हैं, जिनको सरलता से ऐसा अवसर नही मिल पाता। देश मे ऐसे व्यक्तियों की ही बेरोजगारी की वास्तविक समस्या है।

देश मे खेतीहर बेरोजगारी तथा अपूर्ण बेरोजगारी पाई जाती है। भूमि पर अधिक जनसख्या का दबाव, उपाग उद्योगो की कमी तथा खेतीहर कार्यों की मौसम प्रकृति इस प्रकार की बेरोजगारी के कारण हैं। कृषि अनेक दोषो से परिपूर्ण है तथा इस पर निर्भर रहने वाले लाखो भारतीयो को इससे पूर्ण रोजगार नही

मिलता। यद्यपि इस प्रकार की बेरोजगारी के सही आंकड़े प्राप्त नहीं हैं किन्तु इसकी सीमा इसी बात से ज्ञात हो जाती है कि भारतीय कृषक का अपूर्ण रोजगार के कारण जीवन-स्तर बहुत गिरा हुआ है तथा अधिक संख्या में भूमिहीन श्रमिक पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, देश में औद्योगिक बेरोजगारी भी है, क्योंकि औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी रही है। उद्योगों का स्थानीयकरण भी दोषपूर्ण है जिसके कारण कुछ केन्द्रों में बहुत उद्योग स्थापित किये गए हैं तथा बहुत भीड़-भाड़ हो गई है। परिणामस्वरूप श्रमिकों को लगाने की क्षमता कम हो गई है। हमारे उद्योगों में उत्पादन की लागत भी काफी ऊंची है और वे उचित प्रकार से विकसित नहीं हो पाते हैं। कुछ उद्योगों में विवेकीकरण योजनाओं ने भी श्रमिकों को रोजगार-विहीन कर दिया है। कुछ उद्योग जैसे—चीनी उद्योग, मौसमी होते हैं और वह पूर्णकालिक रोजगार नहीं दे पाते।

शिक्षित वर्ग में भी बेरोजगारी पाई जाती है। इसका कारण भी स्पष्ट है। हमारी शिक्षा-प्रणाली बहुत अधिक साहित्यिक है तथा हमारे स्नातक क्लर्कों अथवा साहित्यिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये उपयुक्त नहीं रहते। स्नातकों की बड़ी संख्या को सीमित कार्यों में लगाना सम्भव नहीं है। अतः शिक्षित वर्ग में भी व्यापक रूप से बेरोजगारी फैली हुई है।

समस्त प्रकार की बेरोजगारी का मूल कारण देश का आर्थिक पिछड़ापन है। आर्थिक क्रियायें बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ गति नहीं रख सकी हैं। समस्त प्रकार के रोजगार-योग्य श्रमिकों की संख्या प्राप्त रोजगार की मात्रा से कहीं अधिक है। इसका कारण यह है कि देश के उत्पादक साधनों का पूर्णतया उचित रूप से उपयोग नहीं किया गया। हमारी अर्थव्यवस्था की असन्तुलित प्रकृति ही बेरोजगारी का मुख्य कारण है। आयोजना आयोग बेरोजगारी के लिये निम्नलिखित बातों को मुख्यतः उत्तरदायी मानता है (क) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, (ख) पुरातन ग्रामीण उद्योगों का विलीन होना, (ग) गैर खेतीहर क्षेत्र का अपर्याप्त विकास, (घ) विभाजन के कारण जनसंख्या का अधिक संख्या में विस्थापन।

भारत में बेरोजगारी की सीमा (Extent of Unemployment in India)

उपरोक्त बातों से यह परिणाम निकलता है कि देश में बेरोजगार लोगों की संख्या बहुत अधिक है। युद्ध-काल में बेरोजगारी की समस्या दूर हो गई थी क्योंकि युद्ध के सफलतापूर्वक संचालन के लिये सरकार ने बहुत अधिक संख्या में व्यक्तियों को नौकरी पर लगाया था। परन्तु युद्ध समाप्त हो जाने के पश्चात् लाखों व्यक्ति बेरोजगार हो गये और उनको शान्तिकालीन अर्थव्यवस्था में पुनः रोजगार पर लगाने की समस्या उत्पन्न हो गई। बेरोजगारी की समस्या विस्थापितों के कारण और भी अधिक गम्भीर बन गई। इन विस्थापितों की संख्या लगभग ७९–८० लाख थी। इनमें से २०–३० लाख ऐसे व्यक्ति थे जो कार्य करने के सर्वथा योग्य थे। जून १९५० की अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समीक्षा के अनुसार अप्रैल १९५० में भारत में बेरोजगारी की संख्या २,८१,९७२ थी।

देश मे बेरोजगारी के स्तर को प्रकट करने वाले ऐसे कोई लगातार आंकडे उपलब्ध नही है जिनकी तुलना की जा सके। तथापि, बेरोजगारी के सम्बन्ध मे सूचनाए राष्ट्रीय सेम्पिल सर्वेक्षणों एव रोजगार दफ्तरो मे ही उपलब्ध होती है। रोजगार दफ्तरो के चालू रजिस्टरो की सख्या ही रोजगार पाने के इच्छुक लोगो की जानकारी देने वाला एक पैमाना है, यद्यपि बेरोजगारो की सख्या के अधिक सही एव विश्वसनीय अनुमानो के लिये उन आकडो मे भी कुछ सुधार अपेक्षित है।"[1]

बात यह है कि रोजगार दफ्तरो मे बेरोजगारो द्वारा नाम का पञ्जीकरण करना चूंकि ऐच्छिक होता है, अत बेरोजगारो की थोडी सख्या ही रोजगार दफ्तरो म अपना नाम दर्ज कराती है। कुछ लोग ऐसे होते है जो पहले से ही काम पर लगे होते है परन्तु फिर भी और अच्छा रोजगार पाने के लिये वे रोजगार दफ्तरो मे अपना नाम दर्ज करा लेते है। कुछ छात्र भी वहाँ अपना नाम दर्ज करा लेते हैं। कुछ लोग एक से अधिक रोजगार दफ्तरो मे अपना नाम दर्ज करा लेते हैं परन्तु ऐसे लोगो की सख्या नगण्य सी ही होती है। राष्ट्रीय सेम्पिल सर्वेक्षण के अनुसार शहरी बेरोजगारो का केवल ४० प्रतिशत भाग ही अपने को रोजगार दफ्तरो मे दर्ज कराता है। इसका अर्थ यह है कि रोजगार दफ्तरो से दर्ज शहरी बेरोजगारो के आँकडे ६० प्रतिशत कम होते है। सन् १९६८ मे रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशक द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण दर्जशुदा व्यक्तियों का एक तिहाई भाग और शहरी दर्जशुदा व्यक्तियो का लगभग आधा भाग (४३ ५ प्रतिशत रोजगार तथा ६ ६ प्रतिशत छात्र होने के कारण) बेरोजगार नही होता। इस स्थिति मे, लगभग ३० प्रतिशत ग्रामीण दर्जशुदा व्यक्तियो तथा ५० प्रतिशत शहरी दर्जशुदा व्यक्तियों की सख्या को रोजगार दफ्तरो के चालू रजिस्टरो के आँकडो मे से घटाया जा सकता है। इन सुधारो के बाद, शहरी बेरोजगारो के काफी विश्वस्त आंकडे उपलब्ध हो सकते है।

सन् १९४८ मे रोजगार दफ्तरो के चालू रजिस्टरो मे दर्ज प्रार्थियो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है जो देश मे बढती हुई बेरोजगारी का प्रकट करती है। विभिन्न वर्षों मे ऐसे प्रार्थियों की सख्या प्रतिवर्ष के अन्त मे इस प्रकार थी

१९४८— २,३६,०३३ , १९५२—४,३७ ५७१ , १९५६—७,५८,५०३,
१९६०—१६,०६,२४२ , १९६१—१८,३२,७०३ , १९६५—२५,८५,४७३,
१९६६—२६,२२,४६० , १९६७—२७ ४०,४३८ , १९६८—३०,११,६४२,
१९६९—३४,२३ ८८५ , १९७०—४०,६८,५५४ , १९७१—५०,९९ ९१९,
१९७२—६८ ९६,२३८ , १९७३—८२,१७ ६४९ , १९७४—८४,३२,८६९,
१९७५—९३,२६,२८९ , १९७६—९७ ८४,५३२ , १९७७—१,०९ २४०४३,
१९७८—१,२६ ७७,८२१ , १९७९—१ ४३,३८,८२३ , अगस्त—१,५६,४५ ०००,

रोजगार दफ्तरो के चालू रजिस्टरो मे दर्ज प्रत्येक वर्ष के अन्त की शिक्षित प्रार्थियो (मैट्रिक तथा उससे ऊपर) की सख्या तथा रोजगार पाने की इच्छुक महिला प्रार्थियो की सख्या अग्राङ्कित सारणी न० १ मे दी गई है।

---

1 'Committee of Experts on unemployment Estimates—a note by J Krishnamurty (Appendix III—page 145 of the Report)

सारणी—१

(लाखो मे)

	१९६१	१९६६	१९७१	१९७२	१९७७	१९७८	१९७९
(१) मैट्रिक	४ ६४	६·१९	१२ ९७	१७·४५	२९ ७२	३२ ६२	३७ ८४
(२) अर्ध-स्नातक (जिसमे इन्टर-मीडियेट तथा हायर सेकेण्ड्री पास सम्मिलित हैं)	० ७०	२·०४	६ ०५	९ ३२	१३ २६	१५ ५३	१७ ९७
(३) स्नातक व स्नातकोत्तर	० ५६	०·९४	३ ९४	६ ०२	१० ९३	१२ ३४	१३ ५६
(४) योग	५ ९०	९ १७	२२ ९६	३२·७९	५३ ९१	६० ४८	६९·३७
(५) महिला प्रार्थी	१·४१	२·६०	५·८३	७ ६३	१४ १०	१६ ७२	१९ ०४

३१ दिसम्बर १९७८ को, रोजगार दपतरो के चालू रजिस्टरो मे प्रार्थियो की जो सख्या दर्ज थी, उसका व्यवसाय या धन्धे के हिसाब से वितरण सारणी न० २ मे दिया गया है .

सारणी*—२

व्यवसाय समूह	३१-१२-७८ को सख्या (हजार मे)	कुल का प्रतिशत
(१) व्यावसायिक तकनीकी और सम्बंधित कमचारी	७०५ ८	५ ६
(२) प्रशासनिक कायकारी तथा प्रब ध कमचारी	१० ०	० १
(३) लिपिक आदि	६८३ ०	५ ४
(४) बिक्री कमचारी	२ ४	—
(५) किसान मछए शिकारी लट्ठों के काम वाले तथा सम्बंधित कमचारी	३४४ ०	२ ७
(६) सेवा कमचारी	४१ ८	० ३
(७) उ पादन और सम्बंधित कमचारी वस ट्रक चालक और श्रमिक	११७५ ४	८ ३
(८) ऐसे कमचारी जो व्यवसायवार वर्गीकृत नही किये गये — (अशिक्षितों तथा अन्यों सहित)		
(i) मट्रिक से कम	४३६४ ८	३४ ४
(ii) मट्रिक और मैट्रिक से ऊपर परन्तु स्नातक से नीचे	४०५/ ८	३२ ०
(iii) स्नातक तथा स्नातकोत्तर	१२८५ ४	१० २
योग	१२६७७ ८	१०० ०

*भारत १९८० (पृष्ठ २३४)

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने देहात मे रोजगार की स्थिति का अनुमान लगाया है। इसकी रिपोर्ट (सख्या १७३) मे जुलाई १९६४ से जून १९६५ तक का अनुमान है। इसके अनुसार ग्रामीण भारत मे कुल ग्रामीण जनसख्या का ४०१५ प्रतिशत कार्यक्षम है। इसमे ३८.४० प्रतिशत लोग काम मे लगे हुये हैं। काम चाहने वाले बेरोजगारो का प्रतिशत १ ७५ है। काम करने वाले लोगों मे से ७७८१ प्रतिशत सप्ताह मे सातो दिन काम करते है। ७८०४ प्रतिशत पुरुष और ७७३२ प्रतिशत स्त्रियाँ सप्ताह मे सातो दिन काम करती हैं। कुल कार्यरत आबादी मे से १०२४ प्रतिशत लोग सप्ताह मे चार दिन या इससे कम ३८३ प्रतिशत लोग ५ दिन और ८१२ प्रतिशत लोग ६ दिन काम करते है।

सारणी न० ३ मे काय और लिंग के आधार पर ग्रामीण आबादी का प्रतिशत विवरण दिया गया है —

सारणी—३

(प्रतिशत)

कार्य	पुरुष	स्त्री	सभी
(१) काम करने वाले व्यक्ति	५१ ५६	२४ ६६	३ ४०
(२) कार्य के लिये उपलब्ध व्यक्ति (जिनको रोजगार प्राप्त नही है)	१ ४२	२ १०	१ ७५
(३) श्रम शक्ति के अन्तर्गत व्यक्ति	५३ ०१	२६ ७६	४० १५
(४) श्रम-शक्ति मे न आने वाले व्यक्ति	४६ ६९	७३ २४	५९ ८५
कुल	१०० ००	१०० ००	१०० ००

इसके अतिरिक्त समय समय पर रोजगार तथा प्रशिक्षण निदेशालय द्वारा, प्रयुक्त मानव-शक्ति अनुसधान सस्था द्वारा तथा विभिन्न विश्वविद्यालयो एव अनुसधान केन्द्रो मे जो अध्ययन किये गये है उनसे ऐसी उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है कि जिससे देश मे विभिन्न श्रेणियो के बेरोजगार लोगो की सख्या के बारे मे अनुमान लगाने मे बडी सहायता मिलती है। आयोजना आयोग ने प्रत्येक योजना के प्रारम्भ मे बेरोजगारो की सख्या के बारे मे तथा आयोजना के क्रियान्वयन मे उपलब्ध कराये जाने वाले अतिरिक्त रोजगार के बारे मे अनुमान प्रस्तुत किये है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रो की बेरोजगारी व अल्प-रोजगार की स्थिति का पता लगाने के मापदण्ड के सम्बन्धो मे मतविभिन्नता होने के कारण तथा जनगणना, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एव रोजगार कार्यालयो द्वारा अनुमानित बेरोजगारी के आँकडो मे

भारी अन्तर होने के कारण यह अनुभव किया गया कि इन सब विविध पहलुओं से एकत्र आँकडो का सूक्ष्म विवेचन करना आवश्यक है। अत अगस्त १९६८ में आयोजना आयोग ने बेरोजगारी के अनुमानों पर विशेषज्ञों की एक समिति (A Committee of Experts on Unemployment Estimates) का निर्माण किया। इस समिति को पिछली आयोजनाओं के लिये हिसाब लगाये गये बेरोजगारी के अनुमानित आँकडो पर विचार करना था, उन आँकडो को प्राप्त करने के तरीको व उनके परिणामों का पता लगाना था तथा इस सम्बन्ध मे आयोजना आयोग को उचित परामर्श देना था और ऐसे सुझाव देने थे जिनका उपभोग चौथी पचवर्षीय आयोजना म तथा उसके पश्चात किया जा सके।

बेरोजगारी के अनुमानो पर विशेषज्ञ समिति ने मार्च १९७० मे अपनी रिपोर्ट दी। समिति की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार थी। (१) हमारे देश जैसी अर्थव्यवस्था (economy) मे श्रम शक्ति की तथा मानव वर्षो के रूप मे बेरोजगारी तथा कम रोजगार को मापने की उन धारणाओ को मानना उपयुक्त नही है जिन्हे कि विकसित अर्थव्यवस्थाओ मे लागू किया जाता है। (२) बेरोजगारी तथा कम रोजगार के सम्बन्ध में केवल एक ही दृष्टिकोण या परिणाम से प्रस्तुत किये जाने वाले आकडो की आर्थिक स्थिति के सूचको के रूप मे कोई उपयोगिता नही है। (३) इस सम्बन्ध में अध्ययन इस प्रकार किये जाने चाहिये कि श्रमशक्ति के विभिन्न पहलुओ, जैसे—क्षेत्र या प्रदेश ग्रामीण व शहरी, श्रमिको के स्तर शैक्षणिक दशा, उम्र तथा लिंग आदि सम्बन्ध में के आँकडे प्राप्त हो सकें। और (४) जनगणना राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण तथा रोजगार कार्यालयो जैसे एजेन्सियो द्वारा आकडो के एकत्रीकरण एव प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध मे अनेक सुधार किये जाने चाहिये।

इन सिफारिशो के सन्दर्भ म उठाये जाने वाले प्रारम्भिक पग के रूप मे, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey) द्वारा अपने २७वें दौर मे एक व्यापक श्रमिक सर्वेक्षण किया गया है। पाँचवी पचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा म कहा गया है कि समय समय पर किये जाने वाले इस प्रकार के सर्वेक्षणो स श्रम बाजार की प्रवृत्तियो पर प्रकाश पडेगा और भविष्य में रोजगार तथा बेरोजगारी क सम्ब ध मे अधिक अच्छे कार्यक्रम बनाने मे सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त अग्रगामी प्रेरणा ग्रामीण रोजगार परियोजना (Pilot Intensive Rural Employment Project) कार्यक्रम के अतगत ग्रामीण रोजगार के क्रैश कार्यक्रम के एक अग के रूप में १५ कार्रवाई बनाम अध्ययन परियोजनायें हाथ में ली गई। इस योजना स उन क्षेत्रो की रोजगार की स्थिति के सम्बन्ध म सूचनायें प्राप्त होगी तथा यह योजना ग्रामीण क्षेत्र मे रोजगार बढाने से सम्बद्ध विभिन्न मामलो व तौर-तरीको पर भी उपयोगी सामग्री उपलब्ध करायेगी।

भारत सरकार ने १९ दिसम्बर १९७० को श्री बी० बी० भगवती को

अध्यक्षता में बेरोजगारी के सम्बन्ध में एक समिति (A Committee on Unemployment) नियुक्त की, जिसकी बेरोजगारी तथा कम रोजगार की मात्रा का पता लगाना था तथा उसके समाधान के लिये सुझाव देने थे। इस समिति ने आयोजना आयोग द्वारा बेरोजगारी के अनुमानों पर बनाई गई विशेषज्ञ समिति की सिफारिशों का दृष्टिगत रखा और देश में श्रमशक्ति, रोजगार तथा बेरोजगारी की स्थिति का पता लगाने के लिये निम्न एजेन्सियों द्वारा प्रदत्त जानकारी का उपयोग किया—(i) जनगणना, (ii) राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण, (iii) रोजगार कार्यालय और (iv) रोजगार बाजार सूचना। इन एजेन्सियों तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों के द्वारा समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि बेरोजगारी के अनुमानों में उन व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाना चाहिये जो पूर्णतया बेरोजगार हैं तथा वे जो एक सप्ताह में १४ घन्टे से भी कम काम करते हैं। इस प्रकार, समिति के अनुसार बेरोजगारों की सम्भावित संख्या १८७ करोड़ बैठती है जिसमें ९० लाख पूर्णतया बेरोजगार तथा ९७ लाख वे लोग सम्मिलित हैं जो सप्ताह में १४ घण्टे से कम काम करते हैं। इन आँकड़ों में १६१ करोड़ व्यक्ति (७६ लाख पुरुष और ८५ लाख स्त्रियाँ) ग्रामीण क्षेत्रों के हैं और २६ लाख व्यक्ति (१६ लाख पुरुष और १० लाख स्त्रियाँ) शहरी क्षेत्रों के हैं। समिति के अनुसार, ये आँकड़े देश की बेरोजगारी की समस्या की विकटता को प्रकट करते हैं। समिति ने यह भी कहा कि रोजगार कार्यालयों के आँकड़ों के अनुसार ३१ दिसम्बर १९७२ को काम चाहने वालों की कुल पंजीकृत संख्या में शिक्षित काम चाहने वालों की संख्या ४८ प्रतिशत थी। शिक्षित बेरोजगारों की संख्या (दिसम्बर १९६६ से दिसम्बर) १९७१ के २०१ प्रतिशत से बढ़कर १९७१ व १९७२ के अन्त के बीच ४८.२ प्रतिशत हो गई थी।

समिति ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट १५ मई १९७३ को सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। समस्या की गम्भीरता को देखते हुये समिति ने कुछ ऐसे अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उपायों का सुझाव दिया जो कि बेरोजगारी तथा कम रोजगार के कारण उत्पन्न होने वाले व्यापक कष्टों व कठिनाइयों को कुछ सीमा तक दूर कर सकें। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि केन्द्र सरकार ने शिक्षितों, तकनीकी दृष्टि से योग्य व्यक्तियों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गों की बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिये सन् १९७०–७१ में जो विभिन्न कार्यक्रम आरम्भ किये थे, वे न केवल जारी रहने चाहियें बल्कि पाँचवीं पंचवर्षीय आयोजना में उनके क्षेत्र का भी विस्तार कर दिया जाना चाहिये।

समिति द्वारा दी गई मुख्य सिफारिशों का सारांश इस प्रकार है—

(१) छोटे किसानों तथा कृषि श्रमिकों के डेरी, मुर्गी व सुअरों सम्बन्धी उत्पादन की राज्य स्तर पर बिक्री के लिये पर्याप्त व्यवस्थायें की जानी चाहियें।

(२) फसलों के भागीदारों तथा काश्तकारों की सहायता के लिये, भूमि में उनके अधिकारों का ध्यान किये बिना व्यावहारिक पग उठाये जाने चाहिये। इन पगों में

उनके लिये ऋणों की व्यवस्था तथा डेयरी व मुर्गीपालन जैसे सहायक उद्योग मुख्य हैं। (३) ग्रामीण रोजगार की क्रैश योजना के अन्तर्गत प्रत्येक जिले के लिये धन-राशि की मात्रा का पुनर्निर्धारण वहाँ की जनसंख्या तथा कृषि विकास की स्थिति आदि को देखकर किया जाना चाहिये। (४) कृषि सेवा केन्द्रों की योजना के अमल के काम को उच्च प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिये क्योंकि इस योजना के ग्रामीण क्षेत्रों के इन्जीनियरिंग स्नातकों व तकनीकज्ञों को रोजगार देने की भारी क्षमता है। यह भी आवश्यक है कि उचित तथा सुविधाजनक शर्तों पर इन्हें बैंकों से वित्त उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जाये। (५) बड़ी तथा मझोली सिंचाई योजनाओं के लिये यथ व वथ पर्याप्त धन की व्यवस्था की जानी चाहिये ताकि वे निर्धारित अवधि में पूर्ण हो जायें और सम्बद्ध क्षेत्रों को बिना किसी देरी के उनका लाभ प्राप्त होने लगे। (६) ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रमों का विस्तार पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों तक किया जाना चाहिये। (७) परिवहन के विभिन्न साधनों, जैसे—रेलों, सड़कों, आन्तरिक परिवहन, जहाजरानी तथा बन्दरगाहों का उचित रूपों में विकास किया जाना चाहिये। इन साधनों में केवल प्रत्यक्ष रोजगार देने की क्षमता ही नहीं है, अपितु अपने सहायक उद्योगों द्वारा भी ये बड़ी संख्या में रोजगार प्रदान करते हैं। (८) पर्यटन उद्योग का यदि पर्याप्त रूप से विकास किया जाये तो सेवाओं के क्षेत्र में यह उद्योग काफी रोजगार मुहैय्या करा सकता है। (९) यह भी जरूरी है कि आगामी वर्षों में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में मकान बनाने के कार्यक्रम बड़े पैमाने पर आरम्भ किये जायें। साथ ही शहरी क्षेत्र में भी मकान निर्माण की क्रियाओं को और तेजी से चालू किया जाये ताकि वहाँ भी इस सम्बन्ध में स्थिति न बिगड़े। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य में एक ग्रामीण आवास वित्त निगम (Rural Housing Finance Corporation) की स्थापना की जाये, जो कि सहकारी समितियों पंचायत राज्य संस्थाओं तथा व्यक्तियों को मकान बनाने के लिये वित्तीय सहायता दे। इसके अतिरिक्त, ऐसे कार्यक्रमों के लिये जीवन बीमा निगम तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों जैसी वित्तीय संस्थाओं से भी सहायता मिलनी चाहिये। (१०) ग्रामीण क्षेत्रों में जल पूर्ति के चालू कार्यक्रमों को तेज रफ्तार से पूरा किया जाना चाहिये और उनके क्षेत्रों का विस्तार किया जाना चाहिये। (११) प्राईमरी शिक्षा के विस्तार का और भी अधिक व्यापक कार्यक्रम शीघ्र ही लागू किया जाना चाहिए। यह कार्यक्रम इस प्रकार बनाया जाना चाहिये कि सन् १९७८–७९ तक ६ से ११ तक की आयु तक के ९५% बच्चों को और ११ से १४ वर्ष तक की आयु के ८५% बच्चों को शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध हो जायें। (१२) समिति ने जन साक्षरता के कार्यक्रम को भी तुरन्त ही लागू करने की सिफारिश की। यह कार्यक्रम पहले ऐसे १०० चुने हुये जिलों में लागू किया जाना चाहिये, जहाँ शिक्षित बेरोजगारों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक हो। (१३) औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार उत्पन्न करने के लिये समिति ने यह सुझाव दिया कि अनेक उद्योगों में उनकी प्रस्थापित क्षमता से कम काम हो

सन् १९७१ की जनगणना के अनुसार, बेरोजगार लोगों की अनुमानित सख्या ९० लाख थी जिसमें ७७ लाख ग्रामीण क्षेत्रों में थे और १३ लाख शहरी क्षेत्र में। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष व महिला बेरोजगारों का प्रतिशत क्रमश १४२ तथा २१० था और शहरी क्षेत्रों में यह प्रतिशत क्रमश १३५ तथा ०९८ था।

फरवरी से जून १९७२ के बीच कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग द्वारा किये गये एक अध्ययन (कुछ चुने हुए शहरों व ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या के अध्ययन) के अनुसार, सम्बन्धित क्षेत्रों में कुल जनसख्या में बेरोजगारों का प्रतिशत निम्न प्रकार था—

कलकत्ता खास	९६	कलकत्ता उपनगरीय क्षेत्र	९१
चारों ओर के नगर	६६	सम्पूर्ण शहरी क्षेत्र	८०
ग्रामीण क्षेत्र	८५		

एक अन्य अध्ययन अप्रैल से सितम्बर १९७२ के बीच डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग द्वारा किया गया। इस अध्ययन का उद्देश्य असम के कुछ चुने हुये ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की स्थिति का पता लगाना था। इस अध्ययन के क्षेत्र में डिब्रूगढ़ नगर तथा लखीमपुर, शिवसागर तथा डिब्रूगढ़ जिलों में से प्रत्येक के दो-दो गाँव शामिल किये गये थे। कुल ७६३ शहरी परिवारों का (जिसमें ४७९५ व्यक्ति थे) और ६०४ ग्रामीण परिवारों का (जिसमें ४,०६१ व्यक्ति थे) सर्वेक्षण किया गया था। यह पाया गया कि अध्ययन की अवधि में शहरी क्षेत्रों में १५–५९ के आयु वर्ग में लगभग १८ ३९ प्रतिशत व्यक्ति बेरोजगार थे। इन आंकडों के छात्रों की बेरोजगारी (३१%) सम्मिलित है। ग्रामीण क्षेत्रों में, इसी आयु वर्ग में बेरोजगारी का प्रतिशत १८ १५ था। अन्य अध्ययन (जिसका नाम असम के चुने हुए शहरी क्षेत्रों में रोजगार तथा बेरोजगारी का अध्ययन था) असम के गौहाटी विश्वविद्यालय द्वारा किया गया जिसमें राज्य के छ: छोटे नगर सम्मिलित किये गये। प्रथम चरण के नमूने में, १३,३५५ जनसख्या वाले १,४०० परिवारों की सूची बनाई गई। इस जनसख्या में १५–६५ के आयु वर्ग में १० ३ प्रतिशत लोग बेरोजगार पाये गये। द्वितीय चरण में ३,११० जनसख्या वाले ३५१ परिवार सर्वेक्षण के लिये चुने गये जिनमें उसी आयु वर्ग में बेरोजगारों का प्रतिशत ११ था।

भगवती समिति का अनुमान है कि देश के कुल श्रमिकों में बेरोजगारों का प्रतिशत १० ४ था (अर्थात् १० ९% ग्रामीण क्षेत्रों में और ८ १% शहरी क्षेत्रों में) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा १९७२ में एशियाई देशों की बेरोजगारी का जो सर्वेक्षण किया गया था उसके अनुसार भारतीय श्रमिकों में बेरोजगारी का प्रतिशत १९६२ के ९ से बढ़कर १९७२ में ११ हो गया था।

भगवती समिति के अनुसार, १ अप्रैल १९७१ को देश में बेरोजगारों की

संख्या ३.२६ करोड थी। आयोजना आयोग द्वारा जुलाई १९७८ में नियुक्त एक अध्ययन दल की रिपोर्ट के अनुसार, १ अप्रैल १९७८ को देश में बेरोजगारों की संख्या लगभग ५.२६ करोड़ अनुमानित की गई थी।

बेरोजगारी के कारण देश को हानि :
(Loss to the country due to Unemployment)

बेरोजगारी से सामाजिक तथा राजनैतिक दोनों क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है। बेरोजगारी बढ़ने से निर्धनता तथा असहायता उत्पन्न हो जाती है, जिनका प्रभाव पूर्ण समाज पर पड़ता है तथा सामाजिक जीवन में गिरावट आ जाती है। इसके परिणामस्वरूप पाप, अपराध, गन्दगी तथा रोग जैसी बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनकी कोई भी समाज अवहेलना नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, बेरोजगारी देश की राजनैतिक स्थिरता की जड़ में घुन लगा देती है। भारतीय राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थिति के वर्तमान सदर्भ में बेरोजगारी तथा इसके दुष्परिणाम की अवहेलना नहीं की जा सकती। यह मानवीय प्रश्न ही नहीं है वरन् ऐसा प्रश्न है जिस पर सरकार तथा जनता दोनों को ही गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिये। प्रो० वी पी० आदरकर ने गणना की है कि कार्य कुशलता के वर्तमान स्तर पर भारत में बेरोजगारी तथा अपूर्ण बेरोजगारी के कारण वार्षिक हानि एक हजार करोड़ रुपये से अधिक होती है। यह राशि समस्त राज्य सरकारों तथा भारत सरकार के सम्मिलित बजट से भी अधिक है। परन्तु बहुत कम व्यक्ति इस बात का अनुभव करते हैं कि प्रतिवर्ष देश में इतनी विशाल रूप से हानि हो रही है। हानि का अनुभव इसलिये नहीं होता क्योंकि मुद्रात्मक हानि नहीं होती वरन् सम्भाव्य धन की हानि होती है। किन्तु धन में केवल मुद्रा ही नहीं वरन् वस्तुयें तथा वास्तविक सेवायें भी सम्मिलित की जाती हैं।

भारत में बेरोजगारी का उपचार :
(Remedies of Unemployment in India)

अत बेरोजगारी के उपचारों पर विचार किया जाना आवश्यक है। इस विषय में रोजगार दफ्तर बहुत अधिक सहायक हो सकते हैं। प्रथम तो, यदि रोजगार दफ्तर मालिकों तथा कर्मचारियों में निकट सम्पर्क उत्पन्न करने के लिये कुशलतापूर्वक कार्य करें तो मालिकों तथा कर्मचारियों का कार्य सरल हो जाता है तथा रोजगार दिलाने की सामाजिक व्यवस्था उचित प्रकार से कार्य कर सकती है। रोजगार दफ्तर देश में सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थाओं के अनुसंधान का अवसर भी प्रदान करते हैं तथा वह यह संकेत कर सकते हैं कि बेरोजगारी में कितनी वृद्धि हो रही है और इस प्रकार सरकार को अपनी नीति निर्धारित करने तथा कार्यक्रम बनाने का अवसर प्रदान कर आर्थिक विकास से देश की रक्षा करते हैं। ये दफ्तर श्रमिकों को प्रशिक्षण प्रदान कर सकते हैं तथा श्रमिकों की गतिशीलता बढ़ा सकते हैं। भारत की राष्ट्रीय रोजगार सेवा ने कुछ उत्तम प्रकार के कार्य किये हैं, परन्तु फिर भी इस संगठन में सुधार तथा इसके कार्यों में विस्तार

करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस समस्या का भर्ती के अध्याय के अन्तर्गत विवेचन किया जा चुका है।

विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी हेतु विभिन्न उपचारो का सुझाव देना आवश्यक है यद्यपि ये आपस मे पूर्णतया एक दूसरे से सम्बन्धित है। **खेतीहर बेरोजगारी की समस्या सुलझाने के लिये** स्पष्ट उपचार यह है कि भारतीय कृषि का पुनर्गठन किया जाये, अर्थात उत्तम भूमि, श्रम, पूंजी एव सगठन हो तो भूमि पर जनसख्या का दबाव कम करने के लिये कुटीर एव लघु उद्योग धन्धो को स्थापित किया जाये। भूमि का पुनरुद्धार, जुताई के उत्तम उपाय, भूमि सम्बन्धी सुधार, सिंचाई सुविधायें, सहकारी खेती, भूमि का पुन वितरण, ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम, आदि कुछ ऐसे उपाय है जो इस समस्या को हल करने मे सहायक हो सकते है।

औद्योगिक बेरोजगारी का उपचार—औद्योगिक कुशलता मे वृद्धि तथा औद्योगिक ढांचे का पुनर्गठन करके हो सकता है। यह समस्या पूंजी निर्माण बचत तथा निवेश से सम्बन्धित है। पचवर्षीय आयोजनाओ के अन्तर्गत आरम्भ किये गये विकास कार्यक्रमो से औद्योगिक बेरोजगारी कम होने की आशा की जा सकती है किन्तु कुछ तत्कालीन उपचारो की भी आवश्यकता है और इसके लिये हमे उपभोग सम्बन्धी वस्तुओ के उद्योगो का विकेन्द्रीकरण करना चाहिये तथा छोटे पैमाने के ग्रामीण एव कुटीर उद्योगो के पुनर्गठन की साहसपूर्ण नीति का अनुगमन करना चाहिये। इस प्रकार निर्धनता से ग्रसित लाखो व्यक्तियो को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। यह ध्यान मे रखने योग्य बात है कि औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिको की एक बडी सख्या ग्रामीण क्षेत्रो से आती है। अत यदि ग्रामो मे रोजगार प्रदान कर दिया जाये तो औद्योगिक बेरोजगारी का स्वत समाधान हो जायेगा।

शिक्षित बेरोजगारी का हल शिक्षा प्रणाली के पुनर्गठन से हो सकता है। इसके लिये तकनीकी तथा व्यावसायिक अध्ययन पर अधिक बल देना चाहिये तथा मध्यवर्गीय युवको को वाणिज्य एव कृषि सम्बन्धी रोजगार ग्रहण करने के लिये उत्साहित करना चाहिये। अत यह समस्या भी कृषि तथा उद्योगो के विकास से सम्बन्धित है क्योकि जब तक रोजगार के स्रोत नही होगे, किसी भी प्रकार की शिक्षा से समस्या हल नही हो सकेगी। विश्वविद्यालयो तथा कालिजो के छात्रो मे से अधिकतर छात्र ग्रामीण परिवारो से सम्बन्धित होते है। अत हमे विश्वास है कि यदि कृषि को आकर्षक तथा लाभप्रद व्यवसाय बना दिया जाये तो उच्च साहित्यिक शिक्षा की उत्कठा तथा इच्छा स्वत कम हो जायेगी। इसके अतिरिक्त हमारे देश की जनसख्या मे तीव्र गति से वृद्धि हो रही है तथा यह अनुमान लगाया गया है कि प्रतिवर्ष २० लाख श्रम शक्ति मे वृद्धि हो जाती है। परिवार नियोजन के द्वारा जनसख्या की वृद्धि मे रोक होनी चाहिये क्योकि जब तक देश मे व्यक्तियो की सख्या तथा देश मे उपलब्ध साधनो मे उचित सामजस्य नही होगा तथा आर्थिक विकास की गति जनसख्या की वृद्धि की गति से नही बढ जाती तब तक बेरोजगारी की समस्या का समाधान नही

(८) निजी भवन-निर्माण कार्यों को प्रोत्साहन, (९) शरणार्थी नगरों का बचाने के लिये आयोजित सहायता, (१०) निजी पूंजी द्वारा शक्ति के विकास की योजनाओं को प्रोत्साहन तथा (११) कार्य और प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना।

परन्तु इन सब उपायों से बेरोजगारी की वर्तमान संख्या में थोड़ी बहुत कमी हो सकती थी, परन्तु वास्तव में तो समस्या को दीर्घकालीन दृष्टिकोण से देखना चाहिये था। प्रथम आयोजना की प्रगति का मूल्यांकन करते हुए स्वयं आयोजना आयोग ने यह स्वीकार किया था कि *"रोजगार के अवसरों में वृद्धि श्रम शक्ति की वृद्धि के अनुरूप नहीं हो पाई है। प्रथम आयोजना में निवेश में इतनी वृद्धि नहीं हो पाई थी कि रोजगार के इच्छुक नये प्रार्थियों को काम दिया जा सके। इसके अतिरिक्त पिछली बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार की भी समस्या है जिसको दूर करना है।"*

द्वितीय आयोजना में इस बात का उल्लेख था कि *रोजगार बढ़ाने की सुविधाओं का प्रश्न आयोजना के पूंजी निवेश सम्बन्धी कार्यक्रम से अलग नहीं किया जा सकता था।* भारत में रोजगार अवसरों को प्रदान करने का कार्य त्रिमुखी बताया गया था (१) इस समय जो लोग बेरोजगार हैं उनके लिये कार्य की व्यवस्था करना, (२) श्रम शक्ति में जो प्राकृतिक रूप से वृद्धि होती है उसके लिये व्यवस्था करना। यह वृद्धि पांच वर्षों की अवधि में प्रतिवर्ष २० लाख अनुमानित की गई थी, (३) ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में कृषि व घरेलू कार्यों में जो श्रमिक अपूर्ण रोजगार ही पाते हैं उनके लिये अधिक कार्य की व्यवस्था करना।

निम्नलिखित तालिका में रोजगार के उन अवसरों का अनुमान दिया गया है जो दूसरी आयोजना की अवधि में बेरोजगारी को सर्वथा समाप्त करने के लिये उपलब्ध करने का अनुमान था —

(व्यक्तियों की संख्या—लाख में)

	शहरों में	देहातों में	योग
पिछले रोजगार की, अर्थात् द्वितीय आयोजना अवधि से पूर्व रोजगार व्यक्तियों की संख्या······ ······	२५·०	२८·०	५३·०
श्रम-शक्ति के लिये नये प्रार्थी—अर्थात् द्वितीय आयोजना अवधि में रोजगार के इच्छुक नये व्यक्ति···	३८·०	६२·०	१००·०
योग	६३·०	९०·०	१५३·०

इतने अधिक व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान करने के अतिरिक्त अपूर्ण रोजगार की अलग समस्या थी।

द्वितीय आयोजना के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप जो अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता था उसका अनुमान निम्न प्रकार है—

	(व्यक्तियो की सख्या लाख मे)
(१) निर्माण कार्य	२१ ००
(२) सिंचाई और विद्युत	० ५१
(३) रेलें	२ ५३
(४) अन्य यातायात तथा सचार	१ ८०
(५) उद्योग एव खनिज	७ ५०
(६) कुटीर एव लघु उद्योग	४ ५०
(७) वन, मछली व्यवसाय, राष्ट्रीय विस्तार सेवा व सम्बन्धित कार्यक्रम	४ १३
(८) शिक्षा	३ १०
(९) स्वास्थ्य	१ १६
(१०) अन्य समाज सेवायें	१ ४२
(११) सरकारी नौकरियाँ	४ ३४
(१) से (११) तक का योग	५१ ९६
(१२) अन्य कार्य जिनमे व्यापार और वाणिज्य भी सम्मिलित है (योग का ५२°, के हिसाब से)	२७ ०४
कुल योग	७९ ०३
अर्थात लगभग	८० ००

मद १२ मे जो अनुपात दिया हुआ है वह अनुपात १९५१ की जनगणना के अनुसार ही निकाला गया है । इस वर्ग के व्यक्तियो का, कृषि को छोडकर, अन्य सब वर्गों के रोजगार पर लगे हुये व्यक्तियो के हिसाब से अनुपात निकाला गया था । यह अनुमान लगाया गया था कि १९६१ मे भी यही अनुपात रहेगा, यद्यपि इस अनुपात के बढने की सम्भावना थी क्योकि विकास कार्यक्रमो की वृद्धि के कारण व्यापार और वाणिज्य मे वृद्धि होगी ।

उपरोक्त तालिका मे दिये गये आँकडो के अतिरिक्त यह आशा की गई थी कि कृषि, भूमि पुनरुद्धार योजनाओ, बागान के विकास व विस्तार की योजनाओ, उद्यान विकास की योजनाओ आदि के कारण १२ लाख नये रोजगार के इच्छुक ग्रामीण व्यक्तियो को रोजगार मिल सकेगा । ग्रामीण क्षेत्रो मे अपूर्ण रोजगार को दूर करने मे सिंचाई योजनाओ तथा ग्रामीण व छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धो के विकास कार्यक्रम से भी सहायता मिलेगी ।

आयोग ने १९५५ मे शिक्षितो मे बेरोजगारी दूर करने हेतु कार्यक्रम बनाने के लिये एक विशेष अध्ययन दल की नियुक्ति की थी । इन के अनुसार वर्तमान शिक्षित बेरोजगारो की सख्या ५ ५ लाख थी तथा उसने यह भी अनुमान लगाया था कि आगामी पाँच वर्ष की अवधि मे शिक्षित बेरोजगारो की सख्या १४ ५

अधिकतम करने के लिये जिला स्तर पर योजनाओं की कार्यान्वित में प्रभावपूर्ण ढंग से समायोजन करना चाहिये। राज्य सरकारों से यह भी कहा गया था कि रोजगार दिलाने के कुछ नये ढंगों को प्रारम्भ करने के लिये हर सम्भव प्रयत्न करने चाहिये और उन तरीकों पर भी विचार करना चाहिये जिन्हें अध्ययन दल ने रोजगार उत्पन्न करने के गैर परम्परावादी तरीके कहा है।

तीसरी आयोजना मे रोजगार की स्थिति तथा मानव शक्ति
(Employment and Manpower in the Third Plan)

भारत में आयोजना का एक मुख्य उद्देश्य लोगों को रोजगार दिलाना रहा है। परन्तु तृतीय आयोजना में कहा गया था कि संख्या की दृष्टि से रोजगार के पर्याप्त अवसर प्रदान करना उन अत्यन्त कठिन कार्यों में से एक है जिन्हें अगले पाँच वर्षों में करना है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी, अर्थात् अपूर्ण रोजगार दोनों ही साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं और उनके बीच कोई स्पष्ट अन्तर प्रतीत नहीं होता। ग्रामों में साधारणतया बेरोजगारी का स्वरूप अपूर्ण रोजगार है। शहरी क्षेत्रों में व्यापार, यातायात और उद्योगों की स्थिति में जो उतार-चढ़ाव होता है उसी के अनुसार रोजगार में भी परिवर्तन होता है। प्रथम दो आयोजनाओं के अनुभव से यह ज्ञात होता है कि आयोजना अवधि में जो नए रोजगार अवसर उपलब्ध हुये उनमें से अधिकतर गैर कृषि क्षेत्र में थे। दूसरी आयोजना की अवधि में लगभग ८० लाख नये रोजगार अवसरों का निर्माण हुआ जिनमें से ६५ लाख गैर कृषि-क्षेत्र में थे। रोजगार से सम्बन्धित आँकड़े उस समय अपर्याप्त थे परन्तु फिर भी जो सीमित योजना उपलब्ध थी उसके आधार पर यह अनुमान किया गया था कि द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक जिन लोगों को रोजगार नहीं दिलाया जा सके उनकी संख्या लगभग ९० लाख थी। दूसरी पचवर्षीय आयोजना की अवधि में बेरोजगार रह जाने वाले लोगों का जो अनुमान था वह केवल ५३ लाख का था। इस अनुमान की तुलना में बेरोजगार रहने वाले लोगों में जो वृद्धि हुई है उसका यह अर्थ है कि रोजगार की समस्या पर आयोजना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। किन्तु फिर भी श्रमिक वर्ग के नये शामिल होने वाले लोगों की संख्या में जो निरन्तर वृद्धि हुई उस हिसाब से लोगों को रोजगार नहीं दिलाया जा सका।

किसी भी अवधि में श्रमिक वर्ग में जो वृद्धि होती है उसकी गणना उन पुरुषों व स्त्रियों के अनुपात में की जाती है जो १५–१६ वर्ष के आयु वर्ग में आते हैं क्योंकि यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस आयु के व्यक्ति ही या तो लाभदायक रोजगार पर लगे होते हैं या रोजगार की तलाश में होते हैं। १९६१ की जनगणना से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर यह अनुमान था कि तीसरी आयोजना की अवधि में श्रमिक वर्ग में लगभग १ करोड़ ७० लाख लोगों की वृद्धि होगी। इस

वृद्धि मे से एक तिहाई वृद्धि शहरी क्षेत्रो मे होगी। इसके विपरीत यह अनुमान था कि तीसरी आयोजना मे १ करोड ४० लाख लोगो को—१ करोड ५ लाख लोगो को गैर कृषि कार्यों मे और ३५ लाख लोगो को कृषि कार्यों मे—अतिरिक्त रोजगार दिलाया जायेगा। निम्नांकित तालिका मे गैर-कृषि कार्यों मे रोजगार का विवरण दिया गया है—

अतिरिक्त गैर कृषि रोजगार

क्षेत्र	तीसरी आयोजना मे अतिरिक्त रोजगार
१ निर्माण[1]	२३ ००
२ सिंचाई और बिजली	१ ००
३ रेल	१ ४०
४ अन्य यातायात और सचार	८ ८०
५ उद्योग और खनिज	७ ५०
६ छोटे उद्योग	९ ००
७ वन, मछली पालन और सम्बद्ध सेवायें	७·२०
८ शिक्षा	५ ९०
९ स्वास्थ्य	१ ४०
१० अन्य सामाजिक सेवायें	० ८०
११ सरकारी सेवा	१ ५०
योग	६७ ५०
१२ 'अन्य' जिनमे उद्योग और व्यापार सम्मिलित हैं (१ से ११ तक की मदो के कुल योग का ५६ प्रतिशत)	३७ ८०
कुल योग	१०५ ३०

1 चूंकि निर्माण-कार्य से बहुत बडी सख्या म रोजगार मिलता है, इसलिये विभिन्न विकास क्षेत्रो मे निर्माण कार्य म रोजगार का निम्न रूप मे दिया गया विवरण उपयोगी होगा—

	(लाखो मे)
(क) कृषि और सामुदायिक विकास	६ १०
(ख) सिंचाई और बिजली	४ ९०
(ग) उद्योग और खनिज जिनमे कुटीर और लघु उद्योग भी सम्मिलित हैं	४ ६०
(घ) यातायात और सचार (रेल सहित)	३ ४०
(ङ) सामाजिक सेवायें	३ ५०
(च) विविध	० ५०
योग	२३ ००

इस प्रकार श्रमिक वर्ग में नये शामिल होने वाले लोगों को काम दिलाने के पश्चात् ३० लाख लोगों के लिये अतिरिक्त रोजगार होना चाहिए।

तृतीय आयोजना में यह सुझाव था कि रोजगार की समस्या को तीन मुख्य रूपों में शुरू करना चाहिये—प्रथम, आयोजना के ढाँचे के अन्तर्गत ऐसे प्रयत्न किये जाने थे जिनसे पहले की अपेक्षा रोजगार के प्रभावों का फैलाव अधिक व्यापक और सन्तुलित रूप से हो। दूसरे, ग्रामीण क्षेत्रों को औद्योगीकरण का एक बहुत बड़ा कार्यक्रम हाथ में लेना चाहिये था, जिसमें इन बातों पर विशेष जोर दिया जाये—ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली लगाना, ग्रामीण औद्योगिक सम्पदाओं (Estates) का विकास, ग्रामीण उद्योगों की उन्नति और जन शक्ति को प्रभावशाली रूप में फिर से काम में लगाना। तीसरे लघु उद्योगों द्वारा रोजगार बढ़ाने के अन्य उपायों के अतिरिक्त ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमों (Works Programmes) का संगठित करने का सुझाव था जिनसे लगभग २५ लाख और सम्भवतः इससे भी अधिक लोगों को वर्ष में औसतन १०० दिन तक काम मिले।

ग्रामीण औद्योगीकरण और गाँवों में बिजली लगाना—यह दोनों सम्बद्ध कार्यक्रम थे और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिर रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिये इनका सबसे अधिक महत्व था। प्रत्येक क्षेत्र में और छोटे-छोटे कस्बों और गाँवों में औद्योगिक विकास के केन्द्र स्थापित करना आवश्यक था और यह उन्नत यातायात एवं अन्य सुविधाओं के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए होने चाहिये थे। प्रत्येक जिले में अग्रिम योजना के द्वारा कृषि सम्बन्धी और औद्योगिक विकास का कार्यक्रम बिजली की पूर्ति के साथ समन्वित होना चाहिये था।

अपूर्ण रोजगार की समस्या के स्थायी समाधान के लिये यह आवश्यक था कि न केवल सभी लोग कृषि कार्यों में विज्ञान का प्रयोग करें बल्कि इस हेतु ग्रामीण आर्थिक ढाँचे का विभिन्न क्षेत्रों में विकसित करना और उसे सुदृढ़ बनाना भी आवश्यक था। ग्रामीण और लघु उद्योगों तथा 'प्रोसेसिंग' उद्योग के विकास के लिये कार्यक्रमों को और अधिक बढ़ाने और ग्रामीण क्षेत्रों में नये उद्योग स्थापित करने का प्रस्ताव था, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ अधिकांश लोग भूमि पर निर्भर हैं और जहाँ अधिक बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार है। इस कार्यक्रम में खण्ड (Block) और ग्राम स्तर पर मुख्यतः स्थानीय निर्माण कार्य किये जाने थे। विशेषतः कृषि के मन्दे मौसम में कार्यान्वित करने के लिये निर्माण-कार्य बनाये जाने थे। गाँवों में जो निर्माण-कार्य होंगे उन सभी में ग्राम की प्रचलित दरों पर मजदूरी दी जानी थी। इस सम्बन्ध में ३४ प्रारम्भिक प्रायोजनायें (Pilot Projects) चालू की गई थी। इनमें सिंचाई, वन लगाना, भूमि संरक्षण, नालियाँ बनाना, भूमि का पुनरुद्धार, संचार साधनों में सुधार आदि की पूरक योजना सम्मिलित थी। अस्थायी रूप में यह अनुमान था कि निर्माण कार्यक्रमों द्वारा पहले वर्ष में १ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल जायगा,

दूसरे वर्ष मे ४ लाख से ५ लाख तक व्यक्तियो को और तीसरे वर्ष मे लगभग १० लाख व्यक्तियो को रोजगार प्राप्त होगा और इस प्रकार बढते-बढते आयोजना के अन्तिम वर्ष मे लगभग २५ लाख व्यक्तियो को रोजगार मिल सकेगा। आयोजना की अवधि में इस समस्त कार्यक्रम पर कुल व्यय १५० करोड रुपये होने का अनुमान था।

शिक्षित बेरोजगारों की समस्या पर दो भागो मे विचार किया जा सकता है—प्रथम पिछले बेरोजगार तथा दूसरे, नये आने वाले बेरोजगार। रोजगार दफ्तरों के आँकडों के अनुसार पिछले शिक्षित बेरोजगारो की सख्या लगभग १० लाख थी। तीसरी आयोजना की अवधि के हाई स्कूल तथा इसके ऊपर की शिक्षा प्राप्त लोगो की सख्या लगभग ३० लाख हो जाने का अनुमान था, जिन्हे रोजगार दिलाना था। कृषि उद्योग और यातायात की उन्नति होने से कुशल और व्यावसायिक एव तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए व्यक्तियो को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होने की आशा थी। इस सम्बन्ध मे शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन बहुत महत्वपूर्ण है। हाल के वर्षो मे हाथ से काम करने के प्रति पढे लिखे व्यक्तियों के रुख मे परिवर्तन हुआ है और उन्हे विकासशील अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओ के अनुकूल बनाने के लिये बडे पैमाने पर कार्यक्रम हाथ मे लेने का विचार था। सहकारी समितियाँ और वैज्ञानिक खेती तथा लोकतान्त्रिक सस्थाओं की स्थापना हो जाने से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत पढे-लिखे लोगो के लिये नियमित और निरन्तर रोजगार का योग काफी बढ जायगा। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे प्राप्त रोजगार से उन्हे वास्तव मे उतनी ही आय होगी जितनी कि शहरो मे होती है। यह भी सम्भव हो जायेगा कि काफी बडी सख्या मे पढे लिखे नवयुवको को ग्रामीण केन्द्रों म, जहाँ बिजली उपलब्ध की जा सके, छोटे-छोटे उद्योग स्थापित करने मे सहायता दी जाये।

इस बात की भी आवश्यकता थी कि जो प्रायोजनाये पूरी हो चुकी थी या पूर्ण होने वाली थी वहाँ से कुशल कर्मचारियो को लेकर उन प्रायोजनाओ मे लगाया जाये जो आरम्भ होने वाली हैं। दूसरी आयोजना मे इस कार्य के लिये जो व्यवस्था की गई थी उसके अन्तर्गत सन्तोषजनक रूप से कार्य हुआ था। इस व्यवस्था को बनाये रखते हुये यदि इसी प्रकार की प्रायोजनाओ को और अधिक अच्छे ढग से चलाया जाये तथा पूर्व नियोजन करके इन्हे लागू किया जाय तो इस समस्या का अधिक सरलता से सामना किया जा सकता है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि तृतीय आयोजना ने भी बेरोजगारी की बढती हुई समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत नही किया। एक आयोजना से अगली आयोजना मे बेरोजगारी की वृद्धि होना बडी गम्भीर समस्या है। जब तृतीय आयोजना समाप्त हुई थी तो रोजगार के इच्छुक व्यक्तियो की सख्या ६० लाख तथा १ करोड के

बीच आँकी गई थी। बाद मे प्राप्त नये आँकडो के अनुसार यह सख्या ७० लाख अनुमानित की गई थी। चौथी आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा के अनुसार, चौथी आयोजना की अवधि मे श्रमशक्ति मे २ करोड तीस लाख की वृद्धि की आशा की जाती थी, जिससे रोजगार ढूंढने वाली की कुल सख्या ३ करोड तीस लाख होने की आशा थी। इसके विपरीत चौथी आयोजना की रूपरेखा मे जो कार्यक्रम निर्धारित किये गये थे उनसे १ करोड ८५ लाख से लेकर १ करोड ९० लाख तक लोगो को अतिरिक्त रोजगार मिलने की आशा थी—अर्थात् ४५ लाख से लेकर ५० लाख तक कृषि मे और लगभग १ करोड ४० लाख कृषि से बाहर। इस प्रकार, १९७१ मे बेरोजगार लोगो की सख्या लगभग १ करोड ४० लाख होने की आशा थी और पाँचवी आयोजना की अवधि मे, यह आशा की जाती है कि श्रम शक्ति मे ३ करोड व्यक्तियो की और वृद्धि हो जायेगी। इस तरह, १९७१–७६ के बीच रोजगार की तलाश करने वाले व्यक्तियो की सख्या ४ करोड ४० लाख से भी और बढने की ही सम्भावना है।

अगस्त १९६६ मे **चौथी पचवर्षीय आयोजना** (१९६६-७१) मे प्रस्तावित रूपरेखा के प्रकाशित होने के बाद, विभिन्न क्षेत्रो मे बेरोजगारो की सख्या तथा रोजगार की वृद्धियो के अनुमानो के बारे मे शकाएँ प्रकट की गई। फिर १९६६ से १९७९ तक तीन वार्षिक आयोजनाओ का दौर चला। जैसा कि बताया जा चुका है, आयोजना आयोग ने अगस्त १९६८ मे बेरोजगारो के अनुमानो पर विशेषज्ञो की एक समिति की नियुक्ति की थी। मार्च १९६९ मे जब चौथी पचवर्षीय आयोजना (१९६९–७४) की रूपरेखा प्रकाशित की गई, तो बेरोजगारो की सख्या तथा रोजगार की वृद्धि के बारे मे कोई अनुमान प्रकट नही किये गये। इस सम्बन्ध मे उपर्युक्त समिति का ही उल्लेख कर दिया गया। इस समिति ने मार्च १९७० मे अपनी रिपोर्ट दी थी जिसकी सिफारिशो का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। **पाँचवी पचवर्षीय आयोजना** की रूपरेखा मे भी इस समिति की सिफारिशो को कार्यान्वित का सुझाव दिया गया है।

चौथी पचवर्षीय आयोजना (१९६९–७४) मे इस बात पर जोर दिया गया था कि रोजगार के अवसरो मे अधिकाधिक वृद्धि की जाए तथा अधिकतम सम्भव मात्रा मे श्रमप्रधान तकनीको को अपनाया जाए। किन्तु जैसा कि पाँचवी आयोजना की रूपरेखा म बताया गया, श्रमशक्ति की वृद्धि के अनुपात मे रोजगारो की उत्पत्ति न हो सकी। इसी प्रकार, शिक्षित बेरोजगारो तथा तकनीकी योग्यता प्राप्त बेरोजगारो की स्थिति मे पूर्ववत् गम्भीर विचार का विषय भी बनी रही।

पाँचवीं पचवर्षीय आयोजना (१९७४–७९) मे इस बात पर काफी बल दिया गया था कि आयोजना की अवधि मे शहरी व ग्रामीण, दानो ही क्षेत्रो के लिये जो विकास कार्यक्रम बनें, उनमे शिक्षित तथा अशिक्षित बेरोजगारो की एक बडी सख्या को पर्याप्त तथा अधिकाधिक मात्रा म रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये

जाएँ। पाँचवीं आयोजना की रूपरेखा में रोजगार तथा बेरोजगारी के सम्बन्ध में जो व्यापक लक्ष्य निर्धारित किये गये थे, उनकी पूर्ति के लिए जिन बातों पर काफी जोर दिया गया था उनमें मुख्य ये हैं (१) श्रम-प्रधान प्रकृति के कार्यक्रमों में निवेश करके ऐसे रोजगार उत्पन्न करना जिनमें मजदूरी दी जाती है, (२) कृषि, लघु उद्योग, वाणिज्य तथा व्यापार जैसे क्षेत्रों में निजी रोजगारों को प्रोत्साहन देना, (३) समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को रोजगार देने के विशेष प्रयास करना, (४) सीमान्त रूप में रोजगार में लगे लोगों की कमाई में वृद्धि करना, (५) कृषि क्षेत्र को शक्तिशाली बनाना ताकि ग्रामीण श्रमिकों का एक बड़ा भाग स्वयं कृषि में तथा पशुपालन व मुर्गीपालन जैसे सम्बद्ध व्यवसायों में खपाया जा सके। इसके लिए ऐसे उपाय अपनाना, जैसे भूमि का कारगर ढंग से वितरण, उधार की सुविधाएँ प्रदान करना, वस्तुओं की बिक्री की व्यवस्था करना तथा सूखी खेती की तकनीकों का विकास करना आदि, (६) अनेक ऐसे विशिष्ट कार्यक्रमों को जारी रखना तथा उनका विस्तार करना, जैसे कि छोटे किसानों, सीमान्त किसानों तथा कृषि श्रमिकों के लिये विकास अभिकरणों की स्थापना, ग्रामीण व आदिम जाति तथा पहाड़ी क्षेत्रों के सूखाग्रस्त भागों में विशेष कार्यक्रम लागू करना, (७) परिवार नियोजन अभियान को अधिक कारगर ढंग से लागू करना, (८) कृषि में मशीनीकरण का चुनींदा क्षेत्रों में उपयोग करना, (९) आर्थिक विकास की माँग को पूरा करने के लिए शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन करना, (१०) बेरोजगार लोगों को रोजगार पाने योग्य बनाने के लिये उनकी कुशलता में वृद्धि हेतु व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना तथा (११) विभिन्न रोजगार-प्रधान योजनाओं को सभी स्तरों पर तेजी से एवं कारगर ढंग से लागू करने के लिये प्रशासनीय व्यवस्था को सक्रिय बनाना।

१९७८—८३ की पंचवर्षीय आयोजना की रूपरेखा में, जिसका कि अब परित्याग कर दिया गया है, ग्रामीण तथा शहरी बेरोजगारी का अनुमान निम्न प्रकार दिया गया है—

ग्रामीण तथा शहरी बेरोजगारी के अनुमान

बेरोजगारी के प्रकार	१९७१ बेरोजगारी (दस लाख में)	१९७३ बेरोजगारी (दस लाख में)	दर	१९७८ बेरोजगारी (दस लाख में)	१९८३ बेरोजगारी (दस लाख में)
१	२	३	४	५	६
१. ग्रामीण					
सामान्य स्थिति (दीर्घकालीन)	१ ७३	१ ८३	० ९२	२ ००	२ २०
साप्ताहिक स्थिति	७ ०४	७ ४९	३ ८८	८ १५	८ ९८
दैनिक स्थिति	१४ २१	१५·०५	८ २०	१६ ४७	१८·१०

२. शहरी					
सामान्य स्थिति (दीर्घकालीन)	१·८८	२ ०४	५ ०३	२ ३७	२ ७७
साप्ताहिक स्थिति	२ ४१	२·६१	६ ५६	३ ०४	३ ५५
दैनिक स्थिति	३ २४	३ /२	८ ९७	४ ०६	४ ७८
३. योग					
सामान्य स्थिति (दीर्घकालीन)	३ ६१	३ ८७	१ ६०	४·३७	४ ६१
साप्ताहिक स्थिति	६ ४५	१० ०७	४ ३३	११ २०	१२ ५३
दैनिक स्थिति	१७ ४५	१८ /७	८ ३४	२० /६	२२ ८८

सामान्य स्थिति (दीर्घकालीन) (Usual Status, Chronic) का आशय है उन श्रमिकों की संख्या जिन्हें पूरे वर्ष काम नहीं मिलता। साप्ताहिक स्थिति (Weekly Status) का अर्थ है अनियमित बेरोजगारी अर्थात् उन लोगों की संख्या जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह में एक घण्टे भी काम नहीं मिला और काम ढूंढ रहे हैं या काम के लिए उपलब्ध है। दैनिक स्थिति (Daily Status) से आशय है वे लोग जो एक ही सप्ताह में किसी दिन काम पा जाते हैं और अन्य दिन काम की तलाश में रहते हैं।

बेरोजगारी को दूर करने के लिए किये गये प्रयास
(Special Measures to Tackle Unemployment)

चौथी योजना की अवधि में विभिन्न क्षेत्रों में विकास कार्यक्रम आरम्भ करने के अतिरिक्त, विगत वर्षों में शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार लोगों के लिए अधिकाधिक मात्रा में रोजगार के अवसर उपलब्ध करने के लिये भारत सरकार ने अनेक विशेष कदम उठाये है। सन् १९६८–६९ में आयोजना आयोग ने सुझाव दिया था कि इन्जीनियरों में बढ़ती हुई बेरोजगारी को दूर करने के लिये बजट में १० करोड़ रु० की अतिरिक्त व्यवस्था की जाए। इस कार्यक्रम में इन्जीनियरों को सरकारी संस्थाओं में नियुक्त करने, इन्जीनियर स्नातकों को लघु उद्योगों की स्थापना के लिए वित्तीय सहायता देने तथा सरकारी उद्यमों में बिक्री एवं प्रबन्धकीय पदों तक पर उनकी नियुक्ति की व्यवस्था की गई। कमजोर वर्ग के लोगों तथा क्षेत्रों में, जहाँ कि बेरोजगारी की समस्या अधिक विकट है, वहाँ के लोगों को विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए १९७०–७१ से जो कार्यक्रम आरम्भ किये गये, उनमें से प्रमुख थे लघु कृषक विकास एजेन्सियाँ, सीमान्त कृषकों तथा कृषि श्रमिकों के लिए एजेन्सियाँ, सूखा प्रभावित क्षेत्रों के कार्यक्रम (जिन्हें ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम कहा जाता है), सूखे कृषि क्षेत्र के विकास की योजनाएँ आदि। १९७१–७२ के दौरान, केन्द्र सरकार द्वारा दो योजनायें चालू की गईं। ये थी : (क) ग्रामीण रोजगार के लिए क्रैश योजना, और (ख) शिक्षित बेरोजगारों की सहायता के लिए योजनायें। ग्रामीण बेरोजगारों की क्रैश योजना के लिए ५० करोड़ रु० निर्धारित

किये गये। उद्देश्य यह था कि प्रत्येक जिले के ग्रामीण क्षेत्र में औसतन, १,००० लोगों को साल में दस माह के लिए काम दिलाया जाए। यह योजना चौथी आयोजना की शेष अवधि में भी जारी रही। शिक्षित बेरोजगारों के लिए विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयों द्वारा राज्य तथा संघशासित क्षेत्रों के माध्यम से जो योजनायें चालू की गई, उनमें मुख्य थी प्राइमरी शिक्षा का विस्तार तथा उसकी किस्म में सुधार, स्वतः रोजगार हेतु छोटे उद्यमियों को वित्तीय सहायता, ग्रामीण इंजीनियरिंग सर्वेक्षण, कृषि सेवा केन्द्र, उपभोक्ता सहकारी भण्डारों का विस्तार, राज्य परियोजनाओं के अनुसंधान तथा ग्रामीण जलपूर्ति के लिए इकाइयाँ आदि। सन १९७१-७२ में इन योजनाओं के लिए राज्य सरकारों को जहाँ केवल १० करोड़ रु० दिया गया था, वहाँ १९७२-७३ में यह राशि बढ़कर ६३ करोड़ रु० हो गई थी। अगले वर्ष अर्थात् १९७३-७४ में भी लगभग इतनी ही राशि दी गई थी। १९७२-७३ में राज्यों तथा संघशासित क्षेत्रों के लिए एक विशेष रोजगार कार्यक्रम भी लागू किया गया था। इसके लिए केन्द्र ने २७ करोड़ रु० दिये थे (२६.५० करोड़ रु० राज्यों को और ५० लाख रु० संघशासित क्षेत्रों को)। यह आशा की गई थी कि इस योजना में राज्य भी इतनी ही राशि अपने पास से लगायेंगे। १९७३-७४ में इस कार्यक्रम को जारी रखने के लिए केन्द्र द्वारा २३ करोड़ रु० दिये गये थे।

१९७०-७१ से चालू कार्यक्रमों को जारी रखने के अलावा, १९७३-७४ में "पाँच लाख पदों का कार्यक्रम" भी लागू किया गया था। इस कार्यक्रम द्वारा काम ढूंढने वाले ५ लाख शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार देने की व्यवस्था थी। इस उद्देश्य के लिए १९७३-७४ के केन्द्रीय बजट में १०० करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ऐसी योजनाओं पर जोर दिया गया कि जिनसे स्वतः रोजगार व प्रशिक्षण सुविधाओं की वृद्धि हो और नियमित पदों पर शिक्षित व्यक्तियों को खपाया जा सके। इस कार्यक्रम को लागू करते समय इस बात पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था कि समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को रोजगार के पर्याप्त अवसर मिलें।

एक रिपोर्ट के अनुसार, शिक्षित बेरोजगारों के लिए बनाये गये 'पाँच लाख पदों के इस कार्यक्रम' द्वारा मार्च १९७४ तक ढाई लाख से अधिक लोगों को काम दिया गया। आयोजना आयोग को प्राप्त एक रिपोर्ट से पता चलता है कि इस कार्यक्रम से २,५८,३१४ लोग लाभान्वित हुए जिनमें से २,५३,१५६ व्यक्ति राज्यों में, ४,०५८ व्यक्ति संघशासित क्षेत्रों में और ११०० व्यक्ति केन्द्रीय मन्त्रालयों में काम पर लगाये गये। राज्यों में, लाभ प्राप्त कर्त्ताओं की सर्वाधिक संख्या (४२,४६६) उत्तर प्रदेश में थी और उसके बाद पश्चिमी बंगाल और महाराष्ट्र का नम्बर था जहाँ यह संख्या क्रमशः ३३,६४० और २६,००० थी। इस कार्यक्रम के अलावा, अन्य विशेष रोजगार कार्यक्रम भी जारी रखे गये, जैसे कि ग्रामीण बेरोजगारी के

लिए क्रैश योजना, अग्रगामी प्रेरक ग्रामीण रोजगार परियोजनायें, सूखा प्रभावित क्षेत्रों के कार्यक्रम तथा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में शिक्षित बेरोजगारों के लिए कार्यक्रम। इन कार्यक्रमों से भी ८१ करोड़ श्रम दिनों का तथा १,६७,००० लोगों को अतिरिक्त रोजगार मिला। इसके साथ ही, लघु कृषक विकास एजेन्सी तथा सीमान्त कृषक व कृषि श्रमिक योजनाओं के द्वारा भी १३ लाख लोगों को काम दिया गया। अब और भी कई कार्यक्रम चल रहे हैं जैसे कि रोजगार गारन्टी योजना तथा काम के लिए खाद्यान्न योजना। इन योजनाओं से भी बेरोजगारों को काम दिलाने में कुछ सफलता मिली है। ये योजनाएँ अब 'एकीकृत ग्रामीण रोजगार योजना' में विलीन कर दी गई हैं। १९७८-८३ की पंचवर्षीय आयोजना में मानवशक्ति का आकलन करने तथा उन्हें काम दिलाने के लिए 'क्षेत्रीय नियोजन' की व्यवस्था की गई थी।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने देश में बेरोजगारी की समस्या का हल करने तथा गरीबी दूर करने के लिए यह नारा दिया था—"प्रत्येक घर में एक कुटीर उद्योग हो और प्रत्येक एक एकड़ भूमि में एक धाराग्राह हो।" १९७० में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'लाखों के लिए रोजगार" में उन्होंने कई व्यावहारिक सुझाव दिये हैं और कहा है कि कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों में ऐसे संयुक्त केन्द्र स्थापित किये जायें जहाँ बेरोजगारों को राष्ट्रनिर्माण के कार्यों का प्रशिक्षण दिया जाए। प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद अधिकांश युवक आत्म निर्भर बन जायेंगे और काम पर लग जायेंगे। "नई बस्तियाँ बनाकर लाभकारी रोजगार की एकीकृत योजना" नामक अपनी पुस्तिका में श्री वी० वी० गिरि ने कहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि सुधार की अग्रगामी परियोजनाएँ (pilot projects) प्रारम्भ की जाएँ ताकि गावों में रोजगार के अवसर बढ़ सकें।

एशियायी मानवशक्ति योजना तथा भारत

(Asian Manpower Plan and India)

भारत उन १८ देशों में से एक है जो 'रोजगार वृद्धि की एशियायी क्षेत्रीय प्रायोजना' में भाग ले रहे हैं। यह प्रायोजना उस एशियायी मानवशक्ति योजना का अभिन्न अंग है जो कि स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा १९६९ में चालू किये गये विश्व रोजगार कार्यक्रम का एक क्षेत्रीय भाग है। 'रोजगार वृद्धि की एशियायी क्षेत्रीय प्रायोजना' का उद्देश्य यह है कि भागीदार देशों को रोजगार नीतियों के निर्धारण में तथा उत्पादक रोजगार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए कार्यक्रम तथा योजनाएँ बनाने में सहायता की जाए। इस लक्ष्य की पूर्ति की दृष्टि से, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा विशेषज्ञों का एक दल, जिसे रोजगार वृद्धि का एशियायी क्षेत्रीय दल (ARTEP) कहा जाता है, बनाया गया। इस दल का प्रधान कार्यालय बेंगकाक में है। श्रम मन्त्रालय के रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय को इस हेतु एक ऐसा राष्ट्रीय केन्द्र बिन्दु बनाया गया है जो रोजगार समस्याओं का

सामना करने वाले विभिन्न विभागों की गतिविधियों में तालमेल स्थापित करेगा तथा विशेषज्ञों के दल व विभिन्न विभागों के बीच संचार-सूत्र का कार्य करेगा। भारत सरकार ने रोजगार से सम्बन्धित सात विशेष क्षेत्रों में विशेषज्ञों के इस एशियाई क्षेत्रीय दल की सहायता ली थी।

प्रायोजना के अन्तर्गत, पहला मिशन जून १९७२ में भारत आया और उसने एक माह तक देश में शिक्षित तथा तकनीकी दृष्टि से योग्य व्यक्तियों के बीच पाई जाने वाली बेरोजगारी की समस्या का अध्ययन किया। इस अध्ययन में उन सात विशिष्ट क्षेत्रों में से दो क्षेत्र सम्मिलित किये गये जिनके बारे में विशेषज्ञों के एशियायी क्षेत्रीय दल की सहायता मांगी गई थी। मिशन की रिपोर्ट जिसे "भारत में शिक्षितों के लिये रोजगार की उपलब्धि" नाम दिया गया, अप्रैल १९७३ में सरकार को प्राप्त हो गई। आयोजना आयोग द्वारा बेरोजगार समिति की रिपोर्ट में दी गई सिफारिशों पर विचार करने के लिये जो अन्तर्मन्त्रालय कार्यकारी दल नियुक्त किया गया था, वह सरकार को अपने सुझाव देते समय मिशन की रिपोर्ट में दी गई सिफारिशों पर भी विचार करेगा।

रोजगार वृद्धि के एशियायी क्षेत्रीय दल ने १२ व १३ दिसम्बर १९७३ को बेंगकाक में एक परामर्शदात्री एवं मूल्यांकन कार्यगोष्ठी का आयोजन किया। इस गोष्ठी को रोजगार वृद्धि की एशियायी क्षेत्रीय प्रायोजना (Asian Regional Project for Employment Promotion) के अन्तर्गत अब तक किये गये कार्य की समीक्षा तथा मूल्यांकन करना था और १९७४ के वर्ष के लिये कार्यक्रम पर तथा १९७४ के बाद में प्रायोजना के अन्तर्गत आरम्भ किये जाने वाले नये चरण पर भी विचार करना था। श्रम मन्त्रालय के रोजगार तथा प्रशिक्षण के महानिदेशालय ने आयोजना आयोग के अन्य वरिष्ठ अधिकारी के साथ भारत की ओर से इस कार्यगोष्ठी में भाग लिया था।

पूर्ण रोजगार की समस्या (Problem of Full Employment)

एक समस्या यह भी है कि भारत में पूर्ण रोजगार सम्भव है या नहीं। पूर्ण रोजगार की समस्या पर अर्थशास्त्रियों ने काफी विचार किया है। भारत में इस समस्या पर तभी से अधिकाधिक विवेचन हो रहा है जब से आयोजना आयोग ने प्रथम पंच-वर्षीय योजना में इस ओर संकेत किया था कि भारत पिछड़ा देश होने के कारण पूर्ण रोजगार को अपनी आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य नहीं मान सकता। अर्थ-व्यवस्था के ढाँचे की त्रुटियों को दूर करके ही पूर्ण रोजगार के कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जा सकता है। पूर्ण रोजगार के कार्यक्रम को हाथ में लेने से पूर्व पूंजी और भूमि की कमियों को दूर कर लेना चाहिए। इस प्रकार देश में अर्थव्यवस्था के विस्तार और उसमें विविधता लाने की योजना बनाकर ही पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने की सम्भावना हो सकती है।

पूर्ण रोजगार का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता की सीमा तक कार्य करता रहे वरन् इसका तात्पर्य उस रोजगार से है जो लगभग ऐसे इष्टतम बिन्दु (Optimum Point) तक पहुँच गया हो जब और अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं की अपेक्षा मनुष्य फुर्सत (Leisure) अधिक पसन्द करने लगता है। सर विलियम बेवरिज ने पूर्ण रोजगार की परिभाषा इस प्रकार की है—पूर्ण रोजगार की व्यवस्था में मनुष्यों की अपेक्षा रिक्त स्थान अधिक होने हैं। परन्तु उनका यह कहना है कि रिक्त स्थान अथवा काम उचित मजदूरी पर प्राप्त होने चाहिएँ और वे इस प्रकार के तथा ऐसी जगह होने चाहियें कि बेरोजगार व्यक्ति आसानी से उन्हें अपना सकें। प्रो० पीगू के अनुसार, पूर्ण रोजगार का तात्पर्य यह है कि चालू मजदूरी की दरों पर यदि रोजगार योग्य व्यक्ति कार्य करने को तैयार हों तो उन्हें काम मिल जाये। कीन्स के अनुसार, अनैच्छिक बेरोजगारी का अभाव ही पूर्ण रोजगार है। प्रो० लर्नर का कहना है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति वह होती है जिसमें कि जितने कि रोजगार ढूँढने वाले व्यक्ति हों उतने ही व्यक्तियों की तलाश वाले रोजगार या काम हो। परन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया कि पूर्ण रोजगार में सदा ही ऐसे लोगों की काफी मात्रा अवश्य रहती है जिन्हें कि एकदम काम नहीं मिल पाता। पूर्ण रोजगार की स्थिति के लिये राज्य का ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी समय रिक्त स्थानों की संख्या बेरोजगार व्यक्तियों से कम न हो। इसके अतिरिक्त, कार्य उचित मजदूरी पर प्रदान किये जाने चाहिये और कार्य इस प्रकार स्थित होने चाहियें कि रोजगार के इच्छुक व्यक्ति इन्हें स्वीकार कर सकें। यदि ये समस्त दशायें उपस्थित हैं तो एक कार्य के छूटने तथा दूसरे कार्य के पाने के बीच का साधारण अन्तर वास्तव में बहुत कम हो जायेगा। यह भी कहा जाता है कि पूर्ण रोजगार रोजगार का वह चरण है, जहाँ लोगों के खर्च में वृद्धि होने के कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के साथ ही मुद्रास्फीति (inflation) आरम्भ हो जाती है। रोजगार का निम्न स्तर अनावश्यक बेरोजगारी को प्रकट करता है जिसे व्यय में वृद्धि करके ठीक किया जा सकता है। कीन्स के अनुसार, वास्तविक मुद्रास्फीति केवल पूर्ण रोजगार के स्तर पर ही आरम्भ होती है।

इस प्रश्न पर भी मतभेद है कि एक स्वतन्त्र व्यक्तिवादी समाज में पूर्णरोजगार सम्भव है या नहीं। मार्क्सवादी तथा कुछ अन्य व्यक्ति विश्वास करते हैं कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की अपनी प्रकृति ही श्रम की माँग तथा पूर्ति में सामंजस्य नहीं होने देती। परिणामस्वरूप, एक नौकरी छूटने तथा दूसरी नौकरी के मिलने के बीच का समयान्तर बहुत अनिश्चित तथा लम्बा हो जाता है। सर विलियम बेवरिज तथा अन्य व्यक्तियों ने इस बात पर बल दिया है कि यद्यपि सर्व-अधिकार (Totalitarian) राज्य की अपेक्षा स्वतन्त्र समाज में पूर्ण रोजगार कायम रखने की समस्या अधिक जटिल है तथापि एक व्यक्तिवादी अर्थव्यवस्था में इस अवस्था को प्राप्त करना असम्भव भी नहीं है। गत युद्ध के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है व्यक्तिवादी अर्थव्यवस्था में भी

बेरोजगारी दूर की जा सकती है। यदि कोई स्थिति युद्ध-काल मे प्राप्त की जा सकती है तो कोई कारण नही है कि हम इसे शान्ति काल मे प्राप्त न कर सकें। राज्य द्वारा आर्थिक क्षेत्र मे, रोजगार देने के हेतु नियन्त्रण से पूर्व रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सकती है, परन्तु इससे पूर्व कि पूर्ण रोजगार सम्भव हो सके, कुछ पग उठाने आवश्यक है। उद्योगो का स्थानीयकरण इस प्रकार नियन्त्रित होना चाहिये कि उपलब्ध श्रमिको का इनमे उचित प्रकार से वितरण हो सके। श्रमिकों की गतिशीलता का नियन्त्रण रोजगार दफ्तरो द्वारा होना चाहिये। सरकारी तथा निजी दोनो क्षेत्रो का कुल व्यय इतना और इस प्रकार होना चाहिये कि वस्तुओ तथा सेवाओ की माँग इतनी अधिक रहे कि यह माँग पूरी करने के लिये राष्ट्र की समस्त मानव शक्ति रोजगार मे लगा दी जाये। पूर्ण रोजगार की नीति अपनाने मे यह भी आवश्यक है कि आर्थिक नियन्त्रणो को दृढ किया जाये और उन्हे विस्तार से लागू किया जाये। इसके अतिरिक्त, पूर्ण रोजगार की नीति के साथ साथ सामाजिक सुरक्षा का कार्यक्रम लागू करना चाहिये अन्यथा पूर्ण रोजगार का कोई लाभ नही होगा। इस प्रकार पूर्ण रोजगार तब तक सम्भव नही हो सकता जब तक राज्य द्वारा कुछ असाधारण अधिकार ग्रहण नहीं कर लिये जाते, जैसे—निदेशन, सामजस्य तथा नियन्त्रण के अधिकार।

उपरोक्त बातों को भारत जैसे देश में प्राप्त करना कठिन है जहां मानव जाति के पाँचवे भाग को रोजगार देना दुर्लभ कार्य प्रतीत होता है। किन्तु यदि उन व्यक्तियो की सख्या बहुत विशाल है, जिनको रोजगार दिया जाना है, तो हमारे साधन भी बहुत अधिक है। यदि विकास की आयोजनायें उचित प्रकार से कार्यान्वित की जायें तो हमारे जैसे देश मे पूर्ण रोजगार प्राप्त करने मे अधिक कठिनाई नही होगी। कुछ भी हो, इस समय पूर्ण रोजगार प्राप्त करने का आदर्श भारत के लिये अपनाना उचित ही है। इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए दृढ सकल्प भी होना चाहिये।

मन्दी काल तथा उसके प्रभाव का सामना करने के लिये मालिको द्वारा उपाय

(Ways Open to Employment to Meet Periods of Depression and their Effects)

अब हम एक ऐसे विषय का उल्लेख करेंगे जिसका मालिको द्वारा किये गये उन प्रयत्नो को समझने मे बहुत महत्व है, जो प्रयत्न मन्दी काल की हानियों को दूर करने के लिये इस प्रकार किये जाते है, कि न तो उनसे राष्ट्रीय आय को हानि पहुँचे और न उनके कारण बेरोजगारी फैले। जब मन्दी आती है, तब परिणाम यह होता है कि मालिको द्वारा किये गये उत्पादन की माग कम हो जाती है और मालिक अनुभव करने लगता है कि यदि वह पहले जैसे स्तर पर उत्पादन करता रहा तो उसे हानि होगी। इसलिए उसे उत्पादन मे कुछ कमी करनी पडती है। आवश्यक कटौती निम्न तीन

उपायों में से किसी एक उपाय द्वारा हो सकती है—(१) मालिक श्रमिकों की एक विशेष संख्या को बर्खास्त कर दें और अन्य को पूर्ण रूप से रोजगार देता रहे, (२) मालिक समस्त कर्मचारी वर्ग को कार्य में लगाये रखे किन्तु एक 'बदलती श्रमिक' (Rotation) प्रणाली को लागू कर दे, जिसके अन्तर्गत, उदाहरणतया, श्रमिक तीन सप्ताह के लिये कार्य में लगे रहें और चौथे सप्ताह खाली रहें अथवा (३) वह समस्त कर्मचारी वर्ग को लगाये रखे परन्तु उनसे प्रत्येक सप्ताह कम समय के लिये कार्य लेता रहे। यह प्रणाली दूसरी प्रणाली से, जिसमें सविराम कार्य होता है, भिन्न होती है।

पहली योजना को, अर्थात् कुछ श्रमिकों के लिये पूर्ण रोजगार तथा अन्य श्रमिकों की बर्खास्तगी को वहाँ जहाँ श्रमिक कुशल नहीं है तरजीह दी जाती है और जहाँ माँग पुनः बढ़ जाने से उनकी पूर्ति भी अधिक होने की सम्भावना होती है। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली वहाँ भी अधिक प्रचलित होगी जहाँ श्रमिकों को समया-नुसार मजदूरी दी जाती है। इसमें सबसे कम चतुर कुशल श्रमिक पहिले बर्खास्त कर दिये जाते हैं। तथापि मालिक के लिए उन कुशल और विशेष योग्य श्रमिकों को बर्खास्त करना सम्भव नहीं हो सकता, जो फैक्टरी में नाजुक मशीनरी को बनाने के अभ्यस्त होते हैं या उन कार्य करने वाले व्यक्तियों को बर्खास्त नहीं किया जा सकता जिन्होंने किसी विशेष कार्य पर कुछ समय से लगे रहने के कारण विशेष योग्यता प्राप्त कर ली है। इस उपाय को अपनाने में दूसरी कठिनाई यह है कि इस बात का भय रहता है कि कहीं बर्खास्त किये गये श्रमिक व्यवसाय के निर्माण रहस्यों का उद्घाटन न कर दें। इसके अतिरिक्त मालिकों को श्रमिकों को बर्खास्त करते समय श्रमिक संघों के विरोध का सामना करना पड़ता है।

'बदलते श्रमिक' योजना (Rotation Plan) को असुविधा तथा जटिलता के कारण प्रबन्धकों का अधिक समर्थन नहीं मिला है। किन्तु बेरोजगारी बीमा के विकास के साथ कुछ क्षेत्रों में कम समय कार्य के उपाय की अपेक्षा यह उपाय अपनाया गया है। इसका कारण यह है कि यदि एक व्यक्ति चार सप्ताह में से एक सप्ताह कार्य नहीं पायेगा तो उस सप्ताह के लिए बेरोजगारी लाभ का अधिकारी हो जायेगा जबकि यदि वह कम समय योजना के अन्तर्गत एक सप्ताह में १२ घन्टे नष्ट कर देता है तो उसे कोई लाभ नहीं मिलेगा। 'बदलते श्रमिक' योजना श्रमिकों को बर्खास्त करने की अपेक्षा कम समय योजना (Short-time Plan) के साथ-साथ अधिक प्रचलित है क्योंकि इसके अन्तर्गत पूर्ण कर्मचारी वर्ग का संस्था के रजिस्टरों में नाम दर्ज रहता है और वे रोजगार में लगे रहते हैं।

तीसरी योजना अर्थात समस्त कर्मचारी वर्ग के लिये "कम समय कार्य करने की प्रणाली" को व्यवहार में लाना है जहाँ तक कर्मचारियों को बर्खास्त करने तथा "बदलते श्रमिक" योजना के लिये उचित परिस्थिति उपस्थित नहीं होती। यह प्रणाली वहाँ अपनाई जाती है जहाँ कार्य के कुछ घन्टों में अन्य घन्टों

की उपेक्षा अधिक व्यय पड़ता है, उदाहरणतया उस अवधि में जब प्रकाश और ऊष्मा की अधिक लागत आती है। इसके अतिरिक्त, मालिक भी जब कुशल व्यक्तियों को कार्य पर लगाये रखने को इच्छुक होता है तभी इस योजना को अपनाता है। कर्मचारियों को बर्खास्त करना तो उन उद्योगों में एक नियम सा बन जाता है जिसमें मजदूरी समयानुसार (आदमी) दी जाती है, जबकि कम समय कार्योजना वहाँ ग्रहण की जाती है जहाँ मजदूरी कार्यानुसार (उजरत) दी जाती है, क्योंकि ऐसी दशाओं में सबसे कम कुशल श्रमिकों को बर्खास्त करने की इच्छा उतनी प्रबल नहीं होती।

यदि अन्य कोई रोजगार प्राप्त करने का अवसर है, विशेषकर जब व्यापार साधारणतः समृद्धि कर रहा है, तब कर्मचारी बर्खास्त करने की योजना कम समय योजना की अपेक्षा उत्तम रहती है। किन्तु जब पूर्ण व्यापार मन्द हो तो कर्मचारी बर्खास्त करना न्यायोचित नहीं होता। साधारणतः कम समय योजना को, जिसमें 'बदलते श्रमिक' योजना भी आ सकती है, जहाँ परिस्थिति विशेष रूप से अनुकूल हो तरजीह देनी चाहिये। इसके कुछ लाभ हैं। सबसे प्रथम तो कम समय योजना कर्मचारियों को बर्खास्त करने से कम कष्टदायक होती है। इसके अतिरिक्त कम समय योजना में श्रमिक व्यय में कटौती करते हैं तथा वे अपनी अपेक्षाकृत आराम की कुछ वस्तुएँ छोड़ देते हैं तथा जीवन की मुख्य आवश्यकताओं पर अपना व्यय केन्द्रित कर देते हैं। यदि व्यय में यह कटौती एक तिहाई की सीमा तक है तब घटते तुष्टिगुण के नियमानुसार समस्त बलिदान कुल तुष्टिगुण के एक तिहाई से कम होगा। किन्तु यदि इन व्यक्तियों में से दो तिहाई व्यक्ति पूर्ण रोजगार पर लगे रहते हैं तथा अन्य एक तिहाई हटा दिये जाते हैं तो समस्त बलिदान पहली स्थिति की अपेक्षा अधिक होगा। इसका कारण यह है कि मुद्रा की वह मात्रा जो पूर्ण रोजगार में लगे व्यक्तियों द्वारा आराम की वस्तुओं पर व्यय की जा रही है, यदि अब बेरोजगार हुए व्यक्तियों द्वारा जीवन की आवश्यकताओं पर व्यय की जाती है तो अपेक्षाकृत अधिक तुष्टिगुण प्रदान करेगी। दूसरे, कम समय योजना श्रमिकों का बर्खास्त करने से उत्तम है क्योंकि इसमें श्रमिक की कार्यकुशलता तथा चरित्र-हीनता का भय कम होता है। वह व्यक्ति जो दीर्घ अवधि तक बेरोजगार रहता है अपने व्यापार से सम्पर्क खो बैठता है तथा फुटकर कार्य करने लगता है और उसके स्वभाव तथा स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। इस प्रकार वह धीरे-धीरे रोजगार के अयोग्य व्यक्तियों की श्रेणी में आ जाता है। अतः मालिकों द्वारा मन्दी का सामना करने के लिए जो उपाय किये जाते हैं, उसमें से 'कम समय उपाय' कर्मचारी बर्खास्त करने की अपेक्षा अधिक उत्तम है क्योंकि कर्मचारी बर्खास्त करने से बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है।

कार्मिक प्रबन्ध

'कार्मिक प्रबन्ध' (Personnel Management) तथा मानवीय सम्बन्धों (Human Relations) पर एक टिप्पणी

'कार्मिक प्रबन्ध', प्रबन्ध कार्य का ही एक भाग है और मुख्यत इसका सम्बन्ध संस्थान के भीतर ही मानवीय सम्बन्धो से होता है। इसका उद्देश्य इन सम्बन्धो को ऐसे स्तर पर बनाये रखना है जिसके द्वारा, प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण को ध्यान मे रखते हुए, उन तमाम व्यक्तियो को जो संस्थान मे रोजगार पर लगे हुए हैं उस संस्थान के प्रभावात्मक संचालन मे व्यक्तिगत रूप से अंशदान देने के योग्य बनाना है।

इस प्रकार कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं

(१) "कल्याण दृष्टि से कार्य"—इसका सम्बन्ध श्रमिकों की उन भौतिक सुविधाओं से होता है जो उनके आराम के लिये आवश्यक है। (२) "कार्मिक दृष्टि से कार्य"—इसका मनुष्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से सम्बन्ध है तथा इसमे मानवीय सम्बन्ध के सभी पक्ष आ जाते हैं।

कार्मिक प्रबन्ध का मुख्य आधार कर्मचारियो के मानवीय व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान करना है। सौहार्द्रपूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिए यह बात अत्यन्त आवश्यक भी है। अत मालिक तथा कर्मचारियो के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये आवश्यक सहयोग और कर्मचारियो व प्रबन्धकर्ताओ मे सम्पर्क बनाये रखने के लिये तथा उद्योग मे मानवीय सम्बन्धो की नीति को लागू करने के लिए प्रत्येक संस्थान मे एक कार्मिक विभाग होना चाहिये।

कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत बहुत ही विस्तृत कार्य आते हैं। इसका सम्बन्ध श्रमिको के लिये कल्याण-कार्य करने मे ही नही है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी कार्य जो प्रबन्ध के प्रति श्रमिका मे विश्वास की भावना को जन्म देता है और उनके हौसले बढ़ाता है तथा उनकी कार्य-कुशलता मे सुधार करता है, कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत आ जाता है। अत इसके अन्तर्गत प्रबन्ध के वह सभी कार्य सम्मिलित होते है, जिनका सम्बन्ध भर्ती, रोजगार की शर्तों, मजदूरी, औद्योगिक सम्बन्धो, कल्याण कार्यों, दुर्घटनाओ की रोकथाम, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा प्रशिक्षण, संयुक्त परामर्श तथा अनुसन्धान आदि से होता है। इन सभी समस्याओ पर हम पिछले पृष्ठो मे विचार कर चुके हैं। हमने इस बात पर भी बल दिया है कि यदि मालिकों और श्रमिको के मध्य निकट सम्पर्क स्थापित हो जाये और मानवीय दृष्टिकोण से सब बातो को देखा जाय तो अनेक श्रम-समस्याओ का बड़ी सुगमता से

निराकरण हो सकता है। अतः श्रमिक विभागों का बड़ी कुशलतापूर्वक कार्य करना पड़ता है। श्रमिक अधिकारी एक अत्यन्त कुशल व बुद्धिमान व्यक्ति होना चाहिये, जिसको श्रम समस्याओं तथा श्रमिकों की परिस्थितियों का विशेष ज्ञान हो।[1]

यह बात उल्लेखनीय है कि उद्योग में मानवीय सम्बन्धों का प्रश्न दिन प्रतिदिन महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली होता जा रहा है। विस्तृत अर्थों में 'उद्योग में मानवीय सम्बन्ध' वाक्यांश को इस बात का बोध होना है कि उद्योग में रोजगार पर लगे हुए व्यक्तियों में कैसे सम्बन्ध होने चाहियें। लेकिन व्यावहारिक जीवन में यह वाक्यांश उन सम्बन्धों की ओर संकेत करता है जो मालिकों अथवा पर्यवेक्षक को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति अपनाने चाहियें और बनाये रखने चाहियें। यह समस्या अब अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि औद्योगीकरण के विस्तार तथा यन्त्रीकरण के कारण मालिक तथा श्रमिकों के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क तो अब केवल अतीत की बात बनकर रह गई है। पर्याप्त मजदूरी तथा कार्य करने की सन्तोषजनक दशायें अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। लेकिन यह बातें स्वयं अपने आप में, संस्थान की नीति-निर्धारण में, श्रमिकों का सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं कर सकतीं, जब तक उनका सहयोग पाने के लिये मानवीय रूप से व्यवहार नहीं किया जाता।[2] हमें यह भी याद रखना है कि श्रमिक भी मनुष्य होते हैं, वे भावुक भी होते हैं, उनमें भावनायें और इच्छायें भी होती हैं। यह सब उनकी मूल आवश्यकताओं और उद्यम से उत्पन्न होती हैं जैसे—सुरक्षा और स्वामित्व की भावना और स्नेह, घृणा, क्रोध, भय, अभिमान जिज्ञासा आदि की प्रवृत्तियाँ। मानवीय सम्बन्धों के क्षेत्र में नीति निर्धारित करने के लिये इन सब बातों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये। यद्यपि हम इस बात को मानकर चलते हैं कि सब उद्योगों का उद्देश्य अन्य कार्यों के उद्देश्यों की भाँति मनुष्य के रहन-सहन की दशाओं में उन्नति करना है अथवा अर्थशास्त्रियों के कथनानुसार, मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना है तब क्या यह अजीब सा न होगा कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के कार्यों में मानवीय दृष्टिकोणों की उपेक्षा की जाय और अन्य बातों का ध्यान न करके श्रमिकों को केवल उनकी उत्पादन-क्षमता की दृष्टि से ही आँका जाये? यन्त्रों (मशीनों) को सम्भालना तो सरल होता है क्योंकि यदि यन्त्र में कोई दोष उत्पन्न हो जाता है तब यह पता लग सकता है कि दोष कहाँ है और यन्त्र को ठीक किया जा सकता है, परन्तु मनुष्य को सम्भालना बड़ा विषम

---

1 श्रमिक विभाग के कार्यों के विवरण के लिये टी० एन० रस्तोगी की पुस्तक 'Indian Industrial Labour' तथा श्री अकरिया की पुस्तक 'Industrial Relations and personnel Problems' देखिये।

2 मेरठ कॉलिज अर्थशास्त्र परिषद् के अन्तर्गत फरवरी 1955 में श्री बी० के० आर० मेनन द्वारा दिये गये भाषण के कुछ अंश। उनके भाषण के सारांश के लिये मार्च 1955 का 'Indian Labour Gazette' देखिये।

कार्य है, क्योंकि यह कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि एक व्यक्ति या व्यक्तियों के एक वर्ग पर किसी परिस्थिति की वैसी ही प्रतिक्रिया होगी जैसी किसी दूसरे व्यक्ति या दूसरे व्यक्तियों के वर्ग पर होती है। इस कारण प्रबन्धकर्त्ताओं का इसी बात में लाभ होगा कि वह न केवल औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण में ही व्यक्तिगत रूप से रुचि लें वरन् श्रमिकों के परिवार कल्याण में भी रुचि प्रदर्शित करें। जब उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है और उत्पादन की आधुनिक तकनीक तथा वैज्ञानिक रीतियों के लागू होने से उत्पादन की प्रक्रियायें जटिल बन जाती हैं, तो आधुनिक उद्योग में किसी भी व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं हो पाता कि वह उद्योग के अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क न रखकर पृथक रहते हुए कार्य कर सके। उदाहरण के लिये, कोई भी इञ्जीनियर अपने विशिष्ट तकनीकी ज्ञान के बावजूद, उस समय तक उत्पादन में अपना योगदान नहीं दे सकता, जब तक कि वह अन्य लोगों के साथ और अन्य लोग उसके साथ मिलकर काम न करें तथा वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की रुचि काम में न उत्पन्न करे। अतः इस बात की भारी आवश्यकता है कि उद्योग में मानवीय सम्बन्धों की समस्या को समझा जाये। मानवीय सम्बन्धों की नीति का उद्देश्य यह है कि श्रमिक उस उद्योग को अपना समझें जिसमें कि वे कार्य कर रहे हैं तथा अपनी कार्यक्षमता बढ़ायें और इस प्रकार अच्छे औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना करें। इसका परिणाम होगा—अच्छा तथा अधिक उत्पादन।

यहाँ हमें "औद्योगिक सम्बन्धों" और 'मानवीय सम्बन्धों' के अन्तर को समझ लेना भी उचित होगा। औद्योगिक सम्बन्धों से आशय किसी विशेष समय में किसी उद्योग में मालिकों व श्रमिकों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों से होता है। ये सम्बन्ध अच्छे भी हो सकते है और बुरे भी। अगर ये सम्बन्ध बुरे हैं तो उद्योग में विवाद, तालाबन्दी अथवा हड़तालें हो सकती हैं। इसके विपरीत, उद्योग में मानवीय सम्बन्धों का अर्थ एक ऐसी नीति को अपनाने से होता है जिसके द्वारा श्रमिक उद्योग को अपना ही समझें और अपनी कार्यक्षमता बढ़ायें तथा साथ ही साथ, श्रमिक को उत्पादन का केवल एक कारक (factor) मात्र ही न समझ कर एक मानवीय प्राणी और उद्योग का समान भागीदार समझा जाय। यह निश्चित है कि जब मानवीय सम्बन्धों की नीति को सफलता के साथ लागू किया जाता है तो उसके औद्योगिक सम्बन्ध भी अच्छे ही रहते हैं।

मानवीय सम्बन्धों की नीति को निर्धारित करने के लिये जो अधिक महत्व-पूर्ण तत्व होते हैं उनको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 'धातु व्यापार समिति' के चौथे अधिवेशन में पारित किये गये एक प्रस्ताव से उद्धृत किया जा सकता है—

(१) हर संस्थान में रोजगार पर लगे हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिये कार्यों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के सुस्पष्ट विशेषीकरण के साथ-साथ उस संस्थान का सुदृढ़

संगठनात्मक ढांचा होना चाहिये, (२) रोजगार की पर्याप्त दशायें होनी चाहियें, जैसे—उचित मजदूरी, काम करने की अच्छी दशायें आदि, (३) संस्थान श्रमिकों की विधिपूर्वक छांटन, नियुक्त करने तथा ठीक स्थान पर लगाने के लिये उपयुक्त नीतियां होनी चाहियें (४) सबके लिये प्रशिक्षण व शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये, (५) सभी कर्मचारियों की उन्नति के लिये वास्तविक तथा समान अवसर हों तथा जब भी सम्भव हो पदोन्नति तथा वेतन वृद्धि की जाये तथा नौकरी की समाप्ति के सम्बन्ध में उपयुक्त नीतियां बनाई जायें, (६) उच्च प्रबन्ध के प्रतिनिधि व का कार्य करने वाले पर्यवेक्षक वर्ग की ओर अधिक ध्यान दिया जाये क्योंकि उनसे यह आशा की जाती है कि वह श्रमिकों को प्रबन्धकों के उद्देश्यों से अवगत करायेंगे और श्रमिकों की आवश्यकताओं और समस्याओं को प्रबन्धकों के सम्मुख रख सकेंगे, (७) संस्थान में हर स्तर पर श्रमिकों और प्रबन्धकों में, श्रमिकों में तथा श्रमिकों के वर्गों में एक दूसरे से सम्पर्क बनाये रखने की व्यवस्था हो, तथा (८) संस्थान में वास्तविक सहयोग बढ़ाने के हर सम्भव प्रयत्न किये जायें तथा ऐसे ठोस व स्थायी कदम उठाये जायें जिनसे मालिकों व श्रमिकों दोनों को ही बराबर लाभ हो। इसके अतिरिक्त हर प्रयत्न में वास्तविक रूप में सद् इच्छा होनी चाहिये अन्यथा मानवीय सम्बन्धों को अच्छा बनाने के प्रयत्न सफल नहीं होंगे।

अमेरिका के एक व्यापारिक संस्थान ने मुख्य मुख्य बातों की एक ऐसी सूची तैयार की है जो प्रबन्धकों को सदा ध्यान में रखनी चाहिये। ये बातें निम्नलिखित हैं—अधीन कर्मचारियों का वैयक्तिक रूप में सम्मान करना और उनके सम्बन्ध में व्यक्तिगत ज्ञान रखना, न्यायप्रिय, स्पष्टवादिता, निष्पक्षता, ऐसा निर्देश जिसमें देने की भावना न हो, अपना वायदा पूरा करने की योग्यता, दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझना तथा जब भी कोई श्रमिक अच्छा काम करे उनकी प्रशंसा करना, आदि। अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने व बनाये रखने का उत्तरदायित्व मूलतः मालिकों पर ही है। मालिकों की यह ख्याति होनी चाहिये कि वह पूर्णतया ईमानदार हैं और उनमें बुद्धिमता है, तथा स्वयं की स्थिति के अनुकूल बनाने की क्षमता है तथा वह अपने ध्येयों के प्रति स्थिर और दृढ़ रहते हैं। इन सब बातों के पश्चात ही श्रमिक मानवीय सम्बन्धों की नीति को स्वीकार कर सकेंगे। इसके विपरीत इस सम्बन्ध में श्रमिक संघों का भी विशेष उत्तरदायित्व है। उनका कार्य केवल नकारात्मक (Negative) ही नहीं होना चाहिये। उनका प्रारम्भिक उत्तरदायित्व श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा करना तो है ही परन्तु तब भी उन्हें उस संस्थान के हितों को भी दृष्टिगत रखना चाहिए जिसके श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन संस्थानों में जहाँ मालिकों और श्रमिकों के शक्तिशाली संगठन हैं वहाँ मानवीय सम्बन्धों के विकास की सम्भावनायें अधिक हैं।

कुछ देशों में, विश्वविद्यालयों में मानवीय सम्बन्धों के विषय में अनुसन्धान किये गये हैं और इस उद्देश्य के लिये विशेष विभाग भी बनाये गये हैं। सामाजिक

विज्ञान के विद्यार्थी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। मानवीय सम्बन्धों की नीति का उद्देश्य संस्थान के अन्दर श्रमिक का पूर्ण मनोवैज्ञानिक एकीकरण (Integration) करना है। सब तत्वों में मानव तत्वों को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिये। मानवीय सम्बन्धों को विकसित करने में मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि सामाजिक विज्ञानों का बड़ा महत्व है। हमारे देश में इस ओर अनुसंधान के लिये पर्याप्त क्षेत्र है।

क्रामिक अथवा श्रम कल्याण अधिकारी के कार्य

(Functions of a Personnel or Labour Welfare Officer)

उत्तर प्रदेश सरकार ने १९४९ में पारित कारखाना कल्याण अधिकारी नियमों को समाप्त करके १९५५ में उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारी नियमों का निर्माण किया। मुख्य संशोधन कल्याण अधिकारियों के पद एवं कर्तव्यों से सम्बन्धित है। संशोधित नियमों के अन्तर्गत कल्याण अधिकारी का पद कारखाने के अधिकारी के पद जैसा ही बना दिया गया। महँगाई, भत्ता, बोनस प्रोवीडेन्ट फण्ड, अवकाश, आवास, चिकित्सा एवं अन्य सुविधाओं के सम्बन्ध में कल्याण अधिकारियों पर ही नियम लागू होते हैं जो कारखाने में उसी पद और श्रेणी के कर्मचारियों पर लागू होते हैं। प्रत्येक उस कारखाने में जहाँ ५०० या अधिक श्रमिक कार्य करते है, नियमानुसार कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी। ग्रेड १—प्रतिदिन २५०० या अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में, ५००-५०-१,००० कु० रो० ५०-१,२०० रुपये प्रतिमाह के वेतन मान में, ग्रेड २—प्रतिदिन १,००० से २,४४९ तक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में, २५०-२५-४०० कु० रो० ३०-७०० कु० रो० ५०-८५० रु० प्रतिमाह के वेतन मान में, ग्रेड ३—प्रतिदिन ५०० से ९९९ तक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में, २००-१०-२५० कु० रो० १५-४०० रु० प्रति माह के वेतन मान में। जहाँ श्रमिकों की संख्या २,५०० से भी अधिक है वहाँ ग्रेड १ के कल्याण अधिकारी के अधीन ग्रेड ३ का एक अतिरिक्त कल्याण अधिकारी होगा। कल्याण अधिकारी कारखानों के जनरल मैनेजर के अधीन कार्य करेंगे और उनके मातहत होंगे। कल्याण अधिकारी उत्तर प्रदेश का निवासी होना चाहिये। नियुक्ति के समय उसकी आयु २५ से ३५ तक होनी चाहिये, हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये तथा अर्थशास्त्र अथवा समाजशास्त्र की डिग्री तथा समाज सेवा में डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त किये होना चाहिये। प्रथम और द्वितीय वेतन ग्रेड के अधिकारियों के लिये क्रमशः पाँच और तीन वर्ष का व्यावहारिक अनुभव होना आवश्यक है। अधि-वर्ष (अवकाश) की आयु ५५ वर्ष निश्चित की गई है। परख अवधि एक वर्ष है। परन्तु यह अवधि कार्य संतोषजनक न होने की व्यवस्था में बढ़ाई जा सकती है। ऐसे मामलों में दण्ड व अपील की भी व्यवस्था है। संशोधित नियमों द्वारा श्रम कल्याण अधिकारी के कर्तव्यों का भी निर्धारण किया गया है। महत्वपूर्ण तथा

बड़े संस्थानों में श्रम कार्मिक अथवा कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति उच्च वेतन क्रम में की जाती है। कल्याण अधिकारी के कर्त्तव्य निम्न प्रकार हैं—

(१) श्रमिकों और प्रबन्धकों के बीच सौहार्द्र पूर्ण सम्बन्धों को बढ़ाना तथा उनके बीच सम्पर्क अधिकारी का कार्य करना, (२) कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में श्रमिकों की शिकायतों और कठिनाइयों को, जितना शीघ्र सम्भव हो, दूर करने का प्रयत्न करना, (३) स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध में श्रम कानूनों, आदेशों और वैधानिक नियमों को यदि भंग किया जाता है तो उसकी सूचना कारखाने के मैनेजर या देखरेख करने वाले को देना और इस ओर उनका ध्यान दिलाना, तथा कैन्टीन, विश्राम-गृह, शिशु-गृह, पर्याप्त शौचालय सुविधायें, पीने का पानी आदि सुविधाओं के सम्बन्ध में व्यवस्था करने के लिये उचित कदम उठाना, (४) संस्थान के क्षेत्र के अन्दर और बाहर मैत्रीपूर्ण सम्पर्क बनाकर श्रमिकों के मनोभावों का अध्ययन करना तथा ऐसे मामलों को जिनमें विवाद अथवा तनाव उत्पन्न होने की सम्भावना हो, मालिकों के ध्यान में लाना ताकि सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बने रहें, (५) संयुक्त उत्पादन-कार्य समितियां मालिक-मजदूर समितियाँ, सहकारी समितियाँ, सुरक्षा प्रथम समितियाँ, अथवा कल्याण समितियों के निर्माण को प्रोत्साहन देना, प्रबन्धकों को अच्छी प्रकार अनुशासन बनाये रखने में सहायता देना तथा श्रमिकों के हितों में वृद्धि करने वाले सभी उपायों को प्रोत्साहन देना, (६) श्रम कल्याण कार्यों को संगठित करना और उनकी देखभाल करना तथा यह देखना कि कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में वैधानिक उपबन्धों को लागू किया जाता है या नहीं, (७) ऐसे मामलों में जिसमें श्रम दशाओं और श्रम कल्याण के विषयों की विशेष जानकारी की आवश्यकता होती है, प्रबन्धकों को सलाह देना तथा श्रमिकों की रहने की अवस्थाओं में सुधार के लिये उचित पग उठाना, (८) वैध हड़ताल और तालाबन्दी के समय तटस्थ व्यवहार रखना, (९) श्रमिकों पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह अवैध हड़ताल न करें और मालिकों पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह अवैध तालाबन्दी घोषित न करें तथा तोड़-फोड़ एवं अन्य गैर-कानूनी कार्यों को रोकने के प्रयत्न करना, (१०) घूस व भ्रष्टाचार का पता लगाना और रोकना तथा ऐसे मामलों को कारखाने के प्रबन्धकों के ध्यान में लाना, (११) ऐसी सड़कों, पुलों आदि की दशाओं के विषय में सम्बन्धित अधिकारियों के सम्मुख अभिवेदन करना जिन पर होकर श्रमिक अपने कार्यों पर आते-जाते हैं, (१२) इसके अतिरिक्त, कार्मिक अधिकारी को उन सभी कार्मिक सम्बन्धी मामलों को देखना होता है जिनका सम्बन्ध कर्मचारियों की भर्ती, चुनाव पदोन्नति, स्थानान्तरण, पदावनति तथा पदच्युति आदि से होता है।

अन्तर्कार्य प्रशिक्षण की योजना[1]

(Scheme for Training within Industry)

इस योजना के उद्देश्य औद्योगिक संस्थानों में पर्यवेक्षी कर्मचारी वर्ग

1 अध्याय १८ के अन्त के विवेचन के सन्दर्भ में।

(Supervisory Staff) की निम्नलिखित योग्यताओं का विकास करना है (१) मार्ग-प्रदर्शन योग्यता, (२) अनुदेशन योग्यता, (३) कार्य प्रणाली में सुधार करने की योग्यता। इस योजना में निम्नलिखित कार्यक्रम आते हैं श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण, कार्य अनुदेशन प्रशिक्षण और कार्य प्रणाली प्रशिक्षण।

'श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण' (Job Relations) का कार्यक्रम मार्ग-प्रदर्शन की योग्यता से सम्बन्धित है। इसका उद्देश्य यह है कि पर्यवेक्षक इस बात का अनुभव कर लें कि उनको अपने कर्मचारियों के सहयोग तथा वफादारी से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। पर्यवेक्षक को यह समझाया जाता है कि वह अपने साथ काम करने वाले के प्रति जैसा व्यवहार करेगा वैसा ही व्यवहार उसको श्रमिकों से अपने लिये मिलेगा। श्रमिकों से वफादारी की माँग नहीं की जा सकती। इसको तो अपने ही प्रयत्नों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यदि दूसरों से हम सद्व्यवहार उत्पन्न करना चाहते हैं तो यह बहुत आवश्यक है कि हममें स्वयं अनुशासन अधिक मात्रा में होना चाहिये। अतः मानवीय सम्बन्धों की देखभाल के लिये एक विशेष तकनीक पर विचार-विचार विमर्श किया जाता है और उसको व्यवहार में लाया जाता है।

'कार्य अनुदेशन' (Job Instruction) *के कार्यक्रम का उद्देश्य* पर्यवेक्षकों की अनुदेशन योग्यता को विकसित करना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत यह बताया जाता है कि अनेक कठिनाइयाँ जो सामने आती हैं वह श्रमिकों के दोष के कारण नहीं होती वरन् खराब तथा दोषपूर्ण अनुदेशन के कारण होती हैं। पर्यवेक्षकों को यह सिखाया जाता है कि जो प्रशिक्षण वह देते हैं उनकी पहले से पूर्वयोजना बना लेनी चाहिए तथा अनुदेशन किस प्रकार का हो यह भी पहले से तैयार कर लेना चाहिये, ताकि कोई बात छूट न जाये। अनुदेशन को भी श्रमिकों के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिये कि श्रमिक उस कार्य में, जो उन्हें सिखाया जा रहा है, लगन के साथ लग जायें और उसमें रुचि लें।

कार्य प्रणाली (Job Methods) के कार्यक्रम में पर्यवेक्षकों को यह अनुभव कराया जाता है कि अपने अनुभाग के कार्यों की प्रणाली के प्रति भी उनका कुछ उत्तरदायित्व है। यदि कार्य नीरस, गन्दा, थकान वाला है या ऐसा है जिसमें अनावश्यक रूप में चलना-फिरना पड़ता है, या कार्य करने में कुछ खतरा होता है, तब पर्यवेक्षक को इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये कि कोई अन्य व्यक्ति आकर प्रणाली को ठीक कर देगा। उसमें स्वयं इतनी योग्यता होनी चाहिये कि कार्य किस प्रकार हो रहा है, इसकी जाँच करे तथा स्वयं अपने विचारानुसार श्रमिकों के लिये कार्य सरल और अधिक सुरक्षित बना दे।

अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिये भारत सरकार ने १९५३ में 'तकनीकी सहायता कार्यक्रम' (Technical Assistance Programme) के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से एक विशेषज्ञ की सेवायें प्राप्त की। जिनका नाम श्री चिलीफोड थी था। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग अनुसन्धान संस्था व गुजरात मिल व उद्योग संगम, बड़ौदा के लिये श्री फी ने प्रशिक्षण कार्य-क्रमों का संचालन किया। उनके कार्य काल को दो बार और बढ़ाया गया और इस काल में उन्होंने ऐसोशियेटेड सीमेंट 'कम्पनीज लि०' तथा 'मैसर्स किलब इण्डस्ट्रीज' में प्रशिक्षण कार्य-क्रमों का संचालन किया। अन्तर्कार्य प्रशिक्षण के एक अन्य विशेषज्ञ श्री स्टीफन और सिम्सन के नवम्बर १९५४ में आ जाने के कारण प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण सुविधाओं को सरकारी व निजी दोनों क्षेत्रों के औद्योगिक संस्थानों तक लागू करना सरल हो गया। १९५५ में इन प्रशिक्षण कार्य-क्रमों के अन्तर्गत प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्तियों की संख्या निम्नलिखित थी—

	नागपुर	नई दिल्ली	बम्बई
कार्य अनुदेशन (Job Instruction)	१०	१५	१३
कार्य प्रणाली (Job Methods)	१०	१३	१२
श्रमिक सम्बन्ध (Job Relations)	१०	१५	१२
प्रशिक्षण कार्य-क्रमों का पुन निरीक्षण (Follow up)	१०	१३	

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित व्यक्तियों से यह आशा की गई कि वह अपने पृथक्-पृथक् संस्थानों में 'अन्तर्कार्य प्रशिक्षण प्रणाली' को लागू करेंगे और पर्यवेक्षी कर्मचारी वर्ग को पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षण देंगे। परन्तु इस प्रकार प्रशिक्षण कार्य क्रमों को लागू करने से ही उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती थी। इस कारण पुन निरीक्षण के कार्य का संचालन करना आवश्यक था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के दोनों विशेषज्ञ उन औद्योगिक केन्द्रों में पुन: निरीक्षण के उद्देश्य से फिर गये जहाँ यह योजना प्रारम्भ की गई थी। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी तथा जमशेदपुर में अन्य सहायक कम्पनियों के लिये इस सम्बन्ध में कुछ वार्ताओं की व्यवस्था भी की गई। सौराष्ट्र और गुजरात के उन औद्योगिक संस्थानों में जहाँ १८ से २८ अक्टूबर १९५५ तक की अवधि में योजना को लागू किया गया था पुन निरीक्षण की व्यवस्था की गई। अपना कार्यक्रम समाप्त करने के पश्चात् १९५६ के ग्रीष्म में विशेषज्ञों ने जब भारत छोड़ा तब उन्होंने कपड़ा, इस्पात, इन्जीनियरिंग, रसायन, सीमेंट, तेल व खनिज आदि १०० संस्थानों के अधिकारियों को प्रशिक्षित कर दिया था, तथा अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग ५००० पर्यवेक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका था। ५० से अधिक फर्मों में नियमित रूप से पुन निरीक्षण की योजना भी लागू की गई थी।

श्रम मन्त्रालय ने १९५४ में बम्बई में एक अन्तर्राय प्रशिक्षण केन्द्र (Centre) की स्थापना की। यह केन्द्र देश के अन्तर्राय प्रशिक्षण कार्यक्रमों को लागू करने और उनके विकास करने के लिये उत्तरदायी है। १९५७ में बम्बई व कानपुर में दो अन्तर्राय प्रशिक्षण प्रायोजनायें लागू की गईं और १९५८ में कोयम्बत्तूर, कलकत्ता और बम्बई में भी दो प्रायोजनायें प्रारम्भ की गईं। १९५९ में इस केन्द्र ने बम्बई में दो प्रायोजनायें और शुरू कीं तथा १९६० में १ प्रायोजना बम्बई में और एक हैदराबाद में आरम्भ की। प्रत्येक प्रायोजना में सरकारी व निजी क्षेत्रों के १९५९ में १२ तथा १९६० में ११ प्रशिक्षण अधिकारियों ने भाग लिया। १९६१ में भी बम्बई में भी दो प्रायोजनायें प्रारम्भ की गईं जिनमें से एक में ११ तथा दूसरे में ९ व्यक्तियों ने प्रशिक्षण लिया। कलकत्ते में एक अन्य प्रायोजना आरम्भ की गई जिसमें १६ व्यक्तियों ने भाग लिया। १९६२ में केन्द्र द्वारा इस्पात के कारखानों तथा सिन्द्री कृत्रिम खाद के कारखाने के कर्मचारियों के लिये कई प्रायोजना चलाई गईं। अन्तर्राय प्रशिक्षण केन्द्र ने मार्च १९६० तक २१७ प्रशिक्षण अधिकारियों को प्रशिक्षित किया। इन अधिकारियों को अन्तर्राय प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत कार्य अनुदेशन, कार्य प्रणाली तथा श्रमिक सम्बन्धों में ४०,००० पर्यवेक्षकों को प्रशिक्षित किया गया है। अनेक फर्मों और उद्योगों ने अन्तर्राय प्रशिक्षण योजना को सफलतापूर्वक लागू किया है। १९५९ में इस केन्द्र ने दो नये कार्यक्रम आरम्भ किये—एक 'सम्मेलन नेतृत्व' से सम्बन्धित था तथा दूसरा 'कार्यक्रम विकास' से सम्बन्धित था। १९६० में इस केन्द्र द्वारा दो अन्य कार्यक्रम चालू किये गये। एक तो वाद-विवाद से सम्बन्धित था तथा दूसरा कार्य की सुरक्षा से। कार्य अनुदेशन, कार्यप्रणाली तथा श्रमिक सम्बन्धों के कार्यक्रम पूरे हो चुके हैं। मई १९६१ में, बम्बई में एक वाद-विवाद से सम्बन्धित कार्यक्रम पूरा किया गया। १९६२ में ५ वाद-विवाद के मुख्य कार्यक्रम चलाये गये जिनमें से दो बम्बई में थे तथा एक-एक पूना, बंगलौर तथा राँची में था। १९६४-६५ में केन्द्र द्वारा ४ "औद्योगिक सम्बन्ध" कार्यक्रम बम्बई में चलाये गये। कई कारखानों में केन्द्र ने अग्रगामी प्रायोजनायें चलाने में सहायता दी। सन् १९६५-६६ में "पर्यवेक्षण विकास-समाचार पत्र' नामक त्रैमासिक पत्रिका जारी करने के अतिरिक्त, केन्द्र ने "मानव-सम्बन्धों" पर अनेक अधिवेशन आयोजित किये तथा तीन अन्तर्राय प्रशिक्षण प्रायोजनायें व "व्यक्ति अध्ययन वाद-विवाद" (Case Study Discussion) आयोजित किये। सन् १९६६-६७ तथा १९६७-६८ में केन्द्र द्वारा 'कार्य अनुदेशन', 'कार्य-प्रणाली' तथा 'श्रमिक सम्बन्धों' पर अनेक कार्यक्रम पूरे किये गये। उत्पादकता परिषदों ने भी कई स्थानों पर 'अन्तर्राय प्रशिक्षण' कार्यक्रम चालू किये। केन्द्र ने 'अन्तर्राय प्रशिक्षण' योजना की प्रगति तथा विकास के लिए 'न्यूज लैटर' नामक एक मासिक पत्रिका का भी संचालन किया है। अग्रिम प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने के लिये, मई १९७० से कलकत्ता में एक केन्द्रीय स्टाफ प्रशिक्षण तथा

अनुसंधान, संस्थान, जून १९७१ से बंगलौर में फोरमैन प्रशिक्षण संस्थान तथा नवम्बर १९७१ में मद्रास में एक अग्रिम प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई है।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम को श्रम और रोजगार मंत्रालय के कार्यक्रम में एक निश्चित भाग के रूप में सम्मिलित कर लिया था और श्रम मन्त्रालय को पर्यवेक्षकों की शिक्षा के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा था। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में भी इस कार्यक्रम को जारी रखा गया और तीसरी आयोजना में भी अन्तर्कार्य प्रशिक्षण केन्द्र के कार्य की सिफारिश की गई।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि १९५८ के आरम्भ से ही श्रम और रोजगार मन्त्रालय ने सरकारी कार्यालयों के पर्यवेक्षक कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिये कुछ प्रयोग शुरू किये हैं। यह प्रयोग 'अन्तर्कार्य प्रशिक्षण' के सिद्धान्तों पर आधारित है। योजना के अन्तर्गत एक प्रशिक्षण अधिकारी ने अनेक विचार-विमर्श दलों का आयोजन किया है।

कार्य विश्लेषण तथा मूल्यांकन
(Job Analysis and Evaluation)

कार्य विश्लेषण (Job Analysis) का अर्थ है किसी कार्य के विभिन्न अंगों का सही रूप से अध्ययन करना। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा पूरे काम को इसके विविध एवं छोटे छोटे टुकड़ों या अंगों में बाँट लिया जाता है। कार्य विश्लेषण से किसी उद्यम के प्रत्येक कार्य की विविध आवश्यकताओं के बारे में पूर्ण तथा व्यापक जानकारी मिलती है। ऐसा कार्य-विश्लेषण अनेक प्रकार से किया जाता है, जैसे अवलोकन (observation), साक्षात्कार (interview) प्रश्नावली, कार्य-डायरी, चल-चित्र प्रदर्शन, अभिलेख निरीक्षण आदि। ऐसा कार्य विश्लेषण प्रशासन तथा उद्यम से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों के लिये बड़ा सहायक सिद्ध होता है—कार्मिक प्रशासन, भर्ती कर्मचारियों का चुनाव तथा कार्य-निर्धारण, प्रशिक्षण कार्यक्रम, पदोन्नति, स्थानान्तरण, कार्य की माप तथा मूल्यांकन, इंजीनियरिंग डिजाइन तथा कार्य प्रणालियाँ, मानव शक्ति तथा संगठनात्मक नियोजन, शैक्षिक पाठ्यक्रमों का नियोजन तथा व्यक्तियों के लिए व्यावसायिक परामर्श आदि।

कार्य मूल्यांकन (Job Evaluation) विभिन्न कार्यों को श्रेणीबद्ध करने की उस प्रक्रिया का नाम है जिसके द्वारा कि किसी व्यावसायिक इकाई के विभिन्न कामों का एक ऐसा पद सोपान या क्रम (hierarchy) बनाया जाता है जिससे उन कामों या पदों की तुलनात्मक स्थिति तथा महत्व का पता चलता है। कार्य मूल्यांकन को कभी-कभी कामों या पदों का क्रम निर्धारण (Job assessment), कार्यों का श्रेणीकरण (Job grading) या कार्यों का योग्यतानुसार क्रम निर्धारण (Job rating) भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विविध प्रकार के कार्यों को गुणात्मक अथवा मात्रात्मक प्रणालियों के द्वारा वैज्ञानिक रूप से श्रेणी बद्ध या क्रम बद्ध कर लिया

जाता है और इस प्रकार श्रेष्ठ, मध्यम तथा निम्न श्रेणी के कार्यों का एक पद-सोपान बना लिया जाता है। प्रत्येक पद या काम की उत्पादकता के अनुसार विभिन्न पदों की मजदूरियों का निर्धारण करने के लिए कार्य-मूल्यांकन बड़ा उपयोगी होता है। यह ऊँची और नीची मजदूरियों की एक वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण तथा वस्तुनिष्ठ व्याख्या प्रस्तुत करता है, अन्याय को दूर करता है तथा मजदूरी एवं भुगतान के अन्तरों को वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ बनाता है।

औद्योगिक कार्यक्षमता को निर्धारित करने वाले मनोवैज्ञानिक तत्व
(Psychological Determinants of Industrial Efficiency)

औद्योगिक कार्यक्षमता से सामान्यतः आशय किसी उद्योग में लगे उत्पादन के विभिन्न उपादानों की गुणात्मक एवं परिमाणात्मक कार्य निष्पत्ति (performance) से होता है। किन्तु इसमें समय तत्व (time element) का भी अत्यधिक महत्व होता है। उदाहरण के लिये, उत्पादन के कुछ सुनिश्चित साधनों द्वारा गुण और संख्या में बिल्कुल एकसा उत्पादन यदि अपेक्षाकृत कम समय में किया जाय तो उसे उच्चतर कार्य-क्षमता (higher efficiency) का नाम दिया जायगा।

औद्योगिक कार्यक्षमता को जो अनेक तत्व प्रभावित करते हैं, उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं—तकनीकी तत्व, आर्थिक तत्व, संगठनात्मक तत्व, भौगोलिक तत्व तथा मनोवैज्ञानिक तत्व आदि। किसी उद्योग की कार्यक्षमता का निर्धारण करने में मनोवैज्ञानिक तत्व (psychological factors) कितना महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं, उसका पता इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों में अनेक औद्योगिक निगम व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त मनोवैज्ञानिकों को अपने यहाँ पूर्णकालिक आधार पर नियुक्त करते हैं। मनोवैज्ञानिक तत्वों का प्रभाव आमतौर पर परोक्ष रूप से पड़ता है, अर्थात् इन तत्वों के प्रभाव से श्रमिक अपने दायित्वों को सर्वोत्तम रीति से पूरा करने हेतु स्वयं को समर्पित कर देते हैं। ये तत्व किसी कार्य-विशेष को करने को श्रमिक की क्षमता को मजबूत बनाने में सहायता करते हैं, श्रमिकों के सहज व्यवहार का एक उपयुक्त मार्ग सुझाते हैं, आवश्यक प्रेरणाएँ तथा अप्रेरणाएँ प्रदान करते हैं तथा कारखाने के वातावरण को आनन्ददायक एवं रुचिकर बनाते हैं।

औद्योगिक क्षमता को निर्धारित करने वाले प्रमुख मनोवैज्ञानिक तत्व निम्न-लिखित हैं—

(१) भर्ती (Recruitment)

उच्चतर कार्यक्षमता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक अपने कार्य के प्रति सन्तुष्ट हों। ऐसा होना केवल तभी सम्भव है जबकि हम सही काम के लिए सही व्यक्तियों को नियुक्त करें और **"गोल छेदों में चौकोर पेंच" फिट करने से बचें।** किसी भी व्यक्ति को वही काम सौंपा जाना चाहिए जिसके लिए कि वह मानसिक और शारीरिक दृष्टि से उपयुक्त हो। कारण यह है कि व्यक्तियों की

शारीरिक क्षमता, रुझान, रुचि तथा बुद्धिमता के स्तरों में भिन्नताएँ पाई जाती हैं। कोई भी दो व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से पूर्णतया एक समान नहीं पाये जाते। अतः यदि किसी श्रमिक को अपने कार्य के प्रति सन्तुष्टि नहीं होगी तो उसकी उसकी कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। अतः सही काम के लिए सही व्यक्ति प्राप्त करने के लिए हमें भर्ती, चयन तथा प्रशिक्षण में सर्वोत्तम मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग करना होगा।

(२) चयन (Selection)

कर्मचारियों के चयन की प्रणालियों में व्यक्तिगत साक्षात्कार (personal interview) को सम्मिलित करना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि रोजगार के सम्बन्ध में साक्षात्कार की विधि ही सर्वाधिक उपयोग में लाई जाती है और इसका ही सबसे अधिक दुरुपयोग भी होता है। फिर भी, तथ्य यह है कि इस विधि को छोड़ा नहीं जा सकता। इस स्थिति में यह आवश्यक है कि साक्षात्कार के समय हम कुछ सावधानियाँ बरतें। साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। साक्षात्कार लेने वाले तथा देने वाले के मूल्यों तथा लक्ष्यों के बीच किसी आधारभूत टकराव का प्रभाव साक्षात्कार पर नहीं पड़ना चाहिए। साक्षात्कार लेने वाले के व्यक्तिगत पूर्वाग्रह (Personal prejudices) चयन के बीच नहीं आने चाहियें। साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति के पद की समुचित छानबीन की जानी चाहिये ताकि उसके भविष्य के बारे में आवश्यक तथ्यों का अनुमान लग सके। साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को मानवीय मनोविज्ञान, व्यक्तित्व (Personality), गतिशीलता प्रेरणा, निराशा, रुझान, अभिरुचि तथा मानवीय लक्षणों का आधारभूत ज्ञान होना चाहिये। साक्षात्कार ऐसे शान्त कमरों में किये जाने चाहियें जो किसी भी प्रकार की विघ्न बाधाओं एवं शोर-शराबों से मुक्त हों। साक्षात्कार देने वाले को किसी भी प्रकार के तनाव से मुक्त रखा जाना चाहिये क्योंकि केवल तभी वह सामान्य रूप से बोल सकता है, व्यवहार कर सकता है और स्वतन्त्र एवं निर्बाध रूप से अपनी भावनायें व्यक्त कर सकता है। पर इन सभी सावधानियों के बावजूद, यह हो सकता है कि कोई व्यक्तिपरक तत्व (Subjective element) साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति को प्रभावित कर ही दे। कभी कभी यह भी सम्भव होता है कि साक्षात्कार लेने वाले अलग-अलग व्यक्ति एक ही प्रत्याशी (Candidate) के बारे में भिन्न-भिन्न धारणायें बनाते हैं। अतः उचित यह होगा कि साक्षात्कार के समय अथवा उसके साथ-साथ कुछ अन्य परीक्षण भी किये जायें, जैसे कि मनोवैज्ञानिक जाँच, रुचि परीक्षण, रुझान परीक्षण, मानसिक योग्यता परीक्षण, शारीरिक जाँच प्रतिक्रिया जाँच, कार्य निष्पादन जाँच या व्यावसायिक परीक्षण तथा प्रश्नावलियों के द्वारा परीक्षण आदि।

(३) प्रशिक्षण (Training)

कर्मचारियों का सावधानी से चयन करने के बाद उनको सुव्यवस्थित प्रशिक्षण दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में काम से सम्बन्धित प्रशिक्षण, सेवाकालीन प्रशिक्षण, अन्तराल प्रशिक्षण (Vestibule training),

व्यावहारिक प्रशिक्षण तथा प्रेरण परीक्षण आदि उपयुक्त रह सकते है। इनके अतिरिक्त कार्य विश्लेषण (job analysis), कार्य मूल्यांकन (job evaluation) तथा गुण-मापन (merit rating) का भी उपयोग किया जा सकता है। इन सभी उपायो मे सही काम क लिये सही व्यक्ति का चयन करने म मदद मिलेगी और श्रमिक को अपने काम या पद से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टि स, काय-सन्तुष्टि (job satisfaction) उन सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्वो मे से एक है जो श्रमिक की कार्यक्षमता को प्रभावित करते है।

(४) काम का वातावरण (Work Environment)

जिन वातावरण या दशाओ क अतगत श्रमिको को काम करना होता है, उनकी भी श्रमिको पर भारी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियायें होती है। औसत श्रमिक की कार्यक्षमता क लिय अच्छी काय-दशाओ का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके विपरीत, बुरा वातावरण अथवा कार्य की बुरी दशायें मानसिक व मनोवैज्ञानिक थकावट, कार्यक्षमता के निम्न स्तर तथा घट उत्पादन को जन्म दती है। भूतकाल मे, कारखाने का वातावरण तापक्रम, आद्रता, शुष्क तथा नम बल्ब सन्तुलन, सवातन (ventilation) की समस्या, सामान्य तथा स्थानीय प्रकाश, चमक-विरोध की समस्याएँ रोशनी, रग-योजनाएँ, रोशनी की तीव्रता तथा बिखराव, काम के घण्टे अल्प विराम (rest pauses), शोर कम्पन, सयन्त्र तथा दूकान का विन्यास या खाका आदि बातो पर इजीनियरी तथा प्रबन्धकीय दृष्टिकोण स ही विचार किया जाता था। श्रमिक को केवल मात्र एक मशीन समझा जाता था और इस बात का कोई प्रयास नही किया जाता था कि उपर्युक्त परिस्थितियो के सम्बन्ध मे उसकी प्रतिक्रियाएँ क्या है ?

औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशो मे अभी हाल मे जो अनुसन्धान तथा अध्ययन किये गये है, उनसे प्रकट होता है कि उपर्युक्त सभी तत्व श्रमिको की कार्यक्षमता पर तथा उनके उत्पादन पर गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं। लगातार बनी रहने वाली कार्य की बुरी दशायें बीमारी, दुर्घटनाओ तथा अनुपस्थिति को तो जन्म देती ही है, श्रमिको को शिथिल भी बना देती है जिससे वे ध्यान से काम नही करते। इसके विपरीत काम की अच्छी दशायें न केवल श्रमिको की कार्यक्षमता मे ही वृद्धि करती है, अपितु श्रमिको के रुझान तथा मनोविज्ञान पर भी अच्छा प्रभाव डालती है। ऐसी अच्छी दशाओ के अन्तर्गत काम करने मे वे गर्व का अनुभव करते है। वे स्वेच्छा से सहयोग देने को तैयार रहते है और वास्तव मे यही 'अच्छे वातावरण' का लक्ष्य भी है। कुछ मालिको ने तो अपने श्रमिको के लिये कार्य-सगीत (work music) की भी व्यवस्था की है क्योकि यह कहा जाता है कि श्रमिको की कार्य-क्षमता पर इसका अनुकूल प्रभाव पडता है, यद्यपि इस सम्बन्ध मे आयु-तत्व (age-factor) तथा काम की प्रकृति का भी अपना महत्व होता है।

(५) कार्य मे परिवर्तन (Change in work)

रोजाना एक से ही काम को करते रहने से यद्यपि श्रमिक उस काम मे निपुण तो हो जाता है, परन्तु दीर्घकाल मे श्रमिक को उसमे अरुचि हो जाती है और वह उस काम में 'बोरियत' तथा स्वय को बोझिल महसूस करने लगता है। अत यदि श्रमिक के दैनिक काम मे यदा-कदा छोटे-मोटे परिवर्तन कर दिये जायें तो उनसे श्रमिकों की कार्यक्षमता बढाने मे मदद मिलती है।

(६) प्रेरणात्मक मजदूरी (Wage Incentives)

अनेक मालिको को अपने यहाँ प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली (Wage incentive system) लागू करने का प्रोत्साहन टेलर के एक सिद्धान्त 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' से मिला है और यह सिद्धान्त स्वय ही मनोवैज्ञानिक प्रकृति का है। टेलर के अनुसार, श्रमिक उत्पादकता के उच्च स्तर पर भी तभी पहुँचता है जबकि उसे पता होता है कि उसकी उच्च कार्यक्षमता का लाभ उसे स्वय भी मिलेगा। चूँकि अधिकाश औद्योगिक सस्थानो मे उत्पादन लागत उत्पादिता के उच्च स्तरो पर आनुपातिक रूप मे घटती जाती है, अत यह स्पष्ट है कि प्रेरणात्मक मजदूरी योजना की लागत उससे वस्तुत अधिक ही होगी जितनी कि अदा की जाती है। अमेरिका मे, अनेक कम्पनियो ने ऐसी योजनाओ को अपने यहाँ लागू किया है। इस सम्बन्ध म अनेक विशिष्ट योजनायें काम मे लाई गई हैं, जिनमे से सैकडो आज भी उपलब्ध है। हमे यहाँ उन योजनाओ की गहराई मे जाने की आवश्यकता नही है क्योकि यह कार्य तो लिटिल लवद्दर्न तथा अन्य विचारको ने पहले ही काफी किया हुआ है। ये योजनायें एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होती हैं क्योकि किसी मे न्यूनतम मजदूरी की गारन्टी दी जाती है, किसी मे विस्तृत समय तथा गति अध्ययन की आवश्यकता होती है, किसी मे गणना उपज की इकाइयो अथवा समय पर आधारित होती है और किसी मे व्यक्तियो अथवा व्यक्तियो के वर्गों को भुगतान की इकाई का आधार बनाया जाता है आदि। किन्तु मनोवैज्ञानिक रूप मे, ये सभी योजनायें लगभग एक सी ही होती हैं।

यदि श्रमिको को कार्यक्षमता, गम्भीरता, निष्ठा तथा कठोर श्रम के लिये कुछ प्रेरणायें प्रदान की जाती है तो निश्चित ही, मनोवैज्ञानिक रूप मे वे अधिक साहस तथा उत्साह से काम करने को उत्सुक होंगे और उसके फलस्वरूप उनकी कार्यक्षमता मे स्वत वृद्धि होगी। ऐसी प्रेरणाओ (incentives) मे मुख्य है कार्य की सराहना, गुणो का मूल्याकन, विशेष वेतन वृद्धियाँ, पदोन्नति, पुरस्कार व सम्मान आदि। ये प्रेरणायें श्रमिक को इस बात के लिये प्रोत्साहित करती हैं कि वे अपने अपने कार्य को सर्वोत्तम रूप मे सम्पन्न कर।

अप्रेरणाओ (disincentives) से यद्यपि श्रमिकों की कार्यक्षमता बढती तो नही है परन्तु कार्यक्षमता के गिरने की प्रवृत्ति को रोकने में वे निश्चित ही सहायक होती है। विद्यमान कार्यक्षमता को बनाय रखने मे उनके योगदान के मूल्य को कम नही आका जा सकता। अप्रेरणाओ का मनोवैज्ञानिक भय श्रमिको को गैर-

जिम्मेदार, सुस्त तथा अकुशल बनने से रोकना है। अप्रेरणाओं में जो बातें सम्मिलित की जाती है उनमें मुख्य हैं—फटकार लगाना, ताना देना, उपहास करना, गलती बताना, वेतन-वृद्धि रोकना, जुर्माना, निलम्बन, छँटनी, पदच्युति, स्थानान्तरण आदि। इन अप्रेरणाओं के मनोवैज्ञानिक भय के कारण श्रमिक यह प्रयास जरूर करता है कि उसकी कार्यक्षमता या वर्तमान स्तर बना रहे।

७ अनुषंगी लाभ (Fringe Benefits)

जब किसी व्यक्ति की आय उच्चता के किसी निश्चित बिन्दु पर पहुँच जाती है तो उसके बाद उसकी मजदूरी में की जाने वाली वृद्धि से उसका मनोबल तथा उसकी कार्यक्षमता प्रत्याशित मात्रा में नहीं बढ़ती। इसका कारण यह है कि हर समय तथा हर परिस्थिति में केवल धन ही एकमात्र प्रेरणा स्रोत नहीं होता। मजदूरी के एक निर्धारित स्तर पर पहुँचने के बाद अच्छा यही होगा कि गैर-मजदूरी लाभों में (अर्थात आज की भाषा में अनुषंगी लाभों में) वृद्धि की जाय। अनुषंगी लाभों की उपलब्धता से श्रमिकों में उद्योग के प्रति एक लगाव की भावना उत्पन्न होती है जिसके कारण वे अधिक निष्ठा व कुशलता से कार्य करते हैं। अनुषंगी लाभों में जो लाभ सम्मिलित किये जाते हैं, वे हैं—(१) **सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी लाभ,** जैसे व्यवसायजनित चोट या मृत्यु के लिये क्षतिपूर्ति, भविष्य निधि, आनुतोषिक (gratuity), पेंशन, बेरोजगारी बीमा, काम की सुरक्षा आदि। (२) **श्रम-कल्याण सम्बन्धी लाभ** जैसे निवास सुविधायें, चिकित्सा सुविधायें, शैक्षणिक सुविधाएँ, वर्दी, प्रतिधारण भत्ता (retaining allowance), सवेतन अवकाश, यात्रा सम्बन्धी रियायतें आदि। इन सब लाभों के कारण श्रमिक अनेक परेशानियों से बच जाते हैं। फलत वे अपने कामों पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये प्रेरित होते हैं। उनमें संगठन के एक अंग के रूप में कार्य करने की भावना उत्पन्न होती है जिससे वे अधिक कुशल एवं निष्ठावान बनते हैं।

(८) समय तथा गति अध्ययन

(Time and Motion Studies)

समय तथा गति अध्ययनों के दो मुख्य उद्देश्य हैं–(१) अकुशलता अथवा अकार्यक्षमता की समाप्ति, और (२) अपव्यय या बर्बादी की समाप्ति। इन उद्देश्यों की प्राप्ति कार्य की विधियों में सुधार करके, कार्य की थकावट को न्यूनतम करके तथा लागतों में कमी द्वारा की जा सकती है। इन अध्ययनों के फलस्वरूप, प्रभावी प्रशिक्षण तथा मजदूरी की दरों के निर्धारण के एक स्वस्थ आधार की भी स्थापना हो जाती है। इन दोनों अध्ययनों में जिन कार्यों को सम्पन्न किया जाता है, वे हैं—किसी काम को करने का सर्वोत्तम किफायती तरीका, कार्य करने की विधियाँ, सामग्री, औजारों तथा साज-सज्जा का मानकीकरण, किसी काम को करने की सामान्य रफ्तार को दृष्टिगत रखकर किसी सक्षम श्रमिक द्वारा किसी काम के लिए वांछित समय का सही-सही निर्धारण तथा नई-नई विधियों के प्रशिक्षण में श्रमिक की सहायता। इस

प्रकार ये अध्ययन श्रमिक के काम को सरल व रुचिकर बनाते हैं और उसकी कार्य-क्षमता को बढाने मे सहायक होते हैं।

(९) श्रमिक सघ (Trade Unions)

श्रमिक सघ, बशर्ते कि वे सही भावना से व सही दिशा मे काम करें, श्रमिकों को जागरूक बनाने में तथा उनके मनोबल व विश्वास को ऊँचा उठाने मे प्रभावी योगदान करते है। ये श्रमिकों को न केवल उनके अधिकारों के प्रति ही बल्कि कर्त्तव्यों के प्रति भी सचेत करते है। श्रमिक सघ श्रमिकों के लिये नैतिक गतिविधियों के अलावा अन्य गतिविधियों की भी व्यवस्था कराते है। ये सभी चीजें अतत श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढाने मे बडी सहायक सिद्ध होती हैं। अत मालिकों को चाहिये कि वे स्वस्थ श्रमिक सघो के विकास को प्रोत्साहन दें और दिन प्रतिदिन के कार्यों व समस्याओं के समाधान में उन्हे विश्वास मे लें।

(१०) मानवीय सम्बन्ध तथा सचार
(Human Relations and Communication)

श्रमिकों की कार्यक्षमता पर अच्छे मानवीय सम्बन्धों तथा प्रभावपूर्ण सचार या जानकारी का ठोस मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है। यदि श्रमिक के व्यक्तित्व (Personality) की सही पहचान की जाये और उसका उचित मान किया जाये तो इससे उसे मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टि प्राप्त होगी तथा उसका अहभाव (ego) सन्तुष्ट होगा जिसका स्पष्ट एव अनुकूल प्रभाव उसकी कार्यक्षमता पर पडेगा। कार्य को सम्पन्न कराने मे सचार अथवा जानकारी प्रदान करने के महत्व को सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है।

औद्योगिक समस्याओं जो कि मनोवैज्ञानिक प्रकृति की होती है, का सामना करते समय इन सभी तत्वों को दृष्टिगत रखना चाहिये। उपर्युक्त तत्वों को यदि बुद्धिमानी से लागू किया जाये तो उससे श्रमिकों की कार्यक्षमता बढती है। इसी कारण वर्तमान उद्योगों मे औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों के योगदान का महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। किन्तु हमारे देश में अधिकाश मालिकों या नियोजकों को अभी इस तथ्य का महत्व को समझना शेष है कि औद्योगिक कार्यक्षमता के निर्धारण मे मनोवैज्ञानिक तत्व का कितना अधिक महत्व है।

रिक्शा चलाने का उन्मूलन

रिक्शा चलाने को समाप्त करने के प्रश्न पर श्रम मन्त्री सम्मेलन के १२वें अधिवेशन में जो १९५५ में ३ से ५ नवम्बर तक हुआ, विचार किया गया था और यह सिफारिश की गई थी कि—(क) रिक्शा चलाने को धीरे-धीरे समाप्त कर देना चाहिये परन्तु जहाँ इस प्रकार का उन्मूलन सम्भव न हो वहाँ रिक्शा चालकों की कार्य की दशाओं तथा उनकी डाक्टरी परीक्षा के लिये उचित नियम बना देने चाहिये। इस सम्बन्ध मे राज्य सरकारों के मार्गदर्शनार्थ केन्द्रीय सरकार को कुछ आदर्श नियम बना देने चाहिये। (ख) जब तक रिक्शाओं के पूर्ण उन्मूलन का प्रश्न विचाराधीन है कोई भी नये लाइसेंस नहीं दिये जाने चाहियें।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों का यह कार्य होगा कि श्रम कानूनों के प्रशासन के लिये जो व्यवस्था की गई हो उसमें यदि कोई कमी है तो उसकी जांच करें और उसे ठीक करें।

उद्योग में अच्छा अनुशासन लाने और बनाये रखने के लिये—प्रबन्धक और श्रमिक संघ इन बातों पर सहमत हैं—(१) किसी भी औद्योगिक विषय पर कोई भी एक-पक्षीय कार्यवाही नहीं की जानी चाहिये, तथा विवादों का उचित स्तर पर निपटारा किया जाना चाहिये, (२) विवादों के निपटारे के लिये जो भी वर्तमान व्यवस्था हो उसका यथोचित रूप में उपयोग किया जाना चाहिये, (३) बिना पूर्व सूचना के कोई हड़ताल या तालाबन्दी नहीं की जायेगी, (४) प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों में अपने विश्वास प्रकट करते हुए वे इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने सभी मतभेदों, विवादों व शिकायतों का पारस्परिक वार्तालाप, सुलह और ऐच्छिक विवाचन द्वारा निपटारा करेंगे, (५) कोई भी पक्ष (क) दबाव, (ख) धमकी, (ग) अत्याचार, या (घ) कार्यमन्दन जैसी नीतियों का सहारा नहीं लेगा, (६) दोनों पक्ष (क) मुकद्दमेबाजी, (ख) हाजिर हड़ताल या धरना, (ग) तालाबन्दी, आदि से दूर रहने का प्रयत्न करेंगे, (७) यह आन प्रतिनिधियों के बीच तथा श्रमिकों के बीच सभी स्तरों पर स्वस्थ सहयोग को प्रोत्साहन देंगे और पारस्परिक रूप से किये गये समझौतों की भावना का आदर करेंगे, (८) पारस्परिक रूप से वह एक ऐसी शिकायत निवारण क्रियाविधि की व्यवस्था करेंगे जिसके द्वारा शीघ्र और पूर्ण रूप से जांच के पश्चात् समझौते पर पहुंचा जा सके, (९) दोनों पक्ष शिकायत निवारण क्रियाविधि के विभिन्न चरणों को मानेंगे और कोई भी एक-पक्षीय ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे इस व्यवस्था का उल्लंघन होता हो तथा (१०) दोनों पक्ष प्रबन्धक, कर्मचारियों और श्रमिकों को अपने-अपने उत्तरदायित्वों के बारे में शिक्षा देने की व्यवस्था करेंगे।

प्रबन्धक इन बातों के लिये सहमत हैं—(१) बिना सहमति या समझौते के कार्य भार नहीं बढ़ायेंगे—(२) श्रमिकों के प्रति किसी भी प्रकार का अनुचित व्यवहार नहीं करेंगे, जैसे—(क) उनके इस अधिकार में हस्तक्षेप करना कि वह श्रमिक संघों के सदस्य बन सकते हैं या बने रह सकते हैं, (ख) इस आधार पर कोई मजदूर श्रमिक संघों की कार्यवाहियों में भाग लेता है उसके विरुद्ध भेद भाव करना या उस पर दबाव डालना या बन्धन लगाना, (ग) श्रमिकों के प्रति अत्याचार करना या किसी भी रूप में अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना, (३) (क) शिकायतों का निपटारा करने, व (ख) समझौते, पंचाट, निर्णय व आदेशों को लागू करने के लिये तत्काल कार्यवाही करेंगे, (४) संस्थान में मुख्य-मुख्य स्थानों पर इस संहिता के उपबन्धों को स्थानीय भाषाओं में लिखवा कर प्रदर्शित करेंगे, (५) ऐसी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के बीच जिनमें तत्काल बर्खास्तगी न्यायोचित हो तथा जिनमें बर्खास्तगी से पूर्व चेतावनी, डाट-डपट या मुअत्तली या अन्य किसी प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी चाहिये, अन्तर को स्पष्ट करेंगे तथा इस बात की भी व्यवस्था

करेंगे कि सामान्य शिकायत निवारण क्रियाविधि के माध्यम से ऐसी सभी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों की अपील की जा सके, (६) उन मामलों में अपने अधिकारियों तथा सदस्यों के प्रति उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही करेंगे जहाँ जाँच पड़ताल के परिणामस्वरूप यह पता चले कि वह ऐसे कार्यों के लिये उत्तरदायी थे जिनके कारण श्रमिकों को अनुशासनहीन कार्यवाही करने के लिये मजबूर होना पड़ा, (७) मई १६५८ में १६वें भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा निर्धारित जाँच आधारों पर तथा संहिता के अनुबन्ध में दिये गये स्तर के अनुसार संघों को मान्यता देंगे।

संघ इस बात के लिये सहमत हैं—(१) किसी भी प्रकार का शारीरिक बल प्रदर्शन द्वारा दबाव नहीं डालेंगे, (२) अशान्तिपूर्ण प्रदर्शनों को न होने देंगे तथा प्रदर्शन में किसी प्रकार का बखेड़ा नहीं होने देंगे, (३) अपने सदस्यों को या अन्य श्रमिकों को कार्य के घण्टों के दौरान श्रमिक संघों की कार्यवाहियों में भाग नहीं लेने देंगे जब तक कि कानून, समझौते अथवा प्रचलन द्वारा ऐसी व्यवस्था न कर दी गई हो, (४) (क) कर्तव्य की उपेक्षा, (ख) बेपरवाही से काम, (ग) सम्पत्ति की क्षति, (घ) सामान्य कार्य में रुकावट अथवा बाधा, तथा (ङ) अवज्ञा (Insubordination) आदि जैसे अनुचित श्रम व्यवहारों को हतोत्साहित करेंगे (५) पचाट समझौतों, निर्णयों, निपटारों आदि को लागू करने के लिये तत्काल कार्यवाही करेंगे, (६) इस संहिता के उपबन्धों को स्थानीय भाषाओं में संघ के कार्यालयों में मुख्य मुख्य स्थानों पर प्रदर्शित करेंगे (७) इस संहिता की भावना के विरुद्ध कार्य करने वाले पदाधिकारियों और सदस्यों के कार्यों की निन्दा करेंगे और उनके विरुद्ध उचित कार्यवाही करेंगे।

अनुशासन संहिता में जो उपरोक्त मुख्य सिद्धान्त बनाये गये थे उनको संक्षेप में निम्न प्रकार पुनः बताया जा सकता है (१) मालिक और श्रमिक एक दूसरे के अधिकारों और उत्तरदायित्वों को मान्यता देंगे, (२) किसी भी औद्योगिक मामले में कोई भी ऐसी एक पक्षीय अथवा स्वेच्छापूर्वक कार्यवाही नहीं करेंगे, जिसके कारण पारस्परिक रूप में निश्चित की गई तथा स्थापित शिकायत निवारण क्रियाविधि की अवहेलना होती हो, (३) बिना पूर्व सूचना दिये कोई तालाबन्दी अथवा हड़ताल नहीं की जायेगी, (४) हिंसा, प्रदर्शन, धमकी, दबाव डलवाना अत्याचार, भेदभाव, संघ के कार्यक्रम अथवा सामान्य कार्यों में दखल कर्तव्य के प्रति उपेक्षा, अवज्ञा अथवा अनुशासनहीनता, सम्पत्ति अथवा मशीनों की क्षति आदि जैसे कार्य कदापि नहीं किये जायेंगे, (५) कार्य मन्दन युक्तियों, हाजिर हड़ताल या धरना, पुतदमेशबाजी आदि जैसी चालों का सहारा नहीं लिया जायेगा, (६) विवादों के निपटारे के लिये बनाई हुई व्यवस्था का यथोचित रूप में उपयोग किया जायेगा, (७) दोनों पक्ष इस बात के लिये सहमत होंगे कि वह अपने सब मतभेदों और शिकायतों को पारस्परिक

वार्ता, सुलह और ऐच्छिक विवाचन द्वारा सुलझायेंगे (८) पंचाटो, निर्णयों, समझौतों, निपटारों आदि का शीघ्रतापूर्वक तथा तत्परता से कार्यान्वित किया जायगा, (९) प्रत्येक ऐसे कार्य से जिससे सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों में बाधा पड़ती हो अथवा जो इस संहिता के सिद्धान्तों या भावना के विरुद्ध जाते हो दूर रहेंगे।

मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संघों के तथा सरकार के प्रतिनिधियों की एक 'केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्विति समिति' की स्थापना इस उद्देश्य से की गई है कि अनुशासन संहिता को किस प्रकार से लागू किया जा रहा है, इसका मूल्यांकन किया जाय। इस समिति का यह भी काम है कि श्रम कानूनों पंचाटों समझौतों आदि को लागू करने में देर होने के अथवा अप्रभावात्मक रूप से लागू करने के प्रश्नों की जाँच करे। इस समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि संहिता में लिखित सिद्धान्तों का शब्दानुसार ही पालन नहीं करना चाहिये वरन् उसके पीछे जो भावना निहित है उसका भी ध्यान रखना चाहिये। संहिता के उपबन्धों का यथासम्भव विस्तृत रूप में प्रचार करना चाहिये। केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्विति प्रभाग संहिता के कार्यान्विति की देखभाल करता है। राज्यों में भी इसी प्रकार की 'मूल्यांकन और कार्यान्विति' व्यवस्था की गई है, (देखिये पृष्ठ २२२)। यह प्रभाग बहुत से झगड़ों का अदालत से बाहर ही फैसला कराने में सफल हुआ है।

दिसम्बर १९५८ में उद्योग में अनुशासन संहिता को लागू न करने पर कुछ उपाय अथवा शास्ति (Sanctions) निश्चित किये गये। इन उपायों को मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संघों द्वारा लागू किया जायेगा। यदि कोई संघ संहिता को भंग करता है, तो उसे केन्द्रीय संगम द्वारा, जिससे संघ सम्बद्ध है, नोटिस दिया जायेगा। यदि संहिता भंग कोई गम्भीर प्रकृति की है तब केन्द्रीय संगम सम्बन्धित संघ को चेतावनी देगा या निन्दा (Censure) करेगा अथवा अन्य कोई दण्ड देगा। यदि किसी संघ द्वारा संहिता को बार-बार भंग किया जाता है तो केन्द्रीय संगम ऐसे संघ को अपनी सदस्यता से अलग कर सकता है। संहिता का गम्भीर रूप से और जान-बूझ कर उल्लंघन करने पर, ऐसे उल्लंघनों का व्यापक रूप से प्रचार किया जायेगा। २१ अगस्त १९६५ को अनुशासन संहिता कार्य संचालन पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया था जिसमें मालिकों, श्रमिकों, तथा केन्द्र व राज्य सरकारों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुये थे। संहिता को अधिक निष्ठा के साथ लागू करने के विषय में आश्वस्त होने के लिये गोष्ठी में अनेक रचनात्मक सुझाव दिये गये। इन सुझावों पर जुलाई १९६६ में भारतीय श्रम सम्मेलन ने विचार किया। सामान्यतः यह अनुभव किया गया कि अनुशासन संहिता ने जहाँ काफी अच्छा काम किया था, वहाँ औद्योगिक सम्बन्धी कानून तथा श्रमिक संघ कानून में इसलिये व्यापक संशोधन तथा पुनरावलोकन की आवश्यकता थी ताकि अनुशासन संहिता को अधिक प्रभावी बनाया जा सके।

निम्न तालिका में दिये गये आँकड़े अनुशासन संहिता तथा औद्योगिक शांति प्रस्ताव के कार्य को प्रकट करते हैं—

	१९६९	१९७०	१९७१	१९७२	१९७३
१ प्राप्त हुई शिकायतें	६०६	६९६	३०६	२२६	१७१
२ वे शिकायतें जिन पर किसी कार्यवाही की आवश्यकता न थी।	२४०	१८६	७७	३२	८५
३ वे शिकायतें जिन पर कार्यवाही करने की आवश्यकता थी।	३६६	५१०	२२९	१८४	८६
४ इनमें उन शिकायतों का प्रतिशत—					
(क) जो जाँच करने पर सिद्ध नहीं हुई	६	३	२	१	१
(ख) जहाँ कि उल्लंघनों को ठीक कर लिया गया था अन्य प्रकार से मामला सुलझा लिया गया।	३४	६	१३	२१	१२
(ग) जो जाँच के आधीन थी।	६६	८८	८५	७८	८७

अनुशासन संहिता से ऐच्छिक आधार पर औद्योगिक प्रजातन्त्र स्थापित करने और मालिकों व श्रमिकों के सहयोग से औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने की सरकार की वर्तमान नीति का बोध होता है। यह ऐच्छिक नैतिक वचनबद्धता की प्रतीक है, किसी कानूनी दस्तावेज की नहीं। मालिकों और श्रमिकों दोनों ही पक्षों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है तथा इससे औद्योगिक विवादों के प्रति एक नई विचारधारा उत्पन्न हुई है। मालिकों और श्रमिकों व अनेक संघों ने तथा राज्य सरकारों ने इस संहिता के लागू होने पर सन्तुष्टि प्रकट की है और इसे ऐच्छिक आधार पर स्वीकार किया है केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय की १९७३–७४ की रिपोर्ट में कहा गया है कि अनुशासन संहिता को, सभी केन्द्रीय श्रमिक एवं कर्मचारी संगठनों के अलावा, अब तक १८० ऐसे मालिक तथा १६६ ऐसे श्रमिक संघ स्वीकार कर चुके हैं जो किसी भी श्रमिक अथवा मालिक केन्द्रीय संगठन के सदस्य नहीं थे। प्रतिरक्षा मन्त्रालय रेल तथा बन्दरगाह व गोदी प्रतिष्ठानों को छोड़कर अनुशासन संहिता ऐसे सभी सरकारी उद्योगों में लागू हो चुकी है जो कम्पनियों या निगमों के रूप में चलाये जा रहे हैं। प्रतिरक्षा उत्पादन विभाग इस बात पर सहमत हो गया है कि अनुशासन संहिता में कुछ मामूली से संशोधन करके उस उद्यमों में लागू कर दिया जाए जो कम्पनियों व निगमों के रूप में काम कर रहे हैं। इस विभाग के अन्तर्गत कुछ उद्यमों ने तो अनुशासन संहिता को स्वीकार कर भी लिया है। बैंकों के संगठन ने भी अनुशासन

संहिता के पालन की बात मान ली है यद्यपि इस बात पर अभी उनकी स्वीकृति लेनी है कि श्रमिक संघों की मान्यता की कसौटी क्या हो।

तृतीय योजना में कहा गया था कि अनुशासन संहिता ने पिछले तीन वर्षों में परीक्षण का भार सहा है और औद्योगिक सम्बन्धों के दिन प्रतिदिन के संचालन में यह एक जीवित शक्ति बन गया है। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी, जिसने अनुशासन संहिता की कार्यप्रणाली का अध्ययन किया था, १९६९ में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में इस विषय पर कहा था कि अनुशासन संहिता से सफलता में प्रारम्भ में तो कुछ सफलता मिली किन्तु बाद में इसकी उपयोगिता कम हो गई थी।

सरकार ने इसमें भी अधिक एक महत्वपूर्ण क्षेत्र की ओर पग उठाए अर्थात् कार्य-कुशलता और कल्याण कार्य संहिता (Code of Efficiency and Welfare) लागू करने का विचार किया था। केन्द्रीय श्रम व रोजगार मन्त्रालय द्वारा इस संहिता का निर्माण किया गया। इस संहिता को अनुशासन संहिता का पूरक कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य उत्पादन, कार्यक्षमता व कल्याण सुविधाओं में सुधार करना था। इस कार्य कुशलता संहिता पर सितम्बर १९५८ में भारतीय श्रम सम्मेलन में विचार विमर्श हुआ। संहिता के उद्देश्यों की पूर्ति कैसे की जा सकती है इस पर सोच विचार करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की गई। इस समिति ने संहिता से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करने के लिए एक प्रश्नावली बनाई तथा सुझाव और टिप्पणियाँ के लिए मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संघों में इसे प्रसारित किया। यह कार्य कुशलता तथा कल्याण कार्य संहिता अनुशासन संहिता से भिन्न थी क्योंकि उसमें तो मालिकों और श्रमिकों से कुछ बातें न करने के लिए कहा गया था परन्तु कार्य कुशलता और कल्याण कार्य संहिता व्यापक थी और इसमें मालिकों व श्रमिकों से कुछ विशेष कार्य करने को कहा गया जिससे गौरवपूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध बढ़ें और उत्पादन अधिक हो। किन्तु इस संहिता को अन्तिम रूप न दिया जा सका।

संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए शर्तें
(Criteria for Recognition of Unions)

संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए अनुशासन संहिता के अनुच्छेद में कुछ नियम दिए गए हैं—(१) जहाँ एक से अधिक संघ हैं वहाँ किसी संघ को मान्यता पाने के लिए यह आवश्यक है कि वह संघ पंजीकरण होने के पश्चात् कम से कम एक वर्ष तक कार्य करता रहा हो। जहाँ केवल एक संघ है वहाँ यह शर्त लागू नहीं होगी। (२) संघ की सदस्यता में सम्बन्धित संस्थान में कार्य करने वाले कम से कम १५ प्रतिशत श्रमिक होने चाहिएँ (सदस्यता केवल उन श्रमिकों की ही मानी जायगी जिन्होंने पिछले ६ महीनों में कम से कम ३ महीनों का सदस्यता शुल्क दे दिया हो)। (३) यदि किसी स्थानीय क्षेत्र के उद्योग के २५ प्रतिशत श्रमिक किसी संघ के सदस्य होते हैं तब वह संघ प्रतिनिधि संघ (Representative Union) के रूप में मान्यता

पाने का दावा कर सकता है। (४) जब किसी संघ को मान्यता प्रदान की गई हो तब दो वर्ष तक उसकी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिये। (५) जब किसी उद्योग या संस्थान में अनेक संघ हो तब मान्यता उस संघ को दी जानी चाहिये जिसकी सदस्यता सबसे अधिक हो। (६) एक प्रतिनिधि संघ को उद्योग के उस क्षेत्र के सभी संस्थानों के श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार होगा परन्तु यदि किसी संस्थान विशेष में कोई ऐसा संघ है जिसमें संस्थान के ५० प्रतिशत या अधिक श्रमिक सदस्य है तब उसको यह अधिकार होगा कि वह अपने सदस्यों के स्थानीय हितों के मामलों को अपने हाथ में ले सके जो श्रमिक संघ के सदस्य नहीं है वे अपनी कठिनाइयों का निवारण या तो प्रत्यक्ष रूप से अथवा प्रतिनिधि संघ के माध्यम से करा सकते है। (७) ऐसे श्रमिक संघों के सम्बन्धों को मान्यता प्रदान करने के प्रश्न पर आगे से विचार करना चाहिये जो समग्र चार केन्द्रीय श्रम संगठनों में किसी से सम्बद्ध नहीं है। ( ) केवल वही संघ जो अनुशासन संहिता का पालन करते है मान्यता पाने के अधिकारी होंगे।

आचरण संहिता

(Code of Conduct)

मई १६५८ में नैनीताल में बनाई गई आचरण संहिता को लागू करने का उत्तरदायित्व भी केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्वित विभाग को सौंपा गया है। यह संहिता अन्तर संघ सम्बन्धों को निर्धारित करती है तथा इसका उद्देश्य अन्तर संघ प्रतिस्पर्धा को कम करना और श्रमिक संघ एकता से मैत्री की स्थापित करना है। चारों केन्द्रीय श्रम संगठन अन्तर श्रमिक संघों के सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए निम्नलिखित मूल सिद्धान्तों को मानने के लिये सहमत हो गये है (१) किसी भी उद्योग अथवा संस्थान के प्रत्येक कर्मचारी का यह अधिकार होगा कि वह अपनी इच्छानुसार किसी भी संघ का सदस्य बन सकता है। इस विषय में उस पर कोई दबाव नहीं डाला जायेगा। (२) संघों की दोहरी सदस्यता नहीं होगी (प्रतिनिधि संघों के विषय में इस सिद्धान्त का और अधिक जाँच करने की आवश्यकता) (३) श्रमिक संघों को प्रजातान्त्रिक रूप से कार्य करने के लिये मान्यता प्रदान की जायगी और ऐसे कार्यों के बिना किसी संशय के स्वीकार कर लिया जायेगा। (४) श्रमिक संघों के पदाधिकारियों तथा कार्यसमिति का निर्वाचन नियमित तथा प्रजातान्त्रिक ढंग से होना चाहिये। (५) किसी भी संगठन द्वारा श्रमिकों की अज्ञानता अथवा पिछड़ेपन का लाभ नहीं उठाया जायगा। किसी भी संगठन द्वारा अत्यधिक अथवा अन्य की मांगें नहीं की जायेंगी। (६) सभी संघ जातिवाद साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता आदि से दूर रहेंगे। (७) अन्तर संघ सम्बन्धों के विषय में किसी प्रकार की हिंसा दबाव धमकी और व्यक्तिगत निन्दा आदि जैसी बातें नहीं होंगी। (८) सभी केन्द्रीय श्रम संगठनों को मालिकों द्वारा संघ बनाने अथवा उनको चालू रखने का विरोध करना चाहिये।

आचरण संहिता भंग करने की विभिन्न वर्षों में जो शिकायतें आईं वह निम्नलिखित हैं १६५८—१६, १६५६—५६, १६६०—३५, १६६१—३०, १६६२—२७, १६६३—३०, १६६४—८, १६६५—६, १६६६—२०, और १६६७—११, १६६८—६, १६६६—१८, १६७०—१४। १६७० में संहि। भंग करने की १४ शिकायतों में से ४ मामलों पर किसी कार्यवाही की आवश्यकता नहीं थी, १ मामले में शिकायतें निराधार थी और शेष ६ में जाँच चल रही थी।

शिकायत निवारण क्रियाविधि

(Grievance Procedure)

(पृष्ठ १८५ के संदर्भ में)

किसी भी रोजगार की स्थिति में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है जबकि श्रमिक यह अनुभव करने लगते हैं कि उनके साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं हो रहा है और यह कि रोजगार की दशाएँ उनके लिए सन्तोषजनक नहीं हैं। व्यक्तिगत रूप से भी श्रमिकों को विभिन्न प्रकार की व्यथाएँ हो सकती हैं। ये व्यथाएँ काम की शर्तों, पर्यवेक्षक के कार्यों पदोन्नति, पदच्युति, जबरी छुट्टी मजदूरी की गणना तथा बोनस की अदायगी आदि के सम्बन्ध में हो सकती हैं। इन व्यथाओं को ही 'शिकायतों' (Grievances) का नाम दिया जाता है। उस लिखित व्यथा को ही शिकायत कहा जाता है जो किसी कर्मचारी द्वारा दर्ज कराई जाती है तथा जिसमें अन्यायपूर्ण व्यवहार का दावा किया जाता है।

श्रमिकों की शिकायतों का इस दृष्टि से महत्व होता है कि वे औद्योगिक सम्बन्धों की स्थिति पर प्रकाश डालती हैं। यदि किसी श्रमिक के असन्तोष पर ध्यान नहीं दिया जाता है। अथवा यदि उस असन्तोष को जन्म देने वाली दशाओं सुधार नहीं किया जाता है तो उससे उत्तेजना बढ़ती है तथा असहयोगी रुख के कारण न केवल पीड़ित श्रमिक की ही, बल्कि श्रमिकों के सम्पूर्ण वर्ग की ही कार्यक्षमता कम होने की सम्भावना रहती है। इस स्थिति से अन्त में विवाद तथा हड़तालें भी हो सकती हैं। अतः औद्योगिक सम्बन्धों को मधुर बनाने तथा औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के किसी भी कार्यक्रम में शिकायतों को दूर करने की व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है

शिकायत-निवारण क्रियाविधि को एक ऐसा तरीका या पद्धति कहा जा सकता है जिसके द्वारा कोई शिकायत दर्ज की जाती है वह विभिन्न चरणों से गुजरती है और फिर अन्त में उसके बारे में अन्तिम निर्णय लिया जा सकता है। किसी भी शिकायत-निवारण क्रियाविधि (Grievance procedure) का मुख्य लाभ यह होता है कि इसके द्वारा मानवीय समस्याओं को प्रकाश में लाया जाता है ताकि प्रबन्धकों को उनकी जानकारी हो सके और वे उस सम्बन्ध में सुधारात्मक पग उठा

सकें। श्रमिकों व प्रबन्धकों के बीच मधुर सम्बन्धों की स्थापना के लिये एक अच्छी शिकायत निवारण क्रियाविधि अत्यन्त आवश्यक होती है।

किसी भी संस्था द्वारा अपनाई जाने वाली शिकायत निवारण की क्रियाविधि दो प्रकार की हो सकती है : (१) (सीधी पहुंच की नीति (Open door policy) तथा (२) पग सोपान पद्धति (step ladder procedure)। १ सीधी पहुंच की नीति के अन्तर्गत, किसी भी श्रमिक को अपनी शिकायत लेकर सीधे प्रबन्धकों के पास आने से नहीं रोका जाता और श्रमिक अपनी शिकायत के समाधान के लिए फर्म के अध्यक्ष से कभी भी मिल सकता है। परन्तु शिकायतों को दूर करने के लिए अपनाई जाने वाली ऐसी अनौपचारिक सीधी पहुंच की नीति केवल छोटी इकाइयों के लिये ही उपयुक्त हो सकती हैं। किन्तु यदि फर्म बड़ी है तो यह हो सकता है कि फर्म का अध्यक्ष तत्काल ही श्रमिक से मिलने में समर्थ न हो सके अथवा वह यह समझ सकता है कि उस विचाराधीन शिकायत पर उसका व्यक्तिगत रूप से ध्यान देना आवश्यक नहीं है। इस स्थिति में शिकायतों का शीघ्रता से निवारण करने के लिये पग सोपान पद्धति ठीक रहती है। इस पद्धति के अन्तर्गत, पीड़ित श्रमिक सबसे पहले अपनी शिकायत प्रथम स्तर के पर्यवेक्षक के समक्ष रखता है। यदि वह उसके निर्णय से सन्तुष्ट नहीं होता, तो वह अपनी शिकायत अगले स्तर के अधिकारी, उदाहरणत विभागाध्यक्ष (Head of the Department) के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है। इससे भी आगे, तृतीय पग पर संयुक्त शिकायत सीमित शिकायत पर विचार करती है। यदि शिकायत का निपटारा इस स्तर पर भी नहीं होता, तो मामला कम्पनी के मुख्य प्रबन्धक को सौंप दिया जाता है। कुछ मामलों में किसी पग पर मालिक मजदूर समितियाँ भी यह कार्य सम्पन्न करती हैं। कार्मिक अधिकारी (Personnel officer) यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इस पद्धति में भाग नहीं लेता, मगर शिकायतों के समाधान के लिये उसकी सलाह तथा सहायता प्रत्येक स्तर पर उपलब्ध रहनी चाहिये। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में कुछ बातें स्पष्ट कर दी जाती हैं जैसे—किन किन अधिकारियों के समक्ष शिकायतें प्रस्तुत की जाती हैं, प्रत्येक स्तर पर शिकायत के समाधान में कितना समय लगाया जाता है, शिकायत मौखिक रूप से रखी जाती है या लिखित रूप से या अन्य किसी विधि से, यदि लिखित रूप में, तो क्या सादे कागज पर रखनी है या निर्धारित प्रपत्र पर आदि। जहाँ मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ होते हैं, वहाँ उनकी सहमति से ही उपयुक्त प्रक्रिया निर्धारित की जाती है।

अहमदाबाद में औद्योगिक सम्बन्ध अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक शान्त और सौहार्दपूर्ण रहे हैं। इसका कारण शिकायतों आदि के निवारणार्थ वहाँ सूती कपड़ा मिल श्रमिक संघ द्वारा विकसित की गई एक सुचारु क्रियाविधि है। अन्य स्थानों पर सामान्यतः ऐसी कोई औपचारिक व्यवस्था नहीं पाई जाती तथा श्रमिकों के लिये अपनी शिकायतों को दूर करने का एकमात्र साधन श्रम कल्याण अधिकारी

का कार्यालय ही रह जाता है। यह अधिकारी उन संस्थानों में होते हैं जहाँ ५०० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। परन्तु यह अधिकारी चाहे कितने अच्छे प्रयत्न भी क्यों न करें शिकायत निवारण क्रियाविधि का स्थान नहीं ले सकते। इस सम्बन्ध में कोई वैधानिक व्यवस्था भी नहीं है। केवल १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) केन्द्रीय नियमों के अन्तर्गत बनाये गये आदर्श स्थायी आदेशों में एक धारा दी हुई है, जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि रोजगार में सम्बन्धित जितनी भी शिकायतें होंगी (इन शिकायतों में मालिकों या उनके एजेन्टों द्वारा अनुचित व्यवहार और अनुचित रूप में कोई कार्य आदि कराना या कुछ गैर-कानूनी वसूली करने की शिकायतें भी सम्मिलित होंगी) उनको प्रबन्धक या उसके द्वारा नियुक्त किये गये किसी अन्य व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत किया जायगा और मालिक के सम्मुख अपील करने का अधिकार भी रहेगा।

जुलाई १९५७ में, भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें अधिवेशन की कार्य-सूची में एक ऐसी शिकायत निवारण क्रियाविधि की स्थापना करने का विषय रखा गया जो औद्योगिक संस्थानों के प्रबन्धकों और उनमें लगे हुए श्रमिकों दोनों को स्वीकार हो। औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने में इसकी महत्ता पर जोर दिया गया। इस विषय पर विचार करने के लिये सम्मेलन ने एक उपसमिति नियुक्त की। मार्च १९५८ में उपसमिति ने अपनी एक बैठक में कुछ सिद्धान्तों को बनाया। इन सिद्धान्तों के अनुसार शिकायत निवारण क्रियाविधि इस प्रकार होनी चाहिये कि . (१) वह चालू वैधानिक व्यवस्था की अनुपूरक हो और इस व्यवस्था का प्रयोग भी करे, (२) वह सरल और औचित्यपूर्ण हो, तथा (३) प्रबन्धकों पर यह उत्तरदायित्व डाले कि वह ऐसे प्राधिकारियों को नामजद कर दें जिनसे विभिन्न स्तरों पर सम्पर्क बनाया जा सके। निजी सम्बन्धों से सम्बन्धित जो शिकायतें हों उन्हें सबसे पहले प्रबन्ध के उस अधिकारी के सम्मुख लाना चाहिये जो उस अधिकारी के फौरन ऊपर का अधिकारी होता है जिसके विरुद्ध शिकायत की जाती है। उसके पश्चात् शिकायत को शिकायत निवारण समिति के सम्मुख ले जाया जा सकता है। अन्य शिकायतों को जिनका सम्बन्ध रोजगार की दशाओं से होता है, सर्वप्रथम प्रबन्धक द्वारा नामजद किये गये प्राधिकारी के सम्मुख लाना चाहिये और बाद में शिकायत निवारण समिति के सम्मुख ले जाना चाहिये। जब कोई विषय शिकायत निवारण समिति के सम्मुख सबसे पहले आ जाता है तब उससे अपील उच्च प्रबन्धकों के सम्मुख होनी चाहिये।

भारतीय श्रम सम्मेलन ने अपने १६ वें अधिवेशन में उपसमिति द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों का अनुमोदन किया तथा प्रार्थना की कि इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए, एक सरल और नम्य (Flexible) शिकायत निवारण क्रियाविधि बनानी चाहिये। परिणामस्वरूप सितम्बर १९५८ में एक आदर्श शिकायत निवारण क्रिया-विधि बनाई गई और त्रिदलीय सभा में इसको स्वीकार कर लिया गया। मालिकों

के पास इसको प्रसारित कर दिया गया है जिसमे यदि पहले से ही उनके सस्थान मे इसमे उत्तम कोई शिकायत निवारण क्रियाविधि नही है तो वह इस क्रियाविधि को लागू कर दे।

शिकायत निवारण क्रियाविधि के प्रशासन के लिये जो व्यवस्था की जाती है उसके अन्तर्गत श्रमिको द्वारा विभागीय प्रतिनिधियो का चुनाव होता है अथवा सघो द्वारा उन्हे मनोनीत कर दिया जाता है अथवा जहाँ वही मालिक-मजदूर समितियाँ है वहाँ श्रमिको के प्रतिनिधियो को इस व्यवस्था के लिये ले लिया जाता है। प्रबन्धको को प्रत्येक विभाग के लिये ऐसे व्यक्ति नामजद करने होते है जिसके सम्मुख मामले को सर्वप्रथम रखा जा सके। इससे अगला पग यह होता है कि शिकायतो को विभागीय अध्यक्षो द्वारा सुना जाये। शिकायत निवारण समिति मे प्रबन्धको और श्रमिको के इस प्रकार के प्रतिनिधि होते है जिनकी सख्या ४ से ६ तक निर्धारित की गई है।

शिकायत निवारण क्रियाविधि मे उन विभिन्न उपायो का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है जिनके द्वारा कोई शिकायत सुनी जा सकती है। सर्वप्रथम शिकायत प्रबन्ध के विभागीय प्रतिनिधि के पास जाती है जिसको ४८ घण्टो के अन्दर अपना निर्णय देना होता है। इसमे सफलता न मिलने पर पीडित श्रमिक विभागीय अध्यक्ष के पास विभागीय अधिकारी के साथ जा सकता है। इस कार्य के लिये तीन दिन नियत है। इसके ऊपर शिकायत निवारण समिति द्वारा शिकायत पर विचार किया जाता है। समिति को सात दिन के अन्दर-अन्दर अपनी सिफारिशे प्रबन्धक के पास भेजनी होती है। शिकायत निवारण समिति की सिफारिश करने के तीन दिन के अन्दर प्रबन्धको का अन्तिम निर्णय श्रमिक के पास भेज दिया जाता है। यदि श्रमिक को इस निर्णय से सन्तुष्टि नही होती तब वह निर्णय पर पुन विचार के लिये अपील कर सकता है तथा तब प्रबन्धको को सात दिन के अन्दर अपना निर्णय देना होता है। समझौता न होने की दशा मे शिकायत को ऐच्छिक निर्वाचन के लिये सौपा जा सकता है। जब तक पीडित श्रमिक द्वारा उच्च प्रबन्ध के अन्तिम निर्णय को अस्वीकार नही कर दिया जाता औपचारिक सुलह व्यवस्था का उपयोग नही किया जा सकता।

शिकायत निवारण क्रियाविधि मे अन्य और बातो का भी उल्लेख किया गया है, उदाहरणत. जब कोई शिकायत प्रबन्धको द्वारा दिये गये आदेश के कारण उत्पन्न होती है तब क्रियाविधि के सम्मुख जाने से पूर्व उस आदेश को मानना आवश्यक है। शिकायत निवारण समिति मे श्रमिको के प्रतिनिधियो का किन्ही भी कागजात को देखने का अधिकार है और प्रबन्धको के प्रतिनिधियो द्वारा किसी भी गोपनीय प्रकृति के कागजात को दिखाने से इन्कार करने का अधिकार है। उस अवधि (७२ घण्टे) का भी उल्लेख है जिसमे अपील एक चरण से दूसरे चरण मे लाई जा सकती है।

शिकायत दूर करने में व्यय हुए समय के लिये भुगतान करने की भी व्यवस्था है आदि। बर्खास्तगी और अलहदगी के विषय की शिकायत के सम्बन्ध में श्रमिक को यह अधिकार है कि वह बर्खास्त या अलग किए जाने के एक सप्ताह के अन्दर या तो बर्खास्त करने वाले प्राधिकारियों के सम्मुख या प्रबन्धकों द्वारा नियुक्त किये गये प्रवर प्राधिकारी के सम्मुख अपील कर सके।

राष्ट्रीय श्रम आयोग* का सुझाव है कि शिकायत निवारण क्रियाविधि सरल होनी चाहिये और उसमें कम से कम एक अपील करने का प्रावधान अवश्य होना चाहिये। ऐसी पद्धति उन सभी इकाइयों में लागू की जानी चाहिये जिनमें १०० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हों। पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि यह श्रमिक को सन्तुष्टि प्रदान करे, प्रबन्धक को मनमाने के उचित एवं तर्कपूर्ण उपयोग का अवसर दे तथा श्रमिक संघों को उसमें भाग लेने का अवसर प्रदान करे। आयोग की सिफारिश है कि शिकायत निवारण क्रियाविधि में सामान्यतः त्रिस्तरीय व्यवस्था होनी चाहिये (१) पीड़ित श्रमिक द्वारा अपनी शिकायत आसन्न पर्यवेक्षक (immediate supervisor) के समक्ष प्रस्तुत करना, (२) विभागाध्यक्ष अथवा प्रबन्धक से अपील कर सकना, और (३) ऐसी शिकायत निवारण समिति के समक्ष अपील करना जिसमें प्रबन्धक तथा मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ के प्रतिनिधि हों। यदि कभी ऐसा हो जाय कि तृतीय स्तर की इस समिति में सर्वसम्मति न हो सके, तो मामला विवाचक (arbitrator) को सौंपा जा सकता है।

श्रमिक प्रबन्धक सहयोग
(Labour-Management Co-operation)

प्रायः सभी देशों में औद्योगिक संघर्षों को कम करने तथा मालिकों द्वारा श्रम संगठनों के विरोध को कम करने के लिये श्रमिक संघों को अत्यन्त आवश्यक माना जाता है। यह बात जरूर है कि श्रम संगठनों के प्रति मालिकों का विरोध पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ है परन्तु फिर भी काफी सीमा तक कम हो गया है। श्रमिक संघों का मुख्य उद्देश्य यह है कि जब कभी भी मालिकों और श्रमिकों में कोई मतभेद अथवा संघर्ष हो तब यह श्रमिकों के हितों की रक्षा करें। उत्पादन एवं अर्थव्यवस्था की आधुनिक प्रणाली में, जहाँ पूँजी और श्रम भिन्न भिन्न हाथों में होते हैं। तथा जहाँ मालिकों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है, ऐसे विवादों का होना अवश्यम्भावी है।

हाल ही के वर्षों में मालिकों और श्रमिकों के सम्बन्धों के विषय में एक नई विचारधारा देखने में आई है और अब इस बात पर अधिक बल दिया जा रहा है कि पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे होने चाहियें कि संघर्ष के स्थान पर इस प्रकार सहयोग से कार्य किये जायें कि सबका हित सम्पादित हो। श्रम समस्याओं के प्रति अब मान-

*Report of the National Comission on Labour, Page 348

चीय दृष्टिकोण लिया जाता है। अब श्रम को एक पदार्थ नहीं समझा जाता जिसको बाजार में खरीदा अथवा बेचा जा सके, वरन श्रमिक को मानव समझा जाता है। फिलेडेलफिया की घोषणा तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कार्यवाहियों ने भी दृष्टिकोण में इस प्रकार के परिवर्तन होने में काफी योगदान दिया है। इससे श्रमिक और प्रबन्धकों के सहयोग में नये दृष्टिकोण आ गये हैं। इनके कारण अब रोजगार को सविदा के स्थान पर श्रमिकों से अब सायदारी की सविदा की जाती है ताकि सभी के हितों के लिये प्रत्येक पक्ष अपना अपना योगदान दे सकें।

श्रमिक प्रबन्धक सहयोग का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि क्योंकि श्रमिक अपनी जीविका के लिये इस बात पर निर्भर होते हैं कि कारखाना सुचारु रूप से चालू रहे अतः यह स्वाभाविक है कि व्यवसाय या उद्योग के मामलों में वह रुचि लें और उसके संचालन में उनका भी कुछ हाथ हो। श्रमिक प्रबन्धक सहयोग में सबसे आवश्यक बात यह है कि पारस्परिक रूप से परामर्श किया जाये तथा प्रबन्धकों की योजना, नीति और समस्याओं से सभी स्तर के कर्मचारियों को सूचित रखा जाये तथा श्रमिकों के विचारों से प्रबन्धकों को अवगत कराया जाये। इस प्रकार के परामर्श मालिक मजदूर समितियों अथवा श्रमिक प्रबन्धक समितियों के द्वारा औपचारिक रूप में अथवा कार्यांग, पर्यवेक्षक और श्रमिकों के बीच वाद-विवाद व अनौपचारिक वार्ता के रूप में हो सकते हैं। इस प्रकार के सहयोग से मानव-तत्व की महत्ता को पूर्ण मान्यता मिलेगी तथा संस्थान के संचालन में श्रमिक और अधिक रुचि लेंगे। श्रमिकों में नैराश्य और पृथकत्व की भावनायें समाप्त हो जायेंगी तथा श्रमिक और मालिक दोनों ही एक दूसरे को अपेक्षाकृत भली भाँति समझने का प्रयत्न करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि औद्योगिक शान्ति होगी, अधिक कार्य कुशलता होगी, अपव्यय और श्रमिकावर्त में कमी होगी और यथा-सम्भव अधिकतम उत्पादन होगा।

परन्तु उस समय तक कोई श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग सफल नहीं हो सकता जब तक कि दोनों पक्ष सच्चे हृदय से ही सहयोग करना न चाहते हों तथा दोनों पक्षों को एक दूसरे का विश्वास एवं भरोसा न हो। प्रबन्धकों को सभी मामलों में श्रमिकों की सलाह लेनी चाहिये तथा संस्थान से सम्बन्धित सभी मामलों से उन्हें सूचित रखना चाहिए। उनको प्रशिक्षण की सुविधायें भी देनी चाहियें तथा अधिक उत्पादकता के कारण जो लाभ उत्पन्न हो उसमें से श्रमिकों को भी भाग देना चाहिये। संयुक्त परामर्श व्यवस्था का उद्देश्य यह नहीं होना चाहिये कि श्रमिक संघों की महत्ता कम कर दी जाये। सामूहिक सौदाकारी का कार्य श्रमिक संघों पर ही छोड़ देना चाहिये।

श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग के अनेक रूप हो सकते हैं। ऐसे सभी मामले जिनमें

[illegible] श्रमिकों का सहयोग लिया जाता है अथवा उनसे परामर्श किया जाना [illegible] इस सहयोग के अन्तर्गत आ सकते हैं। संयुक्त मजदूर समितियाँ, संयुक्त पर[illegible] समितियाँ, प्रबन्ध की संयुक्त परिषदें आदि इस सहयोग के विभिन्न रूप हैं। हाल ही के वर्षों में श्रमिक प्रबन्धक सहयोग से यह तात्पर्य लिया जाता है कि श्रमिकों का उद्योग के प्रबन्ध में भाग है।

प्रबन्ध मे श्रमिकों का भाग
(Worker's Participation in Management)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए प्रबन्ध में श्रमिकों के अधिक सहयोग पर जोर दिया गया था। इसमें बताया गया था कि इन उपायों से (क) उत्पादकता बढ़ेगी जिससे व्यवसाय, श्रमिकों और समाज का सामान्य हित होगा। (ख) उद्योग के संचालन और उत्पादन की प्रक्रियाओं में श्रमिकों का क्या भाग है वह अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे और (ग) आत्म अभिव्यक्ति की श्रमिकों की इच्छा भी इससे सन्तुष्ट हो जायगी। इन सबका परिणाम औद्योगिक शान्ति, उन्नत औद्योगिक सम्बन्ध और अधिक सहयोग होगा। आयोजना में सिफारिश की गई थी कि इस उद्देश्य की प्राप्ति ऐसे प्रबन्ध-परिषदों की स्थापना द्वारा की जा सकती है जिनमें प्रबन्धकों, तकनीशियनों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि हों। ऐसी प्रबन्ध-परिषदों को सभी सम्बन्धित विषयों के बारे में उचित और ठीक प्रकार से जानकारी देने का उत्तरदायित्व प्रबन्धकों का होना चाहिये, जिससे परिषदें प्रभावात्मक ढंग से कार्य कर सकें। प्रबन्ध-परिषद का यह अधिकार होना चाहिए कि वह संस्थान से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों पर विचार-विमर्श कर सके तथा उसके अच्छे प्रकार से संचालन के उपायों की सिफारिश कर सके। परन्तु ऐसे विषय जो सामूहिक सौदाकारी से सम्बन्धित हैं परिषद् के विचार क्षेत्र के बाहर होने चाहिये। आरम्भ में ऐसी व्यवस्था संगठित उद्योगों के बड़े बड़े संस्थानों में प्रयोग के रूप में लागू करनी चाहिये। ऐसी योजना को आगे बढ़ाने का आधार विनियमित होना चाहिये तथा योजना का विस्तार प्राप्त किये अनुभवों की पृष्ठ-भूमि को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिये।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इन सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की एक विस्तृत योजना तैयार करने का निश्चय किया। इस कार्य को सरल बनाने के लिए १९५६ में यूरोपीय देशों में एक अध्ययन दल भेजा गया ताकि वह दूसरे देशों में इस योजना के संचालन को स्वयं देखकर अध्ययन कर सके। अध्ययन दल की रिपोर्ट १९५७ में प्रकाशित की गई। रिपोर्ट में दूसरे देशों में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना का अवलोकन किया गया था। दल ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि भारत में एक शिक्षा अभियान आरम्भ किया जाना चाहिये ताकि इस प्रकार की योजना के विभिन्न पहलुओं को श्रमिकों, प्रबन्धकों तथा पर्यवेक्षकों द्वारा ठीक प्रकार से समझा जा सके। रिपोर्ट

में इस बात पर बल दिया गया था कि 'संयुक्त परामर्श' की स्थापना स्वयं संस्थान में ही होनी चाहिये, अर्थात् संयुक्त परामर्श का अर्थ केवल दोनों पक्षों को आपस में मिलाकर बैठाना ही नहीं होना चाहिये वरन इसका तात्पर्य यह होना चाहिये कि सभी विषयों में संयुक्त रूप से परामर्श हो। तकनीकी विशेषज्ञ एवं पर्यवेक्षकों इस संयुक्त परामर्श प्रणाली के प्रधान अंग होने चाहिये। रिपोर्ट में दृष्टिकोणों में परिवर्तन, भाग लेने की व्यवस्था में निकट रूप से सम्पर्क बनाये रखने वाले दृढ़, आत्म विश्वासी श्रमिक-संघों की स्थापना तथा मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की महत्ता पर बल दिया गया था ताकि श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग लेने की योजना सफल हो सके। श्रमिक-प्रबन्धक की संयुक्त परिषदें श्रमिक संघों की स्थानापन्न नहीं होनी चाहियें। सामूहिक सौदाकारी के कार्य ऐसी परिषदों के क्षेत्र के बाहर होनी चाहियें। इस प्रकार मजदूरी, बोनस और निजी शिकायतों आदि पर ऐसी संयुक्त परिषदों द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिये। संयुक्त परिषदों को उदाहरणतः ऐसे प्रश्नों पर विचार करना चाहिये जैसे—(१) स्थायी आदेशों में परिवर्तन, (२) छटनी, (३) विवेकीकरण के लिये प्रस्ताव (४) संस्थान का बन्द करना या उत्पादन प्रक्रियाओं को कम करना या बन्द करना (५) नई प्रणालियों को लागू करना (६) भरती और दण्ड के लिये कार्य विधि। परिषदों को निम्नलिखित विषयों में सूचना प्राप्त करने और सुझाव देने का अधिकार भी होना चाहिये— (१) संस्थान की सामान्य आर्थिक व्यवस्था, बाजार का रुख, उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम, (२) संस्थान का संगठन तथा सामान्य संचालन, (३) संस्थान की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ, (४) निर्माण और कार्य की प्रणालियाँ, (५) वार्षिक तुलन पत्र व लाभ हानि लेखा तथा सम्बन्धित कागजात, जवाब तलबी आदि। इस भय को दूर करने के लिये कि परिषदों में कार्य के प्रति उदासीनता न आ जाये। इन परिषदों को कुछ प्रशासनात्मक उत्तरदायित्व सौंपे जा सकते हैं उदाहरणतः (१) कल्याण कार्यक्रमों का प्रशासन, (२) सुरक्षा उपायों की देखभाल, (३) व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा शिक्षार्थी योजनाओं का संचालन, (४) कार्य के घण्टे और आराम के लिये अनुसूची तैयार करना (५) छुट्टियों की अनुसूची बनाना तथा (६) महत्वपूर्ण सुझावों के लिये पारितोषिक देना। अध्ययन दल परिषदों के बनाने में किसी भी बन्धन अथवा अनिवार्यता के विरुद्ध था और वह केवल ऐसे विधान बनाने के पक्ष में था जिसके अन्तर्गत ऐसी परिषदों के बनाने की अनुमति मात्र मिल जाये। अगर किसी संस्थान की विभिन्न स्थानों पर विभिन्न इकाइयाँ न हों तो एक संस्थान के लिये केवल एक ही परिषद् बनाने की सिफारिश की गई थी। प्रारम्भ में बाहरी व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक हो सकता है, परन्तु उनकी संख्या सीमित ही होनी चाहिये।

अध्ययन दल की मुख्य मुख्य सिफारिशें जुलाई १९५७ में हुए भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें अधिवेशन में सम्मिलित कर ली गई थी। १२ सदस्यों की एक

पुन रोजगार पर लगाया जा सके, तथा (४) कुछ प्रक्रियाओं में कमी कर देना, उन्हें कुछ समय के लिये रोक देना अथवा उन्हें पूर्णत बन्द कर देना आदि। (ख) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषदों को सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार होगा," उदाहरणत. निम्न विषयों में—(१) संस्थान की सामान्य चालू रहने की योग्यता, (२) बाजार की दशा, उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम, (३) संस्थान में संगठन तथा सामान्य संचालन, (४) उत्पादन और कार्य की प्रणालियाँ, (५) विस्तार तथा इसी प्रकार के कार्यक्रमों की योजना आदि, तथा (ग) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषद् का दायित्व प्रशासनात्मक होगा, उदाहरणत निम्न विषयों में—(१) कल्याण कार्य, (२) सुरक्षा कार्यक्रम, (३) व्यवसायिक प्रशिक्षण और शिक्षार्थी योजनायें, (४) कार्य सूची को तैयार करना, तथा (५) पारितोषिकों का देना आदि।

इस प्रकार मजदूरी, बोनस, कार्य की सामान्य दशायें, आदि के प्रश्नों पर मालिकों और श्रमिक संघों के बीच वार्ता के लिये काफी क्षेत्र छोड़ दिया गया है। निजी शिकायतों को भी संयुक्त परिषदों के क्षेत्र में सम्मिलित नहीं किया गया है *क्योंकि यह सम्भव है कि ऐसी शिकायतों के कारण श्रमिकों व प्रबन्धकर्त्ताओं के बीच* सहयोग के वातावरण पर बुरा असर पड़े।

इसके पश्चात् ५० इकाइयों द्वारा इन निर्णयों को लागू करने तथा संयुक्त *प्रबन्ध परिषदों को स्थापित करने के प्रयत्न किये गये। चार संस्थान—अर्थात्*, टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी, जमशेदपुर, सिम्पसन्स ग्रुप ऑफ इन्टस्ट्रीज, मद्रास, मोदी बुनाई और कताई मिल्स लि० मोदीनगर (उ० प्र०), तथा राजकीय परिवहन, तमिलनाडु—अपने श्रमिकों के प्रबन्ध कार्य में भाग लेने के लिये पहले से ही सहमति प्रदान कर चुके थे। तीन संस्थानों में विभागीय उत्पादन समितियों की भी स्थापना की जा चुकी थी, अर्थात् (१) टाटा लोहा व इस्पात क०, (२) मोदी बुनाई व कताई मिल्स, तथा (३) इण्डियन ऐलुमिनियम वर्क्स लिमिटेड बेलूर, (पश्चिमी बंगाल)। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी, जमशेदपुर तथा इण्डियन ऐलुमिनियम वर्क्स, बेलूर (पश्चिमी बंगाल) में योजना के विषय में त्रिदलीय दलों द्वारा दो अध्ययनों की रिपोर्ट भी प्रकाशित की जा चुकी है। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के विषय में इन दो संस्थानों में जो प्रगति हुई है उसका उल्लेख इन रिपोर्टों में किया गया है।

सितम्बर १९५८ में केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित एक नोटिका में कहा गया कि श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के सम्बन्ध में जो भी प्रगति हुई वह निराशाजनक थी। मार्च १९६० में श्री गुलजारी लाल नन्दा ने भी कहा कि वह इस योजना की प्रगति से सन्तुष्ट नहीं थे। मार्च १९६० तक ५० में से केवल २३ इकाइयों ने योजना को लागू किया था जिनमें से १५ तो सरकारी क्षेत्र में थीं तथा ८ निजी क्षेत्र में। योजना को लागू करने वाली इकाइयों ने न तो संयुक्त परिषदों की कार्यवाहियों के विषय में कोई ठोस सूचनायें प्रदान की और न ही ऐसे

विशेषज्ञो की नामिका से परामर्श किया जिसको श्रम मन्त्रालय ने इन परिषदो को सहायता देने के लिये नियुक्त किया था। इस मन्द प्रगति का कारण दोनो पक्षो मे सन्देह और भय की भावना थी। श्रमिक सघो मे पारस्परिक प्रतिस्पर्धा थी तथा श्रमिक सघ सगठन मे अनेक दोष थे, जिनका उल्लेख भारतीय श्रमिक सघ आन्दोलन के अध्ययन में किया जा चुका है। श्रमिको के प्रबन्ध म भाग लेने की योजना उस समय तक सफल नही हो सकती जब तक कि शक्तिशाली व सुदृढ श्रमिक सघ न हो जो इस योजना के प्रति सहयोग का दृष्टिकोण अपनाने को तैयार हो। अधिकतर श्रमिक अशिक्षित होते हैं तथा प्रबन्ध मे भाग लेने के विषय पर उनके विचार अस्पष्ट होते है। आधुनिक औद्योगिक सस्थानो मे प्रबन्ध के लिये तकनीकी, प्रशासनात्मक तथा वित्तीय क्षेत्रों मे कुशल ज्ञान की आवश्यकता पडती है जिसका इस समय श्रमिको मे अभाव है। यदि सयुक्त प्रबन्ध परिषदो मे बाहरी व्यक्ति श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं तब स्थिति और भी बुरी होगी क्योकि बाहरी व्यक्ति श्रमिक सघवाद और औद्योगिक सम्बन्धो को तो समझ सकता है परन्तु वह प्रबन्ध तथा उद्योग की समस्याओ को नही समझ सकता। इनको तो कारखाने या सस्थान के अन्दर कार्य करने वाला श्रमिक ही समझ सकता है। मालिको को भी श्रमिको मे पूर्ण विश्वास नही होता और वह उन्हे व्यापार के ऐसे भेद भी नही बताते जिनको ज्ञात किये बिना श्रमिक प्रबन्ध मे प्रभावात्मक रूप मे भाग नही ले सकते। बहुत से मालिक अपने अधिकारो और प्राधिकारो को छोडने के लिये तैयार नही हैं और जहाँ कही भी यह योजनाएँ अपनाई गई हैं वह इस कारण नही कि मालिको को उनमे कोई विशेष रुचि है वरन् कई स्थानों पर श्रमिको को केवल बहकाने के लिये यह योजनायें लागू की गई हैं। कई श्रमिक सघो को इस बात का भी डर रहता है कि यदि श्रमिको ने इस सम्बन्ध मे प्रबन्धकों को सहायता दी तो वह वर्ग-सघर्ष की विचारधारा को समाप्त कर देंगे, जिस विचारधारा मे कई श्रमिक सघ अपना विश्वास रखते हैं। निदेशक मण्डल मे भी श्रमिको के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर कई बार विचार विमर्श हुआ है। परन्तु इस प्रकार का प्रतिनिधित्व सहायक सिद्ध नही होगा। साधारणतः निदेशक मण्डल कोई ऐसे प्रश्नो पर विचार करता है जिसमे श्रमिको के प्रतिनिधियो को विशेष रुचि नहीं होती और वह बैठको मे खामोश देखने वालो की भाँति बैठे रहते हैं। इस बात की भी शिकायत मिली है कि जिन सस्थानों मे यह योजना लागू की गई थी वहाँ सयुक्त परिषदों मे मालिको का ही बोलबाला रहा है तथा इस योजना के कारण श्रमिक शिकायतो को सरकार द्वारा की गई औद्योगिक शान्ति की व्यवस्था के सम्मुख भी नहीं ले जा पाये हैं।

श्री वी० वी० गिरि का कथन है कि यदि अपरिपक्व अवस्था मे श्रमिको को प्रबन्ध मे सम्मिलित किया जायेगा तब "या तो प्रबन्धको द्वारा उन्हे प्रभावपूर्ण रूप से चुप कर दिया जायगा या यदि श्रमिक कठोर प्रवृत्ति के हैं तो प्रबन्धको के प्रति उनका रवैया बाधा पहुँचाने वाला और उग्र प्रवृत्ति का होगा, चाहे उनके इरादे कितने ही अच्छे क्यो न हों।" इनमे से कोई भी स्थिति स्वस्थ प्रबन्ध के हित

में नहीं होगी और उत्पादन पर भी अच्छा प्रभाव नहीं डालेगी। अत श्री गिरि का कहना है कि आवश्यकता तो इस बात की है कि श्रमिकों की समस्याओं पर प्रजातन्त्रात्मक तथा मानवीय रूप से विचार किया जाये।

श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना पर विचार के लिये बनाये गये अध्ययन दल ने दूसरे देशों में योजना के सचालन का भी थोडा सा उल्लेख किया है। श्रमिकों के प्रबन्ध म भाग लेने की व्यवस्था प्रत्येक देश मे भिन्न-भिन्न है। ग्रेट-ब्रिटेन और स्वीडन म श्रमिकों का प्रबन्ध मे भाग सयुक्त सस्थाओ क द्वारा होता है। इन सस्थाओं का परामर्शदात्री स्तर होता है और यह पारस्परिक समझौते द्वारा स्थापित की जाती है जिनके पीछे कोई कानूनी बन्धन नहीं होता। ग्रेट-ब्रिटेन मे सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों मे सयुक्त परामर्शदात्री सस्थायें स्थापित की गई है (देखिये पृष्ठ २६१)। परन्तु वहाँ श्रमिकों मे इस सम्बन्ध में कोई विशेष उत्साह नहीं है क्योंकि वहा श्रमिकों मे उद्योग मे भाग लेने की सक्रिय भावना नहीं पायी जाती। स्वीडन म सयुक्त उद्यम परिषदे है। उनको तुलन पत्र, लाभ तथा हानि के लेखे व प्रशासन और लेखा परिक्षकों की रिपोर्टों की जाँच करने का अधिकार है। बेल्जियम, फ्रास और जर्मनी म प्रबन्ध श्रमिकों के भाग लेने की योजना को वैधानिक मान्यता प्राप्त है। फ्रास जर्मनी मे तो श्रमिकों का प्रतिनिधित्व प्रबन्धक मण्डल मे भी होता है। बेल्जियम मे सयुक्त कार्य परिषदो तथा फ्रास मे मालिक-मजदूर समितियो की स्थापना की गई है।। जर्मनी मे मालिक-मजदूर परिषदे है। दूसरी ओर युगोस्लेविया है जहाँ निर्वाचित परिषद् तथा प्रबन्ध मण्डल के माध्यम म सस्थानों का स्वय श्रमिकों द्वारा सचालित किया जाता है। १९५० मे युगोस्लेविया विधान मण्डल द्वारा एक नियम पारित किया गया (Basic Law on Managements of State Economic Enterprise and Higher Economic Association by the Worker's Collectives), जिसके अन्तर्गत कारखाना, खान, रेलवे तथा अन्य सभी व्यवसायों के प्रबन्ध को श्रमिक परिषदो को सौप दिया गया है, अब केवल यह परिषदें ही उद्योगों की प्रबन्धक है।

इस सम्बन्ध मे विभिन्न देशों मे अनेक अन्य विषयो मे भी भिन्नता पाई जाती है, जैसे—प्रबन्ध मे भाग लेने वाली व्यवस्था द्वारा किन-किन मामलो पर विचार किया जाये, इन मामलो पर किस सीमा तक उनका अधिकार हो तथा किस प्रकार श्रमिकों के प्रतिनिधियो को चुना जाये, आदि। उदाहरणत फ्रास मे मालिक-मजदूर समितियों के कार्य ग्रेट-ब्रिटेन की तरह यद्यपि साधारणत परामर्शदात्री ही है तथापि कल्याण योजनाओं का प्रशासन भी साधारणत इन्ही के द्वारा किया जाता है। श्रमिकों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन अक्सर सभी श्रमिकों द्वारा गुप्त मतदान से किया जाता है परन्तु कुछ देशों मे निर्वाचन श्रमिक सघो द्वारा बनाई हुई उम्मीदवारो की सूची तक ही सीमित होता है। श्रमिक सघो द्वारा मनोनीत किये

जाने के उदाहरण भी मिलते हैं। श्री गुलजारी लाल नन्दा का कहना है कि कुछ यूरोपियन देशों में श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना के सम्बन्ध का उन्होंने जो अध्ययन किया है उससे दो मुख्य निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम तो यह कि प्रबन्धकर्ताओं और श्रमिकों के बीच परामर्श यद्यपि कई प्रकार से होता है तथापि उनकी सफलता के लिये जो एक महत्वपूर्ण तथ्य है वह यह है कि परामर्श उनकी आन्तरिक प्रवृत्ति है। दूसरे, इस ओर कभी प्रयत्न नहीं किया जाता कि संयुक्त परामर्श व्यवस्था की स्थापना द्वारा श्रमिक संघ की स्थापना की जाये।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि हम दूसरे देशों के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं परन्तु हमें यह न भूलना चाहिये कि हमारे देश की परिस्थितियाँ दूसरे देशों से भिन्न हैं। अतः हमें ऐसी योजना बनानी चाहिये जो हमारी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप हो। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के विषय पर चहुँ ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। इस समस्या पर विभिन्न स्तरों पर विचार-विमर्श किया जा रहा है। आगरा में ३१ दिसम्बर १९५८ से २ जनवरी १९५९ तक जो द्वितीय अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र सम्मेलन हुआ था उसमें भी इस विषय पर विचार किया गया था। सम्मेलन की अध्यक्षता श्री वी० वी० गिरि ने की थी। केन्द्रीय रोजगार व श्रम मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री के० एस० सुब्रह्मण्यम श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने वाले विषय के अनुभाग के प्रधान थे। जहाँ तक 'भाग लेने' के ठीक ठीक अर्थ का सम्बन्ध है यह मत व्यक्त किया गया था कि 'भाग लेने' की कोई अनम्य और निश्चित व्याख्या नहीं की जानी चाहिये परन्तु ऐसी व्याख्या नम्य होनी चाहिये। योजना लागू होने की प्रारम्भिक अवस्था में इसका अर्थ केवल परामर्श हो सकता है परन्तु इसके पश्चात् इसको धीरे धीरे श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की उच्चतम सीमा तक पहुँचाया जा सकता है तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को अनेक काम सौंपे जा सकते हैं। संयुक्त परिषदों में बाहर व्यक्तियों, फोरमैन तथा पर्यवेक्षकों की सदस्यता के प्रश्न पर तथा ऐच्छिक आधार पर योजना के लागू करने के पक्ष पर कुछ मतभेद था। अन्य मामलों में सम्मेलन के सदस्य अध्ययन दल की तथा उप समिति की सिफारिशों से लगभग सहमत थे। प्रधान ने अन्त में यह कहा कि इस योजना को पूर्ण सहयोग और सोच-विचार करके तथा उचित प्रकार से लागू करके हमें इसके परिणामों को देखना चाहिये। हमें यह आशा नहीं करनी चाहिये और न ही यह उद्देश्य होना चाहिये कि योजना के परिणाम कोई बहुत बड़े निकलेंगे। यदि इस योजना में सफलता प्राप्त करनी है तो हमें इसको धीरे धीरे चलाना चाहिए और अगला कदम उठाने से पूर्व पहले कदम को ठीक प्रकार से समायोजित कर लेना चाहिए। श्री वी० वी० गिरि ने इस बात पर भी जोर दिया कि श्रमिकों का प्रबन्ध में भाग लेना वास्तविक अर्थों में तब ही सार्थक सिद्ध होगा जब श्रमिक और प्रबन्धक दोनों में यह भावना आ जाए कि उन्हें कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य करना है और अपने अपने उत्तर-

दायित्वों को ठीक-ठीक समझना है। दोनों पक्षों को यह समझना चाहिये कि वह एक ऐसी औद्योगिक प्रणाली में सहभागी हैं, जो समाज को आवश्यक वस्तुयें प्रदान करती है और इसलिए जनता के हितों की रक्षा करना उनका मुख्य कार्य है।

सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के कार्यों से जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे विदित होता है कि प्रबन्ध मे श्रमिकों के भाग लेने के विचार की अधिक स अधिक सराहना की जा रही है। परन्तु इस प्रकार की नई योजना के सम्बन्ध मे यह अवश्यम्भावी है कि आरम्भ की कुछ कठिनाइयो को दूर करने मे तथा आवश्यक प्रारम्भिक बातो को पूरा करने म समय का व्यवधान पड जाये। इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि इस प्रश्न पर व्यापक रूप स फिर से विचार किया जाय तथा इस योजना को विस्तृत रूप स कार्यान्वित करने मे जो कठिनाइयाँ आ रही हैं उन्हे दूर करने के लिय उपाय सोचे जायें। प्रबन्ध मे श्रमिकों के भाग पर द्वितीय समिनार ८ व ६ मार्च १९६० मे हुआ जिसमे सारी स्थिति का पुनरावलोकन किया गया।

इस सेमिनार मे जिन्होंने भाग लिया उन्हे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के कार्य के बारे मे परस्पर अपने अनुभव बताये तथा उन कठिनाइयो का उल्लेख किया जो योजना के प्रारम्भिक चरणों म उनके सामने आई और यह बताया कि उन कठिनाइयो को दूर करने क लिये क्या कदम उठाये गये थ। इस योजना के तीव्र गति स विस्तार करने के लिये समिनार के मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे—(१) केन्द्र मे योजना की प्रगति के लिये जो व्यवस्था है उसे और दृढ किया जाये और इस प्रकार की व्यवस्था राज्यों मे भी की जाये, (१) विभिन्न सस्थानो मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो क कार्यों के बारे मे सूचना एकत्रित करन तथा उसके प्रसार के लिये उपयुक्त व्यवस्था की जाये, (३) केन्द्र मे एक त्रिदलीय की स्थापना की जानी चाहिये जिससे समय-समय पर इस योजना की प्रगति का पुनरावलोकन किया जा सके और परिषदों के मार्ग म आने वाली कठिनाइयों का पता लगा सके तथा उन्हे दूर करने के उपायो का सुझाव दिया जा सक।

केन्द्रीय सरकार न प्रबन्ध म श्रमिकों को भाग लेने की योजना की प्रगति और विस्तार के लिय तथा योजना स सम्बन्धित सब बातो की देखभाल के लिये एक विशेष इकाई की स्थापना व श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय के अन्तर्गत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की। मालिको और श्रमिको के केन्द्रीय सगठनो से यह प्रार्थना की गई कि वह ऐसी उपयुक्त तथा अपने स सम्बद्ध इकाइयो के नामो का सुझाव दें जहाँ सयुक्त प्रबन्ध परिषदें बनाई जा सकती है। ऐसी इकाइयो के चुनने मे जहाँ यह योजना लागू हो सकती है राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की भी सहायता ली गई। राज्य सरकारों से भी इस योजना के लागू करन और विस्तार करने म सम्बन्धित बातो की देखभाल के लिये उपयुक्त व्यवस्था करन के लिये कहा गया। गुजरात और जम्मू तथा कश्मीर को छोडकर अब सभी राज्यो मे ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की वृद्धि की जा सके और योजना के

कार्य की समीक्षा की जा सके। यह भी प्रस्ताव किया गया कि सरकारी क्षत्र के
उद्यमो मे योजना को तेजी से लागू किया जाये। १९६१ मे प्रबन्ध, मे श्रमिको के
भाग से सम्बन्धित एक त्रिदलीय समिति की भी स्थापना की गई। १९६५ में इस
समिति का पुनर्गठन किया गया। समिति द्वारा यह सिफारिश की गई कि योजना
के और अधिक व्यापक प्रचार, स्वीकृति एव क्रियान्वयन के लिये कुछ विशेष पग
उठाये जाने चाहियें।

१५ जनवरी १९६२ म विभिन्न म त्रालयो की एक समिति की बैठक हुई,
जिसमे इस योजना की सरकारी क्षत्र मे प्रगति के ऊपर विचार किया गया। इस
समिति की सिफारिशो के परिणामस्वरूप श्रमिक शिक्षा के केन्द्रीय बोर्ड ने दो सेमि-
नार गोष्ठी) आयोजित किये जिनमे से एक मार्च १९६२ मे कलकत्ते मे किया गया
तथा दूसरा जून १९६२ मे बम्बई मे हुआ। इन सेमिनारो का मुख्य उद्देश्य यह था
कि मालिको और श्रमिको को सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की तकनीक तथा सिद्धान्त से
अवगत कराया जाये। सेमिनार मे भाग लेने वालो ने अनेक बातो पर बल दिया
जिनमे से मुख्यत यह कि प्रबन्धको और श्रमिको मे गहन सम्पर्क होना चाहिये तथा
सयुक्त परामर्श जहाँ तक हो सकता है, इसकी महत्ता श्रमिको व प्रबन्धको दोनो को
उचित प्रचार से समझानी चाहिये। सन् १९६५ मे निजी क्षेत्र मे एक उद्यम के
प्रबन्धको ने भी प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग पर एक सेमिनार का आयोजन किया।
श्रमिको की शिक्षा से सम्बन्धित केन्द्रीय बोर्ड ने फिर दो क्षत्रीय सेमिनारो का आयो-
जन किया—एक तो जून १९६६ मे जलपाईगुडी मे और दूसरी सितम्बर १९६६ मे
चण्डीगढ मे। इन सेमिनारो का उद्देश्य मालिको एव श्रमिको को सयुक्त प्रबन्ध परि-
प ो की विचारधारा एव क्रियाविधि से परिचित कराना था।

स्वतन्त्र श्रमिक सघो के अन्तर्राष्ट्रीय सगम के द्वारा स्थापित एशियाई
श्रमिक सघ कॉलिज द्वारा १४ अप्रैल १९६३ से २३ अप्रैल १९६३ तक नई देहली
मे श्रमिको के प्रबन्ध मे भाग लेने पर एक एशियाई गोष्ठी आयोजित की गई। इस
गोष्ठी मे ११ एशियाई देशो के, जिनमे भारत भी था, ३१ व्यक्तियो ने भाग लिया।
श्री गुलजारीलाल नन्दा ने इस गोष्ठी का उद्घाटन करते हुये कहा कि श्रमिको के
प्रबन्ध मे भाग लेने के अभियान पर विशेष बल दिया जाना चाहिये ताकि ससक्ति
(Cohesive), सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था स्थापित हो सके। श्री
नन्दा ने कहा कि केवल एक या दो श्रमिको का ही प्रबन्ध मे भाग लेना काफी नही
है अधिक से अधिक श्रमिको को इसमे भाग लेना चाहिये ताकि श्रमिक अपना सघ-
वाद का सिद्धान्त भी बनाये रखे। योजना को सफलतापूर्वक लागू करने म दो मुख्य
बाधाये यह थी कि मालिको मे अन्तरजातीय रूढिवाद पाया जाता था तथा अच्छे
औद्योगिक सम्बन्धो का अभाव था। जो लोग भी निजी क्षेत्र मे कार्य करते हैं उन्ह
अपने विचारो को बदलना होगा तथा प्रजातान्त्रिक समाजवाद के नये तथा बढते
हुये विचार मे अपने आपको ढालना होगा। इनमे से अनेक ने अपने विचारो को

अन्य देशों से लिया है। परन्तु भारत की परिस्थितियों को देखते हुए दूसरे देशों की विचारधारा भारत में लागू नहीं हो सकती। सेमिनार में इस बात पर बल दिया गया कि योजना को सफलतापूर्वक चलाने के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिकों में शिक्षा का उचित स्तर हो, व श्रमिक संघवाद की ओर अधिक सचेत हों, श्रमिकों और प्रबन्ध कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण मिला हो तथा उनमें योजना के प्रति उचित दृष्टिकोण हो।

१९७३–७४ में ८० संयुक्त प्रबन्ध परिषद कार्य कर रही थी। इनमें से ३१ सरकारी क्षेत्र में और ४९ निजी क्षेत्र में थी। विभिन्न वर्षों में इन परिषदों की संख्या इस प्रकार थी—१९५८—२३, १९५९—४२, १९६०—२८, १९६१—२०, १९६२—३४, १९६३—४३, १९६४—८१, १९६५—९०, १९६६—१४७, १९६७—१३१, १९६८—८६, १९६९—८४, १९७०—८२, १९७१—८०, १९७२—८०, १९७३—८० और १९७४ में भी ८० (३१ सार्वजनिक क्षेत्र में और ४९ निजी क्षेत्र में)। अनेक परिषदें विभिन्न इकाइयों में चालू करने के पश्चात् अनेक कठिनाइयों के कारण समाप्त कर दी गई थी। स्टेट बैंक आफ इण्डिया ने भी अपने अनेक स्थानीय प्रधान कार्यालयों में सात मण्डलीय सलाहकार समितियाँ और एक केन्द्रीय सलाहकार समिति की स्थापना की है।

संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्य का मूल्यांकन करने के लिये १९६१–६२ में २३ इकाइयों से तथा १९६२–६३ में ७ इकाइयों में अध्ययन किये गये। ३० इकाइयों के मूल्यांकन अध्ययन प्रकाशित भी किये गये। सन् १९६५ में २१ उपक्रमों में संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्य का नवीन रूप में मूल्यांकन किया गया था। मूल्यांकन के इन अध्ययनों पर आधारित रिपोर्ट तैयार कर ली गई थी। इन अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश इकाइयों में संयुक्त प्रबन्ध परिषदों ने सफलतापूर्वक कार्य किया तथा इनके कारण औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे हुये, श्रमिक अधिक स्थायी हो गये, उत्पादकता में वृद्धि हुई, अपव्यय कम हुआ, लाभ अधिक हुए तथा प्रबन्धकों व श्रमिकों में परस्पर मैत्री-भाव बढ़ा तथा वे एक दूसरे के दृष्टिकोण को भी अधिक समझने लगे थे। परन्तु विश्वविद्यालयों के कुछ रिसर्च स्कालर्स के अध्ययनों से ज्ञात होता है कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों द्वारा कोई विशेष सफलतापूर्वक कार्य नहीं हुआ जिसका कारण यह था कि मालिकों व श्रमिकों में परस्पर अविश्वास की भावना फैली हुई थी और विभिन्न श्रमिक संघों में आपस में द्वेष था। इन बातों से यह विदित होता है कि इस योजना के सम्बन्ध में एक व्यापक तथा निष्पक्ष अध्ययन की आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि योजना की सफलता में जो भी रुकावटें आई हैं उन्हें दूर करने के लिये निरन्तर प्रयत्न करने चाहियें। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में यह सुझाव था कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों का नई इकाइयों में विस्तार किया जाना चाहिये तथा यह परिषदें वर्तमान औद्योगिक प्रणाली का एक सामान्य अंग बन

जाना चाहिये। आयोजना के अनुसार श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके विकास से निजी क्षेत्र एक समाजवादी व्यवस्था के ढाँचे में अपने आपको सरलतापूर्वक ढाल सकेगा।

राष्ट्रीय श्रम आयोग, जिसने कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों की कार्यप्रणाली की जाँच की थी, इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि संयुक्त प्रबन्धक परिषदों का जो रूप अब है उसमें उनकी स्थापना का समर्थन नहीं किया जा सकता। जहाँ ये परिषदें कार्य कर रही थीं, प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार अनेक मामलों में उनका कोई प्रभाव नहीं था तथा उनकी कार्यप्रणाली असन्तोषजनक थी। अतः आयोग का विचार था कि श्रमिक संघों को मान्यता देने की प्रणाली जब सर्वस्वीकृत होकर प्रयोग में आने लगेगी तब प्रबन्धक एवं श्रमिक संघ पारस्परिक लाभ के मामलों में सहयोग करने को तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषद की स्थापना करने को स्वयं ही इच्छुक हो जायेंगे। इस बीच, यह भी हो सकता है कि किसी इकाई के प्रबन्धक तथा मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ, यदि इच्छुक हों तो, परस्पर सहमति से मालिक-मजदूर समितियों के क्षेत्र तथा अधिकारों में वृद्धि कर दें ताकि अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में विचार-विमर्श एवं सहयोग से कार्य सम्पन्न हो सकें। इस स्थिति में, परिषदों व इस समितियों के कार्यों का सम्मिलन किया जा सकता है।

आयोग के चार सदस्यों—श्री एस० आर० वासवदा, श्री जी० रामानुजम, श्री आर० के० मालवीय तथा श्री रामन्द दास—ने असहमति की अपनी एक महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय टिप्पणी में इस सिफारिश में असहमति प्रकट की और यह कहा कि मालिक-मजदूर समिति (Works Committee) तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषद (Joint Management Council) के कार्य पूर्णतया भिन्न हैं और उन्हें एक साथ नहीं मिलाया जा सकता है। मालिक-मजदूर समिति जहाँ वैधानिक दृष्टि से आवश्यक होती है और उसका कार्य दिन-प्रतिदिन उत्पन्न होने वाली छोटी-छोटी समस्याओं के समाधान तक ही सीमित रहता है, वहाँ संयुक्त प्रबन्ध परिषद एक ऐच्छिक व्यवस्था है और इसके कार्यों का स्तर ऊँचा, क्षेत्र व्यापक तथा लक्ष्य ऊँचे होते हैं जो मालिक-मजदूर समिति की पहुँच से बाहर होते हैं। इन सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया कि संयुक्त प्रबन्ध परिषद एक और द्विपक्षीय समिति हो, ऐसी बात नहीं है, अपितु यह एक ऐसी सजीव एजेन्सी है, जो महात्मा गाँधी के दर्शन-सिद्धान्त पर आधारित है। उन्होंने महात्मा गाँधी के इन विचारों का उल्लेख किया कि मालिक और मजदूर किसी भी व्यवसाय के समान भागीदार होते हैं और प्रत्येक भागीदार को दूसरे भागीदार के ट्रस्टी के रूप में कार्य करना चाहिए। श्रम तथा पूँजी, किसी भी व्यवसाय के सह-भागीदार होते हैं और मिलकर समाज की सेवा करते हैं। अतः असहमति व्यक्त करने वाले सदस्यों ने कहा कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है और वे न केवल औद्योगिक शान्ति की ही

स्थापना करती है, अपितु श्रमिक, उद्योग तथा राष्ट्र की समृद्धि को बढाने में बड़ी सहायक होती हैं। अतः इस योजना को उत्साह के साथ सही रूप में लागू किया जाना चाहिए।

श्रमिकों की भागीदारी की नई योजना
(New Scheme of Workers' Participation)

प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने १ जुलाई १६७५ को जिस २० सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा की थी, उसका एक बिन्दु उद्योगों में, विशेष कर दुकान क्षेत्र स्तर पर तथा उत्पादन संयंत्रों में, श्रमिकों की भागीदारी की योजनाओं को लागू करने के सम्बन्ध में था। सरकार ने इस मामले पर बड़ी सावधानी से विचार किया तथा इस हेतु एक योजना की रूपरेखा बनाई जो कि निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ में, योजना को लचकीला रखा जायगा ताकि स्थलीय परिस्थितियों के अनुसार उसमें हेर-फेर किया जा सके। कुछ उद्योगों को, विशेषतः सरकारी क्षेत्र के उद्योगों की कुछ इकाइयों में श्रमिकों की भागीदारी अपने विविध रूपों में पहले से ही प्रचलित है। अतः सरकार का यह मत है कि यह मामला प्रबन्धकों की पहल के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक इकाई की प्रकृति के अनुसार श्रमिकों की भागीदारी का उपयुक्त प्रारूप तैयार हो सके। विधान तब बनाया जायेगा जब इस सम्बन्ध में काफी अनुभव प्राप्त हो जायेगा।

विस्तार-क्षेत्र (Coverage)

यह योजना अपने प्रथम चरण में विनिर्माण तथा खान उद्योगों में लागू की जायेगी, भले ही ये उद्योग सरकारी क्षेत्र में हो, गैर-सरकारी क्षेत्र में हो अथवा सहकारी क्षेत्र में हो। इन उद्योगों में वे इकाइयाँ भी सम्मिलित की जायेंगी जो विभागीय रूप में संचालित की जा रही हैं, भले ही उन इकाइयों में स्थापित संयुक्त सलाहकार व्यवस्था कार्य कर रही हो अथवा नहीं। वर्तमान में यह योजना इन उद्योगों की केवल उन इकाइयों में लागू होगी जिनमें ५०० या इससे अधिक श्रमिकों के नाम दर्ज हैं। योजना में दुकान या विभागीय स्तरों पर दुकान या श्रमालय परिषदों (Shop councils) की तथा उच्चस्तर पर संयुक्त परिषदों (joint councils) की व्यवस्था की गई है।

श्रमालय परिषदें (Shop Councils)

श्रमालय परिषदों के माध्यम से प्रबन्ध में भागीदारी की योजना की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है—

(१) प्रत्येक ऐसी औद्योगिक इकाई में, जिसमें ५०० या इनसे अधिक कर्मचारी काम करते हों, मालिक प्रत्येक विभाग या दुकान के लिए एक दुकान परिषद या श्रमालय परिषद की अथवा एक से अधिक विभाग या दुकान के लिए एक परिषद का गठन करेगा। ऐसा करते समय विभिन्न विभागों या दुकानों में काम कर रहे कर्मचारियों की संख्या का भी ध्यान रखा जायेगा।

(२) (क) प्रत्येक परिषद में मालिकों तथा श्रमिकों के समान संख्या में प्रतिनिधि होंगे। (ख) मालिकों के प्रतिनिधि प्रबन्धमण्डल द्वारा मनोनीत किये जायेंगे तथा इसमें सम्बन्धित इकाई से लिये गये व्यक्ति सम्मिलित होंगे। (ग) श्रमिकों के सभी प्रतिनिधि उन श्रमिकों में से लिये जायेंगे जो सम्बन्धित विभाग या दुकान में काम कर रहे होंगे।

(३) मालिक (employer) इस बात का निश्चय करेंगे कि कितनी श्रमालय परिषदें स्थापित की जाएँ तथा उद्यम या संस्थान की प्रत्येक परिषद से कितने विभाग सम्बद्ध किए जाएँ। मालिक यह निश्चय यथास्थिति, मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ या विभिन्न पंजीकृत श्रमिक संघों अथवा श्रमिकों के साथ परामर्श करके करेंगे और यह परामर्श उस विधि से किया जायेगा जो स्थानीय परिस्थितियों की दृष्टि से सर्वोपयुक्त होगा।

(४) इसी प्रकार मालिक प्रत्येक परिषद के सदस्यों की संख्या का निर्धारण भी मान्यता प्राप्त श्रमिक संघ, पंजीकृत श्रमिक संघों या श्रमिकों से परामर्श से तथा उस विधि से करेंगे जो इकाई की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार सर्वोत्तम हो। परिषद के कुल सदस्यों की संख्या सामान्यतः १२ से अधिक नहीं होगी।

(५) श्रमालय परिषद के सभी निर्णय एकमत अथवा सर्वसम्मत रूप से किये जायेंगे, मतदान प्रक्रिया द्वारा नहीं। किन्तु यदि कोई मसला एकमत से तय न हो तो उसे कोई भी पक्ष विचार के लिए संयुक्त परिषद को सौंप सकता है।

(६) श्रमालय परिषद का प्रत्येक निर्णय सम्बन्धित पक्षों द्वारा एक माह की अवधि में अथवा निर्णय में उल्लिखित अवधि में लागू कर दिया जायेगा और उसकी अनुपालन आख्या (Compliance report) परिषद के समक्ष प्रस्तुत की जायगी।

(७) श्रमालय परिषद के ऐसे निर्णय, जिनका प्रभाव अन्य श्रमालय या दुकान या उद्यम अथवा संस्थान पर पड़ता हो, विचार और निर्णय के लिए संयुक्त परिषद (joint council) को सौंप दिए जायेंगे।

(८) श्रमालय परिषद एक बार बनने के बाद, दो वर्ष की अवधि तक कार्य करेगी। परिषद के किसी आकस्मिक रिक्त स्थान को भरने के लिए मध्यावधि में चुना गया अथवा मनोनीत किया गया कोई भी सदस्य परिषद की शेष बची अवधि के लिए परिषद का सदस्य रहेगा।

(९) परिषद की बैठक माह में कम से कम एक बार अथवा जब भी आवश्यक हो, अवश्य होगी।

(१०) श्रमालय परिषद का अध्यक्ष (chairman) प्रबन्धमण्डल द्वारा नामजद व्यक्ति होगा और परिषद के श्रमिक सदस्य अपने में से ही एक उपाध्यक्ष का चुनाव करेंगे।

आवश्यकताओं के अनुसार व्यवस्था की विभिन्न प्रणालियाँ अपनाते रहे हैं। इस विभिन्नता को दृष्टिगत रखकर ही श्रमालय परिषदों तथा संयुक्त परिषदों के गठन के लिए कोई एक समान ढाँचा प्रस्तावित नहीं किया गया है, विशेष रूप से श्रमिकों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में। प्रबन्धमण्डल को चाहिए कि वह श्रमिकों से परामर्श करके श्रमिकों के प्रतिनिधित्व का सर्वाधिक उपयुक्त स्वरूप स्वयं ही निश्चय कर लें। इससे ही श्रमिकों की प्रभावपूर्ण, सार्थक एवं व्यापक भागीदारी सम्भव हो सकेगी।

संचार व्यवस्था (Communication)

प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की किसी भी योजना की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रबन्धमण्डल एवं श्रमिक-वर्ग के बीच प्रभावपूर्ण द्विपक्षीय संचार अथवा विचारों के आदान-प्रदान की व्यवस्था हो। ऐसा होने पर ही श्रमिक उद्यम की समस्याओं एवं कठिनाइयों को तथा उसकी सम्पूर्ण कार्यप्रणाली को अधिक अच्छी प्रकार समझ सकेंगे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक इकाई को उत्तम विचारों के आदान-प्रदान की कोई उपयुक्त व्यवस्था अवश्य अपनानी चाहिए।

मालिक-मजदूर समिति
(Works Committee)

मालिक-मजदूर समितियाँ वर्तमान में भी उसी प्रकार अपना कार्य करती रहेंगी जैसा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत प्रस्तावित किया गया है।

समुचित सरकार (Appropriate Government)

यह योजना चूँकि सरकारी नहीं है अतः 'समुचित सरकार' की धारणा, जैसा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम में उल्लिखित किया गया है, असम्बद्ध सी ही लगती है। किन्तु केन्द्र तथा राज्य सरकारें अधिकाधिक इकाइयों में योजना के स्वस्थ एवं तीव्र क्रियान्वयन के लिए महत्वपूर्ण योगदान करती हैं। केन्द्र सरकार के ही सरकारी विभागों तथा विभागीय इकाइयों में, योजना को लागू करने की पहल यद्यपि सम्बन्धित उद्यम पर ही निर्भर है, किन्तु योजना के संचालन से सम्बन्धित सभी मामलों का निपटारा केन्द्र सरकार ही करेगी।

सरकार जानती है कि किसी भी औद्योगिक इकाई में श्रमिकों की लगाव, उनका प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य-सम्पादन तथा उत्पादन तथा उत्पादिता में सुधार तभी सम्भव हो सकता है जबकि प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी की कोई उपयुक्त व्यवस्था लागू हो, विशेष रूप से श्रमालय तथा इकाई स्तर पर। अतः सरकार सभी प्रबन्ध-मण्डलों, श्रमिकों तथा सम्बन्धित श्रमिक संघों से अपील करती है कि वे अपनी इकाइयों में इस योजना को शीघ्रातिशीघ्र लागू करने के लिए तथा इसके सतत एवं स्वस्थ संचालन के लिए तीव्र एवं प्रभावी पग उठायें।

मई १९७७ मे हुए त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशो के सन्दर्भ मे, सरकार ने सितम्बर १९७७ मे प्रबन्ध तथा न्याय मे श्रमिको की भागीदारी पर एक समिति की स्थापना की थी। समिति को प्रबन्ध मे श्रमिकों की भागीदारी से सम्बन्धित सभी मामलो का गहराई से अध्ययन करके एक विस्तृत योजना की रूपरेखा प्रस्तुत करनी थी। कुछ अध्ययनो से यही ज्ञात हुआ कि नई योजना मे भी वही कमियाँ थी जो कि उसमे पहली १९५८ की योजना मे थी, यद्यपि नई योजना बड़े उत्साह से लागू की गई थी। यह योजना निजी क्षेत्र की १४० इकाइयो मे तथा राज्यो एव सघ शासित क्षेत्रों की २०० सरकारी इकाइयो मे तुरन्त लागू कर दी गई थी। कुछ राज्य सरकारो ने २०० श्रमिको तक वाले सस्थानो पर भी इसे लागू कर दिया था। जनवरी १९७७ मे यह योजना सरकारी क्षेत्र के उन वाणिज्य एव सेवा सगठनो मे भी लागू कर दी गई जो बड़े पैमाने पर सार्वजनिक निपटान करते थे तथा जिनमे कम से कम १०० व्यक्ति काम करते थे। समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि अधिकाश सदस्यो ने भागीदारी की त्रिस्तरीय व्यवस्था (अर्थात् निगम स्तर सयन्त्र स्तर और श्रमालय स्तर) के लागू किये जाने का समर्थन किया। समिति ने विभिन्न स्तरो पर परिषदो के विस्तृत कार्यों का निर्धारण किया और यह सुझाव दिया कि भागीदारी मचो के लिए श्रमिको के प्रतिनिधि गुप्त मतदान द्वारा चुने जाने चाहिए। समिति ने यह भी सिफारिश दी कि समान भागीदारी की बात निजी क्षेत्र के सस्थानो तक ही सीमित रहनी चाहिए। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर एक ऐसा सगठन बनाया जाना चाहिए जो इस योजना को लागू करे तथा इसके कार्य की समीक्षा करे। समिति की सिफारिशे सरकार के विचाराधीन है।

केन्द्र सरकार ने सरकारी क्षेत्र के कुछ उद्यमो की प्रबन्ध परिषदो मे श्रमिको के प्रतिनिधियो की नियुक्ति की एक योजना परीक्षण के तौर पर लागू की है। प्रारम्भ मे, यह हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स लिमिटेड टिप्पणी मे तथा राष्ट्रीयकृत बैंको मे लागू की गई है।

केन्द्रीय श्रम तथा नियोजन मन्त्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने अभी विगत फरवरी १९८० मे राज्य सभा मे जब यह बताया कि सरकार एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति का निर्धारण करने मे लगी है, तब यह भी घोषित किया कि सरकार प्रबन्ध मे श्रमिको की भागीदारी पर एक विधान बनाने पर सक्रिय रूप से विचार कर रही है।

औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव (नवम्बर १९६२)]

(Industrial Truce Resolution (Nov 1962)]

(पृष्ठ १८५ व २२८ के सन्दर्भ मे)

अक्तूबर १९६२ मे चीन के आक्रमण के पश्चात् राष्ट्रीय सुरक्षा तथा उत्पादन बढाने के कार्य बहुत महत्वपूर्ण हो गया। देश के सभी लोगो ने एकमत

होकर देश की रक्षा के लिये संकल्प किये। श्रमिक तथा मालिक भी राष्ट्रीय संकट काल में पीछे नहीं रहे। मालिकों व श्रमिकों के केन्द्रीय संगठनों की ३ नवम्बर १९६२ में केन्द्रीय श्रम व रोजगार मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा की अध्यक्षता में नई देहली में एक बैठक हुई। बैठक का आयोजन इसलिये किया गया था ताकि देश के प्रतिरक्षा-प्रयत्नों में वृद्धि करने के लिये अधिक से अधिक उत्पादन किया जाय। इस बैठक में एक व्यापक औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव में औद्योगिक शान्ति, उत्पादन-वृद्धि, मूल्य-स्थिरता तथा बचतों की वृद्धि के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव के उस भाग को लागू करने के सम्बन्ध में, जिसमें कि उत्पादन-वृद्धि के उपायों का उल्लेख किया गया है, सरकार को परामर्श देने के लिये छः सदस्यों की एक समिति भी बनाई गई थी।

यह विराम-सन्धि प्रस्ताव ५ भागों में विभाजित है। आरम्भ में इस बात का संकल्प किया गया है कि देश की सुरक्षा के प्रयत्नों में तथा अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाने में पूर्णरूप से प्रयत्न किये जायेंगे। प्रस्ताव में मालिक और श्रमिक दोनों के द्वारा ही इस बात का संकल्प है कि उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उपयुक्त वातावरण बनाया जायगा तथा उसे कायम रखा जायगा। देश की सुरक्षा के लिये दोनों पक्ष संयम और सहिष्णुता बरतेंगे। दूसरे, प्रस्ताव में औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिये संकल्प है ताकि उत्पादन में कोई बाधा न हो। दोनों पक्ष समान रूप से त्याग करेंगे, विवादों का पंच फैसले से निपटारा करेंगे, सार्वजनिक उपयोग सेवाओं की संख्या में वृद्धि होगी, बर्खास्तगी, अलहदगी, अत्याचार आदि की शिकायतें कम की जायेंगी तथा सरकारी औद्योगिक विवादों के निपटारे की व्यवस्था का पूर्ण रूप से उपयोग होगा। तीसरे, प्रस्ताव में उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया गया। मनुष्य, मशीनरी तथा सामान के उपयोग में सभी बाधाओं को दूर किया जायेगा, अधिक पारियों में कार्य किया जायेगा, अनुपस्थिति व श्रमिकावर्त को कम किया जायगा, तकनीकी कर्मचारियों से पूरा लाभ उठाया जायेगा तथा मजदूर और श्रमिकों के कल्याण तथा स्वास्थ्य के कार्यों की उपेक्षा नहीं की जायेगी। चौथे प्रस्ताव में कहा गया कि इन बातों के प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किये जायेंगे कि कीमतें न बढ़ें, आवश्यक वस्तुयें उचित कीमतों पर मिलती रहें और उपभोक्ता सहकारी समितियाँ बनाई जायें। पाँचवें, प्रस्ताव में बचत की आवश्यकता पर बल दिया गया ताकि सम्बन्धित पक्ष राष्ट्रीय सुरक्षा निधि तथा सुरक्षा बाण्डों में अधिक से अधिक अंशदान दे सकें।

औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव विस्तृत रूप से निम्नलिखित है—

"यह अनुभव करते हुये कि चीनी आक्रमण के कारण राष्ट्र पर भयानक संकट आ गया है तथा देश की रक्षा-व्यवस्था को समुचित रूप से तैयार करने और

अपने क्षेत्र पर हुये आक्रमण को खत्म करने के लिये सभी दिशाओ मे तुरन्त कदम उठाये जाने की जरूरत उठ खडी हुई है, आज ३ नवम्बर १९६२ को नई दिल्ली मे हुई केन्द्रीय मालिक और मजदूर सगठनो की सयुक्त बैठक यह प्रस्ताव स्वीकार करती है कि उत्पादन अधिकतम करने के लिये कोई भी प्रयत्न बाकी न छोडा जायेगा और देश के रक्षा-प्रयत्नो को बढाने के लिये प्रबन्धक वर्ग और मजदूर वर्ग, दोनो मिलकर भरपूर मेहनत करेगे और यह बैठक राष्ट्र के प्रति उनकी असीम निष्ठा और आस्था के प्रण की पुष्टि करती है।' इन लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित कदम उठाये जायेगे—

१ वातावरण (Climate)

उपर्युक्त उद्देश्य प्राप्ति करने के लिये निरन्तर प्रयत्न और दृढ कार्यवाही के लिये उपयुक्त वातावरण बनाना और उसे कायम रखना बहुत जरूरी है। दोनो पक्षो को सयम और सहिष्णुता बरतनी चाहिये ताकि देश की रक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाने के सगठित प्रयत्नो मे कोई बाधा न आये। प्रबन्धक वर्ग और मजदूर वर्ग मे हर सम्भव तरीके से परस्पर रचनात्मक सहयोग बढाने के लिय कारगर कदम उठाये जाने चाहिये।

२ औद्योगिक शान्ति (Industrial Peace)

(क) किसी भी हालत मे माल के उत्पादन और सेवाओ मे न ही कोई बाधा पडेगी और न गति धीमी की जायेगी। (ख) मालिक और मजदूर, दोनो अपने आर्थिक हितो के मामले म स्वेच्छा से सयम अपनायेंगे और राष्ट्र के हित तथा उसके रक्षा-प्रयत्नो को ध्यान मे रखते हुये बराबर ढग से अधिकतम त्याग करना मन्जूर करते हैं। (ग) झगडो का ऐच्छिक विवाचन से निपटारा करने का तरीका अधिक से अधिक अपनाया जायेगा। इस कार्य के आवश्यक पर्याप्त इन्तजाम किये जाने चाहियें। यदि किसी मामले को विवाचन निर्णय के लिये सौपने की जरूरत उठ ही जाये तो उससे सम्बन्धित कार्यविधि जल्दी से जल्दी पूरी की जानी चाहिये। (घ) औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ की पहली अनुसूची मे उल्लिखित उद्योग और ऐसे अन्य उद्योग जो जरूरी समझे जायें, जैसे—पैट्रोलियम और उसके पदार्थ, रसायन पदार्थ आदि, उक्त अधिनियम के अनुभाग २ के अनुच्छेद (एन) के उप अनुच्छेद (४) के अन्तर्गत सार्वजनिक उपयोग की सेवायें घोषित की जा सकती है। (ङ) व्यक्तिगत मजदूरो को बर्खास्त करने, काम से हटाने, उन्हे सताने या उनकी छटनी से सम्बन्धित सभी शिकायतो का निपटारा आपस मे पच फैसले से किया जाना चाहिए। इस काम के लिये सुलह सफाई कराने वाली व्यवस्था के अधिकारियो को यदि सम्बन्धित पक्ष राजी हो तो, पच बनाया जा सकता है। जहाँ तक सम्भव हो सके मजदूरो को बर्खास्त करने या काम से हटाने के कदम नही उठाये जाने चाहियें। केन्द्र और राज्यो के श्रम-प्रशासनो को इस तरह व्यवस्थित किया जाना चाहिये कि शिकायतो

और विवादों का निपटारा जल्दी हो और मालिक-मजदूरों के बीच सम्बन्ध अच्छे बने रहें।

उत्पादन (Production)

(क) मनुष्य, मशीनरी और सामग्री के बेहतर और पूर्णतर उपयोग के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर किया जाना चाहिये। कोई भी मशीन अपनी निश्चित क्षमता से कम काम न करे और न ही किसी प्रकार का अपव्यय हो। प्रबन्धक वर्ग को उनके सचालन में अधिक से अधिक किफायत बरतनी चाहिये। (ख) उत्पादन को अधिक से अधिक बढाना चाहिये। कारखानों और प्रतिष्ठानों को जहाँ तक सम्भव हो उपयुक्त पारियों में काम करना चाहिये। निर्धारित समय से ज्यादा काम करना चाहिये और परस्पर सहमति से इतवारों व अन्य छुट्टियों को काम करना चाहिये। इस सम्बन्ध में सभी का पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिये। मजदूरों द्वारा अधिक मेहनत करने के फलस्वरूप उद्योग को जो लाभ मिले, वह उपभोक्ताओं को जाना चाहिये और/अथवा रक्षा-प्रयत्नों के लिये उपलब्ध किया जाना चाहिये। (ग) अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त को निरुत्साहित किया जाना चाहिये और उनको बिल्कुल कम कर देना चाहिये। अपने काम की उपेक्षा करने, मशीनों को लापरवाही से चलाने, सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने और सामान्य काम में गड़बड़ी पैदा करने या बाधा डालने की क्रियाओं की सभी द्वारा निन्दा की जानी चाहिये। इसी तरह यदि प्रबन्धक वर्ग की ओर से कोई लापरवाही और कमी हो, जिससे रक्षा-प्रयत्नों की भावना के अनुरूप काम न होता हो तो उसकी भी निन्दा की जानी चाहिये और उसको तुरन्त ठीक किया जाना चाहिये। (घ) ऐसे तकनीकी और दक्ष कर्मचारियों को जिनकी पूर्ति कम हो, ऐसे जरूरी कामों पर भेजना चाहिये जिनका रक्षा से सम्बन्ध हो। साथ ही शिक्षुता और अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा तकनीकी और दक्ष कर्मचारियों की पूर्ति बढाने के लिये उचित कदम उठाये जाने चाहियें (ट) उत्पादन बढाने के अभियान के सिलसिले में मजदूर वर्ग के कल्याण और स्वास्थ्य के काम की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये।

४. कीमतों की स्थिरता (Price Stability)

(क) इस बात का हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिये कि औद्योगिक माल और आवश्यक चीजों की कीमतें बढने न पायें। (ख) मजदूर वर्ग को आवश्यक चीजें उचित कीमतों पर मिलती रहें, इनका इन्तजाम करने के लिये जब भी जरूरी हो, हरेक इकाई और औद्योगिक क्षेत्रों में उपभोक्ता सहकारी समितियाँ बनाई जानी चाहियें।

५ बचत (Savings)

(क) मजदूर वर्ग और प्रबन्धक वर्ग, दोनों को ही यह बात अच्छी तरह समझाई जानी चाहिये कि देश के हित में बचतों को बढाना बहुत जरूरी है और

इस तरह के इन्तजाम किये जाने चाहियें, जिससे अधिक से अधिक बचत करने मे सुविधा हो। (ख) मजदूरो को यह कहा जा सकता है कि उन्हे राष्ट्रीय रक्षा कोष मे और/या रक्षा बॉण्डो मे हर महीने कम से कम १ दिन की कमाई की रकम देनी या लगानी चाहिये। प्रबन्धक वर्ग भी इस बात से सहमत है कि राष्ट्रीय रक्षा कोष मे वे उदारता से धन देंगे और रक्षा बॉण्डो मे उदारता से रुपया लगायेंगे। इन दोनो मे रुपया लगाने के आधार क्या होंगे, यह सरकार से सलाह-मशवरा करके तय किया जायेगा।

इस विराम सन्धि प्रस्ताव के पारित होने के पश्चात् औद्योगिक विवादो के कारण हानि हुये कार्य दिवसो की औसत सख्या मे बहुत कमी हो गई। यह औसत सख्या जनवरी से अक्तूबर १९६२ तक ४७ लाख थी। नवम्बर १९६२ मे यह सख्या ७०,००० और दिसम्बर १९६२ मे यह सख्या केवल १९,००० थी। १९६२ मे विवादो के कारण हानि हुए कार्य दिवसो की सख्या ६१ लाख थी। १९६३ मे यह सख्या ३३ लाख रह गई। अनेक स्थानो पर श्रमिको ने छुट्टी के दिनो मे तथा अधिक घण्टो तक भी कार्य किया। कई स्थानो पर विवादो को वापिस ले लिया गया। राष्ट्रीय सुरक्षा कोष मे भी श्रमिको का अशदान उत्साहवर्धक था। प्रस्ताव मे उल्लिखित उत्पादन-वृद्धि सम्बन्धी उपायो को लागू करने के लिये केन्द्र मे एक सकटकालीन उत्पादन समिति श्री एम० एस० थैकर, सदस्य आयोजना आयोग की अध्यक्षता मे स्थापित की गई। उत्पादन तथा उत्पादकता म वृद्धि करने के लिये ऐसी समितियाँ राज्यो तथा कुछ व्यक्तिगत सस्थानो मे भी स्थापित की गई।

परन्तु प्रस्ताव को लागू न करने की भी शिकायतें आई। विभिन्न वर्गों मे प्रस्ताव के उल्लघन के आँकड़े अनुशासन सहिता के अन्तर्गत पीछे दिये जा चुके हैं। यह भी कहा गया कि अनेक स्थानो पर मालिको ने सकटकाल के नाम पर इस प्रस्ताव का अनुचित लाभ उठाया और श्रमिको का शोषण किया। अत प्रस्ताव मे सशोधन के कुछ सुझाव रखे गये, परन्तु जुलाई १९६३ म भारतीय श्रम सम्मेलन ने अपने अधिवेशन मे उन्हे माना नहीं। सम्मेलन ने सुझाव दिया कि एक त्रिदलीय स्थायी समिति की स्थापना करके प्रस्ताव को लागू करने के मार्ग म आने वाली सभी कठिनाइयों को दूर कर दिया जाना चाहिये। इस समिति की स्थापना की गई ताकि सभी पक्षो द्वारा प्रस्ताव को लागू करने के विषय मे आश्वस्त हुआ जा सके और इस सम्बन्ध म आवश्यक पग उठाये जा सकें कि प्रस्ताव के अन्तर्गत निहित कर्त्तव्यो को पूरा भी किया जा रहा है या नहीं। श्री गुलजारी लाल नन्दा समिति के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। समिति मे तीन प्रतिनिधि मालिको के सगठनो के और चार प्रतिनिधि श्रमिको के थे। समिति की पहली बैठक ५ अगस्त १९६३ को और दूसरी बैठक २७ दिसम्बर १९६३ को हुई। श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने बढ़ी हुई कीमतों की भी शिकायत की जिनके कारण श्रमिको को भारी कठिनाइयों का

सामना करना पड रहा था। अत. यह निश्चय किया गया कि जिस संस्थान में भी ३०० से अधिक श्रमिक हो वहाँ उचित कीमत वाली दुकाने स्थापित की जायें। ऐसी दुकानें दो महीने की अवधि में कम से कम ९५% संस्थानों में स्थापित कर दी जानी चाहिएँ। यह निर्णय किया गया कि उचित मूल्य की दुकानों की वित्तीय व्यवस्था मालिकों द्वारा की जाये परन्तु उन्हें खाद्यान्न तथा कन्ट्रोल की अन्य वस्तुयें सरकारी थोक भण्डारों से प्राप्त हों और ये दुकानें उसी आधार पर कार्य करें जिस प्रकार कि उचित मूल्य की सरकारी दुकानें कार्य करती हैं। उपभोक्ता सहकारी भण्डार स्थापित करने का भी निर्णय किया गया। जो भी व्यापारी अनुचित लाभ लें उनके विरुद्ध भारतीय सुरक्षा नियम के अन्तर्गत कठोर कार्य करने को कहा गया।

बैठक में इस पर बात भी सहमति व्यक्त की गई कि जीवन-निर्वाह सूचकांकों की शुद्धता की जांच की जाये। अतः यह भी निर्णय किया गया कि प्रमुख औद्योगिक नगरों में इस बात की जाँच की जाय कि निरीक्षकों द्वारा दिखलाई गई कीमतों में और श्रमिकों द्वारा जो कीमतें दी जाती हैं उनमें कोई अन्तर तो नहीं है। इस बात की भी शिकायत की गई कि निरीक्षक कीमतों का सही अंकन नहीं करते।

प्रस्ताव के लागू होने के फलस्वरूप अनेक सहकारी भण्डार तथा उचित मूल्य की दुकानें स्थापित की गईं। औद्योगिक विवादों के कारण हानि हुए कार्य-दिवसों की संख्या में भी प्रारम्भ में तो कमी हुई। परन्तु शीघ्र ही प्रस्ताव के वे वाछनीय प्रभाव पड़ने बन्द हो गये जिनके लिये कि यह कार्यदिवसों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो गई। इस बात की आवश्यकता है कि औद्योगिक शान्ति बनाये रखने के लिये ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाये कि मालिक व श्रमिक दोनों ही देश की सुरक्षा के इस प्रस्ताव को गम्भीरता से लागू करें।

श्रम के क्षेत्र में अनुसन्धान
(Research in the Field of Labour)

श्रम-क्षेत्र में कार्य करने के मार्ग में एक बड़ी बाधा यह पड़ती है कि श्रम से सम्बन्धित सूचनायें बहुत अपर्याप्त हैं। इस बात का अनुभव करते हुये द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में पर्याप्त आँकड़े प्राप्त करने के लिये अनेक सर्वेक्षण योजनाओं को मजूरी दी गई थी। द्वितीय आयोजना अवधि में तीन महत्वपूर्ण निम्नलिखित जाँच की गई थीं। (१) द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ, (२) मजदूरी गणना, तथा (३) पारिवारिक बजट सम्बन्धी पूछताछ। आयोजना आयोग की अनुसन्धान कार्यक्रम समिति ने जो विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थानों द्वारा अनुसन्धान व अन्वेषण कार्यों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती थी, श्रम अनुसन्धान के विषय में भी अधिक रुचि ली और श्रम अनुसन्धान के लिए एक विशेष उपसमिति भी बनाई। श्रम से सम्बन्धित एस विषयों पर जिन पर इस समिति ने अनुसन्धान अर्थात् अन्वेषण

योजनाओ की स्वीकृति दी, निम्न है : (क) कुछ चुनी हुई औद्योगिक इकाइयों मे औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में अध्ययन। (ख) प्रोत्साहन योजनाओं तथा विभिन्न उद्योगो मे मजदूरी भुगतान प्रणालियो का अध्ययन। (ग) विभिन्न उद्योगो मे गैर मजदूरी लाभ जिनमें श्रम कल्याण भी सम्मिलित थे। (घ) किसी उद्योग या क्षेत्र मे मजदूरी का स्वरूप। (ङ) औद्योगीकरण, स्वचालितिकरण तथा आधुनिकीकरण से श्रमिकों की अभिवृत्ति (Attitude) और उनकी आय पर जो प्रभाव पड़ा हो उसका कुछ विशेष चुने हुये उद्योगो मे मूल्यांकन। (च) विशेष क्षेत्रों मे कृषि श्रमिकों की मजदूरी तथा रहन-सहन की दशाओं का अध्ययन, तथा (छ) श्रम बाजार का अध्ययन। बाद मे अनुसंधान कार्यक्रम समिति के कार्य सन् १९६९ से स्थापित सामाजिक विज्ञान अनुसंधान की भारतीय परिषद को स्थानान्तरित कर दिये गये थे।

श्रम विषयों पर अनुसन्धान कार्यक्रमों का समन्वय करने तथा उनकी प्रगति पर विचार करने के लिये नई दिल्ली मे २२ सितम्बर १९६० को एक श्रम अनुसन्धान सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन की सिफारिशो के परिणामस्वरूप श्रम अनुसन्धान पर एक केन्द्रीय समिति की नियुक्ति की गई। इस समिति के सदस्य सरकार, मालिकों व श्रमिकों के संगठनों, श्रम अनुसन्धान विषय मे रुचि लेने वाले विश्वविद्यालयो तथा अन्य संस्थानो के प्रतिनिधि थे। इस समिति का कार्य यह था कि श्रम अनुसन्धान के क्षेत्र में जो वर्तमान संस्थायें कार्य कर रही हैं उनका तथा उनके साधनो का सर्वेक्षण करें, तथा विभिन्न संस्थानो मे श्रम अनुसन्धान योजनाओं का नियतन करें, ताकि अति-व्यापकता (Ovr-lapping) न होने पायें, श्रम क्षेत्र में अनुसन्धान को बढ़ावा दें, आदि-आदि। जुलाई १९६१ मे इस समिति ने बम्बई में एक केन्द्रीय श्रम अनुसन्धान संस्था स्थापित करने का निश्चय किया जिसका उद्देश्य यह था कि श्रम समस्याओं पर वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा निष्पक्ष रूप से सूचनायें प्राप्त हो सके। इस योजना में वित्तीय सहायता सरकार से प्राप्त होनी थी तथा दूसरे संस्थानों से भी सहायता प्राप्त हो सकती थी। इस प्रायोजना में 'फोर्ड फाउण्डेशन' ने भी अधिक रुचि दिखाई। इस समिति ने इस बात का भी निश्चय किया कि विभिन्न संस्थानों में जो अनुसंधान हो रहे थे उनकी सूचना एकत्रित करने के लिये तत्काल पग उठाये जायें। फलतः, भारत सरकार के श्रम व रोजगार विभाग के अन्तर्गत श्रम अनुसंधान का एक केन्द्रीय संस्थान चालू करने की एक योजना प्रस्तावित की गयी परन्तु इसे मूर्तरूप से न दिया जा सका। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी इस संस्थान की स्थापना की सफलता पर टिप्पणी की थी।

श्रम अर्थशास्त्र मे अनुसंधान के विषय पर अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र परिषद् के चौथे वार्षिक सम्मेलन में, जो दिसम्बर १९६० मे चण्डीगढ़ में हुआ, विचार-विमर्श किया गया। इस सम्मेलन में निर्णय के अनुसार १३ से १८ जून १९६१ तक पूना में श्रम अर्थशास्त्र मे अनुसन्धान की पद्धति पर एक सेमिनार

आयोजित की गई। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने भी जून १९६२ में अपने ४६वे अधिवेशन में 'श्रम क्षेत्र में अनुसन्धान' के विषय पर एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें सदस्य देशों से कहा गया कि मानव शक्ति और श्रम सम्बन्धी विषयों पर अनुसन्धान पर अधिक बल दिया जाये। श्रम ब्यूरो द्वारा भी अनुसन्धान के क्षेत्र में कुछ सराहनीय कार्य हुए तथा इसने कई परियोजनाएँ चलाई जिनमें से मुख्य निम्नलिखित थी · (क) सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों में श्रम दशाओं का अध्ययन। (ख) मजदूरी गणना। (ग) ५० औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिक वर्ग पारिवारिक सर्वेक्षण। (घ) श्रम उत्पादकता के अन्तरिम सूचकांक बनाना। (ङ) ग्रामीण श्रमिक पूछताछ। (च) उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों का निर्माण, (छ) परिवार बजट पूछताछ, (ज) ठेके के श्रमिकों का सर्वेक्षण, (झ) ६० केन्द्रों पर श्रमिक वर्ग के परिवारों की आय व व्यय का सर्वेक्षण, (ञ) अभ्रक-खानों की आवास दशाओं का सर्वेक्षण, (ट) भारतीय श्रम अनुसधान पत्रिका तथा अन्य पत्रों का प्रकाशन आदि। श्रम ब्यूरो ने जून १९६३ से एक विशेष अनुसन्धान विभाग भी खोला। केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय श्रम सस्थानों ने भी औद्योगिक स्वास्थ्य-रक्षा, औद्योगिक चिकित्सा, औद्योगिक क्रिया-विज्ञान (Industrial Physiology) तथा कार्य-भार के समानीकरण आदि के क्षेत्र में अनेक अध्ययन किये। श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय ने औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में तथा सरकारी क्षेत्र के उद्यम में श्रम कानूनों को लागू करने की स्थिति के विषय में अनेक अध्ययन किये। औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में ऐसे ही अध्ययन विश्वविद्यालयों में तथा अनुसन्धान कार्यक्रम समिति से अनुदान-प्राप्त अनुसन्धान सस्थाओं में किये गये। श्रम-अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने के लिए बबई, दिल्ली तथा लखनऊ में तीन श्रम अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किये गये।

नई दिल्ली स्थित श्रम अध्ययन का भारतीय सस्थान (The Indian Institute of Labour Studies), जिसकी स्थापना सितम्बर १९६४ में की गई थी और स्थापना के समय जिसे औद्योगिक सम्बन्धों में प्रशिक्षण का भारतीय सस्थान कहा जाता था, बराबर सेवाकालीन प्रशिक्षण देने की व्यवस्था कर रहा है। सस्थान यह प्रशिक्षण केन्द्र, राज्य व सघ-शासित क्षेत्रों के श्रम विभागों के अधिकारियों को, सरकारी उद्यमों के अधिकारियों को तथा कोलम्बो योजना के अन्तर्गत विदेशों के प्रतिनिधियों को प्रदान करता है। नियमित पाठ्यक्रमों के अलावा यह नवीनीकरण पाठ्यक्रमों में भी प्रशिक्षण देता है। सन् १९६८ में उसने श्रम सम्बन्धी समस्याओं पर व्यावहारिक अनुसन्धान करने के लिये एक अनुसन्धान शाखा की भी स्थापना की है। देश में मानवशक्ति अनुसन्धान के क्षेत्र व्यावहारिक मानवशक्ति अनुसन्धान सस्थान (The Institute of Applied Manpower Research) भी उल्लेखनीय कार्य कर रहा है।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में इस बात पर जोर दिया गया था कि सामान्य सरकारी स्रोतों द्वारा श्रम-अनुसधान को प्रोत्साहन दिया जाये और सरकारी क्षेत्र के बाहर भी श्रम सम्बन्धी मामलों पर अनुसन्धान करने के लिए संस्थानों को सुविधायें दी जायें। आयोजना में इस बात की भी सिफारिश की गई थी कि श्रम अनुसधान के कार्य में समन्वय लाने के लिये एक केन्द्रीय समिति का निर्माण किया जाये। चौथी आयोजना की रूपरेखा में भी इस बात पर जोर दिया गया था कि जानकारी एवं सूचनाओं के वर्तमान आधार को दृढ़ किया जाये और श्रम सम्बन्धी मामलों के अध्ययन को भी मजबूत बनाया जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि अध्ययन का विस्तार ऐसे क्षेत्रों तक भी कर दिया जाये जो कि अब तक इसके अन्तर्गत नहीं थे और गहन अनुसन्धान पर जोर देकर इसकी कोटि (quality) में सुधार किया जाये। आयोजना में यह भी कहा गया कि इस क्षेत्र में अनुसधानकर्त्ताओं के एक प्रशिक्षित वर्ग के निर्माण की आवश्यकता है। यह वह क्षेत्र था जिसमें मुख्य कार्य अब तक सरकार द्वारा ही किया गया था। यह भी महत्त्वपूर्ण होगा कि सरकारी प्रयत्नों के अनुपूरक के रूप में अब श्रमिक संघ तथा प्रबन्ध इस क्षेत्र में प्रवेश करें और श्रमिकों के विशेष हित की समस्याओं के अध्ययन में सुधार करें।

सन् १९६९ में, भारत सरकार ने नई देहली में एक स्वायत्त संस्था के रूप में 'सामाजिक विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धान की भारतीय परिषद्' (Indian Council of Social Science Research) की स्थापना की। इसकी स्थापना के मुख्य उद्देश्य ये थे "सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान को बढ़ावा देना तथा अनुसन्धान के उपयोग को सुविधाजनक बनाना, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुसन्धान-प्रतिभा का विकास करना, उच्च कोटि की अनुसन्धान आयोजनाओं एवं कार्यक्रमों का समर्थन करना और सामाजिक विज्ञान-वेत्ताओं के संगठनों का विकास करना।" परिषद् सभी विज्ञानों में किये गये अनुसन्धानों में ताल-मेल स्थापित करती है तथा विश्वविद्यालयों व अनुसधान संस्थाओं की स्वीकृत योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता देकर व्यवस्थित अनुसधान को बढ़ावा देती है। राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिश है कि इस परिषद् को श्रम अनुसधान को अपनी एक महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में मान्य करना चाहिए।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि श्रम अनुसन्धान के क्षेत्र में सरकार, विश्वविद्यालयों, अनुसन्धान संस्थाओं तथा मालिकों व श्रमिकों के संगठनों के बीच और अधिक व्यापक सहयोग होना चाहिए। श्रम अनुसन्धान के क्षेत्र में आवश्यक नेतृत्व एवं साधन उपलब्ध कराने का दायित्व मुख्यतः भारत सरकार के श्रम व रोजगार विभाग को ही सम्भालना चाहिए। इस विभाग को इस बात की भी जाँच करनी चाहिए कि श्रम अनुसन्धान प्रस्तावित केन्द्रीय संस्थान की स्थापना

व उसे मचाना के मार्ग म कौन-सी कठिनाइयाँ आई तथा उन्हे दूर कर मस्थान को सक्रिय बनाना चाहिए।

उपर्युक्त सिफारिशों के फलस्वरूप तथा श्रम विषयो म प्रशिक्षण तथा अनुसधान की बढत हुए महत्त्व एव देशो के सामाजिक व आर्थिक विकास पर उनके प्रभाव का दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार ने स्वायत्त निकाय के रूप मे एक राष्ट्रीय श्रम सस्थान (National Labour Institute) की स्थापना का निश्चय किया। सस्थान के लिए पूना मे स्थान का चुनाव भी कर लिया गया। सस्थान ने १६७४ से कार्य करना आरम्भ किया है और उसका कार्यालय अभी नई दिल्ली म है। इसके तीन अग है जो (१) प्रशिक्षण व अभिस्थापन, (२) अनुसन्धान तथा मूल्याकन और (३) परामर्श तथा प्रकाशन के कार्यो को देखते है।

हमे आशा है कि श्रम के क्षेत्र मे अनुसधान कार्य को आगे बढाने के लिए *उन सभी तत्वों का सहयोग प्राप्त किया जायगा जो श्रम-अर्थशास्त्र तथा श्रम अनुसन्धान म रुचि रखत हैं।*

राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour)

सन १६३१ म जबकि श्रम पर शाही आयोग ने अपनी रिपार्ट दी थी, तब मे श्रम सम्बन्धी कानूनों, औद्योगिक सम्बन्धो तथा श्रमिको के कार्य करने तथा रहन-सहन की दशाओ की कोई विस्तृत रूप मे समीक्षा नही की गई। श्रम जाँच समिति (१६४४—४६) ने श्रमिकों के कार्य करने व रहन-सहन की दशाओं से सम्बन्धित केवल नवीनतम आँकडे प्रस्तुत किय थे और कुछ मूल्यवान् रिपोर्टें प्रस्तुत की थी। तथापि, स्वतन्त्रता के पश्चात् से औद्योगिक विज्ञान मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। *मूलभूत उद्योगों तथा उपभोग्य पदार्थों के उद्योगों की निरन्तर वृद्धि, सहकारी क्षेत्र* की महत्ता प्रबन्ध सम्बन्धी ढाँचे मे एव श्रम-शक्ति की प्रकृति तथा रचना मे होने वाले परिवर्तन, श्रमिकों के जीवन तथा कार्य से सम्बन्धित विकास कार्यक्रमो का प्रभाव आदि—ये स्वाधीनता के बाद होने वाली कुछ उल्लेखनीय प्रगतियाँ हैं। अत सरकार ने श्रम-नीति तथा उसकी कार्य-प्रणाली की नई एव व्यापक समीक्षा करने का निश्चय किया और २४ दिसम्बर १६६६ को एक राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) की नियुक्ति की। भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री पी० बी० गजेन्द्र गडकर इस आयोग के अध्यक्ष थे और आयोजना आयोग के सलाहकार श्री बी० एन० दातार इसके सदस्य सचिव। इसके अतिरिक्त, *आयोग के १४ सदस्य और थे जोकि मालिको, श्रमिको, स्वतन्त्र सदस्यो तथा* अर्थशास्त्रियों के प्रतिनिधि थे। आयोग के मूल गठन मे बाद मे परिवर्तन किया गया तथा २८ अगस्त, १६६६ को रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने समय अध्यक्ष और सदस्य-सचिव के अलावा आयाग मे १० सदस्य थे। आयोग के विचारार्थ विषय अग्र प्रकार थे—

(१) स्वतन्त्रता के पश्चात् मे श्रमिको की दशाओं मे हुये परिवर्तनो की समीक्षा करना तथा श्रमिको की वर्तमान दशाओ पर अपनी रिपोर्ट देना।

(२) श्रमिको के हितो की रक्षा के लिये बनाये गये वर्तमान वैधानिक एव अन्य उपबन्धो (Provision) की समीक्षा करना, उनके लागू होने की प्रगति का मूल्यांकन करना और इस विषय मे रिपोर्ट एव परामर्श देना कि ये उपलब्ध संविधान मे राजनीति के श्रम मामलों से सम्बन्धित निदेशक सिद्धान्तो को लागू करने और समाजवादी समाज की स्थापना करने के राष्ट्रीय लक्ष्यो की पूर्ति करने तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास की सफलता की दृष्टि से कहाँ तक उपयुक्त है।

(३) निम्न बातो का अध्ययन करना एव उनके सम्बन्ध मे रिपोर्ट देना: (क) श्रमिको की कमाई के स्तर, मजदूरियो से सम्बन्धित उपबन्ध, न्यूनतम मजदूरियो के निर्धारण की आवश्यकता, जिसमे राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी भी सम्मिलित है और उत्पादकता बढाने के उपाय जिसमे मजदूरी की प्रेरणाओ के उपबन्ध भी सम्मिलित है, (ख) श्रमिको का रहन-सहन का स्तर, स्वास्थ्य, कार्य-क्षमता, सुरक्षा, कल्याण, आवास व्यवस्था, प्रशिक्षण एव शिक्षा और केन्द्र तथा राज्यो मे श्रम-कल्याण, आवास व्यवस्था, प्रशिक्षण एव शिक्षा और केन्द्र तथा राज्यो मे श्रम-कल्याण के प्रशासन के लिये प्रचलित व्यवस्थायें, (ग) सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान व्यवस्थायें, (घ) मालिको एव श्रमिको के पारस्परिक सम्बन्धो की दशा तथा स्वस्थ औद्योगिक सम्बन्धो एव राष्ट्र के हितो की वृद्धि करने मे श्रमिक संघो एव मालिकों के सगठन का योगदान, (ङ) श्रम सम्बन्धी कानून तथा ऐच्छिक व्यवस्थायें, जैसे कि अनुशासन संहिता, सयुक्त प्रबन्ध परिषदें, ऐच्छिक पंच निर्णय व मजदूरी बोर्ड और केन्द्र व राज्यो मे उनके लागू होने की व्यवस्था, (च) ग्रामीण श्रमिको के अन्य वर्गों की दशायें सुधारने के उपाय; और (छ) श्रमिकों से सम्बन्धित सूचनाओ एव अनुसधान की वर्तमान व्यवस्थायें, और

(४) ऊपर उल्लेख किये गये विषयो के सम्बन्धो मे सिफारिशें देना।

आयोग ने श्रमिकों को काम पर लगाने वाले मन्त्रालयों, राज्य सरकारो, मालिको एव श्रमिको के सगठनो तथा श्रम समस्याओं मे रुचि लेने वाले अन्य सगठनो के लिये एक विस्तृत प्रश्नावली भेजी। आयोग ने कुछ विशिष्ट विषयो एव कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगो की श्रम समस्याओ के अध्ययन के लिये ३० अध्ययन दलो, २ समितियो तथा ५ कार्य-दलो की स्थापना की। मौखिक गवाहियाँ एकत्र करने के लिये आयोग ने विभिन्न राज्यो का भ्रमण भी किया। विभिन्न राजनीतिक दलो से सम्बन्धित ससद सदस्यों, प्रमुख व्यक्तियो, एव सरकारी अधिकारियों से विचार-विमर्श किया तथा श्रम सम्बन्धी विषयो पर अनेक गोष्ठियों व सम्मेलनो का आयोजन किया और उनमे भाग लिया। आयोग ने भारत सरकार के श्रम व रोजगार विभाग के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय से भी सम्पर्क रखा।

आयोग की रिपोर्ट २८ अगस्त १९६९ को सरकार के समक्ष प्रस्तुत की गई। आयोग ने ३०० सिफारिशे दीं, जिनमे से अधिकाश का उल्लेख पिछले पृष्ठो

में सम्बद्ध विषयों के साथ हम पहले ही कर चुके हैं। श्रम मन्त्रालय की १६७३-७४ की रिपोर्ट से पता चलता है कि सरकार ने आयोग की ३०० सिफारिशों में से २१६ को स्वीकार कर लिया है। आयोग की कुछ प्रमुख सिफारिशें, जैसे कि श्रमिक संघों की मान्यता व औद्योगिक विवादों के निपटारे की व्यवस्था, आदि इसलिये लागू न की जा सकीं क्योंकि उनके सम्बन्ध में श्रमिक संघों में मतैक्य नहीं था। इन मामलों के निपटारे के लिए दिसम्बर १६७१ में मालिकों व श्रमिकों की एक कार्यकारी दल की भी स्थापना की गई किन्तु वह भी इन मामलों के सम्बन्ध में एक राय कायम न कर सका। औद्योगिक सम्बन्धों के इन सभी मामलों के बारे में अब सरकार ने व्यापक विधान बनाया है जोकि संसद से पास कराकर शीघ्र ही लागू किया जायगा।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट एक ऐसा दस्तावेज है जिसने अनेक क्षेत्रों में कुछ निराशा भी उत्पन्न की है और उस स्थिति में तो विशेष रूप से ऐसा अनुभव होता है जबकि रायल श्रम आयोग (१६३१) और श्रम अनुसंधान समिति (१६४६) की रिपोर्टों से इसकी तुलना की जाती है। राष्ट्रीय श्रम आयोग की अधिकांश सिफारिशें ऐसा लगता है कि गौण समझौते के आधार पर प्रस्तुत की गई हैं, कुछ राजनयिकों जैसी भाषा में व्यक्त की गई हैं और वे (सिफारिशें) इस ढंग से की गई हैं मानो कि उसमें सभी पक्षों को, विशेषतः सरकार को प्रसन्न करने की चेष्टा की गई हो। जैसा कि आयोग के कुछ सदस्यों ने ही असहमति की अपनी टिप्पणी में व्यक्त किया था, ऐसा लगता है कि आयोग ने सिफारिश करते समय वर्तमान परिस्थितियों का ही अधिक ध्यान रखा है और इस तथ्य को अनुभव नहीं किया है कि ऐसे आयोग की सिफारिशें आगामी बीस-तीस वर्षों तक मार्गदर्शक बिन्दुओं का कार्य कर सकती हैं। किन्तु इन सबके बावजूद आयोग की रिपोर्ट इस दृष्टि से बड़ी उपयोगी है कि यह उन श्रम समस्याओं तथा श्रमिकों की दशाओं का बड़ा व्यापक विवरण प्रस्तुत करती है जोकि आयोग द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय तक देश में पाई जाती थी।

आवश्यक सूचना

पाठकों से अनुरोध है कि परिशिष्ट 'ध' (जिसमें नवीनतम तथ्य एवं आँकड़े दिये गये हैं) प्राप्त करने के लिये कृपया सीधे प्रकाशक को निम्न पते पर लिखें एवं यह स्लिप भी साथ में भेजें ताकि परिशिष्ट डाक द्वारा भेजा जा सके।

केदार नाथ एण्ड कम्पनी
प्रकाशक, निकट कोतवाली
मेरठ-250002 (यू० पी०)

(नोट परिशिष्ट केवल यह स्लिप मिलने पर ही भेजा जा सकेगा।)

परिशिष्ट ड

शब्दावली (Glossary)

(English to Hindi)

A

English	Hindi
Able-bodied	समर्थ
Absenteeism	अनुपस्थिति
Absolute	निरपेक्ष
Accession rate	नियुक्ति दर
Accident Prevention	दुर्घटना निवारण
Accrue	प्रोद्भवन
Achievement	उपलब्धियाँ
Acquisition	अभिग्रहण, अर्जन
Acquit	विमुक्ति
Act	अधिनियम
Ad hoc	तदर्थ
Adjudicator	न्याय निर्णायक, विवाचक
Adjustment	समजन
Administration	प्रशासन
Adolescent	किशोर
Adult	वयस्क
Adulteration	मिलावट
Advisory	सलाहकार
Affiliation	सम्बद्ध
Agent	अभिकर्त्ता, एजेन्ट
Agreement	करार
Allocation	विनिधान
Allotment	नियतन
Amalgamation	समामेलन
Amendment	संशोधन
Analysis	विश्लेषण
Annul	रद्द करना
Anti-labour	श्रमिक विरोधी
Appellate	अपीलीय
Appendix	परिशिष्ट
Appointment	नियुक्ति
Apprentice	शिक्षार्थी
Apprenticeship	शिक्षुता
Approach	विचारधारा
Aptitude	रुझान
Arbitration	विवाचन
Arrears	बकाया शेष
Artisan	शिल्पी, दस्तकार
Asset	परिसम्पत्ति
Assignment	अभिन्यास
Association	परिषद्, संस्था
Assumption	पूर्वधारणा
Attachment	कुर्की
Attendance Wage	हाजिरी की मजदूरी
Audit	लेखा परीक्षा
Authorised	प्राधिकृत
Authority	प्राधिकारी
Automatic	स्वतः
Auxiliary	सहायक
Avocation	उप व्यवसाय
Award	पंचाट, विवाचन, निर्णय

B

English	Hindi
Back-log	पिछली
Bargaining	सौदा, सौदाकारी
Basic	मूल
Benefit	हित

Bill विधेयक
Bonus बोनस
Boss अफसर, हाकिम
Bourgeois बुर्जुआ
Boycott बहिष्कार
Breach of Contract सविदा भग
Breach of Trust न्याय भग
Bureau ब्यूरा
Bureaucracy नौकरशाही
Business Union कारबारी सघ
Bye-law उपविधि
By product गौण उत्पादन

C

Casual labour नैमित्तिक श्रमिक
Casual leave आकस्मिक छुट्टी
Censure निन्दा करना
Childern's allowance सन्तान भत्ता
Circulate परिचालन
Circular निर्देशन-पत्र
Class consciousness वर्ग चेतना
Classical Economists सस्थापक अर्थशास्त्री
Class Struggle वर्ग सघर्ष
Code सहिता
Cognizable प्रज्ञेय
Collective Bargaining सामूहिक सौदाकारी
Commerce वाणिज्य
Compensable injury पूर्तियोग्य क्षति
Compensation हानि पूर्ति, क्षतिपूर्ति
Complementary पूरक
Comprehensive व्यापक
Concentration सकेन्द्रण
Concept सकल्पना
Conciliation सुलह
Conduct आचरण
Consumer Price Index उपभोक्ता मूल्य सूचकाक
Consumption उपभोग
Contingency आकस्मिकता
Contract सविदा
Contract labour ठेके के श्रमिक
Contribution अशदान
Convention अभिसमय
Co-ordination समन्वय
Co partnership सह-साझेदारी
Corporation निगम
Cost of living निर्वाह खर्च
Council परिषद्
Craft guild दस्तकार श्रेणी
Craftsman शिल्पी
Credit worthiness उधार पात्रता
Cumulative सचयी
Current wage प्रचलित मजदूरी
Cyclical चक्रीय

D

Day wages दिहाडी
Decasualisation स्थायीकरण
Decentralisation विकेन्द्रीकरण
Defaulter बाकीदार
Deferred आस्थगित
Demand, Effective समर्थ माँग
Depression मन्दी
Depreciation मूल्य-ह्रास
Desirability वाछनीयता
Direct labour प्रत्यक्ष श्रम
Director निदेशक
Disability अशक्तता
Discharge अलहदगी

Discipline अनुशासन
Disequilibrium असन्तुलन
Discretionary सविवेक
Dismissal बर्खास्तगी
Displacement विस्थापन
Dispute विवाद
Dividend लाभांश
Division प्रभाव, मण्डल, विभाजन
Dock गोदी
Domicile अधिवासी

E

Earning अर्जन
Efficiency कार्य-कुशलता
Eject बेदखल करना
Eligibility पात्रता
Emigration परावास, उत्प्रवास
Employability रोजगार क्षमता
Employee कार्मिक कर्मचारी
Employer मालिक
Employment रोजगार, काम, नौकरी
Employment Counselling रोजगार सम्बन्धी सलाह देना
Employment Exchange रोजगार दफ्तर
Employment oriented रोजगार प्रधान
Endorsement पृष्ठांकन
Enquiry जाँच, पूछताछ
Entrepreneur उद्यमकर्ता
Environment पर्यावरण, माहौल, वातावरण
Establishment प्रतिष्ठान, सिब्बंदी
Evaluation मूल्यांकन
Evasion अपवंचन
Exception अपवाद

Execute निष्पादन करना
Executive कार्यांग
Ex-officio पदेन
Ex-party एक-पक्षीय
Ex serviceman भूतपूर्व सैनिक
Extend व्यापकता, सीमा
Extensive विस्तार
External बाह्य
Extra-mural बहिर्मुखी

F

Fact तथ्य
Fatigue श्रम थकान, श्रांति, क्लांति
Fatal घातक
Factionalism गुटबन्दी
Factors उपादान
Factory कारखाना फैक्ट्री
Fair Wage उचित मजदूरी
Federation संगम
Follow up methods पुनः निरीक्षण
Forced labour बेगार
Frictional असन्तुलनात्मक
Full Employment पूर्ण रोजगार
Fund निधि
Funded निधिबद्ध

G

Gainful अर्थकर लाभदायक,
Gentlemen's Agreement भद्र करार
Go slow-tactics कार्य मंदन युक्तियां
Graduated wage आरोही मजदूरी
Grant अनुदान
Gratuity अनुतोषिक, अवकाश प्राप्त धन
Grievance Procedure शिकायत निवारण क्रियाविधि
Guarantee गारंटी

H

Handicapped — विकलांग
Hobby centre — शौक केन्द्र
Housing — आवास
Human — मानवीय
Hygiene — स्वास्थ्य विज्ञान

I

Idle resources — निष्क्रिय साधन
Illegal — अवैध
Illegitimate — अवैध
Immobility — गतिहीनता
Immigrant — अप्रवासी
Implementation — कार्यान्वित, लागू होना
Indebtedness — ऋणग्रस्तता
Indentured — करारबद्ध
Index number — सूचकांक
Industrial-disease — उद्योगजनित बीमारी
Industrial peace — औद्योगिक शांति
Industrial relations — मालिक-मजदूर सम्बन्ध
Inequalities — असमानतायें
Injunction — निषेधाज्ञा
In kind — जिन्स से
Instalment — किस्त, अंशिका
Instigate — उकसाना
Institute — संस्थान
Institutional — सांस्थानिक
Instructor — अनुदेशक
Insured — बीमाकृत
Intermediary — मध्यस्थ, मध्यग
Interim — अन्तरिम
Intermittent — सविराम
Interview — साक्षात्कार, समालाप
Intensive Labour — श्रम प्रधान
Intimidation — अभित्रास, धमकाना
Intra-murae — अन्तर्मुखी
Invalid — निशक्त
Investigation — अनुसन्धान
Investment/In put — निवेश
Inventories — कच्चा या अर्ध तैयार माल

J

Job — काम, नौकरी, कार्य
Job instruction — कार्यनिर्देशन
Job-method — कार्य-प्रणाली
Job-Relations Training — श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण
Job-specification — कार्य-विशिष्ट
Judiciary — न्यायांग
Junior — अवर
Jurisdiction — अमलदारी

K

Kidnap — अपहरण

L

Labour — श्रम, श्रमिक, मजदूर
Labourer — श्रमिक कारागार
Labour Co operatives — श्रमिक सहकारी कार्य समितियां
Labour Court — श्रम न्यायालय
Labour-Machinary — श्रम-व्यवस्था
Labour Management Co operation — श्रमिक प्रबन्धक सहयोग
Labour-Market — श्रम-बाजार
Labour-Turnover — श्रमिकावर्त
Laissez faire — अबन्ध नीति
Lay off — जबरी-छुट्टी
Lay out — विन्यास
Legitimate — वैध
Legislation — विधान

शब्दावली

Levy	उगाही
Liability	दायित्व
Liquidation (of company)	समापन
Liquidation (of debt)	अपाकरण
Liquidity Preference	नकदी तरजीह
Living-wage	पर्याप्त-वेतन, निर्वाहिका
Local bodies	स्थानीय निकाय
Lock-out	तालाबन्दी
Localisation	स्थानीयकरण
Lost-time	कार्य-समय-नाश
M	
Management	प्रबन्ध, प्रबन्धक
Man-day	श्रम-दिन
Manufacture	विनिर्माण
Marine	समुद्री
Maritime	सामुद्रिक
Maternity benefit	मातृत्वकालीन लाभ
Mature	परिपक्व
Means-test	जीविका साधन जाँच
Memorandum	ज्ञापिका
Method deductive	निगमन रीति
Method inductive	आगमन रीति
Migratory character	प्रवासिता
Migratory-workee	प्रवासी श्रमिक
Minimum wage	न्यूनतम मजदूरी
Mobility	गतिशीलता
Mobilsation	लामबन्दी, जुटाना
Modernisation	आधुनिकीकरण
Modification	विकरण, रूप भेदन
Money wage	नकद मजदूरी
Moral	नैतिक
Morale	हौसला
Motion-study	गति अध्ययन
Multiplier	गुणक
Multi-shift system	बहुपारी पद्धति
N	
Negative	नकरात्मक
Negotiation	परक्रामण
Net	निवल
Night-shift	रात्रि-पारी
Nominal Wage	नक्द मजदूरी
Nomination	मनोनीत, नामन
O	
Occupation	व्यवसाय
Off-shift	इतर पारी
Ordinance	अध्यादेश
Outlay	व्यय
Output	निपज
Over-crowding	अति भीड
Over-lapping shifts	परस्पर व्यापी पारिया
Over-time	समयोपरि, सवाई
Over-work	अति-श्रम
P	
Panel	नामिका
Partial	आंशिक
Part-time	अंश कालिक
Participation in Management	प्रबन्ध मे भाग
Perennial	निरन्तर चालू
Performance	कार्य
Permissive	अनुज्ञात्मक
Perquisites	अतिरिक्त सुविधायें, लवाजमात
Personal	निजी, व्यक्तिगत
Personnel	कार्मिक
Picketing	धरना

Piece wage — उजरत
Plan — आयोजना
Planning — नियोजना आयोग
Pledging Commission — आयोजना आयोग
Pledging — अनुबन्ध
Pool system — पूल प्रणाली
Positive — सकारात्मक
Potential — सम्भाव्य
Preference — अभिमान्यता तरजीह
Prerogative — विशेषाधिकार
Priority — अग्रता, प्राथमिकता
Private sector — *निजी क्षेत्र,* गैर-सरकारी क्षेत्र
Privilege — विशेषाधिकार
Probationary — परिवीक्षाधीन
Process — प्रक्रिया
Productivity — उत्पादकता
Profit sharing — लाभ सहभाजन
Progressive — आरोही
Project — प्रायोजना
Proletariat — मजदूर वर्ग
Promulgation — प्रख्यापन
Proneness — प्रवृत्ति
Propagation — सचारण, प्रचार
Propensity to consume — उपभोग प्रवृत्ति
Prosecution — अभियोजन
Prospects — सम्भावनायें
Provident Fund — प्रोवीडेन्ट फण्ड निर्वाह निधि
Provision — उपबन्ध
Psychology — मनोविज्ञान
Publicity — प्रचार
Public sector — सरकारी क्षेत्र

Q

Qualification — अर्हता
Quality — गुण
Quantity — मात्रा
Questionnaire — प्रश्नमाला
Quit rate — त्याग दर

R

Ratification — सत्यापन, अनुसमर्थन, अपनाना
Rationalisation — युक्तिकरण, विवेकीकरण
Recess — विश्रांति, अवकाश
Recruitment — भर्ती
Refer — निर्देशन करना
Registration — पजीकरण, रजिस्ट्री करना
Regularisation — नियमानुकूल
Regulation — विनिमय, विनियमन
Rehabilitation — पुनर्वास
Relative — सापेक्ष
Remedy — उपचार
Remuneration — मेहनताना, पारिश्रमिक
Repeal — निरसन करना
Representation — अभिवेदन
Requisition — अधिग्रहण
Resettl ment — पुन स्थापन
Resources — साधन
Rest pause — अल्प विराम
Rest shelter — विश्राम स्थल
Retrenchment — छटनी
Review — समीक्षा, पुनरावलोकन
Revolutionary — क्रान्तिकारी
Rioting — बलवा
Risk — जोखिम
Rival — स्पर्धी, प्रतिद्वन्द्वी

Rotation plan — बदलते श्रमिक योजना

S

Sabotage — तोडफोड, अन्तर्ध्वंस
Safely campaign — सुरक्षा आन्दोलन
Sanitation — जलमल निकास व्यवस्था
Scarcity — दुर्लभता
Scheme — योजना
Schedule — अनुसूची
Scuffle — हाथापाई
Seasonal — मौसमी, सामयिक
Security — जमानत, सुरक्षा
Self-suffic ency — आत्मनिर्भरता
Senior — प्रवर
Separation rate — विमुक्ति दर
Serfdom — दासता
Settlement — समझौता
Shift — पारी
Shop — श्रमालय, दूकान
Shop steward — श्रमालय प्रतिनिधि
Single Shift system — एक पारी
Sit down strike — हाजिर हड़ताल
Size — आकार
Skilled labour — कुशल कर्मचारी
Social insurance — सामाजिक बीमा
Social service agencies — सामाजिक सेवा सस्थायें
Source — उद्‌गम स्थान
Spread over — श्रम समय विस्तार
Stage — चरण
Standing Order — स्थायी आदेश
Standard time — मानक समय
Standardisation — समानीकरण
Stipend — वजीफा
Strike — हड़ताल
Subsidy — उपदान
Stusidiary — उपसगी
Substitution — स्थानापन्न
Subsistence level — निर्वाह स्तर
Subsidised Industrial Housing Scheme — उपदानप्राप्त औद्योगिक आवास योजना
Supervisor — पर्यवेक्षक
Supply — सम्भरण
Surface workers — खान के ऊपर श्रमिक
Surplus — बेशी, अधिशेष
Surveyors — सर्वेक्षक
Surveyors — उत्तरजीवी
Suspension — निलम्बन
Sweating — अति श्रम
Sweated trades — शोषित धंधे

T

Taxation — कराधान
Tachnical — तकनीकी
Test — परीक्षण
Time study — समय अध्ययन
Time-lag — समय का व्यवधान
Time wage — समानी
Threatened strike — आशंकित हड़ताल
Thrift — मितव्ययता
Token Strike — साकेतिक हड़ताल
Trade council — व्यवसाय परिषद्
Trainee — प्रशिक्षार्थी
Training — प्रशिक्षण, सिखलाई
Training-within industry — अन्तर्कार्य प्रशिक्षण
Transaction — सौदा, व्यवहार, लेनदेन
Tribunal — अधिकरण
Tripartite — त्रिदलीय

Truce — विराम संधि
Trustee — न्यासी

U

Under-employment — अपूर्ण रोजगार
Under-ground worker — खान के भीतर के श्रमिक
Unemployment — बेकारी, बेरोजगारी
Unemployable — रोजगार के अयोग्य
Unfair — अनुचित
Unionism — संघ पद्धति, संघवाद
Unlawful — विधि विरुद्ध
Unorganised — असंगठित
Unregulated — अनियन्त्रित
Unrest — अशांति
Up-grading — पदोन्नति

V

Vacancy — रिक्त स्थान
Ventilation — संवातन
Victimisation — सताना, अत्याचार, तंग करना
Vocational — व्यावसायिक
Voluntary — ऐच्छिक

W

Wages — मजदूरी
Wage cut — मजदूरी कटौती
Wage deferentials — मजदूरी अन्तर
Wages Fund Theory — मजदूरी निधि सिद्धान्त
Wage Incentive System — प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली
Wage real — वास्तविक मजदूरी
Waiting period — प्रतीक्षाकाल
Weighted — महत्त्वांकित
White collar job — सफेद पोश नौकरी
Whole time — पूर्ण कालिक
Working class — श्रमिक वर्ग
Work Committee — मालिक मजदूर समिति

Y

Yellow unions — पोषित संघ